प्रस्तावना :
आचार्यसम्राट् श्री देवेन्द्र मुनि जी म.

सम्पादन सहयोगी :
आगम मनीषी श्री तिलोक मुनि जी 'गीतार्थ'
महासती श्री अनुपमा जी, एम. ए., पी-एच. डी.
महासती श्री भव्यसाधना जी
महासती श्री विरतिसाधना जी
डॉ. श्री धर्मचन्द जी जैन, जोधपुर

पांडुलिपि सहयोगी :
श्री राजेश भंडारी, जोधपुर
श्री राजेन्द्र एवं सुनील मेहता, शाहपुरा
श्री मांगीलाल जी शर्मा, कुरड़ायाँ

प्रकाशक एवं प्राप्ति-स्थान :
आगम अनुयोग ट्रस्ट
१५, स्थानकवासी सोसायटी
नारायणपुरा क्रॉसिंग के पास
अहमदाबाद-३८० ०१३

प्रकाशन वर्ष :
वीर निर्वाण संवत् २५२१
वि. सं. २०५२ महावीर जयन्ती
ईस्वी सन् १९९५, अप्रैल

मुद्रण :
राजेश सुराना द्वारा
दिवाकर प्रकाशन
ए-७, अवागढ़ हाउस, एम. जी. रोड
आगरा-२८२ ००२, फोन : (०५६२) ३५११६५

सम्पर्क सूत्र :
- मंत्री : श्री जयंतिलाल चंदुलाल संघवी
  सिद्धार्थ एपार्टमेन्ट
  स्थानकवासी सोसायटी के पास
  नारायणपुरा क्रॉसिंग
  अहमदाबाद-३८० ०१३
- श्री वर्धमान महावीर केन्द्र
  सब्जी मण्डी के सामने
  आबू पर्वत-३०७ ५०१ (राज.)
- डॉ. सोहनलाल जी संचेती, सहमंत्री
  चाँदी हॉल, केसरवाड़ी
  जोधपुर-३४२ ००२ (राज.)

मूल्य :
तीन सौ इक्यावन रुपये मात्र (३५१/- रुपया)

ARHAM
GURUDEV SHRI FATEH-PRATAP MEMORIAL AGAM ANUYOG SERIES-7

DRAVYANUYOGA

AN AUTHENTIC SUBJECTWISE COLLECTION OF DATA ON LIFE AND MATTER DETAILED IN JAIN SCRIPTURES

(TEXT AND HINDI TRANSLATION)

PART-II (CHAPTER 25 TO 38)

Editor :
Anuyog Pravartak, Upadhyaya Pravar, Pandit Ratna
Muni Shri Kanhiya Lal Ji 'Kamal'

Associate Editor :
Agam Rasik Shri Vinay Muni Ji 'Vageesh'
Mahasati Dr. Shri Mukti Prabha Ji, M.A., Ph.D.
Mahasati Dr. Shri Divya Prabha Ji, M.A., Ph.D.

Chief Consultant :
Pt. Shri Dalsukh Bhai Malvaniya

Co-Editor :
Pt. Shri Dev Kumar Ji Jain (Bikaner)
Shri Srichand Ji Surana 'Saras'

Special Assistance :
Shri Lala Gulshan Rai Ji Jain, Delhi
Shri Srichand Ji Jain, Jain Bandhu, Delhi

Publisher :
AGAM ANUYOG TRUST
AHMEDABAD-380 013

PREFACE :
Acharya Samrat Shri Devendra Muni Ji M.

CONTRIBUTING EDITORS :
Agam Maneeshi Shri Tilok Muni Ji 'Geetarth'
Mahasati Shri Anupama Ji, M.A., Ph.D.
Mahasati Shri Bhavya Sadhana Ji
Mahasati Shri Virati Sadhana Ji
Dr. Shri Dharm Chand Ji Jain, Jodhpur

MANUSCRIPT PREPARATION ASSISTANCE :
Shri Rajesh Bhandari, Jodhpur
Shri Rajendra and Sunil Mehta, Shahpura
Shri Mangi Lal Ji Sharma, Kurdayan

PUBLISHED AND MARKETED BY :
Agam Anuyog Trust
15, Sthanakvasi Society
Near Narayanpura Crossing
Ahmedabad-380 013

YEAR OF PUBLICATION :
Veer Nirvan S. 2521
V.S. 2052 Mahavir Jayanti
1995, April

PRINTED BY RAJESH SURANA AT :
Diwakar Prakashan
A-7, Awagarh House, M.G. Road
Agra-282 002, Ph. : (0562) 351165

CONTACT :

- Secretary :
  Shri Jayanti Lal Chandu Lal Sanghavi
  Siddhartha Apartment
  Near Sthanakvasi Society
  Narayanpura Crossing
  Ahmedabad-380 013
- Shri Vardhaman Mahavir Kendra
  Opp. Subji Mandi
  Mount Abu-307 501 (Raj.)
- Dr. Sohan Lal Ji Sancheti
  Co-secretary
  Chandi Hall, Kesarvadi
  Jodhpur-342 002 (Raj.)

PRICE :
Rupees Three Hundred Fifty One only (Rs. 351.00)

समर्पण

जिन्होंने सर्वप्रथम सभी आगमों का सानुवाद
सम्पादन करने में, तथा
जैन तत्व प्रकाश आदि अनेक ग्रन्थों के निर्माण हेतु
सारा जीवन समर्पित किया
ऐसे महान् श्रुतधर बहुश्रुत एवं गीतार्थ
आचार्य प्रवर श्री अमोलक ऋषि जी महाराज
की स्मृति में
द्रव्यानुयोग का यह द्वितीय खण्ड
श्रद्धाञ्जलि रूप समर्पित है।

—उपाध्याय मुनि कन्हैयालाल 'कमल'
महासती मुक्तिप्रभा
महासती दिव्यप्रभा

PREFACE :
Acharya Samrat Shri Devendra Muni Ji M.

CONTRIBUTING EDITORS :
Agam Maneeshi Shri Tilok Muni Ji 'Geetarth'
Mahasati Shri Anupama Ji, M.A., Ph.D.
Mahasati Shri Bhavya Sadhana Ji
Mahasati Shri Virati Sadhana Ji
Dr. Shri Dharm Chand Ji Jain, Jodhpur

MANUSCRIPT PREPARATION ASSISTANCE :
Shri Rajesh Bhandari, Jodhpur
Shri Rajendra and Sunil Mehta, Shahpura
Shri Mangi Lal Ji Sharma, Kurdayan

PUBLISHED AND MARKETED BY :
Agam Anuyog Trust
15, Sthanakvasi Society
Near Narayanpura Crossing
Ahmedabad-380 013

YEAR OF PUBLICATION :
Veer Nirvan S. 2521
V.S. 2052 Mahavir Jayanti
1995, April

PRINTED BY RAJESH SURANA AT :
Diwakar Prakashan
A-7, Awagarh House, M.G. Road
Agra-282 002, Ph. : (0562) 351165

CONTACT :

- Secretary :
  Shri Jayanti Lal Chandu Lal Sanghavi
  Siddhartha Apartment
  Near Sthanakvasi Society
  Narayanpura Crossing
  Ahmedabad-380 013
- Shri Vardhaman Mahavir Kendra
  Opp. Subji Mandi
  Mount Abu-307 501 (Raj.)
- Dr. Sohan Lal Ji Sancheti
  Co-secretary
  Chandi Hall, Kesarvadi
  Jodhpur-342 002 (Raj.)

PRICE :
Rupees Three Hundred Fifty One only (Rs. 351.00)

समर्पण

जिन्होंने सर्वप्रथम सभी आगमों का सानुवाद
सम्पादन करने में, तथा
जैन तत्व प्रकाश आदि अनेक ग्रन्थों के निर्माण हेतु
सारा जीवन समर्पित किया
ऐसे महान् श्रुतधर बहुश्रुत एवं गीतार्थ
आचार्य प्रवर श्री अमोलक ऋषि जी महाराज
की स्मृति में
द्रव्यानुयोग का यह द्वितीय खण्ड
श्रद्धाञ्जलि रूप समर्पित है।

—उपाध्याय मुनि कन्हैयालाल 'कमल'
महासती मुक्तिप्रभा
महासती दिव्यप्रभा

॥ अर्हम् ॥

ज्ञानयोगी उपाध्याय प्रवर अनुयोग प्रवर्तक गुरुदेव मुनिश्री कन्हैयालाल जी म. 'कमल'

ज्ञान की उत्कट अगाध पिपासा लिये अहर्निश ज्ञानाराधना में तत्पर, जागरूक प्रज्ञा, सूक्ष्म ग्राहिणी मेधा, शब्द और अर्थ की तलछट गहराई तक पहुँच कर नये-नये अर्थ का अनुसंधान व विश्लेषण करने की क्षमता—यही परिचय है उपाध्याय मुनि श्री कन्हैयालाल जी म. कमल का।

७ वर्ष की लघु वय में वैराग्य जागृति होने पर गुरुदेव पूज्य श्री फतेहचन्द जी महाराज तथा प्रतापचन्द जी म. के सान्निध्य में १८ वर्ष की आयु में दीक्षा ग्रहण। आगम, व्याकरण, कोश, न्याय तथा साहित्य के विविध अंगों का गंभीर अध्ययन व अनुशीलन। आगमों की टीकाएँ व चूर्णि, भाष्य साहित्य का विशेष अनुशीलन। ज्ञानार्जन/विद्यार्जन की दृष्टि से—उपाध्याय श्री अमर मुनिजी, पं. वेचरदास जी दोशी, पं. दलसुख भाई मालवणिया तथा पं. शोभाचन्द जी भारिल्ल का विशेष सान्निध्य प्राप्त कर ज्ञान चेतना की परितृप्ति की। उनके प्रति विद्यागुरु का सम्मान आज भी मन में विद्यमान है। २८ वर्ष की अवस्था में किसी जर्मन विद्वान् के लेख से प्रेरणा प्राप्त कर आगमों का अधुनातन दृष्टि से अनुसंधान। फिर अनुयोग शैली से वर्गीकरण का भीष्म संकल्प। ३० वर्ष की अवस्था से अनुयोग वर्गीकरण कार्य प्रारम्भ। पं. प्रवर श्री दलसुख भाई मालवणिया, पं. अमृतलाल भाई भोजक, महासती डॉ. मुक्तिप्रभा जी, महासती डॉ. दिव्यप्रभा जी, सर्वात्मना समर्पित श्रुतसेवी विनय मुनि जी 'वागीश', श्रीचन्दजी सुराना, डॉ. धर्मचन्द जी जैन, त्यागी विद्वत् पुरुष श्री जौहरीमल जी पारख, पं. देवकुमार जी जैन आदि का समय-समय पर मार्गदर्शन, सहयोग और सहकार प्राप्त होता रहा। वीज रूप में प्रारम्भ किया हुआ अनुयोग कार्य आज अनुयोग के ८ विशाल भागों के लगभग ६ हजार पृष्ठ की मुद्रित सामग्री के रुप में विशाल वट वृक्ष की भाँति श्रुत-सेवा के कार्य में अद्वितीय कीर्तिमान वन गया है।

गुरुदेव के जीवन की महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ –

जन्म	:	वि. सं. १९७० (रामनवमी) चैत्र सुदी ९
जन्मस्थल	:	केकीन्द (जसनगर) राजस्थान
पिता	:	श्री गोविंदसिंह जी राजपुरोहित
माता	:	श्री यमुनादेवी
दीक्षा तिथि	:	वि. सं. १९८८ वैसाख सुदी ६
दीक्षा स्थल	:	धर्म वीरों. दानवीरों की नगरी सांडेराव (राजस्थान)
दीक्षा दाता	:	गुरुदेव जी फतेहचन्द म. एवं श्री प्रतापचन्द जी म.
उपाध्यायपद	:	श्रमण संघ के वरिष्ठ उपाध्याय

गुरुसेवा एवं श्रुत-सेवा के लिए समर्पित साकार विनय मूर्त्ति श्री विनय मुनि जी 'वागीश'

श्री विनय मुनि जी यथानाम तथागुण सम्पन्न सरल-सहज जीवन शैलीयुक्त, गुरुसेवा-श्रुत-सेवा को ही जीवन का महान् उद्देश्य मानने वाले एक अतीव भद्रपरिणामी–'भद्दे णामे भद्द परिणामे'-आपात भद्र- संवास भद्र आदर्श श्रमण है।

आपश्री ने दीक्षा लेते ही स्वयं को मेघ मुनि की भाँति गुरु-चरणों में सर्वात्मना समर्पित कर दिया। साधु समाचारी के दैनिक कार्यक्रमों की साधना-आराधना के पश्चात् जो समय बचता है, उसमें सर्वप्रथम पूज्य गुरुदेव की सेवा, परिचर्या, औषधि आदि की व्यवस्था के पश्चात् जो भी समय रहता है उसमें पूज्य गुरुदेवश्री के साथ अनुयोग कार्य में जुट जाते हैं। हाथ से लिखी फाइलें अनेक मुद्रित आगम प्रतियां सामने रखकर पाठों का मिलान तथा विषय का वर्गीकरण करने में अनुभव के बल पर आप एक सुयोग्य आगम-सम्पादक बन गये हैं। गुरु-कृपा से तथा श्रुत-सेवाजन्य क्षयोपशम के कारण आपकी स्मरणशक्ति एवं ग्रहण शक्ति भी प्रखर है। आगमों की भाषा का ज्ञान, विषय आदि का परिज्ञान भी गंभीर है।

पौराणिक भाषा में अगर गुरुदेव श्री कन्हैयालाल जी म. अनुयोग कार्य के 'व्यास' हैं तो उसे लिपिवद्ध करके व्यवस्थित रूप देने वाले 'गणेश' हैं श्री विनय मुनि जी।

आपका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

जन्म स्थल	:	टोंक (राज.)
वैराग्य	:	सं.२०१८ में पूज्य गुरुदेव फतेहचन्द जी म. की सेवा में आये
वैराग्य काल	:	७ वर्ष
शिक्षण	:	संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी
दीक्षा-तिथि	:	माघ सुदी १५ रविवार, पुष्य नक्षत्र वि. सं. २०२५
दीक्षा-स्थल	:	पीह-मारवाड़
दीक्षा-दाता	:	मुनिश्री कन्हैयालाल जी म. "कमल"
दीक्षा-प्रदाता	:	मरुधरकेशरी श्री मिश्रीमलजी म.

प्रकाशकीय

अतीत में कुछ शताब्दियों पहले बहुश्रुत आर्य रक्षित ने अनुयोग विभाजित किये थे किन्तु विस्मृत हो गये और नाममात्र शेष रहे।

चार अनुयोगों के नाम–

१. धर्मकथानुयोग	२. गणितानुयोग
३. चरणानुयोग	४. द्रव्यानुयोग

पूज्य उपाध्यायश्री के मन में संकल्प हुआ कि आगमों को चार अनुयोगों में विभाजित किया जाय। लगभग ५० वर्ष पूर्व आपने अनुयोग सम्पादन का कार्य प्रारम्भ किया था। अनेक विद्वानों से और कुछ श्रुतधर मुनिवरों से मार्गदर्शन प्राप्त किया और कार्य उत्तरोत्तर प्रगति के शिखर पर पहुँचता गया।

प्रारम्भ के तीन अनुयोग हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित हो गये हैं और वे गुजराती अनुवाद के साथ भी प्रकाशित हो रहे हैं। चतुर्थ द्रव्यानुयोग भी प्रकाशित हो रहा है। यह तीन भागों में प्रकाशित हो पाया है। प्रथम भाग के बाद यह द्वितीय भाग पाठकों के सम्मुख रखते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

उपाध्यायश्री जी ने बहुत ही परिश्रम किया है। साथ ही उनके सुयोग्य शिष्य श्री विनय मुनि जी 'वागीश' ने भी गुरुदेव के संकल्प को पूर्ण कराने में अथक परिश्रम किया है।

जिनशासन चन्द्रिका महासती जी श्री उज्ज्वलकुमारी जी की सुशिष्या डॉ. महासती जी, श्री मुक्तिप्रभा जी, डॉ. दिव्यप्रभा जी, डॉ. अनुपमा जी, श्री भव्यसाधना जी, श्री विरतिसाधना जी ने भी इसके सम्पादन में मूल पाठ मिलान लेखन आदि कार्यों में अनवरत परिश्रम किया है।

पं. श्री देवकुमार जी जैन, बीकानेर ने संशोधन आदि कार्यों में, डॉ. धर्मचन्द जी जैन ने आमुख आदि लिखकर योगदान किया है।

श्री श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' आगरा ने प्रकाशन तथा श्री मांगीलाल जी शर्मा ने पांडुलिपि आदि कार्यों में विशेष योगदान दिया है, अतः हम इनके आभारी हैं।

मेरे सहयोगी श्री हिम्मतभाई, श्री नवनीतभाई, श्री विजयराज जी, श्री जयन्तिभाई संघवी, डॉ. श्री सोहनलाल जी संचेती आदि का कार्य की प्रगति में विशेष सहयोग प्राप्त हुआ है।

श्री घेवरचन्द जी कानूंगा जोधपुर, श्री नेमीचन्द जी संघवी कुशालपुरा, श्री श्रीचन्द जी जैन दिल्ली, श्री गुलशनराय जी जैन दिल्ली, श्री मोहनलाल जी सांड जोधपुर, श्री नारायणचन्द जी मेहता जोधपुर, श्री जेठमल जी चौरिड़या बैंगलोर का इस प्रकाशन में विशेष रूप से आर्थिक योगदान प्राप्त हुआ है अतः हम इन सबके आभारी हैं।

–बलदेवभाई डोसाभाई
अध्यक्ष
आगम अनुयोग ट्रस्ट

सम्पादकीय

चार अनुयोगों में द्रव्यानुयोग बहुत विशाल, जटिल व दुरूह है।

यह तीन भागों में प्रकाशित हो रहा है। प्रथम भाग में २४ अध्ययन लिये गये हैं। १,००० विषयों का संकलन हुआ है। यह द्वितीय भाग पाठकों के सामने प्रस्तुत है। इसमें संयत, लेश्या, क्रिया, आश्रव, वेद, कषाय, कर्म, वेदना, चार गति, वक्कंति आदि १४ अध्ययनों का संकलन है। कुल ८१२ विषय हैं।

तीसरा भाग भी तैयार हो रहा है। उसमें गर्भ, युग्म, गम्मा, आत्मा, समुद्घात, चरमाचरम, अजीव, पुद्गल इन ९ अध्ययनों का संकलन है। द्रव्यानुयोग बहुत ही गहन विषय है।

इन अध्ययनों में उससे संबंधित पूरा विषय लेने का प्रयत्न किया गया है। अनेक विषय द्वार वाले हैं अतः वे छिन्न-भिन्न न हों इसलिये उनको विभक्त नहीं किया है। तीसरे भाग में परिशिष्ट दिया है जिसमें उन विषयों के पृष्ठांक व सूत्रांक दिये हैं उनका अध्ययन करके पाठक पूर्ण विषय ग्रहण कर सकेंगे अतः पाठक उसका अवलोकन अवश्य करें।

पूज्य गुरुदेव श्री फतेहचन्द जी म. एवं श्री प्रतापमल जी म. के शुभाशीर्वाद से ४५ वर्ष पूर्व यह कार्य प्रारम्भ किया था अब यह कार्य पूर्ण हो रहा है यह मेरे लिए परम प्रसन्नता का विषय है। इस कार्य को सफल बनाने में अनेक भावनाशील श्रुत उपासकों का योगदान प्राप्त हुआ है। जिसमें मेरे शिष्य विनय मुनि का खास सहयोग मिला। उन्होंने सेवा के साथ-साथ अन्तर्हृदय से इस अनुयोग के कार्य को व्यवस्थित किया।

साथ ही महासती जी श्री मुक्तिप्रभा जी अपनी शिष्याओं के साथ आबू पधारीं, उन्होंने अनेक परीषह सहन करके लगभग ५ वर्ष तक इस भगीरथ कार्य को सफल बनाने में परिश्रम किया है।

इस कार्य का प्रारम्भ हरमाड़ा में हुआ था। प्रकाशन अनुयोग प्रकाशन परिषद् साण्डेराव से प्रारम्भ हुआ था फिर इसी कार्य से अहमदाबाद पहुँचना हुआ, वहाँ श्री बलदेवभाई ने इस कार्य को देखा, उन्होंने प्रसन्न होकर ट्रस्ट की स्थापना की व चारों ही अनुयोगों का प्रकाशन वहाँ से हुआ है। गुजराती भाषांतर भी करने की भावना है।

स्वाध्यायशील वंधु इनका स्वाध्याय करके ज्ञानोपार्जन करें।

—*मुनि कन्हैयालाल 'कमल'*
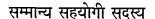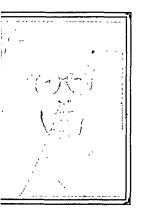
श्री देशराज जी जैन, अहमदाबाद

आप मूलतः मानसा (पंजाब) के निवासी हैं। अहमदाबाद में 'देशराज एण्ड कम्पनी' के नाम से बहुत बड़ा व्यवसाय है। आप एवं आपकी धर्मपत्नी श्रीमती यशोदादेवी तथा सुपुत्र पूरणचन्द जी एवं पुत्र-वधू अन्जनादेवी सभी बहुत ही धर्म श्रद्धालु हैं।

स्वामी जी श्री छगनलाल जी महाराज के सुशिष्य श्री रोशन मुनि जी म. सा. की धर्म की ओर अग्रसर कराने में विशेष प्रेरणा रही है।

पूज्य उपाध्याय श्री कन्हैयालाल जी म. सा. का भी आपके बंगले पर सन् १९७५ में चातुर्मास हुआ, आपने बहुत बड़ा लाभ लिया।

श्री आर. डी. जैन, दिल्ली

आप मूलतः उत्तर प्रदेश में मेरठ जिला के खट्टा प्रहलादपुर के निवासी हैं। वर्तमान में जैन तार उद्योग' के नाम से आपका दिल्ली में बहुत बड़ा व्यवसाय है। वर्धमान थानकवासी जैन महासंघ के अध्यक्ष भी रहे हुए हैं। जैन कॉन्फ्रेंस के आप उपाध्यक्ष हैं एवं देल्ली शाखा के अध्यक्ष हैं। अनेक संस्थाओं से आप जुड़े हुए हैं। आपने अपने पिताश्री की मृति में बहुत बड़ा हॉस्पीटल भी बनवाया है। अनेक संस्थाओं में विशेष योगदान रहा है। आपके दोनों पुत्र योगेन्द्रकुमार एवं अरुणकुमार भी व्यापारिक क्षेत्र में अग्रणी हैं व पूरे रिवार की धार्मिक भावना अच्छी है।

महासती जी मुक्तिप्रभा जी, दिव्यप्रभा जी के सब्जी मण्डी चातुर्मास में चरणानुयोग नाग २ का विमोचन आपके ही कर-कमलों द्वारा हुआ।

स्व. श्री ताराचन्द जी प्रताप जी साकरिया, सांडेराव

आप सांडेराव के प्रमुख श्रावक थे। श्री वर्धमान महावीर केन्द्र, आबू पर्वत की स्थापना में आपका विशेष योगदान रहा! आगम अनुयोग के इस महान् कार्य में प्रारम्भ से ही आपकी विशेष प्रेरणा रही। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति आपकी गहरी आस्था रही थी। आपके सुपुत्र श्री इन्द्रमल जी इसी प्रकार गुरुदेव के प्रति श्रद्धाशील हैं।
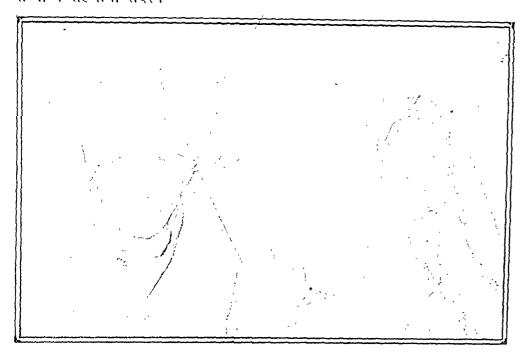
श्री केशरीमल जी तातेड़ एवं श्रीमती सुन्दरदेवी तातेड़, हुबली

आप मूलतः कोटड़ी (समदड़ी) मारवाड़ के निवासी हैं। आप बहुत ही उदार हृदयी धर्म श्रद्धालु श्रावक हैं। आपका हुबली में पेपर का बहुत बड़ा व्यवसाय है। आपके सभी सुपुत्र व सुपुत्रियाँ धर्म में विशेष श्रद्धा रखते हैं। आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी म. व महासती जी शीलकंवर जी के प्रति श्रद्धा है।

श्री भीमराज जी हजारीमल जी, साण्डेराव

आप पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्य भक्त हैं, बहुत ही उदार भावना वाले हैं। आपका कोसम्बा जि. सूरत में बहुत बड़ा व्यवसाय है। आपके सुपुत्र श्री मोहनलाल जी एवं केशरीमल जी आदि पूरा परिवार बहुत धर्म श्रद्धालु हैं। साधु-साध्वियों की सेवा का आप विशेष लाभ लेते हैं।
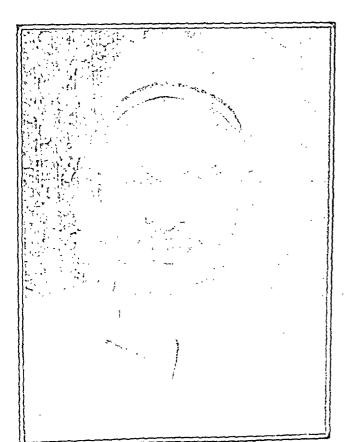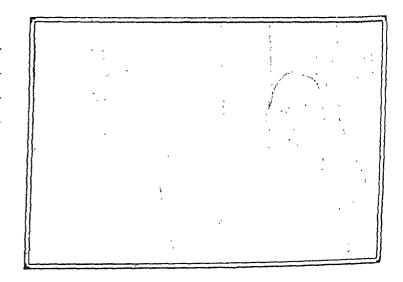
श्री बाबूलाल जी धनराज जी मेहता, सादड़ी, (मारवाड़)

आप बहुत ही उदार हृदयी धर्म श्रद्धालु श्रावक हैं। आपका 'किरण मेटल कॉर्पोरेशन' के नाम से व्यवसाय है। आपने सादड़ी अस्पताल में व गाँव में शुभ कार्यों में बहुत बड़ा योगदान दिया है। आप आदिनाथ चेरिटेबल ट्रस्ट, अम्बा जी के ट्रस्टी हैं। आबू पर्वत पर आपने बहुत बड़े पैमाने पर आयंबिल ओली भी करायी। आप प्रतिवर्ष अठाई आदि की तपस्याएँ करते हैं। आपकी धर्मपत्नी जी ने वर्षीतप की आराधना की, इस उपलक्ष्य में आपने सं. २०४९ में सादड़ी में प्रवर्त्तक श्री रूपचन्द जी म. आदि के सान्निध्य में पारणे कराने का बहुत बड़ा लाभ लिया।

श्री विरदीचन्द जी कोठारी, किशनगढ़
श्रीमती रतनदेवी विरदीचन्द जी कोठारी, किशनगढ़

आप बहुत ही धार्मिक व भावनाशील दम्पती हैं। कोठारी स्टोन्स प्रा. लि., किशनगढ़ के डाइरेक्टर हैं। आपका मद्रास व बैंगलोर में भी अच्छा व्यवसाय है। श्री पारसमल जी, नेमीचन्द जी, नरेन्द्रकुमार जी, सूर्यप्रकाश जी आदि सुपुत्र भी बहुत ही भावनाशील हैं। आप मूलतः अराई के निवासी हैं। महासती जी श्री पानकंवर जी के प्रति आपके माताजी की विशेष श्रद्धा-भक्ति थी। आपके भाई गुलाबचंद जी व मोहनसिंह जी धार्मिक श्रद्धालु थे।

सन् १९९४ में महासती जी श्री उमरावकंवर जी के चातुर्मास कराने में आपका मुख्य योगदान रहा।

उपाध्यायप्रवर श्री कन्हैयालाल जी म. 'कमल' के प्रति अनन्य श्रद्धा है। आपने भी ट्रस्ट को विशेष योगदान दिया है।

श्री मदनलाल जी कोठारी, जोधपुर

आप बहुत ही उदार एवं धर्म श्रद्धालु श्रावक थे। आपने अपने पिताजी श्री गजराज जी सा. ां माताजी अणचोबाई की स्मृति में आचार्य जयमल स्मृति भवन में व्याख्यान हॉल में विशेष गदान दिया। जीवदया, स्वधर्मी सहायता आदि कार्यों में आपकी विशेष रुचि थी।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती विदामीबाई एवं सुपुत्र श्री मनसुखचंद जी, ज्ञानचन्द जी, सुमेरमल जी, वलचन्द जी एवं जेठमल जी तथा सुपुत्री लीलाबाई बोहरा भी उसी प्रकार उनके पद-चिन्हों पर नकर धर्म की ओर अग्रसर हैं। आपको श्री तेजराज जी सा. भंडारी की विशेष प्रेरणा मिलती ती है। आपके बम्बई व जोधपुर में व्यवसाय हैं।

उपाध्याय श्री कन्हैयालाल जी म. 'कमल' एवं परम विदुषी महासती जी श्री उमरावकंवर जी र्चना' आदि के प्रति विशेष श्रद्धा-भक्ति थी व उसी प्रकार परिवार के सदस्यों की सेवा-भावना । कोठारी जी की स्मृति में ट्रस्ट को विशेष योगदान दिया है।
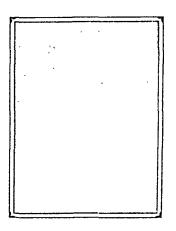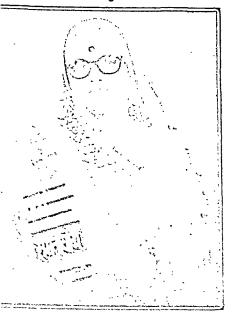
श्रीमती चन्द्रादेवी वंब, टोंक (राज.)

आपका जन्म आसोज वदी १२, सन् १९३३ दिल्ली में हुआ। सन् १९४५ में राजस्थान के प्रतिष्ठित परिवार के श्री धन्नालाल जी वंब के सुपुत्र श्री गंभीरमल जी के साथ पाणिग्रहण हुआ। आपके दो सुपुत्र श्री अजीतकुमार एवं श्री अशोककुमार हैं।

आप अनुयोग प्रवर्त्तक पं. रत्न मुनि श्री कन्हैयालाल जी म. 'कमल' एवं महासती श्री पानकंवर जी तथा रत्नकंवर जी से विशेष प्रभावित हुई हैं।

श्री विनय मुनि जी 'वागीश' के जीवन निर्माण में एवं धर्म की ओर अग्रसर करने में आप प्रमुख रही हैं। आप स्वयं के दीक्षा लेने के उग्र भाव थे परन्तु स्वास्थ्य अनुकूल न होने के कारण न ले सके। आपका स्वभाव बहुत ही विनम्र है। आपने अनुयोग ट्रस्ट में विशेष योगदान दिया है।
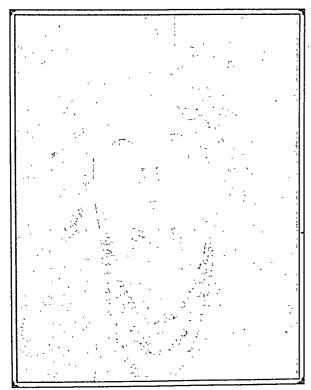
स्व. श्री धनराज जी नाहटा, केकड़ी (राज.)

आप श्री दीपचन्द जी नाहटा के सुपुत्र थे। चित्रकला, कविता, नाट्क कला, व्यायाम आदि में आपकी विशेष रुचि थी। साथ ही धार्मिक ज्ञान, तत्त्वचर्चा तथा वाद-विवाद में भी कुशल थे। स्थानकवासी जैन संघ, केकड़ी के मन्त्री थे। पूज्य स्वामीदास जी म. की परम्परा के प्रति अत्यन्त निष्ठा रखते हुए गुरुदेव मुनि श्री कन्हैयालाल जी म. 'कमल' के अनन्य भक्त थे। श्रमण संघ के प्रति आपकी गहरी निष्ठा थी। आगम अनुयोग ट्रस्ट के सहयोगी थे।

आपके सुपुत्र लालचंद जी, सुरेशकुमार जी आदि भी धर्मनिष्ठ श्रावक हैं।
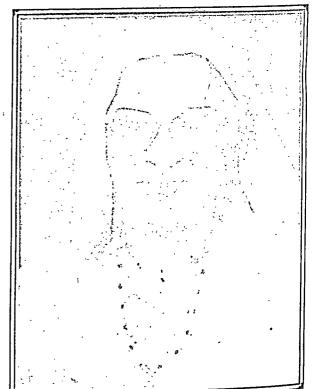
श्रीमती केलीबाई देवराज जी चौधरी, जैतारण (मारवाड़)

आप बहुत ही धार्मिक दानवीर महिला हैं। आपके सुपुत्र श्री शान्तिलाल जी एवं श्री धर्मीचन्द जी चौधरी कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं। आपका व्यवसाय तिरुपति बालाजी में है। आपने अनेक बार बहुत लम्बे-लम्बे मुनि दर्शनार्थ संघ निकाले हैं। स्थान-स्थान पर दान देकर सम्पत्ति का सदुपयोग कर रहे हैं। आपने आगम अनुयोग ट्रस्ट को भी सहयोग प्रदान किया है।
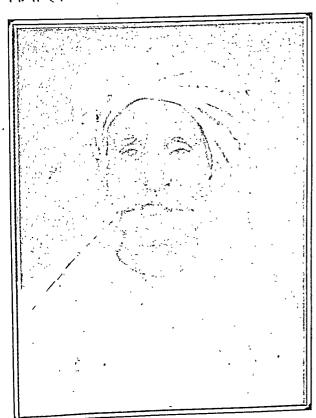
स्व. श्री अमरचंद जी लुणावत, हरमाड़ा (अजमेर)

आप पूज्य गुरुदेव श्री फतेहचन्द जी महाराज के अनन्य भक्त थे। श्री माणकचन्द जी, श्री धर्मीचन्द जी, श्री प्रेमचन्द जी लुणावत आपके सुपुत्र हैं।

आप हरमाड़ा श्रावक संघ के अग्रणी थे। पार्श्वनाथ छात्रावास आपके प्रयत्नों से बना।

आपके बड़े सुपुत्र माणकचंद जी मदनगंज में रहते थे। शीलव्रत आदि के प्रत्याख्यान लिए द्वितीय सुपुत्र श्री धर्मीचंद जी दिल्ली रहते हैं। बहुत ही धर्म श्रद्धालु उदार भावना वाले श्रावक हैं। महावीर कल्याण केन्द्र मदनगंज आदि अनेक संस्थाओं के ट्रस्टी हैं।

तृतीय सुपुत्र श्री प्रेमचंद जी बहुत ही सेवाभावी धार्मिक श्रावक हैं। पूरे परिवार की उपाध्यायश्री जी के प्रति विशेष श्रद्धा- भक्ति है। अमरचंद मारु चेरिटेबल ट्रस्ट की ओर से अनुयोग प्रकाशन में विशेष योगदान प्राप्त हुआ है।

श्री शान्तिलाल जी सा. दुगड़, नासिक सिटी

आप युवा कॉन्फ्रेंस के अनेक वर्षों तक अध्यक्ष रहे। नासिक सिटी श्रावक संघ के अध्यक्ष हैं। वर्धमान महावीर सेवा केन्द्र, देवलाली (नासिक रोड) तिलोकरत्न धार्मिक परीक्षा बोर्ड, अहमदनगर आदि अनेक संस्थाओं के आप ट्रस्टी हैं। आपकी आचार्य सम्राट् श्री आनन्द ऋषि जी म. व मालव केशरी श्री सौभाग्यमल जी म. के प्रति विशेष श्रद्धा-भक्ति रही है। आप बहुत ही उत्साही, उदार हृदयी धर्म श्रद्धालु श्रावक हैं। आपकी सेवा भावनाओं से प्रेरित होकर, समाज भूषण, समाज गौरव आदि अनेक पद प्रदान किये गये। आपकी धर्मपत्नी श्री चन्द्रकला बहन भी बहुत ही श्रद्धालु श्राविका हैं।

स्व. श्री भंवरलाल जी मेहता, पाली (मारवाड़)

आप पाली के सामाजिक, राजनैतिक आदि अनेक संस्थाओं के प्रमुख कार्यकर्त्ता थे। पंचायत समिति, पाली के प्रधान रह चुके हैं। आप भांवरी के भी सरपंच रहे हैं। अनेक वर्षों तक मरुधर केशरी शिक्षण संस्थान के अध्यक्ष रहे हैं। श्रमण सूर्य श्री मरुधर केशरी जी म. एवं उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी म. के प्रति आपकी विशेष श्रद्धा रही। पाली श्रावक संघ में भी आपका विशेष सहयोग रहा। आपके दो पुत्र खींवराज मेहता एवं रंगराज मेहता, पाली में ही मानश्री टेक्सटाइल के नाम से व्यवसाय में लगे हुए हैं।

स्व. श्री मेघराज जी रूपचन्द जी, साण्डेराव

आप बहुत ही धर्म श्रद्धालु सुश्रावक थे। साण्डेराव संघ के प्रमुख कार्यकर्त्ता थे। पूज्य गुरुदेव के प्रति अनन्य श्रद्धा-भक्ति थी। आपके श्री कुन्दनमल जी, उम्मेदमल जी, छगनलाल जी, जयन्तिलाल जी आदि सुपुत्र भी बहुत ही आज्ञाकारी व धर्म श्रद्धालु हैं।

जैनसन अम्ब्रेला इण्डस्ट्रीज के नाम से आपका प्रमुख व्यवसाय है।

सेठ श्री सूरजमल जी सा. गेहलोत, सूरसागर (जोधपुर)

आपका जन्म माली परिवार में स्व. चतुर्भुज जी गेहलोत के यहाँ हुआ। आप बहुत ही साधारण स्थिति के थे फिर स्व. युवाचार्य श्री मधुकर जी म. के सदुपदेश से जैन धर्म स्वीकार किया। आपकी धर्मपत्नी झमकुबाई व तीनों सुपुत्र व पौत्र बहुत ही धर्म श्रद्धालु हैं। आपके पत्थर का व ट्रांसपोर्ट आदि का बहुत बड़ा व्यवसाय है। जैन धर्म स्वीकार किया तब से दोनों ही सामायिक, पर्व तिथियों में पोषध व रात्रि भोजन आदि सभी धर्म क्रियाएँ कर रहे हैं। प्रतिदिन १६ सामायिक तक भी कर लेते हैं। आपने सूरसागर में बहुत बड़ा अस्पताल का निर्माण करवाया है तथा वहीं पर अनुयोग प्रवर्तक श्री कन्हैयालाल जी म. सा. का चातुर्मास करवाने का भी लाभ प्राप्त किया। अस्पताल को रेफरल चिकित्सालय का रूप देना चाहते हैं। आपकी महासती पानकंवर जी व वर्तमान में महासती जी श्री उमरावकंवर जी म. के प्रति विशेष श्रद्धा है।

श्री शान्तीलाल जी मोहनोत, सूरसागर (जोधपुर)
श्रीमती चन्द्रादेवी, धर्मपत्नी श्री शान्तीलाल जी मोहनोत सूरसागर (जोधपुर)

आप सूरसागर (जोधपुर) निवासी हैं। आपके सुपुत्र श्री मुन्नालाल जी, प्रमोदकुमार जी, राजेन्द्रकुमार जी आदि सभी धर्म श्रद्धालु हैं। संत-सतियों की सेवा में अग्रणी हैं। स्व. युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी म. सा. के प्रति विशेष श्रद्धा-भक्ति रही है।

पूज्य गुरुदेव श्री कन्हैयालाल जी म. सा. 'कमल' के सूरसागर चातुर्मास करवाने में आपका परिवार प्रमुख रहा। आपके बड़े सुपुत्र श्री मुन्नालाल जी प्रतापनगर, सूरसागर संघ के उत्साही कार्यकर्ता हैं। आपके रोहितकुमार नाम का एक सुपुत्र है। सभी धर्म श्रद्धालु हैं।
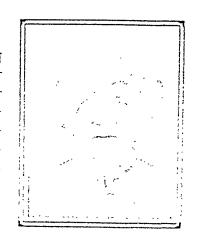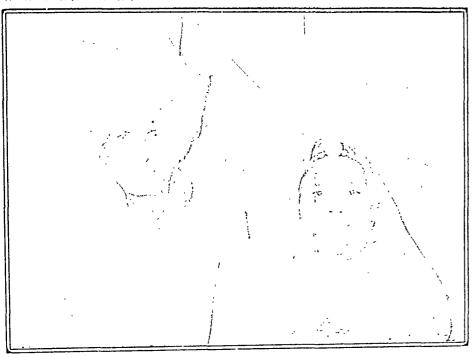
श्री मोडीलाल जी सूर्या, खेड़ब्रह्मा

आपकी जन्म-भूमि कोशीथल (जिला भीलवाड़ा) रही। आप बहुत ही धर्मनिष्ठ उदारमना सुश्रावक थे। आपने स्थानक के लिए अपना प्लाट समर्पित किया। साधु-साध्वियों के चातुर्मास कराने की एवं सेवा का लाभ लेने की बहुत भावना रहती थी। आपके पीछे समस्त परिवार में धर्म की भावना एवं उदारता अनुकरणीय है। आप प्रवर्तक श्री अम्बालाल जी म. के अनन्य भक्त थे।
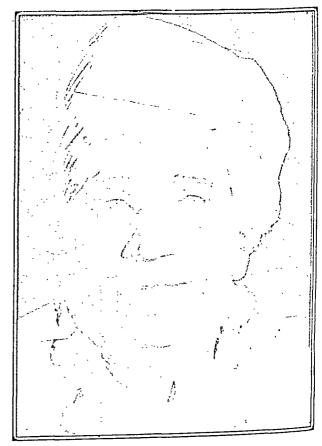
श्रीमती दाखाबाई मोडीलाल जी सूर्या, खेड़ब्रह्मा

आप चार वर्ष से निरन्तर वर्षीतप कर रहे हैं। प्रति वर्ष आबू पर्वत पर ओली तप करने हेतु आते हैं। आपकी धर्म-भावना प्रसंशनीय है। आपके सुपुत्र श्री समरथमल जी, विनोदकुमार जी, पुत्र-वधू चन्दादेवी, मन्जुदेवी, पौत्र पियुष, विशाल, सौरभ, जयेश, योगेश व पौत्री शीतल आदि सभी धार्मिक-भावना वाले हैं। पूज्य गुरुदेव एवं श्री सौभाग्य मुनि जी 'कुमुद' व श्री गौतम मुनि जी म. के प्रति विशेष श्रद्धा-भक्ति है।

स्व. श्री चम्पालाल जी हरखचन्द जी कोठारी बम्बई
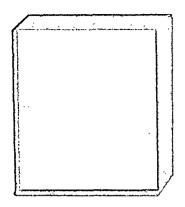
आपके पूर्वज नागौर जिले में हरसौर के निवासी थे। कुछ कारण वश आपके पूर्वज हरसौर छोड़कर पीपाड सिटी में स्थायी हुए। आप उदार दानवीर श्रेष्ठी के नाम से प्रख्यात थे। आपके अनेक व्यावसायिक प्रतिष्ठान अहमदाबादं, बम्बई, पूना आदि शहरों में फैले हुए हैं।

बालकेश्वर (बम्बई), जोधपुर, पीपाड आदि शहरों के स्थानकों में आपका विशेष योगदान रहा है। राजस्थानकेसरी उपाध्याय प्रवर श्री पुष्कर मुनिजी म. सा. एवं आचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी म. के प्रति आपकी हार्दिक श्रद्धा भक्ति रही है।

आगम अनुयोग ट्रस्ट को आपने विशेष सहयोग प्रदान किया है।

स्व. श्रीमती पानीबाई बालचंद जी बाफणा, सादड़ी (मारवाड़)

आप बहुत ही धर्म श्रद्धालु श्राविका थीं। साधु-साध्वियों की सेवा का विशेष लाभ लेती थीं। आपके सुपुत्र श्री रूपचंद जी व पुत्र-वधू विमलावाई तथा पौत्र अमृतलाल जी, विनोदकुमार जी, चन्द्रकांत जी व श्रेणिकराज जी आदि पूरा परिवार धर्म श्रद्धालु है। आपने आबू पर्वत पर आयंबिल ओली कराने का भी लाभ प्राप्त किया। आपकी 'शा. संतोकचंद रूपचन्द' नाम से बम्बई में कपड़े की प्रसिद्ध दुकान है। श्रमण सूर्य श्री मरुधर केशरी जी म. के प्रति आपकी विशेष श्रद्धा-भक्ति थी। आपके परिवार की उपाध्याय श्री कन्हैयालाल जी म. 'कमल' व प्रवर्त्तक श्री रूपचन्द जी म. के प्रति विशेष आस्था-भक्ति है।
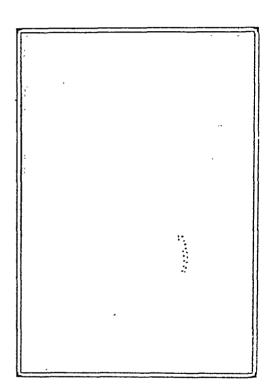
स्व. श्री किरणराज जी भंडारी, वाली (मारवाड़)

आप धार्मिक उदार भावनाशील सेवाभावी श्री गजराज जी सा. व श्रीमती दाखीवाई के बहुत ही होनहार परिश्रमी व उद्यमी सुपुत्र थे। आपका जन्म ८ अगस्त १९५२ को हुआ एवं हृदय गति रुकने से ६ अगस्त १९९३ को छोटी उम्र में ही देहावसान हो गया। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती शकुंतलादेवी तथा पुत्र चेतनकुमार व सुरेशकुमार की भी धर्म में रुचि है। आपके भाई महेन्द्रकुमार, दिलीपकुमार, अशोककुमार व प्रवीणकुमार आदि पूरा परिवार भावनाशील है।

श्री गजराज जी सा. वाली के प्रसिद्ध वकील हैं। अनेक संस्थाओं से जुड़े हुए हैं। श्री वर्धमान ध्यान साधना केन्द्र, आबू पर्वत के अध्यक्ष हैं। आपने श्री किरणराज जी की स्मृति में ट्रस्ट को विशेष योगदान दिया है।
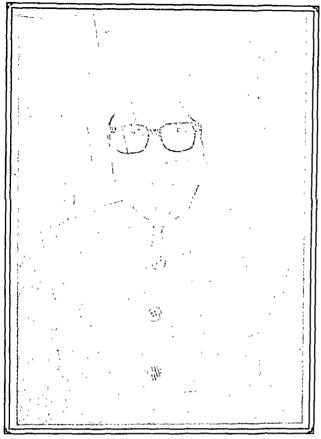
श्री जवन्तराज जी शा. बोहरा, जैतारण

आप जैतारण के कर्मठ सेवाभावी कार्यकर्त्ता हैं। बहुत उदार भावन वाले श्रावक हैं। मरुधर केशरी पावन धाम के कार्यवाहक अध्यक्ष ए वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, जैतारण के अध्यक्ष हैं। आ नगरपालिका के चेयरमैन भी रहे हुए हैं। आपकी जवन्तराज विजयराज वे नाम से बहुत बड़ी फर्म है।

श्री विजयराज जी ब्रह्मेचा, नासिक सिटी

आप मधुर वाणी एवं नम्र स्वभाव के धर्म प्रेमी दृढ़ श्रद्धालु शास्त्रज्ञ श्रावक हैं। स्वाध्याय की विशेष अभिरुचि है। आपने ३२ आगमों तथा अन्य अनेक अध्यात्म ग्रंथों का स्वाध्याय किया है।

महाराष्ट्र में आप अंगूरों की उत्कृष्ट कृषि के लिए प्रसिद्ध एवं शासन सम्मानित हैं। नासिक श्रावक संघ के अग्रणी उदारमना तथा समाज के सेवाभावी नेतृत्व-कुशल व्यक्ति हैं।

आपने नासिकरोड में दवाखाना हेतु भी विशेष योगदान दिया है। देवलाली सेवा केन्द्र के प्रमुख सहयोगी हैं। आपने ट्रस्ट को भी विशेष सहयोग दिया है।

श्री भोगीलाल जी कक्कलभाई, धानेरा

आप धानेरा संघ के कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं। साधु-सन्तों की सेवा एवं जीव-दया के प्रति आपकी विशेष रुचि है। आप बहुत ही उदार भावना वाले हैं। अनुयोग प्रवर्त्तक गुरुदेव श्री कन्हैयालाल जी म. सा. के प्रति आपके श्रद्धाभक्ति रही है। अनुयोग प्रकाशन में आपने सहयोग प्रदान किया है।

सहयोगी सदस्यों की नामावली

विशिष्ट सहयोगी

१. श्रीमती सूरज वेन चुन्नीभाई धोरीभाई पटेल, पार्श्वनाथ कॉरपोरेशन, अहमदावाद
   हस्ते, सुपुत्र श्री नवनीतभाई, प्रवीणभाई, जयन्तिभाई
२. श्री वलदेवभाई डोसाभाई पटेल पब्लिक चेरिटेवल ट्रस्ट, अहमदावाद
   हस्ते, श्री वलदेवभाई, वच्चूभाई, वकाभाई
३. श्री गुलशनराय जी जैन, दिल्ली
४. श्रीचन्द जी जैन, जैन वन्धु, दिल्ली
५. श्री घेवरचंद जी कानुंगा, एल्कोवक्स प्रा. लि., जोधपुर
६. श्रीमती तारादेवी लालचंद जी सिंघवी, कुशालपुरा

प्रमुख स्तम्भ

१. श्री आत्माराम माणिकलाल पब्लिक चेरिटेवल ट्रस्ट, अहमदावाद
   हस्ते, श्री वलवन्तलाल, महेन्द्रकुमार, शान्तिलाल शाह
२. श्री पार्श्वनाथ चेरिटेवल ट्रस्ट, अहमदावाद
   हस्ते, श्री नवनीतभाई
३. श्री कालुपुर कॉमर्शियल को-ऑपरेटिव बैंक लि., अहमदावाद
४. श्री प्रेम ग्रुफ पीपलिया कलां, श्री प्रेमराज गणपतराज वोहरा
   हस्ते, श्री पूरणचंद जी वोहरा, अहमदावाद
५. आइडियल सीट मेटल स्टैपिंग एण्ड प्रेसिंग प्रा. लि.
   हस्ते, श्री आर. एम. शाह, अहमदावाद
६. सेठ श्री चुन्नीलाल नरभेराम मेमोरियल ट्रस्ट, वम्वई
   हस्ते, श्री मन्नुभाई वेकरी वाला, रुवी मिल, वम्वई
७. श्री प्रभूदासभाई एन. वोरा, वम्वई
८. श्री पी. एस. लूंकड़ चेरिटेवल ट्रस्ट, वम्वई
   हस्ते, श्री पुखराज जी लूंकड
९. श्री गांधी परिवार, हैदरावाद
१०. श्री धानचंद जी मेहता फाउन्डेशन, जोधपुर
   हस्ते, श्री नारायणचंद जी मेहता
११. श्रीमती उदयकंवर धर्मपत्नी श्री उम्मेदमल जी सांड, जोधपुर
   हस्ते, श्री गणेशमल जी मोहनलाल जी सांड
१२. श्रीमती सोहनकंवर धर्मपत्नी डॉ. सोहनलाल जी संचेती एवं
   सुपुत्र श्री शान्तिप्रकाश, महावीरप्रकाश, जिनेन्द्रप्रकाश व नगेन्द्रप्रकाश संचेती, जोधपुर
१३. श्री जेटमल जी चोरड़िया, महावीर ड्रग हाउस, वैंगलोर
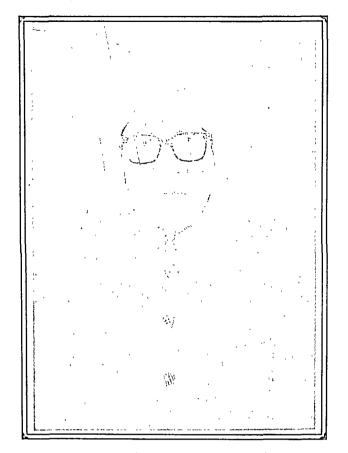
श्री जवन्तराज जी शा. बोहरा, जैतारण

आप जैतारण के कर्मठ सेवाभावी कार्यकर्त्ता हैं। बहुत उदार भावना वाले श्रावक हैं। मरुधर केशरी पावन धाम के कार्यवाहक अध्यक्ष एवं वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, जैतारण के अध्यक्ष हैं। आप नगरपालिका के चेयरमैन भी रहे हुए हैं। आपकी जवन्तराज विजयराज के नाम से बहुत बड़ी फर्म है।

श्री विजयराज जी ब्रह्मेचा, नासिक सिटी

आप मधुर वाणी एवं नम्र स्वभाव के धर्म प्रेमी दृढ़ श्रद्धालु शास्त्रज्ञ श्रावक हैं। स्वाध्याय की विशेष अभिरुचि है। आपने ३२ आगमों तथा अन्य अनेक अध्यात्म ग्रंथों का स्वाध्याय किया है।

महाराष्ट्र में आप अंगूरों की उत्कृष्ट कृषि के लिए प्रसिद्ध एवं शासन सम्मानित हैं। नासिक श्रावक संघ के अग्रणी उदारमना तथा समाज के सेवाभावी नेतृत्व-कुशल व्यक्ति हैं।

आपने नासिकरोड में दवाखाना हेतु भी विशेष योगदान दिया है। देवलाली सेवा केन्द्र के प्रमुख सहयोगी हैं। आपने ट्रस्ट को भी विशेष सहयोग दिया है।
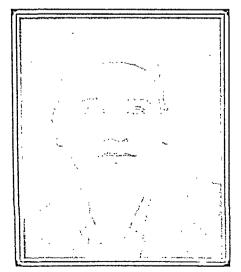
श्री भोगीलाल जी कक्कलभाई, धानेरा

आप धानेरा संघ के कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं। साधु-सन्तों की सेवा एवं जीव-दया के प्रति आपकी विशेष रुचि है। आप बहुत ही उदार भावना वाले हैं। अनुयोग प्रवर्तक गुरुदेव श्री कन्हैयालाल जी म. सा. के प्रति आपके श्रद्धाभक्ति रही है। अनुयोग प्रकाशन में आपने सहयोग प्रदान किया है।

सहयोगी सदस्यों की नामावली

विशिष्ट सहयोगी

१. श्रीमती सूरज वेन चुन्नीभाई धोरीभाई पटेल, पार्श्वनाथ कॉरपोरेशन, अहमदाबाद
हस्ते, सुपुत्र श्री नवनीतभाई, प्रवीणभाई, जयन्तिभाई

२. श्री वलदेवभाई डोसाभाई पटेल पब्लिक चेरिटेवल ट्रस्ट, अहमदाबाद
हस्ते, श्री वलदेवभाई, बच्चूभाई, बकाभाई

३. श्री गुलशनराय जी जैन, दिल्ली

४. श्रीचन्द जी जैन, जैन बन्धु, दिल्ली

५. श्री घेवरचंद जी कानुंगा, एल्कोवक्स प्रा. लि., जोधपुर

६. श्रीमती तारादेवी लालचंद जी सिंघवी, कुशालपुरा

प्रमुख स्तम्भ

१. श्री आत्माराम माणिकलाल पब्लिक चेरिटेवल ट्रस्ट, अहमदाबाद
हस्ते, श्री वलवन्तलाल, महेन्द्रकुमार, शान्तिलाल शाह

२. श्री पार्श्वनाथ चेरिटेवल ट्रस्ट, अहमदाबाद
हस्ते, श्री नवनीतभाई

३. श्री कालुपुर कॉमर्शियल को-ऑपरेटिव बैंक लि., अहमदाबाद

४. श्री प्रेम ग्रुफ पीपलिया कलां, श्री प्रेमराज गणपतराज बोहरा
हस्ते, श्री पूरणचंद जी वोहरा, अहमदाबाद

५. आइडियल सीट मेटल स्टैपिंग एण्ड प्रेसिंग प्रा. लि.
हस्ते, श्री आर. एम. शाह, अहमदाबाद

६. सेठ श्री चुन्नीलाल नरभेराम मेमोरियल ट्रस्ट, बम्बई
हस्ते, श्री मन्नुभाई बेकरी वाला, रुबी मिल, वम्बई

७. श्री प्रभूदासभाई एन. बोरा, बम्बई

८. श्री पी. एस. लूंकड़ चेरिटेबल ट्रस्ट, बम्बई
हस्ते, श्री पुखराज जी लूंकड

९. श्री गांधी परिवार, हैदराबाद

१०. श्री थानचंद जी मेहता फाउन्डेशन, जोधपुर
हस्ते, श्री नारायणचंद जी मेहता

११. श्रीमती उदयकंवर धर्मपत्नी श्री उम्मेदमल जी सांड, जोधपुर
हस्ते, श्री गणेशमल जी मोहनलाल जी सांड

१२. श्रीमती सोहनकंवर धर्मपत्नी डॉ. सोहनलाल जी संचेती एवं
सुपुत्र श्री शान्तिप्रकाश, महावीरप्रकाश, जिनेन्द्रप्रकाश व नगेन्द्रप्रकाश संचेती, जोधपुर

१३. श्री जेठमल जी चोरड़िया, महावीर ड्रग हाउस, बैंगलोर

स्तम्भ

१. श्री रमणलाल माणिकलाल शाह, अहमदावाद
हस्ते, सुभद्रा वेन
२. श्री हिम्मतलाल सावलदास शाह, अहमदावाद
३. श्री मोहनलाल जी मुकनचंद जी बालिया, अहमदावाद
४. श्री विजयराज जी बालाबक्स जी वोहरा सावरमती, अहमदावाद
५. श्री अजयराज जी के. मेहता ऐलिसब्रिज, अहमदावाद
६. श्री चिमनभाई डोसाभाई पटेल, अहमदावाद
७. श्री साणन्द सार्वजनिक ट्रस्ट
हस्ते, श्री बलदेवभाई, अहमदाबाद
८. श्री पंजाब जैन भ्रातृ सभा खार, वम्बई
९. श्री रतनकुमार जी जैन, नित्यानन्द स्टील रोलर मिल, वम्बई
१०. श्री माणकलाल जी रतनशी बगड़ीया, वम्बई
११. श्री राजमल रिखबचंद मेहता चेरिटेवल ट्रस्ट, वम्बई
हस्ते, श्री सुशीला बेन रमणिकलाल मेहता, पालनपुर
१२. श्री हरीलाल जयचंद डोसी, विश्व वात्सल्य ट्रस्ट, बम्बई
१३. श्री तेजराज जी रूपराज जी बम्ब, ईचलकरंजी (महाराष्ट्र)
हस्ते, श्री माणकचन्द जी रूपराज जी बम्ब भादवा वाले
१४. श्रीमती सुगनीबाई मोतीलाल जी बम्ब, हैदरावाद
हस्ते, श्री भीमराज जी बम्ब पीह वाले
१५. श्री गुलाबचंद जी मांगीलाल जी सुराणा, सिकन्द्रावाद
१६. श्री नेमीनाथ जी जैन, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
१७. श्री बाबूलाल जी धनराज जी मेहता, सादड़ी (मारवाड़)
१८. श्री हुक्मीचंद जी मेहता (एडवोकेट), जोधपुर
१९. श्री केशरीमल जी हीराचंद जी तातेड़ समदड़ी वाले, हुवली
२०. श्री आर. डी. जैन, जैन तार उद्योग, दिल्ली
२१. श्री देशराज जी पूरणचंद जी जैन, अहमदाबाद
२२. श्री रोयल सिन्थेटिक्स प्रा. लि., बम्बई
२३. श्री विरदीचंद जी कोठारी, किशनगढ़
२४. श्री मदनलाल जी कोठारी महामंदिर, जोधपुर
२५. श्री जंवतराज जी सोहनलाल जी बाफणा, बैंगलोर
२६. श्री धनराज जी विमलकुमार जी रूणवाल, बैंगलोर
२७. श्री जगजीवनदास रतनशी बगड़ीया, दामनगर (गुजरात)
२८. श्री सुगाल एण्ड दामाणी, नई दिल्ली
२९. श्री भींवराज जी हजारीमल जी साण्डेराव वाले, कोसम्बा

महासंरक्षक

१. श्री माणिकलाल सी. गांधी, अहमदावाद
२. श्री स्वस्तिक कॉरपोरेशन, अहमदावाद
हस्ते, श्री हंसमुखलाल कस्तूरचंद
३. श्री विजय कंस्ट्रक्शन कं., अहमदाबाद
हस्ते, श्री रजनीकान्त कस्तूरचंद
४. श्री करशनजीभाई लघुभाई निशर दादर, बम्बई
५. श्री जसवन्तलाल शान्तिलाल शाह, बम्बई
६. श्री वाडीलाल छोटालाल डेली वाला, बम्बई
हस्ते, श्री चन्द्रकान्त वी. शाह

७. श्री चम्पालाल जी हरखचंद जी कोठारी पीपाड़ वाले, **बम्बई**
८. श्रीमती लीलावती बेन जयन्तिलाल चेरिटेबल ट्रस्ट, **बम्बई**
९. श्री मूलचंद जी सरदारमल जी संचेती
हस्ते, उमरावमल जी, **जोधपुर**
१०. श्री उदयराज जी संचेती, **जोधपुर**
११. श्री मदनलाल जी संचेती, मनीष इन्डस्ट्रीज, **जोधपुर**
१२. श्री सूरजमल जी सा. गेहलोत सूरसागर, **जोधपुर**
१३. श्रीमती चन्द्रादेवी धर्मपत्नी गंभीरमल जी बम्ब, **टौंक** (राजस्थान)
१४. श्रीमती केली बाई चौधरी ट्रस्ट
हस्ते, श्री शान्तिलाल जी धर्मीचंद जी, **तिरुपती** (आ. प्र.)
१५. कृषिभूषण श्री विजयराज जी फतेहराज जी बरमेचा, **नासिक सिटी**
१६. श्री इन्दरचंद मेमोरियल चेरिटेबल ट्रस्ट, **नासिक सिटी**
हस्ते, श्री शान्तिलाल जी दूगड़
१७. श्रीमती ऊषादेवी गौतमचंद जी बोहरा, **जैतारण**
हस्ते, श्री जवन्तराज जी
१८. श्री भंवरलाल जी हीराचंद जी मेहता, **पाली** (मारवाड़)
१९. श्री मेघराज जी रूपा जी साण्डेराव वाले, जय सन्स अम्ब्रेला इम्डस्ट्रीज, **हुबली**
२०. श्रीमती पानीबाई बालचंद जी बाफना, सादड़ी (मारवाड़)
हस्ते, श्री रूपचन्द जी बाफना
२१. श्री एस. एस. जैन सभा, कोल्हापुर मार्ग, सब्जी मण्डी, **दिल्ली**
२२. श्री धीरजभाई धरमशीभाई मोरबिया, **आबू रोड**
२३. श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, **हरमाड़ा**
२४. श्री नरेन्द्रकुमार जी छाजेड़, **उदयपुर**
२५. श्री सुगनचन्द जी जैन, **मद्रास**
२६. श्री अमरचन्द मारु चेरिटेबल ट्रस्ट, **दिल्ली**
हस्ते, माणकचन्द जी, धर्मीचन्द, प्रेमचन्द जी लूणावत, **हरमाड़ा**
२७. तपस्वी चन्दुभाई मेहता, **जामनगर**
२८. श्री भोगीलाल कक्कलभाई, **धानेरा**
२९. श्री जुहारमल जी दीपचन्द जी नाहटा
हस्ते, धनराज लालचन्द, **केकड़ी**
३०. श्री मोडीलाल बरदीचंद सूर्या, **खेड़ब्रह्मा**
३१. श्री केवलचन्द जी जंवरीलाल जी बरमेचा, **अटपड़ा**

संरक्षक

१. श्री भंवरलाल जी मोहनलाल जी भंडारी, **अहमदाबाद**
२. श्री नगीनभाई दोशी, **अहमदाबाद**
३. श्री मूलचंद जी जवाहरलाल जी बरड़िया, **अहमदाबाद**
४. श्री धिंगड़मल जी मुलतानमल जी कानूंगा, **अहमदाबाद**
५. श्री कान्तिलाल जीवनलाल शाह, **अहमदाबाद**
६. श्री शान्तिलाल टी. अजमेरा, **अहमदाबाद**
७. श्री चन्दुलाल शिवलाल संघवी, **अहमदाबाद**
हस्ते, श्री जयन्तिभाई संघवी
८. श्रीमती पार्वती बेन शिवलाल तलखशीबाई अजमेरा ट्रस्ट, **अहमदाबाद**
हस्ते, श्री नवनीतमल मणिलाल अजमेरा
९. श्री शान्तिलाल अमृतलाल वोरा, **अहमदाबाद**

१०. श्री क्रान्तिलाल मनसुखलाल शाह पालियाद वाला, अहमदावाद
११. श्री गिरधरलाल पुरुषोत्तमदास ऐलिसब्रिज, अहमदावाद
१२. श्री जयन्तिलाल भोगीलाल भावसार सरसपुर, अहमदावाद
१३. श्री भोगीलाल एण्ड कं., अहमदावाद
हस्ते, श्री दीनुभाई भावसार
१४. श्री अहमदावाद स्टील स्टोर, अहमदावाद
हस्ते, जयन्तिलाल मनसुखलाल
१५. श्री जादव जी मोहनलाल शाह, अहमदावाद
१६. डॉ. श्री धीरजलाल एच. गोसलिया नवरंगपुरा, अहमदावाद
१७. श्री सज्जनसिंह जी भंवरलाल जी कांकरिया पीपाड़ वाले, अहमदावाद
१८. श्री कान्तिलाल प्रेमचंद शाह मूँगफली वाला, अहमदावाद
१९. प्लाजा इन्डस्ट्रीज, अहमदावाद
हस्ते, धनकुमार भोगीलाल पारीख
२०. श्री नगीनदास शिवलाल, अहमदावाद
२१. श्रीमती कान्ता वेन भँवरलाल जी के वर्षीतप के उपलक्ष में
हस्ते, श्री सखीदास मनसुखभाई, अहमदावाद
२२. श्री दलीचंदभाई अमृतलाल देसाई, अहमदावाद
२३. श्री जयन्तिलाल के. पटेल साणन्द वाले, अहमदावाद
२४. श्री रामसिंह जी चौधरी, अहमदावाद
२५. श्री पोपटलाल मोहनलाल शाह, पब्लिक चेरिटेवल ट्रस्ट, अहमदावाद
२६. श्री चिमनलाल डोसाभाई पटेल, अहमदावाद
२७. श्री जादव जी लाल जी वेल जी, वम्वई
२८. श्री गेहरीलाल जी कोठारी, कोठारी ज्वैलर्स, बम्बई
२९. श्री हिम्मतभाई निहालचन्द जी दोषी, वम्बई
३०. श्री आर. आर. चौधरी, बम्बई
३१. स्व. श्री मणिलाल नेमचन्द अजमेरा तथा कस्तूरी वेन मणिलाल की स्मृति में
हस्ते, श्री चम्पकभाई अजमेरा, बम्बई
३२. श्रीमती समरथ बेन चतुर्भुज वेकरी वाला, बम्बई
हस्ते, कान्तिभाई
३३. श्री छगनलाल शामजीभाई विराणी राजकोट वाले, बम्बई
३४. श्री रसिकलाल हीरालाल जवेरी, बम्बई
३५. श्रीमती तरुलता वेन रमेशचंद दफ्तरी, बम्बई
३६. श्री ताराचंद चतुरभाई वोरा वालकेश्वर, बम्बई
हस्ते, नन्दलालभाई
३७. श्री चम्पकलाल एम. लाखाणी, बम्बई
३८. श्री हीर जी सोजपाल कच्छ कपाया वाला, बम्बई
३९. श्री अमृतलाल सोभागचंद जी की स्मृति में
हस्ते, राजेन्द्रकुमार गुणवन्तलाल, बम्बई
४०. श्री एच. के. गांधी मेमोरियल ट्रस्ट घाटकोपर, बम्बई
हस्ते, वज्जुभाई गांधी
४१. श्री वाडीलाल मोहनलाल शाह सायन, बम्बई
४२. श्री नगराज जी चन्दनमल जी मेहता सादड़ी वाले, बम्बई
४३. श्री हरीश सी. जैन खार, जय सन्स, बम्बई
४४. श्री छोटालाल धनजीभाई दोमड़िया, बम्बई

४५. श्रीमती शान्ता बेन कान्तिलाल जी गांधी, बम्बई
४६. श्रीमती शिमला रानी जैन की स्मृति में जितेन्द्रकुमार जैन, बम्बई
४७. श्रीमती पारसदेवी मोहनलाल जी पारख, हैदराबाद
४८. श्री नवरतनमल जी कोटेचा बस्सी वाले, हैदराबाद
४९. श्रीमती बीदाम बेन घीसालाल जी कोठारी, हैदराबाद
५०. श्री पारसमल जी पारख, हैदराबाद
५१. श्री बाबूलाल जी कांकरिया, हैदराबाद
५२. श्री सज्जनराज जी कटारिया, सिकन्द्राबाद
५३. श्री दिनेशकुमार चन्द्रकान्त बैंकर, सिकन्द्राबाद
५४. श्री प्रेमचन्द जी पोमा जी साकरिया, साण्डेराव
५५. श्रीमती हंजाबाई प्रेमचंद जी साकरिया, साण्डेराव
५६. श्री विरदीचंद मेगराज जी साकरिया, साण्डेराव
५७. श्री जुहारमल जी लुम्बा जी साकरिया, साण्डेराव
५८. श्री ताराचंद जी भगवान जी साकरिया, साण्डेराव
५९. श्री कस्तूरचंद जी प्रताप जी साकरिया, साण्डेराव
६०. श्री ताराचंद जी प्रताप जी साकरिया, साण्डेराव
६१. श्री सुमेरमल जी मेड़तिया (एडवोकेट), जोधपुर
६२. श्री अगरचंद जी फतेहचंद जी पारख, जोधपुर
६३. श्री मुन्नीलाल जी मदनराज जी गोलेच्छा, जोधपुर
६४. श्री लुम्बचंद जी गौतमचंद जी सांड, जोधपुर
६५. श्री कैलाशचंद्र जी भंसाली, जोधपुर
६६. श्री मूलचंद जी भंसाली, जोधपुर
६७. श्री शान्तिलाल जी मुन्नालाल जी मुणोत सूरसागर, जोधपुर
६८. श्री लालचंद जी गौतमचंद जी मुणोत सूरसागर, जोधपुर
६९. श्री गुलराज जी पूनमचंद जी मेहता, मदनगंज
७०. श्री गणेशदास शान्तिलाल संचेती, मदनगंज
७१. श्री चम्पालाल जी पारसमल जी चौरड़िया, मदनगंज
७२. श्री सूरजमल कनकमल, मदनगंज
हस्ते, श्री महावीरचन्द जी कोठारी
७३. श्री बुधसिंह जी पारसमल जी घीसुलाल जी बम्ब, मदनगंज
७४. श्री मांगीलाल जी चम्पालाल जी उत्तमचंद जी चौरड़िया, मदनगंज
७५. श्री हरखचंद जी रिखबचंद जी मेड़तवाल, केकड़ी
७६. श्री लादूसिंह जी गांग (एडवोकेट), शाहपुरा
७७. श्री जबरसिंह जी सुमेरसिंह जी बरड़िया, रूपनगढ़
७८. श्री नाहरमल जी बागरेचा, राबड़ियाद
हस्ते, श्री नोरतमल जी बागरेचा
७९. श्री शिवराज जी उत्तमचंद जी बम्ब, पीह
८०. श्री धनराज जी डांगी, फतेहगढ़
८१. श्री हुक्मीचंद जी चान्दमल जी ओम जी कोचेटा पीलवा वाले
कोचेटा फेब्रिक्स, पाली (मारवाड़)
८२. श्री लक्ष्मीचंद जी तोलेड़ा, जयपुर
८३. श्री कंवरलाल जी धर्मीचंद जी बेताला, गोहाटी (आसाम)
८४. श्री भंवरलाल जी जुगराज जी फुलफगर, घोड़नदी (महाराष्ट्र)
८५. श्री गणशी देवराज, जालना (महाराष्ट्र)

८६. श्री कान्तिलाल जी रतनचंद जी वांठिया, पनवेल (महाराष्ट्र)
८७. मै. कन्हैयालाल माणकचंद एण्ड सन्स, बड़गाँव (पूणा)
८८. श्री रणजीतसिंह ओमप्रकाश जैन, कालावाली मण्डी (हरियाणा)
८९. श्री मदनलाल जी जैन, भटिण्डा (पंजाब)
९०. श्री भाईलाल जादव जी सेठ, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
९१. श्री सोहनराज जी चौथमल जी संचेती सोजत वाले, सुरगाणा (महाराष्ट्र)
९२. श्री जे. डी. जैन, गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)
९३. श्री प्रेमचंद जी जैन, आगरा
९४. श्री जी. एस. संघवी राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली
९५. श्री बी. अमोलकचंद अमरचंद मेहता, बैंगलोर
९६. श्री विजयराज जी पदमचन्द जी गादिया, कुड़की
९७. श्री शान्तिलाल जी बम्ब, पीह
९८. श्री रजनीकान्त भाई देसाई, बम्बई
९९. श्री छोगालाल जी बोहरा, पाली
१००. श्री हमीरमल दलीचंद श्रीश्रीमाल, ब्यावर
१०१. श्री अशोककुमार जी धीरजकुमार जी गादिया, बैंगलोर
१०२. श्री माणकचन्द जी ओसतवाल, बैंगलोर
१०३. श्री पूनमचन्द जी हरिशचन्द्र वडेर, जयपुर

सम्माननीय सदस्य

१. श्री पी. के. गांधी, बम्बई
२. श्री सुखलाल जी कोठारी खार, बम्बई
३. श्री नागरदास मोहनलाल खार, बम्बई
४. श्री आनन्दीलाल जी कटारिया वडाला, बम्बई
५. श्री बसन्तलाल के. दोसी विर्लेपाला, बम्बई
६. श्री प्रोसीसन टैक्सटाइल इन्जीनियरिंग एण्ड काम्पेन्ट्स, बम्बई
७. श्री मेहता इन्द्र जी पुरुषोत्तमदास दादर, बम्बई
८. श्री कोरसीभाई हीरजीभाई चेरिटेबल ट्रस्ट, बम्बई
९. श्री जयसुखभाई रामजीभाई शेठ कांदावाड़ी, बम्बई
१०. श्री चिमनलाल गिरधरलाल कांदावाड़ी, बम्बई
११. श्री मेघजीभाई थोबण कांदावाड़ी, बम्बई
हस्ते, मणिलाल वीरचंद
१२. श्री प्रितमलाल मोहनलाल दफ्तरी कांदावाड़ी, बम्बई
१३. मै. सीलमोहन एण्ड कं., बम्बई
हस्ते, रमणिकभाई धानेरा वाले
१४. श्री नरोत्तमदास मोहनलाल, बम्बई
१५. श्री वाडीलाल जेठालाल शाह वालकेश्वर, बम्बई
आचार्य यशोदेवसूरीश्वरजी की प्रेरणा से
१६. श्री जैन संस्कृति कला केन्द्र मरीनलाईन, बम्बई
१७. श्री मेघजी खीमजी तथा लक्ष्मी बेन मेघजी खीमजी, बम्बई
१८. श्री ताराचंद गुलाबचंद, बम्बई
१९. *श्री गिरधरलाल मन्छाचंद जवेरी धानेरा वाले*, बम्बई
२०. श्रीमती भूरीबाई भंवरलाल जी कोठारी सेमा वाले, बम्बई
हस्ते, सागरमल मदनलाल रमेशचंद

२१. श्री पुखराज जी कावड़ीया सादड़ी वाले, न्यू राजुमणि ट्रांसपोर्ट, **बम्बई**
२२. श्री रसीकलाल हीरालाल जवेरी, **बम्बई**
२३. श्री प्रवीणभाई के. मेहता, **बम्बई**
२४. श्री प्रभुदासभाई रामजीभाई सेठ, **बम्बई**
२५. श्रीमती लता बेन विमलचंद जी कोठारी, **बम्बई**
२६. श्री कमलेश एन. शाह, **बम्बई**
२७. श्री अरविन्दभाई धरमशी लुखी, **बम्बई**
२८. श्री चांपशीभाई देवशी नन्दू, **बम्बई**
२९. श्री लालजी लखमशी केमिकल्स प्रा. लि., **बम्बई**
३०. श्री मूलचंद जी गोलेछा, **जोधपुर**
३१. श्री चम्पालाल जी चौपड़ा, **जोधपुर**
३२. श्री माणकचंद जी अशोककुमार जी, **जोधपुर**
३३. श्री मदनराज जी कर्णावट, **जोधपुर**
३४. श्री जेठमल जी लुंकड़, **जोधपुर**
३५. श्री मेहन्द्रकुमार जी राजेन्द्रकुमार जी, **जोधपुर**
३६. श्रीमती विमलादेवी मोतीलाल जी गुलेछा, **जोधपुर**
३७. श्री जैन बुक डिपो पावटा, **जोधपुर**
३८. श्री सायरचंद जी बागरेचा, **जोधपुर**
३९. श्री घेवरचंद जी पारसमल जी टाटिया, **जोधपुर**
४०. श्री भंवरलाल जी गणेशमल जी टाटिया, **जोधपुर**
४१. श्री लाभचंद जी टाटिया, **जोधपुर**
४२. श्री तेजराज जी गोदावत, **जोधपुर**
४३. श्री महावीर स्टोर्स, **जोधपुर**
४४. श्री पारसमल जी सुमेरमल जी संखलेचा, **जोधपुर**
४५. श्री मोहनलाल जी बोथरा, **जोधपुर**
४६. श्री जबरचंद जी सेठिया, **जोधपुर**
४७. श्री मूलचंद जी भंसाली, **जोधपुर**
४८. श्री सोमचंद जी सर्राफ, **जोधपुर**
४९. श्री केशरीमल जी चौपड़ा, **जोधपुर**
५०. श्री कनकराज जी गोलिया, जोधपुर
५१. श्री चम्पालाल जी बाफना, **जोधपुर**
५२. श्री ताराचंद जी सायरचंद जी पारख, जोधपुर
५३. श्री घेवरचंद जी पारख, **जोधपुर**
५४. श्री उदयराज जी पारख, जोधपुर
५५. श्री हरखराज जी मेहता, जोधपुर
५६. श्री लालचंद जी बाफना, जोधपुर
५७. श्री जैन खतरगच्छ संघ, जोधपुर
५८. श्री दिलीपराज जी कर्णावट, जोधपुर
५९. श्री शम्भूदयाल जी भंसाली, जोधपुर
६०. श्री चम्पालाल जी भंसाली, जोधपुर
६१. श्री चन्द्रसागर जी कुंभट, जोधपुर
६२. श्री महेन्द्रकुमार जी झामड़, जोधपुर
६३. श्री सूरजमल जी रमेशकुमार जी श्रीश्रीमाल, जोधपुर
६४. श्री प्रकाशमल जी डोसी प्रतापनगर, जोधपुर

६५. श्री सुगनचंद जी भंडारी, जोधपुर
६६. श्री मोहनलाल जी चम्पालाल जी गोठी महामन्दिर, जोधपुर
६७. श्री गुलावचंद जी जैन, जोधपुर
६८. श्री नरसिंग जी दाधीच सूरसागर, जोधपुर
६९. श्री जीवराज जी कानूंगा, जोधपुर
७०. श्री भंवरलाल जी कानूंगा, जोधपुर
७१. श्री दलाल माणकचंद जी वोहरा, जोधपुर
७२. श्रीमती कमला सुराणा, जोधपुर
७३. श्री अशोककुमार जी वोहरा, जोधपुर
७४. श्रीमती मंजुदेवी अशोककुमार जी वोहरा, जोधपुर
७५. श्री सोहनलाल जी बडेर, जोधपुर
७६. श्री माणकचंद जी संचेती, जोधपुर
७७. श्री मदनचंद जी संचेती, जोधपुर
७८. श्री धनराज जी दिलीपचंद जी संचेती, जोधपुर
७९. श्री गौतमचंद जी संचेती, जोधपुर
८०. श्री प्रकाशचंद जी संचेती, जोधपुर
८१. श्री पुष्पचंद जी संचेती, जोधपुर
८२. श्री गणपतलाल जी संचेती, जोधपुर
८३. श्री भरतभाई जे. शाह, अहमदावाद
८४. श्री लालभाई दलपतभाई चेरिटेबल ट्रस्ट, अहमदाबाद
८५. श्री महेन्द्रभाई सी. शाह नवरंगपुरा, अहमदावाद
८६. श्री भींवराज जी भगवान जी धारीवाल, अहमदाबाद
८७. श्री पारसमल जी ओटरमल जी कावड़ीया, सादड़ी (मारवाड़)
८८. श्री हिम्मतमल जी प्रेमचंद जी साकरिया, साण्डेराव
८९. श्री रतीलाल विट्ठलदास गोसलिया, माधवनगर
९०. श्री हरखराज जी दौलतराज जी धारीवाल, हैदरावाद
९१. श्री एस. एन. भीकमचंद जी सुखाणी लाल बाजार, सिकन्द्राबाद
९२. श्री चुन्नीलाल जी बागरेचा, बालाघाट
९३. श्री प्रेमराज जी उत्तमचंद जी चौरड़िया, मदनगंज
९४. श्री मांगीलाल जी सोलंकी सादड़ी वाले, पूना
९५. श्री सोहनराज जी चौथमल जी संचेती सोजत वाले, सुरगाणा
९६. श्री लालचंद जी भंवरलाल जी संचेती, पाली
९७. श्रीमती कमला बेन मूलचंद जी गूगले, अहमदनगर
९८. श्रीमती लीला बेन पोपटलाल बोहरा, इचलकरंजी
९९. श्री पुखराज जी महावीरचंद जी मूथा पीह वाले, मद्रास
१००. श्री के. सी. जैन (एडवोकेट), हनुमानगढ़
१०१. श्रीमती मदनबाई खाबिया पादू वाले, मद्रास
१०२. श्री बाबूलाल ज़ी कन्हैयालाल जी जैन, मालेगाँव
१०३. श्रीमती कमलाबाई केवलचंद जी आबड़, भटिण्डा (पंजाब)
१०४. श्री पारसमल जी सुखाणी, रायचूर
१०५. श्री प्रताप मुनि ज्ञानालय, बड़ी सादड़ी
१०६. श्री एच. अम्बालाल एण्ड सन्स, गुडियातम
हस्ते, श्री प्रेमराज जी पारसमल जी केवलचंद जी वगड़ी वाले
१०७. श्री यश. भंवरलाल जी श्रीश्रीमाल, बैंगलोर

१०८. श्री कल्याणमल जी कनकराज जी चौरड़िया ट्रस्ट, मद्रास
१०९. श्री कैलाशचंद जी दुगड़, मद्रास
११०. श्री मेहता विरदीचंद जुमचंद चेरिटेबल ट्रस्ट, मद्रास
१११. श्री दुलीचंद जी जैन, मद्रास
११२. श्री नेमीचंद जी उत्तमचंद जी संघवी, धुलिया
११३. श्री कपूरचंद जी कुलीश, राजस्थान पत्रिका, जयपुर
११४. श्री सन्मति जैन पुस्तकालय, बड़ोत मण्डी
११५. श्री विनोदकुमार जी हरीलाल जी गोसलिया, मुजफ्फरनगर
११६. श्री विजयकुमार जी जैन, अम्बाला शहर
११७. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, भोपालगढ़
११८. श्री हंसराज जी जैन, भटिण्डा (पंजाब)
११९. श्री कीमतीलाल जी जैन, मेरठ सिटी
१२०. श्री संजयकुमार कल्याणमल जी सर्राफ, शाहजहाँपुर
१२१. श्री कलवा स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, कलवा (थाना)
१२२. श्री ए. पी. जैन, दिल्ली
१२३. श्री चम्पालाल जी चपलोत, भीलवाड़ा
१२४. श्री तिलोकचंद जी पोखरणा, मदनगंज
१२५. श्री उम्मेदसिंह जी चौधरी की स्मृति में
हस्ते, श्री अनन्तसिंह जी, कैरोट
१२६. श्री पन्नालाल जी प्रेमचंद जी चौपड़ा, अजमेर
१२७. श्री गांग जी कुंवर जी बोरा, समागोगा कच्छ
१२८. श्री मोहनलाल जी बाबूलाल जी कांकरिया, हैदराबाद
१२९. श्री हीराचन्द जी चौपड़ा, साण्डेराव
१३०. श्री सज्जनमल जी बोहरा, पीसांगन
१३१. श्री गजराजसिंह जी डांगी, भीलवाड़ा
१३२. श्री एस. भंवरलाल जी पारसमल जी, गेलड़ा, आरकोणम्
१३३. शा. पोपटलाल मोहनलाल शाह पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट, अहमदाबाद
१३४. श्री आबू तलेटी तीर्थ मानपुर, आबू रोड

ज्ञान-दान

१. एन. जे. छेड़ा, बम्बई
२. तीर्थराम जी जैन, होशियारपुर
३. तेजमल जी बाफणा (एडवोकेट), भीलवाड़ा
४. सौभागमल जी बहादुरमल जी नागौरी, सिंगोली (मध्य प्रदेश)
५. श्री मोहनलाल जी जंवरीलाल जी बोहरा, शोलापुर (कर्णाटक)
६. श्री कस्तूरभाई भोगीलाल शाह, प्रान्तिज (गुजरात)
७. श्री शान्तिलाल जी माणकचंद जी कोठारी, अहमदाबाद
८. श्री प्राणलाल वल्लभदास घाटलिया, बम्बई
९. श्री हजारीमल जी मोतीलाल जी कालूराम जी
माता धापूबाई बेटा पोता हस्ते, भूराराम जी उदयराम जी बागोर, भीलवाड़ा
१०. शा. फोजराज चुन्नीलाल बागरेचा जैन धार्मिक ट्रस्ट, बालाघाट

विषय-सूची

भाग २
अध्ययन २५ से ३८

विषयानुक्रमणिका

२६. लेश्या अध्ययन

२७. क्रिया अध्ययन

२८. आश्रव अध्ययन

१. प्राणातिपात

बंध के भेद-प्रभेद

सूत्र	विषय	पृष्ठांक

स्थिति

३२. वेदना अध्ययन

३३. गति अध्ययन

३४. नरक गति अध्ययन

३५. तिर्यञ्च गति अध्ययन

३६. मनुष्य गति अध्ययन

३७. देव गति अध्ययन

३८. वुक्कंति अध्ययन

द्रव्यानुयोग

अध्ययन २५ से ३८

द्रव्यानुयोग

संयत अध्ययन : आमुख

इस अध्ययन में संयतों एवं निर्ग्रन्थों की विस्तार से चर्चा है। संसार में कुछ जीव संयत होते हैं, कुछ असंयत होते हैं और कुछ संयतासंयत होते हैं। महाव्रतधारी साधुओं अथवा श्रमणों को संयत कहते हैं, पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावकों को संयतासंयत कहते हैं तथा शेष सब (पहले से चौथे गुणस्थान तक के) जीव असंयत कहलाते हैं। इस दृष्टि से देव, नैरयिक, एवं एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक के सारे जीव असंयतों की श्रेणी में आते हैं। तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय जीव असंयत एवं संयतासंयत इन दो प्रकारों के होते हैं। मनुष्य संयत भी होते हैं, असंयत भी होते हैं तथा संयतासंयत भी होते हैं। सिद्ध इन तीनों अवस्थाओं से रहित नो संयत, नो असंयत एवं नो संयतासंयत होते हैं।

संयत सर्वविरति चारित्र से युक्त होते हैं। चारित्र के पाँच भेदों के आधार पर संयत जीव पाँच प्रकार के कहे जाते हैं, यथा–

१. सामायिक संयत, २. छेदोपस्थापनीय संयत, ३. परिहारविशुद्धि संयत, ४. सूक्ष्म संपराय संयत और ५. यथाख्यात संयत।

१. सामायिक चारित्र के आराधक संयत को सामायिक संयत कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है–१. इत्वरिक और २. यावत्कथिक। प्रथम एवं अंतिम तीर्थङ्कर के शासनकाल में छेदोपस्थापनीय चारित्र (बड़ी दीक्षा) के पूर्व जघन्य सात दिन, मध्यम चार मास एवं उत्कृष्ट छह मास तक जिस सामायिक चारित्र का पालन किया जाता है उसे इत्वरिक सामायिक चारित्र कहते हैं। बीच के बाबीस तीर्थङ्करों के शासनकाल में जीवनपर्यन्त के लिए सामायिक चारित्र ग्रहण किया जाता है उसे यावत्कथिक सामायिक चारित्र कहते हैं। इन तीर्थङ्करों के शासन में एवं महाविदेह क्षेत्र में छेदोपस्थापनीय चारित्र नहीं दिया जाता।

२. जो संयत छेदोपस्थापनीय चारित्र से युक्त होते हैं उन्हें छेदोपस्थापनीय संयत कहते हैं। इस चारित्र को आजकल बड़ी दीक्षा भी कहा जाता है। किन्तु मूलगुणों का घात करने वाले साधुओं को पुनः महाव्रतों में अधिष्ठित करने के लिए भी छेदोपस्थापनीय चारित्र का महत्व है। इस चारित्र में पूर्वपर्याय का छेद तथा महाव्रतों का उपस्थापन या आरोपण होता है, इसलिए इसे छेदोपस्थापनीय चारित्र कहा जाता है। यह चारित्र दो प्रकार का होता है–१. सातिचार और २. निरतिचार। इत्वरिक सामायिक चारित्र वाले साधु के तथा एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ में जाने वाले साधु के महाव्रतों का आरोपण निरतिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र कहलाता है तथा मूलगुणों का घात करने वाले साधु का पुनः महाव्रतों में आरोपण सातिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र कहा जाता है।

३. परिहारविशुद्धि चारित्र से युक्त संयत परिहारविशुद्धि संयत कहलाते हैं। इस चारित्र में परिहार अर्थात् तप विशेष से कर्मनिर्जरा रूप शुद्धि होती है। इस चारित्र का धारक संयत मन, वचन और काया से उत्कृष्ट धर्म का पालन करता हुआ आत्म-विशुद्धि को अपनाता है। परिहारविशुद्धि चारित्र की विशेषावश्यक भाष्य आदि में एक लम्बी प्रक्रिया बतायी गई है जिसमें नौ साधुओं का एक गच्छ मिलकर यह साधना करता है। नौ साधुओं में से चार साधु तप करते हैं, एक साधु प्रमुखता करता है तथा शेष चार साधु वैयावृत्य करते हैं। यह प्रक्रिया छह मास तक चलती है। दूसरे छह मास में वैयावृत्य करने वाले साधु तप करते हैं तथा तप करने वाले वैयावृत्य करते हैं। तीसरे छह माह में प्रमुख व्याख्याता साधु तप करता है, एक अन्य साधु प्रमुखता करता है तथा सात साधु उनकी सेवा करते हैं। इस प्रकार परिहारविशुद्धि चारित्र की प्रक्रिया १८ मास तक चलती है। यह चारित्र दो प्रकार का होता है–१. निर्विश्यमानक और २. निर्विष्टकायिक। इस चारित्र को अपनाने वाले साधु निर्विश्यमानक तथा उनसे अभिन्न यह चारित्र निर्विश्यमानक कहलाता है। जिन्होंने इस चारित्र का आराधन कर लिया है वे साधु निर्विष्टकायिक कहलाते हैं तथा उनसे अभिन्न चारित्र निर्विष्टकायिक कहा जाता है।

४. चौथा चारित्र सूक्ष्म संपराय है तथा इस चारित्र से युक्त साधु सूक्ष्म संपराय संयत कहलाते हैं। यह चारित्र दसवें गुणस्थान में होता है क्योंकि इसमें संज्वलन लोभ नामक सूक्ष्म कषाय शेष रहता है। इस चारित्र के दो प्रकार हैं–१. संक्लिश्यमानक और २. विशुद्ध्यमानक। संक्लिश्यमानक सूक्ष्म संपराय चारित्र उपशमश्रेणी से गिरते हुए साधु के होता है तथा विशुद्ध्यमानक चारित्र क्षपकश्रेणी एवं उपशमश्रेणी से आरोहण करने वाले साधु के होता है।

५. मोहनीय कर्म के उपशान्त या क्षीण होने पर जो छद्मस्थ या जिन होता है वह यथाख्यात संयत कहलाता है। यह 'यथाख्यात चारित्र' से युक्त होता है। यथाख्यात चारित्र ग्यारहवें से चौदहवें गुणस्थान तक पाया जाता है। इस चारित्र के दो भेद हैं–१. छद्मस्थ, २. केवली। जब यह ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थानवर्ती छद्मस्थ में होता है तब छद्मस्थ यथाख्यात चारित्र कहा जाता है और जब यह केवली में होता है तो केवली यथाख्यात चारित्र के नाम से जाना जाता है।

संयतों अथवा साधुओं को आगमों में 'निर्ग्रन्थ' भी कहा गया है। किन्तु निर्ग्रन्थों का विवेचन भिन्न प्रकार से मिलता है। निर्ग्रन्थों के पाँच प्रकार हैं-(१) पुलाक, (२) वकुश, (३) कुशील, (४) निर्ग्रन्थ और (५) स्नातक।

पाँच प्रकार के चारित्रों के साथ यदि इन पाँच प्रकार के निर्ग्रन्थों का विवेचन किया जाय तो ज्ञात होता है कि पुलाक, वकुश एवं प्रतिसेवना कुशीलों में सामायिक अथवा छेदोपस्थापनीय चारित्र पाया जाता है। कषायकुशीलों में परिहारविशुद्धि एवं सूक्ष्म संपराय चारित्र भी पाए जा सकते हैं। निर्ग्रन्थों एवं स्नातकों में एक मात्र यथाख्यात चारित्र पाया जाता है।

पुलाक वह निर्ग्रन्थ है जो मूलगुण तथा उत्तरगुण में परिपूर्णता प्राप्त न करते हुए भी वीतराग प्रणीत आगम से कभी विचलित नहीं होता है। पुलाक का अर्थ है निःसार धान्यकण। संयमवान् होते हुए भी जो साधु किसी छोटे से दोष के कारण संयम को किंचित् असार कर देता है वह पुलाक कहलाता है। पुलाक लब्धि का प्रयोक्ता निर्ग्रन्थ पुलाक कहा गया है। इसे लब्धि पुलाक कहते हैं। दूसरे प्रकार का पुलाक आसेवना पुलाक कहा जाता है। लब्धि पुलाक पाँच कारणों से पुलाक लब्धि का प्रयोग करने के कारण पाँच प्रकार का कहा गया है-१. ज्ञान पुलाक, २. दर्शन पुलाक, ३. चारित्र पुलाक, ४. लिंग पुलाक और, ५. यथासूक्ष्म पुलाक। ज्ञान पुलाक स्खलना, विस्मरण, विराधना आदि दूषणों से ज्ञान की किंचित् विराधना करता है। दर्शन पुलाक सम्यक्त्व की विराधना करता है। इसी प्रकार चारित्र को दूषित करने वाला चारित्र पुलाक कहा जाता है। अकारण ही अन्य लिंग या वेष को धारण करने वाला लिंग पुलाक कहलाता है। सेवन करने के अयोग्य दोषों को साधु-साध्वीयों की रक्षा करते हुए कोई सेवन करे तो उसे यथासूक्ष्म पुलाक कहते हैं।

वकुश वह श्रमण है जो आत्म-शुद्धि की अपेक्षा शरीर की विभूषा एवं उपकरणों की सजावट की ओर अधिक रुचि रखता है। यह स्वाध्याय, ध्यान, तप आदि में श्रम नहीं करके खान-पान, शयन-आराम आदि की प्रवृत्ति करने लगता है। वकुश निर्ग्रन्थ पाँच प्रकार के कहे गए हैं-(१) आभोग वकुश, (२) अनाभोग वकुश, (३) संवृत वकुश, (४) असंवृत वकुश और (५) यथासूक्ष्म वकुश। साधुओं के लिए शरीर, उपकरण आदि को सुशोभित करना अयोग्य समझ कर भी जो दोष लगाता है वह आभोग वकुश है। जो न जानते हुए दोष लगाता है वह अनाभोग वकुश है। जो प्रकट रूप में दोषयुक्त प्रवृत्ति करते हैं वे असंवृत वकुश हैं। जो लोक लज्जा के कारण छिपकर शरीर की विभूषादि प्रवृत्तियाँ करता है वह संवृत वकुश है। जो आँखों में अंजन लगाने आदि अकरणीय सूक्ष्म कार्यों में समय लगाते हैं वे यथासूक्ष्म वकुश हैं।

कुशील का अर्थ है कुत्सित शील वाला। कुशील निर्ग्रन्थ के दो प्रकार हैं-(१) प्रतिसेवना कुशील और (२) कषाय-कुशील। जो साधक ज्ञान, दर्शन, चारित्र, लिंग एवं शरीर आदि हेतुओं से संयम के मूलगुणों या उत्तरगुणों में दोष लगाता है उसे प्रतिसेवना कुशील कहते हैं। इन हेतुओं के आधार पर प्रतिसेवना कुशील के ५ भेद हैं-१. ज्ञान प्रतिसेवना कुशील, २. दर्शन प्रतिसेवना कुशील, ३. चारित्र प्रतिसेवना कुशील, ४. लिंग प्रतिसेवना कुशील और ५. यथासूक्ष्म प्रतिसेवना कुशील।

कषाय कुशील में मात्र संज्वलन कषाय की कोई प्रकृति पायी जाती है। वह ज्ञानादि हेतुओं से संज्वलन कषाय की प्रकृति में प्रवृत्त होता है किन्तु संयम के मूलगुणों एवं उत्तरगुणों में किसी भी प्रकार का दोष नहीं लगाता है। ज्ञानादि हेतुओं के कारण इसके भी पाँच भेद हैं-१. ज्ञान कषाय कुशील, २. दर्शन कषाय कुशील, ३. चारित्र कषाय कुशील, ४. लिंग कषाय कुशील और ५. यथासूक्ष्म कषाय कुशील।

पाँच निर्ग्रन्थो के निर्ग्रन्थ भेद में कषाय-प्रवृत्ति एवं दोषों के सेवन का सर्वथा अभाव होता है। इसमें सर्वज्ञता प्रकट होने वाली रहती है तथा राग-द्वेष का सर्वथा अभाव हो जाता है। निर्ग्रन्थ शब्द के वास्तविक अर्थ 'राग-द्वेष की ग्रन्थि से रहित' का इसमें पूर्णतः घटन होता है। यह निर्ग्रन्थ वीतराग होता है। समय की अपेक्षा से इसके पाँच भेद हैं-१. प्रथम समय निर्ग्रन्थ-११वें अथवा १२वें गुणस्थान के काल के प्रथम समय में विद्यमान। २. अप्रथम समय निर्ग्रन्थ-११वें या १२वें गुणस्थान में दो समय से या उससे अधिक समय से विद्यमान। ३. चरम समय निर्ग्रन्थ-जिसकी छद्मस्थता एक समय शेष हो। ४. अचरम समय निर्ग्रन्थ-जिसकी छद्मस्थता दो या दो समय से अधिक शेष हो। ५. यथासूक्ष्म निर्ग्रन्थ-जो सामान्य निर्ग्रन्थ हो, प्रथम आदि समय की विवक्षा से भिन्न हो।

निर्ग्रन्थ एवं संयतों का इस अध्ययन में ३६ द्वारों से पृथक्-पृथक् निरूपण हुआ है। इन ३६ द्वारों से जव निर्ग्रन्थों एवं संयतों का विचार किया जाता है तो इनके सम्बन्ध में सभी प्रकार की जानकारी संकलित हो जाती है। ३६ द्वारों में वेद, राग, चारित्र, कषाय, लेश्या, भाव आदि द्वार महत्वपूर्ण हैं।

वेद-द्वार के अनुसार पुलाक, बकुश एवं प्रतिसेवना कुशील निर्ग्रन्थ सवेदक होते हैं। इनमें काम-वासना विद्यमान रहती है। कषाय-कुशील अवेदक एवं सवेदक दोनों प्रकार का होता है। निर्ग्रन्थ एवं स्नातकों में काम-वासना नहीं रहती, अतः ये दोनों अवेदक होते हैं। संयतों की दृष्टि से सामायिक संयत एवं छेदोपस्थापनीय संयत दोनों प्रकार के होते हैं, कुछ सवेदक होते हैं तथा कुछ अवेदक होते हैं। परिहा विशुद्धिक संयत सवेदक होता है, अवेदक नहीं। सूक्ष्म संपराय एवं यथाख्यात संयत अवेदक ही होते हैं, उनमें काम-वासना शेष नहीं रहती।

राग-द्वार के अनुसार पुलाक से लेकर कषाय कुशील तक के निर्ग्रन्थ सराग होते हैं जबकि निर्ग्रन्थ एवं स्नातक वीतराग होते है सामायिक संयत से लेकर सूक्ष्म संपराय तक के संयत सराग होते हैं, जबकि यथाख्यात संयत वीतराग होता है।

कल्प-द्वार के अन्तर्गत स्थितकल्पी, अस्थितकल्पी, जिनकल्पी, स्थविरकल्पी एवं कल्पातीत के आधार पर निर्ग्रन्थों एवं संयतों का विवेच किया गया है।

चारित्र-द्वार के अन्तर्गत निर्ग्रन्थ के भेदों में संयतों के सामायिक आदि भेदों को घटित किया गया है तथा संयतों के भेदों में निर्ग्रन्थों के पुलाक आदि भेदों को घटित करने का विचार हुआ है। इसके अनुसार सामायिक संयत पुलाक से लेकर कषाय कुशील तक कुछ भी हो सकता है किन्तु वह निर्ग्रन्थ एवं स्नातक नहीं होता है। छेदोपस्थापनीय भी इसी प्रकार होता है। परिहारविशुद्धिक एवं सूक्ष्म संपराय संयतों में निर्ग्रन्थों का केवल कषाय-कुशील भेद पाया जाता है। यथाख्यात संयत में निर्ग्रन्थ एवं स्नातक ये दो भेद ही पाए जाते हैं, अन्य तीन नहीं।

प्रतिसेवना-द्वार में मूलगुणों एवं उत्तरगुणों के प्रतिसेवक एवं अप्रतिसेवक की दृष्टि से विचार किया गया है। दोषों का सेवन करने को प्रतिसेवना तथा उनसे रहित होने को अप्रतिसेवना कहते हैं।

ज्ञान-द्वार में यह विचार किया गया है कि किस निर्ग्रन्थ या किस संयत में कितने एवं कौन-कौन से ज्ञान पाये जाते हैं। इसी द्वार के अन्तर्गत श्रुत के अध्ययन का भी विवरण है जिसके अनुसार पुलाक जघन्य नवम पूर्व की तीसरी आचार वस्तु पर्यन्त का अध्ययन करता है तथा उत्कृष्ट नौ पूर्व का अध्ययन करता है। बकुश, कुशील एवं निर्ग्रन्थ जघन्य आठ प्रवचन माता का अध्ययन करते हैं तथा उत्कृष्ट की दृष्टि से बकुश एवं प्रतिसेवना कुशील तो दस पूर्वों का अध्ययन करते हैं तथा कषाय-कुशील एवं निर्ग्रन्थ चौदह पूर्वों का अध्ययन करते हैं। स्नातक श्रुतव्यतिरिक्त होते हैं। उनमें श्रुतज्ञान नहीं होता। सामायिक संयत, छेदोपस्थापनीय संयत एवं सूक्ष्म संपराय संयत जघन्य आठ प्रवचन माता का तथा उत्कृष्ट चौदह पूर्व का अध्ययन करते हैं। परिहारविशुद्धिक संयत जघन्य नवम पूर्व की तृतीय आचार वस्तु पर्यन्त तथा उत्कृष्ट कुछ अपूर्ण दस पूर्व का अध्ययन करते हैं। यथाख्यात संयत जघन्य आठ प्रवचन माता का, उत्कृष्ट चौदह पूर्वों का अध्ययन करते हैं। वे श्रुतरहित अर्थात् केवलज्ञानी भी होते हैं।

तीर्थ, लिङ्ग, शरीर, क्षेत्र एवं काल द्वारों में इनसे सम्बद्ध विषयों पर निरूपण हुआ है। काल का विवेचन अधिक विस्तृत है।

गति-द्वार में यह निरूपण हुआ है कि कौन-सा संयत या निर्ग्रन्थ काल-धर्म को प्राप्त कर किस गति में व कहाँ उत्पन्न होता है। प्रायः सभी साधु देवलोक में उत्पन्न होते हैं और उनमें भी प्रायः वैमानिक देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

संयम-द्वार के अनुसार पुलाक से लेकर कषाय कुशील तक असंख्यात संयम स्थान कहे गए हैं। निर्ग्रन्थों एवं स्नातकों का एक संयम स्थान माना गया है। सामायिक से लेकर परिहारविशुद्धिक संयतों तक असंख्य संयम स्थान होते हैं। सूक्ष्म संपराय संयत के अन्तर्मुहूर्त के समय जितने असंख्य संयम स्थान माने गए हैं। यथाख्यात संयत के एक संयम स्थान मान्य है। इसी द्वार में इनके संयम-स्थानों के अल्प-बहुत्व का विचार हुआ है।

सन्निकर्ष-द्वार में चारित्र पर्यवों का एवं उनके अल्प-बहुत्व का वर्णन है। योग-द्वार के अनुसार पुलाक से लेकर निर्ग्रन्थ तक के निर्ग्रन्थ सयोगी हैं जबकि स्नातक सयोगी भी हैं और अयोगी भी हैं। सामायिक संयत से लेकर सूक्ष्म संपराय तक के संयत सयोगी होते हैं तथा यथाख्यात संयत सयोगी भी होते हैं और अयोगी भी होते हैं। उपयोग-द्वार के अन्तर्गत पुलाक आदि पाँचों निर्ग्रन्थ तथा सूक्ष्म संपराय संयत को छोड़ कर चारों संयत साकारोपयुक्त भी होते हैं और अनाकारोपयुक्त भी होते हैं। सूक्ष्म संपराय संयत साकारोपयुक्त ही होता है, आनाकारोपयुक्त नहीं होता।

'कषाय-द्वार' के अनुसार निर्ग्रन्थ एवं स्नातक अकषायी होते हैं जबकि शेष तीनों सकषायी होते हैं। इसी प्रकार यथाख्यात संयत अकषायी होता है एवं शेष चारों संयत सकषायी होते हैं।

'लेश्या-द्वार' के अनुसार पुलाक, बकुश एवं प्रतिसेवना कुशीलों में तेजो, पद्म एवं शुक्ल ये तीन लेश्याएँ पायी जाती हैं जबकि कषाय कुशील में छहों लेश्याएं पायी जाती हैं। निर्ग्रन्थ में एक शुक्ल लेश्या रहती है। स्नातक सलेश्य एवं अलेश्य दोनों हो सकते हैं। सलेश्य होने पर परम शुक्ल लेश्या रहती है। सामायिक एवं छेदोपस्थापनीय संयतों में छहों लेश्याएँ रहती हैं, परिहारविशुद्धिक में तेजो, पद्म एवं शुक्ल लेश्या रहती है। सूक्ष्म संपराय में एक शुक्ल लेश्या होती है। यथाख्यात सलेश्य एवं अलेश्य दोनों प्रकार के होते हैं। सलेश्य होने पर शुक्ल लेश्या वाले होते हैं।

'परिणाम-द्वार' में वर्धमान, हायमान एवं अवस्थित परिणामों के आधार पर निरूपण है। 'बंध-द्वार' में कर्मों की मूल प्रकृतियों के बन्ध का विवेचन है। कर्म-वेदन द्वार में उदय में आई हुई कर्म प्रकृतियों के वेदन का निरूपण है। कर्म-उदीरणा-द्वार में आठ कर्म प्रकृतियों में किसके कितनी प्रकृतियों की उदीरणा होती है, इसका उल्लेख है।

'उपसंपत् जहन-द्वार' में यह बताया गया है कि पुलाक आदि निर्ग्रन्थ एवं सामायिक आदि संयत अपने पुलाकत्व या सामायिक संयत्व आदि को छोड़ने पर क्या प्राप्त करते हैं। वे नीचे गिरते हैं या ऊपर चढ़ते हैं, इसमें इसका बोध होता है।

संज्ञा-द्वार, आहार-द्वार एवं भव-द्वार में संज्ञा, आहार एवं भव की चर्चा है। इसके अनुसार पुलाक, निर्ग्रन्थ एंव स्नातक नो संज्ञोपयुक्त होते हैं। बकुश एवं कुशील संज्ञोपयुक्त भी होते हैं और नो संज्ञोपयुक्त भी होते हैं। आहारादि संज्ञाओं में आसक्त संज्ञोपयुक्त एवं उनमें अनासक्त नो संज्ञोपयुक्त माने गए हैं। सामायिक से लेकर परिहारविशुद्धिक संयत संज्ञोपयुक्त भी होते हैं और नो संज्ञोपयुक्त भी होते हैं। सामायिक से लेकर सूक्ष्म संपराय तक के संयत आहारक होते हैं जबकि यथाख्यात संयत आहारक एवं अनाहारक दोनों प्रकार के होते हैं। पुलाक से लेकर निर्ग्रन्थ तक आहारक एवं स्नातक अनाहारक होते हैं। आकर्ष-द्वार में भव-द्वार को ही आगे बढ़ाया गया है तथा इसमें यह विचार किया गया है कि पुलाक आदि अपने एक या अनेक भवों में कितनी बार पुलाक आदि संयम ग्रहण करते हैं। काल-द्वार का दो बार प्रयोग हुआ है, किन्तु प्रयोजन भिन्न है। पहले अवसर्पिणी आदि कालों में पुलाकादि का विवेचन था और इस काल-द्वार में पुलाक आदि की अवस्थिति का वर्णन है। अन्तर-द्वार में यह विचार किया गया है कि एक प्रकार का संयत या निर्ग्रन्थ पुनः उसी प्रकार का संयत या निर्ग्रन्थ बने तो कितने काल का अन्तर या व्यवधान रहता है।

'समुद्घात-द्वार' में प्रत्येक निर्ग्रन्थ एवं संयत में होने वाले समुद्घातों का कथन है। 'क्षेत्र-द्वार' भी दूसरी बार आया है। इसमें लोक के संख्यातवें, असंख्यातवें भाग आदि में पुलाक आदि के होने या न होने का विचार किया गया है। 'स्पर्शना-द्वार' में लोक के संख्यातवें, असंख्यातवें आदि भागों को स्पर्श किए जाने या न किए जाने का विवेचन है।

'भाव-द्वार' के अनुसार पुलाक , बकुश एवं कुशील क्षायोपशमिक भाव में होते हैं। निर्ग्रन्थ औपशमिक या क्षायोपशमिक भाव में होते हैं स्नातक क्षायिकभाव में होते हैं। सामायिक आदि चार प्रकार के संयत क्षायोपशमिक भाव में होते हैं जबकि यथाख्यात संयत औपशमिक या क्षायिकभाव में होते हैं।

'परिमाण-द्वार' में यह निरूपण किया गया है कि एक समय में अमुक निर्ग्रन्थ या अमुक संयत कितने होते हैं।

छत्तीसवाँ द्वार अल्प-बहुत्व से सम्बद्ध है। इसके अनुसार पांच निर्ग्रन्थों में सबसे अल्प निर्ग्रन्थ हैं। उनसे पुलाक, स्नातक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील एवं कषायकुशील क्रमशः संख्यातगुणा-असंख्यातगुणा हैं। पाँच प्रकार के संयतों में सबसे अल्प सूक्ष्म संपराय संयत हैं। उनसे परिहारविशुद्धि, यथाख्यात, छेदोपस्थापनीय एवं सामायिक संयत क्रमशः संख्यात गुणा हैं।

संयतों को प्रमत्त एवं अप्रमत्त भेदों में भी बांटा गया है। एक प्रमत्तसंयमी जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि तक रहता है। अप्रमत्तसंयमी जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि तक रहता है। अनेक जीवों की अपेक्षा से दोनों सर्वकाल में रहते हैं।

देवगति में सम्यग्दर्शन प्राप्त करके भी कोई देव संयत नहीं हो सकता, उन्हें असंयत एवं संयतासंयत भी नहीं कहा जा सकता, इसलिए व्याख्या-प्रज्ञप्ति सूत्र में उन्हें 'नोसंयत' कहा गया है।

अल्पबहुत्व की दृष्टि से संयत जीव सबसे कम हैं। उनसे संयतासंयत असंख्यातगुणे हैं तथा उनसे असंयत अनन्तगुणे हैं।

२५. संजयज्झयणं

सूत्र

१. जीव-चउवीसदंडएसु सिद्धेसु य संजयाई परूवणं–

प. जीवा णं भंते ! किं संजया, असंजया, संजयासंजया, नोसंजय-नोअसंजय-नोसंजयासंजया ?

उ. गोयमा ! जीवा णं संजया वि, असंजया वि, संजयासंजया वि, नोसंजय-नोअसंजय-नोसंजयासंजया वि।

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं संजया जाव नोसंजय-नो असंजय-नोसंजयासंजया ?

उ. गोयमा ! नेरइया नो संजया, असंजया, नो संजयासंजया, नो नोसंजय नो असंजय, नोसंजयासंजया।

दं. २-१९. एवं जाव चउरिंदिया,

प. दं. २०. पंचेंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! किं संजया जाव नोसंजय-नोअसंजय, नोसंजयासंजया ?

उ. गोयमा ! पंचेंदियतिरिक्खजोणिया नो संजया, असंजया वि, संजयासंजया वि, नो नोसंजय, नोअसंजय, नोसंजयासंजया।

प. दं. २१. मणुस्सा णं भंते ! किं संजया जाव नोसंजय नोअसंजय, नोसंजयासंजया ?

उ. गोयमा ! मणुस्सा संजया वि, असंजया वि, संजयासंजया वि, नो नोसंजय-नोअसंजय, नोसंजयासंजया,

दं. २२-२४. वाणमंतरजोइसियवेमाणिया जहा नेरइया।

प. सिद्धा णं भंते ! किं संजया जाव नोसंजय-नो असंजय-नोसंजयासंजया ?

उ. गोयमा ! सिद्धा नो संजया, नो असंजया, नो संजयासंजया, नोसंजय-नोअसंजय-नोसंजयासंजया,

संजय असंजयमीसगा य, जीवा तहेव मणुया य।
संजयरहिया तिरिया, सेसा असंजया होंति॥

–पण्ण. प. ३२, सु. १९७४-८०

२. संजयाईणं कायट्ठिई परूवणं–

प. संजए णं भंते ! संजए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं,
उक्कोसेणं देसूणं पुव्वकोडि।

प. असंजए णं भंते ! असंजए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! असंजए तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. अणाईए वा अपज्जवसिए,

२५. संयत–अध्ययन

सूत्र

१. जीव-चौवीसदंडकों और सिद्धों में संयतादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जीव क्या संयत होते हैं, असंयत होते हैं, संयतासंयत होते हैं, अथवा नोसंयत-नो असंयत, नोसंयतासंयत होते हैं ?

उ. गौतम ! जीव संयत भी होते हैं, असंयत भी होते हैं, संयतासंयत भी होते हैं और नोसंयत-नोअसंयत, नोसंयतासंयत भी होते हैं।

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिक क्या संयत होते हैं यावत् नोसंयत नोअसंयत, नोसंयतासंयत होते हैं ?

उ. गौतम ! नैरयिक संयत नहीं होते हैं, न संयतासंयत होते हैं और न नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत होते हैं, किन्तु असंयत होते हैं।

दं. २-१९. इसी प्रकार असुरकुमारादि से चतुरिन्द्रियों पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. २०. भंते ! पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक क्या संयत होते हैं यावत् नोसंयत-नोअसंयत, नोसंयतासंयत होते हैं ?

उ. गौतम ! पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक न तो संयत होते हैं और न ही नोसंयत-नोअसंयत, नोसंयतासंयत होते हैं, किन्तु वे असंयत भी होते हैं और संयतासंयत भी होते हैं।

प्र. दं. २१. भंते ! मनुष्य संयत होते हैं यावत् नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत होते हैं ?

उ. गौतम ! मनुष्य संयत भी होते हैं, असंयत भी होते हैं, संयतासंयत भी होते हैं, किन्तु नोसंयत नोअसंयत, नोसंयतासंयत नहीं होते हैं।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों का कथन नैरयिकों के समान जानना चाहिए।

प्र. भंते ! सिद्ध क्या संयत होते हैं यावत् नोसंयत-नो असंयत-नो संयतासंयत होते हैं ?

उ. गौतम ! सिद्ध न तो संयत होते हैं, न असंयत होते हैं और न ही संयतासंयत होते हैं, किन्तु नोसंयत-नोअसंयत, नोसंयतासंयत होते हैं।

जीव और मनुष्य संयत, असंयत और संयतासंयत तीनों प्रकार के होते है। तिर्यञ्च संयत नहीं होते तथा शेष सभी असंयत होते हैं।

२. संयत आदि की कायस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! संयत संयतरूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! (वह) जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि तक संयतरूप में रहता है।

प्र. भंते ! असंयत असंयतरूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! असंयत तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. अनादि अपर्यवसित,

२. अणाईए वा सपवज्जवसिए,[1]

३. साईए वा सपज्जवसिए।

तत्थ णं जे से असंजए साईए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं–

अणंताओ उस्सप्पिणिओसप्पिणीओ कालओ।

खेत्तओ अवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं।

संजयासंजए जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं देसूणं पुव्वकोडिं।

प. णोसंजए-णोअसंजए, णोसंजयासंजए णं भंते ! णोसंजए-णोअसंजए, णोसंजयासंजए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! साईए अपज्जवसिए।[2]

–पण्ण. प. १८, सु. १३५८-६१

२. अनादि-सपर्यवसित,

३. सादि-सपर्यवसित।

उनमें से जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल तक, (अर्थात्) काल की अपेक्षा से–अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियों तक,

क्षेत्र की अपेक्षा से–देशोन अपार्द्ध पुद्गलपरावर्तन तक वह असंयतपर्याय में रहता है

संयतासंयत-जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि तक संयतासंयतरूप में रहता है।

प्र. भंते ! नोसंयत-नोअसंयत, नोसंयतासंयत कितने काल तक नोसंयत-नोअसंयत, नोसंयतासंयतरूप में बना रहता है?

उ. गौतम ! वह सादि-अपर्यवसित है।

३. संजयाईणं अंतरकाल परूवणं–

१. संजयस्स संजयासंजयस्स दोण्हवि अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अवड्ढ पोग्गलपरियट्टं देसूणं,

२. असंजयस्स आइदुवे नत्थि अंतरं,

साइयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं देसूणं पुव्वकोडीओ,

३. नोसंजय-नोअसंजय-नोसंजयासंजयस्स नत्थि अंतरं।

–जीवा. पडि. ९, सु. २४७

३. संयत आदि के अंतर काल का प्ररूपण–

१. संयत और संयतासंयत दोनों का अन्तर–जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन अपार्धपुद्गल परावर्तन है।

२. असंयत के आदि के दो भंगों का अन्तर नहीं है।

सादि सपर्यवसित का अंतर–जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि है।

३. नोसंयत-नोअसंयत, नोसंयतासंयत का अन्तर नहीं है।

४. संजयाईणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं संजयाणं, असंजयाणं, संजयासंजयाणं, नोसंजय-नोअसंजय, नोसंजयासंजयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा संजया,

२. संजयासंजया असंखेज्जगुणा,

३. नोसंजय-नोअसंजय, नोसंजयासंजया अणंतगुणा,

४. असंजया अणंतगुणा।[3] –पण्ण. प. ३, सु. २६१

४. संयत आदि का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन संयतों, असंयतों, संयतासंयतों और नोसंयत-नोअसंयत, नोसंयतासंयत जीवों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प संयत जीव हैं,

२. (उनसे) संयतासंयत असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) नोसंयत-नोअसंयत, नोसंयतासंयत जीव अनन्तगुणे हैं।

४. (उनसे) भी असंयत जीव अनन्तगुणे हैं।

५. नियंठाणं संजयाण य पन्नवग दार णामाणि–

१. पण्णवण २. वेद ३. रागे ४. कप्प ५. चरित्त ६. पडिसेवणा ७. णाणे।

५. निर्ग्रन्थों और संयतों के प्ररूपक द्वार नाम–

१. प्रज्ञापन, २. वेद, ३. राग, ४. कल्प, ५. चारित्र, ६. प्रतिसेवना, ७. ज्ञान,

२७. भव २८. आगरिसे २९-३०. कालंतरे य ३१. समुग्घाय
३२. खेत्त ३३. फुसणा य।
३४. भावे ३५. परिणामो खलु ३६. अप्पाबहुयं
नियंठाणं ॥३॥

२७. भव, २८. आकर्ष, २९. काल, ३०. अन्तर, ३१. समुद्घात,
३२. क्षेत्र, ३३. स्पर्शना।
३४. भाव, ३५. परिमाण, ३६. अल्पबहुत्व।
निर्ग्रन्थ एवं संयत का इन द्वारों से वर्णन किया गया है।

६. छत्तीसएहिं दारेहिं णियंठस्स परूवणं–

१. पण्णवण-दारं–

प. कइ णं भंते ! नियंठा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा नियंठा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पुलाए, २. वउसे,
३. कुसीले, ४. नियंठे,
५. सिणाए।[1]

प. पुलाए[2] णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. नाणपुलाए, २. दंसणपुलाए,
३. चरित्तपुलाए, ४. लिंगपुलाए,
५. अहासुहुमपुलाए नामं पंचमे।[3]

प. २. वउसे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. आभोगवउसे, २. अणाभोगवउसे,
३. संवुडवउसे, ४. असंवुडवउसे,
५. अहासुहुमवउसे[4] नामं पंचमे।

६. छत्तीस द्वारों से निर्ग्रन्थ का प्ररूपण–

१. प्रज्ञापना–द्वार–

प्र. भंते ! निर्ग्रन्थ कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! निर्ग्रन्थ पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पुलाक, २. बकुश,
३. कुशील, ४. निर्ग्रन्थ,
५. स्नातक।

प्र. भंते ! पुलाक कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. ज्ञान पुलाक, २. दर्शन पुलाक,
३. चारित्र पुलाक, ४. लिंग पुलाक,
५. यथासूक्ष्म पुलाक।

प्र. २. भंते ! बकुश कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! पांच प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. आभोग-बकुश, २. अनाभोग-बकुश,
३. संवृत-बकुश, ४. असंवृत-बकुश,
५. यथासूक्ष्म-बकुश।

---

१. ठाणं अ. ५, उ. ३, सु. ४४५

२. कषाय कुशील निर्ग्रन्थ जब पुलाक लब्धि का प्रयोग करता है तब पुलाक निर्ग्रन्थ कहा जाता है। उस समय उसके संज्वलन कषाय का तीव्र उदय होता है अतः उसके संयम पर्यव अधिक नष्ट होने पर उसका संयम असार हो जाता है।
इस लब्धि को पुलाक लब्धि और इस लब्धि के प्रयोक्ता को पुलाक निर्ग्रन्थ कहा गया है।
इस लब्धि का प्रयोग करते समय तीन शुभ लेश्याओं के परिणाम ही रहते हैं इसलिए कषाय की तीव्रता होने पर भी वह निर्ग्रन्थ तो रहता ही है। लब्धि प्रयोग का काल अन्तर्मुहूर्त से अधिक नहीं है।
इस लब्धि प्रयोग के मूल कारण पांच है–(१) ज्ञान, (२) दर्शन, (३) चारित्र, (४) लिंग एवं (५) साधु-साध्वी आदि की रक्षा।
टीकाकार ने लब्धि पुलाक और आसेवना-पुलाक ये दो भेद भी किए हैं।
किन्तु मूल वर्णित छत्तीस द्वारों के विषयों से आसेवना पुलाक भेद की संगति किसी भी प्रकार से संभव नहीं है। अतः लब्धि प्रयोग की अपेक्षा से ही पुलाक के पांचों भेद समझना सुसंगत है।

३. ठाणं अ. ५, उ. ३, सु. ४४५

४. जिस श्रमण की प्रवृत्ति आत्म-शुद्धि की अपेक्षा शरीर की विभूषा एवं उपकरणों की सजावट की ओर अधिक हो जाती है तो उसकी प्रवृत्ति मान, [illegible] प्रशंसा की बढ़ जाती है और स्वाध्याय, ध्यान, तप आदि में परिश्रम करने की प्रवृत्तियां कम हो जाती है, वह बकुश [illegible]
[illegible]
१. [illegible]
२. [illegible]
३. [illegible]
४. [illegible]
५. [illegible]
[illegible]

प. ३. कुसीले णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. पडिसेवणाकुसीले य, २. कसायकुसीले य।

प. ३. (क) पडिसेवणाकुसीले[1] णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. नाण-पडिसेवणाकुसीले,
२. दंसणपडिसेवणाकुसीले
३. चरित्तपडिसेवणाकुसीले
४. लिंग-पडिसेवणाकुसीले,
५. अहासुहुमपडिसेवणाकुसीले नामं पंचमे।[2]

प. ३. (ख) कसायकुसीले[3] णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. नाण-कसायकुसीले, २. दंसण-कसायकुसीले,
३. चरित्त-कसायकुसीले, ४. लिंग-कसायकुसीले,
५. अहासुहुम-कसायकुसीले नामं पंचमे।

प. ४. णियंठे[4] णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. पढमसमय-नियंठे,
२. अपढमसमय-नियंठे,
३. चरिमसमय-नियंठे,
४. अचरिमसमय-नियंठे,
५. अहासुहुम-नियंठे नामं पंचमे।[5]

प. ५. सिणाए णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. अच्छवी, २. असबले, ३. अकम्मंसे, ४. संसुद्ध-नाण-दंसणधरे, अरहा, जिणे केवली, ५. अपरिस्सावी।[6]

२. वेद-दारं–

प. १. पुलाए णं भंते ! किं सवेयए होज्जा, अवेयए होज्जा ?

प्र. ३. भंते ! कुशील कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. प्रतिसेवना-कुशील, २. कषाय-कुशील।

प्र. ३. (क) भंते ! प्रतिसेवनाकुशील कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. ज्ञान-प्रतिसेवनाकुशील,
२. दर्शन-प्रतिसेवनाकुशील
३. चारित्र-प्रतिसेवनाकुशील,
४. लिंग-प्रतिसेवनाकुशील,
५. यथासूक्ष्म-प्रतिसेवनाकुशील।

प्र. ३. (ख) भंते ! कषायकुशील कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. ज्ञान-कषायकुशील, २. दर्शन-कषायकुशील,
३. चरित्र-कषायकुशील, ४. लिंग-कषायकुशील,
५. यथासूक्ष्म-कषायकुशील।

प्र. ४. भंते ! निर्ग्रन्थ कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. प्रथम समय निर्ग्रन्थ,
२. अप्रथम समय निर्ग्रन्थ,
३. चरम समय निर्ग्रन्थ,
४. अचरम समय निर्ग्रन्थ,
५. यथासूक्ष्म निर्ग्रन्थ।

प्र. भंते ! स्नातक कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! पांच प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. अच्छवी–शरीर की आसक्ति से पूर्ण मुक्त, २. असबल–सर्वथा दोष रहित चारित्र वाले, ३. अकर्मांश–घाती कर्म रहित, ४. विशुद्ध ज्ञान दर्शनधर–अर्हन्त जिन केवली, ५. अपरिस्रावी–सूक्ष्म [illegible] से [illegible] सम्पूर्ण कर्म बंधों से मुक्त।

२. वेद-द्वार–

प्र. १. भंते ! पुलाक क्या सवेदक होता है या अवेदक होता है ?

उ. गोयमा ! सवेयए होज्जा, नो अवेयए होज्जा।

प. जइ सवेयए होज्जा, किं इत्थिवेयए होज्जा, पुरिसवेयए होज्जा, पुरिस-नपुंसगवेयए होज्जा?

उ. गोयमा ! नो इत्थिवेयए होज्जा, पुरिसवेयए होज्जा, पुरिस-नपुसंगवेयए वा होज्जा।

प. २. बउसे णं भंते ! किं सवेयए होज्जा, अवेयए होज्जा?

उ. गोयमा ! सवेयए होज्जा, नो अवेयए होज्जा।

प. जइ सवेयए होज्जा, किं इत्थिवेयए होज्जा, पुरिसवेयए होज्जा, पुरिसनपुंसगवेयए होज्जा?

उ. गोयमा ! इत्थिवेयए वा होज्जा, पुरिसवेयए वा होज्जा, पुरिसनपुंसगवेयए वा होज्जा।

३ (क) एवं पडिसेवणाकुसीले वि।

प. ३ (ख) कसायकुसीले णं भंते ! किं सवेयए होज्जा, अवेयए होज्जा?

उ. गोयमा ! सवेयए वा होज्जा, अवेयए वा होज्जा।

प. जइ अवेयए होज्जा किं उवसंतवेयए होज्जा, खीणवेयए होज्जा?

उ. गोयमा ! उवसंतवेयए वा होज्जा, खीणवेयए वा होज्जा।

प. जइ सवेयए होज्जा, किं इत्थिवेयए होज्जा, पुरिसवेयए होज्जा, पुरिसनपुंसगवेयए होज्जा?

उ. गोयमा ! **तिसु वि होज्जा, जहा बउसो।**

प. ४. नियंठे णं भंते ! किं सवेयए होज्जा, अवेयए होज्जा?

उ. गोयमा ! नो सवेयए होज्जा, अवेयए होज्जा।

प. जइ अवेयए होज्जा, किं उवसंतवेयए होज्जा, खीणवेयए होज्जा?

उ. गोयमा ! उवसंतवेयए वा होज्जा, खीणवेयए वा होज्जा।

प. ५. सिणाए णं भंते ! किं सवेयए होज्जा, अवेयए होज्जा?

उ. गोयमा ! **जहा णियंठे तहा सिणाए वि।**

णवरं–नो उवसंतवेयए होज्जा, खीणवेयए होज्जा।

३. राग–दारं–

प. १. पुलाए णं भंते ! किं सरागे होज्जा, वीयरागे होज्जा?

उ. गोयमा ! सरागे होज्जा, नो वीयरागे होज्जा,

२-३ एवं जाव कसायकुसीले।

प. ४. नियंठे णं भंते ! किं सरागे होज्जा, वीयरागे होज्जा?

उ. गोयमा ! नो सरागे होज्जा, वीयरागे होज्जा।

प. जइ वीयरागे होज्जा, किं उवसंतकसाय-वीयरागे होज्जा, खीणकसाय-वीयरागे होज्जा?

उ. गौतम ! सवेदक होता है, अवेदक नहीं होता है।

प्र. यदि सवेदक होता है तो क्या स्त्री-वेदक होता है, पुरुष-वेदक होता है या पुरुषनपुंसक-वेदक होता है?

उ. गौतम ! स्त्री-वेदक नहीं होता है, पुरुष-वेदक होता है या पुरुषनपुंसक-वेदक होता है।

प्र. २. भंते ! बकुश क्या सवेदक होता है या अवेदक होता है?

उ. गौतम ! सवेदक होता है, अवेदक नहीं होता है।

प्र. यदि सवेदक होता है तो क्या स्त्री-वेदक होता है, पुरुष-वेदक होता है या पुरुषनपुंसक-वेदक होता है?

उ. गौतम ! स्त्री-वेदक भी होता है, पुरुष-वेदक भी होता है और पुरुषनपुंसक-वेदक भी होता है।

३ (क) प्रतिसेवनाकुशील के लिए भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

प्र. भंते ! कषायकुशील क्या सवेदक होता है या अवेदक होता है?

उ. गौतम ! सवेदक भी होता है और अवेदक भी होता है।

प्र. यदि अवेदक होता है तो क्या उपशान्तवेदक होता है या क्षीणवेदक होता है?

उ. गौतम ! उपशान्तवेदक भी होता है और क्षीणवेदक भी होता है।

प्र. यदि सवेदक होता है तो क्या स्त्री-वेदक होता है, पुरुष-वेदक होता है या पुरुषनपुंसक-वेदक होता है?

उ. गौतम ! **बकुश के समान तीनों वेद वाले होते हैं।**

प्र. ४. भंते ! निर्ग्रन्थ क्या सवेदक होता है या अवेदक होता है?

उ. गौतम ! सवेदक नहीं होता है, अवेदक होता है।

प्र. यदि अवेदक होता है तो क्या उपशान्त-वेदक होता है या क्षीण-बेदक होता है?

उ. गौतम ! उपशान्त-वेदक भी होता है और क्षीण-वेदक भी होता है।

प्र. ५. भंते ! स्नातक क्या सवेदक होता है या अवेदक होता है?

उ. गौतम ! **निर्ग्रन्थ के समान ही स्नातक का कथन करना चाहिए।**

विशेष–स्नातक उपशान्त वेदक नहीं होता है, किन्तु क्षीण वेदक होता है।

३. राग–द्वार–

प्र. १. भंते ! पुलाक क्या सराग होता है या वीतराग होता है?

उ. गौतम ! वह सराग होता है, वीतराग नहीं होता है।

२-३ इसी प्रकार कषायकुशील पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! निर्ग्रन्थ क्या सराग होता है या वीतराग होता है?

उ. गौतम ! सराग नहीं होता है, वीतराग होता है।

प्र. यदि वीतराग होता है तो क्या उपशान्त कषाय वीतराग होता है या क्षीणकषाय वीतराग होता है?

उ. गोयमा ! उवसंतकसाय-वीयरागे वा होज्जा, खीणकसाय-वीयरागे वा होज्जा।

प. ५. सिणाए णं भंते ! किं सरागे होज्जा, वीयरागे होज्जा?

उ. गोयमा ! जहा णियंठे तहा सिणाए वि।
णवरं–नो उवसंतकसाय-वीयरागे होज्जा, खीणकसाय-वीयरागे होज्जा।

४. कप्प–दारं–

प. १. पुलाए णं भंते ! किं ठियकप्पे होज्जा, अठियकप्पे होज्जा?

उ. गोयमा ! ठियकप्पे वा होज्जा, अठियकप्पे वा होज्जा,

(२-५) एवं जाव सिणाए।

प. १. पुलाए णं भंते ! किं जिणकप्पे होज्जा, थेरकप्पे होज्जा, कप्पातीते होज्जा?

उ. गोयमा ! नो जिणकप्पे होज्जा, नो कप्पातीते होज्जा, थेरकप्पे होज्जा।

प. २. बउसे णं भंते ! किं जिणकप्पे होज्जा, थेरकप्पे होज्जा, कप्पातीते होज्जा?

उ. गोयमा ! जिणकप्पे वा होज्जा, थेरकप्पे वा होज्जा, नो कप्पातीते होज्जा।
(३ क) एवं पडिसेवणाकुसीले वि।

प. (३ख) कसायकुसीले णं भंते ! किं जिणकप्पे होज्जा, थेरकप्पे होज्जा, कप्पातीते होज्जा?

उ. गोयमा ! जिणकप्पे वा होज्जा, थेरकप्पे वा होज्जा, कप्पातीते वा होज्जा,

प. ४. नियंठे णं भंते ! किं जिणकप्पे होज्जा, थेरकप्पे होज्जा, कप्पातीते होज्जा?

उ. गोयमा ! नो जिणकप्पे होज्जा, नो थेरकप्पे होज्जा, कप्पातीते होज्जा,
५. एवं सिणाए वि।

५. चरित्त–दारं–

प. पुलाए णं भंते ! किं–१. सामाइयसंजमे होज्जा,
२. छेदोवट्ठावणियसंजमे होज्जा,
३. परिहारविसुद्धियसंजमे होज्जा, ४. सुहुमसंपरायसंजमे होज्जा, ५. अहक्खायसंजमे होज्जा?

उ. गोयमा ! १. सामाइयसंजमे वा होज्जा,
२. छेदोवट्ठावणियसंजमे वा होज्जा,
३. नो परिहारविसुद्धियसंजमे होज्जा,
४. नो सुहुमसंपरायसंजमे होज्जा, ५. नो अहक्खायसंजमे होज्जा।
बउसे, पडिसेवणा-कुसीले वि एवं चेव।

प. कसाय-कुसीले णं भंते ! किं सामाइयसंजमे होज्जा जाव अहक्खायसंजमे होज्जा?

उ. गोयमा ! सामाइयसंजमे वा होज्जा जाव सुहुमसंपराय संजमे वा होज्जा, नो अहक्खायसंजमे होज्जा।

उ. गौतम ! उपशान्त कषाय वीतराग भी होता है, क्षीण कषाय वीतराग भी होता है।

प्र. ५. भंते ! स्नातक क्या सराग होता है या वीतराग होता है?

उ. गौतम ! निर्ग्रन्थ के समान ही स्नातक का कथन करना चाहिए।
विशेष–स्नातक उपशान्तकषाय वीतराग नहीं होता है, किन्तु क्षीणकषाय-वीतराग होता है।

४. कल्प-द्वार–

प्र. १. भंते ! पुलाक क्या स्थितकल्पी होता है या अस्थितकल्पी होता है?

उ. गौतम ! स्थितकल्पी भी होता है और अस्थितकल्पी भी होता है।
इसी प्रकार स्नातक पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. १. भंते ! पुलाक क्या जिनकल्पी होता है, स्थविरकल्पी होता है या कल्पातीत होता है?

उ. गौतम ! जिनकल्पी नहीं होता है, कल्पातीत भी नहीं होता है किन्तु स्थविरकल्पी होता है।

प्र. २. भंते ! वकुश क्या जिनकल्पी होता है, स्थविरकल्पी होता है या कल्पातीत होता है?

उ. गौतम ! जिनकल्पी भी होता है, स्थविरकल्पी भी होता है किन्तु कल्पातीत नहीं होता है।
(३क) प्रतिसेवनाकुशील का कथन भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

प्र. (३ख) भंते ! कषायकुशील क्या जिनकल्पी होता है, स्थविरकल्पी होता है या कल्पातीत होता है?

उ. गौतम ! जिनकल्पी भी होता है, स्थविरकल्पी भी होता है और कल्पातीत भी होता है।

प्र. ४. भंते ! निर्ग्रन्थ क्या जिनकल्पी होता है, स्थविरकल्पी होता है या कल्पातीत होता है?

उ. गौतम ! न जिनकल्पी होता है, न स्थविरकल्पी होता है, किन्तु कल्पातीत होता है।
५. स्नातक का कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए।

५. चारित्र-द्वार–

प्र. भंते ! पुलाक क्या–१. सामायिक संयमवाला होता है, २. छेदोपस्थापनीय संयमवाला होता है, ३. परिहार-विशुद्धक संयमवाला होता है, ४. सूक्ष्म-सम्पराय संयमवाला होता है, ५. यथाख्यात संयमवाला होता है?

उ. गौतम ! १. सामायिक संयमवाला होता है,
२. छेदोपस्थापनीय संयमवाला होता है,
३. परिहार विशुद्धक संयमवाला नहीं होता है,
४. सूक्ष्म-सम्पराय संयमवाला नहीं होता है, ५. यथाख्यात संयमवाला नहीं होता है।
वकुश और प्रतिसेवनाकुशील का कथन भी इसी प्रकार है।

प्र. भंते ! कषायकुशील क्या सामायिक संयम वाला है यावत् यथाख्यात संयमवाला है?

उ. गौतम ! सामायिक संयमवाला भी होता है यावत् सूक्ष्म सम्पराय संयमवाला भी होता है। यथाख्यात संयमवाला नहीं होता है।

प. नियंठे णं भंते ! किं सामाइयसंजमे होज्जा जाव अहक्खायसंजमे होज्जा?

उ. गोयमा ! नो सामाइयसंजमे होज्जा जाव नो सुहुम संपरायसंजमे होज्जा, अहक्खायसंजमे होज्जा।

एवं सिणाए वि।

६. पडिसेवणा-दारं-

प. पुलाए णं भंते ! किं पडिसेवए होज्जा, अपडिसेवए होज्जा?

उ. गोयमा ! पडिसेवए होज्जा, नो अपडिसेवए होज्जा।

प. जइ पडिसेवए होज्जा, किं मूलगुणपडिसेवए होज्जा, उत्तरगुणपडिसेवए होज्जा?

उ. गोयमा ! मूलगुणपडिसेवए वा होज्जा, उत्तरगुणपडिसेवए वा होज्जा।

मूलगुण-पडिसेवमाणे-पंचण्हं आसवाणं अण्णयरं पडिसेवेज्जा,

उत्तरगुण-पडिसेवमाणे-दसविहस्स पच्चक्खाणस्स अण्णयरं पडिसेवेज्जा।

प. बउसे णं भंते ! किं पडिसेवए होज्जा, अपडिसेवए होज्जा?

उ. गोयमा ! पडिसेवए होज्जा, नो अपडिसेवए होज्जा।

प. जइ पडिसेवए होज्जा, किं मूलगुण-पडिसेवए होज्जा, उत्तरगुण-पडिसेवए होज्जा?

उ. गोयमा ! नो मूलगुण-पडिसेवए होज्जा, उत्तरगुण-पडिसेवए होज्जा,

उत्तरगुण-पडिसेवमाणे-दसविहस्स पच्चक्खाणस्स अण्णयरं पडिसेवेज्जा।

पडिसेवणाकुसीले जहा पुलाए।

प. कसायकुसीले णं भंते ! पडिसेवए होज्जा, अपडिसेवए होज्जा?

उ. गोयमा ! नो पडिसेवए होज्जा, अपडिसेवए होज्जा,

एवं नियंठे वि।

सिणाए वि एवं चेव।

७. णाण-दारं-

प. पुलाए णं भंते ! कइसु णाणेसु होज्जा?

उ. गोयमा ! दोसु वा, तिसु वा होज्जा,

दोसु होज्जमाणे-दोसु १. आभिणिबोहियणाण, २. सुयणाणेसु होज्जा,

तिसु होज्जमाणे तिसु १. आभिणिबोहियणाण, २. सुयणाण, ३. ओहिणाणेसु होज्जा।

बउसे पडिसेवणाकुसीले वि एवं चेव।

प. कसायकुसीले णं भंते ! कइसु णाणेसु होज्जा?

उ. गोयमा ! दोसु वा, तिसु वा, चउसु वा होज्जा,

प्र. भन्ते ! निर्ग्रन्थ क्या सामायिक संयमवाला होता है यावत् यथाख्यात संयमवाला होता है?

उ. गौतम ! सामायिक संयमवाला भी नहीं होता है यावत् सूक्ष्म सम्पराय संयमवाला भी नहीं होता है। यथाख्यात संयमवाला होता है।

स्नातक का कथन भी इसी प्रकार है।

६. प्रतिसेवना द्वार-

प्र. भन्ते ! पुलाक क्या प्रतिसेवक होता है या अप्रतिसेवक होता है?

उ. गौतम ! प्रतिसेवक होता है, अप्रतिसेवक नहीं होता है।

प्र. यदि प्रतिसेवक होता है तो क्या मूलगुण प्रतिसेवक होता है या उत्तरगुण प्रतिसेवक होता है?

उ. गौतम ! मूलगुण प्रतिसेवक भी होता है और उत्तरगुण प्रतिसेवक भी होता है।

मूलगुण में प्रतिसेवना (दोष-सेवन) करता हुआ पांच आस्रवों में से किसी एक आस्रव का सेवन करता है।

उत्तरगुणों में प्रतिसेवना (दोष सेवन) करता हुआ दस प्रकार के प्रत्याख्यानों में से किसी एक प्रत्याख्यान में दोष लगाता है।

प्र. भन्ते ! वकुश क्या प्रतिसेवक होता है या अप्रतिसेवक होता है?

उ. गौतम ! प्रतिसेवक होता है, अप्रतिसेवक नहीं होता है।

प्र. यदि प्रतिसेवक होता है तो क्या मूलगुण प्रतिसेवक होता है या उत्तरगुण प्रतिसेवक होता है?

उ. गौतम ! मूलगुण प्रतिसेवक नहीं होता है, उत्तरगुण प्रतिसेवक होता है।

उत्तरगुणों में प्रतिसेवना (दोषों का सेवन) करता हुआ दस प्रत्याख्यानों में से किसी एक प्रत्याख्यान में दोष लगाता है।

प्रतिसेवनाकुशील का कथन पुलाक के समान जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! कषायकुशील क्या प्रतिसेवक होता है या अप्रतिसेवक होता है?

उ. गौतम ! प्रतिसेवक नहीं होता है, अप्रतिसेवक होता है।

इसी प्रकार निर्ग्रन्थ का कथन जानना चाहिए।

स्नातक का कथन भी इसी प्रकार है।

७. ज्ञान-द्वार-

प्र. भन्ते ! पुलाक को कितने ज्ञान होते हैं?

उ. गौतम ! दो या तीन ज्ञान होते हैं।

दो हो तो-१. आभिनिबोधिक-ज्ञान और २. श्रुत-ज्ञान होता है।

तीन हो तो-१. आभिनिबोधिक-ज्ञान, २. श्रुत-ज्ञान और ३. अवधि ज्ञान होता है।

वकुश और प्रतिसेवनाकुशील का कथन भी इसी प्रकार है।

प्र. भन्ते ! कषायकुशील के कितने ज्ञान होते हैं?

उ. गौतम ! दो, तीन या चार होते हैं।

दोसु होज्जमाणे–दोसु १. आभिणिवोहियणाणेसु
२. सुयणाणेसु होज्जा,
तिसु होज्जमाणे–तिसु १. आभिणिवोहियणाण
२. सुयणाण ३. ओहिणाणेसु होज्जा,
अहवा–तिसु १. आभिणिवोहियणाण २. सुयणाण
३. मणपज्जवणाणेसु होज्जा,
चउसु होज्जमाणे-चउसु १. आभिणिवोहियणाण
२. सुयणाण ३. ओहिणाण ४. मणपज्जवणाणेसु होज्जा,
एवं नियंठे वि।

प. सिणाए णं भंते ! कइसु णाणेसु होज्जा?
उ. गोयमा ! एगम्मि केवलणाणे होज्जा,
प. पुलाए णं भंते ! केवइयं सुयं अहिज्जेज्जा?
उ. गोयमा ! जहन्नेणं नवमस्स पुव्वस्स तइयं आयारवत्थुं;
उक्कोसेणं नवपुव्वाइंअहिज्जेज्जा,
प. वउसे णं भंते ! केवइयं सुयं अहिज्जेज्जा?
उ. गोयमा ! जहन्नेणं अट्ठपवयणमायाओ,
उक्कोसेणं दसपुव्वाइं अहिज्जेज्जा।
एवं पडिसेवणाकुसीले वि।
प. कसायकुसीले णं भंते ! केवइयं सुयं अहिज्जेज्जा?
उ. गोयमा ! जहन्नेणं अट्ठपवयणमायाओ,
उक्कोसेणं चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जेज्जा।
एवं नियंठे वि।
प. सिणाए णं भंते ! केवइयं सुयं अहिज्जेज्जा?
उ. गोयमा ! सुयवइरित्ते होज्जा।

८. तित्थ–दारं–
प. पुलाए णं भंते ! किं तित्थे होज्जा, अतित्थे होज्जा?
उ. गोयमा ! तित्थे होज्जा, नो अतित्थे होज्जा,
बउसे पडिसेवणाकुसीले वि एवं चेव।
प. कसायकुसीले णं भन्ते ! किं तित्थे होज्जा, अतित्थे होज्जा?
उ. गोयमा ! तित्थे वा होज्जा, अतित्थे वा होज्जा,
प. जइ अतित्थे होज्जा, किं तित्थयरे होज्जा, पत्तेयबुद्धे होज्जा?
उ. गोयमा ! तित्थयरे वा होज्जा, पत्तेयबुद्धे वा होज्जा,
नियंठे सिणाए वि एवं चेव।

९. लिंग-दारं–
प. पुलाए णं भंते ! किं सलिंगे होज्जा, अन्नलिंगे होज्जा, गिहिलिंगे होज्जा?
उ. गोयमा ! दव्वलिंगं पडुच्च सलिंगे वा होज्जा, अन्नलिंगे वा होज्जा, गिहिलिंगे वा होज्जा,
भावलिंगं पडुच्च नियमं सलिंगे होज्जा,
एवं जाव सिणाए।

दो हों तो–१. आभिनिवोधिक-ज्ञान और
२. श्रुत-ज्ञान होता है।
तीन हों तो–१. आभिनिवोधिक-ज्ञान, २. श्रुत-ज्ञान और
३. अवधि-ज्ञान होता है।
अथवा १. आभिनिवोधिक-ज्ञान, २. श्रुत-ज्ञान और
३. मनःपर्यव-ज्ञान होता है।
चार हों तो–१. आभिनिवोधिक-ज्ञान, २. श्रुत-ज्ञान,
३. अवधि-ज्ञान, और ४. मनःपर्यव-ज्ञान होता है।
निर्ग्रन्थ का कथन भी इसी प्रकार है।

प्र. भन्ते ! स्नातक को कितने ज्ञान होते हैं?
उ. गौतम ! एक केवल-ज्ञान होता है।
प्र. भन्ते ! पुलाक के कितने श्रुत का अध्ययन होता है?
उ. गौतम ! जघन्य-नवम पूर्व की तीसरी आचार वस्तु पर्यन्त का अध्ययन होता है,
उत्कृष्ट-नौ पूर्व का अध्ययन होता है।
प्र. भंते ! वकुश कितने श्रुत का अध्ययन करता है?
उ. गौतम ! जघन्य–आठ प्रवचन माता का अध्ययन करता है,
उत्कृष्ट–दस पूर्व का अध्ययन करता है।
प्रतिसेवनाकुशील का कथन भी इसी प्रकार है।
प्र. भन्ते ! कषाय कुशील कितने श्रुत का अध्ययन करता है?
उ. गौतम ! जघन्य–आठ प्रवचन माता का अध्ययन करता है,
उत्कृष्ट–चौदह पूर्व का अध्ययन करता है।
निर्ग्रन्थ का कथन भी इसी प्रकार है।
प्र. भन्ते ! स्नातक कितने श्रुत का अध्ययन करता है?
उ. गौतम ! श्रुत व्यतिरिक्त होता है अर्थात् उसके श्रुत ज्ञान नहीं होता है।

८. तीर्थ-द्वार–
प्र. भन्ते ! पुलाक क्या तीर्थ में होता है या अतीर्थ में होता है?
उ. गौतम ! तीर्थ में होता है, अतीर्थ में नहीं होता है।
बकुश और प्रतिसेवनाकुशील का कथन भी इसी प्रकार है।
प्र. भन्ते ! कषाय कुशील क्या तीर्थ में होता है या अतीर्थ में होता है?
उ. गौतम ! तीर्थ में भी होता है और अतीर्थ में भी होता है।
प्र. यदि अतीर्थ में होता है तो क्या तीर्थंकर होता है या प्रत्येकबुद्ध होता है?
उ. गौतम ! तीर्थंकर भी होता है और प्रत्येकंबुद्ध भी होता है।
निर्ग्रन्थ और स्नातक का कथन भी इसी प्रकार है।

९. लिंग-द्वार–
प्र. भन्ते ! पुलाक क्या स्व-लिंग में होता है, अन्य-लिंग में होता है या गृहस्थ-लिंग में होता है?
उ. गौतम ! द्रव्य-लिंग की अपेक्षा स्व-लिंग में भी होता है, अन्य-लिंग में भी होता है और गृही लिंग में भी होता है।
भाव लिंग की अपेक्षा निश्चित रूप से स्वलिंग में ही होता है।
इसी प्रकार स्नातक पर्यन्त जानना चाहिए।

१०. सरीर-दारं–

प. पुलाए णं भंते ! कइसु सरीरेसु होज्जा ?

उ. गोयमा ! तिसु ओरालिय-तेया-कम्मएसु होज्जा,

प. बउसे णं भंते ! कइसु सरीरेसु होज्जा ?

उ. गोयमा ! तिसु वा, चउसु वा होज्जा,

तिसु होज्जमाणे–तिसु ओरालिय-तेया-कम्मएसु होज्जा,

चउसु होज्जमाणे-चउसु ओरालिय-वेउव्विय-तेया-कम्मएसु होज्जा।

एवं पडिसेवणाकुसीले वि।

प. कसायकुसीले णं भंते ! कइसु सरीरेसु होज्जा ?

उ. गोयमा ! तिसु वा, चउसु वा, पंचसु वा होज्जा,

तिसु होज्जमाणे-तिसु ओरालिय-तेया-कम्मएसु होज्जा,

चउसु होज्जमाणे-चउसु ओरालिय-वेउव्विय-तेया-कम्मएसु होज्जा।

पंचसु होज्जमाणे–पंचसु ओरालिय-वेउव्विय - आहारग - तेया - कम्मएसु होज्जा,

नियंठे, सिणाए य जहा पुलाओ।

११. खेत्त-दारं–

प. पुलाए णं भंते ! कम्मभूमिए होज्जा, अकम्मभूमिए होज्जा ?

उ. गोयमा ! जम्मणं-संतिभावं पडुच्च कम्मभूमिए होज्जा, नो अकम्मभूमिए होज्जा।

प. बउसे णं भंते ! किं कम्मभूमिए होज्जा, अकम्मभूमिए होज्जा ?

उ. गोयमा ! जम्मणं-संतिभावं पडुच्च-कम्मभूमिए होज्जा, नो अकम्मभूमिए होज्जा,

साहरणं पडुच्च-कम्मभूमिए वा होज्जा, अकम्मभूमिए वा होज्जा,

एवं जाव सिणाए।

१२. काल-दारं–

प. पुलाए णं भंते ! किं ओसप्पिणिकाले होज्जा, उस्सप्पिणि काले होज्जा, नो ओसप्पिणी नो उस्सप्पिणिकाले होज्जा ?

उ. गोयमा ! ओसप्पिणिकाले वा होज्जा, उस्सप्पिणि काले वा होज्जा, नो ओसप्पिणि नो उस्सप्पिणिकाले वा होज्जा,

प. जइ ओसप्पिणिकाले होज्जा, किं–

१. सुसम-सुसमा काले होज्जा,
२. सुसमा काले होज्जा,
३. सुसम-दुस्समा काले होज्जा,
४. दुस्सम-सुसमा काले होज्जा,

१०. शरीर-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक के कितने शरीर होते हैं ?

उ. गौतम ! औदारिक, तैजस् और कार्मण ये तीन शरीर होते हैं।

प्र. भन्ते ! वकुश के कितने शरीर होते हैं ?

उ. गौतम ! वकुश के तीन या चार शरीर होते हैं।

तीन हों तो–१. औदारिक, २. तैजस्, ३. कार्मण होते हैं।

चार हों तो–१. औदारिक, २. वैक्रिय, ३. तैजस् और ४. कार्मण होते हैं।

प्रतिसेवनाकुशील का कथन भी इसी प्रकार है।

प्र. भन्ते ! कषायकुशील के कितने शरीर होते हैं ?

उ. गौतम ! तीन, चार या पांच शरीर होते हैं।

तीन हों तो–१. औदारिक, २. तैजस् और ३. कार्मण

चार हों तो–१. औदारिक, २. वैक्रिय, ३. तैजस् और ४. कार्मण।

पांच हों तो–१. औदारिक, २. वैक्रिय, ३. आहारक, ४. तैजस् और ५. कार्मण।

निर्ग्रन्थ और स्नातक का कथन पुलाक के समान है।

११. क्षेत्र-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक क्या कर्मभूमि में होता है या अकर्मभूमि में होता है ?

उ. गौतम ! जन्म और सद्भाव की अपेक्षा कर्मभूमि में ही होता है, अकर्मभूमि में नहीं होता है।

प्र. भन्ते ! वकुश क्या कर्मभूमि में होता है या अकर्मभूमि में होता है ?

उ. गौतम ! जन्म और सद्भाव की अपेक्षा–कर्मभूमि में होता है, अकर्मभूमि में नहीं होता है।

साहरण की अपेक्षा–कर्मभूमि में भी होता है और अकर्मभूमि में भी होता है।

इसी प्रकार स्नातक पर्यन्त जानना चाहिए।

१२. काल-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक क्या अवसर्पिणी काल में होता है, उत्सर्पिणी काल में होता है या नो अवसर्पिणी नो उत्सर्पिणी काल में होता है ?

उ. गौतम ! अवसर्पिणी काल में भी होता है, उत्सर्पिणी काल में भी होता है और नो अवसर्पिणी नो उत्सर्पिणी काल में भी होता है।

प्र. यदि अवसर्पिणी काल में होता है तो क्या–

१. सुसम-सुसमा काल में होता है,
२. सुसमा काल में होता है,
३. सुसम-दुसमाकाल में होता है,
४. दुसम-सुसमा काल में होता है,

५. दुस्समा-काले होज्जा,
६. दुस्सम-दुस्समा काले होज्जा?

उ. गोयमा ! जम्मणं पडुच्च–
१. नो सुसम-सुसमा काले होज्जा,
२. नो सुसमा काले होज्जा,
३. सुसम-दुस्समा काले वा होज्जा,
४. दुस्सम-सुसमाकाले वा होज्जा,
५. नो दुस्समा काले होज्जा,
६. नो दुस्सम-दुस्समा काले होज्जा,

संतिभावं पडुच्च–
१. नो सुसम-सुसमा काले होज्जा,
२. नो सुसमा काले होज्जा,
३. सुसम-दुस्समा काले होज्जा,
४. दुस्सम-सुसमा काले वा होज्जा,
५. दुस्समा काले वा होज्जा,
६. नो दुस्सम-दुस्समा काले होज्जा,

प. जइ उस्सप्पिणि काले होज्जा, किं–
१. दुस्सम-दुस्समा काले होज्जा।
२. दुस्समा काले होज्जा,
३. दुस्सम-सुसमा काले होज्जा,
४. सुसम-दुस्समा काले होज्जा,
५. सुसमा काले होज्जा,
६. सुसम-सुसमा काले होज्जा?

उ. गोयमा ! जम्मणं पडुच्च–
१. नो दुस्सम-दुस्समा काले होज्जा,
२. नो दुस्समा काले वा होज्जा,
३. दुस्सम-सुसमा काले वा होज्जा,
४. सुसम-दुस्समा काले होज्जा,
५. नो सुसमा काले होज्जा,
६. नो सुसम-सुसमा काले होज्जा,

संतिभावं पडुच्च–
१. नो दुस्सम-दुस्समा काले होज्जा,
२. नो दुस्समा काले होज्जा,
३. दुस्सम सुसमा काले वा होज्जा,
४. सुसम-दुस्समा काले वा होज्जा
५. नो सुसमा काले होज्जा,
६. नो सुसम-सुसमा काले होज्जा,

प. जइ नो ओसप्पिणि नो उस्सप्पिणि काले होज्जा, किं–
१. सुसम-सुसमा पलिभागे होज्जा,
२. सुसमा पलिभागे होज्जा,

५. दुसमा काल में होता है,
६. दुसम-दुसमा काल में होता है?

उ. गौतम ! जन्म की अपेक्षा–
१. सुसम-सुसमा काल में नहीं होता है,
२. सुसमा काल में नहीं होता है,
३. सुसम-दुसमा काल में होता है,
४. दुसम-सुसमा काल में होता है,
५. दुसमा काल में नहीं होता है,
६. दुसम-दुसमा काल में नहीं होता है।

सद्भाव की अपेक्षा–
१. सुसम-सुसमा काल में नहीं होता है,
२. सुसमा काल में नहीं होता है,
३. सुसम-दुसमा काल में होता है,
४. दुसम-सुसमा काल में होता है,
५. दुसमा काल में होता है,
६. दुसम-दुसमा काल में नहीं होता है।

प्र. यदि उत्सर्पिणी काल में होता है तो क्या–
१. दुसम-दुसमा काल में होता है,
२. दुसमा काल में होता है,
३. दुसम-सुसमा काल में होता है,
४. सुसम-दुसमा काल में होता है,
५. सुसमा काल में होता है,
६. सुसम-सुसमा काल में होता है?

उ. गौतम ! जन्म की अपेक्षा–
१. दुसम-दुसमा काल में नहीं होता है,
२. दुसमा काल में नहीं होता है,
३. दुसम-सुसमा काल में होता है,
४. सुसम-दुसमा काल में होता है,
५. सुसमा काल में नहीं होता है,
६. सुसम-सुसमा काल में नहीं होता है।

सद्भाव की अपेक्षा–
१. दुसम-दुसमा काल में नहीं होता है,
२. दुसमा काल में नहीं होता है,
३. दुसम-सुसमा काल में होता है,
४. सुसम-दुसमा काल में होता है,
५. सुसम काल में नहीं होता है,
६. सुसम-सुसमा काल में नहीं होता है।

प्र. यदि नो अवसर्पिणी नो उत्सर्पिणी काल में हो तो क्या–
१. अपरिवर्तनशील सुसम-सुसमा काल में होता है,
२. अपरिवर्तनशील सुसमा काल में होता है,

३. सुसम-दुस्समा पलिभागे होज्जा,
४. दुस्सम-सुसमा पलिभागे होज्जा?

उ. गोयमा ! जम्मणं-संतिभावं पडुच्च–
१. नो सुसम-सुसमा पलिभागे होज्जा,
२. नो सुसमा पलिभागे होज्जा,
३. नो सुसम-दुस्समा पलिभागे होज्जा,
४. दुस्सम-सुसमा पलिभागे होज्जा,

प. बउसे णं भंते ! किं ओसप्पिणि काले होज्जा, उस्सप्पिणि काले होज्जा, नो ओसप्पिणि नो उस्सप्पिणि काले होज्जा?

उ. गोयमा ! ओसप्पिणि काले वा होज्जा, उस्सप्पिणि काले वा होज्जा, नो ओसप्पिणि नो उस्सप्पिणि काले वा होज्जा,

प. जइ ओसप्पिणि काले होज्जा, किं–सुसमसुसमा काले होज्जा जाव दुस्समदुस्समाकाले होज्जा?

उ. गोयमा ! जम्मणं-संतिभावं पडुच्च–
१. नो सुसमसुसमाकाले होज्जा,
२. नो सुसमाकाले होज्जा,
३. सुसमदुस्समाकाले वा होज्जा,
४. दुस्समसुसमाकाले वा होज्जा,
५. दुस्समाकाले वा होज्जा,
६. नो दुस्समदुस्समाकाले वा होज्जा,
साहरणं पडुच्च–अन्नयरे समाकाले होज्जा,

प. जइ उस्सप्पिणिकाले होज्जा, किं–
दुस्समदुस्समाकाले होज्जा जाव सुसमसुसमाकाले होज्जा?

उ. गोयमा ! जम्मणं पडुच्च–
१. नो दुस्समदुस्समाकाले होज्जा,
२. दुस्समाकाले वा होज्जा,
३. दुस्समसुसमाकाले वा होज्जा,
४. सुसमदुस्समाकाले वा होज्जा,
५. नो सुसमाकाले होज्जा,
६. नो सुसमसुसमाकाले होज्जा,
संतिभावं पडुच्च–
१. नो दुस्सम-दुस्समा काले होज्जा,
२. नो दुस्समा काले होज्जा,
३. दुस्सम-सुसमा काले वा होज्जा,
४. सुसम-दुस्समा काले वा होज्जा,
५. नो सुसमा काले होज्जा,
६. नो सुसम-सुसमा काले होज्जा,
साहरणं पडुच्च–अन्नयरे समाकाले होज्जा,

प. जइ नो ओसप्पिणि नो उस्सप्पिणि काले होज्जा, किं
१. सुसम-सुसमा पलिभागे होज्जा,

३. अपरिवर्तनशील सुसम-दुसमा काल में होता है,
४. अपरिवर्तनशील दुसम-सुसमा काल में होता है?

उ. गौतम ! जन्म और सद्‌भाव की अपेक्षा से–
१. अपरिवर्तनशील सुसम-सुसमा काल में नहीं होता है,
२. अपरिवर्तनशील सुसमा काल में नहीं होता है,
३. अपरिवर्तनशील सुसम-दुसमा काल में नहीं होता है,
४. अपरिवर्तनशील दुसम-सुसमा काल में होता है।

प्र. भन्ते ! बकुश क्या अवसर्पिणी काल में होता है, उत्सर्पिणी काल में होता है, नो अवसर्पिणी नो उत्सर्पिणी काल में होता है?

उ. गौतम ! अवसर्पिणी काल में भी होता है, उत्सर्पिणी काल में भी होता है और नो अवसर्पिणी नो उत्सर्पिणी काल में भी होता है।

प्र. यदि अवसर्पिणी काल में होता है तो क्या सुसम-सुसमा काल में होता है यावत् दुसम-दुसमा काल में होता है?

उ. गौतम ! जन्म और सद्‌भाव की अपेक्षा से–
१. सुसम-सुसमा काल में नहीं होता है,
२. सुसमा काल में नहीं होता है,
३. सुसम-दुसमा काल में होता है,
४. दुसमसुसमा काल में होता है,
५. दुसमा काल में होता है.
६. दुसम-दुसमा काल में नहीं होता है।
साहरण की अपेक्षा से किसी भी काल में हो सकता है।

प्र. यदि उत्सर्पिणी काल में हो तो क्या–
दुसम-दुसमा काल में होता है यावत् सुसम-सुसमा काल में होता है?

उ. गौतम ! जन्म की अपेक्षा से–
१. दुसम-दुसमा काल में नहीं होता है,
२. दुसमा काल में होता है,
३. दुसम-सुसमा काल में होता है,
४. सुसम-दुसमा काल में होता है,
५. सुसमा काल में नहीं होता है,
६. सुसम-सुसमा काल में भी नहीं होता है।
सद्‌भाव की अपेक्षा से–
१. दुसम-दुसमा काल में नहीं होता है,
२. दुसमा काल में नहीं होता है,
३. दुसम-सुसमा काल में होता है,
४. सुसम-दुसमा काल में होता है,
५. सुसमा काल में नहीं होता है,
६. सुसम-सुसमा काल में भी नहीं होता है।
साहरण की अपेक्षा से–किसी भी काल में हो सकता है।

प्र. यदि नो अवसर्पिणी नो उत्सर्पिणी काल में होता है तो क्या–
१. अपरिवर्तनशील सुसम-सुसमा काल में होता है,

२. सुसमा पलिभागे होज्जा,
३. सुसम-दुस्समा पलिभागे होज्जा,
४. दुस्सम-सुसमा पलिभागे होज्जा,

उ. गोयमा ! जम्मणं-संतिभावं पडुच्च
१. नो सुसम-सुसमा पलिभागे होज्जा,
२. नो सुसमा पलिभागे होज्जा,
३. नो सुसम-दुस्समा पलिभागे होज्जा,
४. दुस्सम-सुसमा पलिभागे होज्जा,
साहरणं पडुच्च–अन्नयरे पलिभागे होज्जा,

पडिसेवणाकुसीले कसायकुसीले विं एवं चेव।

नियंठो, सिणायो य जहा पुलाए,

णवरं-एएसि इमं अब्भहियं भाणियव्वं-साहरणं पडुच्च अण्णयरे समाकाले होज्जा।

१३. गइ-दारं–

प. पुलाए णं भंते ! कालगए समाणे कं गइं गच्छइ ?

उ. गोयमा ! देवगइं गच्छइ,

प. देवगइं गच्छमाणे किं भवणवासीसु उववज्जेज्जा, वाणमंतरेसु उववज्जेज्जा, जोइसिएसु उववज्जेज्जा, वेमाणिएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! नो भवणवासीसु,
नो वाणमंतरेसु,
नो जोइसेसु,
वेमाणिएसु उववज्जेज्जा।
वेमाणिएसु उववज्जमाणे–
जहण्णेणं सोहम्मे कप्पे,
उक्कोसेणं सहस्सारे कप्पे उववज्जेज्जा।
बउसे, पडिसेवणाकुसीले वि एवं चेव,
णवरं–उक्कोसेणं अच्चुए कप्पे उववज्जेज्जा,
कसायकुसीले वि एवं चेव,
णवरं–उक्कोसेणं अणुत्तर-विमाणेसु उववज्जेज्जा।
णियंठे वि एवं चेव,
णवरं–अजहण्णमणुक्कोसेणं अणुत्तर-विमाणेसु उववज्जेज्जा।

प. सिणाए णं भंते ! कालगए समाणे कं गईं गच्छइ ?

उ. गोयमा ! सिद्धिगइं गच्छइ।

प. पुलाए णं भंते ! वेमाणिएसु उववज्जमाणे किं–
इंदत्ताए उववज्जेज्जा,
सामाणियत्ताए उववज्जेज्जा,

२. अपरिवर्तनशील सुसमा काल में होता है,
३. अपरिवर्तनशील सुसम-दुसमा काल में होता है,
४. अपरिवर्तनशील दुसम-सुसमा काल में होता है ?

उ. गौतम ! जन्म और सद्भाव की अपेक्षा से–
१. अपरिवर्तनशील सुसम-सुसमा काल में नहीं होता है,
२. अपरिवर्तनशील सुसमा काल में नहीं होता है,
३. अपरिवर्तनशील सुसमदुसमा काल में नहीं होता है,
४. अपरिवर्तनशील दुसम-सुसमा काल में होता है।
साहरण की अपेक्षा से–अपरिवर्तनशील किसी भी काल में हो सकता है।

प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील का कथन भी इसी प्रकार है।

निर्ग्रन्थ और स्नातक का कथन पुलाक के समान जानना चाहिए।

विशेष–इसमें साहरण की अपेक्षा से किसी भी काल में होता है, ऐसा अधिक कहना चाहिए।

१३. गति-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक काल धर्म को प्राप्त होने पर किस गति को प्राप्त होता है ?

उ. गौतम ! देव गति को प्राप्त होता है।

प्र. देव गति में उत्पन्न होता हुआ क्या भवनपतियों में उत्पन्न होता है, वाणव्यन्तरों में उत्पन्न होता है, ज्योतिषियों में उत्पन्न होता है या वैमानिकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! न भवनपतियों में उत्पन्न होता है ?
न वाणव्यन्तरों में उत्पन्न होता है,
न ज्योतिषियों में उत्पन्न होता है,
किन्तु वैमानिकों में उत्पन्न होता है।
वैमानिकों में उत्पन्न होता हुआ–
जघन्य–सौधर्म कल्प में उत्पन्न होता है,
उत्कृष्ट-सहस्रार कल्प में उत्पन्न होता है।
बकुश और प्रतिसेवना कुशील का कथन भी इसी प्रकार है,
विशेष–वे उत्कृष्ट अच्युत कल्प में उत्पन्न होते हैं।
कषायकुशील का कथन भी इसी प्रकार है,
विशेष–वह उत्कृष्ट अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होता है।
निर्ग्रन्थ का कथन भी इसी प्रकार है,
विशेष–वह अजघन्य अनुत्कृष्ट अर्थात् केवल पांच अनुत्तर विमानों में ही उत्पन्न होता है।

प्र. भन्ते ! स्नातक काल धर्म प्राप्त होने पर किस गति को प्राप्त होता है ?

उ. गौतम ! सिद्ध गति को प्राप्त होता है।

प्र. भन्ते ! पुलाक वैमानिक देवताओं में उत्पन्न होता हुआ क्या–
इन्द्र रूप में उत्पन्न होता है,
सामानिक देव रूप में उत्पन्न होता है,

तायत्तीसगत्ताए उववज्जेज्जा,
लोगपालगत्ताए उववज्जेज्जा,
अहमिंदत्ताए उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! अविराहणं पडुच्च–
इंदत्ताए उववज्जेज्जा **जाव** लोगपालगत्ताए उववज्जेज्जा,

नो अहमिंदत्ताए उववज्जेज्जा,
विराहणं पडुच्च–
अण्णयरेसु उववज्जेज्जा,
बउसे पडिसेवणाकुसीले वि एवं चेव।

प. कसायकुसीले णं भंते ! वेमाणिएसु उववज्जमाणे किं–
इंदत्ताए उववज्जेज्जा,
जाव अहमिंदत्ताए उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! अविराहणं पडुच्च–
इंदत्ताए वा उववज्जेज्जा **जाव** अहमिंदत्ताए वा उववज्जेज्जा।
विराहणं पडुच्च–
अण्णयरेसु उववज्जेज्जा,

प. णियंठे णं भंते ! वेमाणिएसु उववज्जमाणे किं–
इंदत्ताए उववज्जेज्जा **जाव** अहमिंदत्ताए उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! अविराहणं पडुच्च–
नो इंदत्ताए उववज्जेज्जा **जाव** नो लोगपालगत्ताए उववज्जेज्जा, अहमिंदत्ताए उववज्जेज्जा,
विराहणं पडुच्च–
अण्णयरेसु उववज्जेज्जा।

प. पुलायस्स णं भंते ! वेमाणिएसु उववज्जमाणस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं पलिओवमपुहुत्तं,
उक्कोसेणं अट्ठारससागरोवमाइं।

प. बउसस्स णं भंते ! वेमाणिएसु उववज्जमाणस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमपुहुत्तं,
उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं।
एवं पडिसेवणाकुसीलस्स वि।

प. कसायकुसीलस्स णं भंते ! वेमाणिएसु उववज्जमाणस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमपुहुत्तं,
उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

प. णियंठस्स णं भंते ! वेमाणिएसु उववज्जमाणस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अजहन्नमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

त्रायस्त्रिंशक देव रूप में उत्पन्न होता है,
लोकपाल देव रूप में उत्पन्न होता है,
या अहमिन्द्र रूप में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! अविराधना की अपेक्षा से–
इन्द्र रूप में उत्पन्न होता है **यावत्** लोकपाल देवरूप में उत्पन्न होता है।

अहमिन्द्र रूप में उत्पन्न नहीं होता है।
विराधना की अपेक्षा से–
इन पदवियों के सिवाय अन्य देव रूप में उत्पन्न होता है।
बकुश और प्रतिसेवनाकुशील का कथन भी इसी प्रकार है।

प्र. भन्ते ! कषाय कुशील वैमानिक देवों में उत्पन्न होता हुआ क्या इन्द्र रूप में उत्पन्न होता है
यावत् अहमिन्द्र रूप में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! अविराधना की अपेक्षा से–
इन्द्र रूप में भी उत्पन्न होता है **यावत्** अहमिन्द्र रूप में भी उत्पन्न होता है।
विराधना की अपेक्षा से–
इन पदवियों के सिवाय अन्य देव रूप में उत्पन्न होता है।

प्र. भन्ते ! निर्ग्रन्थ वैमानिक देवों में उत्पन्न होता हुआ क्या–
इन्द्र रूप में उत्पन्न होता है **यावत्** अहमिन्द्र रूप में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! अविराधना की अपेक्षा से–
इन्द्र रूप में उत्पन्न नहीं होता है **यावत्** लोकपाल रूप में भी उत्पन्न नहीं होता है किन्तु अहमिन्द्र रूप में उत्पन्न होता है।
विराधना की अपेक्षा से–
इन पदवियों के सिवाय अन्य देव रूप में उत्पन्न होता है।

प्र. भन्ते ! वैमानिक देवलोकों में उत्पन्न होते हुए पुलाक कितने काल की स्थिति प्राप्त करता है?

उ. गौतम ! जघन्य अनेक पल्योपम अर्थात् दो पल्योपम,
उत्कृष्ट अठारह सागरोपम।

प्र. भन्ते ! बकुश वैमानिक देवों में उत्पन्न होते हुए कितने काल की स्थिति प्राप्त करता है?

उ. गौतम ! जघन्य अनेक पल्योपम,
उत्कृष्ट बावीस सागरोपम।
प्रतिसेवनाकुशील का कथन भी इसी प्रकार है।

प्र. भन्ते ! कषायकुशील वैमानिक देवों में उत्पन्न होते हुए कितने काल की स्थिति प्राप्त करता है?

उ. गौतम ! जघन्य अनेक पल्योपम,
उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम।

प्र. भन्ते ! निर्ग्रन्थ वैमानिक देवों में उत्पन्न होते हुए कितने काल की स्थिति प्राप्त करता है?

उ. गौतम ! अजघन्य अनुत्कृष्ट (केवल) तेतीस सागरोपम की स्थिति प्राप्त करता है।

१४. संजम-दारं–

प. पुलागस्स णं भंते ! केवइयां संजमठाणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा संजमठाणा पण्णत्ता।

एवं जाव कसायकुसीलस्स वि,

प. नियंठस्स णं भंते ! केवइया संजमठाणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! एगे अजहन्नमणुक्कोसए संजमठाणे पण्णत्ते।

एवं सिणायस्स वि,

अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! पुलाग, बउस, पडिसेवणा-कुसीलस्स, कसायकुसील, णियंठ, सिणायाणं संजमठाणाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! सव्वत्थोवे णियंठस्स सिणायस्स य एगे अजहन्नमणुक्कोसए संजमठाणे,

पुलागस्स संजमठाणा असंखेज्जगुणा,

बउसस्स संजमठाणा असंखेज्जगुणा,

पडिसेवणाकुसीलस्स संजमठाणा असंखेज्जगुणा,

कसायकुसीलस्स संजमठाणा असंखेज्जगुणा।

१५. निकास-दारं–

प. पुलागस्स णं भंते ! केवइया चरित्तपज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता चरित्तपज्जवा पण्णत्ता।

एवं जाव सिणायस्स,

अप्पबहुत्तं–

प. पुलाए णं भंते ! पुलागस्स सट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए ?

उ. गोयमा ! सिय हीणे, सिय तुल्ले, सिय अब्भहिए।

जइ हीणे–

१. अणंतभागहीणे वा, २. असंखेज्जइभागहीणे वा,

३. संखेज्जइभागहीणे वा, ४. संखेज्जगुणहीणे वा,

५. असंखेज्जगुणहीणे वा, ६. अणंतगुणहीणे वा।

अह अब्भहिए–१. अणंतभागमब्भहिए वा, २. असंखेज्जभागमब्भहिए वा, ३. संखेज्जभागमब्भहिए वा, ४. संखेज्जगुणमब्भहिए वा, ५. असंखेज्जगुणमब्भहिए वा, ६. अनंतगुणमब्भहिए वा।

प. पुलाए णं भंते ! बउसस्स परट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए ?

उ. गोयमा ! हीणे, नो तुल्ले, नो अब्भहिए, अणंतगुणहीणे।

एवं पडिसेवणाकुसीलेण समं वि

कसायकुसीलेण समं छट्ठाणवडिए,

नियंठस्स सिणायस्स य जहा बउसस्स।

१४. संयम-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक के कितने संयम स्थान कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! असंख्यात संयम स्थान कहे गए हैं।

इसी प्रकार कषायकुशील पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! निर्ग्रन्थ के कितने संयम स्थान कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अजघन्य अनुत्कृष्ट एक संयम स्थान कहा गया है।

स्नातक का कथन भी इसी प्रकार है।

अल्पबहुत्व–

प्र. भन्ते ! पुलाक, बकुश, प्रतिसेवनाकुशील, कषाय कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक इनके संयम स्थानों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! सबसे अल्प निर्ग्रन्थ और स्नातक का अजघन्य अनुत्कृष्ट एक संयम स्थान है।

(उससे) पुलाक के संयम स्थान असंख्यातगुणे हैं।

(उससे) बकुश के संयम स्थान असंख्यातगुणे हैं।

(उससे) प्रतिसेवनाकुशील के संयम स्थान असंख्यातगुणे हैं।

(उससे) कषायकुशील के संयम स्थान असंख्यातगुणे हैं।

१५. सन्निकर्ष-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक के कितने चारित्र पर्यव कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त चारित्र पर्यव कहे गए हैं ?

इसी प्रकार स्नातक पर्यन्त जानना चाहिए।

अल्पबहुत्व–

प्र. भन्ते ! पुलाक स्वस्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है ?

उ. गौतम ! कभी हीन है, कभी तुल्य है, कभी अधिक है।

यदि हीन हो तो–

१. अनन्त भाग हीन है, २. असंख्यातभाग हीन है,

३. संख्यात भाग हीन है, ४. संख्यात गुण हीन है,

५. असंख्यात गुण हीन है, ६. अनन्त गुण हीन है।

यदि अधिक हो तो–१. अनन्त भाग अधिक है, २. असंख्यात भाग अधिक है, ३. संख्यात भाग अधिक है, ४. संख्यात गुण अधिक है, ५. असंख्यात गुण अधिक है, ६. अनन्त गुण अधिक है।

प्र. भन्ते ! पुलाक बकुश के पर स्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है ?

उ. गौतम ! हीन है, तुल्य नहीं है और अधिक भी नहीं है किन्तु अनन्तगुण हीन है।

इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील की तुलना का कथन करना चाहिए।

कषाय कुशील से (उपरोक्त अनन्त भाग से लेकर अनन्त गुण तक) छह स्थान पतित है।

निर्ग्रन्थ और स्नातक के साथ तुलना बकुश की तुलना के समान है।

प. बउसे णं भंते ! पुलागस्स परट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए?

उ. गोयमा ! नो हीणे, नो तुल्ले, अब्भहिए, अणंतगुणमब्भहिए।

प. बउसे णं भंते ! बउसस्स सट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए?

उ. गोयमा ! सिय हीणे, सिय तुल्ले, सिय अब्भहिए, छट्ठाणवडिए।

प. बउसे णं भंते ! पडिसेवणाकुसीलस्स परट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए?

उ. गोयमा ! सिय हीणे जाव छट्ठाणवडिए।

एवं कसायकुसीलस्स वि।

प. बउसे णं भंते ! नियंठस्स परट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए?

उ. गोयमा ! हीणे, नो तुल्ले, नो अब्भहिए, अणंतगुणहीणे।

एवं सिणायस्स वि।

पडिसेवणाकुसीलस्स कसायकुसीलस्स य एस चेव बउस वत्तव्वया,

णवरं–कसायकुसीलस्स पुलाएण वि समं छट्ठाणवडिए।

प. णियंठे णं भंते ! पुलागस्स परट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए?

उ. गोयमा ! नो हीणे, नो तुल्ले, अब्भहिए, अणंतगुणमब्भहिए।

एवं जाव कसायकुसीलस्स।

प. नियंठे णं भंते ! नियंठस्स सट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले अब्भहिए?

उ. गोयमा ! नो हीणे, तुल्ले, नो अब्भहिए।

एवं सिणायस्स वि।

जहा णियंठस्स वत्तव्वया तहा सिणायस्स वि सव्वा वत्तव्वया।

अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! पुलाग, बउस, पडिसेवणाकुसील, कसायकुसील, णियंठ, सिणायाणं जहन्नुक्कोसगाणं चरित्तपज्जवाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. पुलागस्स कसायकुसीलस्स य एएसि णं जहन्नगा चरित्तपज्जवा तुल्ला सव्वत्थोवा,

२. पुलागस्स उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा,

३. बउसस्स पडिसेवणाकुसीलस्स य एएसि णं जहन्नगा चरित्तपज्जवा दोण्ह वि तुल्ला अणंतगुणा,

प्र. भन्ते ! वकुश पुलाक के पर-स्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है?

उ. गौतम ! न हीन है, न तुल्य है किन्तु अधिक है और अनन्त गुण अधिक है।

प्र. भन्ते ! वकुश-वकुश के स्वस्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है?

उ. गौतम ! कभी हीन है, कभी तुल्य है, कभी अधिक है, अर्थात् छः स्थान पतित है।

प्र. भन्ते ! वकुश, प्रतिसेवना-कुशील के पर-स्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है?

उ. गौतम ! कभी हीन है यावत् छः स्थान पतित है।

वकुश कषाय कुशील की तुलना भी इसी प्रकार है।

प्र. भन्ते ! वकुश निर्ग्रन्थ के परस्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है?

उ. गौतम ! हीन है, तुल्य नहीं है और अधिक नहीं है किन्तु अनन्तगुण हीन है।

वकुश स्नातक की तुलना भी इसी प्रकार है।

प्रतिसेवना कुशील और कषायकुशील भी छहों निर्ग्रन्थों के साथ तुलना में वकुश के समान है।

विशेष–कषायकुशील पुलाक के साथ भी छः स्थान पतित है।

प्र. भन्ते ! निर्ग्रन्थ पुलाक के परस्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है?

उ. गौतम ! न हीन है, न तुल्य है किन्तु अधिक है और अनन्त गुण अधिक है।

इसी प्रकार निर्ग्रन्थ की कषाय कुशील पर्यन्त तुलना जाननी चाहिए।

प्र. भन्ते ! निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थ के स्वस्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है?

उ. गौतम ! हीन भी नहीं है और अधिक भी नहीं है किन्तु तुल्य है।

इसी प्रकार निर्ग्रन्थ की स्नातक के साथ तुलना करनी चाहिए।

जिस प्रकार निर्ग्रन्थ की वक्तव्यता है उसी प्रकार छहों के साथ स्नातक की भी संपूर्ण वक्तव्यता जाननी चाहिए।

अल्पबहुत्व–

प्र. भन्ते ! पुलाक, बकुश, प्रतिसेवनाकुशील, कषायकुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक इनके जघन्य, उत्कृष्ट चारित्र पर्यवों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है?

उ. गौतम ! १. पुलाक और कषाय कुशील इन दोनों के जघन्य चारित्र पर्यव परस्पर तुल्य और सबसे अल्प हैं।

२. (उससे) पुलाक के उत्कृष्ट चारित्र पर्यव अनन्तगुणा हैं।

३. (उससे) बकुश और प्रतिसेवनाकुशील-इन दोनों के जघन्य चारित्र पर्यव परस्पर तुल्य हैं और अनन्तगुणा हैं।

४. बउसस्स उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा,

५. पडिसेवणाकुसीलस्स उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा।

६. कसायकुसीलस्स उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा,

७. णियंठस्स सिणायस्स य एएसि णं अजहन्नमणुक्कोसगा चरित्तपज्जवा दोण्ह वि तुल्ला अणंतगुणा।

४. (उससे) वकुश के उत्कृष्ट चारित्र पर्यव अनन्तगुणा हैं।

५. (उससे) प्रतिसेवनाकुशील के उत्कृष्ट चारित्र पर्यव अनन्तगुणा हैं।

६. (उससे) कषायकुशील के उत्कृष्ट चारित्र पर्यव अनन्तगुणा हैं।

७. (उससे) निर्ग्रन्थ और स्नातक इन दोनों के अजघन्य अनुत्कृष्ट चारित्र पर्यव परस्पर तुल्य हैं और अनन्तगुणा हैं।

१६. जोग-दारं–

प. पुलाए णं भंते ! किं सजोगी होज्जा, अजोगी होज्जा ?

उ. गोयमा ! सजोगी होज्जा, नो अजोगी होज्जा।

प. जइ सजोगी होज्जा, किं मणजोगी होज्जा, वइजोगी होज्जा, कायजोगी होज्जा ?

उ. गोयमा ! मणजोगी वा होज्जा, वइजोगी वा होज्जा, कायजोगी वा होज्जा।

एवं जाव णियंठे।

प. सिणाए णं भंते ! किं सजोगी होज्जा, अजोगी होज्जा ?

उ. गोयमा ! सजोगी वा होज्जा, अजोगी वा होज्जा।

प. जइ सजोगी होज्जा, किं मणजोगी होज्जा, वइजोगी होज्जा, कायजोगी होज्जा ?

उ. गोयमा ! तिन्नि वि होज्जा।

१६. योग-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक क्या सयोगी है या अयोगी है ?

उ. गौतम ! सयोगी है, अयोगी नहीं है।

प्र. यदि सयोगी है तो क्या मन योगी है, वचन योगी है या काय योगी है ?

उ. गौतम ! मन योगी भी है, वचन योगी भी है और काय योगी भी है।

इसी प्रकार निर्ग्रन्थ पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! स्नातक क्या सयोगी है या अयोगी है ?

उ. गौतम ! सयोगी भी है और अयोगी भी है।

प्र. यदि सयोगी है तो क्या मन योगी है, वचन योगी है या काय योगी है ?

उ. गौतम ! वह तीनों का योग वाला होता है।

१७. उवओग-दारं–

प. पुलाए णं भंते ! किं सागारोवउत्ते होज्जा, अणागारोवउत्ते होज्जा ?

उ. गोयमा ! सागारोवउत्ते वा होज्जा, अणागारोवउत्ते वा होज्जा,

एवं जाव सिणाए।

१७. उपयोग-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक क्या साकारोपयुक्त है या अनाकारोपयुक्त है ?

उ. गौतम ! साकारोपयुक्त भी है और अनाकारोपयुक्त भी है।

इसी प्रकार स्नातक पर्यन्त जानना चाहिए।

१८. कसाय-दारं–

प. पुलाए णं भंते ! किं सकसायी होज्जा, अकसायी होज्जा ?

उ. गोयमा ! सकसायी होज्जा, नो अकसायी होज्जा।

प. जइ सकसायी होज्जा, से णं भंते ! कइसु कसाएसु होज्जा ?

उ. गोयमा ! चउसु संजलण कोह-माण-माया-लोभेसु होज्जा।

बउसे पडिसेवणाकुसीले वि एवं चेव।

प. कसायकुसीले णं भंते ! किं सकसायी होज्जा, अकसायी होज्जा ?

उ. गोयमा ! सकसायी होज्जा, नो अकसायी होज्जा।

प. जइ सकसायी होज्जा, से णं भंते ! कइसु कसाएसु होज्जा ?

उ. गोयमा ! चउसु वा, तिसु वा, दोसु वा, एगम्मि वा होज्जा, चउसु होमाणे-संजलणकोह-माण-माया-लोभेसु होज्जा,

१८. कषाय-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक क्या सकषायी है या अकषायी है ?

उ. गौतम ! सकषायी है, अकषायी नहीं है।

प्र. भन्ते ! यदि वह सकषायी है तो उसके कितने कषाय हैं ?

उ. गौतम ! क्रोध, मान, माया, लोभ चारों संज्वलन कषाय हैं।

वकुश और प्रतिसेवनाकुशील के भी इसी प्रकार (चारों कषाय) जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! कषाय कुशील क्या सकषायी है या अकषायी है ?

उ. गौतम ! सकषायी होता है, अकषायी नहीं होता है।

प्र. भन्ते ! वह यदि सकषायी है तो उसके कितने कषाय हैं ?

उ. गौतम ! चार, तीन, दो या एक कषाय होते हैं।

चार हों तो–१. संज्वलन क्रोध, २. मान, ३. माया और लोभ होते हैं।

प. बउसे णं भंते ! पुलागस्स परट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए?

उ. गोयमा ! नो हीणे, नो तुल्ले, अब्भहिए, अणंतगुणमब्भहिए।

प. बउसे णं भंते ! बउसस्स सट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए?

उ. गोयमा ! सिय हीणे, सिय तुल्ले, सिय अब्भहिए, छट्ठाणवडिए।

प. बउसे णं भंते ! पडिसेवणाकुसीलस्स परट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए?

उ. गोयमा ! सिय हीणे जाव छट्ठाणवडिए।

एवं कसायकुसीलस्स वि।

प. बउसे णं भंते ! नियंठस्स परट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए?

उ. गोयमा ! हीणे, नो तुल्ले, नो अब्भहिए, अणंतगुणहीणे।

एवं सिणायस्स वि।

पडिसेवणाकुसीलस्स कसायकुसीलस्स य एस चेव बउस वत्तव्वया,

णवरं–कसायकुसीलस्स पुलाएण वि समं छट्ठाणवडिए।

प. णियंठे णं भंते ! पुलागस्स परट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए?

उ. गोयमा ! नो हीणे, नो तुल्ले, अब्भहिए, अणंतगुणमब्भहिए।

एवं जाव कसायकुसीलस्स।

प. नियंठे णं भंते ! नियंठस्स सट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले अब्भहिए?

उ. गोयमा ! नो हीणे, तुल्ले, नो अब्भहिए।

एवं सिणायस्स वि।

जहा णियंठस्स वत्तव्वया तहा सिणायस्स वि सव्वा वत्तव्वया।

अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! पुलाग, बउस, पडिसेवणाकुसील, कसायकुसील, णियंठ, सिणायाणं जहन्नुक्कोसगाणं चरित्तपज्जवाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. पुलागस्स कसायकुसीलस्स य एएसि णं जहन्नगा चरित्तपज्जवा तुल्ला सव्वत्थोवा,

२. पुलागस्स उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा,

३. बउसस्स पडिसेवणाकुसीलस्स य एएसि णं जहन्नगा चरित्तपज्जवा दोण्ह वि तुल्ला अणंतगुणा,

प्र. भन्ते ! वकुश पुलाक के पर-स्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है?

उ. गौतम ! न हीन है, न तुल्य है किन्तु अधिक है और अनन्त गुण अधिक है।

प्र. भन्ते ! वकुश-वकुश के स्वस्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है?

उ. गौतम ! कभी हीन है, कभी तुल्य है, कभी अधिक है, अर्थात् छः स्थान पतित है।

प्र. भन्ते ! वकुश, प्रतिसेवना-कुशील के पर-स्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है?

उ. गौतम ! कभी हीन है यावत् छः स्थान पतित है।

वकुश कषाय कुशील की तुलना भी इसी प्रकार है।

प्र. भन्ते ! वकुश निर्ग्रन्थ के परस्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है?

उ. गौतम ! हीन है, तुल्य नहीं है और अधिक नहीं है किन्तु अनन्तगुण हीन है।

वकुश स्नातक की तुलना भी इसी प्रकार है।

प्रतिसेवना कुशील और कषायकुशील भी छहों निर्ग्रन्थों के साथ तुलना में वकुश के समान है।

विशेष–कषायकुशील पुलाक के साथ भी छः स्थान पतित है।

प्र. भन्ते ! निर्ग्रन्थ पुलाक के परस्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है?

उ. गौतम ! न हीन है, न तुल्य है किन्तु अधिक है और अनन्त गुण अधिक है।

इसी प्रकार निर्ग्रन्थ की कषाय कुशील पर्यन्त तुलना जाननी चाहिए।

प्र. भन्ते ! निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थ के स्वस्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है?

उ. गौतम ! हीन भी नहीं है और अधिक भी नहीं है किन्तु तुल्य है।

इसी प्रकार निर्ग्रन्थ की स्नातक के साथ तुलना करनी चाहिए।

जिस प्रकार निर्ग्रन्थ की वक्तव्यता है उसी प्रकार छहों के साथ स्नातक की भी संपूर्ण वक्तव्यता जाननी चाहिए।

अल्पबहुत्व–

प्र. भन्ते ! पुलाक, बकुश, प्रतिसेवनाकुशील, कषायकुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक इनके जघन्य, उत्कृष्ट चारित्र पर्यवों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है?

उ. गौतम ! १. पुलाक और कषाय कुशील इन दोनों के जघन्य चारित्र पर्यव परस्पर तुल्य और सबसे अल्प हैं।

२. (उससे) पुलाक के उत्कृष्ट चारित्र पर्यव अनन्तगुणा हैं।

३. (उससे) बकुश और प्रतिसेवनाकुशील-इन दोनों के जघन्य चारित्र पर्यव परस्पर तुल्य हैं और अनन्तगुणा हैं।

प. बउसे णं भंते ! पुलागस्स परट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए ?

उ. गोयमा ! नो हीणे, नो तुल्ले, अब्भहिए, अणंतगुणमब्भहिए।

प. बउसे णं भंते ! बउसस्स सट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए ?

उ. गोयमा ! सिय हीणे, सिय तुल्ले, सिय अब्भहिए, छट्ठाणवडिए।

प. बउसे णं भंते ! पडिसेवणाकुसीलस्स परट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए ?

उ. गोयमा ! सिय हीणे जाव छट्ठाणवडिए।

एवं कसायकुसीलस्स वि।

प. बउसे णं भंते ! नियंठस्स परट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए ?

उ. गोयमा ! हीणे, नो तुल्ले, नो अब्भहिए, अणंतगुणहीणे।

एवं सिणायस्स वि।

पडिसेवणाकुसीलस्स कसायकुसीलस्स य एस चेव बउस वत्तव्वया,

णवरं–कसायकुसीलस्स पुलाएण वि समं छट्ठाणवडिए।

प. णियंठे णं भंते ! पुलागस्स परट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए ?

उ. गोयमा ! नो हीणे, नो तुल्ले, अब्भहिए, अणंतगुणमब्भहिए।

एवं जाव कसायकुसीलस्स।

प. नियंठे णं भंते ! नियंठस्स सट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले अब्भहिए ?

उ. गोयमा ! नो हीणे, तुल्ले, नो अब्भहिए।

एवं सिणायस्स वि।

जहा णियंठस्स वत्तव्वया तहा सिणायस्स वि सव्वा वत्तव्वया।

अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! पुलाग, बउस, पडिसेवणाकुसील, कसायकुसील, णियंठ, सिणायाणं जहन्नुक्कोसगाणं चरित्तपज्जवाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. पुलागस्स कसायकुसीलस्स य एएसि णं जहन्नगा चरित्तपज्जवा तुल्ला सव्वत्थोवा,

२. पुलागस्स उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा,

३. बउसस्स पडिसेवणाकुसीलस्स य एएसि णं जहन्नगा चरित्तपज्जवा दोण्ह वि तुल्ला अणंतगुणा,

प्र. भन्ते ! वकुश पुलाक के पर-स्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है ?

उ. गौतम ! न हीन है, न तुल्य है किन्तु अधिक है और अनन्त गुण अधिक है।

प्र. भन्ते ! वकुश-वकुश के स्वस्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है ?

उ. गौतम ! कभी हीन है, कभी तुल्य है, कभी अधिक है, अर्थात् छः स्थान पतित है।

प्र. भन्ते ! वकुश, प्रतिसेवना-कुशील के पर-स्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है ?

उ. गौतम ! कभी हीन है यावत् छः स्थान पतित है।

वकुश कषाय कुशील की तुलना भी इसी प्रकार है।

प्र. भन्ते ! वकुश निर्ग्रन्थ के परस्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है ?

उ. गौतम ! हीन है, तुल्य नहीं है और अधिक नहीं है किन्तु अनन्तगुण हीन है।

वकुश स्नातक की तुलना भी इसी प्रकार है।

प्रतिसेवना कुशील और कषायकुशील भी छहों निर्ग्रन्थों के साथ तुलना में वकुश के समान है।

विशेष–कषायकुशील पुलाक के साथ भी छः स्थान पतित है।

प्र. भन्ते ! निर्ग्रन्थ पुलाक के परस्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है ?

उ. गौतम ! न हीन है, न तुल्य है किन्तु अधिक है और अनन्त गुण अधिक है।

इसी प्रकार निर्ग्रन्थ की कषाय कुशील पर्यन्त तुलना जाननी चाहिए।

प्र. भन्ते ! निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थ के स्वस्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है ?

उ. गौतम ! हीन भी नहीं है और अधिक भी नहीं है किन्तु तुल्य है।

इसी प्रकार निर्ग्रन्थ की स्नातक के साथ तुलना करनी चाहिए।

जिस प्रकार निर्ग्रन्थ की वक्तव्यता है उसी प्रकार छहों के साथ स्नातक की भी संपूर्ण वक्तव्यता जाननी चाहिए।

अल्पबहुत्व–

प्र. भन्ते ! पुलाक, वकुश, प्रतिसेवनाकुशील, कषायकुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक इनके जघन्य, उत्कृष्ट चारित्र पर्यवों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उ. गौतम ! १. पुलाक और कषाय कुशील इन दोनों के जघन्य चारित्र पर्यव परस्पर तुल्य और सबसे अल्प हैं।

२. (उससे) पुलाक के उत्कृष्ट चारित्र पर्यव अनन्तगुणा हैं।

३. (उससे) वकुश और प्रतिसेवनाकुशील-इन दोनों के जघन्य चारित्र पर्यव परस्पर तुल्य हैं और अनन्तगुणा हैं।

४. बउसस्स उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा,

५. पडिसेवणाकुसीलस्स उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा।

६. कसायकुसीलस्स उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा,

७. णियंठस्स सिणायस्स य एएसि णं अजहन्नमणुक्कोसगा चरित्तपज्जवा दोण्ह वि तुल्ला अणंतगुणा।

१६. जोग-दारं–

प. पुलाए णं भंते ! किं सजोगी होज्जा, अजोगी होज्जा ?

उ. गोयमा ! सजोगी होज्जा, नो अजोगी होज्जा।

प. जइ सजोगी होज्जा, किं मणजोगी होज्जा, वइजोगी होज्जा, कायजोगी होज्जा ?

उ. गोयमा ! मणजोगी वा होज्जा, वइजोगी वा होज्जा, कायजोगी वा होज्जा।

एवं जाव णियंठे।

प. सिणाए णं भंते ! किं सजोगी होज्जा, अजोगी होज्जा ?

उ. गोयमा ! सजोगी वा होज्जा, अजोगी वा होज्जा।

प. जइ सजोगी होज्जा, किं मणजोगी होज्जा, वइजोगी होज्जा, कायजोगी होज्जा ?

उ. गोयमा ! तिन्नि वि होज्जा।

१७. उवओग-दारं–

प. पुलाए णं भंते ! किं सागारोवउत्ते होज्जा, अणागारोवउत्ते होज्जा ?

उ. गोयमा ! सागारोवउत्ते वा होज्जा, अणागारोवउत्ते वा होज्जा,

एवं जाव सिणाए।

१८. कसाय-दारं–

प. पुलाए णं भंते ! किं सकसायी होज्जा, अकसायी होज्जा ?

उ. गोयमा ! सकसायी होज्जा, नो अकसायी होज्जा।

प. जइ सकसायी होज्जा, से णं भंते ! कइसु कसाएसु होज्जा ?

उ. गोयमा ! चउसु संजलण कोह-माण-माया-लोभेसु होज्जा।
बउसे पडिसेवणाकुसीले वि एवं चेव।

प. कसायकुसीले णं भंते ! किं सकसायी होज्जा, अकसायी होज्जा ?

उ. गोयमा ! सकसायी होज्जा, नो अकसायी होज्जा।

प. जइ सकसायी होज्जा, से णं भंते ! कइसु कसाएसु होज्जा ?

उ. गोयमा ! चउसु वा, तिसु वा, दोसु वा, एगम्मि वा होज्जा, चउसु होमाणे-संजलणकोह-माण-माया-लोभेसु होज्जा,

४. (उससे) वकुश के उत्कृष्ट चारित्र पर्यव अनन्तगुणा हैं।

५. (उससे) प्रतिसेवनाकुशील के उत्कृष्ट चारित्र पर्यव अनन्तगुणा हैं।

६. (उससे) कषायकुशील के उत्कृष्ट चारित्र पर्यव अनन्तगुणा हैं।

७. (उससे) निर्ग्रन्थ और स्नातक इन दोनों के अजघन्य अनुत्कृष्ट चारित्र पर्यव परस्पर तुल्य हैं और अनन्तगुणा हैं।

१६. योग-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक क्या सयोगी है या अयोगी है ?

उ. गौतम ! सयोगी है, अयोगी नहीं है।

प्र. यदि सयोगी है तो क्या मन योगी है, वचन योगी है या काय योगी है ?

उ. गौतम ! मन योगी भी है, वचन योगी भी है और काय योगी भी है।

इसी प्रकार निर्ग्रन्थ पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! स्नातक क्या सयोगी है या अयोगी है ?

उ. गौतम ! सयोगी भी है और अयोगी भी है।

प्र. यदि सयोगी है तो क्या मन योगी है, वचन योगी है या काय योगी है ?

उ. गौतम ! वह तीनों का योग वाला होता है।

१७. उपयोग-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक क्या साकारोपयुक्त है या अनाकारोपयुक्त है ?

उ. गौतम ! साकारोपयुक्त भी है और अनाकारोपयुक्त भी है।

इसी प्रकार स्नातक पर्यन्त जानना चाहिए।

१८. कषाय-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक क्या सकषायी है या अकषायी है ?

उ. गौतम ! सकषायी है, अकषायी नहीं है।

प्र. भन्ते ! यदि वह सकषायी है तो उसके कितने कषाय हैं ?

उ. गौतम ! क्रोध, मान, माया, लोभ चारों संज्वलन कषाय हैं।
वकुश और प्रतिसेवनाकुशील के भी इसी प्रकार (चारों कषाय) जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! कषाय कुशील क्या सकषायी है या अकषायी है ?

उ. गौतम ! सकषायी होता है, अकषायी नहीं होता है।

प्र. भन्ते ! वह यदि सकषायी है तो उसके कितने कषाय हैं ?

उ. गौतम ! चार, तीन, दो या एक कषाय होते हैं।
चार हों तो–१. संज्वलन क्रोध, २. मान, ३. माया और लोभ होते हैं।

प. बउसे णं भंते ! पुलागस्स परट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए?

उ. गोयमा ! नो हीणे, नो तुल्ले, अब्भहिए, अणंतगुणमब्भहिए।

प. बउसे णं भंते ! बउसस्स सट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए?

उ. गोयमा ! सिय हीणे, सिय तुल्ले, सिय अब्भहिए, छट्ठाणवडिए।

प. बउसे णं भंते ! पडिसेवणाकुसीलस्स परट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए?

उ. गोयमा ! सिय हीणे जाव छट्ठाणवडिए।

एवं कसायकुसीलस्स वि।

प. बउसे णं भंते ! नियंठस्स परट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए?

उ. गोयमा ! हीणे, नो तुल्ले, नो अब्भहिए, अणंतगुणहीणे।

एवं सिणायस्स वि।

पडिसेवणाकुसीलस्स कसायकुसीलस्स य एस चेव बउस वत्तव्वया,

णवरं–कसायकुसीलस्स पुलाएण वि समं छट्ठाणवडिए।

प. णियंठे णं भंते ! पुलागस्स परट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए?

उ. गोयमा ! नो हीणे, नो तुल्ले, अब्भहिए, अणंतगुणमब्भहिए।

एवं जाव कसायकुसीलस्स।

प. नियंठे णं भंते ! नियंठस्स सट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले अब्भहिए?

उ. गोयमा ! नो हीणे, तुल्ले, नो अब्भहिए।

एवं सिणायस्स वि।

जहा णियंठस्स वत्तव्वया तहा सिणायस्स वि सव्वा वत्तव्वया।

अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! पुलाग, बउस, पडिसेवणाकुसील, कसायकुसील, णियंठ, सिणायाणं जहन्नुक्कोसगाणं चरित्तपज्जवाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. पुलागस्स कसायकुसीलस्स य एएसि णं जहन्नगा चरित्तपज्जवा तुल्ला सव्वत्थोवा,

२. पुलागस्स उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा,

३. बउसस्स पडिसेवणाकुसीलस्स य एएसि णं जहन्नगा चरित्तपज्जवा दोण्ह वि तुल्ला अणंतगुणा,

प्र. भन्ते ! बकुश पुलाक के पर-स्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है?

उ. गौतम ! न हीन है, न तुल्य है किन्तु अधिक है और अनन्त गुण अधिक है।

प्र. भन्ते ! बकुश-बकुश के स्वस्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है?

उ. गौतम ! कभी हीन है, कभी तुल्य है, कभी अधिक है, अर्थात् छः स्थान पतित है।

प्र. भन्ते ! बकुश, प्रतिसेवना-कुशील के पर-स्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है?

उ. गौतम ! कभी हीन है यावत् छः स्थान पतित है।

बकुश कषाय कुशील की तुलना भी इसी प्रकार है।

प्र. भन्ते ! बकुश निर्ग्रन्थ के परस्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है?

उ. गौतम ! हीन है, तुल्य नहीं है और अधिक नहीं है किन्तु अनन्तगुण हीन है।

बकुश स्नातक की तुलना भी इसी प्रकार है।

प्रतिसेवना कुशील और कषायकुशील भी छहों निर्ग्रन्थों के साथ तुलना में बकुश के समान है।

विशेष–कषायकुशील पुलाक के साथ भी छः स्थान पतित है।

प्र. भन्ते ! निर्ग्रन्थ पुलाक के परस्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है?

उ. गौतम ! न हीन है, न तुल्य है किन्तु अधिक है और अनन्त गुण अधिक है।

इसी प्रकार निर्ग्रन्थ की कषाय कुशील पर्यन्त तुलना जाननी चाहिए।

प्र. भन्ते ! निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थ के स्वस्थान की तुलना में चारित्र पर्यवों से क्या हीन है, तुल्य है या अधिक है?

उ. गौतम ! हीन भी नहीं है और अधिक भी नहीं है किन्तु तुल्य है

इसी प्रकार निर्ग्रन्थ की स्नातक के साथ तुलना करनी चाहिए

जिस प्रकार निर्ग्रन्थ की वक्तव्यता है उसी प्रकार छहों के साथ स्नातक की भी संपूर्ण वक्तव्यता जाननी चाहिए।

अल्पबहुत्व–

प्र. भन्ते ! पुलाक, बकुश, प्रतिसेवनाकुशील, कषायकुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक इनके जघन्य, उत्कृष्ट चारित्र पर्यवों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है?

उ. गौतम ! १. पुलाक और कषाय कुशील इन दोनों के जघन्य चारित्र पर्यव परस्पर तुल्य और सबसे अल्प हैं।

२. (उससे) पुलाक के उत्कृष्ट चारित्र पर्यव अनन्तगुणा हैं।

३. (उससे) बकुश और प्रतिसेवनाकुशील-इन दोनों के जघन्य चारित्र पर्यव परस्पर तुल्य हैं और अनन्तगुणा हैं।

४. बउसस्स उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा,

५. पडिसेवणाकुसीलस्स उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा।

६. कसायकुसीलस्स उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा,

७. णियंठस्स सिणायस्स य एएसि णं अजहन्नमणुक्कोसगा चरित्तपज्जवा दोण्ह वि तुल्ला अणंतगुणा।

१६. जोग-दारं–

प. पुलाए णं भंते ! किं सजोगी होज्जा, अजोगी होज्जा ?

उ. गोयमा ! सजोगी होज्जा, नो अजोगी होज्जा।

प. जइ सजोगी होज्जा, किं मणजोगी होज्जा, वइजोगी होज्जा, कायजोगी होज्जा ?

उ. गोयमा ! मणजोगी वा होज्जा, वइजोगी वा होज्जा, कायजोगी वा होज्जा।

एवं जाव णियंठे।

प. सिणाए णं भंते ! किं सजोगी होज्जा, अजोगी होज्जा ?

उ. गोयमा ! सजोगी वा होज्जा, अजोगी वा होज्जा।

प. जइ सजोगी होज्जा, किं मणजोगी होज्जा, वइजोगी होज्जा, कायजोगी होज्जा ?

उ. गोयमा ! तिन्नि वि होज्जा।

१७. उवओग-दारं–

प. पुलाए णं भंते! किं सागारोवउत्ते होज्जा, अणागारोवउत्ते होज्जा ?

उ. गोयमा ! सागारोवउत्ते वा होज्जा, अणागारोवउत्ते वा होज्जा,

एवं जाव सिणाए।

१८. कसाय-दारं–

प. पुलाए णं भंते ! किं सकसायी होज्जा, अकसायी होज्जा ?

उ. गोयमा ! सकसायी होज्जा, नो अकसायी होज्जा।

प. जइ सकसायी होज्जा, से णं भंते ! कइसु कसाएसु होज्जा ?

उ. गोयमा ! चउसु संजलण कोह-माण-माया-लोभेसु होज्जा।

बउसे पडिसेवणाकुसीले वि एवं चेव।

प. कसायकुसीले णं भंते ! किं सकसायी होज्जा, अकसायी होज्जा ?

उ. गोयमा ! सकसायी होज्जा, नो अकसायी होज्जा।

प. जइ सकसायी होज्जा, से णं भंते ! कइसु कसाएसु होज्जा ?

उ. गोयमा ! चउसु वा, तिसु वा, दोसु वा, एगम्मि वा होज्जा, चउसु होमाणे-संजलणकोह-माण-माया-लोभेसु होज्जा,

४. (उससे) बकुश के उत्कृष्ट चारित्र पर्यव अनन्तगुणा हैं।

५. (उससे) प्रतिसेवनाकुशील के उत्कृष्ट चारित्र पर्यव अनन्तगुणा हैं।

६. (उससे) कषायकुशील के उत्कृष्ट चारित्र पर्यव अनन्तगुणा हैं।

७. (उससे) निर्ग्रन्थ और स्नातक इन दोनों के अजघन्य अनुत्कृष्ट चारित्र पर्यव परस्पर तुल्य हैं और अनन्तगुणा हैं।

१६. योग-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक क्या सयोगी है या अयोगी है ?

उ. गौतम ! सयोगी है, अयोगी नहीं है।

प्र. यदि सयोगी है तो क्या मन योगी है, वचन योगी है या काय योगी है ?

उ. गौतम ! मन योगी भी है, वचन योगी भी है और काय योगी भी है।

इसी प्रकार निर्ग्रन्थ पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! स्नातक क्या सयोगी है या अयोगी है ?

उ. गौतम ! सयोगी भी है और अयोगी भी है।

प्र. यदि सयोगी है तो क्या मन योगी है, वचन योगी है या काय योगी है ?

उ. गौतम ! वह तीनों का योग वाला होता है।

१७. उपयोग-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक क्या साकारोपयुक्त है या अनाकारोपयुक्त है ?

उ. गौतम ! साकारोपयुक्त भी है और अनाकारोपयुक्त भी है।

इसी प्रकार स्नातक पर्यन्त जानना चाहिए।

१८. कषाय-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक क्या सकषायी है या अकषायी है ?

उ. गौतम ! सकषायी है, अकषायी नहीं है।

प्र. भन्ते ! यदि वह सकषायी है तो उसके कितने कषाय हैं ?

उ. गौतम ! क्रोध, मान, माया, लोभ चारों संज्वलन कषाय हैं।

बकुश और प्रतिसेवनाकुशील के भी इसी प्रकार (चारों कषाय) जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! कषाय कुशील क्या सकषायी है या अकषायी है ?

उ. गौतम ! सकषायी होता है, अकषायी नहीं होता है।

प्र. भन्ते ! वह यदि सकषायी है तो उसके कितने कषाय हैं ?

उ. गौतम ! चार, तीन, दो या एक कषाय होते हैं।

चार हों तो–१. संज्वलन क्रोध, २. मान, ३. माया और लोभ होते हैं।

तिसु होमाणे–संजलणमाण-माया-लोभेसु होज्जा,

दोसु होमाणे–संजलणमाया-लोभेसु होज्जा,
एगम्मि होमाणे–एगम्मि संजलणे लोभे होज्जा।

प. णियंठे णं भंते ! किं सकसायी होज्जा, अकसायी होज्जा ?

उ. गोयमा ! नो सकसायी होज्जा, अकसायी होज्जा।

प. जइ अकसायी होज्जा, किं उवसंतकसायी होज्जा, खीणकसायी होज्जा ?

उ. गोयमा ! उवसंतकसायी वा होज्जा, खीणकसायी वा होज्जा।

सिणाए वि एवं चेव,
णवरं–नो उवसंतकसायी होज्जा, खीणकसायी होज्जा।

१९. लेस्सादारं–

प. पुलाए णं भंते ! किं सलेस्से होज्जा, अलेस्से होज्जा ?

उ. गोयमा ! सलेस्से होज्जा, नो अलेस्से होज्जा।

प. जइ सलेस्से होज्जा, से णं भंते ! कइसु लेसासु होज्जा ?

उ. गोयमा ! तिसु विसुद्धलेसासु होज्जा, तं जहा–
१. तेउलेसाए, २. पउमलेसाए, ३. सुक्कलेसाए।
बउसे पडिसेवणाकुसीले वि एवं चेव।

प. कसायकुसीले णं भंते ! किं सलेस्से होज्जा, अलेस्से होज्जा ?

उ. गोयमा ! सलेस्से होज्जा, नो अलेस्से होज्जा।

प. जइ सलेस्से होज्जा, से णं भंते ! कइसु लेसासु होज्जा ?

उ. गोयमा ! छसु लेसासु होज्जा, तं जहा–
१. कण्हलेसाए जाव ६. सुक्कलेसाए।

प. णियंठे णं भंते ! किं सलेस्से होज्जा, अलेस्से होज्जा ?

उ. गोयमा ! सलेस्से होज्जा, नो अलेस्से होज्जा।

प. जइ सलेस्से होज्जा, से णं भंते ! कइसु लेसासु होज्जा ?

उ. गोयमा ! एक्काए सुक्कलेसाए होज्जा।

प. सिणाए णं भंते ! किं सलेस्से होज्जा, अलेस्से होज्जा ?

उ. गोयमा ! सलेस्से वा होज्जा, अलेस्से वा होज्जा।

प. जइ सलेस्से होज्जा से णं भंते ! कइसु लेसासु होज्जा ?

उ. गोयमा ! एगाए परमसुक्कलेसाए होज्जा।

२०. परिणाम-दारं–

प. पुलाए णं भंते ! किं वड्ढमाणपरिणामे होज्जा, हायमाणपरिणामे होज्जा, अवट्ठियपरिणामे होज्जा ?

उ. गोयमा ! वड्ढमाणपरिणामे वा होज्जा, हायमाणपरिणामे वा होज्जा, अवट्ठियपरिणामे वा होज्जा।
एवं जाव कसायकुसीले।

प. णियंठे णं भंते ! किं वड्ढमाणपरिणामे होज्जा जाव अवट्ठियपरिणामे होज्जा ?

तीन हों तो १. संज्वलन मान, २. माया और ३. लोभ होते हैं।

दो हों तो–संज्वलन माया और लोभ होते हैं।

एक हो तो–संज्वलन लोभ होता है।

प्र. भन्ते ! निर्ग्रन्थ क्या सकषायी होता है या अकषायी होता है ?

उ. गौतम ! सकषायी नहीं होता है, अकषायी होता है।

प्र. यदि अकषायी होता है तो क्या उपशान्तकषायी होता है या क्षीणकषायी होता है ?

उ. गौतम ! उपशान्तकषायी भी होता है, क्षीणकषायी भी होता है।

स्नातक का कथन भी इसी प्रकार है,
विशेष–वह उपशान्तकषायी नहीं होता है, क्षीणकषायी होता है।

१९. लेश्या-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक क्या सलेश्य होता है या अलेश्य होता है ?

उ. गौतम ! सलेश्य होता है, अलेश्य नहीं होता है।

प्र. भन्ते ! यदि सलेश्य होता है तो कितनी लेश्यायें होती हैं ?

उ. गौतम ! तीन विशुद्ध लेश्यायें होती हैं, यथा–
१. तेजोलेश्या, २. पद्मलेश्या, ३. शुक्ललेश्या।
बकुश प्रतिसेवनाकुशील का भी कथन इसी प्रकार जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! कषायकुशील क्या सलेश्य होता है या अलेश्य होता है ?

उ. गौतम ! सलेश्य होता है, अलेश्य नहीं होता है।

प्र. भन्ते ! यदि वह सलेश्य होता है तो कितनी लेश्यायें होती हैं ?

उ. गौतम ! छ लेश्यायें होती हैं, यथा–
१. कृष्णलेश्या यावत् ६. शुक्ललेश्या।

प्र. भन्ते ! निर्ग्रन्थ क्या सलेश्य होता है या अलेश्य होता है ?

उ. गौतम ! सलेश्य होता है, अलेश्य नहीं होता है।

प्र. भन्ते ! यदि वह सलेश्य होता है तो कितनी लेश्यायें होती हैं ?

उ. गौतम ! एक शुक्ललेश्या होती है।

प्र. भन्ते ! स्नातक क्या सलेश्य होता है या अलेश्य होता है ?

उ. गौतम ! सलेश्य भी होता है, अलेश्य भी होता है।

प्र. भन्ते ! यदि वह सलेश्य होता है तो कितनी लेश्यायें होती हैं ?

उ. गौतम ! एक परम शुक्ललेश्या होती है।

२०. परिणाम-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक क्या वर्धमान परिणाम वाला होता है, हायमान परिणाम वाला होता है या अवस्थित परिणाम वाला होता है ?

उ. गौतम ! वर्धमान परिणाम वाला भी होता है, हायमान परिणाम वाला भी होता है तथा अवस्थित परिणाम वाला भी होता है।

इसी प्रकार कषाय कुशील पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! निर्ग्रन्थ क्या वर्धमान परिणाम वाला होता है यावत् अवस्थित परिणाम वाला होता है ?

उ. गोयमा ! वड्ढमाणपरिणामे होज्जा,
नो हायमाणपरिणामे होज्जा,
अवट्ठियपरिणामे वा होज्जा,
एवं सिणाए वि।

प. पुलाए णं भंते ! केवइयं कालं वड्ढमाणपरिणामे होज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं–एक्कं समयं, उक्कोसेणं-अंतोमुहुत्तं।

प. केवइयं कालं हायमाणपरिणामे होज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं-एक्कं समयं, उक्कोसेणं-अंतोमुहुत्तं।

प. केवइयं कालं अवट्ठियपरिणामे होज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं-एक्कं समयं, उक्कोसेणं-सत्तसमया।
एवं जाव कसायकुसीले।

प. णियंठे णं भंते ! केवइयं कालं वड्ढमाणपरिणामे होज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं-अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. केवइयं कालं अवट्ठियपरिणामे होज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं-एक्कं समयं, उक्कोसेणं-अंतोमुहुत्तं।

प. सिणाए णं भंते ! केवइयं कालं वड्ढमाणपरिणामे होज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं-अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि-अंतोमुहुत्तं।

प. केवइयं कालं अवट्ठियपरिणामे होज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं-अंतोमुहुत्तं, उक्कोसणं-देसूणा पुव्वकोडी।

२१. बंध-दारं–

प. पुलाए णं भंते ! कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! आउयवज्जाओ सत्तकम्मपगडीओ बंधइ।

प. बउसे णं भंते ! कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा,
सत्त बंधमाणे-आउयवज्जाओ सत्तकम्मपगडीओ बंधइ,
अट्ठ बंधमाणे-पडिपुण्णाओ अट्ठ कम्मपगडीओ बंधइ,
एवं पडिसेवणाकुसीले वि।

प. कसाय कुसीलेणं भंते ! कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! सत्तविह बंधए वा, अट्ठविह बंधए वा, छव्विह बंधए वा,
सत्तबंधमाणे-आउयवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ बंधइ,
अट्ठ बंधमाणे-पडिपुण्णाओ अट्ठ कम्मपगडीओ बंधइ,

उ. गौतम ! वर्धमान परिणाम वाला होता है।
हायमान परिणाम वाला नहीं होता है।
अवस्थित परिणाम वाला होता है।
स्नातक का कथन भी इसी प्रकार है।

प्र. भन्ते ! पुलाक कितने काल तक वर्धमान परिणाम वाला होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य-एक समय, उत्कृष्ट-अन्तर्मुहूर्त।

प्र. कितने काल तक हायमान परिणाम वाला होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य-एक समय, उत्कृष्ट-अन्तर्मुहूर्त।

प्र. कितने काल तक अवस्थित परिणाम वाला होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य-एक समय। उत्कृष्ट-सात समय।
इसी प्रकार कषायकुशील पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! निर्ग्रन्थ कितने काल तक वर्धमान परिणाम वाला होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य-अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त।

प्र. कितने काल तक अवस्थित परिणाम वाला होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य-एक समय, उत्कृष्ट-अन्तर्मुहूर्त।

प्र. भन्ते ! स्नातक कितने काल तक वर्धमान परिणाम वाला होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त।

प्र. कितने काल तक अवस्थित परिणाम वाला होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य-अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन (कुछ कम) क्रोड पूर्व।

२१. बंध-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक कितनी कर्म प्रकृतियां बांधता है ?

उ. गौतम ! आयु को छोड़कर सात कर्मप्रकृतियां बांधता है।

प्र. भन्ते ! बकुश कितनी कर्मप्रकृतियां बांधता है ?

उ. गौतम ! सात कर्मप्रकृतियां या आठ कर्मप्रकृतियां बांधता है।
सात बांधता हुआ-आयु को छोड़कर सात कर्मप्रकृतियां बांधता है।
आठ बांधता हुआ-प्रतिपूर्ण आठों कर्मप्रकृतियां बांधता है।
प्रतिसेवनाकुशील का कथन भी इसी प्रकार है।

प्र. भन्ते ! कषायकुशील कितनी कर्मप्रकृतियां बांधता है ?

उ. गौतम ! सात बाँधता है, आठ बांधता है या छह बांधता है।
सात बांधता हुआ-आयु को छोड़कर सात कर्मप्रकृतियां बांधता है।
आठ बांधता हुआ-प्रतिपूर्ण आठों कर्मप्रकृतियां बांधता है।

प. णियंठे णं भंते ! कइ कम्मपगडीओ उदीरेइ ?

उ. गोयमा ! पंचविह उदीरए वा, दुविह उदीरए वा।

पंच उदीरेमाणे-आउय-वेयणिज्ज-मोहणिज्जवज्जाओ पंच कम्मपगडीओ उदीरेइ,

दो उदीरेमाणे नामं च, गोयं च उदीरेइ।

प. सिणाए णं भंते ! कइ कम्मपगडीओ उदीरेइ ?

उ. गोयमा ! दुविह उदीरए वा, अणुदीरए वा।

दो उदीरेमाणे-नामं च, गोयं च उदीरेइ,

२४. उवसंपज्जहण-दारं–

प. पुलाए णं भंते ! पुलायत्तं जहमाणे किं जहइ, किं उवसंपज्जइ ?

उ. गोयमा ! पुलायत्तं जहइ,

कसायकुसीलं वा, असंजमं वा उवसंपज्जइ।

प. बउसे णं भंते ! बउसत्तं जहमाणे किं जहइ, किं उवसंपज्जइ ?

उ. गोयमा ! बउसत्तं जहइ,

पडिसेवणाकुसीलं वा, कसायकुसीलं वा, असंजमं वा, संजमासंजमं वा उवसंपज्जइ।

प. पडिसेवणाकुसीले णं भंते ! पडिसेवणाकुसीलत्तं जहमाणे किं जहइ, किं उवसंपज्जइ ?

उ. गोयमा ! पडिसेवणाकुसीलत्तं जहइ,

बउसं वा, कसायकुसीलं वा, असंजमं वा, संजमासंजमं वा उवसंपज्जइ,

प. कसायकुसीले णं भंते ! कसायकुसीलत्तं जहमाणे किं जहइ, किं उवसंपज्जइ ?

उ. गोयमा ! कसायकुसीलत्तं जहइ,

पुलायं वा; बउसं वा, पडिसेवणाकुसीलं वा, णियंठं वा, असंजमं वा, संजमासंजमं वा उवसपंज्जइ,

प. णियंठे णं भंते ! णियंठत्तं जहमाणे किं जहइ, किं उवसंपज्जइ ?

उ. गोयमा ! नियंठत्तं जहइ,

कसायकुसीलं वा, सिणायं वा, असंजमं वा उवसंपज्जइ।

प. सिणाए णं भंते ! सिणायत्तं जहमाणे किं जहइ, किं उवसंपज्जइ ?

उ. गोयमा ! सिणायत्तं जहइ,

सिद्धगइं उवसंपज्जइ।

२५. सण्णा-दारं–

प. पुलाए णं भंते ! किं सण्णोवउत्ते होज्जा, नोसण्णोवउत्ते होज्जा ?

उ. गोयमा ! नोसण्णोवउत्ते होज्जा।

प्र. भन्ते ! निर्ग्रन्थ कितनी कर्म प्रकृतियों की उदीरणा करता है ?

उ. गौतम ! पांच की उदीरणा करता है या दो की उदीरणा करता है।

पांच की उदीरणा करता हुआ–१. आयु, २. वेदनीय और ३. मोहनीय को छोड़कर शेष पांच कर्मप्रकृतियों की उदीरणा करता है।

दो की उदीरणा करता हुआ–नाम और गोत्र कर्म की उदीरणा करता है।

प्र. भन्ते ! स्नातक कितनी कर्म प्रकृतियों की उदीरणा करता है ?

उ. गौतम ! दो की उदीरणा करता है और नहीं भी करता है।

दो की उदीरणा करता हुआ–नामकर्म और गोत्रकर्म की उदीरणा करता है।

२४. उपसंपत्-जहन-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक पुलाकत्व को छोड़ने पर क्या छोड़ता है और क्या प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! पुलाकत्व को छोड़ता है,

कषायकुशील या असंयम को प्राप्त करता है।

प्र. भन्ते ! वकुश वकुशत्व को छोड़ने पर क्या छोड़ता है और क्या प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! वकुशत्व को छोड़ता है,

प्रतिसेवनाकुशील, कषायकुशील, असंयम या संयमासंयम को प्राप्त करता है।

प्र. भन्ते ! प्रतिसेवनाकुशील प्रतिसेवनाकुशीलत्व को छोड़ने पर क्या छोड़ता है और क्या प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! प्रतिसेवनाकुशीलत्व को छोड़ता है।

वकुश, कषायकुशील, असंयम या संयमासंयम को प्राप्त करता है।

प्र. भन्ते ! कषायकुशील कषायकुशीलत्व को छोड़ने पर क्या छोड़ता है और क्या प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! कषायकुशीलत्व को छोड़ता है।

पुलाक, वकुश, प्रतिसेवनाकुशील, निर्ग्रन्थ, असंयम या संयमासंयम को प्राप्त करता है।

प्र. भन्ते ! निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थत्व को छोड़ने पर क्या छोड़ता है और क्या प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! निर्ग्रन्थत्व को छोड़ता है।

कषायकुशील, स्नातक या असंयम को प्राप्त होता है।

प्र. भन्ते ! स्नातक स्नातकत्व को छोड़ने पर क्या छोड़ता है और क्या प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! स्नातकत्व को छोड़ता है।

सिद्धत्व को प्राप्त करता है।

२५. संज्ञा-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक क्या संज्ञोपयुक्त होता है या नोसंज्ञोपयुक्त होता है ?

उ. गौतम ! नोसंज्ञोपयुक्त होता है।

प. बउसे णं भंते ! किं सण्णोवउत्ते होज्जा, नोसण्णोवउत्ते होज्जा ?

उ. गोयमा ! सण्णोवउत्ते वा होज्जा, नोसण्णोवउत्ते वा होज्जा।

पडिसेवणाकुसीले कसायकुसीले वि एवं चेव।

णियंठे सिणाए य जहा पुलाए, [1]

२६. आहार-दारं–

प. पुलाए णं भंते ! किं आहारए होज्जा, अणाहारए होज्जा ?

उ. गोयमा ! आहारए होज्जा, नो अणाहारए होज्जा।

एवं जाव णियंठे।

प. सिणाए णं भंते ! किं आहारए होज्जा, अणाहारए होज्जा ?

उ. गोयमा ! आहारए वा होज्जा, अणाहारए वा होज्जा,

२७. भव-दारं–

प. पुलाए णं भंते ! कइ भवग्गहणाइं होज्जा ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं, उक्कोसेणं तिण्णि।

प. बउसे णं भंते ! कइ भवग्गहणाइं होज्जा ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं, उक्कोसेणं अट्ठ।

पडिसेवणाकुसीले कसायकुसीले वि एवं चेव।

णियंठे जहा पुलाए,

प. सिणाए णं भंते ! कइ भवग्गहणाइं होज्जा ?

उ. गोयमा ! एक्कं।

२८. आगरिस-दारं–

प. पुलागस्स णं भंते ! एगभवग्गहणिया केवइया आगरिसा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं एक्को, उक्कोसेणं तिण्णि।

प. बउसस्स णं भंते ! एगभवग्गहणिया केवइया आगरिसा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं एक्को, उक्कोसेणं सयग्गसो।

पडिसेवणाकुसीले कसायकुसीले वि एवं चेव।

प. णियंठस्स णं भंते ! एगभवग्गहणिया केवइया आगरिसा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं एक्को, उक्कोसेणं दोन्नि।

प. सिणायस्स णं भंते ! एगभवग्गहणिया केवइया आगरिसा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! एक्को।

प. पुलागस्स णं भंते ! नाणाभवग्गहणिया केवइया आगरिसा पण्णत्ता ?

प्र. भन्ते ! वकुश क्या संज्ञोपयुक्त होता है या नोसंज्ञोपयुक्त होता है ?

उ. गौतम ! संज्ञोपयुक्त भी होता है और नोसंज्ञोपयुक्त भी होता है।

प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

निर्ग्रन्थ और स्नातक का कथन पुलाक के समान है।

२६. आहार-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक क्या आहारक होता है या अनाहारक होता है ?

उ. गौतम ! आहारक होता है, अनाहारक नहीं होता है।

इसी प्रकार निर्ग्रन्थ पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! स्नातक आहारक होता है या अनाहारक होता है ?

उ. गौतम ! आहारक भी होता है और अनाहारक भी होता है।

२७. भव-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक कितने भवों में होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक, उत्कृष्ट तीन भव में होता है।

प्र. भन्ते ! बकुश कितने भवों में होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक, उत्कृष्ट आठ भव में होता है।

प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

निर्ग्रन्थ का कथन पुलाक के समान जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! स्नातक कितने भवों में होता है ?

उ. गौतम ! एक भव में ही होता है।

२८. आकर्ष-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक के एक भवग्रहण योग्य कितने आकर्ष होते हैं ? अर्थात् पुलाक एक भव में कितनी बार होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक, उत्कृष्ट तीन बार होता है।

प्र. भन्ते ! वकुश के एक भवग्रहण योग्य कितने आकर्ष कहे गए हैं, अर्थात् कितनी बार होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक, उत्कृष्ट सैकड़ों बार होता है।

प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! निर्ग्रन्थ के एक भवग्रहण योग्य कितने आकर्ष कहे गए हैं, अर्थात् कितनी बार होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक, उत्कृष्ट दो बार होता है।

प्र. भन्ते ! स्नातक के एक भवग्रहण योग्य कितने आकर्ष कहे गए हैं, अर्थात् कितनी बार होता है ?

उ. गौतम ! एक बार होता है।

प्र. भन्ते ! पुलाक के अनेक भव ग्रहण योग्य कितने आकर्ष कहे गए हैं, अर्थात् कितनी बार होता है ?

[1] [illegible]

उ. गोयमा ! जहन्नेणं दोण्णि, उक्कोसेणं सत्त।

प. बउसस्स णं भंते ! नाणाभवग्गहणिया केवइया आगरिसा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं दोण्णि, उक्कोसेणं सहस्ससो।

एवं जाव कसायकुसीलस्स,

प. णियंठस्स णं भंते ! नाणाभवग्गहणिया केवइया आगरिसा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं दोण्णि, उक्कोसेणं पंच।

प. सिणायस्स णं भन्ते ! नाणाभवग्गहणिया केवइया आगरिसा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! नत्थि एक्को वि।

२९. काल-दारं–

प. पुलाए णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. बउसे णं भन्ते ! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं,
उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।
पडिसेवणाकुसीले कसायकुसीले वि एवं चेव।

प. णियंठे णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं,
उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

प. सिणाए णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

प. पुलाया णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं,
उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

प. बउसा णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! सव्वद्धं।
एवं पडिसेवणाकुसीला कसायकुसीला वि।

णियंठा जहा पुलागा।
सिणाया जहा बउसा।

३०. अंतर-दारं–

प. पुलागस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं अणंतं कालं, अणंताओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ कालओ,
खेत्तओ अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं,
एवं जाव णियंठस्स,

उ. गौतम ! जघन्य दो, उत्कृष्ट सात बार होता है।

प्र. भन्ते ! वकुश के अनेक भवग्रहण योग्य कितने आकर्ष होते हैं ? अर्थात् कितनी बार होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य दो, उत्कृष्ट हजारों बार होता है।

इसी प्रकार कषायकुशील पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! निर्ग्रन्थ के अनेक भवग्रहण योग्य कितने आकर्ष होते हैं ? अर्थात् कितनी बार होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य दो, उत्कृष्ट पांच बार होता है।

प्र. भन्ते ! स्नातक के अनेक भवग्रहण योग्य कितने आकर्ष होते हैं ?

उ. गौतम ! एक भी नहीं (क्योंकि उसी भव में मुक्त होता है)।

२९. काल-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक काल से कितनी देर रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त।

प्र. भन्ते ! वकुश काल से कितनी देर रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट देशोन (कुछ कम) एक क्रोड पूर्व।
प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील का कथन भी इसी प्रकार है।

प्र. भन्ते ! निर्ग्रन्थ कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त।

प्र. भन्ते ! स्नातक कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट देशोन (कुछ कम) क्रोड पूर्व।

प्र. भन्ते ! पुलाक कितने काल तक रहते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त।

प्र. भन्ते ! वकुश कितने काल तक रहते हैं ?

उ. गौतम ! सदा रहते हैं।
इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील भी जानना चाहिए।
निर्ग्रन्थ का कथन पुलाक के समान है।
स्नातक का कथन वकुश के समान है।

३०. अंतर-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक के पुनः पुलाक होने में कितने काल का अन्तर रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य-अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट-अनंत काल अर्थात् अनन्त अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल,
क्षेत्र से देशोन अपार्ध पुद्गल परावर्तन।
इसी प्रकार निर्ग्रन्थ पर्यन्त जानना चाहिए।

प. सिणाए णं भंते ! लोगस्स किं–
संखेज्जइभागे होज्जा,
असंखेज्जइभागे होज्जा,
संखेज्जेसु भागेसु होज्जा,
असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा,
सव्वलोए होज्जा ?

उ. गोयमा ! नो संखेज्जइभागे होज्जा,
असंखेज्जइभागे होज्जा,
नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा,
असंखेज्जेसु वा होज्जा,
सव्वलोए वा होज्जा,

३३. फुसणा-दारं–

प. पुलाए णं भंते ! लोगस्स किं–
संखेज्जइभागं फुसइ,
असंखेज्जइभागं फुसइ,
संखेज्जेसु भागेसु फुसइ,
असंखेज्जेसु भागेसु फुसइ,
सव्वलोयं फुसइ ?

उ. गोयमा ! जहा खेत्त दारे ओगाहणा भणिया तहा फुसणा वि भाणियव्वा !

३४. भाव-दारं–

प. पुलाए णं भंते ! कयरम्मि भावे होज्जा ?

उ. गोयमा ! खओवसमिए भावे होज्जा।
एवं जाव कसायकुसीले।

प. णियंठे णं भंते ! कयरम्मि भावे होज्जा ?

उ. गोयमा ! ओवसमिए वा, खाइए वा भावे होज्जा।

प. सिणाए णं भंते ! कयरम्मि भावे होज्जा ?

उ. गोयमा ! खाइए भावे होज्जा,

३५. परिमाण-दारं–

प. पुलाया णं भंते ! एगसमए णं केवइया होज्जा ?

उ. गोयमा ! पडिवज्जमाणए पडुच्च–
सिय अत्थि, सिय नत्थि,
जइ अत्थि जहन्नेणं–एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा,
उक्कोसेणं सयपुहत्तं।
पुव्वपडिवन्नए पडुच्च–
सिय अत्थि, सिय नत्थि,
जइ अत्थि जहन्नेणं–एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा,
उक्कोसेणं सहस्सपुहत्तं।

प. वउसा णं भंते ! एगसमए णं केवइया होज्जा ?

उ. गोयमा ! पडिवज्जमाणए पडुच्च–
सिय अत्थि, सिय नत्थि,
जइ अत्थि जहन्नेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा,

प्र. भन्ते ! स्नातक लोक के क्या–
संख्यातवें भाग में होता है,
असंख्यातवें भाग में होता है,
संख्यातवें भागों में होता है,
असंख्यातवें भागों में होता है,
या सारे लोक में होता है ?

उ. गौतम ! संख्यातवें भाग में नहीं होता है।
असंख्यातवें भाग में होता है।
संख्यातवें भागों में नहीं होता है।
असंख्यातवें भागों में होता है।
सम्पूर्ण लोक में होता है।

३३. स्पर्शना-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक लोक के क्या–
संख्यातवें भाग को स्पर्श करता है,
असंख्यातवें भाग को स्पर्श करता है,
संख्यातवें भागों को स्पर्श करता है,
असंख्यातवें भागों को स्पर्श करता है,
सम्पूर्ण लोक को स्पर्श करता है ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार क्षेत्र द्वार में क्षेत्रों की अवगाहना कही उसी प्रकार यहाँ स्नातक पर्यन्त स्पर्शना भी कहनी चाहिए।

३४. भाव-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक किस भाव में होता है ?

उ. गौतम ! क्षायोपशमिक भाव में होता है।
इसी प्रकार कषायकुशील पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! निर्ग्रन्थ किस भाव में होता है ?

उ. गौतम ! औपशमिक भाव में भी होता है और क्षायिक भाव में भी होता है।

प्र. भन्ते ! स्नातक किस भाव में होता है ?

उ. गौतम ! क्षायिक भाव में होता है।

३५. परिमाण-द्वार–

प्र. भन्ते ! पुलाक एक समय में कितने होते हैं ?

उ. गौतम ! प्रतिपद्यमान की अपेक्षा–
कभी होते हैं और कभी नहीं होते हैं,
यदि होते हैं तो जघन्य–एक, दो, तीन,
उत्कृष्ट–शत पृथक्त्व (अनेक सौ) होते हैं।
पूर्व प्रतिपन्न की अपेक्षा–
कभी होते हैं और कभी नहीं होते हैं।
यदि होते हैं तो जघन्य–एक, दो, तीन,
उत्कृष्ट-सहस्र पृथक्त्व (अनेक हजार) होते हैं।

प्र. भन्ते ! वकुश एक समय में कितने होते हैं ?

उ. गौतम ! प्रतिपद्यमान की अपेक्षा–
कभी होते हैं, कभी नहीं होते हैं।
यदि होते हैं तो जघन्य एक, दो, तीन,

७. छत्तीसहिं दारेहिं संजयस्स परूवणं–

१. पण्णवण-दारं–

प. कइ णं भंते ! संजया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंच संजया पण्णत्ता, तं जहा–

१. सामाइयसंजए, २. छेदोवट्ठावणियसंजए,
३. परिहारविसुद्धियसंजए, ४. सुहुमसंपरायसंजए,
५. अहक्खायसंजए,

प. (१) सामाइयसंजए णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. इत्तरिए य, २. आवकहिए य[1],

प. (२) छेदोवट्ठावणियसंजए[2] णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. साइयारे य, २. निरइयारे य,

प. (३) परिहार विसुद्धियसंजए[3] णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. निव्विसमाणए य, २. निविट्ठकाइए य,

प. (४) सुहुमसंपरायसंजए[4] णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. संकिलिस्समाणए य, २. विसुज्झमाणए य,

प. (५) अहक्खायसंजए[5] णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. छउमत्थे य, २. केवली य,

गाहाओ–

सामाइयम्मि उ कए, चाउज्जामं अणुत्तरं धम्मं ।
तिविहेण फासयंतो, सामाइयसंजयो स खलु ॥ १ ॥

छेत्तूण य परियागं, पोराणं जो ठवेइ अप्पाणं ।
धम्मम्मि पंचजामे, छेदोवट्ठावणो स खलु ॥ २ ॥

परिहरइ जो विसुद्धं तु, पंचजामं अणुत्तरं धम्मं ।
तिविहेण फासयंतो, परिहारियसंजयो स खलु ॥ ३ ॥

७. छत्तीस द्वारों से संयत की प्ररूपणा–

१. प्रज्ञापना-द्वार–

प्र. भन्ते ! संयत कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! संयत पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सामायिक संयत, २. छेदोपस्थापनीय संयत,
३. परिहार विशुद्धिक संयत, ४. सूक्ष्म संपराय संयत,
५. यथाख्यात संयत।

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. इत्वरिक, २. यावत्कथिक।

प्र. भन्ते ! छेदोपस्थापनीय संयत कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सातिचार, २. निरतिचार।

प्र. भन्ते ! परिहारविशुद्धिक संयत कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. निर्विश्यमानक, २. निर्विष्टकायिक।

प्र. भन्ते ! सूक्ष्मसम्परायसंयत कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. संक्लिश्यमानक, २. विशुद्ध्यमानक।

प्र. भन्ते ! यथाख्यात संयत कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. छद्मस्थ, २. केवली।

गाथार्थ–

१. सामायिक-चारित्र को अंगीकार करने के पश्चात् चातुर्याम (चार महाव्रत) रूप अनुत्तर (प्रधान) धर्म को जो मन, वचन और काया से त्रिविध (तीन करण से) पालन करता है वह "सामायिक संयत" कहलाता है।

२. पूर्व पर्याय को छेद करके जो अपनी आत्मा को पंचयाम (पंचमहाव्रत) रूप धर्म में स्थापित करता है वह "छेदोपस्थापनीय संयत" कहलाता है।

३. जो पंचमहाव्रत रूप अनुत्तर धर्म को मन, वचन और काया से त्रिविध पालन करता हुआ विशुद्धि (कारक तपश्चर्या) धारण करता है वह 'परिहारविशुद्धिक संयत' कहलाता है।

---

१. सामायिक चारित्र–प्रथम एवं अंतिम तीर्थंकर के शासन में छेदोपस्थापनीय चारित्र (बड़ी दीक्षा) देने के पूर्व जघन्य सात दिन, उत्कृष्ट छह मास का जो चारित्र होता है वह इत्वरिक सामायिक चारित्र है।
मध्यम बावीस तीर्थंकरों के शासन में जीवन पर्यन्त का जो चारित्र होता है वह यावत्कथिक सामायिक चारित्र है। इन तीर्थंकरों के शासन में एवं महाविदेह क्षेत्र में छेदोपस्थापनीय चारित्र नहीं दिया जाता है।

२. छेदोपस्थापनीय चारित्र–प्रथम और अंतिम तीर्थंकर के शासन में प्रतिक्रमण अध्ययन एवं अन्य योग्यता हो जाने पर जघन्य सात दिन के बाद और उत्कृष्ट छह मास के बाद भिक्षु को जो बड़ी दीक्षा दी जाती है वह छेदोपस्थापनीय चारित्र है।
सामायिक चारित्र से छेदोपस्थापनीय चारित्र में कुछ समाचारी सम्बन्धी भिन्नताएं होती हैं यथा–मर्यादित एवं केवल सफेद रंग के वस्त्र ही रखना, राजपिंड नहीं लेना आदि।

३. परिहार विशुद्ध चारित्र–बीस वर्ष की दीक्षापर्याय एवं विशिष्ट योग्यता सम्पन्न नौ साधुओं का समूह गच्छ से निकलकर क्रमशः निर्धारित तप साधना करता है उनका चारित्र "परिहार विशुद्ध चारित्र" है।
उस समूह में एक साधु समूह की प्रमुखता करता है, चार साधु विशिष्ट तप साधना करते हैं और चार साधु सेवा-कार्य करते हैं।
फिर सेवा करने वाले साधु विशिष्ट तप साधना करते हैं और दूसरे चार साधु सेवा-कार्य करते हैं।
फिर वह प्रमुख साधु विशिष्ट तप साधना करता है। शेष आठ में से एक साधु प्रमुखता धारण करता है और सात साधु सेवा कार्य करते हैं।

४. सूक्ष्म संपराय चारित्र–दसवें गुणस्थानवर्ती सभी साधु-साध्वियों का चारित्र "सूक्ष्म संपराय चारित्र" है।

५. यथाख्यात चारित्र–उपशान्त कषाय वीतराग एवं क्षीण कषाय वीतराग का अर्थात् ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान वालों का चारित्र "यथाख्यात चारित्र" है।

४. कप्प-दारं–

प. (१) सामाइयसंजए णं भंते ! किं ठियकप्पे होज्जा, अठियकप्पे होज्जा ?

उ. गोयमा ! ठियकप्पे वा होज्जा, अठियकप्पे वा होज्जा।

प. (२) छेदोवट्ठावणियसंजए णं भंते ! किं ठियकप्पे होज्जा, अठियकप्पे होज्जा ?

उ. गोयमा ! ठियकप्पे होज्जा, नो अठियकप्पे होज्जा।

(३) एवं परिहारविसुद्धियसंजए वि,

(४-५) सेसा जहा सामाइयसंजए।

प. (१) सामाइयसंजए णं भंते ! किं जिणकप्पे होज्जा, थेरकप्पे होज्जा, कप्पातीते होज्जा ?

उ. गोयमा ! जिणकप्पे वा होज्जा, थेरकप्पे वा होज्जा, कप्पातीते वा होज्जा।

प. (२) छेदोवट्ठावणियसंजए णं भंते ! किं जिणकप्पे होज्जा, थेरकप्पे होज्जा, कप्पातीते होज्जा ?

उ. गोयमा ! जिणकप्पे वा होज्जा, थेरकप्पे वा होज्जा, नो कप्पातीते होज्जा।

(३) एवं परिहारविसुद्धियसंजए वि।

प. (४) सुहुमसंपरायसंजए णं भंते ! किं जिणकप्पे होज्जा, थेरकप्पे होज्जा, कप्पातीते होज्जा ?

उ. गोयमा ! नो जिणकप्पे होज्जा, नो थेरकप्पे होज्जा, कप्पातीते होज्जा।

(५) एवं अहक्खायसंजए वि।

५. चरित्त-दारं–

प. (१) सामाइयसंजए णं भंते ! किं पुलाए होज्जा जाव सिणाए होज्जा ?

उ. गोयमा ! पुलाए वा होज्जा जाव कसायकुसीले वा होज्जा, नो नियंठे होज्जा, नो सिणाए होज्जा।

(२) एवं छेदोवट्ठावणिए वि।

प. (३) परिहारविसुद्धियसंजए णं भंते ! किं पुलाए होज्जा जाव सिणाए होज्जा ?

उ. गोयमा ! नो पुलाए होज्जा,
नो वउसे होज्जा,
नो पडिसेवणाकुसीले होज्जा,
कसायकुसीले होज्जा,
नो णियंठे होज्जा,
नो सिणाए होज्जा।

(४) एवं सुहुमसंपराए वि।

प. (५) अहक्खायसंजए णं भंते ! किं पुलाए होज्जा जाव सिणाए होज्जा ?

उ. गोयमा ! नो पुलाए होज्जा जाव नो कसायकुसीले होज्जा, णियंठे वा होज्जा, सिणाए वा होज्जा।

४. कल्प-द्वार–

प्र. (१) भन्ते ! सामायिक संयत क्या स्थित कल्पी होता है या अस्थित कल्पी होता है ?

उ. गौतम ! स्थित कल्पी भी होता है, अस्थित कल्पी भी होता है।

प्र. (२) भन्ते ! छेदोपस्थापनीय संयत क्या स्थित कल्पी होता है या अस्थित कल्पी होता है ?

उ. गौतम ! स्थित कल्पी होता है, अस्थित कल्पी नहीं होता है।

(३) इसी प्रकार परिहारविशुद्धिक संयत भी जानना चाहिए।

(४-५) शेष दोनों संयत सामायिक संयत के समान जानना चाहिए।

प्र. (१) भन्ते ! सामायिक संयत क्या जिन कल्पी होता है, स्थविर कल्पी होता है या कल्पातीत होता है ?

उ. गौतम ! जिन कल्पी भी होता है, स्थविर कल्पी भी होता है, कल्पातीत भी होता है।

प्र. (२) भन्ते ! छेदोपस्थापनीय संयत क्या जिन कल्पी होता है, स्थविर कल्पी होता है या कल्पातीत होता है ?

उ. गौतम ! जिन कल्पी भी होता है, स्थविर कल्पी भी होता है, किन्तु कल्पातीत नहीं होता है।

(३) इसी प्रकार परिहारविशुद्धिक संयत भी जानना चाहिए।

प्र. (४) भन्ते ! सूक्ष्मसंपराय संयत क्या जिन कल्पी होता है, स्थविर कल्पी होता है या कल्पातीत होता है ?

उ. गौतम ! जिन कल्पी नहीं होता है, स्थविर कल्पी भी नहीं होता है किन्तु कल्पातीत होता है।

(५) इसी प्रकार यथाख्यात संयत भी जानना चाहिए।

५. चारित्र-द्वार–

प्र. (१) भन्ते ! सामायिक संयत क्या पुलाक होता है यावत् स्नातक होता है ?

उ. गौतम ! पुलाक भी होता है यावत् कषायकुशील भी होता है। किन्तु निर्ग्रन्थ नहीं होता है और स्नातक भी नहीं होता है।

(२) इसी प्रकार छेदोपस्थापनीय संयत भी जानना चाहिए।

प्र. (३) भन्ते ! परिहारविशुद्धिक संयत क्या पुलाक होता है यावत् स्नातक होता है ?

उ. गौतम ! न पुलाक होता है।
न बकुश होता है।
न प्रतिसेवना कुशील होता है।
कषाय कुशील होता है।
निर्ग्रन्थ भी नहीं होता है।
स्नातक भी नहीं होता है।

(४) इसी प्रकार सूक्ष्म संपराय संयत भी जानना चाहिए।

प्र. (५) भन्ते ! यथाख्यात संयत क्या पुलाक होता है यावत् स्नातक होता है ?

उ. गौतम ! न पुलाक होता है यावत् न कषायकुशील होता है, किन्तु निर्ग्रन्थ होता है या स्नातक होता है।

उ. गोयमा ! जहण्णेणं-अट्ठ पवयणमायाओ,
उक्कोसेणं-चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जेज्जा, सुयवइरित्ते वा होज्जा।

८. तित्थ-दारं–

प. (१) सामाइय संजए णं भंते ! किं तित्थे होज्जा, अतित्थे होज्जा ?

उ. गोयमा ! तित्थे वा होज्जा, अतित्थे वा होज्जा।

प. जइ अतित्थे होज्जा, किं तित्थयरे होज्जा, पत्तेयबुद्धे होज्जा ?

उ. गोयमा ! तित्थयरे वा होज्जा, पत्तेयबुद्धे वा होज्जा।

प. छेदोवट्ठावणिए णं भंते ! किं तित्थे होज्जा, अतित्थे होज्जा ?

उ. गोयमा ! तित्थे होज्जा, नो अतित्थे होज्जा।
एवं परिहारविसुद्धिय संजए।
सेसा जहा सामाइयसंजए,

९. लिंग-दारं–

प. सामाइयसंजए णं भंते ! किं सलिंगे होज्जा, अन्नलिंगे होज्जा, गिहिलिंगे होज्जा ?

उ. गोयमा ! दव्वलिंगं पडुच्च-सलिंगे वा होज्जा, अन्नलिंगे वा होज्जा, गिहिलिंगे वा होज्जा।
भावलिंगं पडुच्च-नियमं सलिंगे होज्जा।
एवं छेदोवट्ठावणिए वि।

प. परिहारविसुद्धियसंजए णं भंते ! किं सलिंगे होज्जा, अन्नलिंगे होज्जा, गिहिलिंगे होज्जा ?

उ. गोयमा ! दव्वलिंगं पि, भावलिंगं पि पडुच्च–सलिंगे होज्जा, नो अन्नलिंगे होज्जा, नो गिहिलिंगे होज्जा,
सेसा जहा सामाइयसंजए।

१०. सरीर-दारं–

प. सामाइयसंजए णं भंते ! कइसु सरीरेसु होज्जा ?

उ. गोयमा ! तिसु वा, चउसु वा, पंचसु वा होज्जा।
तिसु होमाणे-तिसु ओरालिय-तेया-कम्मएसु होज्जा,
चउसु होमाणे-चउसु ओरालिए-वेउव्विय-तेया-कम्मएसु होज्जा,
पंचसु होमाणे-पंचसु ओरालिए - वेउव्विय-आहारग तेया-कम्मएसु होज्जा।
एवं छेदोवट्ठावणिए वि।

प. परिहारविसुद्धियसंजए णं भंते ! कइसु सरीरेसु होज्जा ?

उ. गोयमा ! तिसु ओरालिए-तेया-कम्मएसु होज्जा।
सुहुमसंपरायसंजए अहक्खायसंजए वि एवं चेव।

११. खेत्त-दारं–

प. सामाइयसंजए णं भंते ! किं कम्मभूमीए होज्जा, अकम्मभूमीए होज्जा ?

उ. गौतम ! जघन्य आठ प्रवचन माता का,
उत्कृष्ट चौदह पूर्व का अध्ययन होता है अथवा श्रुत रहित होता है अर्थात् केवलज्ञानी होता है।

८. तीर्थ-द्वार–

प्र. (१) भन्ते ! सामायिक संयत क्या तीर्थ में होता है या अतीर्थ में होता है ?

उ. गौतम ! तीर्थ में भी होता है और अतीर्थ में भी होता है।

प्र. यदि अतीर्थ में होता है तो क्या-तीर्थंकर होता है या प्रत्येकबुद्ध होता है ?

उ. गौतम ! तीर्थंकर भी होता है और प्रत्येकबुद्ध भी होता है।

प्र. भन्ते ! छेदोपस्थापनीय संयत क्या तीर्थ में होता है या अतीर्थ में होता है ?

उ. गौतम ! तीर्थ में होता है, अतीर्थ में नहीं होता है।
इसी प्रकार परिहारविशुद्धिक संयत भी जानना चाहिए।
शेष दो संयत सामायिक संयत के समान जानने चाहिए।

९. लिंग-द्वार–

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत क्या स्वलिंग में होता है, अन्य लिंग में होता है या गृहस्थ लिंग में होता है ?

उ. गौतम ! द्रव्यलिंग की अपेक्षा-स्वलिंग में भी होता है, अन्य लिंग में भी होता है और गृहस्थ लिंग में भी होता है।
भावलिंग की अपेक्षा-नियमतः स्वलिंग में ही होता है।
इसी प्रकार छेदोपस्थापनीय संयत भी जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! परिहार विशुद्धिक संयत क्या स्वलिंग में होता है, अन्यलिंग में होता है या गृहस्थ लिंग में होता है ?

उ. गौतम ! द्रव्यलिंग और भाव लिंग की अपेक्षा स्वलिंग में ही होता है, किन्तु अन्य लिंग और गृहस्थ लिंग में नहीं होता है।
शेष दो संयत सामायिक संयत के समान जानने चाहिए।

१०. शरीर-द्वार–

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत के कितने शरीर होते हैं ?

उ. गौतम ! तीन, चार या पांच शरीर होते हैं।
तीन शरीर हों तो–१. औदारिक, २. तैजस्, ३. कार्मण होते हैं।
चार शरीर हों तो–१. औदारिक, २. वैक्रिय, ३. तैजस्, ४. कार्मण।
पांच शरीर हों तो–१. औदारिक, २. वैक्रिय, ३. आहारक, ४. तैजस्, ५. कार्मण।
इसी प्रकार छेदोपस्थापनीय संयत भी जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! परिहारविशुद्धिक संयत के कितने शरीर होते हैं ?

उ. गौतम ! तीन शरीर होते हैं–१. औदारिक, २. तैजस्, ३. कार्मण।
सूक्ष्म संपराय संयत और यथाख्यात संयत भी इसी प्रकार जानने चाहिए।

११. क्षेत्र-द्वार–

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत क्या कर्मभूमि में होता है या अकर्मभूमि में होता है ?

प. जइ नो ओसप्पिणि नो उस्सप्पिणिकाले होज्जा किं सुसम-सुसमापलिभागे होज्जा, जाव दुस्सम-सुसमापलिभागे होज्जा ?

उ. गोयमा ! जम्मणं-संतिभावं पडुच्च–

१. नो सुसम-सुसमापलिभागे होज्जा,
२. नो सुसमापलिभागे होज्जा,
३. नो सुसम-दुस्समापलिभागे होज्जा,
४. दुस्सम-सुसमापलिभागे होज्जा।

साहरणं पडुच्च–अण्णयरे समाकाले होज्जा।

एवं छेदोवट्ठावणिए वि।

णवरं–उस्सप्पिणी ओसप्पिणीसु जहा संतिभावं तहा साहरणं पडुच्च वि।

जम्मण-संतिभावं पडुच्च–चउसु वि पलिभागेसु नत्थि।

सेसं जहा सामाइए।

प. परिहारविसुद्धियसंजए णं भन्ते ! किं ओसप्पिणिकाले होज्जा, उस्सप्पिणिकाले होज्जा, नो ओसप्पिणि नो उस्सप्पिणिकाले होज्जा ?

उ. गोयमा ! ओसप्पिणिकाले वा होज्जा, उस्सप्पिणिकाले वा होज्जा, नो ओसप्पिणि नो उस्सप्पिणिकाले नो होज्जा।

प. जइ ओसप्पिणिकाले होज्जा किं सुसम-सुसमाकाले होज्जा जाव दुस्सम-दुस्समाकाले होज्जा ?

उ. गोयमा ! जम्मणं पडुच्च–

१. नो सुसम-सुसमाकाले होज्जा,
२. नो सुसमाकाले होज्जा,
३. सुसम-दुस्समाकाले वा होज्जा,
४. दुस्सम-सुसमाकाले वा होज्जा,
५. नो दुस्समाकाले होज्जा,
६. नो दुस्सम-दुस्समाकाले होज्जा।

संतिभावं पडुच्च–

१. नो सुसम-सुसमाकाले होज्जा,
२. नो सुसमाकाले होज्जा,
३. सुसम-दुस्समाकाले वा होज्जा,
४. दुस्सम-सुसमाकाले वा होज्जा,
५. दुस्समाकाले वा होज्जा,
६. नो दुस्सम-दुस्समाकाले होज्जा।

प. जइ उस्सप्पिणिकाले होज्जा किं दुस्सम-दुस्समाकाले होज्जा जाव सुसम-सुसमाकाले होज्जा ?

उ. गोयमा ! जम्मणं पडुच्च–

१. नो दुस्सम-दुस्समाकाले होज्जा,
२. नो दुस्समाकाले होज्जा,
३. दुस्सम-सुसमाकाले वा होज्जा,
४. सुसम-दुस्समाकाले वा होज्जा,

प्र. यदि नो अवसर्पिणी नो उत्सर्पिणी काल में होता है तो क्या अपरिवर्तित सुसम-सुसमा काल में होता है यावत् अपरिवर्तित दुसम-सुसमा काल में होता है ?

उ. गौतम ! जन्म और अस्तित्व भाव की अपेक्षा–

१. अपरिवर्तित सुसम-सुसमा काल में नहीं होता है,
२. अपरिवर्तित सुसमा काल में नहीं होता है,
३. अपरिवर्तित सुसम-दुसमा काल में नहीं होता है,
४. अपरिवर्तित दुसम-सुसमा काल में होता है।

साहरण की अपेक्षा–किसी भी अपरिवर्तित काल में होता है।

इसी प्रकार छेदोपस्थापनीय संयत भी जानना चाहिए।

विशेष–उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल में अस्तित्व भाव के समान ही साहरण की अपेक्षा का कथन है।

जन्म और अस्तित्व की अपेक्षा–चारों ही पलिभागों में नहीं होता है।

शेष कथन सामायिक संयत के समान जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! परिहारविशुद्धिक संयत क्या अवसर्पिणी काल में होता है, उत्सर्पिणी काल में होता है या नो अवसर्पिणी नो उत्सर्पिणी काल में होता है ?

उ. गौतम ! अवसर्पिणी काल में होता है, उत्सर्पिणी काल में होता है, किन्तु नो अवसर्पिणी नो उत्सर्पिणी काल में नहीं होता है।

प्र. यदि अवसर्पिणी काल में होता है तो क्या सुसम-सुसमा काल में होता है यावत् दुसम-दुसमा काल में होता है ?

उ. गौतम ! जन्म की अपेक्षा–

१. सुसम-सुसमा काल में नहीं होता है,
२. सुसमा काल में नहीं होता है,
३. सुसम-दुसमा काल में होता है,
४. दुसम-सुसमा काल में होता है,
५. दुसमा काल में नहीं होता है,
६. दुसम-दुसमा काल में नहीं होता है।

अस्तित्व भाव की अपेक्षा–

१. सुसम-सुसमा काल में नहीं होता है,
२. सुसमा काल में नहीं होता है,
३. सुसम-दुसमा काल में होता है,
४. दुसम-सुसमा काल में होता है,
५. दुसमा काल में होता है,
६. दुसम-दुसमा काल में नहीं होता है।

प्र. यदि उत्सर्पिणी काल में होता है तो क्या दुसम-दुसमा काल में होता है यावत् सुसम-सुसमा काल में होता है ?

उ. गौतम ! जन्म की अपेक्षा–

१. दुसम-दुसमा काल में नहीं होता है,
२. दुसमा काल में नहीं होता है,
३. दुसम-सुसमा काल में होता है,
४. सुसम-दुसमा काल में होता है,

२. नो दुस्समाकाले होज्जा,
३. दुस्सम-सुसमाकाले वा होज्जा,
४. सुसम-दुस्समाकाले वा होज्जा,
५. नो सुसमाकाले होज्जा,
६. नो सुसम-सुसमाकाले होज्जा।
साहरणं पडुच्च—अण्णयरे समाकाले होज्जा।

प. जइ नो ओसप्पिणी नो उस्सप्पिणिकाले होज्जा, किं—
१. सुसम-सुसमापलिभागे होज्जा,
२. सुसमापलिभागे होज्जा,
३. सुसम-दुस्समापलिभागे होज्जा,
४. दुस्सम-सुसमापलिभागे होज्जा ?

उ. गोयमा ! जम्मणं-संतिभावं पडुच्च—
१. नो सुसम-सुसमापलिभागे होज्जा,
२. नो सुसमापलिभागे होज्जा,
३. नो सुसम-दुस्समापलिभागे होज्जा,
४. दुस्सम-सुसमापलिभागे होज्जा।
साहरणं पडुच्च—अण्णयरे पलिभागे होज्जा।
एवं अहक्खाओ वि।

१३. गइ-दारं—

प. सामाइयसंजए णं भन्ते ! कालगए समाणे कं गइ गच्छइ ?

उ. गोयमा ! देवगइं गच्छइ।

प. देवगइं गच्छमाणे किं भवणवासीसु उववज्जेज्जा जाव वेमाणिएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! नो भवणवासीसु,
नो वाणमंतरेसु,
नो जोइसेसु उववज्जेज्जा,
वेमाणिएसु पुण उववज्जेज्जा।
वेमाणिएसु उववज्जमाणे—
जहण्णेणं—सोहम्मे कप्पे,
उक्कोसेणं—अणुत्तरविमाणेसु।
एवं छेदोवट्ठावणिए वि।
एवं परिहारविसुद्धियसंजए वि।
णवरं—उक्कोसेणं सहस्सारे कप्पे उववज्जेज्जा।
एवं सुहुम संपराय संजए वि।
णवरं—अजहण्णमणुक्कोसेणं अणुत्तरविमाणेसु उववज्जेज्जा।
अहक्खाय संजए वि जहा सुहुमसंपराए।

णवरं—अत्थेगइए सिज्झइ जाव सव्व दुक्खाणमंतं करेइ।

प. सामाइयसंजए णं भन्ते ! देवलोगेसु उववज्जमाणे किं [illegible] उववज्जेज्जा, [illegible]

१३. गति-द्वार—

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत काल धर्म प्राप्त होने पर किस गति को प्राप्त होता है ?

उ. गौतम ! देवगति में उत्पन्न होता है।

प्र. देवगति में उत्पन्न होता हुआ क्या भवनवासियों में उत्पन्न होता है यावत् वैमानिकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! न भवनवासियों में उत्पन्न होता है,
न वाणव्यंतरों में उत्पन्न होता है,
न ज्योतिषी देवों में उत्पन्न होता है,
किन्तु वैमानिक देवों में उत्पन्न होता है।
वैमानिकों में उत्पन्न होता हुआ—
जघन्य—सौधर्म कल्प में उत्पन्न होता है,
उत्कृष्ट—अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होता है।
इसी प्रकार छेदोपस्थापनीय संयत भी जानना चाहिए।
परिहारविशुद्धिक संयत भी इसी प्रकार जानना चाहिए।
विशेष—उत्कृष्ट सहस्रार कल्प में उत्पन्न होता है।
इसी प्रकार सूक्ष्म संपराय संयत भी जानना चाहिए।
विशेष—अजघन्य अनुत्कृष्ट (अर्थात् [illegible]) अनुत्तर विमान में ही उत्पन्न होता है।
यथाख्यातसंयत सूक्ष्म संपराय संयत के समान जानना चाहिए।
विशेष—कोई सिद्ध भी होता है यावत् [illegible]

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत [illegible]

सामाणियत्ताए उववज्जेज्जा,
तायत्तीसगत्ताए उववज्जेज्जा,
लोगपालत्ताए उववज्जेज्जा,
अहमिंदत्ताए उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! अविराहणं पडुच्च-इंदत्ताए वा उववज्जेज्जा जाव अहमिंदत्ताए वा उववज्जेज्जा।
विराहणं पडुच्च-अण्णयरेसु उववज्जेज्जा।

एवं छेदोवट्ठावणिए वि।

प. परिहारविसुद्धियसंजए णं भन्ते ! वेमाणिएसु उववज्जमाणे, किं इंदत्ताए उववज्जेज्जा जाव अहमिंदत्ताए उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! अविराहणं पडुच्च-
इंदत्ताए वा उववज्जेज्जा,
सामाणियत्ताए वा उववज्जेज्जा,
तायत्तीसगत्ताए वा उववज्जेज्जा,
लोगपालत्ताए वा उववज्जेज्जा,
नो अहमिंदत्ताए उववज्जेज्जा।
विराहणं पडुच्च-अण्णयरेसु उववज्जेज्जा।

प. सुहुमसंपरायसंजए णं भन्ते ! वेमाणिएसु उववज्जमाणे किं इंदत्ताए उववज्जेज्जा जाव अहमिंदत्ताए उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! अविराहणं पडुच्च-नो इंदत्ताए उववज्जेज्जा जाव नो लोगपालत्ताए उववज्जेज्जा।
अहमिंदत्ताए उववज्जेज्जा।
विराहणं पडुच्च-अण्णयरेसु उववज्जेज्जा।

अहक्खायसंजए वि एवं चेव।

प. सामाइयसंजयस्स णं भन्ते ! वेमाणिएसु उववज्जमाणस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं-दो पलिओवमाइं,
उक्कोसणं-तेत्तीसं सागरोवमाइं।
एवं छेदोवट्ठावणिए वि।
एवं परिहारविसुद्धिए वि।
णवरं-उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमाइं।
एवं सुहुमसंपराए वि।
णवरं-अजहन्नमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।
अहक्खायसंजयस्स जहा सुहुमसंपरायसंजयस्स।

१४. संजम-दारं-

प. सामाइयसंजयस्स णं भन्ते ! केवइया संजमठाणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा संजमठाणा पण्णत्ता।

सामानिक देव रूप में उत्पन्न होता है,
त्रायस्त्रिंशक देव रूप में उत्पन्न होता है,
लोकपाल रूप में उत्पन्न होता है,
अहमिन्द्र रूप में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! वह यदि अविराधक हो तो-इन्द्र रूप में उत्पन्न होता है यावत् अहमिन्द्र रूप में उत्पन्न होता है।
विराधक हो तो-इन पदवियों के सिवाय अन्य देव रूप में उत्पन्न होता है।

इसी प्रकार छेदोपस्थापनीय संयत भी जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! परिहारविशुद्धिक संयत वैमानिकों में उत्पन्न होता तो क्या इन्द्र रूप में उत्पन्न होता है यावत् अहमिन्द्र रूप में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! यदि वह अविराधक हो तो-
इन्द्र रूप में उत्पन्न होता है,
सामानिक देव रूप में उत्पन्न होता है,
त्रायस्त्रिंशक देव रूप में उत्पन्न होता है,
लोकपाल रूप में उत्पन्न होता है किन्तु
अहमिन्द्र रूप में उत्पन्न नहीं होता है।
यदि विराधक हो तो-इन पदवियों के सिवाय अन्य देव रूप में उत्पन्न होता है।

प्र. भन्ते ! सूक्ष्मसम्पराय संयत वैमानिकों में उत्पन्न होता हुआ क्या इन्द्र रूप में उत्पन्न होता है यावत् अहमिन्द्र रूप में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! यदि वह अविराधक हो तो-इन्द्र रूप में उत्पन्न नहीं होता है यावत् लोकपाल रूप में भी उत्पन्न नहीं होता है।
किन्तु अहमिन्द्र रूप में ही उत्पन्न होता है।
विराधक हो तो-इन पदवियों के अतिरिक्त अन्य देव रूप में उत्पन्न होता है।

इसी प्रकार यथाख्यात संयत भी जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! वैमानिक में उत्पन्न हुए सामायिक संयत की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य-दो पल्योपम की,
उत्कृष्ट-तेतीस सागरोपम की।
इसी प्रकार छेदोपस्थापनीय संयत की स्थिति जाननी चाहिए।
इसी प्रकार परिहारविशुद्धक संयत की स्थिति जाननी चाहिए।
विशेष-उत्कृष्ट अठारह सागरोपम की स्थिति है।
इसी प्रकार सूक्ष्म संपराय संयत की स्थिति जाननी चाहिए।
विशेष-अजघन्य अनुत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति है।
यथाख्यातसंयत सूक्ष्म संपराय संयत के समान जानना चाहिए।

१४. संयम-द्वार-

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत के कितने संयम स्थान कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! असंख्य संयम स्थान कहे गए हैं।

एवं जाव परिहारविसुद्धियसंजयस्स।

प. सुहुमसंपरायसंजयस्स णं भन्ते ! केवइया संजमठाणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा अंतोमुहुत्तिया संजमठाणा पण्णत्ता।

प. अहक्खायसंजयस्स णं भन्ते ! केवइया संजमठाणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! एगे अजहण्णमणुक्कोसए संजमठाणे।

अप्प-बहुयं–

प. एएसि णं भन्ते ! सामाइय, छेदोवट्ठावणिय, परिहारविसुद्धिय, सुहुमसंपराय, अहक्खायसंजयाणं संजमठाणाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा अहक्खायसंजयस्स एगे अजहण्णमणुक्कोसए संजमठाणे।

२. सुहुमसंपरायसंजयस्स अंतोमुहुत्तिया संजमठाणा असंखेज्जगुणा।

३. परिहारविसुद्धियसंजयस्स संजमठाणा असंखेज्जगुणा।

४. सामाइयसंजयस्स छेदोवट्ठावणियसंजयस्स य एएसि णं संजमठाणा दोण्ह वि तुल्ला असंखेज्जगुणा।

१५. निकास-दारं–

प. सामाइयसंजयस्स णं भन्ते ! केवइया चरित्तपज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अणंता चरित्तपज्जवा पण्णत्ता।

एवं जाव अहक्खायसंजयस्स।

प. सामाइयसंजए णं भन्ते ! सामाइयसंजयस्स सट्ठाणं-सन्निगासे णं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए?

उ. गोयमा ! सिय हीणे, सिय तुल्ले, सिय अब्भहिए, छट्ठाणवडिए।

प. सामाइयसंजए णं भन्ते ! छेदोवट्ठावणियसंजयस्स परट्ठाण-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए?

उ. गोयमा ! सिय हीणे, सिय तुल्ले, सिय अब्भहिए, छट्ठाणवडिए।

एवं परिहारविसुद्धिएण समं वि।

प. सामाइयसंजए णं भन्ते ! सुहुमसंपरायसंजयस्स परट्ठाण-सन्निगासे णं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए?

उ. गोयमा ! हीणे, नो तुल्ले, नो अब्भहिए, अणंतगुणहीणे।

एवं अहक्खायसंजएण समं वि।

छेदोवट्ठावणिए परिहारविसुद्धिए वि सव्वा वत्तव्वया जहा सामाइयस्स।

इसी प्रकार परिहारविशुद्धिक संयत पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! सूक्ष्म संपराय संयत के कितने संयम स्थान कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अन्तर्मुहूर्त के समय जितने असंख्य संयम स्थान कहे गए हैं।

प्र. भन्ते ! यथाख्यात संयत के कितने संयम स्थान कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अजघन्य-अनुत्कृष्ट एक संयम स्थान है।

अल्प-बहुत्व–

प्र. भन्ते ! सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धिक, सूक्ष्म संपराय और यथाख्यात संयतों के संयम स्थानों में से कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प यथाख्यातसंयत का अजघन्य-अनुत्कृष्ट एक संयम स्थान है।

२. (उससे) सूक्ष्म संपराय संयत के अन्तर्मुहूर्त वाले संयम स्थान असंख्यगुणा हैं।

३. (उससे) परिहारविशुद्धिक संयत के संयम स्थान असंख्यगुणा हैं।

४. (उससे) सामायिक संयत और छेदोपस्थापनीय संयत इन दोनों के संयम स्थान परस्पर तुल्य एवं असंख्यगुणा हैं।

१५. सन्निकर्ष-द्वार–

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत के कितने चारित्र पर्यव कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त चारित्र पर्यव कहे गए हैं।

इसी प्रकार यथाख्यात संयत पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! एक सामायिक संयत के चारित्र पर्यवों से अन्य सामायिक संयत के चारित्र पर्यव क्या हीन हैं, तुल्य हैं या अधिक हैं?

उ. गौतम ! कभी हीन है, कभी तुल्य है या कभी अधिक है अर्थात् छः स्थान पतित है।

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत के चारित्र पर्यव छेदोपस्थापनीय संयत के चारित्र पर्यवों से क्या हीन हैं, तुल्य हैं या अधिक हैं?

उ. गौतम ! कभी हीन है, कभी तुल्य है या कभी अधिक है अर्थात् छः स्थान पतित है।

परिहारविशुद्धिक संयत के साथ भी तुलना इसी प्रकार करनी चाहिए।

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत के चारित्र पर्यव सूक्ष्म संपराय संयत के चारित्र पर्यवों से क्या हीन हैं, तुल्य हैं या अधिक हैं?

उ. गौतम ! हीन हैं, न तुल्य हैं न अधिक हैं, अनन्तगुण हीन हैं।

यथाख्यात संयत के चारित्र पर्यवों के साथ तुलना भी इसी प्रकार है।

छेदोपस्थापनीय संयत और परिहारविशुद्धिक संयत का सम्पूर्ण कथन सामायिक संयत के समान है।

हेट्ठिल्लेसु तिसु वि समं-छट्ठाणवडिए, उवरिल्लेसु दोस समं हीणे।

प. सुहुमसंपरायसंजए णं भन्ते ! सामाइयसंजयस्स परट्ठाणं-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए?

उ. गोयमा ! नो हीणे, नो तुल्ले, अब्भहिए अणंतगुणमब्भहिए।

एवं छेदोवट्ठावणिय-परिहारविसुद्धिएण वि समं।

सट्ठाणे–सिय हीणे, सिय तुल्ले, सिय अब्भहिए।

जइ हीणे–अणंतगुण हीणे।

अह अब्भहिए–अणंतगुणमब्भहिए।

प. सुहुमसंपरायसंजए अहक्खायसंजयस्स य परट्ठाणं-सन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए?

उ. गोयमा ! हीणे, नो तुल्ले, नो अब्भहिए, अणंतगुणहीणे।

अहक्खाय चरित्ते वि–हेट्ठिल्लाणं चउण्ह समं नो हीणे, नो तुल्ले, अब्भहिए–अणंतगुणमब्भहिए।

सट्ठाणे–नो हीणे, तुल्ले, नो अब्भहिए।

अप्पा-बहुयं–

प. एएसि णं भन्ते ! १. सामाइय, २. छेदोवट्ठावणिय, ३. परिहारविसुद्धिय, ४. सुहुमसंपराय, ५. अहक्खायसंजयाणं जहन्नुक्कोसगाणं चरित्तपज्जवाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सामाइयसंजयस्स छेदोवट्ठावणियसंजयस्स य एएसि णं जहन्नगा चारित्तपज्जवा दोण्ह वि तुल्ला सव्वत्थोवा।

२. परिहारविसुद्धियसंजयस्स जहन्नगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा।

३. तस्स चेव उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा।

४. सामाइयसंजयस्स छेओवट्ठावणियसंजयस्स य, एएसि णं उक्कोसगा चरित्तपज्जवा दोण्ह वि तुल्ला अणंतगुणा।

५. सुहुमसंपरायसंजयस्स जहन्नगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा।

६. तस्स चेव उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा।

७. अहक्खायसंजयस्स अजहन्नमणुक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा।

१६. जोग-दारं–

प. सामाइयसंजए णं भन्ते ! किं सजोगी होज्जा, अजोगी होज्जा?

उ. गोयमा ! सजोगी होज्जा, नो अजोगी होज्जा।

अर्थात् नीचे के तीनों चारित्र की अपेक्षा से–छः स्थान पतित हैं एवं ऊपर के दो चारित्र से अनन्त गुण हीन हैं।

प्र. भन्ते ! सूक्ष्म सम्पराय संयत के चारित्र पर्यव सामायिक संयत के चारित्र पर्यवों से क्या हीन हैं, तुल्य हैं या अधिक हैं?

उ. गौतम ! न हीन हैं, न तुल्य हैं किन्तु अधिक हैं वह भी अनन्त गुण अधिक हैं।

छेदोपस्थापनीय संयत और परिहारविशुद्धिक संयत के साथ तुलना भी इसी प्रकार करनी चाहिए।

स्वस्थान की अपेक्षा अर्थात् एक सूक्ष्म संपराय संयत के चारित्र पर्यव अन्य सूक्ष्म संपराय संयत के चारित्र पर्यवों से कभी हीन हैं, कभी तुल्य हैं और कभी अधिक हैं।

यदि हीन हैं तो–अनन्त गुण हीन हैं।

यदि अधिक हैं तो–अनन्त गुण अधिक हैं।

प्र. भन्ते ! सूक्ष्म संपराय संयत के चारित्र पर्यव यथाख्यात संयत चारित्र पर्यवों से क्या हीन हैं, तुल्य हैं या अधिक हैं?

उ. गौतम ! हीन हैं, तुल्य नहीं हैं एवं अधिक भी नहीं हैं किन्तु अनन्त गुण हीन हैं।

यथाख्यात संयत के चारित्र पर्यव नीचे के चार संयतों के चारित्र पर्यवों से न हीन हैं, न तुल्य हैं किन्तु अधिक हैं, वे भी अनन्त गुण अधिक हैं।

(यथाख्यात संयत के चारित्र पर्यव) स्वस्थान की अपेक्षा न हीन हैं, न अधिक हैं किन्तु तुल्य होते हैं।

अल्प-बहुत्व–

प्र. भन्ते ! १. सामायिक संयत, २. छेदोपस्थापनीय संयत, ३. परिहारविशुद्धिक संयत, ४. सूक्ष्मसंपराय संयत और ५. यथाख्यात संयत के जघन्य और उत्कृष्ट चारित्र पर्यवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सामायिक संयत और छेदोपस्थापनीय संयत इन दोनों के जघन्य चारित्र पर्यव सबसे अल्प हैं और परस्पर तुल्य हैं।

२. (उससे) परिहारविशुद्धिक संयत के जघन्य चारित्र पर्यव अनन्त गुणा हैं।

३. (उससे) उसी के उत्कृष्ट चारित्र पर्यव अनन्त गुणा हैं।

४. (उससे) सामायिक संयत और छेदोपस्थापनीय संयत इन दोनों के उत्कृष्ट चारित्र पर्यव परस्पर तुल्य और अनन्त गुणा हैं।

५. (उससे) सूक्ष्म संपराय संयत के जघन्य चारित्र पर्यव अनन्त गुणा हैं।

६. (उससे) उसी के उत्कृष्ट चारित्र पर्यव अनन्त गुणा हैं।

७. (उससे) यथाख्यात संयत के अजघन्य-अनुत्कृष्ट चारित्र पर्यव अनन्त गुणा हैं।

१६. योग-द्वार–

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत क्या सयोगी होता है या अयोगी होता है?

उ. गौतम ! सयोगी होता है, अयोगी नहीं होता है।

प. जइ सजोगी होज्जा किं मणजोगी होज्जा, वइजोगी होज्जा, कायजोगी होज्जा?

उ. गोयमा ! मणजोगी वा होज्जा, वइजोगी वा होज्जा, कायजोगी वा होज्जा।

एवं जाव सुहुमसंपरायसंजए।

प. अहक्खायसंजए णं भन्ते! किं सजोगी होज्जा, अजोगी होज्जा?

उ. गोयमा ! सजोगी वा होज्जा, अजोगी वा होज्जा।

प. जइ सजोगी होज्जा किं मणजोगी होज्जा, वइजोगी होज्जा, कायजोगी होज्जा?

उ. गोयमा ! मणजोगी वा होज्जा, वइजोगी वा होज्जा, कायजोगी वा होज्जा।

१७. उवओग-दारं–

प. सामाइयसंजए णं भन्ते ! किं सागारोवउत्ते होज्जा, अणागारोवउत्ते होज्जा?

उ. गोयमा ! सागारोवउत्ते वा होज्जा, अणागारोवउत्ते वा होज्जा।

एवं जाव अहक्खाए।

णवरं–सुहुमसंपराए सागारोवउत्ते होज्जा, नो अणागारोवउत्ते होज्जा।

१८. कसाय-दारं–

प. सामाइयसंजए णं भन्ते ! किं सकसायी होज्जा, अकसायी होज्जा?

उ. गोयमा ! सकसायी होज्जा, नो अकसायी होज्जा।

प. जइ सकसायी होज्जा, से णं भन्ते ! कइसु कसाएसु होज्जा?

उ. गोयमा ! चउसु वा, तिसु वा, दोसु वा होज्जा।

चउसु होमाणे–चउसु १. संजलण कोह, २. माण, ३. माया, ४. लोभेसु होज्जा।

तिसु होमाणे–तिसु १. संजलण माण, २. माया, ३. लोभेसु होज्जा।

दोसु होमाणे–दोसु १. संजलण माया, २. लोभेसु होज्जा।

एवं छेदोवट्ठावणिए वि।

प. परिहारविसुद्धिए णं भन्ते ! किं सकसायी होज्जा, अकसायी होज्जा?

उ. गोयमा ! सकसायी होज्जा, नो अकसायी होज्जा।

प. जइ सकसायी होज्जा, से णं भन्ते ! कइसु कसाएसु होज्जा?

उ. गोयमा ! चउसु संजलण कोह-माण-माया-लोभेसु होज्जा।

प. सुहुमसंपराए णं भन्ते ! किं सकसायी होज्जा, अकसायी होज्जा?

उ. गोयमा ! सकसायी होज्जा, नो अकसायी होज्जा।

प. जइ सकसायी होज्जा, से णं भन्ते ! कइसु कसाएसु होज्जा?

उ. गोयमा ! एगम्मि संजलणे लोभे होज्जा।

प्र. यदि सयोगी होता है तो क्या मनयोगी होता है, वचनयोगी होता है या काययोगी होता है?

उ. गौतम ! मनयोगी भी होता है, वचनयोगी भी होता है और काययोगी भी होता है।

इसी प्रकार सूक्ष्म संपराय संयत पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! यथाख्यात संयत क्या सयोगी होता है या अयोगी होता है?

उ. गौतम ! सयोगी भी होता है और अयोगी भी होता है।

प्र. यदि सयोगी होता है तो क्या मनयोगी होता है, वचनयोगी होता है या काययोगी होता है?

उ. गौतम ! मनयोगी भी होता है, वचनयोगी भी होता है और काययोगी भी होता है।

१७. उपयोग-द्वार–

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत क्या साकारोपयुक्त होता है या अनाकारोपयुक्त होता है?

उ. गौतम ! साकारोपयुक्त भी होता है और अनाकारोपयुक्त भी होता है।

इस प्रकार यथाख्यात संयत पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष–सूक्ष्म संपराय संयत साकारोपयुक्त ही होता है अनाकारोपयुक्त नहीं होता है।

१८. कषाय-द्वार–

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत क्या सकषायी होता है या अकषायी होता है?

उ. गौतम ! सकषायी होता है अकषायी नहीं होता है।

प्र. भन्ते ! यदि सकषायी होता है तो कितने कषाय होते हैं?

उ. गौतम ! चार, तीन या दो कषाय होते हैं।

चार हों तो–१. संज्वलन क्रोध, २. मान, ३. माया, ४. लोभ।

तीन हों तो–१. संज्वलन मान, २. माया, ३. लोभ।

दो हों तो–१. संज्वलन माया और २. लोभ होते हैं।

इसी प्रकार छेदोपस्थापनीय संयत भी जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! परिहारविशुद्धिक संयत क्या सकषायी होता है या अकषायी होता है?

उ. गौतम ! सकषायी होता है, अकषायी नहीं होता है।

प्र. भन्ते ! वह यदि सकषायी होता है तो कितने कषाय होते हैं?

उ. गौतम ! संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय होते हैं।

प्र. भन्ते ! सूक्ष्म संपराय संयत क्या सकषायी होता है या अकषायी होता है?

उ. गौतम ! सकषायी होता है, अकषायी नहीं होता है।

प्र. भन्ते ! यदि सकषायी होता है तो कितने कषाय होते हैं?

उ. गौतम ! एक संज्वलन लोभ होता है।

प. अहक्खायसंजए णं भंते ! किं सकसायी होज्जा, अकसायी होज्जा?

उ. गोयमा ! नो सकसायी होज्जा, अकसायी होज्जा।

प. जइ अकसायी होज्जा, किं उवसंतकसायी होज्जा, खीणकसायी होज्जा?

उ. गोयमा ! उवसंतकसायी वा होज्जा, खीणकसायी वा होज्जा।

प्र. भन्ते ! यथाख्यात संयत क्या सकषायी होता है या अकषायी होता है?

उ. गौतम ! सकषायी नहीं होता है, अकषायी होता है।

प्र. यदि वह अकषायी होता है तो क्या उपशान्त कषायी होता है या क्षीणकषायी होता है?

उ. गौतम ! उपशान्त कषायी भी होता है और क्षीण कषायी भी होता है।

१९. लेस्सा-दारं–

प. सामाइयसंजए णं भंते ! किं सलेस्से होज्जा, अलेस्से होज्जा?

उ. गोयमा ! सलेस्से होज्जा, नो अलेस्से होज्जा।

प. जइ सलेस्से होज्जा, से णं भन्ते ! कइसु लेसासु होज्जा?

उ. गोयमा ! छसु लेसासु होज्जा, तं जहा–

१. कण्हलेसाए जाव ६. सुक्कलेसाए।

एवं छेदोवट्ठावणिए वि।

प. परिहारविसुद्धियसंजए णं भंते ! किं सलेस्से होज्जा, अलेस्से होज्जा?

उ. गोयमा ! सलेस्से होज्जा, नो अलेस्से होज्जा।

प. जइ सलेस्से होज्जा, से णं भन्ते ! कइसु लेसासु होज्जा?

उ. गोयमा ! तिसु विसुद्धलेसासु होज्जा, तं जहा–

१. तेउलेसाए, २. पम्हलेसाए, ३. सुक्कलेसाए।

प. सुहुमसंपरायसंजए णं भंते ! किं सलेस्से होज्जा, अलेस्से होज्जा?

उ. गोयमा ! सलेस्से होज्जा, नो अलेस्से होज्जा।

प. जइ सलेस्से होज्जा–से णं भंते ! कइसु लेसासु होज्जा?

उ. गोयमा ! एक्काए सुक्कलेसाए होज्जा।

प. अहक्खायसंजए णं भंते ! किं सलेस्से होज्जा, अलेस्से होज्जा?

उ. गोयमा ! सलेस्से वा होज्जा, अलेस्से वा होज्जा।

प. जइ सलेस्से होज्जा, से णं भंते ! कइसु लेसासु होज्जा?

उ. गोयमा ! एगाए सुक्कलेसाए होज्जा।

१९. लेश्या-द्वार–

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत क्या सलेश्यी होता है या अलेश्यी होता है?

उ. गौतम ! सलेश्यी होता है, अलेश्यी नहीं होता है।

प्र. भन्ते ! यदि वह सलेश्यी होता है तो कितनी लेश्यायें होती हैं?

उ. गौतम ! छः लेश्याएँ होती हैं, यथा–

१. कृष्णलेश्या यावत् ६. शुक्ललेश्या।

इसी प्रकार छेदोपस्थापनीय संयत भी जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! परिहारविशुद्धिक संयत क्या सलेश्यी होता है या अलेश्यी होता है?

उ. गौतम ! सलेश्यी होता है, अलेश्यी नहीं होता है।

प्र. भन्ते ! यदि वह सलेश्यी होता है तो कितनी लेश्यायें होती हैं?

उ. गौतम ! तीन विशुद्ध लेश्यायें होती है, यथा–

१. तेजोलेश्या, २. पद्मलेश्या, ३. शुक्ललेश्या।

प्र. भन्ते ! सूक्ष्म संपराय संयत क्या सलेश्यी होता है या अलेश्यी होता है?

उ. गौतम ! सलेश्यी होता है, अलेश्यी नहीं होता है।

प्र. भन्ते ! यदि वह सलेश्यी होता है तो कितनी लेश्यायें होती हैं?

उ. गौतम ! एक शुक्ललेश्या होती है।

प्र. भन्ते ! यथाख्यात संयत क्या सलेश्यी होता है या अलेश्यी होता है?

उ. गौतम ! सलेश्यी भी होता है और अलेश्यी भी होता है।

प्र. भन्ते ! यदि वह सलेश्यी होता है तो कितनी लेश्यायें होती हैं?

उ. गौतम ! एक शुक्ललेश्या होती है।

२०. परिणाम-दारं–

प. सामाइयसंजए णं भंते ! किं १. वड्ढमाणपरिणामे होज्जा,

२. हायमाण परिणामे होज्जा,

३. अवट्ठियपरिणामे होज्जा?

उ. गोयमा ! १. वड्ढमाणपरिणामे वा होज्जा,

२. हायमाणपरिणामे वा होज्जा,

३. अवट्ठिपरिणामे वा होज्जा।

एवं जाव परिहारविसुद्धियसंजए।

प. सुहुमसंपरायसंजए णं भंते ! किं वड्ढमाणपरिणामे होज्जा, हायमाणपरिणामे होज्जा, अवट्ठियपरिणामे होज्जा?

उ. गोयमा ! वड्ढमाणपरिणामे वा होज्जा, हायमाणपरिणामे वा होज्जा, नो अवट्ठियपरिणामे होज्जा।

२०. परिणाम-द्वार–

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत क्या १. वर्धमान परिणाम वाला होता है,

२. हायमान परिणाम वाला होता है,

३. अवस्थित परिणाम वाला होता है?

उ. गौतम ! १. वर्धमान परिणाम वाला भी होता है,

२. हायमान परिणाम वाला भी होता है,

३. अवस्थित परिणाम वाला भी होता है।

इसी प्रकार परिहारविशुद्धिक संयत पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! सूक्ष्म संपराय संयत क्या वर्धमान परिणाम वाला होता है, हायमान परिणाम वाला होता है या अवस्थित परिणाम वाला होता है?

उ. गौतम ! वर्धमान परिणाम वाला भी होता है, हायमान परिणाम वाला भी होता है किन्तु अवस्थित परिणाम वाला नहीं होता है।

प. अहक्खायसंजए णं भंते ! किं वड्ढमाणपरिणामे होज्जा, हायमाणपरिणामे होज्जा, अवट्ठियपरिणामे होज्जा ?

उ. गोयमा ! वड्ढमाणपरिणामे होज्जा, नो हायमाण परिणामे होज्जा, अवट्ठियपरिणामे वा होज्जा।

प. सामाइयसंजए णं भंते ! केवइयं कालं वड्ढमाणपरिणामे होज्जा ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–एक्कं समयं, उक्कोसेणं–अंतोमुहुत्तं।

प. केवइयं कालं हायमाणपरिणामे होज्जा ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–एक्कं समयं, उक्कोसेणं–अंतोमुहुत्तं।

प. केवइयं कालं अवट्ठिय–परिणामे होज्जा ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–एक्कं समयं, उक्कोसेणं–सत्त समया।

एवं जाव परिहारविसुद्धिए।

प. सुहुमसंपरायसंजए णं भंते ! केवइयं कालं वड्ढमाण-परिणामे होज्जा ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–एक्कं समयं, उक्कोसेणं–अंतोमुहुत्तं।

हायमाणपरिणामे वि एवं चेव।

प. अहक्खायसंजए णं भंते ! केवइयं कालं वड्ढमाण-परिणामे होज्जा ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं–अंतोमुहुत्तं।

प. केवइयं कालं अवट्ठियपरिणामे होज्जा ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–एक्कं समयं। उक्कोसेणं–देसूणा पुव्वकोडी।

२१. कम्मबन्ध-दारं–

प. सामाइयसंजए णं भंते ! कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! सत्तविह बंधए वा, अट्ठविह बंधए वा।

सत्त बंधमाणे आउयवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ बंधइ।

अट्ठ बंधमाणे पडिपुण्णाओ अट्ठ कम्मपगडीओ बंधइ।

एवं जाव परिहारविसुद्धियसंजए।

प. सुहुमसंपरायसंजए णं भंते ! कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! आउय-मोहणिज्जवज्जाओ छ कम्मपगडीओ बंधइ।

प. अहक्खायसंजए णं भंते ! कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! एगविह बंधए वा, अबंधए वा।

एगं बंधमाणे एगं वेयणिज्जं कम्मं बंधइ।

२२. कम्मवेय-दारं–

प. सामाइयसंजए णं भंते ! कइ कम्मपगडीओ वेएइ ?

उ. गोयमा ! नियमं अट्ठ कम्मपगडीओ वेएइ।

प्र. भन्ते ! यथाख्यात संयत क्या वर्धमान परिणाम वाला होता है, हायमान परिणाम वाला होता है या अवस्थित परिणाम वाला होता है ?

उ. गौतम ! वर्धमान परिणाम वाला होता है, हायमान परिणाम वाला नहीं होता है, अवस्थित परिणाम वाला होता है।

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत के वर्धमान परिणाम कितने काल तक रहते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य–एक समय, उत्कृष्ट–अंतर्मुहूर्त।

प्र. हायमान परिणाम कितने काल तक रहते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य–एक समय, उत्कृष्ट–अन्तर्मुहूर्त।

प्र. अवस्थित परिणाम कितने काल तक रहते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य–एक समय, उत्कृष्ट–सात समय।

इसी प्रकार परिहारविशुद्धिक संयत पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! सूक्ष्म संपराय संयत के वर्धमान परिणाम कितने काल तक रहते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य–एक समय, उत्कृष्ट–अन्तर्मुहूर्त।

हायमान परिणाम का जघन्य उत्कृष्ट काल भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! यथाख्यात संयत के वर्धमान परिणाम कितने काल तक रहते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य–अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट–अन्तर्मुहूर्त।

प्र. अवस्थित परिणाम कितने काल तक रहते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य–एक समय, उत्कृष्ट–देशोन क्रोड़ पूर्व।

२१. कर्मबन्ध-द्वार–

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत कितनी कर्म प्रकृतियां बांधता है ?

उ. गौतम ! सात कर्म प्रकृतियों भी बांधता है और आठ कर्म प्रकृतियां भी बांधता है।

सात बांधता हुआ आयु कर्म को छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियों को बांधता है।

आठ बांधता हुआ प्रतिपूर्ण आठों कर्म प्रकृतियों को बांधता है।

इसी प्रकार परिहारविशुद्धिक संयत पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! सूक्ष्म संपराय संयत कितनी कर्म प्रकृतियां बांधता है ?

उ. [illegible]

प्र. [illegible]

उ. [illegible]

[illegible]

२२. कर्मवेदन-द्वार–

प्र. [illegible]

उ. [illegible]

एवं जाव सुहुमसंपरायसंजए।

प. अहक्खायसंजए णं भंते ! कइ कम्मपगडीओ वेएइ ?

उ. गोयमा ! सत्तविह वेयए वा, चउव्विह वेयए वा।

सत्त वेएमाणे–मोहणिज्जवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ वेएइ।

चत्तारि वेएमाणे–१. वेयणिज्ज, २. आउय, ३. नाम, ४. गोयाओ चत्तारि कम्मपगडीओ वेएइ।

२३. **कम्मोदीरण-दारं–**

प. सामाइयसंजए णं भंते ! कइ कम्मपगडीओ उदीरेइ ?

उ. गोयमा ! छव्विह उदीरए वा, सत्तविह उदीरए वा, अट्ठविह उदीरए वा।

छ उदीरेमाणे–आउय-वेयणिज्जवज्जाओ छ कम्मपगडीओ उदीरेइ।

सत्त उदीरेमाणे–आउयवज्जाओ सत्तकम्मपगडीओ उदीरेइ।

अट्ठ उदीरेमाणे–पडिपुण्णाओ अट्ठ कम्मपगडीओ उदीरेइ।

एवं जाव परिहारविसुद्धियसंजए।

प. सुहुमसंपरायसंजए णं भंते ! कइ कम्मपगडीओ उदीरेइ ?

उ. गोयमा ! छव्विह उदीरए वा, पंचविह उदीरए वा।

छ उदीरेमाणे–आउय-वेयणिज्जवज्जाओ छ कम्मपगडीओ उदीरेइ।

पंच उदीरेमाणे–आउय-वेयणिय-मोहणिज्जवज्जाओ पंच कम्मपगडीओ उदीरेइ।

प. अहक्खायसंजए णं भंते ! कइ कम्मपगडीओ उदीरेइ ?

उ. गोयमा ! पंचविह उदीरए वा, दुविह उदीरए वा, अणुदीरए वा।

पंच उदीरेमाणे–आउय-वेयणिय-मोहणिज्जवज्जाओ पंच कम्मपगडीओ उदीरेइ।

दो उदीरेमाणे–नामं च, गोयं च उदीरेइ।

२४. **उवसंपजहण-दारं–**

प. सामाइयसंजए णं भंते ! सामाइयसंजयत्तं जहमाणे किं जहइ, किं उवसंपज्जइ ?

उ. गोयमा ! सामाइयसंजयत्तं जहइ,

इसी प्रकार सूक्ष्म संपराय संयत पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! यथाख्यात संयत कितनी कर्म प्रकृतियों का वेदन करता है ?

उ. गौतम ! सात कर्म प्रकृतियों का वेदन करता है या चार कर्म प्रकृतियों का वेदन करता है।

सात का वेदन करता हुआ–मोहनीय कर्म को छोड़कर सात कर्म प्रकृतियों का वेदन करता है।

चार का वेदन करता हुआ–१. वेदनीय, २. आयु, ३. नाम और ४. गोत्र–इन चार कर्म प्रकृतियों का वेदन करता है।

२३. **कर्म उदीरणा-द्वार–**

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत कितनी कर्म प्रकृतियों की उदीरणा करता है ?

उ. गौतम ! छः कर्म प्रकृतियों की उदीरणा करता है, सात कर्म प्रकृतियों की उदीरणा करता है, आठ कर्म प्रकृतियों की उदीरणा करता है।

छः की उदीरणा करता हुआ–आयु कर्म और मोहनीय कर्म को छोड़कर शेष छः कर्म प्रकृतियों की उदीरणा करता है।

सात की उदीरणा करता हुआ–आयु कर्म को छोड़कर सात कर्म प्रकृतियों की उदीरणा करता है।

आठ की उदीरणा करता हुआ–प्रतिपूर्ण आठों कर्म प्रकृतियों की उदीरणा करता है।

इसी प्रकार परिहारविशुद्धिक संयत पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! सूक्ष्म संपराय संयत कितनी कर्म प्रकृतियों की उदीरणा करता है ?

उ. गौतम ! छः कर्म प्रकृतियों की या पाँच कर्म प्रकृतियों की उदीरणा करता है।

छः की उदीरणा करता हुआ–आयु कर्म और वेदनीय कर्म को छोड़कर शेष छः कर्म प्रकृतियों की उदीरणा करता है।

पाँच की उदीरणा करता हुआ–आयु कर्म, वेदनीय कर्म और मोहनीय कर्म को छोड़कर शेष पाँच कर्म प्रकृतियों की उदीरणा करता है।

प्र. भन्ते ! यथाख्यात संयत कितनी कर्म प्रकृतियों की उदीरणा करता है ?

उ. गौतम ! पाँच कर्मों की या दो कर्मों की उदीरणा करता है अथवा उदीरणा नहीं भी करता है।

पाँच की उदीरणा करता हुआ–आयु कर्म, वेदनीय कर्म और मोहनीय कर्म को छोड़कर शेष पाँच कर्मों की उदीरणा करता है।

दो की उदीरणा करता हुआ–नाम कर्म और गोत्र कर्म की उदीरणा करता है।

२४. **उपसंपत जहन-द्वार–**

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत, सामायिक संयतपन को छोड़ता हुआ क्या छोड़ता है और क्या प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! सामायिक संयतपन को छोड़ता है,

छेदोवट्ठावणियसंजयं वा, सुहुमसंपरायसंजयं वा, संजमासंजमं वा, असंजमं वा उवसंपज्जइ।

प. छेदोवट्ठावणियसंजए णं भंते ! छेदोवट्ठावणियसंजयत्तं जहमाणे किं जहइ, किं उवसंपज्जइ?

उ. गोयमा ! छेदोवट्ठावणियसंजयत्तं जहइ,
सामाइयसंजयं वा, परिहारविसुद्धियसंजयं वा, सुहुमसंपरायसंजयं वा, संजमासंजमं वा, असंजमं वा उवसंपज्जइ।

प. परिहारविसुद्धियसंजए णं भंते ! परिहारविसुद्धियसंजयत्तं जहमाणे किं जहइ, किं उवसंपज्जइ?

उ. गोयमा ! परिहारविसुद्धियसंजयत्तं जहइ,
छेदोवट्ठावणियसंजयं वा, असंजमं वा उवसंपज्जइ।

प. सुहुमसंपरायसंजए णं भंते ! सुहुमसंपरायसंजयत्तं जहमाणे किं जहइ, किं उवसंपज्जइ?

उ. गोयमा ! सुहुमसंपरायसंजयत्तं जहइ,
सामाइयसंजयं वा, छेदोवट्ठावणियसंजयं वा, अहक्खायसंजयं वा, असंजमं वा उवसंपज्जइ।

प. अहक्खायसंजए णं भंते ! अहक्खायसंजयत्तं जहमाणे किं जहइ, किं उवसंपज्जइ?

उ. गोयमा ! अहक्खायसंजयत्तं जहइ,
सुहुमसंपरायसंजयं वा, असंजमं वा, सिद्धिगइं वा उवसंपज्जइ।

२५. सण्णा-दारं–

प. सामाइयसंजए णं भंते ! किं सण्णोवउत्ते होज्जा, नो सण्णोवउत्ते होज्जा?

उ. गोयमा ! सण्णोवउत्ते वा होज्जा, नो सण्णोवउत्ते वा होज्जा।
एवं जाव परिहारविसुद्धियसंजए।

प. सुहुमसंपरायसंजए णं भंते ! किं सण्णोवउत्ते होज्जा, नो सण्णोवउत्ते होज्जा?

उ. गोयमा ! नो सण्णोवउत्ते होज्जा।
एवं अहक्खायसंजए वि।

२६. आहार-दारं–

प. सामाइयसंजए णं भंते ! किं आहारए होज्जा, अणाहारए होज्जा?

उ. गोयमा ! आहारए होज्जा, नो अणाहारए होज्जा।
एवं जाव सुहुमसंपरायसंजए।

प. अहक्खायसंजए णं भंते ! किं आहारए होज्जा, अणाहारए होज्जा?

उ. गोयमा ! आहारए वा होज्जा, अणाहारए वा होज्जा।

२७. भव-दारं–

प. [illegible]

उ. [illegible]
एवं छेदोवट्ठावणियसंजए वि।

छेदोपस्थापनीय संयत, सूक्ष्म सम्पराय संयत, संयमासंयम या असंयम को प्राप्त करता है।

प्र. भन्ते ! छेदोपस्थापनीय संयत, छेदोपस्थापनीय संयतत्व को छोड़ता हुआ क्या छोड़ता है और क्या प्राप्त करता है?

उ. गौतम ! छेदोपस्थापनीय संयतत्व को छोड़ता है,
सामायिक संयत, परिहारविशुद्धिक संयत, सूक्ष्म सम्पराय संयत, संयमासंयम या असंयम को प्राप्त करता है।

प्र. भन्ते ! परिहारविशुद्धिक संयत, परिहारविशुद्धिक संयतत्व को छोड़ता हुआ क्या छोड़ता है और क्या प्राप्त करता है?

उ. गौतम ! परिहारविशुद्धिक संयतत्व को छोड़ता है,
छेदोपस्थापनीय संयत को या असंयम को प्राप्त करता है।

प्र. भन्ते ! सूक्ष्म सम्पराय संयत, सूक्ष्म सम्पराय संयतत्व को छोड़ता हुआ क्या छोड़ता है और क्या प्राप्त करता है?

उ. गौतम ! सूक्ष्म सम्पराय संयतत्व को छोड़ता है,
सामायिक संयत, छेदोपस्थापनीय संयत, यथाख्यात संयत या असंयम को प्राप्त करता है।

प्र. भन्ते ! यथाख्यात संयत, यथाख्यात संयतत्व को छोड़ता हुआ क्या छोड़ता है और क्या प्राप्त करता है?

उ. गौतम ! यथाख्यात संयतत्व को छोड़ता है,
सूक्ष्म सम्पराय संयत को या असंयम को प्राप्त करता है अथवा सिद्धि गति को प्राप्त करता है।

२५. संज्ञा-द्वार–

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत क्या संज्ञोपयुक्त होता है या संज्ञोपयुक्त नहीं होता है?

उ. गौतम ! संज्ञोपयुक्त भी होता है और संज्ञोपयुक्त नहीं भी होता है।
इसी प्रकार परिहारविशुद्धिक संयत पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! सूक्ष्म सम्पराय संयत क्या संज्ञोपयुक्त होता है या संज्ञोपयुक्त नहीं होता है?

उ. गौतम ! संज्ञोपयुक्त नहीं होता है।
इसी प्रकार यथाख्यातसंयत भी जानना चाहिए।

२६. आहार-द्वार–

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत क्या आहारक होता है या अनाहारक होता है?

उ. [illegible]
इसी प्रकार सूक्ष्म सम्पराय संयत पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. [illegible]

उ. [illegible]

२७. भव-द्वार–

प्र. [illegible]

उ. [illegible]
[illegible]

प. परिहारविसुद्धियसंजए णं भंते ! कइ भवग्गहणाइं होज्जा ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–एक्कं, उक्कोसेण–तिन्नि।

एवं जाव अहक्खायसंजए।

२८. आगरिस-दारं–

प. सामाइयसंजयस्स णं भंते ! एगभवग्गहणिया केवइया आगरिसा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–एक्को, उक्कोसेणं–सयग्गसो।

प. छेदोवट्ठावणियस्स णं भंते ! एगभवग्गहणिया केवइया आगरिसा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–एक्को, उक्कोसेणं–बीसपुहुत्तं।

प. परिहारविसुद्धियस्स णं भंते ! एग भवग्गहणिया केवइया आगरिसा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–एक्को, उक्कोसेण–तिन्नि।

प. सुहुमसंपरायस्स णं भंते ! एगभवग्गहणिया केवइया आगरिसा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–एक्को, उक्कोसेणं–चत्तारि।

प. अहक्खायस्स णं भंते ! एगभवग्गहणिया केवइया आगरिसा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–एक्को, उक्कोसेणं–दोन्नि।

प. सामाइयसंजयस्स णं भंते ! नाणाभवग्गहणिया केवइया आगरिसा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–दोन्नि, उक्कोसेणं–सहस्ससो।

प. छेदोवट्ठावणियस्स णं भंते ! नाणाभवग्गहणिया केवइया आगरिसा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–दोन्नि,
उक्कोसेणं–उवरिं नवण्हं सयाणं अंतोसहस्सस्स।

परिहारविसुद्धियस्स जहन्नेणं–दोन्नि,
उक्कोसेणं–सत्त।
सुहुमसंपरायस्स, जहन्नेणं–दोन्नि,
उक्कोसेणं–नव।
अहक्खायस्स जहन्नेणं–दोन्नि,
उक्कोसेणं–पंच।

२९. काल-दारं–

प. सामाइयसंजए णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–एक्कं समयं,
उक्कोसेण–नवहिं वासेहिं ऊणिया पुव्वकोडी।
एवं छेदोवट्ठावणिए वि।

प्र. भन्ते ! परिहारविशुद्धिक संयत कितने भव ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! जघन्य–एक भव, उत्कृष्ट–तीन भव।
इसी प्रकार यथाख्यात संयत पर्यन्त जानना चाहिए।

२८. आकर्ष-द्वार–

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत के एक भव में ग्रहण करने योग्य कितने आकर्ष कहे गए हैं अर्थात् एक भव में कितनी बार प्राप्त होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य–एक, उत्कृष्ट–सैकड़ों बार प्राप्त होता है।

प्र. भन्ते ! छेदोपस्थापनीय संयत के एक भव में ग्रहण करने योग्य कितने आकर्ष कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य–एक, उत्कृष्ट–बीस पृथक्त्व अर्थात् १२० बार प्राप्त होता है।

प्र. भन्ते ! परिहारविशुद्धिक संयत के एक भव में ग्रहण करने योग्य कितने आकर्ष कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य–एक, उत्कृष्ट–तीन।

प्र. भन्ते ! सूक्ष्म संपराय संयत के एक भव में ग्रहण करने योग्य कितने आकर्ष कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य–एक, उत्कृष्ट–चार।

प्र. भन्ते ! यथाख्यात संयत के एक भव में ग्रहण करने योग्य कितने आकर्ष कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य–एक, उत्कृष्ट–दो।

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत के नाना भव ग्रहण करने योग्य कितने आकर्ष कहे गए हैं ? अर्थात् अनेक (आठ) भवों में कितने बार प्राप्त होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य–दो, उत्कृष्ट–हजारों बार प्राप्त होता है।

प्र. भन्ते ! छेदोपस्थापनीय संयत के नाना भव में ग्रहण करने योग्य कितने आकर्ष कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य–दो,
उत्कृष्ट–नौ सौ से ऊपर और एक सहस्र के अन्तर्गत अर्थात् ९८० बार प्राप्त होता है।
परिहारविशुद्धिक संयत के जघन्य–दो आकर्ष,
उत्कृष्ट–सात आकर्ष।
सूक्ष्म संपराय संयत के जघन्य–दो आकर्ष,
उत्कृष्ट–नव आकर्ष।
यथाख्यात संयत के जघन्य–दो आकर्ष,
उत्कृष्ट–पाँच आकर्ष कहे गये हैं।

२९. काल-द्वार–

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत काल से कितने समय तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य–एक समय,
उत्कृष्ट–नौ वर्ष कम क्रोड पूर्व।
इसी प्रकार छेदोपस्थापनीय संयत भी जानना चाहिए।

प. परिहारविसुद्धियसंजए णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–एक्कं समयं,
उक्कोसेणं–एक्कूणतीसाए वासेहिं ऊणिया पुव्वकोडी।

प. सुहुमसंपरायसंजए णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–एक्कं समयं,
उक्कोसेणं–अंतोमुहुत्तं।
अहक्खायसंजए जहा सामाइयसंजए।

प. सामाइयसंजया णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! सव्वद्धं।

प. छेदोवट्ठावणिया णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–अड्ढाइज्जाइं वाससयाइं,
उक्कोसेणं–पन्नासं सागरोवमकोडिसयसहस्साइं।

प. परिहारविसुद्धियसंजया णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–देसूणाइं दो वाससयाइं,
उक्कोसेणं–देसूणाओ दो पुव्वकोडीओ।

प. सुहुमसंपरायसंजया णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–एक्कं समयं,
उक्कोसेणं–अंतोमुहुत्तं।
अहक्खायसंजया जहा सामाइयसंजया।

३०. अंतर-दारं–

प. सामाइयसंजयस्स णं भंते ! केवइयं कालं अन्तरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं–अणंतकालं, अणंताओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ कालओ,
खेत्तओ अवड्ढं पोग्गल–परियट्टं देसूणं।
एवं जाव अहक्खायसंजयस्स।

प. सामाइयसंजया णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! नत्थि अंतरं।

प. छेदोवट्ठावणियसंजया णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–तेवट्ठिं वाससहस्साइं,
उक्कोसेणं–अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ।

प. परिहारविसुद्धियसंजया णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–चउरासीइं वाससहस्साइं,
उक्कोसेणं–अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ।

प्र. भन्ते ! परिहारविशुद्धिक संयत काल से कितने समय तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य–एक समय,
उत्कृष्ट–उन्तीस वर्ष कम क्रोड पूर्व।

प्र. भन्ते ! सूक्ष्म संपराय संयत काल से कितने समय तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य–एक समय,
उत्कृष्ट–अन्तर्मुहूर्त।
यथाख्यात संयत सामायिक संयत के समान जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! अनेक सामायिक संयत काल से कितने समय तक रहते हैं ?

उ. गौतम ! सर्वकाल रहते हैं।

प्र. भन्ते ! अनेक छेदोपस्थापनीय संयत काल से कितने समय तक रहते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य–अढाई सौ वर्ष,
उत्कृष्ट–पचास लाख क्रोड सागरोपम।

प्र. भन्ते ! परिहारविशुद्धिक संयत काल से कितने समय तक रहते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य–कुछ कम अर्थात् ५८ वर्ष कम दो सौ वर्ष।
उत्कृष्ट–कुछ कम अर्थात् ५८ वर्ष कम दो क्रोड पूर्व।

प्र. भन्ते ! अनेक सूक्ष्म संपराय संयत काल से कितने समय तक रहते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य–एक समय,
उत्कृष्ट–अन्तर्मुहूर्त।
यथाख्यात संयत सामायिक संयत के समान जानने चाहिए।

३०. अन्तर-द्वार–

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत का कितने काल का अन्तर होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य–अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट–अनन्त काल अर्थात् अनन्त अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल,
क्षेत्र से कुछ कम–अपार्धपुद्गल परावर्तन।
इसी प्रकार यथाख्यात संयत पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! अनेक सामायिक संयतों का कितने काल का अन्तर होता है ?

उ. गौतम ! अन्तर नहीं है अर्थात् शाश्वत है।

प्र. भन्ते ! अनेक छेदोपस्थापनीय संयतों का [illegible] अन्तर होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य–[illegible] हजार वर्ष,
उत्कृष्ट–[illegible] सागरोपम।

प्र. भन्ते ! अनेक परिहारविशुद्धिक संयतों का [illegible] अन्तर होता है ?

उ. [illegible]
[illegible]

प. सुहुमसंपरायसंजया णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं–एक्कं समयं,
उक्कोसेणं–छम्मासा।
अहक्खायाणं जहा सामाइयसंजयाणं।

३१. समुग्घाय-दारं–

प. सामाइयसंजयस्स णं भंते ! कइ समुग्घाया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! छ समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. वेयणासमुग्घाए जाव ६. आहारसमुग्घाए।
एवं छेदोवट्ठावणियस्स वि।

प. परिहारविसुद्धियसंजयस्स णं भंते ! कइ समुग्घाया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तिन्नि समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. वेयणासमुग्घाए, २. कसायसमुग्घाए,
३. मारणंतियसमुग्घाए।

प. सुहुमसंपरायस्स णं भंते ! कइ समुग्घाया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! नत्थि एक्को वि।

प. अहक्खायसंजयस्स णं भंते ! कइ समुग्घाया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! एगे केवलिसमुग्घाए पण्णत्ते।

३२. खेत-दारं–

प. सामाइयसंजए णं भंते ! लोगस्स किं–
संखेज्जइ भागे होज्जा,
असंखेज्जइ भागे होज्जा,
संखेज्जेसु भागेसु होज्जा,
असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा,
सव्वलोए होज्जा ?

प्र. भन्ते ! अनेक सूक्ष्म संपराय संयतों का कितने काल का अन्तर होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य–एक समय,
उत्कृष्ट–छः मास।
यथाख्यात संयत सामायिक संयत के समान जानना चाहिए।

३१. समुद्घात-द्वार–

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत के कितने समुद्घात कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! छः समुद्घात कहे गए हैं, यथा–
१. वेदना समुद्घात यावत् ६. आहारक समुद्घात।
इसी प्रकार छेदोपस्थापनीय संयत भी जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! परिहारविशुद्धिक संयत के कितने समुद्घात कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! तीन समुद्घात कहे गए हैं, यथा–
१. वेदना समुद्घात, २. कषाय समुद्घात,
३. मारणान्तिक समुद्घात।

प्र. भन्ते ! सूक्ष्म संपराय संयत के कितने समुद्घात कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! एक भी समुद्घात नहीं है।

प्र. भन्ते ! यथाख्यात संयत के कितने समुद्घात कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! एक केवली समुद्घात कहा गया है।

३२. क्षेत्र-द्वार–

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत क्या–
लोक के संख्यातवें भाग में होता है,
असंख्यातवें भाग में होता है,
संख्यात भागों में होता है,
असंख्यात भागों में होता है या
सर्वलोक में होता है ?

उ. गौतम ! संख्यात भाग में नहीं होता है,
असंख्यात भाग में होता है,
संख्यात भागों में नहीं होता है,
असंख्यात भागों में नहीं होता है,
सम्पूर्ण लोक में नहीं होता है।
इसी प्रकार सूक्ष्म संपराय संयत पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! यथाख्यात संयत क्या लोक के संख्यात भाग में होता है यावत् सम्पूर्ण लोक में होता है ?

उ. गौतम ! संख्यात भाग में नहीं होता है,
असंख्यात भाग में होता है,
संख्यात भागों में नहीं होता है,
असंख्यात भागों में होता है,
सम्पूर्ण लोक में होता है।

३३. फुसणा-दारं–

प. सामाइयसंजए णं भंते ! लोगस्स किं संखेज्जइ भागं फुसइ जाव सव्वलोयं फुसइ ?

उ. गोयमा ! जहेव खेत्त-दारे भणियं तहेव फुसणा वि जाव अहक्खायसंजए।

३४. भाव-दारं–

प. सामाइयसंजए णं भंते ! कयरम्मि भावे होज्जा ?

उ. गोयमा ! खओवसमिए भावे होज्जा।

एवं जाव सुहुमसंपरायसंजए।

प. अहक्खायसंजए णं भन्ते ! कयरम्मि भावे होज्जा ?

उ. गोयमा ! ओवसमिए वा भावे होज्जा, खइए वा भावे होज्जा।

३५. परिमाण-दारं–

प. सामाइयसंजया णं भंते ! एगसमएणं केवइया होज्जा ?

उ. गोयमा ! पडिवज्जमाणए पडुच्च–सिय अत्थि, सिय नत्थि,

जइ अत्थि, जहन्नेणं–एक्को वा, दो वा, तिन्नि वा,

उक्कोसेणं–सहस्सपुहुत्तं।

पुव्वपडिवन्नए पडुच्च–जहन्नेणं कोडिसहस्सपुहुत्तं,

उक्कोसेणं वि कोडिसहस्सपुहुत्तं।

प. छेदोवट्ठावणिया णं भंते ! एगसमएणं केवइया होज्जा ?

उ. गोयमा ! पडिवज्जमाणए पडुच्च–सिय अत्थि, सिय नत्थि।

जइ अत्थि जहन्नेणं–एक्को वा, दो वा, तिन्नि वा,

उक्कोसेणं–सयपुहुत्तं।

पुव्वपडिवन्नए पडुच्च–सिय अत्थि, सिय नत्थि।

जइ अत्थि जहन्नेणं–एक्को वा, दो वा, तिन्नि वा,

उक्कोसेणं–कोडिसयपुहुत्तं।

प. परिहारविसुद्धिय संजया णं भंते ! एगसमएणं केवइया होज्जा ?

उ. गोयमा ! पडिवज्जमाणए पडुच्च–सिय अत्थि, सिय नत्थि।

जइ अत्थि जहन्नेणं–एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा,

उक्कोसेणं–सयपुहुत्तं।

पुव्वपडिवन्नए पडुच्च–सिय अत्थि, सिय नत्थि।

जइ अत्थि जहन्नेणं–एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा,

उक्कोसेणं–सहस्सपुहुत्तं।

प. [illegible]

उ. [illegible]

[illegible]

३३. स्पर्शना-द्वार–

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत क्या लोक के संख्यातवें भाग का स्पर्श करता है यावत् सर्वलोक का स्पर्श करता है ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार क्षेत्र द्वार में कहा उसी प्रकार स्पर्शना के लिए भी यथाख्यात संयत पर्यन्त जानना चाहिए।

३४. भाव-द्वार–

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत किस भाव में होता है ?

उ. गौतम ! क्षायोपशमिक भाव में होता है।

इसी प्रकार सूक्ष्मसंपराय संयत पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! यथाख्यात संयत किस भाव में होता है ?

उ. गौतम ! औपशमिक भाव में भी होता है और क्षायिक भाव में भी होता है।

३५. परिमाण-द्वार–

प्र. भन्ते ! सामायिक संयत एक समय में कितने होते हैं ?

उ. गौतम ! प्रतिपद्यमान की अपेक्षा–कभी होते हैं और कभी नहीं होते हैं,

यदि होते हैं तो जघन्य–एक, दो, तीन,

उत्कृष्ट–अनेक हजार।

पूर्वप्रतिपन्न की अपेक्षा–जघन्य भी अनेक हजार क्रोड और उत्कृष्ट भी अनेक हजार क्रोड।

प्र. भन्ते ! छेदोपस्थापनीय संयत एक समय में कितने होते हैं ?

उ. गौतम ! प्रतिपद्यमान की अपेक्षा–कभी होते हैं और कभी नहीं होते हैं।

यदि होते हैं तो जघन्य–एक, दो, तीन,

उत्कृष्ट–अनेक सौ।

पूर्वप्रतिपन्न की अपेक्षा–कभी होते हैं और कभी नहीं होते हैं।

यदि होते हैं तो जघन्य–एक, दो, तीन,

उत्कृष्ट–अनेक सौ क्रोड।

प्र. भन्ते ! परिहारविशुद्धिक संयत एक समय में कितने होते हैं ?

उ. गौतम ! प्रतिपद्यमान की अपेक्षा कभी होते हैं और कभी नहीं होते हैं।

यदि होते हैं तो जघन्य–एक, दो, तीन,

उत्कृष्ट–अनेक सौ।

पूर्वप्रतिपन्न की अपेक्षा–कभी होते हैं और कभी नहीं होते हैं।

यदि होते हैं तो जघन्य–एक, दो, तीन,

उत्कृष्ट–अनेक हजार।

प्र. [illegible]

उ. [illegible]

[illegible]

उक्कोसेणं–बावट्ठं सयं, अट्ठसयं खवगाणं, चउप्पण्णं उवसामगाणं।

पुव्वपडिवन्नए पडुच्च–सिय अत्थि, सिय णत्थि।

जइ अत्थि जहन्नेणं–एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा,

उक्कोसेणं–सयपुहुत्तं।

प. अहक्खायसंजया णं भंते ! एगसमएणं केवइया होज्जा ?

उ. गोयमा ! पडिवज्जमाणए पडुच्च–सिय अत्थि, सिय नत्थि।

जइ अत्थि, जहन्नेणं–एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा,

उक्कोसेणं–बावट्ठं सयं, अट्ठसयं खवगाणं, चउपन्नं उवसामगाण।

पुव्वपडिवन्नए पडुच्च–जहन्नेणं वि कोडिपुहुत्तं, उक्कोसेणं वि कोडिपुहुत्तं।

३६. अप्प-बहुय-दारं–

प. एएसि णं भंते ! १. सामाइय २. छेदोवट्ठावणिय, ३. परिहारविसुद्धिय, ४. सुहुमसंपराय, ५. अहक्खाय-संजयाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा सुहुमसंपरायसंजया,

२. परिहारविसुद्धियसंजया संखेज्जगुणा,

३. अहक्खायसंजया संखेज्जगुणा,

४. छेदोवट्ठावणियसंजया संखेज्जगुणा,

५. सामाइयसंजया संखेज्जगुणा।

–विया. स. २५, उ. ७, सु. १-१८८

८. पमत्तापमत्त संजयस्स पमत्तापमत्त संजय भावस्स काल परूवणं–

प. पमत्तसंजयस्स णं भंते ! पमत्तसंयमे वट्टमाणस्स सव्वा वि य णं पमत्तद्धा कालओ केवच्चिरं होइ ?

उ. मंडियपुत्ता ! एगजीवं पडुच्च–जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी णाणा जीवे पडुच्च सव्वद्धा।

उत्कृष्ट–एक सौ बासठ होते हैं, अर्थात् एक सौ आठ क्षप
के और चौपन उपशामकों के होते हैं।

पूर्वप्रतिपन्न की अपेक्षा–कभी होते हैं और कभी नहीं होते

यदि होते हैं तो जघन्य–एक, दो, तीन,

उत्कृष्ट–अनेक सौ।

प्र. भन्ते ! यथाख्यात संयत एक समय में कितने होते हैं ?

उ. गौतम ! प्रतिपद्यमान की अपेक्षा–कभी होते हैं और कभी
होते हैं।

यदि होते हैं तो जघन्य–एक, दो, तीन,

उत्कृष्ट–एक सौ बासठ होते हैं, अर्थात् एक सौ आठ क्षप
के और चौपन उपशामकों के होते हैं।

पूर्वप्रतिपन्न की अपेक्षा–जघन्य भी अनेक क्रोड और उत्
भी अनेक क्रोड होते हैं।

३६. अल्प-बहुत्व-द्वार–

प्र. भन्ते ! १. सामायिक, २. छेदोपस्थापनीय, ३. परिह
विशुद्धिक, ४. सूक्ष्म संपराय, ५. यथाख्यात संयत इनमें
कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प सूक्ष्म संपराय संयत है,

२. (उनसे) परिहारविशुद्धिक संयत संख्यातगुणा है,

३. (उनसे) यथाख्यात संयत संख्यातगुणा है,

४. (उनसे) छेदोपस्थापनीय संयत संख्यातगुणा है,

५. (उनसे) सामायिक संयत संख्यातगुणा है।

८. **प्रमत्त और अप्रमत्त संयत के प्रमत्त तथा अप्रमत्त संयत भ
का काल प्ररूपण–**

प्र. भंते ! प्रमत्त संयत में प्रवर्तमान प्रमत्त संयमी का सब मिलाक
प्रमत्त संयम काल कितना होता है ?

उ. मण्डितपुत्र ! एक जीव की अपेक्षा जघन्य एक समय अ
उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि और अनेक जीवों की अपेक्ष
सर्वकाल होता है।

प्र. भन्ते ! अप्रमत्त संयम में प्रवर्तमान अप्रमत्त संयमी का स
मिलाकर अप्रमत्त संयत काल कितना होता है ?

उ. मण्डितपुत्र ! एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त औ
उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि और अनेक जीवों की अपेक्षा सर्वका
होता है।

९. **देवों के संयतत्त्वादि के पूछने पर भगवान द्वारा गौतम क
समाधान–**

प्र. भन्ते ! इस प्रकार सम्बोधित करके भगवान गौतम ने श्रम
भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार किया और इस प्रका
पूछा–

प्र. भंते ! क्या देवों को संयत कहा जा सकता है ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, अब्भक्खाणमेयं देवाणं।

प. भंते ! असंजया इति वत्तव्वं सिया ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णिट्ठुर वयणमेयं देवाणं।

प. भंते ! संजयासंजया इति वत्तव्वं सिया ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, असब्भूयमेयं देवाणं।

प. से किं खाइ णं भंते ! देवाणं वत्तव्वं सिया ?

उ. गोयमा ! देवा णं नोसंजया इति वत्तव्वं सिया।

-विया. स. ५, उ. ४, सु. २०-२३

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है (ऐसा नहीं कहा जाता) यह देवों के लिए अभ्याख्यान (मिथ्या आरोपित) कथन है।

प्र. भंते ! क्या देवों को असंयत कहा जा सकता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है (ऐसा नहीं कहा जाता) देवों के लिए यह (कथन) निष्ठुर वचन है।

प्र. भन्ते ! क्या देवों को संयतासंयत कहा जा सकता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ भी समर्थ नहीं है (ऐसा नहीं कहा जाता) देवों को "संयतासंयत" कहना असद्भूत (असत्य) वचन है।

प्र. भंते ! तो फिर देवों को क्या कहें ?

उ. गौतम ! देवों को "नोसंयत" कहा जा सकता है।

१०. जीव-चउवीसदंडएसु संजयाइ अप्पबहुत्त य परूवणं–

प. जीवा णं भंते ! किं संजया, असंजया, संजयासंजया ?

उ. गोयमा ! जीवा संजया वि, असंजया वि, संजयासंजया वि।

एवं जहेव पण्णवणाए तहेव भाणियव्वं जाव वेमाणिया।

प. एएसि णं भंते ! संजया णं असंजयाणं संजयासंजयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा संजया,

२. संजयासंजया असंखेज्जगुणा,

३. असंजया अणंतगुणा।

प. एएसि णं भंते ! पंचेंदियतिरिक्ख जोणियाणं असंजयाणं संजयासंजयाणं य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! सव्वत्थोवा पंचेंदियतिरिक्खजोणिया संजयासंजया,

असंजया असंखेज्जगुणा।

मणुस्सा जहा जीवा। *-विया. स. ७, उ. २, सु. २८*

१०. जीव-चौवीसदंडकों में संयतादि का और अल्पबहुत्व का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! क्या जीव संयत हैं, असंयत हैं या संयतासंयत हैं ?

उ. गौतम ! जीव संयत भी हैं, असंयत भी हैं और संयतासंयत भी हैं।

जिस प्रकार प्रज्ञापना सूत्र में कहा गया है उसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! इन संयत, असंयत और संयतासंयत में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प संयत जीव हैं,

२. (उनसे) संयतासंयत जीव असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) असंयत जीव अनन्तगुणे हैं।

प्र. भन्ते ! इन असंयत और संयतासंयत पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! संयतासंयत पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक सबसे अल्प हैं,

(उनसे) असंयत असंख्यातगुणे हैं।

मनुष्यों का अल्पबहुत्व औधिक जीव के समान है।

लेश्या अध्ययन : आमुख

आवश्यक सूत्र की हारिभद्रीय टीका में लेश्या को परिभाषित करते हुए कहा गया है–'**श्लेषयन्त्यात्मानमष्टविधेन कर्मणा इति लेश्याः**' अर्थात् जो आत्मा को अष्टविध कर्मों से श्लिष्ट करती है, वह लेश्या है। एक अन्य परिभाषा '**लिम्पतीति लेश्या**' (धवला टीका) के अनुसार जो कर्मों से आत्मा को लिप्त करती है वह लेश्या है। कर्म-बन्धन में प्रमुख हेतु कषाय और योग हैं। योग से कर्मपुद्गल रूपी रजकण आते हैं। कषायरूपी गोंद से वे आत्मा पर चिपकते हैं किन्तु कषाय गोंद को गीला करने वाला जल 'लेश्या' है। सूखा गोंद रजकण को नहीं चिपका सकता। इस प्रकार कषाय और योग से लेश्या भिन्न है। सर्वार्थसिद्धि, धवला टीका आदि ग्रन्थों में कषाय के उदय से अनुरंजित योग की प्रवृत्ति को लेश्या कहा गया है। यह भावलेश्या का स्वरूप है।

लेश्या के दो प्रकार हैं–द्रव्यलेश्या और भावलेश्या। द्रव्यलेश्या पौद्गलिक होती है और भावलेश्या अपौद्गलिक। द्रव्यलेश्या में वर्ण, गंध, रस और स्पर्श होते हैं, भावलेश्या अगुरुलघु होती है।

द्रव्य एवं भाव–इन दोनों प्रकार की लेश्याओं के छः भेद हैं–१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या, ४. तेजोलेश्या, ५. पद्मलेश्या और ६. शुक्ललेश्या। इनमें प्रथम तीन लेश्याएँ दुर्गतिगामिनी, संक्लिष्ट, अमनोज्ञ, अविशुद्ध, अप्रशस्त और शीत-रूक्ष स्पर्श वाली हैं। अन्तिम तीन लेश्याएँ सुगतिगामिनी, असक्लिष्ट, मनोज्ञ, विशुद्ध, प्रशस्त और स्निग्ध-उष्ण स्पर्श वाली हैं। वर्ण की उपेक्षा कृष्णलेश्या में काला वर्ण, नीललेश्या में नीला वर्ण, कापोतलेश्या में कबूतरी (काला एवं लाल मिश्रित) वर्ण, तेजोलेश्या में लाल वर्ण, पद्मलेश्या में पीला वर्ण और शुक्ललेश्या में श्वेत वर्ण होता है। रस की अपेक्षा कृष्णलेश्या में कड़वा, नीललेश्या में तीखा, कापोतलेश्या में कसैला , तेजोलेश्या में खटमीठा, पद्मलेश्या में आश्रव की भाँति कुछ खट्टा व कुछ कसैला तथा शुक्ललेश्या में मधुर रस होता है। गंध की अपेक्षा कृष्ण, नील व कापोतलेश्याएँ दुर्गन्धियुक्त हैं तथा तेजो, पद्म व शुक्ललेश्याएँ सुगन्धयुक्त हैं। स्पर्श की अपेक्षा कृष्ण, नील व कापोतलेश्याएँ कर्कश स्पर्श युक्त हैं तथा तेजो, पद्म व शुक्ललेश्याएँ कोमल स्पर्श युक्त हैं। प्रदेश की अपेक्षा कृष्णलेश्या से शुक्ललेश्या तक सभी लेश्याओं में अनन्त प्रदेश हैं। वर्गणा की अपेक्षा प्रत्येक लेश्या में अनन्त वर्गणाएँ हैं। प्रत्येक लेश्या असंख्यात आकाश प्रदेशों में स्थित है। यह वर्णन द्रव्यलेश्या के अनुसार है।

प्रस्तुत अध्ययन में भाव लेश्या के अनुरूप प्रत्येक लेश्या का लक्षण दिया है। कृष्णलेश्या से युक्त जीव पंचाश्रव में प्रवृत्त, तीन गुप्तियों से अगुप्त, षट्कायिक जीवों के प्रति अविरत आदि विशेषताओं से युक्त होता है, जबकि शुक्ललेश्या वाला जीव धर्मध्यान और शुक्लध्यान में लीन, प्रशान्तचित्त और दान्त होता है, वह पांच समितियों से समित और तीन गुप्तियों से गुप्त होता है। छहों लेश्याएँ उत्तरोत्तर शुभ हैं।

सलेश्य जीव दो प्रकार के हैं–संसार समापन्नक और असंसार समापन्नक। इनमें से जो असंसार समापन्नक हैं उन्हें सिद्ध कहा गया है, यह उचित नहीं लगता। सिद्ध तो अलेश्य होते हैं। यहाँ सिद्ध शब्द मोह क्षय के लक्ष्य को साध लेने वाले जिन के लिए प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है। संसार समापन्नक जीव दो प्रकार के हैं–संयत और असंयत। संयत भी प्रमत्त और अप्रमत्त के भेद से दो प्रकार के हैं। इनमें सिद्ध एवं अप्रमत्त संयत को छोड़कर सभी [illegible] आत्मारम्भी, परारम्भी एवं तदुभयारम्भी हैं, अनारम्भी नहीं हैं।

[illegible] की भाँति लेश्याकरण और लेश्यानिर्वृत्ति भी कृष्ण आदि के भेद से छः प्रकार की हैं। जिस जीव के जो लेश्या होती है उसके वही लेश्याकरण और [illegible] होती है। नैरयिक जीवों में कृष्ण, नील और कापोत ये तीन लेश्याएँ होती हैं। भवनपति, वाणव्यन्तर, पृथ्वीकाय, अप्काय और [illegible] तेजोलेश्या को मिलाकर चार लेश्याएं हैं। तेजस्काय, वायुकाय और विकलेन्द्रिय जीवों में कृष्ण से कापोत तक तीन लेश्याएँ हैं। वैमानिक [illegible] शुक्ल–ये तीन लेश्याएं हैं। तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय और मनुष्य में छहों लेश्याएँ हैं। ज्योतिषी देवों में एक मात्र तेजोलेश्या है। चार गतियों [illegible] में लेश्या का निरूपण भी इस अध्ययन में हुआ है।

[illegible] सलेश्य जीवों का दण्डक क्रम से सात द्वारों में निरूपण महत्त्वपूर्ण है। वे सात द्वार हैं–१. सम आहार, शरीर व उच्छ्वास, २. कर्म, [illegible] ५. वेदना, ६. क्रिया और ७. आयु। यहाँ कर्म और क्रिया में भेद है। कर्म तो अल्पकर्म एवं महाकर्म के भेद से दो प्रकार का होता [illegible] आरम्भिकी, २. पारिग्रहिकी, ३. मायाप्रत्यया, ४. अप्रत्याख्यान क्रिया और ५. मिथ्यादर्शन प्रत्यया।

[illegible] प्रश्न पर विचार करते हुए कहा गया है कि कृष्णलेश्या नीललेश्या को प्राप्त होकर उसी के [illegible] उसी के रस में, उसी के स्पर्श रूप में पुनः-पुनः परिणत होती है। इसी प्रकार नीललेश्या कापोतलेश्या को प्राप्त [illegible] तेजोलेश्या पद्मलेश्या को प्राप्त होकर, पद्मलेश्या शुक्ललेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप में यावत्

उसी के सदृश रूप में पुनः-पुनः परिणत होती है, इसे लेश्यागति कहते हैं। यह लेश्यागति होने पर कृष्णलेश्या नीललेश्या को प्राप्त होकर भी कदाचित् आकार भावमात्रा से अथवा प्रतिभाग भावमात्रा से कृष्णलेश्या ही है, वह नीललेश्या नहीं हो जाती है। इसी प्रकार सभी लेश्याओं के सम्बन्ध में कथन है। लेश्यागति अशुभ लेश्याओं से शुभ लेश्याओं में तो होती ही है किन्तु शुभ लेश्याओं से अशुभ लेश्याओं में भी होती है। शुक्ललेश्यादि का परिणमन पद्मलेश्या, तेजोलेश्या आदि में सम्भव है किन्तु आकार, भावमात्रा एवं प्रतिभाग भावमात्रा की अपेक्षा परिणमन नहीं होता है।

बन्ध के सामान्य भेदों की भाँति लेश्या का बन्ध तीन प्रकार का होता है–१. जीव प्रयोग बन्ध, २. अनन्तर बन्ध, ३. परम्पर बन्ध।

जीव जिस लेश्या के द्रव्यों को ग्रहण करके काल करता है, उसी लेश्या वाले जीवों में उत्पन्न होता है। शुक्ललेश्या वाला संक्लेश को प्राप्त होकर कृष्णलेश्या वाला बन जाता है तथा कृष्णलेश्या वाले जीवों में उत्पन्न होता है। इस प्रकार जो जीव जिस लेश्या में काल करता है वह उसी लेश्या वाले जीवों में जन्म लेता है। जिस लेश्या में जीव उत्पन्न होता है कदाचित् उसी लेश्या में उद्वर्तन करता है किन्तु तेजोलेश्यी पृथ्वीकायिक आदि कुछ जीव कदाचित् कृष्णलेश्यी होकर उद्वर्तन (मरण) करते हैं, कदाचित् नीललेश्यी होकर उद्वर्तन करते हैं, कदाचित् कापोतलेश्यी होकर उद्वर्तन करते हैं। लेश्या परिणत होने के प्रथम समय में जीव दूसरे भव में उत्पन्न नहीं होता है, अपितु लेश्या के परिणत होने पर जब अन्तर्मुहूर्त व्यतीत हो जाता है और अन्तर्मुहूर्त शेष रहता है तब जीव परलोक में जाता है।

लेश्याओं की अपेक्षा गर्भ प्रजनन का वर्णन महत्वपूर्ण है जो मनुष्य एवं स्त्री तथा उनके गर्भ से सम्बद्ध है। इसके अनुसार मनुष्य एवं स्त्री अपने सदृश तथा अपने से भिन्न लेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करते हैं। स्थिति की अपेक्षा कृष्णलेश्या वाले जीव से नीललेश्या वाला जीव कदाचित् महाकर्म वाला होता है। इसी प्रकार नीललेश्या से कापोतलेश्या वाला जीव, कापोत से तेजोलेश्या वाला, तेजो से पद्मलेश्या वाला, पद्म से शुक्ललेश्या वाला जीव स्थिति की अपेक्षा कदाचित् महाकर्म वाला होता है।

कृष्णलेश्यी, नीललेश्यी, कापोतलेश्यी, तेजोलेश्यी व पद्मलेश्यी जीवों में दो, तीन या चार ज्ञान होते हैं। दो होने पर आभिनिबोधिक एवं श्रुतज्ञान होते हैं, तीन होने पर अवधिज्ञान या मनःपर्यवज्ञान विशेष होते हैं। चार होने पर ये सभी पाए जाते हैं। शुक्ललेश्या वाले जीव में दो, तीन, चार या एक ज्ञान होते हैं। चार तक तो पूर्ववत् हैं किन्तु एक ज्ञान मानने पर मात्र केवल ज्ञान होता है। कृष्णलेश्यी की अपेक्षा नीललेश्यी नारक का अवधिज्ञान स्पष्ट होता है एवं अधिक क्षेत्र को विषय करता है। इसी प्रकार नीललेश्यी से कापोतलेश्यी नारक का अवधिज्ञान अधिक स्पष्ट एवं अधिक क्षेत्र को विषय करता है।

प्रस्तुत अध्ययन में लेश्याओं की जघन्य उत्कृष्ट स्थिति, सलेश्य-अलेश्य जीवों की कायस्थिति, सलेश्य अलेश्य जीवों के अन्तरकाल, [illegible] जीवों के चार गतियों में अल्प-बहुत्व, सलेश्य जीवों की ऋद्धि के अल्प-बहुत्व, लेश्या के स्थानों में अल्प-बहुत्व आदि पर भी [illegible] गुणस्थान की दृष्टि से लेश्या पर विचार इस अध्ययन में नहीं हुआ। अन्यत्र प्राप्त उल्लेख के अनुसार पहले से छठे गुणस्थान तक [illegible] सातवें गुणस्थान में तेजो, पद्म व शुक्ललेश्याएँ होती हैं तथा आठवें से तेरहवें गुणस्थान तक मात्र शुक्ललेश्या होती है।

इस अध्ययन का प्रयोजन अप्रशस्त से प्रशस्त लेश्याओं की ओर गति कराना है।

२६. लेस्सज्झयणं

सूत्र

१. लेस्सज्झयणस्स उक्खेवो–
लेसज्झयणं पवक्खामि, आणुपुव्विं जहक्कमं।
छण्हं पि कम्मलेसाणं, अणुभावे सुणेह मे॥

नामाइं वण्ण-रस-गन्ध-फास-परिणाम-लक्खणं।
ठाणं ठिइं गई चाउं लेसाणं तु सुणेह मे॥[१]
–उत्त. अ. ३४, गा. १-२

२. छव्विहाओ लेस्साओ–
प. कइ णं भन्ते ! लेस्साओ पण्णत्ताओ ?
उ. गोयमा ! छ लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. कण्हलेस्सा, २. णीललेस्सा, ३. काउलेस्सा,
४. तेउलेस्सा, ५. पम्हलेस्सा, ६. सुक्कलेस्सा।[२]
–पण्ण. प. १७, उ. २, सु. ११५६

३. दव्व-भावलेस्साणं सरूवं–
प. कण्हलेस्सा णं भन्ते ! कइवण्णा जाव कइफासा पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! १. दव्वलेसं पडुच्च–पंचवण्णा, पंच रसा, दुगंधा, अट्ठ फासा पण्णत्ता,
२. भावलेसं पडुच्च–अवण्णा, अरसा, अगंधा, अफासा पण्णत्ता।
एवं जाव सुक्कलेस्सा। –विया. स. १२, उ. ५, सु. २८-२९

४. लेसाणं लक्खणाइं–
१. पंचासवप्पवत्तो, तीहिं अगुत्तो छसुं अविरओ य।
तिव्वारम्भपरिणओ खुद्दो साहसिओ नरो॥

निद्धंसपरिणामो निस्संसो अजिइन्दिओ।
एयजोगसमाउत्तो किण्हलेसं तु परिणमे॥

२. इस्सा-अमरिस-अतवो, अविज्ज-माया अहीरिया य।
गेही पओसे य सढे पमत्ते, रसलोलुए सायगवेसए य॥

आरम्भाओ अविरओ, खुद्दो साहस्सिओ नरो।
एयजोगसमाउत्तो, नीललेसं तु परिणमे॥

२६. लेश्या-अध्ययन

सूत्र

१. लेश्या–अध्ययन की उत्थानिका
मैं यथाक्रम-आनुपूर्वी से लेश्या-अध्ययन का निरूपण करूँगा। (सर्वप्रथम) कर्मों की विधायक छहों लेश्याओं के अनुभाव (रसविशेष के) विषय में मुझसे सुनो।
इन लेश्याओं का वर्णन नाम, वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, परिणाम, लक्षण, स्थान, स्थिति, गति और आयुष्य का बन्ध इन द्वारों के माध्यम से मुझसे सुनो।

२. छः प्रकार की लेश्याएँ–
प्र. भन्ते ! लेश्याएं कितनी कही गई हैं ?
उ. गौतम ! छः लेश्याएँ कही गई हैं, यथा–
१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या,
४. तेजोलेश्या, ५. पद्मलेश्या, ६. शुक्ललेश्या।

३. द्रव्य-भाव लेश्याओं का स्वरूप–
प्र. भन्ते ! कृष्णलेश्या में कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श कहे गये हैं ?
उ. गौतम ! १. द्रव्यलेश्या की अपेक्षा से उसमें पांच वर्ण, पाँच रस, दो गंध और आठ स्पर्श कहे गये हैं,
२. भावलेश्या की अपेक्षा से वह वर्ण, गंध, रस, स्पर्श रहित है।
इसी प्रकार शुक्ललेश्या तक कहना चाहिए।

४. लेश्याओं के लक्षण–
१. जो मनुष्य पाँच आश्रवों में प्रवृत्त है, तीन गुप्तियों से अगुप्त है, षट्कायिक जीवों के प्रति अविरत है, तीव्र आरम्भ में परिणत है, क्षुद्र एवं साहसी है।
निःशंक परिणाम वाला है, नृशंस है, अजितेन्द्रिय है, इन योगों से युक्त वह जीव कृष्णलेश्या में परिणत होता है।

२. जो ईर्ष्यालु है, कदाग्रही है, अतपस्वी है, अज्ञानी है, मायी है, निर्लज्ज है, विषयासक्त है, प्रद्वेषी है, धूर्त है, प्रमादी है, रसलोलुप है, सुख का गवेषक है।
जो आरम्भ से अविरत है, क्षुद्र है, दुःसाहसी है इन योगों से युक्त जीव नीललेश्या में परिणत होता है।

---

१. उत्तराध्ययन के लेश्या अध्ययन में इस गाथानुसार वर्णादि का क्रम से वर्णन है किन्तु विभिन्न आगमों के लेश्या संबंधी पाठों का संकलन करने के लिये यहाँ भिन्न क्रम से पाठों को रखा गया है।
२. (क) किण्हा नीला य काऊ य, तेऊ पम्हा तहेव य।
सुक्कलेसा य छट्ठा उ, नामाइं तु जहक्कमं॥
–उत्त. अ. ३४, गा. ३
(ख) ठाणं. अ. ६, सु. ५०४
(ग) पण्ण. १७, उ. ४, सु. १२१९
(घ) पण्ण. प. १७, उ. ५, सु. १२५०
(ङ) पण्ण. प. १७, उ. ६, सु. १२५६
(च) विया. स. १, उ. २, सु. १३
(छ) विया. स. २५, उ. १, सु. ३
(ज) सम. सम. ६, सु. १
(झ) आव. अ. ४, सु. ६
(ञ) सम. सु. १५३ (३)

३. वंके वंकसमायारे, नियडिल्ले अणुज्जुए।
पलिउंचग ओवहिए, मिच्छदिट्ठी अणारिए॥

उप्फालग-दुट्ठवाई य, तेणे यावि य मच्छरी।
एयजोगसमाउत्तो, काउलेसं तु परिणमे॥

४. नीयावित्ती अचवले, अमाई अकुऊहले।
विणीयविणए दन्ते, जोगवं उवहाणवं॥

पियधम्मे दढधम्मे, वज्जभीरु हिएसए।
एयजोगसमाउत्तो, तेउलेसं तु परिणमे॥

५. पयणुक्कोह-माणे य, माया लोभे य पयणुए।
पसन्तचित्ते दन्तप्पा, जोगवं उवहाणवं॥

तहा पयणुवाई य, उवसन्ते जिइन्दिए।
एयजोगसमाउत्तो, पम्हलेसं तु परिणमे॥

६. अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता, धम्मसुक्काणि झायए।
पसंतचित्ते दन्तप्पा, समिए गुत्ते य गुत्तिहिं॥

सरागे वीयरागे वा, उवसन्ते जिइन्दिए।
एयजोगसमाउत्तो, सुक्कलेसं तु परिणमे॥

—उत्त. अ. ३४, गा. २१-३२

३. जो मनुष्य वाणी से वक्र है, आचार से वक्र है, कपटी है, सरलता से रहित है, स्वदोषों को छिपाने वाला है, छल छद्म का प्रयोग करने वाला है, मिथ्यादृष्टि है, अनार्य है।

जो मुँह में आया वैसा दुर्वचन बोलने वाला है, दुष्टवादी है, चोर है, ईर्ष्या करने वाला है, इन योगों से युक्त जीव कापोतलेश्या में परिणत होता है।

४. जो नम्र वृत्ति का है, अचपल है, माया से रहित है, अकुतूहली है, विनय करने में निपुण है, दान्त है, स्वाध्यायादि में समाधि-सम्पन्न है, शास्त्राध्ययन के समय विहित तपस्या का कर्ता है।

जो प्रियधर्मी है, दृढ़धर्मी है, पापभीरु है, हितैषी है इन योगों से युक्त जीव तेजोलेश्या में परिणत होता है।

५. जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ अत्यन्त अल्प हैं, जो प्रशान्तचित्त है, आत्मा का दमन करता है, योगवान् तथा उपधानवान् है।

जो अल्पभाषी है, उपशान्त है और जितेन्द्रिय है इन योगों से युक्त जीव पद्मलेश्या में परिणत होता है।

६. जो आर्त्त और रौद्र ध्यानों का त्याग करके धर्म और शुक्लध्यान में लीन है, प्रशान्तचित्त और दान्त है, पाँच समितियों से समित और तीन गुप्तियों से गुप्त है।

सरागी (गृहस्थ) या वीतरागी (श्रमण) है। किन्तु उपशान्त और जितेन्द्रिय है इन योगों से युक्त जीव शुक्ललेश्या में परिणत होता है।

५. दुग्गइसुगइगामिणी लेस्साओ—

तओ लेसाओ—दोग्गइगामिणीओ, संकिलिट्ठाओ, अमणुण्णाओ, अविसुद्धाओ, अप्पसत्थाओ सीतलुक्खाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. कण्हलेसा, २. णीललेसा, ३. काउलेसा।

तओ लेसाओ—सोगइगामिणीओ, असंकिलिट्ठाओ, मणुण्णाओ, विसुद्धाओ, पसत्थाओ, णिद्धुण्हाओ, पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. तेउलेसा, २. पम्हलेसा, ३. सुक्कलेसा[१]।

—ठाणं अ. ३, उ. ४, सु. २२१

५. दुर्गतिसुगतिगामिनी लेश्याएँ—

तीन लेश्याएँ—दुर्गतिगामिनी, संक्लिष्ट, अमनोज्ञ, अविशुद्ध, अप्रशस्त और शीत-रूक्ष स्पर्श वाली कही गई हैं, यथा—

१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या।

तीन लेश्याएँ—सुगतिगामिनी, असंक्लिष्ट, मनोज्ञ, विशुद्ध, प्रशस्त और स्निग्ध उष्ण स्पर्श वाली कही गई हैं, यथा—

१. तेजोलेश्या, २. पद्मलेश्या, ३. शुक्ललेश्या।

६. लेस्साणं गरुयत्तं लहुयत्तं—

प. कण्हलेस्सा णं भंते ! किं गरुया, लहुया, गरुयलहुया, अगरुयलहुया?

उ. गोयमा ! णो गरुया, णो लहुया, गरुयलहुया वि, अगरुयलहुया वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ [illegible]

[illegible]

६. लेश्याओं का गुरुत्व लघुत्व—

प्र. भंते ! कृष्णलेश्या क्या गुरु है, [illegible]

उ. [illegible]

प्र. [illegible]

[illegible]

एवं जाव सुक्कलेस्सा। *–विया. स. १, उ. ९, सु. १०(१)*

७. **सरुवी सकम्मलेस्स पुग्गलाणं ओभासणाइ–**

प. अत्थि णं भंते ! सरूवी सकम्मलेस्सा पोग्गला ओभासेंति, उज्जोएंति, तवेंति, पभासेंति ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. कयरे णं भंते ! सरूवी सकम्मलेस्सा पोग्गला ओभासेंति जाव पभासेंति ?

उ. गोयमा ! जाओ इमाओ चंदिम सूरियाणं देवाणं विमाणेहिंतो लेस्साओ बहिया अभिनिस्सडाओ ओभासेंति जाव पभासेंति।

एएणं गोयमा ! ते सरूवी सकम्मलेस्सा पोग्गला ओभासेंति जाव पभासेंति। *–विया. स. १४, उ. ९, सु. २-३*

८. **लेस्साणं वण्णा–**

प. एयाओ णं भंते ! छल्लेसाओ कइसु वण्णेसु साहिज्जंति ?

उ. गोयमा ! पंचसु वण्णेसु साहिज्जंति, तं जहा–

१. कण्हलेस्सा कालएणं वण्णेणं साहिज्जइ।
२. णीललेस्सा णीलएणं वण्णेणं साहिज्जइ।
३. काउलेस्सा काल-लोहिएणं वण्णेणं साहिज्जइ।
४. तेउलेस्सा लोहिएणं वण्णेणं साहिज्जइ।
५. पम्हलेस्सा हालिद्दएणं वण्णेणं साहिज्जइ।
६. सुक्कलेस्सा सुक्किलएणं वण्णेणं साहिज्जइ।

–पण्ण. प. १७, उ. ४, सु. १२३२

प. १. कण्हलेस्सा णं भंते ! वण्णेणं केरिसिया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जे जहाणामए जीमूए इ वा, अंजणे इ वा, खंजणे इ वा, कज्जले इ वा, गवले इ वा, गवलवलए इ वा, जंबूफलए इ वा, अद्दारिट्ठाए इ वा, परपुट्ठे इ वा, भमरे इ वा, भमरावली इ वा, गयकलभे इ वा, किण्हकेसे इ वा, आगासथिग्गले इ वा, किण्हासोए इ वा, किण्हकणवीरए इ वा, किण्हबंधुजीवए इ वा।

प. भवेयारूवा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

किण्हलेस्सा णं एत्तो अणिट्ठतरिया चेव, अकंततरिया चेव, अप्पियतरिया चेव, अमणुण्णतरिया चेव, अमणामतरिया चेव वण्णेणं पण्णत्ता।

प. २. णीललेस्सा णं भंते ! केरिसिया वण्णेणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! से जहाणामए भिंगे इ वा, भिंगपत्ते इ वा, चासे इ वा, चासपिच्छे इ वा, सुए इ वा, सुयपिच्छे इ वा, सामा इ वा, वणराइ इ वा, उच्चंतए इ वा, पारेवयगीवा इ वा, मोरगीवा इ वा, हलधरवसणे इ वा, अयसिकुसुमए इ वा, वाणकुसुमए इ वा, अंजण केसियाकुसुमए इ वा, णीलुप्पले इ वा, नीलासोए इ वा, णीलकणवीरए इ वा, णीलबंधुजीवए इ वा।

इसी प्रकार शुक्ललेश्या पर्यन्त जानना चाहिए।

७. **सरूपी सकर्म लेश्याओं के पुद्गलों का अवभासन (प्रकाशित होना) आदि–**

प्र. भन्ते ! क्या सरूपी (वर्णादियुक्त) सकर्म लेश्याओं के पुद्गल स्कन्ध होते हैं जो अवभासित होते हैं, उद्योतित होते हैं, तपते हैं या प्रभासित होते हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! वे (अवभासित यावत् प्रभासित) होते हैं।

प्र. भंते ! वे सरूपी कर्मलेश्या के पुद्गल कौन से हैं जो अवभासित यावत् प्रभासित होते हैं ?

उ. गौतम ! चन्द्रमा और सूर्य देवों के विमानों से बाहर निकली हुई जो लेश्याएँ हैं वे अवभासित यावत् प्रभासित होती हैं।

हे गौतम ! ये ही वे चन्द्र, सूर्य निर्गत तेजोलेश्याएं हैं, जिनसे सरूपी कर्मलेश्या के पुद्गल स्कंध अवभासित यावत् प्रभासित होते हैं।

८. **लेश्याओं के वर्ण–**

प्र. भन्ते ! छः लेश्याएँ कितने वर्णों से वर्णित हैं ?

उ. गौतम ! पाँच वर्णों से वर्णित हैं, यथा–

१. कृष्णलेश्या कृष्ण वर्ण से वर्णित है।
२. नीललेश्या नील वर्ण से वर्णित है।
३. कापोतलेश्या कृष्ण-रक्त मिश्रित वर्ण से वर्णित है।
४. तेजोलेश्या रक्त (लाल) वर्ण से वर्णित है।
५. पद्मलेश्या पीत वर्ण से वर्णित है।
६. शुक्ललेश्या श्वेत वर्ण से वर्णित है।

प्र. १. भन्ते ! कृष्णलेश्या कैसे वर्ण वाली कही गई है ?

उ. गौतम ! जीमूत (काली मेघमाला), अंजन (सुरमा), खंजन (गाड़ी की धुरी के भीतर लगा हुआ काला कीट), काजल, गवल (भैंस का सींग), गवल वलय, जामुन के फल, गीले अरीठे, परपुष्ट (कोयल), भ्रमर, भ्रमरों की पंक्ति, हाथी के बच्चे, काले केश, आकाश खंड, काले अशोक, काले कनेर, काले बन्धुजीवक जैसे वर्ण वाली कृष्णलेश्या है।

प्र. क्या कृष्णलेश्या ऐसे वर्ण वाली है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

कृष्णलेश्या इनसे भी अधिक अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमनोहर वर्ण वाली कही गई है।

प्र. २. भन्ते ! नीललेश्या कैसे वर्ण वाली कही गई है ?

उ. गौतम ! भृंग, भृंग की पांख (पत्र), नीलकंठ, नीलकंठ की पाँख, तोता, तोते की पाँख, श्यामा (सांवाधान्य विशेष), वनराजि, दन्तराग, कपोत ग्रीवा, मयूर ग्रीवा, बलदेव वस्त्र, अलसी पुष्प, वाण पुष्प, अंजनकेसरि पुष्प, नीलकमल, नीलअशोक, नीलकनेर, नीलबन्धुजीवक वृक्ष जैसे वर्ण वाली नीललेश्या है।

प. भवेयारूवा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।
नीललेस्सा णं एत्तो अणिट्ठतरिया जाव अमणामतरिया चेव वण्णेणं पण्णत्ता।

प्र. क्या नीललेश्या ऐसे वर्ण वाली है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।
नीललेश्या इनसे भी अधिक अनिष्ट यावत् अधिक अमनोहर वर्ण वाली कही गई है।

प. ३. काउलेस्सा णं भंते ! केरिसिया वण्णेणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! से जहाणामए खयरसारे इ वा, कयरसारे इ वा, धमाससारे इ वा, तंबे इ वा, तंबकरोडए इ वा, तंबच्छिवाडिया इ वा, वाइंगणि कुसुमए इ वा, कोइलच्छपकुसुमए इ वा, जवासा कुसुमे इ वा, कलकुसुमे इ वा।

प्र. ३. भन्ते ! कापोतलेश्या कैसे वर्ण वाली कही गई है ?

उ. गौतम ! कत्था, कैर, धमासा, ताम्बे, ताम्बे के कटोरे, ताम्बे के चम्मच, बैंगन पुष्प, कोकिलच्छद पुष्प, जवासा पुष्प, कलकुसुम जैसे वर्ण वाली कापोतलेश्या है।

प. भवेयारूवा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।
काउलेस्सा णं एत्तो अणिट्ठतरिया जाव अमणामतरिया चेव वण्णेणं पण्णत्ता।

प्र. क्या कापोतलेश्या ऐसे वर्ण वाली है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।
कापोतलेश्या इनसे भी अधिक अनिष्ट यावत् अधिक अमनोहर वर्ण वाली कही गई है।

प. ४. तेउलेस्सा णं भंते ! केरिसिया वण्णेणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! से जहाणामए ससरुहिरे इ वा, उरब्भरुहिरे इ वा, वराहरुहिरे इ वा, संबररुहिरे इ वा, मणुस्सरुहिरे इ वा, बालिंदगोवे इ वा, बालदिवागरे इ वा, संझब्भरागे इ वा, गुंजद्धरागे इ वा, जाइहिंगुलए इ वा, पवालंकुरे इ वा, लक्खारसे इ वा, लोहियक्खमणी इ वा, किमिरागकंबले इ वा, गयतालुए इ वा, चीणपिट्ठरासी इ वा, पालियायकुसुमे इ वा, जासुमणाकुसुमे इ वा, किंसुयपुप्फरासी इ वा, रत्तुप्पले इ वा, रत्तासोगे इ वा, रत्तकणवीरए इ वा, रत्तबंधुजीवए इ वा।

प्र. ४. भन्ते ! तेजोलेश्या कैसे वर्ण वाली कही गई है ?

उ. गौतम ! शशक रुधिर, मेष रुधिर, सूकर रुधिर, सांभर रुधिर, मनुष्य रुधिर, बाल इन्द्रगोप, बाल दिवाकर, संध्या लालिमा, गुंजार्ध लालिमा, उत्तम हिंगलु, प्रवालांकुर, लाक्षारस, लोहिताक्षमणि, किरमिची रंग कृत कम्बल, गज तालु, चीन पिष्ट राशि, पारिजात पुष्प, जपा पुष्प, किंशुक पुष्प, लाल कमल, लाल अशोक, लाल कनेर, लाल बन्धुजीवक जैसे वर्ण वाली तेजोलेश्या है।

प. भवेयारूवा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।
तेउलेस्सा णं एत्तो इट्ठतरिया चेव, कंततरिया चेव, पियतरिया चेव, मणुण्णतरिया चेव मणामतरिया चेव वण्णेणं पण्णत्ता।

प्र. क्या तेजोलेश्या ऐसे वर्ण वाली है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।
तेजोलेश्या इनसे भी अधिक इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मनोहर वर्ण वाली कही गई है।

प. ५. पम्हलेस्सा णं भंते ! केरिसिया वण्णेणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! से जहाणामए चंपे इ वा, चंपयछल्ली इ वा, चंपयभेए इ वा, हालिद्दा इ वा, हालिद्दगुलिया इ वा, [illegible]

प्र. ५. भन्ते ! पद्मलेश्या कैसे वर्ण वाली कही गई है ?

उ. गौतम ! [illegible]

प. [illegible]

उ. [illegible]

प्र. [illegible]

उ. [illegible]

उ. गोयमा ! से जहाणामए अंके इ वा, संखे इ वा, चंदे इ वा, कुंदे इ वा, दगे इ वा, दगरए इ वा, दही इ वा, दहिघणे इ वा, खीरे इ वा, खीरपूरे इ वा, सुक्कछिवाडिया इ वा, पेहुणमिंजिया इ वा, धंतधोयरुप्पपट्टे इ वा, सारइयबलाहए इ वा, कुमुद्दले इ वा, पोंडरियदले इ वा, सालिपिट्ठरासी इ वा, कुडगपुप्फरासी इ वा, सिंदुवारवरमल्लदामे इ वा, सेयासोए इ वा, सेयकणवीरे इ वा, सेयबंधुजीवए इ वा।

उ. गौतम ! अंकरत्न, शंख, चन्द्र, कुन्द पुष्प, उदक, जलकण, दधि, दधिपिंड, दुग्ध, दुग्धझाग, शुष्क फली, मयूरपिच्छमिंजीका, धौत रजत पट्ट, शारदीय मेघ, कुमुदपत्र, पुण्डरीक पत्र, शालिपिष्ट राशि, कुटज पुष्प राशि, सिंदुवार पुष्प माला, श्वेत अशोक, श्वेत कनेर, श्वेत बन्धुजीवक जैसे वर्ण वाली शुक्ललेश्या है।

प. भवेयारूवा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

सुक्कलेस्सा णं एत्तो इट्ठतरिया चेव जाव मणामतरिया चेव वण्णेणं पण्णत्ता।

—पण्ण. प. १७ उ. ४, सु. १२२६-१२३१

प्र. क्या शुक्ललेश्या ऐसे वर्ण वाली है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

शुक्ललेश्या इनसे भी अधिक इष्ट यावत् अधिक मनोहर वर्ण वाली कही गई है।

१. जीमूयनिद्धसंकासा, गवलरिट्ठगसन्निभा।
खंजणंजण–नयणनिभा, किण्हलेसा उ वण्णओ॥

२. नीलाऽसोगसंकासा, चासपिच्छसमप्पभा।
वेरुलिय निद्धसंकासा, नीललेसा उ वण्णओ॥

३. अयसीपुप्फसंकासा, कोइलच्छदसन्निभा।
पारेवयगीवनिभा, काउलेसा उ वण्णओ॥

४. हिंगुलुयधायउसंकासा, तरुणाइच्चसन्निभा।
सुयतुण्ड-पईवनिभा, तेउलेसा उ वण्णओ॥

५. हरियालभेयसंकासा, हलिद्दाभेयसन्निभा।
सणासणकुसुमनिभा, पम्हलेसा उ वण्णओ॥

६. संखंककुन्दसंकासा, खीरपूरसमप्पभा।
रययहारसंकासा, सुक्कलेसा उ वण्णो॥

—उत्त. अ. ३४, गा. ४-९

१. कृष्णलेश्या वर्ण की अपेक्षा से स्निग्ध काले मेघ के समान, भैंस के सींग एवं रिष्टक (अरीठे) के सदृश अथवा खंजन (गाड़ी के ओंघन), अंजन (काजल या सुरमा) एवं आँख के तारे (कीकी) के समान काली है।

२. नीललेश्या वर्ण की अपेक्षा से नीले अशोक वृक्ष के समान, चास-पक्षी की पाँख के समान या स्निग्ध वैडूर्यरत्न के समान अतिनील है।

३. कापोतलेश्या वर्ण की अपेक्षा से अलसी के फूल जैसी, कोयल की पाँख जैसी तथा कबूतर की गर्दन जैसी कुछ काली और कुछ लाल है।

४. तेजोलेश्या वर्ण की अपेक्षा से हींगलू तथा धातु-गेरु के समान, तरुण सूर्य के समान तथा तोते की चोंच या जलते हुए दीपक के समान लाल रंग की है।

५. पद्मलेश्या वर्ण की अपेक्षा से हरताल के टुकड़े जैसी, हल्दी के रंग जैसी तथा सण और असन के फूल जैसी पीली है।

६. शुक्ललेश्या वर्ण की अपेक्षा से शंख, अंकरत्न एवं कुन्द के फूल के समान है, दूध की धारा के समान तथा रजत और हार (मोती की माला) के समान सफेद है।

९. लेस्साणं गंधा–

प. कइ णं भन्ते ! लेस्साओ दुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! तओ लेस्साओ दुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. किण्हलेस्सा, २. णीललेस्सा, ३. काउलेस्सा।

प. कइ णं भंते ! लेस्साओ सुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! तओ लेस्साओ सुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. तेउलेस्सा, २. पम्हलेस्सा, ३. सुक्कलेस्सा।[1]

—पण्ण. प. १७, उ. ४, सु. १२३९-१२४०

जह गोमडस्स गन्धो, सुणगमडगस्स व जहा अहिमडस्स।
एत्तो वि अणन्तगुणो, लेसाणं अप्पसत्थाणं॥

९. लेश्याओं की गन्ध–

प्र. भन्ते ! दुर्गन्ध वाली कितनी लेश्याएँ कही गई हैं ?

उ. गौतम ! तीन लेश्याएँ दुर्गन्ध वाली कही गई हैं, यथा–

१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या।

प्र. भंते ! कितनी लेश्याएँ सुगन्ध वाली कही गई हैं ?

उ. गौतम ! तीन लेश्याएँ सुगन्ध वाली कही गई हैं, यथा–

१. तेजोलेश्या, २. पद्मलेश्या, ३. शुक्ललेश्या।

मरी हुई गाय, मरे हुए कुत्ते और मरे हुए साँप की जैसी दुर्गन्ध होती है, उससे भी अनन्तगुणी अधिक दुर्गन्ध तीनों अप्रशस्त (कृष्ण, नील, कापोत) लेश्याओं की होती है।

१. ठाणं अ. ३, उ. ४, सु. २२१

जह सुरहिकुसुमगन्धे, गन्धवासाण पिस्समाणाणं।
एत्तो वि अणन्तगुणो, पसत्थलेसाण तिण्हं पि॥

—उत्त. अ. ३४, गा. १६-१७

सुगन्धित पुष्प और पीसे जा रहे सुवासित गन्धद्रव्यों की जैसी गन्ध होती है, उससे भी अनन्तगुनी अधिक सुगन्ध तीनों प्रशस्त (तेजो-पद्म-शुक्ल) लेश्याओं की होती है।

१०. लेसाणं रसा–

प. १. कण्हलेसा णं भंते ! केरिसिया आसाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! से जहाणामए णिंबे इ वा, णिंबसारे इ वा, णिंबछल्ली इ वा, कुडगफाणिए इ वा, णिंबफाणिए इ वा, कुडए इ वा, कुडगपत्ते इ वा, कडुगतुंबी इ वा, कडुगतुंबीफले इ वा, खारतउसी इ वा, खारतउसीफले इ वा, देवदाली इ वा, देवदालिपुप्फे इ वा, मियवालुंकी इ वा, मियवालुंकीफले इ वा, घोसाडिए इ वा, घोसाडइफले इ वा, कण्हकंदए इ वा, वज्जकंदए इ वा।

प. भवेयारूवा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

कण्हलेसा णं एत्तो अणिट्ठतरिया चेव जाव अमणामतरिया चेव आसाएणं पण्णत्ता।

प. २. णीललेसाए णं भन्ते ! केरिसिया आसाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! से जहाणामए भंगी इ वा, भंगीरए इ वा, पाढा इ वा, चविता इ वा, चित्तामूलए इ वा, पिप्पलीमूलए इ वा, पिप्पली इ वा, पिप्पलीचुण्णे इ वा, मिरिए इ वा, मिरियचुण्णे इ वा, सिंगबेरे इ वा, सिंगबेरचुण्णे इ वा।

प. भवेयारूवा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

णीललेस्सा णं एत्तो अणिट्ठतरिया चेव जाव अमणामतरिया चेव आसाएणं पण्णत्ता।

प. ३. काउलेस्साए णं भंते ! केरिसिया आसाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! से जहाणामए अंबाण वा, अंबाडगाण वा, माउलुंगाण वा, बिल्लाण वा, कविट्ठाण वा, भज्जाण वा, फणसाण वा, दाडिमाण वा, पारेवयाण वा, अक्खोडाण वा, चोराण वा, बोराण वा, तिंदुयाण वा, अपक्काणं, परिवज्जियाणं, वण्णेणं अणुववेयाणं, गंधेणं अणुववेयाणं, फासेणं अणुववेयाणं।

प. भवेयारूवा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

[illegible]

१०. लेश्याओं के रस–

प्र. १. भन्ते ! कृष्णलेश्या का आस्वाद (रस) कैसा कहा गया है ?

उ. गौतम ! नीम, नीम-सार, नीम-छाल, नीम-क्वाथ, कुटज, कुटज-फल, कुटज-छाल, कुटज-क्वाथ, कटुक तुम्बी, कटुक तुम्बी फल, कड़वी ककड़ी, कड़वी ककड़ी फल, देवदाली, देवदाली पुष्प, मृगवालुकी, मृगवालुकी फल, घोषातकी, घोषातकी फल, कृष्णकन्द, वज्रकन्द जैसा कृष्णलेश्या का आस्वाद है।

प्र. क्या कृष्णलेश्या ऐसे आस्वाद वाली है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

कृष्णलेश्या आस्वाद में इनसे भी अनिष्ट यावत् अधिक अमनोहर रस वाली कही गई है।

प्र. २. भन्ते ! नीललेश्या का आस्वाद कैसा कहा गया है ?

उ. गौतम ! भृंगी, भृंगी-रज, पाठा, चविता, चित्रमूलक, पिप्पलीमूल (पीपलामूल) पीपर, पीपरचूर्ण, मिर्च, मिर्चचूर्ण, शृंगबेर, शृंगबेरचूर्ण जैसा नीललेश्या का आस्वाद है।

प्र. क्या नीललेश्या ऐसे आस्वाद वाली है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

नीललेश्या आस्वाद में इनसे भी [illegible] यावत् अधिक अमनोहर रस वाली कही गई है।

प्र. ३. भन्ते ! [illegible]

[illegible]

प. ५. पम्हलेस्साए णं भंते ! केरिसिया आसाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! से जहाणामए चंदप्पभा इ वा, मणिसिलागा इ वा, वरसीधू इ वा, वरवारुणी इ वा, पत्तासवे इ वा, पुप्फासवे इ वा, फलासवे इ वा, चोयासवे इ वा, आसवे इ वा, मधू इ वा, मेरए इ वा, कविसाणए इ वा, खज्जुरसारए इ वा, मुद्दियासारए इ वा, सुपक्कखोयरसे इ वा, अट्ठपिट्ठणिट्ठिया इ वा, जंबूफलकालिया इ वा, वरपसण्णा इ वा, आसला मासला पेसला ईसी ओट्ठावलंबिणी ईसी वोच्छेयकडुई ईसी तंबच्छिकरणी उक्कोसमयपत्ता वण्णेणं उववेया जाव फासेणं उववेया आसायणिज्जा, वीसायणिज्जा, पीणणिज्जा, विहंणिज्जा, दीवणिज्जा, दप्पणिज्जा, मयणिज्जा, सव्विंदिय गायपल्हायणिज्जा।

प. भवेयारूवा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

पम्हलेस्सा णं एत्तो इट्ठतरिया चेव जाव मणामतरिया चेव आसाएणं पण्णत्ता।

प. ६. सुक्कलेस्सा णं भंते ! केरिसिया आसाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! से जहाणामए गुले इ वा, खंडे इ वा, सक्करा इ वा, मच्छंडिया इ वा, पप्पडमोदए इ वा, भिसकंदे इ वा, पुप्फुत्तरा इ वा, पउमुत्तरा इ वा, आयंसिया इ वा, सिद्धत्थिया इ वा, आगासफालिओवमा इ वा, अणोवमा इ वा।

प. भवेयारूवा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

सुक्कलेस्सा णं एत्तो इट्ठतरिया चेव जाव मणामतरिया चेव आसाएणं पण्णत्ता।

—पण्ण. प. १७, उ. ४, सु. १२३३-१२३८

१. जह कडुयतुम्बगरसो, निम्बरसो कडुयरोहिणिरसो वा।
एत्तो वि अणन्तगुणो, रसो उ किण्हाए नायव्वो॥

२. जह तिगडुयस्स य रसो, तिक्खो जह हत्थिपिप्पलीए वा।
एत्तो वि अणन्तगुणो, रसो उ नीलाए नायव्वो॥

३. जह तरुणअम्बगरसो, तुवरकविट्ठस्स वावि जारिसओ।
एत्तो वि अणन्तगुणो, रसो उ काऊए नायव्वो॥

४. जह परियणम्बगरसो, पक्ककविट्ठस्स वावि जारिसओ।
एत्तो वि अनन्तगुणो, रसो उ तेऊए नायव्वो॥

५. वरवारुणीए व रसो, विविहाण व आसवाण जारिसओ।
महु-मेरगस्स व रसो, एत्तो पम्हाए परएणं॥

प्र. ५. भंते ! पद्मलेश्या का आस्वाद कैसा कहा गया है ?

उ. गौतम ! चन्द्रप्रभा मद्य, मणिशलाका मद्य, श्रेष्ठ सीधू मद्य, श्रेष्ठ वारुणी मद्य, पत्रासव, पुष्पासव, फलासव, चोयासव, आसव, मधु, मेर, कापिशायन, खर्जूरसार, द्राक्षासार, सुपक्व इक्षुरस, आठ पुटों से निर्मित मद्य, जामुन का सिरका, प्रसन्ना मदिरा जो आस्वादनीय, जो मुख माधुर्यकारिणी हो, जो पीने के बाद कुछ कटुक तीक्ष्ण हो, नेत्रों को लाल करने वाली उत्कृष्ट मादक प्रशस्त वर्ण यावत् स्पर्श से युक्त, आस्वाद करने योग्य विशेष रूप से आस्वादन करने योग्य, प्रणिनीय, वृद्धिकारक, उद्दीपक, दर्पजनक, मदजनक तथा सभी इन्द्रियों और शरीर को आह्लादजनक हो ऐसा पद्मलेश्या का आस्वाद है।

प्र. क्या पद्मलेश्या ऐसे आस्वाद वाली है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

पद्मलेश्या आस्वाद में इनसे भी अधिक इष्ट यावत् अधिक मनोहर रस वाली कही गई है।

प्र. ६. भंते ! शुक्ललेश्या का आस्वाद कैसा कहा गया है ?

उ. गौतम ! गुड़, खाँड़, शक्कर, मिश्री-मत्स्यण्डी, पर्पटमोदक, भिसकन्द, पुष्पोत्तरा, पद्मोत्तरा, आदर्शिका, सिद्धार्थिका, आकाशस्फटिकोपमा व अनुपमा नामक शर्करा जैसा शुक्ललेश्या का आस्वाद है।

प्र. क्या शुक्ललेश्या ऐसे आस्वाद वाली है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

शुक्ललेश्या आस्वाद में इनसे भी अधिक इष्ट यावत् अधिक मनोहर रस वाली कही गई है।

१. जैसे कड़वे तुम्बे का रस, नीम का रस या कड़वी रोहिणी (रोहिड़ी) का रस कड़वा होता है, उससे भी अनन्तगुणा अधिक कड़वा कृष्णलेश्या का रस जानना चाहिए।

२. त्रिकटुक (सौंठ, पिप्पल और काली मिर्च) का रस या गजपीपल का रस जितना तीखा होता है, उससे भी अनन्तगुणा अधिक तीखा नीललेश्या का रस जानना चाहिए।

३. कच्चा आँवला और कच्चे कपित्थ फल का रस जैसा कसैला होता है, उससे भी अनन्तगुणा अधिक (कसैला) कापोतलेश्या का रस जानना चाहिए।

४. पके हुए आम अथवा पके हुए कपित्थ के रस जैसा खटमीठा होता है, उससे भी अनन्तगुणा खटमीठा रस तेजोलेश्या का जानना चाहिए।

५. उत्तम मदिरा का रस, विविध आसवों का रस, मधु तथा मेरेयक सिरके का जैसा (कुछ खट्टा तथा कुछ कसैला) रस होता है, उससे भी अनन्तगुणा अधिक (अम्ल-कसैला) रस पद्मलेश्या का जानना चाहिए।

१. तत्थ णं जे ते अपमत्त संजया ते णं नो आयारंभा जाव अणारंभा।
२. तत्थ णं जे ते पमत्तसंजया ते सुभं जोगं पडुच्च नो आयारंभा जाव अणारंभा।

असुभं जोगं पडुच्च आयारंभा वि जाव नो अणारंभा।

तत्थ णं जे ते असंजया ते अविरइं पडुच्च आयारंभा वि जाव नो अणारंभा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"अत्थेगइया सलेसा जीवा आयारंभा वि जाव अणारंभा वि।"

किण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काउलेस्सा जहा ओहिया जीवा।

णवरं–पमत्तअप्पमत्ता न भाणियव्वा।

तेउलेस्सा, पम्हलेस्सा, सुक्कलेस्सा जहा ओहिया जीवा।

णवरं–सिद्धा न भाणियव्वा। *–विया. स. १, उ. १, सु. ९*

१. उनमें से जो अप्रमत्त संयत हैं वे आत्मारंभी नहीं हैं यावत् अनारम्भी हैं।
२. उनमें से जो प्रमत्त संयत हैं वे शुभ योग की अपेक्षा आत्मारंभी नहीं हैं यावत् अनारंभी हैं।

अशुभ योग की अपेक्षा वे आत्मारंभी हैं यावत् अनारम्भी नहीं हैं।

उनमें से जो असंयत हैं वे अविरति की अपेक्षा आत्मारम्भी हैं यावत् अनारम्भी नहीं हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"कितने ही सलेश्यी जीव आत्मारम्भी भी हैं यावत् अनारम्भी भी हैं।"

कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वाले जीवों के संबंध में (पूर्वोक्त) सामान्य जीवों के समान कहना चाहिए।

विशेष–प्रमत्त और अप्रमत्त यहाँ नहीं कहना चाहिए।

तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या वाले जीवों के विषय में भी सामान्य जीवों की तरह कहना चाहिए।

विशेष–सिद्धों का कथन यहाँ नहीं कहना चाहिये।

१६. लेस्साकरणभेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! लेस्साकरणे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! लेस्साकरणे छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. कण्हलेस्साकरणे जाव ६. सुक्कलेस्साकरणे।

दं. १-२४. एए सव्वे नेरइयाइं दंडगा जाव वेमाणियाणं जस्स जं अत्थि तं तस्स सव्वं भाणियव्वं। *–विया. स. १९, उ. ९, सु. ८*

१६. लेश्याकरण के भेद और चौवीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भंते ! लेश्याकरण कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! लेश्याकरण छः प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. कृष्णलेश्याकरण यावत् ६. शुक्ललेश्याकरण।

दं. १-२४. नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त सभी दण्डकों में जिसके जितनी लेश्याएँ हैं, उसके उतने लेश्याकरण कहना चाहिए।

१७. लेस्साणिव्वत्ती भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! लेस्सानिव्वत्ती पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! छव्विहा लेस्सानिव्वत्ती पण्णत्ता, तं जहा–

१. कण्हलेस्सानिव्वत्ती जाव ६. सुक्कलेस्सानिव्वत्ती।

दं. १-२४. एवं नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं जस्स जइ लेस्साओ तस्स तइ लेस्सानिव्वत्ती भाणियव्वाओ। *–विया. स. १९, उ. ८, सु. ३४-३५*

१७. लेश्यानिर्वृत्ति के भेद और चौवीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भंते ! लेश्यानिर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! लेश्यानिर्वृत्ति छः प्रकार की कही गई है, यथा–

१. कृष्णलेश्यानिर्वृत्ति यावत् ६. शुक्ललेश्यानिर्वृत्ति।

दं. १-२४. नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त जिसके जितनी लेश्यायें हों उसके उतनी लेश्यानिर्वृत्ति कहनी चाहिए।

१८. चउवीसदंडएसु लेस्सा-परूवणं–

प. दं. १. णेरइयाणं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! तिण्णि लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. किण्हलेस्सा, २. नीललेस्सा, ३. काउलेस्सा[1]। *–पण्ण. प. १७, उ. २, सु. ११५७*

प. दं. २-११. भवणवासीणं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! (असुरकुमारा जाव थणियकुमाराणं) चत्तारि लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. कण्हलेस्सा जाव ४. तेउलेस्सा[2]। *–पण्ण. प. १७, उ. २, सु. ११६६(१)*

१८. चौबीस दण्डकों में लेश्याओं का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिकों में कितनी लेश्याएँ कही गई हैं ?

उ. गौतम ! तीन लेश्याएँ कही गई हैं, यथा–

१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या।

प्र. दं. २-११ भंते ! भवनवासी देवों में कितनी लेश्याएँ कही गई हैं ?

उ. गौतम ! (असुरकुमार यावत् स्तनितकुमारों में) चार लेश्याएँ कही गई हैं, यथा–

१. कृष्णलेश्या यावत् ४. तेजोलेश्या।

---

१. (क) जीवा. पडि. १, सु. ३२
(ख) ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १४०

२. ठाणं अ. ४, उ. ३, सु. ३१९

प. दं. १२. पुढविक्काइयाणं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! चत्तारि लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. कण्हलेस्सा जाव ४. तेउलेस्सा[1]।

दं. १३, १६. आउ वणस्सइकाइयाण वि एवं चेव[2]।

प. दं. १४,१५, १७, १९. तेउ[3] वाउ[4] बेइंदिय[5] तेइंदिय, चउरिंदियाणं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! तिण्णि लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. कण्हलेस्सा जाव ३. काउलेस्सा[6]।

प. दं. २०. पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! छ लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. कण्हलेस्सा जाव ६. सुक्कलेस्सा[7]।

प. दं. २१. मणुस्साणं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! छ लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. कण्हलेस्सा जाव ६. सुक्कलेस्सा।

–पण्ण. प. १७, उ. २, सु. ११६०-११६४(१)

प. दं. २२. वाणमंतरदेवाणं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! चत्तारि लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. कण्हलेस्सा जाव ४. तेउलेस्सा[8]।

प. दं. २३. जोइसियाणं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! एगा तेउलेस्सा पण्णत्ता[9]।

प. दं. २४. वेमाणियाणं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! तिण्णि लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. तेउलेस्सा, २. पम्हलेस्सा, ३. सुक्कलेस्सा।

–पण्ण. प. १७, उ. २, सु. ११६७-११६९(१)

प्र. दं. १२. भंते ! पृथ्वीकायिक जीवों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! चार लेश्याएँ कही गई हैं, यथा–

१. कृष्णलेश्या यावत् ४. तेजोलेश्या।

दं. १३, १६. अप्काय और वनस्पतिकाय में भी इसी प्रकार चार लेश्याएं हैं।

प्र. दं. १४, १५, १७, १९. भंते ! तेजस्कायिक, वायुकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! तीन लेश्याएं कही गई हैं, यथा–

१. कृष्णलेश्या यावत् ३. कापोतलेश्या।

प्र. दं. २०. भंते ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! छह लेश्याएं कही गई हैं, यथा–

१. कृष्णलेश्या यावत् ६. शुक्ललेश्या।

प्र. दं. २१. भंते ! मनुष्यों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! छह लेश्याएँ कही गई हैं, यथा–

१. कृष्णलेश्या यावत् ६. शुक्ललेश्या।

प्र. दं. २२. भन्ते ! वाणव्यन्तर देवों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! चार लेश्याएं कही गई हैं, यथा–

१. कृष्णलेश्या यावत् ४. तेजोलेश्या।

प्र. दं. २३. भंते ! ज्योतिष्क देवों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! एक तेजोलेश्या कही गई है।

प्र. दं. २४. भंते ! वैमानिक देवों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! तीन लेश्याएं कही गई हैं, यथा–

१. तेजोलेश्या, २. पद्मलेश्या, ३. शुक्ललेश्या।

१९. चउगइसु लेस्सा परूवणं–

१. नेरइएसु लेस्साओ–

प. १. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाएपुढवीए नेरइयाणं कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! एगा काउलेस्सा पण्णत्ता[10]।

२. एवं सक्करप्पभाए वि।

प. ३. वालुयप्पभाए णं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! दो लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. नीललेस्सा य, २. काउलेस्सा य।

१९. चार गतियों में लेश्याओं का प्ररूपण–

१. नैरयिकों में लेश्याएं–

प्र. १. भंते ! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! एक कापोतलेश्या कही गई है।

२. इसी प्रकार शर्कराप्रभा में भी कापोतलेश्या है।

प्र. ३. भंते ! वालुकाप्रभा में कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! दो लेश्याएं कही गई हैं, यथा–

१. नीललेश्या, २. कापोतलेश्या।

---

१. (क) विया. स. १९, उ. ३, सु. ३,
(ख) ठाणं. अ. ४, उ. ३ सु. ३१९
२. (क) विया. स. १९, उ. ३, सु. १८, २१
(ख) ठाणं अ. ४, उ. ३ सु. ३१९
३. विया. स. १९, उ. ३, सु. १९
४. विया. स. १९, उ. ३, सु. २०
५. विया. स. २०, उ. १, सु. ४
६. (क) विया. स. २०, उ. १, सु. ६,
(ख) ठाणं अ. ३, उ. १, सु. १४०
७. (क) ठाणं अ. ६, सु. ५०४
(ख) विया. स. २०, उ. १, सु. ६
८. ठाणं अ. ६, सु. ५०४
९. ठाणं अ. ४, उ. ३, सु. ३३१
१०. विया. स. १, उ. ५, सु. ३८

तत्थ णं जे काउलेस्सा ते बहुतरा, जे नीललेस्सा ते थोवा।

प. ४. पंकप्पभाए णं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! एगा नीललेस्सा पण्णत्ता।

प. ५. धूमप्पभाए णं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! दो लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. कण्हलेस्सा य, २. नीललेस्सा य।

जे बहुतरगा ते नीललेस्सा, जे थोवतरगा ते कण्हलेस्सा।

प. ६. तमाए णं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! एगा कण्हलेस्सा पण्णत्ता।

७. अहेसत्तमाए एगा परमकण्हलेस्सा।

–जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. ८८ (२)

२. तिरिक्खजोणिएसु लेस्साओ–

प. तिरिक्खजोणिया णं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! छ लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. कण्हलेस्सा जाव ६. सुक्कलेस्सा।

प. एगिंदियाणं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! चत्तारि लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. कण्हलेस्सा जाव ४. तेउलेस्सा[1]।

–पण्ण. प. १७, उ. २, सु. ११५८-११५९

प. १ क. सुहुम-पुढविकाइया णं भंते ! जीवाणं कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! तिण्णि लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. कण्हलेस्सा, २. नीललेस्सा, ३. काउलेस्सा।

–जीवा. पडि. १, सु. १३ (७)

प. ख. बायर-पुढविकाइयाणं भंते ! जीवाणं कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! चत्तारि लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. कण्हलेस्सा, २. नीललेस्सा, ३. काऊलेस्सा, ४. तेऊलेस्सा।

–जीवा. पडि. १, सु. १५

२. क. सुहुम आउकाइया जहेव सुहुम पुढविकाइयाणं–

–जीवा. पडि. १, सु. १६

ख. बायर आउकाइया जहेव बायर पुढविकाइयाणं–

–जीवा. पडि. १, सु. १७

३. क. सुहुम बायर तेउकाइया जहेव सुहुम पुढविकाइयाणं।

–जीवा. पडि. १, सु. २४-२५

४. सुहुम बायर वाउकाइया जहा तेउकाइयाणं।

–जीवा. पडि. १, सु. २६

५. क. सुहुम वण्णस्सइकाइयाणं जहेव सुहुम पुढविकाइयाणं,

–जीवा. पडि. १, सु. १८

प. ५ ख. पत्तेयसरीरबायरवणस्सइकाइयाणं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

उनमें से जो कापोतलेश्या वाले हैं वे अधिक हैं और नीललेश्या वाले अल्प हैं।

प्र. ४. भंते ! पंकप्रभा में कितनी लेश्याएं कही गई हैं ?

उ. गौतम ! एक नीललेश्या कही गई है।

प्र. ५. भंते ! धूमप्रभा में कितनी लेश्याएं कही गई हैं ?

उ. गौतम ! दो लेश्याएं कही गई हैं, यथा–

१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या।

उनमें से नीललेश्या वाले अधिक हैं और कृष्ण-लेश्या वाले अल्प हैं।

प्र. ६. भंते ! तमःप्रभा में कितनी लेश्याएं कही गई हैं ?

उ. गौतम ! एक कृष्णलेश्या कही गई है।

७. अधःसप्तम पृथ्वी में एक परमकृष्णलेश्या है।

२. तिर्यञ्चयोनिकों में लेश्याएं–

प्र. भंते ! तिर्यंचयोनिक जीवों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं ?

उ. गौतम ! छह लेश्याएं कही गई हैं, यथा–

१. कृष्णलेश्या यावत् ६. शुक्ललेश्या।

प्र. भंते ! एकेन्द्रिय जीवों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं ?

उ. गौतम ! चार लेश्याएं कही गई हैं,

१. कृष्णलेश्या यावत् ४. तेजोलेश्या।

प्र. १ क. भंते ! सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक जीवों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं ?

उ. गौतम ! तीन लेश्याएं कही गई हैं, यथा–

१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या।

प्र. ख. भंते ! बादर पृथ्वीकायिक जीवों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं ?

उ. गौतम ! चार लेश्याएं कही गई हैं, यथा–

१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या, ४. तेजोलेश्या।

२ क. सूक्ष्म-अप्काय में सूक्ष्म पृथ्वीकाय के समान तीन लेश्याएं हैं।

ख. बादर-अप्काय में बादर पृथ्वीकाय के समान चार लेश्याएं हैं।

३ क. सूक्ष्म-बादर तेउकाय में सूक्ष्म पृथ्वीकाय के समान तीन लेश्याएं हैं।

४. सूक्ष्म-बादर वायुकाय में तेउकाय के समान तीन लेश्याएँ हैं।

५. क. सूक्ष्म वनस्पतिकाय में सूक्ष्म पृथ्वीकाय के समान तीन लेश्याएँ हैं।

प्र. ५ ख. भंते ! प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकाय में कितनी लेश्याएं कही गई हैं ?

---

१. विया. स. १७, उ. १२, सु. २

उ. गोयमा ! चत्तारि लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. कण्हलेस्सा जाव ४. तेउलेस्सा।

प. ५ ग. साहारणसरीरबायरवणस्सइकाइया णं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! तिण्णि लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. कण्हलेस्सा, २. नीललेस्सा, ३. काउलेस्सा।
–जीवा. पडि. १, सु. २०-२१

प. बेइंदिया णं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! तिण्णि लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. कण्हलेस्सा, २. नीललेस्सा, ३. काउलेस्सा,
एवं तेइंदियाण वि।
एवं चउरिंदियाण वि। –जीवा. पडि. १, सु. २८-३०

प. सम्मुच्छिम पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! तिण्णि लेस्साओ पण्णत्ताओ।
१. कण्हलेस्सा, २. नीललेस्सा, ३. काउलेस्सा।
–पण्ण. प. १७, उ. २, सु. ११६३-(२)

प. क. सम्मुच्छिम पंचेंदियतिरिक्खजोणिय जलयरा णं भंते! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! तिण्णि लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. कण्हलेस्सा, २. नीललेस्सा, ३. काउलेस्सा,
–जीवा. पडि. १, सु. ३५

ख. सम्मुच्छिम पंचेंदियतिरिक्खजोणिया चउप्पय-थलयरा जहा जलयराणं।

ग. सम्मुच्छिम पंचेंदियतिरिक्खजोणिया परिसप्प-थलयरा जहा जलयराणं।

घ. सम्मुच्छिम-पंचेंदियतिरिक्खजोणिया खहयरा जहा जलयराणं। –जीवा. पडि. १, सु. ३६

प. गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! छ लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. कण्हलेस्सा जाव ६. सुक्कलेस्सा।
–पण्ण. प. १७, उ. २, सु. ११६३(३)

क. गब्भवक्कंतिय-पंचेंदियतिरिक्खजोणिया जलयरा छ लेस्साओ। –जीव. पडि. १, सु. ३८

ख. गब्भवक्कंतिय-पंचेंदियतिरिक्खजोणिया चउप्पय थलयरा जहा जलयराणं[1]।

ग. गब्भवक्कंतिय पंचेंदियतिरिक्खजोणिया परिसप्प थलयरा जहा जलयराणं। –जीवा. पडि. १, सु. ३९

घ. गब्भवक्कंतिय-पंचेंदियतिरिक्खजोणिया खहयरा जहा जलयराणं[2]। –जीवा. पडि. १, सु. ४०

एवं तिरिक्खजोणिणीण वि
–पण्ण. प. १७, उ. २, सु. ११६३(४)

उ. गौतम ! चार लेश्याएं कही गई हैं, यथा–
१. कृष्णलेश्या यावत् ४. तेजोलेश्या।

प्र. ५ ग. भंते ! साधारण शरीर वादर वनस्पतिकाय में कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! तीन लेश्याएं कही गई हैं, यथा–
१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या।

प्र. भंते ! द्वीन्द्रिय में कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! तीन लेश्याएं कही गई हैं, यथा–
१. कृष्ण लेश्या, २. नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या,
इसी प्रकार त्रीन्द्रिय में तीन लेश्याएं होती हैं।
इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय में भी तीन लेश्याएं होती हैं।

प्र. भंते ! सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! तीन लेश्याएं कही गई हैं, यथा–
१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या,

प्र. क. भंते ! सम्मूर्च्छिम पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिक जलचरों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! तीन लेश्याएं कही गई हैं, यथा–
१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या,

ख. सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक चतुष्पद स्थलचरों में जलचर जीवों के समान तीन लेश्याएँ हैं।

ग. सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक स्थलचर परिसर्पों में जलचरों के समान तीन लेश्याएं हैं।

घ. सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक खेचर जीवों में जलचरों के समान तीन लेश्याएँ हैं।

प्र. भंते ! गर्भव्युत्क्रान्तिक पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! छह लेश्याएँ कही गई हैं, यथा–
१. कृष्णलेश्या यावत् ६. शुक्ललेश्या।

क. गर्भव्युत्क्रान्तिक पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जलचर जीवों में छह लेश्याएं हैं।

ख. गर्भव्युत्क्रान्तिक पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक चतुष्पद जीवों में जलचरों के समान छह लेश्याएं हैं।

ग. गर्भव्युत्क्रान्तिक पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक परिसर्प स्थलचर जीवों में जलचरों के समान छह लेश्याएं हैं।

घ. गर्भव्युत्क्रान्तिक पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक खेचर जीवों में जलचरों के समान छह लेश्याएँ हैं।

इसी प्रकार तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियों में भी छह लेश्याएं हैं।

1. जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. ९७
2. [illegible] पडि. १, सु. ४५

३. मणुस्सेसु लेस्साओ–

प. सम्मुच्छिममणुस्साणं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! तिण्णि लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. कण्हलेस्सा, २. नीललेस्सा, ३. काउलेस्सा।

प. गब्भवक्कंतियमणुस्साणं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! छ लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. कण्हलेस्सा जाव ६. सुक्कलेस्सा।
मणुस्सीणं एवं चेव[१]।

–पण्ण. प. १७, उ. २, सु. ११६४-(२-४)

प. कम्मभूमयमणूसाणं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! छ लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. कण्हलेस्सा जाव ६. सुक्कलेस्सा,
एवं कम्मभूमयमणूसीण वि।

प. भरहेरवयमणूसाणं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! छ लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. कण्हलेस्सा जाव ६. सुक्कलेस्सा।
एवं मणुस्सीण वि।

प. पुव्वविदेह-अवरविदेहकम्मभूमयमणूसाणं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! छ लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. कण्हलेस्सा जाव ६. सुक्कलेस्सा।
एवं मणुसीण वि।

प. अकम्मभूमयमणूसाणं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! चत्तारि लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. कण्हलेस्सा जाव ४. तेउलेस्सा।
एवं अकम्मभूमय मणूसीण वि।

एवं अंतरदीवय मणुसाणं मणुसीण वि।

प. हेमवय-एरण्णवय-अकम्मभूमयमणूसाणं मणुसीण य कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! चत्तारि लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. कण्हलेस्सा जाव ४. तेउलेस्सा।

प. हरिवास-रम्मयवास-अकम्मभूमयमणुस्साणं मणूसीण य कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! चत्तारि लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. कण्हलेस्सा जाव ४. तेउलेस्सा।

३. मनुष्यों में लेश्याएं–

प्र. भंते ! सम्मूर्छिम मनुष्यों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! तीन लेश्याएं कही गई हैं, यथा–
१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या,

प्र. भंते ! गर्भज मनुष्यों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! छह लेश्याएं कही गई हैं, यथा–
१. कृष्णलेश्या यावत् ६. शुक्ललेश्या।
इसी प्रकार (गर्भज) मनुष्य स्त्रियों में भी छह लेश्याएं होती हैं।

प्र. भन्ते ! कर्मभूमिज मनुष्यों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! छह लेश्याएं कही गई हैं, यथा–
१. कृष्णलेश्या यावत् ६. शुक्ललेश्या।
इसी प्रकार कर्मभूमिज मनुष्यस्त्रियों में भी छह लेश्याएं कहनी चाहिए।

प्र. भंते ! भरतक्षेत्र और ऐरवतक्षेत्र के मनुष्यों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं ?

उ. गौतम ! छह लेश्याएं कही गई हैं, यथा–
१. कृष्णलेश्या यावत् ६. शुक्ललेश्या।
इसी प्रकार इनकी मनुष्यस्त्रियों में भी छः लेश्याएं कहनी चाहिए।

प्र. भंते ! पूर्वविदेह और अपरविदेह के कर्मभूमिज मनुष्यों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं ?

उ. गौतम ! छह लेश्याएं कही गई हैं, यथा–
१. कृष्णलेश्या यावत् ६. शुक्ललेश्या।
इसी प्रकार इनकी मनुष्यस्त्रियों में भी छह लेश्याएं कहनी चाहिए।

प्र. भंते ! अकर्मभूमिज मनुष्यों में कितनी लेश्याएं कही गई है?

उ. गौतम ! चार लेश्याएं कही गई हैं, यथा–
१. कृष्णलेश्या यावत् ४. तेजोलेश्या।
इसी प्रकार अकर्मभूमिज मनुष्यस्त्रियों में भी चार लेश्याएं कहनी चाहिए।
इसी प्रकार अन्तर्द्वीपज मनुष्यों और मनुष्यस्त्रियों में भी चार लेश्याएं कहनी चाहिए।

प्र. भंते ! हेमवत और ऐरण्यवत अकर्मभूमिज मनुष्यों और मनुष्यस्त्रियों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं ?

उ. गौतम ! चार लेश्याएं कही गई हैं, यथा–
१. कृष्णलेश्या यावत् ४. तेजोलेश्या।

प्र. भंते ! हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष के अकर्मभूमिज मनुष्यों और मनुष्यस्त्रियों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं ?

उ. गौतम ! चार लेश्याएं कही गई हैं, यथा–
१. कृष्णलेश्या यावत् ४. तेजोलेश्या।

१. जीवा. पडि. ३, सु. ९७

देवकुरुउत्तरकुरु-अकम्मभूमयमणुस्साणं एवं चेव।

देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्र के अकर्मभूमिज मनुष्यों में भी इसी प्रकार चार लेश्याएं कहनी चाहिए।

एएसिं मणुस्सीणं एवं चेव।

इनकी मनुष्यस्त्रियों में भी इसी प्रकार चार लेश्याएं कहनी चाहिए।

धायइसंडपुरिमद्धे एवं चेव, पच्छिमद्धे वि।

धातकीखण्ड के पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध में भी इसी प्रकार चार लेश्याएँ कहनी चाहिए।

एवं पुक्खरद्धे वि भाणियव्वं।

—पण्ण. प. १७, उ. ६, सु. १२५७(१-१६)

इसी प्रकार पुष्करार्द्ध द्वीप में भी चार लेश्याएं कहनी चाहिए।

४. देवेसु लेस्साओ–

प. देवाणं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! छ लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. कण्हलेस्सा जाव ६ सुक्कलेस्सा।[1]

प. देवीणं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! चत्तारि लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. कण्हलेस्सा जाव ४. तेउलेस्सा।

—पण्ण. प. १७, उ. २, सु. ११६५

४. देवों में लेश्याएं–

प्र. भंते ! देवों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! छह लेश्याएं कही गई हैं, यथा–
१. कृष्णलेश्या यावत् ६. शुक्ललेश्या।

प्र. भंते ! देवियों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! चार लेश्याएं कही गई हैं, यथा–
१. कृष्णलेश्या यावत् ४. तेजोलेश्या।

असुरकुमाराणं चत्तारि लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. कण्हलेस्सा, २. नीललेस्सा,
३. काउलेस्सा, ४. तेउलेस्सा।

एवं जाव थणियकुमाराणं[2]। —ठाण. अ. ४, उ. ३, सु. ३१९

एवं भवणवासिणीण वि।

—पण्ण. प. १७, उ. २, सु. ११६६(२)

१. असुरकुमारों में चार लेश्याएं कही गई हैं, यथा–
१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या,
३. कापोतलेश्या, ४. तेजोलेश्या।

इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त चार लेश्याएं कहनी चाहिए।

इसी प्रकार भवनवासी देवियों में भी चार लेश्याएं कहनी चाहिए।

२. वाणमंतरदेवाणं देवीण वि एवं चेव।

२. इसी प्रकार वाणव्यंतर देव और देवियों में भी चार लेश्याएं कहनी चाहिए।

३. जोइसियाणं जोइसिणीण वि एगा तेउलेस्सा।

—पण्ण. १७, उ. २, सु. ११६७-११६८

३. ज्योतिष्क देव और देवियों के एक तेजोलेश्या है।

प. ४. सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु देवाणं कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! एगा तेउलेस्सा पण्णत्ता[3]।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. २०१

प्र. ४. भंते ! सौधर्म और ईशान कल्प में देवों की कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! एक तेजोलेश्या कही गई है।

प. (सोहम्मीसाणं) वेमाणिणी णं भंते ! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! एगा तेउलेस्सा पण्णत्ता,

—पण्ण. प. १७, उ. २, सु. ११६९(२)

प्र. (सौधर्म-ईशान) वैमानिक देव स्त्रियों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! एक तेजोलेश्या है।

सणंकुमारमाहिंदेसु एगा पम्हलेस्सा,
एवं बम्हलोगे वि पम्हा।
लंतए एगा सुक्कलेस्सा जाव गेवेज्जा,
अणुत्तरोववाइयाणं एगा परम सुक्कलेस्सा।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. २०१

सनत्कुमार और माहेन्द्र में एक पद्मलेश्या है।
इसी प्रकार ब्रह्मलोक में भी एक पद्मलेश्या है।
लान्तक कल्प से ग्रैवेयकों पर्यन्त एक शुक्ललेश्या है।
अनुत्तरोपपातिक देवों में एक परमशुक्ललेश्या है।

२०. संकिलिट्ठाऽसंकिलिट्ठ विभागगय लेस्साणं सामित्त परूवणं–

असुरकुमाराणं तओ लेस्साओ संकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

२०. संक्लिष्ट-असंक्लिष्ट विभागगत लेश्याओं के स्वामित्व का प्ररूपण–

असुरकुमारों के तीन संक्लिष्ट लेश्याएं कही गई हैं, यथा–

---

१. जीवा. पडि. १, सु. ४२ (४ लेश्या)
२. (क) विया. स. १९, उ. ११-१९
(ख) विया. स. १६, उ. ११ सु. २,
(ग) विया. स. १६, उ. १३-१४
३. ठाणं. अ. ३, उ. ४, सु. २२८

१. कण्हलेस्सा, २. नीललेस्सा, ३. काउलेस्सा,

एवं जाव थणियकुमाराणं।

पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं तओ लेस्साओ संकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. कण्हलेस्सा, २. नीललेस्सा, ३. काउलेस्सा।

पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं तओ लेस्साओ असंकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. तेउलेस्सा, २. पम्हलेस्सा, ३. सुक्कलेस्सा।

मणुस्साणं तओ संकिलिट्ठाओ तओ असंकिलिट्ठाओ लेस्साओ एवं चेव।

वाणमंतराणं जहा असुरकुमाराणं,

–ठाणं अ. ३, उ. १, सु. १४०

१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या।

इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों के तीन संक्लिष्ट लेश्याएं कही गई हैं, यथा–

१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या।

पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों के तीन असंक्लिष्ट लेश्याएं कही गई हैं, यथा–

१. तेजोलेश्या, २. पद्मलेश्या, ३. शुक्ललेश्या।

मनुष्यों के संक्लिष्ट और असंक्लिष्ट तीन-तीन लेश्याएं इसी प्रकार है।

वाणव्यंतरों के असुरकुमारों के समान तीन संक्लिष्ट लेश्याएं जाननी चाहिए।

२१. सलेस्स चउवीसदण्डएसु समाहाराइसत्तदारा–

प. दं. १. सलेस्साणं भंते ! नेरइया सव्वे समाहारा, सव्वे समसरीरा, सव्वे समुस्सासणिस्सासा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

'सलेस्सा नेरइया नो सव्वे समाहारा नो सव्वे समसरीरा, जाव नो सव्वे समुस्सासणिस्सासा ?

उ. गोयमा ! णेरइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. महासरीरा य, २. अप्पसरीरा य,

१. तत्थ णं जे ते महासरीरा ते णं बहुतराए पोग्गले आहारेंति, बहुतराए पोग्गले परिणामेंति, बहुतराए पोग्गले उस्ससंति, बहुतराए पोग्गले णीससंति, अभिक्खणं आहारेंति, अभिक्खणं परिणामेंति, अभिक्खणं उस्ससंति, अभिक्खणं णीससंति,

२. तत्थ णं जे ते अप्पसरीरा ते णं अप्पतराए पोग्गले आहारेंति, अप्पतराए पोग्गले परिणामेंति, अप्पतराए पोग्गले उस्ससंति, अप्पतराए पोग्गले णीससंति, आहच्च आहारेंति, आहच्च परिणामेंति, आहच्च उस्ससंति, आहच्च णीससंति,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"सलेस्सा नेरइया नो सव्वे समाहारा, नो सव्वे समसरीरा, नो सव्वे समुस्सासणिस्सासा।"

प. २. सलेस्सा णं भंते ! णेरइया सव्वे समकम्मा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"सलेस्सा णेरइया णो सव्वे समकम्मा ?"

२१. सलेश्य चौवीस दंडकों में समाहारादि सात द्वार–

प्र. दं. १ भन्ते ! क्या सभी सलेश्य नारक समान आहार वाले हैं, सभी समान शरीर वाले हैं तथा सभी समान उच्छ्वास-निःश्वास वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"सभी सलेश्य नारक समान-आहार वाले नहीं है, सभी समान शरीर वाले नहीं है और सभी समान उच्छ्वास-निःश्वास वाले नहीं हैं ?

उ. गौतम ! नारक दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. महाशरीर वाले, २. अल्पशरीर वाले।

१. उनमें से जो महाशरीर वाले नारक हैं, वे बहुत अधिक पुद्गलों का आहार करते हैं, बहुत अधिक पुद्गलों का परिणमन करते हैं, बहुत अधिक पुद्गलों का उच्छ्वास लेते हैं और बहुत अधिक पुद्गलों का निःश्वास छोड़ते हैं। वे बार-बार आहार करते हैं, बार-बार पुद्गलों का परिणमन करते हैं, बार-बार उच्छ्वसन करते हैं और बार-बार निःश्वसन करते हैं।

२. उनमें से जो अल्पशरीर वाले नारक हैं, वे अल्पपुद्गलों का आहार करते हैं, अल्प पुद्गलों का परिणमन करते हैं, अल्प पुद्गलों का उच्छ्वास लेते हैं और अल्पपुद्गलों का निःश्वास छोड़ते हैं। वे कदाचित् आहार करते हैं, कदाचित् पुद्गलों का परिणमन करते हैं, कदाचित् उच्छ्वसन करते हैं और कदाचित् निःश्वसन करते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"सभी सलेश्य नारक समान आहार वाले नहीं हैं, सभी समान शरीर वाले नहीं हैं और सभी समान उच्छ्वास-निःश्वास वाले नहीं हैं।"

प्र. २. भंते ! सभी सलेश्य नारक समान कर्म वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"सभी सलेश्य नारक समान कर्म वाले नहीं हैं।"

उ. गोयमा ! सलेस्सा णेरइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पुव्वोववन्नगा य, २. पच्छोववन्नगा य।

१. तत्थ णं जे ते पुव्वोववन्नगा ते णं अप्पकम्मतरागा।

२. तत्थ णं जे ते पच्छोववन्नगा ते णं महाकम्मतरागा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"सलेस्सा णेरइया णो सव्वे समकम्मा।"

प. ३. सलेस्सा णं भंते ! णेरइया सव्वे समवण्णा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"सलेस्सा णेरइया णो सव्वे समवण्णा ?

उ. गोयमा ! सलेस्सा णेरइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पुव्वोववन्नगा य, २. पच्छोववन्नगा य।

१. तत्थ णं जे ते पुव्वोववन्नगा ते णं विसुद्धवण्ण तरागा,

२. तत्थ णं जे ते पच्छोववन्नगा ते णं अविसुद्धवण्णतरागा

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"सलेस्सा णेरइया णो सव्वे समवण्णा।"

४. एवं जहेव वण्णेण भणिया तहेव सलेस्सासु वि जे पुव्वोवन्नगा ते णं विसुद्धलेस्सतरागा, जे पच्छोववन्नगा ते णं अविसुद्धलेस्सतरागा।

प. ५. सलेस्सा णं भंते ! णेरइया सव्वे समवेयणा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"सलेस्सा णेरइया णो सव्वे समवेयणा ?"

उ. गोयमा ! सलेस्सा णेरइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सण्णिभूया य, २. असण्णिभूया य।

१. तत्थ णं जे ते सण्णिभूया ते णं महावेयणतरागा।

२. तत्थ णं जे ते असण्णिभूया ते णं अप्पवेयणतरागा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"सलेस्सा णेरइया णो सव्वे समवेयणा।"

प. ६. सलेस्सा णं भंते ! णेरइया सव्वे समकिरिया ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"सलेस्सा णेरइया णो सव्वे समकिरिया ?"

उ. गोयमा ! सलेस्सा णेरइया तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सम्मद्दिट्ठी, २. मिच्छद्दिट्ठी,

३. सम्मामिच्छद्दिट्ठी।

१. तत्थ णं जे ते सम्मद्दिट्ठी ते सि णं चत्तारि किरियाओ कज्जंति, तं जहा–

१. आरभिया, २. परिग्गहिया,

३. मायावत्तिया, ४. अपच्चक्खाणकिरिया।

उ. गौतम ! सलेश्य नारक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पूर्वोपपन्नक, २. पश्चादुपपन्नक।

१. उनमें जो पूर्वोपपन्नक हैं, वे अल्प कर्म वाले हैं,

२. उनमें जो पश्चादुपपन्नक हैं, वे महाकर्म वाले हैं,

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"सभी सलेश्य नारक समान कर्म वाले नहीं हैं।"

प्र. ३. भंते ! क्या सभी सलेश्य नारक समान वर्ण वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"सभी सलेश्य नारक समान वर्ण वाले नहीं हैं ?"

उ. गौतम ! सलेश्य नारक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पूर्वोपपन्नक, २. पश्चादुपपन्नक।

१. उनमें से जो पूर्वोपपन्नक हैं, वे विशुद्ध वर्ण वाले हैं,

२. उनमें से जो पश्चादुपपन्नक हैं, वे अविशुद्ध वर्ण वाले हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"सभी सलेश्य नारक समान वर्ण वाले नहीं हैं।

४. इसी प्रकार जैसा वर्ण के लिये कहा वैसा ही लेश्याओं के लिये भी कहना चाहिये–कि उनमें जो पूर्वोपपन्नक हैं, वे विशुद्ध लेश्या वाले हैं जो पश्चादुपपन्नक हैं वे अविशुद्ध लेश्या वाले हैं।

प्र. ५. भंते ! क्या सभी सलेश्य नारक समान वेदना वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"सभी सलेश्य नारक समान वेदना वाले नहीं हैं ?"

उ. गौतम ! सलेश्य नारक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. संज्ञीभूत, २. असंज्ञीभूत।

१. उनमें जो संज्ञीभूत हैं, वे महान् वेदना वाले हैं,

२. उनमें जो असंज्ञीभूत हैं, वे अल्प वेदना वाले हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"सभी सलेश्य नारक समान वेदना वाले नहीं हैं।"

प्र. ६. भंते ! क्या सभी सलेश्य नारक समान क्रिया वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"सभी सलेश्य नारक समान क्रिया वाले नहीं हैं ?"

उ. गौतम ! सलेश्य नारक तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सम्यग्दृष्टि, २. मिथ्यादृष्टि,

३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि।

१. उनमें जो सम्यग्दृष्टि हैं, वे चार क्रियाएं करते हैं, यथा–

१. आरम्भिकी, २. पारिग्रहिकी,

३. मायाप्रत्यया, ४. अप्रत्याख्यानक्रिया।

२-३. तत्थ णं जे ते मिच्छद्दिट्ठी जे य सम्मामिच्छद्दिट्ठी तेसिं णियइयाओ पंच किरियाओ कज्जंति, तं जहा–

१. आरंभिया, २. परिग्गहिया,
३. मायावत्तिया, ४. अपच्चक्खाणकिरिया,
५. मिच्छादंसणवत्तिया।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"सलेस्सा णेरइया णो सव्वे समकिरिया।"

प. ७. सलेस्सा णं भंते ! णेरइया सव्वे समाउया ?
उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"सलेस्सा णेरइया णो सव्वे समाउया ?
उ. गोयमा ! सलेस्सा णेरइया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. अत्थेगइया समाउया समोववण्णगा,
२. अत्थेगइया समाउया विसमोववण्णगा,
३. अत्थेगइया विसमाउया समोववण्णगा,
४. अत्थेगइया विसमाउया विसमोववण्णगा,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"सलेस्सा नेरइया णो सव्वे समाउया"

प. दं. २ सलेस्सा असुरकुमाराणं भंते ! सव्वे समाहारा। सव्वे समसरीरा, सव्वे समुस्सासणिस्सासा ?
उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे
जहा नेरइया।
प. सलेस्सा असुरकुमाराणं भंते ! सव्वे समकम्मा ?
उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"सलेस्सा असुरकुमारा नो सव्वे समकम्मा ?"
उ. गोयमा ! सलेस्सा असुरकुमारा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पुव्वोववण्णगा य, २. पच्छोववण्णगा य।
१. तत्थ णं जे ते पुव्वोववण्णगा ते णं महाकम्मतरागा।
२. तत्थ णं जे ते पच्छोववण्णगा ते णं अप्पकम्मतरागा।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"सलेस्सा असुरकुमारा नो सव्वे समकम्मा।"
प. सलेस्सा असुरकुमाराणं भंते ! सव्वे समवण्णा ?
उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"सलेस्सा असुरकुमारा नो सव्वे समवण्णा ?"
उ. गोयमा ! सलेस्सा असुरकुमारा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पुव्वोववण्णगा य, २. पच्छोववण्णगा य।

२-३. उनमें जो मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं, वे नियम से पांच क्रियाएं करते हैं, यथा–

१. आरम्भिकी, २. पारिग्रहिकी,
३. मायाप्रत्यया, ४. अप्रत्याख्यानक्रिया,
५. मिथ्यादर्शनप्रत्यया।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी सलेश्य नारक समान क्रिया वाले नहीं हैं।"

प्र. ७. भंते ! क्या सभी सलेश्य नारक समान आयु वाले है ?
उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी सलेश्य नारक समान आयु वाले नहीं हैं ?"
उ. गौतम ! सलेश्य नारक चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कई नारक समान आयु वाले और एक साथ उत्पन्न होने वाले हैं,
२. कई नारक समान आयु वाले हैं किन्तु पहले पीछे उत्पन्न हुए हैं,
३. कई नारक विषम आयु वाले हैं किन्तु एक साथ उत्पन्न हुए हैं,
४. कई नारक विषम आयु वाले हैं और पहले पीछे उत्पन्न हुए हैं,

इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी सलेश्य नारक समान आयु वाले नहीं हैं।"

प्र. दं. २ भंते ! क्या सलेश्य असुरकुमार सभी समान आहार वाले हैं, सभी समान शरीर वाले हैं और सभी समान उच्छ्वास-निःश्वास वाले हैं ?
उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।
नैरयिकों के समान यह सब जानना चाहिए।
प्र. भंते ! क्या सभी सलेश्य असुरकुमार समान कर्म वाले हैं ?
उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं हैं।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी सलेश्य असुरकुमार समान कर्म वाले नहीं हैं ?"
उ. गौतम ! सलेश्य असुरकुमार दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. पूर्वोपपन्नक, २. पश्चादुपपन्नक।
१. उनमें जो पूर्वोपपन्नक हैं, वे महाकर्म वाले हैं।
२. उनमें जो पश्चादुपपन्नक हैं, वे अल्प कर्म वाले हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी सलेश्य असुरकुमार समान कर्म वाले नहीं हैं।"
प्र. भंते ! क्या सभी सलेश्य असुरकुमार समान वर्ण वाले हैं ?
उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं हैं।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी सलेश्य असुरकुमार समान वर्ण वाले नहीं हैं ?"
उ. गौतम ! सलेश्य असुरकुमार दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. पूर्वोपपन्नक, २. पश्चादुपपन्नक।

१. तत्थ णं जे ते पुव्वोववण्णगा ते णं अविसुद्ध वण्णतरागा।

२. तत्थ णं जे ते पच्छोववण्णगा ते णं विसुद्धवण्णतरागा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"सलेस्सा असुरकुमारा नो सव्वे समवण्णा।"

एवं लेस्साए वि। अवसेसं जहा नेरइयाणं।

दं. ३-११ एवं जाव थणियकुमारा

दं. १२ सलेस्सा पुढविकाइया आहार-कम्म-वण्ण-लेस्साइं जहा नेरइया।

प. सलेस्सा पुढविकाइया णं भंते ! सव्वे समवेयणा ?

उ. हंता, गोयमा ! सव्वे समवेयणा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"सलेस्सा पुढविकाइया सव्वे समवेयणा ?"

उ. गोयमा ! सलेस्सा पुढविकाइया सव्वे असण्णी–असण्णीभूयं अणिययं वेयणं वेदेंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"सलेस्सा पुढविकाइया सव्वे समवेयणा।"

प. सलेस्सा पुढविकाइया णं भंते ! सव्वे समकिरिया ?

उ. हंता, गोयमा ! सलेस्सा पुढविकाइया सव्वे समकिरिया।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"सलेस्सा पुढविकाइया सव्वे समकिरिया ?"

उ. गोयमा ! सलेस्सा पुढविकाइया सव्वे माईमिच्छद्दिट्ठी तेसिं णियइयाओ पंचकिरियाओ कज्जंति, तं जहा–

१. आरंभिया जाव २. मिच्छादंसणवत्तिया।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"सलेस्सा पुढवीकाइया सव्वे समकिरिया।"

समाउए जहा नेरइया।

दं. १३-१९ एवं जाव चउरिंदिया।

दं. २० सलेस्सा पंचेंदियतिरिक्खजोणिया जहा णेरइया।

णवरं– णाणत्तं किरियासु।

प. सलेस्सा पंचेंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! सव्वे समकिरिया ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"पंचेंदियतिरिक्खजोणिया णो सव्वे समकिरिया ?"

उ. गोयमा ! सलेस्सा पंचेंदियतिरिक्खजोणिया तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सम्मद्दिट्ठी, २. मिच्छद्दिट्ठी,

१. उनमें जो पूर्वोपपन्नक हैं, वे अविशुद्ध वर्ण वाले हैं।

२. उनमें से जो पश्चादुपपन्नक हैं, वे विशुद्ध वर्ण वाले हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"सभी सलेश्य असुरकुमार समान वर्ण वाले नहीं हैं।"

इसी प्रकार लेश्याओं के सम्बन्ध में भी कहना चाहिए, शेष कथन नैरयिकों के समान है।

दं. ३-११ इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त जानना चाहिए।

दं. १२ सलेश्य पृथ्वीकायिकों के आहार, कर्म, वर्ण और लेश्या के विषय में नैरयिकों के समान कहना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या सभी सलेश्य पृथ्वीकायिक समान वेदना वाले हैं ?

उ. हां, गौतम ! सभी समान वेदना वाले हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"सभी सलेश्य पृथ्वीकायिक समान वेदना वाले हैं ?"

उ. गौतम ! सभी सलेश्य पृथ्वीकायिक असंज्ञी हैं और असंज्ञीभूत होकर मूर्च्छित अवस्था में वेदना वेदते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"सभी सलेश्य पृथ्वीकायिक समान वेदना वाले हैं।"

प्र. भंते ! क्या सभी सलेश्य पृथ्वीकायिक समान क्रिया वाले हैं ?

उ. हां, गौतम ! सभी सलेश्य पृथ्वीकायिक समान क्रिया वाले हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"सभी सलेश्य पृथ्वीकायिक समान क्रिया वाले हैं ?"

उ. गौतम ! सभी सलेश्य पृथ्वीकायिक मायी-मिथ्यादृष्टि होने से वे नियमतः पांच क्रियाएं करते हैं, यथा–

१. आरम्भिकी यावत् ५. मिथ्यादर्शनप्रत्यया।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"सभी सलेश्य पृथ्वीकायिक समान क्रिया वाले हैं।"

समायुष्क का कथन नैरयिकों के समान करना चाहिये।

दं. १३-१९ इसी प्रकार चतुरिन्द्रियों तक सात द्वार कहने चाहिए।

दं. २० सलेश्य पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों के सभी द्वारों का कथन नैरयिकों के समान समझना चाहिए।

विशेष–क्रियाओं में भिन्नता है।

प्र. भंते ! सभी सलेश्य पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक क्या समान क्रिया वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"सभी सलेश्य पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक समान क्रिया वाले नहीं हैं ?"

उ. गौतम ! सलेश्य पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक तीन प्रकार के कहे हैं, यथा–

१. सम्यग्दृष्टि, २. मिथ्यादृष्टि

३. सम्ममिच्छद्दिट्ठी।

१. तत्थ णं जे ते सम्मद्दिट्ठी ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. असंजया य, २. संजयासंजया य।

क. तत्थ णं जे ते संजयासंजया तेसिं णं तिण्णि किरियाओ कज्जंति, तं जहा–

१. आरम्भिया, २. परिग्गहिया,
३. मायावत्तिया।

ख. तत्थ णं जे ते असंजया तेसिं णं चत्तारि किरियाओ कज्जंति, तं जहा–

१. आरंभिया, २. परिग्गहिया,
३. मायावत्तिया, ४. अपच्चक्खाणकिरिया।

२. तत्थ णं जे ते मिच्छद्दिट्ठी जे य सम्मामिच्छद्दिट्ठी तेसिं णियइयाओ पंच किरियाओ कज्जंति, तं जहा–

१. आरंभिया जाव ५. मिच्छादंसणवत्तिया।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

सलेस्सा पंचेंदियतिरिक्खजोणिया णो सव्वे समकिरिया।"

३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि।

१. उनमें जो सम्यग्दृष्टि हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. असंयत, २. संयतासंयत।

क. उनमें से जो संयतासंयत हैं, वे तीन क्रियाएं करते हैं, यथा–

१. आरम्भिकी, २. पारिग्रहिकी,
३. मायाप्रत्यया।

ख. उनमें जो असंयत हैं, वे चार क्रियाएं करते हैं, यथा–

१. आरम्भिकी, २. पारिग्रहिकी,
३. मायाप्रत्यया, ४. अप्रत्याख्यानक्रिया।

२. उनमें जो मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं वे नियमतः पांच क्रियाएं करते हैं, यथा–

१. आरम्भिकी यावत् मिथ्यादर्शनप्रत्यया।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"सभी सलेश्य पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक समक्रिया वाले नहीं हैं।"

प. दं. २१ सलेस्सा मणुस्सा णं भंते ! सव्वे समाहारा सव्वे समसरीरा सव्वे समुस्सासणिस्सासा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"सलेस्सा मणुस्सा णो सव्वे समाहारा, णो सव्वे समसरीरा, णो सव्वे समुस्सासणिस्सासा?

उ. गोयमा ! सलेस्सा मणुस्सा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. महासरीरा य, २. अप्पसरीरा य।

१. तत्थ णं जे ते महासरीरा ते णं बहुतराए पोग्गले आहारेंति, बहुतराए पोग्गले परिणामेंति, बहुतराए पोग्गले उस्ससंति, बहुतराए पोग्गले नीससंति, आहच्च आहारेंति, आहच्च परिणामेंति, आहच्च उस्ससंति, आहच्च नीससंति।

२. तत्थ णं जे ते अप्पसरीरा ते णं अप्पतराए पोग्गले आहारेंति, अप्पतराए पोग्गले परिणामेंति, अप्पतराए पोग्गले उस्ससंति, अप्पतराए पोग्गले नीससंति। अभिक्खणं आहारेंति, अभिक्खणं परिणामेंति, अभिक्खणं उस्ससंति, अभिक्खणं नीससंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"सलेस्सा मणुस्सा णो सव्वे समाहारा, णो सव्वे समसरीरा, णो सव्वे समुस्सासणिस्सासा।"

प्र. दं. २१ भंते ! क्या सभी सलेश्य मनुष्य समान आहार वाले, सभी समान शरीर वाले तथा सभी समान उच्छ्वास-निःश्वास वाले हैं?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"सभी सलेश्य मनुष्य समान आहार वाले नहीं हैं, सभी समान शरीर वाले नहीं हैं और सभी समान उच्छ्वास निःश्वास वाले नहीं हैं।"

उ. गौतम ! सलेश्य मनुष्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. महाशरीर वाले, २. अल्पशरीर वाले,

१. उनमें से जो महाशरीर वाले मनुष्य हैं, वे बहुत अधिक पुद्गलों का आहार करते हैं, बहुत अधिक पुद्गलों का परिणमन करते हैं, बहुत अधिक पुद्गलों का उच्छ्वास लेते हैं और बहुत अधिक पुद्गलों का निःश्वास छोड़ते हैं। वे कदाचित् आहार करते हैं, कदाचित् पुद्गलों का परिणमन करते हैं, कदाचित् उच्छ्वसन करते हैं, कदाचित् निःश्वसन करते हैं।

२. उनमें से जो अल्प शरीर वाले हैं, वे अल्प पुद्गलों का आहार करते हैं, अल्प पुद्गलों का परिणमन करते हैं, अल्प पुद्गलों का उच्छ्वास लेते हैं और अल्प पुद्गलों का निःश्वास छोड़ते हैं। वे बार-बार आहार करते हैं, बार-बार पुद्गलों का परिणमन करते हैं, बार-बार उच्छ्वसन करते हैं और बार-बार निःश्वसन करते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"सभी सलेश्य मनुष्य समान आहार वाले नहीं हैं, समान शरीर वाले नहीं हैं और समान उच्छ्वास-निःश्वास वाले नहीं हैं।"

सेसं जहा सलेस्सा नेरइयाणं।

णवरं–किरियासु णाणत्तं।

प. सलेस्सा मणुस्सा णं भंते ! सव्वे समकिरिया ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"सलेस्सा मणुस्सा णो सव्वे समकिरिया ?"

उ. गोयमा ! मणुस्सा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. सम्मद्दिट्ठी, २. मिच्छद्दिट्ठी,
३. सम्ममिच्छद्दिट्ठी।
तत्थ णं जे ते सम्मद्दिट्ठी ते तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. संजया, २. असंजया,
३. संजयासंजया।
तत्थ णं जे ते संजया, ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. सरागसंजया य, २. वीयरागसंजया य।
तत्थ णं जे ते वीयरागसंजया ते णं अकिरिया।
तत्थ णं जे ते सरागसंजया, ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पमत्तसंजया य, २. अपमत्तसंजया य।
तत्थ णं जे ते अपमत्तसंजया तेसिं एगा मायावत्तिया किरिया कज्जंति,
तत्थ णं जे ते पमत्त संजया तेसिं दो किरियाओ कज्जंति, तं जहा–
१. आरंभिया, २. मायावत्तिया य।
तत्थ णं जे ते संजयासंजया तेसिं तिण्णि किरियाओ कज्जंति, तं जहा–
१. आरंभिया, २. परिग्गहिया,
३. मायावत्तिया।
तत्थ णं जे ते असंजया तेसिं चत्तारि किरियाओ कज्जंति, तं जहा–
१. आरंभिया जाव ४. अपच्चक्खाणकिरिया।
तत्थ णं जे ते मिच्छद्दिट्ठी जे य सम्मामिच्छद्दिट्ठी तेसिं णियइयाओ पंचकिरियाओ कज्जंति, तं जहा–
१. आरंभिया जाव ५. मिच्छादंसणवत्तिया।

दं. २२ सलेस्सा वाणमंतराणं जहा असुरकुमारा।

दं. २३-२४ एवं सलेस्सा जोइसिया वि वेमाणिया वि।

णवरं–वेयणाए णाणत्तं।

प. सलेस्सा णं भंते ! जोइसिया वेमाणिया सव्वे समवेदणा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ–
"सलेस्सा जोइसिया वेमाणिया णो सव्वे समवेयणा ?"

शेष (वेदना द्वार तक) वर्णन सलेश्य नैरयिकों के समान जानना चाहिये।

विशेष–क्रिया में भिन्नता है।

प्र. भंते ! क्या सभी सलेश्य मनुष्य समान क्रिया वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी सलेश्य मनुष्य समान क्रिया वाले नहीं हैं ?"

उ. गौतम ! मनुष्य तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. सम्यग्दृष्टि, २. मिथ्यादृष्टि,
३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि।
उनमें जो सम्यग्दृष्टि हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. संयत, २. असंयत,
३. संयतासंयत।
उनमें जो संयत हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. सरागसंयत, २. वीतरागसंयत।
उनमें जो वीतरागसंयत हैं, वे क्रियारहित हैं,
उनमें जो सरागसंयत हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. प्रमत्तसंयत, २. अप्रमत्तसंयत।
उनमें जो अप्रमत्तसंयत हैं, वे एक मायाप्रत्यया क्रिया करते हैं,
उनमें जो प्रमत्तसंयत हैं, दो क्रियाएं करते हैं।
यथा–
१. आरम्भिकी, २. मायाप्रत्यया।
उनमें जो संयतासंयत हैं, वे तीन क्रियाएं करते हैं, यथा–
१. आरम्भिकी, २. पारिग्रहिकी,
३. मायाप्रत्यया।
उनमें जो असंयत हैं वे चार क्रियाएं करते हैं, यथा–
१. आरम्भिकी यावत् ४. अप्रत्याख्यान क्रिया।
उनमें जो मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं वे नियम से पांच क्रियाएं करते हैं, यथा–
१. आरम्भिकी यावत् ५. मिथ्यादर्शनप्रत्यया।

दं. २२ सलेश्य वाणव्यन्तरों के सात द्वार असुरकुमारों के समान हैं।

दं. २३-२४ सलेश्य ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के सातों द्वार भी इसी प्रकार हैं।

विशेष–वेदना में भिन्नता है।

प्र. भंते ! क्या सभी सलेश्य ज्योतिष्क और वैमानिक समान वेदना वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी सलेश्य ज्योतिष्क और वैमानिक समान वेदना वाले नहीं हैं ?"

उ. गोयमा ! ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. माइमिच्छद्दिट्ठीउववण्णगा य,
२. अमाइसम्मदिट्ठीउववण्णगा य।
१. तत्थ णं जे ते माइमिच्छद्दिट्ठी उववण्णगा ते णं अप्पवेयणतरागा।
२. तत्थ णं जे ते अमाइसम्मद्दिट्ठी उववण्णगा ते णं महावेयणतरागा।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"सलेस्सा जोइसिया वेमाणिया णो सव्वे समवेयणा।"
–पण्ण. प. १७, उ. १, सु. ११४५

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१. मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक,
२. अमायी–सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक।
१. उनमें से जो मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक हैं, वे अल्प वेदना वाले हैं।
२. उनमें से जो अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक हैं, वे महावेदना वाले हैं,
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी सलेश्य ज्योतिष्क और वैमानिक समान वेदना वाले नहीं हैं।"

२२. कण्हादिलेस्साइविसिट्ठ चउवीसदंडएसु समाहाराइ सत्तदारा–

प. दं. १ कण्हलेस्सा णं भंते ! णेरइया सव्वे समाहारा, सव्वे समसरीरा, सव्वे समुस्सास णिस्सासा ?

उ. गोयमा ! जहा ओहिया तहा भाणियव्वा।

णवरं–वेयणाए माइमिच्छद्दिट्ठि उववण्णगा य, अमाई सम्मद्दिट्ठी उववण्णगा य भाणियव्वा
सेसं तहेव जहा ओहियाणं
दं. २-२२ असुरकुमारा जाव वाणमंतरा एए जहा ओहिया,
णवरं–कण्हलेस्सा णं मणूसाणं किरियाहिं विसेसो जाव तत्थ णं जे ते सम्मद्दिट्ठी ते तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. संजया, २. असंजया, ३. संजयासंजया य
जहा ओहियाणं
दं. २३-२४ जोइसिय वेमाणिया आइल्लिगासु तिसु लेस्सासु ण पुच्छिज्जंति।
एवं जहा कण्हलेस्सा वि चारिया तहा णीललेसा वि चारियव्वा।
काउलेस्सा णेरइएहिंतो आरब्भ जाव वाणमंतरा।
णवरं–काउलेस्सा णेरइया वेयणाए जहा सलेस्सा तहेव भाणियव्वा।
तेउलेस्साणं असुरकुमाराणं आहाराइ सत्तदारा जहेव सलेस्सा तहेव भाणियव्वा।
णवरं–वेयणाए जहा जोइसिया तहेव भाणियव्वा
तेउलेस्सा पुढवि आउ वणस्सइ पंचेंदियतिरिक्खजोणिया मणूसा जहा सलेस्सा तहेव भाणियव्वा।
णवरं–मणूसा किरियाहिं णाणत्तं–"जे संजया ते पमत्ता य अपमत्ता य भाणियव्वा सरागा वीयरागा णत्थि।[1]

२२. कृष्णादि लेश्या विशिष्ट चौवीस दंडकों में समाहारादि सात द्वार–

प्र. भंते ! क्या सभी कृष्णलेश्या वाले नैरयिक समान आहार वाले हैं, सभी समान शरीर वाले हैं, तथा समान उच्छ्वास निःश्वास वाले हैं ?

उ. गौतम ! जैसे सलेश्य नैरयिकों के सात द्वार कहे वैसे ही कहने चाहिये।

विशेष–वेदना द्वार में मायीमिथ्यादृष्टि-उपपन्नक और अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक कहने चाहिये।
शेष कथन पूर्ववत् औधिक के समान कहना चाहिए।
दं. २-२२ असुरकुमारों से वाणव्यन्तर तक के सात द्वार औधिक के समान कहने चाहिये।
विशेष–कृष्णलेश्या वाले मनुष्यों में क्रियाओं की अपेक्षा कुछ भिन्नता है यावत् उनमें जो सम्यग्दृष्टि मनुष्य हैं वे तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. संयत, २. असंयत, ३. संयतासंयत।
क्रिया के लिए शेष कथन औधिक के समान है।
दं. २३-२४ ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के विषय में प्रारम्भ की तीन लेश्याओं के प्रश्न नहीं करना चाहिए।
जैसे कृष्णलेश्या वालों का कथन किया गया है, उसी प्रकार नीललेश्या वालों का भी कथन करना चाहिए।
कापोतलेश्या नैरयिकों से वाणव्यन्तरों पर्यन्त पाई जाती है।
विशेष–कापोतलेश्या वाले नैरयिकों की वेदना के लिए सलेश्य नैरयिकों की वेदना के समान कहना चाहिये।
तेजोलेश्या वाले असुरकुमारों के आहारादि सात द्वार सलेश्या वाले के समान कहने चाहिये।
विशेष–वेदना के विषय में जैसे ज्योतिष्कों का कहा है, उसी प्रकार यहां भी कहनी चाहिए।
तेजोलेश्यी पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक, पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक और मनुष्यों का कथन सलेश्यों के समान कहना चाहिए।
विशेष–तेजोलेश्या वाले मनुष्यों की क्रियाओं में भिन्नता है जो संयत हैं, वे प्रमत्त और अप्रमत्त दो प्रकार के कहने चाहिए और सराग संयत और वीतराग संयत नहीं होते हैं।

१. मणुस्सा सरागा वीयरागा न भाणियव्वा– –विया. स. १, उ. २, सु. १२

वाणमंतरा तेउलेस्साए जहा असुरकुमारा।

एवं जोइसिय-वेमाणिया वि–

सेसं तं चेव।

एवं पम्हलेस्सा वि भाणियव्वा।

णवरं–जेसिं अत्थि।

सुक्कलेस्सा वि तहेव,

जेसिं अत्थि सव्वं तहेव जहा ओहिया णं गमओ।

णवरं–पम्हलेस्स-सुक्कलेस्साओ पंचेंदियतिरिक्खजोणिय-मणूस-वेमाणियाणं एवं चेव।

ण सेसाण त्ति। —पण्ण. प. १७, उ. १, सु. ११४६-११५५

२३. लेस्साणं विविहविवक्खया परिणमन परूवणं–

प. कण्हलेस्सा णं भंते ! कइविहा परिणामं परिणमइ ?

उ. गोयमा ! तिविहं वा, नवविहं वा, सत्तावीसइविहं वा, एक्कासीइविहं वा, बे तेयलिसयविहं वा, बहुं वा, बहुंविहं वा परिणामं परिणमइ।[1]

एवं जाव सुक्कलेस्सा। —पण्ण. प. १७, उ. ४, सु. १२४२

प. से णूणं भंते ! कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए, तावण्णत्ताए, तागंधत्ताए, तारसत्ताए, ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ ?

उ. हंता, गोयमा ! कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए, तावण्णत्ताए, तागंधत्ताए, तारससत्ताए, ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

'कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ ?

उ. गोयमा ! से जहाणामए खीरे दूसिं पप्प, सुद्धे वा वत्थे रागं पप्प तारूवत्ताए तावण्णत्ताए, तागंधत्ताए, तारसत्ताए, ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ।"

एवं एएणं अभिलावेणं–

णीललेस्सा काउलेस्सं पप्प,

काउलेस्सा तेउलेस्सं पप्प,

तेउलेस्सा पम्हलेस्सं पप्प,

तेजोलेश्यी वाणव्यन्तरों का कथन असुरकुमारों के समान समझना चाहिए।

इसी प्रकार ज्योतिष्क और वैमानिकों के विषय में भी पूर्ववत् कहना चाहिए।

शेष सात द्वार पूर्ववत् हैं।

इसी प्रकार पद्मलेश्या वालों के सात द्वार कहने चाहिए।

विशेष–जिन के पद्मलेश्या हो उन्हीं में उसका कथन करना चाहिए।

शुक्ललेश्या वालों का कथन भी उसी प्रकार है,

वह जिनके हो उनके औधिक के समान सात द्वार कहने चाहिए।

विशेष–पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य और वैमानिकों में ही होती है,

शेष जीवों में नहीं होती।

२३. लेश्याओं का विविध अपेक्षाओं से परिणमन का प्ररूपण–

प्र. भंते ! कृष्णलेश्या कितने प्रकार के परिणामों में परिणत होती है ?

उ. गौतम ! कृष्णलेश्या तीन प्रकार के, नौ प्रकार के, सत्ताईस प्रकार के, इक्यासी प्रकार के या दो सौ तेतालीस प्रकार के अथवा बहुत-से या बहुत प्रकार के परिणामों में परिणत होती है।

इसी प्रकार शुक्ललेश्या तक के परिणामों का भी कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या कृष्णलेश्या नीललेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप में, उसी के वर्णरूप में, उसी के गंध रूप में, उसी के रसरूप में, उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत होती है ?

उ. हां, गौतम ! कृष्णलेश्या नीललेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप में, उसी के वर्णरूप में, उसी के गंध रूप में, उसी के रस रूप में, उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत होती है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"कृष्णलेश्या नीललेश्या को प्राप्त करके उसी के रूप में यावत् उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत होती है ?

उ. हां, गौतम ! जैसे (छाछ आदि खटाई का) जावन पाकर दूध, अथवा शुद्ध वस्त्र रंग पाकर उसके रूप में, उसी के वर्ण-रूप में, उसी के गन्ध-रूप में, उसी के रस-रूप में और उसी के स्पर्श-रूप में पुनः पुनः परिणत हो जाता है,

इसी प्रकार हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"कृष्णलेश्या नीललेश्या को पाकर उसी के रूप में यावत् उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत होती है।"

इसी कथन के अनुसार–

नीललेश्या कापोतलेश्या को प्राप्त होकर,

कापोतलेश्या तेजोलेश्या को प्राप्त होकर,

तेजोलेश्या पद्मलेश्या को प्राप्त होकर,

[1] उत्त. अ. ३४, गा. २०

पम्हलेस्सा सुक्कलेस्सं पप्प, तारूवत्ताए जाव ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ।

प. १-से णूणं भंते ! कण्हलेस्सा णीललेस्सं, काउलेस्सं, तेउलेस्सं, पम्हलेस्सं, सुक्कलेस्सं पप्प तारूवत्ताए, तावण्णत्ताए, तागंधत्ताए, तारसत्ताए, ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ ?

उ. हंता, गोयमा ! कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प जाव सुक्कलेस्सं पप्प तारूवत्ताए, तावण्णत्ताए, तागंधत्ताए, तारसत्ताए, ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प जाव सुक्कलेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव ताफासत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ ?"

उ. गोयमा ! से जहाणामए वेरुलियमणी सिया किण्णसुत्तए वा, णीलसुत्तए वा, लोहियसुत्तए वा, हालिद्दसुत्तए वा, सुक्किल्लसुत्तए वा आइए समाणे तारूवत्ताए जाव ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प जाव सुक्कलेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ।"

प. २. से णूणं भंते ! णीललेस्सा किण्हलेस्सं जाव सुक्कलेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ ?

उ. हंता, गोयमा ! एवं चेव।

३. एवं काउलेस्सा कण्हलेस्सं, णीललेस्सं, तेउलेस्सं, पम्हलेस्सं, सुक्कलेस्सं।

४. एवं तेउलेस्सा कण्हलेस्सं, णीललेस्सं, काउलेस्सं, पम्हलेस्सं, सुक्कलेस्सं।

५. एवं पम्हलेस्सा कण्हलेस्सं, णीललेस्सं, काउलेस्सं, तेउलेस्सं, सुक्कलेस्सं।

प. ६. से णूणं भंते ! सुक्कलेस्सा कण्हलेस्सं, णीललेस्सं, काउलेस्सं, तेउलेस्सं, पम्हलेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ ?

उ. हंता, गोयमा ! एवं चेव।[1]

–पण्ण. प. १७, उ. ४, सु. १२२०-१२२५

२४. दव्वलेस्साणं परप्परं परिणमणं–

प. से किं तं भंते ! लेस्सागइ ?

पद्मलेश्या शुक्ललेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप में यावत् उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत हो जाती है।

प्र. १. भंते ! क्या कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या को प्राप्त होकर उन्हीं के रूप में, उन्हीं के वर्ण रूप में, उन्हीं के गन्धरूप में, उन्हीं के रसरूप में, उन्हीं के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत होती है?

उ. हां, गौतम ! कृष्णलेश्या नीललेश्या को यावत् शुक्ललेश्या को प्राप्त होकर उन्हीं के रूप में, उन्हीं के वर्ण रूप में, उन्हीं के गंध रूप में, उन्हीं के रस रूप में और उन्हीं के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत होती है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"कृष्णलेश्या नीललेश्या को यावत् शुक्ललेश्या को प्राप्त होकर उन्हीं के रूप में यावत् उन्हीं के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत हो जाती है ?

उ. गौतम ! जैसे कोई वेडूर्यमणि काले सूत्र में या नीले सूत्र में, लाल सूत्र में या पीले सूत्र में अथवा श्वेत सूत्र में पिरोने पर वह उसी के रूप में यावत् उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत हो जाती है,

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"कृष्णलेश्या नीललेश्या को यावत् शुक्ललेश्या को प्राप्त होकर उन्हीं के रूप में यावत् उन्हीं के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत हो जाती है।"

प्र. २. भंते ! क्या नीललेश्या कृष्णलेश्या को यावत् शुक्ललेश्या को प्राप्त कर उन्हीं के रूप में यावत् उन्हीं के स्पर्श रूप में परिणत हो जाती है ?

उ. हां, गौतम ! पूर्ववत् (परिणत होती) है।

३. इसी प्रकार कापोतलेश्या, कृष्णलेश्या, नीललेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप में यावत् उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत हो जाती है।

४. इसी प्रकार तेजोलेश्या, कृष्णलेश्या, नीललेश्या कापोतलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप में यावत् उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत होती है।

५. इसी प्रकार पद्मलेश्या, कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या और शुक्ललेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप में यावत् उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत हो जाती है।

प्र. ६. क्या शुक्ललेश्या, कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, और पद्मलेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप में यावत् उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत हो जाती है ?

उ. हां, गौतम ! परिणत होती है।

२४. द्रव्यलेश्याओं का परस्पर परिणमन–

प्र. भंते ! लेश्यागति किसे कहते हैं ?

१. (क) विया. स. ४, उ. १०, सु. १ (ख) विया. स. १९, उ. १, सु. २ (ग) पण्ण. प. १७, उ. ५, सु. १२५१

उ. गोयमा ! लेस्सागइ जण्णं कण्हलेस्सा नीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए तावण्णत्ताए तागंधत्ताए तारसत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ

एवं नीललेस्सा काउलेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव ताफासत्ताए परिणमइ,

एवं काउलेस्सा वि तेऊलेस्सं, तेऊलेस्सा वि पम्हलेस्सं, पम्हलेस्सा वि सुक्कलेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव ताफासत्ताए परिणमइ, से तं लेस्सागइ।

—पण्ण. प. १६, सु. १११६

उ. गौतम ! कृष्णलेश्या (के द्रव्य) नीललेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप में, उसी के वर्ण रूप में, उसी के गंध रूप में, उसी के रस रूप में तथा उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत होती है, वह लेश्या गति है।

इसी प्रकार नील लेश्या भी कापोतलेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप में यावत् उसी के स्पर्श रूप में परिणत होती है,

इसी प्रकार कापोतलेश्या भी तेजोलेश्या को, तेजोलेश्या पद्मलेश्या को तथा पद्मलेश्या शुक्ललेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप में यावत् उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत होती है, वह लेश्यागति है।

२५. आगारभावाइ मायाए लेस्साणं परप्परं अपरिणमनं—

प. से णूणं भंते ! कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए, णो तावण्णत्ताए, णो तागंधत्ताए, णो तारसत्ताए, णो ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ ?

उ. हंता गोयमा ! कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए, णो तावण्णत्ताए, णो तागंधत्ताए, णो तारसत्ताए, णो ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—
कण्हलेस्सा नीललेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव णो ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ ?

उ. गोयमा ! आगारभावमायाए वा, से सिया पलिभागभावमायाए वा, से सिया कण्हलेस्साणं वा, णो खलु सा णीललेस्सा तत्थ गया उस्सक्कइ,
वा से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—
कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव णो ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ।

प. से णूणं भंते ! णीललेस्सा काउलेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव णो ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ ?

उ. हंता गोयमा ! णीललेस्सा काउलेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव णो ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—
णीललेस्सा काउलेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव णो ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ ?

उ. गोयमा ! आगारभावमायाए वा, से सिया-पलिभागभावमायाए वा से सिया णीललेस्सा णं सा, णो खलु सा काउलेस्सा, तत्थ गया उस्सक्कइ वा, ओसक्कइ वा, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—
"णीललेस्सा काउलेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव णो ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ।"
एवं काउलेस्सा तेउलेस्सं पप्प, तेउलेस्सा पम्हलेस्सं पप्प, पम्हलेस्सा सुक्कलेस्सं पप्प।

२५. आकार भावादि मात्रा से लेश्याओं का परस्पर अपरिणमन—

प्र. भंते ! क्या कृष्णलेश्या नीललेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप (आकार) में उसी के वर्ण रूप में, उसी के गन्ध रूप में, उसी के रस रूप में और उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत नहीं होती है ?

उ. हां, गौतम ! कृष्णलेश्या नीललेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप में, उसी के वर्ण रूप में, उसी के गन्ध रूप में, उसी के रस रूप में और उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत नहीं होती है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि—
"कृष्णलेश्या नीललेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप में यावत् उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत नहीं होती है ?"

उ. गौतम ! वह कदाचित् आकार भावमात्रा से अथवा प्रतिभागभावमात्रा से कृष्णलेश्या ही है, वह नीललेश्या नहीं हो जाती है। वह वहां रही हुई घटती-बढ़ती नहीं है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि—
"कृष्णलेश्या नीललेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप में यावत् उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत नहीं होती है।"

प्र. भंते ! क्या नीललेश्या कापोतलेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप में यावत् उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत नहीं होती है ?

उ. हां, गौतम ! नीललेश्या कापोतलेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप में यावत् उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत नहीं होती है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि—
"नीललेश्या कापोतलेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप में यावत् उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत नहीं होती है ?"

उ. गौतम ! वह कदाचित् आकारभावमात्रा से अथवा प्रतिभागभावमात्रा से नीललेश्या ही है, वह कापोतलेश्या नहीं हो जाती है। वह वहां रही हुई घटती-बढ़ती नहीं है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि—
"नीललेश्या कापोतलेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप में यावत् उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत नहीं होती है।"
इसी प्रकार कापोतलेश्या तेजोलेश्या को प्राप्त होकर, तेजोलेश्या पद्मलेश्या को प्राप्त होकर और पद्मलेश्या शुक्ललेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप में यावत् उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत नहीं होती है।

प. से णूणं भंते ! सुक्कलेस्सा पम्हलेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव णो ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ?

उ. हंता, गोयमा ! सुक्कलेस्सा पम्हलेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव णो ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"सुक्कलेस्सा पम्हलेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव णो ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ?"

उ. गोयमा ! आगारभावमायाए से सिया पलिभागभावमायाए वा से सिया, सुक्कलेस्सा णं सा, णो खलु सा पम्हलेस्सा, तत्थ गया उस्सक्कइ वा ओसक्कइ वा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"सुक्कलेस्सा पम्हलेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव णो ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ।"

–पण्ण. प. १७, उ. ५, सु. १२५२-१२५५

प्र. भंते ! क्या शुक्ललेश्या पद्मलेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप में यावत् उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत नहीं होती है?

उ. हां, गौतम ! शुक्ललेश्या पद्मलेश्या को प्राप्त होकर उसी के वर्ण यावत् उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत नहीं होती है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"शुक्ललेश्या पद्मलेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप में यावत् उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत नहीं होती है?

उ. गौतम ! वह कदाचित् आकारभावमात्रा से अथवा प्रतिभागभावमात्रा से शुक्ललेश्या ही है, वह पद्मलेश्या नहीं हो जाती है। वह वहां रही हुई घटती-बढ़ती नहीं है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"शुक्ललेश्या पद्मलेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप में यावत् उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत नहीं होती है।"

२६. चउवीस दंडएसु लेस्साणं तिविह बंध परूवणं–

प. कण्हलेस्साए जाव सुक्कलेस्साए णं भंते ! कइविहे बंधे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! तिविहे बंधे पण्णत्ते, तं जहा–

१. जीवप्पयोगबंधे, २. अणंतरबंधे, ३. परंपरबंधे।

दं. १-२४ सव्वे ते चउवीस दंडगा भाणियव्वा,

णवरं–भाणियव्वं जस्स जं अत्थि।

–विया. स. २०, उ. ७, सु. १९-२१

२६. लेश्याओं का त्रिविध बंध और चौवीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भंते ! कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या का बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! तीन प्रकार का बन्ध कहा गया है, यथा–

१. जीवप्रयोगबन्ध, २. अनन्तरबन्ध, ३. परम्परबन्ध।

दं. १-२४ इन सभी का चौवीस दण्डकों में कथन करना चाहिए।

विशेष–जिसके जो (बंध प्रकार) हो, वही जानना चाहिए।

२७. सलेस्सेसु चउवीस दंडएसु उववज्जणं–

प. दं. १. जीवे णं भंते ! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! किं लेसेसु उववज्जइ?

उ. गोयमा ! जल्लेसाइं दव्वाइं परिआइत्ता कालं करेइ तल्लेसेसु उववज्जइ, तं जहा–

कण्हलेसेसु वा, नीललेसेसु वा, काउलेसेसु वा,

एवं जस्स जा लेस्सा सा तस्स भाणियव्वा.

२७. सलेश्यी चौवीसदंडकों की उत्पत्ति–

प्र. दं. १. भंते ! जो जीव नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितनी लेश्याओं में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! वह जीव जिस लेश्या के द्रव्यों को ग्रहण करके काल करता है, उसी लेश्या वाले नारकों में उत्पन्न होता है, यथा–

कृष्णलेश्या वालों में, नीललेश्या वालों में या कापोतलेश्या वालों में,

इसी प्रकार जिसकी जो लेश्या हो, उसकी वह लेश्या कहनी चाहिए.

दं. २-२२ इसी प्रकार वाणव्यन्तरों पर्यन्त कहना चाहिये।

प्र. दं. २३. भंते ! जो जीव ज्योतिष्कों में उत्पन्न होने योग्य है, वह किस लेश्या में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! जिस लेश्या के द्रव्यों को ग्रहण करके जीव काल करता है, उसी लेश्या वाले ज्योतिष्कों में उत्पन्न होता है, यथा–

तेजोलेश्या वालों में।

प्र. दं. २४. भंते ! जो जीव वैमानिक देवों में उत्पन्न होने योग्य है, वह किन लेश्याओं में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! जिस लेश्या के द्रव्यों को ग्रहण करके जीव काल करता है, उसी लेश्या वाले वैमानिक देवों में उत्पन्न होता है,

तं जहा–तेउलेसेसु वा, पम्हलेसेसु वा, सुक्कलेसेसु वा।

–विया. स. ३, उ. ४, सु. १२-१४

२८. सलेस्सेसु नेरइएसु उववज्जणं–

प. से नूणं भंते ! कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से भवित्ता कण्हलेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति ?

उ. हंता, गोयमा ! कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से भवित्ता कण्हलेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से भवित्ता कण्हलेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! लेसट्ठाणेसु संकिलिस्समाणेसु संकिलिस्समाणेसु कण्हलेस्सं परिणमंति कण्हलेस्सं परिणमित्ता कण्हलेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से भवित्ता कण्हलेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति।'

प. से नूणं भंते ! कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से भवित्ता नीललेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति ?

उ. हंता, गोयमा ! कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से भवित्ता नीललेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से भवित्ता नीललेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति ?"

उ. गोयमा ! लेस्सट्ठाणेसु संकिलिस्समाणेसु वा, विसुज्झमाणेसु वा, नीललेस्सं परिणमंति नीललेस्सं परिणमित्ता नीललेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से भवित्ता नीललेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति।"

प. से नूणं भंते ! कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से भवित्ता काउलेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! एवं जहा नीललेस्साए तहा काउलेस्साए वि भाणियव्वा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से भवित्ता काउलेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! एवं जहा नीललेस्साए तहा काउलेस्साए वि भाणियव्वा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से भवित्ता काउलेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति।"

यथा–तेजोलेश्या, पद्मलेश्या या शुक्ललेश्या वालों में।

२८. सलेश्य नैरयिकों में उत्पत्ति–

प्र. भंते ! वास्तव में क्या कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी होने पर भी कृष्णलेश्यी वाले नैरयिकों में उत्पन्न हो जाते हैं ?

उ. हां, गौतम ! कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी, कृष्णलेश्या वाले नैरयिकों में उत्पन्न हो जाते हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी होने पर भी कृष्णलेश्या वाले नैरयिकों में उत्पन्न हो जाते हैं ?

उ. गौतम ! उनके लेश्या स्थान संक्लेश को प्राप्त होते-होते कृष्णलेश्या के रूप में परिणत हो जाते हैं और कृष्णलेश्या के रूप में परिणत होने पर वे जीव कृष्णलेश्या वाले नैरयिकों में उत्पन्न हो जाते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी कृष्णलेश्या वाले नैरयिकों में उत्पन्न हो जाते हैं।"

प्र. भंते ! वास्तव में क्या कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी होने पर भी जीव पुनः नीललेश्या वाले नैरयिकों में उत्पन्न हो जाते हैं ?

उ. हां, गौतम ! कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी होने पर भी जीव नीललेश्या वाले नैरयिकों में उत्पन्न हो जाते हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी होने पर भी जीव नीललेश्या वाले नैरयिकों में उत्पन्न हो जाते हैं ?

उ. गौतम ! लेश्या के स्थान उत्तरोत्तर संक्लेश को प्राप्त होते-होते तथा विशुद्ध होते-होते नीललेश्या के रूप में परिणत हो जाते हैं और नीललेश्या के रूप में परिणत होने पर वे जीव नीललेश्या वाले नैरयिकों में उत्पन्न हो जाते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी होने पर भी जीव नीललेश्या वाले नैरयिकों में उत्पन्न हो जाते हैं।"

प्र. भंते ! वास्तव में क्या कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी होने पर भी जीव कापोतलेश्या वाले नैरयिकों में उत्पन्न हो जाते हैं ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार नीललेश्या के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार कापोतलेश्या के विषय में भी कहना चाहिए।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी [illegible] नैरयिकों में उत्पन्न [illegible]

उ. गौतम ! जिस प्रकार नीललेश्या के विषय में कहा गया है [illegible] प्रकार कापोतलेश्या के विषय में भी कहना चाहिए।

[illegible]

२९. सलेस्सेसु देवेसु उववज्जणं-

प. से नूणं भंते ! कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्सेसु भवित्ता कण्हलेस्से देवेसु उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! एवं जहेव णेरइएसु पढमे उद्देसए तहेव भाणियव्वं।

नीललेस्साए वि जहेव नेरइयाणं जहा नीललेस्साए।

एवं जाव पम्हलेस्सेसु।

सुक्कलेस्सेसु एवं चेव,

णवरं-लेस्सट्ठाणेसु विसुज्झमाणेसु-विसुज्झमाणेसु सुक्कलेस्सं परिणमइ सुक्कलेस्सं परिणमित्ता सुक्कलेस्सेसु देवेसु उववज्जंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-

'कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से भवित्ता सुक्कलेस्सेसु देवेसु उववज्जंति।' -विया. स. १३, उ. २, सु. २८-३१

३०. भावियप्पणो अणगारस्स लेस्साणुसारेणं उववाय परूवणं-

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा चरमं देवावासं वीइक्कंते, परमं देवावासं असंपत्ते, एत्थ णं अंतरा कालं करेज्जा, तस्स णं भंते ! कहिं गई, कहिं उववाए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! जे से तत्थ परिणस्सओ तल्लेसा देवावासा तहिं तस्स गइं, तहिं तस्स उववाए पण्णत्ते।

से ये तत्थगए विराहेज्जा कम्मलेस्सामेव पडिपडइ, से य तत्थ गए नो विराहेज्जा। तामेव लेस्सं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा चरम असुरकुमारावासं वीइक्कंते, परमं असुरकुमारावासं असंपत्ते एत्थ णं अंतरा कालं करेज्जा, तस्स णं भंते ! कहिं उववाए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं जाव थणियकुमारावासं,

एवं जोइसियावासं वेमाणियावासं जाव विहरइ। -विया. स. १४, उ. १, सु. ३-५

३१. सलेस्सेसु चउवीसदंडएसु ओहेणं उववाय-उव्वट्टाणाओ-

प. दं. १. से नूणं भंते ! कण्हलेस्से णेरइए कण्हलेस्सेसु णेरइएसु उववज्जइ ? कण्हलेस्से उव्वट्टइ ?

जल्लेस्से उववज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ ?

उ. हंता, गोयमा ! कण्हलेस्से णेरइए कण्हलेस्सेसु णेरइएसु उववज्जइ, कण्हलेस्से उव्वट्टइ,

२९. सलेश्य की देवों में उत्पत्ति-

प्र. भंते ! वास्तव में क्या कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी होने पर भी जीव कृष्णलेश्या वाले देवों में उत्पन्न हो जाते हैं ?

उ. हां गौतम ! जिस प्रकार (प्रथम उद्देशक में) पूर्वोक्त नैरयिकों के विषय में कहा उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिए।

नीललेश्या वाले देवों के विषय में नीललेश्या वाले नैरयिकों के समान कहना चाहिए।

इसी प्रकार पद्मलेश्या वाले देवों पर्यन्त कहना चाहिए।

शुक्ललेश्या वाले देवों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

विशेष-लेश्या स्थान विशुद्ध होते-होते शुक्ललेश्या में परिणत हो जाते हैं और शुक्ललेश्या में परिणत होने के पश्चात् ही शुक्ललेश्यी देवों में उत्पन्न होते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि-

"कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी होने पर भी जीव शुक्ललेश्या वाले देव रूप में उत्पन्न हो जाते हैं।

३०. भावितात्मा अणगार का लेश्यानुसार उपपात का प्ररूपण-

प्र. भंते ! किसी भावितात्मा अनगार ने चरम (पूर्ववर्ती) देवावास (देवलोक) का उल्लंघन कर लिया किन्तु उत्तरवर्ती देवावास को प्राप्त न हुआ हो इसी बीच में काल कर जाए तो भंते ! उसकी कौन-सी गति होती है, कहां उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! (भावितात्मा अणगार) उसके आसपास में जो लेश्या वाले देवावास क्षेत्र हैं वहीं उसकी गति होती है और वहीं उसकी उत्पत्ति होती है।

वह अनगार यदि वहां जाकर अपनी पूर्वलेश्या को विराधित करता है, तो कर्मलेश्या से गिरता है और यदि वहां जाकर उस लेश्या को विराधित नहीं करता है तो वह उसी लेश्या में विचरता है।

प्र. भंते ! किसी भावितात्मा अनगार ने चरम असुरकुमारावास का उल्लंघन कर लिया और परम असुरकुमारावास को प्राप्त नहीं हुआ इसी बीच में वह काल कर जाए तो उसकी कौन-सी गति होती है, कहां उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् जानना चाहिए।

इसी प्रकार स्तनितकुमारावास पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार ज्योतिष्कावास और वैमानिकावासों के लिए भी कहना चाहिए।

३१. लेश्यायुक्त चौवीसदण्डकों में जीवों का सामान्यतः उत्पाद उद्वर्तन-

प्र. दं. १. भंते ! वास्तव में क्या कृष्णलेश्यी नारक कृष्णलेश्यी नारकों में ही उत्पन्न होता है ? क्या कृष्णलेश्यी होकर ही उद्वर्तन करता है ?

जिस लेश्या में उत्पन्न होता है क्या उसी लेश्या में उद्वर्तन करता है ?

उ. हां, गौतम ! कृष्णलेश्यी नारक कृष्णलेश्यी नारकों में उत्पन्न होता है, कृष्णलेश्या में उद्वर्तन करता है (मरता है)

जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ।

एवं णीललेसे वि, काउलेसे वि।

दं. २-११ एवं असुरकुमारा वि जाव थणियकुमारा वि।

णवरं–तेउलेस्सा अब्भइया।

प. दं. १२. से नूणं भंते ! कण्हलेस्से पुढविक्काइए कण्हलेस्सेसु पुढविकाइएसु उववज्जइ ? कण्हलेस्से उव्वट्टइ ?

जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ ?

उ. हंता, गोयमा ! कण्हलेस्से पुढविक्काइए कण्हलेस्सेसु पुढविक्काइएसु उववज्जइ, सिय कण्हलेस्से उव्वट्टइ,

सिय नीललेसे उव्वट्टइ,

सिय काउलेसे उव्वट्टइ,

सिय जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ।

एवं णीललेस्सा काउलेस्सा वि।

प. से नूणं भंते ! तेउलेस्से पुढविक्काइए तेउल्लेस्सेसु पुढविक्काइएसु उववज्जइ ?

तेउलेस्से उव्वट्टइ ?

जल्लेसे उव्वज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ ?

उ. हंता, गोयमा ! तेउलेस्से पुढविक्काइए तेउलेस्सेसु पुढविक्काइएसु उववज्जइ,

सिय कण्हलेसे उव्वट्टइ,

सिय णीललेसे उव्वट्टइ,

सिय काउलेसे उव्वट्टइ,

तेउलेसे उववज्जइ, णो चेव णं तेउलेस्से उव्वट्टइ।

दं. १३, १६. एवं आउक्काइए वणस्सइकाइया वि।

दं. १४, १५, तेऊ वाऊ एवं चेव।

णवरं–एएसिं तेउलेस्सा णत्थि।

दं. १७-१९. विय-तिय-चउरिंदिया एवं चेव तिसु लेसासु।

दं. २०-२१ पंचेंदियतिरिक्खजोणिया मणूसा य जहा पुढविक्काइया आइल्लियासु तिसु लेस्सासु भणिया तहा छसु वि लेसासु भाणियव्वा।

णवरं–छप्पिलेस्साओ चारियव्वाओ।

२२. वाणमंतरा जहा असुरकुमारा।

जिस लेश्या में उत्पन्न होता है–उसी लेश्या में उद्वर्तन करता है।

इसी प्रकार नीललेश्यी और कापोतलेश्यी भी समझना चाहिए।

दं. २-११. इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त (उत्पाद और उद्वर्तन का) कथन करना चाहिए।

विशेष–तेजोलेश्या का कथन अधिक करना चाहिए।

प्र. दं. १२. भंते ! वास्तव में क्या कृष्णलेश्यी पृथ्वीकायिक कृष्णलेश्यी पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है ? क्या कृष्णलेश्यी होकर उद्वर्तन करता है ?

जिस लेश्या में उत्पन्न होता है, क्या उसी लेश्या में उद्वर्तन करता है ?

उ. हां, गौतम ! कृष्णलेश्यी पृथ्वीकायिक कृष्णलेश्यी पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है, कदाचित् कृष्णलेश्यी होकर उद्वर्तन करता है।

कदाचित् नीललेश्यी होकर उद्वर्तन करता है,

कदाचित् कापोतलेश्यी होकर उद्वर्तन करता है।

कदाचित् जिस लेश्या में उत्पन्न होता है, उसी लेश्या में उद्वर्तन करता है।

इसी प्रकार नीललेश्या और कापोतलेश्या वालों में भी (उत्पाद और उद्वर्तन का) कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! वास्तव में क्या तेजोलेश्यी पृथ्वीकायिक तेजोलेश्यी पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है ?

क्या तेजोलेश्यी होकर उद्वर्तन करता है ?

जिस लेश्या में उत्पन्न होता है, क्या उसी लेश्या में उद्वर्तन करता है ?

उ. हां, गौतम ! तेजोलेश्यी पृथ्वीकायिक तेजोलेश्यी पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है,

कदाचित् कृष्णलेश्यी होकर उद्वर्तन करता है।

कदाचित् नीललेश्यी होकर उद्वर्तन करता है,

कदाचित् कापोतलेश्यी होकर उद्वर्तन करता है,

तेजोलेश्या से युक्त होकर उत्पन्न होता है, किन्तु तेजोलेश्या से युक्त होकर उद्वर्तन नहीं करता है।

दं. १३, १६ इसी प्रकार अप्कायिकों और वनस्पतिकायिकों (के उत्पाद और उद्वर्तन) का कथन करना चाहिए।

दं. १४-१५ इसी प्रकार तेजस्कायिकों और वायुकायिकों (के भी उत्पाद और उद्वर्तन) का कथन करना चाहिए।

विशेष–इनमें तेजोलेश्या नहीं होती है।

दं. १७-१९ इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियों का भी तीनों लेश्याओं में (उत्पाद-उद्वर्तन) जानना चाहिए।

दं. २०-२१ पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों और मनुष्यों का कथन जिस प्रकार पृथ्वीकायिकों के प्रारम्भ की तीन लेश्याओं में कहा है उसी प्रकार छहों लेश्याओं [illegible] ये।

विशेष–छहों लेश्याओं का क्रम

दं. २२ वाणव्यन्तरों [illegible] '७९

के समान

२९. सलेस्सेसु देवेसु उववज्जणं–

प. से नूणं भंते ! कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्सेसु भवित्ता कण्हलेस्से देवेसु उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! एवं जहेव णेरइएसु पढमे उद्देसए तहेव भाणियव्वं।

नीललेस्साए वि जहेव नेरइयाणं जहा नीललेस्साए।

एवं जाव पम्हलेस्सेसु।

सुक्कलेस्सेसु एवं चेव,

णवरं–लेस्सट्ठाणेसु विसुज्झमाणेसु-विसुज्झमाणेसु सुक्कलेस्सं परिणमइ सुक्कलेस्सं परिणमित्ता सुक्कलेस्सेसु देवेसु उववज्जंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से भवित्ता सुक्कलेस्सेसु देवेसु उववज्जंति।' –विया. स. १३, उ. २, सु. २८-३१

३०. भावियप्पणो अणगारस्स लेस्साणुसारेणं उववाय परूवणं–

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा चरमं देवावासं वीइक्कंते, परमं देवावासं असंपत्ते, एत्थ णं अंतरा कालं करेज्जा, तस्स णं भंते ! कहिं गई, कहिं उववाए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! जे से तत्थ परिणस्सओ तल्लेसा देवावासा तहिं तस्स गइं, तहिं तस्स उववाए पण्णत्ते।

से ये तत्थगए विराहेज्जा कम्मलेस्सामेव पडिपडइ, से य तत्थ गए नो विराहेज्जा। तामेव लेस्सं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा चरम असुरकुमारावासं वीइक्कंते, परमं असुरकुमारावासं असंपत्ते एत्थ णं अंतरा कालं करेज्जा, तस्स णं भंते ! कहिं उववाए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं जाव थणियकुमारावासं,

एवं जोइसियावासं वेमाणियावासं जाव विहरइ। –विया. स. १४, उ. १, सु. ३-५

३१. सलेस्सेसु चउवीसदंडएसु ओहेणं उववाय-उव्वट्टाणाओ–

प. दं. १. से नूणं भंते ! कण्हलेस्से णेरइए कण्हलेस्सेसु णेरइएसु उववज्जइ ? कण्हलेस्से उव्वट्टइ ?

जल्लेस्से उववज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ ?

उ. हंता, गोयमा ! कण्हलेस्से णेरइए कण्हलेस्सेसु णेरइएसु उववज्जइ, कण्हलेस्से उव्वट्टइ,

२९. सलेश्य की देवों में उत्पत्ति–

प्र. भंते ! वास्तव में क्या कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी होने पर भी जीव कृष्णलेश्या वाले देवों में उत्पन्न हो जाते हैं ?

उ. हां गौतम ! जिस प्रकार (प्रथम उद्देशक में) पूर्वोक्त नैरयिकों के विषय में कहा उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिए।

नीललेश्या वाले देवों के विषय में नीललेश्या वाले नैरयिकों के समान कहना चाहिए।

इसी प्रकार पद्मलेश्या वाले देवों पर्यन्त कहना चाहिए।

शुक्ललेश्या वाले देवों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

विशेष–लेश्या स्थान विशुद्ध होते-होते शुक्ललेश्या में परिणत हो जाते हैं और शुक्ललेश्या में परिणत होने के पश्चात् ही शुक्ललेश्यी देवों में उत्पन्न होते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी होने पर भी जीव शुक्ललेश्या वाले देव रूप में उत्पन्न हो जाते हैं।

३०. भावितात्मा अणगार का लेश्यानुसार उपपात का प्ररूपण–

प्र. भंते ! किसी भावितात्मा अनगार ने चरम (पूर्ववर्ती) देवावास (देवलोक) का उल्लंघन कर लिया किन्तु उत्तरवर्ती देवावास को प्राप्त न हुआ हो इसी बीच में काल कर जाए तो भंते ! उसकी कौन-सी गति होती है, कहां उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! (भावितात्मा अणगार) उसके आसपास में जो लेश्या वाले देवावास क्षेत्र हैं वहीं उसकी गति होती है और वहीं उसकी उत्पत्ति होती है।

वह अनगार यदि वहां जाकर अपनी पूर्वलेश्या को विराधित करता है, तो कर्मलेश्या से गिरता है और यदि वहां जाकर उस लेश्या को विराधित नहीं करता है तो वह उसी लेश्या में विचरता है।

प्र. भंते ! किसी भावितात्मा अनगार ने चरम असुरकुमारावास का उल्लंघन कर लिया और परम असुरकुमारावास को प्राप्त नहीं हुआ इसी बीच में वह काल कर जाए तो उसकी कौन-सी गति होती है, कहां उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् जानना चाहिए।

इसी प्रकार स्तनितकुमारावास पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार ज्योतिष्कावास और वैमानिकावासों के लिए भी कहना चाहिए।

३१. लेश्यायुक्त चौवीसदण्डकों में जीवों का सामान्यतः उत्पाद उद्वर्तन–

प्र. दं. १. भंते ! वास्तव में क्या कृष्णलेश्यी नारक कृष्णलेश्यी नारकों में ही उत्पन्न होता है ? क्या कृष्णलेश्यी होकर ही उद्वर्तन करता है ?

जिस लेश्या में उत्पन्न होता है क्या उसी लेश्या में उद्वर्तन करता है ?

उ. हां, गौतम ! कृष्णलेश्यी नारक कृष्णलेश्यी नारकों में उत्पन्न होता है, कृष्णलेश्या में उद्वर्तन करता है (मरता है)

जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ।

एवं णीललेसे वि, काउलेसे वि।

दं. २-११ एवं असुरकुमारा वि जाव थणियकुमारा वि।

णवरं–तेउलेस्सा अब्भइया।

प. दं. १२. से नूणं भंते ! कण्हलेस्से पुढविक्काइए कण्हलेस्सेसु पुढविकाइएसु उववज्जइ ? कण्हलेस्से उव्वट्टइ ?

जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ ?

उ. हंता, गोयमा ! कण्हलेस्से पुढविक्काइए कण्हलेस्सेसु पुढविक्काइएसु उववज्जइ, सिय कण्हलेस्से उव्वट्टइ,

सिय नीललेसे उव्वट्टइ,

सिय काउलेसे उव्वट्टइ,

सिय जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ।

एवं णीललेस्सा काउलेस्सा वि।

प. से नूणं भंते ! तेउलेस्से पुढविक्काइए तेउल्लेस्सेसु पुढविक्काइएसु उववज्जइ ?

तेउलेस्से उव्वट्टइ ?

जल्लेसे उव्वज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ ?

उ. हंता, गोयमा ! तेउलेस्से पुढविक्काइए तेउलेस्सेसु पुढविक्काइएसु उववज्जइ,

सिय कण्हलेसे उव्वट्टइ,

सिय णीललेसे उव्वट्टइ,

सिय काउलेसे उव्वट्टइ,

तेउलेसे उववज्जइ, णो चेव णं तेउलेस्से उव्वट्टइ।

दं. १३, १६. एवं आउक्काइए वणस्सइकाइया वि।

दं. १४, १५, तेऊ वाऊ एवं चेव।

णवरं–एएसिं तेउलेस्सा णत्थि।

दं. १७-१९. बिय-तिय-चउरिंदिया एवं चेव तिसु लेसासु।

दं. २०-२१ पंचेंदियतिरिक्खजोणिया मणूसा य जहा पुढविक्काइया आइल्लियासु तिसु लेस्सासु भणिया तहा छसु वि लेसासु भाणियव्वा।

णवरं–छप्पिलेस्साओ चारियव्वाओ।

२२. वाणमंतरा जहा असुरकुमारा।

जिस लेश्या में उत्पन्न होता है–उसी लेश्या में उद्वर्तन करता है।

इसी प्रकार नीललेश्यी और कापोतलेश्यी भी समझना चाहिए।

दं. २-११. इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त (उत्पाद और उद्वर्तन का) कथन करना चाहिए।

विशेष–तेजोलेश्या का कथन अधिक करना चाहिए।

प्र. दं. १२. भंते ! वास्तव में क्या कृष्णलेश्यी पृथ्वीकायिक कृष्णलेश्यी पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है ? क्या कृष्णलेश्यी होकर उद्वर्तन करता है ?

जिस लेश्या में उत्पन्न होता है, क्या उसी लेश्या में उद्वर्तन करता है ?

उ. हां, गौतम ! कृष्णलेश्यी पृथ्वीकायिक कृष्णलेश्यी पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है, कदाचित् कृष्णलेश्यी होकर उद्वर्तन करता है।

कदाचित् नीललेश्यी होकर उद्वर्तन करता है,

कदाचित् कापोतलेश्यी होकर उद्वर्तन करता है।

कदाचित् जिस लेश्या में उत्पन्न होता है, उसी लेश्या में उद्वर्तन करता है।

इसी प्रकार नीललेश्या और कापोतलेश्या वालों में भी (उत्पाद और उद्वर्तन का) कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! वास्तव में क्या तेजोलेश्यी पृथ्वीकायिक तेजोलेश्यी पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है ?

क्या तेजोलेश्यी होकर उद्वर्तन करता है ?

जिस लेश्या में उत्पन्न होता है, क्या उसी लेश्या में उद्वर्तन करता है ?

उ. हां, गौतम ! तेजोलेश्यी पृथ्वीकायिक तेजोलेश्यी पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है,

कदाचित् कृष्णलेश्यी होकर उद्वर्तन करता है।

कदाचित् नीललेश्यी होकर उद्वर्तन करता है,

कदाचित् कापोतलेश्यी होकर उद्वर्तन करता है,

तेजोलेश्या से युक्त होकर उत्पन्न होता है, किन्तु तेजोलेश्या से युक्त होकर उद्वर्तन नहीं करता है।

दं. १३, १६ इसी प्रकार अप्कायिकों और वनस्पतिकायिकों (के उत्पाद और उद्वर्तन) का कथन करना चाहिए।

दं. १४-१५ इसी प्रकार तेजस्कायिकों और वायुकायिकों (के भी उत्पाद और उद्वर्तन) का कथन करना चाहिए।

विशेष–इनमें तेजोलेश्या नहीं होती है।

दं. १७-१९ इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियों का भी तीनों लेश्याओं में (उत्पाद-उद्वर्तन) जानना चाहिए।

दं. २०-२१ पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों और मनुष्यों का कथन जिस प्रकार पृथ्वीकायिकों के प्रारम्भ की तीन लेश्याओं में कहा है उसी प्रकार छहों लेश्याओं में भी कथन करना चाहिये।

विशेष–छहों लेश्याओं का क्रम बदलना चाहिए।

दं. २२ वाणव्यन्तरों का (उत्पाद और उद्वर्तन) असुरकुमारों के समान जानना चाहिए।

२९. सलेस्सेसु देवेसु उववज्जणं-

प. से नूणं भंते ! कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्सेसु भवित्ता कण्हलेस्से देवेसु उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एवं जहेव णेरइएसु पढमे उद्देसए तहेव भाणियव्वं।

नीललेस्साए वि जहेव नेरइयाणं जहा नीललेस्साए।

एवं जाव पम्हलेस्सेसु।

सुक्कलेस्सेसु एवं चेव,

णवरं-लेस्सट्ठाणेसु विसुज्झमाणेसु-विसुज्झमाणेसु सुक्कलेस्सं परिणमइ सुक्कलेस्सं परिणमित्ता सुक्कलेस्सेसु देवेसु उववज्जंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-

'कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से भवित्ता सुक्कलेस्सेसु देवेसु उववज्जंति।'

-विया. स. १३, उ. २, सु. २८-३१

३०. भावियप्पणो अणगारस्स लेस्साणुसारेणं उववाय परूवणं-

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा चरमं देवावासं वीइक्कंते, परमं देवावासं असंपत्ते, एत्थ णं अंतरा कालं करेज्जा, तस्स णं भंते ! कहिं गई, कहिं उववाए पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! जे से तत्थ परिणस्सओ तल्लेसा देवावासा तहिं तस्स गइं, तहिं तस्स उववाए पण्णत्ते।

से ये तत्थगए विराहेज्जा कम्मलेस्सामेव पडिपडइ, से य तत्थ गए नो विराहेज्जा। तामेव लेस्सं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा चरम असुरकुमारावासं वीइक्कंते, परमं असुरकुमारावासं असंपत्ते एत्थ णं अंतरा कालं करेज्जा, तस्स णं भंते ! कहिं उववाए पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं जाव थणियकुमारावासं,

एवं जोइसियावासं वेमाणियावासं जाव विहरइ।

-विया. स. १४, उ. १, सु. ३-५

३१. सलेस्सेसु चउवीसदंडएसु ओहेणं उववाय-उव्वट्टाणाओ-

प. दं. १. से नूणं भंते ! कण्हलेस्से णेरइए कण्हलेस्सेसु णेरइएसु उववज्जइ? कण्हलेस्से उव्वट्टइ?

जल्लेस्से उववज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ?

उ. हंता, गोयमा ! कण्हलेस्से णेरइए कण्हलेस्सेसु णेरइएसु उववज्जइ, कण्हलेस्से उव्वट्टइ,

२९. सलेश्य की देवों में उत्पत्ति-

प्र. भंते ! वास्तव में क्या कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी होने पर भी जीव कृष्णलेश्या वाले देवों में उत्पन्न हो जाते हैं?

उ. हां गौतम ! जिस प्रकार (प्रथम उद्देशक में) पूर्वोक्त नैरयिकों के विषय में कहा उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिए।

नीललेश्या वाले देवों के विषय में नीललेश्या वाले नैरयिकों के समान कहना चाहिए।

इसी प्रकार पद्मलेश्या वाले देवों पर्यन्त कहना चाहिए।

शुक्ललेश्या वाले देवों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

विशेष-लेश्या स्थान विशुद्ध होते-होते शुक्ललेश्या में परिणत हो जाते हैं और शुक्ललेश्या में परिणत होने के पश्चात् ही शुक्ललेश्यी देवों में उत्पन्न होते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि-

"कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी होने पर भी जीव शुक्ललेश्या वाले देव रूप में उत्पन्न हो जाते हैं।

३०. भावितात्मा अणगार का लेश्यानुसार उपपात का प्ररूपण-

प्र. भंते ! किसी भावितात्मा अनगार ने चरम (पूर्ववर्ती) देवावास (देवलोक) का उल्लंघन कर लिया किन्तु उत्तरवर्ती देवावास को प्राप्त न हुआ हो इसी बीच में काल कर जाए तो भंते ! उसकी कौन-सी गति होती है, कहां उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! (भावितात्मा अणगार) उसके आसपास में जो लेश्या वाले देवावास क्षेत्र हैं वहीं उसकी गति होती है और वहीं उसकी उत्पत्ति होती है।

वह अनगार यदि वहां जाकर अपनी पूर्वलेश्या को विराधित करता है, तो कर्मलेश्या से गिरता है और यदि वहां जाकर उस लेश्या को विराधित नहीं करता है तो वह उसी लेश्या में विचरता है।

प्र. भंते ! किसी भावितात्मा अनगार ने चरम असुरकुमारावास का उल्लंघन कर लिया और परम असुरकुमारावास को प्राप्त नहीं हुआ इसी बीच में वह काल कर जाए तो उसकी कौन-सी गति होती है, कहां उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! पूर्ववत् जानना चाहिए।

इसी प्रकार स्तनितकुमारावास पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार ज्योतिष्कावास और वैमानिकावासों के लिए भी कहना चाहिए।

३१. लेश्यायुक्त चौवीसदण्डकों में जीवों का सामान्यतः उत्पाद उद्वर्तन-

प्र. दं. १. भंते ! वास्तव में क्या कृष्णलेश्यी नारक कृष्णलेश्यी नारकों में ही उत्पन्न होता है? क्या कृष्णलेश्यी होकर ही उद्वर्तन करता है?

जिस लेश्या में उत्पन्न होता है क्या उसी लेश्या में उद्वर्तन करता है?

उ. हां, गौतम ! कृष्णलेश्यी नारक कृष्णलेश्यी नारकों में उत्पन्न होता है, कृष्णलेश्या में उद्वर्तन करता है (मरता है)

जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ।

एवं णीललेसे वि, काउलेसे वि।

दं. २-११ एवं असुरकुमारा वि जाव थणियकुमारा वि।

णवरं–तेउलेस्सा अब्भइया।

प. दं. १२. से नूणं भंते ! कण्हलेस्से पुढविक्काइए कण्हलेस्सेसु पुढविकाइएसु उववज्जइ ? कण्हलेस्से उव्वट्टइ ?

जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ ?

उ. हंता, गोयमा ! कण्हलेस्से पुढविक्काइए कण्हलेस्सेसु पुढविक्काइएसु उववज्जइ, सिय कण्हलेस्से उव्वट्टइ,

सिय नीललेसे उव्वट्टइ,

सिय काउलेसे उव्वट्टइ,

सिय जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ।

एवं णीललेस्सा काउलेस्सा वि।

प. से नूणं भंते ! तेउलेस्से पुढविक्काइए तेउल्लेस्सेसु पुढविक्काइएसु उववज्जइ ?

तेउलेस्से उव्वट्टइ ?

जल्लेसे उव्वज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ ?

उ. हंता, गोयमा ! तेउलेस्से पुढविक्काइए तेउलेस्सेसु पुढविक्काइएसु उववज्जइ,

सिय कण्हलेसे उव्वट्टइ,

सिय णीललेसे उव्वट्टइ,

सिय काउलेसे उव्वट्टइ,

तेउलेसे उववज्जइ, णो चेव णं तेउलेस्से उव्वट्टइ।

दं. १३, १६. एवं आउक्काइए वणस्सइकाइया वि।

दं. १४, १५, तेऊ वाऊ एवं चेव।

णवरं–एएसिं तेउलेस्सा णत्थि।

दं. १७-१९. विय-तिय-चउरिंदिया एवं चेव तिसु लेसासु।

दं. २०-२१ पंचेंदियतिरिक्खजोणिया मणूसा य जहा पुढविक्काइया आइल्लियासु तिसु लेस्सासु भणिया तहा छसु वि लेसासु भाणियव्वा।

णवरं–छप्पिलेस्साओ चारियव्वाओ।

२२. वाणमंतरा जहा असुरकुमारा।

जिस लेश्या में उत्पन्न होता है–उसी लेश्या में उद्‌वर्तन करता है।

इसी प्रकार नीललेश्यी और कापोतलेश्यी भी समझना चाहिए।

दं. २-११. इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त (उत्पाद और उद्‌वर्तन का) कथन करना चाहिए।

विशेष–तेजोलेश्या का कथन अधिक करना चाहिए।

प्र. दं. १२. भंते ! वास्तव में क्या कृष्णलेश्यी पृथ्वीकायिक कृष्णलेश्यी पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है ? क्या कृष्णलेश्यी होकर उद्‌वर्तन करता है ?

जिस लेश्या में उत्पन्न होता है, क्या उसी लेश्या में उद्‌वर्तन करता है ?

उ. हां, गौतम ! कृष्णलेश्यी पृथ्वीकायिक कृष्णलेश्यी पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है, कदाचित् कृष्णलेश्यी होकर उद्‌वर्तन करता है।

कदाचित् नीललेश्यी होकर उद्‌वर्तन करता है,

कदाचित् कापोतलेश्यी होकर उद्‌वर्तन करता है।

कदाचित् जिस लेश्या में उत्पन्न होता है, उसी लेश्या में उद्‌वर्तन करता है।

इसी प्रकार नीललेश्या और कापोतलेश्या वालों में भी (उत्पाद और उद्‌वर्तन का) कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! वास्तव में क्या तेजोलेश्यी पृथ्वीकायिक तेजोलेश्यी पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है ?

क्या तेजोलेश्यी होकर उद्‌वर्तन करता है ?

जिस लेश्या में उत्पन्न होता है, क्या उसी लेश्या में उद्‌वर्तन करता है ?

उ. हां, गौतम ! तेजोलेश्यी पृथ्वीकायिक तेजोलेश्यी पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है,

कदाचित् कृष्णलेश्यी होकर उद्‌वर्तन करता है।

कदाचित् नीललेश्यी होकर उद्‌वर्तन करता है,

कदाचित् कापोतलेश्यी होकर उद्‌वर्तन करता है,

तेजोलेश्या से युक्त होकर उत्पन्न होता है, किन्तु तेजोलेश्या से युक्त होकर उद्‌वर्तन नहीं करता है।

दं. १३, १६ इसी प्रकार अप्कायिकों और वनस्पतिकायिकों (के उत्पाद और उद्‌वर्तन) का कथन करना चाहिए।

दं. १४-१५ इसी प्रकार तेजस्कायिकों और वायुकायिकों (के भी उत्पाद और उद्‌वर्तन) का कथन करना चाहिए।

विशेष–इनमें तेजोलेश्या नहीं होती है।

दं. १७-१९ इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियों का भी तीनों लेश्याओं में (उत्पाद-उद्‌वर्तन) जानना चाहिए।

दं. २०-२१ पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों और मनुष्यों का कथन जिस प्रकार पृथ्वीकायिकों के प्रारम्भ की तीन लेश्याओं में कहा है उसी प्रकार छहों लेश्याओं में भी कथन करना चाहिये।

विशेष–छहों लेश्याओं का क्रम बदलना चाहिए।

दं. २२ वाणव्यन्तरों का (उत्पाद और उद्‌वर्तन) असुरकुमारों के समान जानना चाहिए।

प. दं. २३. से नूणं भंते ! तेउलेस्से जोइसिए तेउलेस्सेसु जोइसिएसु उववज्जइ ?

उ. गोयमा ! जहेव असुरकुमारा।

दं. २४ एवं वेमाणिया वि।

णवरं–दोण्ह वि चयंतीति अभिलावो।

–पण्ण. प. १७, उ. ३, सु. १२०१-१२०७

प्र. दं. २३. भंते ! वास्तव में क्या तेजोलेश्यी ज्योतिष्क देव तेजोलेश्यी ज्योतिष्क देवों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! (तेजोलेश्यी) असुरकुमारों के समान कहना चाहिए।

दं. २४. इसी प्रकार वैमानिक देवों के (उत्पाद और उद्वर्तन के) विषय में भी कहना चाहिए।

विशेष–दोनों प्रकार के देवों का च्यवन होता है ऐसा अभिलाप करना चाहिए।

३२. सलेस्सेसु चउवीसदंडएसु अविभागेणं उववाय-उव्वट्टण परूवणं–

प. दं. १. से नूणं भंते ! कण्हलेस्से णीललेस्से काउलेस्से णेरइए कण्हलेस्सेसु णीललेस्सेसु काउलेस्सेसु णेरइएसु उववज्जइ ? कण्हलेस्से णीललेस्से काउलेस्से उव्वट्टइ, जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ ?

उ. हंता, गोयमा ! कण्हलेस्स णीललेस्स काउलेस्सेसु उववज्जइ,

जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ।

प. दं. २-११ से नूणं भंते ! कण्हलेस्से जाव तेउलेस्से असुरकुमारे, कण्हलेस्सेसु जाव तेउलेस्सेसु असुरकुमारेसु उववज्जइ ?

कण्हलेस्से णीललेस्से काउलेस्से तेउलेस्से उव्वट्टइ

जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ ?

उ. गोयमा ! एवं जहेव नेरइए तहा असुरकुमारे वि जाव थणियकुमारे वि।

प. दं. १२ से नूणं भंते ! कण्हलेस्से जाव तेउलेस्से पुढविक्काइए कण्हलेस्सेसु जाव तेउलेस्सेसु पुढविकाइएसु उववज्जइ ? कण्हलेस्से जाव तेउलेस्से उव्वट्टइ जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ ?

उ. हंता, गोयमा ! कण्हलेस्से जाव तेउलेस्से पुढविक्काइए कण्हलेस्सेसु जाव तेउलेस्सेसु पुढविक्काइएसु उववज्जइ,

सिय कण्हलेस्से उव्वट्टइ।

सिय णीललेस्से उव्वट्टइ,

सिय काउलेस्से उव्वट्टइ,

सिय जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ,

तेउलेस्से उववज्जइ, णो चेव णं तेउलेस्से उव्वट्टइ।

दं. १३, १६ एवं आउक्काइया वणस्सइकाइया वि भाणियव्वा।

३२. सलेश्य चौवीस दण्डकों में अविभाग द्वारा उत्पाद-उद्वर्तन का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! वास्तव में क्या कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वाला नैरयिक कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले और कापोतलेश्या वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है ? क्या वह कृष्णलेश्या, नीललेश्या तथा कापोतलेश्या वाला होकर ही उद्वर्तन करता है (अर्थात्) जिस लेश्या में उत्पन्न होता है क्या उसी लेश्या में मरण करता है ?

उ. हां, गौतम ! कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वाले नारकों में उत्पन्न होता है।

जिस लेश्या में उत्पन्न होता है, उसी लेश्या में उद्वर्तन करता है।

प्र. दं. २-११ भंते ! वास्तव में क्या कृष्णलेश्या यावत् तेजोलेश्या वाला असुरकुमार कृष्णलेश्या यावत् तेजोलेश्या वाले असुरकुमारों में उत्पन्न होता है,

क्या वह कृष्णलेश्या नील लेश्या कापोत लेश्या वाला होकर ही उद्वर्तन करता है।

जिस लेश्या में उत्पन्न होता है, क्या उसी लेश्या में उद्वर्तन करता है ?

उ. हां, गौतम ! जैसे नैरयिक के उत्पाद-उद्वर्तन के सम्बन्ध म कहा, वैसे ही असुरकुमार से स्तनितकुमार पर्यन्त भी कहना चाहिए।

प्र. दं. १२. भन्ते ! वास्तव में क्या कृष्णलेश्या यावत् तेजोलेश्या वाला पृथ्वीकायिक कृष्णलेश्या यावत् तेजोलेश्या वाले पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होता है, क्या वह कृष्णलेश्या यावत् तेजोलेश्या वाला होकर ही उद्वर्तन करता है, जिस लेश्या में उत्पन्न होता है क्या उसी लेश्या में उद्वर्तन करता है ?

उ. हां, गौतम ! कृष्णलेश्यी यावत् तेजोलेश्यी पृथ्वीकायिक कृष्ण-लेश्या यावत् तेजोलेश्या वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है,

कदाचित् कृष्णलेश्यी होकर उद्वर्तन करता है,

कदाचित् नीललेश्यी होकर उद्वर्तन करता है,

कदाचित् कापोतलेश्यी होकर उद्वर्तन करता है,

कदाचित् जिस लेश्या में उत्पन्न होता है, उसी लेश्या में उद्वर्तन करता है।

तेजोलेश्या से युक्त होकर उत्पन्न तो होता है, किन्तु तेजोलेश्या वाला होकर उद्वर्तन नहीं करता है।

दं. १३, १६. इसी प्रकार अप्कायिकों और वनस्पतिकायिकों के विषय में भी कहना चाहिए।

प. दं. १४ से नूणं भंते ! कण्हलेस्से णीललेस्से काउलेस्से तेउक्काइए, कण्हलेस्सेसु णीललेस्सेसु काउलेस्सेसु तेउक्काइएसु उववज्जइ? कण्हलेसे णीललेसे काउलेसे उव्वट्टइ? जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ?

उ. हंता गोयमा ! कण्हलेस्से णीललेस्से काउलेस्से तेउक्काइए कण्हलेसेसु णीललेसेसु काउलेसेसु तेउक्काइएसु उववज्जइ,

सिय कण्हलेसे उव्वट्टइ,

सिय णीललेसे उव्वट्टइ,

सिय काउलेसे उव्वट्टइ,

सिय जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ।

दं. १५, १७-१९ एवं वाउक्काइया, बेइंदिय, तेइंदिय, चउरिंदिया वि भाणियव्वा।

प. दं. २० से नूणं भंते ! कण्हलेसे जाव सुक्कलेसे पंचेंदियतिरिक्खजोणिए, कण्हलेसेसु जाव सुक्कलेसेसु पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जइ? कण्हलेसेसु उववट्टइ जाव सुक्कलेसेसु उव्वट्टइ जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ?

उ. हंता गोयमा ! कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से पंचेंदियतिरिक्खजोणिए, कण्हलेस्सेसु जाव सुक्कलेस्सेसु पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जइ,

सिय कण्हलेस्से उव्वट्टइ जाव सिय सुक्कलेस्से उव्वट्टइ,

सिय जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उव्वट्टइ।

दं. २१ एवं मणूसे वि।

दं. २२ वाणमंतरे जहा असुरकुमारे।

दं. २३-२४ जोइसिय-वेमाणिया वि एवं चेव।

णवरं–जस्स जल्लेसा, तस्स तल्लेसा,

दोण्ह वि चयणं ति भाणियव्वं।[1]

–पण्ण. प. १७, उ. ३, सु. १२०८-१२१४

प्र. दं. १४. भंते ! वास्तव में क्या कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वाला तेजस्कायिक, कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वाले तेजस्कायिकों में उत्पन्न होता है? क्या कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वाला होकर उद्वर्तन करता है जिस लेश्या में उत्पन्न होता है, क्या उसी लेश्या में उद्वर्तन करता है?

उ. हां, गौतम ! कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वाला तेजस्कायिक, कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वाले तेजस्कायिकों में उत्पन्न होता है,

कदाचित् कृष्णलेश्यी होकर उद्वर्तन करता है,

कदाचित् नीललेश्यी होकर उद्वर्तन करता है,

कदाचित् कापोतलेश्यी होकर उद्वर्तन करता है,

कदाचित् जिस लेश्या में उत्पन्न होता है, उसी लेश्या में उद्वर्तन करता है।

दं. १५, १७-१९ इसी प्रकार वायुकायिक तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के विषय में कहना चाहिए।

प्र. दं. २०. भंते ! वास्तव में क्या कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होता है? क्या कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या में उद्वर्तन करता है? (अर्थात्) जिस लेश्या में उत्पन्न होता है क्या उसी लेश्या में उद्वर्तन करता है?

उ. हां, गौतम ! कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या वाले पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होता है।

कदाचित् कृष्णलेश्यी होकर उद्वर्तन करता है यावत् कदाचित् शुक्ललेश्यी होकर उद्वर्तन करता है,

कदाचित् जिस लेश्या में उत्पन्न होता है, उसी लेश्या में उद्वर्तन करता है।

दं. २१ इसी प्रकार मनुष्य का भी उत्पाद-उद्वर्तन कहना चाहिए।

दं. २२ वाणव्यन्तर का उत्पाद-उद्वर्तन असुरकुमार के समान कहना चाहिए।

दं. २३-२४ ज्योतिष्क और वैमानिक का उत्पाद-उद्वर्तन इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेष–जिसमें जितनी लेश्याएं हों, उतनी लेश्याओं का कथन करना चाहिए।

दोनों के लिए उद्वर्तन के स्थान में च्यवन शब्द कहना चाहिए।

३३. सलेस्स जीवाणं कया परभवगमण परूवणं–

लेसाहिं सव्वाहिं पढमे, समयम्मि परिणयाहिं तु।
न वि कस्सवि उव्वाओ, परे भवे अत्थि जीवस्स ॥
लेसाहिं सव्वाहिं चरमे, समयम्मि परिणयाहिं तु।
न वि कस्सवि उववाओ, परे भवे अत्थि जीवस्स ॥

३३. सलेश्य जीवों के परभव गमन का प्ररूपण–

प्रथम समय में परिणत सभी लेश्याओं से कोई भी जीव दूसरे भव में उत्पन्न नहीं होता है।

अन्तिम समय में परिणत सभी लेश्याओं से भी कोई जीव दूसरे भव में उत्पन्न नहीं होता है।

[1] विया. स. ४, उ. ९, सु. १

अन्तमुहुत्तम्मि गए, अन्तमुहुत्तम्मि सेसए चेव।
लेसाहिं परिणयाहिं जीवा, गच्छन्ति परलोयं ॥
—उत्त. अ. ३४, गा. ६०[1]

[illegible] अन्तर्मुहूर्त [illegible]
और अन्तर्मुहूर्त [illegible]
[illegible]

३४. लेस्साणं पडुच्च गब्भ पजणण परूवणं—

प. कण्हलेस्से णं भंते ! मणूसे कण्हलेस्सं गब्भं जणेज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! जणेज्जा।

प. कण्हलेस्से णं भंते ! मणूसे णीललेस्सं गब्भं जणेज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! जणेज्जा।
एवं काउलेस्सं तेउलेस्सं पम्हलेस्सं सुक्कलेस्सं छप्पि आलावगा भाणियव्वा।

एवं णीललेसेण वि काउलेसेण वि तेउलेसेण वि पम्हलेसेण वि सुक्कलेसेण वि एवं एए छत्तीसं आलावगा।

प. कण्हलेस्सा णं भंते ! इत्थिया कण्हलेस्सं गब्भं जणेज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! जणेज्जा,
एवं एए वि छत्तीसं आलावगा।

प. कण्हलेस्से णं भंते ! मणूसे कण्हलेसाए इत्थियाए कण्हलेस्सं गब्भं जणेज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! जणेज्जा,
एवं एए वि छत्तीसं आलावगा।

प. कम्मभूमयकण्हलेस्से णं भंते ! मणुस्से कण्हलेस्साए इत्थियाए कण्हलेस्सं गब्भं जणेज्जा ?

उ. हंता गोयमा ! जणेज्जा,
एवं एए वि छत्तीसं आलावगा।

प. अकम्मभूमयकण्हलेस्से णं भंते ! मणूसे अकम्मभूमयकण्हलेस्साए इत्थियाए अकम्मभूमय-कण्हलेस्सं गब्भं जणेज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! जणेज्जा,
णवरं—चउसु लेसासु सोलस आलावगा
एवं अंतरदीवगा वि भाणियव्वा।
—पण्ण. प. १७, उ. ६, सु. १२५८

३४. लेश्याओं की अपेक्षा गर्भ उत्पन्न का प्ररूपण—

प्र. भंते ! क्या कृष्णलेश्या वाला मनुष्य कृष्णलेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करता है ?

उ. हां, गौतम ! वह उत्पन्न करता है।

प्र. भंते ! क्या कृष्णलेश्या वाला मनुष्य नीललेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करता है ?

उ. हां, गौतम ! वह उत्पन्न करता है।
इसी प्रकार कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करने के विषय में छह आलापक कहने चाहिए।
इसी प्रकार नीललेश्या वाले, कापोतलेश्या वाले, तेजोलेश्या वाले, पद्मलेश्या वाले और शुक्ललेश्या वाले प्रत्येक मनुष्य के छः छः आलापक कहने चाहिए और इस प्रकार ये सब छत्तीस आलापक हुए।

प्र. भंते ! क्या कृष्णलेश्या वाली स्त्री कृष्णलेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करती है ?

उ. हां, गौतम ! उत्पन्न करती है।
इस प्रकार ये भी छत्तीस आलापक कहने चाहिए।

प्र. भंते ! कृष्णलेश्या वाला मनुष्य क्या कृष्णलेश्या वाली स्त्री से कृष्णलेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करता है ?

उ. हां, गौतम ! वह उत्पन्न करता है।
इस प्रकार ये भी छत्तीस आलापक हुए।

प्र. भंते ! कर्मभूमिक कृष्णलेश्या वाला मनुष्य कृष्णलेश्या वाली स्त्री से कृष्णलेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करता है ?

उ. हां, गौतम ! वह उत्पन्न करता है।
इस प्रकार ये भी छत्तीस आलापक हुए।

प्र. भंते ! अकर्मभूमिक कृष्णलेश्या वाला मनुष्य अकर्मभूमिक कृष्णलेश्या वाली स्त्री से अकर्मभूमिक कृष्णलेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करता है ?

उ. हां, गौतम ! वह उत्पन्न करता है।
विशेष—चार लेश्याओं के कुल सोलह आलापक होते हैं।
इसी प्रकार अन्तरद्वीपज के भी सोलह आलापक कहने चाहिए।

३५. लेस्सं पडुच्च चउवीस दंडएसु अप्प-महाकम्मत्त परूवणं—

प. दं. १. सिय भंते ! कण्हलेस्से नेरइए अप्पकम्मतराए, नीललेस्से नेरइए महाकम्मतराए ?

उ. हंता, गोयमा ! सिया।

३५. लेश्याओं की अपेक्षा चौवीसदंडकों में अल्प-महाकर्मत्व का प्ररूपणा—

प्र. दं. १. भंते ! क्या कृष्णलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्मवाला और नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्मवाला होता है ?

उ. हां, गौतम ! कदाचित् ऐसा होता है।

१. (क) विया. स. १९, उ. २, सु. १ (ख) सम. सु. १५३ (३)

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"सिय कण्हलेस्से नेरइए अप्पकम्मतराए, नीललेस्से नेरइए महाकम्मतराए ?"

उ. गोयमा ! ठिइं पडुच्च,
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"सिय कण्हलेस्से नेरइए अप्पकम्मतराए, नीललेस्से नेरइए महाकम्मतराए।"

प. सिय भंते ! नीललेस्से नेरइए अप्पकम्मतराए, काउलेस्से नेरइए महाकम्मतराए ?

उ. हंता, गोयमा ! सिया।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"सिय नीललेस्से नेरइए अप्पकम्मतराए, काउलेस्से नेरइए महाकम्मतराए ?

उ. गोयमा ! ठिइं पडुच्च,
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"सिय नीललेस्से नेरइए अप्पकम्मतराए काउलेस्से नेरइए महाकम्मतराए।"

दं. २. एवं असुरकुमारे वि.
णवरं–तेउलेस्सा अब्भहिया,
दं. ३–२४. एवं जाव वेमाणिया,
जस्स जइ लेस्साओ तस्स तइ भाणियव्वाओ,

जोइसियस्स न भण्णइ, जोइसिएसु एगा तेउलेस्सा तत्थ नत्थि अप्पकम्म-महाकम्मपरूवणं,

प. सिय भंते ! पम्हलेस्से वेमाणिए अप्पकम्मतराए, सुक्कलेस्से वेमाणिए महाकम्मतराए ?

उ. हंता, गोयमा ! सिया।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"पम्हलेस्से वेमाणिए अप्पकम्मतराए सुक्कलेस्से वेमाणिए महाकम्मतराए ?"

उ. गोयमा ! ठिइं पडुच्च,
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"पम्हलेस्से वेमाणिए अप्पकम्मतराए, सुक्कलेस्से वेमाणिए महाकम्मतराए,

सेसं जहा नेरइयस्स अप्पकम्मतराए जाव महाकम्मतराए।
–विया. स. ७, उ. ३, सु. ६-९

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"कृष्णलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्मवाला होता है और नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्मवाला होता है ?"

उ. गौतम ! स्थिति की अपेक्षा से ऐसा कहा जाता है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"कृष्णलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्मवाला होता है और नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्मवाला होता है।"

प्र. भंते ! क्या नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्मवाला होता है और कापोतलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्मवाला होता है ?

उ. हां, गौतम ! कदाचित् ऐसा होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्मवाला होता है और कापोतलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्मवाला होता है ?"

उ. गौतम ! स्थिति की अपेक्षा ऐसा कहा जाता है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्मवाला होता है और कापोतलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्मवाला होता है।

दं. २. इसी प्रकार असुरकुमार के विषय में भी कहना चाहिए।
विशेष–उनमें एक तेजोलेश्या अधिक होती है।
दं. ३–२४. इसी प्रकार वैमानिक देवों पर्यन्त कहना चाहिए।
जिसमें जितनी लेश्याएँ हों, उसकी उतनी लेश्याएँ कहनी चाहिए।
ज्योतिष्क देवों के दण्डक का कथन नहीं करना चाहिए। क्योंकि ज्योतिष्कों में एक तेजोलेश्या ही है इसलिए उनमें अल्पकर्म महाकर्म की प्ररूपणा नहीं है।

प्र. भंते ! क्या पद्मलेश्या वाला वैमानिक कदाचित् अल्पकर्म वाला और शुक्ललेश्या वाला वैमानिक कदाचित् महाकर्म वाला होता है ?

उ. हां, गौतम ! कदाचित् ऐसा होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि
"पद्मलेश्या वाला वैमानिक कदाचित् अल्प कर्म वाला होता है और शुक्ललेश्या वाला वैमानिक कदाचित् महाकर्म वाला होता है ?

उ. गौतम ! स्थिति की अपेक्षा ऐसा कहा जाता है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"पद्मलेश्या वाला वैमानिक कदाचित् अल्प कर्म वाला होता है और शुक्ललेश्या वाला वैमानिक कदाचित् महाकर्म वाला होता है।"
शेष नैरयिक के समान अल्पकर्म वाला यावत् महाकर्म वाला होता है ऐसा कहना चाहिए।

३६. लेसाणुसारेणं जीवाणं नाणभेया–

प. कण्हलेस्से णं भंते ! जीवे कइसु णाणेसु होज्जा ?

उ. गोयमा ! दोसु वा, तिसु वा, चउसु वा णाणेसु होज्जा।

दोसु होमाणे-आभिणिवोहिय, सुयणाणेसु होज्जा,

तिसु होमाणे–आभिणिवोहिय-सुयणाण-ओहिणाणेसु होज्जा,

अहवा तिसु होमाणे – आभिणिवोहिय - सुयणाण - मणपज्जवणाणेसु होज्जा,

चउसु होमाणे-आभिणिवोहिय-णाण-सुयणाण-ओहिणाण- मणपज्जवणाणेसु होज्जा

एवं जाव पम्हलेस्से।

प. सुक्कलेस्सेणं भंते ! जीवे कइसु णाणेसु होज्जा ?

उ. गोयमा ! दोसु वा, तिसु वा, चउसु वा, एगम्मि वा होज्जा,

दोसु होमाणे-आभिणिवोहिय-सुयणाणेसु होज्जा,

एवं जहेव कण्हलेस्साणं तहेव भाणियव्वं जाव चउहिं।

एगम्मि होमाणे एगम्मि केवलणाणे होज्जा।

–पण्ण. प. १७, उ. ३, सु. १२१६–१२१७

३६. लेश्या के अनुसार जीवों में ज्ञान के भेद–

प्र. भंते ! कृष्णलेश्या वाले जीव में कितने ज्ञान होते हैं ?

उ. गौतम ! दो, तीन या चार ज्ञान होते हैं।

यदि दो ज्ञान हों तो आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान होते हैं।

यदि तीन ज्ञान हों तो आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान होते हैं।

अथवा तीन ज्ञान हों तो आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान और मनःपर्यवज्ञान होते हैं।

यदि चार ज्ञान हों तो आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान होते हैं।

इसी प्रकार पद्मलेश्या पर्यन्त कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! शुक्ललेश्या वाले जीव में कितने ज्ञान होते हैं ?

उ. गौतम ! दो, तीन, चार या एक ज्ञान होता है।

यदि दो ज्ञान हों तो आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान होते हैं

इसी प्रकार जैसे कृष्णलेश्या वालों का कथन किया उसी प्रकार

चार ज्ञान तक कहना चाहिए।

यदि एक ज्ञान हो तो एक केवलज्ञान ही होता है।

३७. लेसाणुसारेणं नेरइयाणं ओहिनाण खेत्तं–

प. कण्हलेस्से णं भंते ! णेरइए कण्हलेस्से णेरइयं पणिहाए ओहिणा सव्वओ समंता समभिलोएमाणे-समभिलोएमाणे केवइयं खेत्तं जाणइ, केवइयं खेत्तं पासइ ?

उ. गोयमा ! णो बहुयं खेत्तं जाणइ, णो बहुयं खेत्तं पासइ, णो दूरं खेत्तं जाणइ, णो दूरं खेत्तं पासइ, इत्तिरियमेव खेत्तं जाणइ, इत्तिरियमेव खेत्तं पासइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"कण्हलेस्से णं णेरइए णो बहुयं खेत्तं जाणइ जाव इत्तिरियमेव खेत्तं पासइ ?"

उ. गोयमा ! से जहाणामए केइ पुरिसे बहुसमरमणिज्जंसि भूमिभागंसि ठिच्चा सव्वओ समंता समभिलोएज्जा,

तए णं से पुरि से धरणितलगयं पुरिसं पणिहाए सव्वओ समंता समभिलोएमाणे-समभिलोएमाणे णो बहुयं खेत्तं जाणइ, णो बहुयं खेत्तं पासइ, इत्तरियमेव खेत्तं जाणइ, इत्तिरियमेव खेत्तं पासइ,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"कण्हलेस्से णं णेरइए णो बहुयं खेत्तं जाणइ जाव इत्तिरियमेव खेत्तं पासइ।"

प. णीललेसे णं भंते ! णेरइए कण्हलेस्सं णेरइयं पणिहाय ओहिणा सव्वओ समंता समभिलोएमाणे-समभिलोएमाणे केवइयं खेत्तं जाणइ, केवइयं खेत्तं पासइ ?

उ. गोयमा ! वहुतरागं खेत्तं जाणइ, बहुतरागं खेत्तं पासइ, दूरतरागं खेत्तं जाणइ, दूरतरागं खेत्तं पासइ, वितिमिरतरागं खेत्तं जाणइ, वितिमिरतरागं खेत्तं पासइ, विसुद्धतरागं खेत्तं जाणइ, विसुद्धतरागं खेत्तं पासइ।

३७. लेश्या के अनुसार नैरयिकों में अवधिज्ञान क्षेत्र–

प्र. भंते ! कृष्णलेश्यी नैरयिक कृष्णलेश्यी अन्य नैरयिक की अपेक्षा अवधिज्ञान के द्वारा चारों ओर अवलोकन करता हुआ कितने क्षेत्र को जानता और देखता है ?

उ. गौतम ! न अधिक क्षेत्र को जानता है और न अधिक क्षेत्र को देखता है, न दूरवर्ती क्षेत्र को जानता है और न दूरवर्ती क्षेत्र को देखता है वह थोड़े-से क्षेत्र को जानता है और थोड़े से क्षेत्र को देखता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"कृष्णलेश्यी नैरयिक अधिक क्षेत्र को नहीं जानता है याव थोड़े से ही क्षेत्र को देख पाता है ?"

उ. गौतम ! जैसे कोई पुरुष अत्यन्त सम एवं रमणीय भू-भाग प स्थित होकर चारों ओर देखे,

तो वह पुरुष भूतल पर स्थित पुरुष की अपेक्षा से स दिशाओं-विदिशाओं में वार-वार देखता हुआ न अधिक क्षे को जानता है और न अधिक क्षेत्र को देख पाता है यावत् थो से क्षेत्र को जानता है और थोड़े से क्षेत्र को देख पाता है।

इस कारण से, गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"कृष्णलेश्यी नैरयिक अधिक क्षेत्र को नहीं जानता है याव थोड़े से ही क्षेत्र को देख पाता है।"

प्र. भंते ! नीललेश्या वाला नारक कृष्णलेश्या वाले नारक अपेक्षा चारों ओर अवधि ज्ञान के द्वारा देखता हुआ कित क्षेत्र को जानता और कितने क्षेत्र को देखता है ?

उ. गौतम ! अत्यधिक क्षेत्र को जानता है और अत्यधिक क्षेत्र देखता है, बहुत दूर वाले क्षेत्र को जानता है और बहुत वाले क्षेत्र को देखता है, स्पष्ट रूप से क्षेत्र को जानता है अ स्पष्ट रूप से क्षेत्र को देखता है, विशुद्ध रूप से क्षेत्र को जान है और विशुद्ध रूप से क्षेत्र को देखता है।

प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–

"णीललेस्से णं णेरइए कण्हलेस्सं णेरइयं पणिहाय **जाव** विसुद्धतरागं खेत्तं पासइ?"

उ. गोयमा ! से जहाणामए केइ पुरिसे बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ पव्वयं दुरूहइ, दुरूहित्ता सव्वओ समंता समभिलोएज्जा, तए णं से पुरिसे धरणितल-गयं पुरिसं पणिहाय सव्वओ समंता समभिलोएमाणे-समभिलोएमाणे बहुतरागं खेत्तं जाणइ **जाव** विसुद्धतरागं खेत्तं पासइ,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"णीललेस्से णेरइए कण्हलेस्सं णेरइयं पणिहाय **जाव** विसुद्धतरागं खेत्तं पासइ।"

प. काउलेसे णं भंते ! णेरइए णीललेस्सं णेरइयं ओहिणा सव्वओ समंता समभिलोएमाणे–समभिलोएमाणे केवइयं खेत्तं जाणइ, केवइयं खेत्तं पासइ?

उ. गोयमा ! बहुतरागं खेत्तं जाणइ **जाव** विसुद्धतरागं खेत्तं पासइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"काउलेस्से णं णेरइए णीललेस्सं णेरइयं पणिहाय **जाव** विसुद्धतरागं खेत्तं पासइ?

उ. गोयमा ! से जहाणामए केइ पुरिसे बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ पव्वयं दुरूहइ, दुरूहित्ता रुक्खं दुरूहइ दुरूहित्ता दोण्णि पादे उच्चावियं सव्वओ समंता समभिलोएज्जा, तए णं से पुरिसो पव्वयगयं धरणितलगयं च पुरिसं पणिहाय सव्वओ समंता समभिलोएमाणे-समभिलोएमाणे बहुतरागं खेत्तं जाणइ **जाव** विसुद्धतरागं खेत्तं पासइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"काउलेस्से णं णेरइए णीललेस्सं णेरइयं पणिहाय **जाव** विसुद्धतरागं खेत्तं पासइ।" *–पण्ण. प. १७, उ. ३, सु. १२१५*

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"नीललेश्या वाला नारक कृष्णलेश्या वाले नारक की अपेक्षा **यावत्** विशुद्ध रूप से क्षेत्र को देखता है?"

उ. गौतम ! जैसे कोई पुरुष अत्यन्त सम, रमणीय भूमिभाग से पर्वत पर चढ़ता है और पर्वत पर चढ़ कर चारों ओर देखे तो वह पुरुष भूतल पर स्थित पुरुष की अपेक्षा चारों ओर अवलोकन करता हुआ अत्यधिक क्षेत्र को जानता है **यावत्** विशुद्ध रूप से क्षेत्र को देखता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"नीललेश्या वाला नारक, कृष्णलेश्या वाले नारक की अपेक्षा **यावत्** विशुद्धरूप से क्षेत्र को देखता है।"

प्र. भंते ! कापोतलेश्या वाला नारक नीललेश्या वाले नारक की अपेक्षा चारों ओर से अवलोकन करता हुआ अवधिज्ञान द्वारा कितने क्षेत्र को जानता है और कितने क्षेत्र को देखता है?

उ. गौतम ! अत्यधिक क्षेत्र को जानता है **यावत्** विशुद्ध रूप से क्षेत्र को देखता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"कापोतलेश्या वाला नारक नीललेश्या वाले नारक की अपेक्षा **यावत्** विशुद्ध रूप से क्षेत्र को जानता देखता है?"

उ. गौतम ! जैसे कोई पुरुष अत्यन्त सम रमणीय भू भाग से पर्वत पर चढ़ता है और पर्वत पर चढ़कर वृक्ष पर चढ़ता है, तदनन्तर वृक्ष पर दोनों पैरों को ऊंचा करके चारों ओर देखे तो वह पुरुष पर्वत पर और भूतल पर स्थित पुरुष की अपेक्षा चारों ओर अवलोकन करता हुआ अत्यधिक क्षेत्र को जानता है **यावत्** विशुद्ध रूप से क्षेत्र को देखता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"कापोतलेश्या वाला नारक नीललेश्या वाले नारक की अपेक्षा **यावत्** विशुद्ध रूप से क्षेत्र को देखता है।"

३८. अविसुद्ध-विसुद्धलेस्से अणगारस्स जाणण-पासणं–

प. (१) अविसुद्धलेस्से णं भंते ! अणगारे असमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. (२) अविसुद्धलेस्से णं भंते ! अणगारे असमोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ३. अविसुद्धलेस्से णं भंते ! अणगारे समोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ४. अविसुद्धलेस्से णं भंते ! अणगारे समोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ?

३८. अविशुद्ध-विशुद्ध लेश्या वाले अनगार का जानना देखना–

प्र. १. भंते ! अविशुद्धलेश्या वाला अनगार उपयोग रहित आत्मा से अविशुद्ध लेश्यावाले देव, देवी और अनगार को जानता देखता है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. २. भंते ! अविशुद्धलेश्या वाला अनगार उपयोग रहित आत्मा से विशुद्धलेश्या वाले देव और देवी अनगार को जानता-देखता है?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

प्र. ३. भंते ! अविशुद्ध लेश्या वाला अनगार उपयोग सहित आत्मा से अविशुद्ध लेश्या वाले देव-देवी और अनगार को जानता देखता है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. ४. भंते ! अविशुद्धलेश्या वाला अनगार उपयोग सहित आत्मा से विशुद्ध लेश्या वाले देव-देवी और अनगार को जानता देखता है?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ५. अविसुद्धलेस्से णं भंते ! अणगारे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ६. अविसुद्धलेस्से णं भंते ! अणगारे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ७. विसुद्धलेस्से णं भंते ! अणगारे असमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ।

प. ८. विसुद्धलेस्से णं भंते ? अणगारे असमोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ।

प. ९. विसुद्धलेस्से णं भंते ! अणगारे समोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ।

प. १०. विसुद्धलेस्से णं भंते ! अणगारे समोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ।

प. ११. विसुद्धलेस्से णं भंते ! अणगारे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ।

प. १२. विसुद्धलेस्से णं भंते ! अणगारे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ। *–जीवा. पडि. ३, सु. १०३*

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. ५. भंते ! अविशुद्धलेश्या वाला अनगार उपयोग सहित या रहित आत्मा से अविशुद्ध लेश्यावाले देव देवी और अनगार को जानता देखता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. ६. भंते ! अविशुद्धलेश्या वाला अनगार उपयोग सहित या रहित आत्मा से विशुद्धलेश्या वाले देव, देवी और अनगार को जानता देखता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. ७. भंते ! विशुद्धलेश्या वाला अनगार उपयोग रहित आत्मा से अविशुद्ध लेश्या वाले देव-देवी और अनगार को जानता देखता है ?

उ. हां, गौतम ! वह जानता देखता है।

प्र. ८. भंते ! विशुद्धलेश्या वाला अनगार उपयोग रहित आत्मा से विशुद्धलेश्या वाले देव-देवी और अनगार को जानता देखता है ?

उ. हां, गौतम ! वह जानता देखता है।

प्र. ९. भंते ! विशुद्धलेश्या वाला अनगार उपयोग सहित आत्मा से अविशुद्धलेश्या वाले देव-देवी और अनगार को जानता देखता है ?

उ. हां, गौतम ! वह जानता देखता है।

प्र. १०. भंते ! विशुद्धलेश्या वाला अणगार उपयोग सहित आत्मा से विशुद्धलेश्या वाले देव-देवी और अणगार को जानता-देखता है ?

उ. हां, गौतम ! वह जानता-देखता है।

प्र. ११. भंते ! विशुद्धलेश्या वाला अणगार उपयोग सहित या रहित आत्मा से अविशुद्ध लेश्या वाले देव-देवी और अणगार को जानता देखता है ?

उ. हां, गौतम ! वह जानता-देखता है।

प्र. १२. भंते ! विशुद्धलेश्या वाला अणगार उपयोग सहित या रहित आत्मा से विशुद्ध लेश्या वाले देव-देवी और अणगार को जानता देखता है ?

उ. हां, गौतम ! वह जानता-देखता है।

३९. अणगारेण स-पर कम्मलेसस्स जाणण-पासणं–

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा अप्पणो कम्मलेस्सं न जाणइ न पासइ, तं पुण जीवं सरूविं सकम्मलेस्सं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! अणगारे णं भावियप्पा अप्पणो कम्मलेस्सं न जाणइ न पासइ, तं पुण जीवं सरूविं सकम्मलेस्सं जाणइ पासइ। *–विया. स. १४, उ. ९, सु. १*

३९. अणगार द्वारा स्व-पर कर्मलेश्या का जानना-देखना–

प्र. भंते ! अपनी कर्मलेश्या को नहीं जानने देखने वाले भावितात्मा अणगार क्या सरूपी (सशरीर) और कर्मलेश्या सहित जीव को जानता देखता है ?

उ. हां, गौतम ! भावितात्मा अणगार, जो अपनी कर्मलेश्या को नहीं जानता देखता, वह सशरीर एवं कर्मलेश्या को जानता देखता है।

४०. अविसुद्ध-विसुद्धलेसस्स देवस्स जाणण-पासणं–

प. १. अविसुद्धलेसे णं भंते ! देवे असमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं देविं अन्नयरं जाणइ पासइ ?

४०. अविशुद्ध-विशुद्ध लेश्यायुक्त देवों को जानना-देखना–

प्र. (१) भंते ! क्या अविशुद्ध लेश्या वाला देव उपयोग रहित आत्मा से अविशुद्ध लेश्यावाले देव देवी या अन्यतर (दोनों से किसी एक) को जानता-देखता है ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. २. अविसुद्धलेसे णं भंते ! देवे असमोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेसं देवं देविं अन्नयरं जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ३. अविसुद्धलेसे णं भंते ! देवे समोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं देविं अन्नयरं जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ४. अविसुद्धलेसे णं भंते ! देवे समोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेसं देवं देविं अन्नयरं जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ५. अविसुद्धलेसे णं भंते ! देवे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं देविं अन्नयरं जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ६. अविसुद्धलेसे णं भंते ! देवे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेसं देवं देविं अण्णयरं जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ७. विसुद्धलेसे णं भंते ! देवे असमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं देविं अण्णयरं जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ८. विसुद्धलेसे णं भंते ! देवे असमोहएणं विसुद्धलेसं देवं देविं अण्णयरं जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ९. विसुद्धलेसे णं भंते ! देवे समोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं देविं अण्णयरं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ।

प. १०. विसुद्धलेसे णं भंते ! देवे समोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेसं देवं देविं अण्णयरं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ।

प. ११. विसुद्धलेसे णं भंते ! देवे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं देविं अण्णयरं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ।

प. १२. विसुद्धलेसे णं भंते ! देवे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेसं देवं देविं अण्णयरं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ।

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

प्र. २. भंते ! क्या अविशुद्ध लेश्या वाला देव उपयोग रहित आत्मा से विशुद्ध लेश्या वाले देव-देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

प्र. ३. भंते ! क्या अविशुद्ध लेश्यावाला देव उपयोग सहित आत्मा से अविशुद्ध लेश्यावाले देव-देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

प्र. ४. भंते ! क्या अविशुद्ध लेश्यावाला देव उपयोग सहित आत्मा से विशुद्ध लेश्यावाले देव-देवी या अन्यतर को जानता- देखता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

प्र. ५. भंते ! क्या अविशुद्ध लेश्यावाला देव उपयोग सहित या रहित आत्मा से अविशुद्ध लेश्यावाले देव-देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

प्र. ६. भंते ! क्या अविशुद्ध लेश्यावाला देव उपयोग सहित या रहित आत्मा से विशुद्ध लेश्यावाले देव-देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

प्र. ७. भंते ! विशुद्ध लेश्या वाला देव उपयोग रहित आत्मा से अविशुद्ध लेश्यावाले देव-देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

प्र. ८. भंते ! विशुद्ध लेश्यावाला देव उपयोग रहित आत्मा से विशुद्ध लेश्यावाले देव-देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

प्र. ९. भंते ! विशुद्ध लेश्यावाला देव उपयोग सहित आत्मा से अविशुद्ध लेश्यावाले देव-देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

उ. हां, गौतम ! वह जानता-देखता है।

प्र. १०. भंते ! विशुद्ध लेश्यावाला देव उपयोग सहित आत्मा से विशुद्ध लेश्यावाले देव-देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

उ. हां, गौतम ! वह जानता-देखता है।

प्र. ११. भंते ! विशुद्ध लेश्यावाला देव उपयोग सहित या रहित आत्मा से, अविशुद्ध लेश्यावाले देव-देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

उ. हां, गौतम ! वह जानता-देखता है।

प्र. १२. भंते ! विशुद्ध लेश्यावाला देव उपयोग रहित या सहित आत्मा से, विशुद्ध लेश्यावाले देव-देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

उ. हां, गौतम ! वह जानता-देखता है।

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ५. अविसुद्धलेस्से णं भंते ! अणगारे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ६. अविसुद्धलेस्से णं भंते ! अणगारे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ७. विसुद्धलेस्से णं भंते ! अणगारे असमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ।

प. ८. विसुद्धलेस्से णं भंते ? अणगारे असमोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ।

प. ९. विसुद्धलेस्से णं भंते ! अणगारे समोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ।

प. १०. विसुद्धलेस्से णं भंते ! अणगारे समोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ।

प. ११. विसुद्धलेस्से णं भंते ! अणगारे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ।

प. १२. विसुद्धलेस्से णं भंते ! अणगारे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ। —जीवा. पडि. ३, सु. १०३

३९. अणगारेण स-पर कम्मलेसस्स जाणण-पासणं–

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा अप्पणो कम्मलेस्सं न जाणइ न पासइ, तं पुण जीवं सरूविं सकम्मलेस्सं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! अणगारे णं भावियप्पा अप्पणो कम्मलेस्सं न जाणइ न पासइ, तं पुण जीवं सरूविं सकम्मलेस्सं जाणइ पासइ। —विया. स. १४, उ. ९, सु. १

४०. अविसुद्ध-विसुद्धलेसस्स देवस्स जाणण-पासणं–

प. १. अविसुद्धलेसे णं भंते ! देवे असमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं देविं अन्नयरं जाणइ पासइ ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. ५. भंते ! अविशुद्धलेश्या वाला अनगार उपयोग सहित या रहित आत्मा से अविशुद्ध लेश्यावाले देव देवी और अनगार को जानता देखता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. ६. भंते ! अविशुद्धलेश्या वाला अनगार उपयोग सहित या रहित आत्मा से विशुद्धलेश्या वाले देव, देवी और अनगार को जानता देखता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. ७. भंते ! विशुद्धलेश्या वाला अनगार उपयोग रहित आत्मा से अविशुद्ध लेश्या वाले देव-देवी और अनगार को जानता देखता है ?

उ. हां, गौतम ! वह जानता देखता है।

प्र. ८. भंते ! विशुद्धलेश्या वाला अनगार उपयोग रहित आत्मा से विशुद्धलेश्या वाले देव-देवी और अनगार को जानता देखता है ?

उ. हां, गौतम ! वह जानता देखता है।

प्र. ९. भंते ! विशुद्धलेश्या वाला अनगार उपयोग सहित आत्मा से अविशुद्धलेश्या वाले देव-देवी और अनगार को जानता देखता है ?

उ. हां, गौतम ! वह जानता देखता है।

प्र. १०. भंते ! विशुद्धलेश्या वाला अणगार उपयोग सहित आत्मा से विशुद्धलेश्या वाले देव-देवी और अणगार को जानता-देखता है ?

उ. हां, गौतम ! वह जानता-देखता है।

प्र. ११. भंते ! विशुद्धलेश्या वाला अणगार उपयोग सहित या रहित आत्मा से अविशुद्ध लेश्या वाले देव-देवी और अणगार को जानता देखता है ?

उ. हां, गौतम ! वह जानता-देखता है।

प्र. १२. भंते ! विशुद्धलेश्या वाला अणगार उपयोग सहित या रहित आत्मा से विशुद्ध लेश्या वाले देव-देवी और अणगार को जानता देखता है ?

उ. हां, गौतम ! वह जानता-देखता है।

३९. अणगार द्वारा स्व-पर कर्मलेश्या का जानना-देखना–

प्र. भंते ! अपनी कर्मलेश्या को नहीं जानने देखने वाले भावितात्मा अणगार क्या सरूपी (सशरीर) और कर्मलेश्या सहित जीव को जानता देखता है ?

उ. हां, गौतम ! भावितात्मा अणगार, जो अपनी कर्मलेश्या को नहीं जानता देखता, वह सशरीर एवं कर्मलेश्या को जानता देखता है।

४०. अविशुद्ध-विशुद्ध लेश्यायुक्त देवों को जानना-देखना–

प्र. (१) भंते ! क्या अविशुद्ध लेश्या वाला देव उपयोग रहित आत्मा से अविशुद्ध लेश्यावाले देव देवी या अन्यतर (दोनों से किसी एक) को जानता-देखता है ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. २. अविसुद्धलेसे णं भंते ! देवे असमोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेसं देवं देविं अन्नयरं जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ३. अविसुद्धलेसे णं भंते ! देवे समोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं देविं अन्नयरं जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ४. अविसुद्धलेसे णं भंते ! देवे समोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेसं देवं देविं अन्नयरं जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ५. अविसुद्धलेसे णं भंते ! देवे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं देविं अन्नयरं जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ६. अविसुद्धलेसे णं भंते ! देवे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेसं देवं देविं अण्णयरं जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ७. विसुद्धलेसे णं भंते ! देवे असमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं देविं अण्णयरं जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ८. विसुद्धलेसे णं भंते ! देवे असमोहएणं विसुद्धलेसं देवं देविं अण्णयरं जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ९. विसुद्धलेसे णं भंते ! देवे समोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं देविं अण्णयरं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ।

प. १०. विसुद्धलेसे णं भंते ! देवे समोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेसं देवं देविं अण्णयरं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ।

प. ११. विसुद्धलेसे णं भंते ! देवे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं देविं अण्णयरं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ।

प. १२. विसुद्धलेसे णं भंते ! देवे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेसं देवं देविं अण्णयरं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ।

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

प्र. २. भंते ! क्या अविशुद्ध लेश्या वाला देव उपयोग रहित आत्मा से विशुद्ध लेश्या वाले देव-देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

प्र. ३. भंते ! क्या अविशुद्ध लेश्यावाला देव उपयोग सहित आत्मा से अविशुद्ध लेश्यावाले देव-देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

प्र. ४. भंते ! क्या अविशुद्ध लेश्यावाला देव उपयोग सहित आत्मा से विशुद्ध लेश्यावाले देव-देवी या अन्यतर को जानता- देखता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

प्र. ५. भंते ! क्या अविशुद्ध लेश्यावाला देव उपयोग सहित या रहित आत्मा से अविशुद्ध लेश्यावाले देव-देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

प्र. ६. भंते ! क्या अविशुद्ध लेश्यावाला देव उपयोग सहित या रहित आत्मा से विशुद्ध लेश्यावाले देव-देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

प्र. ७. भंते ! विशुद्ध लेश्या वाला देव उपयोग रहित आत्मा से अविशुद्ध लेश्यावाले देव-देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

प्र. ८. भंते ! विशुद्ध लेश्यावाला देव उपयोग रहित आत्मा से विशुद्ध लेश्यावाले देव-देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ शक्य नहीं है।

प्र. ९. भंते ! विशुद्ध लेश्यावाला देव उपयोग सहित आत्मा से अविशुद्ध लेश्यावाले देव-देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

उ. हां, गौतम ! वह जानता-देखता है।

प्र. १०. भंते ! विशुद्ध लेश्यावाला देव उपयोग सहित आत्मा से विशुद्ध लेश्यावाले देव-देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

उ. हां, गौतम ! वह जानता-देखता है।

प्र. ११. भंते ! विशुद्ध लेश्यावाला देव उपयोग सहित या रहित आत्मा से, अविशुद्ध लेश्यावाले देव-देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

उ. हां, गौतम ! वह जानता-देखता है।

प्र. १२. भंते ! विशुद्ध लेश्यावाला देव उपयोग रहित या सहित आत्मा से, विशुद्ध लेश्यावाले देव-देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

उ. हां, गौतम ! वह जानता-देखता है।

एवं हेट्ठिल्लएहिं अट्ठहिं न जाणइ न पासइ, उवरिल्लएहिं चउहिं जाणइ पासइ। *-विया. स. ६, उ. ९, सु. १३,*

४१. समणं निग्गंथस्स तेउलेस्सोप्पइकारणाणि-

तिहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे संखित्तविउलतेउलेस्से भवंति, तं जहा-

१. आयावणताए,
२. खंतिखमाए,
३. अपाणगेणं तवोकम्मेणं। *-ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १८८*

४२. तेउलेस्साए भासकरण कारणाणि-

दसहिं ठाणेहिं सह तेयसा भासं कुज्जा, तं जहा-

१. केइ तहारूवं समणं वा, माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिए समाणे परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा। से तं परितावेइ, से तं परितावेत्ता तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।
२. केइ तहारूवं समणं वा, माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिए समाणे देवे परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा। से तं परितावेइ, से तं परितावेत्ता तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।
३. केइ तहारूवं समणं वा, माहणं वा अच्चासातेज्जा से य अच्चासातिए समाणे परिकुविए देवे वि य परिकुविए ते दुहओ पडिण्णा तस्स तेयं णिसिरेज्जा। से तं परितावेंति, से तं परितावेत्ता तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।
४. केइ तहारूवं समणं वा, माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिए समाणे परिकुविए, तस्स तेयं णिसिरेज्जा. तत्थ फोडा संमुच्छंति, ते फोडा भिज्जंति, ते फोडा भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।
५. केइ तहारूवं समणं वा, माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिए समाणे देवे परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा संमुच्छंति, ते फोडा भिज्जंति, ते फोडा भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।
६. केइ तहारूवं समणं वा, माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिए समाणे परिकुविए देवे वि य परिकुविए ते दुहओ पडिण्णा तस्स तेयं णिसिरेज्जा, तत्थ फोडा संमुच्छंति, ते फोडा भिज्जंति, ते फोडा भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।
७. केइ तहारूवं समणं वा, माहणं वा अच्चासातेज्जा से य अच्चासातिए समाणे परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा तत्थ फोडा संमुच्छंति, ते फोडा भिज्जंति, तत्थ पुला संमुच्छंति, ते पुला भिज्जंति, ते पुला भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

देव प्रारम्भ के आठ भंगों में नहीं जानता-देखता और अंतिम चार भंगों में जानता देखता है।

४१. श्रमण निर्ग्रन्थ की तेजोलेश्या की उत्पत्ति के कारण-

तीन स्थानों से श्रमण निर्ग्रन्थ संक्षिप्त की हुई विपुल तेजोलेश्या वाले होते हैं, यथा-

१. आतापना लेने से,
२. क्रोधशान्ति व क्षमा करने से,
३. जल रहित तपस्या करने से।

४२. तेजोलेश्या से भस्म करने के कारण-

दस कारणों से श्रमण माहन अपमानित करने वाले को तेज से भस्म कर डालता है, यथा-

१. कोई व्यक्ति तथारूप-तेजोलब्धि सम्पन्न श्रमण माहन का अपमान करता है। वह अपमान से कुपित होकर, उस पर तेज फेंकता है, वह तेज उस व्यक्ति को परितापित कर देता है, परितापित कर उसे तेज से भस्म कर देता है।
२. कोई व्यक्ति तथारूप-तेजोलब्धि सम्पन्न श्रमण माहन का अपमान करता है। उसके अपमान करने पर कोई देव कुपित होकर अपमान करने वाले पर तेज फेंकता है, वह तेज उस व्यक्ति को परितापित करता है, परितापित कर उसे तेज से भस्म कर देता है।
३. कोई व्यक्ति तथारूप-तेजोलब्धि सम्पन्न श्रमण माहन का अपमान करता है। उसके अपमान करने पर मुनि और देव दोनों कुपित होकर उसे मारने की प्रतिज्ञा कर उस पर तेज फेंकते हैं। वह तेज उस व्यक्ति को परितापित करता है और परितापित कर उसे तेज से भस्म कर देता है।
४. कोई व्यक्ति तथारूप-तेजोलब्धि सम्पन्न श्रमण माहन का अपमान करता है। तब वह अपमान से कुपित होकर उस पर तेज फेंकता है। तब उसके शरीर में स्फोट (फोड़े) उत्पन्न होते हैं। वे फूटते हैं और फूटकर उसे तेज से भस्म कर देते हैं।
५. कोई व्यक्ति तथारूप-तेजोलब्धि सम्पन्न श्रमण माहन का अपमान करता है। उसके अपमान करने पर कोई देव कुपित होकर, उस पर तेज फेंकता है। तब उसके शरीर से स्फोट (फोड़े) उत्पन्न होते हैं, वे फूटते हैं और फूटकर उसे तेज से भस्म कर देते हैं।
६. कोई व्यक्ति तथारूप-तेजोलब्धि सम्पन्न श्रमण माहन का अपमान करता है। उसके अपमान करने पर मुनि व देव दोनों कुपित होकर मारने की प्रतिज्ञा कर उस पर तेज फेंकते हैं। तब उसके शरीर में स्फोट (फोड़े) उत्पन्न होते हैं, वे फूटते और फूटकर उसे तेज से भस्म कर देते हैं।
७. कोई व्यक्ति तथारूप-तेजोलब्धि सम्पन्न श्रमण माहन का अपमान करता है। तब वह अपमान करने पर कुपित होकर उस पर तेज फेंकता है, तब उसके शरीर में स्फोट (फोड़े) उत्पन्न होते हैं। वे फूटते हैं उससे छोटी-छोटी फुंसियां निकलती हैं, वे फूटती हैं और फूटकर उसे तेज से भस्म कर देती हैं।

८. केइ तहारूवं समाणं वा, माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिए समाणे देवे परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा संमुच्छंति, ते फोडा भिज्जंति, तत्थ पुला संमुच्छंति ते पुला भिज्जंति ते पुला भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

९. केइ तहारूवं समणं वा, माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिए समाणे परिकुविए देवे वि य परिकुविए ते दुहओ पडिण्णा तस्स तेयं णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा संमुच्छंति, ते फोडा भिज्जंति, तत्थ पुला संमुच्छंति ते पुला भिज्जंति, ते पुला भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

१०. केइ तहारूवं समणं वा, माहणं वा अच्चासातेमाणं तेयं णिसिरेज्जा, से य तत्थ णो कम्मइ णो पकम्मइ, अंचिअंचियं करेइ, करेत्ता, आयाहिणं पयाहिणं करेइ करेत्ता उड्ढं वेहासं उप्पयइ, उप्पतेत्ता से णं तओ पडिहए पडिणियत्तइ, पडिणियत्तित्ता तमेव सरीरगं अणुदहमाणे अणुदहमाणे सह तेयसा भासं कुज्जा–

जहा वा गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स तवे तेए।

–ठाणं. अ. १०, सु. ७७६

८. कोई व्यक्ति तथारूप-तेजोलब्धि सम्पन्न श्रमण माहन का अपमान करता है। उसके अपमान करने पर कोई देव कुपित होकर अपमान करने वाले पर तेज फेंकता है। तव उसके शरीर में स्फोट (फोड़े) उत्पन्न होते हैं। वे फूटते हैं उससे छोटी-छोटी फुंसिया निकलती हैं, वे फूटती हैं और फूटकर उसे तेज से भस्म कर देती हैं।

९. कोई व्यक्ति तथारूप-तेजोलब्धि सम्पन्न श्रमण माहन का अपमान करता है। उसके अपमान करने पर मुनि व देव दोनों कुपित होकर उसे मारने की प्रतिज्ञा कर उस पर तेज फेंकते हैं। तव उसके शरीर में स्फोट (फोड़े) उत्पन्न होते हैं। वे फूटते हैं उनमें पुल (फुंसिया) निकलती हैं। वे फूटती हैं और फूटकर उसे तेज से भस्म कर देती हैं।

१०. कोई व्यक्ति तथारूप-तेजोलब्धि सम्पन्न श्रमण माहन का अपमान करता हुआ उस पर तेज फेंकता है। वह तेज उसमें घुस नहीं सकता। उसके ऊपर-नीचे, नीचे-ऊपर आता-जाता है, दाएँ-वाएँ प्रदक्षिणा करता है। वैसा कर आकाश में चला जाता है, वहाँ से लौटकर उस श्रमण माहन के प्रवल तेज से प्रतिहत होकर वापस उसी के पास लौट आता है और लौटकर उसके शरीर में प्रवेश कर उसे उसकी तेजोलब्धि के साथ भस्म कर देता है।

जिस प्रकार भगवान महावीर पर छोड़ी गई मंखलीपुत्र गोशालक की तेजोलेश्या का परिणाम हुआ।

(वीतरागता के प्रभाव से भगवान् भस्मसात् नहीं हुए। वह तेज लौटा और उसने गोशालक को ही जला डाला)।

४३. **लेस्साणं जहण्णुक्कोसा ठिई–**

१. मुहुत्तद्धं तु जहन्ना तेत्तीसं सागरा मुहुत्तऽहिया।
उक्कोसा होइ ठिई नायव्वा किण्हलेसाए ॥

२. मुहुत्तद्धं तु जहन्ना दस उदही पलियमसंखभागमब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई नायव्वा नीललेस्साए ॥

३. मुहुत्तद्धं तु जहन्ना तिण्णुदही पलियमसंखभागमब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई नायव्वा काउलेस्साए ॥

४. मुहुत्तद्धं तु जहन्ना दो उदही पलियमसंखभागमब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई नायव्वा तेउलेसाए ॥

५. मुहुत्तद्धं तु जहन्ना दस होन्ति सागरा मुहुत्तऽहिया।
उक्कोसा होइ ठिई नायव्वा पम्हलेसाए ॥

६. मुहुत्तद्धं तु जहन्ना तेत्तीसं सागरा मुहुत्तऽहिया।
उक्कोसा होइ ठिई नायव्वा सुक्कलेसाए ॥

एसा खलु लेसाणं ओहेणं ठिई उ वण्णिया होइ।

–उत्त. अ. ३४, गा. ३४–४० (१)

४३. **लेश्याओं की जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति–**

१. कृष्णलेश्या की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहुर्त की है उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम की जाननी चाहिए।

२. नीललेश्या की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहुर्त की है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागरोपम की जाननी चाहिये।

३. कापोतलेश्या की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागरोपम की जाननी चाहिये।

४. तेजोलेश्या की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागरोपम की जाननी चाहिये।

५. पद्मलेश्या की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त अधिक दस सागरोपम की जाननी चाहिये।

६. शुक्ललेश्या की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम की जाननी चाहिए।

लेश्याओं की यह स्थिति संक्षेप में वर्णित की गई है।

४४. **चउगईसु लेस्साणं ठिई–**

चउसु वि गईसु एत्तो लेसाण ठिइं तु वोच्छामि ॥

४४. **चार गतियों की अपेक्षा लेश्याओं की स्थिति–**

अव चारों गतियों में लेश्याओं की स्थिति का वर्णन करूँगा।

दस वाससहस्साइं काउए ठिई जहन्निया होइ।
तिण्णुदही पलिओवम असंखभागं च उक्कोसा ॥
तिण्णुदही पलिय-मसंखभागा जहन्नेण नीलठिई।
दस उदही पलिओवम असंखभागं च उक्कोसा ॥

दस उदही पलिय असंखभागं जहन्निया होइ।
तेत्तीससागराइं उक्कोसा होइ किण्हाए ॥
एसा नेरइयाणं लेसाणं ठिई उ वण्णिया होइ।
तेण परं वोच्छामि तिरिय-मणुस्साण देवाणं ॥

अन्तोमुहुत्तमद्धं लेसाण ठिई जहिं-जहिं जाउ।
तिरियाण नराणं वा वज्जित्ता केवलं लेसं ॥

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना उक्कोसा होइ पुव्वकोडी उ।
नवहि वरिसेहिं ऊणा नायव्वा सुक्कलेसाए ॥
एसा तिरिय-नराणं लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ।
तेण परं वोच्छामि लेसाण ठिई उ देवाणं ॥
दस वाससहस्साइं किण्हाए ठिई जहन्निया होइ।
पलियमसंखिज्जइमो उक्कोसा होइ किण्हाए ॥
जा किण्हाए ठिई खलु उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहन्नेणं नीलाए पलियमसंखं तु उक्कोसा ॥

जा नीलाए ठिई खलु उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहन्नेणं काउए पलियमसंखं च उक्कोसा ॥

तेण परं वोच्छामि तेउलेसा जहा सुरगणाणं।
भवणवइ–वाणमन्तर-जोइस-वेमाणियाणं च ॥
पलिओवमं जहन्ना उक्कोसा सागरा उ दुण्हऽहिया।
पलियमसंखेज्जेणं होई भागेण तेऊए ॥
दस वाससहस्साइं तेऊए ठिई जहन्निया होइ।
दुण्णुदही पलिओवम असंखभागं च उक्कोसा ॥
जा तेऊए ठिई खलु उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहन्नेणं पम्हाए दस उ मुहुत्तऽहियाइं च उक्कोसा ॥

जा पम्हाए ठिई खलु उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहन्नेणं सुक्काए तेत्तीस-मुहुत्तमब्भहिया ॥

–उत्त. अ. ३४, गा. ४०(२)–५५

कापोतलेश्या की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागरोपम है।

नीललेश्या की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागरोपम है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागरोपम है।

कृष्णलेश्या की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागरोपम है और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम है।

यह नैरयिक जीवों की लेश्याओं की स्थिति का वर्णन किया है। इसके आगे तिर्यञ्चों, मनुष्यों और देवों की लेश्याओं की स्थिति का वर्णन करूंगा।

केवल शुक्ललेश्या को छोड़कर मनुष्यों और तिर्यञ्चों की जितनी भी लेश्याएं हैं, उन सबकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त है।

शुक्ललेश्या की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट स्थिति नौ वर्ष कम एक करोड़ पूर्व है।

मनुष्यों और तिर्यञ्चों की लेश्याओं की स्थिति का यह वर्णन किया है, इससे आगे देवों की लेश्याओं की स्थिति का वर्णन करूंगा।

(देवों की) कृष्णलेश्या की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम का असंख्यातवां भाग है।

कृष्णलेश्या की जो उत्कृष्ट स्थिति है, उससे एक समय अधिक नीललेश्या की जघन्य स्थिति है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम का असंख्यातवां भाग है।

नीललेश्या की जो उत्कृष्ट स्थिति है, उससे एक समय अधिक कापोतलेश्या की जघन्य स्थिति है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है।

इससे आगे भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की तेजोलेश्या की स्थिति का निरूपण करूँगा।

तेजोलेश्या की जघन्य स्थिति एक पल्योपम है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागरोपम है।

तेजोलेश्या की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागरोपम है।

तेजोलेश्या की जो उत्कृष्ट स्थिति है उससे एक समय अधिक पद्मलेश्या की जघन्य स्थिति है और उत्कृष्ट स्थिति एक अन्तर्मुहुर्त अधिक दस सागरोपम है।

जो पद्मलेश्या की उत्कृष्ट स्थिति है उससे एक समय अधिक शुक्ललेश्या की जघन्य स्थिति है और उत्कृष्ट स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम है।

४५. सलेस्स-अलेस्स जीवाणं कायट्ठिई–

प. सलेस्से णं भंते ! सलेसे त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! सलेसे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. अणाईए वा अपज्जवसिए,
२. अणाईए वा सपज्जवसिए।

प. कण्हलेस्से णं भंते ! कण्हलेस्से त्ति कालओ केवचिरं होइ?

४५. सलेश्य-अलेश्य जीवों की कायस्थिति–

प्र. भंते ! सलेश्य जीव सलेश्य–अवस्था में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! सलेश्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. अनादि-अपर्यवसित,
२. अनादि-सपर्यवसित।

प्र. भंते ! कृष्णलेश्या वाला जीव कितने काल तक कृष्णलेश्या वाला रहता है?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं।

प. णीललेस्से णं भंते ! णीललेस्से त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइ भागमब्भहियाइं।

प. काउलेस्से णं भंते ! काउलेस्से त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमब्भहियाइं।

प. तेउलेस्से णं भंते ! तेउलेस्से त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्त, उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमब्भहियाइं।

प. पम्हलेस्से णं भंते ! पम्हलेस्से त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं

प. सुक्कलेस्से णं भंते ! सुक्कलेसे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं।

प. अलेस्से णं भंते ! अलेस्से त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! साइए अपज्जवसिए[1]।

–पण्ण. प. १८, सु. १३३५–१३४२

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम है।

प्र. भंते ! नीललेश्या वाला जीव कितने काल तक नीललेश्या वाला रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागरोपम है।

प्र. भंते ! कापोतलेश्या वाला जीव कितने काल तक कापोतलेश्या वाला रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागरोपम है।

प्र. भंते ! तेजोलेश्यावाला जीव कितने काल तक तेजोलेश्या वाला रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागरोपम।

प्र. भंते ! पद्मलेश्या वाला जीव कितने काल तक पद्मलेश्या वाला रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक दस सागरोपम है।

प्र. भंते ! शुक्ललेश्यावाला जीव कितने काल तक शुक्ललेश्या वाला रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम है।

प्र. भंते ! अलेश्यी जीव कितने काल तक अलेश्यी रूप में रहता है ?

उ. गौतम ! सादि-अपर्यवसित काल तक रहता है।

४६. सलेस्स-अलेस्स जीवाणं अंतर काल परूवणं–

प. कण्हलेसस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं।

एवं नीललेसस्स वि, काउलेसस्स वि।

प. तेउलेसस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो

एवं पम्हलेसस्स वि, सुक्कलेसस्स वि।

प. अलेसस्स णं भंते ! अंतरकालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! साईयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं।

–जीवा. पडि. ९, सु. २५३

४६. सलेश्य-अलेश्य जीवों के अन्तरकाल का प्ररूपण–

प्र. भंते ! कृष्णलेश्या वाले जीव का अन्तरकाल कितना है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त से कुछ अधिक तेतीस सागरोपम का है।

इसी प्रकार नीललेश्या और कापोतलेश्या वाले जीवों का अन्तरकाल कहना चाहिए।

प्र. भंते ! तेजोलेश्या वाले जीव का अन्तरकाल कितना है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

इसी प्रकार पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या वाले जीवों का अन्तरकाल कहना चाहिए।

प्र. भंते ! अलेश्यी जीव का अन्तरकाल कितना है ?

उ. गौतम ! सादिअपर्यवसित का अन्तर नहीं है।

४७. सलेस्स-अलेस्स जीवाणं अप्प-बहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! सलेस्साणं जीवाणं, कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साणं अलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

४७. सलेश्य-अलेश्य जीवों का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन सलेश्यी कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी और अलेश्यी जीवों में कौन, किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

---

1. जीवा. पडि. ९, सु. २५३

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा सुक्कलेस्सा,
२. पम्हलेस्सा संखेज्जगुणा,
३. तेउलेस्सा संखेज्जगुणा,
४. अलेस्सा अणंतगुणा,
५. काउलेस्सा अणंतगुणा,
६. णीललेस्सा विसेसाहिया,
७. कण्हलेस्सा विसेसाहिया[1],
८. सलेस्सा विसेसाहिया[2]।

–पण्ण. प. १७, उ. २, सु. ११७०

४८. सलेस्स चउगइयाणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! १. णेरइयाणं कण्हलेस्साणं, नीललेस्साणं, काउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा णेरइया कण्हलेस्सा,
२. णीललेस्सा असंखेज्जगुणा,
३. काउलेस्सा असंखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! तिरिक्खजोणियाणं कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! सव्वत्थोवा तिरिक्खजोणिया सुक्कलेस्सा, एवं जहा ओहिया।

णवरं–अलेस्सवज्जा।

प. एएसि णं भंते ! एगिंदियाणं कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा एगिंदिया तेउलेस्सा,
२. काउलेस्सा अणंतगुणा,
३. णीललेस्सा विसेसाहिया,
४. कण्हलेस्सा विसेसाहिया[3]।

प. एएसि णं भंते ! पुढविक्काइयाणं कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! जहा ओहिया एगिंदिया।

णवरं–काउलेस्सा असंखेज्जगुणा।

एवं आउक्काइयाण वि।

प. एएसि णं भंते ! १. तेउक्काइयाणं कण्हलेस्साणं, २. णीललेस्साणं, ३. काउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा तेउक्काइया काउलेस्सा,
२. णीललेस्सा विसेसाहिया,

उ. गौतम ! १. सबसे थोड़े जीव शुक्ललेश्या वाले हैं,
२. (उनसे) पद्मलेश्या वाले संख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) तेजोलेश्या वाले संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) अलेश्यी अनन्तगुणे हैं,
५. (उनसे) कापोतलेश्या वाले अनन्तगुणे हैं,
६. (उनसे) नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं,
७. (उनसे) कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं,
८. (उनसे) सलेश्यी विशेषाधिक हैं।

४८. सलेश्य-चार गतियों का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वाले नैरयिकों में कौन, किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे थोड़े कृष्णलेश्या वाले नारक हैं,
२. (उनसे) असंख्यातगुणे नीललेश्या वाले हैं,
३. (उनसे) असंख्यातगुणे कापोतलेश्या वाले हैं।

प्र. भंते ! इन कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या वाले तिर्यञ्चयोनिकों में कौन, किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! सबसे कम तिर्यञ्चयोनिक शुक्ललेश्या वाले हैं, इसी प्रकार शेष कथन पूर्ववत् औधिक के समान कहना चाहिये।

विशेष–तिर्यञ्चों में अलेश्यी नहीं हैं।

प्र. भंते ! कृष्णलेश्या वाले यावत् तेजोलेश्या वाले एकेन्द्रियों में से कौन, किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे कम तेजोलेश्या वाले एकेन्द्रिय हैं,
२. (उनसे) कापोतलेश्या वाले अनन्तगुणे हैं,
३. (उनसे) नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं।

प्र. भंते ! कृष्णलेश्या यावत् तेजोलेश्या वाले पृथ्वीकायिकों में से कौन, किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार समुच्चय एकेन्द्रियों का कथन किया है, उसी प्रकार पृथ्वीकायिकों का कथन करना चाहिए।

विशेष–कापोतलेश्या वाले पृथ्वीकायिक असंख्यातगुणे हैं।

इसी प्रकार अप्कायिकों में अल्पबहुत्व समझना चाहिए।

प्र. भंते ! इन १. कृष्णलेश्या वाले, २. नीललेश्या वाले और ३. कापोतलेश्या वाले तेजस्कायिकों में से कौन, किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे कम कापोतलेश्या वाले तेजस्कायिक हैं,
२. (उनसे) नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं,

१. जीवा. पडि. ९, सु. २५३
२. (क) पण्ण. प. ३, सु. २५५
(ख) सव्वत्थोवा अलेस्सा सलेस्सा अणंतगुणा -जीवा. पडि. ९, सु. २३२
३. विया. स. १७, उ. १२, सु. ३

३. कण्हलेस्सा विसेसाहिया।

एवं वाउक्काइयाण वि।

प. एएसि णं भंते ! वणस्सइकाइयाणं कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! जहा एगिंदियओहियाणं।

बेइंदिय, तेइंदिय, चउरिंदियाणं जहा तेउक्काइयाणं।

प. १. एएसि णं भंते ! पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! जहा ओहियाणं तिरिक्खजोणियाणं।

णवरं–१. काउलेस्सा असंखेज्जगुणा।

२. सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं जहा तेउक्काइयाणं।

३. गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं जहा ओहियाणं तिरिक्खजोणियाणं।

णवरं–काउलेस्सा संखेज्जगुणा।

४. एवं तिरिक्खजोणियाणीण वि।

प. ५. एएसि णं भंते ! सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं (कण्हलेस्साणं जाव काउलेस्साण य) गब्भवक्कंतिय-पंचेंदियतिरिक्खजोणियाण य कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा !

१. सव्वत्थोवा गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्ख जोणिया सुक्कलेस्सा,

२. पम्हलेस्सा संखेज्जगुणा,

३. तेउलेस्सा संखेज्जगुणा,

४. काउलेस्सा संखेज्जगुणा,

५. णीललेस्सा विसेसाहिया,

६. कण्हलेस्सा विसेसाहिया,

७. काउलेस्सा सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा,

८. णीललेस्सा विसेसाहिया,

९. कण्हलेस्सा विसेसाहिया।

प. ६. एएसि णं भंते ! सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं तिरिक्खजोणिणीण य कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

३. (उनसे) कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार वायुकायिकों का भी अल्पबहुत्व समझ लेना चाहिए।

प्र. भंते! इन कृष्णलेश्या वाले यावत् तेजोलेश्या वाले वनस्पतिकायिकों में से कौन, किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! जैसे एकेन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व कहा उसी प्रकार वनस्पतिकायिकों का भी कहना चाहिए।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व तेजस्कायिकों के समान है।

प्र. १. भंते ! इन कृष्णलेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से कौन, किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! जैसे औधिक तिर्यञ्चों का अल्पबहुत्व कहा उसी प्रकार पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों का अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

विशेष–१. कापोतलेश्या वाले पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक असंख्यातगुणे हैं।

२. सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों का अल्पबहुत्व तेजस्कायिकों के समान हैं।

३. गर्भज पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों का अल्पबहुत्व समुच्चय पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों के समान हैं।

विशेष–कापोतलेश्या वाले संख्यातगुणे हैं।

४. इसी प्रकार गर्भज पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियों का भी अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

प्र. ५. भंते ! (कृष्णलेश्या वाले यावत् कापोतलेश्या वाले) सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों और कृष्णलेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले गर्भज पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से कौन, किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम !

१. सबसे कम शुक्ललेश्या वाले गर्भज पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक हैं,

२. (उनसे) पद्मलेश्या वाले संख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) तेजोलेश्या वाले संख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) कापोतलेश्या वाले संख्यातगुणे हैं,

५. (उनसे) नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं,

६. (उनसे) कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं,

७. (उनसे) कापोतलेश्या वाले सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक असंख्यातगुणे हैं,

८. (उनसे) नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं,

९. (उनसे) कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं,

प्र. ६. भंते ! कृष्णलेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों और तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियों में से कौन, किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गोयमा ! जहेव पंचमं तहा इमं पि छट्ठं भाणियव्वं।

उ. गौतम ! जैसे पांचवां अल्पबहुत्व कहा वैसे ही यह छठा कहना चाहिए।

प. ७. एएसि णं भंते ! गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं तिरिक्खजोणिणीण य कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा !

१. सव्वत्थोवा गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया सुक्कलेस्सा,
२. सुक्कलेस्साओ तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ,
३. पम्हलेस्सा गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया संखेज्जगुणा,
४. पम्हलेस्साओ तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ,
५. तेउलेस्सा गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया संखेज्जगुणा,
६. तेउलेस्साओ तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ,
७. काउलेस्सा गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया संखेज्जगुणा,
८. णीललेस्सा गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया विसेसाहिया,
९. कण्हलेस्सा गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया विसेसाहिया,
१०. काउलेस्साओ तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ,
११. णीललेस्साओ तिरिक्खजोणिणीओ विसेसाहियाओ,
१२. कण्हलेस्साओ तिरिक्खजोणिणीओ विसेसाहियाओ।

प्र. ७. भंते ! इन कृष्णलेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों और तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियों में से कौन, किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम !

१. सबसे कम शुक्ललेश्या वाले गर्भज पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक हैं,
२. (उनसे) शुक्ललेश्या वाली गर्भज पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,
३. (उनसे) पद्मलेश्या वाले गर्भज पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) पद्मलेश्या वाली गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,
५. (उनसे) तेजोलेश्या वाले गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) तेजोलेश्या वाली गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,
७. (उनसे) कापोतलेश्या वाले गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक संख्यातगुणे हैं,
८. (उनसे) नीललेश्या वाले गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक विशेषाधिक हैं,
९. (उनसे) कृष्णलेश्या वाले गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक विशेषाधिक हैं,
१०. (उनसे) कापोतलेश्या वाली तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,
११. (उनसे) नीललेश्या वाली तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियां विशेषाधिक हैं,
१२. (उनसे) कृष्णलेश्या वाली तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियां विशेषाधिक हैं।

प. ८. एएसि णं भंते ! सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं, गब्भवक्कंतिय-पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं तिरिक्खजोणिणीण य कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा !

१. सव्वत्थोवा गब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणिया सुक्कलेस्सा,
२. सुक्कलेस्साओ तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ,
३. पम्हलेस्सा गब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणिया संखेज्जगुणा,
४. पम्हलेस्साओ तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ,
५. तेउलेस्सा गब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणिया संखेज्जगुणा,

प्र. ८. कृष्णलेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले इन सम्मूर्छिम पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों, गर्भज पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों तथा तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियों में से कौन, किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम !

१. सबसे कम शुक्ललेश्या वाले गर्भज तिर्यञ्चयोनिक हैं,
२. (उनसे) शुक्ललेश्या वाली तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,
३. (उनसे) पद्मलेश्या वाले गर्भज पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) पद्मलेश्या वाली तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,
५. (उनसे) तेजोलेश्या वाले गर्भज तिर्यञ्चयोनिक संख्यातगुणे हैं,

६. तेउलेस्साओ तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ,

६. (उनसे) तेजोलेश्या वाली तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,

७. काउलेस्सा गब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणिया संखेज्जगुणा,

७. (उनसे) कापोतलेश्या वाले गर्भज तिर्यञ्चयोनिक संख्यातगुणे हैं,

८. णीललेस्सा गब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणिया विसेसाहिया,

८. (उनसे) नीललेश्या वाले गर्भज तिर्यञ्चयोनिक विशेषाधिक हैं,

९. कण्हलेस्सा गब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणिया विसेसाहिया,

९. (उनसे) कृष्णलेश्या वाले गर्भज तिर्यञ्चयोनिक विशेषाधिक हैं,

१०. काउलेस्साओ तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ,

१०. (उनसे) कापोतलेश्या वाली तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं,

११. नीललेस्साओ तिरिक्खजोणिणीओ विसेसाहियाओ,

११. (उनसे) नीललेश्या वाली तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियां विशेषाधिक हैं।

१२. कण्हलेस्साओ तिरिक्खजोणिणीओ विसेसाहियाओ,

१२. (उनसे) कृष्णलेश्या वाली तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियां विशेषाधिक हैं।

१३. काउलेस्सा सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा,

१३. (उनसे) कापोतलेश्या वाले सम्मूर्च्छिम पंचेंद्रिय-तिर्यञ्चयोनिक असंख्यातगुणे हैं,

१४. णीललेस्सा सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया विसेसाहिया,

१४. (उनसे) नीललेश्या वाले सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक विशेषाधिक हैं,

१५. कण्हलेस्सा सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया विसेसाहिया।

१५. (उनसे) कृष्णलेश्या वाले सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक विशेषाधिक हैं।

प. ९. एएसि णं भंते! पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं तिरिक्खजोणिणीण य कण्हलेस्साणं **जाव** सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा **जाव** विसेसाहिया वा?

प्र. ९. भंते ! इन कृष्णलेश्या वाले **यावत्** शुक्ललेश्या वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों और तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियों में से कौन, किससे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं?

उ. गोयमा !

१. सव्वत्थोवा पंचेंदियतिरिक्खजोणिया सुक्कलेस्सा,

२. सुक्कलेस्साओ तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ,

३. पम्हलेस्सा गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया संखेज्जगुणा,

४. पम्हलेस्साओ तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ,

५. तेउलेस्सा गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया संखेज्जगुणा,

६. तेउलेस्साओ तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ,

७. काउलेस्साओ तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ,

८. णीललेस्साओ तिरिक्खजोणिणीओ विसेसाहियाओ,

९. कण्हलेस्साओ तिरिक्खजोणिणीओ विसेसाहियाओ,

१०. काउलेस्सा गब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणिणीया असंखेज्जगुणा,

११. णीललेस्सा गब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणिणीया विसेसाहिया,

उ. गौतम !

१. सबसे कम शुक्ललेश्या वाले पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक हैं,

२. (उनसे) शुक्ललेश्या वाली तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,

३. (उनसे) पद्मलेश्या वाले गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक संख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) पद्मलेश्या वाली तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,

५. (उनसे) तेजोलेश्या वाले गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक संख्यातगुणे हैं,

६. (उनसे) तेजोलेश्या वाली तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,

७. (उनसे) कापोतलेश्या वाली तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,

८. (उनसे) नीललेश्या वाली तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियां विशेषाधिक हैं,

९. (उनसे) कृष्णलेश्या वाली तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियां विशेषाधिक हैं,

१०. (उनसे) कापोतलेश्या वाले गर्भज तिर्यञ्चयोनिक असंख्यातगुणे हैं,

११. (उनसे) नीललेश्या वाले गर्भज तिर्यञ्चयोनिक विशेषाधिक हैं,

१२. कण्हलेस्सा गब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणिया विसेसाहिया,

प. १०. एएसि णं भंते ! पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं, तिरिक्खजोणिणीण य कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! जहेव णवमं अप्पाबहुगं तहा इमं पि।

णवरं–काउलेस्सा तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा।

एवं एए दस अप्पाबहुगा तिरिक्खजोणियाणं।

दं. २१ एवं मणूस्साणं पि अप्पाबहुगा भाणियव्वा।

णवरं–पच्छिमगं १०. अप्पाबहुगं णत्थि।

प. १. एएसि णं भंते ! देवाणं कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा !

१. सव्वत्थोवा देवा सुक्कलेस्सा,
२. पम्हलेस्सा असंखेज्जगुणा,
३. काउलेस्सा असंखेज्जगुणा,
४. णीललेस्सा विसेसाहिया,
५. कण्हलेस्सा विसेसाहिया,
६. तेउलेस्सा संखेज्जगुणा।

प. २. एएसि णं भंते ! देवीणं कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा !

१. सव्वत्थोवाओ देवीओ काउलेस्साओ,
२. णीललेस्साओ विसेसाहियाओ,
३. कण्हलेस्साओ विसेसाहियाओ,
४. तेउलेस्साओ संखेज्जगुणाओ।

प. ३. एएसि णं भंते ! देवाणं देवीण य कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा !

१. सव्वत्थोवा देवा सुक्कलेस्सा,
२. पम्हलेस्सा असंखेज्जगुणा,
३. काउलेस्सा असंखेज्जगुणा,
४. नीललेस्सा विसेसाहिया,
५. कण्हलेस्सा विसेसाहिया,
६. काउलेस्साओ देवीओ संखेज्जगुणाओ,
७. णीललेस्साओ देवीओ विसेसाहियाओ,
८. कण्हलेस्साओ देवीओ विसेसाहियाओ,
९. तेउलेस्सा देवा संखेज्जगुणा,
१०. तेउलेस्साओ देवीओ संखेज्जगुणाओ।

प. १. एएसि णं भंते ! भवणवासीणं देवाणं कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

१२. (उनसे) कृष्णलेश्या वाले गर्भज तिर्यञ्चयोनिक विशेषाधिक हैं।

प्र. १०. भंते ! कृष्णलेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले इन पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों और तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियों में से कौन, किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! जैसे नौवां तिर्यञ्चयोनिक सम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा वैसे यह दसवां भी समझ लेना चाहिए।

विशेष–कापोतलेश्या वाले तिर्यञ्चयोनिक अनन्तगुणे हैं।

इस प्रकार ये दस अल्पबहुत्व तिर्यञ्चयोनिकों के कहे गए हैं।

द. २१. इसी प्रकार मनुष्यों का भी अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

विशेष–उनका अंतिम (दसवां) अल्पबहुत्व नहीं है।

प्र. १. भंते ! इन कृष्णलेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले देवों में से कौन, किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम !

१. सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले देव हैं,
२. (उनसे) पद्मलेश्या वाले देव असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) कापोतलेश्या वाले देव असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) नीललेश्या वाले देव विशेषाधिक हैं,
५. (उनसे) कृष्णलेश्या वाले देव विशेषाधिक हैं,
६. (उनसे) तेजोलेश्या वाले देव संख्यातगुणे हैं,

प्र. २. भंते ! इन कृष्णलेश्या वाली यावत् तेजोलेश्या वाली देवियों में से कौन, किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम !

१. सबसे थोड़ी कापोतलेश्या वाली देवियां हैं,
२. (उनसे) नीललेश्या वाली विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) कृष्णलेश्या वाली विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) तेजोलेश्या वाली संख्यातगुणी हैं।

प्र. ३. भंते ! इन कृष्णलेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले देवों और देवियों में से कौन, किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम !

१. सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले देव हैं,
२. (उनसे) पद्मलेश्या वाले असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) कापोतलेश्या वाले असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं,
५. (उनसे) कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं,
६. (उनसे) कापोतलेश्या वाली देवियां संख्यातगुणी हैं,
७. (उनसे) नीललेश्या वाली देवियां विशेषाधिक हैं,
८. (उनसे) कृष्णलेश्या वाली देवियां विशेषाधिक हैं,
९. (उनसे) तेजोलेश्या वाले देव संख्यातगुणे हैं,
१०. (उनसे) तेजोलेश्या वाली देवियां संख्यातगुणी हैं।

प्र. १. भंते ! इन कृष्णलेश्या वाले यावत् तेजोलेश्या वाले भवनवासी देवों में से कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गोयमा !

१. सव्वत्थोवा भवणवासी देवा तेउलेस्सा,

२. काउलेस्सा असंखेज्जगुणा,

३. णीललेस्सा विसेसाहिया,

४. कण्हलेस्सा विसेसाहिया।

प्र. २. एएसि णं भंते ! भवणवासिणीणं देवीणं कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

प्र. ३. एएसि णं भंते ! भवणवासीणं देवाण य देवीण य कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा !

१. सव्वत्थोवा भवणवासी देवा तेउलेस्सा,

२. भवणवासिणीओ तेउलेस्साओ संखेज्जगुणाओ,

३. काउलेस्सा भवणवासी देवा असंखेज्जगुणा,

४. णीललेस्सा विसेसाहिया,

५. कण्हलेस्सा विसेसाहिया,

६. काउलेस्साओ भवणवासिणीओ संखेज्जगुणाओ,

७. णीललेस्साओ विसेसाहियाओ,

८. कण्हलेस्साओ विसेसाहियाओ।

एवं वाणमंतराण वि तिण्णेव अप्पाबहुया जहेव भवणवासीणं तहेव भाणियव्वा।

प. एएसि णं भंते ! जोइसियाणं देवाण य देवीण य तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा !

१. सव्वत्थोवा जोइसियदेवा तेउलेस्सा,

२. जोइसिणिदेवीओ तेउलेस्साओ संखेज्जगुणाओ।

प. एएसि णं भंते ! १. वेमाणियाणं देवाणं तेउलेस्साणं, २. पम्हलेस्साणं, ३. सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा !

१. सव्वत्थोवा वेमाणिया देवा सुक्कलेस्सा,

२. पम्हलेस्सा असंखेज्जगुणा,

३. तेउलेस्सा असंखेज्जगुणा।

उ. गौतम !

१. सबसे कम तेजोलेश्या वाले भवनवासी देव हैं,

२. (उनसे) कापोतलेश्या वाले देव असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) नीललेश्या वाले देव विशेषाधिक हैं,

४. (उनसे) कृष्णलेश्या वाले देव विशेषाधिक हैं।

प्र. २. भंते ! इन कृष्णलेश्यावाली यावत् तेजोलेश्या वाली भवनवासी देवियों में से कौन, किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! इसी प्रकार (देवों के समान देवियों का भी अल्पबहुत्व) कहना चाहिए।

प्र. ३. भंते ! कृष्णलेश्या वाले यावत् तेजोलेश्या वाले भवनवासी देवों और देवियों में से कौन, किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम !

१. सबसे थोड़े तेजोलेश्या वाले भवनवासी देव हैं,

२. (उनसे) तेजोलेश्या वाली भवनवासी देवियां संख्यात-गुणी हैं,

३. (उनसे) कापोतलेश्या वाले भवनवासी देव असंख्यात-गुणे हैं,

४. (उनसे) नीललेश्या वाले भवनवासी देव विशेषाधिक हैं,

५. (उनसे) कृष्णलेश्या वाले भवनवासी देव विशेषाधिक हैं,

६. (उनसे) कापोतलेश्या वाली भवनवासी देवियां संख्यातगुणी हैं,

७. (उनसे) नीललेश्या वाली भवनवासी देवियां विशेषाधिक हैं,

८. (उनसे) कृष्णलेश्या वाली भवनवासी देवियां विशेषाधिक हैं।

जिस प्रकार भवनवासी देव-देवियों का अल्पबहुत्व कहा है, इसी प्रकार वाणव्यन्तरों के तीनों ही अल्पबहुत्व कहने चाहिए।

प्र. भंते ! इन तेजोलेश्या वाले ज्योतिष्क देव-देवियों में से कौन, किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम !

१. सबसे थोड़े तेजोलेश्या वाले ज्योतिष्क देव हैं,

२. (उनसे) तेजोलेश्या वाली ज्योतिष्क देवियां संख्यातगुणी हैं।

प्र. भंते ! इन १. तेजोलेश्या वाले, २. पद्मलेश्या वाले, ३. शुक्ललेश्या वाले वैमानिक देवों में से कौन, किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम !

१. सबसे कम शुक्ललेश्या वाले वैमानिक देव हैं,

२. (उनसे) पद्मलेश्या वाले असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) तेजोलेश्या वाले असंख्यातगुणे हैं।

प. एएसि णं भंते ! वेमाणियाणं देवाणं, देवीण य तेउलेस्साणं, पम्हलेस्साणं, सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा !

१. सव्वत्थोवा वेमाणिया देवा सुक्कलेस्सा,
२. पम्हलेस्सा असंखेज्जगुणा,
३. तेउलेस्सा असंखेज्जगुणा,
४. तेउलेस्साओ वेमाणिणीओ देवीओ संखेज्जगुणाओ।

प. एएसि णं भंते ! भवणवासीणं, वाणमंतराणं, जोइसियाणं, वेमाणियाण य देवाणं कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा !

१. सव्वत्थोवा वेमाणिया देवा सुक्कलेस्सा,
२. पम्हलेस्सा असंखेज्जगुणा,
३. तेउलेस्सा असंखेज्जगुणा,
४. तेउलेस्सा भवणवासी देवा असंखेज्जगुणा,
५. काउलेस्सा असंखेज्जगुणा,
६. णीललेस्सा विसेसाहिया,
७. कण्हलेस्सा विसेसाहिया,
८. तेउलेस्सा वाणमंतरा देवा असंखेज्जगुणा,
९. काउलेस्सा असंखेज्जगुणा,
१०. णीललेस्सा विसेसाहिया,
११. कण्हलेस्सा विसेसाहिया,
१२. तेउलेस्सा जोइसिय देवा संखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! भवणवासिणीणं, वाणमंतरीणं, जोइसिणीणं, वेमाणिणीण य कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा !

१. सव्वत्थोवाओ देवीओ वेमाणिणीओ तेउलेस्साओ,
२. तेउलेस्साओ भवणवासिणीओ असंखेज्जगुणाओ,
३. काउलेस्साओ असंखेज्जगुणाओ,
४. णीललेस्साओ विसेसाहियाओ,
५. कण्हलेस्साओ विसेसाहियाओ,
६. तेउलेस्साओ वाणमंतरीओ देवीओ असंखेज्जगुणाओ,
७. काउलेस्साओ असंखेज्जगुणाओ,
८. णीललेस्साओ विसेसाहियाओ,
९. कण्हलेस्साओ विसेसाहियाओ,
१०. तेउलेस्साओ जोइसिणीओ देवीओ संखेज्जगुणाओ।

प्र. भंते ! इन तेजोलेश्या वाले, पद्मलेश्या वाले, शुक्ललेश्या वाले वैमानिक देवों और देवियों में से कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम !

१. सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले वैमानिक देव हैं,
२. (उनसे) पद्मलेश्या वाले असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) तेजोलेश्या वाले असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) तेजोलेश्या वाली वैमानिक देवियां संख्यातगुणी हैं।

प्र. भंते ! कृष्णलेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले, भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों में से कौन, किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम !

१. सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले वैमानिक देव हैं,
२. (उनसे) पद्मलेश्या वाले असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) तेजोलेश्या वाले असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) तेजोलेश्या वाले भवनवासी देव असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) कापोतलेश्या वाले असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं,
७. (उनसे) कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं,
८. (उनसे) तेजोलेश्या वाले वाणव्यन्तर देव असंख्यातगुणे हैं,
९. (उनसे) कापोतलेश्या वाले असंख्यातगुणे हैं,
१०. (उनसे) नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं,
११. (उनसे) कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं,
१२. (उनसे) तेजोलेश्या वाले ज्योतिष्क देव संख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! कृष्णलेश्या वाली यावत् तेजोलेश्या वाली भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवियों में से कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम !

१. सबसे थोड़ी तेजोलेश्या वाली वैमानिक देवियां हैं,
२. (उनसे) तेजोलेश्या वाली भवनवासी देवियां असंख्यातगुणी हैं,
३. (उनसे) कापोतलेश्या वाली असंख्यातगुणी हैं,
४. (उनसे) नीललेश्या वाली विशेषाधिक हैं,
५. (उनसे) कृष्णलेश्या वाली विशेषाधिक हैं,
६. (उनसे) तेजोलेश्या वाली वाणव्यन्तर देवियां असंख्यातगुणी हैं,
७. (उनसे) कापोतलेश्या वाली असंख्यातगुणी हैं,
८. (उनसे) नीललेश्या वाली विशेषाधिक हैं,
९. (उनसे) कृष्णलेश्या वाली विशेषाधिक हैं,
१०. (उनसे) तेजोलेश्या वाली ज्योतिष्क देवियां संख्यातगुणी हैं।

प. एएसि णं भंते ! भवणवासीणं जाव वेमाणियाणं देवाण य देवीण य कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा !

१. सव्वत्थोवा वेमाणिया देवा सुक्कलेस्सा,
२. पम्हलेस्सा असंखेज्जगुणा,
३. तेउलेस्सा असंखेज्जगुणा,
४. तेउलेस्साओ वेमाणिणीओ देवीओ संखेज्जगुणाओ,
५. तेउलेस्सा भवणवासी देवा असंखेज्जगुणा,
६. तेउलेस्साओ भवणवासिणीओ देवीओ संखेज्जगुणाओ,
७. काउलेस्सा भवणवासी देवा असंखेज्जगुणा,
८. णीललेस्सा विसेसाहिया,
९. कण्हलेस्सा विसेसाहिया,
१०. काउलेस्साओ भवणवासिणीओ देवीओ संखेज्जगुणाओ,
११. णीललेस्साओ विसेसाहियाओ,
१२. कण्हलेस्साओ विसेसाहियाओ,
१३. तेउलेस्सा वाणमंतरा देवा असंखेज्जगुणा,
१४. तेउलेस्साओ वाणमंतरीओ देवीओ संखेज्जगुणाओ,
१५. काउलेस्सा वाणमंतरा देवा असंखेज्जगुणा,
१६. णीललेस्सा विसेसाहिया,
१७. कण्हलेस्सा विसेसाहिया,
१८. काउलेस्साओ वाणमंतरीओ देवीओ संखेज्जगुणाओ,
१९. णीललेस्साओ देवीओ विसेसाहियाओ,
२०. कण्हलेस्साओ देवीओ विसेसाहियाओ,
२१. तेउलेस्साओ जोइसिया देवा संखेज्जगुणा,
२२. तेउलेस्साओ जोइसिणीओ देवीओ संखेज्जगुणाओ।[1]

–पण्ण. प. १७, उ. २, सु. ११७१-११९०

प्र. भंते ! कृष्णलेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले भवनवासी यावत् वैमानिक देवों और देवियों में से कौन, किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम !

१. सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले वैमानिक देव हैं,
२. (उनसे) पद्मलेश्या वाले असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) तेजोलेश्या वाले असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) तेजोलेश्या वाली वैमानिक देवियां संख्यातगुणी हैं,
५. (उनसे) तेजोलेश्या वाले भवनवासी देव असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) तेजोलेश्या वाली भवनवासी देवियां संख्यातगुणी हैं,
७. (उनसे) कापोतलेश्या वाले भवनवासी देव असंख्यातगुणे हैं,
८. (उनसे) नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं,
९. (उनसे) कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं,
१०. (उनसे) कापोतलेश्या वाली भवनवासी देवियां संख्यातगुणी हैं,
११. (उनसे) नीललेश्या वाली विशेषाधिक हैं,
१२. (उनसे) कृष्णलेश्या वाली विशेषाधिक हैं,
१३. (उनसे) तेजोलेश्या वाले वाणव्यन्तर देव असंख्यातगुणे हैं,
१४. (उनसे) तेजोलेश्या वाली वाणव्यन्तर देवियां संख्यातगुणी हैं,
१५. (उनसे) कापोतलेश्या वाले वाणव्यन्तर देव असंख्यातगुणे हैं,
१६. (उनसे) नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं,
१७. (उनसे) कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं,
१८. (उनसे) कापोतलेश्या वाली वाणव्यन्तर देवियां संख्यातगुणी हैं,
१९. (उनसे) नीललेश्या वाली देवियां विशेषाधिक हैं,
२०. (उनसे) कृष्णलेश्या वाली देवियां विशेषाधिक हैं,
२१. (उनसे) तेजोलेश्या वाले ज्योतिष्क देव संख्यातगुणे हैं,
२२. (उनसे) तेजोलेश्या वाली ज्योतिष्क देवियां संख्यातगुणी हैं।

४९. सलेस्सदीवकुमाराइणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! दीवकुमाराणं कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा !

१. सव्वत्थोवा दीवकुमारा तेउलेस्सा,
२. काउलेस्सा असंखेज्जगुणा,
३. नीललेस्सा विसेसाहिया,
४. कण्हलेस्सा विसेसाहिया। *–विया. स. १६, उ. ११, सु. ३*

उदहिकुमारा वि एवं चेव। *–विया. स. १६, उ. १२, सु. १*

४९. सलेश्य द्वीपकुमारादि का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! कृष्णलेश्या वाले यावत् तेजोलेश्या वाले द्वीपकुमारों में से कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम !

१. सबसे अल्प द्वीपकुमार तेजोलेश्या वाले हैं,
२. (उनसे) कापोतलेश्या वाले असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं।

उदधिकुमारों का अल्प बहुत्व भी इसी प्रकार है।

---

१. विया. स. २५, उ. १, सु. ३

एवं दिसाकुमारा वि। –विया. स. १६, उ. १३, सु. १
एवं थणियकुमारा वि। –विया. स. १६, उ. १४, सु. १
एवं नागकुमारा वि। –विया. स. १७, उ. १३, सु. १
सुवण्णकुमारा वि एवं चेव। –विया. स. १७, उ. १४, सु. १
विज्जुकुमारा वि एवं चेव। –विया. स. १७, उ. १५, सु. १
वाउकुमारा वि एवं चेव। –विया. स. १७, उ. १६, सु. १
अग्गिकुमारा वि एवं चेव। –विया. स. १७, उ. १७, सु. १

दिशाकुमारों का अल्प बहुत्व भी इसी प्रकार है।
स्तनितकुमारों का अल्प बहुत्व भी इसी प्रकार है।
नागकुमारों का अल्प बहुत्व भी इसी प्रकार है।
सुवर्णकुमारों का अल्प बहुत्व भी इसी प्रकार है।
विद्युतकुमारों का अल्प बहुत्व भी इसी प्रकार है।
वायुकुमारों का अल्प बहुत्व भी इसी प्रकार है।
अग्निकुमारों का अल्प बहुत्व भी इसी प्रकार है।

५०. सलेस्स जीव-चउवीसदंडएसु इड्ढि-अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पिड्ढिया वा महिड्ढिया वा?

उ. गोयमा !

१. कण्हलेस्सेहिंतो णीललेस्सा महिड्ढिया,
२. णीललेस्सेहिंतो काउलेस्सा महिड्ढिया,
३. काउलेस्सेहिंतो तेउलेस्सा महिड्ढिया,
४. तेउलेस्सेहिंतो पम्हलेस्सा महिड्ढिया,
५. पम्हलेस्सेहिंतो सुक्कलेस्सा महिड्ढिया,
६. सव्वप्पिड्ढिया जीवा कण्हलेस्सा,
७. सव्वमहिड्ढिया जीवा सुक्कलेस्सा।

प. एएसि णं भंते ! णेरइयाणं कण्हलेस्साणं, णीललेस्साणं, काउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पिड्ढिया वा, महिड्ढिया वा?

उ. गोयमा !

१. कण्हलेस्सेहिंतो णीललेस्सा महिड्ढिया,
२. णीललेस्सेहिंतो काउलेस्सा महिड्ढिया,
३. सव्वप्पिड्ढिया णेरइया कण्हलेस्सा,
४. सव्वमहिड्ढिया णेरइया काउलेस्सा।

प. एएसि णं भंते ! तिरिक्खजोणियाणं कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पिड्ढिया वा, महिड्ढिया वा?

उ. गोयमा ! जहा जीवा।

प. एएसि णं भंते ! एगिंदियतिरिक्खजोणियाणं कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पिड्ढिया वा, महिड्ढिया वा?

उ. गोयमा !

१. कण्हलेस्सेहिंतो एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो णीललेस्सा महिड्ढिया,
२. णीललेस्सेहिंतो काउलेस्सा महिड्ढिया,
३. काउलेस्सेहिंतो तेउलेस्सा महिड्ढिया,
४. सव्वप्पिड्ढिया एगिंदियतिरिक्ख जोणिया कण्हलेस्सा,
५. सव्वमहिड्ढिया तेउलेस्सा।

एवं पुढविक्काइयाण वि।

५०. सलेश्य जीव चौवीस दंडकों में ऋद्धि का अल्पबहुत्व–

प्र. इन कृष्णलेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले जीवों में से कौन, किससे अल्प ऋद्धि वाले या महाऋद्धि वाले हैं?

उ. गौतम !

१. कृष्णलेश्या वालों से नीललेश्या वाले महर्द्धिक हैं,
२. नीललेश्या वालों से कापोतलेश्या वाले महर्द्धिक हैं,
३. कापोतलेश्या वालों से तेजोलेश्या वाले महर्द्धिक हैं,
४. तेजोलेश्या वालों से पद्मलेश्या वाले महर्द्धिक हैं,
५. पद्मलेश्या वालों से शुक्ललेश्या वाले महर्द्धिक हैं,
६. कृष्णलेश्या वाले जीव सबसे अल्प ऋद्धि वाले हैं,
७. शुक्ललेश्या वाले जीव सबसे महा ऋद्धि वाले हैं।

प्र. भंते ! इन कृष्णलेश्यी, नीललेश्यी, कापोतलेश्यी नारकों में कौन, किससे अल्प ऋद्धि वाले या महाऋद्धि वाले हैं?

उ. गौतम !

१. कृष्णलेश्यी नारकों से नीललेश्यी नारक महर्द्धिक हैं,
२. नीललेश्यी नारकों से कापोतलेश्यी नारक महर्द्धिक हैं,
३. कृष्णलेश्या वाले नारक सबसे अल्प ऋद्धि वाले हैं,
४. कापोतलेश्या वाले नारक सबसे महाऋद्धि वाले हैं।

प्र. भंते ! इन कृष्णलेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले तिर्यञ्चयोनिकों में से कौन, किससे अल्प ऋद्धि वाले या महाऋद्धि वाले हैं?

उ. गौतम ! जैसे समुच्चय जीवों की अल्पऋद्धि महाऋद्धि कही उसी प्रकार तिर्यञ्चयोनिकों की कहनी चाहिए।

प्र. भंते ! कृष्णलेश्या वाले यावत् तेजोलेश्या वाले एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से कौन, किससे अल्पऋद्धि वाले या महाऋद्धि वाले हैं?

उ. गौतम !

१. कृष्णलेश्या वाले एकेन्द्रिय तिर्यञ्चों की अपेक्षा नीललेश्या वाले एकेन्द्रिय महर्द्धिक हैं,
२. नीललेश्या वालों से कापोतलेश्या वाले महर्द्धिक हैं,
३. कापोतलेश्या वालों से तेजोलेश्या वाले महर्द्धिक हैं,
४. सबसे अल्पऋद्धि वाले कृष्णलेश्या वाले एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक हैं,
५. सबसे महाऋद्धि वाले तेजोलेश्या वाले एकेन्द्रिय हैं।

इसी प्रकार पृथ्वीकायिकों की अल्पऋद्धि महाऋद्धि अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

एवं एएणं अभिलावेणं जहेव लेस्साओ भावियाओ तहेव णेयव्वं जाव चउरिंदिया।

पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं तिरिक्खजोणिणीण सम्मुच्छिमाणं गब्भवक्कंतियाण य सव्वेसिं भाणियव्वं जाव अप्पिड्ढिया वेमाणिया देवा तेउलेस्सा, सव्वमहिड्ढिया वेमाणिया देवा सुक्कलेस्सा।[1]

–पण्ण. प. १७, उ. २, सु. ११६१-११६७

इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवों तक जिनमें जितनी लेश्याएं जिस क्रम से कही गई हैं उसी क्रम से इस आलापक के अनुसार अल्प ऋद्धि या महाऋद्धि जान लेनी चाहिए।

इसी प्रकार सम्मूर्च्छिम और गर्भजपंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों तथा तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियों से तेजोलेश्या वाले वैमानिक देव अल्प ऋद्धि वाले हैं और शुक्ललेश्या वाले वैमानिक देव महाऋद्धि वाले हैं पर्यन्त सब कथन पूर्ववत् करना चाहिए।

५१. सलेस्स दीवकुमाराइणं इड्ढि अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! दीवकुमाराणं कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पिड्ढिया वा महिड्ढिया वा ?

उ. गोयमा !

१. कण्हलेस्सेहिंतो नीललेस्सा महिड्ढिया,
२. नीललेस्सेहिंतो काउलेस्सा महिड्ढिया,
३. काउलेस्सेहिंतो तेउलेस्सा महिड्ढिया,
४. सव्वप्पिड्ढिया कण्हलेस्सा सव्वमहिड्ढिया तेउलेस्सा। –विया. स. १६, उ. ११, सु. ४

उदधि दिसा-थणियकुमाराण य एवं चेव। –विया. स. १६, उ. १२-१४

नाग-सुवण्ण-विज्जु-वाउ-अग्गिकुमाराण य एवं चेव। –विया. स. १७, उ. १३-१७

५१. सलेश्य द्वीपकुमारादि कीं ऋद्धि का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन कृष्णलेश्या वाले यावत् तेजोलेश्या वाले द्वीपकुमारों में से कौन किससे अल्पऋद्धि वाले या महाऋद्धि वाले हैं ?

उ. गौतम !

१. कृष्णलेश्या वालों से नीललेश्या वाले द्वीपकुमार महर्द्धिक हैं,
२. नीललेश्या वालों से कापोतलेश्या वाले द्वीपकुमार महर्द्धिक हैं,
३. कापोतलेश्या वालों से तेजोलेश्या वाले द्वीपकुमार महर्द्धिक हैं,
४. सबसे अल्पऋद्धि वाले कृष्णलेश्यी हैं, सबसे महाऋद्धि वाले तेजोलेश्यी हैं।

उदधिकुमार, दिशाकुमार और स्तनित कुमारों की अल्पऋद्धि महाऋद्धि का अल्पवहुत्व इसी प्रकार है।

नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युतकुमार, वायुकुमार और अग्निकुमारों की अल्पऋद्धि महाऋद्धि का अल्पवहुत्व इसी प्रकार है।

५२. लेस्साणं ठाणा–

प. केवइया णं भंते ! कण्हलेस्सट्ठाणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा कण्हलेस्सट्ठाणा पण्णत्ता।

एवं जाव सुक्कलेस्सा। –पण्ण. प. १७, उ. ४, सु. १२४६

असंखेज्जा णोसप्पिणीण उस्सप्पिणीण जे समया।
संखाईया लोगा लेसाणं हुंति ठाणाइं ॥ –उत्त. अ. ३४, गा. ३३

५२. लेश्याओं के स्थान–

प्र. कृष्णलेश्या के कितने स्थान कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! कृष्णलेश्या के असंख्य स्थान कहे गये हैं।

इसी प्रकार शुक्ललेश्या पर्यन्त असंख्य स्थान जानने चाहिए।

असंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल के जितने समय या असंख्यात लोकों के जितने आकाश प्रदेश हैं उतने लेश्याओं के स्थान होते हैं।

५३. लेस्सट्ठाणाणं अप्प-बहुत्तं–

प. एएसिं णं भंते ! कण्हलेस्सट्ठाणाणं जाव सुक्कलेस्सट्ठाणाण य जहण्णगाणं दव्वट्ठयाए, पएसट्ठयाए, दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

दव्वट्ठयाए–

उ. गोयमा ! सव्वत्थोवा जहण्णगा काउलेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए,

जहण्णगा णीललेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

जहण्णगा कण्हलेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

जहण्णगा तेउलेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

५३. लेश्या के स्थानों में अल्पवहुत्व–

प्र. भंते ! इन कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या के जघन्य स्थानों में से द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेशों की अपेक्षा और द्रव्य तथा प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

द्रव्य की अपेक्षा से–

उ. गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा सबसे अल्प जघन्य कापोतलेश्या के स्थान हैं,

(उनसे) नीललेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,

(उनसे) कृष्णलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,

(उनसे) तेजोलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,

---

१. क. विया. स. १, उ. २, सु. १३
ख. विया. स. १६, उ. ११, सु. ४

जहण्णगा पम्हलेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

जहण्णगा सुक्कलेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

पएसट्ठयाए–

सव्वत्थोवा जहण्णगा काउलेस्सट्ठाणा पएसट्ठयाए,

जहण्णगा णीललेस्सट्ठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

जहण्णगा कण्हलेस्सट्ठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

जहण्णगा तेउलेस्सट्ठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

जहण्णगा पम्हलेस्सट्ठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

जहण्णगा सुक्कलेस्सट्ठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए–

सव्वत्थोवा जहण्णगा काउलेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए,

जहण्णगा णीललेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

एवं कण्हलेस्सट्ठाणा तेउलेस्सट्ठाणा पम्हलेस्सट्ठाणा,

जहण्णगा सुक्कलेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

जहण्णएहिंतो सुक्कलेस्सट्ठाणेहिंतो दव्वट्ठयाए जहण्णगा काउलेस्सट्ठाणा पएसट्ठयाए अणंतगुणा,

जहण्णगा णीललेस्सट्ठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

एवं जाव सुक्कलेस्सट्ठाणा।

प. एएसि णं भंते ! कण्हलेस्सट्ठाणाणं जाव सुक्कलेस्सट्ठाणाण य उक्कोसगाणं दव्वट्ठयाए, पएसट्ठयाए, दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! सव्वत्थोवा उक्कोसगा काउलेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए,

उक्कोसगा णीललेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

एवं जहेव जहण्णगा तहेव उक्कोसगा वि,

णवरं–उक्कोसत्ति अभिलावो।

प. एएसि णं भंते ! कण्हलेस्सट्ठाणाणं जाव सुक्कलेस्सट्ठाणाण य जहण्णुक्कोसगाणं दव्वट्ठयाए, पएसट्ठयाए, दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

दव्वट्ठयाए–

उ. गोयमा ! सव्वत्थोवा जहण्णगा काउलेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए,

जहण्णगा णीललेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

(उनसे) पद्मलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,

(उनसे) शुक्ललेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,

प्रदेशों की अपेक्षा से–

सबसे अल्प प्रदेशों की अपेक्षा कापोतलेश्या के जघन्य स्थान हैं,

(उनसे) नीललेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,

(उनसे) कृष्णलेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,

(उनसे) तेजोलेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,

(उनसे) पद्मलेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,

(उनसे) शुक्ललेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,

द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से–

सबसे अल्प द्रव्य की अपेक्षा कापोतलेश्या के जघन्य स्थान हैं,

(उनसे) नीललेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,

इसी प्रकार जघन्य कृष्णलेश्या स्थान, तेजोलेश्या स्थान, पद्मलेश्या स्थान भी क्रमशः असंख्यातगुणे हैं,

(उनसे) शुक्ललेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,

द्रव्य की अपेक्षा जघन्य शुक्ललेश्या स्थानों से कापोतलेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशों की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं,

नीललेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,

इसी प्रकार शुक्ललेश्या के स्थानों पर्यन्त असंख्यातगुणे जानना चाहिए।

प्र. भंते ! इन कृष्णलेश्या के उत्कृष्ट स्थानों यावत् शुक्ललेश्या के उत्कृष्ट स्थानों में से द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से तथा द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन, किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! सबसे अल्प द्रव्य की अपेक्षा कापोतलेश्या के उत्कृष्ट स्थान हैं।

(उनसे) नीललेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

इसी प्रकार जघन्य स्थानों के अल्पबहुत्व के समान उत्कृष्ट स्थानों का भी अल्पबहुत्व जानना चाहिए।

विशेष–जघन्य शब्द के स्थान में उत्कृष्ट शब्द कहना चाहिए।

प्र. भंते ! इन कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या के जघन्य और उत्कृष्ट स्थानों में द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से तथा द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन, किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

द्रव्य की अपेक्षा से–

उ. गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा सबसे थोड़े कापोतलेश्या के जघन्य स्थान हैं,

(उनसे) नीललेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,

एवं कण्हलेस्सट्ठाणा, तेउलेस्सट्ठाणा, पम्हलेस्सट्ठाणा,

जहण्णगा सुक्कलेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

जहण्णएहिंतो सुक्कलेस्सट्ठाणेहिंतो दव्वट्ठयाए उक्कोसा काउलेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
उक्कोसा णीललेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

एवं कण्हलेस्सट्ठाणा तेउलेस्सट्ठाणा पम्हलेस्सट्ठाणा,

उक्कोसा सुक्कलेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा।

पएसट्ठयाए–
सव्वत्थोवा जहण्णगा काउलेस्सट्ठाणा पएसट्ठयाए,
जहण्णगा णीललेस्सट्ठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

एवं जहेव दव्वट्ठयाए तहेव पएसट्ठयाए वि भाणियव्वं।

दव्वट्ठपएसट्ठयाए–
सव्वत्थोवा जहण्णगा काउलेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए,
जहण्णगा णीललेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
एवं कण्हलेस्सट्ठाणा तेउलेस्सट्ठाणा पम्हलेस्सट्ठाणा

जहण्णगा सुक्कलेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

जहण्णएहिंतो सुक्कलेस्सट्ठाणेहिंतो दव्वट्ठयाए,
उक्कोसा काउलेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
उक्कोसा णीललेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
एवं कण्हलेस्सट्ठाणा, तेउलेस्सट्ठाणा, पम्हलेस्सट्ठाणा,
उक्कोसगा सुक्कलेस्सट्ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
उक्कोसएहिंतो सुक्कलेस्सट्ठाणेहिंतो दव्वट्ठयाए,
जहण्णगा काउलेस्सट्ठाणा पएसट्ठयाए अणंतगुणा
जहण्णगा णीललेस्सट्ठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
एवं कण्हलेसट्ठाणा तेउलेसट्ठाणा पम्हलेसट्ठाणा,
जहण्णगा सुक्कलेस्सट्ठाणा असंखेज्जगुणा;
जहण्णएहिंतो सुक्कलेस्सट्ठाणेहिंतो पएसट्ठयाए उक्कोसा काउलेस्सट्ठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
उक्कोसया णीललेस्सट्ठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
एवं कण्हलेसट्ठाणा तेउलेस्सट्ठाणा पम्हलेसट्ठाणा,
उक्कोसगा सुक्कलेसट्ठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा।

–पण्ण. प. १७, उ. ४, १२४५-१२४९

५४. लेस्सऽज्झयणस्सणिक्खेवो–

तम्हा एयाण लेसाणं अणुभागे वियाणिया।
अप्पसत्थाओ वज्जित्ता पसत्थाओ अहिट्ठेज्जासि।

–उत्त. अ. ३४, गा. ६१

□

इसी प्रकार, कृष्णलेश्या, तेजोलेश्या और पद्मलेश्या के जघन्य स्थान क्रमशः असंख्यातगुणे हैं,

(उनसे) शुक्ललेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,

द्रव्य की अपेक्षा जघन्य शुक्ललेश्या स्थानों से कापोतलेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,

(उनसे) नीललेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,

इसी प्रकार कृष्णलेश्या, तेजोलेश्या और पद्मलेश्या के उत्कृष्ट स्थान क्रमशः असंख्यातगुणे हैं,

(उनसे) शुक्ललेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

प्रदेशों की अपेक्षा से–
सबसे अल्प प्रदेशों की अपेक्षा कापोतलेश्या के जघन्य स्थान हैं,
(उनसे) नीललेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,

इसी प्रकार जैसे द्रव्य की अपेक्षा अल्पबहुत्व का कथन किया गया है, वैसे ही प्रदेशों की अपेक्षा से भी अल्पबहुत्व का कथन करना चाहिए।

द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से–
कापोतलेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा सबसे अल्प हैं,
(उनसे) नीललेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
इसी प्रकार कृष्णलेश्या, तेजोलेश्या और पद्मलेश्या के जघन्य स्थान क्रमशः असंख्यातगुणे हैं,
(उनसे) शुक्ललेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
द्रव्य की अपेक्षा जघन्य शुक्ललेश्या स्थानों से कापोतलेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
(उनसे) नीललेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
इसी प्रकार कृष्णलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या एवं शुक्ललेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
द्रव्य की अपेक्षा उत्कृष्ट शुक्ललेश्या स्थानों से जघन्य कापोतलेश्या के स्थान प्रदेशों की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं,
(उनसे) जघन्य नीललेश्या स्थान प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
इसी प्रकार कृष्णलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या एवं शुक्ललेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
प्रदेशों की अपेक्षा जघन्य शुक्ललेश्या स्थानों से उत्कृष्ट कापोतलेश्या के स्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
(उनसे) उत्कृष्ट नीललेश्या के स्थान प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
इसी प्रकार कृष्णलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या एवं शुक्ललेश्या के उत्कृष्ट स्थान प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

५४. लेश्या अध्ययन का उपसंहार–

अतः लेश्याओं के अनुभाग (विपाक) को जान कर अप्रशस्त लेश्याओं का परित्याग करके प्रशस्त लेश्याओं में अधिष्ठित होना चाहिए।

□

क्रिया–अध्ययन

जैनदर्शन में 'क्रिया' एक पारिभाषिक शब्द है। इसका सम्बन्ध मन, वचन एवं काया की प्रवृत्ति रूप 'योग' से है। जब तक जीव में योग विद्यमान है तब तक उसमें क्रिया मानी गई है। जब जीव अयोगी अवस्था अर्थात् शैलेशी अवस्था को अथवा सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर लेता है तो वह अक्रिय हो जाता है। इसका तात्पर्य है कि बिना योग के क्रिया नहीं होती है। क्रिया का कारण अथवा माध्यम योग है।

व्याकरणदर्शन में सिद्ध अथवा असिद्ध द्रव्य की साध्यावस्था को क्रिया कहा गया है। साधारणतः हम किसी कार्य को सम्पन्न करने के लिए जो प्रवृत्ति करते हैं, उसे क्रिया कहते हैं। वह क्रिया जीव में भी हो सकती है और अजीव में भी, किन्तु जैनदर्शन की पारिभाषिक क्रिया का सम्बन्ध जीव से है। जीव अपनी क्रिया से अजीव में यथासम्भव हलन-चलन कर सकता है, तथापि तात्त्विक दृष्टि से क्रिया का फल जीव को मिलता है, इसलिए जीव में ही क्रिया मानी गई है। स्थानांग सूत्र में यद्यपि क्रिया के दो प्रकार कहे गए हैं–जीव क्रिया और अजीव क्रिया। किन्तु अजीव क्रिया के ऐर्यापथिकी और साम्परायिकी नाम से जो दो भेद किए गए हैं वे जीव से ही सम्बद्ध हैं, अजीव से नहीं।

कषाय की उपस्थिति में जो क्रिया होती है वह साम्परायिकी तथा कषाय रहित अवस्था में जो क्रिया होती है वह ऐर्यापथिकी कही जाती है। इसका तात्पर्य है कि क्रिया कषाय निरपेक्ष है। उसका कषाय के होने न होने से कोई सम्बन्ध नहीं है। उसका सम्बन्ध योग के होने न होने से है।

आगमों में क्रिया का विविध प्रकार से विभाजन उपलब्ध होता है। स्थानांग सूत्र में क्रिया को दो प्रकार की कहते हुए दसों विभाजन किए गए हैं। कुछ विभाजन इस प्रकार के हैं, जिनका समावेश क्रिया के पाँच भेदों, तेरह भेदों अथवा पच्चीस भेदों में हो जाता है। इसमें जीवक्रिया के जो दो भेद किए गए हैं, वे महत्त्वपूर्ण हैं--१. सम्यक्त्व क्रिया, २. मिथ्यात्व क्रिया। सम्यक्त्वपूर्वक की गई क्रिया सम्यक्त्व क्रिया तथा मिथ्यात्वी की क्रिया को मिथ्यात्व क्रिया कह सकते हैं। क्रिया में राग एवं द्वेष निमित्त बनते हैं, इसलिए क्रिया के दो भेद ये भी हैं–१. प्रेयः प्रत्यया (रागजन्या) और २. द्वेष प्रत्यया। फिर प्रेयः प्रत्यया को माया एवं लोभ के रूप में तथा द्वेष प्रत्यया को क्रोध एवं मान के रूप में विभक्त किया गया है।

जिस निमित्त, हेतु, फल अथवा साधन से क्रिया की जाती है उसी निमित्त, हेतु साधन अथवा फल के आधार पर क्रिया का नामकरण कर दिया जाता है। इसीलिए क्रिया के अनेक विभाजन हैं।

व्याख्याप्रज्ञप्ति , प्रज्ञापना, स्थानांग, समवायांग आदि सूत्रों में क्रिया के पाँच प्रकार ये कहे गए हैं–१. कायिकी, २. आधिकरणिकी, ३. प्राद्वेषिकी, ४. पारितापनिकी और ५. प्राणातिपातिकी। जिस क्रिया में काया की प्रमुखता हो उसे कायिकी क्रिया कहते हैं। जो क्रिया शस्त्र आदि उपकरणों की सहायता से की जाती है उसे आधिकरणिकी क्रिया कहते हैं। जो क्रिया द्वेषपूर्वक की जाती है उसे प्राद्वेषिकी, जो क्रिया दूसरे प्राणियों को कष्टकारी हो उसे पारितापनिकी तथा दूसरे प्राणियों के प्राणों का अतिपात करने वाली क्रिया को प्राणातिपातिकी क्रिया कहते हैं। जीव के चौबीस ही दण्डकों में ये पाँचों प्रकार की क्रियाएँ पायी जाती हैं। यह अवश्य है कि जिस समय जीव कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी क्रिया से स्पृष्ट होता है, उस समय पारितापनिकी और प्राणातिपातिकी क्रिया से कोई जीव स्पृष्ट होता है तथा कोई नहीं होता। इन पाँच क्रियाओं में प्रारम्भ की तीन क्रियाओं कायिकी, आधिकरणिकी एवं प्राद्वेषिकी में सहभाव है, अर्थात् ये तीन क्रियाएँ नियमतः साथ होती हैं, किन्तु पारितापनिकी एवं प्राणातिपातिकी क्रियाओं का इनसे सहभाव नियत नहीं है। कदाचित् ये साथ होती हैं और कदाचित् नहीं। यह निर्धारित है कि जब प्राणातिपातिकी क्रिया होती है तो उस जीव के पूर्व की चारों क्रियाएँ होती हैं, किन्तु पारितापनिकी क्रिया के होने पर प्राणातिपातिकी क्रिया का होना आवश्यक नहीं है। शेष तीन क्रियाएँ होती हैं। इन क्रियाओं के सहभाव पर प्रस्तुत अध्ययन में जीव, समय, देश एवं प्रदेश की एकता के आधार पर चार बिन्दुओं से विचार किया गया है। कायिकी आदि ये पाँचों क्रियाएँ जीव को संसार से जोड़ने वाली होने के कारण आयोजिका क्रियाएं कही गई हैं।

एक अन्य विभाजन के अनुसार पाँच क्रियाएँ ये हैं–१. आरम्भिकी , २. पारिग्रहिकी, ३. मायाप्रत्यया, ४. अप्रत्याख्यान क्रिया और ५. मिथ्यादर्शनप्रत्यया। इनमें से आरम्भिकी क्रिया प्रमाद की उपस्थिति में होती है. आरम्भयुक्त अथवा हिंसायुक्त क्रिया को आरम्भिकी क्रिया कहते हैं। परिग्रहपूर्वक की गई क्रिया पारिग्रहिकी होती है। माया के निमित्त से की गई क्रिया माया प्रत्यया है। अप्रत्याख्यानी जीव की अविरति के कारण होने वाली क्रिया अप्रत्याख्यान क्रिया कहलाती है तथा मिथ्यात्व के कारण उत्पन्न क्रियाएँ मिथ्यादर्शन प्रत्यया कही गयी है मिथ्यादृष्टि जीवों में ये पाँचों क्रियाएँ पायी जाती हैं तथा सम्यग्दृष्टि जीवों में मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया को छोड़कर चारों क्रियाएँ पायी जाती हैं। इन पाँचों क्रियाओं के सहभाव का नियम भिन्न है। जिस जीव में मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया पाई जाती है, उसमें शेष चारों क्रियाएँ निश्चित रूप से होती हैं। जिसमें अप्रत्याख्यान क्रिया होती है उसमें मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया वैकल्पिक रूप से होती है किन्तु शेष तीनों क्रियाएँ उसमें होती है। मायाप्रत्यया क्रिया वाले के शेष चारों क्रियाएँ वैकल्पिक रूप से होती हैं। जिसके पारिग्रहिकी क्रिया होती है उसके आरम्भिकी एवं मायाप्रत्यया क्रिया निश्चित रूप से होती है, किन्तु शेष दो क्रियाएँ वैकल्पिक होती हैं। आरम्भिकी क्रिया के साथ मायाप्रत्यया क्रिया नियम से होती है, किन्तु शेष तीन क्रियाएँ कदाचित् होती हैं तथा कदाचित् नहीं। चौबीस दण्डकों में किनके कितनी क्रियाएँ होती हैं इसका इस अध्ययन में निर्देश है। अठारह पाप स्थानों में प्रत्येक से विरत जीव किस प्रकार की क्रियाएँ करता है इसका भी इस अध्ययन में उल्लेख हुआ है

आरम्भिकी आदि क्रियाओं में सबसे अल्प मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रियाएँ हैं, उनसे अप्रत्याख्यान, पारिग्रहिकी एवं आरम्भिकी क्रियाएँ उत्तरोत्तर विशेषाधिक हैं तथा मायाप्रत्यया क्रियाएं सबसे अधिक हैं।

क्रियाओं के पंचविध होने का निरूपण अन्य प्रकारों से भी हुआ है, यथा–१. दृष्टि-विकार जन्य क्रिया, २. स्पर्श सम्बन्धी, ३. बाहर के निमित्त से उत्पन्न, ४. समूह से होने वाली, ५. अपने हाथ से होने वाली। दूसरा प्रकार है–१. बिना शस्त्र के होने वाली क्रिया, २. आज्ञा देने से होने वाली क्रिया. ३. छेदन भेदन जन्य क्रिया, ४. अज्ञानता से होने वाली क्रिया और ५. बिना आकांक्षा के होने वाली क्रिया। ये सभी क्रियाएँ नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक २४ दण्डकों में पाई जाती है। मनुष्यों में पाँच प्रकार की क्रियाएँ इस प्रकार निरूपित हैं–१. रागभाव-जन्य क्रिया, २. द्वेषभाव जन्य क्रिया, ३.मन आदि की दुष्चेष्टाओं से जन्य क्रिया, ४. सामूहिक रूप से होने वाली क्रिया और ५. गमनागमन से होने वाली क्रिया।

पाँच क्रियाएँ ये भी हैं–१. प्राणातिपात क्रिया, २. मृषावाद क्रिया, ३. अदत्तादान क्रिया. ४. मैथुन क्रिया और ५. परिग्रह क्रिया। ये पाँचों क्रियाएँ ष्ट हैं, आत्मकृत हैं तथा आनुपूर्वीकृत हैं। ये पाँचों क्रियाएँ आस्रव के भेदों में भी समाहित हैं।

क्रिया से आस्रव होता है। आस्रव के अनन्तर कर्म-बन्ध होता है। यदि क्रिया कषाय युक्त है तो बन्द अवश्य होता है और यदि क्रिया कषाय रहित तो मात्र आस्रव होता है, बन्ध नहीं।

यही कारण है कि दो प्रकार के क्रिया स्थान होते हैं–१. धर्मस्थान और २. अधर्म स्थान। धर्मयुक्त क्रिया धर्मस्थान की द्योतक है तथा अधर्मपूर्वक ी गई क्रिया अधर्मस्थान की बोधक है। उत्तराध्ययन सूत्र में दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, विनय, सत्य, समिति, गुप्ति आदि क्रियाओं में रुचि होने को ञया रुचि कहा है। क्रिया शब्द एक प्रकार से चारित्र के अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः' के अन्तर्गत क्रिया शब्द चारित्र के लिए ही प्रयुक्त आ है। इस प्रकार ज्ञान के आचरण रूप जो चारित्र है वह धर्मस्थान क्रिया है, शेष सब क्रियाएँ अधर्मस्थान के अन्तर्गत आती हैं।

अधर्म स्थान रूप में १३ क्रिया स्थान कहे गए हैं, यथा–१. अर्थदण्ड, २. अनर्थदण्ड, ३. हिंसादण्ड, ४. अकस्मात् दण्ड, ५. दृष्टिविपर्यास दण्ड, . मृषाप्रत्ययिक, ७. अदत्तादान प्रत्ययिक, ८. अध्यात्म प्रत्ययिक (दुश्चिन्तन वाली), ९. मान प्रत्ययिक, १०. मित्रद्वेषप्रत्ययिक, ११. मायाप्रत्ययिक, २. लोभप्रत्ययिक और १३. ईर्यापथिक। इनमें से प्रारम्भ के ५ भेदों में जो दण्ड शब्द है वह क्रिया का ही बोधक है। ईर्यापथिक क्रिया के अतिरिक्त न्य क्रियाओं में कषाय या प्रमाद की विद्यमानता है। इन तेरह क्रिया स्थानों का इस अध्ययन में उदाहरण देकर विस्तार से निरूपण हुआ है। अधर्मपक्षीय र्शनिकों एवं चिन्तकों के मतों का भी खण्डन किया गया है। यह प्रतिपादित किया गया है कि जो श्रमण-ब्राह्मण यह मानते हैं कि सब प्राण यावत् सत्वों ा हनन किया जा सकता है। अधीन बनाया जा सकता है, दास बनाया जा सकता है, परिताप दिया जा सकता है, क्लान्त किया जा सकता है और णों से वियोजित किया जा सकता है, वे अनेक दुःखों के भागी होंगे।

तेरहवें ईर्यापथिक क्रियास्थान को धर्मपक्षीय क्रिया स्थान माना गया है। इसके अन्तर्गत अणगार पाँच समितियों से समित होता है, तीन गुप्तियों से प्त होता है, ब्रह्मचर्य की नौ वाड़ से युक्त होता है, उपयोग पूर्वक बैठता है, खड़ा होता है अथवा प्रत्येक क्रिया उपयोगपूर्वक करता है वह ईर्यापथिक ञया करता है। इस तेरहवें क्रिया स्थान से ही प्रत्येक जीव सिद्ध होता है। इनकी विचारधारा अधर्म पक्षीय चिन्तकों एवं दार्शनिकों से विपरीत होती है। किसी जीव का हनन करना, उसे अधीन बनाना, दास बनाना, परिताप देना आदि क्रियाओं के त्यागी होते हैं। ये समस्त दुःखों का अन्त कर लेते हैं। सके अनन्तर अक्रिया की स्थिति बनती है। अक्रिया का फल सिद्धि प्राप्त करना है।

व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र के अन्तर्गत क्रिया सम्बन्धी अनेक प्रश्न हैं, जिनका उत्तर भगवान् महावीर देते हैं। एक प्रश्न है जयन्ती का–भन्ते ! जीवों का प्त रहना अच्छा है या जागृत रहना अच्छा है? भगवान् ने उत्तर दिया–जयन्ती ! जो अधार्मिक, अधर्मिष्ठ, अधर्म का कथन करने वाले, अधर्म से ाजीविका करने वाले जीव हैं, उनका सुप्त रहना अच्छा है तथा जो धार्मिक हैं, धर्मानुसारी यावत् धर्म से ही आजीविका चलाने वाले हैं, उन जीवों ा जागृत रहना अच्छा है। कोई पुरुष किसी त्रस जीव को मारता है तो क्या उस समय अन्य प्राणियों को भी मारता है? भगवान् का उत्तर हाँ में जाता , क्योंकि वह मारने की क्रिया करते समय तक अन्य त्रस प्राणियों को भी मारता है। धनुष चलाने वाले पुरुष को कायिकी से लेकर प्राणातिपातिकी क की कितनी क्रियाएँ लगती हैं? भगवान उत्तर देते हैं कि जब पुरुष धनुष को ग्रहण करता है यावत् प्राणियों को जीवन से रहित कर देता है तब ह कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी रूप पाँचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है। यही नहीं जिन जीवों के शरीरों से वह धनुष निष्पन्न हुआ है वे जीव भी ायिकी यावत् प्राणातिपातिकी क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं। यह तथ्य चौंकाने वाला है, क्योंकि मृत्यु को प्राप्त जीव अपने निर्जीव चर्म से किस प्रकार र्मास्रव करता है, यह विचारणीय बिन्दु है। ऐसे ही अनेक रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक प्रश्न इस अध्ययन में समाहित हैं।

चौबीस दण्डकों में एक जीव एक जीव की अपेक्षा कदाचित् तीन, चार या पाँच क्रियाओं वाला तथा कदाचित् अक्रिय होता है। एक जीव अनेक ीवों की अपेक्षा, अनेक जीव एक जीव की अपेक्षा, और अनेक जीव अनेक जीवों की अपेक्षा भी इसी प्रकार तीन , चार या पाँच क्रियाओं वाले अथवा क्रिय होते हैं। पाँच शरीरों की अपेक्षा भी चौबीस दण्डकों में क्रियाओं का निरूपण हुआ है।

अठारह पापों की संख्या अठारह क्रियाओं के रूप में वर्णित हैं। ये अठारह क्रियाएँ प्राणातिपात, मृषावाद आदि से लेकर मिथ्यादर्शन शल्य पर्यन्त । इन क्रियाओं का निरूपण करते समय प्रश्न किया गया–एक जीव प्राणातिपात क्रिया से कितनी कर्म प्रकृतियां बाँधता है? उत्तर में कहा गया–सात ा आठ कर्म प्रकृतियाँ बाँधता है। आयुष्य कर्म का बन्ध करने पर आठ अन्यथा सात कर्मों का बन्ध करता है। इसी प्रकार मृषावाद से लेकर मिथ्यादर्शन ाल्य तक सात या आठ कर्मों का बन्ध होता है।

जिस प्रकार अठाहर पाप क्रियाओं में प्रवृत्ति होती है उसी प्रकार उनसे विरमण भी किया जा सकता है।

क्रिया के २५ भेद भी मिलते हैं। तत्त्वार्थ सूत्र में २५ क्रियाएँ कही गई हैं। पं. सुखलाल जी ने उन्हें इस प्रकार गिनाया है–सम्यक्त्व क्रिया, २. मिथ्यात्व क्रिया, ३. प्रयोग क्रिया, ४. समादान क्रिया, ५. ईर्यापथ क्रिया, ६. कायिकी, ७. आधिकरणिकी, ८. प्राद्वेषिकी, ९. पारितापनिकी, १०. ाणातिपातिकी, ११. दर्शन क्रिया, १२. स्पर्शन क्रिया, १३. प्रात्ययिकी क्रिया, १४. समन्तानुपातन क्रिया, १५. अनाभोग क्रिया, १६. स्वहस्त क्रिया, १७. निसर्ग क्रिया, १८. विदार क्रिया, १९. आज्ञा व्यापादिकी क्रिया, २०. अनवकांक्ष क्रिया, २१. आरम्भ क्रिया, २२. पारिग्रहिकी, २३. माया प्रत्यया, २४. मिथ्यादर्शन प्रत्यया, २५. अप्रत्याख्यान क्रिया। प्रायः इन पच्चीस क्रियाओं का समावेश इस अध्ययन में क्रिया के निरूपित विभिन्न विभाजनों में हो गया है।

इस अध्ययन में क्रिया का व्यापक विवेचन हुआ है। कर्म, आस्रव, योग, बन्ध और कषाय के साथ क्रिया का क्या एवं कितना सम्बन्ध है, इसे अध्ययन का अनुशीलन करने के अनन्तर अच्छी तरह समझा जा सकता है।

संसार का अन्त करने वाली क्रिया को अन्तक्रिया कहा गया है, इसका चार प्रकार से निरूपण है।

अन्त में यह कहा जा सकता है क्रिया दोनों प्रकार की होती है–धर्मस्थान रूप भी एवं अधर्मस्थान रूप भी। अधर्मपरक क्रिया का त्याग कर धर्मपरक क्रिया अपनाने में ही मुक्ति का मार्ग निहित है।

२७. किरिया-अज्झयणं

सूत्र

१. किरिया-अज्झयणस्स उक्खेवो–

णत्थि किरिया अकिरिया वा, णेवं सन्नं निवेसए।
अत्थि किरिया अकिरिया वा, एवं सन्नं निवेसए॥

–सूय. सु. २, अ. ५, गा. ७७२

२. किरियारुई सरूवं–

दंसणनाणचरित्ते, तव विणए सच्च समिइ गुत्तीसु।
जो किरिया भावरुई, सो खलु किरियारुई नामं॥

–उत्त. अ. २८, गा. २५

३. जीवेसु सकिरियत्त-अकिरियत्त परूवणं–

प. जीवाणं भंते ! किं सकिरिया, अकिरिया?

उ. गोयमा ! जीवा सकिरिया वि, अकिरिया वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जीवा सकिरिया वि, अकिरिया वि"?

उ. गोयमा ! जीवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. संसारसमावण्णगा य, २. असंसारसमावण्णगा य।

१. तत्थ णं जे ते असंसारसमावण्णगा ते णं सिद्धा, सिद्धा अकिरिया।

२. तत्थ णं जे ते संसारसमावण्णगा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सेलेसिपडिवण्णगा य, २. असेलेसिपडिवण्णगा य।

१. तत्थ णं जे ते सेलेसिपडिवण्णगा ते णं अकिरिया।

२. तत्थ णं जे ते असेलेसिपडिवण्णगा ते णं सकिरिया।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जीवा सकिरिया वि, अकिरिया वि।"

–पण्ण. प. २२, सु. १५७३

४. ओहेण किरिया–

एगा किरिया[1]।

–ठाणं अ. १, सु. ४

५. विविहावेक्खया किरियाणं भेयप्पभेयाओ–

दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. जीवकिरिया चेव, २. अजीवकिरिया चेव।

१. जीवकिरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सम्मत्तकिरिया चेव, २. मिच्छत्तकिरिया चेव।

२. अजीवकिरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. इरियावहिया चेव,

२. संपराइया चेव।

दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

---

1. [illegible]

२७. क्रिया अध्ययन

१. क्रिया अध्ययन का उपोद्‌घात–

'क्रिया और अक्रिया नहीं है ऐसी संज्ञा नहीं रखनी चाहिए, अपितु क्रिया भी है और अक्रिया भी है ऐसी मान्यता रखनी चाहिए।

२. क्रिया रुचि का स्वरूप–

दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, विनय, सत्य, समिति और गुप्ति आदि क्रियाओं में जिसकी भाव से रुचि है वह क्रिया रुचि है।

३. जीवों में सक्रियत्व-अक्रियत्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जीव सक्रिय होते हैं या अक्रिय होते हैं?

उ. गौतम ! जीव सक्रिय भी होते हैं और अक्रिय भी होते हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जीव सक्रिय भी होते हैं और अक्रिय भी होते हैं?"

उ. गौतम ! जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. संसारसमापन्नक, २. असंसारसमापन्नक।

१. उनमें से जो असंसारसमापन्नक (संसारमुक्त) हैं वे सिद्ध जीव हैं और जो सिद्ध हैं वे अक्रिय हैं।

२. उनमें से जो संसारसमापन्नक (संसारप्राप्त) हैं, वे भी दो प्रकार के हैं, यथा–

१. शैलेशीप्रतिपन्नक, २. अशैलेशी प्रतिपन्नक।

१ उनमें से जो शैलेशी-प्रतिपन्नक (अयोगी) हैं वे अक्रिय हैं।

२. उनमें से जो अशैलेशी-प्रतिपन्नक (सयोगी) हैं, वे सक्रिय हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जीव सक्रिय भी हैं और अक्रिय भी हैं।'

४. एक प्रकार की क्रिया–

क्रिया एक है।

५. विविध अपेक्षाओं से क्रियाओं के भेद-प्रभेद–

क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. जीव क्रिया, २. अजीव क्रिया।

१. जीव क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. सम्यक्त्व क्रिया, २. मिथ्यात्व क्रिया।

२. अजीव क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. ऐर्यापथिकी (कषायमुक्त की क्रिया),

२. साम्परायिकी (कषाययुक्त की क्रिया)।

क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. काइया चेव,
२. अहिगरणिया चेव।

१. काइया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
   १. अणुवरयकायकिरिया चेव,
   २. दुपउत्तकायकिरिया चेव।

२. अहिगरणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
   १. संजोयणाधिकरणिया चेव,
   २. णिव्वत्तणाधिकरणिया चेव[1]।

दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
   १. पाओसिया चेव,
   २. पारियावणिया चेव।

१. पाओसिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
   १. जीवपाओसिया चेव,
   २. अजीवपाओसिया चेव। *–ठाणं अ. २, उ. २, सु. ५०/१-८*

प. पाओसिया णं भंते ! किरिया कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
   १. जे णं अप्पणो वा, २. परस्स वा, ३. तदुभयस्स वा-असुभं मणं पहारेइ।
   से त्तं पाओसिया किरिया। *–पण्ण. प. २२, सु. १५७०*

पारियावणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
   १. सहत्थपारियावणिया चेव,
   २. परहत्थपारियावणिया चेव[2]। *–ठाणं. अ.२, उ. २, सु. ५०/९*

प. पारियावणिया णं भंते ! किरिया कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
   १. जे णं अप्पणो वा, २. परस्स वा, ३. तदुभयस्स वा-असायं वेयणं उदीरेइ।
   से त्तं पारियावणिया किरिया। *–पण्ण. प. २२, सु. १५७१*

दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
   १. पाणाइवाय किरिया चेव,
   २. अपच्चक्खाणकिरिया चेव।

१. पाणाइवायकिरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
   १. सहत्थपाणाइवायकिरिया चेव,
   २. परहत्थपाणाइवायकिरिया चेव[3]। *–ठाणं अ. २, उ. २, सु. ५०/१०-११*

प. पाणाइवायकिरिया णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. कायिकी (काया से होने वाली) (क्रिया),
२. आधिकरणिकी (शस्त्रादि से होने वाली) क्रिया।

१. कायिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–
   १. अनुपरतकायक्रिया (विरति रहित व्यक्ति की क्रिया),
   २. दुष्प्रयुक्तकाय क्रिया (विषयासक्त की क्रिया)।

२. आधिकरणिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–
   १. संयोजनाधिकरणिकी (शस्त्र जोड़ने की क्रिया),
   २. निर्वर्तनाधिकरणिकी (शस्त्र निर्माण की क्रिया)।

क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–
   १. प्राद्वेषिकी (ईर्ष्या करने की क्रिया),
   २. पारितापनिकी (परिताप देने की क्रिया)।

१. प्राद्वेषिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–
   १. जीवप्राद्वेषिकी (जीव के प्रति ईर्ष्याभाव),
   २. अजीवप्राद्वेषिकी (अजीव के प्रति ईर्ष्याभाव)।

प्र. भंते ! प्राद्वेषिकी (द्वेष उत्पन्न करने वाली) क्रिया कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! तीन प्रकार की कही गई है, यथा–
   १. स्व. (अपना), २. पर (अन्य का), ३. उभय (दोनों का) जिससे मन अशुभ परिणत हो जाता है।
   यह प्राद्वेषिकी क्रिया का वर्णन है।

पारितापनिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–
   १. स्वहस्तपारितापनिकी (अपने हाथ से कष्ट देने की क्रिया)
   २. परहस्तपारितापनिकी (दूसरे के हाथ से कष्ट दिलाने की क्रिया)।

प्र. भंते ! पारितापनिकी (परिताप देने वाली) क्रिया कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! तीन प्रकार की कही गई है, यथा–
   १. स्व, २. पर, ३. उभय, को जिससे दुःख उत्पन्न हो जाता है।
   यह पारितापनिकी क्रिया का वर्णन है।

क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–
   १. प्राणातिपात क्रिया (जीव वध से होने वाली क्रिया)
   २. अप्रत्याख्यान क्रिया (अविरति से होने वाली क्रिया)

१. प्राणातिपात क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–
   १. स्वहस्तप्राणातिपात क्रिया (अपने हाथ से मारने पर होने वाली क्रिया)
   २. परहस्तप्राणातिपात क्रिया (दूसरे के हाथ से मरवाने पर होने वाली क्रिया)

प्र. भंते ! प्राणातिपात (जीव समाप्त करने वाली) क्रिया कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

---

१. (क) पण्ण. प. २२, सु. १५६८-१५६९
   (ख) विया. स. ३, उ. ३, सु. २-४
२. विया. स. ३, उ. ३, सु. ५-६
३. विया. स. ३, उ. ३, सु. ७

१. जे णं अप्पाणं वा, २. परं वा, ३. तदुभयं वा जीवियाओ ववरोवेइ।

से त्तं पाणाइवाय किरिया। -पण्ण. प. २२, सु. १५७२

२. अपच्चक्खाणकिरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-

१. जीव अपच्चक्खाणकिरिया चेव,

२. अजीव अपच्चक्खाणकिरिया चेव।

दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-

१. आरंभिया चेव,

२. पारिग्गहिया चेव।

१. आरंभिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-

१. जीवआरंभिया चेव,

२. अजीवआरंभिया चेव।

२. पारिग्गहिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-

१. जीवपारिग्गहिया चेव,

२. अजीवपारिग्गहिया चेव।

दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-

१. मायावत्तिया चेव,

२. मिच्छादंसणवत्तिया चेव।

१. मायावत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-

१. आयभाववंकणया चेव,

२. परभाववंकणया चेव।

२. मिच्छादंसणवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-

१. ऊणाइरित्तमिच्छादंसणवत्तिया चेव,

२. तव्वइरित्तमिच्छादंसणवत्तिया चेव।

दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-

१. दिट्ठिया चेव,

२. पुट्ठिया चेव।

१. दिट्ठिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-

१. जीवदिट्ठिया चेव,

२. अजीवदिट्ठिया चेव।

२. पुट्ठिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-

१. जीवपुट्ठिया चेव,

२. अजीवपुट्ठिया चेव।

दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-

१. स्व, २. पर, ३. उभय का जिससे जीव नष्ट कर दिया जाता है।

यह प्राणातिपात क्रिया का वर्णन है।

२. अप्रत्याख्यान क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा-

१. जीव अप्रत्याख्यान क्रिया (जीव सम्बन्धी अविरति से होने वाली क्रिया),

२. अजीव अप्रत्याख्यान क्रिया (अजीव सम्बन्धी अविरति से होने वाली क्रिया)।

क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा-

१. आरम्भिकी क्रिया (पापार्जन की क्रिया),

२. पारिग्रहिकी क्रिया (परिग्रह से होने वाली क्रिया)।

१. आरम्भिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा-

१. जीव आरम्भिकी क्रिया (जीव मारने की क्रिया),

२. अजीव आरम्भिकी क्रिया (अचेतन पदार्थों को तोड़ने की क्रिया)।

२. पारिग्रहिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा-

१. जीव पारिग्रहिकी क्रिया (सजीव पदार्थों के प्रति मूर्च्छा की),

२. अजीव पारिग्रहिकी (अजीव पदार्थों के प्रति मूर्च्छा की)।

क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा-

१. मायाप्रत्यया (कपट से की जाने वाली क्रिया),

२. मिथ्यादर्शनप्रत्यया (झूठी श्रद्धा से की जाने वाली क्रिया)।

१. माया प्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा-

१. आत्मभाव-वंचना (अपना बड़प्पन दिखाने की क्रिया),

२. परभाव वंचना (दूसरों को ठगने की क्रिया)।

२. मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा-

१. ऊनातिरिक्त मिथ्यादर्शनप्रत्यया (तत्वों का न्यूनाधिक स्वरूप कहने की) क्रिया,

२. तद्-व्यतिरिक्त मिथ्यादर्शनप्रत्यया (तत्वों का विपरीत स्वरूप कहने की) क्रिया।

क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा-

१. दृष्टिजा (रागभाव से देखने की क्रिया),

२. स्पृष्टिजा (रागभाव से स्पर्श करने की क्रिया)।

१. दृष्टिजा क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा-

१. जीवदृष्टिजा (रागभाव से सजीव पदार्थों को देखने की क्रिया),

२. अजीवदृष्टिजा (रागभाव से अजीव पदार्थों को देखने की क्रिया)।

२. स्पृष्टिजा क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा-

१. जीवस्पृष्टिजा (रागभाव से सजीव पदार्थों को स्पर्श करने की क्रिया),

२. अजीवस्पृष्टिजा (राग भाव से अजीव पदार्थों को स्पर्श करने की क्रिया)।

क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा-

१. पाडुच्चिया चेव,
२. सामन्तोवणिवाइया चेव।

१. पाडुच्चिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. जीवपाडुच्चिया चेव,
२. अजीवपाडुच्चिया चेव।

२. सामन्तोवणिवाइया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. जीवसामन्तोवणिवाइया चेव,
२. अजीवसामन्तोवणिवाइया चेव।

दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. साहत्थिया चेव,
२. णेसत्थिया चेव।

१. साहत्थिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. जीवसाहत्थिया चेव,
२. अजीवसाहत्थिया चेव।

२. णेसत्थिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. जीवणेसत्थिया चेव,
२. अजीवणेसत्थिया चेव।

दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. आणवणिया चेव,
२. वेयारणिया चेव।

१. आणवणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. जीवआणवणिया चेव,
२. अजीवआणवणिया चेव।

२. वेयारणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. जीववेयारणिया चेव,
२. अजीववेयारणिया चेव।

दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. अणाभोगवत्तिया चेव,
२. अणवकंखवत्तिया चेव।

१. अणाभोगवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-
१. अणाउत्तआइयणया चेव,
२. अणाउत्तपमज्जणया चेव।

२. अणवकंखवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. आयसरीरअणवकंखवत्तिया चेव,

१. प्रातीत्यिकी (बाह्य पदार्थों से की जाने वाली क्रिया),
२. सामन्तोपनिपातिकी (प्रशंसा सुनने पर होने वाली क्रिया)।

१. प्रातीत्यिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. जीवप्रातीत्यिकी (जीव के निमित्त से होने वाली क्रिया),
२. अजीवप्रातीत्यिकी (अजीव के निमित्त से होने वाली क्रिया)।

२. सामन्तोपनिपातिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. जीवसामन्तोपनिपातिकी क्रिया (अपने सजीव पदार्थों की प्रशंसा),
२. अजीवसामन्तोपनिपातिकी क्रिया (अपने अजीव पदार्थों की प्रशंसा सुनने पर होने वाली क्रिया)।

क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. स्वहस्तिकी (अपने हाथ से होने वाली क्रिया),
२. नैसृष्टिकी (किसी वस्तु के फेंकने से होने वाली क्रिया)।

१. स्वहस्तिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. जीवस्वहस्तिकी (अपने हाथ में रहे हुए जीव से दूसरे जीव को मारने की क्रिया),
२. अजीवस्वहस्तिकी (अपने हाथ में रहे हुए शस्त्र से दूसरे जीव को मारने की क्रिया)।

२. नैसृष्टिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. जीव नैसृष्टिकी (जीव को फेंकने से होने वाली क्रिया),
२. अजीव नैसृष्टिकी (अजीव को फेंकने से होने वाली क्रिया)।

क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. आज्ञापनी (आज्ञा देने से होने वाली क्रिया),
२. वैदारिणी (पदार्थों को छिन्न-भिन्न करने की क्रिया)।

१. आज्ञापनी क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. जीव-आज्ञापनी (अन्य व्यक्तियों को आज्ञा देने की क्रिया),
२. अजीव-आज्ञापनी (अजीव पदार्थों के संबंध में आज्ञा देने की क्रिया)।

२. वैदारिणी क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. जीव-वैदारिणी (जीवों को छिन्न-भिन्न करने की क्रिया),
२. अजीव-वैदारिणी (अजीवों को छिन्न-भिन्न करने की क्रिया)।

क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. अनाभोगप्रत्यया (असावधानी से होने वाली क्रिया),
२. अनवकांक्षाप्रत्यया (परिणाम सोचे बिना की जाने वाली क्रिया)।

१. अनाभोगप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. अनायुक्त-आदानता (असावधानी से वस्त्र आदि लेने की क्रिया),
२. अनायुक्त प्रमार्जनता (असावधानी से पात्र आदि के प्रतिलेखन की क्रिया)।

२. अनवकांक्षाप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. आत्मशरीर अनवकांक्षाप्रत्यया (स्व शरीर की अपेक्षा न रखकर की जाने वाली क्रिया),

२. परसरीरअणवकंखवत्तिया चेव।

दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. पेज्जवत्तिया चेव,

२. दोसवत्तिया चेव।

१. पेज्जवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. मायावत्तिया चेव,

२. लोहवत्तिया चेव।

२. दोसवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. कोहे चेव,

२. माणे चेव। –ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ५०/१३-३६

६. काइयाइ पंच किरियाओ–

तेणं कालेणं तेणं समएणं जाव अंतेवासी मंडियपुत्ते णामं अणगारे पगइभद्दए जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी–

प. कइ णं भंते ! किरियाओ पण्णत्ताओ?

उ. मंडियपुत्ता ! पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. काइया, २. अहिगरणिया, ३. पाओसिया, ४. पारियावणिया, ५. पाणाइवायकिरिया[1]।

–विया. स. ३, उ. १, सु. १-२

७. चउवीसदंडएसु काइयाइ पंच किरियाओ–

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! कइ किरियाओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. काइया जाव ५. पाणाइवायकिरिया।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियाणं।

–पण्ण. प. २२, सु. १६०६

८. जीवेसु काइयाइ किरियाणं पुट्ठापुट्ठभाव परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! जं समयं काइयाए आहिगरणियाए पाओसियाए किरियाए पुट्ठे तं समयं पारियावणियाए किरियाए पुट्ठे पाणाइवायकिरियाए पुट्ठे?

उ. १. गोयमा ! अत्थेगइए जीवे एगइयाओ जीवाओ जं समयं काइयाए आहिगरणियाए पाओसियाए किरियाए पुट्ठे तं समयं पारियावणियाए किरियाए पुट्ठे, पाणाइवाय किरियाए पुट्ठे।

२. अत्थेगइए जीवे एगइयाओ जीवाओ जं समयं काइयाए आहिगरणियाए पाओसियाए किरियाए पुट्ठे तं समयं पारियावणियाए किरियाए पुट्ठे, पाणाइवायकिरियाए अपुट्ठे।

२. पर-शरीर-अनवकांक्षाप्रत्यया (दूसरे के शरीर की अपेक्षा न रखकर की जाने वाली क्रिया)।

क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. प्रेयःप्रत्यया (राग भाव से होने वाली क्रिया),

२. द्वेषप्रत्यया (द्वेष भाव से होने वाली क्रिया)।

१. प्रेयःप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. माया प्रत्यया (राग भाव से कपट करके की जाने वाली क्रिया),

२. लोभ प्रत्यया (राग भाव से लोभ करके की जाने वाली क्रिया)।

२. द्वेषप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. क्रोधप्रत्यया (क्रोध से की जाने वाली क्रिया),

२. मान प्रत्यया (मान से की जाने वाली क्रिया)।

६. कायिकी आदि पांच क्रियाएं–

उस काल और उस समय में भगवान के अन्तेवासी शिष्य प्रकृतिभद्र मंडितपुत्र नामक अनगार ने यावत् पर्युपासना करते हुए इस प्रकार पूछा–

प्र. भंते ! क्रियाएं कितनी कही गई हैं?

उ. मंडितपुत्र ! पांच क्रियाएं कही गई हैं, यथा–

१. कायिकी, २. आधिकरणिकी, ३. प्राद्वेषिकी, ४. पारितापनिकी, ५. प्राणातिपातक्रिया।

७. चौबीस दंडकों में कायिकी आदि पांच क्रियाएं–

प्र. दं. १. भंते ! नारकों में कितनी क्रियाएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! पांच क्रियाएं कही गई हैं, यथा–

१. कायिकी यावत् ५. प्राणातिपातक्रिया।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त पांच क्रियाएं जाननी चाहिए।

८. जीवों में कायिकी आदि क्रियाओं के स्पृष्टास्पृष्टभाव का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जिस समय जीव कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी क्रिया से स्पृष्ट होता है, क्या उस समय पारितापनिकी क्रिया से स्पृष्ट होता है या प्राणातिपातकी क्रिया से स्पृष्ट होता है?

उ. १. गौतम ! कोई जीव, एक जीव की अपेक्षा से जिस समय कायिकी, आधिकारणिकी और प्राद्वेषिकी क्रिया से स्पृष्ट होता है, उस समय पारितापनिकी क्रिया से भी स्पृष्ट होता है और प्राणातिपातकी क्रिया से भी स्पृष्ट होता है।

२. कोई जीव, एक जीव की अपेक्षा से जिस समय कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी क्रिया से स्पृष्ट होता है, उस समय पारितापनिकी क्रिया से स्पृष्ट होता है, किन्तु प्राणातिपातकी क्रिया से स्पृष्ट नहीं होता है।

१. (क) आव. अ. ४, सु. २४ (ख) ठाणं. अ. ५, उ. २, सु. ४१९ (ग) विया. स. ८, उ. ४, सु. २ (घ) पण्ण. प. २२, सु. १५६७ (ङ) सम. स. ५, सु. १ (च) पण्ण. २२, सु. १६०५

३. अत्थेगइए जीवे एगइयाओ जीवाओ जं समयं काइयाए आहिगरणियाए पाओसियाए किरियाए पुट्ठे तं समयं पारियावणियाए किरियाए अपुट्ठे पाणाइवायकिरियाए अपुट्ठे।

४. अत्थेगइए जीवे एगइयाओ जीवाओ जं समयं काइयाए आहिगरणियाए पाओसियाए किरियाए अपुट्ठे तं समयं पारियावणियाए किरियाए अपुट्ठे पाणाइवायकिरिया अपुट्ठे। —पण्ण. प. २२. सु. १६२०

३. कोई जीव, एक जीव की अपेक्षा से जिस समय कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी क्रिया से स्पृष्ट होता है, उस समय पारितापनिकी क्रिया से भी अस्पृष्ट होता है और प्राणातिपातकी क्रिया से भी अस्पृष्ट होता है।

४. कोई जीव, एक जीव की अपेक्षा से जिस समय कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी क्रिया से अस्पृष्ट होता है उस समय पारितापनिकी क्रिया से भी अस्पृष्ट होता है और प्राणातिपातकी क्रिया से भी अस्पृष्ट होता है।

९. जीव-चउवीसदंडएसु काइयाइ पंचकिरियाणं परोप्परसहभावो–

प. जस्स णं भंते ! जीवस्स काइया किरिया कज्जइ तस्स आहिगरणिया किरिया कज्जइ जस्स आहिगरणिया किरिया कज्जइ तस्स काइया किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! जस्स णं जीवस्स काइया किरिया कज्जइ,
तस्स आहिगरणी णियमा कज्जइ,
जस्स आहिगरणी किरिया कज्जइ,
तस्स वि काइया किरिया णियमा कज्जइ।

प. जस्स णं भंते ! जीवस्स काइया किरिया कज्जइ,
तस्स पाओसिया किरिया कज्जइ ?
जस्स पाओसिया किरिया कज्जइ
तस्स काइया किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

प. जस्स णं भंते ! जीवस्स काइया किरिया कज्जइ,
तस्स पारियावणिया किरिया कज्जइ ?
जस्स पारियावणिया किरिया कज्जइ
तस्स काइया किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! जस्स णं जीवस्स काइया किरिया कज्जइ,
तस्स पारियावणिया किरिया सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ,
जस्स पुण पारियावणिया किरिया कज्जइ,
तस्स काइया किरिया णियमा कज्जइ।
एवं पाणाइवायकिरिया वि।
एवं आदिल्लाओ परोप्परं णियमा तिण्णि कज्जंति।

जस्स आदिल्लाओ तिण्णि कज्जंति,
तस्स उवरिल्लाओ दोण्णि सिय कज्जंति, सिय णो कज्जंति,
जस्स उवरिल्लाओ दोण्णि कज्जंति,
तस्स आइल्लाओ तिण्णि णियमा कज्जंति।

प. जस्स णं भंते ! जीवस्स पारियावणिया किरिया कज्जइ,
तस्स पाणाइवायकिरिया कज्जइ ?
जस्स पाणाइवायकिरिया कज्जइ
तस्स पारियावणिया किरिया कज्जइ ?

९. जीव चौबीस दंडकों में कायिकादि पांच क्रियाओं का परस्पर सहभाव–

प्र. भंते ! जिस जीव के कायिकी क्रिया होती है, क्या उसके आधिकरणिकी क्रिया होती है? जिस जीव के आधिकरणिकी क्रिया होती है, क्या उसके कायिकी क्रिया होती है?

उ. गौतम ! जिस जीव के कायिकी क्रिया होती है,
उसके नियम से आधिकरणिकी क्रिया होती है,
जिसके आधिकरणिकी क्रिया होती है,
उसके भी नियम से कायिकी क्रिया होती है।

प्र. भंते ! जिस जीव के कायिकी क्रिया होती है,
क्या उसके प्राद्वेषिकी क्रिया होती है?
जिसके प्राद्वेषिकी क्रिया होती है,
क्या उसके कायिकी क्रिया होती है?

उ. गौतम ! पूर्ववत् (नियमतः होना) जानना चाहिए।

प्र. भंते ! जिस जीव के कायिकी क्रिया होती है,
क्या उसके पारितापनिकी क्रिया होती है?
जिसके पारितापनिकी क्रिया होती है,
क्या उसके कायिकी क्रिया होती है?

उ. गौतम ! जिस जीव के कायिकी क्रिया होती है,
उसके पारितापनिकी क्रिया कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं होती है,
किन्तु जिसके पारितापनिकी क्रिया होती है,
उसके कायिकी क्रिया निश्चित होती है।
इसी प्रकार प्राणातिपात क्रिया का सहभाव कहना चाहिए।
इस प्रकार प्रारम्भ की तीन क्रियाओं का परस्पर सहभाव नियम से होता है।

जिसके प्रारम्भ की तीन क्रियाएं होती है,
उसके आगे की दो क्रियाएं कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं होती है,
जिसके आगे की दो क्रियाएं होती है,
उसके प्रारम्भ की तीन क्रियाएं निश्चित होती है।

प्र. भंते ! जिस जीव के पारितापनिकी क्रिया होती है,
क्या उसके प्राणातिपात क्रिया होती है?
जिसके प्राणातिपात क्रिया होती है,
क्या उसके पारितापनिकी क्रिया होती है?

उ. गोयमा ! जस्स णं जीवस्स पारियावणिया किरिया कज्जइ,
तस्स पाणाइवायकिरिया सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ,

जस्स पुण पाणाइवायकिरिया कज्जइ,
तस्स पारियावणिया किरिया णियमा कज्जइ।

प. जस्स णं भंते ! णेरइयस्स काइया किरिया कज्जइ,
तस्स आहिगरणिया किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! जहेव जीवस्स तहेव णेरइयस्स वि।

एवं णिरंतरं जाव वेमाणियस्स।

प. जं समयं णं भन्ते ! जीवस्स काइया किरिया कज्जइ,
तं समयं आहिगरणिया किरिया कज्जइ,
जं समयं आहिगरणिया किरिया कज्जइ,
तं समयं काइया किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! **एवं जहेव आइल्लाओ दंडओ भणिओ तहेव भाणियव्वो जाव वेमाणियस्स।**

प. जं देसं णं भंते ! जीवस्स काइया किरिया कज्जइ,
तं देसं णं आहिगरणिया किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! एवं जहेव आइल्लाओ दंडओ भणिओ तहेव जाव वेमाणियस्स।

प. जं पएसं णं भंते ! जीवस्स काइया किरिया कज्जइ,
तं पएसं आहिगरणिया किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! **एवं जहेव आइल्लाओ दंडओ भणिओ तहेव जाव वेमाणियस्स।**
एवं एए–१. जस्स २. जं समयं,
३. जं देसं, ४. जं पएसं णं चत्तारि दंडगा होंति।

–पण्ण. प. २२, सु. १६०७-१६१६

उ. गौतम ! जिस जीव के पारितापनिकी क्रिया होती है,

उसके प्राणातिपात क्रिया कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं होती है,
किन्तु जिस जीव के प्राणातिपात क्रिया होती है,
उसके पारितापनिकी क्रिया निश्चित होती है।

प्र. भंते ! जिस नैरयिक के कायिकी क्रिया होती है
क्या उसके आधिकरणिकी क्रिया होती है ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार सामान्य जीवों का कथन है उसी प्रकार नैरयिकों के संबंध में भी समझ लेना चाहिए।
इसी प्रकार निरंतर वैमानिक पर्यन्त (क्रियाओं का परस्पर सहभाव) कहना चाहिए)

प्र. भंते ! जिस समय जीव कायिकी क्रिया करता है,
क्या उस समय आधिकरणिकी क्रिया करता है ?
जिस समय आधिकरणिकी क्रिया करता है,
क्या उस समय कायिकी क्रिया करता है ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार क्रियाओं का प्रारम्भिक दण्डक कहा है, उसी प्रकार यहां भी वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! जिस देश में जीव कायिकी क्रिया करता है,
क्या उसी देश में आधिकरणिकी क्रिया करता है ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार क्रियाओं का प्रारम्भिक दण्डक कहा है, उसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त यहां भी कहना चाहिए।

प्र. भंते ! जिस प्रदेश में जीव कायिकी क्रिया करता है,
क्या उसी प्रदेश में आधिकरणिकी क्रिया करता है ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार क्रियाओं का प्रारम्भिक दण्डक कहा है उसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त यहां भी कहना चाहिए।
इस प्रकार (१) जिस जीव के (२) जिस समय में (३) जिस देश में (४) जिस प्रदेश में ये चार दण्डक होते हैं।

१०. चउवीसदंडएसु आओजिया किरियाणं परूवणं–

प. कइ णं भंते ! आओजिया किरियाओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! पंच आओजिया किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. काइया **जाव** ५. पाणाइवायकिरिया।
दं. १-२४ **एवं नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।**

प. जस्स णं भंते ! जीवस्स काइया आओजिया किरिया अत्थि,
तस्स आहिगरणिया आओजिया किरिया अत्थि,
जस्स आहिगरणिया आओजिया किरिया अत्थि,
तस्स काइया आओजिया किरिया अत्थि ?

उ. गोयमा ! **एवं एएणं अभिलावेणं ते चेव चत्तारि दंडगा भाणियव्वा,** तं जहा–

१०. चौबीस दंडकों में आयोजिका क्रियाओं का प्ररूपण–

प्र. भंते ! आयोजिका (जीव को संसार से जोड़ने वाली) क्रियाएं कितनी कही गई हैं ?

उ. गौतम ! आयोजिका क्रियाएं पांच कही गई हैं, यथा–
१. कायिकी यावत् ५. प्राणातिपात क्रिया।
दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त पांचों क्रियाओं का कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! जिस जीव के कायिकी आयोजिका क्रिया है,
क्या उसके आधिकरणिकी आयोजिका क्रिया है ?
जिसके आधिकरणिकी आयोजिका क्रिया है,
क्या उसके कायिकी आयोजिका क्रिया है ?

उ. गौतम ! इस प्रकार इन आलापकों से उन चार दण्डकों का कथन करना चाहिए, यथा–

१. जस्स, २. जं समयं, ३. जं देसं, ४. जं पदेसं।

दं. १-२४ एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

—पण्ण. प. २२, सु. १६१७-१६१९

११. आरंभियाइ पंच किरियाओ—

प. कइ णं भंते ! किरियाओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. आरंभिया २. पारिग्गहिया ३. मायावत्तिया

४. अपच्चक्खाणकिरिया ५. मिच्छादंसणवत्तिया[1]।

—पण्ण. प. २२, सु. १६२१

१२. आरंभियाइ किरियासामित्त परूवणं—

प. आरंभिया णं भंते ! किरिया कस्स कज्जइ ?

उ. गोयमा ! अण्णयरस्सावि पमत्तसंजयस्स।

प. पारिग्गहिया णं भंते ! किरिया कस्स कज्जइ ?

उ. गोयमा ! अण्णयरस्सावि संजयासंजयस्स।

प. मायावत्तिया णं भन्ते ! किरिया कस्स कज्जइ ?

उ. गोयमा ! अण्णयरस्सावि अपमत्तसंजयस्स।

प. अप्पच्चक्खाणकिरिया णं भंते ! कस्स कज्जइ ?

उ. गोयमा ! अण्णयरस्सावि अपच्चक्खाणिस्स।

प. मिच्छादंसणवत्तिया णं भंते ! किरिया कस्स कज्जइ ?

उ. गोयमा ! अण्णयरस्सावि मिच्छादंसणिस्स।

—पण्ण. प. २२, सु. १६२२-१६२६

१३. चउवीसदंडएसु आरंभियाइ पंचकिरियाओ—

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! कइ किरियाओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. आरंभिया जाव ५. मिच्छादंसणवत्तिया।

दं. २-२४ एवं जाव वेमाणियाणं। —पण्ण. प. २२, सु. १६२७

१४. पावट्ठाणविरयजीवेसु आरंभियाइ किरियाभेय परूवणं—

प. पाणाइवायविरयस्स णं भंते ! जीवस्स किं आरंभिया किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! पाणाइवायविरयस्स जीवस्स आरंभिया किरिया सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ।

प. पाणाइवायविरयस्स णं भंते ! जीवस्स पारिग्गहिया किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. पाणाइवायविरयस्स णं भंते ! जीवस्स मायावत्तिया किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ।

प. पाणाइवायविरयस्स णं भंते ! जीवस्स अपच्चक्खाण-वत्तिया किरिया कज्जइ ?

१. जिस जीव के, २. जिस समय, ३. जिस देश में और ४. जिस प्रदेश में।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

११. आरंभिकी आदि पांच क्रियाएं—

प्र. भंते ! क्रियाएं कितनी कही गई हैं ?

उ. गौतम ! क्रियाएं पांच कही गई हैं, यथा—

१. आरम्भिकी, २. पारिग्रहिकी, ३. मायाप्रत्यया

४. अप्रत्याख्यानक्रिया ५. मिथ्यादर्शन-प्रत्यया।

१२. आरंभिकी आदि क्रियाओं के स्वामित्व का प्ररूपण—

प्र. भंते ! आरम्भिकी क्रिया किसके होती है ?

उ. गौतम ! किसी एक प्रमत्तसंयत के होती है।

प्र. भंते ! पारिग्रहिकी क्रिया किसके होती है ?

उ. गौतम ! किसी एक संयतासंयत के होती है।

प्र. भंते ! मायाप्रत्यया क्रिया किसके होती है ?

उ. गौतम ! किसी एक अप्रमत्तसंयत के होती है।

प्र. भंते ! अप्रत्याख्यानक्रिया किसके होती है ?

उ. गौतम ! किसी एक अप्रत्याख्यानी के होती है।

प्र. भंते ! मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया किसके होती है ?

उ. गौतम ! किसी एक मिथ्यादर्शनी के होती है।

१३. चौबीस दंडकों में आरंभिकी आदि पांच क्रियाएं—

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिकों में कितनी क्रियाएं कही गई हैं ?

उ. गौतम ! पांच क्रियाएं कही गई हैं, यथा—

१. आरम्भिकी यावत् ५. मिथ्यादर्शनप्रत्यया।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त पांचों क्रियाएं कहनी चाहिए।

१४. पापस्थानों से विरत जीवों में आरंभिकी आदि क्रिया भेदों का प्ररूपण—

प्र. भंते ! प्राणातिपात से विरत जीव क्या आरम्भिकी क्रिया करता है ?

उ. गौतम ! प्राणातिपात से विरत जीव आरम्भिकी क्रिया कदाचित् करता भी है और कदाचित् नहीं भी करता है।

प्र. भंते ! प्राणातिपात से विरत जीव क्या पारिग्रहिकी क्रिया करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! प्राणातिपात से विरत जीव मायाप्रत्यया क्रिया करता है ?

उ. गौतम ! कदाचित् करता है और कदाचित् नहीं करता है।

प्र. भंते ! प्राणातिपात से विरत जीव क्या अप्रत्याख्यान प्रत्यया क्रिया करता है ?

१. [illegible] अ. ५, उ. २, सु. [illegible]

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. पाणाइवायविरयस्स णं भंते ! जीवस्स मिच्छादंसणवत्तिया किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

एवं पाणाइवायविरयस्स मणूसस्स वि।

एवं जाव मायामोसविरयस्स जीवस्स मणूसस्स य।

प. मिच्छादंसणसल्लविरयस्स णं भंते ! जीवस्स किं आरंभिया किरिया कज्जइ जाव मिच्छादंसणवत्तिया किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! मिच्छादंसणसल्लविरयस्स जीवस्स आरंभिया किरिया सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ।

एवं जाव अप्पच्चक्खाणकिरिया।

मिच्छादंसणवत्तिया किरिया णो कज्जइ।

प. मिच्छादंसणसल्लविरयस्स णं भंते ! णेरइयस्स किं आरंभिया किरिया कज्जइ जाव मिच्छादंसणवत्तिया क़िरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! आरंभिया वि किरिया कज्जइ जाव अपच्चक्खाणविकिरिया कज्जइ, मिच्छादंसणवत्तिया किरिया णो कज्जइ।

एवं जाव थणियकुमारस्स।

प. मिच्छादंसणसल्लविरयस्स णं भंते ! पंचेन्दिय-तिरिक्खजोणियस्स किं आरंभिया किरिया कज्जइ जाव मिच्छादंसणवत्तिया किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! आरंभिया किरिया कज्जइ जाव मायावत्तिया किरिया कज्जइ, अपच्चक्खाणकिरिया सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ, मिच्छादंसणवत्तिया किरिया णो कज्जइ।

मणूसस्स जहा जीवस्स।

वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाणं जहा णेरइयस्स।

–पण्ण. प. २२, सु. १६५०-१६६२

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! प्राणातिपात से विरत जीव मिथ्यादर्शन-प्रत्यया क्रिया करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

इसी प्रकार प्राणातिपात से विरत मनुष्य का भी आलापक कहना चाहिए।

इसी प्रकार मायामृषाविरत पर्यन्त जीव और मनुष्य के संबंध में भी कहना चाहिए।

प्र. भंते ! मिथ्यादर्शन-शल्य से विरत जीव क्या आरम्भिकी क्रिया करता है यावत् मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया करता है ?

उ. गौतम ! मिथ्यादर्शनशल्य से विरत जीव आरम्भिकी क्रिया कदाचित् करता है और कदाचित् नहीं करता है।

इसी प्रकार यावत् अप्रत्याख्यानक्रिया कदाचित् करता है और कदाचित् नहीं करता है।

किन्तु मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया नहीं करता है।

प्र. भंते ! मिथ्यादर्शनशल्यविरत नैरयिक क्या आरम्भिकी क्रिया करता है यावत् मिथ्यादर्शन-प्रत्यया क्रिया करता है ?

उ. गौतम ! वह आरम्भिकी क्रिया भी करता है यावत् अप्रत्याख्यान क्रिया भी करता है किन्तु मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया नहीं करता है।

इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त क्रिया संबंधी आलापक कहना चाहिए।

प्र. भंते ! मिथ्यादर्शन शल्य विरत पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक क्या आरम्भिकी क्रिया करता है यावत् मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया करता है ?

उ. गौतम ! वह आरम्भिकी क्रिया करता है यावत् मायाप्रत्यया क्रिया करता है, अप्रत्याख्यान क्रिया कदाचित् करता है और कदाचित् नहीं भी करता है किन्तु मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया नहीं करता है।

(मिथ्यादर्शनशल्य विरत) मनुष्य के क्रिया संबंधी आलापक सामान्य जीव के समान कहने चाहिए।

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों के क्रिया संबंधी आलापक नैरयिकों के समान कहना चाहिए।

१५. चउवीसदंडएसु सम्मद्दिट्ठियाणं आरंभियाइ किरिया परूवणं–

सम्मद्दिट्ठियाणं णेरइयाणं चत्तारि किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. आरंभिया, २. पारिग्गहिया,
३. मायावत्तिया, ४. अपच्चक्खाणकिरिया।

सम्मद्दिट्ठियाणं असुरकुमाराणं चत्तारि किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. आरंभिया, २. पारिग्गहिया,
३. मायावत्तिया, ४. अपच्चक्खाणकिरिया।

१५. चौबीस दंडकों में सम्यग्दृष्टियों के आरम्भिकी आदि क्रियाओं का प्ररूपण–

सम्यग्दृष्टि नैरयिकों में चार क्रियाएं कही गई हैं, यथा–

१. आरम्भिकी, २. पारिग्रहिकी,
३. मायाप्रत्ययिकी, ४. अप्रत्याख्यानक्रिया।

सम्यग्दृष्टि असुरकुमारों में चार क्रियाएं कही गई हैं, यथा–

१. आरम्भिकी, २. पारिग्रहिकी,
३. मायाप्रत्ययिकी, ४. अप्रत्याख्यान क्रिया।

एवं विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं।

–ठाणं अ. ४, उ. ४, सु. ३६१

इसी प्रकार विकलेन्द्रियों को छोड़कर वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिऐ।

१६. मिच्छद्दिट्ठिय चउवीसदंडएसु आरंभियाइ किरिया परूवणं–

मिच्छद्दिट्ठियाणं णेरइयाणं पंचकिरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. आरंभिया जाव ५. मिच्छादंसणवत्तिया।

एवं सव्वेसिं निरंतरं जाव मिच्छद्दिट्ठियाणं वेमाणियाणं।

णवरं–विगलिंदिया मिच्छद्दिट्ठी णं भण्णंति। सेसं तहेव।

–ठाणं अ. ५, उ. २, सु. ४१९

१६. मिथ्यादृष्टि चौवीस दंडकों में आरंभिकी आदि क्रियाओं का प्ररूपण–

मिथ्यादृष्टि नैरयिकों की पांच क्रियाएं कही गई हैं, यथा–

१. आरंभिकी यावत् ५. मिथ्यादर्शन प्रत्यया।

इसी प्रकार निरन्तर मिथ्यादृष्टि वैमानिकों पर्यन्त सभी दण्डकों में पांचों क्रियाएं कहनी चाहिए।

विशेष– (एकेन्द्रिय आदि) विकलेन्द्रियों में, (सम्यक्त्व का सर्वथा अभाव होने से) मिथ्यादृष्टि पद (विशेषण) का कथन नहीं करना चाहिए। शेष दंडकों में पूर्ववत् जानना चाहिए।

१७. जीव-चउवीसदंडएसु आरंभियाइकिरियाणं णियमा-भयणा–

प. जस्स णं भंते ! जीवस्स आरंभिया किरिया कज्जइ,
तस्स पारिग्गहिया किरिया कज्जइ,
जस्स पारिग्गहिया किरिया कज्जइ,
तस्स आरंभिया किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! जस्स णं जीवस्स आरंभिया किरिया कज्जइ,
तस्स पारिग्गहिया किरिया सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ,
जस्स पुण पारिग्गहिया किरिया कज्जइ,
तस्स आरंभिया किरिया णियमा कज्जइ।

प. जस्स णं भंते ! जीवस्स आरंभिया किरिया कज्जइ,
तस्स मायावत्तिया किरिया कज्जइ,
जस्स मायावत्तिया किरिया कज्जइ,
तस्स आरंभिया किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! जस्स णं जीवस्स आरंभिया किरिया कज्जइ,
तस्स मायावत्तिया किरिया णियमा कज्जइ,
जस्स पुण मायावत्तिया किरिया कज्जइ,
तस्स आरंभिया किरिया सिय कज्जइ सिय णो कज्जइ।

प. जस्स णं भंते ! जीवस्स आरंभिया किरिया कज्जइ,
तस्स अपच्चक्खाण किरिया कज्जइ,
जस्स अपच्चक्खाण किरिया कज्जइ,
तस्स आरंभिया किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! जस्स णं जीवस्स आरंभिया किरिया कज्जइ,
तस्स अपच्चक्खाण किरिया सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ,
जस्स पुण अपच्चक्खाण किरिया कज्जइ,
तस्स आरंभिया किरिया णियमा कज्जइ।
एवं मिच्छादंसणवत्तियाए वि समं।

१७. जीव-चौबीसदंडकों में आरंभिकी आदि क्रियाओं की नियमा-भजना–

प्र. भंते ! जिस जीव के आरम्भिकी क्रिया होती है,
क्या उसके पारिग्रहिकी क्रिया होती है,
जिसके पारिग्रहिकी क्रिया होती है,
क्या उसके आरम्भिकी क्रिया होती है ?

उ. गौतम ! जिस जीव के आरम्भिकी क्रिया होती है,
उसके पारिग्रहिकी क्रिया कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं होती है,
जिसके पारिग्रहिकी क्रिया होती है,
उसके आरम्भिकी क्रिया नियम से होती है।

प्र. भंते ! जिस जीव के आरम्भिकी क्रिया होती है,
क्या उसके मायाप्रत्यया क्रिया होती है ?
जिसके मायाप्रत्यया क्रिया होती है,
क्या उसके आरम्भिकी क्रिया होती है ?

उ. गौतम ! जिस जीव के आरम्भिकी क्रिया होती है,
उसके नियम से माया प्रत्यया क्रिया होती है।
जिसके मायाप्रत्यया क्रिया होती है,
उसके आरम्भिकी क्रिया कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं होती है।

प्र. भंते ! जिस जीव के आरम्भिकी क्रिया होती है,
क्या उसके अप्रत्याख्यानिकी क्रिया होती है,
जिसके अप्रत्याख्यानिकी क्रिया होती है,
क्या उसके आरम्भिकी क्रिया होती है ?

उ. गौतम ! जिस जीव के आरम्भिकी क्रिया होती है,
उसके अप्रत्याख्यानिकी क्रिया कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं होती है।
जिसके अप्रत्याख्यानिकी क्रिया होती है,
उसके आरम्भिकी क्रिया नियम से होती है।
इसी प्रकार [illegible]

एवं पारिग्गहिया वि तिहिं उवरिल्लाहिं समं चारेयव्वा।

जस्स मायावत्तिया किरिया कज्जइ,
तस्स उवरिल्लाओ दो वि सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ,

जस्स उवरिल्लाओ दो कज्जइ,
तस्स मायावत्तिया किरिया णियमा कज्जइ,
जस्स अपच्चक्खाण किरिया कज्जइ,
तस्स मिच्छादंसणवत्तिया किरिया सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ,
जस्स पुण मिच्छादंसणवत्तिया किरिया कज्जइ,
तस्स अपच्चक्खाणकिरिया णियमा कज्जइ।
दं. १. णेरइयस्स आइल्लियाओ चत्तारि परोप्परं णियमा कज्जंति।
जस्स एयाओ चत्तारि कज्जइ, तस्स मिच्छादंसणवत्तिया किरिया भइज्जंति,
जस्स पुण मिच्छादंसणवत्तिया किरिया कज्जइ तस्स एयाओ चत्तारि किरियाओ णियमा कज्जंति।
दं. २-११ एवं जाव थणियकुमारस्स।

दं. १२-१९. पुढविक्काइया जाव चउरिंदियस्स पंच वि परोप्परं णियमा कज्जंति।
दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियस्स आइल्लियाओ तिण्णि वि परोप्परं णियमा कज्जंति,
जस्स एयाओ कज्जंति, तस्स उवरिल्लाओ दो भइज्जंति,

जस्स उवरिल्लाओ दोण्णि कज्जंति, तस्स एयाओ तिण्णि वि णियमा कज्जंति,
जस्स अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ,
तस्स मिच्छादंसणवत्तिया सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ,

जस्स पुण मिच्छादंसणवत्तिया किरिया कज्जइ,
तस्स अपच्चक्खाणकिरिया णियमा कज्जइ।
दं. २१. मणूसस्स जहा जीवस्स।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियस्स जहा णेरइयस्स।

प. जं समयं णं भंते ! जीवस्स आरंभिया किरिया कज्जइ तं समयं पारिग्गहिया किरिया कज्जइ?
उ. गोयमा ! एवं एए चत्तारि दंडगा णेयव्वा, तं जहा—
१. जस्स, २. जं समयं, ३. जं देसं, ४. जं पदेसं।

जहा णेरइयाणं तहा सव्वदेवाणं णेयव्वं जाव वेमाणियाणं।
—पण्ण. प. २२, सु. १६२८-१६३६

इसी प्रकार पारिग्रहिकी क्रिया के भी तीन आलापक ऊपर के समान समझ लेना चाहिए।
जिसके मायाप्रत्यया क्रिया होती है,
उसके आगे की दो क्रियाएं (अप्रत्याख्यानिकी और मिथ्यादर्शनप्रत्यया) कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं होती है।
(किन्तु) जिसके आगे की दो क्रियाएं होती हैं,
उसके मायाप्रत्यया क्रिया निश्चित होती है।
जिसके अप्रत्याख्यान क्रिया होती है,
उसके मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं होती है।
(किन्तु) जिसके मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया होती है,
उसके अप्रत्याख्यान क्रिया निश्चित होती है।
दं. १. नैरयिक के प्रारम्भ की चार क्रियाएं परस्पर निश्चित होती हैं।
जिसके ये चार क्रियाएं होती हैं उसके मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया विकल्प से होती है।
जिसके मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया होती है, उसके ये चारों क्रियाएं निश्चित होती हैं।
दं. २-११. इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त क्रियाओं का कथन करना चाहिए।
दं. १२-१९. पृथ्वीकायिकों से चतुरिन्द्रिय पर्यन्त जीवों के पांचों ही क्रियाएं परस्पर निश्चित हैं।
दं. २०. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक के प्रारम्भ की तीन क्रियाएं परस्पर निश्चित हैं।
जिसके ये तीनों क्रियाएं होती हैं, उसके आगे की दोनों क्रियाएं विकल्प से होती हैं।
जिसके आगे की दोनों क्रियाएं होती हैं, उसके ये प्रारम्भ की तीनों क्रियाएं निश्चित हैं।
जिसके अप्रत्याख्यान क्रिया होती है,
उसके मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं होती है।
जिसके मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया होती है,
उसके अप्रत्याख्यानक्रिया निश्चित होती है,
दं. २१. मनुष्य का सामान्य जीवों के समान कथन करना चाहिए।
दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों का नैरयिकों के समान कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! जिस समय जीव को आरम्भिकी क्रिया होती है, क्या उस समय पारिग्रहिकी क्रिया होती है?
उ. गौतम ! इसी प्रकार ये चार दंडक जानने चाहिए, यथा—
१. जिस जीव के, २. जिस समय में, ३. जिस देश में और ४. जिस प्रदेश में,
जैसे नैरयिकों के विषय में ये चारों दण्डक कहे उसी प्रकार सब देवों के विषय में वैमानिक पर्यन्त कहने चाहिए।

८. कय-विक्कयमाणाणं आरंभियाइ किरिया परूवणं–

प. गाहावइस्स णं भंते ! भंडं विक्किणमाणस्स केइ भंडं अवहरेज्जा,

तस्स णं भंते ! तं भंडं अणुगवेसमाणस्स–

किं आरंभिया किरिया कज्जइ,

पारिग्गहिया किरिया कज्जइ,

मायावत्तिया किरिया कज्जइ,

अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ,

मिच्छादंसणवत्तिया किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! आरंभिया किरिया कज्जइ,

पारिग्गहिया किरिया कज्जइ,

मायावत्तिया किरिया कज्जइ,

अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ,

मिच्छादंसणवत्तियाकिरिया सिय कज्जइ, सिय नो कज्जइ,

अह से भंडे अभिसमण्णागए भवइ, तओ से पच्छा सव्वाओ ताओ पयणुई भवंति।

प. गाहावइस्स णं भंते ! भंडं विक्किणमाणस्स कइए भंडं साइज्जेज्जा, भंडे य से अणुवणीए सिया,

गाहावइस्स णं भंते ! ताओ भंडाओ किं आरंभिया किरिया कज्जइ जाव मिच्छादंसणवत्तिया किरिया कज्जइ,

कइयस्स वा ताओ भंडाओ किं आरंभिया किरिया कज्जइ जाव मिच्छादंसणवत्तिया किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! गाहावइस्स ताओ भंडाओ आरंभिया किरिया कज्जइ जाव अपच्चक्खाण किरिया कज्जइ,

मिच्छादंसणवत्तिया किरिया सिय कज्जइ, सिय नो कज्जइ,

कइयस्स णं ताओ सव्वाओ पयणुई भवंति।

प. गाहावइस्स णं भंते ! भंडं विक्किणमाणस्स कइए भंडे साइज्जेज्जा भंडे से उवणीए सिया, कइयस्स णं भंते ! ताओ भंडाओ किं आरंभिया किरिया कज्जइ जाव मिच्छादंसणवत्तिया किरिया कज्जइ, तं जहा–

गाहावइस्स वा ताओ भंडाओ किं आरंभिया किरिया कज्जइ जाव मिच्छादंसणवत्तिया किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! कइयस्स ताओ भंडाओ हेट्ठिल्लाओ चत्तारि किरियाओ कज्जंति,

मिच्छादंसणवत्तिया किरिया भयणाए,

गाहावइस्स णं ताओ सव्वाओ पयणुई भवंति।

१८. क्रेता-विक्रेताओं के आरंभिकी आदि क्रियाओं का प्ररूपण–

प्र. भंते ! किराने का सामान बेचते हुए किसी गृहस्थ का वह किराने का माल कोई चुरा ले तो,

भंते ! उस किराने के सामान की खोज करते हुए उस गृहस्थ को,

क्या आरंभिकी क्रिया लगती है ?

पारिग्रहिकी क्रिया लगती है ?

मायाप्रत्ययिकी क्रिया लगती है ?

अप्रत्याख्यानिकी क्रिया लगती है या

मिथ्यादर्शन-प्रत्ययिकी क्रिया लगती है ?

उ. गौतम ! उस पुरुष को आरंभिकी क्रिया लगती है।

पारिग्रहिकी क्रिया लगती है।

मायाप्रत्ययिकी क्रिया लगती है एवं

अप्रत्याख्यानिकी क्रिया भी लगती है,

किन्तु मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया कदाचित् लगती है और कदाचित् नहीं लगती है।

यदि उस पुरुष को चुराया हुआ सामान वापस मिल जाता है तो वे सब क्रियाएं हल्की हो जाती हैं।

प्र. भंते ! किराना बेचने वाले उस गृहस्थ से किसी व्यक्ति ने किराने का माल खरीद लिया है और सौदे को पक्का करने के लिए खरीददार ने बयाना भी दे दिया, किन्तु वह किराने का माल अभी तक ले नहीं गया है तो–

भंते ! उस माल बेचने वाले गृहस्थ को उस किराने के माल से आरम्भिकी यावत् मिथ्यादर्शन-प्रत्ययिकी क्रियाओं में से कौन सी क्रिया लगती है ? और

खरीदने वाले को उस किराने के माल से आरम्भिकी यावत् मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रियाओं में से कौन-सी क्रिया लगती है ?

उ. गौतम ! उस गृहपति को उस किराने के सामान से आरंभिकी यावत् अप्रत्याख्यानिकी क्रियाएं लगती हैं।

मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया कदाचित् लगती है और कदाचित् नहीं लगती है।

खरीददार के तो ये सब क्रियाएं हल्की हो जाती हैं।

प्र. भंते ! किराना बेचने वाले गृहस्थ के यहां से खरीददार उस माल को अपने यहां ले आया तो भंते ! उस खरीददार को उस खरीदे हुए किराने के माल से आरम्भिकी यावत् मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रियाओं में से कौन-सी क्रिया लगती है ? तथा–

उस विक्रेता गृहस्थ को उस माल से आरम्भिकी यावत् मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रियाओं में से कौन-सी क्रिया लगती है ?

उ. गौतम ! खरीददार को उस किराने के सामान से प्रारम्भ की (आरम्भिकी यावत् अप्रत्याख्यानिकी) चारों क्रियाएं लगती हैं।

[illegible]

[illegible]

प. गाहावइस्स णं भंते ! भंडं विक्किणमाणस्स कइए भंडं साइज्जेज्जा, धणे य से अणुवणीए सिय,

कइयस्स णं भंते ! ताओ धणाओ किं आरंभिया किरिया कज्जइ **जाव** मिच्छादंसणकिरिया कज्जइ ?

गाहावइस्स वा ताओ धणाओ किं आरंभिया किरिया कज्जइ **जाव** मिच्छादंसणकिरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! कइयस्स ताओ धणाओ हेट्ठिल्लाओ चत्तारि किरियाओ कज्जंति मिच्छादंसण किरिया भयणाए,
गाहावइस्स णं ताओ सव्वाओ पयणुई भवंति,

प. गाहावइस्स णं भंते ! भंडं विक्किणमाणस्स कइए भंडं साइज्जेज्जा, धणे य से उवणीए सिया,
गाहावइस्स णं भंते ! ताओ धणाओ किं आरंभिया किरिया कज्जइ **जाव** मिच्छादंसण किरिया कज्जइ ?
कइयस्स वा ताओ धणाओ किं आरंभिया किरिया कज्जइ **जाव** मिच्छादंसण किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! गाहावइस्स ताओ धणाओ आरंभिया किरिया कज्जइ **जाव** अपच्चक्खाण किरिया कज्जइ, मिच्छादंसण किरिया सिय कज्जइ, सिय नो कज्जइ,
कइयस्स णं ताओ सव्वाओ पयणुई भवंति।

–विया. स. ५, उ. ६, सु. ५-८

प्र. भंते ! किराणा बेचने वाले उस गाथापति के किराने को खरीदने वाले ने खरीदा और घर ले गया किन्तु उसका मूल्य नहीं दिया तो–
भंते ! खरीदने वाले को उस धन से क्या आरंभिकी क्रिया यावत् मिथ्यादर्शन क्रिया लगती है ?
और गाथापति को उस धन से क्या आरंभिकी क्रिया यावत् मिथ्यादर्शन क्रिया लगती है ?

उ. गौतम ! खरीदने वाले को उस धन से प्रारंभ की चार क्रियाएं लगती हैं और मिथ्यादर्शन क्रिया विकल्प से लगती है।
गाथापति के तो उस धन से पांचों क्रियाएं हल्की होती हैं।

प्र. भंते ! किराना बेचने वाले गाथापति के किराने को खरीदने वाला खरीद कर घर ले गया और उसको धन भी दे दिया,
तो भंते ! उस धन से गाथापति को क्या आरंभिकी क्रिया यावत् मिथ्यादर्शन क्रिया लगती है ?
और खरीदने वाले को उस धन से क्या आरंभिकी क्रिया यावत् मिथ्यादर्शन क्रिया लगती है ?

उ. गौतम ! गाथापति को उस धन से आरंभिकी क्रिया यावत् अप्रत्याख्यान क्रिया लगती है किन्तु मिथ्यादर्शन क्रिया कदाचित् लगती है और कदाचित् नहीं लगती है।
खरीदने वाले के वे पांचों क्रियायें हल्की होती हैं।

१९. आरंभियाइकिरियाणं अप्पाबहुयं–

प. एयासि णं भंते ! आरंभियाणं **जाव** मिच्छादंसणवत्तियाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा **जाव** विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवाओ मिच्छादंसणवत्तियाओ किरियाओ,
२. अप्पच्चक्खाण किरियाओ विसेसाहियाओ,
३. पारिग्गहियाओ किरियाओ विसेसाहियाओ,
४. आरंभियाओ किरियाओ विसेसाहियाओ,
५. मायावत्तियाओ किरियाओ विसेसाहियाओ।[1]

–पण्ण. प. २२, सु. १६६३

१९. आरंभिकी आदि क्रियाओं का अल्प-बहुत्व–

प्र. भंते ! इन आरम्भिकी यावत् मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रियाओं में कौन-किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे कम मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रियाएं हैं,
२. (उनसे) अप्रत्याख्यानक्रियाएं विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) पारिग्रहिकी क्रियाएं विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) आरम्भिकी क्रियाएं विशेषाधिक हैं,
५. (उनसे) मायाप्रत्यया क्रियाएं विशेषाधिक हैं।

२०. चउवीसदंडएसु दिट्ठियाइ पंच किरियाओ–

पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. दिट्ठिया,
२. पुट्ठिया,
३. पाडुच्चिया,
४. सामन्तोवणियाइया,
५. साहत्यिया।
दं. १-२४. एवं नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

–ठाणं. अ. ५, उ. २, सु. ४१९

२०. चौबीसदंडकों में दृष्टिजा आदि पांच क्रियाएं–

पांच क्रियाएं कही गई हैं, यथा–
१. दृष्टि के विकार से होने वाली क्रिया,
२. स्पर्श के विकार से होने वाली क्रिया,
३. बाहर के निमित्त से होने वाली क्रिया,
४. समूह से होने वाली क्रिया,
५. अपने हाथ से होने वाली क्रिया।
दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त पांचों क्रियाएं जाननी चाहिए।

२१. चउवीसदंडएसु णेसत्थियाइ पंच किरियाओ–

पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

२१. चौबीसदंडकों में नैसृष्टिकी आदि पांच क्रियाएं–

पांच क्रियाएं कही गई हैं, यथा–

---

१. विया. स. ८, उ. ४, सु. २

१. णेसत्थिया
२. आणवणिया
३. वेयारणिया
४. अणाभोगवत्तिया
५. अणवकंखवत्तिया।

दं. १-२४. एवं नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

–ठाणं. अ. ५, उ. २, सु. ४१९

२२. मणुस्सेसु पेज्जवत्तियाइ पंच किरियाओ–

पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. पेज्जवत्तिया,
२. दोसवत्तिया
३. पओगकिरिया,
४. समुदाणकिरिया,
५. ईरियावहिया।

दं. २१. एवं मणुस्साण वि, सेसाणं णत्थि।

–ठाणं. अ. ५, उ. २, सु. ४१९

२३. जीव-चउवीसदंडएसु जीवाइं पडुच्च पाणाइवायाइयाणं किरिया परूवणं–

प. अत्थि णं भंते ! जीवाणं पाणाइवाएणं किरिया कज्जइ ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ ? अपुट्ठा कज्जइ ?

उ. गोयमा ! पुट्ठा कज्जइं, नो अपुट्ठा कज्जइ जाव निव्वाघाएणं छद्दिसिं, वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं, सिय चउदिसिं, सिय पंचदिसिं।

प. सा भंते ! किं कडा कज्जइ ? अकडा कज्जइ ?

उ. गोयमा ! कडा कज्जइ, नो अकडा कज्जइ।

प. सा भंते ! किं अत्तकडा कज्जइ ? परकडा कज्जइ ? तदुभयकडा कज्जइ ?

उ. गोयमा ! अत्तकडा कज्जइ, णो परकडा कज्जइ, णो तदुभयकडा कज्जइ।

प. सा भंते ! किं आणुपुव्विकडा कज्जइ ? अणाणुपुव्विकडा कज्जइ ?

उ. गोयमा ! आणुपुव्विकडा कज्जइ, नो अणाणुपुव्विकडा कज्जइ, जा य कडा, जा य कज्जइ, जा य कज्जिस्सइ सव्वा सा आणुपुव्विकडा, नो अणाणुपुव्विकडत्ति वत्तव्वं सिया।

एवं जाव वेमाणियाणं

णवरं–जीवाणं एगिंदियाण य निव्वाघाएणं छद्दिसिं, वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं, सिय चउदिसिं, सिय पंचदिसिं,

सेसाणं नियमं छद्दिसिं।

प. [illegible]

१. विना शस्त्र के होने वाली क्रिया,
२. आज्ञा देने से होने वाली क्रिया,
३. छेदन भेदन करने से होने वाली क्रिया,
४. अज्ञानता से होने वाली क्रिया,
५. विना आकांक्षा से होने वाली क्रिया।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त पांचों क्रियाएं जाननी चाहिए।

२२. मनुष्यों में होने वाली प्रेय-प्रत्यया आदि पांच क्रियाएं–

पांच क्रियाएं कही गई हैं, यथा–
१. राग भाव से होने वाली क्रिया,
२. द्वेष भाव से होने वाली क्रिया ,
३. मन आदि की दुश्चेष्टाओं से होने वाली क्रिया,
४. सामूहिक रूप से होने वाली क्रिया,
५. गमनागमन से होने वाली क्रिया।

ये पांचों क्रियाएं मनुष्यों में होती हैं, शेष दण्डकों में नहीं होती हैं।

२३. जीव-चौवीस दंडकों में जीवादिकों की अपेक्षा प्राणातिपातिकी आदि क्रियाओं का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या जीव प्राणातिपातिकीक्रिया करते हैं ?

उ. हां, गौतम ! करते हैं।

प्र. भंते ! वह क्रिया स्पृष्ट की जाती है या अस्पृष्ट की जाती है ?

उ. गौतम ! स्पृष्ट की जाती है अस्पृष्ट नहीं की जाती यावत् व्याघात न हो तो छहों दिशाओं को और व्याघात हो तो कदाचित् तीन, चार या पांच दिशाओं को स्पर्श करके की जाती है।

प्र. भंते ! वह क्रिया कृत है या अकृत है ?

उ. गौतम ! वह क्रिया कृत है, अकृत नहीं है।

प्र. भंते ! वह क्रिया आत्मकृत है, परकृत है या उभयकृत है ?

उ. गौतम ! वह क्रिया आत्मकृत है, किन्तु परकृत या उभयकृत नहीं है।

प्र. भंते ! वह क्रिया आनुपूर्वी कृत है या अनानुपूर्वीकृत है ?

उ. गौतम ! वह अनुक्रमपूर्वक की जाती है, बिना अनुक्रम के नहीं की जाती है। जो क्रिया की गई है, जो क्रिया की जा रही है या जो क्रिया की जाएगी, वह सब अनुक्रमपूर्वक कृत है, किन्तु अननुक्रम कृत नहीं है ऐसा कहना चाहिए।

इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

विशेष–सामान्य जीव और एकेन्द्रिय [illegible]

[illegible]

प्र. [illegible]

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ, अपुट्ठा कज्जइ ?

उ. गोयमा ! जहा पाणाइवाएणं दंडओ एवं मुसावाएण वि।

एवं अदिण्णादाणेण वि, मेहुणेण वि, परिग्गहेण वि।
एवं एए पंच दंडगा।

प. जं समयं णं भंते ! जीवाणं पाणाइवाएणं किरिया कज्जइ सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ, अपुट्ठा कज्जइ ?

उ. गोयमा ! एवं तहेव जाव वत्तव्वं सिया।

एवं जाव वेमाणियाणं।
एवं जाव परिग्गहेणं।
एए वि पंच दंडगा।

प. जं देसं णं भंते ! जीवाणं पाणाइवाएणं किरिया कज्जइ, सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ, अपुट्ठा कज्जइ ?

उ. गोयमा ! एवं जाव परिग्गहेणं।
एवं एए वि पंच दंडगा।

प. जं पदेसं णं भंते ! जीवाणं पाणाइवाएणं किरिया कज्जइ सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ, अपुट्ठा कज्जइ ?

उ. गोयमा ! एवं तहेव दंडओ।
एवं जाव परिग्गहेणं।
एवं एए वीसं दंडगा। *–विया. स. १७, उ. ४, सु. २-१२*

२४. तालफलपवाडमाणस्स पुरिसस्स किरिया परूवणं–

प. पुरिसे णं भंते ! तालमारुहइ, तालमारुहित्ता तालाओ तालफलं पचालेमाणे वा, पवाडेमाणे वा कइ किरिए ?

उ. गोयमा ! जावं च णं से पुरिसे तालमारुहइ, तालमारुहित्ता तालाओ तालफलं पचालेइ वा, पवाडेइ वा, तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे, जेसिं पि य णं जीवाणं सरीरेहिंतो तले निव्वत्तिए, तालफले निव्वत्तिए ते वि णं जीवा काइयाए जाव पाणाइवाय किरियाए पंचहिं किरियाहिं

उ. हां, गौतम ! करते हैं।

प्र. भंते ! वह क्रिया स्पृष्ट है या अस्पृष्ट है ?

उ. गौतम ! जैसे प्राणातिपात का दण्डक कहा उसी प्रकार मृषावाद-क्रिया का भी दण्डक कहना चाहिए।
इसी प्रकार अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह क्रिया के विषय में भी जान लेना चाहिए। इस प्रकार ये पांच दण्डक हुए।

प्र. भंते ! जिस समय जीव प्राणातिपातिकी क्रिया करते हैं, क्या उस समय वे स्पृष्ट क्रिया करते हैं या अस्पृष्ट क्रिया करते हैं ?

उ. गौतम ! पूर्वोक्त प्रकार से "अनानुपूर्वीकृत नहीं हैं पर्यन्त कहना चाहिए।
इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।
इसी प्रकार पारिग्रहिकी क्रिया पर्यन्त कहना चाहिए।
इस प्रकार ये पांच दण्डक हुए।

प्र. भंते ! जिस देश (क्षेत्र) में जीव प्राणातिपातिकी क्रिया करते हैं क्या उस देश में वे स्पृष्ट क्रिया करते हैं या अस्पृष्ट क्रिया करते हैं ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् पारिग्रहिकी क्रिया पर्यन्त जानना चाहिए।
इस प्रकार ये पांच दण्डक हुए।

प्र. भंते ! जिस प्रदेश में जीव प्राणातिपातिकी क्रिया करते हैं, उस प्रदेश में वे स्पृष्ट क्रिया करते हैं या अस्पृष्ट क्रिया करते हैं ?

उ. गौतम ! इसी प्रकार पूर्ववत् दण्डक कहना चाहिए।
इसी प्रकार पारिग्रहिकी क्रिया पर्यन्त जानना चाहिए।
इस प्रकार ये कुल बीस दण्डक हुए।

२४. ताड़फल गिराने वाले पुरुष की क्रियाओं का प्ररूपण–

प्र. भंते ! कोई पुरुष ताड़ के वृक्ष पर चढ़े और चढ़कर फिर उस ताड़ के फल को हिलाए या गिराए तो उस पुरुष को कितनी क्रियाएं लगती हैं ?

उ. गौतम ! जब वह पुरुष ताड़ के वृक्ष पर चढ़ता है और चढ़कर उस ताड़ वृक्ष से ताड़ फल को हिलाता है और गिराता है, तब वह पुरुष कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है। जिन जीवों के शरीरों से ताड़वृक्ष और ताड़ फल बना है, वे जीव भी कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

प्र. भंते ! (उस पुरुष द्वारा तालवृक्ष के हिलाने पर) जो वह ताड़फल अपने भार से यावत् अपने आप गिरने से वहां के प्राणी यावत् सत्व जीव रहित होते हैं तब भंते ! उस पुरुष को कितनी क्रियाएं लगती हैं ?

उ. गौतम (पुरुष द्वारा ताड़वृक्ष के हिलाने पर) जो वह ताड़फल अपने भार से गिरे यावत् जीवन से रहित करता है तो वह पुरुष कायिकी यावत् पारितापनिकी इन चार क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।
जिन जीवों के शरीरों से ताड़वृक्ष निष्पन्न हुआ है, वे जीव कायिकी यावत् पारितापनिकी इन चार क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं। जिन जीवों के शरीरों से ताड़फल निष्पन्न हुआ है,

ते वि य णं जीवा काइयाए जाव पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा,

जे वि य से जीवा अहे वीससाए पच्चोवयमाणस्स उवग्गहे वट्टंति,

ते वि य णं जीवा काइयाए जाव पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा। *–विया. स. १७, उ. १, सु. ८-९*

वे जीव कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

जो जीव स्वाभाविक रूप से नीचे पड़ते हुए ताड़फल के सहायक होते हैं,

वे जीव भी कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

२५. रुक्खमूलाइ पवाडमाणस्स पुरिसस्स किरियापरूवणं–

प. पुरिसे णं भंते ! रुक्खस्स मूलं पचालेमाणे वा, पवाडेमाणे वा कइ किरिए?

उ. गोयमा ! जावं च णं से पुरिसे रुक्खस्स मूलं पचालेइ वा, पवाडेइ वा तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे,

जेसिं पि य णं जीवाणं सरीरेहिंतो मूले निव्वत्तिए जाव बीए निव्वत्तिए ते वि य णं जीवा काइयाए जाव पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा।

प. अहे णं भंते ! से मूले अप्पणो गरुयत्ताए जाव जीवियाओ ववरोवेइ तओ णं भंते ! से पुरिसे कइ किरिए?

उ. गोयमा ! जावं च णं से मूले अप्पणो गरुयत्ताए जाव जीवियाओ ववरोवेइ,

तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव पारितावणियाए चउहिं किरियाहिं पुट्ठे,

जेसिं पि य णं जीवाणं सरीरेहिंतो कंदे निव्वत्तिए जाव बीए निव्वत्तिए, ते वि य णं जीवा काइयाए जाव पारितावणियाए चउहिं किरियाहिं पुट्ठा,

जे सिं पि य णं जीवा णं सरीरेहिंतो मूले निव्वत्तिए, ते वि य णं जीवा काइयाए जाव पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा,

जे वि य णं से जीवा अहे वीससाए पच्चोवयमाणस्स उवग्गहे वट्टंति।

ते वि य णं जीवा काइयाए जाव पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा।

प. पुरिसे णं भंते ! रुक्खस्स कंदे पचालेमाणे वा, पवाडेमाणे वा कइ किरिए?

उ. गोयमा ! जावं च णं से पुरिसे कंदे पचालेमाणे वा, पवाडेमाणे वा,

तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव पाणाइवाय किरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे,

जेसिं पि य णं जीवाणं सरीरेहिंतो कंदे निव्वत्तिए जाव बीए निव्वत्तिए,

ते वि य णं जीवा काइयाए जाव पाणाइवाय किरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा।

प. [illegible]

२५. वृक्षमूलादि को गिराने वाले पुरुष की क्रियाओं का प्ररूपण–

प्र. भंते ! कोई पुरुष वृक्ष के मूल को हिलाए या गिराए तो उसको कितनी क्रियाएं लगती हैं?

उ. गौतम ! जब वह पुरुष वृक्ष के मूल को हिलाता या गिराता है तब वह पुरुष कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

जिन जीवों के शरीरों से मूल यावत् बीज निष्पन्न हुए हैं, वे जीव भी कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

प्र. भंते ! यदि वह मूल अपने भारीपन के कारण नीचे गिरे यावत् जीवों का हनन करे तब उस पुरुष को कितनी क्रियाएं लगती हैं?

उ. गौतम ! जब मूल अपने भारीपन के कारण नीचे गिरता है यावत् अन्य जीवों का हनन करता है,

तब वह पुरुष कायिकी यावत् पारितापनिकी इन चार क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

जिन जीवों के शरीर से वह कन्द यावत् बीज निष्पन्न हुआ है,

वे जीव कायिकी यावत् पारितापनिकी इन चार क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

जिन जीवों के शरीरों से मूल निष्पन्न हुआ है, वे जीव कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

जो जीव स्वाभाविक रूप से नीचे गिरते हुए मूल के सहायक होते हैं,

वे जीव कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

प्र. भंते ! कोई पुरुष वृक्ष के कन्द को हिलाए या गिराए तो उसको कितनी क्रियाएं लगती हैं?

उ. गौतम ! जब वह पुरुष कन्द को हिलाता या गिराता है,

तब वह पुरुष कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

जिन जीवों के शरीर से कन्द यावत् बीज निष्पन्न हुआ है,

[illegible]

प्र. [illegible]

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ, अपुट्ठा कज्जइ ?

उ. गोयमा ! जहा पाणाइवाएणं दंडओ एवं मुसावाएण वि।

एवं अदिण्णादाणेण वि, मेहुणेण वि, परिग्गहेण वि। एवं एए पंच दंडगा।

प. जं समयं णं भंते ! जीवाणं पाणाइवाएणं किरिया कज्जइ सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ, अपुट्ठा कज्जइ ?

उ. गोयमा ! एवं तहेव जाव वत्तव्वं सिया।

एवं जाव वेमाणियाणं।
एवं जाव परिग्गहेणं।
एए वि पंच दंडगा।

प. जं देसं णं भंते ! जीवाणं पाणाइवाएणं किरिया कज्जइ, सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ, अपुट्ठा कज्जइ ?

उ. गोयमा ! एवं जाव परिग्गहेणं।
एवं एए वि पंच दंडगा।

प. जं पदेसं णं भंते ! जीवाणं पाणाइवाएणं किरिया कज्जइ सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ, अपुट्ठा कज्जइ ?

उ. गोयमा ! एवं तहेव दंडओ।
एवं जाव परिग्गहेणं।
एवं एए वीसं दंडगा। *–विया. स. १७, उ. ४, सु. २-१२*

२४. तालफलपवाडमाणस्स पुरिसस्स किरिया परूवणं–

प. पुरिसे णं भंते ! तालमारूहइ, तालमारूहित्ता तालाओ तालफलं पचालेमाणे वा, पवाडेमाणे वा कइ किरिए ?

उ. गोयमा ! जावं च णं से पुरिसे तालमारूहइ, तालमारूहित्ता तालाओ तालफलं पचालेइ वा, पवाडेइ वा,

तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे, जेसिं पि य णं जीवाणं सरीरेहिंतो [illegible] निव्वत्तिए, तालफले निव्वत्तिए ते वि णं जीवा [illegible] जाव पाणाइवाय किरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा।

प. [illegible] से तालफले अप्पणो गरुयत्ताए जाव अहे [illegible] जाइं तत्थ पाणाइं जाव सत्ताइं [illegible] भंते ! से पुरिसे कइ किरिए ?

उ. [illegible] से तालफले अप्पणो गरुयत्ताए जाव [illegible] से पुरिसे काइयाए जाव [illegible] पुट्ठे,

[illegible] निव्वत्तिए,
[illegible] जाव पारियावणियाए चउहिं
[illegible] जीवाणं सरीरेहिंतो

उ. हां, गौतम ! करते हैं।

प्र. भंते ! वह क्रिया स्पृष्ट है या अस्पृष्ट है ?

उ. गौतम ! जैसे प्राणातिपात का दण्डक कहा उसी प्रकार मृषावाद-क्रिया का भी दण्डक कहना चाहिए।
इसी प्रकार अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह क्रिया के विषय में भी जान लेना चाहिए। इस प्रकार ये पांच दण्डक हुए।

प्र. भंते ! जिस समय जीव प्राणातिपातिकी क्रिया करते हैं, क्या उस समय वे स्पृष्ट क्रिया करते हैं या अस्पृष्ट क्रिया करते हैं ?

उ. गौतम ! पूर्वोक्त प्रकार से "अनानुपूर्वीकृत नहीं हैं पर्यन्त कहना चाहिए।
इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।
इसी प्रकार पारिग्रहिकी क्रिया पर्यन्त कहना चाहिए।
इस प्रकार ये पांच दण्डक हुए।

प्र. भंते ! जिस देश (क्षेत्र) में जीव प्राणातिपातिकी क्रिया करते हैं क्या उस देश में वे स्पृष्ट क्रिया करते हैं या अस्पृष्ट क्रिया करते हैं ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् पारिग्रहिकी क्रिया पर्यन्त जानना चाहिए।
इस प्रकार ये पांच दण्डक हुए।

प्र. भंते ! जिस प्रदेश में जीव प्राणातिपातिकी क्रिया करते हैं, उस प्रदेश में वे स्पृष्ट क्रिया करते हैं या अस्पृष्ट क्रिया करते हैं ?

उ. गौतम ! इसी प्रकार पूर्ववत् दण्डक कहना चाहिए।
इसी प्रकार पारिग्रहिकी क्रिया पर्यन्त जानना चाहिए।
इस प्रकार ये कुल बीस दण्डक हुए।

२४. ताड़फल गिराने वाले पुरुष की क्रियाओं का प्ररूपण–

प्र. भंते ! कोई पुरुष ताड़ के वृक्ष पर चढ़े और चढ़कर फिर उस ताड़ के फल को हिलाए या गिराए तो उस पुरुष को कितनी क्रियाएं लगती हैं ?

उ. गौतम ! जब वह पुरुष ताड़ के वृक्ष पर चढ़ता है और चढ़कर उस ताड़ वृक्ष से ताड़ फल को हिलाता है और गिराता है,
तब वह पुरुष कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है। जिन जीवों के शरीरों से ताड़वृक्ष और ताड़ फल बना है, वे जीव भी कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

प्र. भंते ! (उस पुरुष द्वारा तालवृक्ष के हिलाने पर) जो वह ताड़फल अपने भार से यावत् अपने आप गिरने से वहां के प्राणी यावत् सत्व जीव रहित होते हैं तब भंते ! उस पुरुष को कितनी क्रियाएं लगती हैं ?

उ. गौतम (पुरुष द्वारा ताड़वृक्ष के हिलाने पर) जो वह ताड़फल अपने भार से गिरे यावत् जीवन से रहित करता है तो वह पुरुष कायिकी यावत् पारितापनिकी इन चार क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।
जिन जीवों के शरीरों से ताड़वृक्ष निष्पन्न हुआ है,
वे जीव कायिकी यावत् पारितापनिकी इन चार क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं। जिन जीवों के शरीरों से ताड़फल निष्पन्न हुआ है,

ते वि य णं जीवा काइयाए जाव पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा,

जे वि य से जीवा अहे वीससाए पच्चोवयमाणस्स उवग्गहे वट्टंति,

ते वि य णं जीवा काइयाए जाव पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा। —*विया. स. १७, उ. १, सु. ८-९*

२५. रुक्खमूलाइ पवाडमाणस्स पुरिसस्स किरियापरूवणं—

प. पुरिसे णं भंते ! रुक्खस्स मूलं पचालेमाणे वा, पवाडेमाणे वा कइ किरिए?

उ. गोयमा ! जावं च णं से पुरिसे रुक्खस्स मूलं पचालेइ वा, पवाडेइ वा तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे,

जेसिं पि य णं जीवाणं सरीरेहिंतो मूले निव्वत्तिए जाव बीए निव्वत्तिए ते वि य णं जीवा काइयाए जाव पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा।

प. अहे णं भंते ! से मूले अप्पणो गरुयत्ताए जाव जीवियाओ ववरोवेइ तओ णं भंते ! से पुरिसे कइ किरिए?

उ. गोयमा ! जावं च णं से मूले अप्पणो गरुयत्ताए जाव जीवियाओ ववरोवेइ,

तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव पारितावणियाए चउहिं किरियाहिं पुट्ठे,

जेसिं पि य णं जीवाणं सरीरेहिंतो कंदे निव्वत्तिए जाव बीए निव्वत्तिए, ते वि य णं जीवा काइयाए जाव पारितावणियाए चउहिं किरियाहिं पुट्ठा,

जे सिं पि य णं जीवा णं सरीरेहिंतो मूले निव्वत्तिए, ते वि य णं जीवा काइयाए जाव पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा,

जे वि य णं से जीवा अहे वीससाए पच्चोवयमाणस्स उवग्गहे वट्टंति।

ते वि य णं जीवा काइयाए जाव पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा।

प. पुरिसे णं भंते ! रुक्खस्स कंदे पचालेमाणे वा, पवाडेमाणे वा कइ किरिए?

उ. गोयमा ! जावं च णं से पुरिसे कंदे पचालेमाणे वा, पवाडेमाणे वा,

तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे,

जेसिं पि य णं जीवाणं सरीरेहिंतो कंदे निव्वत्तिए जाव बीए निव्वत्तिए,

ते वि य णं जीवा काइयाए जाव पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा।

प. [illegible]

वे जीव कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

जो जीव स्वाभाविक रूप से नीचे पड़ते हुए ताड़फल के सहायक होते हैं,

वे जीव भी कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

२५. वृक्षमूलादि को गिराने वाले पुरुष की क्रियाओं का प्ररूपण—

प्र. भंते ! कोई पुरुष वृक्ष के मूल को हिलाए या गिराए तो उसको कितनी क्रियाएं लगती हैं?

उ. गौतम ! जब वह पुरुष वृक्ष के मूल को हिलाता या गिराता है तब वह पुरुष कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

जिन जीवों के शरीरों से मूल यावत् बीज निष्पन्न हुए हैं, वे जीव भी कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

प्र. भंते ! यदि वह मूल अपने भारीपन के कारण नीचे गिरे यावत् जीवों का हनन करे तब उस पुरुष को कितनी क्रियाएं लगती हैं?

उ. गौतम ! जब मूल अपने भारीपन के कारण नीचे गिरता है यावत् अन्य जीवों का हनन करता है,

तब वह पुरुष कायिकी यावत् पारितापनिकी इन चार क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

जिन जीवों के शरीर से वह कन्द यावत् बीज निष्पन्न हुआ है, वे जीव कायिकी यावत् पारितापनिकी इन चार क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

जिन जीवों के शरीरों से मूल निष्पन्न हुआ है, वे जीव कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

जो जीव स्वाभाविक रूप से नीचे गिरते हुए मूल के सहायक होते हैं,

वे जीव कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

प्र. भंते ! कोई पुरुष वृक्ष के कन्द को हिलाए या गिराए तो उसको कितनी क्रियाएं लगती हैं?

उ. गौतम ! जब वह पुरुष कन्द को हिलाता या गिराता है

तब वह पुरुष कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

जिन जीवों के शरीर से कन्द यावत् [illegible]

[illegible]

प्र. [illegible]

उ. गोयमा ! जावं च णं से कंदे अप्पणो गरुयत्ताए जाव जीवियाओ ववरोवेइ,

तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव पारितावणियाए चउहिं किरियाहिं पुट्ठे,

जेसिं पि य णं जीवा णं सरीरेहिंतो मूले निव्वत्तिए, कंदे निव्वत्तिए जाव बीए निव्वत्तिए

ते वि य णं जीवा काइयाए जाव पारितावणियाए चउहिं किरियाहिं पुट्ठा,

जेसिं पि य णं जीवा णं सरीरेहिंतो कंदे निव्वत्तिए जाव बीए निव्वत्तिए

ते वि य णं जीवा काइयाए जाव पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा,

जे वि य से जीवा अहे वीससाए पच्चोवमयमाणस्स उवग्गहे वट्टंति,

ते वि य णं जीवा काइयाए जाव पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा।

जहा कंदे एवं जाव बीयं। *-विया. स. १७, उ. १, सु. १०-१४*

उ. गौतम ! जब वह कंद अपने भारीपन के कारण नीचे गिरता है यावत् अन्य जीवों का हनन करता है।

तब वह पुरुष कायिकी यावत् पारितापनिकी इन चार क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

जिन जीवों के शरीरों से मूल, स्कन्ध यावत् बीज निष्पन्न हुए हैं,

वे जीव कायिकी यावत् पारितापनिकी इन चार क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं,

जिन जीवों के शरीरों से कन्द यावत् बीज निष्पन्न हुए हैं

वे जीव कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

जो जीव स्वाभाविक रूप से नीचे गिरते हुए कन्द के सहायक होते हैं,

वे जीव कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

जिस प्रकार कन्द के विषय में आलापक कहा, उसी प्रकार (स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल) यावत् बीज के विषय में भी कहना चाहिए।

२६. पुरिसवधकस्स किरिया परूवणं-

प. पुरिसे णं भंते ! पुरिसं सत्तीए समभिधंसेज्जा, सयपाणिणा वा से असिणा सीसं छिंदेज्जा तओ णं भंते ! से पुरिसे कइ किरिए?

उ. गोयमा ! जावं च णं से पुरिसे तं पुरिसं सत्तीए समभिधंसेइ, सयपाणिणा वा से असिणा सीसं छिंदइ, तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे। आसन्नवहएण य अणवकंखणवत्तीए णं पुरिसवेरेणं पुट्ठे।

-विया. स. १, उ. ८, सु. ८

२६. पुरुष को मारने वाले की क्रियाओं का प्ररूपण-

प्र. भंते ! कोई पुरुष किसी पुरुष को भाले से मारे या अपने हाथ से तलवार द्वारा उसका मस्तक काटे तो भंते ! उस पुरुष को कितनी क्रियाएं लगती हैं?

उ. गौतम ! जब वह पुरुष उस पुरुष को भाले द्वारा मारता है या अपने हाथ से तलवार द्वारा उसका मस्तक काटता है, तब वह पुरुष कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है। तत्काल मारने वाला एवं दूसरे के प्राणों की परवाह न करने वाला वह (पुरुष) पुरुष-वैर से स्पृष्ट होता है।

२७. धणुपक्खेवगस्स किरिया परूवणं-

प. पुरिसे णं भंते ! धणु परामुसइ, परामुसित्ता उसुं परामुसइ, उसुं परामुसित्ता ठाणं ठाइ, ठाणं ठिच्चा आययकण्णाययं उसुं करेइ आययकण्णाययं उसुं करेत्ता उड्ढं वेहासं उसुं उव्विहइ, तए णं से उसुं उड्ढं वेहासं उव्विहए समाणे जाइं तत्थ पाणाइं जाव सत्ताइं अभिहणइ जाव जीवियाओ ववरोवेइ, तए णं भंते ! से पुरिसे कइ किरिए?

उ. गोयमा ! जावं च णं से पुरिसे धणुं परामुसइ जाव जीवियाओ ववरोवेइ, तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे, जेसिं पि य णं जीवाणं सरीरेहिंतो धनु निव्वत्तिए ते वि य णं जीवा काइयाए जाव पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा,

एवं धणुपुट्ठे पंचहिं किरियाहिं, जीवा पंचहिं, ण्हारू पंचहिं, उसू पंचहिं, सरे, पत्तणे, फले, ण्हारू पंचहिं।

२७. धनुष प्रक्षेपक की क्रियाओं का प्ररूपण-

प्र. भंते ! कोई पुरुष धनुष को स्पर्श करता है, स्पर्श करके वह बाण को ग्रहण करता है, ग्रहण करके आसन से बैठता है, बैठकर बाण को कान तक खींचता है, खींच कर ऊपर आकाश में फेंकता है, ऊपर आकाश में फेंका हुआ वह बाण जिन प्राणियों यावत् सत्वों को मारता है यावत् जीवन से रहित कर देता है तब भंते! उस पुरुष को कितनी क्रियाएं लगती हैं?

उ. गौतम ! जब वह पुरुष धनुष को ग्रहण करता है यावत् प्राणियों को जीवन से रहित कर देता है तब वह पुरुष कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

जिन जीवों के शरीरों से वह धनुष निष्पन्न हुआ है वे जीव भी कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

इसी प्रकार धनुःपृष्ठ जीवा (डोरी), ण्हारू (स्नायु) बाण, शर, पत्र, फल और ण्हारू (निर्माता) भी पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

प. पुरिसे णं भंते ! कच्छंसि वा **जाव** वणविदुग्गंसि वा मियवित्तीए, मियसकंप्पे, मियपणिहाणे, मियवहाए गंता "एए मिय" त्ति काउं अण्णयरस्स मियस्स वहाए उसुं णिसिरइ, तओ णं भंते ! से पुरिसे कइ किरिए?

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।"

उ. गोयमा ! जे भविए णिसिरणयाए तिहिं,

जे भविए णिसिरणयाए वि, विद्धंसणयाए वि, णो मारणयाए चउहिं।

जे भविए णिसिरणयाए वि, विद्धंसणयाए वि, मारणयाए वि, तावं च णं से पुरिसे पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे।"

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।"

–विया. स. १, उ. ८, सु. ६

२९. मियवहगस्स वधकवहगस्स किरियापरूवणं–

प. पुरिसे णं भंते ! कच्छंसि वा **जाव** वणविदुग्गंसि वा मियवित्तीए, मिय संकप्पे, मियपणिहाणे मियवहाए गंता "एस मिय" त्ति काउं अण्णयरस्स मियस्स वहाए आययकण्णाययं उसुं आयामेत्ता चिट्ठेज्जा, अन्ने य से पुरिसे मग्गओ आगम्म सयपाणिया असिणा सीसं छिंदेज्जा,

से य उसूयाए चेव पुव्वायामणयाए तं मियं विंधेज्जा, से णं भंते ! पुरिसे किं मियवेरेणं पुट्ठे, पुरिसवेरेणं पुट्ठे?

उ. गोयमा ! जे मियं मारेइ, से मियवेरेणं पुट्ठे।
जे पुरिसं मारेइ, से पुरिसवेरेणं पुट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जे मियं मारेइ, से मियवेरेणं पुट्ठे, जे पुरिसं मारेइ से पुरिसवेरेणं पुट्ठे?"

उ. से [illegible] गोयमा ! कज्जमाणे कडे, संधिज्जमाणे संधिए, [illegible] निव्वत्तिए, निसिरिज्जमाणे निसिट्ठे त्ति [illegible] सिया?

[illegible] कज्जमाणे कडे जाव निसिट्ठे त्ति वत्तव्वं [illegible]

[illegible]

[illegible] पुट्ठे जे पुरिसं मारेइ से [illegible]

प्र. भंते ! मृगों से आजीविका चलाने वाला, मृगवध का संकल्प करने वाला, मृगवध में दत्तचित्त कोई पुरुष मृगवध के लिए निकलकर कच्छ में **यावत्** गहन वन में जाकर "ये मृग है" ऐसा सोचकर किसी एक मृग को मारने के लिए वाण फेंकता है तो भंते ! वह पुरुष कितनी क्रिया वाला होता है?

उ. गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला होता है?"

उ. गौतम ! जव वह वाण निकालता है तव वह तीन क्रियाओं से स्पृष्ट होता है,

जव वह वाण निकालता भी है और मृग को वांधता भी है, किन्तु मृग को मारता नहीं है, तव वह चार क्रियाओं से स्पृष्ट होता है,

जव वह वाण निकालता भी है, मृग को वांधता भी है और मारता भी है, तव वह पुरुष पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला होता है।"

२९. मृगवधक और उसके वधक की क्रियाओं का प्ररूपण–

प्र. भंते ! मृगों से आजीविका चलाने वाला, मृगवध का संकल्प करने वाला, मृगवध में दत्तचित्त कोई पुरुष मृगवध के लिए कच्छ में **यावत्** गहन वन में जाकर "ये मृग है" ऐसा सोचकर किसी एक मृग के वध के लिए कान तक वाण को खींचकर तत्पर हो उस समय दूसरा कोई पुरुष पीछे से आकर अपने हाथ से तलवार द्वारा उसका मस्तक काट दे।

वह वाण पहले के खिंचाव से उछलकर कर मृग को वींध दे, तो भंते ! वह (अन्य) पुरुष मृग के वैर से स्पृष्ट है या पुरुष के वैर से स्पृष्ट है?

उ. गौतम ! जो मृग को मारता है, वह मृग के वैर से स्पृष्ट है।
जो पुरुप को मारता है, वह पुरुप के वैर से स्पृष्ट है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जो मृग को मारता है वह पुरुप मृग के वैर से स्पृष्ट है और जो पुरुप को मारता है वह पुरुप के वैर से स्पृष्ट है?"

उ. गौतम ! "जो किया जा रहा है, वह किया हुआ" "जो साधा जा रहा है, वह साधा हुआ" "जो वनाया जा रहा है वह वनाया हुआ" "जो निकाला जा रहा है वह निकाला हुआ कहलाता है न?"

(गौतम–) 'हां, भगवन् ! जो किया जा रहा है, वह क्रिया हुआ" यावत्–'जो निकाला जा रहा है, वह निकाला हुआ कहलाता है।'

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जो मृग को मारता है, वह मृग के वैर से स्पृष्ट है और जो पुरुप को मारता है, वह पुरुष के वैर से स्पृष्ट है।

जेसिं पि य णं जीवाणं सरीरेहिंतो अए निव्वत्तिए, संडासए निव्वत्तिए, घम्मट्ठे निव्वत्तिए, मुट्ठिए निव्वत्तिए, अहिगरणी निव्वत्तिया, अहिगरणिखोडी निव्वत्तिया, उदगदोणी निव्वत्तिया, अहिगरणसाला निव्वत्तिया, ते वि य णं जीवा काइयाए जाव पाणाइवाय किरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा।

-विया. स. १६, उ. १, सु. ७-८

३२. वासं परिक्खमाण पुरिसस्स किरियापरूवणं-

प. पुरिसे णं भंते ! वासं वासइ, वासं नो वासईत्ति हत्थं वा, पायं वा, बाहुं वा, उरूं वा, आउंटावेमाणे वा, पसारेमाणे वा कइ किरिए ?

उ. गोयमा ! जावं च णं से पुरिसे वासं वासइ, वासं नो वासई त्ति हत्थं वा जाव उरूं वा, आउंटावेइ वा, पसारेइ वा तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे। *-विया. स. १६, उ. ८, सु. १४*

३३. पुरिस आस हत्थिआइ हणमाणे अन्न जीवाण वि हण्णपरूवणं-

प. पुरिसे णं भंते ! पुरिसं हणमाणे किं पुरिसं हणइ, नोपुरिसं हणइ ?

उ. गोयमा ! पुरिसं पि हणइ, नोपुरिसे वि हणइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-
'पुरिसं पि हणइ, नोपुरिसे वि हणइ ?'

उ. गोयमा ! तस्स णं एवं भवइ-
'एवं खलु अहं एगं पुरिसं हणामि' से णं एगं पुरिसं हणमाणे अणेगे जीवे हणइ।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-
'पुरिसं पि हणइ, नोपुरिसे वि हणइ।'

प. पुरिसे णं भंते ! आसं हणमाणे किं आसं हणइ, नो आसे वि हणइ,

जिन जीवों के शरीरों से लोहा बना है, संडासी बनी है, घन बना है, हथौड़ा बना है, एरण बनी है, एरण की लकड़ी बनी है, कुण्डी बनी है और लोहारशाला बनी है। वे जीव भी कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

३२. वर्षा की परीक्षा करने वाले पुरुष की क्रियाओं का प्ररूपण-

प्र. भंते ! वर्षा बरस रही है या नहीं बरस रही है ?--यह जानने के लिए कोई पुरुष अपने हाथ, पैर, बाहु या उरू (पिंडली) को सिकोडे या फैलाए तो उसे कितनी क्रियाएं लगती हैं ?

उ. गौतम ! वर्षा बरस रही है या नहीं बरस रही है ? यह जानने के लिए कोई पुरुष अपने हाथ यावत् उरू को सिकोड़ता है या फैलाता है तब वह पुरुष कायिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

३३. पुरुष अश्व हस्ति आदि को मारते हुए अन्य जीवों के भी हनन का प्ररूपण-

प्र. भन्ते ! कोई पुरुष, पुरुष की घात करता हुआ पुरुष की ही घात करता है या नोपुरुष (पुरुष के सिवाय अन्य जीवों) की भी घात करता है ?

उ. गौतम ! वह (पुरुष) पुरुष की भी घात करता है और नोपुरुष की भी घात करता है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि-
'वह पुरुष की भी घात करता है और नोपुरुष की भी घात करता है ?'

उ. गौतम ! घातक के मन में ऐसा विचार होता है कि-
'मैं एक ही पुरुष को मारता हूँ,' किन्तु वह एक पुरुष को मारता हुआ अन्य अनेक जीवों को भी मारता है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि-
'वह पुरुष को भी मारता है और नोपुरुष को भी मारता है।'

प्र. भन्ते ! कोई पुरुष अश्व को मारता हुआ क्या अश्व को ही मारता है या नो अश्व (अश्व के सिवाय अन्य जीवों को भी) मारता है ?

उ. गौतम ! वह (अश्वघातक) अश्व को भी मारता है और नो अश्व (अश्व के अतिरिक्त दूसरे जीवों) को भी मारता है।
ऐसा कहने का कारण पूर्ववत् समझना चाहिए।
इसी प्रकार हाथी, सिंह, व्याघ्र, चित्रल पर्यन्त मारने के संबंध में समझना चाहिए।

प्र. भन्ते ! कोई पुरुष किसी एक त्रसप्राणी को मारता हुआ क्या उस त्रसप्राणी को मारता है या उसके सिवाय अन्य त्रस प्राणियों को भी मारता है ?

उ. गौतम ! वह उस त्रसप्राणी को भी मारता है और उसके सिवाय अन्य त्रसप्राणियों को भी मारता है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि-

'अन्नयरं पि तसपाणं हणइ, नो अन्नयरे वि तसे पाणे हणइ ?'

उ. गोयमा ! तस्स णं एवं भवइ, एवं खलु अहे एगे अन्नयरं तसं पाणं हणामि से णं एगं अन्नयरं तसं पणं हणमाणे अणेगे जीवे हणइ,

ते तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'अन्नयरं पि तसपाणं हणइ, नो अन्नयरे वि तसे पाणे हणइ।'

प. पुरिसे णं भंते ! इसिं हणमाणे किं इसिं हणइ, नो इसिं हणइ ?

उ. गोयमा ! इसिं पि हणइ, नो इसिं पि हणइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"इसिं पि हणइ, नो इसिं पि हणइ ?"

उ. गोयमा ! तस्स णं एवं भवइ एवं खलु अहं एगं इसिं हणामि से णं एगं इसिं हणमाणे अणंते जीवे हणइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"इसिं पि हणइ, नो इसिं पि हणइ।"

–विया. स. ९, उ. ३४, सु. १-६

३४. हणमाण पुरिसस्स-फासण परूवणं–

प. पुरिसे णं भंते ! हणमाणे किं पुरिसवेरेणं पुट्ठे, नोपुरिसवेरेणं पुट्ठे ?

उ. गोयमा ! १. नियमा ताव पुरिसवेरेणं पुट्ठे,

२. अहवा पुरिसवेरेण य णोपुरिसवेरेण य पुट्ठे,

३. अहवा पुरिसवेरेण य नोपुरिसवेरेहि य पुट्ठे।

एवं आसं जाव चिल्ललगं जाव अहवा चिल्ललगवेरेण य, णो चिल्ललगवेरेहि य पुट्ठे।

प. पुरिसे णं भंते ! इसिं हणमाणे किं इसिवेरेणं पुट्ठे, णो इसिवेरेणं पुट्ठे ?

उ. गोयमा ! [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

'वह पुरुष उस त्रसजीव को भी मारता है और उसके सिवाय अन्य त्रसजीवों को भी मारता है ?'

उ. गौतम ! घातक के मन में ऐसा विचार होता है कि–मैं उसी त्रसजीव को मार रहा हूँ किन्तु वह उस त्रसजीव को मारता हुआ उसके सिवाय अन्य अनेक त्रसजीवों को भी मारता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

'वह पुरुष उस त्रस जीव को भी मारता है और उसके सिवाय अन्य त्रस जीवों को भी मारता है।'

प्र. भन्ते ! कोई पुरुष ऋषि को मारता हुआ क्या ऋषि को ही मारता है या नोऋषि (ऋषि के सिवाय अन्य) जीवों को भी मारता है ?

उ. गौतम ! वह (ऋषि घातक) ऋषि को भी मारता है और नोऋषि को भी मारता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि-

'ऋषि को मारने वाला वह पुरुष ऋषि को भी मारता है और नोऋषि को भी मारता है।'

उ. गौतम ! ऋषि को मारने वाले उस पुरुष के मन में ऐसा विचार होता है कि–'मैं एक ऋषि को मारता हूँ किन्तु वह एक ऋषि को मारता हुआ अनन्त जीवों को मारता है।'

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि-

'ऋषि को मारने वाला पुरुष ऋषि को भी मारता है और नोऋषि को भी मारता है।'

३४. मारते हुए पुरुष के वैर स्पर्शन का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! पुरुष को मारता हुआ कोई व्यक्ति क्या पुरुष वैर से स्पृष्ट होता है या नोपुरुष वैर (पुरुष के सिवाय अन्य जीव के साथ) से स्पृष्ट होता है ?

उ. गौतम ! १. वह व्यक्ति नियम से पुरुष वैर से स्पृष्ट होता है।

२. अथवा पुरुष वैर से और नोपुरुष वैर से स्पृष्ट होता है।

३. अथवा पुरुष वैर से और [illegible] (पुरुष के [illegible]) अनेक जीवों के वैर से स्पृष्ट होता है।

इसी प्रकार अश्व से [illegible] चिल्ललक [illegible] वैर से स्पृष्ट होने के विषय में भी जानना चाहिए, कि [illegible] चिल्ललक वैर से स्पृष्ट होता है और नो चिल्ललक वैरों से स्पृष्ट होता है।

प्र. [illegible]

उ. [illegible]

[illegible]

[illegible]

नगराओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।[1]

तेणं कालेणं तेणं समएणं उल्लूयतीरे नामं नयरे होत्था, **वण्णओ।**

तस्स णं उल्लूयतीरस्स नयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए एत्थ णं एगजंबुए नामं चेइए होत्था, **वण्णओ।**

तए णं समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे **जाव** एगजंबुए समोसढे **जाव** परिसा पडिगया।

भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरे वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासि–

प. अणगारस्स णं भंते ! भावियप्पणो छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावेमाणस्स तस्स णं पुरत्थिमेणं अवड्ढं दिवसं नो कप्पइ हत्थं वा, पायं वा, बाहं वा, ऊरूं वा, आउंटावेत्तए वा, पसारेत्तए वा पच्चत्थिमेणं से अवड्ढं दिवसं कप्पइ, हत्थं वा, पायं वा, बाहं वा, ऊरूं वा, आउंटावेत्तए वा, पसारावेत्तए वा, तस्स य अंसियाओ लंबंति तं च वेज्जे अदक्खु ईसिं पाडेइ, ईसिं पाडेत्ता अंसियाओ छिंदेज्जा।

से नूणं भंते ! जे छिंदइ तस्स किरिया कज्जइ ?

जस्स छिज्जइ नो तस्स किरिया कज्जइ णऽन्नत्थगेणं धम्मंतराइएणं ?

उ. हंता, गोयमा ! जे छिंदइ तस्स किरिया कज्जइ, जस्स छिज्जइ नो तस्स किरिया कज्जइ णऽन्नत्थगेणं धम्मंतराइएणं। *–विया. स. १६, उ. ३, सु. ५-१०*

३६. पुढविकाइयाणं आणमपाणममाणे किरिया परूवणं–

प. पुढविक्काइए णं भंते ! पुढविकाइयं चेव आणममाणे वा, पाणममाणे वा, ऊससमाणे वा, नीससमाणे वा कइ किरिए ?

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।

प. पुढविक्काइए णं भंते ! आउक्काइयं आणममाणे वा, पाणममाणे वा, ऊससमाणे वा, नीससमाणे वा कइ किरिए ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं जाव वणस्सइकाइयं।

एवं आउक्काइएण वि सव्वे वि भाणियव्वा।

एवं तेउक्काइएण वि सव्वे वि भाणियव्वा।

गुणशीलक नामक उद्यान से निकले और निकलकर बाह्य जनपदों में विचरण करने लगे।

उस काल और उस समय में उल्लूकतीर नाम का नगर था। उसका वर्णन (औपपातिक सूत्र के अनुसार) जानना चाहिए।

उस उल्लूकतीर नगर के बाहर उत्तर पूर्व दिक् भाग (ईशान कोण) में एक जम्बूक नामक उद्यान था, उसका वर्णन (औपपातिक सूत्र के अनुसार) जानना चाहिए।

एक बार किसी दिन श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अनुक्रम से विचरण करते हुए यावत् एक जम्बूक उद्यान में पधारे यावत् परिषद् (धर्मदेशना सुनकर) लौट गई।

'भंते !' इस प्रकार से सम्बोधित करके भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन नमस्कार किया और वन्दन नमस्कार करके फिर इस प्रकार पूछा–

प्र. 'भंते ! निरन्तर छठ-छठ (बेले-बेले) के तपश्चरण के साथ ऊपर को हाथ किये हुए सूर्य की तरफ मुख करके आतापना लेते हुए भावितात्मा अनगार को (कायोत्सर्ग में) दिवस के पूर्वार्द्ध में अपने हाथ, पैर, बांह या उरू (जंघा) को सिकोड़ना या पसारना नहीं कल्पता है, किन्तु दिवस के पश्चिमार्द्ध (पिछले भाग) में अपने हाथ, पैर, बांह या उरू को सिकोड़ना या फैलाना कल्पता है इस प्रकार कायोत्सर्ग स्थित उस भावितात्मा अनगार की नासिका में अर्श (मस्सा) लटक रहा हो उस अर्श को किसी वैद्य ने देखा और काटने के लिए उस को लेटाया और लेटाकर अर्श का छेदन किया,

उस समय भंते ! क्या अर्श को काटने वाले वैद्य को क्रिया लगती है ?

या जिस (अनगार) का अर्श काटा जा रहा है उसे एक मात्र धर्मान्तरायिक क्रिया के सिवाय अन्य क्रिया तो नहीं लगती है ?

उ. हां, गौतम ! जो (अर्श को) काटता है उसे (शुभ) क्रिया लगती है और जिसका अर्श काटा जा रहा है उस अणगार को धर्मान्तरायिक क्रिया के सिवाय अन्य कोई क्रिया नहीं लगती।

३६. पृथ्वीकायिकादिकों के द्वारा श्वासोच्छ्वास लेते-छोड़ते हुए की क्रियाओं का प्ररूपण–

प्र. भंते ! पृथ्वीकायिक जीव, पृथ्वीकायिक जीव को आभ्यन्तर एवं बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते और छोड़ते हुए कितनी क्रियाओं वाला होता है ?

उ. गौतम ! कदाचित् तीन क्रियावाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला होता है।

प. भंते ! पृथ्वीकायिक जीव, अप्कायिक जीवों को आभ्यन्तर एवं बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते और छोड़ते हुए कितनी क्रियाओं वाला होता है ?

उ. गौतम ! पूर्वोक्त प्रकार से ही जानना चाहिए।

इसी प्रकार वनस्पतिकायिक पर्यंत कहना चाहिए।

इसी प्रकार अप्कायिक जीवों के साथ भी पृथ्वीकायिक आदि सभी (५ भंग) का कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार तेजस्कायिक के साथ भी पृथ्वीकायिक आदि सभी (५ भंग) का कथन करना चाहिए।

---

१. विया. स. १८, उ. ७, सु. २३

एवं वाउक्काइएण वि सव्वे वि भाणियव्वा।

इसी प्रकार वायुकायिक जीवों के साथ भी पृथ्वीकायिक आदि सभी (५ भंग) का कथन करना चाहिए।

प. वणस्सइकाइए णं भंते ! वणस्सइकाइयं चेव आणममाणे वा, पाणममाणे वा, ऊससमाणे वा, नीससमाणे वा कइ किरिए?

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए। –विया. स. १, उ. ३४, सु. १६-२२

प्र. भंते ! वनस्पतिकायिक जीव, वनस्पतिकायिक जीवों को आभ्यन्तर और बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते हुए और छोड़ते हुए कितनी क्रियाओं वाला होता है?

उ. गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला होता है।

३७. वाउकायस्स रूक्खाइं पचाले-पवाडे माणे किरिया परूवणं–

प. वाउकाइए णं भंते ! रूक्खस्स मूलं पचालेमाणे वा, पवाडेमाणे वा कइ किरिए?

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।

एवं कंदं जाव बीयं। –विया. स. १, उ. ३४, सु. २३-२५

३७. वायुकाय के द्वारा वृक्षादि हिलाते-गिराते हुए की क्रियाओं का प्ररूपण–

प्र. भंते ! वायुकायिक जीव वृक्ष के मूल को हिलाता हुआ और गिराता हुआ कितनी क्रियाओं वाला होता है?

उ. गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रियावाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला होता है।

इसी प्रकार कंद यावत् बीज को हिलाते हुए आदि के लिए क्रियाएं जाननी चाहिए।

३८. जीव-चउवीस दंडएसु एगत्त-पुहत्तेहिं किरियापरूवणं–

प. जीवे णं भंते ! जीवाओ कइ किरिए?

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए, सिय अकिरिए।

प. दं. १. जीवे णं भंते ! णेरइयाओ कइ किरिए?

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय अकिरिए।

दं. २-११. एवं जाव थणियकुमाराओ।

दं. १२-२१. पुढविक्काइय-आउक्काइय-तेउक्काइय-वाउक्काइय-वणप्फइकाइय-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय, पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिय-मणूसाओ जहा जीवाओ।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाओ जहा णेरइयाओ।

प. जीवे णं भंते ! जीवेहिंतो कइ किरिए?

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए, सिय अकिरिए।

प. जीवे णं भंते ! णेरइएहिंतो कइ किरिए?

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय अकिरिए।

एवं जहेव पढमो दंडओ तहा एसो वि बिइओ भाणियव्वो।

प. जीवा णं भंते ! जीवाओ कइ किरिया?

३८. जीव-चौबीस दंडकों में एक व अनेक जीव की अपेक्षा क्रियाओं का प्ररूपण–

प्र. भंते ! एक जीव एक जीव की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाला है?

उ. गौतम ! कदाचित् तीन, चार या पांच क्रियाओं वाला है और कदाचित् अक्रिय है।

प्र. दं. १. भंते ! एक जीव एक नैरयिक की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाला है?

उ. गौतम ! कदाचित् तीन या चार क्रियाओं वाला है और कदाचित् अक्रिय है।

दं. २-११. इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त कहना चाहिए।

दं. १२-२१. (एक जीव को) पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक और मनुष्य की अपेक्षा जीव के समान क्रियाएं जाननी चाहिये।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों म नैरयिक के समान क्रियाएं कहनी चाहिए।

प्र. भंते ! एक जीव अनेक जीवों की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाला है?

उ. गौतम ! कदाचित् तीन चार या पांच क्रियाओं वाला है और कदाचित् अक्रिय है।

प्र. भंते ! एक जीव अनेक नैरयिकों की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाला है?

उ. गौतम ! कदाचित् तीन या चार क्रियाओं वाला है और कदाचित् अक्रिय है।

इसी प्रकार जैसा पहले दंडक में कहा उसी प्रकार यहां दूसरे दंडक में कहना चाहिए।

प्र. भंते ! अनेक जीव एक जीव की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाले हैं?

उ. गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पंचकिरिया वि, अकिरिया वि।

प. जीवा णं भंते ! णेरइयाओ कइ किरियाओ ?

उ. गोयमा ! **जहेव आइल्लदंडओ तहेव भाणियव्वो** जाव **वेमाणिय त्ति।**

प. जीवा णं भंते ! जीवेहिंतो कइ किरिया ?

उ. गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पंचकिरिया वि, अकिरिया वि।

प. दं. १. जीवा णं भंते ! णेरइएहिंतो कइ किरिया ?

उ. गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, अकिरिया वि।

दं. २-२४. **असुरकुमारेहिंतो वि एवं चेव** जाव **वेमाणिएहिंतो।**

णवरं–ओरालियसरीरेहिंतो जहा जीवेहिंतो।

प. णेरइए णं भंते ! जीवाओ कइ किरिए ?

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।

प. दं. १. णेरइए णं भंते ! णेरइयाओ कइ किरिए ?

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए।

दं. २-११. एवं जाव **थणियकुमाराओ।**

दं. १२-२१. **पुढविकाइयाओ** जाव **मणुस्साओ** जहा **जीवाओ।**

दं. २२-२४. **वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाओ** जहा **नेरइयाओ।**

णवरं–ओरालिय सरीराओ जहा जीवाओ।

प. णेरइए णं भंते ! जीवेहिंतो कइ किरिए ?

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।

प. णेरइए णं भंते ! णेरइएहिंतो कइ किरिए ?

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए।

एवं जहेव पढमो दंडओ तहा एसो वि विइओ भाणियव्वो।

एवं जाव वेमाणिएहिंतो।

णवरं–णेरइयस्स णेरइएहिंतो देवेहिंतो य पंचमा किरिया णत्थि।

उ. गौतम ! तीन, चार या पांच क्रियाओं वाले हैं और अक्रिय भी हैं।

प्र. भंते ! अनेक जीव एक नैरयिक की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाले हैं ?

उ. गौतम ! **जिस प्रकार प्रारम्भ का दंडक कहा है उसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।**

प्र. भंते ! अनेक जीव अनेक जीवों की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाले हैं ?

उ. गौतम ! वे तीन, चार या पांच क्रियाओं वाले हैं और अक्रिय भी हैं।

प्र. दं. १. भंते ! अनेक जीव अनेक नैरयिकों की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाले हैं ?

उ. गौतम ! तीन या चार क्रियाओं वाले हैं और अक्रिय भी हैं।

दं. २-२४. **असुरकुमारों से वैमानिकों पर्यन्त इसी प्रकार क्रियाएं कहनी चाहिए।**

विशेष–औदारिक शरीरधारियों की अपेक्षा क्रियाएं जीवों के समान कहनी चाहिए।

प्र. एक नैरयिक एक जीव की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाला है ?

उ. गौतम ! वह कदाचित् तीन, चार या पांच क्रियाओं वाला है।

प्र. दं. १. भंते ! एक नैरयिक-एक नैरयिक की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाला है ?

उ. गौतम ! वह कदाचित् तीन या चार क्रियाओं वाला है।

दं. २-११. इसी प्रकार यावत् **स्तनितकुमार** की अपेक्षा कहना चाहिए।

दं. १२-२१. पृथ्वीकायिक यावत् मनुष्य की अपेक्षा जीव के समान क्रियाएं कहनी चाहिए।

दं. २२-२४. **वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक की अपेक्षा नैरयिक के समान क्रियाएं कहनी चाहिए।**

विशेष–औदारिक शरीर की अपेक्षा जीव के समान कहना चाहिए।

प्र. भंते ! एक नारक अनेक जीवों की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाला है ?

उ. गौतम ! वह कदाचित् तीन, चार या पांच क्रियाओं वाला है।

प्र. भंते ! एक नैरयिक, अनेक नैरयिकों की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाला है ?

उ. गौतम ! वह कदाचित् तीन या चार क्रियाओं वाला है।

इस प्रकार जैसे प्रथम दण्डक कहा, उसी प्रकार यह द्वितीय दण्डक भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार यावत् अनेक वैमानिकों की अपेक्षा से कहना चाहिए।

विशेष–एक नैरयिक अनेक नैरयिकों की अपेक्षा से और अनेक देवों की अपेक्षा से पांचवीं क्रिया नहीं करता।

प. णेरइया णं भंते ! जीवाओ कइ किरिया ?

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिया, सिय चउकिरिया, सिय पंचकिरिया।

एवं जाव वेमाणियाओ।

णवरं–णेरइयाओ देवाओ य पंचमा किरिया णत्थि।

प. णेरइया णं भंते ! जीवेहिंतो कइ किरिया ?

उ. गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पंचकिरिया वि।

प. णेरइया णं भंते ! णेरइएहिंतो कइ किरिया ?

उ. गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि।

एवं जाव वेमाणिएहिंतो।

णवरं–ओरालियसरीरेहिंतो जहा जीवेहिंतो।

प. असुरकुमारे णं भंते ! जीवाओ कइ किरिए ?

उ. गोयमा ! जहेव णेरइएणं चत्तारि दंडगा तहेव असुरकुमारेण वि चत्तारि दंडगा भाणियव्वा।

एवं उवउज्जिऊण भाणेयव्वं ति जीवे मणूसे य अकिरिए वुच्चइ,

सेसाणं अकिरिया ण वुच्चंति,

सव्वे जीवा ओरालियसरीरेहिंतो पंचकिरिया,

णेरइए-देवेहिंतो य पंचकिरिया ण वुच्चंति।

एवं एक्केक्कजीवपए चत्तारि-चत्तारि दंडगा भाणियव्वा।

एवं एयं दंडगसयं। सव्वे वि य जीवादीया दंडगा।

–पण्ण. प. २२, सु. १५८८-१६०४

३९. जीव-चउवीसदंडएसु पंच सरीरेहिं किरियापरूवणं–

प. जीवे णं भंते ! ओरालियसरीराओ कइ किरिए ?

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंच किरिए, सिय अकिरिए।

प. दं. १. नेरइए णं भंते ! ओरालियसरीराओ कइ किरिए ?

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।

प्र. भंते ! अनेक नैरयिक एक जीव की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाले हैं ?

उ. गौतम ! वे कदाचित् तीन, चार या पांच क्रियाओं वाले हैं।

इसी प्रकार यावत् एक वैमानिक की अपेक्षा से क्रियाएं कहनी चाहिए।

विशेष–एक नैरयिक या एक देव की अपेक्षा पांचवीं क्रिया नहीं करता।

प्र. भंते ! अनेक नारक अनेक जीवों की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाले हैं ?

उ. गौतम ! वे कदाचित् तीन, चार या पांच क्रियाओं वाले हैं।

प्र. भंते ! अनेक नैरयिक अनेक नैरयिकों की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाले हैं ?

उ. गौतम ! वे तीन या चार क्रियाओं वाले हैं।

इसी प्रकार यावत् अनेक वैमानिकों की अपेक्षा से क्रियाएँ कहनी चाहिए।

विशेष–अनेक औदारिक शरीरधारियों की अपेक्षा क्रियाएं अनेक जीवों की क्रियाओं के समान कहनी चाहिए।

प्र. भंते ! एक असुरकुमार एक जीव की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाला है ?

उ. गौतम ! एक नारक की अपेक्षा से जैसे चार दण्डक कहे गये हैं, वैसे ही एक असुरकुमार की अपेक्षा से भी क्रिया संबंधी चार दण्डक कहने चाहिए।

इसी प्रकार उपयोगपूर्वक कहना चाहिए कि 'एक जीव और एक मनुष्य' अक्रिय भी कहा जा सकता है,

शेष जीव अक्रिय नहीं कहे जाते।

सभी जीव औदारिक शरीर वालों की अपेक्षा पांच क्रियाओं वाले हैं।

नारकों और देवों की अपेक्षा से पांच क्रियाएं नहीं कही जाती हैं।

इसी प्रकार एक-एक जीव के पद में चार-चार दण्डक कहने चाहिए।

यों कुल मिलाकर सौ दण्डक होते हैं। ये सब एक जीव आदि के दण्डक हैं।

३९. जीव-चौवीस दंडकों में पांच शरीरों की अपेक्षा क्रियाओं का प्ररूपण–

प्र. भंते ! एक जीव औदारिक शरीर की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाला है ?

उ. गौतम ! कदाचित् तीन, चार या पांच क्रियाओं वाला है और कदाचित् अक्रिय भी है।

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिक जीव औदारिक शरीर की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाला है ?

उ. गौतम ! वह कदाचित् तीन, चार या पांच क्रियाओं वाला है।

प. दं. २. असुरकुमारे णं भंते ! ओरालियसरीराओ कइ किरिए?

उ. गोयमा ! एवं चेव,
दं. ३-२४. एवं जाव वेमाणिय।
णवरं-मणुस्से जहा जीवे।

प. जीवे णं भंते ! ओरालियसरीरेहिंतो कइ किरिए ?

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिए जाव सिय अकिरिए

प. नेरइए णं भंते ! ओरालिय सरीरेहिंतो कइ किरिए ?

उ. गोयमा ! एवं एसो जहा पढमो दंडओ तहा इमो वि अपरिसेसो भाणियव्वो जाव वेमाणिए।
णवरं-मणुस्से जहा जीवे।

प. जीवा णं भंते ! ओरालियसरीराओ कइ किरिया ?

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिया जाव सिय अकिरिया।

प. नेरइया णं भंते ! ओरालियसरीराओ कइ किरिया ?

उ. गोयमा ! एवं एसोवि जहा पढमो दंडओ तहा भाणियव्वो जाव वेमाणिया।
णवरं-मणुस्सा जहा जीवा।

प. जीवा णं भंते ! ओरालियंसरीरेहिंतो कइ किरिया ?

उ. गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पंचकिरिया वि, अकिरिया वि।

प. नेरइया णं भंते ! ओरालियसरीरेहिंतो कइ किरिया ?

उ. गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पंचकिरिया वि।
एवं जाव वेमाणिया।
णवरं-मणुस्सा जहा जीवा।

प. जीवे णं भंते ! वेउव्वियसरीराओ कइ किरिए ?

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय अकिरिए।

प. नेरइए णं भंते ! वेउव्वियसरीराओ कइ किरिए ?

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए।
एवं जाव वेमाणिए।
णवरं-मणुस्से जहा जीवे।

प्र. दं. २. भंते ! असुरकुमार औदारिक शरीर की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाला है ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् क्रियाएं कहनी चाहिए।
दं. ३-२४. इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।
विशेष-मनुष्य का कथन सामान्य जीव की तरह कहना चाहिए।

प्र. भंते ! एक जीव औदारिक शरीरों की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाला है ?

उ. गौतम ! कदाचित् तीन क्रियाओं वाला है यावत् कदाचित् अक्रिय है।

प्र. भंते ! नैरयिक जीव औदारिक शरीरों की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाला है ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार प्रथम दण्डक में कहा उसी प्रकार यह दण्डक भी सारा का सारा वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।
विशेष-मनुष्य का कथन सामान्य जीवों के समान जानना चाहिए।

प्र. भंते ! बहुत से जीव औदारिक शरीर की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाले हैं ?

उ. गौतम ! वे कदाचित् तीन क्रियाओं वाले यावत् कदाचित् अक्रिय भी हैं।

प्र. भंते ! बहुत से नैरयिक जीव औदारिक शरीर की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाले हैं ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार प्रथम दण्डक कहा गया है, उसी प्रकार यह दण्डक भी सारा का सारा वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।
विशेष-मनुष्यों का कथन सामान्य जीवों की तरह जानना चाहिए।

प्र. भंते ! बहुत से जीव औदारिक शरीरों की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाले हैं ?

उ. गौतम ! वे तीन, चार या पांच क्रियाओं वाले हैं और अक्रिय भी हैं।

प्र. भंते ! बहुत से नैरयिक जीव औदारिक शरीरों की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाले हैं ?

उ. गौतम ! वे तीन, चार या पांच क्रियाओं वाले हैं।
इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त समझना चाहिए।
विशेष-मनुष्यों का कथन सामान्य जीवों की तरह जानना चाहिए।

प्र. भंते ! एक जीव वैक्रिय शरीर की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाला है ?

उ. गौतम ! कदाचित् तीन या चार क्रियाओं वाला है और अक्रिय भी है।

प्र. भंते ! एक नैरयिक जीव वैक्रिय शरीर की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाला है ?

उ. गौतम ! वह कदाचित् तीन या चार क्रियाओं वाला है।
इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।
विशेष-मनुष्य का कथन सामान्य जीव की तरह करना चाहिए।

एवं जहा ओरालियसरीरेणं चत्तारि दंडगा भणिया तहा वेउव्वियसरीरेण वि चत्तारि दंडगा भाणियव्वा।

णवरं–पंचमकिरिया ण भण्णइ।

सेसं तं चेव।

एवं जहा वेउव्वियं तहा आहारगं वि, तेयगं वि, कम्मगं वि भाणियव्वं, एक्केक्के चत्तारि दंडगा भाणियव्वा जाव–

प. वेमाणिया णं भंते ! कम्मगसरीरेहिंतो कइ किरिया ?

उ. गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि।

–*विया. स. ८, उ. ६, सु. १४-२१*

४०. सेट्ठिखत्तियाईणं अपच्चक्खाणकिरियाया समाणत्त-परूवणं–

'भंते !' त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–

प. से नूणं भंते ! सेट्ठिस्स य तणुयस्स य किविणस्स य खत्तियस्स य समा चेव अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ ?

उ. हंता, गोयमा ! सेट्ठिस्स य जाव खत्तियस्स य समा चेव अपच्चक्खाण किरिया कज्जइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

'सेट्ठिस्स य जाव खत्तियस्स य समा चेव अपच्चक्खाण किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! अविरइं पडुच्च।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'सेट्ठिस्स य जाव खत्तियस्स य समा चेव अपच्चक्खाण किरिया कज्जइ।'

–*विया. स. १, उ. ९, सु. २५*

४१. हत्थिस्स य कुंथुस्स य अपच्चक्खाण किरियाया समाणत्त-परूवणं–

प. से नूणं भंते ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य समा चेव अपच्चक्खाण किरिया कज्जइ ?

उ. हंता, गोयमा ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य समा चेव अपच्चक्खाण किरिया कज्जइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

'हत्थिस्स य कुंथुस्स य समा चेव अपच्चक्खाण किरिया कज्जइ ?'

उ. गोयमा ! अविरइं पडुच्च।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'हत्थिस्स य कुंथुस्स य समा चेव अपच्चक्खाण किरिया कज्जइ।'

–*विया. स. ७, उ. ८, सु. ८*

जिस प्रकार औदारिक शरीर की अपेक्षा चार दण्डक कहे हैं उसी प्रकार वैक्रिय शरीर की अपेक्षा भी चार दण्डक कहने चाहिए।

विशेष–इसमें पांचवीं क्रिया का कथन नहीं करना चाहिए।

शेष सभी कथन पूर्ववत् समझना चाहिए।

जिस प्रकार वैक्रिय शरीर का कथन किया गया है, उसी प्रकार आहारक, तैजस् और कार्मण शरीर का भी कथन करना चाहिए और प्रत्येक के चार-चार दण्डक कहने चाहिए यावत्–

प्र. भंते ! बहुत से वैमानिक देव कार्मण शरीरों की अपेक्षा कितनी क्रियाओं वाले हैं ?

उ. गौतम ! तीन या चार क्रियाओं वाले हैं।

४०. श्रेष्ठी और क्षत्रियादि को समान अप्रत्याख्यान क्रिया का प्ररूपण–

'भंते !' ऐसा कहकर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन- नमस्कार करके इस प्रकार पूछा–

प्र. भंते ! क्या श्रेष्ठी और दरिद्र को, रंक और क्षत्रिय (राजा) को समान रूप से अप्रत्याख्यान क्रिया लगती है ?

उ. हाँ, गौतम ! श्रेष्ठी यावत् क्षत्रिय राजा को समान रूप से अप्रत्याख्यान क्रिया लगती है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

'श्रेष्ठी यावत् क्षत्रिय राजा को समान रूप से अप्रत्याख्यान क्रिया लगती है ?'

उ. गौतम ! अविरति की अपेक्षा ऐसा कहा जाता है।

इस कारण से गौतम ऐसा कहा जाता है कि–

'श्रेष्ठी यावत् क्षत्रिय राजा को समान रूप से अप्रत्याख्यान क्रिया लगती है।'

४१. हाथी और कुंथुए के जीव को समान अप्रत्याख्यान क्रिया का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या वास्तव में हाथी और कुंथुए के जीव को अप्रत्याख्यानिकी क्रिया समान लगती है ?

उ. हाँ, गौतम ! हाथी और कुंथुए के जीव को अप्रत्याख्यानिकी क्रिया समान लगती है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि–

"हाथी और कुंथुए के जीव को अप्रत्याख्यानिकी क्रिया समान लगती है ?"

उ. गौतम ! अविरति की अपेक्षा से (दोनों में समानता होती है।)

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"हाथी और कुंथुए के जीव को अप्रत्याख्यानिकी क्रिया समान लगती है।"

४२. सरीरेंदिय-जोगणिव्वत्तणकाले किरिया परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! ओरालियसरीरं निव्वत्तेमाणे कइ किरिए ?

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।
एवं पुढविकाइए वि जाव मणुस्से।

प. जीवा णं भंते ! ओरालियसरीरं निव्वत्तेमाणा कइ किरिया ?

उ. गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पंचकिरिया वि।
एवं पुढविकाइया वि जाव मणुस्सा।

एवं वेउव्वियसरीरेण वि दो दंडगा;

णवरं–जस्स अत्थि वेउव्वियं।

एवं जाव कम्मगसरीरं।
एवं सोइंदियं जाव फासेंदियं।

एवं मणजोगं, वइजोगं; कायजोगं जस्स जं अत्थि तं भाणियव्वं।
एए एगत्तपुहत्तेणं छव्वीसं दंडगा।

–विया. स. १७, उ. १, सु. १८-२७

४३. जीव-चउवीसदंडएसु किरियाहिं कम्मपयडीबंधा–

प. जीवे णं भंते ! पाणाइवाएणं कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! सत्तविहबंधए वा, अट्ठविहबंधए वा।
दं. १-२४ एवं णेरइए जाव णिरंतरं वेमाणिए।

प. जीवा णं भंते ! पाणाइवाएणं कइ कम्मपगडीओ बंधंति ?

उ. गोयमा ! सत्तविहबंधगा वि, अट्ठविहबंधगा वि।

प. दं. १. णेरइया णं भंते ! पाणाइवाएणं कइ कम्मपगडीओ बंधंति ?

उ. गोयमा ! १. सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा,
२. अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगे य,

३. अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य।

दं. २-११. एवं असुरकुमारा वि जाव थणियकुमारा।

४२. शरीर-इन्द्रिय और योगों के रचना काल में क्रियाओं का प्ररूपण–

प्र. भंते ! औदारिक शरीर को निष्पन्न करता (बनाता) हुआ जीव कितनी क्रियाओं वाला है ?

उ. गौतम ! कदाचित् तीन, चार या पाँच क्रियाओं वाला है।

इसी प्रकार पृथ्वीकायिक से लेकर मनुष्य पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! औदारिक शरीर को निष्पन्न करते हुए अनेक जीव कितनी क्रियाओं वाले हैं ?

उ. गौतम ! तीन, चार या पाँच क्रियाओं वाले हैं।

इसी प्रकार अनेक पृथ्वीकायिकों से लेकर अनेक मनुष्यों पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार वैक्रिय शरीर के भी (एक वचन और बहुवचन की अपेक्षा) दो दण्डक कहने चाहिए।

विशेष–जिन जीवों के वैक्रिय शरीर होता है उनकी अपेक्षा जानना चाहिए।

इसी प्रकार कार्मणशरीर पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय से लेकर स्पर्शेन्द्रिय पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार मनोयोग, वचनयोग और काययोग के विषय में जिसके जो हो उसके लिए कहना चाहिए।

इस प्रकार एकवचन बहुवचन की अपेक्षा कुल छव्वीस दण्डक होते हैं।

४३. जीव-चौवीस दंडकों में क्रियाओं द्वारा कर्मप्रकृतियों का बंध–

प्र. भंते ! एक जीव प्राणातिपात क्रिया से कितनी कर्मप्रकृतियाँ बाँधता है ?

उ. गौतम ! सात या आठ कर्मप्रकृतियाँ बाँधता है।

दं. १-२४ इसी प्रकार नैरयिक से लेकर वैमानिक पर्यन्त कर्म प्रकृतियों का बन्ध कहना चाहिए।

प्र. भंते ! अनेक जीव प्राणातिपात क्रिया से कितनी कर्मप्रकृतियाँ बाँधते हैं ?

उ. गौतम ! सात या आठ कर्मप्रकृतियाँ बाँधते हैं।

प्र. दं. १. भंते ! अनेक नारक प्राणातिपात क्रिया से कितनी कर्मप्रकृतियाँ बाँधते हैं ?

उ. गौतम ! १. वे सब नारक सात कर्मप्रकृतियाँ बाँधते हैं।

२. अथवा अनेक नारक सात कर्मप्रकृतियों का बन्ध करने वाले होते हैं और एक नारक आठ कर्म प्रकृतियों का बन्ध करने वाला होता है।

३. अथवा अनेक नारक सात कर्मप्रकृतियों का बन्ध करने वाले और अनेक नारक आठ कर्मप्रकृतियों का बन्ध करने वाले होते हैं।

दं. २-११ इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त कर्मप्रकृतियों के बन्ध कहना चाहिए।

दं. १२-१६. पुढवि-आउ-तेउ-वाउ-वणस्सइकाइया य एए सव्वे वि जहा ओहिया जीवा।

दं. १७-२४ अवसेसा जहा णेरइया।

एवं एए जीवेगिंदियवज्जा तिण्णि भंगा सव्वत्थ भाणियव्व त्ति

एवं मुसावाएणं जाव मिच्छादंसणसल्लेणं।

एवं एगत्त-पोहत्तिया छत्तीसं दंडगा होंति।

–पण्ण. प. २२, सु. १५८१-१५८४

४४. जीव-चउवीसदंडएसु अट्ठकम्म बंधमाणे किरिया परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणे कइ किरिए ?

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।

दं. १-२४ एवं णेरइए जाव वेमाणिए।

प. जीवा णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणा कइ किरिया ?

उ. गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पंचकिरिया वि।

दं. १-२४ एवं णेरइया निरंतरं जाव वेमाणिया।

एवं दरिसणावरणिज्जं वेयणिज्जं मोहणिज्जं आउयं णामं गोयं अंतराइयं च कम्मपगडीओ भाणियव्वाओ।

एगत्त–पोहत्तिया सोलस दंडगा।

–पण्ण. प. २२, सु. १५८५-१५८७

४५. वीयी-अवीयी-पंथेठियस्स संवुड अणगारस्स किरिया परूवणं–

प. संवुडस्स णं भंते ! अणगारस्स वीयीपंथे ठिच्चा–
पुरओ रूवाइं निज्झायमाणस्स,
मग्गओ रूवाइं अवयक्खमाणस्स,
पासओ रूवाइं अवलोएमाणस्स,
उड्ढं रूवाइं आलोएमाणस्स,
अहे रूवाइं आलोएमाणस्स–
तस्स णं भंते ! इरियावहिया किरिया कज्जइ ?
संपराइया किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! संवुडस्स णं अणगारस्स वीयीपंथे ठिच्चा–
पुरओ रूवाइं निज्झायमाणस्स जाव
अहे रूवाइं आलोएमाणस्स

दं. १२-१६ पृथ्वी-अप्-तेजो-वायु-वनस्पतिकायिक जीवों की कर्मप्रकृतियों का बन्ध सामान्य जीवों के समान कहना चाहिए।

दं. १७-२४. शेष जीवों का नैरयिकों के समान कथन करना चाहिए।

इस प्रकार एकेन्द्रिय जीवों को छोड़कर शेष दण्डकों में सर्वत्र तीन-तीन भंग कहने चाहिए।

इसी प्रकार मृषावाद से मिथ्यादर्शनशल्य पर्यन्त कर्म बन्ध का भी कथन करना चाहिए।

इस प्रकार एक और अनेक की अपेक्षा से छत्तीस दण्डक होते हैं।

४४. जीव-चौवीस दंडकों में आठ कर्म बाँधने पर क्रियाओं का प्ररूपण–

प्र. भंते ! एक जीव ज्ञानावरणीय कर्म को बाँधता हुआ कितनी क्रियाओं वाला होता है ?

उ. गौतम ! (वह) कदाचित् तीन, चार और पाँच क्रियाओं वाला होता है।

दं. १-२४. इसी प्रकार एक नैरयिक से (एक) वैमानिक पर्यन्त आलापक कहना चाहिए।

प्र. भंते ! (अनेक) जीव ज्ञानावरणीय कर्म को बाँधते हुए कितनी क्रियाओं वाले होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) कदाचित् तीन, चार और पाँच क्रियाओं वाले होते हैं।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त आलापक कहने चाहिए।

इसी प्रकार दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय कर्मप्रकृतियों के बंधकों की क्रियाओं के आलापक कहने चाहिए।

एकत्व और पृथकृत्व की अपेक्षा कुल सोलह दण्डक होते हैं।

४५. वीची-अवीची पथ (कषाय-अकषाय भाव) में स्थित संवृत अणगार की क्रिया का प्ररूपण–

प्र. भंते ! संवृत-अणगार कषाय भाव में स्थित होकर
सामने के रूपों को निहारते हुए,
पीछे के रूपों का प्रेक्षण करते हुए,
पार्श्ववर्ती रूपों का अवलोकन करते हुए,
ऊपर के रूपों को देखते हुए,
नीचे के रूपों को देखते हुए,
क्या उसे ईर्यापथिकी क्रिया लगती है,
या साम्परायिकी क्रिया लगती है ?

उ. गौतम ! संवृत अणगार कषाय भाव में स्थित होकर–
सामने के रूपों को निहारते हुए यावत्
नीचे के रूपों को देखते हुए

तस्स णं नो इरियावहिया किरिया कज्जइ, संपराइया किरिया कज्जइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"संवुडस्स णं अणगारस्स वीयीपंथे ठिच्चा–
पुरओ रूवाइं निज्झायमाणस्स जाव
अहे रूवाइं आलोएमाणस्स
तस्स णं नो इरियावहिया किरिया कज्जइ, संपराइया किरिया कज्जइ ?"

उ. गोयमा ! जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा वोच्छिन्ना भवंति,
तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जइ,
नो संपराइया किरिया कज्जइ,
जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा अवोच्छिन्ना भवंति,

तस्स णं संपराइया किरिया कज्जइ,
नो इरियावहिया किरिया कज्जइ,
अहासुत्तं रियं रीयमाणस्स इरियावहिया किरिया कज्जइ,

उस्सुत्तरीयमाणस्स संपराइया किरिया कज्जइ,

से णं उस्सुत्तमेव रीयइ।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"संवडुस्स णं अणगारस्स वीयीपंथे ठिच्चा–
पुरओ रूवाइं निज्झायमाणस्स जाव
अहे रूवाइं आलोएमाणस्स
तस्स णं नो इरियावहिया किरिया कज्जइ,
संपराइया किरिया कज्जइ।"

प. संवुडस्स णं भंते ! अणगारस्स अवीयीपंथे ठिच्चा–
पुरओ रूवाइं निज्झायमाणस्स जाव
अहे रूवाइं आलोएमाणस्स,
तस्स णं भंते ! किं इरियावहिया किरिया कज्जइ ?
संपराइया किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! संवुडस्स णं अणगारस्स अवीयीपंथे ठिच्चा–
पुरओ रूवाइं निज्झायमाणस्स जाव
अहे रूवाइं आलोएमाणस्स,
तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जइ,
नो संपराइया किरिया कज्जइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"संवुडस्स णं अणगारस्स अवीयीपंथे ठिच्चा–
पुरओ रूवाइं निज्झायमाणस्स जाव
अहे रूवाइं आलोएमाणस्स,
तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जइ,
नो संपराइया किरिया कज्जइ ?

उस को ईर्यापथिको क्रिया नहीं लगती, किन्तु साम्परायिकी क्रिया लगती है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"संवृत अणगार कषायभाव में स्थित होकर
सामने के रूपों को निहारते हुए यावत्
नीचे के रूपों को देखते हुए
उसको ईर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती है, किन्तु साम्परायिकी क्रिया लगती है ?"

उ. गौतम ! जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ नष्ट हो गये हैं।
उसी को ईर्यापथिकी क्रिया लगती है।
उसे साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती है।
किन्तु जिस जीव के क्रोध, मान, माया और लोभ नष्ट नहीं हुए हैं
उसको साम्परायिकी क्रिया लगती है।
ईर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती है।
सूत्र के अनुसार प्रवृत्ति करने वाले को ईर्यापथिकी क्रिया लगती है।
सूत्र विरुद्ध प्रवृत्ति करने वाले को सांपरायिकी क्रिया लगती है।
क्योंकि वह सूत्र विरुद्ध आचरण करता है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"संवृत अणगार कषाय भाव में स्थित होकर
सामने के रूपों को निहारते हुए यावत्
नीचे के रूपों को देखते हुए
उसको ईर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती है,
किन्तु साम्परायिकी क्रिया लगती है।"

प्र. भंते ! संवृत अनगार अकषाय भाव में स्थित होकर–
सामने के रूपों को निहारते हुए यावत्
नीचे के रूपों को देखते हुए,
भंते ! क्या उसे ईर्यापथिकी क्रिया लगती है ?
या साम्परायिकी क्रिया लगती है ?

उ. गौतम ! संवृत अनगार अकषाय भाव में स्थित होकर–
सामने के रूपों को निहारते हुए यावत्
नीचे के रूपों को देखते हुए,
उसको ईर्यापथिकी क्रिया लगती है,
किन्तु साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"संवृत अनगार अकषाय भाव में स्थित होकर
सामने के रूपों को निहारते हुए यावत्
नीचे के रूपों को देखते हुए
उसको ईर्यापथिकी क्रिया लगती है,
किन्तु साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती ?"

उ. गोयमा ! जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा वोच्छिन्ना भवंति,

तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जइ,

नो संपराइया किरिया कज्जइ जाव

उस्सुत्तं रीयमाणस्स संपराइया किरिया कज्जइ।

से णं अहासुत्तमेवरीयइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"संवुडस्स णं अणगारस्स अवीयीपंथे ठिच्चा पुरओ रूवाइं निज्झायमाणस्स जाव

अहे रूवाइं आलोएमाणस्स,

तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जइ, नो संपराइया किरिया कज्जइ।" –*विया. स. १०, उ. २, सु. २-३*

४६. अणाउत्तं अणगारस्स किरिया परूवणं–

प. अणगारस्स णं भंते ! अणाउत्तं गच्छमाणस्स वा, चिट्ठमाणस्स वा, निसीयमाणस्स वा, तुयट्टमाणस्स वा, अणाउत्तं, वत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं गेण्हमाणस्स वा, निक्खिवमाणस्स वा,

तस्स णं भंते ! किं इरियावहिया किरिया कज्जइ? संपराइया किरिया कज्जइ?

उ. गोयमा ! णो इरियावहिया किरिया कज्जइ, संपराइया किरिया कज्जइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

अणगारस्स णं अणाउत्तं गच्छमाणस्स वा जाव निक्खिवमाणस्स वा, नो इरियावहिया किरिया कज्जइ, संपराइया किरिया कज्जइ।

उ. गोयमा ! जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा वोच्छिन्ना भवंति तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जइ, नो संपराइया किरिया कज्जइ।

जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा अवोच्छिन्ना भवंति तस्स णं संपराइया किरिया कज्जइ, नो इरियावहिया किरिया कज्जइ।

अहासुत्तं रियं रीयमाणस्स इरियावहिया किरिया कज्जइ।

उस्सुत्तं रीयमाणस्स संपराइया किरिया कज्जइ,

से णं उस्सुत्तमेवरियाइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"अणगारस्स णं अणाउत्तं गच्छमाणस्स वा जाव निक्खिवमाणस्स वा नो इरियावहिया किरिया कज्जइ, संपराइया किरिया कज्जइ।" –*विया. स. ७, उ. १, सु. १६*

उ. गौतम ! जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ नष्ट हो गये हों,

उसको ईर्यापथिकी क्रिया लगती है।

उसे साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती है यावत्

सूत्र विरुद्ध प्रवृत्ति करने वाले को सांपरायिकी क्रिया लगती है

क्योंकि वह सूत्र विरुद्ध आचरण करता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"संवृत अनगार अकषायभाव में स्थित होकर सामने के रूपों को निहारते हुए यावत्

नीचे के रूपों को देखते हुए

उसको ईर्यापथिकी क्रिया लगती है, किन्तु साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती है।"

४६. उपयोग रहित अनगार की क्रिया का प्ररूपण–

प्र. भंते ! उपयोगरहित गमन करते हुए, खड़े होते हुए, बैठते हुए या करवट बदलते हुए और इसी प्रकार विना उपयोग के वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रोंछन ग्रहण करते हुए या रखते हुए अनगार को–

भंते ! ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है या साम्परायिकी क्रिया लगती है?

उ. गौतम ! ऐसे अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती है किन्तु साम्परायिकी क्रिया लगती है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"उपयोगरहित अनगार को गमन करते हुए यावत् (उपकरण) रखते हुए "ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती है किन्तु साम्परायिकी क्रिया लगती है?"

उ. गौतम ! जिस जीव के क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न (उपशांत) हो गए हैं, उसी को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती है।

किन्तु जिस जीव के क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न नहीं हुए हैं उसको साम्परायिकी क्रिया लगती है ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती है।

सूत्र के अनुसार प्रवृत्ति करने वाले अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है।

उत्सूत्र प्रवृत्ति करने वाले अनगार को साम्परायिकी क्रिया लगती है।

क्योंकि पूर्वोक्त अनगार सूत्र विरुद्ध प्रवृत्ति करता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"उपयोग रहित गमन करते हुए यावत् उपकरण रखते हुए अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती है किन्तु साम्परायिकी क्रिया लगती है।"

४७. आउत्तं संवुड अणगारस्स किरिया परूवणं–

प. संवुडस्स णं भंते ! अणगारस्स आउत्तं गच्छमाणस्स **जाव** आउत्तं तुयट्टमाणस्स, आउत्तं वत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं गिण्हमाणस्स वा, निक्खिवमाणस्स वा, तस्स णं भंते ! किं इरियावहिया किरिया कज्जइ? संपराइया किरिया कज्जइ?

उ. गोयमा ! संवुडस्स णं अणगारस्स आउत्तं गच्छमाणस्स **जाव** निक्खिवमाणस्स तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जइ, णो संपराइया किरिया कज्जइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"तस्स संवुडस्स णं अणगारस्स इरियावहिया किरिया कज्जइ, नो संपराइया किरिया कज्जइ?

उ. गोयमा ! जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा वोच्छिन्ना भवंति तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जइ,

तहेव **जाव** उस्सुत्तं रीयमाणस्स संपराइया किरिया कज्जइ, से णं अहासुत्तमेव रीयइ,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"तस्स संवुडस्स णं अणगारस्स इरियावहिया किरिया कज्जइ, नो संपराइया किरिया कज्जइ।"

–विया. स. ७, उ. ७, सु. १

४७. उपयोग सहित संवृत अनगार की क्रिया का प्ररूपण–

प्र. भंते ! उपयोग सहित चलते यावत् करवट वदलते तथा उपयोग सहित वस्त्र, पात्र, कम्वल, पादप्रोंछन आदि ग्रहण करते और रखते हुए संवृत अनगार को क्या ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है या साम्परायिकी क्रिया लगती है?

उ. गौतम ! उपयोग सहित गमन करते हुए यावत् रखते हुए उस संवृत अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, किन्तु साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"उस संवृत अणगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, किन्तु साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती है?

उ. गौतम ! जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न हो गए हैं उसको ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है,

उसी प्रकार यावत् उत्सूत्र प्रवृत्ति करने वाले को साम्परायिकी क्रिया लगती है क्योंकि वह उत्सूत्र प्रवृत्ति करता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"उस संवृत अणगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती है।

४८. पच्चक्खाण किरियाया वित्थरओ परूवणं–

सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं,

इह खलु पच्चक्खाण किरिया नामज्झयणे,

तस्स णं अयमट्ठे–आया अपच्चक्खाणी या वि भवइ,

आया अकिरियाकुसले या वि भवइ,

आया मिच्छासंठिए या वि भवइ,

आया एगंतदंडे या वि भवइ,

आया एगंतबाले या वि भवइ,

आया एगंतसुत्ते या वि भवइ,

आया अवियारमण-वयण-काय वक्के या वि भवइ,

आया अप्पडिहय पच्चक्खायपावकम्मे या वि भवइ,

एस खलु भगवया अक्खाए-असंजए-अविरए- अप्पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे सकिरिए असंवुडे एगंतदंडे एगंतबाले एगंतसुत्ते, से बाले अवियारमण-वयण-काय-वक्के सुविणम वि णं पस्सइ, पावे से कम्मे कज्जइ।

तत्थ चोयए पण्णवगं एवं वयासि–

४८. प्रत्याख्यान क्रिया का विस्तार से प्ररूपण–

हे आयुष्मन् ! उन भगवान् महावीर स्वामी ने ऐसा कहा, मैंने सुना।

इस निर्ग्रन्थ प्रवचन में प्रत्याख्यान क्रिया नामक अध्ययन है उसका यह आशय है–आत्मा (जीव) अप्रत्याख्यानी (सावधानी का त्याग न करने वाला) भी होता है, आत्मा अक्रियाकुशल (शुभक्रिया न करने में निपुण) भी होता है,

आत्मा मिथ्यात्व (के उदय) में संस्थित भी होता है,

आत्मा एकान्त रूप में (दूसरे प्राणियों को) दण्ड देने वाला भी होता है,

आत्मा एकान्तरूप से (सर्वथा बाल अज्ञानी) भी होता है,

आत्मा एकान्तरूप से सुषुप्त भी होता है,

आत्मा अपने मन, वचन, काया और वाक्य (की प्रवृत्ति) पर विचार करने वाला भी नहीं होता है।

आत्मा अपने पापकर्मों का प्रतिहत (घात) एवं प्रत्याख्यान करने वाला भी नहीं होता है।

इस जीव (आत्मा) को भगवान् ने असंयत (संयमहीन) अविरत हिंसा आदि से अनिवृत्त, पापकर्म का घात (नाश) और प्रत्याख्यान (त्याग) न किया हुआ, सक्रिय, असंवृत, प्राणियों को एकान्त (सर्वथा) दण्ड देने वाला, एकान्तवाल, एकान्तसुप्त कहा है और मन, वचन, काया तथा वाक्य (की प्रवृत्ति) के विचार से रहित वह अज्ञानी (हिंसा का) स्वप्न भी नहीं देखता है–(अव्यक्त चेतना वाला है) तो भी वह पापकर्म का वंध करता है।

इस पर प्रश्नकर्ता ने प्ररूपक से इस प्रकार पूछा–

असंतएणं मणेणं पावएणं, असंतियाए वईए पावियाए, असंतएणं काएणं पावएणं, अहणंतस्स अमणक्खस्स अवियारमण-वयण-काय-वक्कस्स सुविणमवि अपस्सओ पावे कम्मे नो कज्जइ।

पापयुक्त मन न होने पर, पापयुक्त वचन न होने पर तथा पापयुक्त काय न होने पर जो प्राणियों की हिंसा नहीं करता, जो अमनस्क है, जिसका मन, वचन, काय और वाक्य हिंसादि पापकर्म के विचार से रहित है, जो स्वप्न में भी पापकर्म करने की नहीं सोचता, ऐसे जीव के पापकर्म का बंध नहीं होता है।

कस्स णं तं हेउं?

(प्रश्नकर्ता से किसी ने पूछा) पापकर्म के बंध नहीं होने का क्या कारण है?

चोयए एवं ब्रवीति–

उत्तर में प्रेरक (प्रश्नकर्ता) ने इस प्रकार कहा–

अण्णयरेणं मणेणं पावएणं मणवत्तिए पावे कम्मे कज्जइ,
अण्णयरीए वईए पावियाए वइवत्तिए पावे कम्मे कज्जइ,
अण्णयरेणं काएणं पावएणं कायवत्तिए पावे कम्मे कज्जइ,
हणंतस्स समणक्खस्स सवियारमण-वयण-काय-वक्कस्स सुविणमवि पासओ, एवं गुणजाईयस्स पावे कम्मे कज्जइ।

मन के पापयुक्त होने पर ही मानसिक पापकर्म किया जाता है,
पापयुक्त वचन होने पर ही वाचिक पापकर्म किया जाता है,
पापयुक्त शरीर होने पर ही कायिक पापकर्म किया जाता है,
जो प्राणी हिंसा करता है, हिंसायुक्त मनोव्यापार से युक्त है, जान बूझकर मन, वचन, काय और वाक्य का प्रयोग करता है और स्वप्न भी देखता है। इन विशेषताओं से युक्त जीव पापकर्म करता है।

पुणरवि चोयए एवं ब्रवीति–
तत्थ णं जे ते एवमाहंसु–
असंतएणं मणेणं पावएणं असंतियाए वईए पावियाए, असंतएणं काएणं पावएणं अहणंतस्स अमणक्खस्स अवियार-मण-वयण-काय वक्कस्स सुविणमवि अपस्सओ पावे कम्मे कज्जइ, जे ते एवमाहंसु, मिच्छा ते एवमाहंसु।

प्रेरक (प्रश्नकर्ता) पुनः इस प्रकार कहता है–
इस विषय में जो यह कहते हैं–
मन भी पापयुक्त न हो, वचन भी पापयुक्त न हो, शरीर भी पापयुक्त न हो, किसी प्राणी का घात न करता हो, अमनस्क हो, मन, वचन, काय और वाक्य के द्वारा भी पाप प्रवृत्ति न करता हो और स्वप्न में भी (पाप) न देखता हो, तब भी (वह) पापकर्म करता है, तो वे मिथ्या कहते हैं।

तत्थ पण्णवगे चोयगं एवं वयासी–

इस पर प्रज्ञापक (उत्तरदाता) ने प्रेरक (प्रश्नकार) से इस प्रकार कहा–

जं मए पुव्वुत्तं असंतएणं मणेणं पावएणं, असंतियाए वईए पावियाए, असंतएणं काएणं पावएणं, अहणंतस्स अमणक्खस्स अवियार-मण-वयण-काय-वक्कस्स सुविणम वि अपस्सओ पावे कम्मे कज्जइ तं सम्मं।

जो मैंने पहले कहा था कि मन पाप युक्त न हो, वचन भी पापयुक्त न हो, काय भी पापयुक्त न हो, वह किसी प्राणी की हिंसा भी न करता हो, मनोविकल हो, मन, वचन, काय और वाक्य का समझ-बूझकर प्रयोग न करता हो और वैसा (पापकारी) स्वप्न भी न देखता हो तब भी ऐसा जीव पापकर्म करता है, यही सत्य है।

कस्स णं तं हेउं?
आयरिय आह–'तत्थ खलु भगवया छज्जीवनिकाया हेऊ पण्णत्ता, तं जहा–१. पुढविकाइया जाव ६. तसकाइया।

इस कथन का क्या हेतु है?
आचार्य (प्रज्ञापक) ने कहा–इसके लिए भगवान् ने षड्जीव निकायों को कर्मबंध के कारण रूप में कहा है, यथा–
१. पृथ्वीकाय यावत् ६. त्रसकाय।

इच्चेएहिं छहिं जीवनिकाएहिं आया अप्पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे निच्चं पसढविओवात चित्तदंडे, तं जहा–१. पाणाइवाए जाव ५ परिग्गहे, ६ कोहे जाव १८ मिच्छादंसणसल्ले,

इन छह जीव निकाय के जीवों की हिंसा से जघन्य पाप को जिस आत्मा ने तपश्चर्या आदि करके नष्ट नहीं किया, पापकर्म का प्रत्याख्यान नहीं किया और जो सदैव निष्ठुरतापूर्वक प्राणियों की घात में दत्तचित्त रहता है और उन्हें दण्ड देता है, यथा–
१. प्राणातिपात यावत् ५. परिग्रह तथा ६. क्रोध यावत् १८. मिथ्यादर्शनशल्य (इन अठारह पापस्थानों से निवृत्त नहीं होता है वह पापकर्म का बंध करता है, यह सत्य है।)

आयरिय आह तत्थ खलु भगवया वहए दिट्ठंते पण्णत्ते.

आचार्य (प्रज्ञापक) पुनः कहते हैं इस विषय में भगवान् ने एक वधक (हत्यारे) का दृष्टान्त दिया है–

से जहाणामए वहए सिया गाहावइस्स वा, गाहावइपुत्तस्स वा, रण्णो वा, रायपुरिसस्स वा, खणं निदाए पविसिस्सामि खणं लद्धूणं वहिस्सामि पहारेमाणे,

जैसे कोई एक वधक हो, वह गृहपति की अथवा गृहपति के पुत्र की अथवा राजा की या राजपुरुष की हत्या करना चाहता है और विचार करता है कि मैं अवसर पाकर घर में प्रवेश करूँगा और मौका मिलते ही उस पर प्रहार करके हत्या कर दूँगा

से किं नु हु नाम से वहए तस्स वा गाहावइस्स, तस्स वा गाहावइपुत्तस्स, तस्स वा रण्णो, तस्स वा रायपुरिसस्स, खणं निदाए पविसिस्सामि, खणं लद्धूणं वहिस्सामित्ति पहारेमाणे दिया वा राओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा अमित्तभूए मिच्छासंठिए निच्चं पसढविओवातचित्तदंडे भवइ?

वह हत्यारा उस गृहपति की, गृहपति पुत्र की अथवा राजा की या राजपुरुष की हत्या करने हेतु अवसर पाकर घर में प्रवेश करूँगा और अवसर पाते ही प्रहार करके हत्या कर दूँगा, इस प्रकार का संकल्प विकल्प करने वाला (वह वधक) दिन को या रात को, सोते या जागते प्रतिक्षण इसी उधेड़बुन में रहता है, वह उन सबका अमित्र (शत्रु) भूत है, उन सबसे मिथ्या (प्रतिकूल) व्यवहार करने में जुटा हुआ है, चित्तरूपी दण्ड में सदैव विविध प्रकार से निष्ठुरतापूर्वक घात का दुष्ट विचार रखता है, क्या ऐसा व्यक्ति उन पूर्वोक्त (व्यक्तियों) का हत्यारा कहा जा सकता है या नहीं?

एवं वियागरेमाणे समियाए वियागरे? चोयए हंता भवइ।

आचार्यश्री द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर प्रेरक (प्रश्नकर्ता) शिष्य समभाव के साथ कहता है—"हाँ पूज्यवर! ऐसा पुरुष हत्यारा (हिंसक) ही है।"

आयरिय आह—जहा से वहए तस्स वा गाहावइस्स, तस्स वा गाहावइपुत्तस्स, तस्स वा रण्णो, तस्स वा रायपुरिसस्स खणं णिदाए पविसिस्सामि, खणं लद्धूणं वहिस्सामित्ति पहारेमाणे दिया वा राओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा अमित्तभूए मिच्छासंठिए निच्चं पसढविओवायचित्तदंडे,

आचार्य ने पुनः कहा—जैसे उस गृहपति या गृहपति के पुत्र को अथवा राजा या राजपुरुष को मारना चाहने वाला वह वधक पुरुष सोचता है कि अवसर पाकर इसके मकान (या नगर) में प्रवेश करूँगा और मौका मिलते ही प्रहार करके इस का वध कर दूँगा ऐसे दुर्विचार से वह दिन-रात सोते जागते हरदम घात लगाये रहता है, सदा उनका शत्रु (अमित्र) बना रहता है, मिथ्या (गलत) कुकृत्य करने के लिए तत्पर रहता है, विभिन्न प्रकार से उनके घात के लिए नित्य शठतापूर्वक हृदय में दुष्ट संकल्प विकल्प करता रहता है,

एवामेव बाले वि सव्वेसिं पाणाणं **जाव** सत्ताणं दिया वा राओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा अमित्तभूए मिच्छासंठिए निच्चं पसढविओवातचित्तदंडे, पाणाइवाए **जाव** मिच्छादंसणसल्ले।

इसी प्रकार (अप्रत्याख्यानी, बाल, अज्ञानी) जीव भी समस्त प्राणियों भूतों **यावत्** सत्वों का दिन-रात सोते-जागते सदा वैरी (अमित्र) बना रहता है, मिथ्याबुद्धि से ग्रस्त रहता है, उसको नित्य निरन्तर उन जीवों को शठतापूर्वक मारने के विचार उत्पन्न होते रहते हैं क्योंकि वह (अप्रत्याख्यानी बाल जीव) प्राणातिपात से मिथ्यादर्शनशल्य पर्यन्त अठारह ही पापस्थानों में ओतप्रोत रहता है।

एवं खलु भगवया अक्खाए असंजए अविरए अप्पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे सकिरिए असंवुडे एगंतदंडे एगंतबाले एगंतसुत्ते या वि भवइ, से बाले अवियार-मण-वयण-काय-वक्के सुविणमवि ण पस्सइ, पावे य से कम्मे कज्जइ।

इसलिए भगवान् ने ऐसे जीव के लिए कहा है कि—वह असंयत, अविरत, पापकर्मों का (तप आदि से) नाश एवं प्रत्याख्यान न करने वाला, पाप क्रिया से युक्त संवररहित एकान्तरूप से प्राणियों को दण्ड देने वाला सर्वथा बाल (अज्ञानी) एवं सर्वथा सुप्त भी होता है। वह बाल अज्ञानी जीव मन, वचन, काय और वाक्य का विचारपूर्वक (पापकर्म में) प्रयोग न करता है, (पापकर्म करने का) स्वप्न भी न देखता हो तब भी वह (अप्रत्याख्यानी होने के कारण) पापकर्म का बंध करता है।

जहा से वहइ तस्स वा गाहावइस्स **जाव** तस्स वा रायपुरिसस्स पत्तेयं-पत्तेयं चित्त समादाए दिया वा राओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा अमित्तभूए मिच्छासंठिए णिच्चं पसढविओवातचित्तदंडे भवइ,

जैसे वध का विचार करने वाला घातक पुरुष उस गृहपति **यावत्** राजपुरुष की हत्या करने का दुर्विचार चित्त में लिए हुए रात-दिन सोते-जागते अमित्र होकर कुविचारों में डूबकर सदैव उनकी हत्या करने की धुन में रहता है।

एवामेव बाले सव्वेसिं पाणाणं **जाव** सव्वेसिं सत्ताणं पत्तेयं-पत्तेयं चित्तं समादए दिया वा राओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा अमित्तभूए मिच्छासंठिए **जाव** चित्तदंडे भवइ।

इसी प्रकार (अप्रत्याख्यानी भी) समस्त प्राणों **यावत्** सत्वों के प्रति हिंसा के भाव रखने वाला अज्ञानी जीव दिन-रात सोते-जागते सदैव उन प्राणियों का शत्रु और मिथ्या विचारों में स्थिर होकर **यावत्** मन में घात की बात सोचता रहता है।

णो इणट्ठे समट्ठे चोयगो।

प्रश्नकर्ता ने कहा—यह पूर्वोक्त बात मान्य नहीं हो सकती।

इह खलु बहवे पाणा जे इमेणं सरीरसमुस्सएणं णो दिट्ठा वा, नो सुया वा, नाभिमया वा, विण्णाया वा,

क्योंकि इस जगत् में बहुत से ऐसे प्राणी हैं जिनके शरीर को न कभी देखा है, न ही सुना है, वे प्राणी न अपने अभिमत (इष्ट) हैं और न वे ज्ञात हैं।

जेसिं णो पत्तेयं-पत्तेयं चित्त समादाए दिया वा राओ वा सुते वा जागरमाणे वा अमित्तभूए मिच्छासंठिए निच्चं पसढविओवातचित्तदंडे,

पाणाइवाए जाव मिच्छादंसणसल्ले।

आयरिए आह तत्थ खलु भगवया दुवे दिट्ठंता पण्णत्ता, तं जहा–

१. सन्निदिट्ठंते य २. असण्णिदिट्ठंते य।

प. १. से किं तं सण्णिदिट्ठंते ?

उ. सण्णिदिट्ठंते जे इमे सण्णिपंचिंदिया पज्जत्तगा एएसि णं छज्जीवनिकाए पडुच्च, तं जहा–पुढविकायं जाव तसकायं, से एगइओ पुढविकाएणं किच्चं करेइ वि, कारवेइ वि, तस्स णं एवं भवइ–एवं खलु अहं पुढविकाएणं किच्चं करेमि वि, कारवेमि वि, णो चेव णं से एवं भवइ इमेण वा-इमेण वा, से य तेणं पुढविकाएणं किच्चं करेइ वि, कारवेइ वि, से य ताओ पुढविकायाओ असंजय-अविरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे या वि भवइ।

एवं जाव तसकायाओ त्ति भाणियव्वं,

से एगइओ छहिं जीवनिकाएहिं किच्चं करेइ वि, कारवेइ वि, तस्स णं एवं भवइ–एवं खलु छहिं जीवनिकाएहिं किच्चं करेमि वि, कारवेमि वि, णो चेव णं से एवं भवइ–इमेहिं वा, इमेहिं वा, से य तेहिं छहिं जीवनिकाएहिं किच्चं करेइ वि, कारवेइ वि, से य तेहिं छहिं जीवनिकाएहिं असंजय-अविरय-अपडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे पाणाइवाए जाव मिच्छादंसण्सल्ले।

एस खलु भगवया अक्खाए असंजए अविरए-अपडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे, सुविणमवि अपस्सओ पावे य कम्मे से कज्जइ, से त्तं सण्णिदिट्ठंते।

प. से किं तं असण्णिदिट्ठंते ?

उ. असण्णिदिट्ठंते जे इमे असण्णिओ पाणा, पुढविकाइया जाव वणस्सइकाइया छट्ठा वेगइया तसा पाणा, जेसिं णो तक्का इ वा, सण्णा इ वा, पण्णा इ वा, मणे इ वा, वई इ वा, सयं वा करणाए, अण्णेहिं वा कारवेत्तए, करेंतं वा समणुजाणित्तए, ते वि णं बाला सव्वेसिं पाणाणं जाव सव्वेसिं सत्ताणं दिया वा राओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा अमित्तभूया मिच्छासंठिया निच्चं पसढविओवात-चित्तदंडा, पाणाइवाए जाव मिच्छादंसणसल्ले।

इस कारण ऐसे प्राणियों में से प्रत्येक प्राणी के प्रति हिंसामय चित्त रखते हुए दिन-रात सोते-जागते उनका अमित्र (शत्रु) भाव बना रहना तथा उनके साथ मिथ्या व्यवहार करने में संलग्न रहना मिथ्यादर्शनशल्य पर्यन्त के पापों में ऐसे प्राणियों का लिप्त रहना भी सम्भव नहीं है।

आचार्य ने उत्तर दिया इस विषय में भगवान् ने दो दृष्टान्त दिये हैं, यथा–

१. संज्ञीदृष्टान्त २. असंज्ञीदृष्टान्त।

प्र. १. संज्ञी दृष्टान्त क्या है ?

उ. संज्ञी का दृष्टान्त इस प्रकार है–जो ये संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव है, इनमें पृथ्वीकाय से त्रसकाय पर्यन्त षड्जीव निकाय के जीवों में यदि कोई पुरुष पृथ्वीकाय से ही अपना (आहारादि) कृत्य करता है या कराता है तो उसके मन में ऐसा विचार होता है कि–'मैं पृथ्वीकाय से अपना कार्य करता भी हूँ और कराता भी हूँ किन्तु उसे उस समय ऐसा विचार नहीं होता कि–इससे या इस (अमुक) पृथ्वी से ही कार्य करता हूँ या कराता हूँ इसलिए वह व्यक्ति पृथ्वीकाय का असंयमी, उससे अविरत तथा हिंसा का निरोधक और प्रत्याख्यान किया हुआ नहीं है।

इसी प्रकार त्रसकाय तक के जीवों के विषय में कहना चाहिए।

यदि कोई व्यक्ति छह काय के जीवों से कार्य करता है और कराता भी है तो वह यही विचार करता है कि–मैं छह काय के जीवों से कार्य करता हूँ और कराता भी हूँ, उस व्यक्ति को ऐसा विचार नहीं होता कि वह इन या इन जीवों से ही कार्य करता है और कराता है (सबसे नहीं) क्योंकि वह सामान्य रूप से–उन छहों जीवनिकायों से कार्य करता है और कराता भी है। इस कारण वह प्राणी उन छहों जीवनिकायों के जीवों की हिंसा से असंयत अविरत और उनकी हिंसा आदि से जनित पापकर्मों का प्रतिघात और प्रत्याख्यान किया हुआ नहीं है। इस कारण वह प्राणातिपात से मिथ्यादर्शनशल्य तक के सभी पापों का सेवन करता है।

भगवान् ने ऐसे प्राणी को असंयत, अविरत, पापकर्मों का (तपआदि से) नाश तथा प्रत्याख्यान से निरोध न करने वाला कहा है, चाहे वह प्राणी स्वप्न भी न देखता हो तो भी वह पापकर्म का (बंध करता है)। यह संज्ञी का दृष्टान्त है।

प्र. असंज्ञीदृष्टान्त क्या है ?

उ. असंज्ञी का दृष्टान्त इस प्रकार है–पृथ्वीकायिक जीवों से वनस्पतिकायिक जीवों एवं छठे जो त्रस संज्ञक अमनस्क जीव हैं वे असंज्ञी हैं, जिनमें न तर्क है, न संज्ञा है, न प्रज्ञा (बुद्धि) है, न मन है, न वाणी है और जो न स्वयं कर सकते हैं, न ही दूसरों से करा सकते हैं और न करते हुए को अच्छा समझ सकते हैं, [illegible] के दिन-रात सोते या जागते हर समय [illegible] मिथ्या व्यवहार करने [illegible] [illegible] मिथ्यादर्शनशल्य [illegible] रहते हैं।

इच्चेवं जाणे, णो चेव मणो, णो चेव वई पाणाणं जाव सत्ताणं दुक्खणयाए सोयणयाए जूरणयाए तिप्पणयाए पिट्टणयाए परितप्पणयाए ते दुक्खण-सोयण जाव परितप्पण-वह बंधणपरिकिलेसाओ अप्पडिविरया भवंति।

इस प्रकार यद्यपि असंज्ञी जीवों के मन नहीं होता और न ही वाणी होती है तथापि वे (अप्रत्याख्यानी होने से) समस्त प्राणियों यावत् सत्वों को दुःख देने, शोक उत्पन्न करने, विलाप कराने, रुलाने, पीड़ा देने, वध करने तथा परिताप देने, उन्हें एक साथ दुःख शोक यावत् संताप वध-बन्धन परिक्लेश आदि करने से विरत नहीं होते (अपितु पापकर्म में सदा रत रहते हैं)

इइ खलु ते असण्णिणो वि संता अहोनिसं पाणाइवाए उवक्खाइज्जंति जाव अहोनिसं परिग्गहे उवक्खाइज्जंति जाव मिच्छादंसणसल्ले उवक्खाइज्जंति। से त्तं असण्णिदिट्ठंते।

इस प्रकार वे प्राणी असंज्ञी होते हुए भी अहर्निश प्राणातिपात यावत् परिग्रह में तथा मिथ्यादर्शनशल्य पर्यन्त के समस्त पापस्थानों में प्रवृत्त कहे जाते हैं, यह असंज्ञी का दृष्टान्त है।

सव्वजोणिया वि खलु सत्ता सण्णिणो होच्चा असण्णिणो होंति, असिण्णणो होच्चा सण्णिणो होंति,

सभी योनियों के प्राणी निश्चितरूप से संज्ञी-असंज्ञी पर्याय में उत्पन्न हो जाते हैं तथा असंज्ञी होकर संज्ञी (पर्याय में उत्पन्न) हो जाते हैं।

होच्चा सण्णी अदुवा असण्णी, तत्थ से अविविचिया अविधूणिया असमुच्छिया अणणुताविया

वे संज्ञी या असंज्ञी होकर यहाँ पापकर्मों को अपने से अलग न करके (तप आदि से) उनकी निर्जरा न करके (प्रायश्चित आदि से) उनका उच्छेद न करके, उनकी आलोचना आदि न करके–

१. सण्णिकायाओ वा सण्णिकायं संकमंति,
२. सण्णिकायाओ वा असण्णिकायं संकमंति,
३. असण्णिकायाओ वा सण्णिकायं संकमंति,
४. असण्णिकायाओ वा असण्णिकायं संकमंति।

१. संज्ञी के शरीर से संज्ञी के शरीर में संक्रमण करते हैं,
२. संज्ञी के शरीर से असंज्ञी के शरीर में संक्रमण करते हैं,
३. असंज्ञी से संज्ञीकाय में संक्रमण करते हैं,
४. असंज्ञीकाय से असंज्ञीकाय में संक्रमण करते हैं।

जे एए सण्णी वा, असण्णी वा सव्वे ते मिच्छायारा निच्चं पसढविओवातचित्तदंडा, तं जहा–
१. पाणाइवाए जाव १८ मिच्छादंसणसल्ले।

जो ये संज्ञी या असंज्ञी प्राणी हैं, वे सब मिथ्याचारी हैं और सदैव शठतापूर्ण हिंसात्मक चित्तवृत्ति वाले हैं।
अतएव वे प्राणातिपात से मिथ्यादर्शनशल्य पर्यन्त अठारह ही पापस्थानों का सेवन करने वाले हैं।

एवं खलु भगवया अक्खाए असंजए-अविरए-अप्पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे सकिरिए असंवुडे एगंतदंडे एगंतबाले एगंतसुत्ते,

इसी कारण से भगवान् ने इन्हें असंयत, अविरत, पापों का प्रतिघात (नाश) और प्रत्याख्यान न करने वाले अशुभक्रियायुक्त संवररहित, एकान्तहिंसक, एकान्तबाल (अज्ञानी) और एकान्त (भावनिद्रा) में सुप्त कहा है।

से बाले अवियार-मण-वयण-काय-वक्के, सुविणमवि अपासओ पावे य से कम्मे कज्जइ।

वह अज्ञानी (अप्रत्याख्यानी) जीव भले ही मन, वचन,काय और वाक्य का प्रयोग विचारपूर्वक न करता हो तथा (हिंसा का) स्वप्न भी न देखता हो, फिर भी पापकर्म (का बंध) करता है।

चोयग–से-किं-कुव्वं-किं-कारवं-कहं संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे भवइ?

(इस स्पष्टीकरण को सुनकर प्रश्नकर्ता ने) जिज्ञासा बताई तब मनुष्य क्या करता हुआ, क्या कराता हुआ तथा कैसे संयत, विरत तथा पापकर्म का निरोधक और प्रत्याख्यान करने वाला होता है?

आयरिय आह–तत्थ खलु भगवया छज्जीवणिकाया हेऊ पण्णत्ता, तं जहा–
१. पुढविकाइया जाव ६. तसकाइया,

आचार्य ने कहा–इस विषय में भगवान् ने पृथ्वीकाय से त्रसकाय पर्यन्त षड्जीव निकायों को (संयत अनुष्ठान का) कारण बताया है।

से जहानामए मम अस्सायं दंडेण वा, अट्ठीण वा, मुट्ठीण वा, लेलूण वा, कवालेण वा, आतोडिज्जमाणस्स वा, हम्ममाणस्स वा, तज्जिज्जमाणस्स वा, ताडिज्ज-माणस्स वा जाव उद्दविज्जमाणस्स वा जाव लोमुक्खमा णमायमवि विहिंसक्कारं दुक्खं भयं पडिसंवेदेमि, इच्चेवं जाण सव्वे पाणा जाव सव्वे सत्ता दंडेण वा जाव कवालेण

जैसे कि मैं किसी व्यक्ति द्वारा डंडे से मारा जाऊँ, तर्जित किया जाऊँ, ताड़ित किया जाऊँ यावत् हड्डियों से, मुक्कों से, ढेले से या ठीकरे से पीड़ित किया जाऊँ यावत् मेरा एक रोम उखाड़ा जाए तो मैं हिंसाजनित दुःख भय और असाता का अनुभव करता हूँ इसी तरह ऐसा जानो कि समस्त पीड़ित प्राणी यावत् सभी सत्व भी डंडे यावत् ठीकरे से मारे जाने पर

वा, आलोडिज्जमाणा वा जाव उद्दविज्जमाणा वा जाव लोमुक्खमाणमायमवि विहिंसक्कारं दुक्खं भयं पडिसंवेदेंति,

यावत् पीड़ित किये जाने पर यावत् एक रोम उखाड़े जाने पर हिंसाजनित दुःख और भय का अनुभव करते हैं,

एवं णच्चा सव्वे पाणा जाव सव्वे सत्ता ण हंतव्वा जाव ण उद्दवेयव्वा, एस धम्मे धुवे णिइए सासए समेच्च लोगं खेत्तण्णेहिं पवेदिते।

ऐसा जानकर समस्त प्राणियों यावत् सभी सत्वों को नहीं मारना चाहिए यावत् उन्हें पीड़ित नहीं करना चाहिए। यह (अहिंसा) धर्म ही ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है तया लोक के स्वरूप को जानने वालों के द्वारा प्रतिपादित है।

एवं से भिक्खू विरए पाणाइवायाओ जाव मिच्छादंसणसल्लाओ।

यह जानकर साधु प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य इन अठारह ही पापस्थानों से विरत होता है।

से भिक्खू णो दंतपक्खालणेणं दंते पक्खालेज्जा, नो अंजणं, णो वमणं, णो धूवणित्तिं पि आइए।

यह साधु दांत साफ करने वाले काष्ठ आदि से दांत साफ न करे, नेत्रों में अंजन (काजल) न लगाए, औषधि लेकर वमन न करे और धूप के द्वारा अपने वस्त्रों या केशों को सुवासित न करे।

से भिक्खू अकिरिए अलूसए अकोहे अमाणे अमाया अलोभे उवसंते परिनिव्वुडे।

वह साधु सावद्यक्रियारहित, हिंसारहित, क्रोध, मान, माया और लोभ से रहित उपशान्त एवं पाप से निवृत्त होकर रहे।

एस खलु भगवया अक्खाए संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे अकिरिए संवुडे एगंतपंडिए या वि भवइ। —सूय. सु. २, अ. ४, सु. ७४७-७५३

ऐसे साधु को भगवान् ने संयत विरत एवं पापकर्म का निरोधक, प्रत्याख्यान करने वाला अक्रिय (सावद्य क्रिया से रहित) (संवृत) संवरयुक्त और एकान्तपंडित होता है, ऐसा कहा है।

४९. समण-णिग्गंथेसु किरिया परूवणं—

प. अत्थि णं भंते ! समणाणं णिग्गंथाणं किरिया कज्जइ ?

उ. हंता, मंडियपुत्ता ! अत्थि।

प. कहं णं भंते ! समणाणं णिग्गंथाणं किरिया कज्जइ ?

उ. मंडियपुत्ता ! पमायपच्चया, जोगनिमित्तं च।

एवं खलु समणाणं णिग्गंथाणं किरिया कज्जइ।

—विया. स. ३, उ. ३, सु. ९-१०

४९. श्रमण निर्ग्रन्थों में क्रियाओं का प्ररूपण—

प्र. भंते ! क्या श्रमण निर्ग्रन्थ क्रिया करते हैं ?

उ. हां, मण्डितपुत्र ! क्रिया करते हैं।

प्र. भंते ! श्रमण निर्ग्रन्थ क्रिया कैसे करते हैं ?

उ. हे मण्डितपुत्र ! प्रमाद से और योगों के निमित्त से क्रिया करते हैं।

इस प्रकार निश्चय रूप में श्रमण निर्ग्रन्थ क्रिया करते हैं।

५०. एगसमए एगकिरिया परूवणं—

प. अण्णउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति जाव एवं परूवेंति—

एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेइ, तं जहा—

१. सम्मत्तकिरियं च, २. मिच्छत्तकिरियं च,

१. जं समयं सम्मत्तकिरियं पकरेइ, तं समयं मिच्छत्तकिरियं पकरेइ,

२. जं समयं मिच्छत्तकिरियं पकरेइ, तं समयं सम्मत्तकिरियं पकरेइ,

सम्मत्तकिरियापकरणयाए मिच्छत्तकिरियं पकरेइ,

मिच्छत्तकिरियापकरणयाए सम्मत्तकिरियं पकरेइ,

एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेइ, तं जहा—

१. सम्मत्तकिरियं च, २. मिच्छत्तकिरियं च।

५०. एक समय में एक क्रिया का प्ररूपण—

प्र. भंते ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं यावत् इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं कि—

"एक जीव एक समय में दो क्रियाएँ करता है, यथा—

१. सम्यक्त्व क्रिया और २. मिथ्यात्वक्रिया।

१. जिस समय सम्यक्त्वक्रिया करता है उसी समय मिथ्यात्वक्रिया भी करता है,

२. जिस समय मिथ्यात्वक्रिया करता है उसी समय सम्यक्त्वक्रिया भी करता है।

सम्यक्त्वक्रिया करते हुए मिथ्यात्वक्रिया करता है,

मिथ्यात्वक्रिया करते हुए सम्यक्त्व क्रिया करता है।

इस प्रकार एक जीव एक समय में दो क्रियाएँ करता है, यथा—

१. सम्यक्त्व क्रिया और २. मिथ्यात्वक्रिया।

से कहमेयं भंते ! एवं ?

उ. गोयमा ! जन्नं से अन्नउत्थिया एवमाइक्खंति जाव एवं परूवेंति–

एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेइ, तहेव जाव सम्मत्तकिरियं च, मिच्छत्तकिरियं च।

जे ते एवमाहंसु तं णं मिच्छा।

अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव एवं परूवेमि–

एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं किरियं पकरेइ, तं जहा–

१. समत्तकिरियं वा, २. मिच्छत्तकिरियं वा।

१. जं समयं सम्मत्तकिरियं पकरेइ नो तं समयं मिच्छत्तकिरियं पकरेइ,

२. जं समयं मिच्छत्तकिरियं पकरेइ, नो तं समयं सम्मत्तकिरियं पकरेइ,

सम्मत्तकिरिया पकरणयाए, नो मिच्छत्तकिरियं पकरेइ,

मिच्छत्तकिरिया पकरणयाए, नो सम्मत्तकिरियं पकरेइ,

एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं किरियं पकरेइ, तं जहा–

सम्मत्तकिरियं वा, मिच्छत्तकिरियं वा[1]।

–जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १०४

प. अन्नउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति जाव एवं परूवेंति ?

एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेइ तं जहा–

१. इरियावहियं च, २. संपराइयं च।

१. जं समयं इरियावहियं पकरेइ, तं समयं संपराइयं पकरेइ,

२. जं समयं संपराइयं पकरेइ, तं समयं इरियावहियं पकरेइ,

इरियावहियाए पकरणयाए संपराइयं पकरेइ,

संपराइयाए पकरणयाए इरियावहियं पकरेइ,

एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेइ, तं जहा–

१. इरियावहियं च, २. संपराइयं च।

से कहमेयं भंते ! एवं ?

उ. गोयमा ! जं णं ते अण्णउत्थिया एवमाइक्खंति जाव एवं परूवेंति एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेइ, तं जहा–

१. इरियावहियं च, २. संपराइयं च।

जे ते एवमाहंसु तं णं मिच्छा।

अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव एवं परूवेमि–

भंते ! उनका यह कथन कैसा है ?

उ. गौतम ! जो अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं यावत् इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं कि–

एक जीव एक समय में दो क्रियाएँ करता है उसी प्रकार यावत् सम्यक्त्वक्रिया और मिथ्यात्वक्रिया।

जो वे इस प्रकार कहते हैं वह मिथ्या है।

गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ यावत् इस प्रकार प्ररूपणा करता हूँ कि–

"एक जीव एक समय में एक क्रिया करता है, यथा–

१. सम्यक्त्वक्रिया या, २. मिथ्यात्वक्रिया।

१. जिस समय सम्यक्त्व क्रिया करता है उस समय मिथ्यात्वक्रिया नहीं करता।

२. जिस समय मिथ्यात्वक्रिया करता है उस समय सम्यक्त्व क्रिया नहीं करता।

सम्यक्त्वक्रिया करते हुए मिथ्यात्वक्रिया नहीं करता,

मिथ्यात्वक्रिया करते हुए सम्यक्त्वक्रिया नहीं करता।

इस प्रकार एक जीव एक समय में एक ही क्रिया करता है, यथा–

सम्यक्त्वक्रिया या मिथ्यात्वक्रिया।

प्र. भंते ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं यावत् इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं कि–

एक जीव एक समय में दो क्रियाएँ करता है, यथा–

१. ईर्यापथिक और २. साम्परायिक।

१. जिस समय ईर्यापथिक क्रिया करता है, उसी समय साम्परायिक क्रिया भी करता है।

२. जिस समय साम्परायिक क्रिया करता है, उसी समय ईर्यापथिक क्रिया भी करता है।

ईर्यापथिक क्रिया करते हुए साम्परायिक क्रिया करता है।

साम्परायिक क्रिया करते हुए ईर्यापथिक क्रिया करता है।

इस प्रकार एक जीव एक समय में दो क्रियाएँ करता है, यथा–

१. ईर्यापथिक और २. साम्परायिक।

भंते ! उनका यह कथन कैसा है ?

उ. गौतम ! जो अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं यावत् इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं कि–एक जीव एक समय में दो क्रियाएँ करता है, यथा–

१. ईर्यापथिक और २. साम्परायिक।

जो वे इस प्रकार कहते हैं वह मिथ्या है।

गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ यावत् इस प्रकार प्ररूपणा करता हूँ कि–

1. विया. स. ७, उ. ४, सु. १

एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं किरियं पकरेइ, तं जहा–

१. इरियावहियं वा २. संपराइयं वा।

जं समयं इरियावहियं पकरेइ, नो तं समयं संपराइयं पकरेइ,

जं समयं सपंराइयं पकरेइ, नो तं समयं इरियावहियं पकरेइ।

इरियावहियाए पकरणयाए नो संपराइयं पकरेइ,

संपराइयाए पकरणयाए नो इरियावहियं पकरेइ,

एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं किरियं पकरेइ, तं जहा–

१. इरियावहियं वा २. संपराइयं वा।

–विया. स. १, उ. १०, सु. २

५१. कज्जमाणी दुक्ख निमित्ता किरिया–

प. अण्णउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति जाव परूवेंति,

"पुव्विं किरिया दुक्खा,

कज्जमाणी किरिया अदुक्खा,

किरिया समय विइक्कंतं च णं कडा किरिया दुक्खा,"

जा सा पुव्विं किरिया दुक्खा, कज्जमाणी किरिया अदुक्खा, किरियासमयविइक्कंतं च णं कडा किरिया दुक्खा, सा किं करणओ दुक्खा अकरणओ दुक्खा ?

अकरणओ णं सा दुक्खा, णो खलु सा करणओ दुक्खा, सेवं वत्तव्वं सिया।

अकिच्चं दुक्खं, अफुसं दुक्खं, अकज्जमाणकडं दुक्खं अकट्टु पाण-भूय-जीव-सत्ता वेयणं वेदेंतीति वत्तव्वं-सिया।

से कहमेयं भंते ! एवं ?

उ. गोयमा ! जं णं ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खंति जाव वेयणं वेदेंतीति वत्तव्वं सिया।

जे ते एवमाहंसु ते मिच्छा।

अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव एवं परूवेमि–

'पुव्विं किरिया अदुक्खा,

कज्जमाणी किरिया दुक्खा,

किरियासमयविइक्कंतं च णं कज्जमाणी किरिया अदुक्खा।

जा सा पुव्विं किरिया अदुक्खा,

कज्जमाणी किरिया दुक्खा,

किरियासमयविइक्कंतं च णं कज्जमाणी किरिया अदुक्खा।

सा किं करणओ दुक्खा, अकरणओ दुक्खा ?

करणओ णं सा दुक्खा नो खलु सा अकरणओ दुक्खा सेवं वत्तव्वं सिया।

किच्चं दुक्खं, फुसं दुक्खं, कज्जमाणकडं दुक्खं कट्टु पाण-भूय-जीव-सत्ता वेयणं वेदेंतीति वत्तव्वं सिया।

[illegible]

"एक जीव एक समय में एक क्रिया करता है", यथा–

१. ईर्यापथिक या २. साम्परायिक।

जिस समय ईर्यापथिक क्रिया करता है उस समय साम्परायिक क्रिया नहीं करता,

जिस समय साम्परायिक क्रिया करता हे उस समय ईर्यापथिक क्रिया नहीं करता।

ईर्यापथिक क्रिया करते हुए साम्परायिक क्रिया नहीं करता,

साम्परायिक क्रिया करते हुए ईर्यापथिक क्रिया नहीं करता,

इस प्रकार एक जीव एक समय में एक ही क्रिया करता है, यथा–

१. ईर्यापथिक या २. साम्परायिक।

५१. क्रियमाण क्रिया दुःख का निमित्त–

प्र. भंते। अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते है यावत् प्ररुपणा करते हैं कि–"करने से पूर्व की गई क्रिया दुःखरूप है,

की जाती हुई क्रिया दुःखरूप नहीं है,

करने का समय वीत जाने के वाद की कृत क्रिया दुःखरूप है।"

वह जो पूर्व की क्रिया है, वह दुःख रूप है, की जाती हुई क्रिया दुःखरूप नहीं है और करने के वाद की कृत क्रिया दुःखरूप है, तो क्या वह करने से दुःखरूप है या न करने से दुःखरूप है ?

न करने से वह क्रिया दुःखरूप है और करने से दुःखरूप नहीं है ऐसा कहना चाहिए।

अकृत्य दुःख है, अस्पृष्य दुःख है ओर अक्रियमाणकृत दुःख है ऐसा न कहकर प्राण, भूत, जीव ओर सत्व वेदना भोगते हैं ऐसा कहना चाहिए।

तो भंते ! क्या अन्यतीर्थिकों का यह मत सत्य है ?

उ. गौतम ! जो वे अन्यतीर्थिक ऐसा कहते है यावत् (प्राणादि) वेदना वेदते हैं ऐसा कहना चाहिए।

जो ऐसा कहते है वे मिथ्या कहते है,

गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि–

"पूर्व की क्रिया दुःखमय नहीं है,

की जाती हुई क्रिया दुःखरूप है,

करने का समय बीत जाने के बाद की कृत क्रिया दुःखरूप नहीं है।

वह जो पूर्व की क्रिया है वह दुःखरूप नहीं है,

की जाती हुई क्रिया दुःखरूप है और

करने के बाद की कृत क्रिया दुःखरूप नहीं है।

वह करने से दुःखरूप है या नहीं करने से दुःखरूप है ?

वह करने से दुःखरूप है, नहीं करने से दुःखरूप नहीं है ऐसा कहना चाहिए।

[illegible]

५२. किरिया वेयणासु पुव्वावरत्त परूवणं–

प. पुव्विं भंते ! किरिया पच्छा वेयणा ?
पुव्विं वेयणा पच्छा किरिया ?

उ. मंडियपुत्ता ! पुव्विं किरिया पच्छा वेयणा,
णो पुव्विं वेयणा पच्छा किरिया। *–विया. स. ३, उ. ३, सु. ८*

५२. क्रिया वेदना में पूर्वापरत्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या पहले क्रिया होती है और पीछे वेदना होती है?
अथवा पहले वेदना होती है और पीछे क्रिया होती है?

उ. मंडितपुत्र ! पहले क्रिया होती है और बाद में वेदना होती है
परन्तु पहले वेदना हो और पीछे क्रिया हो ऐसा संभव नहीं है।

५३. जीव-चउवीसदंडएसु अट्ठारस पावट्ठाणेहिं पावकिरिया परूवणं–

प. १. अत्थि णं भंते ! जीवाणं पाणाइवाए णं किरिया कज्जइ ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. कम्हि णं भंते ! जीवाणं पाणाइवाए णं किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! छसु जीवणिकाएसु।

प. अत्थि णं भंते ! णेरइयाणं पाणाइवाए णं किरिया कज्जइ ?

उ. हंता, गोयमा ! एवं चेव।
एवं णिरंतरं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

प. २. अत्थि णं भंते ! जीवाणं मुसावाएणं किरिया कज्जइ ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. कम्हि णं भंते ! जीवाणं मुसावाएणं किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! सव्वदव्वेसु।
एवं णिरंतरं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

प. ३. अत्थि णं भंते ! जीवाणं अदिण्णादाणेणं किरिया कज्जइ ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. कम्हि णं भंते ! जीवाणं अदिण्णादाणेणं किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! गहणधारणिज्जेसु दव्वेसु।
एवं णिरंतरं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

प. ४. अत्थि णं भंते ! जीवाणं मेहुणेणं किरिया कज्जइ ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. कम्हि णं भंते ! जीवाणं मेहुणेणं किरिया कज्जइ ?

उ. गोयमा ! रूवेसु वा, रूवसहगएसु वा दव्वेसु।
एवं णिरंतरं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

प. [illegible] परिग्गहेणं किरिया कज्जइ ?

उ. [illegible]

प. [illegible] किरिया कज्जइ ?

उ. [illegible]

५३. जीव-चौवीस दंडकों में अठारह पाप स्थानों द्वारा क्रियाओं का प्ररूपण–

प्र. १. भंते ! क्या जीवों द्वारा प्राणातिपात क्रिया की जाती है?

उ. हाँ, गौतम ! की जाती है।

प्र. भंते ! किस विषय में जीवों द्वारा प्राणातिपात क्रिया की जाती है?

उ. गौतम ! छह जीव निकायों के विषय में की जाती है।

प्र. भंते ! नारकों द्वारा प्राणातिपात क्रिया की जाती है?

उ. हाँ, गौतम ! इसी प्रकार की जाती है।
इसी प्रकार निरन्तर नैरयिकों वैमानिकों पर्यन्त कथन करना चाहिए।

प्र. २. भंते ! क्या जीवों द्वारा मृषावाद क्रिया की जाती है?

उ. हाँ, गौतम ! की जाती है।

प्र. भंते ! किस विषय में जीवों द्वारा मृषावाद क्रिया की जाती है?

उ. गौतम ! सर्वद्रव्यों के विषय में क्रिया की जाती है।
इसी प्रकार निरन्तर नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त कथन करना चाहिए।

प्र. ३. भंते ! क्या जीवों द्वारा अदत्तादान क्रिया की जाती है?

उ. हाँ, गौतम ! की जाती है।

प्र. भंते ! किस विषय में जीवों द्वारा अदत्तादान क्रिया की जाती है?

उ. गौतम ! ग्रहण करने और धारण करने योग्य द्रव्यों के विषय में यह क्रिया की जाती है।
इसी प्रकार निरन्तर नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त कथन करना चाहिए।

प्र. ४. भंते ! क्या जीवों द्वारा मैथुन क्रिया की जाती है?

उ. हाँ, गौतम ! की जाती है।

प्र. भंते ! किस विषय में जीवों द्वारा मैथुन क्रिया की जाती है?

उ. गौतम ! अनेक रूपों में या रूपसहगत द्रव्यों के विषय में यह क्रिया की जाती है।
इसी प्रकार निरन्तर नैरयिकों से वैमानिक पर्यन्त कथन करना चाहिए।

प्र. ५. भंते ! क्या जीवों द्वारा परिग्रह क्रिया की जाती है?

उ. हाँ, गौतम ! की जाती है।

प्र. भंते ! किस विषय में जीवों द्वारा परिग्रह क्रिया की जाती है?

उ. गौतम ! समस्त द्रव्यों के विषय में (परिग्रह) क्रिया की जाती है।

एवं णेरइयाणं णिरंतर जाव वेमाणियाण।

एवं ६. कोहेणं, ७. माणेणं, ८. मायाए, ९. लोभेणं, १०. पेज्जेणं, ११. दोसेणं, १२. कलहेणं, १३. अब्भक्खाणेणं, १४. पेसुण्णेणं, १५. परपरिवाएणं, १६. अरइरईए, १७. मायामोसेणं, १८. मिच्छादंसण-सल्लेणं, सव्वेसु जीव णेरइयभेदेसु भाणियव्वं णिरंतरं जाव वेमाणियाणं ति। एवं अट्ठारस एए दंडगा।

—पण्ण. प. २२, सु. १५७४-१५८०

प. अत्थि णं भंते ! जीवाणं पाणाइवाएणं किरिया कज्जइ ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ, अपुट्ठा कज्जइ ?

उ. गोयमा ! पुट्ठा कज्जइ, नो अपुट्ठा कज्जइ जाव निव्वाघाएणं छद्दिसिं, वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं, सिय चउदिसिं, सिय पंचदिसिं।

प. सा भंते ! किं कडा कज्जइ, अकडा कज्जइ ?

उ. गोयमा ! कडा कज्जइ, नो अकडा कज्जइ।

प. सा भंते ! किं अत्तकडा कज्जइ, परकडा कज्जइ, तदुभयकडा कज्जइ ?

उ. गोयमा ! अत्तकडा कज्जइ, नो परकडा कज्जइ, नो तदुभयकडा कज्जइ।

प. सा भंते ! किं आणुपुव्वि कडा कज्जइ, अणाणुपुव्विं कडा कज्जइ ?

उ. गोयमा ! आणुपुव्वि कडा कज्जइ, णो अणाणुपुव्विं कडा कज्जइ, जा य कडा, जा य कज्जइ, जा य कज्जिस्सइ, सव्वा सा आणुपुव्विकडा, नो अणाणुपुव्वि कडत्ति वत्तव्वं सिया।

प. अत्थि णं भंते ! नेरइयाणं पाणाइवायकिरिया कज्जइ ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ, अपुट्ठा कज्जइ ?

उ. गोयमा ! जाव नियमा छद्दिसिं कज्जइ।

प. सा भंते ! किं कडा कज्जइ, अकडा कज्जइ ?

उ. गोयमा ! कडा कज्जइ, नो अकडा कज्जइ ते चेव जाव नो अणाणुपुव्वि कडत्ति वत्तव्वं सिया।

जहा नेरइया तहा एगिंदियवज्जा भाणियव्वा [illegible] वेमाणिया,

इसी प्रकार निरन्तर नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार ६. क्रोध से ७. मान से, ८. माया से, ९. लोभ से, १०. राग से, ११. द्वेष से, १२. कलह से, १३. अभ्याख्यान से, १४. पैशुन्य से, १५. परपरिवाद से, १६. अरति-रति से, १७. मायामृषा से एवं १८. मिथ्यादर्शनशल्य से समस्त जीवों तथा नारकों के भेदों में निरन्तर वैमानिक पर्यन्त आलापक कहने चाहिए।

इस प्रकार ये अठारह दंडक हुए।

प्र. भंते ! क्या जीवों द्वारा प्राणातिपातक्रिया की जाती है ?

उ. हाँ, गौतम ! की जाती है।

प्र. भंते ! क्या वह (प्राणातिपातक्रिया) स्पर्श करके की जाती है या विना स्पर्श किये जाती है ?

उ. गौतम ! स्पर्श करके की जाती है स्पर्श किये विना नहीं की जाती है (स्पर्श किये जाने पर) यावत् व्याघात न हो तो छहों दिशाओं को और व्याघात हो तो कदाचित् तीन दिशाओं को, कदाचित् चार दिशाओं को और कदाचित् पांच दिशाओं को स्पर्श करके (प्राणातिपात क्रिया) की जाती है ?

प्र. भंते ! क्या वह (प्राणातिपात) कृत (क्रिया करके) की जाती है या अकृत (विना क्रिया किये) की जाती है ?

उ. गौतम ! प्राणातिपात क्रिया कृत (क्रिया करके) की जाती है अकृत (विना क्रिया किये) नहीं की जाती है।

प्र. भंते ! क्या वह प्राणातिपात क्रिया स्वयं द्वारा की जाती है, पर द्वारा की जाती है या उभय द्वारा की जाती है ?

उ. गौतम ! वह क्रिया स्वयं द्वारा की जाती है, न अन्य द्वारा की जाती है और न उभय द्वारा की जाती है।

प्र. भंते ! क्या वह (प्राणातिपात क्रिया) अनुक्रम से की जाती है या विना अनुक्रम से की जाती है ?

उ. गौतम ! वह क्रिया अनुक्रम से की जाती है, बिना अनुक्रम से नहीं की जाती है। जो क्रिया की गई है, जो क्रिया की जा रही है और जो क्रिया की जाएगी वह सब अनुक्रम से की गई है, किन्तु बिना क्रम के नहीं की गई है ऐसा कहना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या नैरयिकों द्वारा प्राणातिपात क्रिया की जाती है ?

उ. हाँ, गौतम ! की जाती है।

प्र. भंते ! जो क्रिया की जाती है वह (नैरयिकों द्वारा) क्या स्पर्श करके की जाती है या बिना स्पर्श किये की जाती है ?

उ. गौतम ! वह क्रिया यावत् नियम से छहों दिशाओं का स्पर्श करके की जाती है।

प्र. भंते ! [illegible]

उ. गौतम ! [illegible]

एकेन्द्रिय को छोड़कर वैमानिक पर्यन्त दण्डकों के आलापक कहने चाहिए।

एगिंदिया जहा जीवा तहा भाणियव्वा,
जहा पाणाइवाए तहा जाव मिच्छादंसणल्ले। एवं एए अट्ठारस पावट्ठाणे चउ वीसं दंडगा भाणियव्वा।

—विया. स. १, उ. ६, सु. ७-११

एकेन्द्रियों के विषय में सामान्य जीवों के समान कहना चाहिए।
प्राणातिपात क्रिया के समान मिथ्यादर्शनशल्य पर्यन्त इन अठारह पापस्थानों के विषय में चौबीस दण्डक कहने चाहिए।

५४. जीव-चउवीसदंडएसु पावकिरिया विरमण परूवणं–

प. अत्थि णं भंते ! जीवाणं पाणाइवायवेरमणे कज्जइ ?
उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।
प. कम्हि णं भंते ! जीवाणं पाणाइवायवेरमणे कज्जइ ?
उ. गोयमा ! छसु जीवणिकाएसु।
प. दं. १. अत्थि णं णेरइयाणं पाणाइवायवेरमणे कज्जइ ?
उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।
दं. २-२४ एवं जाव वेमाणियाणं।
णवरं-मणूसाणं जहा जीवाणं।
एवं मुसावाएणं जाव मायामोसेणं जीवस्स य मणूसस्स य,
सेसाणं णो इणट्ठे समट्ठे।
णवरं–अदिण्णादाणे गहण-धारणिज्जेसु दव्वेसु,
मेहुणे रूवेसु वा, रूवसहगएसु वा दव्वेसु,
सेसाणं सव्वदव्वेसु।
प. अत्थि णं भंते ! जीवाणं मिच्छादंसणसल्लवेरमणे कज्जइ ?
उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।
प. कम्हि णं भंते ! जीवाणं मिच्छादंसणसल्लवेरमणे कज्जइ ?
उ. गोयमा ! सव्वदव्वेसु।
एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।
णवरं–एगिंदिय-विगलिंदियाणं णो इणट्ठे समट्ठे।

—पण्ण. प. २२, सु. १६३७-१६४१

५४. सामान्य जीव और चौबीस दण्डकों में पाप क्रियाओं का विरमण प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या जीवों द्वारा प्राणातिपात विरमण किया जाता है?
उ. हाँ, गौतम ! किया जाता है।
प्र. भंते ! किस विषय में जीवों का प्राणातिपात विमरण किया जाता है ?
उ. गौतम ! छह जीव निकायों के विषय में (प्राणातिपात विरमण) किया जाता है।
प्र. दं. १. भंते ! क्या नैरयिकों द्वारा प्राणातिपात विरमण किया जाता है ?
उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।
दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।
विशेषः–मनुष्यों में (प्राणातिपात विरमण) सामान्य जीवों के समान कहना चाहिए।
इसी प्रकार मृषावाद से मायामृषावाद पर्यन्त सामान्य जीव और मनुष्य का विरमण कहना चाहिए।
शेष दण्डकों में (प्राणातिपात विरमण) नहीं किया जाता।
विशेषः–अदत्तादान विरमण ग्रहण और धारण करने योग्य द्रव्यों के विषय में होता है।
मैथुन-विरमण अनेक रूपों में या रूपसहगत द्रव्यों के विषय में होता है।
शेष पापस्थानों से विरमण सर्वद्रव्यों में होता है।
प्र. भंते ! क्या जीवों द्वारा मिथ्यादर्शनशल्य से विरमण किया जाता है ?
उ. हाँ, गौतम ! किया जाता है।
प्र. भंते ! किस विषय में जीवों का मिथ्यादर्शनशल्य से विरमण किया जाता है ?
उ. गौतम ! सर्वद्रव्यों के विषय में होता है।
इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिक पर्यन्त (मिथ्यादर्शनशल्य से विरमण) का कथन करना चाहिए।
विशेषः–एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियों में यह नहीं होता है।

[illegible] किरिया ठाणस्स दुविहा पक्खा–

[illegible] भगवया एवमक्खायं–
[illegible] तस्स णं अयमट्ठे–
[illegible] दुवे ठाणा एवमाहिज्जंति, तं जहा–
१. [illegible], २. अधम्मे चेव,
१. [illegible], २. अणुवसंते चेव।

—[illegible] सु. २, अ. २, सु. [illegible]

५५. क्रिया स्थान के दो पक्ष–

हे आयुष्मन् ! मैंने सुना उन भगवान् ने इस प्रकार कहा कि– यहाँ "क्रिया स्थान" नामक अध्ययन है उसका अर्थ यह है– इस लोक में संक्षेप में दो स्थान इस प्रकार कहे जाते हैं, यथा–
१. धर्म स्थान २. अधर्म स्थान,
अथवा–१. उपशान्त स्थान २. अनुपशान्त स्थान।

५६. तेरस किरियाठाणणामाणि

तत्थ णं जे से पढमस्स ठाणस्स अधम्मपक्खस्स विभंगे तस्स णं अयमट्ठे–

इह खलु पाईणं वा जाव दाहिणं वा संतेगइया मणुस्सा भवंति, तं जहा–

आरिया वेगे, अणारिया वेगे,
उच्चागोया वेगे, णीयागोया वेगे,
कायमंता वेगे, हस्समंतावेगे,
सुवण्णा वेगे, दुवण्णा वेगे,
सुरूवा वेगे, दुरूवा वेगे।

तेसिं च णं इमं एयारूवं दंड समायाणं संपेहाए, तं जहा–

णेरइएसु, तिरिक्खजोणिएसु, माणुसेसु, देवेसु,
जे यावन्ने तहप्पगारा पाणा विण्णू वेयणं वेदेंति

तेसिं पि य णं इमाइं तेरस किरियाठाणाइं भवंतीति मक्खायाइं, तं जहा–

१. अट्ठादंडे, २. अणट्ठादंडे, ३. हिंसादंडे, ४. अकम्हादंडे, ५. दिट्ठिविपरियासियादंडे, ६. मोसवत्तिए, ७. अदिन्नादाणवत्तिए, ८. अज्झत्थिए, ९. माणवत्तिए, १०. मित्तदोसवत्तिए, ११. मायावत्तिए, १२. लोभवत्तिए, १३. इरियावहिए[1]। –सूय. सु. २, अ. २, सु. ६९४

५६. तेरह क्रिया स्थानों के नाम–

इन दो स्थानों में से प्रथम स्थान अधर्मपक्ष का जो विकल्प है उसका यह अर्थ है कि–

"इस लोक में पूर्व यावत् दक्षिण दिशा में कुछ मनुष्य होते हैं, यथा–

कई आर्य होते हैं और कई अनार्य होते हैं।
कई उच्चगोत्रीय होते हैं और कई नीचगोत्रीय होते हैं।
कई लम्बे कद के होते हैं और कई छोटे कद के होते हैं।
कई सुन्दर वर्ण के होते हैं और कई बुरे वर्ण के होते हैं।
कई सुरूप होते हैं और कई कुरूप होते हैं।

उन आर्य आदि मनुष्यों में इस प्रकार का दण्ड समादान (हिंसात्मक आचरण) देखा जाता है, यथा–

नारकों में, तिर्यञ्चयोनिकों में, मनुष्यों में और देवों में,

जो इसी प्रकार के समझदार प्राणी हैं, वे सुख-दुख का वेदन करते हैं,

उनमें ये तेरह प्रकार के क्रिया स्थान हैं, वे इस प्रकार कहे गये हैं, यथा–

(१) अर्थदण्ड (सप्रयोजन हिंसा) (२) अनर्थदण्ड (निष्प्रयोजन हिंसा) (३) हिंसादण्ड (हिंसा के प्रति हिंसा) (४) अकस्मात् दण्ड (अकस्मात् की जाने वाली हिंसा) (५) दृष्टि विपर्यासदण्ड (मतिभ्रम से होने वाली हिंसा) (६) मृषाप्रत्ययिक (झूठ से होने वाली क्रिया) (७) अदत्तादानप्रत्ययिक (चोरी से होने वाली क्रिया) (८) अध्यात्मप्रत्ययिक (दुश्चिन्तन से होने वाली क्रिया) (९) मान प्रत्ययिक (अभिमान से होने वाली क्रिया) (१०) मित्रद्वेषप्रत्ययिक (मित्र से द्वेष होने पर होने वाली क्रिया) (११) माया प्रत्ययिक (माया से होने वाली क्रिया) (१२) लोभ-प्रत्ययिक (लोभ से होने वाली क्रिया) (१३) ईर्यापथिक (केवल गमनागमन के निमित्त से होने वाली क्रिया)।

५७. अधम्मपक्खस्स किरियाठाणाण सरूव परूवणं–

१– पढमे दंडसमादाणे अट्ठादंडवत्तिए त्ति आहिज्जइ,

से जहाणामए केइ पुरिसे–

आयहेउं वा, णाइहेउं वा, अगारहेउं वा, परिवारहेउं वा, मित्तहेउं वा, णागहेउं वा, भूतहेउं वा, जक्खहेउं वा,

तं दंडं तस-थावरेहिं पाणेहिं सयमेव णिसिरइ,

अण्णेण वि णिसिरावेइ,

अण्णं पि णिसिरंतं समणुजाणइ,

एवं खलु तस्स तप्पत्तियं "सावज्जे" त्ति आहिज्जइ,

पढमे दंडसमादाणे अट्ठादंडवत्तिए त्ति आहिए।

[illegible]

[illegible]

५७. अधर्म पक्ष के क्रिया स्थानों के स्वरूप का प्ररूपण–

१–पहला दण्ड समादान अर्थदण्ड प्रत्ययिक [illegible]

जैसे कोई पुरुष–

अपने लिए, ज्ञाति के लिए, घर के लिए, [illegible]

[illegible]

[illegible]

ते णो अच्चाए, णो अजिणाए, णो मंसाए, णो सोणियाए, एवं हिययाए, पित्ताए, वसाए, पिच्छाए, पुच्छाए, बालाए, सिंगाए, विसाणाए, दंताए, दाढाए, णहाए, ण्हारुणीए, अट्ठीए अट्ठिमिंजाए,

उनको वह अपने शरीर की रक्षा के लिए, चमड़े के लिए, माँस के लिए, रक्त के लिए,इसी प्रकार, हृदय के लिए, पित्त के लिए, चर्बी के लिए, पंख के लिए, पूँछ के लिए, बाल के लिए, सींग के लिए, विषाण के लिए, दाँत के लिए, दाढ के लिए, नख के लिए, आँतों के लिए, हड्डी के लिए और हड्डी की मज्जा के लिए नहीं मारता है।

णो हिंसिंसु मे त्ति, णो हिंसंति मे त्ति, णो हिंसिस्संति मे त्ति,

इसने मुझे मारा है, मार रहा है या मारेगा, इसलिए भी नहीं मारता है।

णो पुत्तपोसणयाए, णो पसुपोसणयाए, णो अगारपरिवूहणयाए,
णो समणमाहणवत्तिणाहेउं,
णो तस्स सरीरगस्स किंचि विपरियाइत्ता भवइ,

पुत्रपोषण के लिए, पशुपोषण के लिए तथा अपने घर को सजाने के लिए भी नहीं मारता है।
श्रमण और ब्राह्मण के जीवन निर्वाह के लिए,
एवं उन के शरीर पर कुछ भी विपत्ति आये उससे बचाने के लिए भी नहीं मारता।

से हंता, छेत्ता, भेत्ता, लुंपइत्ता, विलुंपइत्ता, उद्दवइत्ता उज्झिउं, बाले वेरस्स आभागी भवइ, अणट्ठादंडे।

(किन्तु बिना प्रयोजन ही) वह अज्ञानी उनके प्राणों का हनन, अंगों का छेदन, भेदन, लुंपन, विलुंपन, प्राण हरण करके व्यर्थ ही वैर का भागी होता है।

(२) से जहाणामए केइ पुरिसे–
जे इमे थावरा पाणा भवंति, तं जहा–
इक्कडा इ वा, कडिणा इ वा, जंतुगा इ वा, परगा इ वा, मोरका इ वा, तणा इ वा, कुसा इ वा, कुच्चका इ वा, पव्वगा इ वा, पलालए इ वा, ते णो पुत्तपोसणयाए, णो पसुपोसणयाए, णो अगारपोसणयाए, णो समणमाहणपोसणयाए,
णो तस्स सरीरगस्स किंचि विपरियाइत्ता भवइ,
से हंता, छेत्ता, भेत्ता, लुंपइत्ता, विलुंपइत्ता, उद्दवइत्ता, उज्झिउं बाले वेरस्स आभागी भवइ अणट्ठादंडे।

(२) जैसे कोई पुरुष–
जो ये स्थावर प्राणी हैं, यथा–
इक्कड़, ढिण, जन्तुक, परक, मोरक, तृण, कुश, कुच्छक, पर्वक और पलाल उन वनस्पतियों को पुत्र पोषण के लिए, पशु पोषण के लिए तथा अपने घर को सजाने के लिए, श्रमण एवं ब्राह्मण के जीवन निर्वाह के लिए एवं उनके शरीर पर आई हुई विपत्ति से बचाने के लिए भी नहीं मारता है,

किन्तु बिना प्रयोजन ही वह अज्ञानी उन स्थावर प्राणियों का हनन, छेदन, भेदन लुंपन विलुंपन प्राण हरण करके व्यर्थ में वैर का भागी होता है।

(३) से जहाणामए केइ पुरिसे–
कच्छंसि वा, दहंसि वा, दगंसि वा, दवियंसि वा, वलयंसि वा, णूमंसि वा, गहणंसि वा, गहणविदुग्गंसि वा, वणंसि वा, वणविदुग्गंसि वा, पव्वयंसि वा, पव्वयविदुग्गंसि वा, तणाइं ऊसविय ऊसविय,
सयमेव अगणिकायं णिसिरइ,
अण्णेण वि अगणिकायं णिसिरावेइ,
अण्णं पि अगणिकायं णिसिरंतं समणुजाणइ, अणट्ठादंडे।
एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जे त्ति आहिज्जइ।
दोच्चे दंडसमादाणे अणट्ठादंडवत्तिए त्ति आहिए।

(३) जैसे कोई पुरुष–
कच्छ में, द्रहं में, जलाशय में तथा नदीं आदि द्वारा घिरे हुए स्थान में, अन्धकारपूर्ण स्थान में, किसी गहन स्थान में, किसी दुर्गम गहन स्थान में, वन में या घोर वन में, पर्वत पर या पर्वत के किसी दुर्गम स्थान में, तृण या घास को फैला-फैला कर
स्वयं उसमें आग लगाता है, दूसरों से आग लगवाता है,
आग लगाने वाले का अनुमोदन करता है,
वह पुरुष निष्प्रयोजन प्राणियों को दण्ड देता है।
इस प्रकार उस पुरुष को व्यर्थ ही प्राणियों की घात के कारण सावद्य कर्म का वन्ध होता है, यह दूसरा अनर्थ दण्ड प्रत्ययिक दण्ड समादान (क्रिया स्थान) कहा गया है।

३–अहावरे तच्चे दंडसमादाणे हिंसादंडवत्तिए त्ति आहिज्जइ,

से जहाणामए केइ पुरिसे–
ममं वा, ममिं वा, अन्नं वा, अन्निं वा, हिंसिंसु वा, हिंसइ वा, हिंसिस्सइ वा,
[illegible] सयमेव णिसिरइ,
[illegible],
[illegible], हिंसादंडे।

३–अव तीसरा हिंसादण्ड प्रत्ययिक दण्ड समादान (क्रिया स्थान) कहा जाता है–
जैसे किसी पुरुष ने–
मुझको या मेरे सम्बन्धी को तथा दूसरे को या दूसरे के सम्बन्धी को मारा था, मार रहा है या मारेगा,
ऐसा सोचकर कोई स्वयं त्रस एवं स्थावर प्राणियों को दंड देता है,
दूसरे से दण्ड दिलाता है
दण्ड देने वाले का अनुमोदन करता है, ऐसा व्यक्ति प्राणियों को (हिंसा रूप) दण्ड देता है।

एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जं त्ति आहिज्जइ।

तच्चे दंड समादाणे हिंसादंड वत्तिए त्ति आहिए।

४–अहावरे चउत्थे दंडसमादाणे अकम्हा दंडवत्तिए त्ति आहिज्जइ,

(१) से जहाणामए केइ पुरिसे–

कच्छंसि वा जाव वणविदुग्गंसि वा, मियवित्तिए, मियसंकप्पे, मियपणिहाणे, मियवहाए गंता,

एए "मिय त्ति" काउं अन्नयरस्स मियस्स वहाए उसुं आयामेत्ता णं णिसिरेज्जा, से मियं वहिस्सामि त्ति कट्टु तित्तिरं वा, वट्टगं वा, चडगं वा, लावगं वा, कवोतगं वा, कविं वा, कविंजलं वा विंधित्ता भवइ।

इइ खलु से अण्णस्स अट्ठाए अण्णं फुसइ अकम्हादंडे।

(२) से जहाणामए केइ पुरिसे–

सालीणि वा, वीहिणि वा, कोद्दवाणि वा,

कंगूणि वा, परगाणि वा, रालाणि वा, णिलिज्जमाणे,

अन्नयरस्स तणस्स वहाए सत्थं णिसिरेज्जा,

से सामगं, तणगं, कुमुदगं विहिऊसियं कालेसुयं तणं छिंदिस्सामि त्ति कट्टु, सालिं वा, वीहिं वा, कोद्दवं वा, कंगुं वा, परगं वा, रालयं वा छिंदित्ता भवइ।

इइ खलु से अन्नस्स अट्ठाए अन्नं फुसइ, अकम्हा दंडे।

एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जे त्ति आहिज्जइ।

चउत्थे दंडसमादाणे अकम्हा दंडवत्तिए त्ति आहिए।

५– अहावरे पंचमे दंडसमादाणे दिट्ठिविप्परियासियादंडे त्ति आहिज्जइ,

(१) से जहाणामए केइ पुरिसे–

माईहिं वा, पिईहिं वा, भाईहिं वा, भगिणीहिं वा, भज्जाहिं वा, पुत्तेहिं वा, धूयाहिं वा, सुण्हाहिं वा सद्धिं संवसमाणे मित्तं अमित्तमिति मन्नमाणे मित्ते हयपुव्वे भवइ, दिट्ठी विप्परियासियादंडे।

(२) से जहाणामए केइ पुरिसे–

[illegible]

इस प्रकार प्राणियों की घात के कारण उस पुरुष को सावद्यकर्म का बन्ध होता है।

यह तीसरा हिंसा दण्ड प्रत्ययिक दण्ड समादान (क्रिया स्थान) कहा गया है।

४–अब चौथा अकस्मात् दण्ड प्रत्ययिक दण्ड समादान (क्रिया स्थान) कहा जाता है–

(१) जैसे कोई पुरुष–

कच्छ में यावत् किसी घोर वन में जाकर मृग को मारने की प्रवृत्ति करता है, मृग को मारने का संकल्प करता है, मृग का ही ध्यान रखता है और मृग का वध करने के लिए जाता है,

"यह मृग है" यों जान कर किसी एक मृग को मारने के लिए वह अपने धनुष पर बाण को खींच कर चलाता है और "उस मृग को मारूंगा" ऐसा सोचकर बाण फेंकता है किन्तु उससे तीतर, बतक, चिड़िया, लावक, कबूतर, बन्दर या कपिंजल पक्षी को बींध डालता है,

इस प्रकार वह दूसरे को मारने के लिए बाण फेंकता है किन्तु अन्य का घात हो जाता है, यह अकस्मात् दण्ड है।

(२) जैसे कोई पुरुष–

शालि (चांवल,) व्रीहि (गेहूँ) कोद्रव,

कंगू, परक और राल नामक धान्यों के पौधों को साफ करता हुआ किसी तृण (घास) को काटने के लिए शस्त्र निकाले और वह सोचे कि–

"मैं श्यामक तृण कुमुद और व्रीही पर छाये हुए कालेसुक (ममन्ध) तृण को काटूंगा" किन्तु शाली, व्रीहि, कोद्रव, कंगू, परक और राल के पौधों का छेदन कर देता है।

इस प्रकार वह जिसको लक्ष्य रखकर शस्त्र प्रयोग करता है किन्तु अन्य को काट डालता है वह अकस्मात् दण्ड है।

इस प्रकार उस पुरुष को सहसा ही उन प्राणियों के घात के कारण सावद्यकर्म का बन्ध होता है।

यह चतुर्थ अकस्मात् दण्ड प्रत्ययिक दण्ड समादान (क्रिया स्थान) कहा गया है।

५–अब पांचवां दृष्टि विपर्यास दण्ड प्रत्ययिक दण्डसमादान (क्रिया स्थान) कहा जाता है

(१) जैसे कोई पुरुष–

[illegible]

(२) जैसे कोई पुरुष

[illegible]

एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जे त्ति आहिज्जइ।

इस प्रकार उस पुरुष को दृष्टि विपर्यास से किये गए दण्ड के कारण सावद्य कर्म का वन्ध होता है।

पंचमे दंड समादाणे दिट्ठीविप्परियासियादंडे त्ति आहिए।

यह पांचवां दृष्टि विपर्यास दण्ड प्रत्ययिक दण्ड समादान (क्रिया स्थान) कहा गया है।

६–अहावरे छट्ठे किरियाठाणे मोसवत्तिए त्ति आहिज्जइ।

६–अव छठा मृषाप्रत्ययिक दण्ड समादान (क्रिया स्थान) कहा जाता है–

से जहाणामए केइ पुरिसे–
आयहेउं वा, नायहेउं वा, अगारहेउं वा, परिवारहेउं वा, सयमेव मुसं वयइ,
अण्णेण वि मुसं वयावेइ,
मुसं वयंतं पि अण्णं समणुजाणइ।
एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जे त्ति आहिज्जइ।

जैसे कोई पुरुष–
अपने लिए, ज्ञातिवर्ग के लिए, घर के अथवा परिवार के लिए स्वयं असत्य वोलता है,
दूसरों से असत्य वुलवाता है,
असत्य वोलने वाले का अनुमोदन करता है,
इस प्रकार उस पुरुष को असत्य प्रवृत्ति-निमित्त से सावद्य पापकर्म का वन्ध होता है।

छट्ठे किरियाठाणे मोसवत्तिए त्ति आहिए।

यह छठा मृपावाद प्रत्ययिक दण्डसमादान (क्रियास्थान) कहा गया है।

७–अहावरे सत्तमे किरियाठाणे अदिण्णादाणवत्तिए त्ति आहिज्जइ।
से जहाणामे केइ पुरिसे–
आयहेउं वा, नायहेउं वा, अगार हेउं वा, परिवारहेउं वा सयमेव अदिण्णं आदियइ,
अण्णेण वि अदिण्णं आदियावेइ
अदिण्णं आदियंतं वि अण्णं समणुजाणइ।
एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जे त्ति आहिज्जइ।

७–अव सातवां अदत्तादान प्रत्ययिक दण्डसमादान (क्रिया स्थान) कहा जाता है।
जैसे कोई पुरुष–
अपने लिए, ज्ञाति के लिए, घर के लिए और परिवार के लिए अदत्त-विना दी हुई वस्तु को स्वयं ग्रहण करता है,
दूसरे से अदत्त ग्रहण करवाता है,
अदत्त ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है,
इस प्रकार उस पुरुष को अदत्तादान-सम्वन्धित सावद्य (पाप) कर्म का वन्ध होता है।

सत्तमे किरियाठाणे अदिण्णादाणवत्तिए त्ति आहिए।

यह सातवां अदत्तादान प्रत्ययिक दण्ड समादान (क्रिया स्थान) कहा गया है।

८–अहावरे अट्ठमे किरियाठाणे अज्झत्थवत्तिए त्ति आहिज्जइ–.
से जहाणामए केइ पुरिसे–
से णत्थि णं केइ किंचि विसंवादेइ सयमेव हीणे, दीणे, दुट्ठे, दुम्मणे, ओहयमणसंकप्पे, चिंतासोगसागर संपविट्ठे, करयलपल्हत्थमुहे, अट्टज्झाणोवगए भूमिगयदिट्ठीए झियाइ।
तस्स णं अज्झत्थिया असंसइया चत्तारि ठाणा एवमाहिज्जंति तं जहा–
१. कोहे, २. माणे, ३. माया, ४. लोभे।
अज्झत्थमेव कोह-माण-माया-लोहा।
एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जे त्ति आहिज्जइ।

८–अव आठवां दण्ड समादान (क्रिया स्थान) अध्यात्मप्रत्ययिक कहा जाता है–
जैसे कोई पुरुष–
किसी विसंवाद (तिरस्कार या क्लेश) के विना स्वयमेव हीन, दीन, दुष्ट, दुर्मनस्क और उदास होकर मन में बुरा संकल्प कर चिन्ता या शोक सागर में डूवकर हथेली पर मुँह रखकर पृथ्वी पर दृष्टि किये हुए आर्त्तध्यान करता रहता है।
निःसन्देह उसके हृदय में ये चार आध्यात्मिक कारण कहे जाते हैं, यथा–
१. क्रोध, २. मान, ३. माया, ४. लोभ।
क्योंकि क्रोध, मान, माया और लोभ आन्तरिक कारण है।
इस प्रकार उस पुरुष को अध्यात्म प्रत्ययिक सावद्यकर्म का वन्ध होता है।

अट्ठमे किरियाठाणे अज्झत्थिए त्ति आहिए।

यह आठवां अध्यात्मप्रत्ययिक दण्ड समादान (क्रिया स्थान) कहा गया है।

९–अहावरे णवमे किरियाठाणे माणवत्तिए त्ति आहिज्जइ,

९–अव नौवां मानप्रत्ययिक दण्ड समादान (क्रिया स्थान) कहा जाता है–

से जहाणामए केइ पुरिसे–

जैसे कोई पुरुष–

(१) जातिमएण वा, (२) कुलमएण वा, (३) वलमएण वा, (४) रूवमएण वा, (५) तवमएण वा, (६) सुयमएण वा, (७) लाभमएण वा, (८) इस्सरियमएण वा, (९) पण्णामएण वा।

अन्नयरेण वा मयट्ठाणेणं मत्ते समाणे परं हीलेइ, निंदेइ, खिंसइ, गरहइ, परिभवइ, अवमण्णेइ,

इत्तरिए अयं अहमंसि पुण विसिट्ठजाइकुल वलाइ गुणोववेए,

एवं अप्पाणं समुक्कसे देहा चुए कम्मविइए अवसे पयाइ, तं जहा–

गब्भाओ गब्भं, जम्माओ जम्मं,

माराओ मारं, णरगाओ णरगं,

चंडे, थद्धे, चवले, माणी या वि भवइ।

एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जे त्ति आहिज्जइ।

णवमे किरियाठाणे माणवत्तिए त्ति आहिए।

१०–अहावरे दसमे किरियाठाणे मित्तदोसवत्तिए त्ति आहिज्जइ,

से जहाणामए केइ पुरिसे–

माईहिं वा, पिईहिं वा, भाईहिं वा, भगिणीहिं वा, भज्जाहिं वा, धूयाहिं वा, पुत्तेहिं वा, सुण्हाहिं वा सद्धिं संवसमाणे तेसिं अन्नयरंसि अहालहुगंसि अवराहंसि सयमेव गरुयं दंडं निवत्तेइ, तं जहा–

सी ओदगवियडंसि वा कायं ओवोलित्ता भवइ,

उसिणोदगवियडेण वा कायं ओसिंचित्ता भवइ,

अगणिकाएण वा कायं उड्डहित्ता भवइ,

जोत्तेण वा, वेत्तेण वा, णेत्तेण वा, तया वा, कसेण वा, छिवाए वा, लयाए वा, अन्नयरेण वा दवरेण पासाइं उद्दालेत्ता भवइ।

दंडेण वा, अट्ठीण वा, मुट्ठीण वा, लेलूण वा, कवालेण वा कायं आउट्टित्ता भवइ।

तहप्पगारे पुरिसजाए संवसमाणे दुम्मणा भवंति, पवसमाणे सुमणा भवंति।

तहप्पगारे पुरिसजाए दंडपासी दंडगरुए दंडपुरक्खडे अहिए इमंसि लोगंसि, अहिए परंसि लोगंसि।

[illegible]

(१) जातिमद, (२) कुलमद, (३) बलमद, (४) रूपमद, (५) तपमद, (६) श्रुतमद, (७) लाभमद, (८) ऐश्वर्यमद, (९) प्रज्ञामद।

इन मद स्थानों में से किसी एक मद-स्थान से मत्त होकर दूसरे व्यक्ति की अवहेलना करता है, निन्दा करता है, झिड़कता है, गर्हा करता है, तिरस्कार करता है, अपमान करता है।

यह व्यक्ति हीन है और मैं विशिष्ट जाति, कुल, बल आदि गुणों से से युक्त हूँ।.

इस प्रकार वह अपने आपको उत्कृष्ट मानता है ऐसा व्यक्ति शरीर छोड़कर कर्मों को साथ लेकर विवशतापूर्वक परलोक प्रयाण करता है, यथा–

एक गर्भ से दूसरे गर्भ को, एक जन्म से दूसरे जन्म को,

एक मरण से दूसरे मरण को, एक नरक से दूसरे नरक को प्राप्त करता है।

वह क्रोधी, अविनयी, चंचल और अभिमानी होता है।

इस प्रकार उस पुरुष को अभिमान की क्रिया के कारण सावद्यकर्म का बन्ध होता है।

यह नौवां मानप्रत्ययिक दण्डसमादान (क्रिया स्थान) कहा गया है।

१०–अब दसवां मित्र दोष प्रत्ययिक दण्ड समादान (क्रिया स्थान) कहा जाता है–

जैसे कोई पुरुष–

माता, पिता, भाई, बहन, भार्या, पुत्री, पुत्र और पुत्रवधुओं के साथ निवास करता हुआ उनके किसी छोटे से अपराध पर स्वयं भारी दण्ड देता है, यथा–

सर्दी के दिनों में अत्यन्त ठण्डे पानी में उनके शरीर को डुबोता है,

गर्मी के दिनों में उनके शरीर पर उबलता हुआ पानी छिड़कता है,

आग से उनके शरीर को जला देता है,

[illegible]

एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जे त्ति आहिज्जइ।

इस प्रकार उस पुरुष को दृष्टि विपर्यास से किये गए दण्ड के कारण सावद्य कर्म का वन्ध होता है।

पंचमे दंड समादाणे दिट्ठीविप्परियासियादंडे त्ति आहिए।

यह पांचवां दृष्टि विपर्यास दण्ड प्रत्ययिक दण्ड समादान (क्रिया स्थान) कहा गया है।

६–अहावरे छट्ठे किरियाठाणे मोसवत्तिए त्ति आहिज्जइ।

६–अव छठा मृषाप्रत्ययिक दण्ड समादान (क्रिया स्थान) कहा जाता है–

से जहाणामए केइ पुरिसे–
आयहेउं वा, नायहेउं वा, अगारहेउं वा, परिवारहेउं वा, सयमेव मुसं वयइ,
अण्णेण वि मुसं वयावेइ,
मुसं वयंतं पि अण्णं समणुजाणइ।
एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जे त्ति आहिज्जइ।

जैसे कोई पुरुष–
अपने लिए, ज्ञातिवर्ग के लिए, घर के अथवा परिवार के लिए स्वयं असत्य वोलता है,
दूसरों से असत्य वुलवाता है,
असत्य वोलने वाले का अनुमोदन करता है,
इस प्रकार उस पुरुष को असत्य प्रवृत्ति-निमित्त से सावद्य पापकर्म का वन्ध होता है।

छट्ठे किरियाठाणे मोसवत्तिए त्ति आहिए।

यह छठा मृषावाद प्रत्ययिक दण्डसमादान (क्रियास्थान) कहा गया है।

७–अहावरे सत्तमे किरियाठाणे अदिण्णादाणवत्तिए त्ति आहिज्जइ।

७–अव सातवां अदत्तादान प्रत्ययिक दण्डसमादान (क्रिया स्थान) कहा जाता है।

से जहाणामे केइ पुरिसे–
आयहेउं वा, नायहेउं वा, अगार हेउं वा, परिवारहेउं वा सयमेव अदिण्णं आदियइ,
अण्णेण वि अदिण्णं आदियावेइ
अदिण्णं आदियंतं वि अण्णं समणुजाणइ।
एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जे त्ति आहिज्जइ।

जैसे कोई पुरुष–
अपने लिए, ज्ञाति के लिए, घर के लिए और परिवार के लिए अदत्त-विना दी हुई वस्तु को स्वयं ग्रहण करता है,
दूसरे से अदत्त ग्रहण करवाता है,
अदत्त ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है,
इस प्रकार उस पुरुष को अदत्तादान-सम्वन्धित सावद्य (पाप) कर्म का वन्ध होता है।

सत्तमे किरियाठाणे अदिण्णादाणवत्तिए त्ति आहिए।

यह सातवां अदत्तादान प्रत्ययिक दण्ड समादान (क्रिया स्थान) कहा गया है।

८–अहावरे अट्ठमे किरियाठाणे अज्झत्थवत्तिए त्ति आहिज्जइ–.

८–अब आठवां दण्ड समादान (क्रिया स्थान) अध्यात्मप्रत्ययिक कहा जाता है–

से जहाणामए केइ पुरिसे–
से णत्थि णं केइ किंचि विसंवादेइ सयमेव हीणे, दीणे, दुट्ठे, दुम्मणे, ओहयमणसंकप्पे, चिंतासोगसागर संपविट्ठे, करयलपल्हत्थमुहे, अट्टज्झाणोवगए भूमिगयदिट्ठीए झियाइ।
तस्स णं अज्झत्थिया असंसइया चत्तारि ठाणा एवमाहिज्जंति तं जहा–
१. कोहे, २. माणे, ३. माया, ४. लोभे।
अज्झत्थमेव कोह-माण-माया-लोहा।
एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जे त्ति आहिज्जइ।

जैसे कोई पुरुष–
किसी विसंवाद (तिरस्कार या क्लेश) के विना स्वयमेव हीन, दीन, दुष्ट, दुर्मनस्क और उदास होकर मन में बुरा संकल्प कर चिन्ता या शोक सागर में डूबकर हथेली पर मुँह रखकर पृथ्वी पर दृष्टि किये हुए आर्त्तध्यान करता रहता है।
निःसन्देह उसके हृदय में ये चार आध्यात्मिक कारण कहे जाते हैं, यथा–
१. क्रोध, २. मान, ३. माया, ४. लोभ।
क्योंकि क्रोध, मान, माया और लोभ आन्तरिक कारण है।
इस प्रकार उस पुरुष को अध्यात्म प्रत्ययिक सावद्यकर्म का वन्ध होता है।

अट्ठमे किरियाठाणे अज्झत्थिए त्ति आहिए।

यह आठवां अध्यात्मप्रत्ययिक दण्ड समादान (क्रिया स्थान) कहा गया है।

९–अहावरे णवमे किरियाठाणे माणवत्तिए त्ति आहिज्जइ,

९–अव नौवां मानप्रत्ययिक दण्ड समादान (क्रिया स्थान) कहा जाता है–

से जहाणामए केइ पुरिसे–

जैसे कोई पुरुष–

(१) जातिमएण वा, (२) कुलमएण वा, (३) बलमएण वा, (४) रूवमएण वा, (५) तवमएण वा, (६) सुयमएण वा, (७) लाभमएण वा, (८) इस्सरियमएण वा, (९) पण्णामएण वा।

अन्नयरेण वा मयट्ठाणेणं मत्ते समाणे परं हीलेइ, निंदेइ, खिंसइ, गरहइ, परिभवइ, अवमण्णेइ,

इत्तरिए अयं अहमंसि पुण विसिट्ठजाइकुल बलाइ गुणोववेए,

एवं अप्पाणं समुक्कसे देहा चुए कम्मबिइए अवसे पयाइ, तं जहा–

गब्भाओ गब्भं, जम्माओ जम्मं,

माराओ मारं, णरगाओ णरगं,

चंडे, थद्धे, चवले, माणी या वि भवइ।

एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जे त्ति आहिज्जइ।

णवमे किरियाठाणे माणवत्तिए त्ति आहिए।

१०–अहावरे दसमे किरियाठाणे मित्तदोसवत्तिए त्ति आहिज्जइ,

से जहाणामए केइ पुरिसे–

माईहिं वा, पिईहिं वा, भाईहिं वा, भगिणीहिं वा, भज्जाहिं वा, धूयाहिं वा, पुत्तेहिं वा, सुण्हाहिं वा सद्धिं संवसमाणे तेसिं अन्नयरंसि अहालहुगंसि अवराहंसि सयमेव गरुयं दंडं निवत्तेइ, तं जहा–

सीओदगवियडंसि वा कायं ओबोलित्ता भवइ,

उसिणोदगवियडेण वा कायं ओसिंचित्ता भवइ,

अगणिकाएण वा कायं उड्डहित्ता भवइ,

जोत्तेण वा, वेत्तेण वा, णेत्तेण वा, तया वा, कसेण वा, छियाए वा, लयाए वा, अन्नयरेण वा दवरेण पासाइं उद्दालेत्ता भवइ।

दंडेण वा, अट्ठीण वा, मुट्ठीण वा, लेलूण वा, कवालेण वा कायं आउट्टित्ता भवइ।

तहप्पगारे पुरिसजाए संवसमाणे दुम्मणा भवंति, पवसमाणे सुमणा भवंति।

तहप्पगारे पुरिसजाए दंडपासी दंडगरुए दंडपुरक्खडे अहिए इमंसि लोगंसि, अहिए परंसि लोगंसि।

संजलणे कोहणे पिट्ठिमंसि या वि भवइ।

एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जे त्ति आहिज्जइ।

दसमे किरियाठाणे मित्तदोसवत्तिए त्ति आहिए।

११–अहावरे एक्कारसमे किरियाठाणे मायावत्तिए त्ति आहिज्जइ,

(१) जातिमद, (२) कुलमद, (३) बलमद, (४) रूपमद, (५) तपमद, (६) श्रुतमद, (७) लाभमद, (८) ऐश्वर्यमद, (९) प्रज्ञामद।

इन मद स्थानों में से किसी एक मद-स्थान से मत्त होकर दूसरे व्यक्ति की अवहेलना करता है, निन्दा करता है, झिड़कता है, गर्हा करता है, तिरस्कार करता है, अपमान करता है।

यह व्यक्ति हीन है और मैं विशिष्ट जाति, कुल, बल आदि गुणों से से युक्त हूँ।

इस प्रकार वह अपने आपको उत्कृष्ट मानता है ऐसा व्यक्ति शरीर छोड़कर कर्मों को साथ लेकर विवशतापूर्वक परलोक प्रयाण करता है, यथा–

एक गर्भ से दूसरे गर्भ को, एक जन्म से दूसरे जन्म को,

एक मरण से दूसरे मरण को, एक नरक से दूसरे नरक को प्राप्त करता है।

वह क्रोधी, अविनयी, चंचल और अभिमानी होता है।

इस प्रकार उस पुरुष को अभिमान की क्रिया के कारण सावद्यकर्म का बन्ध होता है।

यह नौवां मानप्रत्ययिक दण्डसमादान (क्रिया स्थान) कहा गया है।

१०–अब दसवां मित्र दोष प्रत्ययिक दण्ड समादान (क्रिया स्थान) कहा जाता है–

जैसे कोई पुरुष–

माता, पिता, भाई, बहन, भार्या, पुत्री, पुत्र और पुत्रवधुओं के साथ निवास करता हुआ उनके किसी छोटे से अपराध पर स्वयं भारी दण्ड देता है, यथा–

सर्दी के दिनों में अत्यन्त ठण्डे पानी में उनके शरीर को डुबोता है,

गर्मी के दिनों में उनके शरीर पर उबलता हुआ पानी छिड़कता है,

आग से उनके शरीर को डाम देता है,

तथा जोत, बेंत, छड़ी, चमड़ा, कसा, चाबुक, लकड़ी, लता, चाबुक या अन्य किसी प्रकार की रस्सी से प्रहार करके उसके बगल की चमड़ी उधेड़ देता है,

एवं डंडे, हड्डी, मुट्ठी, ढेले, ठीकरे या खप्पर से मार-मार कर उसके शरीर को लोहूलुहान कर देता है।

ऐसे पुरुष के घर में रहने पर परिवार वाले दुःखी होते हैं और परदेश जाने पर सुखी होते हैं,

ऐसा डंडा पास में रखने वाला, भारी दण्ड देने वाला और दण्ड को आगे रखने वाला पुरुष इस लोक में तो अपना अहित करता ही है, परलोक में भी अपना अहित करता है।

वह क्रोध से जलता रहता है और पीठ पीछे चुगली करता है।

इस प्रकार उस पुरुष को मित्रों से द्वेष करने के कारण सावद्य पापकर्म का बन्ध होता है।

यह मित्र दोषप्रत्ययिक दण्ड समादान (क्रियास्थान) कहा गया है।

११–अब ग्यारहवां माया प्रत्ययिक दण्डसमादान (क्रिया स्थान) कहा जाता है–

जे इमे भवंति-गूढायारा, तमोकासिया, उलूगपत्तलहुया, पव्वयगुरुया, ते आरिया वि संता अणारियाओ भासाओ विउज्जंति।

जो पुरुष गूढ आचार वाले, अंधेरे में दुराचार करने वाले, उल्लू के पंख के समान हल्के होते हुए भी अपने आपको पर्वत के समान भारी मानने वाले ऐसे वे आर्य होते हुए भी अनार्य भाषाओं का प्रयोग करते हैं।

अन्नहा संतं अप्पाणं अन्नहा मन्नंति,

वे अन्य रूप में होते हुए भी स्वयं को अन्य रूप में मानते हैं।

अन्नं पुट्ठा अन्नं वागरेंति,

वे अन्य वात पूछने पर अन्य वात की व्याख्या करते हैं,

अन्नं आइक्खियव्वं अन्नं आइक्खंति।

उन्हें कहना तो कुछ और चाहिए किन्तु कहते कुछ ओर ही हैं।

से जहाणामए केइ पुरिसे अंतोसल्ले तं सल्लं णो सयं णीहरइ, णो अन्नेण णीहरावेइ, णो पडिविद्धंसेइ, एवामेव निण्हवेइ, अविउट्टमाणे अंतो-अंतो रियाइ,

जैसे कोई (अन्दर के शल्य वाला) पुरुष उस शल्य को स्वयं नहीं निकालता है, न किसी दूसरे से निकलवाता है, न उसको नष्ट करता है किन्तु निष्प्रयोजन ही उसे छिपाता है और न निकालने पर वह शल्य अन्दर ही अन्दर गहरा चला जाता है,

एवामेव माई मायं कट्टु णो आलोएइ, णो पडिक्कमेइ, णो णिंदइ, णो गरहइ, णो विउट्टइ, णो विसोहेइ, णो अकरणयाए अब्भुट्ठेइ, णो अहारिहं तवोकम्मं पायच्छित्तं पडिवज्जइ,

इसी प्रकार मायावी माया करके उसकी आलोचना नहीं करता, प्रतिक्रमण नहीं करता, निन्दा नहीं करता, गर्हा नहीं करता, उसका त्याग नहीं करता, उसका विशोधन नहीं करता, पुनः करने के लिए उद्यत नहीं होता और यथायोग्य तपकर्मरूप प्रायश्चित्त स्वीकार नहीं करता है।

मायी अस्सिं लोए पच्चायाइ, मायी परंसि लोए पुणो-पुणो पच्चायाइ, निंदं गहाय पसंसए णिच्चरइ, ण नियट्टइ णिसिरिय दंडं छाएइ,

ऐसा मायावी इस लोक में जन्म लेता है और परलोक में भी पुनः पुनः जन्म लेता है। वह दूसरे की निन्दा करता है, दूसरे से घृणा करता है, अपनी प्रशंसा करता है, बुरे कार्यों में प्रवृत्त होता है, असत् कार्यों से निवृत्त नहीं होता है और दण्ड देकर भी उसे छिपाता है।

मायी असमाहडसुहलेसे या वि भवइ।

ऐसा मायावी अशुभ लेश्याओं से युक्त होता है।

एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जे त्ति आहिज्जइ।

इस प्रकार उस पुरुष को माया युक्त क्रियाओं के कारण सावद्य पाप कर्म का वन्ध होता है।

एक्कारसमे किरियाठाणे मायावत्तिए त्ति आहिए।

यह ग्यारहवां माया प्रत्ययिक दण्ड समादान (क्रिया स्थान) कहा गया है।)

१२-अहावरे बारसमे किरियाठाणे लोभवत्तिए त्ति आहिज्जइ,

१२-अब बारहवां क्रियास्थान लोभप्रत्ययिक कहा जाता है-

जे इमे भवंति आरण्णिया, आवसहिया, गामंतिया, कण्हुईरहस्सिया,

जो ये वन में निवास करने वाले, कुटी वनाकर रहने वाले, ग्राम के निकट डेरा डालकर रहने वाले, किसी गुप्त साधना को करने वाले-

णो वहुसंजया, णो बहुपडिविरया, सव्वपाण-भूय-जीव-सत्तेहिं

वे सर्वथा संयमी नहीं हैं समस्त प्राण, भूत, जीव और सत्वों की हिंसा से स्वयं विरत भी नहीं हैं,

ते अप्पणा सच्चामोसाइं एवं विउंजंति

वे स्वयं कुछ सत्य और कुछ मिथ्या वाक्यों का प्रयोग करते हैं कि

अहं ण हंतव्वो, अन्ने हंतव्वा,

"मैं मारे जाने योग्य नहीं हूँ, अन्य मारे जाने योग्य हैं,

अहं ण अज्जावेयव्वो, अन्ने अज्जावेयव्वा,

मैं आज्ञा देने योग्य नहीं हूँ, अन्य आज्ञा देने योग्य हैं,

अहं ण परिघेत्तव्वो, अन्ने परिघेत्तव्वा,

मैं दास होने योग्य नहीं हूँ, अन्य दास होने योग्य हैं,

अहं ण परितावेयव्वो, अन्ने परितावेयव्वा,

मैं सन्ताप देने योग्य नहीं हूँ, अन्य सन्ताप देने योग्य हैं,

अहं ण उद्दवेयव्वो, अन्ने उद्दवेयव्वा,

मैं पीड़ा देने योग्य नहीं हूँ, अन्य पीड़ा देने योग्य हैं।

एवामेव ते इत्थिकामेहिं मुच्छिया, गिद्धा, गढिया, गरहिया, अज्झोववण्णा जाव वासाइं चउ-पंचमाइं छद्दसमाइं अप्पयरो वा, भुज्जयरो वा भुंजित्तु भोगभोगाइं कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु आसुरिएसु किव्विसिएसु ठाणेसु उववत्तारो भवंति।

इसी प्रकार वे स्त्री भोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रस्त, गर्हित, आसक्त होकर चार, पांच, छह या दस वर्ष तक थोड़े या अधिक काम-भोगों का उपभोग करके मृत्यु के समय मरकर असुरों में या किल्विषिक स्थानों में उत्पन्न होते हैं।

तओ विप्पमुच्चमाणा भुज्जो-भुज्जो एलमूयत्ताए तमूयत्ताए जाइमूयत्ताए पच्चायंति।

वे वहाँ से मरकर पुनः पुनः वकरे की तरह गूंगे, अंधे एवं जन्म से गूंगे-अंधे होते हैं।

एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जे त्ति आहिज्जइ।

दुवालसमे किरियाठाणे लोभवत्तिए त्ति आहिए।

इच्चेयाइं दुवालस किरियाठाणाइं दविएणं समणेण वा, माहणेण वा सम्मं सुपरिजाणियव्वाइं भवंति।

–सूय. सु. २, अ. २, सु. ६९५-७०६

इस प्रकार विषय–लोलुपता के कारण उस पुरुष को लोभप्रत्ययिक सावद्य पाप कर्म का बन्ध होता है।

यह बारहवां लोभ प्रत्ययिक दण्ड समादान (क्रिया स्थान) कहा गया है।

ये बारह क्रियास्थान राग -द्वेष से मुक्त श्रमण, ब्राह्मण को सम्यक् प्रकार से जान लेना चाहिए।

५८. अधम्म बहुल मिस्सठाणस्स सरूव परूवणं–

अहावरे तच्चस्स ठाणस्स मिस्सगस्स विभंगे एवमाहिज्जइ–

जे इमे भवंति–आरण्णिया **जाव** अन्नयरेसु आसुरिएसु किब्बिसिएसु ठाणेसु उववत्तारो भवंति।

तओ विप्पमुच्चमाणा भुज्जो एलमूयत्ताए तमूयत्ताए पच्चायंति।

एस ठाणे अणारिए **जाव** असव्वदुक्खप्पहीणमग्गे एगंतमिच्छे असाहू।

एस खलु तच्चस्स ठाणस्स मिस्सगस्स विभंगे एवमाहिए।

–सूय. सु. २, अ. २, सु. ७१२

इच्चेएहिं बारसएहिं किरिया ठाणेहिं वट्टमाणा जीवा नो सिज्झिंसु **जाव** नो सव्वदुक्खाणमंतं करेंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा। –सूय. सु. २, अ. २, सु. ७२१ (१)

५८. अधर्म युक्त मिश्र स्थान के स्वरूप का प्ररूपण–

अब तीसरे स्थान मिश्र का विकल्प इस प्रकार कहा जाता है–

जो ये आरण्यक (अरण्यवासी तपस्वी) आदि होते हैं **यावत्** वे मरकर-असुरों में या किल्विषिक स्थानों में उत्पन्न होते हैं।

वे वहाँ से मरकर पुनः मेमने की भाँति गूंगे और अंधे रूप में जन्म लेते हैं।

यह स्थान अनार्य **यावत्** सब दुःखों के क्षय का अमार्ग, एकान्त मिथ्या और बुरा है।

यह तीसरे स्थान मिश्र पक्ष का विकल्प इस प्रकार कहा गया है।

इन (पूर्वोक्त) बारह क्रिया स्थानों में वर्तमान जीव न सिद्ध हुए हैं, न होते हैं और न होंगे **यावत्** न दुःखों का अन्त किया है, न करते हैं और न करेंगे।

५९. अधम्म पक्खे पावादुयाणं समाहरणं–

एवामेव समणुगम्ममाणा इमेहिं चेव दोहिं ठाणेहिं समोयरंति, तं जहा–

धम्मे चेव, अधम्मे चेव, उवसंते चेव, अणुवसंते चेव।

तत्थ णं जे से पढमस्स ठाणस्स अधम्मपक्खस्स विभंगे एवमाहिए।

तस्स णं इमाइं तिण्णि तेवट्ठाइं पावाउयसयाइं भवंतीतिमक्खायाइं, तं जहा–

१. किरियावाईणं, २. अकिरियावाईणं,
३. अण्णाणियवाईणं, ४. वेणइयवाईणं,

ते वि निव्वाणमाहंसु, ते वि पलिमोक्खमाहंसु,

ते वि लवंति सावगा, ते वि लवंति सावइत्तारो।

–सुय. सु. २, अ. २, सु. ७१७

५९. अधर्म पक्ष में प्रावादुकों का समाहरण–

इस प्रकार पूर्व प्रतिपादित तीन पक्ष इन दो स्थानों में समवतरित हो जाते हैं, जैसे–

धर्म में और अधर्म में, उपशांत में और अनुपशांत में।

वहाँ जो प्रथम स्थान अधर्मपक्ष का है उसका विभंग इस प्रकार कहा गया है,

उसमें ये तीन सौ तिरेसठ प्रावदुक अर्थात् दार्शनिक कहे गये हैं, जैसे–

१. क्रियावादी, २. अक्रियावादी,
३. अज्ञानवादी, ४. विनयवादी।

उन्होंने निर्वाण का कथन किया है, उन्होंने मोक्ष का भी कथन किया हैं,

वे श्रावकों का कथन भी करते हैं और वे धर्म गुरुओं का कथन भी करते हैं।

६०. अधम्म पक्खीय पुरिसाणं पवित्ति परिणामोय–

से एगइओ आयहेउं वा, णायहेउं वा, सयणहेउं वा, अगारहेउं वा, परिवार हेउं वा, नायगं वा, सहवासियं वा णिस्साए–

१. अणुगामिए, २. अदुवा उवचरए, ३. अदुवा पाडिपहिए, ४. अदुवा संधिच्छेयए, ५. अदुवा गंठिच्छेयए, ६. अदुवा ओरब्भिए, ७. अदुवा सोयरिए,

६०. अधर्म पक्ष में पुरुषों की प्रवृत्ति और परिणाम–

कोई प्राणी मनुष्य अपने लिए, ज्ञातिजनों के लिए, शयन सामग्री के लिए, घर बनाने के लिए, परिवार के लिए, परिचितजन या पड़ोसी के लिए निम्नोक्त पापकर्म का आचरण करता है–

१. आनुगामिक (सहगामी) बनकर, २. अथवा उपचरक (सेवक) बनकर, ३. अथवा प्रातिपथिक (मार्ग में लुटने वाला) बनकर, ४. अथवा संधिच्छेदक (सेंध लगाने वाला) बनकर, ५. अथवा ग्रन्थिच्छेदक (गांठ काटने वाला) बनकर, ६. अथवा औरभ्रिक (भेड़ का वध करने वाला) बनकर, ७. अथवा सौकरिक (सूअर का वध करने वाला) बनकर,

८. अदुवा वागुरिए, ९. अदुवा साउणिए, १०. अदुवा मच्छिए, ११. अदुवा गोपालए, १२. अदुवा गोघायए, १३. अदुवा सोवणिए, १४. अदुवा सोवणियं तिए।

८. अथवा वागुरिक (मृगों को पकड़ने वाला) बनकर, ९. अथवा शाकुनिक (पक्षियों को जाल में फंसाने वाला) बनकर, १०. अथवा मात्स्यिक (मच्छीमार) बनकर, ११. अथवा गोपालक बनकर, १२. अथवा गौघातक (कसाई) बनकर, १३. अथवा श्वपालक (कुत्तों को पालने वाला) बनकर, १४. अथवा शौवनिकान्तिक (कुत्तों से शिकार करवाने वाला) बनकर

१. से एगइओ अणुगामियभावं पंडिसंधाय तमेव अणुगमियाणुगमिय हंता छेत्ता भेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता आहारं आहारेइ।

इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

१. कोई पापी पुरुष ग्रामान्तर जाते हुए किसी धनिक के पीछे-पीछे जाकर उसे डंडे से मारता है, (तलवार आदि से) छेदन करता है, (भाले आदि से) भेदन करता है, (केश आदि पकड़कर) घसीटता है, (चाबुक आदि से मारकर) उसे जीवन रहित कर उसके धन को लूट कर आजीविका करता है।

इस प्रकार वह महान् पाप कर्मों के कारण महापापी के नाम से अपने आपको जगत् में प्रख्यात कर लेता है।

२. से एगइओ उवचरगभावं पडिसंधाय तमेव उवचरइ हंता जाव उद्दवइत्ता आहारं आहारेइ।

इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

२. कोई पापी पुरुष किसी धनवान का सेवक होकर उसका पीछा करता हुआ उसको डंडे आदि से मारकर यावत् जीवन रहित कर धन छीन कर आजीविका का उपार्जन करता है।

इस प्रकार वह महान् पापकर्मों से महापापी के रूप में अपने आपको जगत् में प्रख्यात कर लेता है।

३. से एगइओ पाडिपहियभावं पडिसंधाय तमेव पडिपहे ठिच्चा हंता जाव उद्दवइत्ता आहारं आहारेइ।

इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

३. कोई पापी पुरुष लुटेरे का भाव बनाकर ग्राम से आते हुए किसी धनाढ्य पुरुष का मार्ग रोक कर उसे डंडे आदि से मारकर यावत् जीवन रहित कर धन छीन कर आजीविका का उपार्जन करता है।

इस प्रकार वह महान् पाप कर्मों से अपने आपको महापापी के रूप में जगत् में प्रसिद्ध करता है।

४. से एगइओ संधिच्छेदगभावं पडिसंधाय तमेव संधिं छेत्ता भेत्ता जाव उद्दवइत्ता आहारं आहारेइ।

इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

४. कोई पापी पुरुष धनिकों के घरों में सेंध लगाकर, प्राणियों का छेदन, भेदन कर यावत् उन्हें जीवन रहित कर उनका धन छीनकर आजीविका का उपार्जन करता है।

इस प्रकार वह महान् पाप कर्मों से स्वयं को महापापी के नाम से जगत् में प्रसिद्ध करता है।

५. से एगइओ गंठिच्छेदगभावं पडिसंधाय तमेव गंठिं छेत्ता भेत्ता जाव उद्दवइत्ता आहारं आहारेइ।

इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

५. कोई पापी पुरुष धनाढ्यों के धन की गांठ काटने का धन्धा अपना कर उसके स्वामी का छेदन-भेदन कर यावत् उन्हें जीवन रहित कर उनका धन छीनकर आजीविका का उपार्जन करता है।

इस प्रकार वह महान् पाप कर्मों के कारण वह स्वयं को महापापी के रूप में जगत् में विख्यात कर लेता है।

६. से एगइओ उरब्भियभावं पडिसंधाय उरब्भं वा, अण्णयरं वा तसं पाणं हंता जाव उद्दवइत्ता आहारं आहारेइ।

इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

६. कोई पापी पुरुष भेड़ों का चरवाहा बनकर उन भेड़ों में से किसी को या अन्य किसी भी त्रस प्राणी को मार-पीटकर यावत् उन्हें जीवन रहित कर उनका मांस खाता है या उनका मांस बेचकर आजीविका चलाता है।

इस प्रकार वह महान पापकर्मों के कारण जगत् में स्वयं को महापापी के नाम से प्रसिद्ध कर लेता है।

७. से एगइओ सोयरियभावं पडिसंधाय महिसं वा। अण्णयरं वा तसं पाणं हंता जाव उद्दवइत्ता आहारं आहारेइ।

इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

७. कोई पापी पुरुष सुअरों को पालने का या कसाई का धन्धा अपना कर भैंसे, सुअर या दूसरे त्रस प्राणी को मार-पीट कर यावत् उन्हें जीवन रहित कर अपनी आजीविका का उपार्जन करता है।

इस प्रकार वह महान् पाप-कर्मों के कारण संसार में अपने आपको महापापी के नाम से प्रसिद्ध कर लेता है।

८. से एगइओ वागुरियभावं पडिसंधाय मिगं वा अण्णयरं वा तसं पाणं हंता जाव उद्दवइत्ता आहारं आहारेइ।

इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

८. कोई पापी मनुष्य शिकारी का धन्धा अपनाकर मृग या अन्य किसी त्रस प्राणी को मार-पीट कर यावत् जीवन रहित कर अपनी आजीविका का उपार्जन करता है।

इस प्रकार वह महान् पापकर्मों के कारण जगत् में वह स्वयं को महापापी के नाम से प्रसिद्ध कर लेता है।

९. से एगइओ साउणियभावं पडिसंधाय सउणिं वा अण्णयरं वा तसं पाणं हंता जाव उद्दवइत्ता आहारं आहारेइ।

इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

९. कोई पापी मनुष्य बहेलिया बनकर पक्षियों को या अन्य किसी त्रस प्राणी को मारकर यावत् जीवन रहित कर अपनी आजीविका का उपार्जन करता है।

इस प्रकार वह महान् पापकर्मों के कारण जगत् में स्वयं को महापापी के नाम से प्रख्यात कर लेता है।

१०. से एगइओ मच्छियभावं पडिसंधाय मच्छं वा अण्णयरं वा तसं पाणं हंता जाव उद्दवइत्ता आहारं आहारेइ।

इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

१०. कोई पापी मनुष्य मछुआ बनकर मछली या अन्य त्रस जलजन्तुओं को मारकर यावत् जीवन रहित कर अपनी आजीविका का उपार्जन करता है।

इस प्रकार वह महान् पापकर्मों के कारण जगत् में स्वयं को महापापी के नाम से प्रसिद्ध कर लेता है।

११. से एगइओ गोपालगभावं पडिसंधाय तमेव गोणं वा परिजविय परिजविय हंता जाव उद्दवइत्ता आहारं आहारेइ।

इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

११. कोई पापी मनुष्य गो पालन का धन्धा स्वीकार करके (कुपित होकर) उन्हीं गायों या उनके बछड़ों को टोले से पृथक् निकाल-निकाल कर वार-वार उन्हें मारता-पीटता है यावत् जीवन रहित कर अपनी आजीविका का उपार्जन करता है।

इस प्रकार वह महान् पाप कर्मों के कारण जगत् में महापापी के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है।

१२. से एगइओ गोघातगभावं पडिसंधाय गोणं वा अण्णयरं वा तसं पाणं हंता जाव उद्दवइत्ता आहारं आहारेइ।

इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

१२. कोई पापी मनुष्य गोवंशघातक (कसाई) का धन्धा अपना कर गाय, बैल या अन्य किसी भी त्रस प्राणी को मारकर यावत् जीवन रहित कर अपनी आजीविका का उपार्जन करता है।

इस प्रकार वह महान् पाप कर्मों के कारण जगत् में अपने आपको महापापी के रूप में प्रसिद्ध कर लेता है।

१३. से एगइओ सोवणियभावं पडिसंधाय सुणगं वा अण्णयरं वा तसं पाणं हंता जाव उद्दवइत्ता आहारं आहारेइ।

इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

१३. कोई पापी मनुष्य कुत्ते पालने का धन्धा अपना कर उनमें किसी कुत्ते को या अन्य किसी त्रस प्राणी को मारकर यावत् जीवन रहित कर अपनी आजीविका का उपार्जन करता है।

इस प्रकार वह महान् पापकर्मों के कारण जगत् में स्वयं को महापापी के रूप में प्रसिद्ध कर लेता है।

१४. से एगइओ सोवणियंतियभावं पडिसंधाय मणुस्सं वा अण्णयरं वा तसं पाणं हंता जाव उद्दवइत्ता आहारं आहारेइ।

इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

१४. कोई पापी मनुष्य शिकारी कुत्तों से शिकार करवाने का व्यवसाय अपनाकर मनुष्य या अन्य प्राणी को मारकर यावत् जीवन रहित कर अपनी आजीविका का उपार्जन करता है।

इस प्रकार वह महान् पापकर्मों के कारण जगत् में महापापी के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है।

१. से एगइओ परिसामज्झाओ उट्ठित्ता अहमेयं हणामि त्ति कट्टु
तित्तिरं वा, वट्टगं वा, चडगं वा, लावगं वा, कवोयगं वा, कविं वा, कविंजलं वा अण्णयरं वा तसं पाणं हंता जाव उद्दवइत्ता आहारं आहारेइ।
इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

१. कोई पापी पुरुप परिपद् के बीच में उठकर कहता है कि–"मैं इस प्राणी को मारता हूँ।"
तत्पश्चात् वह तीतर, बतख, चिड़ी, लावक, कबूतर, कपि, पपीहा या अन्य किसी त्रसजीव को मारता है यावत् प्राणरहित करके उसका आहार करता है।

इस प्रकार वह महान् पाप कर्मों के कारण जगत् में महापापी के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है।

२. से एगइओ केणइ आयाणेणं विरुद्धे समाणे

२. कोई पापी पुरुप किसी से विरुद्ध होने पर कोई कारण से

अदुवा खलदाणेणं, अदुवा सुराथालएणं गाहावईण वा, गाहावइपुत्ताण वा सयमेव अगणिकाएणं सस्साइं झामेइ,

अण्णेण वि अगणिकाएणं सस्साइं झामावेइ,

अगणिकाएणं सस्साइं झामंतं पि अण्णं समणुजाणइ।

इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

३. से एगइओ केणइ आयाणेणं विरुद्धे समाणे

अदुवा खलदाणेणं, अदुवा सुराथालएणं गाहावईण वा, गाहावइपुत्ताण वा,

उट्टाण वा, गोणाण वा, घोडगाण वा, गद्दभाण वा सयमेव घूराओ कप्पेइ,

अण्णेण वि कप्पावेइ,

कप्पंतं पि अण्णं समणुजाणइ।

इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

४. से एगइओ केणइ आयाणेणं विरुद्ध समाणे

अदुवा खलदाणेणं, अदुवा सुराथालएणं गाहावईण वा, गाहावइपुत्ताण वा,

उट्टसालाओ वा, गोणसालाओ वा, घोडगसालाओ वा, गद्दभसालाओ वा,

कंटगबोंदियाए पडिपेहित्ता, सयमेव अगणिकाएणं झामेइ,

अण्णेण वि झामावेइ,

झामंतं पि अन्नं समणुजाणइ।

इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

५. से एगइओ केणइ आयाणेणं विरुद्धे समाणे,

अदुवा खलदाणेणं, अदुवा सुराथालएणं गाहावईण वा, गाहावइपुत्ताण वा,

कुंडलं वा, मणिं वा, मोत्तियं वा सयमेव अवहरइ,

अन्नेण वि अवहरावेइ,

अवहरंतं पि अन्नं समणुजाणइ।

इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

६. से एगइओ केणइ आयाणेणं विरुद्धे समाणे

समणाणं वा, माहणाणं वा, छत्तगं वा, दंडगं वा, भंडगं वा, मत्तगं वा, लट्ठिगं वा, भिसिंग वा, चेलगं वा, चिलिमिलिगं वा, चम्मगं वा, चम्मच्छेदणगं वा, चम्मकोसं वा–सयमेव अवहरइ,

अन्नेण वि अवहरावेइ,

अवहरंतं पि अन्नं समणुजाणइ।

इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

७. से एगइओ णो वितिगिंछइ गाहावईण वा, गाहावइपुत्ताण वा,

अथवा खराव अन्नादि दे देने से सुरापात्र का अभीष्ट लाभ न होने देने से नाराज या कुपित होकर उस गृहपति के या गृहपति के पुत्रों के धान्यों को स्वयं आग लगाकर जला देता है,

दूसरों से जलवा देता है,

जलाने वाले को अच्छा समझता है।

इस प्रकार वह महान् पापकर्मों के कारण जगत् में महापापी के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है।

३. कोई पापी पुरुष किसी कारण से विरुद्ध होने पर

अथवा खराव अन्नादि दे देने से या सुरापात्र का अभीष्ट लाभ न होने देने से उस गृहपति के या गृहपति पुत्रों के

ऊँट, बैल, घोड़े और गधे के अंगों को स्वयं काटता है।

दूसरों से कटवाता है

काटने वाले को अच्छा समझता है।

इस प्रकार वह महान् पापकर्मों के कारण जगत् में महापापी के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है।

४. कोई पापी पुरुष किसी कारण से विरुद्ध होने पर

अथवा खराव अन्न आदि दे देने से या सुरापात्र का अभीष्ट लाभ न होने देने से उस गृहपति की या गृहपति के पुत्रों की

उष्ट्रशाला, गौशाला, अश्वशाला या गर्दभशाला को

काँटों से ढक कर स्वयं आग लगा कर जला देता है,

दूसरों से जलवा देता है

जलाने वाले को अच्छा समझता है।

इस प्रकार वह महान् पाप कर्मों के कारण जगत् में महापापी के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है।

५. कोई पापी पुरुष किसी कारण से विरुद्ध होने पर

अथवा खराव अन्न आदि दे देने से या सुरापात्र का अभिष्ट लाभ न होने देने से उस गृहपति के या गृहपति पुत्रों के

कुण्डल, मणि या मोती का स्वयं अपहरण करता है,

दूसरे से अपहरण कराता है,

अपहरण करने वाले को अच्छा समझता है।

इस प्रकार वह महान् पाप कर्मों के कारण जगत् में महापापी के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है।

६. कोई पापी पुरुष किसी कारण से विरुद्ध होने पर,

श्रमणों या माहनों के छत्र, दण्ड, उपकरण, पात्र, लाठी, आसन, वस्त्र, पर्दा (मच्छरदानी), चर्म, चर्म-छेदनक (चाकु) या चर्मकोश (चमड़े की थैली) का–

स्वयं अपहरण कर लेता है,

दूसरे से अपहरण करवाता है,

अपहरण करने वाले को अच्छा जानता है।

इस प्रकार वह महान् पापकर्मों के कारण जगत् में महापापी के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है।

७. कोई पापी पुरुष विना विचारे किसी गृहपति के या गृहपति-पुत्रों के धान्यों को,

सयमेव अगणिकाएणं ओसहीओ झामेइ,
अण्णेण वि झामावेइ,
झामंतं पि अन्नं समणुजाणइ।
इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

स्वयं आग लगाकर जला देता है,
दूसरों से जलवा देता है
जलाने वाले को अच्छा समझता है।
इस प्रकार वह महान् पापकर्मों के कारण जगत् में महापापी के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है।

८. से एगइओ णो वितिगिंछइ गाहावईण वा, गाहवइपुत्ताण वा, उट्टाण वा, गोणाण वा, घोडगाण वा, गद्दभाण वा, सयमेव घुराओ कप्पेइ,
अण्णेण वि कप्पावेइ,
अण्णं पि कप्पंतं समणुजाणइ।
इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

८. कोई पापी पुरुष बिना विचारे किसी गृहपति के या गृहपति पुत्रों के ऊँट, बैल, घोड़े और गधों के अंगों को स्वयं काटता है,
दूसरों से कटवाता है,
काटने वाले को अच्छा समझता है।
इस प्रकार वह महान् पापकर्मों के कारण जगत् में महापापी के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है।

९. से एगइओ णो वितिगिंछइ गाहावईण वा, गाहावइपुत्ताण वा, उट्टसालाओ वा, गोणसालाओ वा, घोडगसालाओ वा, गद्दभसालाओ वा, कंटगबोंदियाए पडिपेहित्ता, सयमेव अगणिकाएणं झामेइ,
अण्णेण वि झामावेइ,
झामंतं पि अन्नं समणुजाणइ।
इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

९. कोई पापी पुरुष बिना विचारे किसी गृहपति की या गृहपति के पुत्रों की उष्ट्रशाला, गौशाला, अश्वशाला या गर्दभशालाओं को कांटो से ढक कर स्वयं आग लगाकर जला देता है।
दूसरों से जलवा देता है
जलाने वाले को अच्छा समझता है।
इस प्रकार वह महान् पाप कर्मों के कारण जगत् में महापापी के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है।

१०. से एगइओ णो वितिगिंछइ गाहावईण वा, गाहावइ-पुत्ताण वा, कुंडलं वा, मणिं वा, मोत्तियं वा सयमेव अवहरइ,
अन्नेण वि अवहरावेइ,
अवहरंतं पि अन्नं समणुजाणइ।
इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

१०. कोई पापी पुरुष बिना विचारे गृहपति या गृहपतिपुत्रों के कुण्डल मणि या मोती का स्वयं अपहरण करता है,
दूसरों से अपहरण करवाता है
अपहरण करने वाले को अच्छा समझता है।
इस प्रकार वह महान् पापकर्मों के कारण जगत् में महापापी के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है।

११. से एगइओ णो वितिगिंछइ, समणाण वा, माहणाण वा, छत्तगं वा, दंडगं वा, भंडगं वा, मत्तगं वा, लट्ठिगं वा, भिसिगं वा, चेलगं वा, चिलिमिलिगं वा, चम्मगं वा, चम्मच्छेदणगं वा, चम्मकोसियं वा—सयमेवअवहरइ
अण्णेण वि अवहरावेइ,
अवहरंतं पि अन्नं समणुजाणइ।
इइ से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।

११. कोई पापी पुरुष बिना विचारे श्रमणों या माहनों के छत्र, दण्ड, उपकरण, पात्र, लाठी, आसन, वस्त्र, पर्दा, चर्म, चर्मछेदनक या चर्मकोश का स्वयं अपहरण करता है।
दूसरों से अपहरण करवाता है,
अपहरण करने वाले को अच्छा समझता है।
इस प्रकार वह महान् पाप कर्मों के कारण जगत् में महापापी के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है।

१२. से एगइओ समणं वा, माहणं वा, दिस्सा णाणाविहेहिं पावकम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ।
अदुवा णं अच्छराए आफालेत्ता भवइ,
अदुवा णं फरुसं वदित्ता भवइ,
कालेण वि से अणुपविट्ठस्स असणं वा जाव साइमं वा णो दव्वावेत्ता भवइ।
जे इमे भवंति-वोण्णमंता भारोक्कंता अलसगा वसलगा किमणगा समणगा पव्वयंती ते इणमेव जीवियं धिज्जीवियं संपडिवूहेति।

१२. कोई पुरुष श्रमण या ब्राह्मण को देखकर नाना प्रकार के पापकर्म करने वाले के रूप में अपने आपको प्रख्यात करता है,
अथवा चुटकियां बजाता है,
अथवा कठोर वचन बोलता है,
समय पर घर आए हुए को अशन यावत् स्वाद्य नहीं देने देता है,

वह कहता है—"जो ये होते हैं लकड़हारे, भार ढोने वाले, आलसी, शूद्र, नपुसंक याचक वे इस धिक्कारपूर्ण जीविका वाले जीवन को चलाते हैं।

नाइं ते पारलोइयस्स अट्ठस्स किंचि वि सिलिस्संति ते दुक्खंति, ते सोयंति, ते जूरंति, ते तिप्पंति, ते पिट्टंति, ते परितप्पंति, ते दुक्खण-सोयण-जूरण-तिप्पण-पिट्टण-परितप्पणं- वह- बंधणपरिकिलेसाओ अपडिविरया भवंति।

ते महया आरंभेणं, ते महया समारंभेणं, ते महया आरंभ समारंभेणं विरूवरूवेहिं पावकम्मकिच्चेहिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजित्तारो भवंति, तं जहा–

अन्नं अन्नकाले, पाणं पाणकाले, वत्थं वत्थकाले, लेणं लेणकाले, सयणं सयणकाले,

सपुव्वावरं च णं ण्हाए कयवलिकम्मे कयकोउयमंगलपायच्छित्ते सिरसाण्हाए कंठे मालकडे आविद्धमणिसुवण्णे कप्पियमालामउली पडिवद्धसरीरे वग्घारियसोणिसुत्तग-मल्ल-दामकलावे अहयवत्थपरिहिए चंदणोक्खित्तगाय-सरीरे–

महइमहालियाए कूडारगारसालाए,

महइमहालयंसि सीहासणंसि इत्थीगुम्मसंपरिवुडे,

सव्वराइएणं जोइणा झियायमाणेणं,

महयाहयनट्ट गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-घण-मुइंगपडुप्पवाइयरवेणं, उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

तस्स णं एगमवि आणवेमाणस्स जाव चत्तारि पंच जणा अवुत्ता चेव अब्भुट्ठेंति

भण देवाणुप्पिया ! किं करेमो ? किं आहरेमो ? किं उवणेमो ?

किं उवट्ठावेमो ? किं भे हियइच्छियं ? किं भे आसगस्स सयइ ?

तमेव पासित्ता अणारिया एवं वयंति–

'देवे खलु अयं पुरिसे, देवसिणाए खलु अयं पुरिसे, देवजीवणिज्जे खलु अयं पुरिसे।'

अण्णे वि णं उवजीवंति।

तमेव पासित्ता आरिया वदंति–

अभिक्कंतकूरकम्मे खलु अयं पुरिसे अइधुए, अइआयरक्खे दाहिणगामिए नेरइए कण्हपक्खिए आगमिस्साणं दुल्लभवोहिए या वि भविस्सइ।

इच्चेयस्स ठाणस्स उट्ठित्ता वेगे अभिगिज्झंति,

अणुट्ठित्ता वेगे अभिगिज्झंति,

अभिझंझाउरा अभिगिज्झंति।

एस ठाणे अणारिए अकेवले अप्पडिपुण्णे अणेआउए असंसुद्धे असल्लगत्तणे असिद्धिमग्गे अमुत्तिमग्गे अनिव्वाणमग्गे अणिज्जाणमग्गे असव्वदुक्खप्प हीणमग्गे एगंतमिच्छे असाहु।

एस खलु पढमस्स ठाणस्स अधम्मपक्खस्स विभंगे एवमाहिए।

–सुय. सु. २, अ. २, सु. ७०९-७१०

अहावरे पढमस्स ठाणस्स अधम्मपक्खस्स विभंगे एवमाहिज्जइ–

वे कुछ भी पारलौकिक अर्थ की साधना नहीं कर पाते। वे दुःखी होते हैं, शोक करते हैं, खिन्न होते हैं, आंसू बहाते हैं, पीटे जाते हैं और परितप्त होते हैं। वे दुःख, शोक, खेद, अश्रु-विमोचन, पीड़ा, परिताप, बन्ध और परिक्लेश से विरत नहीं होते हैं।

वे महान् आरम्भ, समारंभ, महान् आरम्भ-समारंभ, नाना प्रकार के पापकारी कृत्यों से उदार मानुषिक भोगों को भोगने वाले होते हैं, जैसे–

भोजन के समय भोजन, पानी के समय पानी, वस्त्र के समय वस्त्र, आवास के समय आवास और शयन के समय शयन।

वह सायं-प्रातः हाथ-मुँह धो, कुल देवता की पूजा कर, कौतुक-मंगल और प्रायश्चित्त कर, सिर से पैर तक नहा कर, गले में माला पहन कर, मणिजटित सुवर्णमय चूडामणी पहनकर मालायुक्त मुकुट धारण कर, कमरपट्टा बांधकर पुष्पमाला युक्त प्रलम्बमान करधनी को धारण कर, नए वस्त्र पहन कर शरीर और उसके अवयवों पर चन्दन का उपलेप कर,

अति विशाल कूटागारशाला में

अति विशाल सिंहासन पर बैठ, स्त्री-समूह से परिवृत हो,

पूरी रात दीपक के जलते,

महान् प्रयत्न से आहत, नाट्य, गीत, वाद्य, वीणा, तल, ताल, तुर्य, घंटा और मृदंग के कुशलवादकों द्वारा बजाए जाते हुए स्वर के साथ उदार मानुषिक भोगों को भोगता हुआ रहता है।

वह एक को आज्ञा देता है तब विना बुलाए चार-पाँच मनुष्य उठ खड़े होते हैं। (वे कहते हैं)

'कहें देवानुप्रिय ! हम क्या करें ? क्या लाएं ? क्या भेंट करें ?

क्या उपस्थित करें ? आपका दिल क्या चाहता है ? आपके मुख को क्या स्वादिष्ट लगता है ?'

उस पुरुष को देख अनार्य इस प्रकार कहते हैं–

'यह पुरुष देवता है, यह पुरुष देव-स्नातक हैं, यह पुरुष देवता का जीवन जीने वाला है।'

इसके सहारे दूसरे भी जीते हैं।

उसी पुरुष को देख आर्य कहते हैं–

यह क्रूरकर्म में प्रवृत्त, भारी कर्म वाला, अति स्वार्थी, दक्षिण दिशा में जाने वाला, नरक में उत्पन्न होने वाला, कृष्णपाक्षिक और भविष्यकाल में दुर्लभवोधिक होगा।

इस (भोगी) पुरुष जैसे स्थान को कुछ प्रव्रजित पुरुष भी चाहते हैं,

कछु गृहस्थ भी चाहते हैं।

जो तृष्णा से आतुर हैं (वे सव) चाहते हैं।

यह स्थान अनार्य, द्वन्द्व सहित, अप्रतिपूर्ण, न्याय रहित, अशुद्ध, शल्यों को नहीं काटने वाला, सिद्धि का अमार्ग, निर्वाण का अमार्ग, निर्याण का अमार्ग, सव दुःखों के क्षय का अमार्ग, एकांत मिथ्या और बुरा है।

यह प्रथम स्थान अधर्म पक्ष का विकल्प इस प्रकार निरूपित है।

अव प्रथम स्थान अधर्मपक्ष का विकल्प (पुनः) इस प्रकार कहा जाता है–

इह खलु पाईणं वा जाव दाहिणं वा संतेगइया मणुस्सा भवंति, महिच्छा महारंभा महापरिग्गहा अधम्मिया अधम्माणुया अधम्मिट्ठाअधम्मक्खाइअधम्मपायजीविणो अधम्मपलोइणो अधम्मपलज्जणा अधम्मसीलसमुदायारा अधम्मेण चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति।

हण छिंद भिंद विगत्तगा लोहितपाणी चंडा, रुद्दा, खुद्दा, साहस्सिया उक्कंचण-वंचण-माया-णियडि-कूड-कवड-साति संपओग बहुला,

दुस्सीला दुव्वया दुप्पडियाणंदा असाहू, सव्वाओ पाणाइवायाओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए जाव मिच्छांदसणसल्लाओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए,

सव्वाओ ण्हाणुम्मद्दण-वण्णग-विलेवण-सद्द-फरिस-रस-रूव-गंध-मल्लालंकाराओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए,

सव्वाओ सगड-रह-जाण-जुग्ग-गिल्लि-थिल्लि-सीय-संदमाणिया, सयणाऽऽसण-जाण-वाहण-भोग-भोयण-पवित्थरविहीओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए,

सव्वाओ कय-विक्कय-मास-ऽद्धमास-रुवग-संववहाराओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए,

सव्वाओ हिरण्ण-सुवण्ण-धण-धण्ण-मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवालाओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए,

सव्वाओ कूडतुल-कूडमाणाओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए,

सव्वाओ आरंभसमारंभाओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए,

सव्वाओ करण-कारावणाओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए,

सव्वाओ पयण-पयावणाओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए,

सव्वाओ कुट्टण-पिट्टण-तज्जण-तालण-वह- बंधपरिकिले-साओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए।

जे यावण्णे तहप्पगारा सावज्जा अबोहिया कम्मंता परपाणपरितावणकरा, जे अणारिएहिं कज्जंति तओ वि अप्पडिविरया जावज्जीवाए।

से जहाणामए केइ पुरिसे कलम-मसूर-तिल-मुग्ग-मास-णिप्फाव-कुलत्थ-आलिसंदग-पलिमंथगमादिएहिं अयए कूरे मिच्छादंडं पउंजइ,

एवमेव तहप्पगारे पुरिसजाए तित्तिए-वट्टग-लावग- कवोय-कविंजल-मिय-महिस-वराह-गाह-गोह-कुम्म-सिरीसिव-माहिएहिं अयए कूरे मिच्छादंडं पउंजइ।

जा वि य से बाहिरिया परिसा भवइ, तं जहा–

दासे इ वा, पेसे इ वा, भयए इ वा, भाइल्ले इ वा, कम्मकरे इ वा, भोगपुरिसेइ वा तेसिं पि य णं अन्नयरंसि अहालहुसगंतिसि सयमेव गरुयं दंडं निव्वत्तेइ, तं जहा–

इमं दंडेह, इम मुंडेह, इमं तालेह, इमं ताडेह, इमं अदुयबंधणं करेह, इमं णियलबंधणं करेह, इमं हडिबंधणं करेह, इमं चारगबंधणं करेह, इमं नियल-जुयल-संकोडिय-मोडियं करेह,

पूर्व यावत् दक्षिण दिशाओं में कई मनुष्य होते हैं, जो महान् इच्छा वाले, महाआरंभी, महापरिग्रही, अधार्मिक, अधर्मानुयायी, अधर्मिष्ठ, अधर्मवादी, अधर्म-प्रायः जीवन जीने वाले, अधर्म में अनुरक्त, अधर्ममय स्वभाव और आचरणवाले और अधर्म के द्वारा आजीविका करने वाले होते हैं।

मारो, छेदो, काटो (यह कहकर) चमड़ी को उधेड़ने वाले, रक्त से सने हाथ वाले, चण्ड, रुद्र, क्षुद्र, साहसिक (बिना विचारे काम करने वाले), ठगी, वंचना, माया, बक्रवृत्ति, कूट (झूठा तोल-माप) कपट सदृश–प्रयोग देश वेष और भाषा को बदलकर अनेक बार धोखा देने वाले,

दुःशील, दुर्व्रत, दुष्प्रत्यानन्द (उपकारी का भी प्रत्युपकार न करने वाले) असाधु, यावज्जीवन सर्व प्राणातिपात से मिथ्यादर्शनशल्य पर्यन्त अविरत,

यावज्जीवन सब स्नान, उन्मर्दन, वर्णक, विलेपन, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध, माल्य और अलंकारकों से अविरत,

यावज्जीवन सब शकटयान, रथयान, वाहन, डोली, दो खच्चरों की बग्घी, शिविका, स्यंदमानिका, शयन, आसन, यान, वाहन, भोग, भोजन की विस्तीर्ण विधियों से अविरत,

यावज्जीवन सब प्रकार के क्रय-विक्रय, माषक, अर्धमाषक, रूप्यक से होने वाले विनिमय से अविरत,

यावज्जीवन सब प्रकार के हिरण्य, स्वर्ण, धन, धान्य, मणि, मौक्तिक , शंख, शिला, मूंगा आदि पदार्थों से अविरत,

यावज्जीवन सब कुट-तोल, कूट-माप से अविरत,

यावज्जीवन सब आरम्भ-समारम्भ से अविरत,

यावज्जीवन सब प्रकार के करने कराने से अविरत,

यावज्जीवन सब प्रकार के पचन-पाचन से अविरत,

यावज्जीवन सब कुट्टन, पीडन, तर्जन, ताडन, वध, बंध परिक्लेश से अविरत होते हैं।

जो इस प्रकार के अन्य सावद्य, अबोधि देने वाले और दूसरे प्राणियों को परिताप देने वाले कर्म करते हैं। वे यावज्जीवन अनार्यों से किये जाने वाले कर्मों से अविरत हैं।

जैसे कोई पुरुष चांवल, मसूर, तिल, मूंग, उड़द, राजमा, कुलथी, चंवला, काला चना आदि धान्यों के प्रति अत्यन्त क्रूर होकर मिथ्यादंड का प्रयोग करता है।

इसी प्रकार वैसा पुरुष तीतर, बटेर, लावक, कबूतर, मृग, चातक, भैंसा, सुअर, मगर, गोह, कछुआ, सांप आदि प्राणियों के प्रति अत्यन्त क्रूर होकर मिथ्यादंड का प्रयोग करता है।

जो उसकी बाह्य परिषद् है, यथा–

दास, प्रेष्य, भृतक, भागीदार, कर्मकर अथवा भोगपुरुष–उनके द्वारा किसी प्रकार का छोटा-सा अपराध होने पर स्वयं भारी दंड का प्रयोग करता है, यथा–

जैसे (वह कहता है) इसे दंडित करें, इसे मुंडित करें, इसे तर्जना दें, इसे ताडना दें, इसे सांकल से बांध दें, इसे बेड़ी में बांध दें, इसे खोड़े में डाल दें, इसे बन्दी बना कर जेल में डाल दें, इसे दो सलाखों से सिकोड़ कर मुड़का दें,

[illegible] ते पारलोइयस्स अट्ठस्स किंचि वि सिलिस्संति ते दुक्खंति, ते सोयंति, ते जूरंति, ते तिप्पंति, ते पिट्टंति, ते परितप्पंति, ते दुक्खण-सोयण-जूरण-तिप्पण-पिट्टण-परितप्पण- वह- बंधणपरिकिलेसाओ अपडिविरया भवंति।

ते महया आरंभेणं, ते महया समारंभेणं, ते महया आरंभ समारंभेण विरूवरूवेहिं पावकम्मकिच्चेहिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजित्तारो भवंति, तं जहा–

अन्नं अन्नकाले, पाणं पाणकाले, वत्थं वत्थकाले, लेणं लेणकाले, सयणं सयणकाले,

[illegible] च णं ण्हाए कयवलिकम्मे [illegible]कोउयमंगलपायच्छित्ते सिरसाण्हाए कंठे मालकडे [illegible]मणिसुवण्णे कप्पियमालामउली पडिबद्धसरीरे [illegible]सोणिसुत्तग-मल्ल-दामकलावे अहयवत्थपरिहिए [illegible]नगाय-सरीरे–

[illegible] कूडागारसालाए,
[illegible] इत्थीगुम्मसंपरिवुडे,
[illegible] झियायमाणेणं,
[illegible] गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-घण-[illegible], उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं [illegible]।

[illegible] आणवेमाणस्स जाव चत्तारि पंच जणा [illegible]

[illegible] किं करेमो ? किं आहरेमो ? किं उवणेमो ? [illegible] किं भे हियइच्छियं ? किं भे आसगस्स [illegible]

[illegible] एवं वयंति–

[illegible] पुरिसे, देवसिणाए खलु अयं पुरिसे, [illegible] अयं पुरिसे।'

[illegible]

[illegible] वयंति–

[illegible] पुरिसे अइधुए, अइआयरक्खे [illegible] आगमिस्साणं [illegible]

[illegible] अभिलसंति,

[illegible]

[illegible] अपडिपुण्णे [illegible] [illegible] [illegible]मग्गे

[illegible]

वे कुछ भी पारलौकिक अर्थ की साधना नहीं कर पाते। वे दुःखी होते हैं, शोक करते हैं, खिन्न होते हैं, आंसू बहाते हैं, पीटे जाते हैं और परितप्त होते हैं। वे दुःख, शोक, खेद, अश्रु-विमोचन, पीड़ा, परिताप, बन्ध और परिक्लेश से विरत नहीं होते हैं।

वे महान् आरम्भ, समारंभ, महान् आरम्भ-समारंभ, नाना प्रकार के पापकारी कृत्यों से उदार मानुषिक भोगों को भोगने वाले होते हैं, जैसे–

भोजन के समय भोजन, पानी के समय पानी, वस्त्र के समय वस्त्र, आवास के समय आवास और शयन के समय शयन।

वह सायं-प्रातः हाथ-मुँह धो, कुल देवता की पूजा कर, कौतुक-मंगल और प्रायश्चित्त कर, सिर से पैर तक नहा कर, गले में माला पहन कर, मणिजटित सुवर्णमय चूडामणी पहनकर मालायुक्त मुकुट धारण कर, कमरपट्टा बांधकर पुष्पमाला युक्त प्रलम्बमान करधनी को धारण कर, नए वस्त्र पहन कर शरीर और उसके अवयवों पर चन्दन का उपलेप कर,

अति विशाल कूटागारशाला में

अति विशाल सिंहासन पर बैठ, स्त्री-समूह से परिवृत हो,

पूरी रात दीपक के जलते,

महान् प्रयत्न से आहत, नाट्य, गीत, वाद्य, वीणा, तल, ताल, तुर्य, घंटा और मृदंग के कुशलवादकों द्वारा बजाए जाते हुए स्वर के साथ उदार मानुषिक भोगों को भोगता हुआ रहता है।

वह एक को आज्ञा देता है तब बिना बुलाए चार-पाँच मनुष्य उठ खड़े होते हैं। (वे कहते हैं)

'कहें देवानुप्रिय ! हम क्या करें ? क्या लाएं ? क्या भेंट करें ? क्या उपस्थित करें ? आपका दिल क्या चाहता है ? आपके मुख को क्या स्वादिष्ट लगता है ?'

उस पुरुष को देख अनार्य इस प्रकार कहते हैं–

'यह पुरुष देवता है, यह पुरुष देव-स्नातक हैं, यह पुरुष देवता का जीवन जीने वाला है।'

इसके सहारे दूसरे भी जीते हैं।

उसी पुरुष को देख आर्य कहते हैं–

यह क्रूरकर्म में प्रवृत्त, भारी कर्म वाला, अति स्वार्थी, दक्षिण दिशा में जाने वाला, नरक में उत्पन्न होने वाला, कृष्णपाक्षिक और भविष्यकाल में दुर्लभबोधिक होगा।

इस (भोगी) पुरुष जैसे स्थान को कुछ प्रव्रजित पुरुष भी चाहते हैं, कुछ गृहस्थ भी चाहते हैं।

जो तृष्णा से आतुर हैं (वे सब) चाहते हैं।

यह स्थान अनार्य, द्वन्द्व सहित, अप्रतिपूर्ण, न्याय रहित, अशुद्ध, शल्यों को नहीं काटने वाला, सिद्धि का अमार्ग, निर्वाण का अमार्ग, निर्याण का अमार्ग, सब दुःखों के क्षय का अमार्ग, एकांत मिथ्या और बुरा है।

यह प्रथम स्थान अधर्म पक्ष का विकल्प इस प्रकार निरूपित है।

अब प्रथम स्थान अधर्मपक्ष का विकल्प (पुनः) इस प्रकार कहा जाता है–

इह खलु पाईणं वा जाव दाहिणं वा संतेगइया मणुस्सा भवंति, महिच्छा महारंभा महापरिग्गहा अधम्मिया अधम्माणुया अधम्मिट्ठाअधम्मक्खाइअधम्मपायजीविणो अधम्मपलोइणो अधम्मपलज्जणा अधम्मसीलसमुदायारा अधम्मेण चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति।

पूर्व यावत् दक्षिण दिशाओं में कई मनुष्य होते हैं, जो महान् इच्छा वाले, महाआरंभी, महापरिग्रही, अधार्मिक, अधर्मानुयायी, अधर्मिष्ठ, अधर्मवादी, अधर्म-प्रायः जीवन जीने वाले, अधर्म में अनुरक्त, अधर्ममय स्वभाव और आचरणवाले और अधर्म के द्वारा आजीविका करने वाले होते हैं।

हण छिंद भिंद विगत्तगा लोहितपाणी चंडा, रुद्दा, खुद्दा, साहस्सिया उक्कंचण-वंचण-माया-णियडि-कूड-कवड-साति संपओग बहुला,

मारो, छेदो, काटो (यह कहकर) चमड़ी को उधेड़ने वाले, रक्त से सने हाथ वाले, चण्ड, रुद्र, क्षुद्र, साहसिक (विना विचारे काम करने वाले), ठगी, वंचना, माया, वक्रवृत्ति, कूट (झूठा तोल-माप) कपट सदृश–प्रयोग देश वेष और भाषा को वदलकर अनेक वार धोखा देने वाले,

दुस्सीला दुव्वया दुप्पडियाणंदा असाहू, सव्वाओ पाणाइवायाओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए जाव मिच्छांदसणसल्लाओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए,

दुःशील, दुर्व्रत, दुष्प्रत्यानन्द (उपकारी का भी प्रत्युपकार न करने वाले) असाधु, यावज्जीवन सर्व प्राणातिपात से मिथ्यादर्शनशल्य पर्यन्त अविरत,

सव्वाओ ण्हाणुम्मद्दण-वण्णग-विलेवण-सद्द-फरिस-रस-रूव-गंध-मल्लालंकाराओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए,

यावज्जीवन सव स्नान, उन्मर्दन, वर्णक, विलेपन, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध, माल्य और अलंकारकों से अविरत,

सव्वाओ सगड-रह-जाण-जुग्ग-गिल्लि-थिल्लि-सीय-संदमाणिया, सयणाऽऽसण-जाण-वाहण-भोग-भोयण-पवित्थरविहीओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए,

यावज्जीवन सव शकटयान, रथयान, वाहन, डोली, दो खच्चरों की वग्घी, शिविका, स्यंदमानिका, शयन, आसन, यान, वाहन, भोग, भोजन की विस्तीर्ण विधियों से अविरत,

सव्वाओ कय-विक्कय-मास-ऽद्धमास-रुवग-संववहाराओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए,

यावज्जीवन सव प्रकार के क्रय-विक्रय, मापक, अर्धमापक, रूप्यक से होने वाले विनिमय से अविरत,

सव्वाओ हिरण्ण-सुवण्ण-धण-धण्ण-मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवालाओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए,

यावज्जीवन सव प्रकार के हिरण्य, स्वर्ण, धन, धान्य, मणि, मौक्तिक , शंख, शिला, मूंगा आदि पदार्थों से अविरत,

सव्वाओ कूडतुल-कूडमाणाओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए,

यावज्जीवन सव कुट-तोल, कूट-माप से अविरत,

सव्वाओ आरंभसमारंभाओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए,

यावज्जीवन सव आरम्भ-समारम्भ से अविरत,

सव्वाओ करण-कारावणाओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए,

यावज्जीवन सव प्रकार के करने कराने से अविरत,

सव्वाओ पयण-पयावणाओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए,

यावज्जीवन सव प्रकार के पचन-पाचन से अविरत,

सव्वाओ कुट्टण-पिट्टण-तज्जण-तालण-वह- बंधपरिकिले-साओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए।

यावज्जीवन सव कुट्टन, पीडन, तर्जन, ताडन, वध, वंध परिक्लेश से अविरत होते हैं।

जे यावण्णे तहप्पगारा सावज्जा अबोहिया कम्मंता परपाणपरितावणकरा, जे अणारिएहिं कज्जंति तओ वि अप्पडिविरया जावज्जीवाए।

जो इस प्रकार के अन्य सावद्य, अवोधि देने वाले और दूसरे प्राणियों को परिताप देने वाले कर्म करते हैं। वे यावज्जीवन अनार्यों से किये जाने वाले कर्मों से अविरत हैं।

से जहाणामए केइ पुरिसे कलम-मसूर-तिल-मुग्ग-मास-णिप्फाव-कुलत्थ-आलिसंदग-पलिमंथगमादिएहिं अयए कूरे मिच्छादडं पउंजइ,

जैसे कोई पुरुष चांवल, मसूर, तिल, मूंग, उड़द, राजमा, कुलथी, चंवला, काला चना आदि धान्यों के प्रति अत्यन्त क्रूर होकर मिथ्यादंड का प्रयोग करता है।

एवमेव तहप्पगारे पुरिसजाए तित्तिए-वट्टग-लावग- कवोय-कविंजल-मिय-महिस-वराह-गाह-गोह-कुम्म-सिरीसिव-माहिएहिं अयए कूरे मिच्छादंडं पउंजइ।

इसी प्रकार वैसा पुरुष तीतर, वटेर, लावक, कवूतर, मृग, घातक, भैंसा, सुअर, मगर, गोह, कछुआ, सांप आदि प्राणियों के प्रति अत्यन्त क्रूर होकर मिथ्यादंड का प्रयोग करता है।

जा वि य से वाहिरिया परिसा भवइ, तं जहा–

जो उसकी वाह्य परिषद् है, यथा–

दासे इ वा, पेसे इ वा, भयए इ वा, भाइल्ले इ वा, कम्मकरे इ वा, भोगपुरिसेइ वा तेसिं पि य णं अन्नयरंसि अहालहुसगंतिसि सयमेव गरुयं दंडं निव्वत्तेइ, तं जहा–

दास, प्रेष्य, भृतक, भागीदार, कर्मकर अथवा भोगपुरुष- उनके द्वारा किसी प्रकार का छोटा-सा अपराध होने पर स्वयं भारी दंड का प्रयोग करता है, यथा–

इमं दंडेह, इम मुंडेह, इमं तालेह, इमं ताडेह, इमं अदुयवंधणं करेह, इमं णियलवंधणं करेह, इमं हडिवंधणं करेह, इमं चारगवंधणं करेह, इमं नियल-जुयल-संकोडिय-मोडियं करेह,

जैसे (यह कहता है) इसे दंडित करें, इसे मुंडित करें, इसे तर्जना दें, इसे ताडना दें, इसे सांकल से बांध दें, इसे बेड़ी से बांध दें, इसे खोड़े में डाल दें, इसे बन्दी बना कर जेल में डाल दें, इसे दो अंगों से निचोड़ कर तुड़वा दें,

इमं हत्थच्छिण्णयं करेह,
इमं पायच्छिण्णयं करेह,
इमं कण्णच्छिण्णयं करेह,
इमं नक्कओट्ठ-सीसमुहच्छिण्णयं करेह,
इमं वेयच्छिण्णयं करेह,
इमं अंगछिण्णयं करेह,
इमं हिययुप्पाडियं करेह
इमं नयणुप्पाडियं करेह,
इमं दसणुप्पाडियं करेह,
इमं वसणुप्पाडियं करेह,
इमं जिब्भुप्पाडियं करेह,
इमं उल्लंबियं करेह,
इमं घसियं करेह,
इमं घोलियं करेह,
इमं सूलाइयं करेह,
इमं सूलाभिण्णयं करेह,
इमं खारवत्तियं करेह,
इमं वज्झवत्तियं करेह,
इमं सीहपुच्छियगं करेह,
इमं वसभपुच्छियगं करेह,
इमं कडग्गिदड्ढयगं करेह,
इमं काकणिमंसखावियगं करेह,
इमं भत्तपाणनिरुद्धयं करेह,
इमं जावज्जीवं वहबंधणं करेह,
इमं अण्णतरेणं असुभेणं कुमारेणं मारेह।
जा वि य से अब्भिंतरिया परिसा भवइ, तं जहा–
माया इ वा, पिया इ वा, भाया इ वा, भगिणी इ वा, भज्जा इ वा, पुत्ता इ वा, धूया इ वा, सुण्हा इ वा,
तेसिं पि य णं अण्णयरंसि अहालहुगंसि अवराहंसि–सयमेव गरुयं दंडं वत्तेइ, तं जहा–
सीओदगवियडंसि कायं ओबोलित्ता भवइ जहा मित्तदोसवत्तिए जाव अहिए परंसि लोयंसि,

इसके हाथ काट दें,
इसके पैर काट दें,
इसके कान काट दें,
इसका नाक, होठ, मस्तक और मुंह काट दें,
इसे नपुंसक कर दें,
इसके अंग काट दें,
इसका हृदय उखाड़ दें,
इसकी आँखें निकाल दें,
इसके दांत निकाल दें,
इसके अंडकोश निकाल दें,
इसकी जीभ खींच लें,
इसे कुए में लटका दें,
इसे घसीटें,
इसे पानी में डुवो दें,
इसे शूली पर लटका दें,
इसे शूली में पिरोकर टुकड़े-टुकड़े कर दें,
इस पर नमक छिड़क दें,
इस पर चमड़ा वाँध दें,
इसकी जननेन्द्रिय को काट दें,
इसके अंडकोशों को तोड़कर इसके मुंह में डाल दें,
इसे चटाई में लपेट कर आग में जला दें,
इसके मांस के छोटे-छोटे टुकड़े कर इसे खिलाएँ,
इसका भोजन-पानी वन्द कर दें,
इसको जीवन भर पीटें और बांधे रखें,
इसे दूसरे किसी प्रकार के अशुभ और वुरी मार से मारें।
जो उसकी आन्तरिक परिषद् होती है, यथा–
माता-पिता, भाई, वहिन, पत्नी, पुत्र, पुत्री अथवा पुत्रवधू,

उनके द्वारा किसी प्रकार का छोटा-सा अपराध होने पर स्वयं भारी दंड का प्रयोग करता है, यथा–
टंडे पानी में उसके शरीर को डुवोता है यावत् जिस प्रकार मित्रद्वेष प्रत्ययिक क्रियास्थान में दण्ड कहे गये हैं वैसे ही दण्ड देते हैं और वे परलोक में अपना अहित करते हैं।
वे दुःखी होते हैं, शोक करते हैं, खिन्न होते हैं, आँसू वहाते हैं, पीटे जाते हैं और परितप्त होते हैं।
वे दुःख, शोक, खेद, अश्रुविमोचन, पीड़ा, परिताप, वध, वन्धन और परिक्लेश से विरत नहीं होते हैं।
इसी प्रकार वे स्त्री-कामों में मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित, आसक्त होकर, चार-पांच छह या दस वर्षों तक, कम या अधिक काल तक भोगों को भोग कर वैर के आयतनों को जन्म देकर, अनेक बार बहुत क्रूर कर्मों का संचय कर, प्रचुर मात्रा में किए गए कर्मों के कारण दब जाते हैं।
जैसे–लोहे का गोला अथवा पत्थर का गोला जल में डालने पर, जल के तल को पार कर धरती के तल पर जाकर टिकता है,

एवामेव तहप्पगारे पुरिसजाए वज्जबहुले धूयबहुले पंकबहुले वेरबहुले अप्पत्तियबहुले दंभबहुले णियडिबहुले साइबहुले अयसबहुले उस्सण्णं तसपाणघाति कालमासे कालं किच्चा धरणितलमइवइत्ता अहे णरगतलपइट्ठाणे भवइ।

इसी प्रकार वैसा पुरुष जो कर्मवहुल, धूतवहुल, पंकवहुल, वेरवहुल अविश्वासवहुल, दंभवहुल, निकृतिवहुल, कपटतावहुल, अयशवहुल तथा वहुलतया त्रस प्राणियों की घात करने वाला, काल मास में मरकर, धरती के तल को पार कर, नीचे नरकतल में जा टिकता है।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउंरसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिया, णिच्चंधकारतमसा ववगयगह-चंद-सूर-नक्खत्त-जोइसप्पहा, मेद-वसा-मंस-रुहिर- पूयपडल-चिक्खल्ल लित्ताणुलेवणतला, असुई वीसा परमदुब्भिगंधा, काऊअगणिवण्णाभा, कक्खडफासा, दुरहियासा असुभा णरगा, असुभा णरएसु वेदणाओ।

वे नरकावास अन्दर से गोल वाहर से चतुष्कोण और नीचे खुरपे की आकृति वाले हैं। वे निरन्तर अन्धकार में तमोमय, ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र और ज्योतिष की प्रभा से शून्य, मेद-चर्वी, पीव, लोही और मांस के कीचड़ से पंकित तलवाले, अशुचि, अपक्वगंध से युक्त उत्कृष्ट दुर्गन्ध वाले, कृष्ण (कापोत) अग्निवर्ण की आभावाले, कर्कश-स्पर्श से युक्त और असह्य वेदना वाले होते हैं। वे नरकावास अशुभ हैं और उनमें अशुभ वेदनाएँ हैं।

नो चेव णं नरएसु नेरइया णिद्दायंति वा, पयलायंति वा, सायं वा, रतिं वा, धितिं वा, मतिं वा उवलभंति।

उन नरकावासों में नैरयिक न सोकर नींद ले सकते हैं, न बैठे-बैठे नींद ले सकते हैं। उनमें न स्मृति होती है, न आनन्द होता है, न धैर्य और मति होती है।

ते णं तत्थ उज्जलं विपुलं पगाढं कडुयं कक्कसं चंडं दुक्खं दुग्गं तिव्वं दुरहियासं णिरयवेदणं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

वे वहाँ उत्कृष्ट, विपुल, प्रगाढ़, कटुक, कर्कश, चण्ड, दुःखवहुल, विषम, तीव्र और दुःसह्य नैरयिक वेदना का अनुभव करते हुए जीवन विताते हैं।

से जहाणामए–रुक्खे सिया पव्वयग्गे जाए, मूले छिन्ने, अग्गे गरुए, जओ निन्नं, जओ विसमं जओ दुग्गं तओ पवडइ।

जैसे कोई वृक्ष पर्वत के शिखर पर उत्पन्न हो, जिसकी जड़ कट गई हो, जो ऊपर से भारी हो, वह जिधर से नीचा, जिधर से विषम और जिधर से दुर्गम हो उधर ही गिरता है।

एवामेव तहप्पगारे पुरिसजाए गब्भाओ गब्भं, जम्माओ जम्मं, माराओ मारं, णरगाओ णरगं दुक्खाओ दुक्खं,

इसी प्रकार वैसा पुरुष एक गर्भ से दूसरे गर्भ में, एक जन्म से दूसरे जन्म में, एक मृत्यु से दूसरी मृत्यु में, एक नरक से दूसरी नरक में और एक दुःख से दूसरे दुःख में जाता है।

दाहिणगामिए णेरइए कण्हपक्खिए आगमिस्साणं दुल्लभवोहिए या वि भवइ।

वह दक्षिण दिशा के नरक में उत्पन्न होने वाला, कृष्ण-पाक्षिक और भविष्यकाल में दुर्लभवोधिक होता है।

एस ठाणे अणारिए अकेवले जाव असव्वदुक्खप्पहीणमग्गे एगंतमिच्छे असाहू।

यह स्थान अनार्य, अकेवल यावत् सव दुखों के क्षय का अमार्ग, एकान्त मिथ्या और वुरा है।

पढमस्स ठाणस्स अधम्म पक्खस्स विभंगे एवमाहिए।

यह प्रथम स्थान अर्धमपक्ष का विकल्प इस प्रकार कहा गया है।

–सूय. सु. २, अ. २, सु. ७१३

६१. अधम्म पक्खीय पुरिसाणं परीक्खणं–

ते सव्वे पावाउया आइगरा धम्माणं नाणापण्णा नाणाछंदा नाणासीला नाणादिट्ठी नाणारुई नाणारंभा नाणाज्झवसाणसंजुत्ता एगं महं मंडलिवंधं किच्चा सव्वे एगओ चिट्ठंति।

६१. अधर्मपक्षीय पुरुषों का परीक्षण–

वे दार्शनिक धर्म के आदिकर्ता, नाना प्रज्ञावाले, नाना अभिप्रायवाले, नाना स्वभाव वाले, नाना दृष्टि वाले, नाना रुचि वाले, नाना आरम्भ वाले, नाना अध्यवसाय से युक्त एक वड़ी मंडली वनाकर सव एक स्थान पर वैठते हैं।

पुरिसे य सागणियाणं इंगालाणं पाइं वहुपडिपुण्णं अयोमएणं संडासएणं गहाय ते सव्वे पावाउए आइगरे धम्माणं नाणापण्णे जाव नाणाज्झवसाणसंजुत्ते एवं वयासी–हंभो पावाउया ! आइगरा ! धम्माणं णाणापण्णा जाव नाणाज्झवसाणसंजुत्ता। इमं ताव तुब्भे सागणियाणं इंगालाणं पाइं वहुपडिपुण्णं गहाय मुहुत्तगं-मुहुत्तगं पाणिणा धरेह,

णो य हु संडासगं संसारियं कुज्जा,

णो य हु अग्गिथंभणियं कुज्जा

णो य हु साहम्मिय-वेयावडियं कुज्जा,

णो य हु परधम्मिय-वेयावडियं कुज्जा।

उस समय कोई पुरुष जलते हुए अंगारों से भरे हुए पात्र को लोहे की संडासी से पकड़ कर धर्म के आदिकर्ता ! नानाप्रज्ञावाले ! यावत् नाना अध्यवसाय से युक्त दार्शनिकों से बोले–"हे धर्म के आदिकर्ता ! नानाप्रज्ञावाले ! यावत् नानाअध्यवसाय से युक्त दार्शनिकों ! तुम सव जलते हुए अंगारों से भरे हुए इस पात्र को मुहूर्त-मुहूर्तभर हाथों में पकड़कर रखो।

न इसे संडासी से पकड़ कर दूसरे के हाथ में दो।

न अग्नि-स्तम्भनी विद्या का प्रयोग करो।

न साधर्मिक के लिए अग्नि-स्तम्भन करो।

न परधर्म वालों के लिए अग्नि-स्तम्भन करो।

[illegible] नियागपडिवन्ना अमायं कुव्वमाणा पाणिं पसारेह,

सीधे पंक्ति में बैठ, शपथपूर्वक माया का प्रयोग न करते हुए हाथ को पसारो,

[illegible] वुच्चा से पुरिसे तेसिं पावाउयाणं तं सागणियाणं इंगालाणं [illegible] पडिपुण्णं अओमय संडासएणं गहाय पाणिंसु [illegible],

यह कह कर वह पुरुष उन दार्शनिकों के सामने जलते अंगारे से भरे हुए पात्र को लोहे की संडासी से पकड़ कर उनके हाथों की ओर आगे बढ़ाता है।

[illegible] ते पावाउया आइगरा धम्माणं नाणापन्ना जाव [illegible] पाणिं पडिसाहरेंति,

तव वे धर्म के आदिकर्ता, नानाप्रज्ञावाले यावत् नानाअध्यवसाय से युक्त दार्शनिक अपना हाथ खींच लेते हैं।

[illegible] से पुरिसे ते सव्वे पावाउए आइगरे धम्माणं नाणापन्ने जाव [illegible] एवं वयासी–

तव उस पुरुष ने धर्म के आदिकर्ता, नानाप्रज्ञावाले यावत् नानाअध्यवसाय से युक्त उन सव से इस प्रकार कहा–

[illegible] भो पावाउया ! आइगरा धम्माणं नाणापन्ना जाव [illegible] ! कम्हा णं तुब्भे पाणिं पडिसाहरह ?

'हे धर्म के आदिकर्ता ! नानाप्रज्ञावाले ! यावत् नानाअध्यवसाय से युक्त दार्शनिक प्रावादुकों ! तुम किसलिए हाथ को पीछे खींच रहे हो ?

[illegible] ?

क्या हाथ नहीं जलेंगे ?

[illegible] भविस्सइ ?

हाथ जलने से क्या होगा ?

[illegible] पडिसाहरह।

'दुःख होगा-दुःख-होगा'–यह मानकर तुम हाथ हटा लेते हो।

[illegible]

यह तुला (निश्चित) है, यह प्रमाण है और यह समवसरण है।

[illegible] समोसरणे।

प्रत्येक के लिए तुला है, प्रत्येक के लिए प्रमाण है और प्रत्येक के लिए समवसरण है।

[illegible] एवमाइक्खंति जाव एवं [illegible]

जो ये श्रमण–व्राह्मण ऐसा आख्यान यावत् ऐसा प्ररूपण करते हैं कि–

[illegible] अज्जावेयव्वा, [illegible], किलामेयव्वा, उद्दवेयव्वा।

सव प्राण यावत् सव सत्वों का हनन किया जा सकता है, अधीन वनाया जा सकता है, दास वनाया जा सकता है, परिताप दिया जा सकता है, क्लान्त किया जा सकता है और प्राणों से वियोजित किया जा सकता है।

[illegible]

वे भविष्य में शरीर के छेदन भेदन को प्राप्त होंगे।

[illegible] संसार-पुणब्भव- [illegible] भागिणो भविस्संति।

वे भविष्य में जन्म, जरा, मरण योनिजन्म संसार में वारवार उत्पत्ति, गर्भवास, भव-प्रपंच में व्याकुल चित्त वाले होंगे।

[illegible] घोलणाणं [illegible] भगिणीमरणाणं [illegible], [illegible] बहूणं [illegible]

वे वहुत दंड, मुंडन, तर्जन, ताडन, सांकल से वँधना, घुमाना तथा मातृमरण, पितृमरण, भ्रातृमरण, भगिनीमरण, भार्यामरण, पुत्रमरण, पुत्री मरण, पुत्रवधुमरण एवं दरिद्रता, दौर्भाग्य, अप्रिय-संयोग, प्रिय-वियोग और अनेक दुःख व वैमनस्य के भागी होंगे।

वे अनादि-अनन्त, लम्वे मार्गवाले, चतुर्गतिक संसाररूपी अरण्य में वार-वार परिभ्रमण करेंगे।

वे सिद्ध नहीं होंगे यावत् सव दुःखों का अन्त नहीं करेंगे।

यह तुला है, यह प्रमाण है और यह समवसरण है।

प्रत्येक के लिए तुला है, प्रत्येक के लिए प्रमाण है और प्रत्येक के लिए समवसरण है।

[illegible]. धर्मपक्षीय क्रियास्थान–

[illegible] ईर्यापथिक क्रियास्थान कहा जाता है–

[illegible] क्रिया स्थान में आत्म कल्याण के लिए [illegible]

१. [illegible] समिति से युक्त,

२. [illegible] समिति से युक्त,

३. एसणासमियस्स,

४. आयाणभंडमत्तणिक्खेवणासमियस्स,

५. उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाणजल्लपारिट्ठावणिया-समियस्स।

१. मणसमियस्स, २. वइसमियस्स, ३. कायसमियस्स

१. मणगुत्तस्स, २. वइगुत्तस्स, ३. कायगुत्तस्स,

गुत्तस्स गुत्तिंदियस्स गुत्तबंभचारिस्स आउत्तं गच्छमाणस्स, आउत्तं चिट्ठमाणस्स, आउत्तं णिसीयमाणस्स, आउत्तं तुयट्टमाणस्स आउत्तं भुंजमाणस्स, आउत्तं भासमाणस्स

आउत्तं वत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं गेण्हमाणस्स वा, णिक्खिवमाणस्स वा जाव चक्खुपम्हणिवायमवि अत्थि वेमाया सुहुमा किरिया इरियावहिया नामं कज्जइ।

सा पढमसमए बद्धपुट्ठा।

विइयसमए वेइया,

तइयसमए णिज्जिण्णा,

सा बद्धा पुट्ठा उदीरिया वेइया णिज्जिण्णा सेयकाले अकम्मं याऽ वि भवइ।

एवं खलु तस्स तप्पत्तियं असावज्जे त्ति आहिज्जइ।

तेरसमे किरियाठाणे इरियावहिए त्ति आहिए।

से बेमि–जे य अतीता, जे य पडुप्पन्ना, जे य आगमिस्सा अरहंता भगवंता सव्वे ते एयाइं चेव तेरस किरियाठाणाइं–भासिंसु वा, भासंति वा, भासिस्संति वा,

पण्णविंसु वा, पण्णवेंति वा, पण्णविस्संति वा।

एवं चेव तेरसमं किरियाठाणं सेविंसु वा, सेवंति वा, सेविस्संति वा। –सूय. सु. २, अ. २, सु. ७०७

एयंसि चेव तेरसमे किरियाठाणे वट्टमाणा जीवा सिज्झिंसु जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा।

एवं से भिक्खू आयट्ठी आयहिए आयगुत्ते आयजोगी आयपरक्कमे आयरक्खिए आयाणुकंपए आयनिप्फेडए आयाणमेव पडिसाहरेज्जासि त्ति बेमि। –सूय. सु.२, अ. २, सु. ७२१

३. एषणासमिति से युक्त,

४. पात्र, उपकरण आदि के ग्रहण करने और रखने की समिति से युक्त,

५. मल-मूत्र कफ, श्लेष्म और मैल की परिष्ठापना समिति से युक्त,

१. मनसमिति, २. वचनसमिति, ३. कायसमिति से युक्त

१. मनोगुप्ति, २. वचनगुप्ति, ३. कायगुप्ति से गुप्त,

जिसकी इन्द्रियां ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियों से गुप्त हैं, जो साधक उपयोग सहित गमन करता है, खड़ा होता है, बैठता है, करवट बदलता है, भोजन करता है, बोलता है,

वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोंछन आदि को ग्रहण करता है और उपयोग पूर्वक ही इन्हें रखता-उठाता है यावत् आँखों की पलकें भी उपयोगसहित झपकाता है ऐसे साधु में विविध मात्रा वाली सूक्ष्म ईर्यापथिकी क्रिया होती है।

वह प्रथम समय में बद्ध स्पृष्ट होती है,

द्वितीय समय में उसका अनुभव होता है,

तृतीय समय में उसकी निर्जरा होती है।

इस प्रकार वह ईर्यापथिकी क्रिया क्रमशः बद्ध स्पृष्ट, उदीरित, वेदित और निर्जीर्ण होती है और आगामी काल में वह अकर्मभाव को प्राप्त होती है।

इस प्रकार उस संवृत अणगार की ऐर्यापथिक क्रिया असावद्य कही जाती है।

यह तेरहवाँ क्रिया स्थान ईर्यापथिक कहा गया है।

(श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं–) "मैं कहता हूँ कि भूतकाल में जितने तीर्थङ्कर हुए हैं, वर्तमान काल में जितने तीर्थङ्कर हैं और भविष्य में जितने भी तीर्थङ्कर होंगे, उन सभी ने इन तेरह क्रियास्थानों का कथन किया है, करते हैं तथा करेंगे,

इसी प्रकार प्ररूपणा की है, प्ररूपणा करते हैं तथा प्ररूपणा करेंगे।

इसी प्रकार उन्होंने तेरहवें क्रिया स्थान का सेवन किया है, सेवन करते हैं और सेवन करेंगे।

इनमें से तेरहवें क्रियास्थान में वर्तमान जीव सिद्ध हुए हैं, होते हैं और होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त किया है, करते हैं और करेंगे।

इस प्रकार वह आत्मार्थी, आत्मा का हित करने वाला, आत्मगुप्त, आत्मयोगी, आत्मा के लिए पराक्रम करने वाला, आत्मा की रक्षा करने वाला, आत्मा की अनुकम्पा करने वाला, आत्मा का जगत् से उद्धार करने वाला भिक्षु अपनी आत्मा को समस्त पापों से निवृत्त करे।

६३. धम्म पक्खीय पुरिसस्स विसिट्ठत्तं–

अहावरे दोच्चस्स ठाणस्स धम्मपक्खस्स विभंगे एवमाहिज्जइ–

इह खलु पाईणं वा जाव दाहिणं वा, संतेगइया मणुस्सा भवंति, तं जहा–

आरिया वेगे, अणारिया वेगे,

उच्चागोया वेगे, णीयागोया वेगे,

कायमंता वेगे, हस्समंता वेगे,

६३. धर्मपक्षीय पुरुष का वैशिष्ट्य–

अब दूसरे स्थान धर्मपक्ष का विकल्प इस प्रकार कहा जाता है–

पूर्व यावत् दक्षिण दिशा में कुछ मनुष्य होते हैं, यथा–

कुछ आर्य होते हैं और कुछ अनार्य,

कुछ उच्च गोत्र वाले होते हैं और कुछ नीच गोत्र वाले होते हैं,

कुछ लम्बे होते हैं और कुछ नाटे,

सुवण्णा वेगे, दुव्वण्णा वेगे,
सुरूवा वेगे, दुरूवा वेगे,
तेसिं च णं खेत्तवत्थूणि परिग्गहियाणि भवंति।
एसो आलावगो तहा णेयव्वो जहा पोंडरीए जाव सव्वोवसंता सव्वयाए परिनिव्वुडे त्ति वेमि।

एस ठाणे आरिए केवले जाव सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे एगंतसम्मे साहू।

दोच्चस्स ठाणस्स धम्मपक्खस्स विभंगे एवमाहिए।

—सुय. सु. २, अ. २, सु. ७११

तत्थ णं जे ते समण-माहणा एवं आइक्खंति जाव एवं परूवेंति—

"सव्वे पाणा जाव सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा, ण परिघेतव्वा, ण परितावेयव्वा, ण किलामेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा

ते णो आगंतु छेयाए, ते णो आगंतु भेयाए,
ते णो आगंतुं जाइ जरा-मरण-जोणि-जम्मण-संसार-पुणब्भवगब्भवास-भवपवंच कलंकलीभागिणो भविस्संति।
ते णो बहूणं दंडणाणं जाव णो बहूणं दुक्खदोमणसाणं आभागिणो भविस्संति।
अणादियं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं भुज्जो-भुज्जो णो अणुपरियट्टिस्संति।
ते सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करिस्संति।

—सुय. सु. २, अ. २, सु. ७२०

६४. धम्मबहुल मिस्सठाणस्स सरूव परूवणं—

अहावरे तच्चस्स ठाणस्स मीसगस्स विभंगे एवमाहिज्जइ—
इह खलु पाईणं वा जाव दाहिणं वा संतेगइया मणुस्सा भवंति, [illegible]

[illegible], अप्पारंभा, अप्पपरिग्गहा, धम्मिया धम्माणुया जाव [illegible] कप्पेमाणा विहरंति,

[illegible] सुसाहू।
[illegible] पाणाइवायाओ पडिविरया जावज्जीवाए, [illegible] जाव एगच्चाओ कुट्टण-पिट्टण-[illegible] परिकिलेसाओ पडिविरया जावज्जी-[illegible] अप्पडिविरया।
[illegible] सावज्जा अबोहिया कम्मंता [illegible], तओ वि एगच्चाओ [illegible] अप्पडिविरया।
[illegible] अभिगयजीवाजीवा, [illegible] किरिया-[illegible]

कुछ गोरे होते हैं और कुछ काले,
कुछ सुडौल होते हैं और कुछ कुडौल
उनके भूमि और घर परिगृहीत होते हैं,
ये आलापक पोंडरीक के समान जानना चाहिए यावत् जो समस्त कषायों से उपशान्त हैं और समस्त भोगों से निवृत्त हैं (वे धर्मपक्षीय हैं) ऐसा मैं कहता हूँ।

यह स्थान आर्य, द्वन्द्वरहित यावत् सब दुःखों के क्षय का मार्ग, एकान्त सम्यक् और श्रेष्ठ है।

इस प्रकार दूसरे स्थान धर्मपक्ष का विकल्प निरूपित है।

जो ये श्रमण-ब्राह्मण ऐसा आख्यान यावत् ऐसा प्ररूपण करते हैं कि—

"सब प्राण यावत् सब सत्वों का हनन नहीं करना चाहिए, अधीन नहीं बनाना चाहिए, दास नहीं बनाना चाहिए, परिताप नहीं देना चाहिए, क्लान्त नहीं करना चाहिए और प्राणों से वियोजित नहीं करना चाहिए।

वे भविष्य में शरीर के छेदन भेदन को प्राप्त नहीं होंगे।
वे भविष्य में जन्म, जरा, मरण, योनिजन्म, संसार में वार-वार उत्पन्न, गर्भवास, भवप्रपंच में व्याकुलचित्त वाले नहीं होंगे।
वे वहुत दंड यावत् अनेक दुःख व वैमनस्य के भागी नहीं होंगे।

वे अनादि-अनन्त लंवे मार्ग वाले, चातुर्गतिक संसाररूपी अरण्य में वार-वार परिभ्रमण नहीं करेंगे।
वे सिद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे।

६४. **धर्म वहुल मिश्र स्थान के स्वरूप का प्ररूपण—**

अव तीसरे स्थान मिश्रकपक्ष का विकल्प इस प्रकार कहा जाता है—
पूर्व यावत् दक्षिण दिशा में कई मनुष्य ऐसे होते हैं, यथा—

वे अल्प इच्छा वाले, अल्प आरम्भ वाले, अल्प परिग्रह वाले, धार्मिक, धर्म का अनुगमन करने वाले यावत् धर्म के द्वारा आजीविका करने वाले होते हैं।
वे सुशील, सुव्रत, सुप्रत्यानन्द सुसाधु हैं।
वे यावज्जीवन कुछ प्राणातिपात से विरत हैं और कुछ से अविरत हैं यावत् यावज्जीवन कुछ कुट्टन, पीडन, तर्जन, ताडन, वध, वंध परिक्लेश से विरत और कुछ से अविरत हैं।

जो इस प्रकार के अन्य सावद्य, अवोधि करने वाले, दूसरे प्राणियों को परितप्त करने वाले कर्म-व्यवहार किए जाते हैं। उनमें से भी कुछ से यावज्जीवन विरत होते हैं और कुछ से अविरत होते हैं।
कुछ ऐसे श्रमणोपासक होते हैं—जो जीव-अजीव को जानने वाले, पुण्य-पाप के मर्म को समझने वाले, आस्रव, संवर, वेदना, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, वन्ध और मोक्ष के विषय में कुशल होते हैं।

असहेज्जादेवासुर-नाग-सुवण्ण-जक्ख-रक्खस-किन्नर-किंपुरिस-गरुल-गंधव्व-महोरगादीएहिं देवगणेहिं निग्गंथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जा,

इणमेव निग्गंथे पावयणे णिस्संकिया णिक्कंखिया निव्वितिगिच्छा लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अभिगयट्ठा अट्ठिमिंजपेम्माणुरागरत्ता,

अयमाउसो ! निग्गंथे पावयणे अट्ठे, अयं परमट्ठे, सेसे अणट्ठे,

ऊसियफलिहा अवंगुयदुवारा चियत्तंतेउरपरघरपवेसा चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठ पुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा।

समणे निग्गंथे फासुएसणिज्जेणं असण- पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंवल-पायपुंछणेणं, ओसहभेसज्जेणं, पीढ-फलग-सेज्जासंथारएणं पडिलाभेमाणा,

वहूहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

ते णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा–

वहूइं वासाइं समणोवासगपरियाग पाउणंति,

पाउणित्ता आबाहंसि उप्पण्णंसि वा, अणुप्पण्णंसि वा, वहूइं भत्ताइं पच्चक्खाइंति, पच्चक्खाइत्ता, वहूइं भत्ताइं अणसणाए छेदेंति,

छेदेत्ता, आलोइयपडिक्कंता समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति, तं जहा–

महिड्ढिएसु महज्जुइएसु जाव महासोक्खेसु।

सेसं तहेव जाव–

एस ठाणे आरिए सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे जाव एगंतसम्मे साहू।

तच्चस्स ठाणस्स मीसगस्स विभंगे एवमाहिए।

–सुय. सु. २, अ. २, सु. ७१५

सत्य के प्रति स्वयं निश्चल, देव, असुर, नाग, सुपर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड़, गंधर्व, महोरग आदि देवगणों के द्वारा निर्ग्रन्थ प्रवचन से विचलित नहीं होते हैं।

इस निर्ग्रन्थ प्रवचन में शंका रहित, कांक्षा रहित, विचिकित्सा रहित, यथार्थ को सुनने वाले, ग्रहण करने वाले, उस विषय में प्रश्न करने वाले, उसका विनिश्चय करने वाले, उसे जानने वाले और प्रेमानुराग से अनुरक्त अस्थि-मज्जा वाले होते हैं।

हे आयुष्मन् ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन यथार्थ है, यह परमार्थ है, शेष अनर्थ है, (ऐसा मानने वाले)

वे अर्गला को ऊंचा और दरवाजे को खुला रखने वाले, अन्तःपुर और दूसरों के घर में विना किसी रुकावट के प्रवेश करने वाले, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा को प्रतिपूर्ण पौषध का सम्यक् अनुपालन करने वाले हैं।

वे श्रमण-निर्ग्रन्थों को प्रासुक और एषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कंवल, पादप्रोंछन, औषध, भैषज, पीठ-फलक शय्या और संस्तारक का दान देने वाले,

वहुल शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास के द्वारा तथा यथापरिग्रहीत तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए रहते हैं।

वे इस प्रकार के विहार से विचरण करते हुए

वहुत वर्षों तक श्रमणोपासक पर्याय का पालन करते हैं,

पालनकर रोगादि की वाधा के उत्पन्न होने पर या न होने पर अनेक दिनों तक भोजन का प्रत्याख्यान करते हैं, प्रत्याख्यान करके अनेक दिनों तक भोजन का अनशन के द्वारा विच्छेद करते हैं,

विच्छेद कर आलोचना और प्रतिक्रमण कर समाधि पूर्वक, कालमास में काल करके किन्हीं देवलोकों में उत्पन्न होते हैं।

वे देवलोक महान् ऋद्धि, महान् द्युति यावत् महान् सुख वाले होते हैं।

शेष कथन पूर्ववत् जानना चाहिए यावत्

यह स्थान आर्य यावत् सव दुःखों के क्षय का मार्ग, एकान्त सम्यक् और सुसाधु है।

यह तीसरे स्थान मिश्रपक्ष का विकल्प इस प्रकार कहा गया है।

६५. धम्मपक्खीयाणं पुरिसाणं पवित्ति परिणाम य–

अहावरे दोच्चस्स ठाणस्स धम्मपक्खस्स विभंगे एवमाहिज्जइ-

इह खलु पाईणं वा जाव दाहिणं वा संतेगइया मणुस्सा भवंति, तं जहा–

अणारंभा अपरिग्गहा धम्मिया धम्माणुगा धम्मिट्ठा जाव धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति।

सुसीला सुव्वया सुप्पडियाणंदा सुसाहू–

सव्वाओ पाणाइवायाओ पडिविरया जावज्जीवाए जाव सव्वाओ कुट्टण-पिट्टण-तज्जण-तालण वह-बंधपरिकिलेसाओ पडिविरया जावज्जीवाए,

६५. धर्मपक्षीय पुरुषों की प्रवृत्ति एवं परिणाम–

अव दूसरे स्थान धर्म का विकल्प इस प्रकार कहा जाता है-

पूर्व यावत् दक्षिण दिशाओं में कई मनुष्य होते हैं, यथा–

अनारंभी, अपरिग्रही, धार्मिक, धर्म का अनुगमन करने वाले, धर्मिष्ठ यावत् धर्म के द्वारा आजीविका करते हुए रहते हैं,

वे सुशील, सुव्रती, सुप्रत्यानन्द [illegible] सुसाधु हैं।

[illegible]

तेसिं णं भगवंताणं इमा एयारूवा जायामायावित्ती होत्था, तं जहा–

चउत्थे भत्ते, छट्ठे भत्ते, अट्ठमे भत्ते, दसमे भत्ते, दुवालसमे भत्ते, चोद्दसमे भत्ते, अद्धमासिए भत्ते, मासिए भत्ते, दोमासिए भत्ते, तेमासिए भत्ते, चउम्मासिए भत्ते, पंचमासिए भत्ते, छम्मासिए भत्ते। अदुत्तरं च णं

१. उक्खित्तचरगा,
२. णिक्खित्तचरगा,
३. उक्खित्तणिक्खित्तचरगा,
४. अंतचरगा,
५. पंतचरगा,
६. लूहचरगा,
७. समुदाणचरगा,
८. संसट्ठचरगा,
९. असंसट्ठचरगा,
१०. तज्जायसंसट्ठचरगा,
११. दिट्ठलाभिया,
१२. अदिट्ठलाभिया,
१३. पुट्ठलाभिया,
१४. अपुट्ठलाभिया,
१५. भिक्खलाभिया,
१६. अभिक्खलाभिया,
१७. अण्णायचरगा,
१८. अन्नगिलायचरगा,
१९. ओवणिहिया,
२०. संखादत्तिया,
२१. परिमियपिंडवाइया,
२२. सुद्धेसणिया,
२३. अंताहारा,
२४. पंताहारा,
२५. अरसाहारा,
२६. विरसाहारा,
२७. लूहाहारा,
२८. तुच्छाहारा,
२९. अंतजीवी,
३०. पंतजीवी,
३१. पुरिमड्ढिया,
३२. आयंबिलिया,
३३. निव्विगइया,
३४. अमज्ज-मंसासिणो,
३५. णो णियामरसभोई,
३६. ठाणाइया,
३७. पडिमट्ठाइया,

उन भगवन्तों की इस प्रकार की संयमी जीवन चलाने वाली प्रवृत्ति होती है, यथा–

वे एक दिन का उपवास, दो दिन का उपवास, तीन दिन का उपवास, चार दिन का उपवास, पांच दिन का उपवास, छह दिन का उपवास, एक पक्ष का उपवास, एक मास का उपवास, दो मास का उपवास, तीन मास का उपवास, चार मास का उपवास, पांच मास का उपवास, छह मास का उपवास, यथा–

१. पाक-भोजन से बाहर निकाले हुए भोजन को लेने वाले।
२. पाक-भोजन में रखे भोजन को लेने वाले।
३. पाक-भोजन से बाहर निकाले तथा रखे भोजन को लेने वाले।
४. निरस भोजन लेने वाले।
५. बासी भोजन लेने वाले।
६. रूखा भोजन लेने वाले।
७. अनेक घरों से भिक्षा लेने वाले।
८. लिप्त हाथ या कड़छी से भिक्षा लेने वाले।
९. अलिप्त हाथ या कड़छी से भिक्षा लेने वाले।
१०. देय द्रव्य से लिप्त हाथ या कड़छी से भिक्षा लेने वाले।
११. सामने दीखने वाले आहार आदि को लेने वाले।
१२. सामने नहीं दीखने वाले आहार आदि को लेने वाले।
१३. "क्या भिक्षा लोगे?" यह पूछे जाने पर ही भिक्षा लेने वाले।
१४. "क्या भिक्षा लोगे"–यह प्रश्न पूछे विना भी भिक्षा लेने वाले।
१५. स्वयं भिक्षा लाकर भोजन करने वाले।
१६. दूसरे श्रमणों द्वारा लाई हुई भिक्षा का भोजन लेने वाले।
१७. परिचय दिए विना भोजन लेने वाले।
१८. आहार के विना ग्लान होने पर ही भिक्षा लेने वाले।
१९. पास में रखा हुआ भोजन लेने वाले।
२०. परिमित दत्तियों का भोजन लेने वाले।
२१. परिमित द्रव्यों की भिक्षा लेने वाले।
२२. निर्दोष या व्यंजन रहित भोजन लेने वाले।
२३. बचा-खुचा भोजन करने वाले।
२४. बासी भोजन करने वाले।
२५. हींग आदि के बघार से रहित भोजन करने वाले।
२६. पुराने धान्यों का भोजन करने वाले।
२७. रूखा आहार करने वाले।
२८. तुच्छ भोजन करने वाले।
२९. बचे-खुचे भोजन से जीवन चलाने वाले।
३०. बासी भोजन से जीवन चलाने वाले।
३१. दिन के पूर्वार्ध में भोजन नहीं करने वाले।
३२. आयंबिल तप करने वाले।
३३. घृत आदि विकृतियों को न लेने वाले।
३४. मद्य मांस न खाने वाले।
३५. [illegible]
३६. [illegible]
३७. [illegible]

३८. विशेष प्रकार से बैठने वाले।
३९. वीरासन की मुद्रा में अवस्थित।
४०. पैरों को पसार कर बैठने वाले।
४१. लक्कड़ की तरह टेढ़े होकर सोने वाले।
४२. आतापना लेने वाले।
४३. वस्त्र त्याग करने वाले।
४४. शरीर से निर्मोही रहने वाले।
४५. खुजली नहीं करने वाले।
४६. नहीं थूकने वाले।
४७. केश, श्मश्रु, रोम और नखों को न सजाने वाले।
४८. समस्त शरीर को सजाने संवारने से मुक्त रहने वाले होते हैं।

वे इस प्रकार से विचरण करते हुए बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन करते हैं।

पालन करने में बाधा उत्पन्न होने पर या न होने पर, अनेक दिनों तक भोजन का प्रत्याख्यान करते हैं।

प्रत्याख्यान कर अनेक दिनों तक भोजन का त्याग करते हैं।

त्याग करके जिस प्रयोजन के लिए नग्न-भाव, मुंडभाव, स्नान का निषेध, दतौन का निषेध, छत्र का निषेध, जूतों का निषेध, भूमि-शय्या, फलकशय्या, काष्ठशय्या, केशलोच, ब्रह्मचर्यवास भिक्षार्थ परघरप्रवेश होने पर आहार प्राप्त में लाभ, अलाभ, मान, अपमान, अवहेलना, निन्दा, भर्त्सना, गर्हा, तर्जना, ताड़ना, नाना प्रकार के ग्राम्यकंटक (चुभने वाले शब्द) आदि बाईस परीषह और उपसर्ग सहे जाते हैं, सहकर साधु धर्म की आराधना करते हैं।

आराधना करके अन्तिम उच्छ्वास-निःश्वासों में से अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, पूर्ण, प्रतिपूर्ण, केवलज्ञानदर्शन प्राप्त करते हैं।

प्राप्त करके वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं तथा सब दुःखों का अन्त करते हैं।

कुछ अनगार एक भव करके मुक्त होते हैं।

कुछ दिन पूर्व कर्म के अवशेष रहने पर कालमास में काल करके किन्हीं देवलोकों में देव रूप में उत्पन्न होते हैं, यथा–

वे देवलोक महान् ऋद्धि, महान् द्युति, महान् पराक्रम, महान् यश, महान् बल, महान सामर्थ्य और महान् सुख वाले होते हैं। उन देवलोकों में महान् ऋद्धि वाले यावत् महान् सुख वाले देव होते हैं। वे हार से सुशोभित वक्ष स्थल वाले, भुजाओं में कड़े और भुजरक्षक पहनने वाले, बाजूबन्ध, कुंडल, कपोल-आलेखन और कर्णफूल को धारण करने वाले, विचित्र हस्ताभरण वाले, मस्तक पर विचित्र माला और मुकुट धारण करने वाले, कल्याणकारी सुगंधित उत्तम वस्त्र पहनने वाले, कल्याणकारी श्रेष्ठ माला और अनुलेपन धारण करने वाले, प्रभायुक्त शरीर वाले, लम्बी वनमालाओं को धारण करने वाले,

दिव्य रूप, दिव्य वर्ण, दिव्य गंध, दिव्य स्पर्श, दिव्य संघात, दिव्य संस्थान, दिव्य ऋद्धि, दिव्यद्युति, दिव्यप्रभा, दिव्य छाया, दिव्य अर्चा, दिव्य तेज, दिव्य लेश्या से दसों दिशाओं को उद्योतित और प्रभासित करने वाले, कल्याणकारी गति वाले, कल्याणकारी स्थिति वाले और कल्याणकारी भविष्य वाले होते हैं।

एस ठाणे आरिए जाव सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे एंगतसम्मे साहू।

दोच्चस्स ठाणस्स धम्मपक्खस्स विभंगे एवमाहिए।

–सुय. सु. २, अ. २, सु. ७१४

यह स्थान आर्य यावत् सब दुःखों के क्षय का मार्ग, एकांत सम्यक् और सुसाधु है।

यह दूसरे स्थान धर्मपक्ष का विकल्प कहा गया है।

६६. ओहेण अकिरिया–

एगा अकिरिया

–सम. सम. १, सु. ६

६६. सामान्य रूप से अक्रिया–

अक्रिया एक है।

६७. अकिरिया फ़लं–

प. से णं भंते ! अकिरिया किं फला ?

उ. गोयमा ! सिद्धिपज्जवसाणफला पण्णत्ता[1],

–विया. स. २, उ. ५, सु. २६

६७. अक्रिया का फल–

प्र. भंते ! अक्रिया का क्या फल है ?

उ. गौतम ! उसका अंतिम फल सिद्धि प्राप्त करना कहा है।

६८. सुत्त-जागर-वलियत्त-दुव्वलियत्त-दक्खत्तआलसियत्ताइं पडुच्च साहु-असाहु परूवणं–

प. सुत्तत्तं भंते ! साहू, जागरियत्तं साहू ?

उ. जयंति ! अत्थेगइयाणं जीवाणं सुत्तत्तं साहू, अत्थेगइयाणं जीवाणं जागरियत्तं साहू।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"अत्थेगइयाणं जीवाणं सुत्तत्तं साहू, अत्थेगइयाणं जीवाणं जागरियत्तं साहू ?"

उ. जयंती ! जे इमे जीवा अहम्मिया, अहम्माणुया, अहम्मिट्ठा, अहम्मक्खाई, अहम्मपलोई अहम्म-पलज्जणा, अहम्मसमुदायारा अहम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति,

एएसि णं जीवाणं सुत्तत्तं साहू।

एए णं जीवा सुत्ता समाणा नो वहूणं पाणाणं, भूयाणं, जीवाणं, सत्ताणं दुक्खणयाए सोयणयाए जाव परियावणयाए वट्टंति।

एए णं जीवा सुत्ता समाणा अप्पाणं वा परं वा तदुभयं वा नो वहूहिं अहम्मियाहिं संजोयणाहिं संजोएत्तारो भवंति।

एएसि णं जीवाणं सुत्तत्तं साहू।

जयंती ! जे इमे जीवा धम्मिया धम्माणुया जाव धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति,

एएसि णं जीवाणं जागरियत्तं साहू।

एए णं जीवा जागरा समाणा वहूणं पाणाणं जाव सत्ताणं अदुक्खणयाए जाव अपरियावणयाए वट्टंति।

एए णं जीवा जागरमाणा अप्पाणं वा, परं वा, तदुभयं वा वहूहिं धम्मियाहिं संजोयणाहिं संजोएत्तारो भवंति।

एए णं जीवा जागरमाणा धम्मजागरियाए अप्पाणं जागरइत्तारो भवंति।

एएसि णं जीवाणं जागरियत्तं साहू।

६८. सुप्त-जागृत-सबलत्व-दुर्बलत्व-दक्षत्व-आलसित्व की अपेक्षा साधु-असाधुपने का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जीवों का सुप्त रहना अच्छा है या जागृत रहना अच्छा है ?

उ. जयन्ती ! कुछ जीवों का सुप्त रहना अच्छा है और कुछ जीवों का जागृत रहना अच्छा है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"कुछ जीवों का सुप्त रहना अच्छा है और कुछ जीवों का जागृत रहना अच्छा है ?"

उ. जयन्ती ! जो ये अधार्मिक, अधर्मानुसरणकर्ता, अधर्मिष्ट, अधर्म का कथन करने वाले, अधर्मावलोकनकर्ता, अधर्म में आसक्त, अधर्माचरण करने वाले और अधर्म से ही आजीविका करने वाले हैं।

उन जीवों का सुप्त रहना अच्छा है,

क्योंकि ये जीव सुप्त रहते हैं तो अनेक प्राणी, भूतों, जीवों और सत्त्वों को दुःख शोक यावत् परिताप देने में प्रवृत्त नहीं होते।

सोये रहने पर ये जीव स्वयं को, दूसरे को और स्व-पर को अनेक अधार्मिक क्रियाओं (प्रपंचों) में संयोजित नहीं करते।

इसलिए इन जीवों का सुप्त रहना अच्छा है।

जयन्ती ! जो ये धार्मिक, धर्मानुसारी यावत् धर्म से ही अपनी आजीविका करने वाले हैं,

उन जीवों का जागृत रहना अच्छा है,

क्योंकि ये जीव जागृत हों तो बहुत से प्राणी यावत् सत्त्वों को दुःख यावत् परिताप देने में प्रवृत्त नहीं होते।

ऐसे (धर्मिष्ठ) जीव जागृत रहते हुए स्वयं को, दूसरों को और स्व-पर को अनेक धार्मिक प्रवृत्तियों में संयोजित करते रहते हैं।

ऐसे जीव जागृत रहते हुए धर्मजागरणा से अपने आपको जागृत रखने वाले होते हैं।

अतः इन जीवों का जागृत रहना अच्छा है।

[1] [illegible]

[illegible]

से तेणट्ठेणं जयंति ! एवं वुच्चइ–

'अत्थेगइयाणं जीवाणं सुत्तत्तं साहू, अत्थेगइयाणं जीवाणं जागरियत्तं साहू।''

प. बलियत्तं भंते ! साहू, दुब्बलियत्तं साहू ?

उ. जयंति ! अत्थेगइयाणं जीवाणं बलियत्तं साहू, अत्थेगइयाणं जीवाणं दुब्बलियत्तं साहू।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

''अत्थेगइयाणं जीवाणं बलियत्तं साहू अत्थेगइयाणं जीवाणं दुब्बलियत्तं साहू ?''

उ. जयंति ! जे इमे जीवा अहम्मिया जाव अहम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति एएसि णं जीवाणं दुब्बलियत्तं साहू।

एएणं जीवा एवं जहा सुत्तस्स तहा दुब्बलियस्स वत्तव्वया भाणियव्वा।

बलियस्स जहा जागरस्स तहा भाणियव्वं जाव संजोएत्तारो भवंति,

एएसि णं जीवाणं बलियत्तं साहू।

से तेणट्ठेणं जयंति! एवं वुच्चइ–

'अत्थेगइयाणं जीवाणं बलियत्तं साहू, अत्थेगइयाणं जीवाणं दुब्बलियत्तं साहू।'

प. दक्खत्तं भंते ! साहू, आलसियत्तं साहू ?

उ. जयंति ! अत्थेगइयाणं जीवाणं दक्खत्तं साहू, अत्थेगइयाणं जीवाणं आलसियत्तं साहू।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

''अत्थेगइयाणं जीवाणं दक्खत्तं साहू, अत्थेगइयाणं जीवाणं आलसियत्तं साहू'' ?

उ. जयंति ! जे इमे जीवा अहम्मिया जाव अहम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति,

एएसि णं जीवाणं आलसियत्तं साहू, एए णं जीवा अलसा समाणा नो वहूणं **जहा सुत्ता तहा अलसा भाणियव्वा।**

जहा जागरा तहा दक्खा भाणियव्वा जाव संजोएत्तारो भवंति।

एए णं जीवा दक्खा समाणा वहूहिं–

१. आयरियवेयावच्चेहिं, २. उवज्झायवेयावच्चेहिं,
३. थेरवेयावच्चेहिं, ४. तवस्सीवेयावच्चेहिं,
५. गिलाणवेयावच्चेहिं, ६. सेहवेयावच्चेहिं,
७. कुलवेयावच्चेहिं, ८. गणवेयावच्चेहिं,
९. संघवेयावच्चेहिं, १०. साहम्मियवेयावच्चेहिं,

अत्ताणं संजोएत्तारो भवंति।

एएसि णं जीवाणं दक्खत्तं साहू।

से तेणट्ठेणं जयंति ! एवं वुच्चइ–

''अत्थेगइयाणं जीवाणं दक्खत्तं साहू, अत्थेगइयाणं जीवाणं आलसियत्तं साहू।'' *–विया. स. १२, उ. २, सु. १८-२०*

इस कारण से जयन्ती ! ऐसा कहा जाता है कि–

''कई जीवों का सुप्त रहना अच्छा है और कई जीवों का जाग्रत रहना अच्छा है।''

प्र. भंते ! जीवों की सबलता अच्छी है या दुर्बलता अच्छी है?

उ. जयन्ती ! कुछ जीवों की सबलता अच्छी है और कुछ जीवों की दुर्बलता अच्छी है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

''कुछ जीवों की सबलता अच्छी है और कुछ जीवों की दुर्बलता अच्छी है ?''

उ. जयन्ती ! जो जीव अधार्मिक यावत् अधर्म से ही आजीविका करते हैं, उन जीवों की दुर्बलता अच्छी है।

जिस प्रकार जीवों के सुप्तपन का कथन किया है उसी प्रकार दुर्बलता का भी कथन करना चाहिए।

जाग्रत के समान सबलता का कथन धार्मिक संयोजनाओं में संयोजित करते हैं पर्यन्त कहना चाहिए।

ऐसे (धार्मिक) जीवों की सबलता अच्छी है।

इस कारण से जयन्ती ! ऐसा कहा जाता है कि–

''कुछ जीवों की सबलता अच्छी है और कुछ जीवों की निर्बलता अच्छी है।''

प्र. भंते ! जीवों का दक्षत्व अच्छा है या आलसीपना अच्छा है?

उ. जयंती ! कुछ जीवों का दक्षत्व अच्छा है और कुछ जीवों का आलसीपना अच्छा है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

''कुछ जीवों का दक्षपना अच्छा है और कुछ जीवों का आलसीपना अच्छा है ?''

उ. जयन्ती ! जो जीव अधार्मिक यावत् अधर्म से ही आजीविका करते हैं उन जीवों का आलसीपन अच्छा है।

इन जीवों के आलसी होने पर सुप्त के समान आलसीपने का कथन करना चाहिए।

जागृत के कथन के समान दक्षता का धर्म के साथ संयोजित करने वाले होते हैं पर्यन्त कथन कहना चाहिए।

ये जीव दक्ष हों तो

१. आचार्य वैयावृत्य, २. उपाध्याय वैयावृत्य,
३. स्थविर वैयावृत्य, ४. तपस्वी वैयावृत्य,
५. ग्लान (रुग्ण) वैयावृत्य, ६. शैक्ष (नवदीक्षित) वैयावृत्य,
७. कुल वैयावृत्य, ८. गण वैयावृत्य,
९. संघ वैयावृत्य और १०. साधर्मिक वैयावृत्य (सेवा) से अपने आपको संयोजित (संलग्न) करने वाले होते हैं।

इसलिए इन जीवों की दक्षता अच्छी है।

इस कारण से जयन्ती ! ऐसा कहा जाता है कि–

''कुछ जीवों का दक्षत्व (उद्यमीपन) अच्छा है और कुछ जीवों का आलसीपन अच्छा है।''

६९. चउव्विहाओ अंतकिरियाओ–

चत्तारि अंतकिरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. तत्थ खलु इमा पढमा अंतकिरिया–

अप्पकम्मपच्चायाए या वि भवइ, से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, संजमबहुले, संवरबहुले, समाहिबहुले, लूहे, तीरट्ठी उवहाणवं दुक्खक्खवे तवस्सी।

तस्स णं णो तहप्पगारे तवे भवइ, णो तहप्पगारा-वेयणा भवइ,

तहप्पगारे पुरिसजाए दीहेणं परियाएणं सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिणिव्वायइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ,

जहा-से भरहे राया चाउरंतचक्कवट्टी, पढमा अंतकिरिया।

२. अहावरा दोच्चा अंतकिरिया,

महाकम्मे पच्चायाए या वि भवइ, से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, संजमबहुले जाव उवहाणवं दुक्खक्खवे तवस्सी,

तस्स णं तहप्पगारे तवे भवइ

तहप्पगारा वेयणा भवइ,

तहप्पगारे पुरिसजाए निरुद्धेणं परियाएणं सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेइ,

जहा से गयसुहमाले अणगारे, दोच्चा अंतकिरिया।

३. अहावरा तच्चा अंतकिरिया,

महाकम्मे पच्चायाए या वि भवइ, से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, संजम बहुले जाव उवहाणवं दुक्खक्खवे तवस्सी,

तस्स णं तहप्पगारे तवे भवइ,

तहप्पगारा वेयणा भवइ,

तहप्पगारे पुरिसजाए दीहेणं परियाएणं सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेइ

जहा से सणंकुमारे राया चाउरंतचक्कवट्टी, तच्चा अंतकिरिया।

४. अहावरा चउत्था अंतकिरिया–

अप्पकम्म पच्चायाए या वि भवइ, से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, संजमबहुले जाव उवहाणवं दुक्खक्खवे तवस्सी,

तस्स णं णो तहप्पगारे तवे भवइ,

णो तहप्पगारा वेयणा भवइ,

तहप्पगारे पुरिसजाए निरुद्धेणं परियाएणं सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेइ,

जहा सा मरुदेवा भगवई, चउत्था अंतकिरिया।

[illegible]

६९. चार प्रकार की अन्तक्रियाएं–

अन्तक्रिया चार प्रकार की कही गई है, यथा–

१. उनमें यह प्रथम अन्तक्रिया है–

कोई पुरुष अल्प कर्मों के साथ मनुष्य जन्म को प्राप्त होता है। वह मुण्डित होकर गृहस्थ से अनगार धर्म में प्रव्रजित हो संयम, संवर और समाधि-युक्त होकर रूक्षभोजी, संसार सागर को पार करने का इच्छुक, उपधान करने वाला, दुःख को खपाने वाला तपस्वी होता है।

उसके न तो उस प्रकार का उत्कृष्ट तप होता है, न उस प्रकार की उत्कृष्ट वेदना होती है।

इस प्रकार का पुरुष दीर्घ पर्याय के द्वारा सिद्ध बुद्ध, मुक्त परिनिवृत्त हो सब दुःखों का अन्त करता है।

जैसे–चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा, यह प्रथम अन्तक्रिया है।

२. दूसरी अन्तक्रिया इस प्रकार है–

कोई पुरुष बहुत कर्मों के साथ मनुष्य जन्म को प्राप्त होता है। वह मुण्डित होकर गृहस्थ से अनगार धर्म में प्रव्रजित हो, संयमयुक्त यावत् उपधान करने वाला, दुःख को खपाने वाला तपस्वी होता है।

उसके उत्कृष्ट तप होता है।

उत्कृष्ट वेदना होती है।

इस प्रकार का पुरुष अल्पकालिक साधु-पर्याय के द्वारा सिद्ध होता है यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है।

जैसे–गजसुकुमाल अनगार, यह दूसरी अन्तक्रिया है।

३. तीसरी अन्तक्रिया इस प्रकार है–

कोई पुरुष बहुत कर्मों के साथ मनुष्य-जन्म को प्राप्त होता है। वह मुण्डित होकर गृहस्थ से अनगार धर्म में प्रव्रजित हो संयमयुक्त यावत् उपधान करने वाला, दुःख को खपाने वाला तपस्वी होता है।

उसके उत्कृष्ट तप होता है,

उत्कृष्ट वेदना होती है।

इस प्रकार का पुरुष दीर्घ-कालिक साधु पर्याय के द्वारा सिद्ध होता है यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है।

जैसे–चातुरन्त चक्रवर्ती सनत्कुमार राजा, यह तीसरी अन्तक्रिया है।

४. चौथी अन्तक्रिया इस प्रकार है–

कोई पुरुष अल्प कर्मों के साथ मनुष्य जन्म को प्राप्त होता है, वह मुण्डित होकर गृहस्थ से अनगार धर्म में प्रव्रजित हो संयमयुक्त यावत् उपधान करने वाला [illegible] तपस्वी होता है।

उसके न तो उत्कृष्ट तप होता है,

न उत्कृष्ट वेदना होती है,

इस प्रकार का पुरुष [illegible] साधु पर्याय के द्वारा [illegible] होता है यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है।

[illegible]

७०. जीव-चउवीसदंडएसु अंतकिरिया भावाभाव परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! अंतकिरियं करेज्जा ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए करेज्जा, अत्थेगइए नो करेज्जा।[1]

दं. १-२४. एवं नेरइए जाव वेमाणिए।

प. दं. १. नेरइए णं भंते ! नेरइएसु अंतकिरियं करेज्जा ?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

प. दं. २. नेरइए णं भंते ! असुरकुमारेसु अंतकिरियं करेज्जा ?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

दं. ३-२४. एवं जाव वेमाणिएसु, णवरं–

प. नेरइए णं भंते ! मणूसेसु अंतकिरियं करेज्जा ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए करेज्जा, अत्थेगइए नो करेज्जा।

एवं असुरकुमारे जाव वेमाणिए।

एवमेव चउवीसं-चउवीसं दंडगा भवंति।

–पण्ण. प. २०, सु. १४०७-१४०९

७०. जीव-चौवीस दण्डकों में अन्तक्रिया के भावाभाव का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या जीव अन्तक्रिया करता है ?

उ. हां, गौतम ! कोई जीव अन्तक्रिया करता है और कोई जीव नहीं करता है।

दं १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त की अन्तक्रिया के लिए जानना चाहिए।

प्र. दं. १. भंते ! क्या नारक नारकों में रहता हुआ अन्तक्रिया करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. दं. २. भंते ! क्या नारक असुरकुमारों में अन्तक्रिया करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

दं. ३-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त अन्तक्रिया की असमर्थता जाननी चाहिए, विशेष–

प्र. भंते ! क्या नारक मनुष्यों में आकर अन्तक्रिया करता है ?

उ. गौतम ! कोई (अन्तक्रिया) करता है और कोई नहीं करता है।

इसी प्रकार असुरकुमार से वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी तरह चौवीस दण्डकों की चौवीस दण्डकों में अन्तक्रिया कहना चाहिए।

(ये सब मिलाकर २४x२४=५७६ प्रश्नोत्तर होते हैं।)

७१. अणंतरागयाईणं चउवीसदंडएसु अंतकिरिया परूवणं–

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं अणंतरागया अंतकिरियं करेंति, परंपरागया अंतकिरियं करेंति ?

उ. गोयमा ! अणंतरागया वि, अंतकिरियं करेंति, परंपरागया वि अंतकिरियं करेंति।

एवं रयणप्पभापुढवी नेरइया वि जाव पंकप्पभापुढवी नेरइया।

प. धूमप्पभापुढवीनेरइया णं भंते ! किं अणंतरागया अंतकिरियं करेंति, परंपरागया अंतकिरियं करेंति ?

उ. गोयमा ! णो अणंतरागया अंतकिरियं करेंति, परंपरागया अंतकिरियं करेंति

एवं जाव अहेसत्तमापुढवीनेरइया।

दं. २-१३, १६. असुरकुमारा जाव थणियकुमारा पुढवी-आउ-वणस्सइकाइया य अणंतरागया वि अंतकिरियं करेंति, परंपरागया वि अंतकिरियं करेंति।

दं. १४-१५-१७-१९. तेउ-वाउ-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिया णो अणंतरागया अंतकिरियं करेंति, परंपरागया अंतकिरियं करेंति।

दं. २०-२४. सेसा अणंतरागया वि अंतकिरियं करेंति, परंपरागया वि अंतकिरियं करेंति।

–पण्ण. प. २०, सु. १४१०-१४१३

७१. चौवीसदंडकों में अनन्तरागतादि की अन्तक्रिया का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! क्या अनन्तरागत नैरयिक अन्तक्रिया करते हैं या परम्परागत अन्तक्रिया करते हैं ?

उ. गौतम ! अनन्तरागत भी अन्तक्रिया करते हैं और परम्परागत भी अन्तक्रिया करते हैं।

इसी प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों से पंकप्रभा पृथ्वी के नैरयिक पर्यन्त अन्तक्रिया के लिए जानना चाहिए।

प्र. भंते ! धूमप्रभापृथ्वी के अनन्तरागत नैरयिक अन्तक्रिया करते हैं या परम्परागत अन्तक्रिया करते हैं ?

उ. गौतम ! अनन्तरागत अन्तक्रिया नहीं करते, किन्तु परम्परागत अन्तक्रिया करते हैं।

इसी प्रकार अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त के नैरयिकों की अन्तक्रिया कहनी चाहिए।

दं. २-१३, १६. असुरकुमार से स्तनितकुमार पर्यन्त भवनपति देव तथा पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक अनन्तरागत जीव भी अन्तक्रिया करते हैं और परम्परागत भी अन्तक्रिया करते हैं।

दं. १४, १५, १७, १९. तेजस्कायिक, वायुकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय अनन्तरागत जीव अन्तक्रिया नहीं करते, किन्तु परम्परागत अन्तक्रिया करते हैं।

दं. २०-२४. शेष सभी अनन्तरागत अन्तक्रिया भी करते हैं और परम्परागत अन्तक्रिया भी करते हैं।

१. विया. स. १, उ. २, सु. १८

७२. अणंतरागयाणं चउवीसदंडएसु एगसमए अंतकिरिया परूवणं–

प. दं. १. अणंतरागया णं भंते ! नेरइया एगसमए णं केवइया अंतकिरियं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगो वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं दस।

रयणप्पभापुढवीनेरइया वि एवं चेव जाव वालुयप्पभापुढवीनेरइया।

प. अणंतरागया णं भंते ! पंकप्पभापुढवीनेरइया एगसमएणं केवइया अंतकिरियं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं चत्तारि।

प. दं. २-११. अणंतरागया णं भंते ! असुरकुमारा एगसमएणं केवइया अंतकिरियं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्का वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं पंच।

प. अणंतरागयाओ णं भंते! असुरकुमारीओ एगसमए णं केवइयाओ अंतकिरियं पकरेंति ?

उ. गोयमा! जहण्णेणं एक्का वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं पंच।

एवं जहा असुरकुमारा सदेवीया तहा जाव थणियकुमारा।

प. दं. १२. अणंतरागया णं भंते ! पुढवीकाइया एगसमएणं केवइया अंतकिरियं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं चत्तारि।

दं. १३. एवं आउक्काइया वि चत्तारि,

दं. १६. वणस्सइकाइया छ,

दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया दस, तिरिक्खजोणिणीओ दस,

दं. २१. मणुस्सा दस, मणुस्सीओ वीसं,

दं. २२. वाणमंतरा दस, वाणमंतरीओ पंच,

दं. २३. जोइसिया दस, जोइसिणीओ वीसं,

दं. २४. वेमाणिया अट्ठसयं, वेमाणिणीओ वीसं।

–पण्ण. प. २०, सु. [illegible]

७२. एक समय में अनन्तरागत चौवीस दंडकों में अंतक्रिया का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! अनन्तरागत नारक एक समय में कितने अन्तक्रिया करते हैं ?

उ. गौतम ! एक समय में वे जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट दस अन्तक्रिया करते हैं।

रत्नप्रभापृथ्वी के यावत् वालुकाप्रभापृथ्वी के अनन्तरागत नारक भी इसी संख्या में अन्तक्रिया करते हैं।

प्र. भंते ! पंकप्रभापृथ्वी के अनन्तरागत नारक एक समय में कितने अन्तक्रिया करते हैं ?

उ. गौतम ! एक समय में वे जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट चार अन्तक्रिया करते हैं।

प्र. दं. २-११. भंते ! अनन्तरागत असुरकुमार एक समय में कितने अन्तक्रिया करते हैं ?

उ. गौतम ! एक समय में वे जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट पाँच अन्तक्रिया करते हैं।

प्र. भंते ! अनन्तरागत असुरकुमारियां एक समय में कितनी अन्तक्रिया करती हैं ?

उ. गौतम ! वे एक समय में जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट पांच अन्तक्रिया करती हैं।

इसी प्रकार जैसे अनन्तरागत देवियों सहित असुरकुमारों की संख्या कही वैसे ही स्तनितकुमारों पर्यन्त की संख्या कहनी चाहिए।

प्र. दं. १२. भंते ! अनन्तरागत पृथ्वीकायिक एक समय में कितने अन्तक्रिया करते हैं ?

उ. गौतम ! एक समय में वे जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट चार अन्तक्रिया करते हैं।

दं. १३. इसी प्रकार अप्कायिक भी उत्कृष्ट से चार

दं. १६. वनस्पतिकायिक छह,

दं. २०. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक दस, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियां दस,

दं. २१. मनुष्य दस, मनुष्यनियां बीस,

दं. २२. वाणव्यन्तर देव दस, वाणव्यन्तर देवियां पांच,

दं. २३. ज्योतिष्क देव दस, ज्योतिष्क देवियां बीस,

दं. २४. वैमानिक देव एक सौ आठ, वैमानिक देवियां बीस अन्तक्रिया करती हैं।

दं. १७-१९. अनन्तरागत तेजस्कायिक और वायुकायिक अन्तक्रिया नहीं करते हैं।

७३. चउवीसदंडएसु उव्वट्टणानंतरं अंतकिरिया परूवणं–

प. (क) नेरइए णं भंते ! नेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता नेरइएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. नेरइए णं भंते ! नेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता असुरकुमारेसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

७३. चौबीस दंडकों में उद्वर्तनानन्तर अन्तक्रिया का प्ररूपण–

प्र. (क) [illegible]

उ. [illegible]

प्र. [illegible]

उ. [illegible]

प. णेरइए णं भंते ! णेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता नागकुमारेसु जाव चउरिंदिएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. णेरइए णं भंते ! णेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए णो उववज्जेज्जा।

प. जे णं भंते ! णेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएसु उववज्जेज्जा से णं केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा।

प. जे णं भंते ! केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए से णं केवलं बोहिं बुज्झेज्जा ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए बुज्झेज्जा अत्थेगइए णो बुज्झेज्जा।

प. जे णं भंते ! केवलं बोहिं बुज्झेज्जा, से णं सद्दहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! सद्दहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा।

प. जे णं भंते ! सद्दहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा से णं आभिणिबोहियणाण-सुयणाणाइं उप्पाडेज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! उप्पाडेज्जा।

प. जे णं भंते ! आभिणिबोहियणाण-सुयणाणाइं उप्पाडेज्जा से णं संचाएज्जा सीलं वा वयं वा गुणं वा वेरमणं वा पच्चक्खाणं वा पोसहोववासं वा पडिवज्जित्तए ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए संचाएज्जा, अत्थेगइए णो संचाएज्जा।

प. जे णं भंते ! संचाएज्जा सीलं वा जाव पोसहोववासं वा पडिवज्जित्तए से णं ओहिणाणं उप्पाडेज्जा ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए उप्पाडेज्जा, अत्थेगइए णो उप्पाडेज्जा।

प. जे णं भंते ! ओहिणाणं उप्पाडेज्जा, से णं संचाएज्जा मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. णेरइए णं भंते ! णेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता मणूसेसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए णो उववज्जेज्जा।

प. जे णं भंते ! उववज्जेज्जा से णं केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा।
जहा पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएसु तहा मणुस्सेसु जाव–

प्र. भंते ! नारक जीव नारकों में से निकल कर क्या अनन्तर (सीधा) नागकुमारों में यावत् चतुरिन्द्रियों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! नारक जीव नारकों में से निकलकर क्या अनन्तर (सीधा) पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! कोई उत्पन्न होता है और कोई उत्पन्न नहीं होता है।

प्र. भंते ! जो नारक नरकों में से निकल कर अनन्तर (सीधा) पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों में उत्पन्न होता है तो क्या वह केवलिप्ररूपित धर्म श्रवण का लाभ प्राप्त करता है?

उ. गौतम ! कोई धर्मश्रवण का लाभ प्राप्त करता है और कोई नहीं करता है।

प्र. भंते ! जो केवलि-प्ररूपित धर्मश्रवण का लाभ प्राप्त करता है क्या वह केवलबोधि को प्राप्त करता है?

उ. गौतम ! कोई केवलबोधि को प्राप्त करता है और कोई नहीं करता है।

प्र. भंते ! जो केवल-बोधि को प्राप्त करता है तो क्या वह उस पर श्रद्धा प्रतीति रुचि करता है?

उ. हां, गौतम ! वह उस पर श्रद्धा प्रतीति रुचि करता है।

प्र. भंते ! जो श्रद्धा, प्रतीति रुचि करता है क्या वह आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान उपार्जित करता है?

उ. हां, गौतम ! वह उपार्जित करता है।

प्र. भंते ! जो आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान का उपार्जन करता है, क्या वह शील, व्रत, गुण, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास अंगीकार करने में समर्थ होता है?

उ. गौतम ! कोई अंगीकार करने में समर्थ होता है और कोई नहीं होता।

प्र. भंते ! जो शील यावत् पौषधोपवास अंगीकार करने में समर्थ होता है क्या वह अवधिज्ञान उपार्जित करता है?

उ. गौतम ! कोई उपार्जित करता है और कोई नहीं करता है।

प्र. भंते ! जो अवधिज्ञान उपार्जित करता है तो क्या वह मुण्डित होकर गृह त्यागकर अनगार धर्म में प्रव्रजित होने में समर्थ होता है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! नारक जीव नारकों में से निकलकर क्या अनन्तर (सीधा) मनुष्यों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! कोई उत्पन्न होता है और कोई उत्पन्न नहीं होता है।

प्र. भंते ! जो उत्पन्न होता है, क्या वह केवलिप्ररूपित धर्मश्रवण का लाभ प्राप्त करता है?

उ. गौतम ! कोई लाभ प्राप्त करता है और कोई नहीं करता।
जैसे पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों के विषय में कहा उसी प्रकार मनुष्यों के लिए भी कहना चाहिए यावत्–

प. जे णं भंते ! ओहिणाणं उप्पाडेज्जा से णं संचाएज्जा मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए संचाएज्जा, अत्थेगइए णो संचाएज्जा।

प. जे णं भंते ! संचाएज्जा मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए से णं मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए उप्पाडेज्जा, अत्थेगइए णो उप्पाडेज्जा।

प. जे णं भंते ! मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा, से णं केवलणाणं उप्पाडेज्जा ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए उप्पाडेज्जा, अत्थेगइए णो उप्पाडेज्जा।

प. जे णं भंते ! केवलनाणं उप्पाडेज्जा से णं सिज्झेज्जा जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेज्जा ?

उ. गोयमा ! सिज्झेज्जा जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेज्जा।

प. णेरइए णं भंते ! णेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. (ख) असुरकुमारे णं भंते ! असुरकुमारेहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता णेरइएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. असुरकुमारे णं भंते ! असुरकुमारेहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता असुरकुमारेसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

एवं जाव थणियकुमारेसु।

प. असुरकुमारे णं भंते ! असुरकुमारेहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता पुढविक्काइएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा।

प. जे णं भंते ! उववज्जेज्जा से णं केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

एवं आउ-वणप्फईसु वि।

प. असुरकुमारे णं भंते ! असुरकुमारेहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता [illegible] उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

[illegible]

प्र. भंते ! जो अवधिज्ञान उपार्जित करता है तो क्या वह मुण्डित होकर गृह त्याग कर अनगार धर्म में प्रव्रजित होने में समर्थ होता है ?

उ. गौतम ! कोई समर्थ होता है और कोई नहीं होता है।

प्र. भंते ! जो मुण्डित होकर गृह त्याग कर अनगारधर्म में प्रव्रजित होने में समर्थ होता है तो क्या वह मनःपर्यवज्ञान उपार्जित करता है ?

उ. गौतम ! कोई उपार्जित करता है और कोई नहीं करता है।

प्र. भंते ! जो मनः पर्यवज्ञान उपार्जित करता है तो क्या वह केवलज्ञान उपार्जित करता है ?

उ. गौतम ! कोई उपार्जित करता है और कोई नहीं करता है।

प्र. भंते ! जो केवलज्ञान उपार्जित करता है तो क्या वह सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अन्त करता है ?

उ. गौतम ! वह सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अन्त करता है।

प्र. भंते ! नारक जीव, नारकों में से निकलकर क्या अनन्तर (सीधा) वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क या वेमानिकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. (ख) भंते ! असुरकुमार असुरकुमारों में से निकल कर क्या अनन्तर (सीधा) नैरयिकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! असुरकुमार असुरकुमारों में से निकल कर क्या अनन्तर (सीधा) असुरकुमारों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! असुरकुमार असुरकुमारों में से निकल कर क्या अनन्तर (सीधा) पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! कोई उत्पन्न होता है और कोई नहीं होता है।

प्र. भंते ! जो उत्पन्न होता है [illegible] धर्म का श्रवण प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

इसी प्रकार [illegible] के विषय में समझना चाहिए।

प्र. [illegible]

उ. [illegible]

एवं जाव थणियकुमारे।

प. (ग) पुढविक्काइए णं भंते ! पुढविक्काइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता णेरइएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।
एवं असुरकुमारेसु वि जाव थणियकुमारेसु वि।

प. पुढविक्काइए णं भंते ! पुढविक्काइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता पुढविक्काइएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए णो उववज्जेज्जा।

प. जे णं भंते ! उववज्जेज्जा से णं केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।
एवं आउक्काइयादीसु णिरंतरं भाणियव्वं जाव चउरिंदिएसु।
पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिय-मणूसेसु जहा णेरइए।

वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु पडिसेहो।

एवं जहा पुढविक्काइओ भणिओ तहेव आउक्काइओ वि वणप्फइकाइओ वि भाणियव्वो।

प. (घ) तेउक्काइए णं भंते ! तेउक्काइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता णेरइएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।
एवं असुरकुमारेसु वि जाव थणियकुमारेसु वि।

पुढविक्काइय-आउ-तेउ-वाउ-वणस्सइ-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिएसु अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए णो उववज्जेज्जा।

प. जे णं भंते ! उववज्जेज्जा से णं केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. तेउक्काइए णं भंते ! तेउक्काइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए णो उववज्जेज्जा।

प. जे णं भंते ! उववज्जेज्जा से णं केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा।

प. जे णं भंते ! केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए से णं केवलं बोहिं बुज्झेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. (ग) भंते पृथ्वीकायिक जीव, पृथ्वीकायिकों में से निकल कर क्या अनन्तर (सीधा) नैरयिकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।
इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त उत्पत्ति का निषेध जानना चाहिए।

प्र. भंते ! पृथ्वीकायिक जीव, पृथ्वीकायिकों में से निकल कर क्या अनन्तर (सीधा) पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! कोई उत्पन्न होता है और कोई नहीं होता है।

प्र. भंते ! जो उत्पन्न होता है तो क्या वह केवलिप्ररूपित धर्मश्रवण का लाभ प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।
इसी प्रकार अप्कायिक से चतुरिन्द्रिय पर्यन्त जीवों की निरन्तर उत्पत्ति के लिए कहना चाहिए।
पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों और मनुष्यों में उत्पत्ति नैरयिकों के समान जानना चाहिए।
वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों में पृथ्वीकायिक की उत्पत्ति का निषेध समझना चाहिए।
इसी प्रकार जैसे पृथ्वीकायिक की उत्पत्ति के विषय में कहा है उसी प्रकार अप्कायिक एवं वनस्पतिकायिक के विषय में भी कहना चाहिए।

प्र. (घ) भंते ! तेजस्कायिक जीव, तेजस्कायिकों में से निकल कर क्या अनन्तर (सीधा) नारकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।
इसी प्रकार तेजस्कायिक जीव की असुरकुमारों से स्तनित-कुमारों पर्यन्त उत्पत्ति का निषेध समझना चाहिए।
पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियों में कोई उत्पन्न होता है और कोई उत्पन्न नहीं होता है।

प्र. भंते ! जो उत्पन्न होता है तो क्या वह केवलि प्ररूपित धर्मश्रवण का लाभ प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! तेजस्कायिक जीव, तेजस्कायिकों में से निकलकर क्या अनन्तर (सीधा) पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! कोई उत्पन्न होता है और कोई नहीं होता है।

प्र. भंते ! जो (पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक में) उत्पन्न होता है तो क्या वह केवलि-प्ररूपित धर्मश्रवण का लाभ प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! कोई लाभ प्राप्त करता है और कोई नहीं करता है।

प्र. भंते ! जो केवलिप्ररूपित धर्मश्रवण का लाभ प्राप्त करता तो क्या वह केवलबोधि को प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प. तेउक्काइए णं भंते ! तेउक्काइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता मणूस-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।
एवं जहेव तेउक्काइए णिरंतरं एवं वाउक्काइए वि।

प. (ङ) वेइंदिए णं भंते ! वेइंदिएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता णेरइएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! जहा पुढविक्काइए।

णवरं–मणूसेसु जाव मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा।

एवं तेइंदिय-चउरिंदिया वि जाव मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा।

प. जे णं भंते ! मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा से णं केवलणाणं उप्पाडेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. (च) पंचेंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता णेरइएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए णो उववज्जेज्जा।

प. जे णं भंते ! उववज्जेज्जा से णं केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा।

प. जे णं केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए से णं केवलं बोहिं बुज्झेज्जा ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए बुज्झेज्जा, अत्थेगइए नो बुज्झेज्जा।

प. जे णं भंते ! केवलं बोहिं बुज्झेज्जा से णं सद्दहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! सद्दहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा।

प. जे णं भंते ! सद्दहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा से णं आभिणिबोहियणाण-सुयणाण-ओहिणाणाइं उप्पाडेज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! उप्पाडेज्जा।

प. जे णं भंते ! आभिणिबोहियणाण-सुयणाण-ओहिणाणाइं उप्पाडेज्जा से णं संचाएज्जा सीलं वा जाव पोसहोववासं वा पडिवज्जित्तए ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।
एवं असुरकुमारेसु वि जाव थणियकुमारेसु।

एगिंदिय विगलिंदिएसु जहा पुढविक्काइए।

पंचेंदिय तिरिक्खजोणिएसु मणूसेसु य जहा णेरइए।

प्र. भंते ! तेजस्कायिक जीव तेजस्कायिकों में से निकल कर क्या अनन्तर (सीधा) मनुष्य वाणव्यन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।
इसी प्रकार जैसे तेजस्कायिक जीव की निरन्तर उत्पत्ति आदि के लिए कहा उसी प्रकार वायुकायिक के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

प्र. (ङ) भंते ! द्वीन्द्रिय जीव, द्वीन्द्रिय जीवों में से निकल कर क्या अनन्तर (सीधा) नारकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! जैसे पृथ्वीकायिक जीवों के विषय में कहा है, वैसा ही कहना चाहिए।
विशेष–मनुष्यों में उत्पन्न होकर मनःपर्यायज्ञान पर्यन्त ज्ञान प्राप्त कर सकता है।
इसी प्रकार त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय जीव भी यावत् मनःपर्यायज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

प्र. भंते ! जो मनःपर्यायज्ञान प्राप्त करता है तो क्या वह केवलज्ञान प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. (च) भंते ! पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों में से निकलकर क्या अनन्तर (सीधा) नारकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! कोई उत्पन्न होता है और कोई नहीं होता है।

प्र. भंते ! जो उत्पन्न होता है तो क्या वह केवलिप्ररूपित धर्मश्रवण का लाभ प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! कोई लाभ प्राप्त करता है और कोई नहीं करता है।

प्र. भंते ! जो केवलि प्ररूपित धर्मश्रवण का लाभ प्राप्त करता है तो क्या वह केवलबोधि को प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! कोई केवलबोधि को प्राप्त करता है और कोई नहीं करता।

प्र. भंते ! जो केवलबोधि को प्राप्त करता है तो क्या वह उस पर श्रद्धा, प्रतीति रुचि करता है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह उस पर श्रद्धा, प्रतीति, रुचि करता है।

प्र. भंते ! जो श्रद्धा-प्रतीति रुचि करता है तो क्या वह आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान उत्पन्न करता है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह उत्पन्न करता है।

प्र. भंते ! जो आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान उत्पन्न करता है तो क्या वह शील यावत् पौषधोपवास अंगीकार करने में समर्थ होता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।
इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर स्तनितकुमारों तक [illegible] के विषय में जानना चाहिए।
एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवों के उत्पाद का कथन पृथ्वीकायिक जीवों के समान करना चाहिए।
पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक और मनुष्यों में उत्पाद का कथन नैरयिक के समान जानना चाहिए।

वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु जहा णेरइएसु।

एवं मणूसे वि।

वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिए जहा असुरकुमारे।

–पण्ण. प. २०, सु. १४१७-१४४३

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों में उत्पत्ति का कथन नैरयिकों के समान है।

इसी प्रकार मनुष्य की भी उत्पत्ति का कथन जानना चाहिए।

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक की उत्पत्ति का कथन असुरकुमारों के समान है।

७४. कण्ह-नील-काउलेस्सेसु पुढवी-आउ वणस्सइकाइयाणं अंतकिरिया परूवणं–

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव अंतेवासी मागंदियपुत्ते नामं अणगारे पगइभद्दए जहा मंडियपुत्ते जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी–

प. से नूणं भंते ! काऊलेस्से पुढविकाइए काउलेस्सेहिंतो पुढविकाइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता माणुसं विग्गहं लब्भइ, केवलं बोहिं बुज्झइ, केवलं बोहिं बुज्झित्ता तओ पच्छा सिज्झइ जाव अंतं करेइ ?

उ. हंता, मागंदियपुत्ता ! काऊलेस्से पुढविकाइए जाव अंतं करेइ।

प. से नूणं भंते ! काऊलेस्से आउकाइए काऊलेस्सेहिंतो आउकाइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता माणुसं विग्गहं लब्भइ माणुसं विग्गहं लभित्ता केवलं बोहिं बुज्झइ जाव अंतं करेइ ?

उ. हंता मागंदियपुत्ता ! काऊलेस्से आउकाइए जाव अंतं करेइ।

प. से नूणं भंते ! काऊलेस्से वणस्सइकाइए जाव अंतं करेइ।

उ. हंता, मागंदियपुत्ता ! एवं चेव जाव अंतं करेइ।

प. सेवं भंते ! सेवं भंते त्ति मागंदियपुत्ते अणगारे समणं भगवं महावीरं जाव वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव समणे निग्गंथे तेणेव उवागच्छइ तेणेव उवागच्छित्ता समणे निग्गंथे एवं वयासी–

"एवं खलु अज्जो ! काउलेस्से पुढविकाइए तहेव जाव अंतं करेइ,

एवं खलु अज्जो ! काउलेस्से आउकाइए जाव अंतं करेइ,

एवं खलु अज्जो ! काउलेस्से वणस्सइकाइए जाव अंतं करेइ,

तए णं ते समणा निग्गंथा मागंदियपुत्तस्स अणगारस्स एवं आइक्खमाणस्स जाव एवं परूवेमाणस्स एयमट्ठं णो सद्दहंति, पत्तियंति, रोयंति, एयमट्ठं असद्दहमाणा अपत्तियमाणा अरोएमाणा जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–

७४. कृष्ण-नील-कापोतलेश्यी पृथ्वी-अप्-वनस्पतिकायिकों में अन्तःक्रिया का प्ररूपण–

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के अन्तेवासी यावत् प्रकृतिभद्र माकन्दिकपुत्र नामक अनगार ने मण्डितपुत्र अनगार के समान यावत् पर्युपासना करते हुए इस प्रकार पूछा–

प्र. 'भंते ! क्या कापोतलेश्यी पृथ्वीकायिक जीव, कापोतलेश्यी पृथ्वीकायिकजीवों में से मरकर सीधा मनुष्य शरीर को प्राप्त करता है फिर केवलज्ञान उपार्जित करता है, केवलज्ञान उपार्जित करके तत्पश्चात् सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होता है यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है ?

उ. हां, माकन्दिकपुत्र ! वह कापोतलेश्यी पृथ्वीकायिक जीव यावत् सब दुःखों का अन्त करता है।

प्र. भंते ! क्या कापोतलेश्यी अप्कायिक जीव, कापोतलेश्यी अप्कायिक जीवों में से मरकर सीधा मनुष्य शरीर को प्राप्त करता है और मनुष्य शरीर प्राप्त करके केवलज्ञान प्राप्त करता है, केवलज्ञान प्राप्त करके यावत् सब दुःखों का अन्त करता है ?

उ. हां, माकन्दिकपुत्र ! कापोतलेश्यी अप्कायिक जीव यावत् सब दुःखों का अन्त करता है।

प्र. भंते ! कापोतलेश्यी वनस्पतिकायिक जीव यावत् सब दुःखों का अन्त करता है ?

उ. हां, माकन्दिकपुत्र ! वह भी इसी प्रकार (पूर्ववत्) यावत् सब दुःखों का अन्त करता है।

प्र. 'भंते !' यह इसी प्रकार है, 'भंते !' यह इसी प्रकार है, यों कहकर माकन्दिकपुत्र अनगार श्रमण भगवान् महावीर को यावत् वन्दना-नमस्कार करके जहां श्रमण निर्ग्रन्थ थे, वहां आए और उनसे इस प्रकार कहा–

'हे आर्यो ! कापोतलेश्यी पृथ्वीकायिक जीव पूर्वोक्त प्रकार से यावत् सब दुःखों का अन्त करता है,

हे आर्यो ! कापोतलेश्यी अप्कायिक जीव यावत् सब दुःखों का अन्त करता है,

हे आर्यो ! कापोतलेश्यी वनस्पतिकायिक जीव यावत् सब दुःखों का अन्त करता है।'

तदनन्तर उन श्रमण निर्ग्रन्थों ने माकन्दिकपुत्र अनगार के इस प्रकार कहने यावत् प्ररूपणा करने पर इस मान्यता पर श्रद्धा, प्रतीति, रुचि नहीं की और इस पर अश्रद्धा अप्रतीति अरुचि वताते हुए जहां श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे वहां आये और वहां आकर उन्होंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदन नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा–

एवं खलु भंते ! मागंदियपुत्ते अणगारे अम्हं एवमाइक्खइ जाव एवं परूवेइ–

"एवं खलु अज्जो ! काउलेस्से पुढविकाइए जाव अंतं करेइ।

एवं खलु अज्जो ! काउलेस्से आउकाइए जाव अंतं करेइ

एवं खलु अज्जो ! काउलेस्से वणस्सइकाइए जाव अंतं करेइ।

से कहमेयं भंते ! एवं ?

अज्जो ! त्ति समणे भगवं महावीरे ते समणे निग्गंथा आमंतित्ता एवं वयासी–

जं णं अज्जो ! मागंदियपुत्ते अणगारे तुब्भे एवमाइक्खइ जाव परूवेइ–

एवं खलु अज्जो ! काउलेस्से पुढविकाइए जाव अंतं करेइ,

एवं खलु अज्जो ! काउलेस्से आउकाइए जाव अंतं करेइ,

एवं खलु अज्जो ! काउलेस्से वणस्सइकाइए जाव अंतं करेइ,

सच्चे णं एसमट्ठे, अहं पि णं अज्जो ! एवमाइक्खामि जाव एवं परूवेमि।

एवं खलु अज्जो ! कण्हलेस्से पुढविकाइए कण्हलेस्सेहिंतो पुढविकाइएहिंतो जाव अंतं करेइ।

एवं खलु अज्जो ! नीललेस्से पुढविकाइए जाव अंतं करेइ,

एवं काउलेस्से वि,

जहा पुढविकाइए एवं आउकाइए वि, एवं वणस्सइकाइए वि, सच्चे णं एसमट्ठे।

सेवं भंते ! सेवं भंते त्ति समणा निग्गंथा समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव मागंदियपुत्ते अणगारे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता मागंदियपुत्तं अणगारं वंदंति नमंसंति वंदित्ता नमंसित्ता एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामेंति।

'भंते ! मार्कन्दिकपुत्र अनगार ने हमसे इस प्रकार कहा यावत् प्ररूपण किया कि–

'हे आर्यो ! कापोतलेश्यी पृथ्वीकायिक यावत् सब दुःखों का अन्त करता है,

'हे आर्यो ! कापोतलेश्यी अप्कायिक यावत् सब दुःखों का अन्त करता है।

हे आर्यो ! कापोतलेश्यी वनस्पतिकायिक यावत् सब दुःखों का अन्त करता है।

भंते ! ऐसा कैसे हो सकता है ?

हे आर्यो ! इस प्रकार सम्बोधित करके, श्रमण भगवान् महावीर ने उन श्रमण निर्ग्रन्थों से इस प्रकार कहा–

"हे आर्यो ! मार्कन्दिकपुत्र अनगार ने जो तुमसे कहा है यावत् प्ररूपणा की है–

"हे आर्यो ! कापोतलेश्यी पृथ्वीकायिक यावत् सब दुःखों का अन्त करता है,

हे आर्यो ! कापोतलेश्यी अप्कायिक यावत् सब दुःखों का अन्त करता है,

हे आर्यो ! कापोतलेश्यी वनस्पतिकायिक यावत् सब दुःखों का अन्त करता है,

उनका यह कथन सत्य है। हे आर्यो ! मैं भी इसी प्रकार कहता हूँ यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि–

'हे आर्यो ! कृष्णलेश्यी पृथ्वीकायिक और कृष्णलेश्यी पृथ्वीकायिकों में से निकलकर यावत् सब दुःखों का अन्त करता है।

हे आर्यो ! नीललेश्यी पृथ्वीकायिक भी यावत् सब दुःखों का अन्त करता है,

इसी प्रकार कापोतलेश्यी पृथ्वीकायिक भी यावत् सब दुःखों का अन्त करता है।

जिस प्रकार पृथ्वीकायिक के विषय में कहा है, उसी प्रकार अप्कायिक और वनस्पतिकायिक भी यावत् सब दुःखों का अन्त करता है यह कथन सत्य है ऐसा जानना चाहिए।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा ?"

उ. गोयमा ! जस्स णं रयणप्पभापुढविनेरइयस्स तित्थगरणाम–गोयाइं कम्माइं बद्धाइं पुट्ठाइं निधत्ताइं कडाइं पट्ठवियाइं णिविट्ठाइं अभिनिविट्ठाइं अभिसमण्णागयाइं उदिण्णाइं, णो उवसंताइं भवंति,

से णं रयणप्पभापुढविनेरइए रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थगरत्तं लभेज्जा,

जस्स णं रयणप्पभापुढविनेरइयस्स तित्थगरणाम-गोयाइं णो बद्धाइं जाव णो उदिण्णाइं उवसंताइं भवंति,

से णं रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थगरत्तं णो लभेज्जा,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा।"

एवं जाव वालुयप्पभापुढविनेरइएहिंतो तित्थगरत्तं लभेज्जा।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'कोई तीर्थंकर पद प्राप्त करता है और कोई नहीं करता है"?

उ. गौतम ! जिस रत्नप्रभापृथ्वी के नारक ने तीर्थंकर नाम-गोत्र कर्म बद्ध (बाँधा) स्पृष्ट (छुआ) निधत्त (सुदृढ़ बाँधा) कृतनिकाचित किया, प्रस्थापित किया, निविष्ट (स्थित किया) अभिनिविष्ट विशेषरूप से स्थित किया, अभिसमन्वागत किया और उदीर्ण (उदय में आया है) किन्तु उपशान्त नहीं हुआ है।

वह रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में से निकलकर अनन्तर (सीधा) तीर्थंकर पद को प्राप्त करता है,

किन्तु जिस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक ने तीर्थंकर नामगोत्र कर्म नहीं बांधा यावत् उदय में नहीं आया और उपशान्त है,

वह रत्नप्रभापृथ्वी का नैरयिक रत्नप्रभापृथ्वी से निकलकर सीधा तीर्थंकर पद प्रम्प्त नहीं करता है।

इसलिए गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"कोई नैरयिक तीर्थंकर पद प्राप्त करता है और कोई नहीं करता है।"

इसी प्रकार वालुकाप्रभापृथ्वी पर्यन्त के नैरयिकों में से निकल कर सीधा तीर्थंकर पद प्राप्त करता है (और कोई नहीं करता है)

प्र. भंते ! पंकप्रभापृथ्वी का नारक पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में से निकलकर क्या अनन्तर (सीधा) तीर्थंकर पद प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु वह अन्तक्रिया कर सकता है।

प्र. भंते ! धूमप्रभापृथ्वी का नारक धूमप्रभापृथ्वी के नारकों में से निकल कर क्या अनन्तर (सीधा) तीर्थंकर पद प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु वह विरति प्राप्त कर सकता है।

प्र. भंते ! तमापृथ्वी का नारक तमापृथ्वी के नारकों में से निकलकर क्या अनन्तर (सीधा) तीर्थंकर पद प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु वह विरताविरति (देश विरति) को प्राप्त कर सकता है।

प्र. भंते ! अधःसप्तमपृथ्वी का नारक अधःसप्तम पृथ्वी के नेरयिकों में से निकलकर क्या अनन्तर (सीधा) तीर्थंकर पद प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु वह सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है।

प्र. दं. २-१३ भंते ! असुरकुमार देव असुरकुमारों में से निकल कर क्या अनन्तर (सीधा) तीर्थंकर पद प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु वह अन्तक्रिया कर सकता है।

इसी प्रकार निरन्तर अप्कायिक पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. १४ भंते ! तेजस्कायिक जीव तेजस्कायिकों में से निकलकर क्या अनन्तर (सीधा) तीर्थंकर पद प्राप्त करता है ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए।

एवं वाउक्काइए वि।

प. दं. १५-१६ वणप्फइकाइए णं भंते ! वणप्फइकाइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थगरत्तं लभेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, अंतकिरियं पुण करेज्जा।

प. दं. १७-१९ बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिएणं भंते ! बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थगरत्तं लभेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठेसमट्ठे, मणपज्जवणाणं पुण उप्पाडेज्जा।

प. २०-२३ पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिय-मणूस-वाणमंतर-जोइसिए णं भंते ! पंचेंदियतिरिक्खजोणिय मणूस वाणमंतर जोइसिएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थगरत्तं लभेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, अंतकिरियं पुण करेज्जा।

प. दं. २४ सोहम्मगदेवे णं भंते ! अणंतरं चइं चइत्ता तित्थगरत्तं लभेज्जा ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा, एवं जहा रयणप्पभापुढविनेरइए।

एवं जाव सव्वट्टसिद्धगदेवे।

–पण्ण. प. २०, सु. १४४४-१४५८

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु वह केवलिप्ररूपित धर्म श्रवण प्राप्त कर सकता है।

इसी प्रकार वायुकायिक के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

प्र. दं. १५-१६ भंते ! वनस्पतिकायिक जीव वनस्पतिकायिकों में से निकलकर क्या अनन्तर (सीधा) तीर्थंकर पद प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु वह अन्तक्रिया कर सकता है।

प्र. दं. १७-१९ भंते ! द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय जीव द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवों में से निकलकर क्या अनन्तर (सीधा) तीर्थंकर पद प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु मनःपर्यवज्ञान का उपार्जन कर सकता है।

प्र. दं. २०-२३ भंते ! पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य, वाणव्यन्तर और ज्योतिष्क देव पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य, वाणव्यन्तर और ज्योतिष्क देवों में से निकलकर क्या अनन्तर (सीधा) तीर्थंकर पद प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु अन्तक्रिया कर सकता है।

प्र. दं. २४ भंते ! सौधर्मकल्प का देव, अपने भव से च्यवन करके क्या अनन्तर (सीधा) तीर्थंकर पद प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! कोई प्राप्त करता है और कोई नहीं करता है।

शेष कथन रत्नप्रभापृथ्वी के नारक के समान जानना चाहिए।

इसी प्रकार सर्वार्थसिद्ध विमान के देव पर्यन्त जानना चाहिए।

७६. चउवीसदंडएसु चक्कवट्टिआईणं परूवणं–

प. रयणप्पभापुढविनेरइए णं भंते ! रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता चक्कवट्टित्तं लभेज्जा ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

'अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा ?'

उ. गोयमा ! जहा रयणप्पभापुढवीनेरइयस्स तित्थगरत्ते।

प. सक्करप्पभापुढविनेरइए णं भंते ! सक्करप्पभापुढविनेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता चक्कवट्टित्तं लभेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

एवं जाव अहेसत्तमपुढविनेरइए।

[illegible]

७६. चौबीसदंडकों में चक्रवर्तित्व आदि की प्ररूपणा–

प्र. भंते ! रत्नप्रभापृथ्वी का नारक रत्नप्रभापृथ्वी के नारकों में से निकलकर क्या अनन्तर (सीधा) चक्रवर्ती पद प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! कोई चक्रवर्ती पद प्राप्त करता है और कोई नहीं करता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

[illegible]

उ. गौतम ! जैसे रत्नप्रभापृथ्वी के नारक को तीर्थंकर पद के [illegible]

[illegible]

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा ?"

उ. गोयमा ! जस्स णं रयणप्पभापुढविनेरइयस्स तित्थगरणाम–गोयाइं कम्माइं बद्धाइं पुट्ठाइं निधत्ताइं कडाइं पट्ठवियाइं णिविट्ठाइं अभिनिविट्ठाइं अभिसमण्णागयाइं उदिण्णाइं, णो उवसंताइं भवंति,

से णं रयणप्पभापुढविनेरइए रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थगरत्तं लभेज्जा,

जस्स णं रयणप्पभापुढविनेरइयस्स तित्थगरणाम-गोयाइं णो बद्धाइं जाव णो उदिण्णाइं उवसंताइं भवंति,

से णं रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थगरत्तं णो लभेज्जा,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा।"

एवं जाव वालुयप्पभापुढविनेरइएहिंतो तित्थगरत्तं लभेज्जा।

प. पंकप्पभापुढविनेरइए णं भंते ! पंकप्पभापुढविनेरइएहिंतो अणंतर उव्वट्टित्ता तित्थगरत्तं लभेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, अंतकिरियं पुण करेज्जा।

प. धूमप्पभापुढविनेरइए णं भंते ! धूमप्पभापुढविनेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थगरत्तं लभेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, विरइं पुण लभेज्जा।

प. तमापुढविनेरइए णं भंते ! तमापुढविनेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थगरत्तं लभेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, विरयाविरयं पुण लभेज्जा।

प. [illegible] पुढविनेरइए णं भंते ! अहेसत्तमा [illegible] अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थगरत्तं [illegible] ?

उ. [illegible] समट्ठे, सम्मत्तं पुण लभेज्जा।

[illegible] असुरकुमारे णं भंते ! असुरकुमारेहिंतो [illegible] लभेज्जा ?

उ. [illegible] समट्ठे, अंतकिरियं पुण करेज्जा।

[illegible] आउक्काइए,

[illegible] अणंतरं [illegible] ?

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

'कोई तीर्थंकर पद प्राप्त करता है और कोई नहीं करता है"?

उ. गौतम ! जिस रत्नप्रभापृथ्वी के नारक ने तीर्थंकर नाम-गोत्र कर्म बद्ध (बाँधा) स्पृष्ट (छुआ) निधत्त (सुदृढ़ बाँधा) कृतनिकाचित किया, प्रस्थापित किया, निविष्ट (स्थित किया) अभिनिविष्ट विशेषरूप से स्थित किया, अभिसमन्वागत किया और उदीर्ण (उदय में आया है) किन्तु उपशान्त नहीं हुआ है।

वह रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में से निकलकर अनन्तर (सीधा) तीर्थंकर पद को प्राप्त करता है,

किन्तु जिस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक ने तीर्थंकर नामगोत्र कर्म नहीं बांधा यावत् उदय में नहीं आया और उपशान्त है,

वह रत्नप्रभापृथ्वी का नैरयिक रत्नप्रभापृथ्वी से निकलकर सीधा तीर्थंकर पद प्राप्त नहीं करता है।

इसलिए गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"कोई नैरयिक तीर्थंकर पद प्राप्त करता है और कोई नहीं करता है।"

इसी प्रकार वालुकाप्रभापृथ्वी पर्यन्त के नैरयिकों में से निकल कर सीधा तीर्थंकर पद प्राप्त करता है (और कोई नहीं करता है)

प्र. भंते ! पंकप्रभापृथ्वी का नारक पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में से निकलकर क्या अनन्तर (सीधा) तीर्थंकर पद प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु वह अन्तक्रिया कर सकता है।

प्र. भंते ! धूमप्रभापृथ्वी का नारक धूमप्रभापृथ्वी के नारकों में से निकल कर क्या अनन्तर (सीधा) तीर्थंकर पद प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु वह विरति प्राप्त कर सकता है।

प्र. भंते ! तमापृथ्वी का नारक तमापृथ्वी के नारकों में से निकलकर क्या अनन्तर (सीधा) तीर्थंकर पद प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु वह विरताविरति (देश विरति) को प्राप्त कर सकता है।

प्र. भंते ! अधःसप्तमपृथ्वी का नारक अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिकों में से निकलकर क्या अनन्तर (सीधा) तीर्थंकर पद प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु वह सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है।

प्र. दं. २-१३ भंते ! असुरकुमार देव असुरकुमारों में से निकल कर क्या अनन्तर (सीधा) तीर्थंकर पद प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु वह अन्तक्रिया कर सकता है।

इसी प्रकार निरन्तर अप्कायिक पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. १४ भंते ! तेजस्कायिक जीव तेजस्कायिकों में से निकलकर क्या अनन्तर (सीधा) तीर्थंकर पद प्राप्त करता है ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए।

एवं वाउक्काइए वि।

प. दं. १५-१६ वणप्फइकाइए णं भंते ! वणप्फइकाइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थगरत्तं लभेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, अंतकिरियं पुण करेज्जा।

प. दं. १७-१९ बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिएणं भंते ! बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थगरत्तं लभेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठेसमट्ठे, मणप्पज्जवणाणं पुण उप्पाडेज्जा।

प. २०-२३ पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिय-मणूस-वाणमंतर-जोइसिए णं भंते ! पंचेदियतिरिक्खजोणिय मणूस वाणमंतर जोइसिएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थगरत्तं लभेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, अंतकिरियं पुण करेज्जा।

प. दं. २४ सोहम्मगदेवे णं भंते ! अणंतरं चइं चइत्ता तित्थगरत्तं लभेज्जा ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा,

एवं जहा रयणप्पभापुढविनेरइए।

एवं जाव सव्वट्ठसिद्धगदेवे।

—पण्ण. प. २०, सु. १४४४-१४५८

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु वह केवलिप्ररूपित धर्म श्रवण प्राप्त कर सकता है।

इसी प्रकार वायुकायिक के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

प्र. दं. १५-१६ भंते ! वनस्पतिकायिक जीव वनस्पतिकायिकों में से निकलकर कर क्या अनन्तर (सीधा) तीर्थंकर पद प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु वह अन्तक्रिया कर सकता है।

प्र. दं. १७-१९ भंते ! द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय जीव द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवों में से निकलकर क्या अनन्तर (सीधा) तीर्थंकर पद प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु मनःपर्यवज्ञान का उपार्जन कर सकता है।

प्र. दं. २०-२३ भंते ! पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य, वाणव्यन्तर और ज्योतिष्क देव पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य, वाणव्यन्तर और ज्योतिष्क देवों में से निकलकर क्या अनन्तर (सीधा) तीर्थंकर पद प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु अन्तक्रिया कर सकता है।

प्र. दं. २४ भंते ! सौधर्मकल्प का देव, अपने भव से च्यवन करके क्या अनन्तर (सीधा) तीर्थंकर पद प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! कोई प्राप्त करता है और कोई नहीं करता है।

शेष कथन रत्नप्रभापृथ्वी के नारक के समान जानना चाहिए।

इसी प्रकार सर्वार्थसिद्ध विमान के देव पर्यन्त जानना चाहिए।

७६. चउवीसदंडएसु चक्कवट्टिआईणं परूवणं–

प. रयणप्पभापुढविनेरइए णं भंते ! रयणप्पभापुढवि-नेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता चक्कवट्टित्तं लभेज्जा ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

'अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा ?'

उ. गोयमा ! **जहा रयणप्पभापुढवी नेरइयस्स तित्थगरत्ते।**

प. सक्करप्पभापुढविनेरइए णं भंते ! सक्करप्पभा-पुढविनेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता चक्कवट्टित्तं लभेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

एवं जाव अहेसत्तमापुढविनेरइए।

प. तिरिय-मणुए णं भंते ! तिरिय-मणुएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता चक्कवट्टित्तं लभेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

७६. चौवीसदंडकों में चक्रवर्तित्व आदि की प्ररूपणा–

प्र. भंते ! रत्नप्रभापृथ्वी का नारक रत्नप्रभापृथ्वी के नारकों में से निकलकर क्या अनन्तर (सीधा) चक्रवर्तीपद प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! कोई चक्रवर्तीपद प्राप्त करता है और कोई नहीं करता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

'कोई चक्रवर्तीपद प्राप्त करता है और कोई नहीं करता है ?'

उ. गौतम ! **जैसे रत्नप्रभापृथ्वी के नारक को तीर्थंकर पद की प्राप्ति के सम्बन्ध में कहा है उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।**

प्र. भंते ! शर्कराप्रभा पृथ्वी का नारक शर्कराप्रभा पृथ्वी के नारकों में से निकलकर क्या अनन्तर (सीधा) चक्रवर्तीपद प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

इसी प्रकार अधःसप्तमपृथ्वी के नारक पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! तिर्यञ्चयोनिक और मनुष्य तिर्यञ्चयोनिक और मनुष्यों में से निकल कर क्या अनन्तर (सीधा) चक्रवर्तीपद प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिए णं भंते ! भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता चक्कवट्टित्तं लभेज्जा ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा।

एवं बलदेवत्तं पि।

णवरं–सक्करप्पभापुढविनेरइए वि लभेज्जा।

एवं वासुदेवत्तं दोहिंतो पुढवीहिंतो वेमाणिएहिंतो य अणुत्तरोववाइयवज्जेहिंतो, सेसेसु णो इणट्ठे समट्ठे।

मंडलियत्तं-अहेसत्तमा-तेउ-वाउवज्जेहिंतो।

—पण्ण. प. २०, सु. १४५९-१४६६

प्र. भंते ! भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों में से निकलकर क्या अनन्तर (सीधा) चक्रवर्ती पद प्राप्त करता है?

उ. गौतम ! कोई चक्रवर्ती प्राप्त करता है और नहीं करता है।

इसी प्रकार बलदेवत्व के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

विशेष–शर्कराप्रभा पृथ्वी का नैरयिक भी बलदेव पद प्राप्त कर सकता है।

इसी प्रकार वासुदेवत्व दो पृथ्वियों (रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा) से तथा अनुत्तरोपपातिक देवों को छोड़कर शेष वैमानिकों से प्राप्त कर सकता है, किन्तु शेष जीवों में यह अर्थ समर्थ नहीं है।

अधःसप्तमपृथ्वी के नारकों तथा तेजस्कायिक, वायुकायिक जीवों को छोड़कर शेष जीवों में से निकलकर अनन्तर (सीधा) मनुष्यभव में उत्पन्न जीव मांडलिक (जागीरदार) पद प्राप्त करता है।

७७. चउवीसदंडएसु चक्कवट्टि रयणाणमुववाओ–

१. सेणावइरयणत्तं, २. गाहावइरयणत्तं, ३. वड्ढइरयणत्तं, ४. पुरोहियरयणत्तं, ५. इत्थिरयणत्तं च एवं चेव,

णवरं–अणुत्तरोववाइयवज्जेहिंतो।

आसरयणत्तं हत्थिरयणत्तं च रयणप्पभाओ णिरंतरं जाव सहस्सारो अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा।

चक्करयणत्तं छत्तरयणत्तं चम्मरयणत्तं दंडरयणत्तं असिरयणत्तं मणिरयणत्तं कागिणिरयणत्तं एएसि णं असुरकुमारेहिंतो आरद्धं णिरंतरं जाव ईसाणेहिंतो उववाओ, सेसेहिंतो णो इणट्ठे समट्ठे। —पण्ण. प. २०, दा. ४, सु.१४६७-१४६९

७७. चौवीस दंडकों में चक्रवर्ती रत्नों का उपपात–

१. सेनापति रत्नपद, २. गाथापति (भंडारी) रत्नपद, ३. वर्धकि (सुथार) रत्नपद, ४. पुरोहित रत्नपद और ५. स्त्री रत्नपद की प्राप्ति के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेष–अनुत्तरोपपातिक देवों को छोड़कर सेनापतिरत्न आदि पद प्राप्त होते हैं।

रत्नप्रभापृथ्वी से लेकर निरन्तर सहस्रार देवलोक के देव पर्यन्त कोई जीव अश्वरत्न एवं हस्तिरत्न पद प्राप्त करता है और कोई नहीं करता है।

असुरकुमारों से लेकर निरन्तर ईशानकल्प पर्यन्त में से चक्ररत्न, छत्ररत्न, चर्मरत्न, दण्डरत्न, असिरत्न, मणिरत्न एवं काकिणीरत्न की उत्पत्ति होती है।

शेष जीवों में से नहीं होती।

७८. भवसिद्धियाण अंतकिरियाकाल परूवणं–

अत्थेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे एगेणं भवग्गहणेणं सिज्झिस्संति, बुज्झिस्संति, मुच्चिस्संति, परिनिव्वाइस्संति, सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति। —सम. सम. १, सु. ४६

अत्थेगइया भवसिद्धिया जीवा जे दोहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

७८. भवसिद्धिकों की अंतःक्रिया का काल प्ररूपण–

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो एक मनुष्य भव ग्रहण करके सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिवृत होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो दो भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो तीन भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो चार भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो पांच भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो छह भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे सत्तहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. ७, सु. २३

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे अट्ठहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. ८, सु. १८

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे नवहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. ९, सु. २०

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे दसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. १०, सु. २५

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे एक्कारसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. ११, सु. १६

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे बारसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्सिंति।

–सम. सम. १२, सु. २०

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे तेरसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. १३, सु. १७

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे चउद्दसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. १४, सु. १८

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे पण्णरसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. १५, सु. १६

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे सोलसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. १६, सु. १६

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे सत्तरसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. १७, सु. २१

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे अट्ठारसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. १८, सु. १८

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे एगूणवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. १९, सु. १५

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे वीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. २०, सु. १७

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे एक्कवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. २१, सु. १४

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो सात भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो आठ भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो नौ भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो दश भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो ग्यारह भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो बारह भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो तेरह भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो चौदह भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो पन्द्रह भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो सोलह भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो सत्तरह भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो अठारह भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो उन्नीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो बीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो इक्कीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे बावीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. २२, सु. १४

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो बाईस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे तेवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. २३, सु. १३

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो तेईस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे चउवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. २४, सु. १५

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो चौवीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे पणवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. २५, सु. १८

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो पच्चीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे छव्वीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम.२६, सु. ११

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो छब्बीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे सत्तावीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. २७, सु. १५

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो सत्ताईस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे अट्ठावीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. २८, सु. १५

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो अट्ठाईस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे एगूणतीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. २९, सु. १५

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो उनतीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे तीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. ३०, सु. १६

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो तीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे इक्कतीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. ३१, सु. १४

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो इकत्तीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे बत्तीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. ३२, सु. १४

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो बत्तीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे तेत्तीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

–सम. सम. ३३, सु. १४

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो तेतीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

[illegible] अन्तकडे ति भवई–

[illegible]

७१. बंध और मोक्ष का ज्ञाता अंत करने वाला होता है–

तीर्थंकर गणधर आदि ने कहा है कि अपार सलिल-प्रवाह वाले समुद्र को भुजाओं से पार करना दुस्तर है, वैसे ही संसाररूपी महासमुद्र को भी पार करना दुस्तर है। अतः इस संसार समुद्र के स्वरूप को (ज्ञ-परिज्ञा से) जानकर (प्रत्याख्यान-परिज्ञा से) उसका परित्याग कर दे। इस प्रकार का त्याग करने वाला पण्डित मुनि कर्मों का अन्त करने वाला कहलाता है।

जहा य बद्धं इह माणवेहिं,
जहा य तेसिं तु विमोक्ख आहिए।
अहा तहा बंधविमोक्ख जे विदू,
से हु मुणी अंतकडे त्ति वुच्चई॥

इमम्मि लोए परए च दोसु वि,
ण विज्जई बंधणं जस्स किंचि वि।
से हू णिरालंबणमप्पतिट्ठिओ,
कलंकली भावपवंच विमुच्चई॥
—आ. सु. २, अ. १६, सु. ८०२-८०४

मनुष्यों ने इस संसार में मिथ्यात्व आदि के द्वारा जिस रूप से कर्म बांधे हैं, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन-आदि द्वारा उन कर्मों का विमोक्ष होता है यह भी बताया है। इस प्रकार बन्ध और मोक्ष के कारणों का विज्ञाता मुनि अवश्य ही संसार का या कर्मों का अन्त करने वाला कहलाता है।

इस लोक, परलोक का दोनों लोकों में जिसका किंचित्मात्र भी रागादि बन्धन नहीं है तथा साधक निरालम्ब-इहलौकिक-पारलौकिक स्पृहाओं से रहित है एवं जो कहीं भी प्रतिबद्ध नहीं है, वह साधु निश्चय ही इस संसार में जन्म मरण के प्रपंच से विमुक्त हो जाता है।

८०. किरियावाइआइ समोसरणस्स भेयचउक्कं–

प. कइ णं भंते ! समोसरणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! चत्तारि समोसरणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. किरियावाई, २. अकिरियावाई, ३. अन्नाणियवाई, ४. वेणइयवाई।[1]
—विया. स. ३०, उ. १, सु. १

८०. क्रियावादी आदि समवसरण के चार भेद–

प्र. भंते ! समवसरण कितने कहे गये हैं?

उ. गौतम ! समवसरण (विभिन्न मतों के विचार) चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. क्रियावादी, २. अक्रियावादी, ३. अज्ञानवादी, ४. विनयवादी।

८१. अकिरियावाईणं अट्ठ पगारा–

अट्ठ अकिरियावाई पण्णत्ता, तं जहा–

१. एगावाई,
२. अणेगावाई,
३. मित्तवाई,
४. णिम्मित्तवाई,
५. सायवाई,
६. समुच्छेयवाई,
७. णियावाई,
८. णसंतिपरलोगवाई।
—ठाणं. अ. ८, सु. ६०७

८१. अक्रियावादियों के आठ प्रकार–

अक्रियावादी आठ प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. एकवादी–एक ही तत्व को स्वीकार करने वाले,
२. अनेकवादी–एकत्व को सर्वथा अस्वीकार करने वाले,
३. मितवादी–जीवों को परिमित मानने वाले,
४. निर्मितवादी–जगतकर्त्तत्व को मानने वाले,
५. सातवादी–सुख से ही सुख की प्राप्ति मानने वाले,
६. समुच्छेदवादी–क्षणिकवादी,
७. नित्यवादी–लोक को एकान्त नित्य मानने वाले,
८. असत् पर लोकवादी–परलोक में विश्वास नहीं करने वाले।

८२. चउवीसदंडएसु वादि समवसरणा–

दं. १. णेरइयाणं चत्तारि वादि समोसरणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. किरियावाई, २. अकिरियावाई, ३. अण्णाणियावाई, ४. वेणइयावाई।

दं. २-११. एवं असुरकुमाराण वि जाव थणियकुमाराणं,

दं. १२-२४. एवं विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं।
—ठाणं अ. ४, उ. ४, सु. ३४५

८२. चौबीस दंडकों में वादि समवसरण–

दं. १. नैरयिकों के चार वादि समवसरण कहे गये हैं, यथा–

१. क्रियावादी, २. अक्रियावादी, ३. अज्ञानवादी, ४. विनयवादी

दं. २-११. इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त चार-चार वादि-समवसरण जानना चाहिए।

दं. १२-२४. इसी प्रकार विकलेन्द्रियों को छोड़कर वैमानिकों पर्यन्त चार-चार वादि समवसरण कहने चाहिए।

८३. जीवेसु एक्कारसठाणेहिं किरियावाइआइ समोसरणपरूवणं–

१. प. जीवा णं भंते ! किं किरियावाई, अकिरियावाई, अन्नाणियवाई, वेणइयवाई?

उ. गोयमा ! जीवा किरियावाई वि, अकिरियावाई वि, अन्नाणियवाई वि, वेणइयवाई वि।

२. प. सलेस्सा णं भंते ! जीवा किं किरियावाई जाव वेणइयवाई?

८३. जीवों में ग्यारह स्थानों द्वारा क्रियावादी आदि समवसरणों का प्ररूपण–

१. प्र. भंते ! क्या जीव क्रियावादी हैं, अक्रियावादी हैं, अज्ञानवादी हैं या विनयवादी हैं?

उ. गौतम ! जीव क्रियावादी भी हैं, अक्रियावादी भी हैं, अज्ञानवादी भी हैं और विनयवादी भी हैं।

२. प्र. भंते ! सलेश्य जीव क्रियावादी हैं यावत् विनयवादी हैं?

---

१. (क) उत्त. अ. १८, गा. २३ (ख) ठाणं. अ. ४, सु. ३४५ (ग) सूय. सु. १, अ. ६, गा. २७ (घ) सूय. सु. १, अ. १२, गा. १

उ. गोयमा ! किरियावाई वि जाव वेणइयवाई वि।
एवं जाव सुक्कलेस्सा।

प. अलेस्सा णं भंते ! जीवा किं किरियावाई जाव वेणइयवाई ?

उ. गोयमा ! किरियावाई, नो अकिरियावाई, नो अन्नाणियवाई, नो वेणइयवाई।

३. प्र. कण्हपक्खिया णं भंते ! जीवा किं किरियावाई जाव वेणइयवाई ?

उ. गोयमा ! नो किरियावाई, अकिरियावाई वि, अन्नाणियवाई वि, वेणइयवाई वि।
सुक्कपक्खिया जहा सलेस्सा।

४. सम्मद्दिट्ठि जहा अलेस्सा।
मिच्छद्दिट्ठि जहा कण्हपक्खिया।

प. सम्मामिच्छद्दिट्ठीणं भंते ! जीवा किं किरियावाई जाव वेणइयवाई ?

उ. गोयमा ! नो किरियावाई, नो अकिरियावाई, अन्नाणियवाई वि, वेणइयवाई वि।

५. णाणी जाव केवलनाणी जहा अलेस्सा।

६. अन्नाणी जाव विभंगनाणी जहा कण्हपक्खिया।

७. आहारसन्नोवउत्ता जाव परिग्गहसन्नोवउत्ता जहा सलेस्सा।
नो सन्नोउवत्ता जहा अलेस्सा।

८. सवेयगा जाव नपुंसगवेयगा जहा सलेस्सा।
अवेयगा जहा अलेस्सा।

९. सकसायी जाव लोभकसायी जहा सलेस्सा।

अकसायी जहा अलेस्सा।

१०. सजोगी जाव कायजोगी जहा सलेस्सा।
अजोगी जहा अलेस्सा।

११. सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता य जहा सलेस्सा।

—विया. स. ३०, उ. १, सु. २-२१

८४. [illegible] किरियावाईआइ समोसरण [illegible]—

प. [illegible] ! किं किरियावाई जाव [illegible] ?

उ. [illegible] जाव वेणइयवाई वि।

प. [illegible] किं किरियावाई जाव [illegible] ?

उ. [illegible] जाव वेणइयवाई वि।

[illegible]

[illegible]

उ. गौतम ! क्रियावादी भी है यावत् विनयवादी भी है।
इसी प्रकार शुक्ललेश्या पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या अलेश्य जीव क्रियावादी हैं यावत् विनयवादी हैं ?

उ. गौतम ! वे क्रियावादी हैं, किन्तु अक्रियावादी, अज्ञानवादी या विनयवादी नहीं हैं।

३. प्र. भंते ! क्या कृष्णपाक्षिक जीव क्रियावादी हैं यावत् विनयवादी हैं ?

उ. गौतम ! क्रियावादी नहीं हैं, किन्तु अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी हैं।
शुक्लपाक्षिक जीवों का कथन सलेश्य जीवों के समान है।

४. सम्यग्दृष्टि जीव अलेश्य जीवों के समान हैं।
मिथ्यादृष्टि जीव कृष्णपाक्षिक जीवों के समान हैं।

प्र. भंते ! क्या सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव क्रियावादी हैं यावत् विनयवादी हैं ?

उ. गौतम ! वे क्रियावादी और अक्रियावादी नहीं हैं, किन्तु वे अज्ञानवादी और विनयवादी हैं।

५. ज्ञानी से केवलज्ञानी पर्यन्त अलेश्य जीवों के समान हैं।

६. अज्ञानी से विभंगज्ञानी पर्यन्त कृष्णपाक्षिक जीवों के समान हैं।

७. आहारसंज्ञोपयुक्त यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त जीव सलेश्य जीवों के समान हैं।
नो संज्ञोपयुक्त जीव अलेश्य जीवों के समान हैं।

८. सवेदी से नपुसंकवेदी पर्यन्त जीव सलेश्य जीवों के समान हैं।
अवेदी जीव अलेश्यी जीवों के समान हैं।

९. सकषायी से लोभकषायी पर्यन्त जीवों का कथन सलेश्य जीवों के समान हैं।
अकषायी जीव अलेश्य जीवों के समान हैं।

१०. सयोगी से काययोगी पर्यन्त जीव सलेश्य जीवों के समान हैं।
अयोगी जीव अलेश्यी जीवों के समान हैं।

११. साकारोपयुक्त और अनाकारोपयुक्त जीव सलेश्य जीवों के समान हैं।

८४. चौबीस दंडकों में ग्यारह स्थानों द्वारा क्रियावादी आदि समवसरणों का प्ररूपण—

प्र. दं. १. भंते ! क्या नैरयिक क्रियावादी होते हैं यावत् विनयवादी होते हैं ?

उ. गौतम ! वे क्रियावादी भी होते हैं यावत् विनयवादी भी होते हैं।

प्र. भंते ! क्या सलेश्यी नैरयिक क्रियावादी होते हैं यावत् विनयवादी होते हैं ?

उ. गौतम ! वे क्रियावादी भी होते हैं यावत् विनयवादी भी होते हैं।
इसी प्रकार कापोतलेश्यी नैरयिक पर्यन्त जानना चाहिए।
कृष्णपाक्षिक नैरयिक क्रियावादी नहीं है।

एवं एएणं कमेणं जहेव जच्चेव जीवाणं वत्तव्वया सच्चेव नेरइयाण वि जाव अणागारोवउत्ता।

णवरं–जं अत्थि तं भाणियव्वं, सेसं न भण्णइ।

दं. २-११. जहा नेरइया एवं जाव थणियकुमारा।

प. दं. १२. पुढविकाइया णं भंते ! जीवा किं किरियावाई जाव वेणइयवाई?

उ. गोयमा ! नो किरियावाई, अकिरियावाई वि, अन्नाणियवाई वि, नो वेणइयवाई।

एवं पुढविकाइयाणं जं अत्थि तत्थ सव्वत्थ वि एयाइं दो मज्झिल्लाइं समोसरणाइं जाव अणागारोवउत्त त्ति।

दं. १३-१९. एवं जाव चउरिंदियाणं, सव्वट्ठाणेसु एयाइं चेव मज्झिल्लगाइं दो समोसरणाइं।

णवरं–सम्मत्तनाणेहि वि एयाणि चेव मज्झिल्लगाइं दो समोसरणाइं।

दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया जहा जीवा।

णवरं–जं अत्थि तं भाणियव्वं।

दं. २१. मणुस्सा जहा जीवा तहेव निरवसेसं।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा। –विया. स. ३०, उ. १, सु. २२-३२

८५. किरियावाईआइ जीव-चउवीसदंडएसु भवसिद्धियत्त-अभवसिद्धियत्त परूवणं–

प. १. किरियावाई णं भंते ! जीवा किं भवसिद्धिया अभवसिद्धिया?

उ. गोयमा ! भवसिद्धिया, नो अभवसिद्धिया।

प. अकिरियावाई णं भंते ! जीवा किं भवसिद्धिया अभवसिद्धिया?

उ. गोयमा ! भवसिद्धिया वि, अभवसिद्धिया वि।

एवं अन्नाणियवाई वि, वेणइयवाई वि।

प. २. सलेस्सा णं भंते ! जीवा किरियावाई किं भवसिद्धिया अभवसिद्धिया?

उ. गोयमा ! भवसिद्धिया, नो अभवसिद्धिया।

प. सलेस्सा णं भंते ! जीवा अकिरियावाई किं भवसिद्धिया अभवसिद्धिया?

उ. गोयमा ! भवसिद्धिया वि, अभवसिद्धिया वि।

एवं अन्नाणियवाई वि, वेणइयवाई वि।

एवं जाव सुक्कलेस्सा जहा सलेस्सा।

जिस प्रकार जिस क्रम से सामान्य जीवों के सम्बन्ध में कहा है उसी प्रकार और उसी क्रम से नैरयिकों के भी (ग्यारह स्थान) अनाकारोपयुक्त पर्यन्त कहने चाहिए।

विशेष–जिसके जो हो वही कहना चाहिए, शेष नहीं कहना चाहिए।

दं. २-११. जिस प्रकार नैरयिकों का कथन है, उसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १२. भंते ! क्या पृथ्वीकायिक जीव क्रियावादी होते हैं यावत् विनयवादी होते हैं?

उ. गौतम ! वे क्रियावादी और विनयवादी नहीं होते हैं किन्तु अक्रियावादी और अज्ञानवादी होते हैं।

इसी प्रकार पृथ्वीकायिकों में जो पद संभव हों, उन सभी में अनाकारोपयुक्त पर्यन्त मध्य के दो समवसरण (अक्रियावादी और अज्ञानवादी) कहने चाहिए।

दं. १३-१९. इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय पर्यन्त सभी स्थानों में मध्य के दो समवसरण कहने चाहिए।

विशेष–सम्यक्त्व और ज्ञान में भी ये ही दो मध्य के समवसरण जानने चाहिए।

दं. २०. पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवों का कथन सामान्य जीवों के समान है,

विशेष–इनमें भी जिनके जो स्थान हों, वे कहने चाहिए।

दं. २१. मनुष्यों का समग्र कथन सामान्य जीवों के समान कहना चाहिए।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों का कथन असुरकुमारों के समान जानना चाहिए।

८५. क्रियावादी आदि जीव चौबीस दंडकों में भवसिद्धिकत्व और अभवसिद्धिकत्व की प्ररूपणा–

प. १. भंते ! क्रियावादी जीव क्या भवसिद्धिक हैं या अभवसिद्धिक हैं?

उ. गौतम ! भवसिद्धिक हैं, अभवसिद्धिक नहीं हैं।

प्र. भंते ! अक्रियावादी जीव क्या भवसिद्धिक हैं या अभवसिद्धिक हैं?

उ. गौतम ! वे भवसिद्धिक भी हैं और अभवसिद्धिक भी हैं।

इसी प्रकार अज्ञानवादी और विनयवादी जीवों के विषय में भी समझना चाहिए।

प. २. भंते ! सलेश्य क्रियावादी जीव क्या भवसिद्धिक हैं या अभवसिद्धिक हैं?

उ. गौतम ! वे भवसिद्धिक हैं, अभवसिद्धिक नहीं हैं।

प्र. भंते ! सलेश्य अक्रियावादी जीव क्या भवसिद्धिक हैं या अभवसिद्धिक हैं?

उ. गौतम ! वे भवसिद्धिक भी हैं और अभवसिद्धिक भी हैं।

इसी प्रकार अज्ञानवादी और विनयवादी भी सलेश्य के समान हैं।

इसी प्रकार (कृष्णलेश्यी से) शुक्ललेश्यी पर्यन्त सलेश्य के समान जानना चाहिए।

प. अलेस्सा णं भंते ! जीवा किरियावाई किं भवसिद्धिया अभवसिद्धिया ?

उ. गोयमा ! भवसिद्धिया, नो अभवसिद्धिया।

३. एवं एएणं अभिलावेणं कण्हपक्खिया तिसु वि समोसरणेसु भयणाए।

सुक्कपक्खिया चउसु वि समोसरणेसु भवसिद्धीया, नो अभवसिद्धीया।

४. सम्मदिट्ठी जहा अलेस्सा।

मिच्छदिट्ठी जहा कण्हपक्खिया।

सम्मामिच्छदिट्ठी दोसु वि समोसरणेसु जहा अलेस्सा।

५. नाणी जाव केवलनाणी भवसिद्धीया, नो अभवसिद्धीया।

६. अन्नाणी जाव विभंगनाणी जहा कण्हपक्खिया।

७. सण्णासु चउसु वि जहा सलेस्सा।

नो सण्णोवउत्ता जहा सम्मदिट्ठी।

८. सवेयगा जाव नपुंसगवेयगा जहा सलेस्सा।

अवेयगा जहा सम्मदिट्ठी।

९. सकसायी जाव लोभकसायी जहा सलेस्सा।

अकसायी जहा सम्मदिट्ठी।

१०. सजोगी जाव कायजोगी जहा सलेस्सा।

अजोगी जहा सम्मदिट्ठी।

११. सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता जहा सलेस्सा।

दं. १. एवं नेरइया वि भाणियव्वा,

नवरं–नायव्वं जं अत्थि।

दं. २-११. एवं असुरकुमारा वि जाव थणियकुमारा।

दं. १२. पुढविकाइया सव्वट्ठाणेसु वि मज्झिल्लेसु दोसु वि समोसरणेसु भवसिद्धीया वि, अभवसिद्धीया वि।

प्र. भंते ! अलेश्य क्रियावादी जीव क्या भवसिद्धिक हैं या अभवसिद्धिक हैं ?

उ. गौतम ! वे भवसिद्धिक हैं, अभवसिद्धिक नहीं हैं।

३. इसी प्रकार इस अभिलाप से कृष्णपाक्षिक तीनों समवसरणों में विकल्प से भवसिद्धिक हैं।

शुक्लपाक्षिक जीव चारों समवसरणों में भवसिद्धिक हैं अभवसिद्धिक नहीं हैं।

४. सम्यग्दृष्टि अलेश्य जीवों के समान हैं।

मिथ्यादृष्टि कृष्णपाक्षिक के समान हैं।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि अज्ञानवादी और विनयवादी इन दोनों समवसरणों में अलेश्यी के समान हैं।

५. ज्ञानी से केवलज्ञानी पर्यन्त भवसिद्धिक हैं, अभवसिद्धिक नहीं हैं।

६. अज्ञानी से विभंगज्ञानी पर्यन्त कृष्णपाक्षिकों के समान हैं।

७. चारों संज्ञाओं में भी सलेश्यी जीवों के समान हैं।

नो संज्ञोपयुक्त जीव सम्यग्दृष्टि के समान हैं।

८. सवेदी से नपुंसकवेदी पर्यन्त का कथन सलेश्यी जीवों के समान हैं।

अवेदी जीव का कथन सम्यग्दृष्टि के समान है।

९. सकषायी से लोभकषायी पर्यन्त सलेश्यी के समान हैं।

अकषायी जीव सम्यग्दृष्टि के समान हैं।

१०. सयोगी से काययोगी पर्यन्त सलेश्यी के समान हैं।

अयोगी जीव सम्यग्दृष्टि के समान हैं।

११. साकारोपयुक्त और अनाकारोपयुक्त जीव सलेश्यी के समान हैं।

दं. १. इसी प्रकार नैरयिकों के विषय में कहना चाहिए,

विशेष–उनमें जो स्थान हैं वे कहने चाहिए।

दं. २-११. इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

८६. अणंतरोववन्नग चउवीसदंडएसु चउसमवसरण परूवणं–

प. अणंतरोववन्नगा णं भंते ! नेरइया किं किरियावाई जाव वेणइयवाई ?

उ. गोयमा ! किरियावाई वि जाव वेणइयवाई वि।

प. सलेस्सा णं भंते ! अणंतरोववन्नगा नेरइया किं किरियावाई जाव वेणइयवाई ?

उ. गोयमा ! एवं चेव,

एवं जहेव पढमुद्देसे नेरइयाणं वत्तव्वया तहेव इह वि भाणियव्वा।

णवरं–जं जस्स अत्थि अणंतरोववन्नगाणं नेरइयाणं तं तस्स भाणियव्वं।

एवं सव्व जीवाणं जाव वेमाणियाणं।

णवरं–अणंतरोववन्नगाणं जहिं जं अत्थि तहिं तं भाणियव्वं। –विया. स. ३०, उ. २, सु. १-४

८६. अनन्तरोपपन्नक-चौबीस दंडकों में चार समवसरण का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या अनन्तरोपपन्नक नैरयिक क्रियावादी हैं यावत् विनयवादी हैं ?

उ. गौतम ! वे क्रियावादी भी हैं यावत् विनयवादी भी हैं।

प्र. भंते ! क्या सलेश्यी अनन्तरोपपन्नक नैरयिक क्रियावादी हैं यावत् विनयवादी हैं ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् जानना चाहिए।

जिस प्रकार प्रथम उद्देशक में नैरयिकों का कथन किया है, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिए।

विशेष–अनन्तरोपपन्नक नैरयिकों के जो दो स्थान हैं वे ही कहने चाहिए।

इसी प्रकार सब जीवों का वैमानिकों पर्यन्त कथन करना चाहिए।

विशेष–अनन्तरोपपन्नक जीवों में जहां जो सम्भव हो वहां वह कहना चाहिए।

८७. किरियावाईआइ अणंतरोववन्नगचउवीसदंडएसु भवसिद्धियत्त-अभवसिद्धियत्त परूवणं–

प. किरियावाई णं भंते ! अणंतरोववन्नगा नेरइया किं भवसिद्धीया अभवसिद्धीया ?

उ. गोयमा ! भवसिद्धीया, नो अभवसिद्धीया।

प. अकिरियावाई णं भंते ! अणंतरोववन्नगा नेरइया किं भवसिद्धीया अभवसिद्धीया ?

उ. गोयमा ! भवसिद्धीया वि, अभवसिद्धीया वि।

एवं अन्नाणियवाई वि, वेणइयवाई वि।

प. सलेस्सा णं भंते ! किरियावाई अणंतरोववन्नगा नेरइया किं भवसिद्धीया अभवसिद्धीया ?

उ. गोयमा ! भवसिद्धीया, नो अभवसिद्धीया।

एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिए उद्देसए नेरइयाणं वत्तव्वया भणिया।

तहेव इह वि भाणियव्वा जाव अणागारोवउत्त त्ति।

एवं जाव वेमाणियाणं,

णवरं–जं जस्स अत्थि तं तस्स सव्वं भाणियव्वं।

इमं से लक्खणं–जे किरियावाई सुक्कपक्खिया सम्मामिच्छद्दिट्ठी य एए सव्वे भवसिद्धीया, णो अभवसिद्धीया।

सेसा सव्वे भवसिद्धीया वि, अभवसिद्धीया वि। –विया. स. ३०, उ. २, सु. ११-१६

८७. क्रियावादी आदि अनन्तरोपपन्नक चौबीसदंडकों में भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक का प्ररूपण–

प्र. भंते ! अनन्तरोपपन्नक नैरयिक क्रियावादी क्या भवसिद्धिक हैं या अभवसिद्धिक हैं ?

उ. गौतम ! भवसिद्धिक हैं किन्तु अभवसिद्धिक नहीं हैं।

प्र. भंते ! अनन्तरोपपन्नक नैरयिक अक्रियावादी क्या भवसिद्धिक हैं या अभवसिद्धिक हैं ?

उ. गौतम ! भवसिद्धिक भी हैं और अभवसिद्धिक भी हैं।

इसी प्रकार अज्ञानवादी और विनयवादी भी जानना चाहिए।

प्र. भंते ! सलेश्य अनन्तरोपपन्नक नैरयिक क्रियावादी क्या भवसिद्धिक हैं या अभवसिद्धिक हैं ?

उ. गौतम ! भवसिद्धिक हैं किन्तु अभवसिद्धिक नहीं हैं।

इसी प्रकार इस अभिलाप से जिस प्रकार औधिक उद्देशक में नैरयिकों का कथन किया है।

उसी प्रकार यहां भी अनाकारोपयुक्त पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष–उनमें जिसके जो स्थान हैं उसके वे सभी स्थान कहने चाहिए।

उनके ये लक्षण हैं– जो क्रियावादी शुक्लपाक्षिक और सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं वे सब भवसिद्धिक हैं, अभवसिद्धिक नहीं हैं।

शेष सब भवसिद्धिक भी हैं और अभवसिद्धिक भी हैं।

८८. परंपरोववन्नगचउवीसदंडएसु चउसमवसरणाइ परूवणं–

प. परंपरोववन्नगा णं भंते ! नेरइया किं किरियावाई जाव वेणइयवाई ?

८८. परंपरोपपन्नक चौबीस दंडकों में चार समवसरणादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परम्परोपपन्नक नैरयिक क्रियावादी हैं यावत् विनयवादी हैं ?

उ. गोयमा ! एवं जहेव ओहिओ उद्देसओ तहेव परंपरोववन्नएसु वि नेरइयाइओ तहेव निरवसेसं भाणियव्वं।

तहेव तियदंडगसंगहिओ। *–विया. स. ३०, उ. ३, सु. १*

८९. अणंतरोववगाढाइसु समोसरणाइ परूवणं–

एवं एएणं कमेणं जच्चेव बंधिसए उद्देसगाणं परिवाडी सच्चेव इहं पि जाव अचरिमो उद्देसो।

णवरं–अणंतरा चत्तारि वि एक्कगमगा,

परंपरा चत्तारि वि एक्कगमएणं।

एवं चरिमा वि, अचरिमा वि एवं चेव।

णवरं–अलेस्सी केवली अजोगी न भण्णइ,

सेसं तहेव। *–विया. स. ३०, उ. ४-११*

□

उ. गौतम ! जिस प्रकार सामान्य जीवों का उद्देशक कहा उसी प्रकार परम्परोपपन्नक नैरयिकादिकों के सभी स्थान सम्पूर्ण कहने चाहिये।

उसी प्रकार तीनों दण्डकों सहित भी कहना चाहिए।

८९. अनन्तरावगाढादि में समवसरणादि का प्ररूपण–

इसी प्रकार इस क्रम से बन्धी शतक (२६ वें) में उद्देशकों की जो परिपाटी है, वही चारों समवसरणों की परिपाटी यहाँ भी अचरम उद्देशक पर्यन्त कहनी चाहिए।

विशेष–अनन्तरोपपन्नकों के चार उद्देशक एक समान हैं।

परम्परोपपन्नकों के भी चार उद्देशक एक समान हैं।

इसी प्रकार चरम और अचरम के आलापक भी हैं।

विशेष–अलेश्यी, केवली और अयोगी का कथन यहां नहीं कहना चाहिए।

शेष सब पूर्ववत् हैं।

□

आश्रव अध्ययन : आमुख

कर्मों के आगमन को आश्रव कहते हैं। नव तत्त्वों में आश्रव भी एक तत्त्व है। आश्रव के बिना कर्मों का बंध नहीं होता है। कर्मबंध पर यदि अंकुश लगाना हो तो आश्रव पर अंकुश लगाना आवश्यक है। आश्रव के पाँच द्वार हैं–१. मिथ्यात्व, २. अविरति, ३. प्रमाद, ४. कषाय और ५. योग। आश्रव के इन पाँच द्वारों का उल्लेख स्थानांग सूत्र में हुआ है। तत्त्वार्थसूत्र में इन पाँचों को बंध का हेतु कहा है। कर्मग्रन्थों में भी ये बन्धहेतुओं के रूप में गिने गए हैं। ५७ बंधहेतुओं में मिथ्यात्व के ५, अविरति के १२, कषाय के २५ एवं योग के १५ भेदों की गणना होती है। आश्रव के द्वार ही एक प्रकार से बंध के हेतु होते हैं क्योंकि आश्रव के बिना बंध नहीं होता है।

आश्रव के २० भेद भी माने गए हैं। वे सब आश्रव के द्वार अथवा कारण होते हैं। २० भेदों में मिथ्यात्व आदि पाँच के अतिरिक्त, प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, अब्रह्म एवं परिग्रह का, श्रोत्रेन्द्रिय आदि पाँच इन्द्रियों से विषय सेवन का, मन, वचन एवं काया को नियन्त्रित न रखने का तथा भंडोपकरण एवं सुई कुशाग्र आदि को अयतना से लेने व रखने का भी समावेश होता है। इस प्रकार आश्रव एक व्यापक तत्त्व है। इसमें उन सभी कारणों का समावेश हो जाता है जिनसे कर्मों का आगमन होता है।

प्रस्तुत अध्ययन में आश्रव के भेदों का निरूपण प्रश्नव्याकरण सूत्र के अनुसार हुआ है। प्रश्नव्याकरण सूत्र में आश्रव के जो पाँच भेद निरूपित हैं, वे हैं–१. हिंसा, २. मृषा, ३. अदत्तादान, ४. अब्रह्म और ५. परिग्रह। संयम अथवा संवर की साधना में आने के लिए इन पाँचों आश्रवों का त्याग करना होता है।

हिंसादि पाँच आश्रवों का इस अध्ययन में विस्तार से निरूपण है किन्तु इस निरूपण में यह नहीं समझाया गया कि हिंसा आदि के कारण कर्माश्रव किस प्रकार एवं क्यों होता है। हिंसा को प्राणवध के रूप में प्ररूपित किया गया है। इससे ज्ञात होता है कि इस सम्पूर्ण अध्ययन में हिंसादि के द्रव्य-पक्ष को अधिक स्पष्ट किया गया है, भाव-पक्ष को कम।

प्रत्येक आश्रव का स्वरूप स्पष्ट करते हुए उनके तीस-तीस पर्यायवाची नाम दिए गए हैं। वे पर्यायवाची नाम उन आश्रवों के विविध पक्षों को प्रकट करते हुए उनकी द्रव्य एवं भाव सहित सर्वविध व्याख्या कर देते हैं। यथा–हिंसा के पर्यायवाची नामों में अविश्वास, असंयम आदि शब्द हिंसा के भाव-पक्ष को प्रकट करते हैं तो प्राणवध, शरीर से प्राणों का उन्मूलन, मारण आदि शब्द हिंसा के द्रव्य-पक्ष को प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार प्राणवध का स्वरूप बतलाते हुए उसे पाप, चण्ड, नृशंस, भयोत्पादक आदि शब्दों से प्रकट किया गया है। ये शब्द हिंसा के विविध पक्षों को प्रकट करते हैं।

मृषावाद के पर्यायार्थक जो तीस नाम दिए गए हैं, वे मृषावाद के विभिन्न पक्षों को प्रकट करते हैं यथा–अन्याय, शठ, वंचना आदि शब्द मृषावाद घटित तथ्यों को प्रकट करते हैं। मृषावादी व्यक्ति छली, मायाचारी एवं वक्रता आदि दुर्गुणों से युक्त होता है। मृषावाद के स्वरूप का निरूपण करते हुए प्रतिपादित किया गया है कि यह अलीकवचन या मिथ्या-भाषण दुःखदायक, भयोत्पादक, अपयश एवं वैर उत्पन्न करने वाला होता है। नीच जन मिथ्या-भाषण का प्रयोग करते हैं। यह विश्वासघातक, परपीड़ाकारक, रति, अरति, राग-द्वेष एवं मानसिक क्लेश का जनक होता है। इसका फल अशुभ है।

बिना आज्ञा के किसी दूसरे की वस्तु लेना अदत्तादान कहलाता है। दूसरे के धन आदि में मूर्च्छा या लोभ होना ही इसका कारण है। अदत्तादान अपयश का कारण है तथा इससे अधोगति प्राप्त होती है। इसके तीस पर्यायवाची गुण-निष्पन्न नामों में चौरिक्य, पापकर्म, क्षेप, तृष्णा आदि पद हैं जो चौर्य के ही विभिन्न रूप की व्याख्या करते हैं।

अब्रह्मचर्य को मैथुन, मोह, कामगुण, बहुमान आदि नामों से पुकारा गया है किन्तु ये सब नाम अब्रह्मचर्य की विभिन्न अवस्थाओं एवं परिणामों को व्यक्त करते हैं, एकदम पर्यायवाची नहीं हैं। अब्रह्मचर्य देवों, मनुष्यों और असुरों सहित समस्त लोक के प्राणियों द्वारा काम्य है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद इसके चिह्न हैं। यह तप, संयम और ब्रह्मचर्य के लिए विघ्न रूप है।

तत्त्वार्थसूत्र में मूर्च्छा को परिग्रह कहा गया है किन्तु इस अध्ययन में परिग्रह के चय, संचय, सम्भार, संरक्षण आदि बाह्य परिग्रह के द्योतक शब्द भी दिए गये हैं और महेच्छा, लोभात्मा, तृष्णा, आसक्ति जैसे आन्तरिक परिग्रह के द्योतक शब्द भी उपलब्ध हैं। ये सब शब्द मिलकर आन्तरिक एवं बाह्य परिग्रह का स्वरूप व्यक्त कर देते हैं।

इन पाँच आश्रवों के जो तीस-तीस नाम दिए गए हैं, उनके अन्त में शास्त्रकार ने लिखा है कि ऐसे और भी नाम हो सकते हैं। इसका अभिप्राय है कि ये तीस नाम उस आश्रव के विभिन्न रूपों को अभिव्यक्त मात्र करते हैं, कुछ छूटे हुए रूपों को अन्य नामों से व्यक्त किया जा सकता है। इन नामों में कुछ ऐसे भी नाम हैं जो एक से अधिक आश्रवों में प्रयुक्त हुए हैं। यथा–असंयम शब्द हिंसा या प्राणवध के पर्यायनामों में भी है तो अदत्तादान के पर्याय नामों में भी है।

प्राणवध या हिंसा आश्रव के प्रसंग में यह प्रश्न किया गया कि पापी, असंयत, अविरत, अनुपशान्त परिणाम वाले तथा दूसरों को दुःख देने में तत्पर रहने वाले जीव किनकी हिंसा करते हैं। इस प्रश्न के उत्तर में जलचर, स्थलचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प और खेचर जीवों के वध का उल्लेख

करते हुए द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं एकेन्द्रिय जीवों के वध का भी निरूपण किया है। जलचर, स्थलचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प और खेचर जीवों का विवरण देते हुए अनेक नामों का उल्लेख किया गया है। इनमें से बहुत से जीव अभी भी उपलब्ध होते हैं और उनके नाम भी वे ही प्रचलित हैं किन्तु कुछ जीव ऐसे भी हैं जिनके नाम बदल गए हैं अथवा उनकी जाति लुप्त हो गई है। जीव-वैज्ञानिकों के लिए जीवों का यह विवरण उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

प्राणियों का वध अनेक कारणों से किया जाता है। उनमें से चमड़ा, चर्बी, मांस, दांत, हड्डी, सींग, विष, बाल आदि की प्राप्ति भी एक कारण है। शरीर एवं उपकरणों को शृंगारित व संस्कारित करने के लिए भी जीवों का वध किया जाता है। पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा कृषि, कूप, तालाब, खाई, प्रासाद आदि के निमित्त से की जाती है। जलकायिक जीवों की हिंसा स्नान, पान, भोजन, वस्त्र धोने आदि के लिए की जाती है। भोजनादि पकाने, दीपक जलाने, प्रकाश करने आदि से अग्निकायिक जीवों की हिंसा होती है। पंखा, सूप, तालवृन्त, मयूरपंख आदि से हवा करने के कारण वायुकायिक जीवों की हिंसा की जाती है। वनस्पतिकायिक की हिंसा के आगम में अनेक प्रयोजन वर्णित हैं जिनमें प्रमुख हैं—घर, भोजन, शय्या, आसन, वाहन, नौका, खम्भा, सभागार, वस्त्र, हल, गाड़ी आदि बनाना।

कुछ सप्रयोजन हिंसा करते हैं तो कुछ निष्प्रयोजन भी हिंसा करते रहते हैं। कुछ ऐसे भी पापी जीव हैं जो हास्य-विनोद के लिए, वैर के कारण अथवा भोगासक्ति से प्रेरित होकर हिंसा करते हैं। कुछ जीव क्रुद्ध होकर हनन करते हैं, कुछ लोभ के वशीभूत होकर हिंसा करते हैं तो कुछ अज्ञान के कारण हिंसा करते हैं। कुछ अर्थ, धर्म या काम के लिए हिंसा करते हैं।

प्राचीनयुग में हिंसा का कार्य करने वालों का समुदाय विशेष हुआ करता था। जैसे—सूअरों का शिकार करने वालों को शौकरिक, मछली पकड़ने वालों को मत्स्यबन्धक, पक्षियों को मारने वालों को शाकुनिक कहा जाता था। हिंसा करने वालों की फिर जातियां बन गई यथा—शक, यवन, शबर, बब्बर आदि। ऐसी अनेक जाति के लोग हिंसाकर्म किया करते थे। आजीविका चलाने के लिए भी हिंसा की जाती रही है। राजा लोग अपने आनन्द के लिए हिंसा करते रहे हैं।

हिंसक मनुष्य हिंसाकार्य के कारण नरकवासी बन जाते हैं। वे मरकर नरक के दुःखों को विवश होकर भोगते हैं। नरकभूमियों, नरकावास एवं उनमें भोगी जाने वाली वेदनाओं का इस अध्ययन में रोंगटे खड़े कर देने वाला चित्रण किया गया है। इसी प्रकार जो हिंसक प्राणी नरक से निकलकर तिर्यञ्च योनि में जाते हैं उन्हें किस प्रकार के दुःखों का अनुभव होता है उसका भी इस अध्ययन में अच्छा चित्रण किया गया है। इन दुःखों एवं वेदनाओं का वर्णन पढ़ने के पश्चात् दिल दहल उठता है तथा पढ़ने वाला हिंसा के लिए कभी प्रवृत्त नहीं हो सकता। कुछ जीव नरक से निकलकर मनुष्य पर्याय में आ जाते हैं किन्तु वे यहाँ विकृत एवं अपरिपूर्ण शरीर प्राप्त कर अवशिष्ट पापकर्म भोगते रहते हैं। वे टेढ़े मेढ़े शरीर वाले, बहरे, अंधे, लंगड़े आदि होते हैं।

मृषावाद का वर्णन करते हुए आगम में अनेक मिथ्यामतों का उल्लेख किया गया है, उनमें चार्वाक, बौद्ध एवं अन्य नास्तिक विचारधारा के मतावलम्बी सम्मिलित हैं। वामलोकवादी मत के अनुसार यह जगत् शून्य है, जीव का अस्तित्व नहीं है, किए हुए शुभ-अशुभ कर्मों का फल भी नहीं मिलता है। यह शरीर उनके मत में पाँच भूतों से बना हुआ है और वायु के निमित्त से सब क्रियाएँ करता है।

बौद्ध आत्मा को रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार इन पाँच स्कन्धों से पृथक् नहीं मानते। कोई बौद्ध इन पांच स्कन्धों के अतिरिक्त मन को भी स्कन्ध मानते हैं। कोई मनोजीववादी अर्थात् मन को ही जीव कहते हैं। कोई वायु को ही जीव स्वीकार करते हैं। कोई जगत् को सादि एवं सान्त मानते हें तथा पुनर्जन्म को स्वीकार नहीं करते हैं। उनके अनुसार पुण्यकार्य एवं पापकार्य का कोई फल नहीं मिलता। स्वर्ग, नरक एवं मोक्ष कुछ भी नहीं है।

कुछ मिथ्यावादी लोक को अंडे से उत्पन्न मानते हैं तथा स्वयम्भू को इसका निर्माता मानते हैं। कुछ कहते हैं कि यह जगत् प्रजापति ने बनाया है। किसी के अनुसार यह समस्त जगत् विष्णुमय है। किसी के अनुसार आत्मा एक एवं अकर्ता है। वह नित्य, निष्क्रिय, निर्गुण और निर्लेप है। इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन में विभिन्न जैनेतर मान्यताओं को मृषावादी या मिथ्यावादी कहकर प्रस्तुत किया गया है। इनमें कुछ मान्यताएँ वैदिक मान्यताएँ हैं।

कुछ लोग परधन का हरण करने के लिए मृषा बोलते हैं, कुछ राज्यविरुद्ध मिथ्याभाषण करते हैं, अच्छे को बुरा एवं बुरे को अच्छा कार्य बतलाते हैं, सज्जनों को दुष्ट एवं दुष्टों को सज्जन बतलाते हैं। कुछ लोग बिना विचार किए ही असत्य भाषण करते हैं तथा कुछ पाप परामर्शक झूठ बोलते हैं। इस प्रकार अनेक प्रकार के मृषावादी हैं।

मृषावाद का भयंकर फल बताया गया है। मृषावादी जीव नरक एवं तिर्यञ्च योनि की वृद्धि कर अनेक वेदनाओं को भोगते हैं। मृषावाद का फल इहलोक में भी अपयश, वैर, द्वेष आदि के रूप में मिलता है।

अदत्तादान की प्रवृत्ति भी बड़ी घातक है। दूसरों का धन हरण करने की प्रवृत्ति चोरों एवं डाकुओं में ही नहीं राजाओं में भी पायी जाती है। एक राजा दूसरे राजा के धनादि के प्रति आकृष्ट होकर आक्रमण करते रहे हैं। इस प्रकार अदत्तादान के लिए हिंसा का भी सहारा लेना पड़ता है, झूठ का भी सहारा लेना पड़ता है। राजाओं में परस्पर किस प्रकार का वीभत्स युद्ध होता रहा है इसका प्रस्तुत प्रसंग में सुन्दर वर्णन किया गया है। सामुद्रिक व्यापार का वर्णन करने के साथ समुद्र में होने वाली तस्करी का भी चित्र खींचा गया है। ग्राम, नगर आदि में बने घरों में सेंध लगाकर की जाने वाली चोरी का भी इसमें वर्णन हुआ है। चोरों की प्रवृतियों का भी वर्णन किया गया है।

अदत्तादान आश्रव से गाढ़ कर्मों का बन्धन तो होता ही है, किन्तु इस लोक में भी उसका दुष्परिणाम भोगना पड़ता है। राज्य की दण्ड व्यवस्था के अनुसार कारागार में कैद कर ताड़न, अंगच्छेदन एवं तीव्र प्रहारों की वेदना दी जाती है। प्राचीन युग में राज्य-व्यवस्था के अनुसार चोरों को किस प्रकार दण्डित किया जाता था इसका प्रस्तुत अध्ययन में अच्छा निरूपण हुआ है।

अब्रह्मचर्य का सेवन प्रायः दस भवनपति, दस व्यन्तर जाति के देव, आठ मुख्य व्यन्तर देव, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देव, मनुष्य तथा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च जीव करते हैं। अब्रह्म का सेवन मोह के उदय से होता है। यह स्त्री-पुरुष के मिथुन से होने के कारण मैथुन कहा जाता है। अब्रह्म सेवन का सम्बन्ध बाह्य ऐश्वर्य से एवं शारीरिक गठन से भी जुड़ा हुआ है। इसलिए इसके साथ ही चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव एवं मांडलिक राजाओं के विपुल ऐश्वर्य का वर्णन कर अन्त में कहा गया है कि अनेक प्रकार की उत्तम भार्याओं के साथ कामभोग भोगते हुए भी ये चक्रवर्ती आदि कभी तृप्त नहीं हुए। तृप्त हुए बिना ही वे मृत्यु को प्राप्त हो गए। इसलिए अब्रह्म सेवन का अन्त करना अत्यधिक कठिन है।

अकर्मभूमि के स्त्री पुरुष सर्वांग सुन्दर अंगों से सम्पन्न होते हैं। पुरुष वज्रऋषभनाराच एवं समचतुरस्र संस्थान युक्त होते हैं। उनके प्रत्येक अंग कांति से दैदीप्यमान रहते हैं तथापि वे तीन पल्योपम की आयु तक कामभोगों को भोग कर भी अतृप्त ही रह जाते हैं। युगलिक पुरुषों एवं स्त्रियों के पैर, नख, नाभि, वक्षस्थल, हस्त, स्कन्ध आदि प्रत्येक अंग का इस अध्ययन में सौन्दर्य वर्णित है। स्त्रियां सर्वांग सुन्दर होने के साथ छत्र, ध्वजा आदि ३२ लक्षणों से भी युक्त होती है। वे मानवी अप्सराएँ कही जा सकती हैं। किन्तु परस्पर मैथुन सेवन इन्हें भी तृप्ति नहीं देता और मृत्यु हो जाती है।

कर्मभूमि के मनुष्य मैथुन की वासना के कारण अनेक प्रकार का अनर्थ कर देते हैं। परस्त्री-सेवन के प्रति भी प्रवृत्त हो जाते हैं। किन्तु अब्रह्म का सेवन करने वाले इहलोक में नष्ट होते हैं तथा परलोक में भी नष्ट होते हैं। अब्रह्म के कारण सीता, द्रौपदी, रुक्मिणी आदि के लिए संग्राम भी हुए।

परिग्रह को एक ऐसे वृक्ष की उपमा दी गई है जिसकी जड़ अनन्त तृष्णा है, जिसका तना लोभ, कलह, क्रोधादि कषाय हैं, जिसकी शाखाएँ चिन्ता, मानसिक सन्ताप आदि हैं, जिसकी शाखा के अग्रभाग ऋद्धि, रस और साता रूप गारव है, दूसरों को ठगने रूप निकृति जिसकी कोपलें हैं तथा कामभोग ही जिसके पुष्प और फल हैं। यह परिग्रह अधिकतर लोगों को हृदय से प्यारा लगता है किन्तु निर्लोभता रूप मोक्षोपाय की यह अर्गला है।

चारों प्रकार के देवों में परिग्रह की प्रचुरता होने पर भी वे कभी इससे तृप्त नहीं होते। इन देवों के ऐश्वर्य का इस अध्ययन में निरूपण हुआ है। इसी प्रकार अकर्मभूमि के मनुष्य एवं कर्मभूमियों में चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, माण्डलिक राजा, युवराज, ऐश्वर्यशाली लोग, सेनापति, श्रेष्ठी, राजमान्य अधिकारी, सार्थवाह आदि अनेक मनुष्य परिग्रहधारी होते हैं। परिग्रह के संचय हेतु लोग अनेक प्रकार की विद्याएँ सीखते हैं, हिंसा के कृत्य में प्रवृत्त होते हैं, झूठ बोलते हैं, दूसरों को ठगते हैं, मिलावट करते हैं, वैर-विरोध करते हैं फिर भी इच्छाओं की तृप्ति नहीं होती।

आश्रव के इस प्रकरण में हिंसा, मृषावाद, अदत्तादान, अब्रह्म एवं परिग्रह रूप पापों का वर्णन करके मुमुक्षुओं को इनसे बचने की शिक्षा दी गई है क्योंकि प्राणी इन आश्रवों के कारण कर्मबन्धन कर संसार में भ्रमण करता रहता है। जो इन्हें त्याग कर अहिंसा आदि संवरों का आचरण करता है वह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

□

२८. आसवऽज्झयणं

सूत्र

१. पंच आसवस्स हेउ परूवणं –

पंच आसवदारा पण्णत्ता, तं जहा–

१. मिच्छत्तं,
२. अविरई,
३. पमादो,
४. कसाया,
५. जोगा।

–ठाणं. अ. ५, उ. १, स. ४१८

२. आसवस्स पंच पगारा –

पंचविहो पण्णत्तो जिणेहिं इह अण्हओ अणाइओ।

हिंसामोसमदत्तं, अब्बंभ परिग्गहं चेव ॥

–पण्ह. सु. १, आ. १, सु. १, गा. २

३. पाणवह परूवणस्स णिद्देसो –

१. जारिसओ,
२. जं नामा,
३. जह य कओ,
४. जारिसं फलं देंति,
५. जे वि य करेंति पावा, पाणवहं तं निसामेह ॥

–पण्ह.सु. १, आ. १, सु. १, गा. ३

४. पाणवह सरूवं –

पाणवहो नामेस निच्चं जिणेहिं भणिओ, तं जहा–

१.पावो, २.चंडो, ३.रुद्दो, ४.खुद्दो, ५.साहसिओ, ६.अणारिओ, ७.णिग्घिणो, ८.णिस्संसो, ९, महब्भओ, १०.पइभओ, ११.अइभओ, १२.बीहणओ, १३.तासणओ, १४.अणज्जो, १५.उव्वेयणओय, १६.णिरवयक्खो, १७.णिद्धम्मो, १८.णिप्पिवासो, १९.णिक्कलुणो, २०.णिरयवासगमणनिघणो, २१.मोहमहब्भयपयट्टओ, २२.मरणवेमणस्सो॥

एस पढमं अधम्मदारं॥

–पण्ह. सु. १, आ. १, सु. २

५. पाणवहस्स पज्जव णामाणि–

तस्स (पाणवहस्स) य नामाणि इमाणि गोण्णाणि होंति तीसं, तं जहा–

१. पाणवहं, २. उम्मूलणा सरीराओ, ३. अवीसंभो, ४. हिंसविहिंसा तहा, ५. अकिच्चं च, ६. घायणा य, ७. मारणा य, ८. वहणा, ९. उद्दवणा, १०. तिवायणा य ११. आरंभसमारंभो, १२. आउयकम्मस्सुवद्दवो भेयणिट्ठवण गालणा य संवट्टगसंखेवो, १३. मच्चू, १४. असंजमो, १५. कडगमद्दणं,

२८. आश्रव अध्ययन

सूत्र

१. आश्रव के पाँच हेतुओं का प्ररूपण –

आश्रव के पाँच हेतु कहे गए हैं, यथा–

१. मिथ्यात्व–विपरीत तत्वश्रद्धा,
२. अविरति–अत्यागवृत्ति,
३. प्रमाद–आत्मिक अनुत्साह,
४. कषाय–आत्मा का राग-द्वेषात्मक उत्ताप,
५. योग–मन, वचन और काया का व्यापार।

२. आश्रव के पाँच प्रकार –

जिनेन्द्र भगवान ने इस जगत में अनादि (कर्म) आश्रव पाँच प्रकार का कहा है, यथा–

१. हिंसा, २, मृषा, ३. अदत्तादान, ४. अब्रह्म, ५, परिग्रह।

३. प्राणवध प्ररूपण का निर्देश –

१. प्राणवध (हिंसा) रूप प्रथम आश्रव जैसा है,
२. उसके जितने नाम हैं,
३. जिन पापी प्राणियों द्वारा वह किया जाता है,
४. जैसा (घोर दुःखमय) फल प्रदान करता है,
५. जिस प्रकार किया जाता है उसे तुम सुनो।

४. प्राणवध का स्वरूप –

जिनेश्वर भगवान् ने प्राणवध (का स्वरूप) इस प्रकार कहा है, यथा–

१.पाप, २.चण्ड, ३.रुद्र, ४.क्षुद्र, ५.साहसिक, ६.अनार्य, ७.निर्घृण, ८.नृशंस, ९.महाभय, १०.प्रतिभय, ११.अतिभय, १२.भयोत्पादक, १३.त्रासनक, १४.अनार्य, १५.उद्वेगजनक, १६. निरपेक्ष, १७.निर्धर्म (धर्मविरुद्ध), १८.निष्पिपास (क्रूरपरिणाम), १९.निष्करुण, २०.नरकवास-गमन-निधन (नरक प्राप्ति का हेतु), २१.मोहमहाभय प्रवर्त्तक, २२.मरणवैमनस्य।

यह प्रथम अधर्मद्वार है।

५. प्राणवध के पर्यायवाची नाम –

प्राणवधरूप हिंसा के विविध अर्थों के प्रतिपादक गुण निष्पन्न ये तीस नाम हैं, यथा–

१.प्राणवध, २. शरीर से (प्राणों का) उन्मूलन, ३.अविश्वास, ४. हिंस्य विहिंसा-वध योग्य माने गए जीवों की हिंसा करना, ५. अकृत्य, ६. घात, ७.मारण, ८. वहन करना, ९. उपद्रव, १०. प्राणों का अतिपात-घात हनन, ११. आरम्भ-समारम्भ, १२.आयुकर्म का उपद्रव भेदन निष्ठापन (आयु को समाप्त करना) गालन संवर्तक संक्षेप-श्वासोच्छ्वास को रोकना, दम तोड़ देना, १३.मृत्यु, १४.असंयम, १५.कटक-सैन्य मर्दन,

१६.वोरमणं, १७.परभवसंकामकारओ, १८.दुग्गइप्पवाओ, १९. पावकोवो य, २०. पावलोभो, २१. छविच्छेओ, २२. जीवियंतकरणो, २३. भयंकरो, २४. अणकरो य, २५. वज्जो, २६. परितावंणअण्हओ, २७. विणासो, २८. निज्जवणा, २९. लुंपणा, ३०. गुणाणं विराहण त्ति

विय तस्स एवमाईणि णामधेज्जाणि होंति तीसं, पाणवहस्स कलुसस्स कडुयफल-देसगाइं ॥ —पण्ह. सु. १, आ. १, सु. ३

१६. व्युपरमण–प्राण वियोग, १७. परभवसंक्रमणकारक, १८. दुर्गतिप्रपात–दुर्गति की प्राप्ति का हेतु, १९. पापकोप, २०. पापलोभ, २१. छविच्छेद–अंगोपांग छेदन, २२. जीवित-अंतकरण–जीवन का अंत-कारक, २३. भयंकर, २४. ऋणकर-पापकर्म रूप ऋण का कर्ता, २५. वज्र, २६. परितापन आश्रव, २७. विनाश, २८. निर्यापन-नष्ट करना, २९. लुंपन–लुप्त करना, ३०. गुणों का विराधक

इत्यादि प्राणवध-रूप कलुष के कटुक फल निर्देशक ये तीस नाम हैं।

६. **पाणवह कारगा–**

तं च पुण करेंति केइ पावा, असंजया, अविरया, अणिहुयपरिणामदुप्पओगा, पाणवहं, भयंकरं बहुविहं, बहुप्पगारं, परदुक्खुप्पायणपसत्ता इमेहिं तस-थावरेहि जीवेहिं पडिनिविट्ठा। —पण्ह. आ. १, सु. ४

६. **प्राणवध करने वाले –**

कितने ही पातकी–पापी, असंयत, अविरत, अनुपशान्त परिणाम वाले एवं जिनके मन, वचन और काय के व्यापार दुष्प्रयुक्त हैं, जो दूसरों को दुःख देने में तत्पर रहते हैं तथा त्रस और स्थावर जीवों के प्रति द्वेषभाव रखते हैं, वे अनेक रूपों में विविध भेद-प्रभेदों से भयंकर प्राणवध-हिंसा किया करते हैं।

७. **जलयर जीववग्गो–**

प. किं ते ?

उ. पाठीण-तिमि-तिमिंगल-अणेगझस-विविहजातिमंडुक्क दुविह कच्छभ-णक्क-मगरदुविह-मुसंढ-विविहगाह-दिलिवेढय मंडुय-सीमागार-पुलक-सुंसुमार बहुप्पगारा जलयर विहाणा-कए य एवमादी। —पण्ह. आ. १, सु. ५

७. **जलचर-जीवों का वर्ग –**

प्र. वे किनकी हिंसा करते हैं?

उ. पाठीन एक विशेष प्रकार की मछली, तिमि बड़े मत्स्य, तिमिंगल-महामत्स्य, अनेक प्रकार की मछलियाँ, विविध जाति के मेंढक, दो प्रकार के कच्छप-अस्थिकच्छप और माँसकच्छप, सुंडामगर एवं मत्स्यमगर के भेद से दो प्रकार के मगर, मूढसढ-मत्स्य विशेष, विविध प्रकार के ग्राह, दिन्निवेष्ट-पूँछ से लपेटने वाला जलीय जन्तु, मंडूक, सीमाकार, पुलक आदि ग्राह के प्रकार, सुंसुमार इत्यादि अनेकानेक प्रकार के जलचर जीवों की घात करते हैं।

८. **थलयर जीव वग्गो–**

कुरंग-रूरू-सरह-चमर-संबह-उरब्भ-ससय–पसय-गोण-रोहिय-हय-गय-खर-करभ-खग्गी-वानर-गवय-विग-सियाल-कोल-मज्जार-कोलसुणग-सिरियंदलगावत्त-कोकंतिय-गोकन्न-मिय-महिस-वियग्घ-छगल-दीविय-साण-तरच्छ-अच्छ-भल्ल-स द्दूल-सीह-चिल्लल-चउप्पयविहाणाकए य एवमादी। —पण्ह. आ. १, सु. ६

८. **स्थलचर जीवों का वर्ग –**

कुरंग और रुरु जाति के हिरण, सरभ-अष्टापद, चमर-नील गाय, संवर-सांभर, उरभ्र-मेंढा, शशक-खरगोश, पसय-प्रशय-वन्य पशु विशेष, गोण-बैल, रोहित-पशुविशेष, घोड़ा, हाथी, गधा, करभ-ऊँट, खड्ग-गेंडा, वानर, गवय, रोझ, वृक-भेड़िया, शृगाल-सियार, कोल-शूकर, मार्जार-बिल्ली, कोलशुनक-जंगली शूकर, श्रीकंदलक एवं आवर्त्त नामक खुर वाले पशु, कोकन्तिक-लोमड़ी, गोकर्ण-दो खुर वाला विशिष्ट जानवर, मृग, भैंसा, व्याघ्र, वकरा, द्वीपिक-तेंदुआ श्वान-जंगली कुत्ता, तरक्ष-जरख, रींछ-भालू, शार्दूल सिंह, सिंह-केसरीसिंह, चित्तल अथवा हिरण की आकृति वाला पशुविशेष इत्यादि चतुष्पाद प्राणियों की पूर्वोक्त पापी मनुष्य हिंसा करते हैं।

(क) उरपरिसप्पवग्गो–

अयगर-गोणस-वराहि-मउलि-काओदर-दब्भपुप्फ-आसालिय-महोरगोरगविहाणाकए य एवमादी। —पण्ह. आ. १, सु. ७

(क) उरपरिसर्प जीवों का वर्ग–

अजगर, गोणस–विना फन का सर्पविशेष, वराहि-दृष्टिविष-सर्प, मुकुली–फनवाला सांप, काउदर-काकोदर, दब्भपुप्फ-दर्वीकर सर्प, आसालिक, महोरग–विशालकाय सर्प, इन सब और इस प्रकार के अन्य उरपरिसर्प जीवों का पापी जन वध करते हैं।

(ख) भुज-परिसप्पवग्गो–

छीरल-सरंब-सेह-सेल्लग-गोधा-उंदर-णउल-सरड-जाहग-

(ख) भुजपरिसर्प जीवों का वर्ग –

क्षीरल–भुजाओं के सहारे चलने वाला प्राणी, शरम्ब, सेह-सेही-बड़े-बड़े काले सफेद रंग के काँटों वाले शरीरधारी प्राणी, शल्यक, गोह, उन्दर-चूहा, नकुल-नेवला, शरट–गिरगिट, जाहक-कांटों से ढंका

मंगुस-खाडहिल-चाउप्पाइया-घिरोलिया-सिरीसिवगणे य एवमादी।

–पण्ह. १, सु. ८

९. खयहर जीववग्गो–

कादंवक-वक-बलाका-सारस-आडा-सेतीय-कुलल-वंजुल-पारिप्पव-कोर-सउण-दीविय-हंस-धत्तरिट्ठग-भास-कुलीकोस-कोंच-दगतुंड-ढेणियालग-सूयीमुह-कविल-पिंगलक्खग-कारंडग-चक्कवाग-उक्कोस-गरुल-पिंगुल-सुय-वरहिण-मयणसालनंदीमुह-नंदमाणग-कोरंग-भिंगारग-कोणालग-जीवजीवग-तित्तिर-वट्टग-लावग-कपिंजलक-कवोतक-पारेवयग-चडग-ढिंक-कुक्कुड-मसर-मयूरग-चउरग-हय-पोंडरिय-करक-चीरल्ल-सेण-वायस-विहग-भिणासि-चास-वग्गुलिचम्मट्ठिल-विततपक्खी-समुग्गपक्खी खयहरविहाणाकए य एवमादी।

–पण्ह. आ. १, सु.९

१०. एगिंदयाइ पंचेंदिय पज्जंत तिरिक्खाणं वह कारणाणि–

जल-थल-खगचारिणो उ पंचेंदिए पसुगणे बिय-तिय-चउरिंदिए विविहे जीवे पियजीविए मरणदुक्खपडिकूले वराए हणंति वहुसंकिलिट्ठ-कम्मा इमेहिं विविहेहिं कारणेहिं।

प. किं ते ?

उ. चम्म-वसा-मंस-मेय-सोणिय-जग-फिप्फिस-मत्थुलुंग-हिय-यंत-पित्त-फोफस दंतट्ठा अट्ठि-मिंज-नह-नयण-कण्ण-ण्हारूणि-नक्कधमणि-सिंग-दाढि-पिच्छ विस-विसाण-वालहेऊं हिंसंति य।

भमर-मधुकरिगणे रसेसु गिद्धा।

तहेव तेइंदिए सरीरोवकरणट्ठयाए किवणे।

बेइंदिए बहवे वत्थोहर परिमंडणट्ठा।

अन्नेहि य एवमाइएहिं बहूहिं कारणसएहिं अबुहा इह हिंसंति तसे पाणे इमे य एगिंदिए बहवे वराए तस्से य अन्ने तदस्सिए चेव तणुसरीरे समारंभंति।

जीव, मंगुस-गिलहरी, खाड़हिल–छुछुन्दर चातुष्पदिक घिरोलिका छिपकली इत्यादि अनेक प्रकार के भुजपरिसर्प जीवों का वध करते हैं।

९. खेचर जीवों का वर्ग–

कादम्वक–विशेष प्रकार का हंस, वक-वगुला, वलाका, सारस, आडी, सेतीक-जलपक्षी विशेष, कुलल-हंस विशेष, वजुल-खंजन पक्षी, पारिप्लव, कीर-तोता, शकुन-तीतर दीपिका–एक प्रकार की काली चिड़िया, हंस-श्वेत हंस, धार्तराष्ट्र–काले मुख एवं पैरों वाला हंसविशेष, भास-वासक, कुटीकोश, क्रोंच, दगतुंडक-जलकूकड़ी, ढेणिकालग-जलचर पक्षी, शूचीमुख-सुधरी, कपिल, पिंगलाक्ष, कारंडक, चक्रवाक-चकवा, उक्कोस-गरुड़, पिंगुल-लाल रंग का तोता, शुक-तोता, वरहिन मयूर, मदनशालिका-मैना, नन्दीमुख, नन्दमानक-पक्षी विशेष, कोरंग, भृंगारक-भिंगोड़ी, कुणालक, जीवजीवक-चातक, तीतर, वर्त्तक-वतख, लावक, कपिंजल, कपोत-कबूतर, पारावत-विशिष्ट प्रकार का कपोत, परेवा, चटक-चिड़िया, ढिंग, कुक्कुट-मुर्गा, वेसर, मयूरक–मयूर, चतुर्ग-चकोर, हदपुण्डरीक-जलीय पक्षी, करक, चीरल्ल-चील, श्येन-वाज, वायस-काक, विहग-एक विशिष्ट जाति का पक्षी, श्वेत चास, वल्गुली, चमगादड़ विततपक्षी और समुद्गपक्षी-अढाई द्वीप से बाहर के पक्षी विशेष इत्यादि पक्षियों की अनेकानेक जातियों की हिंसक जीव हिंसा करते हैं।

१०. एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय पर्यन्त तिर्यञ्च जीवों के वध के कारण–

इस प्रकार, जल, स्थल और आकाश में विचरण करने वाले पंचेन्द्रिय तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तिर्यञ्च प्राणी जो अनेकानेक प्रकार के हैं उन सभी को जीवन प्रिय है, मरण व दुःख प्रतिकूल है फिर भी अत्यन्त संक्लिष्टकर्मा-क्लेश उत्पन्न करने की प्रवृत्ति वाले पापी पुरुष, इन बेचारे दीन-हीन प्राणियों का इन विविध प्रयोजनों से वध करते हैं।

प्र. वे प्रयोजन क्या हैं ?

उ. चमड़ा, चर्वी, माँस, मेद, रक्त, यकृत, फेफड़ा, हृदय, आंत, पित्ताशय, फोफस शरीर का एक अवयव, दाँत, अस्थि, हड्डी, मज्जा, नाखून, नेत्र, कान, स्नायु नाक, धमनी, सींग, दाढ, पिच्छ, विष, विषाण-हाथी दाँत तथा शूकरदंत और वालों के लिए हिंसक जन जीवों की हिंसा करते हैं।

रसासक्त मनुष्य मधु के लिए भ्रमर-मधुमक्खियों का हनन करते हैं।

शारीरिक सुख अथवा शरीर एवं उपकरणों को शृंगारित व संस्कारित करने के लिए तुच्छ त्रीन्द्रिय-दयनीय खटमल आदि त्रीन्द्रिय जीवों का वध करते हैं।

वस्त्रादि का प्रसाधन करने व गृहादि को सुशोभित करने के लिए अनेक द्वीन्द्रिय कीड़ों आदि का घात करते हैं।

इसी प्रकार के पूर्वोक्त तथा अन्य अनेकानेक प्रयोजनों से बुद्धिहीन अज्ञानी पापी जन त्रस जीवों का घात करते हैं तथा वहुत-से एकेन्द्रिय जीवों का व उनके आश्रय में रहे हुए अन्य सूक्ष्म शरीर वाले त्रस जीवों का समारम्भ करते हैं।

अत्ताणे, असरणे, अणाहे, अबंधवे कम्मनिगलबद्धे अकुसल-परिणाम-मंदबुद्धिजण-दुव्विजाणए पुढविमए पुढविसंसिए, जलमए जलगए अणलाणिल तणवणस्सइगणनिस्सिए य तम्मयतज्जिए चेव तदाहारे तप्परिणय वण्ण गंध-रस-फास बोंदरूवे।

ये प्राणी त्राणरहित हैं–अपनी रक्षा के साधनहीन हैं, वे अशरण हैं, वे अनाथ हैं, वन्धु-बान्धवों से रहित हैं और बेचारे अपने कृत कर्मों की बेड़ियों से जकड़े हुए हैं। जिनके परिणाम-वृत्तियाँ, अकुशल-अशुभ हैं, मन्दबुद्धि वाले हैं, वे इन प्राणियों को नहीं जानते। वे न पृथ्वीकाय को जानते हैं, न पृथ्वीकाय के आश्रित रहे अन्य स्थावरों एवं त्रस जीवों को जानते हैं उन्हें जलकायिक तथा जल में रहने वाले अन्य त्रस स्थावर जीवों का ज्ञान नहीं है। उन्हें अग्निकाय, वायुकाय, तृण तथा अन्य वनस्पतिकाय के एवं इनके आधार पर रहे हुए अन्य जीवों का परिज्ञान नहीं है। ये प्राणी उन्हीं पृथ्वीकाय आदि के स्वरूप वाले, उन्हीं के आधार से जीवित रहने वाले, और उन्हीं का आहार करने वाले हैं उन जीवों का वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और शरीर अपने आश्रयभूत पृथ्वी जल आदि सदृश होता है।

अचक्खुसे चक्खुसे य, तसकाइए असंखे,
थावरकाए य सुहुम-बायर-पत्तेयसरीरनाम-साधारणे अणंते हणंति अविजाणओ य परिजाणओ य जीवे। इमेहिं विविहेहिं कारणेहिं–

उनमें से कई जीव नेत्रों से दिखाई नहीं देते हैं और कोई दिखाई देते हैं। ऐसे असंख्य त्रसकायिक जीवों की तथा अनन्त सूक्ष्म, वादर, प्रत्येक शरीर और साधारण शरीर वाले स्थावरकाय के जीवों की जान-बूझकर या अनजाने इन (आगे कहे जाने वाले) कारणों से हिंसा करते हैं–

११. पुढविकाइयाईणं जीवाणं हिंसा कारणानि–

प. किं ते?

उ. करिसण-पोक्खरिणी-वावि-वप्पिणि-कूव-सर-तलाग-भितिवेदिया-खातिया आराम-विहार-थूभ-पागार-दार-गाउर-अट्टालग-चरिया-सेउ-संकम-पासाय विकप्प-भवण-घर-सरण-लयण-आवण-चेइय-देवकुल-चित्तसभा-पवा-आयतणावसह-भूमिघर-मंडवाण य कए, भायण-भंडोवगरणस्स विविहस्स अट्ठाए पुढविं-हिंसंति मंदबुद्धिया।

११. पृथ्वीकायिकादि जीवों की हिंसा के कारण –

प्र. वे कारण कौन-से है?

उ. कृषि, पुष्करिणी, बावड़ी, क्यारी, कूप, सर, तालाव, भित्ति, वेदिका, खाई, आराम, विहार-बौद्धभिक्षुओं के ठहरने का स्थान, स्तम्भ, थंभा, प्राकार, द्वार, गोपुर-नगरद्वार, अटारी, चरिका–विशेष मार्ग, सेतु-पुल, संक्रम-उवड़-खावड़ भूमि को पार करने का मार्ग, प्रासाद, विकल्प, भवन, गृह, सरण–झौंपड़ी, लयन-गुफा, आपण-दुकान, चैत्य-चवूतरा छतरी और स्मारक, देवकुल-देवालय, चित्रसभा, प्याऊ, आयतनं-देवस्थान, आवसथ-तापसों का स्थान, भूमिगृह, भौंयरा-तलघर और मंडप आदि के लिए तथा नाना प्रकार के भाजन-मात्र भाण्ड-वर्तन आदि एवं उपकरणों के लिए मन्दबुद्धिजन पृथ्वीकाय के जीवों की हिंसा करते हैं।

जलं च मज्जणय-पाण-भोयण-वत्थधोवण-सोयमादिएहिं।

मज्जन-स्नान, पान-पीने, भोजन, वस्त्र धोने एवं शौच-स्वच्छता इत्यादि कार्यों के लिए जलकायिक जीवों की हिंसा की जाती है।

पयण-पयावण-जलावण-विदंसणेहिं अगणिं।

भोजनादि पकाने, पकवाने, दीपक आदि जलाने तथा प्रकाश करने के लिए अग्निकाय के जीवों की हिंसा की जाती है।

सुप्प-वियण-तालयंट परिथुणक पेहुणमुह-करयल-सग्ग-पत्त-वत्थ एवमादिएहिं अणिलं।

सूर्प-सूपड़ा, व्यजन-पंखा, तालवृन्त-ताड़ का पंखा, मयूरपंख आदि, मुख, हथेलियों, सागवान आदि के पत्ते तथा वस्त्र खण्ड आदि से वायुकाय के जीवों की हिंसा की जाती है।

अगार-परियार-भक्ख-भोयण-सयणासण-फलक-मुसल-उखल-तत-विततातोज्ज वहण-वाहण-मंडव-

अगार-गृह, परिचार-तलवार की म्यान आदि, भक्ष्य-मोदक आदि, भोजन-रोटी वगैरह, शयन-शय्या आदि, आसन-बिस्तर आदि, फलक-पाट-पाटिया, मूसल, ओखली, तत-वीणा, वितत-ढोल आदि, आतोद्य अनेक प्रकार के वाद्य, वहन-नौका आदि वाहन-रथ गाड़ी आदि, मण्डप अनेक

विविहभवण-तोरण-विडंग-देव-कुल-जालयद्धचंद-निज्जूहग-चंदसालिय-वेतिय-णिस्सेणि दोणिचंगेरी खील-मंडव सभा-पवा-वसह-गंध-मल्लाणुलेवणंबर-जुय-नंगल-मइय-कुलिय-संदण-सोया-रह सगड-जाण-जोग्ग- अट्टालग-चरिअ-दार-गोपुर-फलिह-जंतसूलिय-लउड- मुसंढि-सयग्घी-बहुपहरणा-वरणुवक्खराणकए अण्णेहिं य एवमाइएहिं बहुहिं कारणसएहिं हिंसंति ते तरूगणे भणिया अभणिया एवमादी।

—पण्ह. आ. १, सु. १०–१७

प्रकार के भवन, तोरण, निर्यूहक-द्वारशाखा-छज्जा, वेदी, निःसरणी-नसैनी, द्रोणी-छोटी नौका, चंगेरी वड़ी नौका या फूलों की डलिया (छावड़ी), खूँटा-खूँटी, स्तंभ-खम्भा, सभागार, प्याऊ, आवसाथ, आश्रम, मठ, गंध, माला, विलेपन, वस्त्र, युग-जूवा, लांगल-हल, मतिक-हल से जोती भूमि जिससे समतल की जाती है, कुलिक-विशेष प्रकार का हल, वखर, स्यन्दन-युद्ध-रथ, शिविका-पालकी, रथ, शकट-छकड़ा-गाड़ीयान, युग्य, अट्टालिका, चरिका, द्वार, गोपुर-परिघा, यंत्र-आगल, अरहट आदि शूली, लकुट-लकड़ी-मुसंढी, शतघ्नी-सैकड़ों का हनन हो सके ऐसी तोप या महाशिला तथा अनेकानेक प्रकार के शस्त्र, ढक्कन एवं अन्य उपकरण वनाने के लिए और इसी प्रकार के ऊपर कहे गए तथा नहीं कहे गए ऐसे बहुत से सैकड़ों कारणों से अज्ञानी जन वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं।

१२. पाणवहगाणं मणोवित्ति–

सत्ते सत्तपरिवज्जिया उवहणंति दढमूढा दारुणमती कोहा माणा-माया-लोभा-हासा, रती, अरती, सोय, वेदत्थी, जीव जोयधम्मत्थ-कामहेउ सवसा अवसा अट्ठाए अणट्ठाए य तसपाणे थावरे य हिंसंति।

मंदबुद्धी सवसा हणंति, अवसा हणंति, सवसा-अवसा हणंति।

अट्ठा-हणंति, अणट्ठा हणंति, अट्ठा-अणट्ठा दुहओ हणंति।

हस्सा हणंति, वेरा हणंति, रती हणंति, हस्सा-वेरा-रती-हणंति।

कुद्धा हणंति, लुद्धा हणंति, मुद्धा हणंति, कुद्धा-लुद्धा-मुद्धा हणंति।

अत्था हणंति, धम्मा हणंति, कामा हणंति, अत्था धम्मा कामा हणंति।

—पण्ह. आ. १, सु. १८

१२. प्राणवधकों की मनोवृत्ति –

दृढमूढ-हिताहित के विवेक से सर्वथा शून्य क्रूर अज्ञानी, दारुण मति वाले मंदबुद्धि पुरुष क्रोध से प्रेरित होकर, क्रोध, मान, माया और लोभ के वशीभूत होकर तथा हंसी विनोद के लिए, रति, अरति एवं शोक के अधीन होकर, वेदानुष्ठान के अर्थी होकर, वंशानुगत धर्म, अर्थ एवं काम के लिए कभी स्ववश–अपनी इच्छा से और कभी परवश–पराधीन होकर, कभी प्रयोजन से और कभी बिना प्रयोजन ही अशक्त शक्तिहीन त्रस तथा स्थावर जीवों का घात करते हैं।

वे बुद्धिहीन क्रूर प्राणी कई स्ववश स्वतंत्र होकर घात करते हैं, कई विवश होकर घात करते हैं, कई स्ववश विवश दोनों प्रकार से घात करते हैं।

कई सप्रयोजन घात करते हैं, कई निष्प्रयोजन घात करते हैं, कई सप्रयोजन और निष्प्रयोजन दोनों प्रकार से घात करते हैं।

कई पापी जीव हास्य विनोदवश, कई वैर के कारण और कई भोगासक्ति से प्रेरित होकर और कई हास्य वैर और भोगासक्ति रूप तीनों कारणों से हिंसा करते हैं।

कई क्रूद्ध होकर हनन करते हैं, कई लुब्ध होकर हनन करते हैं, कई मुग्ध होकर हनन करते हैं, कई क्रूद्ध-लुब्ध और मुग्ध तीनों के लिए हनन करते हैं।

कई अर्थ के लिए घात करते हैं, कई धर्म के लिए घात करते हैं, कई काम-भोग के लिए घात करते हैं तथा कई अर्थ-धर्म-कामभोग तीनों के लिए घात करते हैं।

१३. हिंसगजणाणं परिययो–

प. कयरे ते ?

उ. जे ते सोयरिया, मच्छवंधा, साउणिया, वाहा, कूरकम्मा, वाउरिया,

१३. हिंसकजनों का परिचय –

प्र. वे हिंसकजन कौन हैं ?

उ. शौकरिक–शूकरों का शिकार करने वाले, मत्स्यवन्धक-मछलियों को जाल में फंसाकर मारने वाले, शाकुनिक–जाल में फंसाकर पक्षियों का घात करने वाले, व्याध–मृगों को जाल में फंसाकर मारने वाले, क्रूरकर्मा, वागुरिक–जाल में मृग आदि को फंसाने के लिए घूमने वाले,

दीवित बंधणप्पओग-तप्प-गल-जाल- वीरल्लगायसीदब्भ वागुरा कूडछेलिया, हत्था, हरिएसा, साउणिया य वीदंसग पासहत्था वणचरगा, लुद्धगा,

द्वीपिक–बंधन प्रयोग चीतों को साथ रखकर मृगादिकों को मारने व बाँधने का प्रयोग करने वाले, तप्र–मछलियाँ पकड़ने के लिए छोटी नौका में घूमने वाले, गल–काँटे पर आटा या माँस लगाकर मछलियाँ पकड़ने वाले, जाल, वीरल्लक–बाज पक्षी, अयसीदर्भवागुरा-लोहे या दर्भनिर्मित जाल बिछाने वाले, कूटपाश–चीता आदि को पकड़ने के लिए पिंजरे आदि में रखी हुई बकरी को साथ में लेकर फिरने वाले और इन साधनों का प्रयोग करने वाले, हरिकेश–चाण्डल, शाकुनिक चिड़ीमार बाज पक्षी तथा जाल को रखने वाले, वनचर–भील आदि वनवासी, लुब्धक-मांसलोलुपी,

महुघाया, पोतघाया, एणीयारा, पएणीयारा, सर-दह-दोहिअ-तलाग-पल्लल-परिगालण-मलण-सोत्तबंधण-सलिलासयसोसगा,

मधुघातक–मधु-मुक्खियों का घात करने वाले, पोतघातक–पक्षियों के बच्चों का घात करने वाले, एणीयार–मृगों को आकर्षित करने के लिए हरिणियों का पालन करने वाले, पएणीयार–हरिणियों को साथ लेकर घूमने वाले, मत्स्य, शंख आदि प्राप्त करने के लिए सरोवर द्रह वापी, तालाब, पल्वल क्षुद्र जलाशय को खाली करने वाले, पानी निकालकर जल के आगमन का मार्ग रोककर तथा जलाशय को किसी उपाय से सुखाने वाले,

विसगललस्स य दायगा, उत्तणवल्लर दवग्गि-णिद्दया पलीवगा कूरकम्मकारी।

विष अथवा गरल–अन्य वस्तु में मिले विष को खिलाने वाले, उगे हुए तृण-घास एवं खेत को निर्दयतापूर्वक जलाने वाले ये सब क्रूरकर्मकारी हैं, (जो अनेक प्रकार के प्राणियों का घात करते हैं)

इमे य बहवे मिलक्खु जातीया।

इसी प्रकार की और भी वहुत-सी हिंसक म्लेच्छ जातियाँ हैं।

प. के ते ?

प्र. वे जातियाँ कौन-सी हैं ?

उ. सक-जवण-सबर-बब्बर-गाय-मुरुंडोद-भडग-तित्तिय-पक्कणिय-कुलक्ख-गोड-सींहल पारस-कोंच-अंध-दविल-विल्लल-पुलिंद-अरोस-डोंब-पोक्कण-गंधहारग-बहलीय-जल्ल-रोम-मास-बउस-मलया-चुंचुया य चूलिया कोंकणगा सेय मेता पण्हव-मालव-महुअर-आभासिय-अणक्ख-चोण-ल्हासिय-खस-खासिया-नेहुर-मर-हट्ठमुट्ठिअ-आरब-डोंबिलग कुहण केकय हूण-रोमग-रूरू-मरुया चिलाय विसयवासी य पावमतिणो।

उ. शक, यवन, शवर, वब्बर, काय, मुरुंड, उद्र, भडक, तित्तिक, पक्कीणक, कुलाक्ष, गौड, सिंहल, पारस, क्रौंच, आन्ध्र, द्रविड़, विल्लव, पुलिंद, आरोष, डौंव, पोक्कण, गान्धार, बहुलीक, जल्ल, रोम, मास, वकुश, मलय, चुंचुक, चूलिक, कोंकण, सेत, मेद, पण्हव, मालव, मधुकर आभाषिक, अणक्कत, चोन, ल्हासिक, खव, खासिक, नेहुर, महाराष्ट्र मौष्ट्रिक, आरव, डोंवलिक, कुहण, कैकय, हूण, रोमक, रुरु, मरुक, चिलात, इन देशों के पाप वुद्धि वाले निवासी हिंसा में प्रवृत्त रहते हैं।

जलयर-थलयर-सणप्पयोरग-खहचर-संडासतोंड-जीवोवघायजीवी। सण्णीणो य असण्णिणो य पज्जत्ते अपज्जत्ते य अशुभ लेस-परिणामे एए अण्णे य एवमाई करेंति पाणाइवायकरणं।

(पूर्वोक्त विविध देशों और जातियों के लोगों के अतिरिक्त) अन्य जातीय और अन्य देशीय लोग भी जो अशुभ लेश्या-परिणाम वाले होते हैं, वे जलचर, स्थलचर, सनखपद-सिंह आदि उरग नभश्चर, संडासी जैसी चोंच वाले आदि जीवों का घात करके अपनी आजीविका चलाते हैं। वे संज्ञी, असंज्ञी, पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों का प्राणातिपात-हनन करते हैं।

पावा, पावाभिगमा, पावरुई, पाणवहकयरई, पाणवहरूवाणुट्ठाणा पाणवहकहासु अभिरमंता तुट्ठा, पावं करेत्तु होंति य बहुप्पगारं।

–पण्ह. आ. १, सु. १९-२१

वे पापी जन पाप को ही उपादेय मानते हैं, पाप में ही उनकी वुद्धि रत रहती है, पाप में ही उनकी रुचि-प्रीति होती है, वे प्राणियों का घात करके प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। उनका अनुष्ठान-कर्त्तव्य प्राणवध करना ही होता है, प्राण वध करना ही उनका एक मात्र कार्य है, प्राणियों की हिंसा की कथा-वार्ताओं में ही वे आनन्द मानते हैं। वे अनेक प्रकार के पापों का आचरण करके संतोष अनुभव करते हैं।

१४. पाणवह फलं–

तस्स य पावस्स फलविवागं अयाणमाणा वड्ढंति महब्भयं अविस्सामवेयणं दीहकालवहुदुक्खसंकडं नरय-तिरिक्खजोणिं।

इओ आउक्खए चुया-असुभकम्मवहुला उववज्जंति नरएसु हुलियं महालएसु। –पण्ह. आ. १, सु. २२

१५. नरगाणं परियओ–

तेसु नरगेसु वयरामय-कुड्ड-रुद्द-निस्संधि-दार-विरहिय-निमद्दव-भूमितल-खरामरिस-विसम णिरय-घरचारएसु, महोसिण-सयापतत्त दुग्गंध-विस्स-उव्वेयजणगेसु,

बीभच्छ-दरिसणिज्जेसु, निच्चं हिमपडलसीयलेसु, कालोभासेसु य, भीम-गंभीर-लोम-हरिसणेसु णिरभिरामेसु, निप्पडियार-वाहि-रोग-जरापीलिएसु, अईव-निच्चंधकार तिमिस्सेसु पइभएसु ववगय-गह-चंद-सूर-णक्खत्त-जोइसेसु, मेय-वसा-मंस-पडल-पोच्चड-पूयरुहिरुक्किण्ण-विलीण-चिक्कण-रसिया-वावण्ण-कुहिय-चिक्खल कद्दमेसु,

कुकूलानल-पलित्त-जाल-मुम्मुर-असि-क्खुर-करवत्तधारासु निसिय-विच्छुयडंक-निवायोवम्म-फरिस-अइदुस्सहेसु य, अत्ताणा असरणा कडुय-परितावणेसु, अणुवद्ध निरंतर-वेयणेसु, जमपुरिस-संकुलेसु।

तत्थ य अंतोमुहुत्तलद्धिभवपच्चएणं निव्वत्तेंति उ ते सरीरं हुंडं बीभच्छ-दरिसणिज्जं बाहणगं अट्ठि-ण्हारु-णह-रोम-वज्जियं असुभगं दुक्खविसहं।

तओ य पज्जत्तिमुवगया इंदिएहिं पंचहिं वेएंति असुहाए वेयणाए उज्जल-वलविउल-कक्खड-खर-फरुस-पयंड-घोर-बीहणग-दारुणाए। –पण्ह. आ. १, सु. २३-२४

१६. वेयणाणं सरूवं–

प. किं ते ?

उ. कंदु महाकुंभिए पयण-पउलण-तवण-तलण-भट्टभज्जणाणि य, लोहकडाहुक्कढ्ढणाणि य,

१४. प्राणवध का फल–

पूर्वोक्त मूढ़ हिंसक लोक हिंसा के फल-विपाक को नहीं जानते हुए अत्यन्त भयानक एवं दीर्घकाल पर्यन्त बहुत से दुःखों से व्याप्त परिपूर्ण एवं अविश्रान्त निरन्तर दुःख रूप वेदना वाली नरकयोनि और तिर्यञ्चयोनि को बढ़ाते हैं।

पूर्ववर्णित हिंसक जन यहां-मनुष्यभव का आयुक्षय होने पर मरकर के अशुभ कर्मों की बहुलता के कारण तत्काल विशाल नरकों में उत्पन्न होते हैं।

१५. नरकों का परिचय –

उन नरकों की भित्तियां वज्रमय हैं, उन भित्तियों में सन्धि-छिद्र और बाहर निकलने के लिए कोई द्वार नहीं है, वहां की भूमि कठोर है, उनका स्पर्श खुरदरा है, वे नरक रूपी कारागार विषम हैं। वे नारकावास अत्यन्त उष्ण हैं एवं सदा तप्त रहते हैं (उनमें रहने वाले) जीव वहां दुर्गन्ध के कारण सदैव उद्विग्न रहते हैं।

वहां का दृश्य अत्यन्त बीभत्स है, शीत प्रधान क्षेत्र होने से सदैव हिम-पटल के सदृश शीतल है। उनकी आभा काली है। वे नरक भयंकर गम्भीर एवं रोंगटे खड़े कर देने वाले हैं। अरमणीय (घृणास्पद) हैं। असाध्य कुष्ठ आदि व्याधियों, रोगों एवं जरा से पीड़ा पहुँचाने वाले हैं। सदा अन्धकार रहने के कारण वे नरकावास अत्यन्त भयानक प्रतीत होते हैं। वहाँ ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र आदि के प्रकाश का अभाव है। मेद, चर्बी, माँस के ढेरों से व्याप्त होने से वह स्थान अत्यन्त घृणाजनक है। पीव और रुधिर बहने से वहाँ की भूमि गीली और चिकनी रहती है और कीचड़-सी बनी रहती है।

उष्णता प्रधान क्षेत्र का स्पर्श दहकती हुई करीष की अग्नि का या खैर की अग्नि के समान उष्ण तथा तलवार उस्तरा या करवत की धार के समान तीक्ष्ण है। वहां का स्पर्श विच्छू के डंक से भी अधिक वेदना उत्पन्न करने वाला है। वहाँ के नारक जीव त्राण और शरण से विहीन हैं। वे नरक कटुक दुःखों के कारण घोर परिताप-संक्लेश उत्पन्न करने वाले हैं। वहाँ लगातार दुःखरूप वेदना का अनुभव होता रहता है। तथा परमाधार्मिक (असुरकुमार) यमपुरुषों से व्याप्त हैं।

वहाँ उत्पन्न होते ही भवप्रत्ययिक वैक्रिय लब्धि से अन्तर्मुहूर्त में अपने शरीर का निर्माण कर लेते हैं। वह शरीर हुंडक संस्थान बेडौल आकृति वाला, देखने में बीभत्स, घृणित, भयानक, अस्थियों, नसों, नाखूनों और रोमों से रहित अशुभ और दुःखों को सहन करने में समर्थ होता है।

शरीर निर्माण हो जाने के बाद पर्याप्तियों को प्राप्त करके पाँचों इन्द्रियों से उज्ज्वल, बलवती, विपुल उत्कट, प्रखर, परुष, प्रचण्ड, घोर, डरावनी और दारुण अशुभ वेदना का वेदन करते हैं।

१६. वेदनाओं का स्वरूप –

प्र. वे वेदनाएँ कैसी होती है ?

उ. नारक जीवों को कटु-कड़ाह और महाकुंभी-संकड़े मुख वाले घड़े जैसे महापात्र में पकाया और उबाला जाता है, तवे पर रोटी की तरह सेका जाता है, पूड़ी आदि की तरह तला जाता है–चनों की भांति भाड़ में भूंजा जाता है, लोहे की कढ़ाई में ईख के रस के समान ओटाया जाता है।

कोट्ट-बलिकरण-कोट्टणाणि य, सामलि-तिक्खग्ग-लोहटकंटक-अभिसरणापसारणाणि, फालण-विदारणाणि य, अवकोडगबंधणाणि, लट्ठि-सयतालणाणि य गलगंबलुल्लंबणाणि, सूलग्गभेयणाणि य आएसपवंचणाणि खिंसण-विमाणणाणि विघुट्ठ-पणिज्जणाणि वज्जवज्झसयमाईकाणि य।

देवी के सामने बकरे की बलि के समान उनकी बलि चढ़ाई जाती है, उनके शरीर के खण्ड-खण्ड कर दिए जाते हैं, लोहे के तीखे शूल के समान तीक्ष्ण काँटों वाले शाल्मलिवृक्षों पर उन्हें इधर-उधर घसीटा जाता है, काष्ठ के समान उनकी चीर-फाड़ की जाती है उनके हाथ पैर बाँध दिए जाते हैं। सैकड़ों लाठियों से उन पर प्रहार किए जाते हैं, गले में फंदा डाल कर लटका दिया जाता है। उनके शरीर को शूली के अग्रभाग से भेदा जाता है, झांसा देकर उन्हें ठगा जाता है, उनकी भर्त्सना करके अपमानित किया जाता है।

एवं ते पुव्वकम्मकयसंचओवतत्ता-निरयग्गिमहग्गि-संपलित्ता गाढदुक्खं महब्भयं कक्कसं असायं सारीरं माणसं च तिव्वं दुविहं वेएंति।

पूर्वकृत पापों की याद दिलाकर उन्हें वधभूमि में घसीट कर ले जाया जाता है, वध्य जीवों के समान सैकड़ों प्रकार के दुःख उन्हें दिए जाते हैं। इस प्रकार वे नारक जीव पूर्व जन्म में किए हुए कर्मों के संचय से सन्तप्त रहते हैं। जाज्वल्यमान अग्नि के समान नरक की तीव्र अग्नि में जलते रहते हैं। वे पापकृत्य करने वाले जीव प्रगाढ़ दुःखमय, घोर भय उत्पन्न करने वाला, अतिशय कर्कश एवं उग्र अशाता रूप शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार की तीव्र वेदना का अनुभव करते हुए रहते हैं।

वेयणं पावकम्मकारी बहूणि पलिओवम-सागरोवमाणि-कलुणं पालेंति ते अहाउयं जमकाइयतासिया य सद्दं करेंति भीया॥

वे पापकारी वेदना को हीन जैसे होकर बहुत पल्योपम और सागरोपम तक सहन करते रहते हैं, वे अपनी आयु पर्यन्त यमकायिक देवों द्वारा त्रास को प्राप्त होते हैं और भयभीत होकर आर्तनाद करते हुए रोते-चिल्लाते हैं।

प. किं ते?

उ. अविभाय सामि! भाय! बप्प! ताय! जितवं! मुय मे, मरामि दुब्बलो, वाहिपीलिओ अहं किं दाणिऽसि एवं दारुणो निद्दयः! मा देहि मे पहारं।

उस्सासेयं मुहुत्तयं मे देहि, पसायं करेह, मा रुस वीसमामि। गेविज्जं मुयह मे मरामि।

गाढं तण्हइओ अहं देहि पाणियं।

हंता! पिय इमं जलं विमलं सीयलं ति।

घेत्तूण य नरयपाला-तवियं तउयं से देंति कलसेण अंजलीसु।

दट्ठूण य तं पवेवियंगोवंगा, अंसुंपगलंत-पप्पुयच्छा छिण्णा तण्हाइयम्ह कलुणाणि जंपमाणा विप्पेक्खंता दिसोदिसिं।

अत्ताणा, असरणा, अणाहा, अबंधवा, बंधुविप्पहीणा विपलायंति य मिगा इव वेगेण भयुव्विग्गा।

घेत्तूण बला पलायमाणाणं निरणुकंपा मुहं विहाडेत्तुं लोहडंडेहिं कलकलण्हं वयणंसि छुब्भंति, केइ जमकाइया हसंता।

प्र. नारक जीव किस प्रकार आर्तनाद करते हैं?

उ. हे अज्ञात बन्धु! हे स्वामिन्! हे भ्राता! अरे बाप! हे तात! हे विजेता! मुझे छोड़ दो, मै मर रहा हूँ, मैं दुर्बल हूँ, मैं व्याधि से पीड़ित हूँ, आप इस समय क्यों ऐसे दारुण एवं निर्दय हो रहे हैं? मेरे ऊपर प्रहार मत करो।

मुहूर्त्त भर तो सांस लेने दीजिए, दया कीजिए, रोप न कीजिए, मै जरा विश्राम ले लूँ, मेरी गर्दन छोड़ दीजिए, मै मरा जा रहा हूँ।

मैं प्यास से पीड़ित हूँ मुझे पानी दीजिए।

अच्छा ठीक है, लो यह निर्मल और शीतल जल पीओ।

इस प्रकार कहकर नरकपाल (परमाधामी असुर) नारकों को पकड़कर उकला हुआ सीसा कलश द्वारा उनकी अंजुली में उंड़ेल देते हैं।

उसे देखते ही उनके अंगोपांग कांपने लगते हैं, उनके नेत्रों से आंसू टपकने लगते हैं और वे कहते हैं—हमारी प्यास शान्त हो गई है। इस प्रकार करुणापूर्ण वचन बोलते हुए भागने के लिए वे इधर-उधर मौका देखते हैं।

अन्ततः वे त्राणहीन, शरणहीन, अनाथ, बन्धु विहीन बन्धुओं से वंचित एवं भयभीत हो करके मृग की तरह बड़े वेग से भागते हैं।

कोई-कोई निर्दयी यमकायिक उपहास करते हुए इधर-उधर भागते हुए उन नारक जीवों को जबर्दस्ती पकड़कर लोहे के डंडे से उनका मुख फाड़कर उसमें उबलता हुआ शीशा डाल देते हैं और उनको क्षुभित देखकर कई यमकायिक अट्टहास करते हैं।

तेण दड्ढा संतो रसंति भीमाइं विस्सराइं रुदंति य,
कलुणगाइं पारेवयगा इव।

उबलते शीशे से दग्ध होकर वे नारक बुरी तरह चिल्लाते हैं। वे कबूतर की तरह करुणाजनक फड़फड़ाहट करते हुए खूब रुदन करते हैं—चीत्कार करते हुए आंसू बहाते हैं।

एवं पलवित-विलाव-कलुणाकंदिय-वहुरुन्न-रुदियद्दो-परिदेविय-रुद्ध-बद्धय-नारकारवसंकुलो णीरिसट्ठो। रसिय-भणिय-कुविय-उक्कइय-निरयपालतज्जिय। गेण्ह, कम, पहर, छिंद, भिंद उप्पाडेहुक्खणाहि कत्ताहि विकत्ताहि य भुज्जो। भंज हण विहण विच्छुभोच्छुभ आकड्ढ विकड्ढ।

विलाप करते हैं, नरकपाल उन्हें रोक लेते हैं, बाँध देते हैं। जब नारक आर्तनाद करते हैं, हाहाकार करते हैं, बड़बड़ाते हैं, तब नरकपाल कुपित होकर उच्च ध्वनि से उन्हें धमकाते हैं और कहते हैं—इसे पकड़ो, मारो, प्रहार करो, छेद डालो, भेद डालो, मारो पीटो, बार बार मारो पीटो, इसके मुख में गर्मागर्म शीशा उंडेल दो, इसे उठाकर पटक दो, उल्टा सीधा घसीटो।

किंण जंपसि?

नरकपाल फिर फटकारते हुए कहते हैं—बोलता क्यों नहीं?

सराहि पावकम्माइं दुक्कयाइं।

अपने कृत पापकर्मों और कुकर्मों का स्मरण कर!

एवं वयणमहप्पगब्भो पडिसुयासद्दसंकुलो तासओ सया निरयगोयराणं-महाणगर-डज्झमाण-सरिसो-निग्घोसो सुच्चए अणिट्ठो तहिं नेरइया जाइज्जंताणं जायणाहिं।

इस प्रकार अत्यन्त कर्कश नरकपालों के बोलचाल की प्रतिध्वनि होती रहती है। जो उन नारक जीवों के लिए सदैव त्रासजनक होती है। जैसे किसी महानगर में आग लगने पर घोर कोलाहल होता है, उसी प्रकार निरन्तर यातनाएँ भोगने वाले नारकों का अनिष्ट निर्घोष वहाँ सुना जाता है।

प. किं ते?

उ. असिवण-दब्भवण-जंतपत्थर-सूइतल-क्खारवावि कलकलंत वेयरणि

प्र. वे यातनाएं कैसी होती हैं?

उ. नारकों को असि-वन तलवार की धार के समान पत्तों वाले वृक्षों के वन में चलने को बाध्य किया जाता है, तीखी नोंक वाले डाभ के वन में चलाया जाता है, उन्हें कोल्हू में डाल कर पेरा जाता है, सूई की नोक के समान अतीव तीक्ष्ण कण्टकों के सदृश स्पर्श वाली भूमि पर चलाया जाता है, क्षारवापी-क्षारयुक्त पानी वाली वापिका-बावड़ी में पटक दिया जाता है, उकलते हुए सीसे आदि से भरी वैतरणी नदी में बहाया जाता है।

कलंब वालुया-जलियगुहनिरुभणं उसिणोसिण-कंटइल्ल-दुग्गमरहजोयण-तत्तलोह-मग्गगमण-वाहणाणि।

कदम्बपुष्प के समान-अत्यन्त तप्त लाल हुई रेत पर चलाया जाता है, जलती हुई गुफा में बंद कर दिया जाता है, अत्यन्त उष्ण एवं कण्टकाकीर्ण दुर्गम मार्ग में रथ में जोत कर चलाया जाता है, लोहमय उष्ण मार्ग में चलाया जाता है और भारी भार वहन कराया जाता है।

इमेहिं विविहेहिं आयुहेहिं।

इसके अतिरिक्त जन्मजात वैर के कारण विविध प्रकार के शस्त्रों से परस्पर एक-दूसरे को वेदना उत्पन्न करते रहते हैं।

प. किं ते?

उ. मोग्गर-मुसुंढि-करकय-सत्ति-हल-गय-मुसल-चक्क-कोंत तोमर-सूल-लउल-भिंडिमाल-सबल-पट्टिस-चम्मेट्ठ-दुहण-मुट्ठिय-असिखेडग-खग्ग-चाव-नाराय-कणग-कप्पिणि-वासि-परसु टंक- तिक्ख निम्मल।

प्र. वे शस्त्र कौन से हैं?

उ. वे शस्त्र हैं—मुद्गर, मुसुंढि, करवत, शक्ति-त्रिशूल, हल, गदा मूसल, चक्र, भाला तोमर-वाण, शूल, लाठी, भिंडिमाल-गोफन, सब्बल-विशिष्ट भाला, पट्टिस-शस्त्रविशेष, चम्मेट्ठ-चमड़े से लपेटा पत्थर का हथौड़ा, दुघण-वृक्षों को भी गिरा देने वाला शस्त्रविशेष, मौष्टिक-मुष्टिप्रमाण पाषाण, असिखेटक-दुधारी तलवार, खड्ग-तलवार, धनुष, वाण, कनक-विशिष्ट बाण, कप्पिणी-कैंची, वसूला—लकड़ी छीलने का औजार, परशु-फरसा और टंक छेनी। ये सभी अस्त्र-शस्त्र तीक्ष्ण और शाण पर चढ़े जैसे चमकदार होते हैं।

अण्णेहि य एवमाइएहिं असुभेहिं वेउव्विएहिं पहरणसएहिं अणुवद्धतिव्ववेरा परोप्परवेयणं उदीरेंति अभिहणंता।

इनसे तथा इसी प्रकार के अशुभ विक्रिया से निर्मित शस्त्रों से भी वे नारक परस्पर एक-दूसरे को वेदना की उदीरणा करते रहते हैं।

तत्थ य मोग्गरपहारचुण्णियमुसुंढिसंभग्गमहियदेहा जंतोव-पीलणफुरंतकप्पिया के इत्थ सचम्मका विग्गत्ता णिम्मूलुलूण कण्णोट्ठणासिका छिण्णहत्थ पाया।

नरकों में मुद्गर के प्रहारों से नारकों का शरीर चूर-चूर कर दिया जाता है, मुसुंढी से संभिन्न कर दिया जाता है, मथ दिया जाता है, कोल्हू आदि यंत्रों में पीलने के कारण फड़फड़ाते हुए उनके शरीर के अंग-अंग कुचल दिये जाते हैं। कईयों को चमड़ी सहित विकृत कर दिया जाता है, कान-ओठ-नाक समूल काट लिए जाते हैं, और हाथ पैर छिन्न-भिन्न कर दिये जाते हैं।

असि करवय-तिक्ख-कोंत-परसुप्पहार-फालिय-वासी-संतच्छि-तंगमंगा, कलकलमाणखार परिसित्तगाढ-डज्झंत-गत्त-कुंतग्गभिण्ण जज्जरिय-सव्वदेहा विलोलंति महीतले विसूणियंगमंगा।

तलवार,करवत, तीखे भाले एवं फरसे से शरीर फाड़ दिये जाते हैं, वसूलों से छील दिये जाते हैं। शरीर पर उवलता खारा जल सींचा जाता है, जिससे शरीर जल जाता है, फिर भालों की नोक से उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते हैं, इस प्रकार उनके समग्र शरीर को जर्जरित कर दिया जाता है उनका शरीर सूज जाता है और वे पृथ्वी पर लोटने लगते हैं।

तत्थ य विग सुणग सियाल-काक-मज्जार-सरभ-दीविय - वियग्घ - सद्दूलसीह - दप्पिय - खुहाभिभूएहिं णिच्चकालमणसिएहिं घोरा सद्दायमाणा भीमरूवेहिं अक्कमित्ता दढदाढागाढडक्क-कड्ढिय-सुतिक्ख-नह-फालियउद्धदेहा विच्छिप्पंते समंतओ विमुक्क संधिबंधणा वियंगमंगा।

नरक में दर्पयुक्त सदैव भूख से पीड़ित जैसे जिन्हें कि कभी भोजन न मिला हो, भयावह, घोर गर्जना करते हुए भयंकर रूप वाले भेड़िया, शिकारी कुत्ते, गीदड, कौवे, विलाव, अष्टापद चीते, व्याघ्र, केसरी सिंह और सिंह नारकों पर आक्रमण कर देते हैं, झपट पड़ते हैं और अपनी मजबूत दाढों से नारकों के शरीर को काटते हैं, खींचते हैं, अत्यन्त पैने नोकदार नाखूनों से फाड़ते हैं और फिर इधर-उधर चारों ओर विखेर देते हैं जिससे उनके शरीर के वंधन ढीले पड़ जाते हैं, उनके अंगोपांग विकृत और पृथक् हो जाते हैं

कंक-कुरर-गिद्ध-घोरकट्ठवायसगणेहि य पुणो खर-थिर-दढ-णक्ख-लोहतुंडेहिं ओवइत्ता पक्खाहय-तिक्ख-णक्ख-विकिन्न-जिब्भंछिय-नयण-निद्द-ओलुग्ग-विगयवयणा उक्कोसंता य उप्पयंता निपतंता भमंता।

—पण्ह. आ. १, सु. २५-३२

तत्पश्चात् दृढ एवं तीक्ष्ण दाढों, नखों और लोहे के समान नुकीली चोंच वाले, कंक, कुरर और गिद्ध आदि पक्षी तथा घोर कष्ट देने वाले काक पक्षियों के झुंड कठोर दृढ़ तथा स्थिर लोहमय चोंचों से नारकों पर टूट पड़ते हैं। उन्हें अपने पंखों से आघात पहुंचाते हैं, तीखे नाखूनों से उनकी जीभ वाहर खींच लेते हैं और आँखें वाहर निकाल लेते हैं, निर्दयतापूर्वक उनके मुख को विकृत कर देते हैं, इस प्रकार की यातना से पीड़ित वे नारक जीव रुदन करते हैं, वचने के लिये उछलते हैं किन्तु नीचे आ गिरते हैं, चक्कर काटते हैं।

१७. तिरिक्खजोणियाणं दुक्ख वण्णणं–

पुव्वकम्मोदयोवगया पच्छाणुसएण डज्झमाणा णिंदंता पुरेकडाइं कम्माइं पावगाइं तहिं तहिं तारिसाणि ओसण्णचिक्कणाइं दुक्खाइं अणुभवित्ता तओ य आउक्खएणं उव्वट्टिया समाणा बहवे गच्छंति तिरियवसहिं,

१७. तिर्यञ्चयोनिकों के दुःखों का वर्णन–

पूर्वोपार्जित पाप कर्मों के निमित्त से पश्चात्ताप की आग से जलते हुए और उस-उस प्रकार के पूर्वकृत कर्मों की निन्दा करके अत्यन्त चिकने निकाचित दुःखों का अनुभव कर उसके वाद आयु का क्षय होने पर नरकभूमियों में से निकल कर बहुत से जीव तिर्यञ्चयोनि में उत्पन्न होते हैं।

दुक्खुत्तरं सुदारुणं जम्म-मरण-जरा-वाहि परियट्टणारहट्टं-जल-थल-खहयर परोप्पर-विहिंसण पवंचं।

किन्तु उनके लिये वह अतिशय दुःखों से परिपूर्ण होती है, दारुण कष्टों वाली होती है, जन्म-मरण जरा-व्याधि का अरहट उसमें घूमता रहता है। जलचर, स्थलचर और खेचरों में परस्पर घात-प्रत्याघात का प्रपंच चलता रहता है।

इमं च जगपागडं वरागा दुक्खं पावेंति दीहकालं।

यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि वे वेचारे जीव दीर्घ काल तक दुःखों को प्राप्त करते हैं।

प. किं ते?

उ. सीउण्ह-तण्हा-खुह-वेयण-अप्पईकार-अडविजम्मण-णिच्च भउव्विग्गवास-जग्गण-वह वंधण-ताडण-अंकण-णिवायण-अट्ठिभंजण-नासाभेय-प्पहार-दूमण-

प्र. वे दुःख कौन से हैं?

उ. शीत-उष्ण-तृषा-क्षुधा आदि की अप्रतीकार वेदना का अनुभव करते हैं, वन में जन्म लेना, निरन्तर भय से उद्विग्न रहना, जागरण, वध-वंधन-ताड़न दागना-डामना, गड्ढे आदि में गिराना, हड्डियाँ तोड़ देना, नाक छेदना, चाबुक लकड़ी आदि

छविच्छेयण अभिओग-पावण-कसंकुसार निवाय-दमणाणि, वाहणाणि य।

के प्रहार सहन करना, अंगोपांगों को छेद देना, जबर्दस्ती भारवहन आदि कामों में लगाना, चाबुक अंकुश और आर से दमन किया जाना, भार वहन करना आदि दुःखों को सहन करते हैं।

माया-पिइ-विप्पयोग-सोयपरिपीलणाणि य, सत्थऽग्गि-विसाभिघाय-गल-गवलावण-मारणाणिय, गलजालुच्छिप्पणाणि य, पउलण-विकप्पणाणि य, जावज्जीविग-वंधणाणि य, पंजरनिरोहणाणि य, सयूहनिघाडणाणि य, धमणाणि य, दोहणाणि य, कुदंड-गलबंधणाणि य, वाडगपरिवारणाणि य, पंकजलनिमज्जणाणि य, वारिप्पवेसणाणि य, ओवय-णिभंग- विसम-णिवडण- दवग्गि-जाल-दहणाणि य।

(इनके अतिरिक्त इन दुःखों को भी सहन करना पड़ता है) माता पिता के वियोग शोक से अत्यन्त पीड़ित होना या कान नासिका आदि के छेदन से पीड़ित होना, शस्त्र अग्नि और विष से आघात पहुँचना, गले एवं सींगों का मोड़ा जाना, मारा जाना, मछली आदि को गल कांटे में या जाल में फंसाकर जल से बाहर निकालना, पकाना, काटा जाना, जीवन पर्यन्त बन्धन में रहना, पींजरे में बन्द रखना, अपने समूह से पृथक् किया जाना, अधिक दूध लेने के लिए भैंस आदि को फूका वायु लगाकर दुहना गले में डंडा बांध देना, जिससे वह भाग न सके, बाड़े में घेर कर रखना, कीचड़ युक्त पानी में डुबोना, जबरन जल में घुसेड़ना, गड्ढे में गिरने से अंग-भंग हो जाना, विषम ऊबड़-खाबड़ मार्ग में गिर पड़ना, दावानल की ज्वालाओं में जल मरना आदि दुःखों को सहन करते हैं।

एवं ते दुक्खसयसंपलित्ता नरगाओ आगया इह सावसेसकम्मा तिरिक्खपंचेंदिएसु पावंति पावकारी कम्माणि पमाय-राग-दोस-वहुसंचियाइं अईव-अस्सायकक्कसाइं।

इस प्रकार वे हिंसक जीव सैकड़ों दुःखों से पीड़ित होकर नरकों से आए हुए पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनि को प्राप्त कर प्रमाद राग और द्वेष के कारण बहुत संचित और भोगने से शेष रहे कर्मों के उदय से अत्यन्त, कर्कश असाता वेदनीय कर्मभोग के पात्र बनते हैं।

भमर-मसग-मच्छिमाइएसु य जाइकुलकोडिसयसहस्सेहिं नवहिं अणूणएहिं चउरिंदियाणं तहिं तहिं चेव जम्मण-मरणाणि अणुहवंता कालं संखेज्जं भमंति नेरइयसमाण-तिव्वदुक्खा फरिस रसण-घाणचक्खु-सहिया।

(इनके अतिरिक्त) भ्रमर, मशक-मच्छर मक्खी आदि चतुरिन्द्रियों की पूरी नौ लाख जाति-कुलकोटियों में बारंबार जन्म मरण के दुःखों का अनुभव करते हुए नारकों के समान तीव्र दुःख भोगते हुए स्पर्शन, रसन, घ्राण और चक्षु इन्द्रियों से युक्त होकर ये पापी जीव संख्यात काल तक भ्रमण करते रहते हैं।

तहेव तेइंदिएसु कुंथु-पिप्पीलिया-अंधिकादिकेसु यजाइकुल-कोडिसयसहस्सेहिं अट्ठहिं अणूणएहिं तेइंदियाणं तहिं-तहिं चेव जम्मण-मरणाणि अणूहवंता कालं संखिज्जं भमंति नेरइयसमाण-तिव्वदुक्खा फरिस-रसण- घाणसंपउत्ता।

इसी प्रकार कुंथु पिपीलिका-चींटी, अधिका-दीमक आदि त्रीन्द्रिय जीवों की पूरी आठ लाख कुलकोटियों में पुनः पुनः जन्म मरण करते हुए स्पर्शन रसन और घ्राण इन तीन इन्द्रियों से युक्त होकर नारकों के समान संख्यात काल तक तीव्र दुःख भोगते हैं।

गंडूलय-जलूय-किमिय-चंदणगमाइएसु य जाइकुलकोडि सयसहस्सेहिं सत्तहिं अणुणएहिं बेइंदियाणं तहिं तहिं चेव जम्मण-मरणाणि अणुहवंता कालं संखिज्जं भमंति नेरइयसमाण-तिव्वदुक्खा फरिस-रसणसंपउत्ता।

गंडूलक-गिंडोला, जलौक-जोंक कृमि चन्दनक आदि द्वीन्द्रिय जीवों की उन-उन पूरी सात लाख कुलकोटियों में जन्म मरण करते हुए स्पर्शन और रसना इन दो इन्द्रियों से युक्त होकर नारकों के समान संख्यात काल तक तीव्र दुःख भोगते हैं।

पत्ता एगिंदियत्तणं पि य पुढवि जल-जलण-मारूय-वणप्फइ-सुहुम-बायरं च पज्जत्तमपज्जत्तं पत्तेयसरीरणाम-साहारणं च पत्तेय-सरीरजीविएसु य तत्थ वि कालमसंखिज्जं भमंति अणंतकालं च अणंतकाए फासिंदियभावसंपउत्ता-दुक्ख-समुदयं इमं अणिट्ठं पावंति पुणो-पुणो तहिं-तहिं चेव परभवतरुगणगहणे।

एकेन्द्रियों में उत्पन्न होने पर सूक्ष्म वादर और उनके पर्याप्त-अपर्याप्त भेद वाले पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और प्रत्येक शरीर व साधारण शरीरी वनस्पतिकायिक जीव एक मात्र स्पर्शनेन्द्रिय वाले होकर प्रत्येकशरीरी तो असंख्यात काल तक और अनन्तकायिक (साधारण शरीरी) अनन्तकाल तक अनिष्ट दुःखों को भोगते हैं और परभव में पुनः पुनः वहीं वनस्पतिकाय में जन्म लेते हैं।

कोद्दाल-कुलिय-दालण-सलिल-मलण-खुंभण-रुंभण-अणलाणिल-विविहसत्थघट्टण परोप्पराभिहणण मारण-विराहणाणि य अकामकाइं परप्पओगोदी-रणाहि य

कुदाल और हल से पृथ्वी का विदारण किया जाना, जल का मथा जाना और निरोध किया जाना, अग्नि तथा वायु का विविध प्रकार के शस्त्रों से घर्षण होना, पारस्परिक आघातों से आहत होना, मारना, निष्प्रयोजन और प्रयोजन से विराधना

कज्जप्पओयणेहिं य पेस्सपसुनिमित्तं ओसहाहारमाइएहिं उक्खणण-उक्कत्थण-पयण-कोट्टण-पीसण-पिट्टण-भज्जण-गालण-आमोडण-सडण-फुडण-भंजण-छेयण-तच्छण-विलुंचण-पत्तज्झोडण अग्गिदहणाइयाइं, एवं ते भवपरंपरादुक्खसमणुबद्धा अडंति संसारबीहणकरे जीवा पाणाइवायनिरया अणंतकालं। —पण्ह. आ. १, सु. ३३-४१

करना, नौकर-चाकरों तथा गाय-भैंस-बैल आदि पशुओं की दवा और आहार आदि के लिए खोदना, छानना, मोड़ना, सड़ जाना, स्वयं टूट जाना, मसलना, छेदन करना, छीलना, रोमों का उखाड़ना, पत्ते आदि तोड़ना, अग्नि से जलाना, इस प्रकार भवपरम्परा में दुःखों से अनुबद्ध हिंसाकारी पापी जीव भयंकर संसार में अनन्त काल तक परिभ्रमण करते रहते हैं।

१८. कुमाणुसाणं दुक्ख वण्णणं–

जे वि य इह माणुसत्तणं आगया कहिं वि णरगा उव्वट्टिया अधन्ना ते वि य दीसंति पायसो विकय-विगलरूवा खुज्जा वडभा य, वामणा य, बहिरा, काणा, कुंटा, पंगुला विगला य, मूका य, ममणा य, अंधयगा एगचक्खू विणिहय-संचिल्लया वाहिरोगपीलिय-अप्पाउय-सत्थबज्झबाला कुलक्खणु-क्किन्नदेहा दुब्बल-कुसंघयण-कुप्पमाण-कुसंठिया कुरूवा किविणा य हीणा हीणसत्ता णिच्चं सोक्खपरिवज्जिया असुहदुक्खभागी णरगाओ इहं सावसेसकम्मा उव्वट्टिया समाणा। —पण्ह. आ.१, सु. ४२

१८. कुमनुष्यों के दुःखों का वर्णन–

जो अधन्य दुर्भागी पापी जीव नरक से निकल कर यदि किसी भी प्रकार से मनुष्य पर्याय में उत्पन्न होते हैं तो जिनके पापकर्म भोगने से शेष रह जाते हैं, वे भी प्रायः विकृत एवं अपरिपूर्ण आकृति वाले, कुवड़े, टेढ़े-मेढ़े शरीर वाले, बौने, बहरे, काने, टूटे हाथ वाले, लंगडे, अंगहीन, गूँगे-अस्पष्ट उच्चारण करने वाले, अंधे, काणे या व्याधि और रोगों से ग्रस्त, अल्पायुष्क शस्त्र से वध किए जाने योग्य, अशुभ लक्षण वाले, दुर्बल, अप्रशस्त संहनन वाले, वेडौल अंगोपांगों वाले, खराब संस्थान वाले, कुरूप, दीन, हीन, सत्वविहीन सुख से सदा वंचित रहने वाले और अशुभ दुःखों के भागी होते हैं।

१९. पाणवह वण्णणस्स उवसंहारो–

एवं णरगं तिरिक्खजोणिं कुमाणुसत्तं च हिंडमाणा पावंति अणंताइं दुक्खाइं पावकारी।

एसो सो पाणवहस्स फलविवागो, इहलोइओ पारलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भयो बहुरयप्पगाढो दारुणो कक्कसो असाओ वाससहस्सेहिं मुंचई न य अवेदयित्ता अत्थि हु मोक्खोत्ति। एवमाहंसु नायकुलनंदणो महप्पा जिणो उ वीरवरनामधेज्जो कहेसि य पाणवहस्स फलविवागं।

एसो सो पाणवहो चंडो रुद्दो खुद्दो, अणारिओ निग्घिणो निसंसो महब्भओ, बीहणओ तासणओ अणज्जो अणज्जाओ उव्वेयणओ य णिरवयक्खो णिद्धम्मो निप्पिवासो निक्कलुणो निरयवासगमण-निधणोमोहमहब्भयपवड्ढओ मरणवेमणसो।

पढमं अहम्मद्दारं सम्मत्तं, त्ति वेमि। —पण्ह. आ. १, सु. ४३

१९. प्राणवध वर्णन का उपसंहार–

इसी प्रकार हिंसारूप पापकर्म करने वाले प्राणी नरक और तिर्यञ्चयोनि में तथा कुमानुष-अवस्था में भटकते हुए अनन्त दुःख प्राप्त करते हैं।

यह–पूर्वोक्त प्राणवध हिंसा का फलविपाक है, जो इहलोक-मनुष्यभव और परलोक-नारकादि भव में भोगना पड़ता है। यह फलविपाक अल्प सुख किन्तु भव-भवान्तर में अत्यधिक दुःख देने वाला है। महान् भय का जनक है और अतीव गाढ़ कर्मरूपी रज से युक्त है। अत्यन्त दारुण है, अत्यन्त कठोर है और असाता को उत्पन्न करने वाला है। हजारों वर्षों (सुदीर्घ काल) में इससे छुटकारा मिलता है, किन्तु इसे भोगे विना छुटकारा नहीं मिलता। हिंसा का यह फलविपाक ज्ञातकुल-नन्दन महात्मा महावीर नामक जिनेन्द्र देव ने कहा है।

यह प्राणवध चण्ड, रौद्र, क्षुद्र और अनार्य जनों द्वारा आचरणीय है। यह घृणारहित, नृशंस, महाभयों का कारण, भयानक, त्रासजनक, अन्यायरूप और ऋजुता से रहित है, यह उद्वेगजनक दूसरे के प्राणों की परवाह न करने वाला, धर्महीन, स्नेह पिपासा से शून्य, करुणाहीन है। इसका अन्तिम परिणाम नरक प्राप्त करना है अर्थात् यह नरकगति आयु बंध का कारण है। मोहरूपी महाभय को बढ़ाने वाला और मरणजन्य दीनता का जनक है।

इस प्रकार यह प्राणवधरूप पहला अधर्मद्वार का वर्णन है, ऐसा मैं कहता हूं।

२०. मुसावाय सरूवं –

इह खलु जंबू ! बिइयं च अलियवयणं, लहुसग-लहुचवलभणियं, भयंकरं, दुहकरं, अयसकरं, वेरकारगं, अरइ-रइ-राग-दोस-मणसंकिलेस-वियरणं अलियं

२०. मृषावाद का स्वरुप–

जम्बू ! दूसरा आश्रवद्वार अलीकवचन-मिथ्याभाषण है। यह गुणों से रहित हीन उतावले और चंचल लोगों द्वारा बोला जाता है, यह भय उत्पन्न करने वाला, दुःखदायक, अयश एवं वैर उत्पन्न करने वाला है। यह अरति, रति, राग, द्वेष और मानसिक संक्लेश का कारण है, शुभ फल से रहित है।

नियडि-साइजोयवहुलं, नीयजणनिसेवियं, निसंसं अपच्चयकारगं परमसाहुगरहणिज्जं परपीलाकारगं परमकण्हलेस्ससेवियं दुग्गइ-विणिवायविवड्ढणं भवपुणब्भवकरं चिरपरिचियमणुगयं दुरंतं कित्तियं बिइयं अहम्मदारं।

–पण्ह. सु. १, आ. २, सु. ४४

मूर्खता एवं अविश्वसनीय वचनों की प्रचु[र]… इस का प्रयोग करते हैं, यह नृशंस क्रूर है, अ… का विनाशक है, श्रेष्ठ साधुजनों द्वारा निन्दि… उत्पन्न करने वाला है, उत्कृष्ट कृष्णलेश्या … किया जाता है। यह बारंबार दुर्गतियों में … पुनः-पुनः जन्म-मरण कराने वाला है, यह चि… काल से जीव इस आता है, निरन्तर साथ र… कठिनाई से अन्त होने योग्य है अथवा अति-… है। यह द्वितीय अधर्मद्वार है।

२१. मुसावायस्स पज्जवणामाणि–

तस्स (मुसावायस्स) य नामाणि गोण्णाणि होंति तीसं, तं जहा–

१. अलियं,	२. सढं,
३. अणज्जं,	४. मायामोसो,
५. असंतकं,	६. कूडकवडमवत्थुगं च,
७. निरत्थयमवत्थयं च,	८. विद्देसगरहणिज्जं,
९. अणुज्जुगं,	१०. कक्कणा य,
११. वंचणा य,	१२. मिच्छापच्छाकडं च,
१३. साईउ,	१४. उच्छन्नं,
१५. उक्कूलं च,	१६. अट्टं,
१७. अब्भक्खाणं,	१८. किव्विसं,
१९. वलयं,	२०. गहणं च,
२१. मम्मणं च,	२२. नूमं,
२३. निययी,	२४. अपच्चओ,
२५. असमओ,	२६. असच्चसंधत्तणं,
२७. विवक्खो,	२८. अवहीयं,
२९. उवहिअसुद्धं,	३०. अवलोवोत्ति।

अवि य तस्स एयाणि एवमादीणि णामधेज्जाणि होंति तीसं सावज्जस्स अलियस्स वइजोगस्स अणेगाइं।

–पण्ह. आ. २, सु. ४५

२१. मृषावाद के पर्यायवाची नाम–

उस मृषावाद के गुणनिष्पन्न-सार्थक तीस नाम … यथा–

१. अलीक-मिथ्या वचन, २. शठ-मायावी … ३. अन्याय्य-अनार्य-अन्याय युक्त या अ… ४. माया-मृषा-माया कपाय युक्त असत्य वचन, … वस्तु का वाचक, ६. कूट-कपट-अवस्तुक दूसरे… लिये कपट सहित असत् प्रलाप करना, ७. नि… प्रयोजन व सत्यरहित, ८. विद्वेष-गर्हणीय वि… कारण, ९. अनृजुक-वक्रता युक्त, १०. कल्क… ११. वंचना, १२. मिथ्यापश्चात्कृत–झूटा होने से… त्याज्य, १३. साति-विश्वास के अयोग्य, १४. … परगुण आच्छादक, १५. उत्कूल–सन्मार्ग मर्याद… १६. आर्त-पापियों का वचन, १७. अभ्याख्यान-मि… १८. किल्विष-पापजनक, १९. वलय–गोल… २०. गहन-कपट युक्त समझ में आने वाला वचन… अस्पष्ट वचन, २२. नूम-सत्य आच्छादक, २३… मायाचार को छिपाने वाला वचन, २४. अप्रत्यत… वचन, २६. असमय–सिद्धान्त व शिष्टाचार … २६. असत्यसंधत्व–असत्य अभिप्राय वाला वचन, … धर्मविरुद्ध वचन, २८. अपधीक- निन्दित बुद्धि … २९. उपधि-अशुद्ध–कपट युक्त सावद्य वचन, ३… सद्वस्तु का अपलापक वचन।

सावद्य पापयुक्त अलीक वचनयोग के उपर्युक्त ती… अतिरिक्त इसी प्रकार के अन्य भी अनेक नाम हैं।

२२. मुसावायगा–

तं–मुसावयं च पुण वदंति केइ अलियं पावा असंजया, अविरया, कवड-कुटिल-कडुय-चडुलभावा कुद्धा लुद्धा भया य, हस्सट्ठिया य सक्खी चोरा चारभडा खंडरक्खा जियजूयकरा य, गहियगहणा कक्ककुरुगकारगा कुलिंगी उवहिया वाणियगा य कूडतूलं-कूडमाणी कूडकाहावणो-पजीविया पडकारगा कलाया-कारुइज्जा वंचणपरा चारिय-चाडुयार-नगरगोत्तिय-परियारगा दुट्ठवायि-सूयग-अणबल-भणिया य पुव्वकालियवयणदच्छा साहसिका

२२. मृषावादी–

यह असत्य कितने पापी, असंयत, अविरत, कपट… कुटिल, कटुक और चंचल चित्त वाले, क्रोधी, लोभी, स्व… और अन्य को भय उत्पन्न करने वाले, हंसी-मजाक … झूठी गवाही देने वाले, चोर, गुप्तचर-जासूस, खण्डर… लेने वाले अर्थात् चुंगी वसूल करने वाले, जुआ में हारे … के माल को हजम करने वाले, कपट से किसी बात को… कर कहने वाले, मिथ्या मत वाले, कुलिंगी-वेषधारी, … वाले, बनिया-वणिक्, खोटा नाप तोल करने वाले, नकल… से आजीविका चलाने वाले, जुलाहे, सुनार, कारीगर, … ठगने वाले दलाल, चाटुकार खुशामदी, नगररक्षक, मै… स्त्रियों को बहकाने वाले, खोटा पक्ष लेने वाले, चुगलखोर… धन वसूल करने वाले, रिश्वतखोर, किसी के बोलने से… उसके अभिप्राय…

लहुस्सगा असच्चा गारविया असच्चठवणाहिचित्ता उच्चच्छंदा अणिग्गहा अणियत्ता छंदेण मुक्कवाया भवंति अलियाहिं जे अविरया।

विना ही प्रवृत्ति करने वाले, निस्सत्व–अधम हीन, सत्पुरुषों का अहित करने वाले-दुष्ट जन, अहंकारी असत्य की स्थापना में चित्त को लगाए रखने वाले, अपने को उत्कृष्ट वताने वाले, निरंकुश, नियमहीन और बिना विचारे यदा-तदा वोलने वाले लोग जो असत्य से विरत नहीं हैं, वे असत्य बोलते हैं।

अवरे नत्थिकवाइणो वामलोकवाई भणंति–!"सुण्ण" त्ति।

इनके अतिरिक्त दूसरे नास्तिकवादी लोक में विद्यमान वस्तुओं को ही अवास्तविक कहने वाले तथा लोकविरुद्ध मान्यता वाले "वामलोकवादी" इस प्रकार कहते हैं, यह जगत् शून्य (सर्वथा असत्) है।

"नत्थि जीवो।

जीव का अस्तित्व नहीं है।

"न जाइ इह परे वा लोए।

वह मनुष्यादि इह भव में या देवादि (परभव) में नहीं जाता।

"न य किंचि वि फुसइ पुण्ण पावं।

वह पुण्य पाप का लेश मात्र भी स्पर्श नहीं करता।

"नत्थि फलं सुकय-दुक्कयाणं।

सुकृत-दुष्कृत शुभ-अशुभ कर्म का सुख-दुःख रूप फल भी नहीं है।

"पंचमहाभूतियं सरीरं भासंति हे वातजोगजुत्तं।

यह शरीर पाँच भूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) से वना हुआ है और वायु के निमित्त से सव क्रियाएँ करता है,

"पंच य खंधे भणंति केई"

कोई बौद्ध आत्मा को पाँच स्कन्धों (रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार) रूप कहते हैं।

कोई रूप आदि पाँच स्कन्धों के अतिरिक्त छठे मन को भी मानते हैं,

"मणं च मणजीविका वदंति,

कोई मन को ही जीव (आत्मा) मानते हैं,

"वाउ" जीवोत्ति एवमाहंसु, "सरीरं सादियं सनिधणं इहभवे एगभवे तस्स विप्पणासंमि सव्वनासो त्ति एवं जंपंति मुसावादी।

कोई वायु को ही जीव के रूप में स्वीकार करते हैं, किन्हीं मृषावादी का मन्तव्य है कि शरीर सादि और सान्त है। यह भव ही एक मात्र भव है, इस भव का समूल नाश होने पर सर्वनाश हो जाता है अर्थात् आत्मा जैसी कोई वस्तु शेष नहीं रहती,

"तम्हा दाण-वय-पोसहाणं तव संजम-बंभचेर-कल्लाण-माइयाण य नत्थि फलं।

इस कारण दान देना, व्रतों का आचरण करना, पौषध की आराधना करना, तपस्या करना, संयम का आचरण करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना आदि कल्याणकारी अनुष्ठानों का कुछ भी फल नहीं होता,

"न वि य पाणवहे अलियवयणं।

प्राणवध और असत्य भाषण भी अशुभ फलदायक नहीं है।

"न चेव चोरिक्ककरणं परदारसेवणं वा।

चोरी और परस्त्रीसेवन भी कोई पाप नहीं है।

"सपरिग्गहपावकम्मकरणं पि नत्थि किंचि।

परिग्रह और अन्य पापकर्मों का भी कोई अशुभ फल नहीं है।

"न नेरइय-तिरिय-मणुयाणजोणी।

नरक तिर्यञ्च और मनुष्य योनियाँ नहीं है,

"न देवलोको वा अत्थि।

देवलोक भी नहीं है।

"न य अत्थि सिद्धिगमणं।

मोक्ष गमन या मुक्ति भी नहीं है।

"अम्मा-पियरो नत्थि।

माता-पिता भी नहीं हैं।

"न वि अत्थि पुरिसकारो।

पुरुषार्थ भी नहीं है अर्थात् पुरुषार्थ कार्य भी सिद्धि में कारण नहीं है,

"पच्चक्खाणमवि नत्थि।

प्रत्याख्यान त्याग भी नहीं है,

"न वि अत्थि काल-मच्चू य।

भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल नहीं है और न मृत्यु है।

"अरहंता चक्कवट्टी वलदेवा वासुदेवा नत्थि।

अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव भी नहीं है।

"नेवत्थि केइ रिसओ। "धम्माधम्मफलं च नवि अत्थि किंचि बहुयं च थोवगं वा,

न कोई ऋषि है, न कोई मुनि है, धर्म और अधर्म का अल्प या अधिक किंचित् भी फल नहीं होता,

तम्हा एवं विजाणिऊण जहा सुबहु "इंदियाणुकूलेसु सव्व-विसएसु वट्टह।

इसलिए ऐसा जानकर इन्द्रियों के अनुकूल रुचिकर सभी विषयों में प्रवृत्ति करो किसी भी प्रकार के भोग भोगने में परहेज मत करो,

''नत्थि काइ किरिया वा अकिरिया वा,

''एवं भणंति नत्थिकवादिणो वामलोगवादी।

-पण्ह. आ. २, सु. ४६-४७

न कोई शुभ क्रिया है और न कोई अशुभ क्रिया है।

नास्तिक विचारधारा का अनुसरण करते हुए लोक-विपरीत मान्यता वाले कथन करते हैं।

२३. असब्भाववाईणो मुसावाई-

इमं पि बिईयं कुदंसणं असब्भाववाइणो पण्णवेंति मूढा

'संभूओ अंडग्गा लोगो।'

'सयंभुणा सयं च निम्मिओ

एवं एयं अलियं पयंपंति।

''पयावइणा इस्सरेण य कयं'' ति केई।

''एवं विण्हुमयं कसिणमेव य जगं'' ति केई।

एवमेगे वदंति मोसं-''एगे आया'' अकारको वेदको य सुकयस्स दुक्कयस्स य करणाणि कारणाणि सव्वहा सव्वहिं च निच्चो य निक्किओ निग्गुणो य अणुवलेवओ त्ति वि य।

एवमाहंसु असब्भावं-

जं पि इहं किंचि जीवलोके दीसइ सुकयं वा, दुकयं वा, एयं जदिच्छाए वा, सहावेण वावि दइवतप्पभावओ वावि भवइ, नत्थेत्थ किंचि कयकं तत्तं लक्खणविहाणं नियत्तीए कारियं।

''एवं केइ जंपंति इड्ढि-रस-साया-गारवपरा बहवे करणालसा परूवेंति धम्मवीमंसएणं मोसं।''

-पण्ह. आ. २, सु. ४८-५०

२३. असद्भाववादक मृषावादी-

(वामलोकवादी नास्तिकों के अतिरिक्त) कोई-कोई असद्भाववादी-मिथ्यावादी मूढ जन दूसरा कुदर्शन-मिथ्यामत इस प्रकार कहते हैं-

'यह लोक अंडे से उद्भूत प्रकट हुआ है।'

'इस लोक का निर्माण स्वयंभू ने किया है।'

इस प्रकार वे मिथ्या प्रलाप करते हैं।

कोई-कोई कहते हैं कि-'यह जगत् प्रजापति या महेश्वर ने वनाया है।'

किसी का कहना है कि-'यह समस्त जगत् विष्णुमय है।'

किसी की यह मिथ्या मान्यता है कि-'आत्मा एक है एवं अकर्त्ता है किन्तु उपचार से पुण्य और पाप के फल को भोगता है। सर्व प्रकार से तथा देश-काल में इन्द्रियां ही कारण है। आत्मा (एकान्त) नित्य है, निष्क्रिय है, निर्गुण है और निर्लेप है।

असद्भाववादी इस प्रकार भी प्ररूपणा करते हैं-

''इस जीवलोक में जो कुछ भी सुकृत या दुष्कृत दृष्टिगोचर होता है, वह सब यदृच्छा के स्वभाव से अथवा देवप्रभाव-विधि के प्रभाव से ही होता है। इस लोक में कुछ भी ऐसा नहीं है जो पुरुषार्थ से किया गया तथ्य (सत्य) हो। लक्षण (वस्तुस्वरूप) और विधान भेद को करने वाली नियति ही है।''

कोई-कोई ऋद्धि रस और साता के गारव (अहंकार) से लिप्त या इनमें अनुरक्त वने हुए और क्रिया करने में आलसी बहुत से वादी धर्म की मीमांसा (विचारणा) करते हुए ऐसी मिथ्या प्ररूपणा करते हैं।

२४. रायविरुद्ध अब्भक्खाण वाई-

अवरे अहम्मओ रायदुट्ठं अब्भक्खाणं भणंति।

अलियं-''चोरो'' त्ति अचोरयं करेंतं।

''डामरिउ'' त्ति वि य एमेव उदासीणं।

''दुस्सीलो'' त्ति य परदारं गच्छइ त्ति।

''मइलि'' त्ति सीलकलियं अयं पि गुरुतप्पओ त्ति।

२४. राज्य विरुद्ध अभ्याख्यानवादी-

कोई-कोई (दूसरे लोग) राज्य विरुद्ध मिथ्या दोषारोपण करते हैं,

चोरी न करने वाले को 'चोर' कहते हैं।

जो उदासीन है-लड़ाई झगड़ा नहीं करता, उसे 'लड़ाईखोर या झगड़ालू' कहते हैं।

जो सुशील है-शीलवान् है, उसे दुःशील-व्यभिचारी कहते हैं,

यह परस्त्रीगामी है किसी पर ऐसा आरोप लगाते हैं कि यह तो

भद्दगे वा गुण-कित्ति-नेह-परलोग-निप्पिवासा।
एवं ते अलियवयणदच्छा परदोसुप्पायणपसत्ता वेढेंति अक्खाइयबीएणं अप्पाणं कम्मबंधणेण।''
मुहरी असमिक्खियप्पलावी। —पण्ह. आ. २, सु. ५१

भद्र पुरुष के परोपकार, क्षमा आदि गुणों को तथा कीर्ति स्नेह एवं परभव की लेशमात्र परवाह न करने वाले वे असत्यवादी, असत्य भाषण करने में कुशल दूसरों के दोषों को (मन से घड़कर) वताने में निरत रहते हैं। इस प्रकार वे विचार किए विना वोलने वाले, अक्षय दुःख के कारणभूत अत्यन्त दृढ़ कर्मवन्धनों से अपनी आत्मा को वेष्टित (वद्ध) करते हैं।

२५. परत्थावहारगा मुसावाई–

''निक्खेवे अवहरंति परस्स अत्थंमि गढियगिद्धा।''

''अभिजुंजंति य परं असंतएहिं।''

''लुद्धा य करेंति कूडसक्खित्तणं।''

''असच्चा अत्थालियं च कन्नालियं च भोमालियं च तह गवालियं च गरुयं भणंति अहरगइगमणं।''

अन्नं पि य जाइ-रूव-कुल-सीलपच्चयं मायाणिउणं चवलपिसुणं परमट्ठभेदगमसंतगं विद्देसमणत्थकारकं पापकम्ममूलं दुद्दिट्ठं दुस्सुयं अमुणियं णिल्लज्जं लोयगरहणिज्जं, वह-बंध-परिकिलेस-वहुल-जरा-मरण-दुक्ख-सोय-निम्मं असुद्धपरिणामसंकिलिट्ठं भणंति।

अलियाहिसंधिसण्णिविट्ठा असंतगुणुदीरगा य संतगुणनासगा य हिंसा-भूतोवघाइयं-अलियसंपउत्ता वयणं सावज्जमकुसलं साहुगर-हणिज्जं अधम्मजणणं भणंति अणभिगयपुण्णपावा।

पुणो वि अहिकरणकिरियापवत्तका वहुविहं अणत्थं अवमद्दं अप्पणो परस्स य करेंति। —पण्ह. आ. २, सु. ५२-५३

२५. परधनापहारक मृषावादी

''पराये धन में अत्यन्त आसक्त वे (मृषावादी लोभी) निक्षेप धरोहर को हड़प जाते हैं।''

''दूसरों को अविद्यमान दोषों से दूषित करते हैं।''

''धन के लोभी झूंठी साक्षी देते हैं।''

वे असत्यभाषी धन के लिए, कन्या के लिए, भूमि के लिए तथा गाय-वैल आदि पशुओं के निमित्त अधोगति में ले जाने वाला असत्यभाषण करते हैं।''

इसके अतिरिक्त मिथ्या षड्यन्त्र रचने में कुशल, परकीय असद्गुणों के प्रकाशक और सद्गुणों के विनाशक, पुण्य-पाप के स्वरूप से अनभिज्ञ, असत्याचरणपरायण वे मृषावादी लोग जाति कुल रूप एवं शील के विषय में अन्यान्य प्रकार से भी असत्य वोलते हैं। वह असत्य माया के कारण गुणहीन है, चपलता से युक्त है, चुगलखोरी-पैशुन्य से परिपूर्ण है, परमार्थ को नष्ट करने वाला है, असत्य अर्थवाला अथवा सत्य से हीन, द्वेषमय, अप्रिय, अनर्थकारी, पापकर्मों का मूल एवं मिथ्यादर्शन से युक्त है। वह कर्णकटु सम्यग्ज्ञानशून्य, लज्जाहीन, लोकगर्हित, वध-वन्धन आदि रूप क्लेशों से परिपूर्ण, जरा, मृत्यु दुःख और शोक का कारण है, अशुद्ध परिणामों के कारण संक्लेश से युक्त है।

जो लोग मिथ्या अभिप्राय में निरत है, स्वयं में अविद्यमान गुणों की उदीरणा करने वाले और दूसरों में विद्यमान गुणों के नाशक हैं। वे हिंसा करके प्राणियों का उपघात करते हैं, असत्य भाषण करने में प्रवृत्त हैं ऐसे लोग सावद्य-पापमय, अकुशल, अहितकर सत्पुरुषों द्वारा गर्हित और अधर्मजनक वचनों का प्रयोग करते हैं। ऐसे मनुष्य पुण्य और पाप के स्वरूप से अनभिज्ञ होते हैं।

वे पुनः अधिकरणों पाप के साधनों को वनाने, जुटाने, जोड़ने आदि की क्रिया में प्रवृत्ति करने वाले हैं, वे अपना और दूसरों का अनेक प्रकार से अनर्थ और विनाश करते हैं।

२६. पावपरामरिसग मुसावाई–

''एमेव जंपमाणा-महिस-सूकरे य साहिंति घायगाणं।''

''ससय-पसय-रोहिए य साहिंति वागुराणं।''

''तित्तिर-वट्टग-लावके य कविंजल-कवोयगे य साहिंति साउणीणं।''

''झस-मगर-कच्छभे य साहिंति मच्छियाणं।''

''संखंके खुल्लए य साहिंति मगराणं।''

''अयगर-गोणस-मंडलि-दव्वीकरे मउली य साहिंति वालवीणं।''

२६. पाप का परामर्श देने वाले मृषावादी–

इसी प्रकार 'स्व-पर का अहित करने वाले मृषावादी जन घातकों को भैंसा और शूकर वतलाते हैं।'

'वागुरिकों–व्याधों को शशक-खरगोश, पसय-मृगविशेष या मृगशिशु और रोहित वतलाते हैं।'

''शाकुनिकों–चिड़ीमारों को तीतर, बतक और लावक तथा कपिंजल और कपोत-कबूतर बतलाते हैं।''

''मच्छीमारों को–झष–मछलियों, मगर और कछुआ बतलाते हैं।''

''धीवरों को शंख द्वीन्द्रिय जीव, अल्प–क्षुद्र–जन्तु विशेष और कुल्लक-कौड़ी के जीव बतलाते हैं।''

''सपेरों को अजगर, गोनस, मंडली एवं दर्वीकर सर्प के भेदों को तथा मुकुली बिना फन के सर्प [illegible] हैं।''

"गोहा-सेहग-सल्लग-सरडगे य साहिंति लुद्धगाणं।"

"लुब्धकों को गोधा, सेह, शल्लकी और सरट गिरगिट बतलाते हैं।"

"गयकुल-वानरकुले य साहिंति पासियाणं।"

"पाशिकों को गजकुल और वानरकुल अर्थात् हाथियों और वन्दरों के झुण्ड बतलाते हैं।"

"सुक-वरहिण-मयणसाल-कोइल-हंसकुले सारसे य साहिंति पोसगाणं।"

"पक्षी पालकों को तोता, मोर, मैना, कोकिला और हंस के कुल तथा सारस पक्षी बतलाते हैं।"

"वह-बंध-जायणं च साहिंति गोम्मियाणं।"

"पशुपालकों को वध, बन्ध और यातना देने के उपाय बतलाते हैं।"

"धण-धन्न-गवेलए य साहिंति तक्कराणं।"

"चोरों को धन, धान्य और गाय-वैल आदि पशु बतला कर चोरी करने की प्रेरणा करते हैं।"

"गामागर-नगर-पट्टणे य साहिंति चारियाणं।"

"गुप्तचरों को ग्राम, नगर, आकर और पत्तन आदि बस्तियाँ एवं उनके गुप्त रहस्य बतलाते हैं।"

"पारघाइय-पंथघाइयाओ य साहिंति गंठिभेयाणं।"

"ग्रन्थिभेदकों-गांठ काटने वालों (जेबकतरों) को रास्ते के अन्त में अथवा बीच में मारने-लूटने गांठ काटने आदि की सीख देते हैं।"

"कयं च चोरियं साहिंति नगरगोत्तियाणं।"

"नगररक्षकों-कोतवाल आदि पुलिसकर्मियों को की हुई चोरी का भेद बतलाते हैं।"

"लंछण-निल्लंछण-धमण-दूहण-पोसण-वणण-दवण-वाहणाइयाइं साहिंति बहूणि गोमियाणं।"

गोपालकों को लांछन–कान आदि काटना या निशान बनाना, नपुंसक–वधिया करना, धमण-भैंस आदि के शरीर में हवा भरना, (जिससे वह दूध अधिक दे) दुहना, पोषना जौ आदि खिला कर पुष्ट करना, बछड़े को अपना समझकर स्तन-पान कराए, ऐसी भ्रान्ति में डालना, पीड़ा पहुँचाना, वाहन गाड़ी आदि में जोतना इत्यादि अनेकानेक पाप-पूर्ण कार्य कहते या सिखलाते हैं।"

"धातु-मणि-सिल-प्पवाल-रयणागरे य साहिंति आगरीणं।"

"खान वालों को गैरिक आदि धातुएँ चन्द्रकान्त आदि मणियां, शिलाप्रवाल मूंगा और अन्य रत्न बतलाते हैं।"

"पुप्फविहिं फलविहिं च साहिंति मालियाणं।"

"मालियों को पुष्पों और फलों के प्रकार बतलाते हैं।"

"अग्घमहुकोसए य साहिंति वणचराणं।"

"वनचरों भील आदि वनवासी जनों को मधु का मूल्य और मधु के छत्ते बतलाते हैं।"

जंताइं विसाइं मूलकम्मं आहेवण-आविंधण-आभिओग-मंतोसहिप्पओगे चोरिय-परदारगमण-बहुपावकम्मकरणं उक्खंधे गामघाइयाओ वणदहण-तलागभेयणाणि बुद्धिविसविणासणाणि वसीकरण-माइयाइं भय-मरण-किलेस-दोस-जणणाणि भावबहुसंकिलिट्ठमलिणाणि भूयघाओवघाइयाइं सच्चाइं वि ताइं हिंसकाइं वयणाइं उदाहरंति।

–पण्ह. आ. २, सु. ५४-५५

मारण, मोहन, उच्चाटन आदि के लिए-लिखित यन्त्रों या पशु-पक्षियों को पकड़ने वाले यन्त्रों, संखिया आदि विषों, गर्भपात आदि के लिए जड़ी-बूटियों के प्रयोग, मन्त्र आदि द्वारा नगर में क्षोभ या विद्वेष उत्पन्न कर देने अथवा मन्त्रबल से धनादि खींचने, द्रव्य और भाव से वशीकरण मन्त्रों एवं औषधियों के प्रयोग करने, चोरी, पर-स्त्रीगमन करने आदि के बहुत से पापकर्मों के उपदेश तथा छल से शत्रुसेना की शक्ति को नष्ट करने अथवा उसे कुचल देने, ग्रामघात गांव को नष्ट कर देने, जंगल में आग लगा देने, तालाव आदि जलाशयों को सुखा देने, बुद्धि के विषय-भूत विज्ञान अथवा बुद्धि एवं स्पर्श रस आदि विषयों के विनाश वशीकरण आदि के भय, मरण क्लेश और दुःख उत्पन्न करने वाले, अतीव संक्लेश होने के कारण मलिन, जीवों का घात और उपघात करने वाले वचन तथ्य यथार्थ होने पर भी प्राणियों का घात करने वाले होने से मृषावादी बोलते हैं।

२७. असमिक्खियभासी मुसावाई–

पुट्ठा वा अपुट्ठा वा परतत्तियवावडा य असमिक्खिय-भासिणो उवदिसंति सहसा

"उट्टा गोणा गवया दमंतु।"

२७. अविचारितभाषी मृषावादी–

अन्य प्राणियों को सन्ताप-पीड़ा प्रदान करने में प्रवृत्त, अविचारपूर्वक भाषण करने वाले लोग किसी के पूछने पर और न पूछने पर भी सहसा दूसरों को इस प्रकार का उपदेश देते हैं–

"ऊँटों, वैलों और गवयों-रोझों का दमन करो।"

''परिणयवया अस्सा-हत्थी-गवेलग-कुक्कडा य किज्जंतु-किणावेह य विक्केह।''

''परिणत आयु वाले इन अश्वों, हाथियों, भेड़, वकरियों, मुर्गों को खरीदो, खरीदवाओ और इन्हें वेच दो।''

''पयह य सयणस्स देह पिय य दासि-दास भयग-भाइल्लगा य सिस्सा य पेसकजणो-कम्मकरा य किंकरा य एए सयण परिजणो य कीसं अच्छंति।''

''पकाने योग्य वस्तुओं को पकाओ, स्वजनों को दे दो, पेय मदिरा आदि पीने योग्य पदार्थों का पान करो, दास दासी भृतक भागीदार, शिष्य प्रेष्यजन संदेशवाहक कर्मकर-कर्म करने वाले किंकर क्या करूँ? इस प्रकार पूछ कर कार्य करने वाले, ये सव प्रकार के कर्मचारी तथा ये स्वजन और परिजन क्यों कैसे वैठे हुए हैं?''

''भारिया भे करेत्तु कम्मं।''

''ये भरण-पोषण करने योग्य हैं और अपना काम करें।''

''गहणाइं वणाइं खेत्त-खिल-भूमि-वल्लराइं उत्तणगण-संकडाइं डज्झंतु सूडिज्जंतु य रुक्खा।''

ये सघन वन, खेत, विना जोती हुई भूमि, वल्लर-विशिष्ट खेत जो उगे हुए घास-फूस से भरे हैं इन्हें जला डालो, घास कटवाओ या उखड़वा डालो।''

''भिज्जंतु जंतभंडाइयस्स उवहिस्स कारणाए बहुविहस्स य अट्ठाए।''

''यन्त्रों-घानी गाड़ी आदि भांड-कुंडे आदि उपकरणों के लिए हल आदि साधनों और नाना प्रकार के प्रयोजनों के लिए वृक्षों को कटवाओ।''

''उच्छू दुज्जंतु।''

''इक्षु-ईख-गन्नों को उखाड़ डालो।''

''पीलिज्जंतु य तिला।''

''तिलों को पेलो इनका तेल निकालो।''

''पयावेह य इट्टकाउ मम घरट्ठयाए।''

''मेरा घर वनाने के लिए ईंटों को पकाओ,

''खेत्ताइं कषह कसावेह य।''

खेतों को जोतो और जुतवाओ।''

''लहुं गाम आगर-नगर-खेड-कव्वडे निवेसेह अडवीदेसेसु विपुलसीमे।''

''विस्तृत सीमा वाले अटवी प्रदेश में शीघ्र ही ग्राम, आकर, नगर, खेड़ और कर्वट कुनगर आदि को वसाओ।

''पुप्फाणि य फलाणि य कंद मूलाइं काल पत्ताइं गेण्हेह।''

''पुष्प फल और कन्दमूल जो पक चुके हैं उन्हें तोड़ लो।''

''करेह संचयं परिजणट्ठयाए।''

''अपने परिजनों के लिए इनका संचय करो।''

''साली-वीही-जवा य लुच्चंतु मलिज्जंतु उप्पणिज्जंतु य लहुं च पविसंतु य कोट्ठागारं।''

''शाली-धान-व्रीहि-अनाज आदि और जौ को काट लो और मसलो, दानों को भूसे से पृथक् करके शीघ्र कोठार में भर लो।

''अप्प-मह-उक्कोसगा य हंमंतु पोयसत्था।''

छोटे मध्यम और वड़े नौकायात्रियों के समूह को नष्ट कर दो।''

''सेणा णिज्जाउ।''

''सेना युद्धादि के लिए प्रयाण करे।''

''जाउ डमरं।''

''संग्रामभूमि में जाए,''

''घोरा वट्टंतु य संगामा।''

''घोर युद्ध प्रारम्भ हो,''

''पवहंतु य सगडवाहणाइं।''

''गाड़ी और नौका आदि वाहन चलें,''

''उवाणयणं चोलगं विवाहो जन्नो अमुगम्मि उ होउ दिवसेसु करणेसु मुहुत्तेसु नक्खत्तेसु तिहिसु य।''

''उपनयन-यज्ञोपवीत संस्कार, चोलक-शिशु का मुण्डनसंस्कार, विवाहसंस्कार, यज्ञ ये सव कार्य अमुक दिनों में वालव आदि करणों में, अमृतसिद्धि आदि मुहूर्तों में, अश्विनी पुष्य आदि नक्षत्रों में और नन्दा आदि तिथियों में होने चाहिए।''

''अज्ज होउ ण्हवणं मुदितं वहुखज्ज--पिज्ज-कलियं कोतुकं विण्हावणगं।''

''आज स्नपन-सौभाग्य के लिए स्नान करना चाहिए अथवा सौभाग्य एवं समृद्धि के लिए प्रमोद स्नान कराना चाहिए--आज प्रमोदपूर्वक वहुत विपुल मात्रा में खाद्य पदार्थों एवं मदिरा आदि पेय पदार्थों के भोज के साथ सौभाग्यवृद्धि अथवा पुत्रादि की प्राप्ति के लिए वधू आदि को स्नान कराओ तथा डोरा वांधना आदि कौतुक करो।''

''संति कम्माणि कुणह'' ''ससि-रवि-गहोवराग-विसमेसु।''

''सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण और अशुभ स्वप्न के फल को निवारण करने के लिए विविध मंत्रादि से संस्कारित जल से स्नान और शान्तिकर्म करो।''

''सज्जण-परियणस्स य नियगस्स य जीवियस्स परिरक्खणट्ठयाए पडिसीसगाइं च देह।''

''अपने कुटुम्बजनों की अथवा अपने जीवन की रक्षा के लिए कृत्रिम-आटे आदि से बकरे आदि के प्रतिशीर्षक सिर बनाकर चण्डी आदि देवियों को भेट चढ़ाओ।''

देह य सीसोवहारे "विविहोसहि-मज्ज-मंस-भक्खऽन्न पाण-मल्लाणुलेवण-पईव-जलि-उज्जल-सुगंधि-धूवावकार पुप्फ फलसमिद्धे।"

"पायच्छित्तं करेह, पाणाइवायकरणेणं वहुविहेणं विवरीउप्पाय-दुस्सुमिण-पाव-सउण-असोमग्गह-चरिय-अमंगल निमित्त पडिघायहेउं।"

"वित्तिच्छेयं करेह।"

"मा देह किंचि दाणं।"

"सुट्ठु-हओ सुट्ठु हओ सुट्ठु छिन्नो भिन्नत्ति उवदिसंत्ता एवं विहं करेंति अलियं।"

मणेण वायाए कम्मुणा य अकुसला अणज्जा अलियाणा अलिय-धम्मनिरया अलियासु-कहासु अभिरमंता तुट्ठा अलियं करेत्तु होइ य बहुप्पगारं। —पण्ह. आ. २, सु. ५६-५७

"अनेक प्रकार की ओषधियों, मद्य, मांस, मिष्टान, अन्न, पान, पुष्पमाला, चन्दन, लेपन, उवटन, दीपक, सुगन्धित धूप, पुष्पों तथा फलों से परिपूर्ण विधिपूर्वक बकरा आदि पशुओं के सिरों की बलि दो।"

"विविध प्रकार की हिंसा करके अशुभ सूचक उत्पात, प्रकृतिविकार, दुःस्वप्न अपशकुन क्रूरग्रहों के प्रकोप, अमंगल सूचक अंगस्फुरण-भुजा आदि अवयवों के फड़कने आदि के फल को नष्ट करने के लिए प्रायश्चित्त करो।"

"अमुक की आजीविका नष्ट कर दो।"

"किसी को कुछ भी दान मत दो।"

"वह मारा गया, यह अच्छा हुआ, उसे काट डाला गया यह ठीक हुआ, उसके टुकड़े कर डाले गये यह अच्छा हुआ।"

इस प्रकार किसी के न पूछने पर भी आदेश-उपदेश अथवा कथन करते हुए, मन-वचन-काया से मिथ्या आचरण करने वाले अनार्य अकुशल, मिथ्यामतों का अनुसरण करने वाले मिथ्याधर्म में निरत लोग मिथ्या कथाओं में रमण करते हुए मिथ्या भाषण करते हैं तथा नाना प्रकार से असत्य का सेवन करके सन्तोष का अनुभव करते हैं।

२८. मुसावायस्स फलं—

तस्स य अलियस्स फलविवागं अयाणमाणा वड्ढेंति, महब्भयं अविस्सामवेयणं दीहकालं बहुदुक्खसंकडं नरय-तिरिय-जोणिं।

तेण य अलिएण समणुबद्धा आइद्धा पुणब्भवंधकारे भमंति भीमे दुग्गतिवसहिमुवगया।

ते य दीसंति इह दुग्गया दुरंता परवसा अत्थ-भोगपरिवज्जिया असुहिया फुडियच्छवि बीभच्छविवन्ना खर-फरूसविरत्त-ज्झामज्झूसिरा, निच्छाया लल्लविफलवाया असक्कयमसक्कया अगंधा अचेयणा दुभगा अकंता

काकस्सरा हीण-भिन्नघोसा, विहिंसा जडबहिरंधया मूया य मम्मणा अकंतविकयकरणा

णीया णीयजण-निसेविणो लोगगरहणिज्जा भिच्चा असरिसजणस्स पेस्सा दुम्मेहा लोक-वेद-अज्झप्पसमय-सुइवज्जिया नरा धम्मबुद्धिवियला।

अलिएण य तेणं पडज्झमाणा असंतएण य अवमाणण—पिट्ठिमंसाहिक्खेव पिसुण-भेयण-गुरु-बंधव-सयण-मित्त-

२८. मृषावाद का फल—

पूर्वोक्त मिथ्याभाषण के फल-विपाक से अनजान वे मृषावादीजन अत्यन्त भयंकर दीर्घ काल तक निरन्तर वेदना और बहुत दुःखों से परिपूर्ण नरक और तिर्यञ्च योनि की वृद्धि करते हैं।

नरक और तिर्यञ्चयोनियों में लम्बे समय तक घोर दुःखों का अनुभव करके शेष रहे कर्मों को भोगने के लिए वे मृषावाद में निरत-नर भयंकर पुनर्भव के अन्धकार में भटकते हैं।

उस पुनर्भव में भी दुर्गति प्राप्त करते हैं, जिसका अन्त बड़ी कठिनाई से होता है। वे मृषावादी मनुष्य पुनर्भव (इस भव) में भी पराधीन होकर जीवनयापन करते हैं, उन्हें न तो भोगोपभोग का साधन अर्थ-धन प्राप्त होता है और न वे मनोज्ञ भोगोपभोग ही प्राप्त करते हैं। वे सदा दुःखी रहते हैं। उनकी चमड़ी बिवाई, दाद, खुजली आदि से फटी रहती है, वे भयानक दिखाई देते हैं और विवर्ण कुरूप होते हैं, कठोर स्पर्श वाले, रतिविहीन, बेचैन, मलीन एवं सारहीन शरीर वाले होते हैं। शोभाकान्ति से रहित होते हैं। वे अस्पष्ट और विफल वचन बोलने वाले होते हैं। वे संस्काररहित और सत्कार से रहित होते हैं, वे दुर्गन्ध से व्याप्त, विशिष्ट चेतना से विहीन, अभागे, अकान्त-अनिच्छनीय काक के समान अनिष्ट स्वर वाले, धीमी और फटी हुई आवाज वाले, विहिंस्य दूसरों के द्वारा विशेष रूप से सताये जाने वाले जड़ वधिर, अंधे, गूंगे और अस्पष्ट उच्चारण करने वाले तोतली वोली बोलने वाले, अमनोज्ञ तथा इन्द्रियों वाले वे नीच कुलोत्पन्न होते हैं।

उन्हें नीच लोगों का सेवक बनना पड़ता है। वे लोक में निन्दा के पात्र होते हैं। वे भृत्य-चाकर होते हैं और असदृश असमान-विरुद्ध आचार-विचार वाले लोगों के आज्ञापालक या द्वेषपात्र होते हैं, वे दुर्बुद्धि होते हैं, अतः लौकिक शास्त्र-महाभारत, रामायण आदि, वेद-ऋग्वेद आदि, आध्यात्मिक शास्त्र कर्मग्रन्थ तथा समय आगमों या सिद्धान्तों के श्रवण एवं ज्ञान से रहित होते हैं, वे धर्मबुद्धि से रहित होते हैं।

उस अशुभ या अनुपशान्त असत्य की अग्नि से जलते हुए वे मृषावादी, पीठ पीछे होने वाली निन्दा, आक्षेप-दोषारोपण, चुगली, परस्पर की फूट अथवा प्रेमसम्बन्धों का भंग आदि की स्थिति प्राप्त करते हैं। गुरुजनों, वन्धु-बान्धवों, स्वजनों तथा मित्रजनों के तीक्ष्ण

वक्खारणाइयाइं अब्भक्खाणाइं बहुविहाइं पावेंति, अमणोरमाइं हियमणदूमगाइं जावज्जीवं दुद्धराइं।

वचनों से अनादर पाते हैं। अमनोरम हृदय और मन को सन्ताप देने वाले तथा जीवनपर्यन्त कठिनाई से मिटने वाले ऐसे अनेक प्रकार के मिथ्या आरोपों को वे प्राप्त करते हैं।

अणिट्ठ-खर-फरुसवयण-तज्जण-निब्भच्छण दीणवदण-विमला-कुभोयणा कुवाससा कुवसहीसु किलिस्संता नेव सुहं नेव निव्वुइं उवलभंति अच्चंत-विपुल-दुक्खसयसंपलित्ता।

अनिष्ट, अप्रिय, तीक्ष्ण, कठोर और मर्मभेदी वचनों से तर्जना, झिडकियों और धिक्कार-तिरस्कार के कारण दीन मुख एवं खिन्न चित्त वाले होते हैं, मृषावाद के परिणामस्वरूप वे खराब भोजन और मैले कुचैले तथा फटे वस्त्रों वाले होते हैं, उन्हें निकृष्ट वस्ती में क्लेश पाते हुए अत्यन्त एवं विपुल दुःखों की अग्नि में जलना पड़ता है। उन्हें न तो शारीरिक सुख प्राप्त होता है और न मानसिक शान्ति ही मिलती है।

एसो सो अलियवयणस्स फलविवाओ इहलोइओ परलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो दारुणो कक्कसो असाओ वाससहस्सेहिं मुच्चइ न अवेदयित्ता अत्थि हु मोक्खो त्ति।

मृषावाद का यह (पूर्वोक्त) इस लोक और परलोक सम्बन्धी फल-विपाक है। इस फल-विपाक में सुख का अभाव है और दुःखों की ही बहुलता है। यह अत्यन्त भयानक है और प्रगाढ़ कर्म-रज के बन्ध का कारण है, यह दारुण है, कर्कश है और असातारूप है, सहस्रों वर्षों में इससे छुटकारा मिलता है, फल को भोगे विना इस पाप से मुक्ति नहीं मिलती है।

एवमाहंसु नायकुलनंदणो महप्पा जिणो उ वीरवरनामधेज्जो कहेसी य अलियवयणस्स फलविवागं। —पण्ह. आ. २, सु. ५८

ज्ञातकुलनन्दन, महान् आत्मा वीरवर महावीर नामक जिनेश्वरदेव ने मृषावाद का यह फल प्रतिपादित किया है।

२९. मुसावाय वण्णणस्स उवसंहारो—

एयं तं विईयं पि अलियवयणं लहुसग-लहु-चवल-भणियं, भयंकरं, दुहकरं, अयसकरं, वेरकरगं,

२९. मृषावाद वर्णन का उपसंहार—

यह दूसरा अधर्मद्वार-मृषावाद है। छोटे-तुच्छ और चंचल प्रकृति के लोग इसका प्रयोग करते-बोलते हैं। (महान एवं गम्भीर स्वभाव वाले मृषावाद का सेवन नहीं करते) यह मृषावाद भयंकर है, दुःखकर है, अपयशकर है, वैरकर-वैर का कारण-जनक है।

अरइ-रइ- राग-दोस-मणसंकिलेस-वियरण अलियं-णियडि-साइजोगवहुलं णीयजणणिसेवियं णिस्संसं अप्पच्चयकारगं

अरति,रति, राग-द्वेष एवं मानसिक संक्लेश को उत्पन्न करने वाला है। यह झूठ, निष्फल, कपट और अविश्वास की बहुलता वाला है। नीच जन इसका सेवन करते हैं। यह नृशंस-निर्दय एवं निर्घृण है। अविश्वासकारक है—मृषावादी के कथन का कोई विश्वास नहीं करता।

परम-साहुगरहणिज्जं परपीलाकारगं परमकण्हलेस्ससहियं दुग्गइ विणिवाय वड्ढणं पुणव्भवकरं चिरपरिचियमणुगयं दुरंतं।

परम साधुजनों श्रेष्ठ सत्पुरुषों द्वारा निन्दनीय है। दूसरों को पीड़ा करने वाला और परम कृष्णलेश्या से संयुक्त है। दुर्गति अधोगति में पतन का कारण है, पुनः पुनः भव-भवान्तर का परिवर्तन करने वाला है। चिरकाल से परिचित है—अनादि काल से लोग इसका प्रयोग कर रहे हैं, अतएव अनुगत है—अर्थात् उनके साथ चिपटा हुआ है। इसका अन्त कठिनता से होता है अथवा इसका परिणाम दुःखमय ही होता है।

विइयं अहम्मदारं समत्तं, त्तिवेमि। —पण्ह. आ. २, सु. ५८-५९

इस प्रकार यह दूसरे अधर्मद्वार मृषावाद का वर्णन है, ऐसा मैं कहता हूँ।

३०. अदिण्णादाणस्स सरूवं—

जंबू ! तइयं च अदिण्णादाणं।

हर-दह-मरणभय-कलुस-तासण-परसंतिगऽभिज्जलोभमूलं,

३०. अदत्तादान का स्वरूप—

(श्री सुधर्मा स्वामी ने अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहा—)

हे जम्बू ! तीसरा अधर्मद्वार अदत्तादान है, अर्थात् बिना आज्ञा के किसी दूसरे की वस्तु को लेना।

यह अदत्तादान दूसरे के पदार्थ का हरण रूप है। हृदय को जलाने वाला है, मरण और भय रूप अथवा मरण भय रूप है, पापमय होने से कलुषित है, त्रास पैदा करने वाला है, दूसरे के धन आदि में मूर्च्छा-लोभ ही इसका मूल है।

कालविसमसंसियं

विषमकाल-आधी रात्रि आदि और विषम स्थान-पर्वत, सघन वन आदि स्थानों पर आश्रित है अर्थात् चोरी करने वाले विषम काल और विषम स्थान की तलाश में रहते हैं।

अहोऽच्छिन्न-तण्ह-पत्थाण-पत्थोइमइयं, अकित्तिकरणं अणज्जं,

यह अदत्तादान निरन्तर तृष्णाग्रस्त जीवों को अधोगति की ओर ले जाने वाली बुद्धि वाला है, अदत्तादान अपयश का कारण है, अनार्य पुरुषों द्वारा आचरित है।

छिद्दमंतर-विहुर-वसण-मग्गण उस्सव-मत्त-प्पमत्त''-पसुत्त वंचण क्खिवण-घायण-परं अणिहुय-परिणामं-तक्करजण-बहुमयं अकलुणं रायपुरिसरक्खियं।

यह छिद्र-प्रवेशद्वार, अन्तर-अवसर, विधुर-अपाय एवं व्यसन-राजा आदि द्वारा दिये जाने वाले दंड आदि का कारण है। उत्सवों, के अवसर पर मदिरा आदि के नशे में बेभान, असावधान तथा सोये हुए मनुष्यों को ठगने वाला, चित्त में व्याकुलता उत्पन्न करने और घात करने में तत्पर है तथा अशान्त परिणाम वाले चोरों द्वारा अत्यन्त मान्य है। यह करुणाहीन कृत्य-निर्दयता से परिपूर्ण कार्य है, राजपुरुषों-चौकीदार, कोतवाल आदि द्वारा इसे रोका जाता है।

सया साहुगरहणिज्जं पियजण- मित्तजण-भेय विप्पिइ कारकं, राग-दोसबहुलं, पुणो य उप्पूर-समर-संगाम-डमर-कलि-कलह-वेह-करणं, दुग्गइविणिवाय वड्ढणं, भवपुणब्भवकरं,

सदैव साधुजनों-सत्पुरुषों द्वारा निन्दित है, प्रियजनों तथा मित्रजनों में फूट और अप्रीति उत्पन्न करने वाला है, राग और द्वेष की बहुलता वाला है, यह बहुतायत से मनुष्यों को मारने वाले संग्रामों स्वचक्र-पराचक्र सम्बन्धी डमरों-विप्लवों, लड़ाई-झगड़ों, तकरारों एवं पश्चात्ताप का कारण है। दुर्गति पतन में वृद्धि करने वाला, भव-पुनर्भव बारंबार जन्म मरण कराने वाला है।

चिरपरिचियमणुगयं दुरंतं।

चिरकाल-सदाकाल से परिचित, आत्मा के साथ लगा हुआ-जीवों का पीछा करने वाला और परिणाम में-अन्त में दुःखदायी है।

तइयं अहम्मदारं। —पण्ह. आ. ३, सु. ६०

यह तीसरा अधर्मद्वार अदत्तादान है।

३१. अदिण्णादाणस्स पज्जवणामाणि—

तस्स य णामाणि गोण्णाणि होंति तीसं, तं जहा—

१. चोरिक्कं, २. परहडं, ३. अदत्तं,
४. कूरिकडं, ५. परलाभो, ६. असंजमो,
७. परधणम्मि गेही, ८. लोलिक्कं, ९. तक्करत्तणं ति य,
१०. अवहारो, ११. हत्थलहुत्तणं, १२. पावकम्मकरणं,

३१. अदत्तादान के पर्यावाची नाम—

पूर्वोक्त स्वरूप वाले अदत्तादान के गुणनिष्पन्न यथार्थ तीस नाम हैं, यथा—

१. चौरिक्य-चोरी, २. परहृत-दूसरे के धन का अपहरण, ३. अदत्त-बिना आज्ञा लेना, ४. क्रूरकृत-क्रूरजनों द्वारा किया जाने वाला, ५. परलाभ-दूसरे की उपार्जित वस्तु लेना, ६. असंयम-संयम विनाश का हेतु, ७. परधनगृद्धि-दूसरे के धन में आसक्ति, ८. लौल्य-लंपटता, ९. तस्करत्व-चोरों का कार्य, १०. अपहार-अपहरण, ११. हस्तलघुत्व हस्तलाघव-हाथ की चालाकी, १२. पापकर्म करण-पाप कर्मों का कारण,

तस्स एयाणि एवमाईणि नामधेज्जाणि होंति, तीसं अदिन्नादाणस्स पावकलिकलुसकम्मबहुलस्स अणेगाइं।

—पण्ह. आ. ३, सु. ६१

इस प्रकार पापकर्म और कलह से मलीन कार्यों की बहुलता वाले इस अदत्तादान आश्रव के ये सार्थक तीस नाम हैं और इसी प्रकार के अन्य भी अनेक नाम हो सकते हैं।

३२. अदिण्णदाणगा—

तं पुण करेंति चोरियं तक्करा, परदव्वहरा छेया कयकरण-लद्धलक्खा साहसिया लहुस्सगा अतिमहिच्छ-लोभगच्छा दद्दरओवीलका य गेहिया अहिमरा।

अणभंजका भग्गसंधिया, रायदुट्ठकारी य, विसयनिच्छूढ लोकवज्झा उद्दोहक-गामघायक-पुरघायक-पंथघायक-आलीवग-तित्थभेया, लहुहत्थसंपउत्ता जुइकरा, खंडरक्ख-इत्थीचोर-पुरिसचोर-संधिच्छेया य, गंठि भेदग-परधणहरण-लोमावहारा, अक्खेवी हडकारका, निम्मदग-गूढचोरक-गोचोरक-अस्सचोरक-दासिचोरा य, एकचोरा उकड्ढक संपदायक-उच्छिंपक-सत्थघायक- बिलचोरीकारका य, निग्गाहविप्पलुंपगा, बहुविह— तेणिक्कहरण बुद्धी एए अन्ने य एवमाई परस्स दव्वाहिं जे अविरया।

—पण्ह. आ. ३, सु. ६२

३२. अदत्तादानी—

उस पूर्वोक्त चोरी को वे चोर-लोग करते हैं जो दूसरे के द्रव्य को हरण करने वाले हैं, चोरी करने में कुशल हैं, अनेकों बार चोरी कर चुके हैं, चोरी करने में अभ्यस्त हैं और चोरी के अवसर को जानने वाले हैं, साहसी हैं, तुच्छ हृदय वाले हैं, अत्यन्त महती इच्छा वाले एवं लोभ से ग्रस्त हैं, जो वचनों और आडम्बर से अपनी असलियत को छिपाने वाले हैं, दूसरों के धनादि में गृद्ध आसक्त हैं, सामने से सीधा प्रहार करने वाले हैं।

जो लिए हुए ऋण को नहीं चुकाने वाले हैं, जो की हुई सन्धि शर्त शपथ को भंग करने वाले हैं, जो राजकोष आदि को लूट कर या अन्य प्रकार से राजा का अनिष्ट करने वाले हैं, देश निकाला दिए जाने के कारण जो जनता द्वारा बहिष्कृत हैं, घातक हैं या उपद्रव दंगा फसाद आदि करने वाले हैं, ग्रामघातक, नगरघातक, मार्ग में पथिकों को लूटने वाले या मार डालने वाले हैं, आग लगाने वाले हैं और तीर्थ यात्रियों से लूट खसोट करने वाले हैं, जो हाथ की सफाई दिखाने वाले हैं, सेंध खात खोदने वाले हैं, गांठ काटने वाले हैं, जो दूसरे के धन का हरण करने वाले हैं, निर्दयता पूर्वक मारने वाले अथवा आतंक फैलाने वाले हैं, वशीकरण आदि का प्रयोग करके धनादि का अपहरण करने वाले हैं, सदा दूसरों के उपमर्दक, गुप्तचोर, गौ-चोर, अश्व-चोर एवं दासी को चुराने वाले हैं, अकेले चोरी करने वाले, घर में से द्रव्य निकाल लेने वाले, चोरों को बुलाकर दूसरे के घर में चोरी करवाने वाले, चोरों की सहायता करने वाले, चोरों को भोजनादि देने वाले, उच्छिपक-छिपकर चोरी करने वाले, सार्थ-समूह को लूटने वाले, दूसरों को धोखा देने के लिए बनावटी आवाज में बोलने वाले, राजा द्वारा निगृहीत-दंडित एवं छलपूर्वक राजाज्ञा का उल्लंघन करने वाले, अनेकानेक प्रकार से चोरी करके दूसरे के द्रव्य हरण करने की बुद्धि वाले, ये सभी लोग और इन्हीं जैसे दूसरे के द्रव्य को ग्रहण करने के इच्छुक एवं परधन के लोलुपी, लालची और अन्यान्य लोग चौर्य कर्म में प्रवृत्त होते हैं।

३३. परधणगिद्धा रायाणं पवित्ति—

विपुलबलपरिग्गहा य बहवे रायाणो परधणम्मिगिद्धा सए य दव्वे असंतुट्ठा परविसए अभिहणंति, ते लुद्धा परधणस्सकज्जे चउरंगविभत्तबलसमग्गा, निच्छिय-वरजोह-जुद्ध सद्धिय-अहमहमिति-दप्पिएहिं सेन्नेहिं संपरिवुडा,

पउमपत्तसगड-सूइ-चक्क-सागर-गरुलवूहाइएहिं अणिएहिं उत्थरंता, अभिभूय हरंति परधणाइं।

३३. परधन में आसक्त राजाओं की प्रवृत्ति—

इनके अतिरिक्त जो पराये धन में गृद्ध-आसक्त हैं और अपने द्रव्य से जिन्हें सन्तोष नहीं है ऐसे विपुल बल-सेना और परिग्रह-धनादि सम्पत्ति या परिवार वाले बहुत से राजा भी दूसरे-राजाओं के देश-प्रदेश पर आक्रमण करते हैं, वे लोभी राजा दूसरे के धनादि को हथियाने के उद्देश्य से रथसेना, गजसेना, अश्वसेना और पैदलसेना, इस प्रकार चतुरंगिणी सेना के साथ अभियान करते हैं, वे दृढ़ निश्चय वाले, श्रेष्ठ योद्धाओं के साथ युद्ध करने में विश्वास रखने वाले, "मैं पहले जूझूंगा", इस प्रकार के दर्प से परिपूर्ण सैनिकों से समन्वित-घिरे हुए होते हैं।

वे कमलपत्र के आकार के पद्मपत्र व्यूह, बैलगाड़ी के आकार के शकटव्यूह, सूई के आकार के सूचीव्यूह, चक्र के आकार के चक्रव्यूह, समुद्र के आकार के सागरव्यूह और गरुड़ के आकार के गरुड़व्यूह जैसे अनेक प्रकार के व्यूहों की रचना करते हैं, इस

अवरे रणसीसलन्द्धलक्खा संगामंमि अइवयंति, सन्नद्ध-बद्ध-परियर-उप्पीलिय चिंधपट्टगहियाउहपहरणा, माढिवरवम्मगुंडिया आविद्धलालिका कवयकंकडइया।

उर-सिर-मुहबद्ध-कंठ-तोण-माइत-वर-फलगरचीय-पहकर-सरह-सरवर-चावकर-करंछिय-सुनिसिय-सरवरिस-चडकर-मुयंत-घण-चंड-वेग-धारानिवाय- मग्गे।

अणेगधणु-मंडलग्ग-संधित-उच्छलिय-सत्ति-सूल-कणग-वामकर-गहिय-खेडग-निम्मल-निकिट्ठ खग्ग-पहरंत कोंत-तोमर-चक्क-गया-परसु-मूसल-लंगल-सूल-लउल-भिंडिमाल-सब्बल-पट्टिस-चम्मेट्ठ-दुघण-मोट्ठिय मोग्गर-वरफलिह-जत-पत्थर-दुहण-तोण-कुवेणी-पीढकलिय-ईली-पहरण मिलिमिलिमिलंत-खिप्पंत विज्जुज्जल-विरचियं-समप्पहा-णभतले।

फुडपहरणे, महारण-संख-भेरि-दुंदुभि-वर-तूर-पउर-पडु-पडहाहय - णिणाय - गंभीर णंदित्त- पक्खुभिय- विपुलघोसे।

हय-गय-रह-जोह-तुरिय पसरिय रउद्ध तमंधकार बहुले, कायर नर-णयण हियय आउलकरे।

—पण्ह. आ. ३, सु. ६३-६४

तरह नाना प्रकार की व्यूहरचना वाली सेना दूसरे विरोधी राजा की सेना को आक्रान्त करते हैं और पराजित करके दूसरे की धन सम्पत्ति को हरण कर लेते हैं।

दूसरे कोई-कोई नृपतिगण युद्धभूमि में अग्रिम पंक्ति में लड़कर लक्ष्य विजय प्राप्त करने वाले कमर कसे हुए और विशेष प्रकार के परिचयसूचक चिन्हपट्ट मस्तक पर बांधे हुए, अस्त्र-शस्त्रों को धारण किए हुए, प्रतिपक्ष के प्रहार से बचने के लिए ढाल से और उत्तम कवच से शरीर को वेष्टित किए हुए, लोहे की जाली पहने हुए, कवच पर लोहे के कांटे लगाए हुए,

वक्ष स्थल के साथ ऊर्ध्वमुखी वाणों की तुणीर--बाणों की थैली कंठ में बांधे हुए, हाथों में पाश-तलवार आदि शस्त्र और ढाल लिए हुए, सैन्यदल की रणोचित रचना किए हुए, कठोर धनुष को हाथों में पकड़े हुए, हर्षयुक्त हाथों से-बाणों को खींचकर की जाने वाली प्रचण्ड वेग से बरसती हुई मूसलाधार वर्षा के गिरने से जहां मार्ग अवरुद्ध हो गया है।

ऐसे युद्ध में अनेक धनुषों, दुधारी तलवारों, फेंकने के लिए निकाले गए त्रिशूलों, वाणों, बाएं हाथों में पकड़ी हुई ढालों, म्यान से निकाली हुई चमकती तलवारों, प्रहार करते हुए भालों, तोमर नामक शस्त्रों, चक्रों, गदाओं, कुल्हाड़ियों, मूसलों, हलों, शूलों, लाठियों, भिंडमालों, शब्वलों-लोहे के वल्लमों, पट्टिस नामक शस्त्रों, पत्थरों, हथौड़ों, दुघणों-विशेष प्रकार के भालों, मौष्ठिकों-मुट्ठी में आ सकने वाले एक प्रकार के शस्त्रों, मुद्गरों, प्रवल आगलों, गोफणों, दुहणो (कर्करों) बाणों के तुणीरों, कुवेणियों-नालदार बाणों एवं आसन नामक शस्त्रों से सज्जित तथा दुधारी तलवारों और चमचमाते शस्त्रों को आकाश में फेंकने से आकाशतल विजली के समान उज्ज्वल प्रभा वाला हो जाता है।

उस संग्राम में प्रकट रूप से शस्त्र प्रहार होता है, महायुद्ध में बजाये जाने वाले शंखों-भेरियों उत्तम वाद्यों अत्यन्त स्पष्ट ध्वनि वाले ढोलों के बजने के गंभीर आघोष से वीर पुरुष हर्षित होते हैं और कायर पुरुषों को क्षोभ-घबराहट होती है, भय से पीड़ित होकर कांपने लगते हैं, इस कारण युद्धभूमि में होहल्ला होता है।

घोड़े, हाथी, रथ और पैदल सेनाओं के शीघ्रतापूर्वक चलने से चारों ओर फैली उड़ी हुई धूल के कारण वहां सघन अंधकार व्याप्त रहता है जो कायर नरों के नेत्रों एवं हृदयों को आकुल-व्याकुल बना देता है।

सयराह-हसंत-रूसंत-कलकलारवे, आसुणियवयणरुद्दे, भीम दसणाधरोट्ठ-गाढदट्ठे, सप्पहरणुज्जयकरे।

उसमें एक साथ हंसने रोने और कराहने के कारण कलकल ध्वनि होती रहती है, मुंह फुलाकर आंसू बहाते हुए बोलने के कारण वह रौद्र होता है, उस युद्ध में भयानक दांतों से होठों को जोर से काटने वाले योद्धाओं के हाथ अचूक प्रहार करने के लिए उद्यत रहते हैं।

अमरिसवस-तिव्वरत्त निद्दारितच्छे, वेरदिट्ठिकुद्ध-चिट्ठिय- तिवलीकुडिल-भिउडिकय- निलाडे।

क्रोध की तीव्रता के कारण योद्धाओं के नेत्र रक्तवर्ण और तरेरते हुए होते हैं, वैरमय दृष्टि के कारण क्रोधपरिपूर्ण चेष्टाओं से उनकी भौंहें तनी रहती हैं और इस कारण उनके ललाट पर तीन सल पड़े हुए होते हैं।

वह-परिणय-नरसहस्स-विक्कमे वियंभियवले, वग्गंत-तुरग-रह-पहाविय-समरभडा आवडिय-छेय-लाघव-पहार-पसाधिय-समुस्सिय-वाहु-जुयल-मुक्कट्टहास-पुक्कंतवोलवहुले।

उस युद्ध में मार-काट करते हुए हजारों योद्धाओं के पराक्रम को देख कर सैनिकों के पौरुष-पराक्रम की वृद्धि हो जाती है। हिनहिनाते हुए अश्व और रथों द्वारा इधर-उधर भागते हुए युद्धवीरों तथा शस्त्र चलाने में कुशल और सधे हुए हाथों वाले सैनिक हर्ष-विभोर होकर दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर खिलखिलाकर किलकारियां मारते हैं।

फुरफलगावरण-गहिय-गयवर-पत्थित दरिय- भड-खल-परोप्पर-पलग्ग-जुद्ध-गव्विय-विउसित-वरासि-रोस-तुरिय-अभिमुह-पहरंत-छिन्न-करिकर-विभंगियकरे।

चमकती हुई ढालें एवं कवच धारण किए हुए मदोन्मत्त हाथियों पर आरूढ़ प्रस्थान करते हुए योद्धा शत्रुयोद्धाओं के साथ परस्पर जूझते हैं तथा युद्धकला में कुशलता के कारण अहंकारी योद्धा अपनी-अपनी तलवारें म्यानों में से निकालकर फुर्ती के साथ रोषपूर्वक परस्पर एक दूसरे पर प्रहार करते हैं, हाथियों की सूंड़ें काट रहे होते हैं, जिससे उनके भी हाथ कट जाते हैं।

अवइद्ध-निसुद्ध-भिन्न फालिय-पगलिय-रुहिरकय-भूमि-कद्दम-चिलिचिल्लपहे।

ऐसे भयावह युद्ध में मुद्गर आदि द्वारा मारे गए, काटे गए या फाड़े गए हाथी आदि पशुओं और मनुष्यों के बहते हुए रुधिर के कीचड़ से युद्धभूमि मार्ग लथपथ हो रहे होते हैं।

कुच्छि-दालिय-गलिय-रुलंत-निब्भेलितंत-फुरफुरंत अविगल-मम्माहय-विकय-गाढदिन्नपहारमुच्छित-लुढंत वेंभल-विलाव-कलुणे।

कूंख के फट जाने से भूमि पर बिखरी हुई एवं बाहर निकली हुई आंतों से रक्त प्रवाहित होता रहता है तथा तड़फड़ाते हुए विकल, मर्माहत बुरी तरह से कटे हुए प्रगाढ़ प्रहार से बेहोश हुए इधर-उधर लुढकते हुए विह्वल मनुष्यों के विलाप के कारण वह युद्ध बड़ा ही करुणाजनक होता है।

हयजोह-भमंत-तुरग-उद्दाम-मत्तकुंजर-परिसंकित-जण-निव्वुक्क छिन्नधय-भग्गरहवर-नट्ठसिर-करिक-लेवराकिन्न-पतितपहरण-विकिन्नाभरण-भूमिभागे। नच्चंत-कवंध-पउर-भयंकर-वायस-परिलेंत-गिद्धमंडल-भमंत-छायंधकारगंभीरे।

उस युद्ध में मारे गए योद्धाओं के इधर-उधर भटकते घोड़े मदोन्मत्त हाथी और भयभीत मनुष्य मूल से कटी हुई ध्वजाओं वाले टूटे-फूटे रथ, मस्तक कटे हुए हाथियों के धड़ कलेवर, विनष्ट हुए शस्त्रास्त्र और बिखरे हुए आभूषण इधर-उधर बिखरे हुए होते हैं, नाचते हुए बहुसंख्यक धड़ों सिर रहित कलेवरों पर काक और गीध मंडराते रहते हैं, इन काकों और गिद्धों के जब झुंड के झुंड घूमते हैं तब उनकी छाया के अन्धकार के कारण वह युद्ध भूमि गम्भीर बन जाती है।

वसुवसुहाविकंपितव्व पच्चक्खपिउवणं परमरुद्द बीहणगं दुप्पवेसतरंगं अभिवयंति संगामसंकडं परधणं महंता।

ऐसे भयावह-घोरातिघोर संग्राम में नृपतिगण स्वयं प्रवेश करते हैं– केवल सेना को ही युद्ध में नहीं झोंकते, देव-देवलोक और पृथ्वी को विकंपित करते कंपाते हुए, दूसरे के धन की कामना करने वाले वे राजा साक्षात् श्मशान के समान अतीव रौद्र होने के कारण भयानक और जिसमें प्रवेश करना अत्यन्त कठिन है ऐसे संग्राम रूप संकट में चल कर अथवा आगे होकर प्रवेश करते हैं।

अवरे पाइक्कचोरसंघा सेणावइ चोरवंदपागड्ढिका य अडवीदेसदुग्गवासी काल-हरित-रत्त पीत-सुक्किल्ल-अणेगसय-चिंधपट्टबद्धा परविसये अभिहणंति, लुद्धा धणस्स कज्जे। - प्रश्न. आ. ३, सु. ६०-६६

इनके अतिरिक्त भी पैदल चल कर चोरी करने वाले चोरों के समूह होते हैं, कई ऐसे चोर सेनापति भी होते हैं जो चोरों को प्रोत्साहित करते हैं, चोरों के समूह दुर्गम अटवी-प्रदेश में रहते हैं, उनके काले, हरे, लाल, पीले और सफेद रंग के सैकड़ों चिह्न होते हैं, जिन्हें वे अपने मस्तक पर लगाते हैं। पराये धन के लोभी वे चोर दूसरे प्रदेश में जाकर धन का अपहरण करने के लिए मनुष्यों का घात करते हैं।

है, जिसमें प्रवेश पाना भी कठिन है, जिसके किनारे पहुंचना भी कठिन है, जिसका आश्रय लेना भी दुःखमय है और खारे पानी से परिपूर्ण होता है,

असिय–सिय-समुसियगेहिं दच्छत्तरेहिं वाहणेहिं अइवइत्ता समुद्दमज्झे हणंति, गंतूण-जणस्स पोते परदव्वहरा नरा।

—पण्ह. आ. ३, सु. ६७

ऐसे समुद्र में अन्य के द्रव्य के अपहारक-डाकू ऊंचे किए हुए काले और श्वेत पालों वाले अति-वेगपूर्वक चलने वाले, पतवारों से सज्जित जहाजों द्वारा आक्रमण करके समुद्र के मध्य में जाकर सामुद्रिक व्यापारियों के जहाजों को नष्ट कर देते हैं।

३६. गामाइजणं अवहारगाणां चरिया–

३६. ग्रामादिजनों के अपहारकों की चर्या–

णिरणुकंपा निक्कंखा गामागर-नगर-खेड-कव्वड-मडंव-दोणमुह-पट्टणासम-णिगम जणवए ते य धणसमिद्धे हणंति।

जिनका हृदय अनुकम्पा-दया से शून्य है, जो परलोक की परवाह नहीं करते, ऐसे लोग धन से समृद्ध ग्रामों, आकरों, नगरों, खेटों, कर्वटों, मडम्बों, पत्तनों, द्रोणमुखों, आश्रमों, निगमों एवं देशों को नष्ट कर देते हैं।

थिरहियया य छिन्नलज्जा वंदिग्गह-गोग्गहे य गिण्हंति, दारुणमई निक्किवा निक्किया णियं हणंति, छिंदंति गेहसंधि।

वे कठोर हृदय वाले या निहित स्वार्थ वाले निर्लज्ज लोग मानवों को वन्दी वनाकर अथवा गायों आदि को वांध कर ले जाते हैं, दारुण मति वाले निर्दय या निकम्मे अपने आत्मीय जनों का भी घात करते हैं, वे गृहों की सन्धि को छेदते हैं अर्थात् सेंध लगाते हैं।

निक्खित्ताणि य हरंति, धण-धन्न-दव्वजाय-जणवयकुलाणं णिग्घिणमई परस्स दव्वाहिं जे अविरया।

जो दूसरे के द्रव्यों से विरत-निवृत्त नहीं है, ऐसे निर्दय बुद्धि वाले-वे चोर लोगों के घरों में रखे हुए धन, धान्य एवं अन्य प्रकार के द्रव्य के समूहों को हर लेते हैं।

तहेव केइ अदिन्नादाणं गवेसमाणा कालाकालेसु संचरंता चियकापज्जलिय-सरस-दरदड्ढ-कड्ढिय-कलेवरे,

इसी प्रकार कितने ही चोर अदत्तादान की गवेषणा-खोज करते हुए काल और अकाल में इधर उधर भटकते हुए ऐसे श्मशान में फिरते हैं।

रुहिरलित्त वयण-अक्खय खातिय-पीत-डाइणि-भमंत-भयंकरे,

जहां चिताओं में जलती हुई रुधिर आदि से युक्त, अधजली एवं खींच ली गई लाशें पड़ी हैं, रक्त से लथपथ मृत शरीरों को पूरा खा लेने और रुधिर पी लेने के पश्चात् इधर उधर फिरती हुई डाकिनों के कारण जो अत्यन्त भयावह जान पड़ता है।

जंवुयक्खिक्खियंते,

जहां जम्बुक गीदड़ खीं-खीं ध्वनि कर रहे हैं,

घूयकयघोर सद्दे,

उल्लुओं की डरावनी आवाज आ रही है।

वेयालुट्ठिय निसुद्ध-कहकहिय-पहसिय-वीहणक-निरभिरामे, अतिदुब्भिगंध-वीभच्छ-दरिसणिज्जे,

भयोत्पादक एवं विद्रूप पिशाचों द्वारा ठहाका मार कर हंसने से जो अतिशय भयावना एवं अरमणीय हो रहा है और तीव्र दुर्गन्ध से व्याप्त एवं घिनौना होने के कारण देखने में जो भीषण जान पड़ता है।

"सुसाण-वण-सुन्नघर-लेण-अंतरावण गिरिकंदर- विसम-सावयकुलासु वसहीसु किलिस्संता,

ऐसे श्मशानों, वनों, सूने घरों, लयनों-शिलामय गृहों, वनी हुई दुकानों, पर्वतों की गुफाओं, विषम-ऊबड़ खाबड़ स्थानों और सिंह वाघ आदि हिंस्र प्राणियों से व्याप्त स्थानों में क्लेश भोगते हुए इधर-उधर मारे-मारे भटकते हैं।

सीयातव-सोसिय–सरीरा, दड्ढच्छवी,

उनके शरीर की चमड़ी शीत और उष्ण से शुष्क हो जाती है। सर्दी गर्मी की तीव्रता को सहन करने के कारण उनकी चमड़ी रुखी हो जाती है या चेहरे की कान्ति मन्द पड़ जाती है।

निरय- तिरियभव- संकड-दुक्खसभार-वेयणिज्जाणि, पावकम्माणि संचिणंता,

वे नरकभव और तिर्यञ्च भव रूपी गहन वन में होने वाले निरन्तर दुःखों की अधिकता द्वारा भोगने योग्य पापकर्मों का संचय करते हैं।

दुल्लह-भक्खन्न पाण-भोयणा,

जंगल में इधर-उधर भटकते रहने के कारण उन्हें [illegible] भोजन अन्न और जल भी दुर्लभ रहता है।

पिवासिया, झुंझिया किलंता, मंस-कुणिम-कंद-मूल-[illegible], [illegible]

[illegible]

अन्नेहि य एवमाइएहिं गोम्मिय भंडोवकरणेहिं दुक्खसमुदीरणेहिं संकोडण-मोडणेहिं वज्झंति मंदपुन्ना।

वांधने की रस्सी तथा निष्फोडन-एक विशेष प्रकार का वन्धन, इन सब तथा इसी प्रकार के दुःखों को समुत्पन्न करने वाले कारागार रक्षक दुःखजनक साधनों द्वारा मंदभागी पापी चोरों को बांध कर पीड़ा पहुंचाते हैं और उन पापहीन पापी चोर कैदियों के शरीर को सिकोड़ कर और मोड़ कर जकड़ दिया जाता है।

संपुड-कवाड-लोहपंजर भूमिघरनिरोह-कूव-चारग-कीलग-जूय-चक्क-वितत-वंधण खंभालण-उद्धचलण वंधण विहम्मणाहि य विहेड-यंता।

कैद की कोठरी (काल-कोठड़ी) में डालकर किवाड़ वन्द कर देना, लोहे के पिंजरे में डाल देना, भूमिगृह-भोंयरे तलघर में वंद कर देना, कूप में उतारना, वंदीघर के सींखचों से बांध देना, अंगों में कीलें ठोक देना, (वैलों के कंधों पर रक्खा जाने वाला) जूवा उनके कंधे पर रख देना अर्थात् वैलों के स्थान पर उन्हें गाड़ी में जोत देना, गाड़ी के पहिये के साथ बांध देना, वाहों जांघों और सिर को कसकर वांध देना, खंभे से चिपटा देना, उल्टे पैर करके वांध देना इत्यादि वन्धनों से अधर्मी जेल-अधिकारियों द्वारा चोर वांधे जाते हैं और पीड़ित किये जाते हैं।

अवकोडग-गाढ उर-सिर-वद्ध-उद्धपूरित-फुरंत-उर कडगमोडणा मेडणाहिं वद्धा य नीससंता।

इसके साथ ही उन चोरी करने वालों की गर्दन नीची करके, छाती और सिर कस कर वांध दिया जाता है तब वे निश्वास छोड़ते हैं, उनकी छाती धक् धक् करती है, उनके अंग मोड़े जाते हैं, वे वारंवार उल्टे किये जाते हैं, वे अशुभ विचारों में डूवे रहते हैं और ठंडी श्वासें छोड़ते हैं।

सीसावेढ-उरू-यावल-चप्पडग-संधि-वंधण-तत्तस लागसूइय-कोडणाणि तच्छणविमाणणाणि य, खार कडुय-तित्त-नावण-जायणा।

कारागार के अधिकारियों के अधीनस्थ कर्मचारी चमड़े की रस्सी से उनके मस्तक (कस कर) वांध देते हैं, दोनों जंघाओं को चीर देते हैं या मोड़ देते हैं। घुटने, कोहनी, कलाई आदि जोड़ों को काष्टमय यन्त्र से वांध देते हैं। तपाई हुई लोहे की सलाइयों एवं सूईयां शरीर में चुभो देते हैं। वसूले से लकड़ी की भांति उनका शरीर छीलते हैं, मर्मस्थलों को पीड़ित करते हैं, लवण आदि क्षार पदार्थ नीम आदि कटुक पदार्थ और लाल मिर्च आदि तीखे पदार्थ उनके कोमल अंगों पर छिड़क देते हैं।

कारणसयाणि वहुयाणि पावियंता, उरक्खोडि-दिन्नगाढ-पेल्लण-अट्ठिक संभग्ग सुपंसुलिगा, गल-काल-कलोहदंड-उर-उदर-वत्थि-परिपीलिया, मच्छंत-हियय-संचुण्णियंगमंगा, आणत्तिकिंकरेहिं।

इस प्रकार वे पीड़ा पहुंचाने के सैकड़ों कारणों द्वारा वहुत-सी यातनाएं भोगते हैं तथा छाती पर काष्ट रखकर जोर से दवाने अथवा मारने से उनकी हड्डियां भग्न हो जाती हैं, पसली-पसली ढीली पड़ जाती है। मछली पकड़ने के कांटे के समान घातक काले लोहे के नोकदार डंडे छाती, पेट, गुदा और पेट में भोंक देने से वे अत्यन्त पीड़ा का अनुभव करते हैं। ऐसी-ऐसी यातनाएं पहुंचाने के कारण चोरी करने वालों का हृदय मथ दिया जाता है और उनके अंग-प्रत्यंग चूर चूर हो जाते हैं।

केइ अविराहियवेरिएहिं जमपुरिससन्निहेहिं पहया।

कितने ही अपराध किये बिना ही वैरी बने हुए यमदूत जैसे सिपाहियों या कारागार के कर्मचारियों द्वारा मारे पीटे जाते हैं।

ते तत्थ मंदपुण्णा चडवेला-वज्झपट्ट-पाराइं, छिव-कस-लत्त वरत्त वेत्तप्पहारसयतालियंगमंगा किवणा लंबंत-चम्म-वण-वेयण-विमुहियमणा, घण कोट्टिम नियल-जुयल-संकोडिय-मोडिया य कीरंति निरुच्चारा असंचरणा।

इस प्रकार वे अभागे मंदपुण्य चोर [illegible]

तिलं तिलं चेव छिज्जमाणा सरीरविकिंत-लोहिओवलित्ता कागणि-मंसाणि-खावियंता।

उनके शरीर के तिल-तिल जितने छोटे-छोटे टुकड़े कर दिये जाते हैं, उन्हीं के शरीर में से काटे हुए और रुधिर से लिप्त मांस के छोटे-छोटे टुकड़े उन्हें खिलाए जाते हैं।

पावा खर-करसएहिं तालिज्जमाणदेहा, वातिकरनरनारीसंपरिवुडा पेच्छिज्जंता य नगरजणेण वज्झनेवत्थिया पणिज्जंति नयरमज्झेण किवण-कलुणा, अत्ताणा असरणा अणाहा अबंधवा बंधु-विप्पहीणा विपिक्खिता, दिसोदिसिं

कठोर एवं कर्कश स्पर्श वाले पत्थर आदि से उन्हें पीटा जाता है। इस भयावह दृश्य को देखने के लिए उत्कंठित नर-नारियों की भीड़ से वे घिर जाते हैं। नागरिकजन उन्हें इस अवस्था में देखते हैं, मृत्युदण्ड प्राप्त कैदी की पोशाक उन्हें पहनाई जाती है और उन्हें नगर के बीचों-बीच से होकर ले जाया जाता है उस समय वे चोर अत्यन्त दयनीय दिखाई देते हैं। त्राणरहित, अशरण, अनाथ, बन्धु-बान्धवविहीन, भाई बंधुओं द्वारा परित्यक्त वे इधर-उधर दिशाओं में नजर डालते हैं।

मरणभयुव्विग्गा, आघायण-पडिदुवार-संपाविया अधन्ना सूलग्ग-विलग्ग-भिन्नदेहा।

और सामने उपस्थित मौत के भय से अत्यन्त घबराए हुए होते हैं। तत्पश्चात् उन्हें वधस्थल पर पहुंचा दिया जाता है और उन अभागों को शूली पर चढ़ा दिया जाता है, जिससे उनका शरीर चिर जाता है।

ते य तत्थ कीरंति परिकप्पियंगमंगा।

वहां वध्यभूमि में उनके (किन्हीं-किन्हीं चोरों के) अंग-प्रत्यंग काट डाले जाते हैं—टुकड़े कर दिये जाते हैं।

उल्लंबिज्जंति रुक्खसालासु केइ कलुणाइं विलवमाणा। अवरे चउरंगधणियबद्धा।

किसी किसी को वृक्ष की शाखाओं पर टांग दिया जाता है, दीनता से विलाप करते हुए उनके चार अंगों अर्थात् दोनों हाथों और दोनों पैरों को कस कर बांध दिया जाता है।

पव्वयकडा पमुच्चंते दूरपाय-बहुविसमपत्थरसहा।

किन्हीं को पर्वत की चोटी से नीचे गिरा दिया जाता है, बहुत ऊंचाई से गिराये जाने के कारण उन्हें विषम-नुकीले पत्थरों की चोट सहन करनी पड़ती है।

अन्ने य गयचलण-मलण-निम्मद्दिया कीरंति।

किसी-किसी को हाथी के पैर के नीचे कुचल कर [illegible] दिया जाता है।

पावकारी अट्ठारसखंडिया य कीरंति मुंडपरसुहिं।

उन चोरी करने वालों को कुंठित धार वाले कुल्हाड़ों आदि से अठारह स्थानों से खण्डित किया जाता है।

केइ उक्कत्त कन्नोट्ठ-नासा उप्पाडिय-नयण-दसण-वसणा।

कईयों के कान, ओठ और नाक काट दिये जाते हैं तथा [illegible] और वृषण-अंडकोश उखाड़ लिये जाते हैं।

जिब्भिंदियच्छिया।

जीभ खींच कर बाहर निकाल ली जाती है।

छिन्न कन्न सिरा पणिज्जंते छिज्जंते य असिणा निव्विसया छिन्न हत्थ-पाया।

कान काट लिए जाते हैं, शिराएं काट दी जाती हैं [illegible] में ले जाया जाता है, [illegible] से [illegible] दिया जाता है, किन्हीं-किन्हीं चोरों के हाथ और [illegible] जाता है।

पमुच्चंते य जावज्जीवबंधणा य कीरंति।

[illegible]

केइ परदव्वहरणलुद्धा कारग्गल नियल-जुयल [illegible] बद्धगा।

[illegible]

[illegible]

एया अन्ना य एवमाइओ वेयणाओ पावा पावेंति।

—पण्ह. आ. ३, सु. ७१-७२

ये और इसी प्रकार की अन्यान्य वेदनाएं, वे चोरी करने वाले पापी लोग भोगते हैं।

३८. तक्कराणं दंडविही–

अदंतिदिया वसट्टा, बहुमोहमोहिया परधणंमि लुद्धा, फासिंदिय-विसयतिव्वगिद्धा, इत्थिगय-रूव-सद्द-रस-गंध-इट्ठ-रइ-महिय-भोगतण्हाइया य धणतोसगा गहिया य जे नरगणा

३८. तस्करों की दण्डविधि–

इनके अलावा जिन्होंने अपनी इन्द्रियों का दमन नहीं किया है, इन्द्रिय विषयों के वशीभूत हो रहे हैं, तीव्र आसक्ति के कारण हिताहित के विवेक से रहित बन गए हैं, परकीय धन में लुब्ध हैं, स्पर्शनेन्द्रिय के विषय में तीव्र रूप से गृद्ध आसक्त हैं, स्त्रियों के रूप, शब्द, रस और गंध में मनोनुकूल रति तथा भोग की तृष्णा से व्याकुल बने हुए हैं तथा केवल धन की प्राप्ति में ही सन्तोष मानने वाले हैं,

पुणरवि ते कम्मदुव्वियद्धा उवणीया रायकिंकराणं तेसिं वहसत्थगपाढयाणं विलउलीकारगाणं लंचसय-गेण्हकाणं, कूड - कवड - माया - नियडि - आयरण - पणिहि - वंचण-विसारयाणं, बहुविह अलियसयजंपकाणं, परलोकपरंमुहाणं, निरयगइगामियाणं।

ऐसे मनुष्यगण-चोर राजकीय पुरुषों द्वारा पकड़ लिए जाते हैं और फिर पाप कर्म के परिणाम को नहीं जानने वाले, वध की विधियों को गहराई से समझने वाले, अन्याययुक्त कर्म करने वाले या चोरों को गिरफ्तार करने में चतुर, चोर अथवा लम्पट को तत्काल पहचानने वाले, सैकड़ों बार लांच-रिश्वत लेने वाले, झूठ, कपट, माया, निकृति वेष परिवर्तन आदि करके चोर को पकड़ने तथा उससे अपराध स्वीकार कराने में अत्यन्त कुशल नरकगतिगामी, परलोक से विमुख एवं अनेक प्रकार से सैकड़ों असत्य भाषण करने वाले राज किंकरों-सरकारी कर्मचारियों के समक्ष उपस्थित कर दिये जाते हैं।

तेहिय आणत्तजियदंडा तुरियं उग्घाडिया पुरवरे सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह महापह पहेसु।

उन राजकीय पुरुषों द्वारा जिनको प्राणदण्ड की सजा दी गई है, उन चोरों को नगर में शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ और पथ आदि स्थानों में जनसाधारण के सामने-प्रकट रूप में लाया जाता है।

वेत्त-दंड-लउड-कट्ठ-लेट्ठु-पत्थर-पणालि-पणोल्लि-मुट्ठि-लया-पादपण्हि-जाणु कोप्पर-पहार-संभग्गं- महियगत्ता।

तत्पश्चात् बेतों से, डंडों से, लाठियों से, लकड़ियों से, ढेलों से, पत्थरों से, लम्बे लट्ठों से, पणोल्लि-एक विशेष प्रकार की लाठी से, मुक्कों से, लताओं से, लातों से, घुटनों से, कोहनियों से मार-मार कर उनके अंग-भंग कर दिए जाते हैं और उनके शरीर को मथ दिया जाता है।

अट्ठारस-कम्म-कारणा जाइयंगमंगा कलुणा, सुक्कोट्ठ-कंठ-गलक-तालु जीहा जायंता पाणीयं विगयजीवियासा तण्हाइया, वरागा तं पि य ण लभंति वज्झपुरिसेहिं घाडियंता।

अठारह प्रकार के चोरों एवं चोरी के प्रकारों के कारण उनके अंग-भंग पीड़ित कर दिये जाते हैं, उनकी दशा अत्यन्त करुणाजनक होती है। उनके ओष्ठ, कण्ठ, गला, तालु और जीभ सूख जाती है, जीवन की आशा नष्ट हो जाती है। वे बेचारे प्यास से पीड़ित होकर पानी मांगते हैं तो वह भी उन्हें नहीं मिलता, वहां कारागार में वध के लिए नियुक्त पुरुष उन्हें धकेल कर या घसीट कर ले जाते हैं।

तत्थ य खर-फरुस-पडह-घट्टिय-कूडग्गह-गाढ-रुट्ठ-निसट्ठ-परामुट्ठा, वज्झकरकुडिजुयनिवसिया, सुरत्त-कणवीर-गहिय-विमुकुल-कंठेगुण-वज्झदूय-आविद्धमल्ल-दामा, मरणभयुप्पण्ण-सेद-आयत्तणे, उत्तुपिय-किलिन्नगत्ता, चुण्ण गुंडिय-सरीर रयरेणु भरियकेसा कुसुंभ-गोकिन्न-मुद्धया, छिन्न जीवियासा घुन्नंता वज्झपाणिप्पाया।

अत्यन्त कर्कश पटह-ढोल बजाते हुए, राजकर्मचारियों द्वारा धकियाए जाते हुए तथा तीव्र क्रोध से भरे हुए राजपुरुषों के द्वारा फांसी या शूली पर चढ़ाने के लिए दृढ़तापूर्वक पकड़े हुए वे अत्यन्त ही अपमानित होते हैं, उन्हें प्राणदण्डप्राप्त मनुष्य के योग्य दो वस्त्र पहनाए जाते हैं, वध्यदूत सी प्रतीत होने वाली, शीघ्र ही मृत्यु दंड की सूचना देने वाली, गहरी लाल कनेर की माला उनके गले में पहनाई जाती है। मरण की भीति के कारण उनके शरीर से पसीना छूटता है, उस पसीने की चिकनाई से उनके अंग भीग जाते हैं, कोयले आदि के दुर्वर्ण चूर्ण से उनका शरीर पोत दिया जाता है। हवा से उड़कर चिपटी हुई धूलि से उनके केश रूखे एवं धूलभरे हो जाते हैं, उनके मस्तक के केशों को लाल रंग से रंग दिया जाता है, उनके जीने की आशा नष्ट हो जाती है, अतीव भयभीत होने के कारण वे डगमगाते हुए चलते हैं।

तिलं तिलं चेव छिज्जमाणा सरीरविक्किंत-लोहिओवलित्ता कागणि-मंसाणि-खावियंता।

उनके शरीर के तिल-तिल जितने छोटे-छोटे टुकड़े कर दिये जाते हैं, उन्हीं के शरीर में से काटे हुए और रुधिर से लिप्त मांस के छोटे-छोटे टुकड़े उन्हें खिलाए जाते हैं।

पावा खर-करसएहिं तालिज्जमाणदेहा, वातिकरनरनारीसंपरिवुडा पेच्छिज्जंता य नगरजणेण वज्झनेवत्थिया पणिज्जंति नयरमज्झेण किवण-कलुणा, अत्ताणा असरणा अणाहा अबंधवा बंधु-विप्पहीणा विपिक्खिता, दिसोदिसिं

कठोर एवं कर्कश स्पर्श वाले पत्थर आदि से उन्हें पीटा जाता है। इस भयावह दृश्य को देखने के लिए उत्कंठित नर-नारियों की भीड़ से वे घिर जाते हैं। नागरिकजन उन्हें इस अवस्था में देखते हैं, मृत्युदण्ड प्राप्त कैदी की पोशाक उन्हें पहनाई जाती है और उन्हें नगर के बीचों-बीच से होकर ले जाया जाता है उस समय वे चोर अत्यन्त दयनीय दिखाई देते हैं। त्राणरहित, अशरण, अनाथ, बन्धु-बान्धवविहीन, भाई बंधुओं द्वारा परित्यक्त वे इधर-उधर दिशाओं में नजर डालते हैं।

मरणभयुव्विग्गा, आघायण-पडिदुवार-संपाविया अधन्ना सूलग्ग-विलग्ग-भिन्नदेहा।

और सामने उपस्थित मौत के भय से अत्यन्त घबराए हुए होते हैं। तत्पश्चात् उन्हें वधस्थल पर पहुंचा दिया जाता है और उन अभागों को शूली पर चढ़ा दिया जाता है, जिससे उनका शरीर चिर जाता है।

ते य तत्थ कीरंति परिकप्पियंगमंगा।

वहां वध्यभूमि में उनके (किन्हीं-किन्हीं चोरों के) अंग-प्रत्यंग काट डाले जाते हैं—टुकड़े कर दिये जाते हैं।

उल्लविज्जंति रुक्खसालासु केइ कलुणाइं विलवमाणा। अवरे चउरंगधणिय बद्धा।

किसी किसी को वृक्ष की शाखाओं पर टांग दिया जाता है, दीनता से विलाप करते हुए उनके चार अंगों अर्थात् दोनों हाथों और दोनों पैरों को कस कर बांध दिया जाता है।

पव्वयकडा पमुच्चंते दूरपाय-बहुविसमपत्थरसहा।

किन्हीं को पर्वत की चोटी से नीचे गिरा दिया जाता है, बहुत ऊंचाई से गिराये जाने के कारण उन्हें विषम-नुकीले पत्थरों की चोट सहन करनी पड़ती है।

अन्ने य गयचलण-मलण-निम्मद्दिया कीरंति।

किसी-किसी को हाथी के पैर के नीच कुचल कर कचूमर बना दिया जाता है।

पावकारी अट्ठारसखंडिया य कीरंति मुंडपरसुहिं।

उन चोरी करने वालों को कुंठित धार वाले कुल्हाड़ों आदि से अठारह स्थानों में खण्डित किया जाता है।

केइ उक्कत्त कन्नोट्ठ-नासा उप्पाडिय-नयण-दसण-वसणा।

कईयों के कान, आंख और नाक काट दिये जाते हैं तथा नेत्र दांत और वृषण-अंडकोश उखाड़ लिये जाते हैं।

जिब्भिंदियच्छिया।

जीभ खींच कर बाहर निकाल ली जाती है।

छिन्न कन्न सिरा पणिज्जंते छिज्जंते य असिणा निव्विसया छिन्न-हत्थ-पाया।

कान काट लिए जाते हैं, शिराएं काट दी जाती हैं फिर उन्हें वधभूमि में ले जाया जाता है, वहां तलवार से काट दिया जाता है, किन्हीं-किन्हीं चोरों के हाथ और पैर काट कर निर्वासित कर दिया जाता है।

पमुच्चंते य जावज्जीवबंधणा य कीरंति।

कई चोरों को आजीवन-मृत्युपर्यन्त कारागार में रखा जाता है।

केइ परदव्वहरणलुद्धा कारग्गल नियल-जुवल रुद्धा चारगाए हयसारा।

दूसरे के द्रव्य का अपहरण करने में लुब्ध कई चोरों को कारागार में सांकल बांध कर एवं दोनों पैरों में बेड़ियां डाल कर बन्द कर दिया जाता है, कारागार में बन्दी बनाकर उनका धन छीन लिया जाता है।

सयणविप्पमुक्का मित्तजणनिरक्खिया निरासा बहुजणधिक्कारसद्दलज्जाविया अलज्जा अणुबद्धखुहा पारद्धा सीउण्ह-तण्ह-वेयण-दुग्घट्ट-घट्टिया विवन्नमुह-विच्छविया,

राजकीय भय के कारण कोई स्वजन उन चोरों से सम्बन्ध नहीं रखते, मित्रजन उनकी रक्षा नहीं करते, सभी के द्वारा वे तिरस्कृत होते हैं, अतएव वे सभी ओर से निराश हो जाते हैं। बहुत से लोग "धिक्कार है तुम्हें" इस प्रकार कहते हैं तो वे लज्जित होते हैं अथवा अपनी काली करतूत के कारण अपने परिवार को लज्जित करते हैं, उन लज्जाहीन मनुष्यों को निरन्तर भूखा मरना पड़ता है, चोरी के वे अपराधी सर्दी गर्मी और प्यास की पीड़ा से कराहते-चिल्लाते रहते हैं, उनका चेहरा सहमा हुआ और क्रान्तिहीन हो जाता है।

एया अन्ना य एवमाइओ वेयणाओ पावा पावेंति।
-पण्ह. आ. ३, सु. ७१-७२

ये और इसी प्रकार की अन्यान्य वेदनाएं, वे चोरी करने वाले पापी लोग भोगते हैं।

३८. तक्कराणं दंडविही–

अदंतिदिया वसट्टा, वहुमोहमोहिया परधणंमि लुद्धा, फासिंदिय-विसयतिव्वगिद्धा, इत्थिगय-रूव-सद्द-रस-गंध-इट्ठ-रइ-महिय-भोगतण्हाइया य धणतोसगा गहिया य जे नरगणा

३८. तस्करों की दण्डविधि–

इनके अलावा जिन्होंने अपनी इन्द्रियों का दमन नहीं किया है, इन्द्रिय विषयों के वशीभूत हो रहे हैं, तीव्र आसक्ति के कारण हिताहित के विवेक से रहित बन गए हैं, परकीय धन में लुब्ध हैं, स्पर्शनेन्द्रिय के विषय में तीव्र रूप से गृद्ध आसक्त हैं, स्त्रियों के रूप, शब्द, रस और गंध में मनोनुकूल रति तथा भोग की तृष्णा से व्याकुल बने हुए हैं तथा केवल धन की प्राप्ति में ही सन्तोष मानने वाले हैं,

पुणरवि ते कम्मदुव्वियद्धा उवणीया रायकिंकराणं तेसिं वहसत्थगपाढयाणं विलउलीकारगाणं लंचसय-गेण्हकाणं, कूड - कवड - माया - नियडि - आयरण - पणिहि - वंचण-विसारयाणं, वहुविह अलियसयजंपकाणं, परलोकपरंमुहाणं, निरयगइगामियाणं।

ऐसे मनुष्यगण-चोर राजकीय पुरुषों द्वारा पकड़ लिए जाते हैं और फिर पाप कर्म के परिणाम को नहीं जानने वाले, वध की विधियों को गहराई से समझने वाले, अन्याययुक्त कर्म करने वाले या चोरों को गिरफ्तार करने में चतुर, चोर अथवा लम्पट को तत्काल पहचानने वाले, सैकड़ों बार लांच-रिश्वत लेने वाले, झूठ, कपट, माया, निकृति वेष परिवर्तन आदि करके चोर को पकड़ने तथा उससे अपराध स्वीकार कराने में अत्यन्त कुशल नरकगतिगामी, परलोक से विमुख एवं अनेक प्रकार से सैकड़ों असत्य भाषण करने वाले राज किंकरों-सरकारी कर्मचारियों के समक्ष उपस्थित कर दिये जाते हैं।

तेहिय आणत्तजियदंडा तुरियं उग्घाडिया पुरवरे सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह महापह पहेसु।

उन राजकीय पुरुषों द्वारा जिनको प्राणदण्ड की सजा दी गई है, उन चोरों को नगर में शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ और पथ आदि स्थानों में जनसाधारण के सामने-प्रकट रूप में लाया जाता है।

वेत्त-दंड-लउड-कट्ठ-लेट्ठु-पत्थर-पणालि-पणोल्लि-मुट्ठि-लया-पादपण्हि-जाणु कोप्पर-पहार-संभग्गं- महियगत्ता।

तत्पश्चात् वेतों से, डंडों से, लाठियों से, लकड़ियों से, ढेलों से, पत्थरों से, लम्बे लट्ठों से, पणोल्लि-एक विशेष प्रकार की लाठी से, मुक्कों से, लताओं से, लातों से, घुटनों से, कोहनियों से मार-मार कर उनके अंग-भंग कर दिए जाते हैं और उनके शरीर को मथ दिया जाता है।

अट्ठारस-कम्म-कारणा जाइयंगमंगा कलुणा, सुक्कोट्ठ-कंठ-गलक-तालु जीहा जायंता पाणीयं विगयजीवियासा तण्हाइया, वरागा तं पि य ण लभंति वज्झपुरिसेहिं घाडियंता।

अठारह प्रकार के चोरों एवं चोरी के प्रकारों के कारण उनके अंग-भंग पीड़ित कर दिये जाते हैं, उनकी दशा अत्यन्त करुणाजनक होती है। उनके ओष्ठ, कण्ठ, गला, तालु और जीभ सूख जाती है, जीवन की आशा नष्ट हो जाती है। वे वेचारे प्यास से पीड़ित होकर पानी मांगते हैं तो वह भी उन्हें नहीं मिलता, वहां कारागार में वध के लिए नियुक्त पुरुष उन्हें धकेल कर या घसीट कर ले जाते हैं।

अत्यन्त कर्कश पटह-ढोल वजाते हुए, राजकर्मचारियों द्वारा धकियाए जाते हुए तथा तीव्र क्रोध से भरे हुए राजपुरुषों के द्वारा फांसी या शूली पर चढ़ाने के लिए दृढ़तापूर्वक पकड़े हुए वे अत्यन्त ही अपमानित होते हैं, उन्हें प्राणदण्डप्राप्त मनुष्य के योग्य दो वस्त्र पहनाए जाते हैं, वध्यदूत सी प्रतीत होने वाली, शीघ्र ही मृत्यु दंड की सूचना देने वाली, गहरी लाल कनेर की माला उनके गले में पहनाई जाती है। मरण की भीति के कारण उनके शरीर से पसीना छूटता है, उस पसीने की चिकनाई से उनके अंग भीग जाते हैं, कोयले आदि के दुर्वर्ण चूर्ण से उनका शरीर पोत दिया जाता है। हवा से उड़कर चिपटी हुई धूलि से उनके केश रूखे एवं धूलभरे हो जाते हैं, उनके मस्तक के केशों को लाल रंग से रंग दिया जाता है, उनके जीने की आशा नष्ट हो जाती है, अतीव भयभीत होने के कारण वे डगमगाते हुए चलते हैं।

तिलं तिलं चेव छिज्जमाणा सरीरविक्किंत-लोहिओवलित्ता कागणि-मंसाणि-खावियंता।

उनके शरीर के तिल-तिल जितने छोटे-छोटे टुकड़े कर दिये जाते हैं, उन्हीं के शरीर में से काटे हुए और रुधिर से लिप्त मांस के छोटे-छोटे टुकड़े उन्हें खिलाए जाते हैं।

पावा खर-करसएहिं तालिज्जमाणदेहा, वातिकरनरनारीसंपरिवुडा पेच्छिज्जंता य नगरजणेण वज्झनेवत्थिया पणिज्जंति नयरमज्झेण किवण-कलुणा, अत्ताणा असरणा अणाहा अबंधवा बंधु-विप्पहीणा विपिक्खिता, दिसोदिसिं

कठोर एवं कर्कश स्पर्श वाले पत्थर आदि से उन्हें पीटा जाता है। इस भयावह दृश्य को देखने के लिए उत्कंठित नर-नारियों की भीड़ से वे घिर जाते हैं। नागरिकजन उन्हें इस अवस्था में देखते हैं, मृत्युदण्ड प्राप्त कैदी की पोशाक उन्हें पहनाई जाती है और उन्हें नगर के बीचों-बीच से होकर ले जाया जाता है उस समय वे चोर अत्यन्त दयनीय दिखाई देते हैं। त्राणरहित, अशरण, अनाथ, बन्धु-बान्धवविहीन, भाई बंधुओं द्वारा परित्यक्त वे इधर-उधर दिशाओं में नजर डालते हैं।

मरणभयुव्विग्गा, आघायण-पडिदुवार-संपाविया अधन्ना सूलग्ग-विलग्ग-भिन्नदेहा।

और सामने उपस्थित मौत के भय से अत्यन्त घबराए हुए होते हैं। तत्पश्चात् उन्हें वधस्थल पर पहुंचा दिया जाता है और उन अभागों को शूली पर चढ़ा दिया जाता है, जिससे उनका शरीर चिर जाता है।

ते य तत्थ कीरंति परिकप्पियंगमंगा।

वहां वध्यभूमि में उनके (किन्हीं-किन्हीं चोरों के) अंग-प्रत्यंग काट डाले जाते हैं–टुकड़े कर दिये जाते हैं।

उल्लविज्जंति रुक्खसालासु केइ कलुणाइं विलवमाणा। अवरे चउरंगधणियबद्धा।

किसी किसी को वृक्ष की शाखाओं पर टांग दिया जाता है, दीनता से विलाप करते हुए उनके चार अंगों अर्थात् दोनों हाथों और दोनों पैरों को कस कर बांध दिया जाता है।

पव्वयकडा पमुच्चंते दूरपाय-बहुविसमपत्थरसहा।

किन्हीं को पर्वत की चोटी से नीचे गिरा दिया जाता है, बहुत ऊंचाई से गिराये जाने के कारण उन्हें विषम-नुकीले पत्थरों की चोट सहन करनी पड़ती है।

अन्ने य गयचलण-मलण-निम्मद्दिया कीरंति।

किसी-किसी को हाथी के पैर के नीच कुचल कर कचूमर बना दिया जाता है।

पावकारी अट्ठारसखंडिया य कीरंति मुंडपरसुहिं।

उन चोरी करने वालों को कुंठित धार वाले कुल्हाड़ों आदि से अठारह स्थानों में खण्डित किया जाता है।

केइ उक्कत्त कन्नोट्ठ-नासा उप्पाडिय-नयण-दसण-वसणा।

कईयों के कान, आंख और नाक काट दिये जाते हैं तथा नेत्र दांत और वृषण-अंडकोश उखाड़ लिये जाते हैं।

जिब्भिंदियच्छिया।

जीभ खींच कर बाहर निकाल ली जाती है।

छिन्न कन्न सिरा पणिज्जंते छिज्जंते य असिणा निव्विसया छिन्न-हत्थ-पाया।

कान काट लिए जाते हैं, शिराएं काट दी जाती हैं फिर उन्हें वधभूमि में ले जाया जाता है, वहां तलवार से काट दिया जाता है, किन्हीं-किन्हीं चोरों के हाथ और पैर काट कर निर्वासित कर दिया जाता है।

पमुच्चंते य जावज्जीवबंधणा य कीरंति।

कई चोरों को आजीवन-मृत्युपर्यन्त कारागार में रखा जाता है।

केइ परदव्वहरणलुद्धा कारग्गल नियल-जुवल रुद्धा चारगाए हयसारा।

दूसरे के द्रव्य का अपहरण करने में लुब्ध कई चोरों को कारागार में सांकल बांध कर एवं दोनों पैरों में बेड़ियां डाल कर बन्द कर दिया जाता है, कारागार में बन्दी बनाकर उनका धन छीन लिया जाता है।

सयणविप्पमुक्का मित्तजणनिरक्खिया निरासा बहुजणधिक्कारसद्दलज्जाविया अलज्जा अणुबद्धखुहा पारद्धा सीउण्ह-तण्ह-वेयण-दुग्घट्ट-घट्टिया विवन्नमुह-विच्छविया,

राजकीय भय के कारण कोई स्वजन उन चोरों से सम्बन्ध नहीं रखते, मित्रजन उनकी रक्षा नहीं करते, सभी के द्वारा वे तिरस्कृत होते हैं, अतएव वे सभी ओर से निराश हो जाते हैं। बहुत से लोग "धिक्कार है तुम्हें" इस प्रकार कहते हैं तो वे लज्जित होते हैं अथवा अपनी काली करतूत के कारण अपने परिवार को लज्जित करते हैं, उन लज्जाहीन मनुष्यों को निरन्तर भूखा मरना पड़ता है, चोरी के वे अपराधी सर्दी गर्मी और प्यास की पीड़ा से कराहते-चिल्लाते रहते हैं, उनका चेहरा सहमा हुआ और क्रान्तिहीन हो जाता है।

विहल-मलिन-दुब्बला किलंता कासंता वाहिया य आमाभिभूयगत्ता परुढ-नह-केस-मंसुरोमा छगमुत्तंमि णियगंमि खुत्ता।

वे सदा विह्वल या विफल, मलिन और दुर्वल वने रहते हैं। थके हारे या मुर्झाए रहते हैं, कोई-कोई खांसते हैं और अनेक रोगों व अजीर्ण से ग्रस्त रहते हैं। उनके नख, केश और दाढ़ी-मूंछों के बाल तथा रोम वढ़ जाते हैं, वे कारागार में अपने ही मल-मूत्र में लिप्त रहते हैं।

तत्थेव मया अकामका बंधिऊण पादेसु कड्ढिया खाइआए छूढा।

जव इस प्रकार की दुस्सह वेदनाएं भोगते-भोगते वे मरने की इच्छा न होने पर भी मर जाते हैं (तव भी उनकी दुर्दशा का अन्त नहीं होता) उनके शव के पैरों में रस्सी वांध कर कारागार से वाहर निकाला जाता है और किसी खाई गड्ढे में फेंक दिया जाता है।

तत्थ य विग-सुणग-सियाल-कोल-मज्जार वंद-संदंसग-तुंडपक्खिगण-विविहमुहसयल-विलुत्तगत्ता कय विहंगा।

तत्पश्चात् भेड़िया, कुत्ते, सियार, शूकर तथा संडासी के समान मुख वाले अन्य पक्षी अपने मुखों से उनके शव को नोच डालते हैं। कई शवों को पक्षी, गीध आदि खा जाते हैं।

केइ किमिणा य कुहियदेहा।

कई चोरों के मृत कलेवर में कीड़े पड़ जाते हैं, उनके शरीर सड़ गल जाते हैं।

अणिट्ठवयणेहिं सप्पमाणा "सुट्ठ कयं जं मउत्ति पावो" तुट्ठेणं जणेणं हम्ममाणा लज्जावणका च होंति सयणस्स वि य दीहकालं। —पण्ह. आ. ३, सु. ७३-७५

उसके वाद भी अनिष्ट वचनों से उनकी निन्दा की जाती है, उन्हें धिक्कारा जाता है कि–'अच्छा हुआ जो पापी मर गया अथवा मारा गया।' उसकी मृत्यु से सन्तुष्ट हुए लोग उसकी निन्दा करते हैं। इस प्रकार वे पापी चोर अपनी मृत्यु के पश्चात् भी दीर्घकाल तक अपने स्वजनों को लज्जित करते रहते हैं।

३९. तक्कराणं दुग्गइ परंपरा–

मयासंता पुणो परलोगसमावन्ना नरए गच्छंति, निरभिरामे अंगारपलित्तक-कप्प-अच्चत्थ सीयवेदन-अस्साउदिन्न सय य दुक्ख सय समभिदुए।

३९. तस्करों की दुर्गति परंपरा–

(जीवन का अन्त होने पर) चोर परलोक को प्राप्त होकर नरक में उत्पन्न होते हैं। वे नरक निरभिराम हैं अर्थात् वहां कोई भी अच्छाई नहीं है और आग से जलते हुए घर के समान अतीव उष्ण वेदना वाले या अत्यन्त शीत वेदना वाले और (तीव्र) असातावेदनीय कर्म की उदीरणा के कारण सदैव सैकड़ों दुःखों से व्याप्त होते हैं।

तओ वि उव्वट्टिया समाणा, पुणो वि पवज्जंति, तिरियजोणिं तहिं पि निरयोवमं अणुहवेंति वेयणं,

(आयु पूरी करने के पश्चात्) नरक से उद्वर्तन करके अर्थात् निकल कर फिर तिर्यञ्चयोनि में जन्म लेते हैं। वहां भी वे नरक जैसी असातावेदना का अनुभव करते हैं।

ते अणंतकालेणं जइ नाम कहिं वि मणुयभावं लभंति, णेगेहिं णिरयगइगमणतिरिय-भवसयसहस्स-परियट्टेहिं, तत्थ वि य भमंतऽणारिया नीचकुलसमुप्पण्णा, आरियजणेवि लोकवज्झा, तिरिक्खभूया य अकुसला-काम-भोगतिसिया, जहिं निवंधंति निरयवत्तणि-भवप्पवंच-करण पणोल्लि पुणो वि संसारावत्त-णेम-मूले।

उस तिर्यञ्चयोनिक में अनन्त काल भटकने के पश्चात् अनेक वार नरकगति और लाखों वार तिर्यञ्चगति में जन्म-मरण करते-करते यदि मनुष्यभव पा लेते हैं तो वहां पर वे अनार्यों और नीच कुल में उत्पन्न होते हैं कदाचित् आर्यकुल में जन्म मिल गया तो वहां भी लोकबाह्य-बहिष्कृत होते हैं। पशुओं जैसा जीवन-यापन करते हैं, कुशलता से रहित होते हैं अर्थात् विवेकहीन होते हैं, अत्यधिक कामभोगों की तृष्णा वाले और अनेकों वार नरक-भवों में पहले उत्पन्न होने के कुसंस्कारों के कारण नरकगति में उत्पन्न होने योग्य पापकर्म करने की प्रवृत्ति वाले होते हैं। जिससे संसारचक्र में परिभ्रमण कराने वाले अशुभ कर्मों का वन्ध करते हैं।

धम्म-सुइ-विवज्जिया अणज्जा कूरा मिच्छत्त-सुइपवन्ना य होंति, एगंतदंडरुइणो,

वे धर्मशास्त्र के श्रवण से वंचित रहते हैं, वे अनार्य-शिष्टजनोचित आचार-विचार से रहित क्रूर नृशंस-निर्दय मिथ्यात्व के पोषक शास्त्रों को अंगीकार करते हैं। एकान्ततः हिंसा में ही उनकी रुचि होती है।

वेढेंता कोसीकाकारकीडोव्व अप्पगं अट्ठ कम्मतंतुघण-बंधणेणं। —पण्ह. आ. ३, सु. ७६

इस प्रकार रेशम के कीड़े के समान वे अष्टकर्म रूपी तन्तुओं से अपनी आत्मा को प्रगाढ़ वन्धनों से जकड़ लेते हैं और अनन्त काल तक इस प्रकार के संसार सागर में ही परिभ्रमण करते रहते हैं।

४०. संसार सागरस्स सरूवं–

एवं नरग-तिरिय-नर-अमर-गमण-पेरंत-चक्कवालं,

जम्म-जरा-मरण-करण-गंभीर-दुक्ख पक्खुभिय-पउर-सलिलं, संजोग-विओग-वीची,

चिंता-पसंग-पसरिय,

वह-बंध-महल्ल-विपुलकल्लोलं,

कलुण-विलविय लोभ-कल-कलिंत-बोल-बहुलं

अवमाणण फेणं।

तिव्व-खिंसण-पुलंपुल-प्पभूय-रोग-वेयण-पराभव-विणिवाय-फरुस धरिसण-समावडिय कठिणकम्म- पत्थरतरंग रंगंत-निच्चमच्चुभय-तोयपट्ठं

कसाय-पायाल-कलस-संकुलं,

भवसयसहस्स जलसंचयं,

अणंतं उव्वेयणयं अणोरपारं महब्भयं भयंकरं पइभयं,

अपरिमिय-महिच्छ-कलुसमइ-वाउवेग-उद्धम्ममाणं आसापिवास-पायाल-कामरइ-राग-दोस बंधण-बहुविह-संकप्प-विपुल-दगरथ रयंधकारं।

मोहमहावत्त-भोगभममाण-गुप्पमाणुच्छलंत-बहुगब्भवास-पच्चोणियत्त-पाणियं, पधाविय-वसण-समावन्न-रुन्न-चंड-मारुय-समाहया-ऽमणुन्नवीची वाकुलिय-भग्ग-फुट्टंत-निट्ठ-कल्लोल संकुलजलं,

पमाद-वहुचंड-दुट्ठसावय-समाहय-उद्धायमाणग-पूर-घोर विद्धंसणत्थ-बहुलं,

अण्णाण-भमंत-मच्छपरिहत्थं,

अनिहुतिंदिय-महामगर-तुरिय-चरिय-खोखुब्भमाण-संताव-निचय-चलंत-चवलचंचल-अत्ताण-असरण पुव्वकयकम्म-संचयोदिन्नवज्ज-वेइज्जमाण-दुहसय-विपाक-धुन्नंत-जल-समूहं,

४०. संसार सागर का स्वरूप–

इस प्रकार नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव गति में गमनागमन करना जिसकी बाह्य परिधि है।

जन्म, जरा और मरण के कारण होने वाला गंभीर दुःख ही उसका अत्यन्त क्षुब्ध जल है। उसमें संयोग और वियोग रूपी लहरें उठती रहती हैं।

सतत-निरन्तर चिन्ता ही उसका प्रसार-फैलाव है।

वध और बन्धन ही उसमें लम्बी लम्बी ऊंची एवं विस्तीर्ण तरंगें हैं।

उसमें करुणाजनक विलाप तथा लोभ की कलकलाहट की ध्वनि की प्रचुरता है।

अवमानना या तिरस्कार रूपी फेन से व्याप्त है।

तीव्र निन्दा, पुनः पुनः उत्पन्न होने वाले रोग, वेदना तिरस्कार, पराभव, अधःपतन, कठोर झिड़कियां जिसके कारण प्राप्त होती है, ऐसे कठोर ज्ञानावरणीय आदि कर्म-रूपी पाषाणों से उठी हुई चंचल तरंगों के समान सदैव बना रहने वाला मृत्यु का भय उस संसार समुद्र के जल का तल है।

कषायरूपी पाताल-कलशों से व्याप्त है।

लाखों भवों की परम्परा ही उसकी विशाल जलराशि है।

वह अनन्त है, उसका कहीं ओर-छोर दृष्टिगोचर नहीं होता है वह उद्वेग उत्पन्न करने वाला और तटरहित होने से अपार है। दुस्तर होने के कारण महान् भय रूप है, भय उत्पन्न करने वाला है, उसमें प्रत्येक प्राणी को एक दूसरे के द्वारा उत्पन्न होने वाला भय बना रहता है।

जिनकी कहीं कोई सीमा नहीं है, ऐसी विपुल कामनाओं और कलुषित बुद्धि रूपी पवन आंधी के प्रचण्ड वेग के कारण उत्पन्न तथा आशा और पिपासा रूप पाताल समुद्रतल से काम, रति, राग और द्वेष के बंधन के कारण उत्पन्न विविध प्रकार के संकल्परूपी जल कणों की प्रचूरता से वह अंधकारमय हो रहा है।

संसार सागर के जल में प्राणी मोहरूपी भंवरों में भोगरूपी गोलाकार चक्कर लगा रहे हैं, व्याकुल होकर उछल रहे हैं तथा बहुत से गर्भ भीतर के हिस्से में फंसने के कारण ऊपर उछल कर नीचे गिर रहे हैं। इस संसार सागर में इधर-उधर दौड़धाम करते हुए, व्यसनों से ग्रस्त प्राणियों के रुदनरूपी प्रचण्ड पवन से परस्पर टकराती हुई, अमनोज्ञ लहरों से व्याकुल तथा तरंगों से फूटता हुआ एवं चंचल कल्लोलों से व्याप्त जल है।

वह प्रमाद रूपी अत्यन्त प्रचण्ड एवं दुष्ट श्वापदों हिंसक जन्तुओं द्वारा सताये गये इधर-उधर घूमते हुए प्राणियों के समूह का विध्वंस करने वाले घोर अनर्थों से परिपूर्ण है।

उनमें अज्ञान रूपी भयंकर मच्छ घूमते रहते हैं।

अनुपशान्त इन्द्रियों वाले, जीवरूप महामगरों की नयी-नयी उत्पन्न होने वाली चेष्टाओं से वह अत्यन्त क्षुब्ध हो रहा है, उसमें नाना प्रकार के सन्ताप विद्यमान हैं, ऐसा प्राणियों के द्वारा पूर्वसंचित एवं पापकर्मों के उदय से प्राप्त होने वाला तथा भोगा जाने वाला फल रूपी घूमता हुआ चक्कर खाता हुआ जल-समूह है, जो बिजली के समान अत्यन्त चंचल बना रहता है तथा त्राण एवं शरण से रहित है।

इड्ढि-रस-सायगारवोहारगहिय-कम्मपडिबद्ध-सत्त-कड्ढिज्जमाण-निरयतल-हुत्तसन्न-विसन्नबहुलं,

संसार-सागर में ऋद्धिगारव रसगारव और सातागारव रूपी अपहार-जलचर जन्तुविशेष द्वारा पकड़े हुए एवं कर्मबन्ध से जकड़े हुए प्राणी जब नरक रूप पाताल के सम्मुख पहुंचते हैं तो अवसन्न खेदखिन्न और विषण्ण-विषादयुक्त होते हैं ऐसे प्राणियों की बहुलता वाला है।

अरइ-रइ-भय-विसाय-सोग-मिच्छत्त-सेलसंकडं,

वह अरति, रति, भय, दीनता, शोक तथा मिथ्यात्व रूपी पर्वतों से व्याप्त है।

अणाइ-संताण-कम्मबंधण-किलेस-चिक्खिल्ल-सुदुत्तारं,

अनादि सन्तान-परम्परा वाले कर्मबंधन एवं राग द्वेष आदि क्लेश रूपी कीचड़ के कारण उस संसार सागर को पार करना अत्यन्त कठिन है।

अमर-नर-तिरिय-निरयगइगमण-कुडिल-परियत्तविपुल वेलं,

जैसे-समुद्र में ज्वार आते हैं उसी प्रकार संसार समुद्र में देवगति, मनुष्यगति, तिर्यञ्चगति और नरकगति में गमनागमन रूप कुटिल परिवर्तनों से युक्त विस्तीर्ण वेला-ज्वार आते रहते हैं।

हिंसालिय-अदत्तादाण-मेहुण-परिग्गहारंभ-करण-कारावणाणुमोदण-अट्ठविह-अणिट्ठ-कम्म पिंडित-गुरुभारक्कंत-दुग्गजलोघदूर-निब्बोलिज्जमाण- उम्मग्ग-निमग्ग-दुल्लभतलं,

हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन और परिग्रह रूप आरम्भ के करने, कराने और अनुमोदना करने से संचित ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के गुरुतर भार से दबे हुए तथा व्यसन रूपी जलप्रवाह द्वारा दूर फैंके गये प्राणियों के लिए इस संसार सागर का तल पाना अत्यन्त कठिन है।

सारीर-मणोमयाणि दुक्खाणि उप्पियंता सायस्स य परितावणमयं, उब्बुड-निब्बुडं करेंता,
चउरंत महंतमणवयग्गं, रूद्द संसार सागरं

इसमें प्राणी शारीरिक और मानसिक दुःखों का अनुभव करते-रहते हैं। संसार सम्बन्धी सुख-दुख से उत्पन्न होने वाले परिताप के कारण वे कभी ऊपर उठने और कभी डूबने का प्रयत्न करते रहते हैं अर्थात् आन्तरिक सन्ताप से प्रेरित होकर प्राणी ऊर्ध्व अधोगति में आने-जाने की चेष्टाओं में संलग्न रहते हैं। समुद्र के चारों दिशाओं में विस्तृत होने के समान यह संसार सागर चार दिशा रूप चार गतियों के कारण विशाल है। यह अन्तहीन और विस्तृत है।

अट्ठियं अणालंबणम-पइट्ठाणमप्पमेयचुलसीइ जोणिसयसहस्स गुविलं, अणालोकमंधकारं अणंतकालं निच्चं, उत्तत्थ-सुण्ण भव-सण्णसंपउत्ता संसारसागरं वसंति उव्विग्गवासवसहिं

जो जीव असंयमी है, उनके लिए यहां कोई आलम्बन नहीं है, कोई आधार नहीं है, यह अप्रमेय है-छद्मस्थ जीवों के ज्ञान से अगोचर है, उसे मापा नहीं जा सकता। चौरासी लाख जीवयोनियों से व्याप्त है। यहां अज्ञानान्धकार छाया रहता है और यह अनन्तकाल तक स्थायी है। यह संसार सागर त्रस्त, अज्ञानी और भयग्रस्त उद्वेगप्राप्त-घबराये हुए दुखी प्राणियों का निवास स्थान है।

जहिं आउयं निबंधंति पावकम्मकारी वंधवजण-सयण-मित्तपरिवज्जिया अणिट्ठा भवंति,

इस संसार में पापकर्मकारी प्राणी जहां जिस ग्राम कुल आदि की आयु बांधते हैं वहीं पर वे बन्धु-बान्धवों-स्वजनों और मित्रजनों से परिवर्जित–रहित होते हैं, वे सभी के लिए अनिष्टकारी होते हैं।

अणादेज्ज-दुव्विणीया-कुठाणासण कुसेज्ज कुभोयणा असुइणो कुसंघयण-कुप्पमाण कुसंठिया कुरूवा।

उनके वचनों को कोई ग्राह्य आदेय नहीं मानता और वे दुर्विनीत दुराचारी होते हैं। उन्हें रहने को खराब स्थान, बैठने को खराब आसन, सोने को खराब शय्या और खाने को खराब भोजन मिलता है। वे अशुचि अपवित्र या गंदे रहते हैं अथवा अश्रुति-शास्त्रज्ञान से विहीन होते हैं। उनका संहनन खराब होता है, शरीर प्रमाणोपेत नहीं होता-शरीर का कोई भाग उचित से अधिक छोटा अथवा बड़ा होता है। उनके शरीर की आकृति बेडौल होती है, वे कुरूप होते हैं।

बहुकोह-माण-माया-लोभ-बहुमोहा,

उनमें क्रोध, मान, माया और लोभ तीव्र होता है और मोह-आसक्ति की तीव्रता होती है।

धम्मसन्न-सम्मत्त-परिब्भट्ठा,

उनमें धर्मसंज्ञा-धार्मिक समझ-बूझ नहीं होती है। वे सम्यग्दर्शन से रहित होते हैं।

दारिद्दोवद्दवाभिभूया,

उन्हें दरिद्रता का कष्ट सदा सताता रहता है।

निच्चं परकम्मकारिणो,

वे सदा परकर्मकारी-दूसरों के अधीन रह कर काम करते हैं।

जीवणत्थरहिया किविणा परपिंडतक्कगा दुक्खलद्धाहारा, अरस-विरस-तुच्छकय कुच्छिपूरा,

साधारण जीवन बिताने योग्य साधनों से भी रहित होते हैं। कृपण-रंक-दीन-दरिद्र रहते हैं। दूसरों के द्वारा दिये जाने वाले पिण्ड-आहार की तलाश में रहते हैं। कठिनाई से दुःखपूर्वक आहार प्राप्त करते हैं। किसी प्रकार रूखे-सूखे नीरस एवं निस्सार भोजन से पेट भरते हैं।

परस्स पेच्छंता रिद्धि-सक्कार-भोयण-विसेससमुदय विधिं निंदंता अप्पकं कयंतं च परिवयंता।

दूसरों का वैभव, सत्कार, सम्मान, भोजन, वस्त्र आदि समुदय-अभ्युदय देखकर वे अपनी निन्दा करते हैं—अपने दुर्भाग्य को कोसते रहते हैं। अपनी तकदीर को रोते हैं।

इह य पुरेकडाइं कम्माइं पावगाइं विमणसो सोएण डज्झमाणा परिभूया होंति।

इस भव में या पूर्वभव में किये पाप-कर्मों की निन्दा करते हैं। उदास मन रह कर शोक की आग में जलते हुए लज्जित-तिरस्कृत होते हैं।

सत्तपरिवज्जिया य छोभा सिप्पकला-समयसत्थ परिवज्जिया,

साथ ही वे सत्वहीन क्षोभग्रस्त तथा चित्रकला आदि शिल्प के ज्ञान से रहित, विद्याओं से शून्य एवं सिद्धान्त शास्त्र के ज्ञान से शून्य होते हैं।

जहा जायपसुभूया अवियत्ता,

यथाजात अज्ञान पशु के समान जड़ बुद्धि वाले अविश्वसनीय या अप्रतीति उत्पन्न करने वाले होते हैं।

णिच्चं नीयकम्मोपजीविणो, लोय कुच्छणिज्जा, मोघमणोरहा निरासबहुला,

सदा नीच कृत्य करके अपनी आजीविका चलाते हैं, लोकनिन्दित, असफल मनोरथ वाले, निराशा से ग्रस्त होते हैं।

आसापासपडिबद्धपाणा, अत्थोपायाण-कामसोक्खे य लोयसारे होंति अफलवंतका य।

अदत्तादान का पाप करने वालों के प्राण सदैव अनेक प्रकार की आशाओं-कामनाओं-तृष्णाओं के पाश में वंधे रहते हैं, लोक में सारभूत अनुभव किये जाने वाले अथवा माने जाने वाले अर्थोपार्जन एवं कामभोगों सम्बन्धी सुख के लिए अनुकूल या प्रवल प्रयत्न करने पर भी उन्हें सफलता प्राप्त नहीं होती।

सुट्ठा वि य उज्जमंता तद्दिवसुज्जुत्त-कम्मकय-दुक्खसंठविय-सित्थपिंडसंचयपरा,

प्रतिदिन उद्यम करने पर भी, कड़ा श्रम करने पर भी उन्हें वड़ी कठिनाई से सिक्थपिण्ड-इधर-उधर विखरा फेंका झूठा भोजन ही नसीब होता है।

पक्खीण-दव्वसारा,

वे प्रक्षीणद्रव्यसार होते हैं अर्थात् कदाचित् कोई उत्तम द्रव्य मिल जाए तो वह भी नष्ट हो जाता है।

निच्चं अधुवधण-धन्न कोस परिभोग-विवज्जिया,

अस्थिर, धन, धान्य और कोश के परिभोग से वे सदैव वंचित रहते हैं।

रहिय-काम-भोग-परिभोग-सव्वसोक्खा,

काम शब्द और रूप तथा भोग गन्ध स्पर्श और रस के भोगोपभोग के सेवन से—उनसे प्राप्त होने वाले समस्त सुख से भी वंचित रहते हैं।

परसिरि भोगोवभोगनिस्साण-मग्गण-परायणा वरागा अकामिकाए विणेंति दुक्खं,

परायी लक्ष्मी के भोगोपभोग को अपने अधीन वनाने के प्रयास में तत्पर रहते हुए भी वे वेचारे दरिद्र न चाहते हुए भी केवल दुख के ही भागी होते हैं।

णेव सुहं णेव निव्वुइं उवलभंति, अच्चंत विपुल दुक्खसय-संपलित्ता, परस्स दव्वेहिं जे अविरया।

—पण्ह. आ. ३, सु. ७७-७८ (क)

उन्हें न तो सुख नसीव होता है, न शान्ति, मानसिक स्वस्थता या सन्तुष्टि मिलती है। इस प्रकार जो पराये द्रव्यों पदार्थों से विरत नहीं हुए हैं अर्थात् जिन्होंने अदत्तादान का परित्याग नहीं किया है, वे अत्यन्त एवं विपुल सैकड़ों दुखों की आग में जलते रहते हैं।

४१. अदिन्नादाण फलं–

एसो सो अदिन्नादाणस्स फलविवागो इहलोइओ परलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो दारुणो कक्कसो असाओ वाससहस्सेहिं मुच्चइ, न य अवेदयित्ता अत्थि उ मोक्खो त्ति,

एवमाहंसु नायकुलनंदणो महप्पा जिणो उ वीरवरनामधेज्जो कहेसी य अदिन्नादाणस्स फलविवागं,

–पण्ह. आ. ३, सु. ७८ (ख) ७९ (क)

४२. अदिन्नादाणस्स उवसंहारो–

एयं तं तइयं पि अदिन्नादाणं हर-दह-मरण-भय-कलुस-तासण-परसंतिग-भेज्ज-लोभ-मूलं एवं जाव चिरपरिगयमणुगयं दुरंतं।

तइयं अहम्मदारं समत्तं, त्ति बेमि। *–पण्ह. आ. ३, सु. ७९ (ख)*

४३. अबंभ सरूवं–

जंबू ! अबंभं च चउत्थं,

सदेवमणुयासुरस्स लोयस्स पत्थणिज्जं पंक-पणय-पास-जालभूयं,

४१. अदत्तादान का फल–

अदत्तादान का यह फलविपाक है अर्थात् अदत्तादान रूप पापकृत्य का उदय में आया विपाक परिणाम है। यह इहलोक-परलोक में सुख से रहित है और दुःखों की प्रचुरता वाला है। अत्यन्त भयानक है। अतीव प्रगाढ़ कर्मरूपी रज वाला है। बड़ा ही दारुण है, कर्कश कठोर है, असातामय है और हजारों वर्षों में इससे पिण्ड छूटता है, किन्तु इसे भोगे विना छुटकारा नहीं मिलता।

इस प्रकार ज्ञातकुलनन्दन, महान्-आत्मा वीरवर (महावीर) नामक जिनेश्वर ने अदत्तादान नामक इस तीसरे (आश्रव द्वार के) फलविपाक का प्रतिपादन किया है।

४२. अदत्तादान का उपसंहार–

यह अदत्तादान परधन, अपहरण, दहन, मृत्यु भय, मलिनता, त्रास, रौद्रध्यान एवं लोभ का मूल है, इस प्रकार यह यावत् चिरकाल से प्राणियों के साथ लगा हुआ है, इसका अन्त कठिनाई से होता है।

इस प्रकार यह तीसरे अधर्म द्वार अदत्तादान का वर्णन है, ऐसा मैं कहता हूँ।

४३. अब्रह्मचर्य का स्वरूप–

हे जम्बू ! चौथा आश्रवद्वार अब्रह्मचर्य है।

यह अब्रह्मचर्य देवों, मानवों और असुरों सहित समस्त लोक के प्राणियों द्वारा प्रार्थनीय है–संसार के समग्र प्राणी इसकी अभिलाषा करते हैं। यह प्राणियों को फंसाने वाले दल-दल के समान है, इसके सम्पर्क से जीव उसी प्रकार फिसल जाते हैं जैसे काई के संसर्ग से फिसल जाते हैं। यह संसार के प्राणियों को बांधने के लिये पाश के समान है और फंसाने के लिए जाल के सदृश है।

स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसक वेद इसका चिन्ह है।

यह तप, संयम और ब्रह्मचर्य के लिए विघ्नरूप है।

यह सदाचार-सम्यक्चारित्र का विनाशक और प्रमाद का मूल है।

कायरों सत्वहीन प्राणियों और कापुरुषों-निन्दित-निम्नवर्ग के पुरुषों (जीवों) द्वारा इसका सेवन किया जाता है।

यह सज्जनों और संयमीजनों द्वारा वर्जनीय है।

ऊर्ध्व, अधो व तिर्यक्लोक इस प्रकार तीनों लोकों में इसकी अवस्थिति है।

जरा, मरण, रोग और शोक का कारण है।

वध, बन्ध और प्राणनाश होने पर भी इसका अन्त नहीं आता है।

यह दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय का मूल कारण है।

[illegible] परिचित है और [illegible] में प्राणियों के [illegible] दुरन्त है अर्थात् कठिन साधना से ही इसका अन्त आता है। यह चौथा अधर्मद्वार है।

४४. अब्रह्मचर्य के पर्यायवाची नाम–

[illegible]

१. अबंभं, २. मेहुणं, ३. चरंतं, ४. संसग्गि, ५. सेवणाहिगारो, ६. संकप्पो, ७. बाहणापयाणं, ८. दप्पो, ९. मोहो, १०. मणसंखोभो, ११. अणिग्गहो, १२. विग्गहो, १३. विघाओ, १४. विभंगो, १५. विब्भमो, १६. अहम्मो, १७. असीलया, १८. गामधम्मतित्ती, १९. रई, २०. रागचिंता, २१. काम-भोग-मारो, २२. वेरं, २३. रहस्सं, २४. गुज्झं, २५. बहुमाणो, २६. बंभेचरविग्घो, २७. वावत्ति, २८. विराहणा, २९. पसंगो, ३०. कामगुणो त्ति वि य।

१. अब्रह्म-निन्दित प्रवृत्ति या अशुभ आचरण, २. मैथुन-स्त्री-पुरुष संयोगज कृत्य, ३. चरंत-समस्त संसारी प्राणियों में व्याप्त, ४. संसर्गि-स्त्री पुरुष के संसर्ग से होने वाला, ५. सेवनाधिकार-चोरी आदि पापकर्मों के सेवन में लगाने वाला, ६. संकल्पी-कुसंकल्प विकल्पों का कारण, ७. पद-बाधक-संयम का बाधक, ८. दर्प-उन्मत्तता का निमित्त, ९. मोह-हिताहित के विवेक का नाशक और मूढ़ता अज्ञान का कारण, १०. मन संक्षोभ-मन में क्षोभ उद्वेग का उत्पादक, ११. अनिग्रह–स्वच्छंद वृत्ति-प्रवृत्ति से उत्पन्न, १२. विग्रह-कलह-क्लेश का उत्पादक, १३. विघात-आत्मगुणों और विश्वास का घातक, १४. विभंग-संयम को भंग करने वाला, १५. विभ्रम-भ्रांति मिथ्या धारणा का जनक, १६. अधर्म-पाप का कारण, १७. अशीलता-सदाचार विरोधी, १८. ग्रामधर्मतृप्ति-इन्द्रियों के विषयों की गवेषणा करने वाला, १९. रति-सुरत-संभोग का कारण, २०. रागचिन्ता-स्त्री शृंगार, हाव-भाव का अभिलाषी, २१. कामभोगमार-कामभोग जन्य मृत्यु का कारण, २२. वैर-विरोध का हेतु, २३. रहस्य-एकान्त में किया जाने वाला कृत्य, २४. गुह्य–लुक-छिपकर किया जाने वाला कार्य, २५ बहुमान– कामीजनों द्वारा सम्मानित, २६. ब्रह्मचर्यविघ्न–ब्रह्मचर्य पालन में विघ्नकारी, २७. व्यापत्ति-आत्म गुणों का घातक, २८. विराधना-सम्यक्चारित्र का विघातक, २९. प्रसंग-आसक्ति का अवसर, ३०. कामगुण-कामवासना का कर्म।

तस्स एयाणि एवमादीणि नामधेज्जाणि होंति तीसं।

—पण्ह. आ. ४, सु. ८१

अब्रह्मचर्य के इन तीस नामों के अलावा इसी प्रकार के और दूसरे भी नाम होते हैं।

४५. अबंभसेवगा देव-मणुय-तिरिक्खा–

तं च पुण निसेवंति सुरगणा स-अच्छरा मोहमोहियमई–

१. असुर, २. भुयग, ३. गरुल, ४. विज्जु, ५. जलण, ६. दीव, ७. उदही, ८. दिसि, ९. पवण, १०. थणिया,

१. अणवंनि, २. पणवंनि य, ३. इसिवाई य, ४. भूयवाइ य, ५. कंदि य, ६. महाकंदि य, ७. कूहंड, ८. पयंगदेवा।

१. पिसाय, २. भूय, ३. जक्ख, ४. रक्खस, ५. किन्नर, ६. किंपुरिस, ७. महोरग, ८. गंधव्वा।

तिरिय-जोइय-विमाणवासि-मणुयगणा।

जलयर-थलयर-खहयरा य।

मोहपडिबद्धचित्ता, अवितण्हा काम-भोगतिसिया, तण्हाए बलवईए महईए समभिभूया गढिया य अइमुच्छिया य अबंभे उस्सण्णा, तामसेण भावेण अणुम्मुक्का,

४५. अब्रह्मचर्य का सेवन करने वाले देव, मनुष्य और तिर्यञ्च–

उस अब्रह्म नामक पापाश्रव का मोह के उदय से मोहित मति वाले–

१. असुरकुमार, २. भुजग-नागकुमार, ३. गरुड़कुमार–सुपर्णकुमार, ४. विद्युत्कुमार ५. जलन-अग्निकुमार ६. द्वीपकुमार, ७. उदधिकुमार, ८. दिशाकुमार, ९. पवनकुमार तथा १०. स्तनित कुमार, ये दस प्रकार के भवनवासी देव–

१. अणपन्निक २. पणपन्निक, ३ ऋषिवादिक, ४. भूतवादिक, ५. क्रन्दित, ६. महाक्रन्दित, ७. कूष्माण्ड और ८. पतंग देव, ये आठ व्यन्तर जाति के देव तथा–

१. पिशाच, २. भूत, ३. यक्ष, ४. राक्षस, ५. किन्नर, ६. किम्पुरुष, ७. महोरग और ८. गन्धर्व। ये आठ प्रकार के मुख्य व्यन्तर देव अपनी अप्सराओं, देवांगनाओं के साथ एवं

इनके अतिरिक्त मध्य लोक में निवास करने वाले ज्योतिष्क देव, तथा विमानवासी वैमानिकदेव एवं मनुष्यगण,

तथा जलचर, स्थलचर एवं खेचर (पक्षी) ये अब्रह्म का सेवन करते हैं।

जिनका चित्त मोह से ग्रस्त हो गया है, जिनकी प्राप्त कामभोग सम्बन्धी तृष्णा का अन्त नहीं हुआ है, जो अप्राप्त कामभोगों के लिए आतुर हैं, तीव्र एवं बलवती तृष्णा ने जिनके मानस को प्रबल काम-लालसा से पराजित कर दिया है, जो विषयों में गृद्ध अत्यन्त आसक्त एवं अतीव मूर्च्छित हैं। जो अब्रह्म के कीचड़ में फंसे हुए हैं और जो तामसभाव-अज्ञान रूप जड़ता से मुक्त नहीं हुए हैं, ऐसे देव, मनुष्य, और तिर्यञ्च अन्योन्य परस्पर नर-नारी के रूप में

दंसण-चरित्तमोहस्स पंजरमिव करेंति अन्नोऽन्नं सेवमाणा।

–पण्ह. आ. ४, सु. ८२

अब्रह्म (मैथुन) का सेवन करते हुए अपनी आत्मा को दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्म के पिंजरे में डालते हैं अर्थात् अपने आप को मोहनीय कर्म के बन्धन से ग्रस्त करते हैं।

४६. चक्कवट्टिस्स भोगाभिलासा–

भुज्जो असुर-सुर-तिरिय-मणुअ-भोग-रइ-विहर-संपउत्ता य चक्कवट्टी सुर-नरवइ सक्कया सुरवरुव्व देवलोए, भरह-णग-णगर-णिगम-जणवय-पुरवर-दोणमुह-खेड-कब्बड-मडंब-संबाह-पट्टणसहस्समंडियं थिमियमेयणीयं एगच्छत्तं ससागरं भुंजिऊण वसुहं, नरसीहा नरवई नरिंदा नरवसभा मरुयवसभकप्पा अब्भहियं रायतेयलच्छीए दिप्पमाणा सोमा रायवंसतिलका।

रवि-ससि-संखवर-चक्क-सोत्थिय-पडाग-जव-मच्छ-कुम्म-रहवर-भग-भवण-विमाण-तुरय-तोरण-गोपुर-मणि-रयण-नंदियावत्त-मुसल-णंगल-सुरइयवरकप्परुक्ख मिगवइ-भद्दासण-सुरुचि-थूभ वरमउड-सरियं-कुंडल-कुंजर-वरवसभ-दीव-मंदर गरुल-ज्झय-इंदकेउ-दप्पण-अट्ठावय-चाव-बाण-नक्खत्त-मेह-मेहल-वीणा-जुग-छत्त-दाम-दामिणी-कमंडलु-कमल-घंटा वरपोत-सूइ-सागर कुमुदागर-मगर-हार-गागर-नेउर-णग-णगर-वइर-किन्नर-मयूर-वररायहंस-सारस-चकोर चक्कवागमिहुण-चामर-खेडग-पव्वीसग-विपंचि-वरतालियंट-सिरियाभिसेय मेइणि खग्गंकुस-विमलकलस-भिंगार-वद्धमाणग-पसत्थ-उत्तमविभत्त-वरपुरिसलक्खणधरा।

४६. चक्रवर्ती की भोगाभिलाषा–

इसके अतिरिक्त असुरों, सुरों, तिर्यञ्चों और मनुष्यों सम्बन्धी भोगों में रतिपूर्वक विविध प्रकार की कामक्रीड़ाओं में प्रवृत्त, सुरेन्द्रों और नरेन्द्रों द्वारा सम्मानित, देवलोक में देवेन्द्र समान तथा भरत क्षेत्र में सहस्रों पर्वतों, नगरों, निगमों, जनपदों श्रेष्ठ नगरों, द्रोणमुखों (जहां जल और स्थलमार्ग-दोनों से जाया जा सके ऐसे स्थानों), खेटों–(धूल के प्राकार वाली बस्तियों) कर्वटों-कस्बों, मंडवों-(जिन के आस-पास दूर तक कोई वस्ती न हो ऐसे स्थानों) संवाहों (छावनियों) पत्तनों–(व्यापार प्रधान नगरियों) से सुशोभित एवं सुरक्षित होने के कारण स्थिर लोगों के निवास योग्य एकच्छत्र-(एक के आधिपत्य) वाले एवं समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का उपभोग करने वाले, मनुष्यों में सिंह के समान शूरवीर, नरपति, नरेन्द्र-मनुष्यों में सर्वाधिक ऐश्वर्यशाली नर-वृषभ (स्वीकार किये उत्तरदायित्व को निभाने में समर्थ) नाग यक्ष आदि देवों से भी सामर्थ्यवान्, वृषभ के समान सामर्थ्यवान्, अत्यधिक राज-तेज रूपी लक्ष्मी वैभव से देदीप्यमान सान्त एवं नीरोग राजवंशों में तिलक के समान श्रेष्ठ हैं।

जो सूर्य, चन्द्र, शंख, चक्र, स्वस्तिक, पताका, यव, मत्स्य, कछुवा, उत्तम रथ, भग, भवन, विमान, अश्व, तोरण, नगरद्वार, मणि रत्न नंदावर्त्त स्वस्तिक, मूसल, हल, सुन्दर कल्पवृक्ष, सिंह की आकृति वाला भद्रासन, सुरुचि (आभूषण) स्तूप, सुन्दर मुकुट, मुक्तावली हार, कुंडल, हाथी, उत्तम वैल, द्वीप मेरु पर्वत गरुड़ के चिह्न वाली ध्वजा, इन्द्रकेतु-इन्द्रमहोत्सव में गाड़ा जाने वाला स्तम्भ, दर्पण, अष्टापद फलक या पट जिस पर चौपड़ आदि खेली जाती है या कैलाश पर्वत, धनुष, वाण, नक्षत्र, मेघ, मेखला-करधनी, वीणा, गाड़ी का जुआ, छत्र, दाम-माला, दामिनी, पैरों तक लटकती माला, कमण्डलु, कमल, घंटा, उत्तम पोत-जहाज, सुई (कर्ण) सागर, कुमुदवन, अथवा कुमुदों से व्याप्त तालाव, मगर, हार, जल कलश, नूपुर-पाजेब, पर्वत, नगर, व्रज्र, किन्नर–देवविशेष या वाद्यविशेष मयूर, उत्तम, राजहंस, सारस, चकोर, चक्रवाक-युगल, चंवर, ढाल, पव्वीसक–एक प्रकार का वाजा, विपंची-सात तारों वाली वीणा, श्रेष्ठ पंखा, लक्ष्मी का अभिषेक, पृथ्वी, तलवार, अंकुश, निर्मल कलश, भृंगार-झारी और वर्धमानक-सिकोरा अथवा प्याला, इन सब श्रेष्ठ पुरुषों के मांगलिक एवं विभिन्न लक्षणों को धारण करने वाले होते हैं।

इनके अथवा बत्तीस हजार श्रेष्ठ मुकुटबद्ध राजाओं द्वारा अनुगत–

बत्तीस हजार श्रेष्ठ युवतियों-महारानियों के चौंसठ हजार नेत्रों के प्रिय होते हैं।

वे चक्रवर्ती की शारीरिक कान्ति वाले, कमल के गर्भ मध्यभाग, चम्पा के फूल, कोरंट की माला और कसौटी पर खींची हुई स्वर्ण रेखा के समान गौर वर्ण वाले,

सुजाय-सव्वंग सुंदरंगा महग्घ वर-पट्टणुग्गय-विचित्तराग-एणि-पेणि-णिम्मिय-दुगुल्लवर-वीणपट्ट-कोसेज्ज सोणी सुत्तक-विभूसियंगा।

अत्यन्त सुन्दर और सुडौल सभी अंगोपांग वाले, बड़े-बड़े पत्तनों में बने हुए विविध रंगों व हिरनी तथा विशिष्ट जाति की हिरनी के चर्म के समान कोमल और बहुमूल्य वल्कल से बने वस्त्रों तथा चीनांशुकों चीन में बने वस्त्रों रेशमी वस्त्रों से तथा कटिसूत्र-करधनी से सुशोभित शरीर वाले होते हैं।

वर-सुरभि-गंधवर चुण्णवास-वरकुसुम-भरिय-सिरया,

वे सुरभिगंध वाले सुन्दर चूर्ण के गंध और उत्तम कुसुमों से युक्त मस्तक वाले,

कप्पिय-छेयायरिय-सुकय-रइयमाल-कडगंगय तुडिय-पवर-भूसण-पिणद्धदेहा,

कुशल कलाचार्यों शिल्पियों द्वारा निपुणतापूर्वक बनाई हुई सुखकर माला, कड़े, अंगद-बाजूबंद तुटिक-अनन्त तथा अन्य उत्तम आभूषणों से विभूषित अंगोपांग वाले होते हैं।

एकावलि-कंठ-सुरइयवच्छा पालंब-पलंब-माण-सुकय-पडउतरिज्ज-मुद्दिया, पिंगलंगुलिया, उज्जल-नेवत्थ-रइय-चेल्लग-विरायमाणा, तेएण दिवाकरोव्व दित्ता सारय-नवत्थणिय-महुर-गंभीर-निद्धघोसा,

वे एकावली हार से सुशोभित कण्ठ वाले, लम्बी लटकती धोती एवं उत्तरीय वस्त्र दुपट्टा पहनने वाले, अंगूठियों से पीली हो रही उंगलियों वाले, उज्ज्वल एवं सुखप्रद वेष-पोशाक से अत्यन्त शोभायमान अपनी तेजस्विता से सूर्य के समान दमकने वाले, शरद् ऋतु के नये मेघ की ध्वनि के समान मधुर गम्भीर एवं स्निग्ध घोष आवाज वाले होते हैं।

उप्पण्ण-समत्त-रयण-चक्करयणप्पहाणा, नव निहिवइणो, समिद्धकोसा चाउरंता,

वे उत्पन्न चौदह रत्नों-जिनमें चक्ररत्न प्रधान है और नौ निधियों के अधिपति, समृद्ध कोषागार चातुरन्त-तीन दिशाओं में समुद्र और एक दिशा में हिमवान् पर्वत पर्यन्त राज्य सीमा वाले,

चाउराहिं सेणाहिं समणुजाइज्जमाणमग्गा, तुरगवई, रहवई, नरवई, विपुलकुल वीसुयजसा, सारय-ससि-सकल-सोमवयणा, सूंरा तेलोक्क-निग्गय-पभावलद्ध-सद्दा, समत्तभरहाहिवा नरिंदा, ससेल-वण-काणणं च हिमवंत सागरंतं धीरा, भुत्तूण भरहवासं जियसत्तू, पवर-राय-सीहा, पुव्वकयतवप्पभावा, निविट्ठसंचिय सुहा अणेगवाससयमायुवंतो भज्जाहि य जणवयप्पहाणहिं लालियंता, अतुल सद्द-फरिस-रस-रूवं गंधे य अणुभवेत्ता तेवि उवणमंति विवित्ता कामाणं। —पण्ह. आ. ४, सु. ८३-८५

अनुगमन करती चतुरंगिणी सेना-गजसेना, अश्वसेना, रथसेना, एवं पदाति सेना तथा अश्वों, हाथियों, रथों एवं मनुष्यों के अधिपति, उच्च कुल वंशवान् तथा विश्रुत दूर-दूर तक फैले यश वाले शरद् ऋतु के पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाले, शूरवीर, तीनों लोकों में विश्रुत प्रभाव एवं जय जयकार किये जाते, सम्पूर्ण-छह खण्ड वाले, भरत क्षेत्र के अधिपति, धीर, समस्त शत्रुओं के विजेता, बड़े-बड़े राजाओं में सिंह के समान, पूर्वकाल में किए तप के प्रभाव से सम्पन्न, संचित पुष्ट सुख को भोगने वाले, सैकड़ों वर्षों के आयुष्य वाले एवं नरों में इन्द्र के समान चक्रवर्ती भी पर्वतों, वनों और काननों सहित उत्तर दिशा में हिमवान् नामक वर्षधर पर्वत और शेष तीन दिशाओं में लवणसमुद्र पर्यन्त भरत क्षेत्र के राज्यशासन का उपभोग करके, (विभिन्न) जनपदों में जन्म लेने वाली, उत्तम भार्याओं के साथ अनुपम शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध सम्बन्धी काम भोगों का भोगोपभोग करते हुए भी वे काम-भोगों से तृप्त हुए विना ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

४७. वलदेव-वासुदेवाणं भोग-गिड्ढि—

भुज्जो-भुज्जो वलदेव-वासुदेवा ये पवरपुरिसा महावल-परक्कमा महाधणुवियट्टका महासत्तसागरा दुद्धरा धणुद्धरा नरवसभा राम-केसवा भायरो सपरिसा।

४७. वलदेव-वासुदेवों की भोग-गृद्धि—

इसके अलावा पुरुषों में अत्यन्त श्रेष्ठ महान् वलशाली और महान् पराक्रमी वड़े-वड़े सारंग आदि धनुषों को चढ़ाने वाले, महासत्व के सागर, शत्रुओं द्वारा अपराजेय, धनुर्धारी, मनुष्यों में अग्रगण्य, वृषभ के समान सफलतापूर्वक भार का निर्वाह करने वाले, राम-वलराम और केशव-श्रीकृष्ण-दोनों भाई-भाई अथवा भाइयों सहित एवं विशाल परिवार समेत वलदेव तथा वासुदेव जैसे विशिष्ट ऐश्वर्यशाली भोग भोगने पर भी तृप्त नहीं हो पाते।

वसुदेव-समुद्दविजयमादियदसाराणं पज्जुन्न-पतिव-संव-अनिरुद्ध-निसह-उम्मुय सारणगय-सुमुह-दुम्मुहादीण- जाव-याणं, अद्धुट्ठाणा वि कुमारकोडीणं हिययदयिया,

वे वसुदेव तथा समुद्रविजय आदि दशार्ह-माननीय पुरुषों के तथा प्रद्युम्न प्रति शम्ब, अनिरुद्ध निषध, उल्मुक, सारण, गज, सुमुख, दुर्मुख आदि यादवों और साढ़े तीन करोड़ कुमारों के हृदयों को दयित-प्रिय होते हैं।

देवीए रोहिणीए, देवीए देवकीए य आणंदहिययभावणं-दणकरा,

वे देवी-महारानी रोहिणी के तथा महारानी देवकी के हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाले होते हैं।

सोलस-रायवर-सहस्साणुजायमग्गा,

सोलह हजार मुकुट वद्ध राजा उनके मार्ग का अनुगमन करते हैं।

सोलस-देवीसहस्स-वर-णयण-हिययदइया,

वे सोलह हजार सुनयना महारानियों के हृदय के वल्लभ होते हैं।

णाणामणि कणग - रयण - मोत्तिय - पवाल - धण - धन्न-संचय-रिध्दि-समिद्धकोसा,

उनके भण्डार विविध प्रकार की मणियों, स्वर्ण, रत्न, मोती, मूंगा, धन और धान्य के संचय रूप ऋद्धि से सदा भरपूर रहते हैं।

हय-गय-रह-सहस्ससामी,

वे सहस्रों हाथियों, घोड़ों एवं रथों के अधिपति होते हैं।

गामागर-नगर-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणासम-संबाह-सहस्स-थिमिय-णिव्वुय पमुदियजण-विविहसास-निप्फज्जमाण - मेइणि - सर - सरिय - तलाग - सेल - काणण-आरामुज्जाण मणाभिराम परिमंडियस्स दाहिणड्ढ वेयड्ढगिरि विभत्तस्स लवणजलहि-परिगयस्स छव्विहकाल-गुण कामजुत्तस्स अद्धभरहस्स सामिका।

सहस्रों ग्रामों, आकरों, नगरों, खेटों, कर्वटों, मडम्बों, द्रोणमुखों, पट्टनों, आश्रमों, संवाहों सुरक्षा के लिए निर्मित किलों में निवास करने वाले, स्वस्थ, स्थिर, शान्त और प्रमुदित जनों तथा विविध प्रकार के धान्य उपजाने वाली भूमि, बड़े-बड़े सरोवरों, नदियों, छोटे-छोटे तालावों, पर्वतों, वनों, आरामों, उद्यानों से परिमंडित तथा दक्षिण दिशा की ओर का आधा भाग वैताढ्य नामक पर्वत के कारण विभक्त और तीन तरफ लवणसमुद्र से घिरे हुए दक्षिणार्ध भरत के स्वामी होते हैं। वह दक्षिणार्ध भरत-वलदेव-वासुदेव के समय में छहों प्रकार के कालों अर्थात् छहों ऋतुओं में होने वाले अत्यन्त सुख से युक्त होता है।

धीर-कित्ति-पुरिसा, ओहबला, अइबला, अनिहया, अपराजिय-सत्तु मद्दण-रिपुसहस्स माण-महणा, साणुक्कोसा, अमच्छरी, अचवला, अचंडा मिय-मंजुल-पलावा, हसिय गंभीर-महुर-भणिया, अब्भुवगयवच्छला सरण्णा लक्खण,

वे (बलदेव और वासुदेव) धैर्यवान् और कीर्तिमान होते हैं। ओघवली होते हैं, अतिवलशाली होते हैं, उन्हें कोई आहत-पीड़ित नहीं कर सकता है, वे कभी शत्रुओं द्वारा पराजित नहीं होते, अपितु सहस्रों शत्रुओं का मान-मर्दन करने वाले होते हैं, वे दयालु, मत्सरता से रहित, गुणग्राही, चपलता से रहित, विना कारण कोप न करने वाले, परिमित और मिष्ट भाषण करने वाले, मुस्कान के साथ गंभीर और मधुर वाणी का प्रयोग करने वाले, अभ्युपगत-समक्ष आए व्यक्ति के प्रति वत्सलता रखने वाले तथा शरणागत की रक्षा करने वाले होते हैं।

वंजणगुणोववेया,

उनका समस्त शरीर लक्षणों से, चिन्हों से, तिल मसा आदि व्यंजनों से सम्पन्न होता है।

माणुम्माणपमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंग-सुदरंगा,

मान और उन्मान से प्रमाणोपेत तथा इन्द्रियों एवं अवयवों से प्रतिपूर्ण होने के कारण उनके शरीर के सभी अंगोपांग सुडौल-सुन्दर होते हैं।

ससि सोमागार कंत पियदंसणा,

उनकी आकृति चन्द्रमा के समान सौम्य होती है और वे देखने में अत्यन्त प्रिय एवं मनोहर होते हैं।

अमरिसणा

वे अपराध को सहन नहीं करते अथवा अपने कर्तव्यपालन में प्रमाद नहीं करते।

पयंड-डंडप्पयार-गंभीरदरिसणिज्जा,

वे प्रचण्ड -उग्र दंड का विधान करने वाले अथवा प्रचण्ड सेना के विस्तार वाले एवं देखने में गंभीर मुद्रा वाले होते हैं।

तालद्ध-उव्विद्ध- गरुलकेऊ,

वलदेव की ऊँची ध्वजा ताड़ वृक्ष के चिन्ह से और वासुदेव की ध्वजा गरुड़ के चिन्ह से अंकित होती है।

[illegible]-गज्जंत-दरिय-दप्पिय-मुट्ठिय-चाणूर-मूरगा, रिट्ठ-वसभ-घाइणो, केसरिमुहविप्फाडगा, दरिय-नाग- दप्प-मद्दणा, जमलज्जुण भंजगा, महासउणि-पूतणारिवु कंसमउड-तोडगा, जरासंध माणमहणा।

गर्जते हुए अभिमानियों से भी अभिमानी, मौष्टिक और चाणूर नामक पहलवानों के दर्प को जिन्होंने चूर-चूर कर दिया था, रिष्ट नामक सांड का घात करने वाले, केसरी सिंह के मुख को फाड़ने वाले, अभिमानी (कालीय) नाग के दर्प का मथन करने वाले, यमल अर्जुन को नष्ट करने वाले, महाशकुनि और पूतना नामक विद्याधरियों के शत्रु, कंस के मुकुट को तोड़ देने वाले और जरासंध जैसे प्रतापशाली राजा का मान-मर्दन करने वाले थे।

तेहि य अविरल-सम-सहिय-चंदमंडल-समप्पभेहिं सूरमिरीयकवयं विणिम्मुयंतेहिं सपइडंडेहिं आयवत्तेहिं धरिज्जंतेहिं विरायंता।

वे सघन, एक-सरीखी एवं ऊँची शलाकाओं-ताडियों से निर्मित तथा चन्द्रमण्डल के समान प्रभा-कान्ति वाले, सूर्य की किरणों के समान, किरणों रूपी कवच (समूह) को बिखेरने तथा अनेक प्रतिदंडों से युक्त छत्रों को धारण करने से अतीव शोभायमान होते हैं।

ताहि य पवर-गिर-कुहर-विहरण-समुट्ठियाहिं, निरुवहय-चमर-पच्छिम-सरीर-संजाताहिं अमइल-सेयकमल-विमुकुलुज्जलित-रयतगिरिसिहर-विमल-ससि-कीरण-सरिस-कलहो य निम्मलाहिं, पवणाहय-चवल-चलिय-सललिय-पणच्चिय-वीइ-पसरिय-खीरोदग-पवर-सागरुप्पूरचंचलाहिं माणस-सर-पसर-परिचियावास-विसदवेसाहिं कणग-गिरि-सिहर-संसिताहिं अववायु-प्पाय-चवल-जणिय- सिग्घ वेगाहिं, हंसवधूयाहिं चेव कलिया, नाणा-मणि-कणग महरिह-तवणिज्जुज्जल विचित्तडंडाहिं, सललियाहिं नरवइ-सिरि-समुदयप्पगासण-करीहिं, वरपट्टणुग्गयाहिं समिद्ध रायकुल सेवियाहिं कालागुरु-पवर-कुंदुरुक्क-तुरुक्क-धूव-वस-वास-विसद-गंधुद्धुयाभिरामाहिं चिल्लिकाहिं उभओ पासं पि चामराहिं उक्खिप्पमाणाहिं सुहसीतल-वाय वीइयंगा।

श्रेष्ठ पर्वतों की गुफाओं में विचरण करने वाली चमरी गायों से प्राप्त, नीरोग चमरी गायों के पृष्ठभाग-पूंछ से उत्पन्न, अम्लान-ताजा श्वेत कमल, उज्ज्वल, स्वच्छ रजतगिरि के शिखर एवं निर्मल चन्द्रमा की किरणों के सदृश वर्ण वाले तथा चांदी के समान निर्मल हवा से हिलते हुए, चपलता से चलने वाले, लीलापूर्वक नाचते हुए एवं लहरों के प्रसार तथा सुन्दर क्षीर-सागर के सलिल प्रवाह के समान चंचल, मानसरोवर के विस्तार में परिचित आवास वाली, श्वेत वर्ण वाली, स्वर्णगिरि पर स्थित तथा ऊपर नीचे गमन करने में अन्य चंचल पक्षियों को मात देने वाले वेग से युक्त हंसनियों के समान विविध प्रकार की मणियों के तथा पीतवर्ण तपनीय स्वर्ण तपनीय, स्वर्ण के बने विचित्र दंडों वाले, लालित्य से युक्त और नरपतियों की लक्ष्मी के अभ्युदय को प्रकाशित करने वाले, श्रेष्ठ नगरों में निर्मित और समृद्धिशाली राजकुलों में उपयोग किये जाने वाले तथा काले अगर, उत्तम कुंदरुक्क-चीड़ की लकड़ी एवं तुरुष्क-लोभान की धूप के कारण उत्पन्न होने वाली सुगंध के समूह से सुगंधित, चामरों को जिनके पार्श्व भाग में ढुलाये जाकर सुखद शीतल पवन किया जाता है।

अजिता अजितरहा हल-मूसल-कणग-पाणी, संख-चक्क-गय-सत्ति णंदगधरा,

वे (बलदेव और वासुदेव) अपराजय होते हैं, उनके रथ अपराजित होते हैं तथा बलदेव हाथों में हल, मूसल और बाण धारण करते हैं और वासुदेव पांचजन्य शंख, सुदर्शन चक्र, कौमुदी गदा, शक्ति शस्त्र विशेष और नन्दक नामक खड्ग धारण करते हैं।

पवरुज्जल-सुकय-विमल-कोथूभ-तिरीडधारी,

अतीव उज्ज्वल एवं सुनिर्मित कौस्तुभ मणि और मुकुट को धारण करते हैं।

कुंडल-उज्जोवियाणणा,

कुंडलों की दीप्ति से उनका मुखमण्डल प्रकाशित होता रहता है।

पुंडरीय-णयणा,

उनके नेत्र पुण्डरीक-श्वेत कमल के समान विकसित होते हैं।

एगावलीकंठरइयवच्छा,

उनके स्कन्ध और वक्षस्थल पर एकावली हार शोभित रहता है।

सिरिवच्छसुलंछणा वरजसा,

उनके वक्षस्थल में श्रीवत्स का सुन्दर चिन्ह बना होता है, वे उत्तम यशस्वी होते हैं।

सव्वोउय-सुरभि कुसुम-सुरइय-पलंब सोहंत-वियसंत-चित्तवणमाल-रइयवच्छा,

सर्व ऋतुओं के सौरभमय सुमनों से ग्रथित लम्बी शोभायुक्त एवं विकसित वनमाला से उनका वक्षस्थल शोभायमान रहता है।

अट्ठसयविभत्त-लक्खण-पसत्थ-सुंदर-विराइयंगमंगा,

उनके अंग-उपांग एक सौ आठ मांगलिक तथा सुन्दर लक्षणों-चिन्हों से सुशोभित होते हैं।

मत्त गय वरिंद-ललिय-विक्कम-विलसियगई,

उनकी गति चाल मदोन्मत्त उत्तम गजराज की गति के समान ललित और विलासमय होती है।

कडिसुत्तग नील-पीत-कोसिज्जं-वससा,

उनकी कमर कटिसूत्र-करधनी से शोभित होती है और वे नीले तथा पीले वस्त्रों को धारण करते हैं (बलदेव नीले वर्ण के और वासुदेव पीले वर्ण के वस्त्र पहनते हैं)

पवरदित्त तेया,

उनका शरीर प्रखर तथा देदीप्यमान तेज से दीप्त होता है।

सारय-नवत्थणिय-महुर-गंभीर-णिद्धघोसा,

उनका घोष-आवाज शरत्काल के नवीन मेघ की गर्जना के समान मधुर, गंभीर और स्निग्ध होता है।

नरसीहा सीहविक्कमगई,

वे नरों में सिंह के समान प्रचण्ड पराक्रम के धनी होते हैं। उनकी गति सिंह के समान पराक्रमपूर्ण होती है।

अत्थमिय-पवर-रायसीहा, सोमा बारवइ पुण्ण चंदा पुव्वकयतवप्पभावा, निविट्ठसंचियसुहा अणेग-वाससयमाउवंता,

वे बड़े-बड़े राज-सिंहों को समाप्त कर देने वाले अथवा युद्ध में उनकी जीवन लीला को समाप्त कर देते हैं। फिर भी प्रकृति से सौम्य-शान्त-सात्त्विक होते हैं। वे द्वारवती-द्वारका नगरी में पूर्ण चन्द्रमा के समान प्रिय एवं पूर्वजन्म में किये तपश्चरण के प्रभाव वाले होते हैं। पूर्वसंचित इन्द्रियसुखों के उपभोक्ता और अनेक सौ वर्षों की आयु वाले होते हैं।

भज्जाहि य जणवयप्पहाणाहिं लालियंता अतुल-सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधे अणुभवेत्ता तेवि उवणमंति मरणधम्म अवित्तिया कामाणं।

—पण्ह. आ. ४, सु. ८६

विविध देशोत्पन्न उत्तम पत्नियों के साथ भोग-विलास करते हैं, अनुपम शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्धरूप इन्द्रियविषयों का अनुभव-भोगोपभोग करते हैं, फिर भी वे बलदेव वासुदेव कामभोगों से तृप्त हुए बिना ही कालधर्म को प्राप्त होते हैं।

४८. मंडलीय रायाणं भोगासत्ति–

भुज्जो मंडलियनरवरेंदा सबला सअंतेउरा सपरिसा सपुरोहियाऽऽमच्च-दंडनायक-सेणावइ-मंतनीतिकुसला, नाणामणि-रयण-विपुल-धण-धन्न-संचय-निही समिद्धकोसा, रज्जसिरिं विपुलमणुभवित्ता विक्कोसंता बलेणमत्ता ते वि उवणमंति मरणधम्मं, अवितत्ता कामाणं।

—पण्ह. आ. ४, सु. ८७

४८. मांडलिक राजाओं की भोगासक्ति–

बलदेव और वासुदेव के अतिरिक्त सबल और सैन्यसम्पन्न विशाल अनन्त परिवार एवं परिषदों से संपन्न शान्तिकर्म करने वाले पुरोहितों अमात्यों-मंत्रियों दंडाधिकरियों-दंडनायकों, सेनापतियों, गुप्त मंत्रणा करने वाले एवं नीति में निपुण व्यक्तियों के स्वामी अनेक प्रकार की मणियों रत्नों विपुल धन और धान्य से समृद्ध अपनी विपुल राज्य लक्ष्मी का भोगोपभोग करके, शत्रुओं का पराभव करके अथवा भण्डार के स्वामी होकर अपने बल शक्ति से उन्मत्त रहने वाले माण्डलिक राजा भी कामभोगों से तृप्त नहीं हुए, वे भी अतृप्त रहकर ही कालधर्म मृत्यु को प्राप्त हो गए।

४९. अकम्मभूमि इत्थी-पुरिसाणं भोगासत्ति–

भुज्जो उत्तरकुरु-देवकुरु वणविवर-पादचारिणो नरगणा भोगुत्तमा भोगलक्खणधरा भोगसस्सिरिया पसत्थ-सोम-पडिपुण्णरूवदरिसणिज्जा सुजाय सव्वंग सुंदरंगा,

४९. अकर्मभूमि के स्त्री पुरुषों की भोगासक्ति–

इसी प्रकार देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्रों में वनों में और गुफाओं में पैदल विचरण करने वाले उत्तम भोगसाधनों से सम्पन्न प्रशस्त शारीरिक लक्षणों (स्वस्तिक आदि) युक्त भोग लक्ष्मी से युक्त प्रशस्त मंगलमय सौम्य एवं रूपसम्पन्न होने के कारण दर्शनीय सामुद्रिक शास्त्र के अनुरूप निर्मित सर्वांग सुन्दर अंगों वाले होते हैं।

[illegible]प्पलपत्त-कंतकरचरणकोमलतला,

तलुवे–हथेलियों और पैरों के तलभाग लाल कमल के पत्तों की भांति लालिमायुक्त और कोमल होते हैं।

सुपइट्ठिय-कुम्मचारु चलणा,

पैर–कछुए की पीठ के समान ऊपर उठे हुए सुप्रतिष्ठित होते हैं।

अणुपुव्व सुसंह[illegible] यंगुलीया,

अंगुलियां–अनुक्रम से बड़ी-छोटी, सुसंहत-सघन-छिद्ररहित वाली होती हैं।

[illegible]-तणु-तंब-णिद्ध नखा,

नख–उन्नत उभरे हुए, पतले, रक्तवर्ण और चिकने-चमकदार होते हैं।

[illegible] सुसंठिय-[illegible]गुप्फा,

पैरों के गुल्फ टखने–सुस्थित, सुघड और मांसल होने के कारण दिखाई नहीं देते हैं।

[illegible] कुरुविंद [illegible] अणुपुव्वी जंघा,

पिण्डलियां–हिरणी की जंघा, कुरुविन्द नामक तृण और वृत्त-सूत कातने की तकली के समान क्रमशः वर्तुल एवं स्थूल होती हैं।

[illegible] सुगूढजाणू

[illegible] विक्कम विलासियगई,

[illegible] सुजायगुज्झदेसा,

[illegible]

घुटने–डिब्बे एवं उसके ढक्कन की संधि के समान गूढ होते हैं।

गति–उत्तम हस्ती के समान मस्त एवं धीर गंभीर होती है।

गुह्यदेश–गुप्तांग-जननेन्द्रिय-उत्तम जाति के घोड़े के गुप्तांग के समान सुनिर्मित एवं गुप्त होता है।

गुदाभाग–उत्तम जाति के अश्व के गुदाभाग की तरह मलमूत्र से निर्लेप होता है।

पमुइय-वरतुरग-सीह अइरेग-वट्टिय-कडी,

कटिभाग—कमर का भाग, हृष्ट-पुष्ट एवं श्रेष्ठ अश्व और सिंह की कमर के समान गोल होता हैं।

गंगावत्त-दाहिणावत्त-तरंग-भंगुर-रविकिरण-विकोसायंत-पम्हगंभीर-वियड-नाभी,

नाभि—गंगा नदी के आवर्त्त-भंवर दक्षिणावर्त्त तरंगों के समूह के समान चक्करदार तथा सूर्य की किरणों से विकसित कमल की तरह गंभीर और विशाल होती है।

संहित - सोणंद - मुसल - दप्पण - निगरिय - वर - कणगच्छरू-सरिस-वर-वइर-वलिय-मज्झा,

शरीर का मध्यभाग—त्रिकाष्ठिका-तिपाई, मूसल, दर्पण के हत्थे, शुद्ध किए हुए उत्तम स्वर्ण से निर्मित खड्ग की मूठ एवं श्रेष्ठ वज्र के समान कृश-पतला व गोल होता है।

उज्जुग - सम - सहिय - जच्च - तणु - कसिण - णिद्ध - आदेज्ज-लउह-सूमाल-मउय-रोमराई,

रोमराजि—सीधी, समान, परस्पर सटी हुई स्वभावतः बारीक, कृष्णवर्ण, चिकनी, प्रशस्त-सौभाग्यशाली, पुरुषों के योग्य सुकुमार और सुकोमल होती है।

झस-विहग-सुजात-पीणकुच्छी,

कुक्षि पार्श्वभाग—मत्स्य और विहग-पक्षी जैसी उत्तम रचना वाली और पुष्ट होती हैं।

झसोयरा,

पेट—झषोदर मत्स्य जैसा होता है।

पम्हविगड नाभि,

नाभि—कमल के समान गंभीर होती है।

सन्नय पासा, संगय-पासा, सुंदर-पासा, सुजात-पासा, मित-माइय-पीण-रइय पासा,

पार्श्वभाग—नीचे की ओर झुके हुए होते हैं, अतएव संगत, सुन्दर और सुजात-अपने योग्य गुणों से सम्पन्न होते हैं। वे पार्श्व-प्रमाणोपेत एवं परिपुष्ट होते हैं।

अकरंडुय-कमग-रूयग-निम्मल-सुजाय-निरुवहय देहधारी,

पीठ और बगल की हड्डियां—मांसयुक्त व स्वर्ण के आभूषण के समान निर्मल कान्तियुक्त सुन्दर बनावट वाली और निरुपहत-रोगादि के उपद्रव से रहित होती हैं।

कणग-सिलातल-पसत्थ-समतलउवइय-विच्छिन्न-पिहुल वच्छा,

वक्षस्थल—सोने की शिला के तल के समान प्रशस्त, समतल, उपचित-पुष्ट विस्तीर्ण और विशाल होता है।

जुय-संनिभ-पीण-रइय-पीवर-पउट्ठ-संठिय-सुसिलिट्ठ-

कलाइयां—गाड़ी के जुए के समान पुष्ट मोटी एवं रमणीय होती हैं, तथा—

विसिट्ठ-लट्ठ-सुनिचित-घण-थिर-सुबद्ध-संधी,

अस्थिसन्धियां—अत्यन्त सुडौल, सुगठित, सुन्दर मांसल और नसों से दृढ़ बनी होती हैं।

पुरवर फलिय-बट्ठिय-भुया,

भुजाएँ—नगर के द्वार की आगल के समान लम्बी और गोलाकार होती है।

भूय ईसर-विपुल-भोग-आयाण-फलि-उच्छूढ दीह-बाहू,

बाहू—भुजगेश्वर-शेषनाग के विशाल शरीर के समान और अपने स्थान से पृथक् की हुई आगल के समान लम्बे होते हैं।

रत्त - तलोवइय - मउय - मंसल - सुजाय - लक्खण - पसत्थ अच्छिद्दजाल-पाणी,

हाथ—लाल-लाल हथेलियों वाले, परिपुष्ट कोमल, मांसल, सुन्दर बनावट वाले शुभ लक्षणों से युक्त और निश्छिद्र-छेद रहित होते हैं।

पीवर-सुजाय कोमल-वरंगुली,

अंगुलियां—आपस में सटी हुई श्रेष्ठ कोमल होती हैं।

तंव-तलिण-सुइ-रुइल-निद्ध-नखा,

नख—ताम्रवर्ण-तांबे जैसे वर्ण के लालिमा युक्त पतले स्वच्छ सुन्दर और चिकने होते हैं।

णिद्ध-पाणिलेहा, रवि-ससि-संखवर-चक्क-दिसासोवत्थिय-विभत्त-सुविरइय-पाणिलेहा,

हस्तरेखा—सूर्य, चन्द्र, शंख, उत्तम चक्र, दक्षिणावर्त स्वस्तिक आदि शुभ चिन्हों से सुविरचित और चिकनी होती हैं।

वरमहिस - वराह - सीह - सद्दूलरिसह - नागरवर - पडिपुन्न-विउलखंधा,

कंधे—उत्तम महिष, शूकर, सिंह, व्याघ्र, सांड और गजराज के कंधे के समान परिपूर्ण-पुष्ट होते हैं।

चउरंगुल-सुप्पमाण-कंवूवर-सरिसग्गीवा,

ग्रीवा—गर्दन चार अंगुल परिमित ऊँची एवं शंख जैसी होती है।

अवट्ठिय-सुविभत्त-चित्त-मंसू,

दाढी-मूछें—अवस्थित न घटने वाली और न बढ़ने वाली सदा एक तरीखी तथा सुविभक्त होती है।

उवचिय-मंसल-पसत्थ-सद्दूल-विपुल-हणुया,

ठुड्डी—पुष्ट मांसयुक्त सुन्दर तथा व्याघ्र के समान विस्तीर्ण होती है।

कवोतपरिणामा, सउणि-पोस-पिट्ठंतरोरूपरिणया, पउमुप्पल-सरिस-गंधुस्सास सुरभिवयणा, अणुलोमवाउवेगा, अवदायनिद्ध-काला अमयरस-फलाहारा, ति-गाउयसमुसिया, ति-पलिओवमट्ठितीया, तिन्नि य पलिओवमाइं परमाउं पालयित्ता तेवि उवणमंति मरणधम्मं अवितित्ता कामाणं।

प्रशस्त होती है। वे निरोग होते हैं और कंक नामक पक्षी के समान अल्प आहार करते हैं तथा आहार को परिणत करने-पचाने की शक्ति कबूतर जैसी होती है, मल-द्वार पक्षी जैसा होने के कारण मल-त्याग के पश्चात् भी वह मल-लिप्त नहीं होता है, पीठ, पार्श्वभाग और जंघाएं सुन्दर सुपरिमित होती हैं पद्म-कमल और उत्पल-नील कमल की सुगन्ध के सदृश मनोहर गन्ध से उनका श्वास एवं मुख सुगन्धित रहता है। सिर पर चिकने और काले वाल होते हैं। उनका उदर शरीर के अनुरूप उन्नत होता है। वे अमृत के समान रस वाले फलों का आहार करते हैं। शरीर की ऊँचाई तीन गव्यूति की और आयु तीन पल्योपम की होती है। किन्तु तीन पल्योपम की आयु को भोग कर भी वे अकर्मभूमि भोगभूमि के मनुष्य-अन्त तक कामभोगों से अतृप्त रहकर ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

पमया वि य तेसिं होंति सोम्मा सुजायसव्वंग सुंदरीओ पहाण महिलागुणेहिं जुत्ता,

उन युगलिकों की स्त्रियां भी सौम्य अर्थात् शान्त एवं सात्विक स्वभाव वाली होती हैं। प्रशस्त जन्म वाली और सर्वांग सुन्दर होती हैं। महिलाओं के सब श्रेष्ठ गुणों से युक्त होती हैं।

अइकंत-विसप्पमाणा-मउय-सुकुमाल-कुम्म-संठिय-सिलिट्ठ-चलणा

चरण—पैर अत्यन्त रमणीय शरीर के अनुपात में उचित प्रमाण वाले, कोमल सुकुमाल कछुवे की पीठ के समान उन्नत स्निग्ध और मनोज्ञ होते हैं।

उज्जुमउय-पीवर-सुसाहयंगुलीओ

पैर की अंगुलियां—सीधी, कोमल, पुष्ट और निश्छिद्र-एक दूसरे से सटी हुई होती हैं।

अब्भुन्नय-रइय-तलिण तंब-सुइनिद्धनखा

नाखून—उन्नत, प्रसन्नताजनक, पतले, निर्मल और चमकदार होते हैं।

रोमरहिय-वट्ट-संठिय-अजहन्न-पसत्थ-लक्खण-अकोप्प-जंघ-जुयला,

दोनों पिंडलियां—रोमों से रहित, गोलाकार, श्रेष्ठ मांगलिक लक्षणों से सम्पन्न और रमणीय होती हैं।

सुणिम्मिय-सुनिगूढ-जाणू

जानु-घुटने—सुन्दर रूप से निर्मित तथा मांसयुक्त होने के कारण निगूढ होते हैं।

मंसल-पसत्थ-सुवद्ध संधी

सन्धियां—मांसल प्रशस्त तथा नसों से सुवद्ध होती हैं।

कयलीखंभातिरेक-संठिय-निव्वण-सुकुमाल-मउय-कोमल-अविरल-समसहित-सुजाय-वट्ट पीवर-निरंतरोरू,

उरू—ऊपरी जंघाएं-सांथल कदली-स्तम्भ से भी अधिक सुन्दर आकार की, घाव आदि से रहित, सुकुमार, कोमल, अन्तररहित, समान प्रमाण वाली, सुन्दर लक्षणों से युक्त, सुजात, गोलाकार और पुष्ट होती हैं।

अट्ठावय-वीइपट्ठ-संठिय-पसत्थ-विच्छिन्न-पिहुलसोणी,

श्रोणि-नितम्ब—अष्टापद जुआ खेलने के पट्ट के समान लहरदार आकार वाली, श्रेष्ठ और विस्तीर्ण होती हैं।

वयणायामप्पमाण-दुगुणिय-विसाल-मंसल-सुवद्ध जघण वरधारिणीओ

नितम्ब भाग—मुख की लम्बाई के प्रमाण से अर्थात् बारह अंगुल से दुगुने चौबीस अंगुल जितना विशाल, मांसल पुष्ट होता है।

वज्ज-विराइय-पसत्थ-लक्खण-निरोदरीओ

उदर—वज्र के समान-मध्य में पतला शोभायमान, शुभ लक्षणों से सम्पन्न एवं कृश होता है।

तिवलि-वलिय-सणु-नमिय-मज्झियाओ

शरीर का मध्यभाग-त्रिवलि—तीन रेखाओं से युक्त, कृश और नमित-झुका होता है।

उज्जुय-समसहिय-च जच्च-तणु कसिण निद्ध आदेज्ज लडह-सुकुमाल-मउय-सुविभत्त रोमराजीओ,

रोमराजि—सीधी एक-सी, परस्पर मिली हुई, स्वाभाविक बारीक, काली, मुलायम, प्रशस्त, ललित, सुकुमार, कोमल और सुविभक्त-यथास्थानवर्ती होती है।

गंगावत्तग-पदाहिणावत्त-तरंगभंग-रविकिरण तरुणबोहिय-आकोसायंत-पउमगंभीर-विगडनाभी,

नाभि—गंगा नदी के भंवरों के समान दक्षिणावर्त चक्कर वाली तरंगमाला जैसी, सूर्य की किरणों से ताजा खिले हुए और नहीं कुम्हलाए हुए कमल के समान गंभीर एवं विकट होती है।

[illegible]-सुजाय-पीणकुच्छी,

[illegible] संगतपासा, सुंदरपासा, सुजातपासा, [illegible]-पासा,

[illegible] निम्मल-सुजाय-निरुवहय-[illegible]

[illegible] - पमाण - समसंहिय - लट्ठ - चूचुय - आमेलग-[illegible] पयोहराओ

[illegible] - तणुय - गोपुच्छ - वट्ट - सम - संहिय-नमिय-[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]-अंगुलीया

[illegible], ससि - सूर - संख - चक्क-वरसोत्थिय-विभक्त-[illegible]

[illegible] वत्थिपदेश

[illegible]

[illegible]-सरिसगीवा

[illegible]

[illegible]-कुंचित-वराधरा,

[illegible]

[illegible]-अच्छिद्द विमल-दसणा,

कुक्षि–नहीं उभरी हुई प्रशस्त, सुन्दर और पुष्ट होती हैं।

पार्श्वभाग–उचित प्रमाण में नीचे झुका, सुगठित संगत आकर्षक प्रमाणोपेत-उचित मात्रा में रचित, पुष्ट और रतिद कामोत्तेजक होता है।

गात्रयष्टि-मेरु दंड–उभरी हुई अस्थि से रहित, शुद्ध स्वर्ण से निर्मित रूचक नामक आभूषण के समान सुगठित तथा नीरोग होती है।

दोनों पयोधर-स्तन–स्वर्ण के दो कलसों के सदृश, प्रमाणयुक्त, उन्नत-उभरे हुए, कठोर तथा मनोहर चूचक (स्तनाग्रभाग) वाले तथा गोलाकार होते हैं।

भुजाएं–सर्प की आकृति सरीखी क्रमशः पतली गाय की पूंछ के समान गोलाकार, एक सी शिथिलता से रहित, सुनमित प्रमाणोपपेत एवं ललित होती हैं।

हाथों के नाखून–ताम्रवर्ण-लालिमायुक्त होते हैं।

अग्रहस्त–कलाई मांसल-पुष्ट होते हैं।

हाथ की अंगुलियां–कोमल और पुष्ट होती हैं।

हथेलियों की रेखाएं–स्निग्ध-चिकनी तथा चन्द्र, सूर्य, शंख, चक्र एवं स्वस्तिक के चिह्नों से अंकित एवं सुनिर्मित होती हैं।

कोख और मलोत्सर्गस्थान–पुष्ट तथा उन्नत होते हैं।

कपोल–परिपूर्ण तथा गोलाकार होते हैं।

ग्रीवा–चार अंगुल प्रमाण ऊँची उत्तम शंख जैसी होती हैं।

ठुड्डी–मांस से पुष्ट, सुस्थिर तथा प्रशस्त होती हैं।

अधरोष्ठ–उत्तरोष्ठ नीचे ऊपर के होठ अनार के खिले फूल जैसे लाल, कान्तिमय-पुष्ट कुछ लम्बे, कुंचित-सिकुड़े हुए और उत्तम होते हैं।

दांत–दही, पत्ते पर पड़ी बूंद, कुन्द के फूल, चन्द्रमा एवं चमेली की कली के समान श्वेत वर्ण, अन्तररहित-एक दूसरे से सटे हुए और

अकविल-सुसिणिद्ध-दीहसिरया,

मस्तक के केश—काले, चिकने और लम्बे-लम्बे होते हैं।

इनके सिवाय वे निम्नलिखित उत्तम बत्तीस लक्षणों से युक्त होती हैं।

१. छत्त, २. ज्झय, ३. जूव, ४. थूभ, ५. दामिणी, ६. कमंडल, ७. कलस, ८. वावि, ९. सोत्थिय, १०. पडाग, ११. जव, १२. मच्छ, १३. कम्मा, १४. रहवर, १५. मकरज्झय, १६. वज्ज, १७. थाल, १८. अंकुस, १९. अट्ठावय, २०. सुपइट्ठ, २१. अमर, २२. सिरियाभिसेय, २३. तोरण, २४. मेइणि, २५. उदधिवर, २६. पवरभवण, २७. गिरिवर, २८. वरायंस, २९. सुललियगय, ३०. उसभ, ३१. सीह, ३२. चामर,

पसत्थ-बत्तीस-लक्खणधरीओ।

१. छत्र, २. ध्वजा, ३. यज्ञस्तम्भ, ४. जुव-स्तूप, ५. दामिनी-माला, ६. कमण्डलु, ७. कलश, ८. वापी, ९. स्वस्तिक, १०. पताका, ११. यव, १२. मत्स्य, १३. कूर्म कच्छप, १४. प्रधान रथ, १५. मकरध्वज-कामदेव, १६. वज्र, १७. थाल, १८. अंकुश, १९. अष्टापद, —जुआ खेलने का पट्ट या वस्त्र, २०. स्थापनिका-ठवणी या ऊँचे पैंदे वाला प्याला, २१. देव, २२. लक्ष्मी का अभिषेक, २३ तोरण, २४. मेदिनी-पृथ्वी, २५. समुद्र, २६. श्रेष्ठ भवन, २७. श्रेष्ठ पर्वत, २८. उत्तम दर्पण, २९. क्रीड़ा करता हुआ हाथी, ३०. वृषभ, ३१. सिंह, ३२. चमर।

हंस-सरिस-गईओ-कोइल-महुर गिराओ,

उनकी चाल हंस जैसी और वाणी कोकिल के स्वर की तरह मधुर होती हैं।

कंता सव्वस्स अणुमयाओ,

अपनी कमनीय कान्ति से सभी के लिए प्रिय होती हैं।

ववगय—वलि-पलिय-वंग-दुव्वन्नवाहि-दोहग्ग-सोयमुक्काओ

शरीर पर न झुर्रियां पड़ती हैं, न बाल सफेद होते हैं, न अंगहीनता होती है, न कुरूपता होती है। वे व्याधि, दुर्भाग्य, सुहाग-हीनता एवं शोक चिन्ता से आजीवन मुक्त रहती हैं।

उच्चत्तेण य नराण थोवूणमूसियाओ,

ऊँचाई में पुरुषों से कुछ कम ऊँची होती हैं।

सिंगारागार- चारुवेसाओ,

शृंगार के आगार के समान और सुन्दर वेश भूषा से सुशोभित होती हैं।

सुंदर-थण-जहण-वयण-कर चरणणयणा,

उनके स्तन, जघन, मुख, चेहरा, हाथ, पांव और नेत्र—सभी कुछ अत्यन्त सुन्दर होते हैं।

लावण्ण-रूव-जोव्वण गुणोववेया,

लावण्य-सौन्दर्य, रूप और यौवन के गुणों से सम्पन्न होती हैं।

नंदणवण-विवरचारिणीओ अच्छराओव्व, उत्तरकुरुमाणुसच्छराओ,

नन्दन वन में विहार करने वाली अप्सराओं सरीखी उत्तरकुरु क्षेत्र की मानवी अप्सराएं होती हैं।

अच्छेरग-पेच्छणिज्जियाओ,

वे आश्चर्यपूर्वक दर्शनीय होती हैं।

तिन्नि य पलिओवमाइं परमाउं, पालयि त्ता ताओ वि उवणमंति मरणधम्मं अवितित्ता कामाणं।

—पण्ह. आ. ४, सु. ८८-८९

वे तीन पल्योपम की उत्कृष्ट मनुष्यायु को भोग कर भी उत्कृष्ट मानवीय भोगोपभोगों का उपभोग करके भी कामभोगों से तृप्त नहीं हो पातीं और अतृप्त रहकर ही कालधर्म मृत्यु को प्राप्त होती हैं।

५०. मेहुणसन्ना संपरिगिद्धाणं दुग्गइ—

मेहुणसन्ना-संपरिगिद्धा य मोहभरिया सत्थेहिं हणंति एक्क-मेक्कं,

विसय-विसस्स उदीरएसु अवरे परदारेहिं हम्मंति, विसुणिया धणनासं सयणविप्पणासं च पाउणंति,

परस्स दाराओ जे अविरया मेहुणसन्ना संपरिगिद्धा य मोहभरिया अस्सा, हत्थी, गवा य, महिसा, मिग्गा य मारेंति एक्कमेक्कं,

५०. मैथुन संज्ञा में ग्रस्तों की दुर्गति—

जो मनुष्य मैथुन सेवन की वासना में अत्यन्त आसक्त और मोहभृत-कामवासना से भरे हुए हैं, वे आपस में एक दूसरे का शस्त्रों से घात करते हैं।

विषयरूपी विष की उदीरणा होने पर कोई-कोई स्त्रियों में प्रवृत्त होकर अथवा विषय-विष के वशीभूत होकर परस्त्रियों में प्रवृत्त होने पर दूसरों के द्वारा मारे जाते हैं। परस्त्रीलम्पटता प्रकट हो जाने पर धन के और स्वजनों के विनाश के निमित्त बनते हैं अर्थात् उनकी सम्पत्ति और कुटुम्ब का नाश हो जाता है।

जो परस्त्रियों से विरत नहीं हैं और मैथुनसेवन की वासना में अतीव आसक्त और मोह से भरे हैं उन्हें और ऐसे ही घोड़े, हाथी, बैल, भैंसे और मृग-वन्य पशु परस्पर लड़ कर एक दूसरे को मार डालते हैं।

५२. अवंभस्स उवसंहारो–

एयं तं अबंभं पि चउत्थे सदेव-मणुयासुरस्स लोगस्स पत्थणिज्जं।

एवं चिरपरिचियमणुगयं दुरंतं।

चउत्थं अहम्मद्दारं समत्तं, त्ति बेमि। –पण्ह. आ. ४, सु. १२ (ख)

५२. अब्रह्म का उपसंहार–

यह चौथा आश्रव अब्रह्म भी देवता, मनुष्य और असुर सहित समस्त लोक के प्राणियों द्वारा प्रार्थनीय अभीप्सित है।

यह चिरकाल से परिचित अभ्यस्त, अनुगत और दुरन्त है–दुखप्रद है अथवा बड़ी कठिनाई से इसका अन्त आता है।

इस प्रकार यह चौथा अधर्म द्वार अब्रह्म का वर्णन है, ऐसा मैं कहता हूँ।

५३. मेहुण सेवणाए असंजमस्सोदाहरण परूवणं–

प. मेहुणं भन्ते ! सेवमाणस्स केरिसए असंजमे कज्जइ ?

उ. गोयमा ! से जहानामए पुरिसे रूवनालियं वा, बूरनालियं वा, तत्तेणं कणएण समभिधंसेज्जा-एरिसए णं गोयमा ! मेहुणं सेवमाणस्स असंजमे कज्जइ।

–विया. स. २, उ. ५, सु. ९

५३. उदाहरण सहित मैथुन सेवन के असंयम का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! मैथुनसेवन करते हुए जीव के किस प्रकार का असंयम होता है ?

उ. गौतम ! जैसे कोई पुरुष तपी हुई सोने की (या लोहे की) सलाई (डालकर उस) से बांस की रूई से भरी हुई नली या बूर नामक वनस्पति से भरी नली को जला डालता है, उसी प्रकार हे गौतम ! मैथुन सेवन करते हुए जीव को असंयम होता है।

५४. परिग्गह सरूवं–

जंबू ! इत्तो परिग्गहो पंचमो,

उ नियमा णाणामणि कणग-रयण महरिहपरिमल,

सपुत्तदार-परिजण-दासी-दास-भयग-पेस,

हय-गय-गो-महिस-उट्ट-खर-अय-गवेलग,

सीया-सगड-रह-जाण-जुग्ग-संदण-सयणासण-वाहण,

कुविय-धण-धन्न-पाणभोयणाच्छायण,

गंध-मल्ल-भायण-भवणविहिं चेव,

वहुविहीयं भरहं णग-णगर-णिगम-जणवय-पुरवर- दोणमुह-खेड - कव्वड - मडंव - संवाह - पट्टण - सहस्स - परिमंडिय-थिमिय-मेइणीयं, एगछत्तं ससागरं भंजिऊण वसुहं।

–पण्ह. आ. ५, सु. १३ (क)

५४. परिग्रह का स्वरूप–

जम्बू ! यह पांचवां परिग्रह-आश्रव है, जो इस प्रकार है–

अनेक मणियों, स्वर्ण, कर्केतन आदि रत्नों, वहुमूल्य सुगंधमय पदार्थ,

पुत्र, पत्नी, परिवार, दासी, दास, भृतक, प्रेष्य, संदेश वाहक,

हाथी, घोड़े, गाय, भैंस, ऊंट, गधा, वकरा और गवेलक-भेड़,

शिविका-पालकी, शकट-गाड़ी-छकड़ा रथ, यान, युग्य-विशेष प्रकार की गाड़ी, स्यन्दन-क्रीडारथ, शयन, आसन, वाहन तथा कुप्य-गृहस्थी के उपयोग में आने वाला विविध प्रकार का सामान, धन, धान्य, गेहूं, चावल आदि पेय पदार्थ, भोजन-भोज्य वस्तु, आच्छादन-पहनने ओढने के वस्त्र,

गन्ध-कपूर आदि फूलों की माला, वर्तन-भांडे तथा भवन आदि को अनेक प्रकार के विधानों द्वारा भोग लेने पर भी–

हजारों पर्वतों, नगरों, निगमों, जनपदों, महानगरों, द्रोणमुखों, खेटों, कर्वटों, कस्बों, मडंवों, संवाहों तथा पत्तनों से सुशोभित भरतक्षेत्र तथा जहां के निवासी निर्भय होकर निवास करते हैं, ऐसे सागरपर्यन्त पृथ्वी का एकछत्र अखण्ड राज्य कर लेने पर भी-परिग्रह से तृप्ति नहीं होती।

५५. परिग्गहस्स रुक्खोवमा–

अपरिमियमणंत-तण्हमणुगयमहिच्छसार-निरयमूलो,

लोह-कलि-कसाय-महक्खंधो,

चिंता-सय-निचिय-विउलसालो,

गारवपविरल्लियग्ग-विडवो,

नियडि-तया-पत्त-पल्लवधरो,

५५. परिग्रह को वृक्ष की उपमा–

(परिग्रह वृक्ष के समान है, जिसका वर्णन इस प्रकार है–)

कभी और कहीं भी जिसका अन्त नहीं आता ऐसी अपरिमित एवं अनन्त तृष्णा रूपी महती इच्छाओं से ही अक्षय एवं अशुभ फल वाले इस वृक्ष की (जड़) मूल है।

लोभ, कलह-लड़ाई-झगड़ा और क्रोधादि कषाय इसके महास्कन्ध हैं।

चिन्ता, मानसिक सन्ताप आदि की अधिकता से अथवा निरन्तर उत्पन्न होने वाली सैकड़ों चिन्ताएँ इसकी विस्तीर्ण शाखाएँ हैं।

ऋद्धि, रस और साता रूप गारव ही इसके विस्तीर्ण शाखाग्र हैं।

निकृति- [illegible] के लिए [illegible] ही इस वृक्ष की त्वचा, पत्र और पल्लव होते हैं।

पंचविहा जोइसिया य देवा–

पांच प्रकार के ज्योतिष्क देव–

१. चंद, २. सूर,

१. चन्द्र, २. सूर्य

१. बहस्सइ, २. सुक्क, ३. सणिच्छरा, ४. बुधा, ५. अंगारका, ६. राहु, ७. धुमकेउ, य तत्त-तवणिज्ज-कणयवण्णा जे य गहा जोइसम्मि चारं चरंति केऊ य गइ रईया

१. वृहस्पति, २. शुक्र, ३. शनैश्चर, ४. बुध, ५. अंगारक-मंगल, ६. राहू, ७. केतु और तपाये हुए स्वर्ण जैसे वर्ण वाले अन्य ग्रह ज्योतिष्कचक्र में संचरणशील गति में प्रसन्नता का अनुभव करने वाले केतु आदि।

अट्ठावीसइ विहा य नक्खत्तदेवगणा नाणासंठाण-संठियाओ य–तारगाओ ठियलेस्सा चारिणो य अविस्सामसंडलगई उवरिचरा।

अट्ठाईस प्रकार के नक्षत्र देवगण, नाना प्रकार के संस्थान वाले तारागण, स्थिर कान्ति वाले, मनुष्य क्षेत्र, अढाई द्वीप से बाहर के स्थिर और मनुष्य क्षेत्र के भीतर संचार करने वाले तथा अविश्रान्त लगातार विना रुके वर्तुलाकार गति करने वाले, ज्योतिष्क देव ममत्वपूर्वक परिग्रह को ग्रहण करते हैं।

उड्ढलोगवासी दुविहा वेमाणिया य देवा, तं जहा–

उर्ध्वलोक में निवास करने वाले दो प्रकार के वैमानिक देव, यथा–

१. कप्पोपन्ना, २. कप्पातीया

१. कल्पोपपन्न, २. कल्पातीत।

१-२. सोहम्मीसाण, ३. सणंकुमार, ४. माहिंद, ५. बंभलोग, ६. लंतक, ७. महासुक्क, ८. सहस्सार, ९. आणय, १०. पाणय, ११. आरण, १२. अच्चुया,

१, सौधर्म, २. ईशान, ३. सानत्कुमार, ४. माहेन्द्र, ५. ब्रह्मलोक, ६. लान्तक, ७. महाशुक्र, ८. सहस्रार, ९. आनत, १०. प्राणत, ११. आरण, १२. अच्युत।

कप्पवरविमाणवासिणो सुरगणा,

ये वारह उत्तम कल्प विमानों में वास करने वाले कल्पोपपन्न देव हैं।

गेवेज्जा अणुत्तरा दुविहा-कप्पातीया, विमाणवासी महिड्ढिया उत्तमा सुरवरा।

(नौ) ग्रैवेयकों और (पांच) अनुत्तर विमानों में रहने वाले दो प्रकार के कल्पातीत देव हैं। ये विमानवासी वैमानिक देव महान् ऋद्धि के धारक श्रेष्ठ देव हैं।

एवं च ते चउव्विहा सपरिस्सावि देवा ममायंति।

ये चारों निकायों के देव अपनी-अपनी परिषद् सहित परिग्रह को ग्रहण करते हैं, उसमें मूर्च्छाभाव रखते हैं।

भवण–वाहण-जाण-विमाण-सयणासणाणि य,

ये सभी देव, भवन, वाहन, यान, विमान, शय्या, भद्रासन,

नाणाविहवत्थ भूसणा, पवर–पहरणाणि य,

विविध प्रकार के वस्त्र एवं श्रेष्ठ आभूषण-शस्त्रास्त्रों को,

नाणामणि पंचवण्ण–दिव्वं च भायणविहिं

अनेक प्रकार की पंचरंगी मणियों, दिव्य पात्रों को,

नाणाविहकामरूवे वेउव्विय-अच्छरगणसंघाए,

विक्रियालब्धि से इच्छानुसार रूप बनाने वाली कामरूपा अप्सराओं के समूह को,

दीव-समुद्दे दिसाओ विदिसाओ चेइयाणि वणसंडे पव्वए य,

द्वीपों, समुद्रों, दिशाओं, विदिशाओं, चैत्यों, वनखण्डों और पर्वतों को,

गामनगराणि य आरामुज्जाण-काणणाणि य,

ग्राम, नगर, आराम, उद्यान और काननों को,

कूव - सर - तलाग - वावि - दीविय - देवकुल - सभ - प्पव-वसहिमाइयाहिं बहुकाइं कित्तणाणि य–

कूप, सरोवर, तालाव, वावड़ी, दीर्घिका, देवकुल-देवालय, सभा, प्रपा (प्याऊ) वस्ती और बहुत से कीर्त्तनीय-स्तुतियोग्य धर्मस्थानों को ममत्वपूर्वक ग्रहण करते हैं और इस प्रकार के विपुल द्रव्य वाले

परिगेण्हित्ता परिग्गहं विपुलदव्वसारं देवावि सइंदगा न तित्तिं न तुट्ठिं उवलभंति।

परिग्रह को ग्रहण करके इन्द्रों सहित देवगण भी न तृप्ति का और न सन्तुष्टि का अनुभव कर पाते हैं।

अच्चंत-विपुल-लोभाभिभूयसन्ना,

ये सव देव अत्यन्त तीव्र लोभ से अभिभूत संज्ञा वाले हैं।

वासहर-इक्खुगार-वट्ट-पव्वय-कुंडल - रूयगवर- माणुसोत्तर - कालोदधि-लवणसलिल-दहपति-रतिकर अंजणकसेल-दहिमुह ओवाउप्पाय कंचणक-चित्त-विचित्त-जमकवर सिहरी कूडवासी,

अतः वर्षधर पर्वतों, इषुकारपर्वतों, वृत्त वैताढ्य पर्वतों, कुण्डल पर्वतों, रूचकवर पर्वतों, मानुपोत्तर पर्वतों, कालोदधि समुद्र, लवणसमुद्र, सलिला (गंगा आदि महा-नदियां) द्रहपति सरोवर, रतिकर पर्वतों, अंजनक पर्वतों, दधिमुखपर्वतों, अवपात पर्वतों, उत्पात पर्वतों, कांचनक पर्वतों, चित्र-विचित्रपर्वतों, यमकवर पर्वतों और शिखरी कूट आदि में रहने वाले ये देव भी तृप्त नहीं हो पाते तो फिर अन्य प्राणियों का तो कहना ही क्या?

अकित्तणिज्जे परिग्गहे चेव होंति नियमा सल्ला-दंडा य गारवा य कसाया सन्ना य कामगुण - अण्हगा य इंदियलेस्साओ सयणसंपओगा सचित्ताचित्त- मीसगाइं दव्वाइं अणंतगाइं इच्छंति परिघेत्तुं।

सदेव-मणुयासुरंमि लोए लोभ परिग्गहो जिणवरेहिं भणिओ नत्थि एरिसो पासो पडिबंधो अत्थि सव्वजीवाणं सव्वलोए।

–पण्ह. आ. ५, सु. १६

इस निन्दनीय परिग्रह में ही नियम से शल्य, दण्ड, गारव, कषाय, संज्ञा, कामगुण इन्द्रियविकार और अशुभलेश्याएं होती हैं। स्वजनों के साथ संयोग होते हैं और परिग्रहवान् असीम-अनन्त सचित्त, अचित्त एवं मिश्र द्रव्यों को ग्रहण करने की इच्छा करते हैं। देवों, मनुष्यों और असुरों सहित इस त्रस स्थावररूप लोक जगत् में जिनेन्द्र भगवन्तों ने इस लोभ परिग्रह का प्रतिपादन किया है। वास्तव में इस लोक में सर्व जीवों के लिए परिग्रह के समान अन्य कोई पाश फंदा बन्धन नहीं है।

५९. परिग्गह फलं–

परलोगंमि य नट्ठा तमं पविट्ठा महयामोहमोहियमई तिमिसंधकारे तस-थावर सुहुम-बायरेसु पज्जत्तम पज्जत्तग एवं जाव परियट्टंति दीहमद्धं जीवा लोभवस-सन्निविट्ठा।

एसो सो परिग्गहस्स फलविवाओ इहलोइओ पारलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो दारुणो, कक्कसो असाओ वाससहस्सेहिं मुच्चइ न अवेयइत्ता अत्थि हु मोक्खोत्ति।

एवमाहंसु नायकुलनंदणो महप्पा जिणो उ वीरवर-नामधेज्जो कहेसी य परिग्गहस्स फलविवागं। *–पण्ण. आ. ५, सु. १७ (क)*

५९. परिग्रह के फल–

परिग्रह में आसक्त प्राणी परलोक में और इस लोक में नष्ट भ्रष्ट होते हैं, अज्ञानान्धकार में प्रविष्ट होते हैं, तीव्र मोहनीयकर्म के उदय से मोहित मति वाले, लोभ के वश में पड़े हुए जीव त्रस, स्थावर, सूक्ष्म और बादर पर्याप्तक और अपर्याप्तक अवस्थाओं में यावत् चार गति वाले संसार कानन में परिभ्रमण करते हैं।

परिग्रह का यह इस लोक सम्बन्धी और परलोक सम्बन्धी फल-विपाक अल्प सुख और अत्यन्त दुःख वाला है। महान् भय से परिपूर्ण है, अत्यन्त कर्म-रज से प्रगाढ है, दारुण है, कठोर है और असाता का हेतु है। हजारों वर्षों में अर्थात् बहुत दीर्घ काल में इससे छुटकारा मिलता है। किन्तु इसके फल को भोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता।

इस प्रकार ज्ञातकुलनन्दन महात्मा वीरवर (महावीर) जिनेश्वर देव ने परिग्रह नामक इस पंचम (आश्रव द्वार के) फल विपाक का प्रतिपादन किया है।

६०. परिग्गहस्स उवसंहारो–

एसो सो परिग्गहो पंचमो उ नियमा नाना-मणि-कणग-रयणमहरिह एवं जाव इमस्स मोक्खवरमोत्तिमग्गस्स फलिहभूयो।

चरिमं अहम्मदारं समत्तं, त्ति बेमि।

–पण्ण. आ. ५, सु. १७ (ख)

६०. परिग्रह का उपसंहार–

अनेक प्रकार की चन्द्रकान्त आदि मणियों, स्वर्ण कर्केतन आदि रत्नों तथा बहुमूल्य अन्य द्रव्य यह पांचवां आश्रवद्वार परिग्रह मोक्ष के मार्गरूप मुक्ति-निर्लोभता के लिए अर्गला के समान है।

इस प्रकार यह अन्तिम परिग्रह आस्रवद्वार का वर्णन हुआ, ऐसा मैं कहता हूँ।

६१. आसवाज्झयणस्स उवसंहारो–

एएहिं पंचहिं आसवेहिं, रयमाइणित्तु अणुसमयं।
चउव्विहगइपेरंतं, अणुपरियट्टंति संसारे॥

सव्वगइपक्खंदे, काहिंति अणंतए अकयपुण्णा।
जे य ण सुणंति धम्मं, सोऊण य जे पमायंति॥

अणुसिट्ठं वि बहुविहं, मिच्छदिट्ठिया जे णरा अहम्मा।
बद्धणिकाइयकम्मा, सुणंति धम्मं ण य करेंति॥

किं सक्का काउं जे, णेच्छइ ओसहं मुहा पाउं।
जिणवयणं गुणमहुरं, विरेयणं सव्वदुक्खाणं॥

पंचेव य उज्झिऊणं, पंचेव य रक्खिऊणं भावेणं।
कम्मरय-विप्पमुक्कं, सिद्धिवरमणुत्तरं जंति॥

–पण्ण. सु. १ अंतिम

६१. आश्रव अध्ययन का उपसंहार–

इन पूर्वोक्त पांच आश्रवद्वारों के निमित्त से जीव प्रतिसमय कर्मरूपी रज का संचय करके चार गतिरूप संसार में परिभ्रमण करते रहते हैं।

जो पुण्यहीन प्राणी धर्म को श्रवण नहीं करते और श्रवण करके भी उसका आचरण करने में प्रमाद करते हैं, वे अनन्त काल तक चार गतियों में गमनागमन (जन्म-मरण) करते रहेंगे।

जो पुरुष मिथ्यादृष्टि हैं, अधार्मिक हैं, जिन्होंने निकाचित कर्मों का बन्ध किया है, वे अनेक प्रकार से शिक्षा पाने पर भी धर्म का श्रवण तो करते हैं किन्तु उसका आचरण नहीं करते हैं।

जिन भगवान् के वचन समस्त दुःखों का नाश करने के गुणयुक्त मधुर विरेचन औषध हैं, किन्तु निःस्वार्थ भाव से दी जाने वाली इस औषध को जो पीना ही नहीं चाहते, उनके लिए क्या कहा जा सकता है ?

जो प्राणी पांच हिंसा आदि आस्रवों को त्याग कर और पांच (अहिंसा आदि संवरों) की भावपूर्वक रक्षा करते हैं, वे कर्म-रज से सर्वथा मुक्त होकर सर्वोत्तम सिद्धि मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

वक्खारअकम्मभूमिसु सुविभत्तभागदेसासु कम्मभूमिसु जे वि य नरा चाउरंत - चक्कवट्टी बलदेवा - वासुदेवा मंडलीया इस्सरा तलवरा सेणावई इब्भा सेट्ठी-रट्ठिया-पुरोहिया कुमारा दंडणायगा गणनायगा माडंबिया सत्थवाहा कोडुंबिया अमच्चा एए अन्ने य एवाई परिग्गहं संचिणंति।

अणंत-असरणं दुरंतं अधुवमणिच्वं असासयं,

पावकम्मं नेमं अवकिरियव्वं, विणासमूलं-वह-बंध-परिकिलेसवहुलं अणंत - संकिलेस- कारणं,
ते तं धण-कणग-रयण-निचयं, पिंडी या चेव लोभघत्था संसारं अइवयंति सव्वदुक्खसन्निलयणं। —पण्ह. आ. ५, सु. १५

वक्षस्कारों तथा अकर्मभूमियों में तथा सुविभक्त-भलीभांति विभागवाली भरत, ऐरवत आदि पन्द्रह कर्मभूमियों में निवास करने वाले, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, माण्डलिक, राजा, ईश्वर, युवराज ऐश्वर्यशाली लोग, तलवर-राजमान्य अधिकारी, सेनापति, इभ्य, श्रेष्ठी, राष्ट्रिक, पुरोहित कुमार, राजपुत्र, दण्डनायक-कोतवाल माडम्बिक, सार्थवाह, कौटुम्बिक और अमात्य-मंत्री ये और इनके अतिरिक्त अन्य मनुष्य परिग्रह का संचय करते हैं।

वह परिग्रह अनन्त परिणामशून्य है, अशरण है, दुःखमय अन्त वाला है, अध्रुव है, अनित्य है एवं प्रतिक्षण विनाशशील होने से अशाश्वत है।

पापकर्मों का मूल है, ज्ञानीजनों के लिए त्याज्य है, विनाश का मूल कारण है, अन्य प्राणियों के वध, बन्धन और क्लेश का कारण है और स्वयं के लिए अनन्त संक्लेश उत्पन्न करने वाला है। पूर्वोक्त देव आदि इस प्रकार के धन, कनक, रत्नों आदि का संचय करते हुए लोभ से ग्रस्त होते हैं और समस्त प्रकार के दुःखों के स्थान रूप इस संसार में परिभ्रमण करते हैं।

५८. परिग्गहट्ठाए पयत्ताणि–

परिग्गहस्स य अट्ठाए सिप्पसयं सिक्खए बहुजणो कलाओ य बावत्तरिं सुनिपुणाओ लेहाइयाओ सउणरूयावसाणाओ गणियप्पहाणाओ।

चउसटिंठ च महिलागुणे रइजणणे सिप्पसेवं-असि-मसि-किसि-वाणिज्जं-ववहारं अत्थसत्थ- ईसत्थच्छरूप्पगयं, विविहाओ य जोग-जुंजणाओ,

अन्नेसु य एवमाइएसु बहुसु कारणसएसु जावज्जीवं नडिज्जए संचिणंति मंदबुद्धी।

परिग्गहस्सेव य अट्ठाए करंति पाणाण-वहकरणं।
अलिय-नियडि-साइ-संपओगे।

परदव्वाभिज्जा।
सपरदार-अभिगमणासेवणाए आयासविसूरणं।

कलह-भंडण-वेराणि य अवमाणण-विमाणणाओ।

इच्छा-महिच्छ-प्पिवास-सययतिसिया तण्हगेहिलोभघत्था अत्ताणा अणिग्गहिया करेंति कोह-माण-माया-लोभे।

५८. परिग्रह के लिए प्रयत्न–

परिग्रह के लिए बहुत से लोग सैकड़ों शिल्प या हुनर तथा उच्च श्रेणी की निपुणता उत्पन्न करने वाली, गणित की प्रधानता वाली, लेखन से शकुनिरुत-पक्षियों की बोली पर्यन्त की बहत्तर कलाएं सीखते हैं।

रति उत्पन्न करने वाली नारियां चौसठ महिलागुणों को सीखती हैं, कोई शिल्प द्वारा सेवा करते हैं। कोई असि-तलवार आदि शस्त्रों को चलाने का अभ्यास करते हैं, कोई मसि कर्म-लिपि आदि लिखने की शिक्षा लेते हैं, कोई कृषि-खेती करते हैं, कोई वाणिज्य-व्यापार सीखते हैं, कोई व्यवहार अर्थात् विवाद के निपटारे की शिक्षा लेते हैं। कोई अर्थशास्त्र-राजनीति तथा धनुर्वेद आदि शास्त्रों का अध्ययन करते हैं। कोई छुरी-तलवार आदि शस्त्रों को पकड़ने-चलाने की, कोई अनेक प्रकार के यंत्र, मंत्र, मारण, संमोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि योगों की शिक्षा ग्रहण करते हैं।

इसी प्रकार के और दूसरे मंदबुद्धि वाले व्यक्ति सैकड़ों कारणों से परिग्रह के लिए प्रवृत्ति करते हुए जीवनपर्यन्त भटकते रहते हैं और परिग्रह का संचय करते हैं।

परिग्रह के लिए लोग प्राणियों की हिंसा के कृत्य में प्रवृत्त होते हैं।

झूठ बोलते हैं, दूसरों को ठगते हैं, निकृष्ट वस्तु को मिलावट करके उत्कृष्ट दिखलाते हैं।

दूसरे के द्रव्य में लालच करते हैं।

स्वदार-गमन में शारीरिक एवं मानसिक खेद तथा परस्त्री की प्राप्ति न होने पर मानसिक पीड़ा का अनुभव करते हैं।

कलह-विवाद-झगड़ा लड़ाई तथा वैर विरोध करते हैं अपमान तथा यातनाएं सहन करते हैं।

इच्छाओं और महेच्छाओं रूपी पिपासा के निरन्तर प्यासे बने रहते हैं। तृष्णा गृद्धि और लोभ में ग्रस्त-आसक्त रहते हैं, वे त्राणहीन एवं इन्द्रियों तथा मन के निग्रह से रहित होकर क्रोध, मान, माया और लोभ का सेवन करते हैं।

अकित्तणिज्जे परिग्गहे चेव होंति नियमा सल्ला-दंडा य गारवा य कसाया सन्ना य कामगुण - अण्हगा य इंदियलेस्साओ सयणसंपओगा सचित्ताचित्त- मीसगाइं दव्वाइं अणंतगाइं इच्छंति परिघेत्तुं।

सदेव-मणुयासुरंमि लोए लोभ परिग्गहो जिणवरेहिं भणिओ नत्थि एरिसो पासो पडिबंधो अत्थि सव्वजीवाणं सव्वलोए।

—पण्ह. आ. ५, सु. १६

५९. परिग्गह फलं—

परलोगंमि य नट्ठा तमं पविट्ठा महयामोहमोहियमई तिमिसंधकारे तस-थावर सुहुम-बायरेसु पज्जत्तम पज्जत्तग एवं जाव परियट्टंति दीहमद्धं जीवा लोभवस-सन्निविट्ठा।

एसो सो परिग्गहस्स फलविवाओ इहलोइओ पारलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो दारुणो, कक्कसो असाओ वाससहस्सेहिं मुच्चइ न अवेयइत्ता अत्थि हु मोक्खोत्ति।

एवमाहंसु नायकुलनंदणो महप्पा जिणो उ वीरवर-नामधेज्जो कहेसी य परिग्गहस्स फलविवागं। —पण्ण. आ. ५, सु. १७(क)

६०. परिग्गहस्स उवसंहारो—

एसो सो परिग्गहो पंचमो उ नियमा नाना-मणि-कणग-रयणमहरिह एवं जाव इमस्स मोक्खवरमोत्तिमग्गस्स फलिहभूयो।

चरिमं अहम्मदारं समत्तं, त्ति बेमि।

—पण्ण. आ. ५, सु. १७(ख)

६१. आसवाज्झयणस्स उवसंहारो—

एएहिं पंचहिं आसवेहिं, रयमाइणित्तु अणुसमयं।
चउव्विहगइपेरंतं, अणुपरियट्टंति संसारे॥

सव्वगइपक्खंदे, काहिंति अणंतए अकयपुण्णा।
जे य ण सुणंति धम्मं, सोऊण य जे पमायंति॥

अणुसिट्ठं वि बहुविहं, मिच्छदिट्ठिया जे णरा अहम्मा।
बद्धणिकाइयकम्मा, सुणंति धम्मं ण य करेंति॥

किं सक्का काउं जे, णेच्छइ ओसहं मुहा पाउं।
जिणवयणं गुणमहुरं, विरेयणं सव्वदुक्खाणं॥

पंचेव य उज्झिऊणं, पंचेव य रक्खिऊणं भावेणं।
कम्मरय-विप्पमुक्कं, सिद्धिवरमणुत्तरं जंति॥

—पण्ण. सु. १ अंतिम

इस निन्दनीय परिग्रह में ही नियम से शल्य, दण्ड, गारव, कषाय, संज्ञा, कामगुण इन्द्रियविकार और अशुभलेश्याएं होती हैं। स्वजनों के साथ संयोग होते हैं और परिग्रहवान् असीम-अनन्त सचित्त, अचित्त एवं मिश्र द्रव्यों को ग्रहण करने की इच्छा करते हैं। देवों, मनुष्यों और असुरों सहित इस त्रस स्थावररूप लोक जगत् में जिनेन्द्र भगवन्तों ने इस लोभ परिग्रह का प्रतिपादन किया है। वास्तव में इस लोक में सर्व जीवों के लिए परिग्रह के समान अन्य कोई पाश फंदा बन्धन नहीं है।

५९. परिग्रह के फल—

परिग्रह में आसक्त प्राणी परलोक में और इस लोक में नष्ट भ्रष्ट होते हैं, अज्ञानान्धकार में प्रविष्ट होते हैं, तीव्र मोहनीयकर्म के उदय से मोहित मति वाले, लोभ के वश में पड़े हुए जीव त्रस, स्थावर, सूक्ष्म और बादर पर्याप्तक और अपर्याप्तक अवस्थाओं में यावत् चार गति वाले संसार कानन में परिभ्रमण करते हैं।

परिग्रह का यह इस लोक सम्बन्धी और परलोक सम्बन्धी फल-विपाक अल्प सुख और अत्यन्त दुःख वाला है। महान् भय से परिपूर्ण है, अत्यन्त कर्म-रज से प्रगाढ है, दारुण है, कठोर है और असाता का हेतु है। हजारों वर्षों में अर्थात् बहुत दीर्घ काल में इससे छुटकारा मिलता है। किन्तु इसके फल को भोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता।

इस प्रकार ज्ञातकुलनन्दन महात्मा वीरवर (महावीर) जिनेश्वर देव ने परिग्रह नामक इस पंचम (आश्रव द्वार के) फल विपाक का प्रतिपादन किया है।

६०. परिग्रह का उपसंहार—

अनेक प्रकार की चन्द्रकान्त आदि मणियों, स्वर्ण कर्केतन आदि रत्नों तथा बहुमूल्य अन्य द्रव्य यह पांचवां आश्रवद्वार परिग्रह मोक्ष के मार्गरूप मुक्ति-निर्लोभता के लिए अर्गला के समान है।

इस प्रकार यह अन्तिम परिग्रह आस्रवद्वार का वर्णन हुआ, ऐसा मैं कहता हूँ।

६१. आश्रव अध्ययन का उपसंहार—

इन पूर्वोक्त पांच आश्रवद्वारों के निमित्त से जीव प्रतिसमय कर्मरूपी रज का संचय करके चार गतिरूप संसार में परिभ्रमण करते रहते हैं।

जो पुण्यहीन प्राणी धर्म को श्रवण नहीं करते और श्रवण करके भी उसका आचरण करने में प्रमाद करते हैं, वे अनन्त काल तक चार गतियों में गमनागमन (जन्म-मरण) करते रहेंगे।

जो पुरुष मिथ्यादृष्टि हैं, अधार्मिक हैं, जिन्होंने निकाचित कर्मों का बन्ध किया है, वे अनेक प्रकार से शिक्षा पाने पर भी धर्म का श्रवण तो करते हैं किन्तु उसका आचरण नहीं करते हैं।

जिन भगवान् के वचन समस्त दुःखों का नाश करने के गुणयुक्त मधुर विरेचन औषध हैं, किन्तु निःस्वार्थ भाव से दी जाने वाली इस औषध को जो पीना ही नहीं चाहते, उनके लिए क्या कहा जा सकता है?

जो प्राणी पांच हिंसा आदि आस्रवों को त्याग कर और पांच (अहिंसा आदि संवरों) की भावपूर्वक रक्षा करते हैं, वे कर्म-रज से सर्वथा मुक्त होकर सर्वोत्तम सिद्धि मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

उ. गोयमा ! णो इत्थिवेया, णो पुरिसवेया, नपुंसगवेया पण्णत्ता।

प. दं. २ असुरकुमारा णं भंते! किं इत्थिवेया, पुरिसवेया, नपुंसगवेया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! इत्थिवेया, पुरिसवेया, णो नपुंसगवेया पण्णत्ता ?

दं. ३-११ एवं जाव थणियकुमारा।

दं. १२-२१ पुढवी-आऊ-तेऊ-वाऊ-वणस्सई बि-ति-चउरिंदिय-सम्मुच्छिम-पंचेंदियतिरिक्ख-सम्मुच्छिम-मणुस्सा नपुंसगवेया,

गब्भवक्कंतियमणुस्सा पंचिंदियतिरिक्खया य तिवेया।

दं. २२-२४ जहा असुरकुमारा तहा वाणमंतरा जोइसिया-वेमाणिया वि। —सम. सु. १५६

५. चउगइसु वेय परूवणं—

१. नेरइयाणं-नपुंसगवेया, —जीवा. पडि. १, सु. ३२

२. तिरिक्खजोणिएसु—एगिंदिया

प. सुहुमपुढविकाइयाणं भंते ! जीवा किं इत्थिवेया, पुरिसवेया, नपुंसगवेया ?

उ. गोयमा ! नो इत्थिवेया, नो पुरिसवेया, नपुंसगवेया। —जीवा. पडि. १, सु. १३ (११)

बायरपुढविकाइया-जहा सुहुमपुढविकाइयाणं। —जीवा. पडि. १, सु. १५

सुहुम-बायर आउकाइया-जहा सुहुमपुढविकाइयाणं —जीवा. पडि. १, सु. १६-१७

सुहुम-बायर तेउकाइया जहा सुहुमपुढविकाइयाणं। —जीवा. पडि.१, सु. २४-२५

सुहुम-बायर वाउकाइया जहा सुहुमपुढविकाइयाणं। —जीवा. पडि. १, सु. २६

सुहुम-बायर-साहारण-पत्तेय सरीर वणस्सइकाइया-जहा सुहुमपुढविकाइयाणं। —जीवा. पडि. १, सु. २०-२१

(ख) बेइंदिया— नपुंसगवेया —जीवा. पडि. १, सु. २८

(ग) तेइंदिया— जहा बेइंदियाणं —जीवा पडि. १, सु. २९

(घ) चउरिंदिया— जहा तेइंदियाणं, —जीवा. पडि. १, सु. ३०

(ङ) सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया—

जलयरा—नपुंसगवेया —जीवा. पडि. १, सु. ३५

थलयरा—जहा जलयराणं[1] —जीवा. पडि. १, सु. ३६

खहयरा— जहा जलयराणं —जीवा. पडि. १, सु. ३६

(च) गब्भवक्कंतियपंचेंदिय तिरिक्खजोणिया—

जलयरा— तिविहवेया— —जीवा. पडि. १, सु. ३८

थलयरा— जहा जलयराणं[२] —जीवा. पडि. १, सु. ३९

खहयरा— जहा जलयराणं —जीवा. पडि. १, सु. ४०

उ. गौतम ! नैरयिक न स्त्रीवेदक हैं, न पुरुषवेदक हैं किन्तु नपुंसकवेदक कहे गये हैं ?

प्र. दं. २ भंते ! क्या असुरकुमार स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक या नपुंसकवेदक कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! स्त्रीवेदवाले हैं, पुरुषवेद वाले हैं, किन्तु नपुंसकवेद वाले नहीं हैं।

दं. ३-११ इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त जानना चाहिए।

दं. १२-२१ पृथ्वी, अप्, तेजस् वायु, वनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रियतिर्यञ्च और सम्मूर्च्छिम मनुष्य नपुंसक वेद वाले हैं।

गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्य और पंचेन्द्रियतिर्यञ्च तीनों वेद वाले हैं।

दं. २२-२४ वाणव्यन्तरों, ज्योतिष्कों और वैमानिकों का कथन असुरकुमारों के समान करना चाहिए।

५. चार गतियों में वेद का प्ररूपण—

१. नैरयिक— नपुंसकवेद वाले हैं।

२. तिर्यञ्चयोनिक— एकेन्द्रिय

प्र. भंते ! सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव क्या स्त्रीवेद वाले हैं, पुरुषवेद वाले हैं या नपुंसकवेद वाले हैं ?

उ. गौतम ! न स्त्रीवेद वाले हैं, न पुरुषवेद वाले हैं, किन्तु नपुंसकवेद वाले हैं।

बादर पृथ्वीकायिकों का कथन सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों के समान है।

सूक्ष्म-बादर अप्कायिकों का कथन सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों के समान है।

सूक्ष्म-बादर तेजस्कायिकों का कथन सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों के समान है।

सूक्ष्म-बादर वायुकायिकों का कथन सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों के समान है।

सूक्ष्म-बादर-साधारण, प्रत्येक वनस्पतिकायिकों का कथन सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों के समान है।

(ख) द्वीन्द्रिय-नपुंसकवेद वाले हैं।

(ग) त्रीन्द्रिय का कथन उसी प्रकार (द्वीन्द्रियों के समान) है।

(घ) चतुरिन्द्रिय का कथन उसी प्रकार (त्रीन्द्रियों के समान) है।

(ङ) सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक—

जलचर—नपुंसकवेद वाले हैं।

स्थलचर—जलचरों के समान (नपुंसक वेद वाले) हैं।

खेचर—जलचरों के समान (नपुंसक वेद वाले) हैं।

(च) गर्भव्युत्क्रांतिक पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक—

जलचर—तीनों वेद वाले हैं।

स्थलचर—जलचरों के समान (तीनों वेद वाले) हैं।

खेचर— जलचरों के समान (तीनों वेद वाले) हैं।

१-२. जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. ९७ (२)

३. मणुस्सा–

सम्मुच्छिममणुस्सा– नपुंसगवेया –*जीवा. पडि. १, सु. ४१*

गब्भवक्कंतियमणुस्सा–इत्थिवेया वि, पुरिसवेया वि, नपुंसगवेया वि, अवेया वि– –*जीवा. पडि. १, सु. ४१*

४. देवा–

इत्थिवेया वि, पुरिसवेया वि, नो नपुंसगवेया।

–*जीवा. पडि.१, सु. ४२*

६. एगसमए एगवेय वेयण-परूवणं–

प. अण्णउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति भासंति पण्णवेंति परूवेंति एवं खलु नियंठे कालगे समाणे देवब्भूएणं अप्पाणेणं–

१. से णं तत्थ नो अन्ने देवे नो अन्नेसिं देवाणं देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय-परियारेइ।

२. णो अप्पणिच्चियाओ देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेइ।

३. अप्पणामेव अप्पाणं विउव्विय-विउव्विय परियारेइ

एगे वि य णं जीवे एगेणं समएणं दो वेए वेएइ, तं जहा–

१. इत्थिवेयं वा, २. पुरिसवेयं वा।

१. जं समयं इत्थिवेयं वेएइ तं समयं पुरिसवेयं वेएइ,

२. जं समयं पुरिसवेयं वेएइ तं समयं इत्थिवेयं वेएइ,

इत्थिवेयस्स वेयणाए पुरिसवेयं वेएइ,

पुरिसवेयस्स वेयणाए इत्थिवेयं वेएइ,

एवं खलु एगे वि य णं जीवे एगेणं समएणं दो वेयं वेएइ, तं जहा–

१. इत्थिवेयं वा, २. पुरिसवेयं वा।

से कहमेयं भंते ! एवं ?

उ. गोयमा ! जं णं ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खंति जाव इत्थिवेयं वा पुरिसवेयं वा। जे ते एवमहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु,

अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव एवं परूवेमि–

एवं खलु नियंठे कालगए समाणे अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति महिड्ढिएसु जाव महाणुभागेसु दूरगइसु चिरट्ठिइएसु।

से णं तत्थ देवे भवइ महिड्ढिए जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणे पभासेमाणे जाव पडिरूवे।

३. मनुष्य–

सम्मूर्च्छिम मनुष्य– नपुंसकवेद वाले हैं।

गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्य– स्त्रीवेद वाले भी हैं, पुरुषवेद वाले भी हैं, नपुंसकवेद वाले भी हैं और अवेदी भी हैं।

४. देव–

स्त्री वेद वाले भी हैं और पुरुष वेद वाले भी हैं, किन्तु नपुंसकवेद वाले नहीं हैं।

६. एक समय में एक वेद-वेदन का प्ररूपण–

प्र. भंते ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, बताते हैं, प्रज्ञापना करते हैं और प्ररूपणा करते हैं कि कोई भी निर्ग्रन्थ (मुनि) मरने पर देव होता हुआ स्वयं–

१. वह वहाँ (देवलोक में) दूसरे देवों की देवियों के साथ, उन्हें वश में करके या उनका आलिंगन करके परिचारणा (मैथुन-सेवन) नहीं करता,

२. अपनी देवियों को वश में करके या आलिंगन करके उनके साथ भी परिचारणा नहीं करता।

३. परन्तु वह देव-वैक्रिय से स्वयं ही देवी का रूप बनाकर उसके साथ परिचारणा करता है।

इस प्रकार एक जीव एक ही समय में दो वेदों का अनुभव (वेदन) करता है, यथा–

१. स्त्रीवेद, २. पुरुषवेद।

१. जिस समय स्त्रीवेद को वेदता (अनुभव करता) है, तब पुरुषवेद को भी वेदता है।

२. जिस समय पुरुषवेद को वेदता है, उस समय वह स्त्रीवेद को भी वेदता है।

स्त्रीवेद का वेदन करता हुआ पुरुषवेद को भी वेदता है,

पुरुषवेद का वेदन करता हुआ स्त्रीवेद को भी वेदता है।

अतः एक ही जीव एक समय में दोनों वेदों को वेदता है, यथा–

१. स्त्रीवेद, २. पुरुषवेद

भन्ते ! क्या यह (अन्यतीर्थिकों का) कथन सत्य है ?

उ. हे गौतम ! वे अन्यतीर्थिक जो यह कहते हैं यावत् स्त्रीवेद पुरुषवेद का वेदन एक साथ करते हैं, उनका वह कथन मिथ्या है।

हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि–

कोई निर्ग्रन्थ मरकर, किन्हीं महर्द्धिक यावत् महाप्रभावयुक्त, दूरगमन करने की शक्ति से सम्पन्न, दीर्घकाल की स्थिति (आयु) वाले देवलोकों में से किसी एक देवलोक में देवरूप से उत्पन्न होता है,

वहाँ वह महती ऋद्धि से युक्त होता है यावत् दशों दिशाओं में उद्योत करता है, विशिष्ट कान्ति से शोभायमान होता है यावत् अत्यन्त रूपवान् देव होता है।

१. से णं तत्थ अन्ने देवे अन्नेसिं देवाणं देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेइ।
२. अप्पणिच्चियाओ देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेइ।
३. नो अप्पणामेव अप्पाणं विउव्विय-विउव्विय परियारेइ,

एगे वि य णं जीवे एगेणं समएणं एगं वेयं वेएइ, तं जहा–

१. इत्थिवेयं वा, २. पुरिसवेयं वा।

१. जं समयं इत्थिवेयं वेएइ, नो तं समयं पुरिसवेयं वेएइ।
२. जं समयं पुरिसवेयं वेएइ, नो तं समयं इत्थिवेयं वेएइ।

इत्थिवेयस्स उदएणं नो पुरिसवेयं वेएइ,
पुरिसवेयस्स उदएणं नो इत्थिवेयं वेएइ।
एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं वेयं वेएइ, तं जहा–

१. इत्थिवेयं वा, २. पुरिसवेयं वा।

इत्थी इत्थिवेएणं उदिण्णेणं पुरिसं पत्थेइ।

पुरिसो पुरिसवेएणं उदिण्णेणं इत्थिं पत्थेइ।

दो वि ते अण्णमण्णं पत्थेंति, तं जहा–

१. इत्थी वा पुरिसं, २. पुरिसे वा इत्थिं।

–विया. स. २, उ. ५, सु.१

१. वह देव वहाँ दूसरे देवों की देवियों को वश में करके उनके साथ परिचारणा करता है,
२. अपनी देवियों को ग्रहण करके उनके साथ भी परिचारणा करता है,
३. किन्तु स्वयं वैक्रिय करके अपने विकुर्वित रूप के साथ परिचारणा नहीं करता,

अतः एक जीव एक समय में दोनों वेदों में से किसी एक वेद का ही अनुभव करता है, यथा–

१. स्त्रीवेद, २. पुरुषवेद।

१. जब स्त्रीवेद को वेदता (अनुभव करता) है, तब पुरुषवेद को नहीं वेदता,
२. जिस समय पुरुषवेद को वेदता है, उस समय स्त्रीवेद को नहीं वेदता।

स्त्रीवेद का उदय होने से पुरुषवेद को नहीं वेदता,
पुरुषवेद का उदय होने से स्त्रीवेद को नहीं वेदता।
अतः एक जीव एक समय में दोनों वेदों में से किसी एक को ही वेदता है, यथा–

१. स्त्रीवेद, २. पुरुषवेद।

जब स्त्रीवेद का उदय होता है, तब स्त्री पुरुष की अभिलाषा करती है।

जब पुरुषवेद का उदय होता है, तब पुरुष स्त्री की अभिलाषा करता है।

अर्थात् दोनों परस्पर एक दूसरे की इच्छा करते हैं, यथा–

१. स्त्री पुरुष की, २. पुरुष स्त्री की।

७. सवेयग-अवेयगजीवाणं कायट्ठिई–

प. सवेयए णं भंते ! सवेयए त्ति कालओ केविचरं होइ ?

उ. गोयमा ! सवेयए तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. अणाईए वा अपज्जवसिए।
२. अणाईए वा सपज्जवसिए।
३. साईए वा सपज्जवसिए।

तत्थ णं जं से साईए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतंकालं, अणंताओ उस्सप्पिणि- ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं।[1]

प. इत्थिवेए णं भंते ! इत्थिवेए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! १. एगेणं आएसेणं जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं दसुत्तरं पलिओवमसयं पुव्वकोडिपुहुत्त-मब्भहियं।

७. सवेदक-अवेदक जीवों की कायस्थिति–

प्र. भंते ! सवेदक वाला जीव सवेदक के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! सवेदक तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. अनादि-अपर्यवसित
२. अनादि-सपर्यवसित
३. सादि-सपर्यवसित

उनमें से जो सादि-सपर्यवसित हैं, वे जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल तक, अर्थात् काल से अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी तक और क्षेत्र से देशोन अपार्ध पुद्गल परावर्तन पर्यन्त (जीव सवेदक रहता है)

प्र. भंते ! स्त्री वेद वाला जीव स्त्रीवेदक के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! १. एक मान्यता (अपेक्षा) से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट साधिक पूर्वकोटिपृथक्त्व एक सौ दस पल्योपम तक रहता है।

१. जीवा. पडि. ९, सु. २३२

२. एगेणं आएसेणं जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अट्ठारस पलिओवमाइं पुव्वकोडि पुहुत्तमब्भइयाइं

३. एगेणं आएसेणं जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चोद्दस पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भइयाइं

४. एगेणं आएसेणं जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं पलिओवमसयं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भइयां

५. एगेणं आएसेणं जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं पलिओवमपुहुत्त पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भइयं

प. पुरिसवेए णं भंते ! पुरिसवेए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहत्तं साइरेगं।

प. नपुंसगवेए णं भंते ! नपुंसगवेए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं वणप्फइकालो।

प. अवेयए णं भंते ! अवेयए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! अवेयए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. साईए वा अपज्जवसिए, २. साईए वा सपज्जवसिए।

तत्थ णं जे से साईए सपज्जवसिए से जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं[1]

–पण्ण. प. १८, सु. १३२६-१३३०

२. एक मान्यता से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट साधिक पूर्वकोटिपृथक्त्व अठारह पल्योपम तक रहता है।

३. एक मान्यता से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट साधिक पूर्वकोटिपृथक्त्व चौदह पल्योपम तक रहता है।

४. एक मान्यता से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट साधिक पूर्वकोटिपृथक्त्व सौ पल्योपम तक रहता है।

५. एक मान्यता से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व साधिक पल्योपमपृथक्त्व तक स्त्रीवेदक के रूप में रहता है।

प्र. भंते ! पुरुषवेद वाला जीव पुरुषवेदक के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपम शतपृथक्त्व तक पुरुषवेदक के रूप में रहता है।

प्र. भंते ! नपुंसकवेदक वाला जीव नपुंसकवेदक के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल पर्यन्त नपुंसक वेदक के रूप में रहता है।

प्र. भंते ! अवेदक वाला जीव अवेदक के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! अवेदक दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. सादि-अपर्यवसित, २. सादि-सपर्यवसित

इनमें से जो सादि सपर्यवसित हैं, वे जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त अवेदक के रूप में रहते हैं।

८. इत्थी-पुरिस नपुंसगाणं कायट्ठिई परूवणं–

प. इत्थीणं भंते ! इत्थित्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! १. एक्केणादेसेणं जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं दसुत्तरं पलिओवमसयं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियं।

२. एक्केणादेसेणं जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अट्ठारस पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियं।

३. एक्केणादेसेणं जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं चउदस पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियं।

४. एक्केणादेसेणं जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं पलिओवमसयं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियं।

५. एक्केणादेसेणं जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं पलिओवमपुहुत्तं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियं।

प. तिरिक्खजोणित्थी णं भंते ! तिरिक्खजोणित्थित्ति कालओ केवचिरं होइ ?

८. स्त्री-पुरुष-नपुंसकों की काय स्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! स्त्री, स्त्री के रूप में कितने समय तक रह सकती है ?

उ. गौतम ! १. एक अपेक्षा से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक एक सौ दस पल्योपम तक रह सकती है।

२. एक अपेक्षा से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक अठारह पल्योपम तक रह सकती है।

३. एक अपेक्षा से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक चौदह पल्योपम तक रह सकती है।

४. एक अपेक्षा से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक एक सौ पल्योपम तक रह सकती है।

५. एक अपेक्षा से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक पल्योपमपृथक्त्व तक रह सकती है।

प्र. भंते ! तिर्यञ्चयोनिक स्त्री तिर्यञ्चयोनिक स्त्री के रूप में कितने समय तक रह सकती है ?

---

१. (क) जीवा. पडि. ९, सु. २३२ (ख) जीवा. पडि. ९, सु. २४५

उ. गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं।[1]

जलयरीए जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडिपुहुत्तं।

चउप्पय् थलयर तिरिक्खजोणित्थी जहा ओहिया तिरिक्खजोणित्थी।

उरपरिसप्पी-भुयपरिसप्पित्थीणं जहा जलयरीणं,

खहयरित्थी णं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियं।

प. मणुस्सित्थी णं भंते ! मणुस्सित्थि त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! खेत्तं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं।[2]

धम्मचरणं पडुच्च जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

एवं कम्मभूमिया वि, भरहेरवया वि,

णवरं–खेत्तं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं देसूणपुव्वकोडिमब्भहियाइं।

धम्मचरणं पडुच्च जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

प. पुव्वविदेह-अवरविदेहित्थी णं भंते ! पुव्वविदेह अवरविदेहित्थि त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! खेत्तं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडिपुहुत्तं।

धम्मचरणं पडुच्च जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

प. अकम्मभूमिग-मणुस्सित्थी णं भंते ! अकम्मभूमिग-मणुस्सित्थि त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणं पलिओवमं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

संहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियाइं।

प. हेमवय-हेरण्णवय-अकम्मभूमियमणुस्सित्थी णं भंते ! हेमवय-हेरण्णवय अकम्मभूमिय मणुस्सित्थि त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणं पलिओवमं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं, उक्कोसेणं पलिओवमं।

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रह सकती है।

जलचरी जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व तक रह सकती है।

चतुष्पद स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक स्त्री के सम्बन्ध में औधिक तिर्यञ्चयोनिक स्त्री की तरह जानना चाहिए।

उरपरिसर्पस्त्री और भुजपरिसर्पस्त्री के सम्बन्ध में जलचरी के समान जानना चाहिए।

खेचरस्त्री जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक पल्योपम के असंख्यातवें भाग तक रह सकती है।

प्र. भंते ! मनुष्य स्त्री मनुष्य स्त्री के रूप में कितने काल तक रह सकती है ?

उ. गौतम ! क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रह सकती है।

धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटी तक रह सकती है।

कर्मभूमिक और भरत-ऐरवत क्षेत्र की स्त्रियों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेष– क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम तक रह सकती है।

धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि तक रह सकती है।

प्र. भंते ! पूर्वविदेह अपरविदेह को मनुष्य स्त्री पूर्वविदेह, अपरविदेह मनुष्य स्त्री के रूप में कितने काल तक रहती है?

उ. गौतम ! क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व तक रह सकती है।

धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि तक रह सकती है।

प्र. भंते ! अकर्मभूमिक मनुष्यस्त्री अकर्मभूमिक मनुष्य स्त्री के रूप में कितने काल तक रह सकती है ?

उ. गौतम ! जन्म की अपेक्षा जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग न्यून देशोन एक पल्योपम और उत्कृष्ट तीन पल्योपम तक रह सकती है।

संहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम तक रह सकती है।

प्र. भंते ! हैमवत-हैरण्यवत-अकर्मभूमिक मनुष्य स्त्री हैमवत-हैरण्यवत-अकर्मभूमिक मनुष्य स्त्री के रूप में कितने काल तक रह सकती है ?

उ. गौतम ! जन्म की अपेक्षा जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग न्यून देशोन एक पल्योपम और उत्कृष्ट एक पल्योपम तक रह सकती है।

---

१. (क) पण्ण. प. १८, सु. १२६२
(ख) जीवा. पडि. ६, सु २२५
(ग) जीवा. पडि. ९, सु. २५५

२. (क) पण्ण. प. १८, सु. १२६३
(ख) जीवा. पडि. ९, सु. २५५

संहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियं।

प. हरिवास-रम्मयवास-अकम्मभूमिग-मणुस्सित्थी णं भंते ! हरिवास - रम्मयवास - अकम्मभूमिग - मणुस्सित्थित्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं पलिओवमस्स अंसखेज्जइभागेणं ऊणगं, उक्कोसेणं दो पलिओवमाइं।

संहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दो पलिओवमाइं देसूणपुव्वकोडिमब्भहियाइं,

प. देवकुरूत्तरकुरूणं अकम्मभूमिग मणुस्सित्थीणं भंते ! देवकुरूत्तरकुरूणं अकम्मभूमिग मणुस्सित्थित्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणाइं तिन्नि पलिओवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगाइं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं।

संहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं देसूणाए पुव्वकोडीमब्भहियाइं।

प. अंतरदीवगअकम्मभूमिग-मणुस्सित्थी णं भंते ! अंतर दीवगकम्मभूमिग- मणुस्सित्थित्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं।

संहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियं।

प. देवित्थीणं भंते ! देवित्थित्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जच्चेव भवट्ठिई सच्चेव संचिट्ठणा भाणियव्वा। *–जीवा. पडि. २, सु. ४८ (१-३)*

प. पुरिसे णं भंते ! पुरिसेत्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं।

प. तिरिक्खजोणियपुरिसे णं भंते ! तिरिक्खजोणिय पुरिसे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं।

एवं तं चेव संचिट्ठणा जहा इत्थीणं जाव खहयर तिरिक्खजोणियपुरिसस्स संचिट्ठणा।

प. मणुस्सपुरिसेणं भंते ! मणुस्स पुरिसे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! खेत्तं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं,[1]

संहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि अधिक एक पल्योपम तक रह सकती है।

प्र. भंते ! हरिवर्ष-रम्यक्वर्ष-अकर्मभूमिक मनुष्य स्त्री हरिवर्ष-रम्यक्वर्ष-अकर्मभूमिक मनुष्य स्त्री के रूप में कितने काल तक रह सकती है ?

उ. गौतम ! जन्म की अपेक्षा जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग न्यून देशोन दो पल्योपम और उत्कृष्ट दो पल्योपम तक रह सकती है।

संहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि अधिक दो पल्योपम तक रह सकती है।

प्र. भंते ! देवकुरु उत्तरकुरु अकर्मभूमिक मनुष्य स्त्री देवकुरु उत्तरकुरु अकर्मभूमिक मनुष्य स्त्री के रूप में कितने काल तक रह सकती है ?

उ. गौतम ! जन्म की अपेक्षा जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग न्यून देशोन तीन पल्योपम और उत्कृष्ट तीन पल्योपम तक रह सकती है।

संहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम तक रह सकती है।

प्र. भंते ! अन्तर्द्वीपज अकर्मभूमिक मनुष्य स्त्री अन्तर्द्वीपज अकर्मभूमिक मनुष्य स्त्री के रूप में कितने काल तक रह सकती है ?

उ. गौतम ! जन्म की अपेक्षा जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग न्यून देशोन पल्योपम के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट भी पल्योपम के असंख्यातवें भाग तक रह सकती है।

संहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि अधिक पल्योपम के असंख्यातवें भाग तक रह सकती है।

प्र. भंते ! देव स्त्री–देव स्त्री के रूप में कितने काल तक रह सकती है ?

उ. गौतम ! जो उनकी भवस्थिति है वह उनकी कायस्थिति जाननी चाहिए।

प्र. भंते ! पुरुष, पुरुष के रूप में कितने काल तक रह सकता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक सागरोपम शतपृथक्त्व तक रह सकता है।

प्र. भंते ! तिर्यञ्चयोनिक-पुरुष तिर्यञ्चयोनिक पुरुष के रूप में कितने काल तक रह सकता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रह सकता है।

इस प्रकार जैसे स्त्रियों की कायस्थिति कही, उसी प्रकार खेचर तिर्यञ्चयोनिकपुरुषों तक की कायस्थिति जाननी चाहिए।

प्र. भंते ! मनुष्य पुरुष-मनुष्य पुरुष के रूप में कितने काल तक रह सकता है ?

उ. गौतम ! क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रह सकता है।

---

१. (क) जीवा. पडि. ३, सु. २०६ (ख) जीवा. पडि. ९, सु. २५५ (ग) उत्त. अ. ३६, गा. २०१

धम्मचरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

एवं सव्वत्थ जाव पुव्वविदेह-अवरविदेह कम्मभूमिग मणुस्सपुरिसाणं।

अकम्मभूमिग मणुस्सपुरिसाणं जहा अकम्मभूमिग मणुस्सित्थीणं जाव अंतरदीवगाणं।

देवाणं जच्चेव ठिई सच्चेव संचिट्ठणा जाव सव्वत्थसिद्धगाणं। *–जीवा. पडि. २, सु. ५४*

प. नपुंसए णं भंते ! नपुंसए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तरुकालो,

प. णेरइयनपुंसए णं भंते ! णेरइयनपुंसएत्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

एवं पुढवीए ठिई भाणियव्वा।

प. तिरिक्खजोणियनपुंसए णं भन्ते ! तिरिक्खजोणिय नपुंसएत्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

एवं एगिंदियनपुंसगस्स वण्णस्सइकाइयस्स वि एवमेव।

सेसाणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं-असंखेज्जाओ उस्सप्पिणी—ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असंखेज्जा लोया।

बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियनपुंसगाण य जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं।

प. पंचिंदिय तिरिक्खजोणिय नपुंसए णं भन्ते ! पंचिंदियतिरिक्खजोणियनपुंसए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडिपुहुत्तं।

एवं-जलयर-तिरिक्ख-चउप्पय-थलयर-उरपरिसप्प भुयपरिसप्प महोरगाण वि

प. मणुस्सनपुंसगस्स णं भंते ! मणुस्सनपुंसएत्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! खेत्तं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडिपुहुत्तं।

धम्मचरणं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि तक रह सकता है।

इसी प्रकार पूर्वविदेह, अपरविदेह कर्मभूमिक मनुष्य-पुरुषों तक की सर्वत्र कायस्थिति जाननी चाहिए।

अकर्मभूमिक मनुष्य पुरुषों यावत् अन्तर्द्वीपक मनुष्य पुरुषों के सम्बन्ध में अकर्मभूमिक मनुष्य स्त्रियों के समान जानना चाहिए।

देवपुरुषों की जो भवस्थिति कही है वही सर्वार्थसिद्ध तक के देव पुरुषों की कायस्थिति जाननी चाहिए।

प्र. भंते ! नपुंसक, नपुंसक के रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक रह सकता है।

प्र. भंते ! नैरयिक नपुंसक जीव नैरयिक नपुंसक के रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उ. गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम तक रह सकता है।

इसी प्रकार रत्नप्रभादि पृथ्वियों में भी काल स्थिति कहनी चाहिए।

प्र. भंते ! तिर्यग्योनिक नपुंसक जीव तिर्यग्योनिक नपुंसक के रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक रह सकता है।

इसी प्रकार एकेन्द्रिय नपुंसक तथा वनस्पतिकायिक नपुंसक भी इतने काल तक रह सकता है।

शेष (पृथ्वीकायिक, अपकायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक) नपुंसकों का जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्यात काल अर्थात् काल से असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी और क्षेत्र से असंख्यात लोक प्रमाण है।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय नपुंसकों का जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यात काल है।

प्र. भंते ! पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसक—पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसक के रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व तक रह सकता है।

इसी प्रकार जलचर, चतुष्पद, स्थलचर, उरपरिसर्प-भुजपरिसर्प महोरग पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक नपुंसकों का काल जानना चाहिए।

प्र. भंते ! मनुष्य नपुंसक-मनुष्य नपुंसक के रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उ. गौतम ! क्षेत्र की अपेक्षा-जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि पृथक्त्व तक रह सकता है।

धर्माचरण की अपेक्षा-जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि पृथक्त्व तक रह सकता है।

एवं-कम्मभूमग-भरहेरवय-पुव्वविदेह-अवरविदेहेसु वि भाणियव्वं।

प. अकम्मभूमगमणुस्सनपुंसएं णं भंते ! अकम्मभूमगमणुस्सनपुंसएत्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जम्मणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं मुहुत्तपुहूत्तं।

संहरणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी,

एवं सव्वेसिं जाव अन्तरदीवगाणं।

–जीवा. पडि. २, सु. ५९ (२)

कर्मभूमिक भरत-ऐरवत, पूर्वविदेह-अपरविदेह के (मनुष्य नपुंसकों के सम्बन्ध में) भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

प्र. भंते ! अकर्मभूमिक मनुष्य नपुंसक-अकर्मभूमिक मनुष्य नपुंसक के रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उ. गौतम ! जन्म की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट मुहूर्त पृथक्त्व तक रह सकता है।

संहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि तक रह सकता है।

इसी प्रकार अन्तर्द्वीपज मनुष्य नपुंसकों पर्यंत का काल कहना चाहिए।

९. सवेयग-अवेयग जीवाणं अंतरकाल परूवणं–

प. सवेयगस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ?

उ. गोयमा ! अणाइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं,

अणाइयस्स सपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं,

साईयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। –जीवा. पडि. ९, सु. २३२

प. इत्थीणं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं-वणस्सइकालो[1]।

एवं सव्वासिं तिरिक्खित्थीणं।

मणुस्सित्थीए खेत्तं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

धम्मचरणं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अणंतंकालं जाव अवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं।

एवं जाव पुव्वविदेह-अवरविदेहियाओ।

प. अकम्मभूमिगमणुस्सित्थीणं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ?

उ. गोयमा ! जम्मणं पडुच्च जहण्णेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

संहरणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

एवं जाव अंतरदीवियाओ।

देवित्थियाणं सव्वासिं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो। –जीवा. पडि. २, सु. ४९

प. पुरिसस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।[2]

तिरिक्खजोणियपुरिसाणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

९. सवेदक-अवेदक जीवों के अंतरकाल का परूपण–

प्र. भंते ! सवेदक का अंतर काल कितना है?

उ. गौतम ! अनादि-अपर्यवसित (सवेदक) का अन्तर नहीं है।

अनादि-सपर्यवसित (सवेदक) का भी अन्तर नहीं है।

किन्तु सादि-सपर्यवसित का अंतर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त का होता है।

प्र. भंते ! स्त्री का (पुनः स्त्री होने में) कितने काल का अंतर है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल अर्थात् वनस्पतिकाल है।

इसी प्रकार सभी तिर्यञ्च स्त्रियों का अंतर है।

मनुष्य स्त्रियों का अंतर काल क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकाल यावत् देशोन अपार्धपुद्गल परावर्तन है।

इसी प्रकार यावत् पूर्वविदेह-अपरविदेह की मनुष्य स्त्रियों का अन्तर काल जानना चाहिए।

प्र. भंते ! अकर्मभूमिक मनुष्य स्त्रियों का अन्तर काल कितना है?

उ. गौतम ! जन्म की अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल साधिक अन्तर्मुहूर्त दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अन्तर काल वनस्पतिकाल है।

संहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर काल वनस्पतिकाल है।

इसी प्रकार अन्तर्द्वीप पर्यन्त की स्त्रियों का अन्तर काल है।

सभी देवस्त्रियों का अन्तरकाल जघन्य अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

प्र. भंते ! पुरुष का (पुनः पुरुष होने में) कितने काल का अन्तर है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अंतरकाल वनस्पतिकाल है।

तिर्यग्योनिक पुरुषों का अन्तरकाल जघन्य अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अंतरकाल वनस्पतिकाल है।

---

१. (क) जीवा. पडि. २, सु. ६३ (ख) जीवा. पडि. ९, सु. २४५

२. (क) जीवा. पडि. २, सु. ६३ (ख) जीवा पडि. ९, सु. २४५

बेइंदियाईणं जाव खहयराणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

मणुस्सनपुंसगस्स खेत्तं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

धम्मचरणं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं।

एवं कम्मभूमगस्स वि भरहेरवयस्स पुव्वविदेह-अवरविदेहगस्स वि।

प. अकम्मभूमगमणुस्सनपुंसगस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ?

उ. गोयमा ! जम्मणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

संहरणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

एवं जाव अंतरदीवग त्ति। *–जीवा. पडि. २, सु. ५९ (३)*

प. अवेयगस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ?

उ. गोयमा ! साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं,

साइयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढ–पोग्गलपरियट्टं देसूणं[1]। *–जीवा. पडि. ९, सु. २३२*

१०. सवेयग-अवेयग जीवाणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं १. सवेयगाणं, २. इत्थीवेयगाणं, ३. पुरिसवेयगाणं, ४. नपुंसगवेयगाणं, ५. अवेयगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा पुरिसवेयगा,
२. इत्थीवेयगा संखेज्जगुणा,
३. अवेयगा अणंतगुणा,
४. नपुंसगवेयगा अणंतगुणा,[2]
५. सवेयगा विसेसाहिया[3]। *–पण्ण. प. ३, सु. २५३,*

११. (क) इत्थीणं अप्प बहुत्तं–

प. (१) एयासि णं भंते ! १. तिरिक्खजोणित्थियाणं, २. मणुस्सित्थियाणं, ३. देवित्थियाण य कयरा कयराहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवाओ मणुस्सित्थियाओ,
२. तिरिक्खजोणित्थियाओ असंखेज्जगुणाओ,
३. देवित्थियाओ असंखेज्जगुणाओ।

प. (२) एयासि णं भंते ! तिरिक्खजोणित्थियाणं, १. जलयरीणं, २. थलयरीणं, ३. खहयरीण य कयरा कयराहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवाओ खहयरतिरिक्ख-जोणित्थियाओ,

द्वीन्द्रियादिक जीवों से (पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक) खेचरों पर्यन्त अन्तर काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट वनस्पति काल है।

मनुष्य नपुंसकों का अन्तर काल क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य एक समय है और उत्कृष्ट अनन्त काल यावत् कुछ कम अपार्धपुद्गल परावर्तन काल प्रमाण है।

कर्मभूमिक भरत-ऐरवत-पूर्वविदेह-अपरविदेह के मनुष्य नपुंसकों का अन्तर काल भी इसी प्रकार है।

प्र. भंते ! अकर्मभूमि के मनुष्य नपुंसकों का अन्तर काल कितना है?

उ. गौतम ! जन्म की अपेक्षा अन्तर काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट वनस्पति काल है।

संहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

इसी प्रकार अन्तर्द्वीपक तक के मनुष्य नपुंसकों का अन्तर काल जानना चाहिए।

प्र. भंते ! अवेदक का अन्तर काल कितना है?

उ. गौतम ! सादि अपर्यवसित का अन्तर काल नहीं है।

सादि-सपर्यवसित का अन्तर काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अनन्तकाल यावत् देशोन अपार्धपुद्गल परावर्तन काल प्रमाण है।

१०. सवदेक-अवेदक जीवों का अल्प बहुत्व–

प्र. भंते ! इन १. सवेदक, २. स्त्रीवेदक, ३. पुरुषवेदक, ४. नपुंसकवेदक और ५. अवेदक जीवों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. पुरुषवेदक जीव सबसे अल्प हैं,
२. (उनसे) स्त्रीवेदक संख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) अवेदक अनन्तगुणे हैं,
४. (उनसे) नपुंसक वेदक अनन्तगुणे हैं,
५. (उनसे) सवेदक विशेषाधिक हैं।

११. (क) स्त्रियों का अल्पबहुत्व–

प्र. १. भंते ! इन १. तिर्यग्योनिक-स्त्रियों में, २. मनुष्य-स्त्रियों में और ३. देवस्त्रियों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प मनुष्य-स्त्रियां हैं,
२. (उनसे) तिर्यग्योनिक-स्त्रियां असंख्यातगुणी हैं,
३. (उनसे) देवस्त्रियां असंख्यातगुणी हैं।

प्र. २. भंते ! इन तिर्यग्योनिक १. जलचरी, २. स्थलचरी और ३. खेचरी स्त्रियों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. खेचरी तिर्यग्योनिक-स्त्रियां सबसे अल्प हैं,

---

१. जीवा. पडि. ९, सु. २४५ २. विया. स. ६, उ. ३, सु. २९ ३. सव्वत्थोवा अवेदगा, सवेयगा अणंतगुणा। –जीवा. पडि. ९, सु. २३२

१५. थलयर - तिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,
१६. जलयर - तिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,
१७. वाणमंतर-देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,
१८. जोइसिय-देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ।

—जीवा. प. २, सु. ५० (१-५)

(ख) पुरिसाणं अप्पबहुत्तं—

अप्पाबहुयाणि जहेवित्थीणं जाव

प. १. एएसि णं भंते ! १. देवपुरिसाणं भवणवासीणं, २. वाणमंतराणं, ३. जोइसियाणं, ४. वेमाणियाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा वेमाणियदेव-पुरिसा,
२. भवणवइदेव-पुरिसा असंखेज्जगुणा,
३. वाणमंतरदेव-पुरिसा असंखेज्जगुणा,
४. जोइसियदेव-पुरिसा संखेज्जगुणा।

प. २. एएसि णं भंते ! तिरिक्खजोणिय-पुरिसाणं १. जलयराणं, २. थलयराणं, ३. खहयराणं, मणुस्स-पुरिसाणं ४. कम्मभूमगाणं, ५. अकम्मभूमगाणं, ६. अंतरदीवगाणं, देवपुरिसाणं, ७. भवणवासीणं, ८. वाणमंतराणं, ९. जोइसियाणं, १०. वेमाणियाणं सोहम्माणं जाव सव्वट्ठसिद्धगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा अंतरदीवग-अकम्मभूमग-मणुस्सपुरिसा
२-३. देवकुरु-उत्तरकुरु-अकम्मभूमग- मणुस्सपुरिसा दोवि तुल्ला संखेज्जगुणा,
४-५. हरिवास - रम्मगवास - अकम्मभूमग-मणुस्सपुरिसा दोवि तुल्ला संखेज्जगुणा,
६-७. हेमवए - हेरण्णवए - अकम्मभूमग- मणुस्सपुरिसा दोवि तुल्ला संखेज्जगुणा,
८-९. भरहेरवए - कम्मभूमग - मणुस्सपुरिसा दोवि संखेज्जगुणा,
१०-११. पुव्वविदेह - अवरविदेह - कम्मभूमग-मणुस्सपुरिसा दोवि संखेज्जगुणा,
१२. अणुत्तरोववाइयदेव- पुरिसा असंखेज्जगुणा,
१३. उवरिम-गेविज्जदेव-पुरिसा संखेज्जगुणा,
१४. मज्झिम-गेविज्जदेव-पुरिसा संखेज्जगुणा,
१५. हेट्ठिम-गेविज्जदेव-पुरिसा संखेज्जगुणा,
१६-१९. अच्चुयकप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणा जाव आणयकप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणा,
२०. सहस्सारे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
२१-२४. महासुक्के कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा, जाव माहिंदे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
२५. सणंकुमारकप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
२६. ईसाणकप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,

१५. (उनसे) स्थलचरी तिर्यग्योनिक स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,
१६. (उनसे) जलचर तिर्यग्योनिक स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,
१७. (उनसे) वाणव्यंतरी देव-स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,
१८. (उनसे) ज्योतिष्क देवस्त्रियां संख्यातगुणी हैं।

(ख) पुरुषों का अल्पबहुत्व—

स्त्रियों के अल्पबहुत्व के समान यावत्—

प्र. १. भंते ! इन १. भवनवासी, २, वाणव्यंतर, ३. ज्योतिष्क और ४. वैमानिक देव-पुरुषों में कौन-किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प वैमानिक देव-पुरुष हैं,
२. (उनसे) भवनवासी देव-पुरुष असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) वाणव्यंतर देव-पुरुष असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) ज्योतिष्क देव-पुरुष संख्यातगुणे है।

प्र. २. भंते ! इन १. जलचर, २. स्थलचर, ३. खेचर तिर्यग्योनिक पुरुषों, ४. कर्मभूमिक, ५. अकर्मभूमिक, ६. अन्तर्द्वीपज मनुष्य पुरुषों, ७. भवनवासी, ८. वाणव्यंतर, ९. ज्योतिष्क, १०. सौधर्म से सवार्थसिद्ध पर्यंत के वैमानिक देव-पुरुषों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प अन्तर्द्वीपज अकर्मभूमिक मनुष्य-पुरुष हैं,
२-३. (उनसे) देवकुरु-उत्तरकुरु अकर्मभूमिक मनुष्य-पुरुष दोनों तुल्य और संख्यातगुणे हैं,
४-५. (उनसे) हरिवर्ष-रम्यकूवर्ष अकर्मभूमिक मनुष्य-पुरुष दोनों तुल्य और संख्यातगुणे हैं,
६-७. (उनसे) हेमवत-हैरण्यवत अकर्मभूमिक मनुष्य-पुरुष दोनों तुल्य और संख्यातगुणे हैं,
८-९. (उनसे) भरत-ऐरवत कर्मभूमिक मनुष्य-पुरुष दोनों संख्यातगुणे हैं,
१०-११. (उनसे) पूर्वविदेह-अपरविदेह कर्मभूमिक मनुष्य-पुरुष दोनों संख्यातगुणे हैं,
१२. (उनसे) अनुत्तरोपपातिक देव-पुरुष असंख्यातगुणे हैं,
१३. (उनसे) उपरिम ग्रैवेयक देवपुरुष संख्यातगुणे हैं ?
१४. (उनसे) मध्यम ग्रैवेयक देवपुरुष संख्यातगुणे हैं,
१५. (उनसे) अधस्तन ग्रैवेयक देव-पुरुष संख्यातगुणे हैं,
१६-१९. (उनसे) अच्युत कल्प देवपुरुष संख्यातगुणे हैं यावत् आनत कल्प के देवपुरुष संख्यातगुणे हैं,
२०. (उनसे) सहस्रारकल्प के देव-पुरुष असंख्यातगुणे हैं,
२१-२४. (उनसे) महाशुक्रकल्प के देव-पुरुष असंख्यातगुणे हैं यावत् माहेन्द्रकल्प के देव-पुरुष असंख्यातगुणे हैं,
२५. (उनसे) सनत्कुमारकल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणे हैं,
२६. (उनसे) ईशानकल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणे हैं,

२. ठिईविप्परिणामणोवक्कमे,
३. अणुभावविप्परिणामणोवक्कमे,
४. पएसविप्परिणामणोवक्कमे।

चउव्विहे संकमे पण्णत्ते, तं जहा–
१. पगइसंकमे, २. ठिईसंकमे,
३. अणुभावसंकमे, ४. पएससंकमे।

चउव्विहे णिहत्ते पण्णत्ते, तं जहा–
१. पगइणिहत्ते, २. ठिईणिहत्ते,
३. अणुभावणिहत्ते, ४. पएसणिहत्ते।

चउव्विहे णिगाइए पण्णत्ते, तं जहा–
१. पगइणिगाइए, २. ठिईणिगाइए,
३. अणुभावणिगाइए, ४. पएसणिगाइए।

चउव्विहे अप्पावहुए पण्णत्ते, तं जहा–
१. पगइअप्पाबहुए, २. ठिईअप्पाबहुए,
३. अणुभावअप्पाबहुए, ४. पएसअप्पाबहुए।

–ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २९६ (२-१०)

२. स्थिति-विपरिणामनोपक्रम,
३. अनुभाव-विपरिणामनोपक्रम,
४. प्रदेश-विपरिणामनोपक्रम।

संक्रम चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. प्रकृति-संक्रम, २. स्थिति-संक्रम,
३. अनुभाव-संक्रम, ४. प्रदेश-संक्रम।

निधत्त चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. प्रकृति-निधत्त, २. स्थिति-निधत्त,
३. अनुभाव-निधत्त, ४. प्रदेश-निधत्त।

निकाचित चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. प्रकृति-निकाचित, २. स्थिति-निकाचित,
३. अनुभाव-निकाचित, ४. प्रदेश-निकाचित।

अल्पबहुत्व चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. प्रकृति-अल्पवहुत्व, २. स्थिति-अल्पवहुत्व,
३. अनुभाव-अल्पवहुत्व, ३. प्रदेश-अल्पबहुत्व।

७४. अवद्धंस भेएहिं कम्मबंध परूवणं–

चउव्विहे अवद्धंसे पण्णत्ते, तं जहा–
१. आसुरे, २. आभिओगे,
३. संमोहे, ४. देवकिब्बिसे।

(१) चउहिं ठाणेहिं जीवा आसुरत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा–
१. कोहसीलयाए,
२. पाहुडसीलयाए,
३. संसत्ततवोकम्मेणं,
४. निमित्ताजीवयाए।

(२) चउहिं ठाणेहिं जीवा आभिओगत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा–
१. अत्तुक्कोसेणं,
२. परपरिवाएणं,
३. भूइकम्मेणं,
४. कोउयकरणेणं।

(३) चउहिं ठाणेहिं जीवा सम्मोहत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा–
१. उम्मग्गदेसणाए,
२. मग्गंतराएणं,
३. कामासंसपओगेणं,
४. भिज्झानियाणकरणेणं।

(४) चउहिं ठाणेहिं जीवा देवकिब्बिसियत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा–
१. अरहंताणं अवन्नं वयमाणे,
२. अरहंतपन्नत्तस्स धम्मस्स अवन्नं वयमाणे,
३. आयरिय-उवज्झायाणमवन्नं वयमाणे,
४. चाउवण्णस्स संघस्स अवन्नं वयमाणे।

–ठाणं अ. ४, उ. ४, सु. ३५४

७४. अपध्वंस के भेद और उनसे कर्म बंध का प्ररूपण–

अपध्वंस (साधना का विनाश) चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. आसुर-अपध्वंस, २. आभियोग-अपध्वंस,
३. सम्मोह-अपध्वंस, ४. देवकिल्विष-अपध्वंस।

(१) चार स्थानों से जीव आसुरत्व-कर्म का अर्जन करता है, यथा–
१. (कोपशीलता) क्रोधी स्वभाव से,
२. प्राभृतशीलता–कलहस्वभाव से,
३. संसक्त तप-कर्म (प्राप्ति की अभिलाषा रखकर तप करने से),
४. निमित्त जीविता–निमित्तादि बताकर आजीविका करने से।

(२) चार स्थानों से जीव आभियोगित्व-कर्म का अर्जन करता है, यथा–
१. आत्मोत्कर्ष–आत्म-गुणों का अभिमान करने से,
२. पर-परिवाद-दूसरों का अवर्णवाद वोलने से,
३. भूतिकर्म–भस्म, लेप आदि के द्वारा चिकित्सा करने से,
४. कौतुककरण–मंत्रित जल द्वारा स्नान कराने से।

(३) चार स्थानों से जीव सम्मोहत्व-कर्म का अर्जन करता है, यथा–
१. उन्मार्ग देशना–मिथ्या धर्म का प्ररूपण करने से,
२. मार्गान्तराय–सन्मार्ग से विचलित करने पर,
३. कामाशंसाप्रयोग–विषयों में अभिलाषा करने पर,
४. मिथ्यानिदानकरण–गृद्धिपूर्वक निदान करने से।

(४) चार स्थानों से जीव देव-किल्विपिकत्व कर्म का अर्जन करता है, यथा–
१. अर्हन्तों का अवर्णवाद वोलने से,
२. अर्हन्त प्रज्ञप्त धर्म का अवर्णवाद वोलने से,
३. आचार्य तथा उपाध्याय का अवर्णवाद वोलने से,
४. चतुर्विध संघ का अवर्णवाद वोलने से।

७५. जीव-चउवीसदंडएसु णाणावरणिज्जाइ कम्म बंधमाणे कइ कम्मपयडी बंधं–

प. १. जीवे णं भंते। णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणे कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! सत्तविहबंधए वा, अट्ठविहबंधए वा, छव्विहबंधए वा।

प. दं. १. णेरइए णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणे कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! सत्तविहबंधए वा, अट्ठविहबंधए वा।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिए।

दं. २१. णवरं–मणूसे जहा जीवे।

प. जीवा णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणा कइ कम्मपगडीओ बंधंति ?

उ. गोयमा ! १. सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य,

२. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, छव्विहबंधगे य,

३. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, छव्विहबंधगा य।

प. दं. १. णेरइया णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणा कइ कम्मपगडीओ बंधंति ?

उ. गोयमा ! १. सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा,

२. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगे य,

३. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य,

तिण्णि भंगा।

दं. २-११. एवं असुरकुमारा जाव थणियकुमारा

प. दं. १२. पुढविक्काइयाणं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणा कइ कम्मपगडीओ बंधंति ?

उ. गोयमा ! सत्तविहबंधगा वि, अट्ठविहबंधगा वि।

दं. १३-१६. एवं जाव वणस्सइकाइया।

दं. १७-२०. वियलाणं पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाण य तियभंगो–

१. सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा,

२. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधए य,

३. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य।

७५. जीव-चौबीसदंडकों में ज्ञानावरणीय आदि कर्म बांधते हु[illegible] कितनी कर्म प्रकृतियों का बन्ध–

प्र. १. भंते ! (एक) जीव ज्ञानावरणीयकर्म को बांधता [illegible] कितनी कर्म प्रकृतियों को बांधता है ?

उ. गौतम ! वह सात, आठ या छह कर्म-प्रकृतियों का [illegible] होता है।

प्र. दं. १. भंते ! (एक) नैरयिक जीव ज्ञानावरणीयक[illegible] बांधता हुआ कितनी कर्म-प्रकृतियों को बांधता है ?

उ. गौतम ! वह सात या आठ कर्म-प्रकृतियों का बंधक हो[illegible]

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

दं. २१. विशेष–मनुष्य-सम्बन्धी कथन जीव के समान ज[illegible] चाहिए।

प्र. भंते ! (बहुत) जीव ज्ञानावरणीयकर्म को बांधते हुए वि[illegible] कर्म-प्रकृतियों को बांधते हैं ?

उ. गौतम ! १. सभी जीव सात या आठ कर्म-प्रकृतियों के ब[illegible] होते हैं,

२. अथवा बहुत से जीव सात या आठ कर्म-प्रकृति[illegible] बन्धक होते हैं और एक जीव छह कर्म प्रकृति[illegible] बन्धक होता है।

३. अथवा बहुत से जीव सात, आठ या छह कर्म-प्रकृ[illegible] के बन्धक होते हैं।

प्र. दं. १. भंते ! (बहुत से) नैरयिक ज्ञानावरणीयकर्म को ब[illegible] हुए कितनी कर्म-प्रकृतियों को बांधते हैं ?

उ. गौतम ! १. सभी नैरयिक सात कर्म-प्रकृतियों के ब[illegible] होते हैं।

२. अथवा बहुत से नैरयिक सात कर्म-प्रकृतियों के ब[illegible] होते हैं और एक नैरयिक आठ कर्म-प्रकृतियों का ब[illegible] होता है,

३. अथवा बहुत से नैरयिक सात या आठ कर्म-प्रकृति[illegible] बन्धक होते हैं।

ये तीन भंग होते हैं।

दं. २-११. इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों [illegible] जानना चाहिए।

प्र. दं. १२. भंते ! (बहुत) पृथ्वीकायिक जीव ज्ञानावरणी[illegible] को बांधते हुए कितनी कर्म प्रकृतियों को बांधते हैं ?

उ. गौतम ! वे सात या आठ कर्म प्रकृतियों के बन्धक होते है[illegible]

दं. १३-१६ इसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीवों पर्यन्त क[illegible] चाहिए।

दं. १७-२०. विकलेन्द्रियों और तिर्यञ्च-पंचेन्द्रिययोनिक[illegible] तीन भंग होते हैं–

१. सभी सात कर्मप्रकृतियों के बन्धक होते हैं,

२. अथवा बहुत से सात कर्मप्रकृतियों के बंधक होते हैं [illegible] एक आठ कर्म प्रकृतियों का बन्धक होता है।

३. अथवा बहुत-से सात और आठ कर्मप्रकृतियों के ब[illegible] होते हैं।

प. दं. २१. मणूसा णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणा कइ कम्मपगडीओ बंधंति ?

उ. गोयमा ! १. सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा,

२. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधए य,

३. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य,

४. अहवा सत्तविहबंधगा य, छव्विहबंधए य,

५. अहवा सत्तविहबंधगा य, छव्विहबंधगा य,

६. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधए य, छव्विहबंधए य,

७. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधए य, छव्विहबंधगा य,

८. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, छव्विहबंधए य,

९. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, छव्विहबंधगा य,

एवं एए णव भंगा।

दं. २२-२४. सेसा वाणमंतराइया जाव वेमाणिया जहा णेरइया सत्तअट्ठविहादिबंधगा भणिया तहा भाणियव्वा।

२. एवं जहा णाणावरणं बंधमाणा जाहिं भणिया दंसणावरणं पि बंधमाणा ताहिं जीवादीया एगत्त-पोहत्तेहिं भाणियव्वा।

प. ३. वेयणिज्जं बंधमाणे जीवे कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! सत्तविहबंधए वा, अट्ठविहबंधए वा, छव्विहबंधए वा, एगविहबंधए वा।

दं. २१. एवं मणूसे वि।

दं. १-२४. सेसा णारगादीया सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य जाव वेमाणिए।

प. जीवा णं भंते ! वेयणिज्जं कम्मं बंधमाणा कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! १. सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, एगविहबंधगा य,

२. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, छव्विहबंधगे य।

३. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, छव्विहबंधगा य।

दं. १-२४. अवसेसा णारगादीया जाव वेमाणिया जाओ णाणावरणं बंधमाणा बंधंति ताहिं भाणियव्वा,

[illegible]

प्र. दं. २१. भंते ! (बहुत) मनुष्य ज्ञानावरणीयकर्म को बांधते हुए कितनी कर्मप्रकृतियों को बांधते हैं ?

उ. गौतम ! १. सभी (मनुष्य) सात कर्मप्रकृतियों के बन्धक होते हैं,

२. अथवा बहुत-से सात के बन्धक होते हैं और एक आठ का बन्धक होता है,

३. अथवा बहुत-से सात और आठ के बन्धक होते हैं,

४. अथवा बहुत-से सात के बन्धक होते हैं और एक छह का बन्धक होता है,

५. अथवा बहुत से सात और छह के बन्धक होते हैं।

६. अथवा बहुत से सात के बन्धक होते हैं तथा एक आठ का और एक छह का बन्धक होता है,

७. अथवा बहुत से सात के बन्धक होते हैं, एक आठ का बन्धक होता है और बहुत से छह के बन्धक होते हैं,

८. अथवा बहुत से सात के और बहुत से आठ के बंधक होते हैं और एक छह का बन्धक होता है।

९. अथवा बहुत से सात, आठ और छह के बन्धक होते हैं।

इस प्रकार ये कुल नौ भंग होते हैं।

दं. २२-२४. शेष वाणव्यन्तरादि से वैमानिक-पर्यन्त जैसे नैरयिकों में सात आठ आदि कर्म-प्रकृतियों के बन्धक कहे हैं उसी प्रकार कहने चाहिए।

२. जिस प्रकार ज्ञानावरणीयकर्म को बांधते हुए कर्म-प्रकृतियों के बन्ध का कथन किया, उसी प्रकार दर्शनावरणीय-कर्म को बांधते हुए जीव आदि में एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से बन्ध का कथन करना चाहिए।

प्र. ३. भंते ! वेदनीयकर्म को बांधता हुआ एक जीव कितनी कर्मप्रकृतियां बांधता है ?

उ. गौतम ! सात, आठ, छह या एक प्रकृति का बन्धक होता है।

दं. २१. मनुष्य के सम्बन्ध में भी ऐसा ही कहना चाहिए।

दं. १-२४. शेष नारक आदि वैमानिक पर्यन्त सप्तविध और अष्ट विध बन्धक होते हैं,

प्र. भंते ! (बहुत से) जीव वेदनीयकर्म को बांधते हुए कितनी कर्मप्रकृतियों को बांधते हैं ?

उ. गौतम ! १. सभी जीव सप्तविधबन्धक, अष्टविधबन्धक, एक विध बन्धक होते हैं।

२. अथवा बहुत से जीव सप्तविध बन्धक अष्टविध बन्धक और एकविध बन्धक होते हैं और एक जीव षड्विध बन्धक होता है।

३. अथवा बहुत से जीव सप्तविधबन्धक, अष्टविधबन्धक, एकविधबन्धक या छहविधबन्धक होते हैं।

दं. १-२४ शेष नारकादि से वैमानिक पर्यन्त ज्ञानावरणीय को बांधते हुए जितनी प्रकृतियों को बांधते हैं, उतनी का बन्ध यहाँ भी कहना चाहिए।

विशेष–मनुष्य का नहीं कहना चाहिए।

प. दं. २१. मणुसा णं भंते ! वेयणिज्जं कम्मं बंधमाणा कइ कम्मपगडीओ बंधंति ?

उ. गोयमा ! १. सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य,

२. अहवा सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अट्ठविहबंधए य,

३. अहवा सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य,

४. अहवा सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, छव्विहबंधगे य,

५. अहवा सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, छव्विहबंधगा य,

६. अहवा सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अट्ठविहबंधए य, छव्विहबंधए य,

७. अहवा सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अट्ठविहबंधए य, छव्वियबंधगा य,

८. अहवा सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा , छव्विहबंधए य,

९. अहवा सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, छव्विहबंधगा य।

एवं णव भंगा।

प. ४. मोहणिज्जं बंधमाणे जीवे कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

जीवेगिंदिया सत्तविह बंधगा वि, अट्ठविहबंधगा वि।

प. ५. जीवे णं भंते ! आउयं कम्मं बंधमाणे कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! णियमा अट्ठ।

दं. १-२४. एवं णेरइए जाव वेमाणिए।

एवं पुहत्तेण वि।

प. ६-८ णाम-गोय-अंतरायं बंधमाणे जीवे कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! जाओ णाणावरणिज्जं बंधमाणे बंधइ, ताहिं भाणियव्वो।

दं. १-२४. एवं णेरइए वि जाव वेमाणिए।

एवं पुहत्तेण वि भाणियव्वं।[1]

—पण्ण. प. २४, सु. १७५५-१७६८

प्र. दं. २१. भंते ! मनुष्य वेदनीयकर्म को बांधते हुए कितन[illegible] प्रकृतियों को बांधते हैं ?

उ. गौतम ! १. सभी मनुष्य सप्तविधबन्धक और एकविध[illegible] होते हैं।

२. अथवा बहुत से सप्तविधबन्धक एवं एकविधबन्ध[illegible] हैं और एक अष्टविधबन्धक होता है।

३. अथवा बहुत से सप्तविधबन्धक एवं एकविधबन्ध[illegible] हैं, अनेक अष्टविधबन्धक होते है।

४. अथवा बहुत से सप्तविधबन्धक एवं एकविधबन्ध[illegible] हैं और एक षड्विधबन्धक होता है।

५. अथवा बहुत से सप्तविधबन्धक एवं एकविधबन्ध[illegible] हैं और अनेक षडविधबन्धक होते हैं।

६. अथवा बहुत से सप्तविधबन्धक एवं एकविधबन्ध[illegible] हैं और एक अष्टविधबन्धक तथा एक षडविध[illegible] होता है।

७. अथवा बहुत से सप्तविधबन्धक एवं एकविधबन्ध[illegible] हैं, एक अष्टविधबन्धक होता है और बहुत से ष[illegible] बन्धक होते हैं।

८. अथवा बहुत से सप्तविधबन्धक, एकविधब[illegible] अष्टविधबन्धक होते हैं और एक षड्विधब[illegible] होता है।

९. अथवा बहुत से सप्तविधबन्धक, एकविधब[illegible] अष्टविधबन्धक और षड्विधबन्धक होते हैं।

इस प्रकार ये नौ भंग होते हैं।

प्र. ४. भंते ! मोहनीय कर्म बांधता हुआ जीव कि[illegible] कर्मप्रकृतियों को बांधता है ?

उ. गौतम ! जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग [illegible] चाहिए।

जीव और एकेन्द्रिय सप्तविधबन्धक भी होते हैं [illegible] अष्टविधबन्धक भी होते हैं।

प्र. ५. भंते ! आयुकर्म को बांधता हुआ जीव कि[illegible] कर्मप्रकृतियों को बांधता है ?

उ. गौतम ! नियम से आठ कर्म प्रकृतियों को बांधता है।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिक पर्यन्त [illegible] चाहिए।

२. इसी प्रकार बहु वचन भी कहना चाहिए।

प्र. ६-८ भंते ! नाम, गोत्र और अन्तरायकर्म को बांधता [illegible] जीव कितनी कर्मप्रकृतियों को बांधता है ?

उ. गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्म को बांधता हुआ जिन [illegible] प्रकृतियों को बांधता है वे ही यहां कहनी चाहिए।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त क[illegible] चाहिए।

इसी प्रकार-बहु वचन में भी कहना चाहिए।

१. (क) विया. स. १६, उ. ३, सु. ४ (ख) विया. स. ६, उ. ९, सु. १

प. दं. २१. मणूसा णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणा कइ कम्मपगडीओ बंधंति ?

उ. गोयमा ! १. सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा,

२. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधए य,

३. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य,

४. अहवा सत्तविहबंधगा य, छव्विहबंधए य,

५. अहवा सत्तविहबंधगा य, छव्विहबंधगा य,

६. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधए य, छव्विहबंधए य,

७. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधए य, छव्विहबंधगा य,

८. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, छव्विहबंधए य,

९. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, छव्विहबंधगा य,

एवं एए णव भंगा।

दं. २२-२४. सेसा वाणमंतराइया जाव वेमाणिया जहा णेरइया सत्तअट्ठविहादिबंधगा भणिया तहा भाणियव्वा।

२. एवं जहा णाणावरणं बंधमाणा जाहिं भणिया दंसणावरणं पि बंधमाणा ताहिं जीवादीया एगत्त-पोहत्तेहिं भाणियव्वा।

प. ३. वेयणिज्जं बंधमाणे जीवे कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! सत्तविहबंधए वा, अट्ठविहबंधए वा, छव्विहबंधए वा, एगविहबंधए वा।

दं. २१. एवं मणूसे वि।

दं. १-२४. सेसा णारगादीया सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य जाव वेमाणिए।

प. जीवा णं भंते ! वेयणिज्जं कम्मं बंधमाणा कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! १. सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, एगविहबंधगा य,

२. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, छव्विहबंधगे य।

३. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, छव्विहबंधगा य।

दं. १-२४. अवसेसा णारगादीया जाव वेमाणिया जाओ णाणावरणं बंधमाणा बंधंति ताहिं भाणियव्वा,

णवरं–मणुस्सा न भण्णइ।

प्र. दं. २१. भंते ! (बहुत) मनुष्य ज्ञानावरणीयकर्म को बांधते हुए कितनी कर्मप्रकृतियों को बांधते हैं ?

उ. गौतम ! १. सभी (मनुष्य) सात कर्मप्रकृतियों के बन्धक होते हैं,

२. अथवा बहुत-से सात के बन्धक होते हैं और एक आठ का बन्धक होता है,

३. अथवा बहुत-से सात और आठ के बन्धक होते हैं,

४. अथवा बहुत-से सात के बन्धक होते हैं और एक छह का बन्धक होता है,

५. अथवा बहुत से सात और छह के बन्धक होते हैं।

६. अथवा बहुत से सात के बन्धक होते हैं तथा एक आठ का और एक छह का बन्धक होता है,

७. अथवा बहुत से सात के बन्धक होते हैं, एक आठ का बन्धक होता है और बहुत से छह के बन्धक होते हैं,

८. अथवा बहुत से सात के और बहुत से आठ के बंधक होते हैं और एक छह का बन्धक होता है।

९. अथवा बहुत से सात, आठ और छह के बन्धक होते हैं।

इस प्रकार ये कुल नौ भंग होते हैं।

दं. २२-२४. शेष वाणव्यन्तरादि से वैमानिक-पर्यन्त जैसे नैरयिकों में सात आठ आदि कर्म-प्रकृतियों के बन्धक कहे हैं उसी प्रकार कहने चाहिए।

२. जिस प्रकार ज्ञानावरणीयकर्म को बांधते हुए कर्म-प्रकृतियों के बन्ध का कथन किया, उसी प्रकार दर्शनावरणीय-कर्म को बांधते हुए जीव आदि में एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से बन्ध का कथन करना चाहिए।

प्र. ३. भंते ! वेदनीयकर्म को बांधता हुआ एक जीव कितनी कर्मप्रकृतियां बांधता है ?

उ. गौतम ! सात, आठ, छह या एक प्रकृति का बन्धक होता है।

दं. २१. मनुष्य के सम्बन्ध में भी ऐसा ही कहना चाहिए।

दं. १-२४. शेष नारक आदि वैमानिक पर्यन्त सप्तविध और अष्ट विध बन्धक होते हैं,

प्र. भंते ! (बहुत से) जीव वेदनीयकर्म को बांधते हुए कितनी कर्मप्रकृतियों को बांधते हैं ?

उ. गौतम ! १. सभी जीव सप्तविधबन्धक, अष्टविधबन्धक, एक विध बन्धक होते हैं।

२. अथवा बहुत से जीव सप्तविध बन्धक अष्टविध बन्धक और एकविध बन्धक होते हैं और एक जीव षड्विध बन्धक होता है।

३. अथवा बहुत से जीव सप्तविधबन्धक, अष्टविधबन्धक, एकविधबन्धक या छहविधबन्धक होते हैं।

दं. १-२४ शेष नारकादि से वैमानिक पर्यन्त ज्ञानावरणीय को बांधते हुए जितनी प्रकृतियों को बांधते हैं, उतनी का बन्ध यहाँ भी कहना चाहिए।

विशेष–मनुष्य का नहीं कहना चाहिए।

प. दं. २१. मणुसा णं भंते ! वेयणिज्जं कम्मं बंधमाणा कइ कम्मपगडीओ बंधंति ?

उ. गोयमा ! १. सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य,

२. **अहवा** सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अट्ठविहबंधए य,

३. **अहवा** सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य,

४. **अहवा** सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, छव्विहबंधगे य,

५. **अहवा** सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, छव्विहबंधगा य,

६. **अहवा** सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अट्ठविहबंधए य, छव्विहबंधए य,

७. **अहवा** सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अट्ठविहबंधए य, छव्वियबंधगा य,

८. **अहवा** सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा , छव्विहबंधए य,

९. **अहवा** सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, छव्विहबंधगा य।

एवं णव भंगा।

प. ४. मोहणिज्जं बंधमाणे जीवे कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

जीवेगिंदिया सत्तविह बंधगा वि, अट्ठविहबंधगा वि।

प. ५. जीवे णं भंते ! आउयं कम्मं बंधमाणे कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! णियमा अट्ठ।

दं. १-२४. एवं णेरइए जाव वेमाणिए।

एवं पुहत्तेण वि।

प. ६-८ णाम-गोय-अंतरायं बंधमाणे जीवे कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! जाओ णाणावरणिज्जं वंधमाणे वंधइ, ताहिं भाणियव्वो।

दं. १-२४. एवं णेरइए वि जाव वेमाणिए।

एवं पुहत्तेण वि भाणियव्वं।[1]

—पण्ण. प. २४, सु. १७५५-१७६८

प्र. दं. २१. भंते ! मनुष्य वेदनीयकर्म को बांधते हुए कितनी कर्म प्रकृतियों को बांधते हैं ?

उ. गौतम ! १. सभी मनुष्य सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक होते हैं।

२. अथवा बहुत से सप्तविधबन्धक एवं एकविधबन्धक होते हैं और एक अष्टविधबन्धक होता है।

३. अथवा बहुत से सप्तविधबन्धक एवं एकविधबन्धक होते हैं, अनेक अष्टविधबन्धक होते है।

४. अथवा बहुत से सप्तविधबन्धक एवं एकविधबन्धक होते हैं और एक षड्विधबन्धक होता है।

५. अथवा बहुत से सप्तविधबन्धक एवं एकविधबन्धक होते हैं और अनेक षडविधबन्धक होते हैं।

६. अथवा बहुत से सप्तविधबन्धक एवं एकविधबन्धक होते हैं और एक अष्टविधबन्धक तथा एक षडविधबन्धक होता है।

७. अथवा बहुत से सप्तविधबन्धक एवं एकविधबन्धक होते हैं, एक अष्टविधबन्धक होता है और बहुत से षड्विध वन्धक होते हैं।

८. अथवा बहुत से सप्तविधबन्धक, एकविधबन्धक, अष्टविधबन्धक होते हैं और एक षड्विधबन्धक होता है।

९. अथवा बहुत से सप्तविधवन्धक, एकविधबन्धक, अष्टविधवन्धक और षड्विधबन्धक होते हैं।

इस प्रकार ये नौ भंग होते हैं।

प्र. ४. भंते ! मोहनीय कर्म बांधता हुआ जीव कितनी कर्मप्रकृतियों को बांधता है ?

उ. गौतम ! जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिए।

जीव और एकेन्द्रिय सप्तविधवन्धक भी होते हैं और अष्टविधवन्धक भी होते हैं।

प्र. ५. भंते ! आयुकर्म को वांधता हुआ जीव कितनी कर्मप्रकृतियों को वांधता है ?

उ. गौतम ! नियम से आठ कर्म प्रकृतियों को वांधता है।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

२. इसी प्रकार वहु वचन भी कहना चाहिए।

प्र. ६-८ भंते ! नाम, गोत्र और अन्तरायकर्म को वांधता हुआ जीव कितनी कर्मप्रकृतियों को वांधता है ?

उ. गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्म को बांधता हुआ जिन कर्म-प्रकृतियों को वांधता है वे ही यहां कहनी चाहिए।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार-वहु वचन में भी कहना चाहिए।

---

१. (क) विया. स. १६, उ. ३, सु. ४ (ख) विया. स. ६, उ. ९, सु. १

७६. जीव चउवीसदंडएसु हस्सोसुयमाणेसु कम्मपयडि बंधो–

प. छउमत्थे णं भंते ! मणुस्से हसेज्ज वा उस्सुआएज्ज वा ?

उ. हंता, गोयमा ! हसेज्ज वा, उस्सुआएज्ज वा।

प. जहा णं भंते ! छउमत्थे मणुस्से हसेज्ज वा उस्सुआएज्ज वा तहा णं केवली वि हसेज्ज वा, उस्सुयाएज्ज वा ?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"छउमत्थे मणुस्से हसेज्ज वा उस्सुआएज्जा वा नो णं तहा केवली हसेज्ज वा, उस्सुआएज्ज वा ?"

उ. गोयमा ! जं णं जीवा चरित्तमोहणिज्जकम्मस्स उदएणं हसंति वा, उस्सुआयंति वा, से णं केवलिस्स नत्थि,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'छउमत्थे मणुस्से हसेज्ज वा उस्सुआएज्ज वा नो णं तहा केवली हसेज्ज वा, उस्सुआएज्ज वा।'

प. जीवे णं भंते ! हसमाणे वा उस्सुआमाणे वा कइ कम्मपगडिओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! सत्तविहबंधए वा, अट्ठविबंधए वा।

दं. १-२४. एवं नेरइए जाव वेमाणिए।

पोहत्तिएहिं जीवेगिंदयवज्जो तियभंगो।

–विया. स. ५, उ. ४, सु. ५-९

७६. जीव-चौबीस दंडकों में हास्य और उत्सुकता वालों के कर्मप्रकृतियों का बंध–

प्र. भंते ! क्या छद्मस्थ मनुष्य हंसता है तथा (किसी पदार्थ को ग्रहण करने के लिए) उत्सुक (उतावला) होता है ?

उ. हां, गौतम ! छद्मस्थ मनुष्य हंसता है तथा उत्सुक होता है।

प्र. भंते ! जैसे छद्मस्थ मनुष्य हंसता है तथा उत्सुक होता है, वैसे ही क्या केवली मनुष्य भी हंसता और उत्सुक होता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"छद्मस्थ मनुष्य की तरह केवली मनुष्य न तो हंसता है और न उत्सुक होता है ?"

उ. गौतम ! जीव चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से हंसते हैं और उत्सुक होते हैं, किन्तु वह (चारित्रमोहनीय कर्म) केवली के नहीं है। (उनके तो वह क्षय हो चुका है।)

इस कारण से गौतम ! यह कहा जाता है कि–

'छद्मस्थ मनुष्य हँसता है और उत्सुक होता है किन्तु केवली न हंसता है और न उत्सुक होता है।'

प्र. भंते ! हंसता हुआ या उत्सुक होता हुआ जीव कितनी कर्म प्रकृतियों को बांधता है ?

उ. गौतम ! वह सात या आठ प्रकार के कर्मों को बांधता है।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

बहुत जीवों की अपेक्षा जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर शेष दंडकों में तीन भंग कहने चाहिए।

७७. जीव-चउवीस दंडएसु निद्दपयलायमाणेसु कम्म पयडिबंधो–

प. छउमत्थे णं भंते ! मणूसे निद्दाएज्ज वा पयलाएज्ज वा ?

उ. हंता, गोयमा ! निद्दाएज्ज वा, पयलाएज्ज वा।

जहा हसेज्ज वा तहा भाणियव्वा,

णवरं–दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं निद्दायंति वा, पयलायंति वा।

से णं केवलिस्स नत्थि।

अन्नं तं चेव।

प. जीवे णं भंते ! निद्दायमाणे वा, पयलायमाणे वा कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! सत्तविहबंधए वा, अट्ठविहबंधए वा।

दं. १-२४. एवं णेरइए जाव वेमाणिए।

पोहत्तिएसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

–विया. स. ५, उ. ४, सु. १०-१४

७७. जीव-चौबीस दंडकों में निद्रा और प्रचलावालों के कर्म-प्रकृतियों का बंध–

प्र. भंते ! क्या छद्मस्थ मनुष्य निद्रा लेता है या प्रचला नामक निद्रा लेता है ?

उ. हां, गौतम ! छद्मस्थ मनुष्य निद्रा भी लेता है और प्रचला निद्रा भी लेता है।

जिस प्रकार हंसने के विषय में कहा, उसी प्रकार यहाँ भी जान लेना चाहिए।

विशेष–छद्मस्थ मनुष्य दर्शनावरणीय कर्म के उदय से निद्रा भी लेता है और प्रचला भी लेता है,

वह (दर्शनावरणीय कर्म) केवली के नहीं होता है।

शेष सब पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

प्र. भंते ! निद्रा लेता हुआ या प्रचलानिद्रा लेता हुआ जीव कितनी कर्म-प्रकृतियों का बंध करता है ?

उ. गौतम ! वह सात प्रकृतियों का अथवा आठ प्रकृतियों का बन्ध करता है।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक-पर्यन्त कहना चाहिए।

बहुत जीवों की अपेक्षा जीव और एकेन्द्रिय को छोड़ कर शेष दंडकों में तीन भंग कहने चाहिए।

७८. सुहुम संपराय जीवट्ठाणे बज्झमाण कम्मपयडीओ

सुहुमसंपराए णं भगवं सुहुमसंपरायभावे वट्टमाणे सत्तरस कम्मपगडीओ णिबंधंति, तं जहा–

१. आभिणिबोहियणाणावरणे, २. सुयणाणावरणे,
३. ओहिणाणावरणे, ४. मणपज्जवणाणावरणे,
५. केवलणाणावरणे, ६. चक्खुदंसणावरणे,
७. अचक्खुदंसणावरणे, ८. ओहीदंसणावरणे,
९. केवलदंसणावरणे, १०. साया वेयणिज्जं
११. जसोकित्तिनामं, १२. उच्चागोयं,
१३. दाणंतरायं, १४. लाभंतरायं,
१५. भोगंतरायं, १६. उवभोगंतरायं,
१७. वीरियअंतरायं। –सम. सम. १७, सु. १०

७८. सूक्ष्म संपराय जीव स्थान में बंधने वाली कर्मप्रकृतियां–

सूक्ष्म संपराय भाव में स्थित सूक्ष्मसंपराय भगवान् सतरह कर्म प्रकृतियों का बन्ध करता है, यथा–

१. आभिनिबोधिकज्ञानावरण, २. श्रुतज्ञानावरण,
३. अवधिज्ञानावरण, ४. मनःपर्यवज्ञानावरण,
५. केवलज्ञानावरण, ६. चक्षुदर्शनावरण,
७. अचक्षुदर्शनावरण, ८. अवधिदर्शनावरण,
९. केवलदर्शनावरण, १०. सातावेदनीय,
११. यशःकीर्तिनाम, १२. उच्चगोत्र,
१३. दानान्तराय, १४. लाभान्तराय,
१५. भोगान्तराय, १६. उपभोगान्तराय,
१७. वीर्यान्तराय।

७९. विविह बंधगवेक्खया अट्ठ कम्मपगडीणं बंध-परूवणं–

१. इत्थी-पुरिस-नपुंसए पडुच्च–

प. नाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं इत्थी बंधइ, पुरिसो बंधइ, नपुंसओ बंधइ, नो इत्थी नो पुरिसो नो नपुंसओ बंधइ?

उ. गोयमा ! इत्थी वि बंधइ, पुरिसो वि बंधइ, नपुंसओ वि बंधइ, नो इत्थी-नो पुरिसो-नो नपुंसओ सिय बंधइ, सिय नो बंधइ।

एवं आउयवज्जाओ सत्तकम्मपगडीओ भाणियव्वओ।

प. आउयं णं भंते ! कम्मं किं इत्थी बंधइ, पुरिसो बंधइ, नपुंसओ बंधइ, नो इत्थी-नो पुरिसो- नो नपुंसओ बंधइ?

उ. गोयमा ! इत्थी सिय बंधइ, सिय नो बंधइ,

एवं तिण्णि वि भाणियव्वा।

नो इत्थी-नो पुरिसो-नो नपुंसओ न बंधइ।

२. संजयासंजयाइं पडुच्च–

प. णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं संजए बंधइ, असंजए बंधइ, संजयासंजए बंधइ, नो संजए-नो असंजए-नो संजयासंजए बंधइ?

उ. गोयमा ! संजए सिय बंधइ, सिय नो बंधइ,

असंजए बंधइ, संजयासंजए वि बंधइ,

नो संजए-नो असंजए-नो संजयासंजए न बंधइ।

एवं आउयवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ भाणियव्वाओ।

आउयं हेट्ठिल्ला तिण्णि भयणाए, उवरिल्ले ण बंधइ।

३. सम्मद्दिट्ठिआइं पडुच्च–

प. णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं सम्मद्दिट्ठी बंधइ, मिच्छद्दिट्ठी बंधइ, सम्मामिच्छद्दिट्ठी बंधइ?

७९. विविध बंधकों की अपेक्षा अष्ट कर्म प्रकृतियों के बंध का प्ररूपण–

१. स्त्री पुरुष नपुंसक की अपेक्षा–

प्र. भंते ! ज्ञानावरणीय कर्म क्या स्त्री बांधती है, पुरुष बांधता है, या नपुंसक बांधता है ? अथवा नो स्त्री, नो पुरुष, नो नपुंसक बांधता है?

उ. गौतम ! स्त्री भी बांधती है, पुरुष भी बांधता है और नपुंसक भी बांधता है, किन्तु नो स्त्री-नो पुरुष, नो नपुंसक कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता है।

इसी प्रकार आयुकर्म को छोड़कर शेष सातों कर्मप्रकृतियों के विषय में कहना चाहिए।

प्र. भंते ! आयुकर्म को क्या स्त्री बांधती है, पुरुष बांधता है या नपुंसक बांधता है अथवा नो स्त्री नो पुरुष नो नपुंसक बांधता है ?

उ. गौतम ! कदाचित् स्त्री बांधती है और नहीं भी बांधती है।

इसी प्रकार तीनों के विषय में भी कहना चाहिए।

नो स्त्री-नो पुरुष-नो नपुंसक आयुकर्म को नहीं बांधता है।

२. संयत-असंयत की अपेक्षा–

प्र. भंते ! ज्ञानावरणीय कर्म क्या संयत बांधता है, असंयत बांधता है, संयतासंयत बांधता है अथवा नो संयत-नो असंयत-नो संयतासंयत बांधता है ?

उ. गौतम ! कदाचित् संयत बांधता है और नहीं भी बांधता है,

असंयत बांधता है, संयतासंयत भी बांधता है,

परन्तु नो संयत-नो असंयत-नो संयतासंयत नहीं बांधता है।

इसी प्रकार आयुकर्म को छोड़कर शेष सातों कर्मप्रकृतियों के विषय में समझना चाहिए।

आयुकर्म को आदि के तीन-(संयत, असंयत और संयतासंयत) भजना से बांधते हैं और अन्तिम (नो संयत-नो असंयत-नो संयतासंयत) नहीं बांधते हैं।

३. सम्यग्दृष्टि आदि की अपेक्षा–

प्र. भंते ! ज्ञानावरणीय कर्म क्या सम्यग्दृष्टि बांधता है, मिथ्यादृष्टि बांधता है या सम्यग्मिथ्यादृष्टि बांधता है ?

उ. गोयमा ! सम्मद्दिट्ठी सिय बंधइ, सिय नो बंधइ,

मिच्छद्दिट्ठी बंधइ, सम्मामिच्छद्दिट्ठी बंधइ।

एवं आउयवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ भाणियव्वाओ।

आउयं हेट्ठिल्ला दो भयणाए,

सम्मामिच्छदिट्ठी न बंधइ।

उ. गौतम ! कदाचित् सम्यग्दृष्टि बांधता है और नहीं भी बांधता है,

किन्तु मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि तो बांधता ही है।

इसी प्रकार आयुकर्म को छोड़कर शेष सातों कर्मप्रकृतियों के विषय में समझना चाहिए।

आयुकर्म को आदि के दो (सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि) भजना से बांधते हैं

सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं बांधता है।

४. सण्णि-असण्णिआइं पडुच्च–

प. णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं सण्णी बंधइ, असण्णी बंधइ, नो सण्णी-नो असण्णी बंधइ ?

उ. गोयमा ! सण्णी सिय बंधइ, सिय नो बंधइ,

असण्णी बंधइ,

नो सण्णी नो असण्णी न बंधइ।

एवं वेयणिज्जाऽऽउयवज्जाओ छ कम्मप्पगडीओ।

वेयणिज्जं हेट्ठिल्ला दो बंधंति, उवरिल्ले भयणाए।

आउयं हेट्ठिल्ला दो भयणाए, उवरिल्ले न बंधइ।

४. संज्ञी-असंज्ञी की अपेक्षा–

प्र. भंते ! ज्ञानावरणीय कर्म क्या संज्ञी बांधता है, असंज्ञी बांधता है या नो संज्ञी-नो असंज्ञी बांधता है ?

उ. गौतम ! कदाचित् संज्ञी बांधता है और नहीं भी बांधता है।

असंज्ञी बांधता है,

किन्तु नो संज्ञी-नो असंज्ञी नहीं बांधता है।

इसी प्रकार वेदनीय और आयु को छोड़कर शेष छह कर्मप्रकृतियों के विषय में कहना चाहिए।

वेदनीय कर्म को आदि के दो (संज्ञी और असंज्ञी) बांधते हैं, किन्तु अन्तिम के लिए भजना है।

आयुकर्म को आदि के दो (संज्ञी और असंज्ञी) भजना से बांधते हैं, किन्तु अन्तिम नहीं बांधता है।

५. भवसिद्धियाइं पडुच्च–

प. णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं भवसिद्धीए बंधइ, अभवसिद्धीए बंधइ, नो भवसिद्धीए-नो अभवसिद्धीए बंधइ ?

उ. गोयमा ! भवसिद्धीए भयणाए,

अभवसिद्धीए बंधइ,

नो भवसिद्धीए नो अभवसिद्धीए न बंधइ।

एव आउयवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ भाणियव्वाओ।

आउयं हेट्ठिल्ला दो भयणाए, उवरिल्लो न बंधइ।

५. भवसिद्धिक आदि की अपेक्षा–

प्र. भंते ! ज्ञानावरणीय कर्म को क्या भवसिद्धिक बांधता है, अभवसिद्धिक बांधता है या नो भवसिद्धिक-नो अभवसिद्धिक बांधता है ?

उ. गौतम ! भवसिद्धिक जीव भजना से बांधता है।

अभवसिद्धिक जीव बांधता ही है,

किन्तु नो भवसिद्धिक-नो अभवसिद्धिक जीव नहीं बांधता है।

इसी प्रकार आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्मप्रकृतियों के विषय में कहना चाहिए।

आयुकर्म को आदि के दो (भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक) भजना से बांधते हैं। किन्तु अन्तिम (नो भवसिद्धिक-नो अभवसिद्धिक) नहीं बांधता है।

६. चक्खुदंसणीआइं पडुच्च–

प. णाणावरणिज्जं णं भंते ! किं चक्खुदंसणी बंधइ, अचक्खुदंसणी बंधइ, ओहिदंसणी बंधइ, केवलदंसणी बंधइ ?

उ. गोयमा ! हेट्ठिल्ला तिण्णि भयणाए, उवरिल्ले ण बंधइ।

एवं वेयणिज्जवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ भाणियव्वाओ।

वेयणिज्जं हेट्ठिल्ला तिण्णि बंधंति, केवलदंसणी भयणाए।

६. चक्षुदर्शनी आदि की अपेक्षा–

प्र. भंते ! ज्ञानावरणीय कर्म को क्या चक्षुदर्शनी बांधता है, अचक्षुदर्शनी बांधता है, अवधिदर्शनी बांधता है या केवलदर्शनी बांधता है ?

उ. गौतम ! आदि के तीन (चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी) भजना से बांधते हैं किन्तु अंतिम (केवलदर्शनी) नहीं बांधता है।

इसी प्रकार वेदनीय को छोड़कर शेष सात कर्मप्रकृतियों के विषय में समझ लेना चाहिए।

वेदनीयकर्म को आदि के तीन (चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी) बांधते हैं, किन्तु अंतिम केवलदर्शनी भजना से बांधता है।

७. पज्जत्तापज्जत्ताइं पडुच्च–

प. णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं पज्जत्तओ बंधइ, अपज्जत्तओ बंधइ, नो पज्जत्तए नो अपज्जत्तए बंधइ ?

उ. गोयमा ! पज्जत्तए भयणाए,
अपज्जत्तए बंधइ,
नो पज्जत्तए नो अपज्जत्तए न बंधइ।

एवं आउयवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ भाणियव्वाओ।

आउयं हेट्ठिल्ला दो भयणाए, उवरिल्ले ण बंधइ।

७. पर्याप्त-अपर्याप्त आदि की अपेक्षा–

प्र. भंते ! ज्ञानावरणीय कर्म को क्या पर्याप्तक जीव बांधता है, अपर्याप्तक जीव बांधता है या नो पर्याप्तक-नो अपर्याप्तक जीव बांधता है ?

उ. गौतम ! पर्याप्तक जीव भजना से बांधता है,
अपर्याप्तक जीव बांधता है,
किन्तु नो-पर्याप्तक नो अपर्याप्तक जीव नहीं बांधता है।

इसी प्रकार आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्मप्रकृतियों के विषय में कहना चाहिए।

आयुकर्म को आदि के दो (पर्याप्तक और अपर्याप्तक) भजना से बांधते हैं, किन्तु अन्तिम (नो पर्याप्त-नो अपर्याप्त) नहीं बांधते हैं।

८. भासयाभासए पडुच्च–

प. णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं भासए बंधइ, अभासए बंधइ ?

उ. गोयमा ! दो वि भयणाए।

एवं वेयणिज्जवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ भाणियव्वाओ।

वेयणिज्जं भासए बंधइ, अभासए भयणाए।

८. भाषक-अभाषक की अपेक्षा–

प्र. भंते ! ज्ञानावरणीय कर्म को क्या भाषक जीव बांधता है या अभाषक जीव बांधता है ?

उ. गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्म को दोनों-(भाषक और अभाषक) भजना से बांधते हैं।

इसी प्रकार वेदनीय को छोड़कर शेष सात कर्मप्रकृतियों के विषय में कहना चाहिए।

वेदनीय कर्म को भाषक जीव बांधता है, अभाषक जीव भजना से बांधता है।

९. परित्तापरित्ताइं पडुच्च–

प. णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं परित्ते बंधइ, अपरित्ते बंधइ, नो परित्ते नो अपरित्ते बंधइ ?

उ. गोयमा ! परित्ते भयणाए,
अपरित्ते बंधइ,
नो परित्ते नो अपरित्ते न बंधइ।

एवं आउयवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ भाणियव्वाओ।

आउयं परित्तो वि, अपरित्तो वि भयणाए।

नो परित्ते नो अपरित्ते न बंधइ।

९. परित्त-अपरित्त आदि की अपेक्षा–

प्र. भंते ! ज्ञानावरणीय कर्म को क्या परित्त जीव बांधता है, अपरित्त जीव बांधता है या नो परित्त-नो अपरित्त जीव बांधता है ?

उ. गौतम ! परित्त जीव भजना से बांधता है,
अपरित्त जीव बांधता है
किन्तु नो परित्त-नो अपरित्त जीव नहीं बांधता है।

इसी प्रकार आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियों के विषय में कहना चाहिए।

आयुकर्म को परित्तजीव भी और अपरित्तजीव भी भजना से बांधते हैं,

किन्तु नो परित्त-नो अपरित्त जीव नहीं बांधते हैं।

१०. णाणि-अण्णाणिणो पडुच्च–

प. णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं आभिणिबोहियनाणी बंधइ, सुयनाणी बंधइ, ओहिनाणी बंधइ, मणपज्जवनाणी बंधइ, केवलनाणी बंधइ ?

उ. गोयमा ! हेट्ठिल्ला चत्तारि भयणाए, केवलनाणी न बंधइ।

एवं वेयणिज्जवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ भाणियव्वाओ।

वेयणिज्जं हेट्ठिल्ला चत्तारि बंधइ, केवलनाणी भयणाए।

प. णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं मइअण्णाणी बंधइ, सुयअण्णाणी बंधइ, विभंगणाणी बंधइ ?

१०. ज्ञानी-अज्ञानी की अपेक्षा–

प्र. भंते ! ज्ञानावरणीय कर्म क्या आभिनिबोधिकज्ञानी बांधता है, श्रुतज्ञानी बांधता है, अवधिज्ञानी बांधता है, मनःपर्यवज्ञानी बांधता है या केवलज्ञानी बांधता है ?

उ. गौतम ! आदि के चार भजना से बांधते हैं, किन्तु केवलज्ञानी नहीं बांधता है।

इसी प्रकार वेदनीय को छोड़कर शेष सातों कर्मप्रकृतियों के विषय में समझ लेना चाहिए।

वेदनीय कर्म को आदि के चारों बांधते हैं, केवलज्ञानी भजना से बांधता है।

प्र. भंते ! ज्ञानावरणीय कर्म को क्या मति-अज्ञानी बांधता है, श्रुत-अज्ञानी बांधता है या विभंगज्ञानी बांधता है ?

उ. गोयमा ! आउयवज्जाओ सत्त वि बंधंति।

आउयं भयणाए।

११. मणजोगिआइं पडुच्च–

प. णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं मणजोगी वंधइ, वयजोगी बंधइ, कायजोगी बंधइ, अजोगी वंधइ ?

उ. गोयमा ! हेट्ठिल्ला तिण्णि भयणाए, अजोगी न वंधइ।

एवं वेयणिज्जवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ भाणियव्वाओ।

वेयणिज्जं हेट्ठिल्ला बंधंति, अजोगी न बंधइ।

१२. सागार-अणागारोवउत्तं पडुच्च–

प. णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं सागारोवउत्ते वंधइ, अणागारोवउत्ते बंधइ ?

उ. गोयमा ! अट्ठसु वि भयणाए।

१३. आहारय-अणाहारए पडुच्च–

प. णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं आहारए वंधइ, अणाहारए बंधइ ?

उ. गोयमा ! दो वि भयणाए।

एवं वेयणिज्ज-आउयवज्जाणं छण्हं कम्मपगडीणं भाणियव्वं।

वेयणिज्जं आहारए बंधइ, अणाहारए भयणाए।

आउयं आहारए भयणाए, अणाहारए न बंधइ।

१४. सुहुम-बायराइं पडुच्च–

प. णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं सुहुमे वंधइ, बायरे बंधइ, नो सुहुमे-नो बायरे बंधइ ?

उ. गोयमा ! सुहुमे बंधइ,

बायरे भयणाए,

नो सुहुमे नो बायरे न बंधइ।

एवं आउयवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ भाणियव्वाओ।

आउयं सुहुमे बायरे भयणाए, नो सुहुमे नो बायरे ण बंधइ।

१५. चरिमाचरिमे पडुच्च–

प. णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं चरिमे बंधइ, अचरिमे वंधइ ?

उ. गोयमा ! अट्ठ वि भयणाए।

–विया. स. ६, उ. ३, सु. १२-२८

उ. गौतम ! आयुकर्म को छोड़कर शेष सातों कर्म प्रकृतियों को वांधते है।

आयुकर्म को ये तीनों भजना से वांधते हैं।

११. मनोयोगी आदि की अपेक्षा–

प्र. भंते ! ज्ञानावरणीय कर्म को क्या मनोयोगी वांधता है, वचनयोगी वांधता है, काययोगी वांधता है या अयोगी वांधता है ?

उ. गौतम ! आदि के तीन भजना से वांधते हैं, अयोगी नहीं वांधता है।

इसी प्रकार वेदनीय को छोड़कर शेष सातों कर्मप्रकृतियों के विषय में कहना चाहिए।

वेदनीय कर्म को आदि के तीन वांधते हैं, अयोगी नहीं वांधता है।

१२. साकार-अनाकारोपयुक्त की अपेक्षा–

प्र. भंते ! ज्ञानावरणीय कर्म को क्या साकारोपयोगी वांधता है या अनाकारोपयोगी वांधता है ?

उ. गौतम ! ये आठों कर्मप्रकृतियों को भजना से वांधते हैं।

१३. आहारक-अनाहारक की अपेक्षा–

प्र. भंते ! ज्ञानावरणीय कर्म को क्या आहारक जीव वांधता है या अनाहारक जीव वांधता है ?

उ. गौतम ! दोनों प्रकार के जीव भजना से बांधते हैं।

इसी प्रकार वेदनीय और आयुकर्म को छोड़कर शेष छहों कर्मप्रकृतियों के विषय में समझ लेना चाहिए।

वेदनीय कर्म को आहारक जीव बांधता है, अनाहारक भजना से बांधता है।

आयुकर्म को आहारक भजना से बांधता है, अनाहारक नहीं बांधता है।

१४. सूक्ष्म वादर आदि की अपेक्षा–

प्र. भंते ! ज्ञानावरणीय कर्म को क्या सूक्ष्म जीव वांधता है, बादर जीव वांधता है या नो सूक्ष्म नो बादर जीव बांधता है ?

उ. गौतम ! सूक्ष्म जीव बांधता है,

वादर जीव भजना से वांधता है,

किन्तु नो सूक्ष्म-नो वादर जीव नहीं बांधता है।

इसी प्रकार आयुकर्म को छोड़कर शेष सातों कर्म-प्रकृतियों के विषय में कहना चाहिए।

आयुकर्म को सूक्ष्म और बादर जीव भजना से बांधते हैं किन्तु नो सूक्ष्म-नो वादर जीव नहीं बांधता है।

१५. चरम-अचरम की अपेक्षा–

प्र. भंते ! ज्ञानावरणीय कर्म को क्या चरमजीव वांधता है या अचरमजीव वांधता है ?

उ. गौतम ! आठों कर्मप्रकृतियों को भजना से बांधते हैं।

८०. जीव चउवीस दंडएसु पावट्ठाणविरएसु कम्मपयडिबंधणं–

प. पाणाइवायविरए णं भंते ! जीवे कइ कम्मपयडीओ बंधइ?

उ. गोयमा ! सत्तविहबंधए वा, अट्ठविहबंधए वा, छव्विहबंधए वा, एगविहबंधए वा, अबंधए वा।

एवं मणूसे वि भाणियव्वे।

प. पाणाइवायविरया णं भंते ! जीवा कइ कम्मपयडीओ बंधंति?

उ. गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य।

१. **अहवा** सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगे य।
२. **अहवा** सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य।
३. **अहवा** सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, छव्विहबंधगे य।
४. **अहवा** सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, छव्विहबंधगा य।
५. **अहवा** सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अबंधगे य।
६. **अहवा** सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अबंधगा य।

१. **अहवा** सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगे य, छव्विहबंधगे य।
२. **अहवा** सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगे य, छव्विहबंधगा य।
३. **अहवा** सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, छव्विहबंधगे य।
४. **अहवा** सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, छव्विहबंधगा य।

१. **अहवा** सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगे य, अबंधए य।
२. **अहवा** सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगे य, अबंधगा य।
३. अहवा सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, अबंधगे य।
४. अहवा सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, अबंधगा य।

१. अहवा सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, छव्विहबंधगे य, अबंधगे य।
२. अहवा सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, छव्विहबंधगा य, अबंधगा य।

८०. पाप स्थान विरत जीव-चौबीसदंडकों में कर्म प्रकृति बंध–

प्र. भंते ! प्राणातिपातविरत (एक) जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का वन्ध करता है?

उ. गौतम ! वह सप्तविधवन्धक, अष्टविधबंधक, षड्विधबंधक या एकविधबंधक अथवा अबन्धक होता है।

इसी प्रकार मनुष्य के विषय में भी कहना चाहिए।

प्र. भंते ! प्राणातिपातविरत (अनेक) जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का वंध करते हैं?

उ. गौतम ! सभी जीव सप्तविधबन्धक भी होते हैं और एकविधवन्धक भी होते हैं।

१. **अथवा** अनेक सप्तविध-वन्धक-एकविधबन्धक होते हैं और एक अष्टविधबन्धक होता है।
२. **अथवा** अनेक सप्तविधवन्धक, एकविधवन्धक और अष्टविधवन्धक होते हैं।
३. **अथवा** अनेक सप्तविधवन्धक, एकविधवन्धक होते हैं और एक षड्विधवन्धक होता है।
४. **अथवा** अनेक सप्तविधवन्धक, एकविधबन्धक और षड्विधवन्धक होते हैं।
५. **अथवा** अनेक सप्तविधवन्धक, एकविधवन्धक होते हैं और एक अवंधक होता है।
६. **अथवा** अनेक सप्तविधवन्धक, एकविधवन्धक और अवंधक होते हैं।

१. **अथवा** अनेक सप्तविधवन्धक और एकविधवन्धक होते हैं, तथा एक अष्टविध वन्धक और पड्विधवन्धक होता है।
२. **अथवा** अनेक सप्तविधवन्धक और एकविधवन्धक होते हैं तथा एक अष्टविधवन्धक होता है और अनेक पड्विधवन्धक होते हैं।
३. **अथवा** अनेक सप्तविधवन्धक, एकविधवन्धक और अष्ट विधवन्धक होते हैं और एक पड्विधवन्धक होता है।
४. **अथवा** अनेक सप्तविधवन्धक, एकविधवन्धक, अष्टविधवन्धक और पड्विधवन्धक होते हैं।

१. अथवा अनेक सप्तविधवन्धक और एकविधवन्धक होते हैं तथा एक अष्टविधवन्धक और एक अवन्धक होता है।
२. अथवा अनेक सप्तविधवन्धक और एकविधवन्धक होते हैं तथा एक अष्टविधवन्धक होता है और अनेक अवंधक होते हैं।
३. अथवा अनेक सप्तविधवन्धक, एकविधवन्धक और अष्टविधवन्धक होते हैं और एक अवन्धक होता है।
४. अथवा अनेक सप्तविधवन्धक, एकविधवन्धक, अष्टविधवन्धक और अवन्धक होते हैं।

१. अथवा अनेक सप्तविधवन्धक और एकविधवन्धक होते हैं तथा एक पड्विधवन्धक और अवन्धक होता है।
२. अथवा अनेक सप्तविधवन्धक और एकविधवन्धक होते हैं तथा एक पड्विधवन्धक होता है और अनेक अवन्धक होते हैं।

उ. गोयमा ! तं चेव सत्तावीसं भंगा भाणियव्वा।

प. दं. १. मिच्छादंसणसल्लविरया णं भंते ! णेरइया कइ कम्मपयडीओ बंधंति ?

उ. गोयमा ! १. सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा।

२. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगे य,

३. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिया।

दं. २१. णवरं–मणूसाणं जहा जीवाणं।

–पण्ण. प. २२, सु. १६४२-१६४९

उ. गौतम ! वे पूर्वोक्त सत्ताईस भंग यहां भी कहने चाहिए।

प्र. दं. १. भंते ! मिथ्यादर्शनशल्य से विरत (अनेक) नैरयिक कितनी कर्मप्रकृतियों का बंध करते हैं ?

उ. गौतम ! १. सभी नैरयिक सप्तविधवन्धक होते हैं।

२. अथवा (अनेक) सप्तविध-बन्धक होते हैं और (एक) अष्टविध-बन्धक होता है,

३. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक और अष्टविधवन्धक होते हैं।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों तक जानना चाहिए।

दं. २१. विशेष–मनुष्यों के आलापक अनेक जीवों के समान कहना चाहिए।

८१. णाणावरणिज्जाइ कम्म वेएमाणे जीव-चउवीसदंडएस कम्मबंध परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेएमाणे कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! सत्तविहबंधए वा, अट्ठविहबंधए वा, छव्विहबंधए वा, एगविहबंधए वा।

प. दं. १. णेरइए णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेएमाणे कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! सत्तविहबंधए वा, अट्ठविहबंधए वा।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिए।

णवरं–दं. २१. मणूसे जहा जीवे।

प. जीवा णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेएमाणा कइ कम्मपगडीओ बंधंति ?

उ. गोयमा ! १. सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य,

२. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, छव्विवंधए य,

३. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, छव्विहबंधगा य,

४. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, एगविहबंधगे य,

५. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, एगविहबंधगा य,

६. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, छव्विहबंधए य, एगविहबंधए य,

७. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, छव्विहबंधए य, एगविहबंधगा य,

८. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, छव्विहबंधगा य, एगविहबंधए य,

९. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, छव्विहबंधगा य, एगविहबंधगा य,

एवं एए नव भंगा।

८१. ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का वेदन करते हुए जीव-चौबीसदंडकों में कर्म बंध का प्ररूपण–

प्र. भंते ! (एक) जीव ज्ञानावरणीयकर्म का वेदन करता हुआ कितनी कर्मप्रकृतियों का वन्ध करता है ?

उ. गौतम ! वह सात, आठ, छह या एक कर्मप्रकृति का वन्ध करता है।

प्र. दं. १. भंते ! (एक) नैरयिक जीव ज्ञानावरणीयकर्म का वेदन करता हुआ कितनी कर्मप्रकृतियों का वन्ध करता है ?

उ. गौतम ! वह सात या आठ कर्मप्रकृतियों का वंध करता है।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष–मनुष्य का कथन सामान्य जीव के समान है।

प्र. भंते ! (वहुत) जीव ज्ञानावरणीयकर्म का वेदन करते हुए कितनी कर्मप्रकृतियों का वंध करते हैं ?

उ. गौतम ! १. सभी जीव सात और आठ कर्मप्रकृतियों के वंधक होते हैं,

२. अथवा अनेक जीव सात और आठ के वंधक होते हैं और एक छह का वंधक होता है,

३. अथवा अनेक जीव सात, आठ और छह के वन्धक होते हैं।

४. अथवा अनेक जीव सात या आठ के वन्धक होते हैं और (एक जीव) एक का वन्धक होता है।

५. अथवा अनेक जीव सात, आठ और एक के वंधक होते हैं।

६. अथवा अनेक जीव सात और आठ के वन्धक होते हैं तथा एक जीव छह और एक का बंधक होता है

७. अथवा अनेक जीव सात और आठ के वंधक होते हैं तथा एक जीव छह का वंधक होता है तथा अनेक जीव एक के वंधक होते है,

८. अथवा अनेक जीव सात, आठ और छह के वंधक होते है तथा एक जीव एक का वंधक होता है।

९. अथवा अनेक जीव सात, आठ, छह और एक के वन्धक होते है।

इस प्रकार ये कुल नौ भंग हुए।

उ. गोयमा ! १. सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, एगविहबंधगा य,
२. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, छव्विहबंधगे य,
३. अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, छव्विहबंधगा य,
४-५ अबंधगे ण वि समं दो भंगा भाणियव्वा।

६-९ अहवा सत्तविहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, छव्विहबंधगे य, अबंधगे य चउभंगो।

एवं एए णव भंगा।
दं. १२-१६. एगिंदियाणं अभंगयं।
दं. १-२०. णारगादीणं तियभंगो एवं जाव वेमाणियाणं।

प. दं. २१. मणूसाणं भंते ! वेयणिज्जं कम्मं वेएमाणा कइ कम्मपगडीओ बंधंति?
उ. गोयमा ! १. सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य जाव,
२७. अहवा सत्तविहबंधगा य, एगविहबंधगा य, छव्विहबंधगा य, अट्ठविहबंधगा य, अबंधगा य।

एवं एए सत्तावीसं भंगा भाणियव्वा जहा किरियासु पाणाइवायविरयस्स।[1]
एवं जहा वेयणिज्जं तहा आउयं णामं गोयं च भाणियव्वं।

मोहणिज्जं वेएमाणे जहा बंधे णाणावरणिज्जं तहा भाणियव्वं। —पण्ण. प. २६, सु. १७७६-१७८६

उ. गौतम ! १. सभी जीव सात के, आठ के और एक के बन्धक होते हैं,
२. अथवा अनेक जीव सात, आठ और एक के बन्धक होते हैं तथा एक छह का बन्धक होता है,
३. अथवा अनेक जीव सात, आठ, एक या छह के बन्धक होते हैं,
४-५ अबन्धक के साथ भी (एक और अनेक की अपेक्षा) दो भंग कहने चाहिए,
६-९ अथवा अनेक जीव सात के, आठ के, एक के बन्धक होते हैं तथा कोई एक छह का बन्धक होता है और कोई एक अबन्धक भी होता है, इस प्रकार चार भंग होते हैं।
इस प्रकार कुल मिलाकर नौ भंग हुए।
दं. १२-१६. एकेन्द्रिय जीवों को अभंगक जानना चाहिए।
दं. १-२०. नारक आदि वैमानिकों पर्यंत इसी प्रकार तीन भंग कहने चाहिए।

प्र. दं. २१. भंते ! मनुष्य वेदनीयकर्म का वेदन करते हुए कितनी कर्मप्रकृतियों का बन्ध करते हैं?
उ. गौतम ! १. सभी (अनेक) मनुष्य सात या एक के बन्धक होते हैं, यावत्,
२७. अथवा अनेक मनुष्य सात के, एक के, छह के, आठ के बंधक होते हैं और अबन्धक भी होते हैं।

जिस प्रकार क्रियाओं में प्राणातिपातविरत के लिए सत्ताईस भंग कहे हैं उसी प्रकार यहां भी भंग कहने चाहिए।
जिस प्रकार वेदनीयकर्म के वेदन के साथ कर्मप्रकृतियों के बन्ध का कथन किया गया है, उसी प्रकार आयु, नाम और गोत्रकर्म के विषय में भी कहना चाहिए।
जिस प्रकार ज्ञानावरणीय के बन्ध का कथन किया है, उसी प्रकार यहां मोहनीयकर्म के वेदन के साथ बन्ध का कथन करना चाहिए।

८२. मोहणिज्जकम्मस्स वेएमाणस्स जीवस्स कम्मबंध परूवणं—
प. जीवे णं भंते ! मोहणिज्जं कम्मं वेदेमाणे किं मोहणिज्जं कम्मं बंधइ, वेयणिज्जं कम्मं बंधइ?
उ. गोयमा ! मोहणिज्जं पि कम्मं बंधइ, वेयणिज्जं पि कम्मं बंधइ,
णवरं—णण्णत्थ चरित्तमोहणिज्जं कम्मं वेदेमाणे वेअणिज्जं कम्मं बंधइ, णो मोहणिज्जं कम्मं बंधइ। —उव. सु. ६६

८२. मोहनीय कर्म के वेदक जीव के कर्म बंध का प्ररूपण—
प्र. भंते ! क्या जीव मोहनीय कर्म का वेदन करता हुआ मोहनीय कर्म का बंध करता है या वेदनीय कर्म का बंध करता है?
उ. गौतम ! वह मोहनीय कर्म का भी बंध करता है और वेदनीय कर्म का भी बंध करता है।
विशेष—(सूक्ष्मसंपराय नामक दशम गुणस्थान में) मोहनीय कर्म के चरम दलिकों का वेदन करता हुआ जीव वेदनीय कर्म का ही बंध करता है मोहनीय कर्म का बंध नहीं करता।

८३. जीव चउवीसदंडएसु अट्ठकम्मपयडीणं बंधट्ठाण परूवणं—
प. जीवे णं भंते ! नाणावरणिज्जं कम्मं कइहिं ठाणेहिं बंधइ?
उ. गोयमा ! दोहिं ठाणेहिं नाणावरणिज्जं कम्मं बंधइ, तं जहा—

८३. जीव चौवीसदंडकों में अष्टकर्मप्रकृतियों के बंध स्थानों का प्ररूपण—
प्र. भंते ! जीव कितने स्थानों (कारणों) से ज्ञानावरणीयकर्म का बंध करता है?
उ. गौतम ! वह दो कारणों से ज्ञानावरणीय-कर्म का बन्ध करता है, यथा—

1. पण्ण. प. २२, सु. १६२३

१. रागेण य, २. दोसेण य।
रागे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. माया य, २. लोभे य।
दोसे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. कोहे य, २. माणे य।
इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं वीरिओवग्गहिएहिं एवं खलु जीवे नाणावरणिज्जं कम्मं बंधइ।
दं. १-२४. एवं णेरइए जाव वेमाणिए।

प. जीवा णं भंते ! नाणावरणिज्जं कम्मं कइहिं ठाणेहिं बंधंति ?
उ. गोयमा ! दोहिं ठाणेहिं, **एवं चेव।**[1]

दं. १-२४. एवं नेरइया जाव वेमाणिया।

एवं दंसणावरणिज्जं जाव अंतराइयं।

एवं एए एगत्त-पोहत्तिया सोलस दंडगा।
–पण्ण. प. २३, उ. १, सु. १६७०-१६७४

१. राग से, २. द्वेष से।
राग दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. माया, २. लोभ,
द्वेष भी दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. क्रोध, २. मान।
इसी प्रकार वीर्य से उपार्जित इन चार स्थानों (कारणों) से जीव ज्ञानावरणीयकर्म का बंध करता है।
दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! बहुत से जीव कितने कारणों से ज्ञानावरणीयकर्म का बंध करते हैं ?
उ. गौतम ! इसी प्रकार पूर्ववत् दो कारणों से ज्ञानावरणीयकर्म का बंध करते हैं।
दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों तक समझना चाहिए।
इसी प्रकार दर्शनावरणीय से अन्तरायकर्म तक (कर्मबन्ध के ये ही कारण समझने चाहिए।)
इसी प्रकार एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा ये सोलह दण्डक होते हैं।

८४. उववज्जणं पडुच्च एगिंदिएसु कम्मबंध परूवणं–

प. एगिंदिया णं भंते ! किं १. तुल्लट्ठिईया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति,
२. तुल्लट्ठिईया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति,
३. वेमायट्ठिईया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति,
४. वेमायट्ठिईया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति ?
उ. गोयमा ! १. अत्थेगइया तुल्लट्ठिईया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति,
२. अत्थेगइया तुल्लट्ठिईया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति,
३. अत्थेगइया वेमायट्ठिईया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति,
४. अत्थेगइया वेमायट्ठिईया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"अत्थेगइया तुल्लट्ठिईया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति जाव अत्थेगइया वेमायट्ठिईया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति ?
उ. गोयमा ! एगिंदिया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. अत्थेगइया समाउया समोववन्नगा,

८४. उत्पत्ति की अपेक्षा एकेन्द्रियों में कर्मबन्ध का प्ररूपण–

प्र. भंते ! १. एकेन्द्रिय जीव तुल्य स्थिति वाले होते हैं और तुल्य विशेषाधिककर्म का बन्ध करते हैं ?
२. तुल्य स्थिति वाले होते हैं और विषम विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं।
३. विषम स्थिति वाले होते हैं और तुल्य-विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं ?
४. विषम स्थिति वाले होते हैं और विषम विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं ?
उ. गौतम ! १. कई एकेन्द्रिय जीव तुल्य स्थिति वाले होते हैं और तुल्य विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं,
२. कई तुल्य स्थिति वाले होते हैं और विषम विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं,
३. कई विषम स्थिति वाले होते हैं और तुल्य-विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं,
४. कई विषम स्थिति वाले होते हैं और विषम विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
कई तुल्यस्थिति वाले तुल्य विशेषाधिक कर्म का बंध करते हैं यावत् कई विषम स्थिति वाले विषम विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं ?
उ. गौतम ! एकेन्द्रिय जीव चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१. कई जीव समान आयु वाले और एक साथ उत्पन्न होने वाले हैं,

---
१. जीवा णं दोहिं ठाणेहिं पावं कम्मं बंधंति, तं जहा–
रागेण चेव, दोसेण चेव। *–ठाणं. अ. २, उ. ४, सु. १०७/-२*

२. अत्थेगइया समाउया विसमोववन्नगा,

३. अत्थेगइया विसमाउया समोववन्नगा,

४. अत्थेगइया विसमाउया विसमोववन्नगा।

१. तत्थ णं जे ते समाउया समोववन्नगा तेणं तुल्लट्ठिईया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति,

२. तत्थ णं जे ते समाउया विसमोववन्नगा तेणं तुल्लट्ठिईया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति,

३. तत्थ णं जे ते विसमाउया समोववन्नगा तेणं वेमायट्ठिईया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति,

४. तत्थ णं जे ते विसमाउया विसमोववन्नगा तेणं वेमायट्ठिईया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"अत्थेगइया तुल्लट्ठिईया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति जाव अत्थेगइया वेमायट्ठिईया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति।" *–विया. स. ३४/१, उ. १, सु. ७६,*

२. कई जीव समान आयु वाले और विषम भिन्न-भिन्न समयों में उत्पन्न होने वाले हैं।

३. कई जीव विषम आयु वाले और एक साथ उत्पन्न होने वाले हैं।

४. कई जीव विषम आयु वाले और विषम उत्पन्न होने वाले हैं।

१. इनमें से जो समान आयु वाले और साथ उत्पन्न होने वाले होते हैं, वे तुल्य स्थिति वाले तुल्य विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं।

२. इनमें से जो समान आयु वाले और विषम उत्पन्न होने वाले होते हैं, वे तुल्य स्थिति वाले विषम विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं।

३. इनमें से जो विषम आयु वाले और एक साथ उत्पन्न होने वाले हैं, वे विषम स्थिति वाले तुल्य-विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं।

४. इनमें जो विषम आयु वाले और विषम उत्पन्न होने वाले होते हैं, वे विषम स्थिति वाले विषम विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"कई तुल्य स्थिति वाले तुल्य विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं यावत् कई विषम स्थिति वाले विषम विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं।"

८५. उववज्जणं पडुच्च अणंतरोववन्नगएगिंदिएसु कम्मबंध परूवणं–

प. अणंतरोववन्नगएगिंदिया णं भंते ! किं तुल्लट्ठिईया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति जाव वेमायट्ठिईया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइया तुल्लट्ठिईया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति, अत्थेगइया तुल्लट्ठिईया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

'अत्थेगइया तुल्लट्ठिईया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति अत्थेगइया तुल्लट्ठिईया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! अणंतरोववन्नगा एगिंदिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अत्थेगइया समाउया समोववन्नगा,

२. अत्थेगइया समाउया विसमोववन्नगा।

१. तत्थ णं जे ते समाउया समोववन्नगा तेणं तुल्लट्टिईया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति।

२. तत्थ णं जे ते समाउया विसमोववन्नगा तेणं तुल्लट्टिईया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति।

८५. उत्पत्ति की अपेक्षा अनन्तरोपपन्नक एकेन्द्रियों में कर्म बंध का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या अनन्तरोपपन्नक एकेन्द्रिय तुल्य स्थिति वाले होते हैं और तुल्य विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं यावत् विषम स्थिति वाले होते हैं और विषम विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं ?

उ. गौतम ! कई तुल्यस्थिति वाले होते हैं एवं तुल्य विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं और कई तुल्यस्थिति वाले होते हैं एवं विषम विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं। (ये दो भंग ही होते हैं।)

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

'कई तुल्य स्थिति वाले होते हैं तुल्य विशेषाधिक कर्म का बंध करते हैं और कई तुल्यस्थिति वाले विषम-विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं ?

उ. गौतम ! अनन्तरोपपन्नक एकेन्द्रिय जीव दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. कई जीव समान आयु और समान उत्पत्ति वाले होते हैं,

२. कई जीव समान आयु और विषम उत्पत्ति वाले होते हैं,

१. इनमें से जो समान आयु और समान उत्पत्ति वाले हैं, वे तुल्यस्थिति वाले और तुल्य विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं।

२. इनमें से जो समान आयु और विषम उत्पत्ति वाले हैं, वे तुल्य स्थिति वाले और विषम विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'अत्थेगइया तुल्लट्ठिईया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति अत्थेगइया तुल्लट्ठिईया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति।

–विया. स. ३४/१, उ. २, सु. ७

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि

'कई तुल्यस्थिति वाले तुल्य विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं और कई तुल्य स्थिति वाले विषम विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं।

८६. उववज्जणं पडुच्च परंपरोववन्नगएगिंदिएसु कम्मबंध परूवणं–

प. परंपरोववन्नग एगिंदिया णं भंते ! किं–

तुल्लट्ठिईया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति जाव वेमायट्ठिईया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइया तुल्लट्ठिईया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति जाव अत्थेगइया वेमायट्ठिईया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"अत्थेगइया तुल्लट्ठिईया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति जाव अत्थेगइया वेमायट्ठिईया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति ?"

उ. गोयमा ! एगिंदिया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

अत्थेगइया समाउया समोववन्नगा जाव अत्थेगइया विसमाउया विसमोववन्नगा।

तत्थ णं जे ते समाउया समोववन्नगा ते णं तुल्लट्ठिईया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति जाव तत्थ णं जे ते विसमाउया विसमोववन्नगा ते णं वेमायट्ठिईया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"अत्थेगइया तुल्लट्ठिईया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति जाव अत्थेगइया वेमायट्ठिईया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति।

–विया. स. ३४/१, उ. ३, सु. ३ (२)

८६. उत्पत्ति की अपेक्षा परंपरोपपन्नक एकेन्द्रियों में कर्म बंध का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परम्परोपपन्नक एकेन्द्रिय जीव क्या तुल्य स्थिति वाले होते हैं एवं तुल्य विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं यावत् विषम स्थिति वाले होते हैं एवं विषम विशेषाधिक कर्म का बंध करते हैं ?

उ. गौतम ! कई तुल्य स्थितिवाले होते हैं एवं तुल्य-विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं यावत् कई विषम स्थिति वाले होते हैं एवं विषम विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"कई तुल्य स्थिति वाले होते हैं एवं तुल्य विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं यावत् कई विषम स्थिति वाले होते हैं एवं विषम विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं ?

उ. गौतम ! एकेन्द्रिय जीव चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

कई जीव समान आयु वाले और साथ उत्पन्न होने वाले होते हैं यावत् कई जीव विषम आयु वाले और विषम उत्पन्न होने वाले होते हैं।

इनमें से जो समान आयु वाले हैं और साथ उत्पन्न होने वाले होते हैं वे तुल्य स्थिति वाले होते हैं एवं तुल्य विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं यावत् इनमें से जो विषम आयु वाले हैं और विषम उत्पन्न होने वाले होते हैं वे विषम स्थिति वाले होते हैं एवं विषम विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

'कई तुल्य स्थिति वाले होते हैं एवं तुल्य विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं यावत् कई विषम स्थिति वाले होते हैं एवं विषम विशेषाधिक कर्म का बन्ध करते हैं।'

८७. जीव-चउवीसदंडएसु कम्म पयडिवेयण परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेदेइ ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए वेदेइ, अत्थेगइए णो वेदेइ।

प. दं. १. णेरइए णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेदेइ ?

उ. गोयमा ! णियमा वेदेइ।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिए।

णवरं–मणूसे जहा जीवे।

प. जीवा णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेदेंति ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

दं. १-२४. एवं णेरइया जाव वेमाणिया।

८७. जीव चौबीस दंडकों में कितनी कर्म प्रकृति के वेदन का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या जीव ज्ञानावरणीयकर्म का वेदन करता है ?

उ. गौतम ! कोई जीव वेदन करता है और कोई नहीं करता है।

प्र. दं. १. भंते ! क्या नैरयिक ज्ञानावरणीयकर्म का वेदन करता है ?

उ. गौतम ! वह नियमतः वेदन करता है।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष–मनुष्य का कथन सामान्य जीव के समान करना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या अनेक जीव ज्ञानावरणीयकर्म का वेदन करते हैं ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् कहना चाहिये।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

एवं जहा णाणावरणिज्जं तहा दंसणावरणिज्जं मोहणिज्जं अंतराइयं च।

वेदणिज्जाउय-णाम-गोयाइं एवं चेव।

णवरं–मणूसे वि णियमा वेदेइ।

एवं एए एगत्त-पोहत्तिया सोलस दंडगा।

–पण्ण. प. २३, उ. १, सु. १६७५-१६७८

८८. णाणावरणिज्जाइ बंधमाणे जीव-चउवीसदंडएसु कम्म वेयण परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणे कइ कम्मपगडीओ वेएइ ?

उ. गोयमा ! णियमा अट्ठ कम्मपगडीओ वेएइ।

दं. १-२४. एवं णेरइए जाव वेमाणिए।

एवं पुहुत्तेण वि।

एवं वेयणिज्जवज्जं जाव अंतराइयं।

प. जीवे णं भंते ! वेयणिज्जं कम्मं बंधमाणे कइ कम्मपगडीओ वेएइ ?

उ. गोयमा ! सत्तविहवेयए वा, अट्ठविहवेयए वा, चउव्विहवेयए वा।

दं. २१. एवं मणूसे वि।

दं. १-२४. सेसा णेरइयाई एगत्तेण वि पुहत्तेण वि णियमा अट्ठकम्मपगडीओ वेदेंति। जाव वेमाणिया।

प. जीवा णं भंते ! वेयणिज्जं कम्मं बंधमाणा कइ कम्मपगडीओ वेदेंति ?

उ. गोयमा ! १. सव्वे वि ताव होज्जा, अट्ठविहवेएगा य, चउव्विहवेएगा य,

२. अहवा अट्ठविहवेएगा य, चउव्विहवेएगा य, सत्तविहवेएगे य,

३. अहवा अट्ठविहवेएगा य, चउव्विहवेएगा य, सत्तविहवेएगा य।

दं. २१. एवं मणूसा वि भाणियव्वा।[1]

–पण्ण. प. २५, सु. १७६०-१७६४

८९. णाणावरणिज्जाइवेयमाणे जीव-चउवीसदंडएसु कम्म वेयण परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेयमाणे कइ कम्मपगडीओ वेएइ ?

उ. गोयमा ! सत्तविहवेयए वा अट्ठविहवेयए वा।

जिस प्रकार ज्ञानावरणीय के सम्बन्ध में कहा उसी प्रकार दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तरायकर्म के वेदन के विषय में कहना चाहिए।

वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्म के विषय में भी इसी प्रकार जानना चाहिए,

विशेष–मनुष्य इनका नियमतः वेदन करता है।

इस प्रकार एकत्व और बहुत्व की विवक्षा से ये सोलह दण्डक होते हैं।

८८. ज्ञानावरणीय आदि का बंध करते हुए जीव चौबीस दंडकों में कर्म वेदन का प्ररूपण–

प्र. भंते ! ज्ञानावरणीयकर्म का बन्ध करता हुआ जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है ?

उ. गौतम ! वह नियमतः आठ कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त वेदन जानना चाहिए।

इसी प्रकार अनेक की अपेक्षा भी कहना चाहिए।

वेदनीयकर्म को छोड़कर अंतराय कर्म पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए।

प्र. भंते ! वेदनीयकर्म को बांधता हुआ जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है ?

उ. गौतम ! वह सात, आठ या चार कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है।

दं. २१. इसी प्रकार मनुष्य के वेदन के सम्बन्ध में कहना चाहिए।

दं. १-२४. शेष नैरयिकों से वैमानिक पर्यन्त एकत्व या बहुत्व की विवक्षा से नियमतः आठ कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं।

प्र. भंते ! अनेक जीव वेदनीयकर्म को बांधते हुए कितनी कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं ?

उ. गौतम ! १. सभी जीव आठ या चार कर्मप्रकृतियों के वेदक होते हैं,

२. अथवा अनेक जीव आठ या चार कर्मप्रकृतियों के वेदक होते हैं और एक जीव सात कर्मप्रकृतियों का वेदक होता है,

३. अथवा अनेक जीव आठ, चार या सात कर्मप्रकृतियों के वेदक होते हैं।

दं. २१. इसी प्रकार मनुष्यों के विषय में भी कहना चाहिए।

८९. ज्ञानावरणीय आदि का वेदन करते हुए जीव-चौबीस दंडकों में कर्म वेदन का प्ररूपण–

प्र. भंते ! ज्ञानावरणीयकर्म का वेदन करता हुआ जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है ?

उ. गौतम ! वह सात या आठ (कर्मप्रकृतियों) का वेदक होता है।

---

१. विया. स. १६, उ. ३, सु. ४

दं. २१. एवं मणूसे वि।

दं. १-२४. अवसेसा णेरइयाई एगत्तेण वि पुहत्तेण वि णियमा अट्ठविह-कम्मपगडीओ वेदेंति जाव वेमाणिया।

प. जीवा णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेयमाणा कइ कम्मपगडीओ वेदेंति?

उ. गोयमा ! १. सव्वे वि ताव होज्जा अट्ठविहवेयगा,

२. अहवा अट्ठविहवेयगा य, सत्तविहवेयगे य,

३. अहवा अट्ठविहवेयगा य, सत्तविहवेयगा य।

दं. २१. एवं मणूसा वि।

दरिसणावरणिज्जं अंतराइयं च एवं चेव भाणियव्वं।

प. वेयणिज्ज-आउय-णाम-गोयाइं वेयमाणे कइ कम्मपगडीओ वेएइ?

उ. गोयमा ! जहा बंधवेयगस्स वेयणिज्जं तहा भाणियव्वं।

प. जीवे णं भंते ! मोहणिज्जं कम्मं वेयमाणे कइ कम्मपगडीओ वेएइ?

उ. गोयमा ! णियमा अट्ठकम्मपगडीओ वेएइ।

दं. १-२४. एवं णेरइए जाव वेमाणिए।

एवं पुहुत्तेण वि।[1] –पण्ण. प. २७, सु. १७८६-१७९२

९०. अरहजिणेस्स कम्म वेयण परूवणं–

उप्पण्णणाणदंसणधरे णं अरहा जिणे केवली चत्तारि कम्मंसे वेदेइ, तं जहा–

१. वेयणिज्जं, २. आउयं, ३. णामं, ४. गोयं।

–ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २६८

९१. एगिंदिएसु कम्मपयडिसामित्तं बंध-वेयण परूवणं य–

प. अपज्जत्तसुहुम-पुढविकाइयाणं भंते ! कइ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! अट्ठ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. नाणावरणिज्जं जाव ८. अंतराइयं।

प. पज्जत्तसुहुम-पुढविकाइयाणं भंते ! कइ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! अट्ठ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. नाणावरणिज्जं जाव ८. अंतराइयं।

प. अपज्जत्त-बायर-पुढविकाइयाणं भंते ! कइ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ?

दं. २१. इसी प्रकार मनुष्य के विषय में भी जानना चाहिए।

दं. १-२४. शेष सभी जीव नैरयिकों से वैमानिक पर्यन्त एकत्व और बहुत्व की विवक्षा से नियमतः आठ कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं।

प्र. भंते ! अनेक जीव ज्ञानावरणीयकर्म का वेदन करते हुए कितनी कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं?

उ. गौतम ! १. सभी जीव आठ कर्मप्रकृतियों के वेदक होते हैं,

२. अथवा अनेक जीव आठ कर्मप्रकृतियों के वेदक होते हैं और एक जीव सात कर्मप्रकृतियों का वेदक होता है।

३. अथवा अनेक जीव आठ या सात कर्मप्रकृतियों के वेदक होते हैं।

दं. २१. इसी प्रकार मनुष्यों में भी ये तीन भंग होते हैं।

दर्शनावरणीय और अन्तरायकर्म के साथ (अन्य कर्मप्रकृतियों के वेदन के विषय में) भी पूर्ववत् कहना चाहिए।

प्र. भंते ! वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्म का वेदन करता हुआ जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है?

उ. गौतम ! जिस प्रकार पूर्व में वेदनीय के बन्धक-वेदक का कथन किया गया है, उसी प्रकार यहां भी बंधक वेदक का कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! मोहनीयकर्म का वेदन करता हुआ जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है?

उ. गौतम ! वह नियमतः आठ कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त वेदन कहना चाहिए।

इसी प्रकार बहुत्व की विवक्षा से भी समझना चाहिए।

९०. अर्हंत के कर्म वेदन का प्ररूपण–

उत्पन्न केवलज्ञान-दर्शन के धारक अर्हंत जिन केवली चार कर्मांशों का वेदन करते हैं, यथा–

१. वेदनीय, २. आयु, ३. नाम, ४. गोत्र।

९१. एकेन्द्रिय जीवों में कर्म प्रकृतियों के स्वामित्व बन्ध और वेदन का प्ररूपण–

प्र. भंते ! अपर्याप्तसूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीवों के कितनी कर्मप्रकृतियां कही गई हैं?

उ. गौतम ! उनके आठ कर्मप्रकृतियां कही गई हैं, यथा–

१. ज्ञानावरणीय यावत् ८. अन्तराय।

प्र. भंते ! पर्याप्तसूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीवों के कितनी कर्मप्रकृतियां कही गई हैं?

उ. गौतम ! उनके आठ कर्म प्रकृतियां कही गई हैं, यथा–

१. ज्ञानावरणीय यावत् ८. अन्तराय।

प्र. भंते ! अपर्याप्तबादरपृथ्वीकायिक जीवों के कितनी कर्मप्रकृतियां कही गई हैं?

१. विया. स. १६, उ. ३, सु. ४

उ. गोयमा ! अट्ठकम्मपयडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. नाणावरणिज्जं जाव ८. अंतराइयं।

प. पज्जत्त बायर-पुढविकाइयाणं भंते ! कइ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।
एवं एएणं कमेणं जाव बायर-वणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाण त्ति।

प. अपज्जत्त सुहुम-पुढविकाइयाणं भंते ! कइ कम्मपयडीओ बंधंति ?

उ. गोयमा ! सत्तविहबंधगा वि, अट्ठविहबंधगा वि।
सत्त बंधमाणा आउयवज्जाओ सत्त कम्मपयडीओ बंधंति।
अट्ठ बंधमाणा पडिपुण्णाओ अट्ठ कम्मपयडीओ बंधंति।

प. पज्जत्त-सुहुम-पुढविकाइया णं भंते ! कइ कम्मपयडीओ बंधंति ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।
एवं एएणं कमेणं जाव पज्जत्त-बायर-वणस्सइकाइय त्ति।

प. अपज्जत्त-सुहुम-पुढविकाइया णं भंते ! कइ कम्मपयडीओ वेदेंति ?

उ. गोयमा ! चोद्दस कम्मपयडीओ वेदेंति, तं जहा–
१-८ नाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं,
९. सोतिंदियवज्झं, १०. चक्खिंदियवज्झं,
११. घाणिंदियवज्झं, १२. जिब्भिंदियवज्झं,
१३. थीवेदवज्झं, १४. पुरिसवेदवज्झं।
एवं एएणं कमेणं चउक्कएणं भेएणं जाव पज्जत्त-बायर-वणस्सइकाइया चोद्दस कम्मपयडीओ वेदेंति। *–विया. स. ३३/१, उ. १, सु. ७-१६*

९२. अणंतरोववन्नग-एगिंदिएसु कम्मपयडिबंधसामित्तं वेयणपरूवणं य–

प. अणंतरोववन्नग-सुहुम-पुढविकाइयाणं भंते ! कइ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! अट्ठ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. नाणावरणिज्जं जाव ८. अंतराइयं।

प. अणंतरोववन्नग-बायर-पुढविकाइयाणं भंते ! कइ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! अट्ठ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. नाणावरणिज्जं जाव ८. अंतराइयं।
एवं जाव अणंतरोववन्नग-बायर-वणस्सइकाइय त्ति।

प. अणंतरोववन्नग-सुहुम-पुढविकाइयाणं भंते ! कइ कम्मपयडीओ बंधंति ?

उ. गौतम ! उनके आठ कर्मप्रकृतियाँ कही गई हैं, यथा–
१. ज्ञानावरणीय यावत् ८. अंतराय।

प्र. भंते ! पर्याप्तबादरपृथ्वीकायिक जीवों के कितनी कर्मप्रकृतियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! उनके भी इसी प्रकार (आठ कर्मप्रकृतियां) कही हैं।
इसी प्रकार इसी क्रम से पर्याप्तबादर वनस्पतिकायिक जीवों तक कर्मप्रकृतियों का कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! अपर्याप्तसूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का बंध करते हैं ?

उ. गौतम ! वे सात या आठ कर्मप्रकृतियों के बंधक हैं।
सात बांधते हुए आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्मप्रकृतियों का बंध करते हैं,
आठ बाँधते हुए सम्पूर्ण आठ कर्मप्रकृतियों का बंध करते हैं,

प्र. भंते ! पर्याप्तसूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का बंध करते हैं ?

उ. गौतम ! इसी प्रकार (सात या आठ कर्मप्रकृतियां) बांधते हैं।
इसी प्रकार इसी क्रम से पर्याप्त बादरवनस्पतिकायिक जीवों तक कर्मप्रकृतियों के बंध का कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! अपर्याप्तसूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं ?

उ. गौतम ! वे चौदह कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं, यथा–
१-८. ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय,
९. श्रोत्रेन्द्रियावरण, १०. चक्षुरिन्द्रियावरण,
११. घ्राणेन्द्रियावरण, १२. जिह्वेन्द्रियावरण,
१३. स्त्रीवेदावरण, १४. पुरुषवेदावरण।
इसी प्रकार इसी क्रम से चारों भेदों (सूक्ष्म, बादर और इनके पर्याप्त अपर्याप्त) से युक्त पर्याप्तबादरवनस्पतिकायिक पर्यन्त चौदह कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं।

९२. अनन्तरोपपन्नक एकेन्द्रिय जीवों में कर्म प्रकृतियों के स्वामित्व बंध और वेदन का प्ररूपण–

प्र. भंते ! अनन्तरोपपन्नकसूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीवों के कितनी कर्मप्रकृतियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! उनके आठ कर्मप्रकृतियां कही गई हैं, यथा–
१. ज्ञानावरणीय यावत् ८. अन्तराय।

प्र. भंते ! अनन्तरोपपन्नक बादरपृथ्वीकायिक जीव के कितनी कर्म प्रकृतियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! उनके आठ कर्मप्रकृतियां कही गई हैं, यथा–
१. ज्ञानावरणीय यावत् ८. अन्तराय।
इसी प्रकार अनन्तरोपपन्नक बादरवनस्पतिकायिक-पर्यन्त कर्म प्रकृतियां जाननी चाहिए।

प्र. भंते ! अनन्तरोपपन्नकसूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का बंध करते हैं ?

उ. गोयमा ! आउयवज्जाओ सत्त कम्मपयडीओ बंधंति।

एवं जाव अणंतरोववन्नग-बायर-वणस्सइकाइय त्ति।

प. अणंतरोववन्नग-सुहुम-पुढविकाइया णं भंते ! कइ कम्मपयडीओ वेदेंति ?

उ. गोयमा ! चोद्दस कम्मपयडीओ वेदेंति, तं जहा–

१-१४. नाणावरणिज्जं जाव पुरिसवेदवज्झं।

एवं जाव अणंतरोववन्नग-बायर-वणस्सइकाइय त्ति।

–विया. स. ३३/१, उ. २, सु. ४-१०

उ. गौतम ! वे आयुकर्म को छोड़ कर शेष सात कर्मप्रकृतियों का बंध करते हैं।

इसी प्रकार अनन्तरोपपन्नकबादरवनस्पतिकायिक पर्यन्त बंध करते हैं।

प्र. भंते ! अनन्तरोपपन्नकसूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं ?

उ. गौतम ! वे चौदह कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं, यथा–

१-१४. ज्ञानावरणीय यावत् पुरुषवेदावरण।

इसी प्रकार अनन्तरोपपन्नक बादर वनस्पतिकाय-पर्यन्त वेदन करते हैं।

३. परंपरोववन्नगाइसु-एगिंदिएसु-कम्मपयडिसामित्तं बंध वेयण परूवण य–

प. परंपरोववन्नग-अपज्जत्त-सुहुम-पुढविकाइयाणं भंते ! कइ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ (बंधंति वेदेंति) ?

उ. गोयमा ! एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओहियउद्देसए तहेव निरवसेसं भाणियव्वं जाव चोद्दस वेदेंति।

–विया. स. ३३/१, उ. ३, सु. २

अणंतरोगाढ़ा जहा अंणतरोववन्नगा।

–विया. स. ३३/१, उ. ४, सु. १

परंपरोगाढा जहा परंपरोववन्नगा।

–विया. स. ३३/१, उ. ५, सु. १

अणंतराहारगा जहा अणंतरोववन्नगा।

–विया. स. ३३/१, उ. ६, सु. १

परंपराहारगा जहा परंपरोववन्नगा।

–विया. स. ३३/१, उ. ७, सु. १

अणंतरपज्जत्तगा जहा अणंतरोववन्नगा।

–विया. स. ३३/१, उ. ८, सु. १

परंपरपज्जत्तगा जहा परंपरोववन्नगा।

–विया. स. ३३/१, उ. ९, सु. १

चरिमा वि जहा परंपरोववन्नगा।

–विया. स. ३३/१, उ. १०, सु. १

एवं अचरिमा वि। *–विया. स. ३३/१, उ. ११, सु. १*

९३. परंपरोपपन्नकादि एकेन्द्रिय जीवों में कर्मप्रकृतियों के स्वामित्व, बंध और वेदन का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परंपरोपपन्नक अपर्याप्तसूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीवों के कितनी कर्मप्रकृतियां कही गई हैं और वे कितनी कर्मप्रकृतियां बांधते हैं और वेदते हैं ?

उ. गौतम ! इसी प्रकार पूर्वोक्त औधिक (प्रथम) उद्देशक के अभिलापानुसार चौदह कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं पर्यन्त समग्र कथन करना चाहिए।

अनन्तरावगाढ एकेन्द्रिय के सम्बन्ध में अनन्तरोपपन्नक उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए।

परम्परावगाढ एकेन्द्रिय का कथन परम्परोपपन्नक उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए।

अनन्तराहारक एकेन्द्रिय का कथन अनन्तरोपपन्नक उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए।

परम्पराहारक एकेन्द्रिय का कथन परम्परोपपन्नक उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए।

अनन्तरपर्याप्तक एकेन्द्रिय का कथन अनन्तरोपपन्नक उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए।

परम्परपर्याप्तक एकेन्द्रिय का कथन परम्परोपपन्नक उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए।

चरम एकेन्द्रिय का कथन परम्परोपपन्नक उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए।

इसी प्रकार अचरम एकेन्द्रिय-सम्बन्धी कथन भी जानना चाहिए।

४. लेस्सं पडुच्च एगिंदिएसु सामित्त बंध-वेयण परूवणं य–

प. कण्हलेस्स–अपज्जत्त-सुहुम-पुढविकाइयाणं भंते ! कइ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहियउद्देसए पण्णत्ताओ तहेव बंधंति, वेदेंति।

–विया. स. ३३/२, उ. १, सु. ४-६

प. अणंतरोववन्नग-कण्हलेस्स-सुहुम-पुढविकाइयाणं भंते ! कइ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओहिओ अणंतरोववन्नगाणं उद्देसओ पण्णत्ताओ तहेव बंधंति वेदेंति। *–विया. स. ३३/२, उ. २, सु. २*

९४. लेश्या की अपेक्षा एकेन्द्रियों में स्वामित्व बंध और वेदन का प्ररूपण–

प्र. भंते ! कृष्णलेश्यी अपर्याप्तक सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव के कितनी कर्मप्रकृतियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! इसी प्रकार पूर्वोक्त औधिक उद्देशक के अभिलापानुसार कर्मप्रकृतियाँ कही गई हैं वैसे ही बांधते हैं और वेदन करते हैं।

प्र. भंते ! अनन्तरोपपन्नक कृष्णलेश्यी सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीवों के कितनी कर्मप्रकृतियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! इसी प्रकार पूर्वोक्त औधिक अनन्तरोपपन्नक उद्देशक के अभिलापानुसार कर्मप्रकृतियां कही गई हैं वैसे ही बांधत हैं और वेदन करते हैं।

प. परंपरोववन्नंग-कण्हलेस्स-अपज्जत्त-सुहुम-पुढविकाइयाणं भंते ! कइ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिओ परंपरोववन्नग उद्देसओ पण्णत्ताओ तहेव बंधंति वेदेंति।

–विया. स. ३३/२, उ. ३, सु. २

एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिए एगिंदियसए एक्कारस उद्देसगा भणिया तहेव कण्हलेस्सए वि भाणियव्वा जाव अचरिमकण्हलेस्सा एगिंदिया।

–विया. स. ३३/२, उ. ४-११, सु. १

जहा कण्हलेस्सेहिं एवं नीललेस्सेहिं वि सयं भाणियव्वं।

–विया. स. ३३/३, उ. १-११, सु. १

एवं काउलेस्सेहिं वि सयं भाणियव्वं,

णवरं–"काउलेस्स" त्ति अभिलावो।

–विया. स. ३३/४, उ. १-११, सु. १

प. भवसिद्धीय-अपज्जत्त-सुहुम-पुढविकाइयाणं भंते ! कइ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! एवं एएणं अभिलावेणं जहेव पढमिल्लं एगिंदियसयं तहेव भवसिद्धीयसयं पि भाणियव्वं।

उद्देसगपरिवाडी तहेव जाव अचरिम त्ति।

–विया. स. ३३/५, उ. १-११, सु. २

प. कण्हलेस्स-भवसिद्धीय अपज्जत्त-सुहुम-पुढविकाइयाणं भंते ! कइ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहियउद्देसए पण्णत्ताओ तहेव बंधंति वेदेंति।

–विया. स. ३३/६, उ. १-११, सु. ६

प. अणंतरोववन्नग कण्हलेस्स भवसिद्धीय सुहुम पुढविकाइयाणं भंते ! कइ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिओ अणंतरोववन्नगो उद्देसओ पण्णत्ताओ तहेव बंधंति वेदेंति।

एवं एएणं अभिलावेणं एक्कारस वि उद्देसगा तहेव भाणियव्वा जहा ओहियसए जाव अचरिमो त्ति।

–विया. स. ३३/६, उ. १-११, सु. १०-११

जहा कण्हलेस्सभवसिद्धीए सयं भणियं एवं नीललेस्सभवसिद्धीएहिं वि सयं भाणियव्वं,

–विया. स. ३३/७, उ. १-११, सु. १

एवं काउलेस्सभवसिद्धीएहिं वि सयं भाणियव्वं।

–विया. स. ३३/८, उ. १-११, सु. १

एवं अभवसिद्धिएहिं वि जहेव भवसिद्धीयसयं, नवरं नव उद्देसगा, चरिम-अचरिमोद्देसगवज्जं। सेसं तहेव।

–विया. स. ३३/९, उ. १-९, सु. १

एवं कण्हलेस्स अभवसिद्धीयएगिंदिएहिं वि सयं भाणियव्वं,

–विया. स. ३३/१०, उ. १-९, सु. १

प्र. भंते ! परम्परोपपन्नक कृष्णलेश्यी अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीवों के कितनी कर्मप्रकृतियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! इसी प्रकार पूर्वोक्त औधिक परम्परोपपन्नक उद्देशक के अभिलापानुसार कर्मप्रकृतियाँ कही गई हैं वैसे ही बांधते हैं और वेदन करते हैं।

औधिक एकेन्द्रियशतक में जिस प्रकार ग्यारह उद्देशक कहे, उसी प्रकार इस अभिलापानुसार अचरम कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय पर्यन्त कृष्णलेश्यीशतक में भी कहने चाहिए।

जैसे कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय शतक में कहा वैसे ही नीललेश्यी एकेन्द्रिय जीवों के लिए भी समग्र शतक का कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार कापोतलेश्यी एकेन्द्रिय जीवों के लिए भी समग्र शतक कहना चाहिए।

विशेष–"कापोत लेश्या" यह कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! भवसिद्धिक अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव के कितनी कर्मप्रकृतियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! इसी प्रकार पूर्वोक्त प्रथम एकेन्द्रियशतक के अभिलापानुसार यहां भवसिद्धिकशतक भी कहना चाहिए।

अचरम उद्देशक पर्यन्त उद्देशकों की परिपाटी भी पूर्ववत् है।

प्र. भंते ! कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीवों के कितनी कर्मप्रकृतियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! इसी प्रकार पूर्वोक्त औधिक उद्देशक के अभिलापानुसार कर्मप्रकृतियां कही गई हैं वैसे ही बांधते हैं और वेदन करते हैं।

प्र. भंते ! अनन्तरोपपन्नक कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक सूक्ष्मपृथ्वीकायिकों में कितनी कर्म प्रकृतियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! इसी प्रकार पूर्वोक्त औधिक अनन्तरोपपन्नक उद्देशक के अभिलापानुसार कर्मप्रकृतियां कही गई हैं वैसे ही बांधते हैं और वेदन करते हैं।

इसी प्रकार औधिक एकेन्द्रिय शतक के अभिलापानुसार अचरम पर्यन्त ग्यारह उद्देशक कहने चाहिए।

जिस प्रकार कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीवों का शतक कहा, उसी प्रकार नीललेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीवों का शतक भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार कापोतलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीवों का शतक भी कहना चाहिए।

जिस प्रकार भवसिद्धिक शतक कहा उसी प्रकार चरम-अचरम उद्देशक को छोड़कर अभवसिद्धिक शतक के नौ उद्देशक कहने चाहिए। शेष सब पूर्ववत् जानना चाहिए।

इसी प्रकार कृष्णलेश्यी अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय शतक भी कहना चाहिए।

एवं नीललेस्स अभवसिद्धीयएगिंदिएहिं वि सयं भाणियव्वं। —विया. स. ३३/११, उ. १-९, सु. १

काउलेस्स अभवसिद्धीय एगिंदिएहिं वि सयं एवं चेव। —विया. स. ३३/१२, उ. १-९, सु. १

इसी प्रकार नीललेश्यी अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय शतक भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार कापोतलेश्यी अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय शतक भी कहना चाहिए।

९५. ठाणं पडुच्च एगिंदिएसु कम्मपयडिसामित्तं बंध वेयण परूवण य–

प. अपज्जत्त-सुहुम-पुढविकाइयाणं भंते ! कइ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! अट्ठ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. नाणावरणिज्जं जाव ८. अंतराइयं।
एवं चउक्कएणं भेएणं जहेव एगिंदियसएसु जाव बायर-वणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाणं।

प. अपज्जत्त-सुहुम-पुढविकाइया णं भंते ! कइ कम्मपयडीओ बंधंति ?

उ. गोयमा ! सत्तविहबंधगा वि, अट्ठविहबंधगा वि,
जहा एगिंदियसएसु जाव पज्जत्त-बायर-वणस्सइकाइया।

प. अपज्जत्त-सुहुम-पुढविकाइया णं भंते ! कइ कम्मपयडीओ वेदेंति ?

उ. गोयमा ! चोद्दस कम्मपयडीओ वेदेंति, नाणावरणिज्जं जहा एगिंदियसएसु जाव पुरिसवेयवज्झं।

एवं जाव बायर-वणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाणं। —विया. स. ३४/१, उ. १, सु. ७०-७३

९५. स्थान की अपेक्षा एकेन्द्रियों में कर्मप्रकृतियों का स्वामित्व बंध और वेदन का प्ररूपण–

प्र. भंते ! अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों के कितनी कर्मप्रकृतियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! आठ कर्म प्रकृतियां कही गई हैं, यथा–
१. ज्ञानावरणीय यावत् ८. अन्तराय।
इस प्रकार प्रत्येक के (सूक्ष्म बादर और इनके पर्याप्त अपर्याप्त) चार भेदों को एकेन्द्रिय शतक के अनुसार पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का बंध करते हैं ?

उ. गौतम ! वे सात या आठ कर्मप्रकृतियों का बंध करते हैं।
जैसे एकेन्द्रियशतक में कहा उसी के अनुसार पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं ?

उ. गौतम ! चौदह कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं। एकेन्द्रिय-शतक के अनुसार वे ज्ञानावरणीय से पुरुषवेदावरण पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक पर्यन्त जानना चाहिए।

९६. ठाणं पडुच्च-अणंतरोववन्नगएगिंदिएसु कम्मपयडिसामित्तं बंध-वेयण परूवणं य–

प. अणंतरोववन्नग-सुहुम-पुढविकाइयाणं भंते ! कइ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ बंधंति वेदेंति ?

उ. गोयमा ! अट्ठ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ।
एवं जहा एगिंदियसएसु अणंतरोववन्नगउद्देसए तहेव पण्णत्ताओ बंधंति वेदेंति जाव अणंतरोववन्नग बायर-वणस्सइकाइया। —विया. स. ३४/१, उ. २, सु. ४,

९६. स्थान की अपेक्षा अनन्तरोपपन्नक एकेन्द्रियों में कर्मप्रकृतियों का स्वामित्व बंध और वेदन का प्ररूपण–

प्र. भंते ! अनन्तरोपपन्नक सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीवों के कितनी कर्मप्रकृतियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! उनके आठ कर्मप्रकृतियां कही गई हैं,
इसी प्रकार जैसे एकेन्द्रिय शतक का अनन्तरोपपन्नक उद्देशक कहा उसी के अनुसार अनन्तरोपपन्नक बादर वनस्पतिकाय पर्यन्त कर्मप्रकृतियां और उनका बंध एवं वेदन कहना चाहिए।

९७. ठाणं पडुच्च परंपरोववन्नगएगिंदिएसु कम्म पयडिसामित्तं बंध-वेयण परूवण य–

प. परंपरोववन्नग पज्जत्तग सुहुम-बायर पुढवि जाव वणस्सइकाइयाणं भंते ! कइ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! अट्ठकम्मपयडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. णाणावरणिज्जं जाव ८. अन्तराइयं।

प. परंपरोववन्नग पज्जत्तग सुहुम-बायर-पुढवि जाव वणस्सइकाइयाणं भंते ! कइ कम्मपयडीओ बंधंति ?

उ. गोयमा ! सत्तविहबंधगा वि, अट्ठविहबंधगा वि, सत्त बंधमाणा आउय वज्जाओ सत्त कम्मपयडीओ बंधंति।

९७. स्थान की अपेक्षा परंपरोपपन्नक एकेन्द्रियों में कर्म प्रकृतियों का स्वामित्व, बंध और वेदन का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परंपरोपपन्नक पर्याप्तक सूक्ष्म व बादर पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक के कितनी कर्मप्रकृतियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! आठ कर्मप्रकृतियां कही गई हैं, यथा–
१. ज्ञानावरणीय यावत् ८. अंतराय।

प्र. भंते ! परंपरोपपन्नक पर्याप्तक सूक्ष्म व बादर पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक कितनी कर्मप्रकृतियों का बंध करते हैं ?

उ. गौतम ! वे सात या आठ कर्मप्रकृतियों का बंध करते हैं, सात बांधने पर आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्मप्रकृतियों का बन्ध करते हैं।

अट्ठबंधमाणा पडिपुण्णाओ अट्ठकम्मपयडीओ बंधंति।

प. परम्परोववन्नगपज्जत्तग सुहुम बायर पुढवि जाव वणस्सइकाइयाणं भंते! कइ कम्मपयडीओ वेदेंति?

उ. गोयमा! चोद्दस कम्मपयडीओ वेदेंति, तं जहा–

१. णाणावरणिज्जं जाव १४. पुरिसवेयवज्झं।

–विया. स. ३४/१, उ. ३, सु. ३ (१)

९८. सेसं अट्ठउद्देसगेसु कम्मपयडि सामित्तं बंध वेयण परूवण य–

एवं सेसा वि अट्ठ उद्देसगा जाव अचरिमो त्ति,

णवरं–अणंतरावगाढ, अणंतराहारग, अणंतरपज्जत्तगा अणंतरोववन्नग सरिसा,

परंपरोवगाढ, परंपराहारग, परंपरपज्जत्तगा परंपरोववन्नग सरिसा,

चरिमा य अचरिमा य एवं –विया. स. ३४/१, उ. ४-११, सु. १

९९. ठाणं-उववज्जणं पडुच्च सलेस्स एगिंदिएसु कम्मपयडी सामित्तं वंध वेयण परूवण य–

प. कण्हलेस्सअपज्जत्त-सुहुम बायर पुढविकाइयाणं जाव पज्जत्तग बायर वणस्सइकाइयाणं भंते! कइ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा! जहा ओहिओ उद्देसओ जाव तुल्लट्ठिईय त्ति।

–विया. स. ३४/२, उ. १-११, सु. ३

एवं नीललेस्सेहि वि सयं,

काउलेस्से वि एवं चेव,

–विया. स. ३४/३-५, उ. १-११, सु. १-२

प. कण्हलेस्स अणंतरोववन्नग सुहुम पुढविकाइयाणं भंते! कइ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा! जहा एगिंदियसएसु अणंतरोववन्नग उद्देसए तहेव पण्णत्ताओ, तहेव बंधंति, वेदेंति जाव अणंतरोववन्नग वायर वणस्सइकाइया।

नीललेस्से वि काउलेस्से वि एवं चेव।

–विया. स. ३४/६, उ. १-११, सु. २,

प. परंपरोववन्नग कण्हलेस्स भवसिद्धीय अपज्जत्त सुहुम वायर पुढविकाइया जाव वायर वणस्सइकाइयाणं भंते! कइ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा! जहेव ओहिओ उद्देसओ जाव तुल्लट्ठिईय त्ति।

–विया. स. ३४/६, उ. १-११, सु. ५

एवं नीललेस्स एगिंदिएसु एवं चेव।

काउलेस्स एगिंदिएसु एवं चेव,

एवं सेसावि अट्ठ उद्देसगा जाव अचरिमो त्ति।

एवं अभवसिद्धिएहि वि

णवरं–चरिम-अचरिमवज्जा नव उद्देसगा भाणियव्वा।

–विया. स. ३४ [illegible]

आठ बांधने पर सम्पूर्ण आठ कर्मप्रकृतियों का बंध करते हैं।

प्र. भंते! परंपरोपपन्नक पर्याप्त सूक्ष्म व बादर पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक कितनी कर्म प्रकृतियों का वेदन करते हैं?

उ. गौतम! चौदह कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं, यथा–

१. ज्ञानावरणीय यावत् १४. पुरुषवेदावरण।

९८. शेष आठ उद्देशकों में कर्म प्रकृतियों का स्वामित्व, बंध और वेदन का प्ररूपण–

इसी प्रकार अचरम उद्देशक पर्यन्त शेष आठ उद्देशकों में भी कहना चाहिए।

विशेष–अणंतरावगाढ, अणंतराहारक, अणंतरपर्याप्तक अनंतरोपपन्नक के समान है।

परम्परावगाढ, परंपराहारक, परंपरपर्याप्तक, परंपरोपपन्नक क समान है।

इसी प्रकार चरम और अचरम उद्देशक भी जानना चाहिए।

९९. स्थान और उत्पत्ति की अपेक्षा सलेश्य एकेन्द्रियों में कर्म प्रकृतियों का स्वामित्व, बंध और वेदन का प्ररूपण–

प्र. भंते! कृष्णलेश्यी अपर्याप्तक सूक्ष्म-बादर पृथ्वीकायिक यावत् पर्याप्तक बादर वनस्पतिकायिकों के कितनी कर्म प्रकृतियां कही गई हैं?

उ. गौतम! जैसे औधिक उद्देशक में कहा है उसी प्रकार तुल्यस्थिति पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार नीललेश्यियों के लिए भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार कापोतलेश्यियों के लिए भी कहना चाहिए।

प्र. भंते! कृष्णलेश्यी अनन्तरोपपन्नक सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों के कितनी कर्मप्रकृतियां कही गई हैं?

उ. गौतम! जैसे एकेन्द्रिय शतक के अनंतरोपपन्नक उद्देशक में कहा उसी प्रकार अनन्तरोपपन्नक बादर वनस्पतिकायिक पर्यंत कहना चाहिए, उसी प्रकार बंध और वेदन भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार नीललेश्यियों और कापोतलेश्यियों के लिए भी कहना चाहिए।

प्र. भंते! कृष्णलेश्यी परंपरोपपन्नक भवसिद्धिक अपर्याप्त सूक्ष्म बादर पृथ्वीकायिकों यावत् बादर वनस्पतिकायिकों के कितनी कर्म प्रकृतियां कही गई हैं?

उ. गौतम! जैसे औधिक उद्देशक में कहा है उसी प्रकार तुल्यस्थिति पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार नीललेश्यी एकेन्द्रियों के लिए भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार कापोतलेश्यी एकेन्द्रियों के लिए भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार अचरम उद्देशक पर्यन्त शेष आठ उद्देशकों में भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार अभवसिद्धिक को भी कर्मप्रकृतियां कहनी चाहिए।

विशेष–चरम और अचरम को छोड़कर नव उद्देशक कहने चाहिए।

१००. कंखामोहणिज्जकम्मबंधहेऊपरूवणं–

प. १. जीवाणं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं बंधंति ?

उ. हंता, गोयमा ! बंधंति।

प. कहं णं भंते ! जीवा कंखामोहणिज्जं कम्मं बंधंति ?

उ. गोयमा ! पमादपच्चया, जोगनिमित्तं च बंधंति,

प. से णं भंते ! पमादे किं पवहे ?

उ. गोयमा ! जोगप्पवहे।

प. से णं भंते ! जोगे किं पवहे ?

उ. गोयमा ! वीरिय पवहे।

प. से णं भंते ! वीरिए किं पवहे ?

उ. गोयमा ! सरीर प्पवहे।

प. से णं भंते ! सरीरे किं पवहे ?

उ. गोयमा ! जीव प्पवहे।

एवं सइ अत्थि उट्ठाणे ति वा, कम्मे ति वा, बले ति वा, वीरिए ति वा, पुरिसक्कारपरक्कम्मे ति वा।

–विया. स. १, उ. ३, सु. ८-९

१००. कांक्षामोहनीय कर्म के बंध हेतुओं का प्ररूपण–

प्र. १. भंते ! क्या जीव कांक्षामोहनीयकर्म बांधते हैं ?

उ. हां, गौतम ! बांधते हैं।

प्र. भंते ! जीव कांक्षामोहनीय कर्म किन कारणों से बांधते हैं ?

उ. गौतम ! प्रमाद के कारण और योग के निमित्त से (कांक्षामोहनीय कर्म) बांधते हैं।

प्र. भंते ! प्रमाद किससे उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! प्रमाद योग से उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! योग किससे उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! योग वीर्य से उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! वीर्य किससे उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! वीर्य शरीर से उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! शरीर किससे उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! शरीर जीव से उत्पन्न होता है।

ऐसा होने पर जीव का उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकर-पराक्रम होता है।

१०१. जीव-चउवीसदंडएसु कंखामोहणिज्जकम्मस्स कडाईणं तिकालत्तं, निरूवणं–

प. जीवाणं भंते ! कंखामोहणिज्जे कम्मे कडे ?

उ. हंता, गोयमा ! कडे।

प. से णं भंते ! १. किं देसेणं देसे कडे,
२. देसेणं सव्वे कडे,
३. सव्वेणं देसे कडे,
४. सव्वेणं सव्वे कडे।

उ. गोयमा ! १. नो देसेणं देसे कडे,
२. नो देसेणं सव्वे कडे,
३. नो सव्वेणं देसे कडे,
४. सव्वेणं सव्वे कडे।

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! कंखामोहणिज्जे कम्मे कडे ?

उ. हंता, गोयमा ! नो देसेणं देसे कडे जाव सव्वेणं सव्वे कडे।

दं. २-२४ एवं जाव वेमाणियाणं दंडओ भाणियव्वो।

प. जीवा णं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं करिंसु ?

उ. हंता, गोयमा ! करिंसु।

प. तं भंते ! किं देसेणं देसं करिंसु जाव सव्वेणं सव्वं करिंसु ?

उ. गोयमा ! नो देसेणं देसं करिंसु जाव सव्वेणं सव्वं करिंसु।

दं. १-२४ एएणं अभिलावेणं दंडओ जाव वेमाणियाणं।

१०१. जीव-चौवीसदंडकों में कांक्षामोहनीय कर्म का कृत आदि त्रिकालत्व का निरूपण–

प्र. भंते ! क्या जीवों का कांक्षामोहनीय कर्म कृत (किया हुआ) है ?

उ. हां, गौतम ! वह कृत है।

प्र. भंते ! १. क्या वह देश से देशकृत है,
२. देश से सर्वकृत है,
३. सर्व से देशकृत है,
४. सर्व से सर्वकृत है ?

उ. गौतम ! १. वह देश से देशकृत नहीं है,
२. देश से सर्वकृत नहीं है,
३. सर्व से देशकृत नहीं है,
४. किन्तु सर्व से सर्वकृत है।

प. दं. १. भंते ! क्या नैरयिकों का कांक्षामोहनीय कर्म कृत है ?

उ. हां, गौतम ! देश से देशकृत नहीं है यावत् सर्व से सर्वकृत है।

दं. २-२४ इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त दण्डक कहने चाहिए।

प्र. भंते ! क्या जीवों ने कांक्षामोहनीय कर्म का उपार्जन किया है ?

उ. हां, गौतम ! किया है।

प्र. भंते ! क्या देश से देश का उपार्जन किया है यावत् सर्व से सर्व का उपार्जन किया है ?

उ. गौतम ! देश से देश का उपार्जन नहीं किया है यावत् सर्व से सर्व का उपार्जन किया है।

दं. १-२४ इस अभिलाप से वैमानिक पर्यन्त दंडक कहने चाहिए।

दं. १-२४ एवं 'करेंति' एत्थ वि दंडओ जाव वेमाणियाणं।

दं. १-२४ एवं 'करेस्संति' एत्थ वि दंडओ जाव वेमाणियाणं।

एवं

१. चिणे, २ चिणिंसु,
३. चिणंति, ४. चिणिस्संति।
१. उवचिणे, २. उवचिणिंसु,
३. उवचिणंति, ४. उवचिणिस्संति।
१. उदीरेंसु, २. उदीरेंति, ३. उदीरिस्संति।
१. वेदिंसु, २. वेदेंति, ३. वेदिस्संति।
१. निज्जरेंसु, २. निज्जरेंति, ३. निज्जरिस्संति।[1]

–विया. स. १, उ. ३, सु. १-३ (१-३)

दं. १-२४ इसी प्रकार 'करते हैं' यहाँ भी (इस अभिलाप से) वैमानिक पर्यंत दण्डक कहने चाहिए।

दं. १-२४ इसी प्रकार 'करेंगे' यहां भी (इस अभिलाप से) वैमानिकपर्यन्त दण्डक कहने चाहिए।

इसी प्रकार (कृत की तरह)।

१. चित, २. चय किया,
३. चय करते हैं और, ४. चय करेंगे,
१. उपचित है, २. उपचय किया,
३. उपचय करते हैं, और ४. उपचय करेंगे,
१. उदीरणा की, २. उदीरणा करते हैं, ३. उदीरणा करेंगे,
१. वेदन किया, २. वेदन करते हैं, ३. वेदन करेंगे,
१. निर्जरा की, २. निर्जरा करते हैं, ३. निर्जरा करेंगे।

(इन पदों का चौवीस दण्डकों में पूर्ववत् कथन करना चाहिए।)

१०२. कंखामोहणिज्ज कम्मस्स उदीरणं-उवसमणं–

प. से णूणं भंते ! (कंखामोहणिज्जं कम्मं) अप्पणा चेव उदीरेइ, अप्पणा चेव गरहइ, अप्पणा चेव संवरेइ?

उ. हंता, गोयमा ! अप्पणा चेव उदीरेइ, अप्पणा चेव गरहइ, अप्पणा चेव संवरेइ।

प. जं णं भंते ! अप्पणा चेव उदीरेइ, अप्पणा चेव गरहइ, अप्पणा चेव संवरेइ तं किं–

१. उदिण्णं उदीरेइ,
२. अणुदिण्णं उदीरेइ,
३. अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ,
४. उदयाणंतरंपच्छाकडं कम्मं उदीरेइ?

उ. गोयमा ! १. नो उदिण्णं उदीरेइ,
२. नो अणुदिण्णं उदीरेइ,
३. अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ,
४. णो उदयाणंतरं पच्छाकडं कम्मं उदीरेइ।

प. जं तं भंते ! अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ तं किं उट्ठाणेणं कम्मेणं बलेणं वीरिएणं पुरिसक्कारपरक्कमेणं अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ?

उदाहु तं अणुट्ठाणेणं अकम्मेणं अबलेणं अवीरिएणं अपुरिसक्कारपरक्कमेणं, अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ?

१०२. कांक्षामोहनीय कर्म का उदीरण और उपशमन–

प्र. भंते ! क्या निश्चय ही जीव स्वयं (कांक्षामोहनीय कर्म) की उदीरणा करता है, स्वयं ही उसकी गर्हा करता है और स्वयं ही उसका संवर करता है?

उ. हां, गौतम ! जीव स्वयं ही उसकी उदीरणा करता है, स्वयं ही गर्हा करता है और स्वयं ही संवर करता है।

प्र. भंते ! यदि वह स्वयं ही उसकी उदीरणा करता है, गर्हा करता है और संवर करता है तो क्या–

१. उदीर्ण (उदय में आए हुए) की उदीरणा करता है,
२. अनुदीर्ण (उदय में नहीं आए हुए) की उदीरणा करता है,
३. अनुदीर्ण उदीरणाभविक (उदय में नहीं आये हुए, किन्तु उदीरणा के योग्य) कर्म की उदीरणा करता है?
४. उदयानन्तर पश्चातकृत कर्म की उदीरणा करता है?

प्र. गौतम ! १. उदीर्ण की उदीरणा नहीं करता है,
२. अनुदीर्ण की उदीरणा नहीं करता है,
३. अनुदीर्ण-उदीरणाभविक (योग्य) कर्म की उदीरणा करता है,
४. उदयानन्तर पश्चात् कृत कर्म की भी उदीरणा नहीं करता है।

प्र. भंते ! यदि जीव अनुदीर्ण-उदीरणाभविक कर्म की उदीरणा करता है, तो क्या उत्थान से, कर्म से, बल से, वीर्य से और पुरुषकार-पराक्रम से अनुदीर्ण उदीरणा भविक कर्म की उदीरणा करता है?

अथवा अनुत्थान से, अकर्म से, अबल से, अवीर्य से और अपुरुषकार-पराक्रम से अनुदीर्ण उदीरणा भविक कर्म की उदीरणा करता है?

1. [illegible]

उ. गोयमा ! तं उट्ठाणेण वि, कम्मेण वि, बलेण वि, वीरिएण वि, पुरिसक्कारपरक्कमेण वि, अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ,
णो तं अणुट्ठाणेणं, अकम्मेणं, अबलेणं, अवीरिएणं, अपुरिसक्कारपरक्कमेणं, अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ।
एवं सइ अत्थि उट्ठाणे इ वा, कम्मे इ वा, बले इ वा, वीरिए इ वा, पुरिसक्कारपरक्कमे इ वा।

प. से णूणं भंते ! (कंखामोहणिज्जंकम्मं) अप्पणा चेव उवसामेइ, अप्पणा चेव गरहइ, अप्पणा चेव संवरेइ ?

उ. हंता, गोयमा ! **एत्थ वि तं चेव भाणियव्वं।**
णवरं–अणुदिण्णं उवसामेइ, सेसा पडिसेहेयव्वा तिण्णि।

प. जं णं भंते ! अणुदिण्णं उवसामेइ,
तं किं उट्ठाणेण जाव पुरिसक्कारपरक्कमेण वा अणुदिण्णं उवसामेइ उदाहु तं अणुट्ठाणेणं जाव अपुरिसक्कारपरक्कमेणं अणुदिण्णं उवसामेइ ?

उ. हंता, गोयमा! तं उट्ठाणेण वि जाव पुरिसक्कारपरक्कमेण वि।
णो तं अणुट्ठाणेणं जाव अपुरिसक्कारपरक्कमेणं अणुदिण्णं कम्मं उवसामेइ।
एवं सइ अत्थि उट्ठाणे इ वा जाव पुरिसक्कारपरक्कमे इ वा। –विया. स. १, उ. ३, सु. १०-११

उ. गौतम ! वह अनुदीर्ण-उदीरणा-भविक कर्म की उदीरणा उत्थान से, कर्म से, बल से, वीर्य से और पुरुषकार-पराक्रम से करता है,
(किन्तु) अनुत्थान से, अकर्म से, अबल से, अवीर्य से और अपुरुषकार-पराक्रम से अनुदीर्ण-उदीरणा भविक कर्म की उदीरणा नहीं करता है।
अतएव उत्थान है, कर्म है, बल है, वीर्य है और पुरुषकार पराक्रम है।

प्र. भंते ! क्या निश्चय ही जीव स्वयं (कांक्षामोहनीय कर्म का) उपशम करता है, स्वयं ही गर्हा करता है, और स्वयं ही संवर करता है ?

उ. हां, गौतम ! यहां भी उसी प्रकार पूर्ववत् कहना चाहिए।
विशेष–अनुदीर्ण का उपशम करता है, शेष तीनों विकल्पों का निषेध करना चाहिए।

प्र. भंते ! यदि जीव अनुदीर्ण कर्म का उपशम करता है, तो क्या उत्थान से यावत् पुरुषकार-पराक्रम से करता है, अथवा अनुत्थान से यावत् अपुरुषकार-पराक्रम से अनुदीर्ण कर्म का उपशम करता है ?

उ. हां, गौतम ! जीव उत्थान से यावत् पुरुषकार-पराक्रम से उपशम करता है।
किन्तु अनुत्थान से यावत् अपुरुषकार-पराक्रम से अनुदीर्ण कर्म का उपशम नहीं करता है।
अतएव उत्थान है यावत् पुरुषकार पराक्रम है।

१०३. कंखामोहणिज्जकम्मस्स वेयणं णिज्जरण य–

प. से णूणं भंते ! (कंखामोहणिज्जं कम्मं) अप्पणा चेव वेदेइ , अप्पणा चेव गरहइ ?

उ. गोयमा ! **एत्थ वि सच्चेव परिवाडी।**
णवरं–उदिण्णं वेएइ, नो अणुदिण्णं वेएइ।
एवं उट्ठाणेण वि जाव **पुरिसक्कारपरक्कमेण इ वा।**

प. से णूणं भंते ! अप्पणा चेव निज्जरेइ, अप्पणा चेव गरहइ ?

उ. गोयमा ! **एत्थ वि सच्चेव परिवाडी।**
णवरं–उदयाणंतरंपच्छाकडं कम्मं निज्जरेइ।
एवं उट्ठाणेण वि जाव **पुरिसक्कारपरक्कमेइ वा।**
–विया. स. १, उ. ३, सु. १२-१३

१०३. कांक्षा मोहनीय कर्म का वेदन और निर्जरण–

प्र. भंते ! क्या निश्चय ही जीव स्वयं (कांक्षामोहनीय कर्म) का वेदन करता है और स्वयं ही गर्हा करता है ?

उ. गौतम ! यहां भी पूर्वोक्त समस्त परिपाटी समझनी चाहिए।
विशेष–उदीर्ण को वेदता है, अनुदीर्ण को नहीं वेदता है।
इसी प्रकार उत्थान से यावत् पुरुषकार पराक्रम से वेदता है।

प्र. भंते ! क्या निश्चय ही जीव स्वयं निर्जरा करता है और स्वयं ही गर्हा करता है ?

उ. गौतम ! यहां भी पूर्वोक्त समस्त परिपाटी समझनी चाहिए।
विशेष–उदयानन्तर पश्चात्कृत कर्म की निर्जरा करता है।
इसी प्रकार उत्थान से यावत् पुरुषकारपराक्रम से (निर्जरा और गर्हा करता है।)

१०४. चउवीसदंडएसु कंखामोहणिज्जकम्मस्स वेयणं-निज्जरणं य–

प. दं. १-११ नेरइया णं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति ?

उ. हंता, गोयमा ! वेदेंति। **जहा ओहिया जीवा तहा नेरइया जाव थणियकुमारा।**

प. दं. १२ पुढविकाइया णं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति ?

उ. हंता, गोयमा ! वेदेंति।

१०४. चौबीस दंडकों में कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन और निर्जरण–

प्र. दं. १-११. भंते ! क्या नैरयिक जीव कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन करते हैं ?

उ. हां, गौतम ! वेदन करते हैं। जैसे जीवों का कथन किया है वैसे ही नैरयिकों से स्तनितकुमार पर्यन्त समझ लेना चाहिए।

प्र. दं. १२. भंते ! क्या पृथ्वीकायिक जीव कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन करते हैं ?

उ. हां, गौतम ! वेदन करते हैं।

प. कहं णं भंते ! पुढविकाइया कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति ?

उ. गोयमा ! तेसिं णं जीवाणं णो एवं तक्का इ वा, सण्णा इ वा, पण्णा इ वा, मणे इ वा, वई इ वा, अम्हे णं कंखामोहणिज्जं कम्मं वेएमो वेदेंति पुण ते।

प. से णूणं भंते ! तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं ?

उ. हंता, गोयमा ! तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं।

एवं जाव अत्थि तं उट्ठाणे इ वा जाव पुरिसक्कारपरक्कमेइ वा।

दं. १३-१९ एवं जाव चउरिंदिया।

दं. २०-२४ पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया जाव वेमाणिया जहा ओहिया जीवा। *-विया. स. १, उ. ३, सु. १४*

प्र. भंते ! पृथ्वीकायिक जीव किस प्रकार कांक्षामोहनीयकर्म का वेदन करते हैं ?

उ. गौतम ! उन जीवों को ऐसा तर्क, संज्ञा, प्रज्ञा, मन या वचन नहीं होता है कि हम कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन करते हैं, किन्तु वे उसका वेदन अवश्य करते हैं।

प्र. भंते ! क्या यही सत्य और निःशंक है, जो जिन-भगवन्तों द्वारा प्ररूपित है ?

उ. हां, गौतम ! वही सत्य है, निःशंक है जो जिनेन्द्रों द्वारा प्ररुपित है।

इसी प्रकार यावत् उत्थान से यावत् पुरुषकार-पराक्रम से निर्जरा करते हैं।

दं. १३-१९ इसी प्रकार चतुरिन्द्रियजीवों पर्यन्त जानना चाहिए।

दं. २०-२४ जैसे सामान्य जीवों के विषय में कहा है, वैसे ही पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

१०५. कंखामोहणिज्जकम्मवेयणकारणाणि–

प. जीवाणं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति ?

उ. हंता, गोयमा ! वेदेंति।

प. कहं णं भंते ! जीवा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति ?

उ. गोयमा ! तेहिं तेहिं कारणेहिं संकिया कंखिया वितिगिंछिया भेदसमावन्ना कलुससमावन्ना एवं खलु जीवा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति। *-विया. स. १, उ. ३, सु. ४-५*

१०५. कांक्षा मोहनीय कर्म वेदन के कारण–

प्र. भंते ! क्या जीव कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन करते हैं ?

उ. हां, गौतम ! वेदन करते हैं।

प्र. भंते ! जीव कांक्षामोहनीय कर्म का किस प्रकार वेदन करते हैं ?

उ. गौतम ! उन-उन (अमुक-अमुक) कारणों से शंकायुक्त, कांक्षायुक्त, विचिकित्सायुक्त, भेदसमापन्न एवं कलुषसमापन्न होकर जीव कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन करते हैं।

१०६. निग्गंथे पडुच्च कंखामोहणिज्ज कम्मस्स वेयणवियारो–

प. अत्थि णं भंते ! समणा वि निग्गंथा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. कहं णं भंते ! समणा वि निग्गंथा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति ?

उ. गोयमा ! तेहिं तेहिं नाणंतरेहिं दंसणंतरेहिं चरित्तंतरेहिं लिंगंतरेहिं पवयणंतरेहिं, पावयणंतरेहिं, कप्पंतरेहिं, मग्गंतरेहिं, मयंतरेहिं, भंगंतरेहिं, नयंतरेहिं, नियमंतरेहिं, पमाणंतरेहिं,

संकिया कंखिया वितिगिंछिया भेदसमावन्ना, कलुससमावन्ना एवं खलु समणा निग्गंथा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति।

प. से णूणं भंते ! तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं ?

उ. हंता, गोयमा ! तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं।

१०६. निर्ग्रन्थों की अपेक्षा कांक्षामोहनीय कर्म के वेदन का विचार–

प्र. भंते ! क्या श्रमणनिर्ग्रन्थ भी कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन करते हैं ?

उ. हां, गौतम ! वे भी वेदन करते हैं।

प्र. भंते ! श्रमणनिर्ग्रन्थ कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन किस प्रकार करते हैं ?

उ. गौतम ! उन-उन कारणों से ज्ञानान्तर, दर्शनान्तर, चारित्रान्तर, लिंगान्तर, प्रवचनान्तर, प्रावचनिकान्तर, कल्पान्तर, मार्गान्तर, मतान्तर, भंगान्तर, नयान्तर, नियमान्तर और प्रमाणान्तरों के द्वारा

शंकित, कांक्षित, [illegible] भेदसमापन्न [illegible] कलुषसमापन्न होकर [illegible] का वेदन करते हैं।

प्र. [illegible]

उ. [illegible]

एवं जाव अत्थि उट्ठाणे इ वा जाव पुरिसक्करपरक्कमे इ वा। —*विया. स. १, उ. ३, सु. १५*

इसी प्रकार यावत् उत्थान से यावत् पुरुषकार-पराक्रम से निर्जरा करते हैं।

१०७. चउव्विहाउय बंधहेउ परूवणं—

(तमाइक्खइ एवं खलु) चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइयत्ताए कम्मं पकरेंति, णेरइयत्ताए कम्मं पकरेत्ता णेरइएसु उववज्जंति, तं जहा—

१. महारंभयाए, २. महापरिग्गहयाए,
३. पंचिंदियवहेणं, ४. कुणिमाहारेणं,

तिरिक्खजोणिएसु, तं जहा—

१. माइल्लयाए णियडिल्लयाए,
२. अलियवयणेणं,
३. उक्कंचणयाए,
४. वंचणयाए।

मणुस्सेसु, तं जहा—

१. पगइभद्दयाए,
२. पगइविणीययाए,
३. साणुक्कोसयाए,
४. अमच्छरिययाए।

देवेसु, तं जहा—

१. सरागसंजमेणं,
२. संजमासंजमेणं,
३. अकामणिज्जराए,
४. बालतवोकम्मेणं[1]

तमाइक्खइ—

जह णरगा गम्मंती जे णरगा जा य वेयणा णरए।
सारीरमाणसाइं दुक्खाइं तिरिक्खजोणीए ॥१॥

माणुस्सं च अणिच्चं वाहि-जरा-मरण-वेयणापउरं।
देवे य देवलोए देविड्ढिं देवसोक्खाइं ॥२॥

णरगं तिरिक्खजोणिं माणुसभावं च देवलोगं च।
सिद्धे अ सिद्धवसहिं छज्जीवणियं परिकहेइ ॥३॥

जह जीवा बज्झंती मुच्चंती जह य संकिलिस्संति।
जह दुक्खाणं अंतं करेंति केई अपडिबद्धा ॥४॥

अट्टा अट्टियचित्ता जह जीवा दुक्खसागरमुवेंति।
जह वेरग्गमुवगया कम्मसमुग्गं विहाडेंति ॥५॥

जह रागेण कडाणं कम्माणं पावगो फलविवागो।
जह य परिहीणकम्मा सिद्धालयमुवेंति ॥६॥ —*उव. सु. ५६*

१०७. चार प्रकार की आयु के बंध हेतुओं का प्ररूपण—

(इसके पश्चात् कहा कि) जीव चार स्थानों (कारणों) से नरकायु का बन्ध करते हैं और नरकायु का बंध करके विभिन्न नरकों में उत्पन्न होते हैं, यथा—

१. महाआरम्भ, २. महापरिग्रह,
३. पंचेन्द्रिय-वध, ४. मांस-भक्षण।

इन कारणों से जीव तिर्यञ्च योनि में उत्पन्न होते हैं, यथा—

१. मायापूर्ण निकृति (छलपूर्ण जालसाजी)
२. अलीकवचन (असत्य भाषण)
३. उत्कंचनता अपनी धूर्तता को छिपाए रखना
४. वंचनता ठगी।

इन कारणों से जीव मनुष्य योनि में उत्पन्न होते हैं, यथा—

१. प्रकृति-भद्रता-स्वाभाविक भद्रता सरलता,
२. प्रकृति विनीतता स्वाभाविक विनम्रता,
३. सानुक्रोशता-दयालुता,
४. अमत्सरता-ईर्ष्या का अभाव।

इन कारणों से जीव देवयोनि में उत्पन्न होते हैं, यथा—

१. सरागसंयम-राग या आसक्तियुक्त चारित्रपालन,
२. संयमासंयम-देशविरति-श्रावकधर्म,
३. अकाम-निर्जरा,
४. बाल-तप अज्ञानयुक्त अवस्था में तपस्या।

भगवान् ने पुनः कहा—

जो नरक में जाते हैं वे (नारक) वहां नैरयिक वेदना का अनुभव करते हैं। तिर्यञ्चयोनिक में गये हुए वहां के शारीरिक और मानसिक दुःखों को प्राप्त करते हैं ॥१॥

मनुष्य भव अनित्य है, उसमें व्याधि वृद्धावस्था मृत्यु और वेदना आदि की प्रचुरता है। देव लोक में देव-दैवी ऋद्धि और दैवी सुख भोगते हैं ॥२॥

भगवान् ने नरक, तिर्यञ्चयोनि, मनुष्य भव, देव लोक, सिद्ध और सिद्धावस्था तथा छह जीव निकाय का निरूपण किया है ॥३॥

जीव जैसे कर्म बंध करते हैं, मुक्त होते हैं, संक्लेश (मानसिक दुःखों) को प्राप्त करते हैं, कई अप्रतिबद्ध अनासक्त व्यक्ति दुःखों का अंत करते हैं ॥४॥

दुःखी और आकुल व्याकुल चित्त वाले दुःख रूपी सागर में डूबते हैं और वैराग्य को प्राप्त जीव कर्मदल को ध्वस्त करते हैं ॥५॥

रागपूर्वक किये गये कर्मों का फल विपाक पाप पूर्ण (अशुभ) होता है। कर्मों से सर्वथा रहित हो सिद्ध सिद्धालय (मुक्ति धाम) को प्राप्त करते हैं।

१०८. कस्स का आउसामित्तं—

दुविहे आउए पण्णत्ते, तं जहा—

१. अद्धाउए चेव,
२. भवाउए चेव।

१०८. किसकी कौन-सी आयु का स्वामित्व—

आयु दो प्रकार की कही गई है, यथा—

१. अद्धायु (भवांतरगामिनी आयु)
२. भवायु (उसी भव की आयु)

[1] ठाणं अ. ४, उ. ४, सु. ३७३

दोण्हं अद्धाउए पण्णत्ते, तं जहा–

१. मणुस्साणं चेव,

२. पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव।

दोण्हं भवाउए पण्णत्ते, तं जहा–

१. देवाणं चेव, २. णेरइयाणं चेव।

–ठाणं अ. २, उ. ३, सु. ७९(१९-२१)

१०९. अहाउयपालणं संवट्टण सामित्तं य–

दो अहाउयं पालेंति, तं जहा–

१. देवच्चेव, २. णेरइयच्चेव॥

दोण्हं आउय–संवट्टए पण्णत्ते, तं जहा–

१. मणुस्साणं चेव, २. पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव।

–ठाणं अ. २, उ. ३, सु. ७९(२३-२४)

११०. जीव-चउवीसदंडएसु आउकम्मस्स कज्जाइं–

प. दं. १. जीवे णं भंते ! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! किं साउए संकमइ, निराउए संकमइ ?

उ. गोयमा ! साउए संकमइ, नो निराउए संकमइ।

प. से णं भंते ! आउए कहिं कडे ? कहिं समाइण्णे ?

उ. गोयमा ! पुरिमे भवे कडे, पुरिमे भवे समाइण्णे।

दं. २-२४ एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं दंडओ।

–विया. स. ५, उ. ३, सु. २-४

१११. जोणी सावेक्खं आउबंध परूवणं–

प. से नूणं भंते ! जे णं भविए जं जोणिं उववज्जित्तए से तमाउयं पकरेइ, तं जहा–

नेरइयाउयं वा जाव देवाउयं वा ?

उ. हंता, गोयमा ! जे णं भविए जं जोणिं उववज्जित्तए से तमाउयं पकरेइ, तं जहा–

नेरइयाउयं वा जाव देवाउयं वा।

नेरइयाउयं पकरेमाणे सत्तविहं पकरेइ, तं जहा–

[illegible]

अद्धायु दो प्रकार के जीवों की कही गई है, यथा–

१. मनुष्यों की,

२. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की।

भवायु दो प्रकार के जीवों की कही गई है, यथा–

१. देवों की, २. नैरयिकों की।

१०९. पूर्णायु के पालन और संवर्त्तन का स्वामित्व–

दो यथायु (पूर्णायु) का पालन करते हैं, यथा–

१. देव, २. नैरयिक।

दो के आयुष्य का संवर्त्तन (अकाल मरण) कहा गया है, यथा–

१. मनुष्यों के, २. पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों के।

११०. जीव-चौवीस दंडकों में आयु कर्म का कार्य–

प्र. दं. १. भंते ! जो जीव नैरयिकों में उत्पन्न होने के योग्य है तो भंते ! क्या वह जीव यहीं से आयु-युक्त होकर नरक में जाता है या आयु-रहित होकर जाता है ?

उ. गौतम ! वह आयु-युक्त होकर नरक में जाता है, आयु रहित होकर नहीं जाता।

प्र. भंते ! उस जीव ने वह आयु कहां बांधा और कहां समाचरण किया ?

उ. गौतम ! उस जीव ने वह आयु-पूर्वभव में बांधा और पूर्वभव में समाचरण किया।

दं. २-२४ इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों तक सभी दण्डकों में कहना चाहिए।

१११. योनि सापेक्ष आयु बंध का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जो जीव जिस योनि में उत्पन्न होने योग्य है, क्या वह उस योनि के आयु का बंध करता है ?

जैसे–नरक योनि में उत्पन्न होने वाला क्या नरक योनि का आयु का बंध करता है यावत् देवयोनि में उत्पन्न होने वाला क्या देवयोनि के आयु का बंध करता है ?

उ. हां, गौतम ! जो जीव जिस योनि में उत्पन्न होने योग्य है, वह जीव उस योनि का आयु का बंध करता है।

जैसे–नरक योनि में उत्पन्न होने योग्य जीव नरकयोनि की आयु का बंध करता है यावत् देवयोनि में उत्पन्न होने योग्य जीव देवयोनि की आयु का बंध करता है।

[illegible]

एवं जाव अत्थि उट्ठाणे इ वा जाव पुरिसक्करपरक्कमे इ वा। –विया. स. १, उ. ३, सु. १५

इसी प्रकार यावत् उत्थान से यावत् पुरुषकार-पराक्रम से निर्जरा करते हैं।

१०७. चउव्विहाउय बंधहेउ परूवणं–

(तमाइक्खइ एवं खलु) चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइयत्ताए कम्मं पकरेंति, णेरइयत्ताए कम्मं पकरेत्ता णेरइएसु उंववज्जंति, तं जहा–

१. महारंभयाए, २. महापरिग्गहयाए,
३. पंचिंदियवहेणं, ४. कुणिमाहारेणं,

तिरिक्खजोणिएसु, तं जहा–

१. माइल्लयाए णियडिल्लयाए,
२. अलियवयणेणं,
३. उक्कंचणयाए,
४. वंचणयाए।

मणुस्सेसु, तं जहा–

१. पगइभद्दयाए,
२. पगइविणीययाए,
३. साणुक्कोसयाए,
४. अमच्छरिययाए।

देवेसु, तं जहा–

१. सरागसंजमेणं,
२. संजमासंजमेणं,
३. अकामणिज्जराए,
४. बालतवोकम्मेणं[1]

तमाइक्खइ–

जह णरगा गम्मंती जे णरगा जा य वेयणा णरए।
सारीरमाणसाइं दुक्खाइं तिरिक्खजोणीए॥१॥

माणुस्सं च अणिच्चं वाहि-जरा-मरण-वेयणापउरं।
देवे य देवलोए देविड्ढिं देवसोक्खाइं॥२॥

णरगं तिरिक्खजोणिं माणुसभावं च देवलोगं च।
सिद्धे अ सिद्धवसहिं छज्जीवणियं परिकहेइ॥३॥

जह जीवा बज्झंती मुच्चंती जह य संकिलिस्संति।
जह दुक्खाणं अंतं करेंति केई अपडिबद्धा॥४॥

अट्टा अट्टियचित्ता जह जीवा दुक्खसागरमुवेंति।
जह वेरग्गमुवगया कम्मसमुग्गं विहाडेंति॥५॥

जह रागेण कडाणं कम्माणं पावगो फलविवागो।
जह य परिहीणकम्मा सिद्धालयमुवेंति॥६॥ –उव. सु. ५६

१०७. चार प्रकार की आयु के बंध हेतुओं का प्ररूपण–

(इसके पश्चात् कहा कि) जीव चार स्थानों (कारणों) से नरकायु का बन्ध करते हैं और नरकायु का बंध करके विभिन्न नरकों में उत्पन्न होते हैं, यथा–

१. महाआरम्भ, २. महापरिग्रह,
३. पंचेन्द्रिय-वध, ४. मांस-भक्षण।

इन कारणों से जीव तिर्यञ्च योनि में उत्पन्न होते हैं, यथा–

१. मायापूर्ण निकृति (छलपूर्ण आडम्बरों)
२. अलीकवचन (असत्य भाषण)
३. उत्कंचनता अपनी धूर्तता को छिपाए रखना
४. वंचनता ठगी।

इन कारणों से जीव मनुष्य योनि में उत्पन्न होते हैं, यथा–

१. प्रकृति-भद्रता-स्वाभाविक भद्रता सरलता,
२. प्रकृति विनीतता स्वाभाविक विनम्रता,
३. सानुक्रोशता-दयालुता,
४. अमत्सरता-ईर्ष्या का अभाव।

इन कारणों से जीव देवयोनि में उत्पन्न होते हैं, यथा–

१. सरागसंयम-राग या आसक्तियुक्त चारित्रपालन,
२. संयमासंयम-देशविरति-श्रावकधर्म,
३. अकाम-निर्जरा,
४. बाल-तप अज्ञानयुक्त अवस्था में तपस्या।

भगवान् ने पुनः कहा–

जो नरक में जाते हैं वे (नारक) वहां नैरयिक वेदना का अनुभव करते हैं। तिर्यञ्चयोनिक में गये हुए वहां के शारीरिक और मानसिक दुःखों को प्राप्त करते हैं॥१॥

मनुष्य भव अनित्य है, उसमें व्याधि वृद्धावस्था मृत्यु और वेदना आदि की प्रचुरता है। देव लोक में देव-देवी ऋद्धि और दैवी सुख भोगते हैं॥२॥

भगवान् ने नरक, तिर्यञ्चयोनि, मनुष्य भव, देव लोक, सिद्ध और सिद्धावस्था तथा छह जीव निकाय का निरूपण किया है॥३॥

जीव जैसे कर्म बंध करते हैं, मुक्त होते हैं, संक्लेश (मानसिक दुःखों) को प्राप्त करते हैं, कई अप्रतिबद्ध अनासक्त व्यक्ति दुःखों का अंत करते हैं॥४॥

दुःखी और आकुल व्याकुल चित्त वाले दुःख रूपी सागर में डूबते हैं और वैराग्य को प्राप्त जीव कर्मदल को ध्वस्त करते हैं॥५॥

रागपूर्वक किये गये कर्मों का फल विपाक पाप पूर्ण (अशुभ) होता है। कर्मों से सर्वथा रहित हो सिद्ध सिद्धालय (मुक्ति धाम) को प्राप्त करते हैं।

१०८. कस्स का आउसामित्तं–

दुविहे आउए पण्णत्ते, तं जहा–

१. अद्धाउए चेव,
२. भवाउए चेव।

१०८. किसकी कौन-सी आयु का स्वामित्व–

आयु दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. अद्धायु (भवांतरगामिनी आयु)
२. भवायु (उसी भव की आयु)

१. ठाणं अ. ४, उ. ४, सु. ३७३

दोण्हं अद्धाउए पण्णत्ते, तं जहा–

१. मणुस्साणं चेव,

२. पंचिंदियतिरक्खजोणियाणं चेव।

दोण्हं भवाउए पण्णत्ते, तं जहा–

१. देवाणं चेव, २. णेरइयाणं चेव।

–ठाणं अ. २, उ. ३, सु. ७९(१९-२१)

१०९. अहाउयपालणं संवट्टण सामित्तं य–

दो अहाउयं पालेंति, तं जहा–

१. देवच्चेव, २. णेरइयच्चेव॥

दोण्हं आउय–संवट्टए पण्णत्ते, तं जहा–

१. मणुस्साणं चेव, २. पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव।

–ठाणं अ. २, उ. ३, सु. ७९(२३-२४)

११०. जीव-चउवीसदंडएसु आउकम्मस्स कज्जाइं–

प. दं.१. जीवे णं भंते ! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! किं साउए संकमइ, निराउए संकमइ ?

उ. गोयमा ! साउए संकमइ, नो निराउए संकमइ।

प. से णं भंते ! आउए कहिं कडे ? कहिं समाइण्णे ?

उ. गोयमा ! पुरिमे भवे कडे, पुरिमे भवे समाइण्णे।

दं. २-२४ एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं दंडओ।

–विया. स. ५, उ. ३, सु. २-४

१११. जोणी सावेक्खं आउबंध परूवणं–

प. से नूणं भंते ! जे णं भविए जं जोणिं उववज्जित्तए से तमाउयं पकरेइ, तं जहा–

नेरइयाउयं वा जाव देवाउयं वा ?

उ. हंता, गोयमा ! जे णं भविए जं जोणिं उववज्जित्तए से तमाउयं पकरेइ, तं जहा–

नेरइयाउयं वा जाव देवाउयं वा।

नेरइयाउयं पकरेमाणे सत्तविहं पकरेइ, तं जहा–

१. रयणप्पभापुढविनेरइयाउयं वा जाव ७. अहेसत्तमा पुढविनेरइयाउयं वा।

तिरिक्खजोणियाउयं पकरेमाणे पंचविहं पकरेइ, तं जहा–

१. एगिंदिय-तिरिक्खजोणियाउयं वा जाव

५. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाउयं वा।

अद्धायु दो प्रकार के जीवों की कही गई है, यथा–

१. मनुष्यों की,

२. पंचेंन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की।

भवायु दो प्रकार के जीवों की कही गई है, यथा–

१. देवों की, २. नैरयिकों की।

१०९. पूर्णायु के पालन और संवर्त्तन का स्वामित्व–

दो यथायु (पूर्णायु) का पालन करते हैं, यथा–

१. देव, २. नैरयिक।

दो के आयुष्य का संवर्त्तन (अकाल मरण) कहा गया है, यथा–

१. मनुष्यों के, २. पंचेंन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों के।

११०. जीव-चौबीस दंडकों में आयु कर्म का कार्य–

प्र. दं. १. भंते ! जो जीव नैरयिकों में उत्पन्न होने के योग्य हैं तो भंते ! क्या वह जीव यहीं से आयु-युक्त होकर नरक में जाता है या आयु-रहित होकर जाता है ?

उ. गौतम ! वह आयु-युक्त होकर नरक में जाता है, आयु रहित होकर नहीं जाता।

प्र. भंते ! उस जीव ने वह आयु कहां बाँधा और कहां समाचरण किया ?

उ. गौतम ! उस जीव ने वह आयु-पूर्वभव में बांधा और पूर्वभव में समाचरण किया।

दं. २-२४ इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों तक सभी दण्डकों में कहना चाहिए।

१११. योनि सापेक्ष आयु बंध का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जो जीव जिस योनि में उत्पन्न होने योग्य है, क्या वह उस योनि के आयु का बंध करता है ?

जैसे–नरक योनि में उत्पन्न होने वाला क्या नरक योनि के आयु का वंध करता है यावत् देवयोनि में उत्पन्न होने वाला क्या देवयोनि के आयु का वंध करता है ?

उ. हां, गौतम ! जो जीव जिस योनि में उत्पन्न होने योग्य है, वह जीव उस योनि की आयु का वंध करता है।

जैसे–नरक योनि में उत्पन्न होने योग्य जीव नरकयोनि की आयु का वंध करता है यावत् देवयोनि में उत्पन्न होने योग्य जीव देवयोनि की आयु का वंध करता है।

जो जीव नरकयोनि की आयु का वंध करता है, वह सात प्रकार की नैरयिक पृथ्वियों में से किसी एक की आयु का वंध करता है, यथा–

१. रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक की आयु का यावत् ७. अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिक की आयु का।

जो जीव तिर्यञ्चयोनिक की आयु का वंध करता है, वह पांच प्रकार के तिर्यञ्चों में से किसी एक प्रकार की आयु का वंध करता है, यथा–

१. एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकायु का यावत् ५. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकायु का।

मणुस्साउयं पकरेमाणे दुविहं पकरेइ, तं जहा–

१. सम्मुच्छिममणुस्साउयं, २. गब्भजमणुस्साउयं।

देवाउयं पकरेमाणे चउव्विहं पकरेइ, तं जहा–

१. भवणवासीदेवाउयं जाव ४. वेमाणियदेवाउयं।

–विया. स. ५, उ. ३, सु. ५

जो जीव मनुष्य योनि की आयु का बंध करता है, वह दो प्रकार के मनुष्यों में से किसी एक की आयु का बंध करता है, यथा–

१. सम्मूर्छिम मनुष्यायु का या २. गर्भज मनुष्यायु का।

जो जीव देवयोनि की आयु का बंध करता है, वह चार प्रकार के देवों में से किसी एक देवायु का बंध करता है, यथा–

१. भवनपति देवायु का यावत् ४. वैमानिक देवायु का।

११२. अप्पाउय-दीहाउय-सुभासुभदीहाउय कम्मबंधहेऊ परूवणं–

प. कहं णं भंते ! जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! तिहिं ठाणेहिं, जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पकरेंति, तं जहा–

१. पाणे अइवाएत्ता,
२. मुसं वइत्ता,
३. तहारूवं समणं वा, माहणं वा, अफासुएणं अणेसणिज्जेणं, असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेत्ता,

प. कहं णं भंते ! जीवा दीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! तिहिं ठाणेहिं जीवा दीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति, तं जहा–

१. नो पाणे अइवाइत्ता,
२. नो मुसं वइत्ता,
३. तहारूवं समणं वा, माहणं वा, फासुएसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेत्ता।

प. कहं णं भंते ! जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! तिहिं ठाणेहिं जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति, तं जहा–

१. पाणे अइवाइत्ता,
२. मुसं वइत्ता,
३. तहारूवं समणं वा, माहणं वा, हीलित्ता, निंदित्ता, खिंसित्ता, गरहित्ता, अवमन्नित्ता, अन्नयरेणं अमणुण्णेणं अपीइकारएणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेत्ता,

प. कहं णं भंते ! जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! तिहिं ठाणेहिं जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति।[1] तं जहा–

१. नो पाणे अइवाइत्ता,

११२. अल्पायु-दीर्घायु शुभाशुभदीर्घायु के कर्म बंध हेतुओं का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जीव अल्पायु के कारणभूत कर्म किन कारणों से बांधते हैं ?

उ. गौतम ! तीन कारणों से जीव अल्पायु के कारणभूत कर्म बांधते है, यथा–

१. प्राणियों की हिंसा करके,
२. असत्य बोलकर,
३. तथारूप श्रमण या माहन को अप्रासुक, अनेषणीय अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार से प्रतिलाभित कर।

प्र. भंते ! जीव दीर्घायु के कारणभूत कर्म किन कारणों से बांधते हैं ?

उ. गौतम ! तीन कारणों से जीव दीर्घायु के कारणभूत कर्म बांधते हैं, यथा–

१. प्राणातिपात न करने से,
२. असत्य न बोलने से,
३. तथारूप श्रमण और माहन को प्रासुक और एषणीय अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार से प्रतिलाभित करने से।

प्र. भंते ! जीव अशुभ दीर्घायु के कारणभूत कर्म किन कारणों से बांधते हैं ?

उ. गौतम ! तीन कारणों से जीव अशुभ दीर्घायु के कारणभूत कर्म बांधते हैं, यथा–

१. प्राणियों की हिंसा करके,
२. असत्य बोल कर,
३. तथारूप समण या माहन की हीलना, निन्दा, खिंसना झिड़काना, गर्हा एवं अपमान करके, एवं (उपेक्षा से) अमनोज्ञ या अप्रीतिकार अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार से प्रतिलाभित करके।

प्र. भंते ! जीव शुभ दीर्घायु के कारणभूत कर्म किन कारणों से बांधते हैं ?

उ. गौतम ! तीन कारणों से जीव शुभ दीर्घायु के कारणभूत कर्म बांधते हैं, यथा–

१. प्राणियों की हिंसा न करने से,

१. ठाणं अ. ३, उ. १, सु. १३३

२. नो मुसं वइत्ता,

३. तहारूवं समणं वा, माहणं वा, वंदित्ता, नमंसित्ता जाव पज्जुवासित्ता अन्नयरेणं मणुण्णेणं पीइकारएणंअसण-पाण-खाइमसाइमेणं पडिलाभेत्ता। *–विया. स. ५, उ. ६, सु. १-४*

२. असत्य न बोलने से,

३. तथारूप श्रमण या माहन को वन्दन, नमस्कार यावत् पर्युपासना करके मनोज्ञ एवं प्रीतिकारक अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार से प्रतिलाभित करने से।

११३. जीव-चउवीसदंडएसु आउय बंधकाल परूवणं–

प. दं. १. जीवे णं भंते ! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! किं इहगए नेरइयाउयं पकरेइ ? उववज्जमाणे नेरइयाउयं पकरेइ ? उववन्ने नेरइयाउयं पकरेइ ?

उ. गोयमा ! इहगए नेरइयाउयं पकरेइ, नो उववज्जमाणे नेरइयाउयं पकरेइ, नो उववन्ने नेरइयाउयं पकरेइ।

दं. २. एवं असुरकुमारेसु वि।

दं. ३-२४ एवं जाव वेमाणिएसु। *–विया. स. ७, उ. ६, सु. २-४*

११३. जीव-चौबीसदंडकों में आयु बंध का काल प्ररूपण–

प्र. भंते ! जो जीव नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य है, क्या वह इस भव में रहता हुआ नरकायु का बंध करता है ? उत्पन्न होता हुआ नरकायु का बंध करता है, उत्पन्न होने पर नरकायु का बंध करता है ?

उ. गौतम ! इस भव में रहते हुए नरकायु का बंध करता है, किन्तु नरक में उत्पन्न होते हुए नरकायु का बंध नहीं करता, उत्पन्न होने पर भी नरकायु का बंध नहीं करता।

दं. २. इसी प्रकार असुरकुमारों के (आयुबन्ध के) विषय में कहना चाहिए।

दं. ३-२४ इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त (आयुबन्ध) कहना चाहिए।

११४. आउयपरिणामभेया–

नवविहे आउपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा–

१. गइपरिणामे, २. गइबंधणपरिणामे,
३. ठिईपरिणामे, ४. ठिईबंधणपरिणामे,
५. उड्ढंगारवपरिणामे, ६. अहेगारवपरिणामे,
७. तिरियंगारवपरिणामे, ८. दीहंगारवपरिणामे,
९. हस्संगारवपरिणामे। *–ठाणं. अ. ९, सु. ६८६*

११४. आयु परिणाम के भेद–

आयुपरिणाम नौ प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. गति परिणाम, २. गति बन्धन परिणाम,
३. स्थिति परिणाम, ४. स्थिति बंधन परिणाम,
५. ऊर्ध्व गौरव परिणाम, ६. अधो गौरव परिणाम,
७. तिर्यक् गौरव परिणाम, ८. दीर्घ गौरव परिणाम,
९. ह्रस्व गौरव परिणाम।

११५. आउयस्स जाइनामनिहत्ताइ छ बंध पगारा–

प. कइविहे णं भंते ! आउयबंधे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! छव्विहे आउयबंधे पण्णत्ते, तं जहा–

१. जाइनामनिहत्ताउए,
२. गइनामनिहत्ताउए,
३. ठिईनामनिहत्ताउए,
४. ओगाहणानामनिहत्ताउए,
५. पदेसनामनिहत्ताउए,
६. अणुभावनामनिहत्ताउए।[1] *–पण्ण. प. ६, सु. ६८४*

११५. आयु के जातिनामनिधत्तादि के छः बंध प्रकार–

प्र. भंते ! आयु का बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! आयु बन्ध छह प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. जातिनामनिधत्तायु,
२. गतिनामनिधत्तायु,
३. स्थितिनामनिधत्तायु,
४. अवगाहनानामनिधत्तायु,
५. प्रदेशनामनिधत्तायु,
६. अनुभावनामनिधत्तायु।

११६. चउवीसदंडएसु आउय बंध भेय परूवणं–

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! कइविहे आउयबंधे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! छव्विहे आउयबंधे पण्णत्ते, तं जहा–

१. जाइनामनिहत्ताउए,
२. गइनामनिहत्ताउए,
३. ठिईनामनिहत्ताउए,
४. ओगाहणानामनिहत्ताउए,

११६. चौबीस दंडकों में आयु बंध के भेदों का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिकों का आयुष्यवन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! उनका आयुष्यवन्ध छह प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. जातिनामनिधत्तायु,
२. गतिनामनिधत्तायु,
३. स्थितिनामनिधत्तायु,
४. अवगाहनानामनिधत्तायु,

---

१. (क) ठाणं अ. ६, सु. ५३६ (१) (ख) विया. स. ६, उ. ८, सु. २७

५. पदेसनामनिहत्ताउए,

६. अणुभावनामनिहत्ताउए।

दं. २-२४ एवं जाव वेमाणियाणं।[1]

–पण्ण. प. ६, सु. ६८५-६८६

११७. जीव-चउवीसदंडएसु जाइनामनिधत्ताईणं परूवणं–

प. १. जीवा णं भंते ! किं जाइनामनिहत्ता जाव अणुभागनामनिहत्ता ?

उ. गोयमा ! जाइनामनिहत्ता वि जाव अणुभागनामनिहत्ता वि।

१-२४ दंडओ नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

प. २. जीवा णं भंते ! किं जाइनामनिहत्ताउया जाव अणुभागनामनिहत्ताउया ?

उ. गोयमा ! जाइनामनिहत्ताउया वि जाव अणुभागनामनिहत्ताउया वि।

१-२४ दंडओ नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

प. ३. जीवा णं भंते ! किं जाइनामनिउत्ता जाव अणुभागनामनिउत्ता ?

उ. गोयमा ! जाइनामनिउत्ता वि जाव अणुभागनामनिउत्ता वि।

१-२४ दंडओ नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

प. ४. जीवा णं भंते ! किं जाइनामनिउत्ताउया जाव अणुभागनामनिउत्ताउया ?

उ. गोयमा ! जाइनामनिउत्ताउया वि जाव अणुभागनामनिउत्ताउया वि।

१-२४ दंडओ नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

प. ५. जीवा णं भंते ! किं जाइगोत्तनिहत्ता जाव अणुभागगोत्तनिहत्ता ?

उ. गोयमा ! जाइगोत्तनिहत्ता वि जाव अणुभागगोत्तनिहत्ता वि।

१-२४ दंडओ नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

प. ६. जीवा णं भंते ! किं जाइगोत्तनिहत्ताउया जाव अणुभागगोत्तनिहत्ताउया ?

उ. गोयमा ! जाइगोत्तनिहत्ताउया वि जाव अणुभागगोत्तनिहत्ताउया वि।

१-२४ दंडओ नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

प. ७. जीवा णं भंते ! किं जाइगोत्तनिउत्ता जाव अणुभागगोत्तनिउत्ता ?

उ. गोयमा ! जाइगोत्तनिउत्ता वि जाव अणुभागगोत्तनिउत्ता वि।

५. प्रदेशनामनिधत्तायु,

६. अनुभावनामनिधत्तायु।

दं. २-२४ इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त आयुबन्ध का कथन करना चाहिए।

११७. जीव-चौबीस दंडकों में जाति नामनिधत्तादि का प्ररूपण–

प्र. १. भंते ! क्या जीव जातिनामनिधत्त यावत् अनुभाग-नामनिधत्त हैं ?

उ. गौतम ! जीव जाति नामनिधत्त भी हैं यावत् अनुभाग-नामनिधत्त भी हैं।

दं. १-२४ यह दंडक नैरयिकों से वैमानिकों तक कहना चाहिए।

प्र. २. भंते ! क्या जीव जातिनामनिधत्तायुष्क यावत् अनुभाग-नामनिधत्तायुष्क हैं ?

उ. गौतम ! जीव जातिनामनिधत्तायुष्क भी हैं यावत् अनुभाग-नामनिधत्तायुष्क भी हैं।

दं. १-२४ यह दण्डक नैरयिकों से वैमानिक तक कहना चाहिए।

प्र. ३. भंते ! क्या जीव जातिनामनियुक्त यावत् अनुभाग-नामनियुक्त हैं ?

उ. गौतम ! जीव जातिनामनियुक्त भी हैं यावत् अनुभाग-नामनियुक्त भी हैं।

दं. १-२४ यह दण्डक नैरयिकों से वैमानिकों तक कहना चाहिए।

प्र. ४. भंते ! क्या जीव जातिनामनियुक्तायुष्क यावत् अनुभाग-नामनियुक्तायुष्क हैं ?

उ. गौतम ! जीव जातिनामनियुक्तायुष्क भी हैं यावत् अनुभाग-नामनियुक्तायुष्क भी हैं।

दं. १-२४ यह दण्डक नैरयिकों से वैमानिकों तक कहना चाहिए।

प्र. ५. भन्ते ! क्या जीव जातिगोत्रनिधत्त यावत् अनुभाग-गोत्रनिधत्त हैं ?

उ. गौतम ! जीव जातिगोत्रनिधत्त भी हैं यावत् अनुभाग-गोत्रनिधत्त भी हैं।

दं. १-२४ यह दण्डक नैरयिकों से वैमानिकों तक कहना चाहिए।

प्र. ६. भंते ! क्या जीव जातिगोत्रनिधत्तायुष्क यावत् अनुभाग-गोत्रनिधत्तायुष्क हैं ?

उ. गौतम ! जीव जातिगोत्रनिधत्तायुष्क भी हैं यावत् अनुभाग-गोत्रनिधत्तायुष्क भी हैं।

दं. १-२४ यह दण्डक नैरयिकों से वैमानिकों तक कहना चाहिए।

प्र. ७. भंते ! क्या जीव जातिगोत्रनियुक्त यावत् अनुभाग-गोत्रनियुक्त हैं ?

उ. गौतम ! जीव जातिगोत्रनियुक्त भी हैं यावत् अनुभाग-गोत्रनियुक्त भी है।

१. (क) ठाणं अ. ६, सु. ५३६ (२-३) (ख) विया. स. ६, उ. ८, सु. २८ (ग) सम. सु. १५४ (५)

१-२४ दंडओ नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

प. ८. जीवा णं भंते ! किं जाइगोत्तनिउत्ताउया जाव अणुभागगोत्तनिउत्ताउया ?

उ. गोयमा ! जाइगोत्तनिउत्ताउया वि जाव अणुभागगोत्तनिउत्ताउया वि।

१-२४ दंडओ नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

प. ९. जीवा णं भंते ! किं जाइणामगोत्तनिहत्ता जाव अणुभागणामगोत्तनिहत्ता ?

उ. गोयमा ! जाइणामगोत्तनिहत्ता वि जाव अणुभागणामगोत्तनिहत्ता वि।

१-२४ दंडओ नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

प. १०. जीवा णं भंते ! किं जाइणामगोत्तनिहत्ताउया जाव अणुभागणामगोत्तनिहत्ताउया ?

उ. गोयमा ! जाइणामगोत्तनिहत्ताउया वि जाव अणुभागणामगोत्तनिहत्ताउया वि।

दं. १-२४. दंडओ नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

प. ११. जीवा णं भंते ! किं जाइणामगोत्तनिउत्ता जाव अणुभागणामगोत्तनिउत्ता ?

उ. गोयमा ! जाइणामगोत्तनिउत्ता वि जाव अणुभागणामगोत्तनिउत्ता वि।

१-२४ दंडओ नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

प. १२. जीवा णं भंते ! किं जाइणामगोत्तनिउत्ताउया जाव अणुभागणामगोत्तनिउत्ताउया ?

उ. गोयमा ! जाइणामगोत्तनिउत्ताउया वि जाव अणुभागणामगोत्तनिउत्ताउया वि।

१-२४ दंडओ नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

(एवमेव गइ-ठिइ-ओगाहणा पएस अणुभागणामाण वि दुवालस-दुवालस दंडगा भाणियव्वा)

–विया. स. ६, उ. ८, सु. २१-३४

दं. १-२४ यह दण्डक नैरयिकों से वैमानिकों तक कहना चाहिए।

प्र. ८. भंते ! क्या जीव जातिगोत्रनियुक्तायुष्क यावत् अनुभागगोत्रनियुक्तायुष्क हैं ?

उ. गौतम ! जीव जातिगोत्रनियुक्तायुष्क भी हैं यावत् अनुभागगोत्रनियुक्तायुष्क भी हैं।

दं. १-२४. यह दंडक नैरयिकों से वैमानिकों तक कहना चाहिए।

प्र. ९. भंते ! क्या जीव जातिनामगोत्रनिधत्त यावत् अनुभागनामगोत्रनिधत्त हैं ?

उ. गौतम ! जीव जातिनामगोत्रनिधत्त भी हैं यावत् अनुभागनामगोत्रनिधत्त भी हैं।

दं. १-२४ यह दण्डक नैरयिकों से वैमानिकों तक कहना चाहिए।

प्र. १०. भंते ! क्या जीव जातिनामगोत्रनिधत्तायुष्क यावत् अनुभागनामगोत्रनिधत्तायुष्क हैं ?

उ. गौतम ! जीव जातिनामगोत्रनिधत्तायुष्क भी हैं यावत् अनुभागनामगोत्रनिधत्तायुष्क भी हैं।

दं. १-२४ यह दण्डक नैरयिकों से वैमानिकों तक कहना चाहिए।

प्र. ११. भंते ! क्या जीव जातिनामगोत्रनियुक्त यावत् अनुभागनामगोत्रनियुक्त हैं ?

उ. गौतम ! जीव जातिनामगोत्रनियुक्त भी हैं यावत् अनुभागनामगोत्रनियुक्त भी हैं।

दं. १-२४ यह दण्डक नैरयिकों से वैमानिकों तक कहना चाहिए।

प्र. १२. भंते ! क्या जीव जातिनामगोत्रनियुक्तायुष्क यावत् अनुभागनामगोत्रनियुक्तायुष्क हैं ?

उ. गौतम ! जीव जातिनामगोत्रनियुक्तायुष्क भी हैं यावत् अनुभागनामगोत्रनियुक्तायुष्क भी हैं।

दं. १-२४ यह दण्डक नैरयिकों से वैमानिकों तक कहना चाहिए।

(इसी प्रकार गति, स्थिति, अवगाहना, प्रदेश और अनुभागनामों के भी बारह-बारह दंडक कहने चाहिए।)

११८. जीव-चउवीसदंडएसु आउबंध आगरिसा–

प. जीवा णं भंते ! जाइणामनिहत्ताउयं कइहिं आगरिसेहिं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्केण वा, दोहिं वा, तीहिं वा, उक्कोसेणं अट्ठहिं।

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! जाइणामनिहत्ताउयं कइहिं आगरिसेहिं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्केण वा, दोहिं वा, तीहिं वा, उक्कोसेणं अट्ठहिं।

११८. जीव-चौबीसदंडकों में आयु बंध के आकर्ष–

प्र. भंते ! जीव जातिनामनिधत्तायु को कितने आकर्षों (अवसरों) से बांधते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक, दो, तीन अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से बांधते हैं।

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिक जातिनामनिधत्तायु को कितने आकर्षों से बांधते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक, दो, तीन अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से बांधते हैं।

दं. २-२४ एवं जाव वेमाणिया।[1]

एवं गइनामनिहत्ताउए वि,
ठिईनामनिहत्ताउए वि,
ओगाहणानामनिहत्ताउए वि,
पदेसनामनिहत्ताउए वि,
अणुभावनामनिहत्ताउए वि। *–पण्ण. प. ६, सु. ६८७-६९०*

द. २-२४ इसी प्रकार वैमानिकों तक आकर्षों का कथ
करना चाहिए।
१. इसी प्रकार–गतिनामनिधत्तायु,
२. स्थितिनामनिधत्तायु
३. अवगाहनानामनिधत्तायु,
४. प्रदेशनामनिधत्तायु और
५. अनुभावनामनिधत्तायु बंध के आकर्षों का कथन कर
चाहिए।

११९. आगरिसेहिं आउबंधगाणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं जाइनामनिहत्ताउयं जहण्णेणं एक्केण वा, दोहिं वा, तीहिं वा, उक्कोसेणं अट्ठहिं आगरिसेहिं पकरेमाणाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा जाइनामनिहत्ताउयं अट्ठहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा,
सत्तहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा संखेज्जगुणा,
छहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा संखेज्जगुणा,
पंचहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा संखेज्जगुणा,
चउहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा संखेज्जगुणा,
तिहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा संखेज्जगुणा,
दोहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा संखेज्जगुणा,
एगेणं आगरिसेणं पकरेमाणा संखेज्जगुणा।
एवं एएणं अभिलावेणं गइनामनिहत्ताउयं जाव अणुभावनिहत्ताउयं।

एवं एए छ प्पि य अप्पाबहुदंडगा जीवादिया भाणियव्वा।
–पण्ण. प. ६, सु. ६९१-६९२

११९. आकर्षों में आयु बंधकों का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! जघन्य एक, दो और तीन अथवा उत्कृष्ट आ
आकर्षों से जातिनामनिधत्तायु का बन्ध करने वाले जीवों
कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! जातिनामनिधत्तायु को आठ आकर्षों से बांधने वा
जीव सबसे कम हैं,
(उनसे) सात आकर्षों से बांधने वाले संख्यातगुणे हैं,
(उनसे) छह आकर्षों से बांधने वाले संख्यातगुणे हैं,
(उनसे) पांच आकर्षों से बांधने वाले संख्यातगुणे हैं,
(उनसे) चार आकर्षों से बांधने वाले संख्यातगुणे हैं,
(उनसे) तीन आकर्षों से बांधने वाले संख्यातगुणे हैं,
(उनसे) दो आकर्षों से बांधने वाले संख्यातगुणे हैं,
(उनसे) एक आकर्ष से बांधने वाले संख्यातगुणे हैं।
इसी प्रकार इस अभिलाप से गतिनामनिधत्तायु याव
अनुभागनामनिधत्तायु को बांधने वालों का अल्पबहुत्व जा
लेना चाहिए।
इस प्रकार ये छहों ही अल्पबहुत्वसम्बन्धी दण्ड
जीवादिकों के कहने चाहिए।

१२०. आउकम्मस्स बंधगाबंधगाइ जीवाणं अप्पबहुत्त परूवणं–

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं आउयस्स कम्मस्स बंधगाणं, अबंधगाणं, पज्जत्तगाणं, अपज्जत्तगाणं, सुत्ताणं, जागराणं, समोहयाणं, असमोहयाणं, सायावेदगाणं, असायावेदगाणं, इंदियउवउत्ताणं, नो इंदियउवउत्ताणं, सागारोवउत्ताणं, अणागारोवउत्ताणं य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा आउयस्स कम्मस्स बंधगा,
२. अपज्जत्तगा संखेज्जगुणा,
३. सुत्ता संखेज्जगुणा,
४. समोहया संखेज्जगुणा,
५. सायावेयगा संखेज्जगुणा,
६. इंदिओवउत्ता संखेज्जगुणा,

१२०. आयुकर्म के बंधक अबंधक आदि जीवों के अल्पबहुत्व क
प्ररूपण–

प्र. भंते ! इन आयुकर्म के बंधकों और अबंधकों, पर्याप्त
और अपर्याप्तकों, सुप्तों और जागृतों, समुद्घात कर
वालों और न करने वालों, सातावेदकों और असातावेदक
इन्द्रियोपयुक्तों और नो इन्द्रियोपयुक्तों, साकार
पयोगोपयुक्तों और अनाकारोपयोगोपयुक्तों में कौन किन
अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प आयुकर्म के बन्धक जीव हैं,
२. (उनसे) अपर्याप्तक संख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) सुप्तजीव संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) समुद्घात करने वाले संख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) सातावेदक संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) इन्द्रियोपयुक्त संख्यातगुणे हैं,

१. सम. सम. १५५/९

७. अणागारोवउत्ता संखेज्जगुणा,
८. सागारोवउत्ता संखेज्जगुणा,
९. नो इंदियउवउत्ता विसेसाहिया,
१०. असायावेयगा विसेसाहिया,
११. असमोहया विसेसाहिया,
१२. जागरा विसेसाहिया,
१३. पज्जत्तगा विसेसाहिया,
१४. आउयस्स कम्मस्स अबंधगा विसेसाहिया।

–पण्ण. प. ३, सु. ३२५

१२१. चउवीसदंडएसु परभवियाउय बंधकाल परूवणं–

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! कइभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति?

उ. गोयमा ! णियमा छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति।

दं. २-११ एवं असुरकुमारा वि जाव थणियकुमारा वि।

प. दं. १२. पुढविकाइया णं भंते ! कइभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति?

उ. गोयमा ! पुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. सोवक्कमाउया य, २. निरुवक्कमाउया य।
१. तत्थ णं जे ते निरुवक्कमाउया ते णियमा तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति।
२. तत्थं णं जे ते सोवक्कमाउया ते सिय तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति,
सिय तिभागा-तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति,
सिय तिभागा-तिभागा-तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति।

दं. १३-१९ आउ-तेउ-वाउ-वणस्सइकाइयाणं बेइंदिय तेइंदिय- चउरिंदियाण वि एवं चेव।

प. दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया णं भंते ! कइभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति?

उ. गोयमा ! पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. संखेज्जवासाउया य, २. असंखेज्जवासाउया य।
१. तत्थ णं जे ते असंखेज्जवासाउया ते नियमा छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति।
२. तत्थ णं जे ते संखेज्जवासाउया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. सोवक्कमाउया य, २. निरुवक्कमाउया य।

७. (उनसे) अनाकारोपयुक्त संख्यातगुणे हैं,
८. (उनसे) साकारोपयुक्त संख्यातगुणे हैं,
९. (उनसे) नो इन्द्रियोपयुक्त विशेषाधिक हैं,
१०. (उनसे) असातावेदक विशेषाधिक हैं,
११. (उनसे) समुद्घात न करने वाले जीव विशेषाधिक हैं,
१२. (उनसे) जागृत विशेषाधिक हैं,
१३. (उनसे) पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं,
१४. (उनसे) आयुकर्म के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

१२१. चौबीसदंडकों में परभव की आयु बंध काल का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! आयु का कितना भाग शेष रहने पर नैरयिक परभव की आयु का बंध करते हैं?

उ. गौतम ! (वे) नियमतः छह मास आयु शेष रहने पर परभव की आयु का बंध करते हैं।

दं. २-११ इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों तक (आयुबन्ध काल का कथन करना चाहिए।)

प्र. दं. १२. भंते ! पृथ्वीकायिक जीव आयु का कितना भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बंध करते हैं?

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. सोपक्रम आयु वाले, २. निरुपक्रम आयु वाले।
१. इनमें से जो निरुपक्रम आयु वाले हैं, वे नियमतः आयुष्य का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करते हैं,
२. इनमें जो सोपक्रम आयु वाले हैं, वे कदाचित् आयु के तीसरे भाग में परभव की आयु का बन्ध करते हैं,
कदाचित् आयु के तीसरे भाग के तीसरे भाग के शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करते हैं,
कदाचित् आयु के तीसरे भाग के तीसरे भाग का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करते हैं।

दं. १३-१९. अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिकों तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियों क आयु बंध का कथन भी इसी प्रकार है।

प्र. दं. २०. भंते ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक आयु का कितना भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करते हैं?

उ. गौतम ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. संख्यातवर्षायुष्क, २. असंख्यातवर्षायुष्क।
१. उनमें से जो असंख्यात वर्ष की आयु वाले हैं, वे नियमतः छह मास आयु शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करते हैं,
२. उनमें से जो संख्यातवर्ष की आयु वाले हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. सोपक्रम आयु वाले, २. निरुपक्रम आयु वाले।

दं. २-२४ एवं जाव वेमाणिया।[1]

एवं गइनामनिहत्ताउए वि,
ठिईनामनिहत्ताउए वि,
ओगाहणानामनिहत्ताउए वि,
पदेसनामनिहत्ताउए वि,
अणुभावनामनिहत्ताउए वि। *–पण्ण. प. ६, सु. ६८७-६९०*

दं. २-२४ इसी प्रकार वैमानिकों तक आकर्षों का कथन करना चाहिए।

१. इसी प्रकार–गतिनामनिधत्तायु,
२. स्थितिनामनिधत्तायु
३. अवगाहनानामनिधत्तायु,
४. प्रदेशनामनिधत्तायु और
५. अनुभावनामनिधत्तायु बंध के आकर्षों का कथन करना चाहिए।

११९. आगरिसेहिं आउबंधगाणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं जाइनामनिहत्ताउयं जहण्णेणं एक्केण वा, दोहिं वा, तीहिं वा, उक्कोसेणं अट्ठहिं आगरिसेहिं पकरेमाणाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा जाइनामनिहत्ताउयं अट्ठहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा,
सत्तहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा संखेज्जगुणा,
छहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा संखेज्जगुणा,
पंचहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा संखेज्जगुणा,
चउहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा संखेज्जगुणा,
तिहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा संखेज्जगुणा,
दोहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा संखेज्जगुणा,
एगेणं आगरिसेणं पकरेमाणा संखेज्जगुणा।
एवं एएणं अभिलावेणं गइनामनिहत्ताउयं जाव अणुभावनिहत्ताउयं।

एवं एए छ प्पि य अप्पाबहुदंडगा जीवादिया भाणियव्वा।
–पण्ण. प. ६, सु. ६९१-६९२

११९. आकर्षों में आयु बंधकों का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! जघन्य एक, दो और तीन अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से जातिनामनिधत्तायु का बन्ध करने वाले जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! जातिनामनिधत्तायु को आठ आकर्षों से बांधने वाले जीव सबसे कम हैं,
(उनसे) सात आकर्षों से बांधने वाले संख्यातगुणे हैं,
(उनसे) छह आकर्षों से बांधने वाले संख्यातगुणे हैं,
(उनसे) पांच आकर्षों से बांधने वाले संख्यातगुणे हैं,
(उनसे) चार आकर्षों से बांधने वाले संख्यातगुणे हैं,
(उनसे) तीन आकर्षों से बांधने वाले संख्यातगुणे हैं,
(उनसे) दो आकर्षों से बांधने वाले संख्यातगुणे हैं,
(उनसे) एक आकर्ष से बांधने वाले संख्यातगुणे हैं।
इसी प्रकार इस अभिलाप से गतिनामनिधत्तायु यावत् अनुभागनामनिधत्तायु को बांधने वालों का अल्पबहुत्व जान लेना चाहिए।
इस प्रकार ये छहों ही अल्पबहुत्वसम्बन्धी दण्डक जीवादिकों के कहने चाहिए।

१२०. आउकम्मस्स बंधगाबंधगाइ जीवाणं अप्पबहुत्त परूवणं–

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं आउयस्स कम्मस्स बंधगाणं, अबंधगाणं, पज्जत्तगाणं, अपज्जत्तगाणं, सुत्ताणं, जागराणं, समोहयाणं, असमोहयाणं, सायावेदगाणं, असायावेदगाणं, इंदियउवउत्ताणं, नो इंदियउवउत्ताणं, सागारोवउत्ताणं, अणागारोवउत्ताणं य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा आउयस्स कम्मस्स बंधगा,
२. अपज्जत्तगा संखेज्जगुणा,
३. सुत्ता संखेज्जगुणा,
४. समोहया संखेज्जगुणा,
५. सायावेयगा संखेज्जगुणा,
६. इंदिओवउत्ता संखेज्जगुणा,

१२०. आयुकर्म के बंधक अबंधक आदि जीवों के अल्पबहुत्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! इन आयुकर्म के बंधकों और अबंधकों, पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों, सुप्तों और जागृतों, समुद्घात करने वालों और न करने वालों, सातावेदकों और असातावेदकों, इन्द्रियोपयुक्तों और नो इन्द्रियोपयुक्तों, साकारोपयोगोपयुक्तों और अनाकारोपयोगोपयुक्तों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प आयुकर्म के बन्धक जीव हैं,
२. (उनसे) अपर्याप्तक संख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) सुप्तजीव संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) समुद्घात करने वाले संख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) सातावेदक संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) इन्द्रियोपयुक्त संख्यातगुणे हैं,

१. सम. सम. १५५/१

७. अणागारोवउत्ता संखेज्जगुणा,

८. सागारोवउत्ता संखेज्जगुणा,

९. नो इंदियउवउत्ता विसेसाहिया,

१०. असायावेयगा विसेसाहिया,

११. असमोहया विसेसाहिया,

१२. जागरा विसेसाहिया,

१३. पज्जत्तगा विसेसाहिया,

१४. आउयस्स कम्मस्स अबंधगा विसेसाहिया।

—पण्ण. प. ३, सु. ३२५

१२१. चउवीसदंडएसु परभवियाउय बंधकाल परूवणं—

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! कइभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति?

उ. गोयमा ! णियमा छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति।

दं. २-११ एवं असुरकुमारा वि जाव थणियकुमारा वि।

प. दं. १२. पुढविकाइया णं भंते ! कइभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति?

उ. गोयमा ! पुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. सोवक्कमाउया य, २. निरुवक्कमाउया य।

१. तत्थ णं जे ते निरुवक्कमाउया ते णियमा तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति।

२. तत्थं णं जे ते सोवक्कमाउया ते सिय तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति,

सिय तिभागा-तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति,

सिय तिभागा-तिभागा-तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति।

दं. १३-१९ आउ-तेउ-वाउ-वणस्सइकाइयाणं बेइंदिय तेइंदिय- चउरिंदियाण वि एवं चेव।

प. दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया णं भंते ! कइभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति?

उ. गोयमा ! पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. संखेज्जवासाउया य, २. असंखेज्जवासाउया य।

१. तत्थ णं जे ते असंखेज्जवासाउया ते नियमा छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति।

२. तत्थ णं जे ते संखेज्जवासाउया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. सोवक्कमाउया य, २. निरुवक्कमाउया य।

७. (उनसे) अनाकारोपयुक्त संख्यातगुणे हैं,

८. (उनसे) साकारोपयुक्त संख्यातगुणे हैं,

९. (उनसे) नो इन्द्रियोपयुक्त विशेषाधिक हैं,

१०. (उनसे) असातावेदक विशेषाधिक हैं,

११. (उनसे) समुद्घात न करने वाले जीव विशेषाधिक हैं,

१२. (उनसे) जागृत विशेषाधिक हैं,

१३. (उनसे) पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं,

१४. (उनसे) आयुकर्म के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

१२१. चौबीसदंडकों में परभव की आयु बंध काल का प्ररूपण—

प्र. दं. १. भंते ! आयु का कितना भाग शेष रहने पर नैरयिक परभव की आयु का बंध करते हैं?

उ. गौतम ! (वे) नियमतः छह मास आयु शेष रहने पर परभव की आयु का वंध करते हैं।

दं. २-११ इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों तक (आयुबन्ध काल का कथन करना चाहिए।)

प्र. दं. १२. भंते ! पृथ्वीकायिक जीव आयु का कितना भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बंध करते हैं?

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. सोपक्रम आयु वाले, २. निरुपक्रम आयु वाले।

१. इनमें से जो निरुपक्रम आयु वाले हैं, वे नियमतः आयुष्य का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करते हैं,

२. इनमें जो सोपक्रम आयु वाले हैं, वे कदाचित् आयु के तीसरे भाग में परभव की आयु का बन्ध करते हैं,

कदाचित् आयु के तीसरे भाग के तीसरे भाग के शेष रहने पर परभव की आयु का वन्ध करते हैं,

कदाचित् आयु के तीसरे भाग के तीसरे भाग का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव की आयु का वन्ध करते हैं।

दं. १३-१९. अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिकों तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियों क आयु वंध का कथन भी इसी प्रकार है।

प्र. दं. २०. भंते ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक आयु का कितना भाग शेष रहने पर परभव की आयु का वन्ध करते हैं?

उ. गौतम ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. संख्यातवर्षायुष्क, २. असंख्यातवर्षायुष्क।

१. उनमें से जो असंख्यात वर्ष की आयु वाले हैं, वे नियमतः छह मास आयु शेष रहने पर परभव की आयु का वन्ध करते हैं,

२. उनमें से जो संख्यातवर्ष की आयु वाले हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. सोपक्रम आयु वाले, २. निरुपक्रम आयु वाले।

१. तत्थ णं जे ते निरुवक्कमाउया ते णियमा तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति।

२. तत्थ णं जे ते सोवक्कमाउया ते णं सिय तिभागे परभवियाउयं पकरेंति।
सिय तिभाग-तिभागे य परभवियाउयं पकरेंति,

सिय तिभाग-तिभाग-तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति।

दं. २१. एवं मणूसा वि।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा नेरइया।[1] *—पण्ण. प. ६, सु. ६७७-६८३*

१. इनमें से जो निरुपक्रम आयु वाले हैं, वे नियमतः आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बंध करते हैं।

२. इनमें से जो सोपक्रम आयु वाले हैं, वे कदाचित् आयु के तीसरे भाग में परभव की आयु का बन्ध करते हैं,
कदाचित् आयु के तीसरे भाग के, तीसरे भाग में परभव की आयु का बन्ध करते हैं,
कदाचित् आयु के तीसरे भाग के, तीसरे भाग, का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बंध करते हैं।

दं. २१. इसी प्रकार मनुष्यों का भी आयु बन्ध काल जानना चाहिए।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों के आयु बन्ध का कथन नैरयिकों के समान (छह मास शेष रहने पर) कहना चाहिए।

१२२. एगसमएदुविहाउय बंध-णिसेहो–

प. अण्णउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति जाव एवं परूवेंति–एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो आउयाइं पकरेइ, तं जहा–
१. इहभवियाउयं च, २. परभवियाउयं च।
जं समयं इहभवियाउयं पकरेइ, तं समयं परभवियाउयं पकरेइ,
जं समयं परभवियाउयं पकरेइ, तं समयं इहभवियाउयं पकरेइ।
इहभवियाउयस्स पकरणयाए परभवियाउयं पकरेइ,
परभवियाउयस्स पकरणयाए इहभवियाउयं पकरेइ।
एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो आउयाइं पकरेइ,
तं जहा–१. इहभवियाउयं च, २. परभवियाउयं च।
से कहमेयं भंते ! एवं वुच्चइ ?

उ. गोयमा ! जं णं ते अण्णउत्थिया एवमाइक्खंति जाव एवं परूवेंति,
एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो आउयाइं पकरेइ,
इहभवियाउयं च, परभवियाउयं च।
जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु।
अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव एवं परूवेमि–
एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं आउयं पकरेइ, तं जहा–
१. इहभवियाउयं वा,[2] २. परभवियाउयं वा।

१२२. एक समय में दो आयु बंध का निषेध–

प्र. भंते ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं यावत् इस प्रकार की प्ररूपणा करते हैं कि–एक जीव एक समय में दो आयु का बन्ध करता है, यथा–
१. इस भव की आयु का, २. परभव की आयु का,
जिस समय इस भव का आयु बंध करता है, उस समय परभव का आयु बंध करता है,
जिस समय परभव का आयु बंध करता है, उस समय इस भव का आयु बंध करता है।
इस भव की आयु का बंध करते हुए परभव की आयु का बंध करता है,
परभव की आयु का बंध करते हुए इस भव की आयु का बंध करता है।
इस प्रकार एक जीव एक समय में दो आयु का बंध करता है, यथा–१. इस भव की आयु का, २. परभव की आयु का।
भंते ! क्या वे यह कैसे कहते हैं ?

उ. गौतम ! अन्यतीर्थिक जो इस प्रकार कहते हैं यावत् इस प्रकार प्ररूपणा करता हैं कि–
एक जीव एक समय में दो आयु का बंध करते हैं–इस भव की आयु का और परभव की आयु का,
उन्होंने जो ऐसा कहा है, वह मिथ्या कहा है।
हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ यावत् इस प्रकार प्ररूपणा करता हूँ कि 'एक जीव एक समय में एक आयु का बंध करता है, यथा–
१. इस भव की आयु का (मनुष्य-मनुष्य का) या २. परभव की आयु का',

---

१. ठाणं अ. ६, सु. ५३६/४-८
२. यहां इहभव का अर्थ है मनुष्य-मनुष्य का आयु, तिर्यञ्च-तिर्यञ्च का आयु, पृथ्वीकायिक-पृथ्वीकायिक का आयु।
आयु तो सदा आगे के भव का ही बांधा जाता है। वर्तमान भव का आयु तो जीव पूर्व भव में ही बांध कर आता है। अतः इहभव से वर्तमान भव का आयु बांधना न समझें।

जं समयं इहभवियाउयं पकरेइ, णो तं समयं परभवियाउयं पकरेइ।

जं समयं परभवियाउयं पकरेइ, णो तं समयं इहभवियाउयं पकरेइ।

इहभवियाउयस्स पकरणयाए, णो परभवियाउयं पकरेइ,

परभवियाउयस्स पकरणयाए, णो इहभवियाउयं पकरेइ।

एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं आउयं पकरेइ, तं जहा–

१. इहभवियाउयं वा, २. परभवियाउयं वा।

–*विया. स. १, उ. ९, सु. २०*

१२३. जीव-चउवीसदंडएसु आभोग अणाभोगनिव्वत्तियाउयत्त परूवणं–

प. जीवा णं भंते ! किं आभोगनिव्वत्तियाउया, अणाभोगनिव्वत्तियाउया ?

उ. गोयमा ! नो आभोगनिव्वत्तियाउया, अणाभोगनिव्वत्तियाउया।

दं. १-२४ एवं नेरइया जाव वेमाणिया।

–*विया. स. ७, उ. ६, सु. १२-१४*

१२४. जीव-चउवीसदंडएसु सोवक्कम निरुवक्कम आउय परूवणं–

प. जीवाणं भंते ! किं सोवक्कमाउया, निरुवक्कमाउया ?

उ. गोयमा ! जीवा सोवक्कमाउया वि, निरुवक्कमाउया वि।

प. दं. १ नेरइया णं भंते ! किं सोवक्कमाउया निरुवक्कमाउया।

उ. गोयमा ! नेरइया नो सोवक्कमाउया, निरुवक्कमाउया।

दं. २-११ एवं जाव थणियकुमारा।

दं. १२ पुढविकाइया जहा जीवा।

दं. १३-२१ एवं जाव मणुस्सा।

दं. २२-२४ वाणमंतर जोइसिय वेमाणिया जहा नेरइया। –*विया. स. २०, उ. १०, सु. १-६*

१२५. असण्णिआउयस्सभेया बंध सामित्तं य–

प. कइविहे णं भंते ! असण्णियाउए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! चउव्विहे असण्णियाउए पण्णत्ते, तं जहा–

१. नेरइय असण्णियाउए,

२. तिरिक्खजोणिय-असण्णियाउए,

३. मणुस्स-असण्णियाउए, ४. देव-असण्णियाउए।[1]

जिस समय इस भव की आयु का बंध करता है, उस समय परभव की आयु का बंध नहीं करता है,

जिस समय परभव की आयु का बंध करता है, उस समय इस भव की आयु का बंध नहीं करता है,

इस भव की आयु का बंध करते हुए परभव की आयु का वंध नहीं करता है,

परभव की आयु का बंध करते हुए इस भव की आयु का बंध नहीं करता है,

इस प्रकार एक जीव एक समय में एक आयु का बंध करता है, यथा–

१. इस भव की आयु का या २. परभव की आयु का।

१२३. जीव-चौबीसदंडकों में आभोग अनाभोगनिर्वर्तित आयु का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जीव आभोगनिर्वर्तित आयुष्य वाले हैं या अनाभोगनिर्वर्तित आयुष्य वाले हैं ?

उ. गौतम ! जीव आभोगनिर्वर्तित आयु (जानते हुए बंध करने) वाले नहीं हैं, किन्तु अनाभोगनिर्वर्तित आयु (न जानते हुए बंध करने) वाले हैं।

दं. १-२४ इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त आय के विषय में कहना चाहिए।

१२४. जीव चौबीसदंडकों में सोपक्रम-निरुपक्रम आयु का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जीव सोपक्रम आयु वाले होते हैं या निरुपक्रम आयु वाले होते हैं ?

उ. गौतम ! जीव सोपक्रम आयु वाले भी होते हैं और निरुपक्रम आयु वाले भी होते हैं।

प्र. दं. १. नैरयिक सोपक्रम आयु वाले होते हैं या निरुपक्रम आयु वाले होते हैं ?

उ. गौतम ! नैरयिक सोपक्रम आयु वाले नहीं होते किन्तु निरुपक्रम आयु वाले होते हैं।

दं. २-११. इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त जानना चाहिए।

दं. १२ पृथ्वीकायिकों का आयु औधिक जीवों के समान है।

दं. १३-२१ इसी प्रकार मनुष्य पर्यन्त कहना चाहिए।

दं. २२-२४ वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों का आयु सम्बन्धी कथन नैरयिकों के समान है।

१२५. असंज्ञी आयु के भेद और वंध स्वामित्व–

प्र. भंते ! असंज्ञी आयु कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! असंज्ञी आयु चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. नैरयिक-असंज्ञी आयु,

२. तिर्यञ्चयोनिक-असंज्ञी आयु,

३. मनुष्य-असंज्ञी आयु, ४. देव-असंज्ञी आयु।

---

[1] पण्ण. २०, सु. १४७१

प. असण्णी णं भंते ! जीवे–
किं नेरइयाउयं पकरेइ जाव देवाउयं पकरेइ ?

उ. हंता, गोयमा ! नेरइयाउयं पि पकरेइ जाव देवाउयं पि पकरेइ।
नेरइयाउयं पकरेमाणे जहण्णेणं दस वाससहस्साइं,
उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पकरेइ।
तिरिक्खजोणियाउयं पकरेमाणे जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पकरेइ।
मणुस्साउए वि एवं चेव।
देवाउयं पकरेमाणे जहा नेरइया।[1]
–विया. स. १, उ. २, सु. २०-२१

प्र. भंते ! असंज्ञी जीव १. क्या नरकायु का बंध करता है यावत् ४. देवायु का बंध करता है?

उ. हां, गौतम ! वह नरकायु का भी बंध करता है यावत् देवायु का भी बंध करता है।
नरकायु का बंध करने पर जघन्यतः दस हजार वर्ष का बंध करता है,
उत्कृष्टतः पल्योपम के असंख्यातवें भाग का बंध करता है।
तिर्यञ्चयोनिकायु का बंध करने पर जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त का बंध करता है,
उत्कृष्टतः पल्योपम के असंख्यातवें भाग का बंध करता है।
मनुष्यायु का बंध भी इसी प्रकार है,
देवायु का बंध नरकायु के समान है।

१२६. असण्णिआउयस्स अप्पाबहुयं–

प. एयस्स णं भंते ! १. नेरइय असण्णियाउयस्स,
२. तिरिक्खजोणियअसण्णियाउयस्स,
३. मणुस्स असण्णियाउयस्स,
४. देव असण्णियाउयस्स य
कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिए वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवे देव असण्णियाउए,
२. मणुस्स असण्णियाउए असंखेज्जगुणे,
३. तिरिक्खजोणिय असण्णियाउए असंखेज्जगुणे,
४. नेरइय असण्णियाउए असंखेज्जगुणे[2]।
–विया. स. १, उ. २, सु. २२

१२६. असंज्ञी आयु का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! १. नारक-असंज्ञी-आयु,
२. तिर्यञ्चयोनिक असंज्ञी-आयु,
३. मनुष्य-असंज्ञी आयु,
४. देव-असंज्ञी-आयु,
इनमें कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है?

उ. गौतम ! १. देव-असंज्ञी-आयु सबसे कम है,
२. (उनसे) मनुष्य-असंज्ञी-आयु असंख्यातगुणी है,
३. (उनसे) तिर्यञ्च-असंज्ञी-आयु असंख्यातगुणी है,
४. (उनसे) भी नारक-असंज्ञी-आयु असंख्यातगुणी है।

१२७. एगंतबाल-पंडित-बालपंडित मणुस्साणं आउयबंध परूवणं–

प. १. एगंतबाले णं भंते ! मणुस्से–
१. किं नेरइयाउयं पकरेइ,
२. तिरियाउयं पकरेइ,
३. मणुस्साउयं पकरेइ,
४. देवाउयं पकरेइ,
१. नेरइयाउयं किच्चा नेरइएसु उववज्जइ,
२. तिरियाउयं किच्चा तिरिएसु उववज्जइ,
३. मणुस्साउयं किच्चा मणुस्सेसु उववज्जइ,
४. देवाउयं किच्चा देवलोगेसु उववज्जइ ?

उ. गोयमा ! एगंतबाले णं मणुस्से–
१. नेरइयाउयं पि पकरेइ,
२. तिरियाउयं पि पकरेइ,
३ मणुयाउयं पि पकरेइ,
४. देवाउयं पि पकरेइ।
१. णेरइयाउयं किच्चा नेरइएसु उववज्जइ,
२. तिरियाउयं किच्चा तिरिएसु उववज्जइ,

१२७. एकांतबाल, पंडित और बालपंडित मनुष्यों के आयु बंध का प्ररूपण–

प्र. १. भंते ! क्या एकान्त-बाल (मिथ्यादृष्टि) मनुष्य,
१. नरकायु का बंध करता है,
२. तिर्यञ्चायु का बंध करता है,
३. मनुष्यायु का बंध करता है,
४. देवायु का बंध करता है ?
१. क्या वह नरकायु बांधकर नैरयिकों में उत्पन्न होता है,
२. तिर्यञ्चायु बांधकर तिर्यञ्चों में उत्पन्न होता है,
३. मनुष्यायु बांधकर मनुष्यों में उत्पन्न होता है,
४. देवायु बांधकर देवलोक में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! एकान्त बाल मनुष्य–
१. नरकायु का भी बंध करता है,
२. तिर्यञ्चायु का भी बंध करता है,
३. मनुष्यायु का भी बंध करता है,
४. देवायु का भी बंध करता है।
१. नरकायु बांधकर नैरयिकों में उत्पन्न होता है,
२. तिर्यञ्चायु बांधकर तिर्यञ्चों में उत्पन्न होता है,

---

१. पण्ण प. २०, सु. १४७२
२. पण्ण. प. २०, सु. १४७३

३. मणुस्साउयं किच्चा मणुस्सेसु उववज्जइ,
४. देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ।

प. २. एगंतपंडिए णं भंते ! मणुस्से–
किं नेरइयाउयं पकरेइ जाव देवाउयं पकरेइ,

नेरइयाउयं किच्चा नेरइएसु उववज्जइ जाव देवाउयं किच्चा देवलोएसु उववज्जइ ?

उ. गोयमा ! एगंतपंडिए णं मणुस्से–
आउयं सिय पकरेइ, सिय नो पकरेइ।

जइ पकरेइ–नो नेरइयाउयं पकरेइ, नो तिरियाउयं पकरेइ, नो मणुस्साउयं पकरेइ, देवाउयं पकरेइ।

नो नेरइयाउयं किच्चा नेरइएसु उववज्जइ,
नो तिरियाउयं किच्चा तिरिएसु उववज्जइ,
नो मणुस्साउयं किच्चा मणुस्सेसु उववज्जइ,
देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'एगंतपंडिए मणुस्से–
नो नेरइयाउयं पकरेइ जाव देवाउयं पकरेइ,
नो नेरइयाउयं किच्चा नेरइएसु उववज्जइ जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ ?

उ. गोयमा ! एगंत पंडियस्स णं मणुस्सस्स केवलमेव दो गइओ पण्णायंति, तं जहा–
१. अंतकिरिया चेव,
२. कप्पोववत्तिया चेव।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"एगंतपंडिए मणुस्से–जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ।"

प. ३. बालपंडिए णं भंते ! मणुस्से–
किं नेरइयाउयं पकरेइ जाव देवाउयं पकरेइ,

नेरइयाउयं किच्चा नेरइएसु उववज्जइ जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ ?

उ. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेइ जाव देवाउयं पकरेइ,

नो नेरइयाउयं किच्चा नेरइएसु उववज्जइ जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
बालपंडिए मणुस्से–नो नेरइयाउयं पकरेइ जाव देवाउयं पकरेइ,
नेरइयाउयं किच्चा नेरइएसु उववज्जइ जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ ?"

उ. गोयमा ! बालपंडिए णं मणुस्से–

३. मनुष्यायु बांधकर मनुष्यों में उत्पन्न होता है,
४. देवायु बांधकर देवों में उत्पन्न होता है।

प्र. २. भंते ! एकान्त पण्डित मनुष्य–
क्या नरकायु का बंध करता है यावत् देवायु का बंध करता है ?
क्या नरकायु बांधकर नैरयिकों में उत्पन्न होता है यावत् देवायु बांधकर देवलोक में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! एकान्त पण्डित मनुष्य,
कदाचित् आयु का बंध करता है और कदाचित् आयु का बंध नहीं करता।
यदि आयु का बंध करता है तो देवायु का बंध करता है, किन्तु नरकायु, तिर्यञ्चायु और मनुष्यायु का बंध नहीं करता।
वह नरकायु का बंध न करने से नारकों में उत्पन्न नहीं होता,
तिर्यञ्चायु का बंध न करने से तिर्यञ्चों में उत्पन्न नहीं होता,
मनुष्यायु का बंध न करने से मनुष्यों में उत्पन्न नहीं होता,
किन्तु देवायु का बंध करने से देवों में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"एकान्त पंडित मनुष्य नरकायु का बंध नहीं करता यावत् देवायु का बंध करता है,
वह नरकायु का बंध न करने से नारकों में उत्पन्न नहीं होता यावत् देवायु का बन्ध करने से देवों में उत्पन्न होता है ?"

उ. गौतम ! एकान्त पण्डित मनुष्य की केवल दो गतियां कही गई हैं, यथा–
१. अन्तक्रिया,
२. कल्पोपपत्तिका (सौधर्मादि कल्पों में उत्पन्न होना)।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"एकान्त पण्डित मनुष्य यावत् देवायु बांध कर देवों में उत्पन्न होता है।"

प्र. ३. भंते ! बाल पण्डित मनुष्य–
क्या नरकायु का बंध करता है यावत् देवायु का बंध करता है ?
क्या नरकायु बांधकर नैरयिकों में उत्पन्न होता है यावत् देवायु बांधकर देवलोक में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! वह नरकायु का बंध नहीं करता यावत् देवायु का बंध करता है,
वह नरकायु बांधकर नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होता यावत् देवायु बांधकर देवों में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
बालपण्डित मनुष्य–नरकायु का बंध नहीं करता यावत् देवायु का बंध करता है
वह नरकायु बांधकर नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होता यावत् देवायु बांधकर देवों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! बाल पण्डित मनुष्य–

तहारूवस्स समणस्स वा, माहणस्स वा अंतिए
एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा निसम्म देसं उवरमइ, देसं नो उवरमइ,
देसं पच्चक्खाइ, देसं नो पच्चक्खाइ,

से णं तेणं देसोवरम-देस पच्चक्खाणेणं नो नेरइयाउयं पकरेइ जाव देवाउयं पकरेइ,
नो नेरइयाउयं किच्चा नेरइएसु उववज्जइ जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ।
से तेणट्ठेण गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'बालपंडिए मणुस्से-जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ।' *–विया. स. १, उ. ८, सु. १-३*

तथारूप श्रमण या माहन के पास से एक भी आर्य तथा धार्मिक सुवचन सुनकर, अवधारण करके एक देश से (आंशिक) विरत होता है और एक देश से विरत नहीं होता।
एक देश से प्रत्याख्यान करता है और एक देश से प्रत्याख्यान नहीं करता।
उस देश विरति और देश प्रत्याख्यान से वह नरकायु का बंध नहीं करता यावत् देवायु का बंध करता है
वह नरकायु बांधकर नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होता यावत् देवायु बांधकर देवों में उत्पन्न होता है।
इस कारण गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि -
'बाल पंडित मनुष्य यावत् देवायु बांधकर देवों में उत्पन्न होता है।'

१२८. किरियावाइयाइ चउव्विह समोसरणगएसु जीवेसु एक्कारसठाणेहिं आउयबंध परूवणं–

प. १. किरियावाई णं भंते ! जीवा किं नेरइयाउयं पकरेंति तिरिक्खजोणियाउयं पकरेंति,
मणुस्साउयं पकरेंति , देवाउयं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति, नो तिरिक्ख जोणियाउयं पकरेंति, मणुस्साउयं पि पकरेंति, देवाउयं पि पकरेंति।

प. जइ देवाउयं पकरेंति किं भवणवासिदेवाउयं पकरेंति, वाणमंतरदेवाउयं पकरेंति, जोइसिय देवाउयं पकरेंति, वेमाणियदेवाउयं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! नो भवणवासिदेवाउयं पकरेंति,
नो वाणमंतर देवाउयं पकरेंति,
नो जोइसियदेवाउयं पकरेंति,
वेमाणियदेवाउयं पकरेंति।

प. अकिरियावाई णं भंते ! जीवा किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! नेरइयाउयं पि पकरेंति जाव देवाउयं पि पकरेंति।
एवं अन्नाणियवाई वि, वेणइयवाई वि।

प. २. सलेस्सा णं भंते ! जीवा किरियावाई किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति।
एवं जहेव जीवा तहेव सलेस्सावि चउहि वि समोसरणेहिं भाणियव्वा।

प. कण्हलेस्सा णं भंते ! जीवा किरियावाई किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति,
नो तिरिक्खजोणियाउयं पकरेंति,
मणुस्साउयं पकरेंति,

१२८. क्रियावादीआदि चारों समवसरणगत जीवों में ग्यारह स्थानों द्वारा आयु बंध का प्ररूपण–

प्र. १. भंते ! क्रियावादी जीव क्या नरकायु का बंध करते हैं, तिर्यञ्चयोनिकायु का बंध करते हैं,
मनुष्यायु का बंध करते हैं या देवायु का बंध करते हैं ?

उ. गौतम ! क्रियावादी जीव नैरयिक और तिर्यञ्चयोनिकायु का बंध नहीं करते हैं किन्तु मनुष्य और देवायु का बंध करते हैं।

प्र. यदि क्रियावादी जीव देवायु का बंध करते हैं तो क्या वे भवनवासी-देवायु का बंध करते हैं, वाणव्यन्तर-देवायु का बंध करते हैं ज्योतिष्क-देवायु का बंध करते हैं या वैमानिक-देवायु का बंध करते हैं ?

उ. गौतम ! वे न तो भवनवासी-देवायु का बंध करते हैं,
न वाणव्यन्तर-देवायु का बंध करते हैं,
न ज्योतिष्क-देवायु का बंध करते हैं.
किन्तु वैमानिक-देवायु का बंध करते हैं,

प्र. भंते ! अक्रियावादी जीव क्या नरकायु का बंध करते हैं यावत् देवायु का बंध करते हैं ?

उ. गौतम ! वे नरकायु का भी बंध करते हैं यावत् देवायु का भी बंध करते हैं।
इसी प्रकार अज्ञानवादी और विनयवादी जीवों के आयु का बन्ध कहना चाहिए।

प्र. २. भंते ! सलेश्य क्रियावादी जीव क्या नरकायु का बंध करते हैं यावत् देवायु का बंध करते हैं ?

उ. गौतम ! वे नरकायु का बंध नहीं करते
इसी प्रकार (पूर्वोक्त) सामान्य जीवों के समान सलेश्य में चारों समवसरणों के आयु बंध का कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! कृष्णलेश्यी क्रियावादी जीव क्या नरकायु का बंध करते हैं यावत् देवायु का बंध करते हैं ?

उ. गौतम ! वे न नरकायु का बंध करते हैं,
न तिर्यञ्चयोनिकायु का बंध करते हैं,
किन्तु मनुष्यायु का बंध करते हैं,

नो देवाउयं पकरेंति।

अकिरिया-अन्नाणिय-वेणइयवाई चत्तारि वि आउयाइं पकरेंति।

एवं नीललेस्सा काउलेस्सा वि।

प. तेउलेस्सा णं भंते ! जीवा किरियावाई किं नेरइयाउयं पकरेंति **जाव** देवाउयं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति,
नो तिरिक्खजोणियाउयं पकरेंति,
मणुस्साउयं पि पकरेंति,
देवाउयं पि पकरेंति।

प. जइ देवाउयं पकरेंति किं भवणवासिदेवाउयं पकरेंति जाव वेमाणिय देवाउयं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! नो भवणवासिदेवाउयं पकरेंति **जाव** वेमाणिय देवाउयं पकरेंति।

प. तेउलेस्सा णं भंते ! जीवा अकिरियावाई किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति,
तिरिक्खजोणियाउयं पि पकरेंति, मणुस्साउयं पि पकरेंति, देवाउयं पि पकरेंति।

एवं अण्णाणियवाई वि, वेणइयवाई वि।

जहा तेउलेस्सा तहा पम्हलेस्सा वि, सुक्कलेस्सा वि नेयव्वा।

प. अलेस्सा णं भंते ! जीवा किरियावाई किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति जाव नो देवाउयं पकरेंति।

प. ३. कण्हपक्खिया णं भंते ! जीवा अकिरियावाई किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! नेरइयाउयं पि पकरेंति, जाव देवाउयं पि पकरेंति

एवं अण्णाणियवाई वि, वेणइयवाई वि।

सुक्कपक्खिया जहा सलेस्सा।

प. ४. सम्मदिद्दट्ठी णं भंते ! जीवा किरियावाई किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति,
नो तिरिक्खजोणियाउयं पकरेंति,
मणुस्साउयं पि पकरेंति, देवाउयं पि पकरेंति।
मिच्छदिद्दट्ठी जहा कण्हपक्खिया।

प. सम्मामिच्छदिद्दट्ठी णं भंते ! जीवा अण्णाणियवाई किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति ?

देवायु का बंध नहीं करते हैं।

कृष्णलेश्यी अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी जीव नैरयिक आदि चारों प्रकार के आयु का बंध करते हैं।

इसी प्रकार नीललेश्यी और कापोतलेश्यी के आयु बंध जानने चाहिए।

प्र. भंते ! तेजोलेश्यी क्रियावादी जीव क्या नरकायु का बंध करते हैं **यावत्** देवायु का बंध करते हैं ?

उ. गौतम ! वे न नरकायु का बंध करते हैं,
न तिर्यञ्चयोनिकायु का बंध करते हैं,
किन्तु मनुष्यायु का बंध करते हैं,
देवायु का भी बंध करते हैं।

प्र. यदि देवायु का बंध करते हैं तो क्या भवनवासी देवायु का बंध करते हैं **यावत्** वैमानिक देवायु का बंध करते हैं ?

उ. गौतम ! वे भवनवासी देवायु का बंध नहीं करते **यावत्** वैमानिक देवायु का बंध करते हैं।

प्र. भंते ! तेजोलेश्यी अक्रियावादी जीव क्या नरकायु का बंध करते हैं **यावत्** देवायु का बंध करते हैं ?

उ. गौतम ! वे नरकायु का बंध नहीं करते,
किन्तु तिर्यञ्चयोनिकायु, मनुष्यायु और देवायु का बंध करते हैं।

इसी प्रकार अज्ञानवादी और विनयवादी के आयु-बंध कहें।

जिस प्रकार तेजोलेश्यी के आयु-बंध का कथन है, उसी प्रकार पद्मलेश्यी और शुक्ललेश्यी का आयु बंध जानना चाहिए।

प्र. भंते ! अलेश्य क्रियावादी जीव क्या नरकायु का बंध करते हैं **यावत्** देवायु का बंध करते हैं ?

उ. गौतम! वे न नरकायु का बंध करते हैं **यावत्** न देवायु का बंध करते हैं।

प्र. ३. भंते ! कृष्णपाक्षिक अक्रियावादी जीव क्या नरकायु का बंध करते हैं **यावत्** देवायु का बंध करते हैं ?

उ. गौतम ! वे नरकायु का भी बंध करते हैं **यावत्** देवायु का भी बंध करते हैं।

इसी प्रकार कृष्णपाक्षिक अज्ञानवादी और विनयवादी जीवों का बंध कहने चाहिए।

शुक्लपाक्षिक जीवों का आयु बंध सलेश्यी जीवों के समान हैं।

प्र. ४. भंते ! सम्यग्दृष्टि क्रियावादी जीव क्या नरकायु का बंध करते हैं यावत् देवायु का बंध करते हैं ?

उ. गौतम ! वे नरकायु और तिर्यञ्चयोनिकायु का बंध नहीं करते हैं,
किन्तु मनुष्यायु और देवायु का बंध करते हैं।
मिथ्यादृष्टि क्रियावादी जीवों का आयु बंध कृष्णपाक्षिक के समान है।

प्र. भंते ! सम्यग्मिथ्यादृष्टि अज्ञानवादी जीव क्या नरकायु का बंध करते हैं यावत् देवायु का बंध करते हैं ?

उ. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति जाव नो देवाउयं पकरेंति,

एवं वेणइयवाई वि।

५. णाणी, आभिणिबोहियनाणी य सुयनाणी य ओहिनाणी य जहा सम्मदि्दट्ठी।

प. मणपज्जवनाणी णं भंते ! जीवा किरियावाई किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति?

उ. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति, नो तिरिक्खजोणियाउयं पकरेंति, नो मणुस्साउयं पकरेंति, देवाउयं पकरेंति।

प. जइ देवाउयं पकरेंति किं भवणवासि देवाउयं पकरेंति जाव वेमाणिय देवाउयं पकरेंति?

उ. गोयमा ! नो भवणवासिदेवाउयं पकरेंति, नो वाणमंतर देवाउयं पकरेंति, नो जोइसियदेवाउयं पकरेंति, वेमाणियदेवाउयं पकरेंति।

केवलनाणी जहा अलेस्सा।

६. अन्नाणी जाव विभंगनाणी जहा कण्हपक्खिया।

७. सण्णासु चउसु वि जहा सलेस्सा।

नो सन्नोवउत्ता जहा मणपज्जवनाणी।

८. सवेयगा जाव नपुंसगवेया जहा सलेस्सा।

अवेयगा जहा अलेस्सा।

९. सकसायी जाव लोभकसायी जहा सलेस्सा।

अकसायी जहा अलेस्सा।

१०. सजोगी जाव कायजोगी जहा सलेस्सा।

अजोगी जहा अलेस्सा।

११. सागारोवउत्ता य अणागारोवउत्ता य जहा सलेस्सा। *–विया. स. ३०, उ. १, सु. ३३-६४*

उ. गौतम ! वे न नरकायु का बंध करते हैं यावत् न देवायु का बंध करते हैं।

इसी प्रकार विनयवादी जीवों का बन्ध जानना चाहिए।

५. क्रियावादी ज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी के आयु बन्ध का कथन सम्यग्दृष्टि के समान है।

प्र. भंते ! मनःपर्यवज्ञानी क्रियावादी जीव क्या नरकायु का बंध करते हैं यावत् देवायु का बंध करते हैं?

उ. गौतम ! वे नैरयिक, तिर्यञ्च और मनुष्य का आयुबंध नहीं करते, किन्तु देवायु का बंध करते हैं।

प्र. यदि वे देवायु का बंध करते हैं तो क्या भवनवासी देवायु का बंध करते हैं यावत् वैमानिक देवायु का बंध करते हैं?

उ. गौतम ! वे भवनवासी, वाणव्यन्तर या ज्योतिष्क का देवायु बंध नहीं करते,

किन्तु वैमानिक देवायु का बंध करते हैं।

केवलज्ञानी के विषय में अलेश्यी के समान कहें।

६. अज्ञानी से विभंगज्ञानी पर्यन्त का आयुबन्ध कृष्णपाक्षिक के समान है।

७. चारों संज्ञाओं का आयु बंध सलेश्य जीवों के समान है।

नो संज्ञोपयुक्त जीवों का आयु बंध मनःपर्यवज्ञानी के समान है।

८. सवेदी से नपुंसकवेदी पर्यन्त का आयु बन्ध सलेश्य जीवों के समान है।

अवेदी जीवों का आयु वन्ध अलेश्य जीवों के समान है।

९. सकषायी से लोभकषायी पर्यन्त का आयु बंध सलेश्य जीवों के समान है।

अकषायी जीवों का आयु बंध अलेश्य के समान है।

१०. सयोगी से काययोगी पर्यन्त का आयुबंध सलेश्य जीवों के समान है।

अयोगी जीवों का आयु बंध अलेश्य के समान है।

११. साकारोपयुक्त और अनाकारोपयुक्त का आयुबंध सलेश्य जीवों के समान है।

१२९. किरियावाइयाइ चउव्विहसमोसरणगएसु चउवीसदंडएस एक्कारसठाणेहिं आउय बंध परूवणं–

प. दं. १. किरियावाई णं भंते ! नेरइया किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति?

उ. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति, नो तिरिक्खजोणियाउयं पकरेंति, मणुस्साउयं पकरेंति, नो देवाउयं पकरेंति।

प. अकिरियावाई णं भंते! नेरइया किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति?

१२९. क्रियावादी आदि चारों समवसरणगत चौबीस दंडकों में ग्यारह स्थानों द्वारा आयु बंध का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! क्रियावादी नैरयिक जीव क्या नरकायु का बंध करते हैं यावत् देवायु का बंध करते हैं?

उ. गौतम ! वे नरकायु का बंध नहीं करते हैं, तिर्यञ्चयोनिकायु का भी बंध नहीं करते हैं,

किन्तु मनुष्यायु का बंध करते हैं,

देवायु का बंध नहीं करते हैं।

प्र. भंते ! अक्रियावादी नैरयिक जीव क्या नरकायु का बंध करते हैं यावत् देवायु का बंध करते हैं?

उ. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति,
तिरिक्खजोणियाउयं पि पकरेंति,
मणुस्साउयं पि पकरेंति,
नो देवाउयं पकरेंति।
एवं अण्णाणियवाई वि, वेणइयवाई वि।

प. सलेस्सा णं भंते ! नेरइया किरियावाई किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! **एवं सव्वे वि नेरइया जे किरियावाई ते मणुस्साउयं एगं पकरेंति,**
जे अकिरियावाई, अण्णाणियवाई, वेणइयवाई,
ते सव्वट्ठाणेसु वि, नो नेरइयाउयं पकरेंति,
तिरिक्खजोणियाउयं पि पकरेंति,
मणुस्साउयं पि पकरेंति,
नो देवाउयं पकरेंति।
णवरं–सम्मामिच्छत्ते उवरिल्लेहिं दोहि वि समोसरणेहिं न किंचि वि पकरेंति जहेव जीवपदे।

दं. २-११. एवं जाव **थणियकुमारा जहेव नेरइया।**

प. दं. १२. अकिरियावाई णं भंते ! पुढविकाइया किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति,
तिरिक्खजोणियाउयं पकरेंति, मणुस्साउयं पकरेंति,
नो देवाउयं पकरेंति।
एवं अण्णाणियवाई वि।

प. सलेस्सा णं भंते ! पुढविकाइया किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! एवं जं जं पयं अत्थि पुढविकाइयाणं तहिं तहिं मज्झिमेसु दोसु समोसरणेसु एवं चेव दुविहं आउयं पकरेंति।
णवरं–तेउलेस्साए न किं पि पकरेंति।

दं. १३,१६. एवं आउक्काइयाण वि, वणस्सइकाइयाण वि।

दं. १४-१५. तेउकाइयाणं वाउकाइयाणं सव्वट्ठाणेसु मज्झिमेसु दोसु समोसरणेसु, नो नेरइयाउयं पकरेंति,
तिरिक्खजोणियाउयं पकरेंति,
नो मणुस्साउयं पकरेंति, नो देवाउयं पकरेंति।

दं. १७-१९. बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं-जहा पुढविकाइयाणं,
णवरं–सम्मत्त-नाणेसु न एक्कं पि आउयं पकरेंति।

उ. गौतम ! वे नरकायु का बंध नहीं करते हैं,
किन्तु तिर्यञ्चयोनिकायु का बंध करते हैं,
मनुष्यायु का बंध करते हैं,
देवायु का बंध नहीं करते हैं।
इसी प्रकार अज्ञानवादी और विनयवादी के नरकायु का बंध जानना चाहिए।

प्र. भंते ! सलेश्यी क्रियावादी नैरयिक क्या नरकायु का बंध करते हैं यावत् देवायु का बंध करते हैं ?

उ. गौतम ! **इसी प्रकार सभी नैरयिक जो क्रियावादी हैं, वे एक मनुष्यायु का ही बंध करते हैं,**
जो अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी नैरयिक हैं,
वे सभी स्थानों में नरकायु का बंध नहीं करते,
किन्तु तिर्यञ्चयोनिकायु का बंध करते हैं,
मनुष्यायु का बंध करते हैं,
देवायु का बंध नहीं करते हैं।
विशेष–सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिक, अज्ञानवादी और विनयवादी इन दो समवसरणों में जीव स्थान के समान किसी भी प्रकार के आयु का वन्ध नहीं करते।

दं. २-११. इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त आयु वन्ध का कथन नैरयिकों के समान है।

प्र. दं. १२. भंते ! अक्रियावादी पृथ्वीकायिक जीव क्या नरकायु का बंध करते हैं यावत् देवायु का बंध करते हैं ?

उ. गौतम ! वे नरकायु का बंध नहीं करते,
किन्तु तिर्यञ्चायु और मनुष्यायु का वन्ध करते हैं,
देवायु का बंध नहीं करते हैं,
इसी प्रकार अज्ञानवादी (पृथ्वीकायिक) जीवों का आयु बंध कहना चाहिए।

प्र. भंते ! सलेश्य अक्रियावादी पृथ्वीकायिक जीव नरकायु का बंध करते हैं यावत् देवायु का बंध करते हैं ?

उ. गौतम ! जो-जो स्थान पृथ्वीकायिक जीवों के हैं, उन-उन में मध्य के दो समवसरणों में पूर्व कथनानुसार मनुष्य और तिर्यञ्च दो प्रकार का आयु बांधते हैं।
विशेष–तेजोलेश्या में किसी भी प्रकार का आयु बंध नहीं करते हैं।

दं. १३-१६. इसी प्रकार अप्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवों के आयु का बंध जानना चाहिए।

दं. १४-१५. तेजस्कायिक और वायुकायिक जीव, सभी स्थानों में मध्य के दो समवसरणों में नरकायु का बंध नहीं करते,
किन्तु तिर्यञ्चयोनिक आयु का बंध करते हैं,
वे मनुष्यायु और देवायु का बंध नहीं करते;

दं. १७-१९. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों का आयु बंध पृथ्वीकायिक जीवों के समान है।
विशेष–सम्यक्त्व और ज्ञान में वे एक भी आयु का बंध नहीं करते।

प. दं. २०. किरियावाई णं भंते ! पंचेंदिय- तिरिक्ख-जोणिया किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! जहा मणपज्जवनाणी।

अकिरियावाई, अन्नाणियवाई, वेणइयवाई य चउव्विहं पि पकरेंति।

जहा ओहिया तहा सलेस्सा वि।

प. कण्हलेस्सा णं भंते ! किरियावाई पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणिया किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति जाव नो देवाउयं पकरेंति।

अकिरियावाई, अन्नाणियवाई वेणइयवाई य चउव्विहं पि पकरेंति।

जहा कण्हलेस्सा एवं नीललेस्सा वि, काउलेस्सा वि।

तेउलेस्सा जहा सलेस्सा,

णवरं–अकिरियावाई, अन्नाणियवाई, वेणइयवाई य नो नेरइयाउयं पकरेंति,

तिरिक्खजोणियाउयं पि पकरेंति, मणुस्साउयं पि पकरेंति, देवाउयं पि पकरेंति।

एवं पम्हलेस्सा वि सुक्कलेस्सा वि भाणियव्वा।

कण्हपक्खिया तिहिं समोसरणेहिं चउव्विहं पि आउयं पकरेंति।

सुक्कपक्खिया जहा सलेस्सा।

सम्मद्दिट्ठी जहा मणपज्जवनाणी तहेव वेमाणियाउयं पकरेंति।

मिच्छद्दिट्ठी जहा कण्हपक्खिया।

सम्मामिच्छद्दिट्ठी णं एक्कं पि पकरेंति जहेव नेरइया।

नाणी जाव ओहिनाणी जहा सम्मद्दिट्ठी।

अन्नाणी जाव विभंगनाणी जहा कण्हपक्खिया।

सेसा जाव अणागारोवउत्ता सव्वे जहा सलेस्सा तहेव भाणियव्वा।

दं. २१. जहा पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं वत्तव्वया भणिया तहा मणुस्साण वि भाणियव्वा,

णवरं–मणपज्जवनाणी नो सन्नोवउत्ता य जहा सम्मद्दिट्ठी तिरिक्खजोणिया तहेव भाणियव्वा।

प्र. दं. २०. भंते ! क्रियावादी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक क्या नरकायु का बंध करते हैं यावत् देवायु का बंध करते हैं?

उ. गौतम ! इनका आयु बंध मनःपर्यवज्ञानी के समान है।

अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय जीव चारों प्रकार के आयु का बंध करते हैं।

सलेश्य तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय का आयुबंध सामान्य जीवों के समान है।

प्र. भंते ! कृष्णलेश्यी क्रियावादी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक क्या नरकायु का बंध करते हैं यावत् देवायु का बंध करते हैं?

उ. गौतम ! वे नरकायु यावत् देवायु का बंध नहीं करते हैं।

अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी कृष्णलेश्यी चारों प्रकार के आयु का बंध करते हैं।

नीललेश्यी और कापोतलेश्यी का आयु बंध कृष्णलेश्यी(पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक) के समान है।

तेजोलेश्यी का आयु बंध सलेश्य के समान है।

विशेष–अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी नैरयिक का आयु नहीं बांधते,

वे तिर्यञ्च, मनुष्य और देव का आयु बांधते हैं।

इसी प्रकार पद्मलेश्यी और शुक्ललेश्यी जीवों का आयुबंध कहना चाहिए।

कृष्णपाक्षिक अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी जीव चारों ही प्रकार के आयु का बंध करते हैं।

शुक्लपाक्षिक का आयु बंध सलेश्यी के समान है।

सम्यग्दृष्टि जीव मनःपर्यवज्ञानी के समान वैमानिक देवों का आयु बंध करते हैं।

मिथ्यादृष्टि का आयु बंध कृष्णपाक्षिक के समान है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव नैरयिकों के समान एक ही प्रकार का आयु बंध करते हैं।

ज्ञानी से अवधिज्ञानी पर्यन्त के जीवों का आयु बंध सम्यग्दृष्टि जीवों के समान है।

अज्ञानी से विभंगज्ञानी पर्यन्त के जीवों का आयु बंध कृष्णपाक्षिकों के समान है।

शेष अनाकारोपयुक्त पर्यन्त सभी जीवों का आयु बंध सलेश्यी जीवों के समान कहना चाहिए।

दं. २१. जिस प्रकार पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवों का कथन कहा, उसी प्रकार मनुष्यों का आयु बंध भी कहना चाहिए।

विशेष–मनःपर्यवज्ञानी और नो संज्ञोपयुक्त मनुष्यों का आयु बंध सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्चयोनिकों के समान कहना चाहिए।

अलेस्सा, केवलनाणी, अवेदका, अकसायी, अजोगी, य एए न एगं पि आउयं पकरेंति,

जहा ओहिया जीवा सेसं तहेव।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा। *-विया. स. ३०, उ. १, सु. ६५-९३*

१३०. चउव्विह समोसरणेसु अणंतरोववन्नगाणं पडुच्च आउयबंधणिसेह परूवणं-

प. किरियावाई णं भंते ! अणंतरोववन्नगा नेरइया किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति।

उ. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति जाव नो देवाउयं पकरेंति।

एवं अकिरियावाई वि, अन्नाणियवाई वि, वेणइयवाई वि।

प. सलेस्सा णं भंते ! किरियावाई अणंतरोववन्नगा नेरइया किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति जाव नो देवाउयं पकरेंति

एवं जाव वेमाणिया।

एवं सव्वट्ठाणेसु वि अणंतरोववन्नगा नेरइया न किंचि वि आउयं पकरेंति जाव अणागारोवउत्त त्ति।

एवं जाव वेमाणिया।

णवरं-जं जस्स अत्थि तं तस्स भाणियव्वं। *-विया. स. ३०, उ.२, सु. ५-१०*

१३१. परंपरोववन्नगाणं पडुच्च-चउवीसदंडएसु आउय बंध परूवणं-

प. किरियावाई णं भंते ! परम्परोववन्नग नेरइया किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति, नो तिरिक्खजोणियाउयं पकरेंति, मणुस्साउयं पकरेंति, नो देवाउयं पकरेंति।

प. अकिरियावाई णं भंते ! परंपरोववन्नगा नेरइया किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति, तिरिक्खजोणियाउयं पि पकरेंति, मणुस्साउयं पि पकरेंति, नो देवाउयं पकरेंति,

एवं अन्नाणियवाई वि, वेणइयवाई वि।

एवं जहेव ओहिओ उद्देसो तहेव परंपरोववन्नएसु वि नेरइयाईओ तहेव निरवसेसं भाणियव्वं, तहेव तियदंडगसंगहिओ। *-विया. स. ३०, उ. ३, सु. १*

एवं एएणं कमेणं जच्चेव बंधिसए उद्देसगाणं परिवाडी सच्चेव इहं पि जाव अचरिमो उद्देसो,

णवरं-अणंतरा चत्तारि वि एक्कगमगा।

अलेश्यी, केवलज्ञानी, अवेदी, अकषायी और अयोगी ये एक भी आयु का वंध नहीं करते हैं।

शेष कथन सामान्य जीवों के समान है।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक जीवों का आयु वंध असुरकुमारों के समान है।

१३०. चतुर्विध समवसरणों में अनन्तरोपपन्नकों की अपेक्षा आयु बंध निषेध का प्ररूपण-

प्र. भंते ! क्रियावादी अनन्तरोपपन्नक नैरयिक क्या नरकायु का बंध करते हैं यावत् देवायु का वंध करते हैं ?

उ. गौतम ! वे नरकायु का वंध नहीं करते यावत् देवायु का भी वंध नहीं करते हैं,

इसी प्रकार अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी अनन्तरोपपन्नकों का आयु बंध कहना चाहिए।

प्र. भंते ! सलेश्य क्रियावादी अनन्तरोपपन्नक नैरयिक क्या नरकायु का वंध करते हैं यावत् देवायु का वंध करते हैं ?

उ. गौतम ! वे नरकायु यावत् देवायु का वंध नहीं करते हैं। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

इसी प्रकार सभी स्थानों में अनन्तरोपपन्नक नैरयिक अनाकारोपयुक्त जीवों पर्यन्त किसी भी प्रकार का आयु वन्ध नहीं करते।

इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त आयु वन्ध कहना चाहिए।

विशेष-उनमें जो स्थान हैं वे सब कहने चाहिए।

१३१. परम्परोपपन्नकों की अपेक्षा चौवीस दंडकों में आयु बंध का प्ररूपण-

प्र. भंते ! परम्परोपपन्नक क्रियावादी नैरयिक क्या नरकायु का वंध करते हैं यावत् देवायु का वंध करते हैं ?

उ. गौतम ! वे नरकायु और तिर्यञ्चयोनिकायु का वंध नहीं करते, किन्तु मनुष्यायु का वंध करते हैं और देवायु का वंध नहीं करते।

प्र. भंते ! परम्परोपपन्नक अक्रियावादी नैरयिक क्या नरकायु का वंध करते हैं यावत् देवायु का वंध करते हैं ?

उ. गौतम ! वे नरकायु का वंध नहीं करते, तिर्यञ्चयोनिकायु का और मनुष्यायु का वन्ध करते हैं किन्तु देवायु का वंध नहीं करते हैं।

इसी प्रकार अज्ञानवादी और विनयवादी के विषय में समझना चाहिए।

इसी प्रकार जैसे औधिक उद्देशक में कहा उसी प्रकार परम्परोपपन्नक नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त समग्र उद्देशक तीन दण्डक सहित कहना चाहिए।

इसी प्रकार और इसी क्रम से बंधीशतक में उद्देशकों की जो परिपाटी है, उसी के अनुसार अचरम उद्देशक पर्यन्त यहाँ भी समझना चाहिए।

विशेष-अनन्तर शब्द से युक्त चार उद्देशक एक गम (समान पाठ) वाले हैं,

परम्परा चत्तारि वि एक्कगमएणं

चरिमा वि, अचरिमा वि एवं चेव,

णवरं-अलेस्सो केवली अजोगी य न भण्णइ,

सेसं तहेव। *-विया. स. ३०, उ. ३, ४-११*

परम्पर शब्द से युक्त चार उद्देशक एक गम वाले हैं।

इसी प्रकार चरम और अचरम उद्देशक भी समझना चाहिए।

विशेष-अचरम में अलेश्यी केवली और अयोगी का कथन नहीं करना चाहिए।

शेष सब कथन पूर्ववत् है।

१३२. अणंतरोववन्नगाइसु चउवीसदंडएसु आउबंधस्स विहिणिसेह परूवणं-

प. दं. १. अणंतरोववन्नगा णं भंते ! नेरइया किं नेरइयाउयं पकरेंति, तिरिक्ख जोणियाउयं पकरेंति, मणुस्साउयं पकरेंति, देवाउयं पकरेंति?

उ. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति जाव नो देवाउयं पकरेंति।

प. परंपरोववन्नगा णं भंते ! नेरइया किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति?

उ. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति, तिरिक्खजोणियाउयं पि पकरेंति, मणुस्साउयं पि पकरेंति, नो देवाउयं पकरेंति।

प. अणंतर परम्पराणुववन्नगा णं भंते ! नेरइया किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति?

उ. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति जाव नो देवाउयं पकरेंति।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिया,

णवरं-पंचिंदियतिरिक्खजोणिया मणुस्सा य परम्परोववन्नगा चत्तारि वि आउयाइं पकरेंति।

-विया. स. १४, उ. १, सु. १०-१३

१३२. अनंतरोपपन्नकादि चौबीस दण्डकों में आयु वंध क विधि-निषेध का प्ररूपण-

प्र. दं. १. भंते अनन्तरोपपन्नक नैरयिक क्या नरकायु का वंध करते हैं, तिर्यञ्चायु का वंध करते हैं, मनुष्यायु का वंध करते हैं या देवायु का वंध करते हैं?

उ. गौतम ! वे नरकायु का वंध नहीं करते यावत् देवायु का वंध नहीं करते।

प्र. भंते ! परम्परोपपन्नक नैरयिक क्या नरकायु का वंध करते हैं यावत् देवायु का वंध करते हैं?

उ. गौतम ! वे नरकायु का वंध नहीं करते, वे तिर्यञ्चायु और मनुष्यायु का वंध करते हैं किन्तु देवायु का बंध नहीं करते।

प्र. भंते ! अनन्तर-परम्परानुपपन्नक नैरयिक क्या नरकायु का बंध करते हैं यावत् देवायु का बंध करते हैं?

उ. गौतम ! वे नरकायु का वंध नहीं करते यावत् देवायु का वंध नहीं करते।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों तक आयु बंध का कथन करना चाहिए।

विशेष-परम्परोपपन्नक पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक और मनुष्य चारों प्रकार के आयु का वंध करते हैं।

१३३. अणंतर निग्गयाइसु चउवीसदंडएसु आउयवंध विहिणिसेहो परूवणं-

प. दं. १. अणंतरनिग्गया णं भंते ! नेरइया किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति?

उ. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति जाव नो देवाउयं पकरेंति।

प. परम्परणिग्गया णं भंते ! नेरइया किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति?

उ. गोयमा ! नेरइयाउयं पि पकरेंति जाव देवाउयं पि पकरेंति।

प. अणंतर परम्पर अणिग्गया णं भंते ! नेरइया किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति?

उ. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पि पकरेंति जाव नो देवाउयं पि पकरेंति।

दं. २-२४. एवं निरवसेसं जाव वेमाणिया।

-विया. स. १४, उ. १, सु. [illegible]

१३३. अनन्तरनिर्गतादि चौबीस दण्डकों में आयु बंध के विधि निषेध का प्ररूपण-

प्र. दं. १. भंते ! अनन्तरनिर्गत नैरयिक, क्या नरकायु का वंध करते हैं यावत् देवायु का वंध करते हैं?

उ. गौतम ! वे नरकायु का वंध नहीं करते यावत् देवायु का वंध नहीं करते।

प्र. भंते ! परम्पर-निर्गत-नैरयिक क्या नरकायु का वंध करते हैं यावत् देवायु का वंध करते हैं?

उ. गौतम ! वे नरकायु का भी वंध करते हैं यावत् देवायु का भी वंध करते हैं।

प्र. भंते ! अनन्तर-परम्पर-अनिर्गत नैरयिक क्या नरकायु का वंध करते हैं यावत् देवायु का वंध करते हैं?

उ. गौतम ! वे नरकायु का भी वंध नहीं करते यावत् देवायु का भी वंध नहीं करते।

दं. २-२४. इसी प्रकार शेष सभी कथन वैमानिकों तक करना चाहिए।

१३४. अणंतरखेदोववन्नगाइसु चउवीसदंडएसु आउयबंध-विहि-णिसेहो परूवणं–

प. १. दं. १. अणंतर खेदोववण्णगा णं भंते ! णेरइया किं णेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति?

उ. गोयमा ! नो णेरइयाउयं पकरेंति जाव नो देवाउयं पकरेंति।

प. २. परम्पर खेदोववन्नगा णं भंते ! णेरइया किं णेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति?

उ. गोयमा ! णेरइयाउयं पि पकरेंति जाव देवाउयं पि पकरेंति।

प. ३. अणंतर-परम्पर खेदाणुववण्णगा णं भंते ! किं नेरइयाउयं पकरेंति, जाव देवाउयं पकरेंति?

उ. गोयमा ! नो णेरइयाउयं पि पकरेंति जाव नो देवाउयं पि पकरेंति।

दं. २-२४. एवं णिरवसेसं जाव वेमाणिया।

–विया. स. १४, उ. १, सु. २०

१३४. अनन्तर खेदोपपन्नक आदि चौबीस दण्डकों में आयु वंध के विधि-निषेध का प्ररूपण–

प्र. १. दं. १. भंते ! अनन्तर खेदोपपन्नक नैरयिक क्या नरकायु का वंध करते हैं यावत् देवायु का वंध करते हैं?

उ. गौतम ! वे न नरकायु का वंध करते हैं यावत् न देवायु का वंध करते हैं।

प्र. २. भंते ! परम्पर खेदोपपन्नक नैरयिक क्या नरकायु का वंध करते हैं यावत् देवायु का वंध करते हैं?

उ. गौतम ! नरकायु का भी वंध करते हैं यावत् देवायु का भी वंध करते हैं।

प्र. ३. भंते ! अनन्तर-परम्पर खेदोनुपपन्नक नैरयिक क्या नरकायु का वंध करते हैं यावत् देवायु का वंध करते हैं?

उ. गौतम ! वे न नरकायु का वंध करते हैं यावत् न देवायु का वंध करते हैं।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त सभी दण्डकों में कहना चाहिए।

१३५. जीव-चउवीसदण्डएसु एगत्त-पुहत्तेणं सयंकडं आउवेयण परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! सयंकडं आउयं वेदेइ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइयं वेदेइ, अत्थेगइयं नो वेदेइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

अत्थेगइयं वेदेइ, अत्थेगइयं नो वेदेइ।

उ. गोयमा ! उदिण्णं वेदेइ, अणुदिण्णं नो वेदेइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'अत्थेगइयं वेदेइ, अत्थेगइयं नो वेदेइ।'

दं. १-२४. एवं चउवीसदण्डएणं नेरइएणं जाव वेमाणिए।

पुहत्तेण वि एवं चेव,

दं. १-२४. नेरइया जाव वेमाणिया।

–विया. स. १, उ. २, सु. ४

१३५. जीव-चौवीस दण्डकों में एक-अनेक की अपेक्षा स्वयंकृत आयु वेदन का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या जीव स्वयंकृत आयु का वेदन करता है?

उ. गौतम ! किसी का वेदन करता है और किसी का वेदन नहीं करता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

किसी का वेदन करता है और किसी का वेदन नहीं करता है।

उ. गौतम ! उदीर्ण का वेदन करता है और अनुदीर्ण का वेदन नहीं करता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

'किसी का वेदन करता है और किसी का वेदन नहीं करता है।'

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त चौवीस दण्डक कहने चाहिए।

अनेक जीवों की अपेक्षा भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

दं. १-२४. नैरयिकों से वैमानिकों तक भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

१३६. देवस्स चवणाणंतर भवाउयपडिसंवेदणं–

प. देवेणं भंते ! महिड्ढिए महज्जुईए महव्वले महायसे महेसक्खे महाणुभावे अविउक्कंतियं चयमाणे किं चि वि कालं हिरिवत्तियं दुगुंछावत्तियं परिस्सहवत्तियं आहारं नो आहारेइ,

अहेणं आहारेइ, आहारिज्जमाणे आहारिए,

परिणामिज्जमाणे परिणामिए पहीणे य आउए भवइ,

जत्थ उववज्जइ तमाउयं पडिसंवेदेइ, तं जहा–

तिरिक्खजोणियाउयं वा, मणुस्साउयं वा

१३६. देव का च्यवन के पश्चात् भवायु का प्रतिसंवेदन–

प्र. भंते ! महान् ऋद्धिवाला, महान् द्युति वाला, महान् बलवाला, महायशस्वी, महासुखी, महाप्रभावशाली, मरणकाल में च्यवते हुए कोई देव लज्जा के कारण, घृणा के कारण, परीषह के कारण कुछ समय तक आहार नहीं करता है,

तत्पश्चात् आहार करता है और ग्रहण किया हुआ आहार परिणत भी होता है,

अन्त में उस देव की वहाँ की आयु सर्वथा नष्ट हो जाती है। इसलिए वह देव जहाँ उत्पन्न होता है, वहाँ की आयु भोगता है, यथा–

तिर्यञ्चयोनिकायु और मनुष्यायु।

उ. हंता, गोयमा ! देवेणं महिड्ढिए जाव मणुस्साउयं वा पडिसंवेदेइ। *–विया. स. १, उ.७, सु. ९*

उ. हाँ, गौतम ! वह महाऋद्धि वाला देव यावत् च्यवन (मृत्यु) के पश्चात् तिर्यञ्च या मनुष्यायु का अनुभव करता है।

१३७. चउवीसदंडएसु आगामिभवआउय संवेदणाइं पडुच्च परूवणं–

प. दं. १. नेरइए णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता जे भविए पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! कयरं आउयं पडिसंवेदेइ ?

उ. गोयमा ! नेरइयाउयं पडिसंवेदेइ पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणियाउए से पुरओ कडे चिट्ठइ।

दं. २१. एवं मणुस्सेसु वि।

णवरं–मणुस्साउए से पुरओ कडे चिट्ठइ।

प. दं. २. असुरकुमारे णं भंते! अणंतरं उव्वट्टित्ता जे भविए पुढविकाइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! कयरं आउयं पडिसंवेदेइ ?

उ. गोयमा ! असुरकुमाराउयं पडिसंवेदेइ पुढविकाइयाउए से पुरओ कडे चिट्ठइ।

एवं जो जहिं भविओ उववज्जित्तए तस्स तं पुरओ कडे चिट्ठइ, जत्थ ठिओ तं पडिसंवेदेइ।

दं. ३-२४. एवं जाव वेमाणिए।

णवरं–पुढविकाइओ पुढविकाइएसु उववज्जंतओ पुढविकाइयाउयं पडिसंवेदेइ, अन्ने य से पुढविकाइयाउए पुरओ कडे चिट्ठइ।

एवं जाव मणुस्सो मणुस्सेसु उववज्जंतओ मणुस्साउयं पडिसंवेदेइ।

अन्ने य से मणुस्साउए पुरओ कडे चिट्ठइ। *–विया. स. १८, उ. ५, सु. ८-११*

१३७. चौबीस दण्डकों में आगामी भवायु का संवेदनादि की अपेक्षा का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! जो नैरयिक मरकर अन्तर-रहित सीधे पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होने वाला है तो भंते ! वह किस आयु का प्रतिसंवेदन करता है ?

उ. गौतम ! वह नैरयिक नरकायु का प्रतिसंवेदन करता है और पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक के आयु को उदयाभिमुख करके रहता है।

दं. २१. इसी प्रकार मनुष्यों में उत्पन्न होने योग्य नैरयिक के विषय में समझना चाहिए।

विशेष–मनुष्य के आयु को उदयाभिमुख करके रहता है।

प्र. दं. २. भंते ! जो असुरकुमार मरकर अन्तर रहित पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने वाला है, तो भंते ! वह किस आयु का प्रतिसंवेदन करता है ?

उ. गौतम ! वह असुरकुमार के आयु का प्रतिसंवेदन करता है और पृथ्वीकायिक के आयु को उदयाभिमुख करके रहता है।

इस प्रकार जो जीव जहाँ उत्पन्न होने योग्य है, वह उसके आयु को उदयाभिमुख करके रहता है और जहाँ है वहाँ के आयु का वेदन करता है।

दं. ३-२४. इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष–जो पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिकों में ही उत्पन्न होने वाला है, वह पृथ्वीकायिक के आयु का वेदन करता है और अन्य पृथ्वीकायिक के आयु को उदयाभिमुख करके रहता है।

इसी प्रकार यावत् जो मनुष्य मनुष्यों में उत्पन्न होन वाला है वह मनुष्यायु का प्रतिसंवेदन करता है और अन्य मनुष्यायु को उदयाभिमुख करके रहता है।

१३८. एग समए इह-परभव आउयवेयण णिसेहो–

प. अण्णउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति जाव परूवेंति- से जहानामए जालगंठिया सिया आणुपुव्विगढिया अणंतरगढिया परंपरगढिया अन्नमन्नगढिया अन्नमन्नगरुयत्ताए अन्नमन्नभारियत्ताए अन्नमन्नगरुयसंभारियत्ताएअन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठइ,

एवामेव वहूणं जीवाणं वहूसु आजाइसहस्सेसु बहूइं आउयसहस्साइं आणुपुव्विगढियाइं जाव अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठंति।

एगे वि य णं जीवे एगेणं समएणं दो आउयाइं पडिसंवेदयइ, तं जहा–

१. इहभवियाउयं च, २. परभवियाउयं च।

१३८. एक समय में इह-परभव आयु वेदन का निषेध–

प्र. भंते ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि–जैसे कोई (एक) जालग्रन्थि (गांठे लगी हुई, जाल) हो, जिसमें क्रम से गांठे दी हुई हो, एक के बाद दूसरी अन्तररहित गांठे लगाई हुई हो, परम्परा से गूंथी हुई हो, परस्पर गूंथी हुई हो, ऐसी वह जालग्रन्थि परस्पर विस्तार रूप से, परस्पर भाररूप से तथा परस्पर विस्तार और भाररूप से, परस्पर संघटित रूप से है,

वैसे ही वहुत-से जीवों के साथ क्रमशः हजारों लाखों जन्मों से सम्वन्धित वहुत से आयुष्य परस्पर क्रमशः गूंथे हुए हैं यावत् परस्पर संलग्न हैं।

ऐसी स्थिति में एक जीव एक समय में दो आयु का वेदन (अनुभव) करता है, यथा–

१. इस भव की आयु का, २. परभव की आयु का।

जं समयं इहभवियाउयं पडिसंवेदेइ, तं समयं परभवियाउयं पडिसंवेदेइ,

जं समयं परभवियाउयं पडिसंवेदेइ, तं समयं इहभवियाउयं पडिसंवेदेइ।

एवं खलु एगे वि य णं जीवे एगेणं समएणं दो आउयाइं पडिसंवेदेइ, तं जहा–

१. इहभवियाउयं च, २. परभवियाउयं च।

से कहमेयं भंते ! एवं वुच्चइ ?

उ. गोयमा ! जं णं ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खंति जाव परूवेंति एगे वि य णं जीवे एगेणं समएणं दो आउयाइं पडिसंवेदेइ

इहभवियाउयं च परभवियाउयं च,

जे ते एवमाहंसु मिच्छा ते एवमाहंसु

अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव एवं परूवेमि–

से जहानामए जालगंठिया सिया जाव अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठइ,

एवामेव एगमेगस्स जीवस्स बहूहिं आजाइसहस्सेहिं बहूइं आउयसहस्साइं आणुपुव्विगढियाइं जाव अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठंति।

एगे वि य णं जीवे एगेणं समएणं एगं आउयं पडिसंवेदेइ, तं जहा–

१. इहभवियाउयं वा, २. परभवियाउयं वा।

जं समयं इहभवियाउयं पडिसंवेदेइ, नो तं समयं परभवियाउयं पडिसंवेदेइ,

जं समयं परभवियाउयं पडिसंवेदेइ, नो तं समयं इहभवियाउयं पडिसंवेदेइ।

इहभवियाउयस्स पडिसंवेयणाए, नो परभवियाउयं पडिसंवेदेइ,

परभवियाउयस्स पडिसंवेयणाए, नो इहभवियाउयं पडिसंवेदेइ।

एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगे आउयं पडिसंवेदेइ, तं जहा–

इहभवियाउयं वा परभवियाउयं वा।

–*विया. स. ५, उ. ३, सु. १*

जिस समय वह जीव इस भव की आयु का वेदन करता है, उसी समय परभव की आयु का भी वेदन करता है।

जिस समय परभव की आयु का वेदन करता है, उसी समय इस भव की आयु का भी वेदन करता है।

इस प्रकार एक जीव एक समय में दो आयु का वेदन करता है, यथा–

१. इस भव की आयु का, २. परभव की आयु का,

भंते ! क्या वे यह ठीक कहते हैं ?

उ. गौतम ! उन अन्यतीर्थिकों ने जो यह कहा यावत् प्ररूपण किया कि एक जीव एक समय में दो आयु का वेदन करता है–

इस भव की आयु का और परभव की आयु का,

उनका यह सब कथन मिथ्या है।

हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ यावत् प्ररूपण करता हूँ कि–

'जैसे कोई एक जाल ग्रन्थि हो और वह यावत् परस्पर संघठित हो,

इसी प्रकार एक एक जीव क्रम पूर्वक हजारों जन्मों से सम्बन्धित, हजारों आयुष्यों के साथ परस्पर गूंथे हुए रहते हैं यावत् परस्पर संलग्न रहते हैं।

इस प्रकार एक जीव एक समय में एक आयु का वेदन करता है, यथा–

१. इस भव की आयु का या २. परभव की आयु का।

जिस समय इस भव की आयु का वेदन करता है, उस समय परभव की आयु का वेदन नहीं करता है,

जिस समय परभव की आयु का वेदन करता है, उस समय इस भव की आयु का वेदन नहीं करता है।

इस भव की आयु का वेदन करते हुए परभव की आयु का वेदन नहीं करता है,

परभव की आयु का वेदन करते हुए इस भव की आयु का वेदन नहीं करता है।

इस प्रकार एक जीव एक समय में एक आयु का वेदन करता है, यथा–

इस भव की आयु का या परभव की आयु का।

१३९. जीव-चउवीसदंडएसु आउय वेयण परूवणं–

प. दं. १. जीवे णं भंते ! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! किं इहगए नेरइयाउयं पडिसंवेदेइ ?

उववज्जमाणे नेरइयाउयं पडिसंवेदेइ ?

उववन्ने नेरइयाउयं पडिसंवेदेइ ?

उ. गोयमा ! णो इहगए नेरइयाउयं पडिसंवेदेइ,

उववज्जमाणे नेरइयाउयं पडिसंवेदेइ,

उववन्ने वि नेरइयाउयं पडिसंवेदेइ।

१३९. जीव-चौबीस दण्डकों में आयु के वेदन का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! जो जीव नारकों में उत्पन्न होने वाला है क्या वह इस भव में रहते हुए नरकायु का वेदन करता है,

उत्पन्न होता हुआ नरकायु का वेदन करता है,

उत्पन्न होने पर नरकायु का वेदन करता है ?

उ. गौतम ! वह इस भव में रहते हुए नरकायु का वेदन नहीं करता,

किन्तु उत्पन्न होते हुए वह नरकायु का वेदन करता है,

उत्पन्न होने पर भी नरकायु का वेदन करता है।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिएसु।

–विया. स. ७, उ. ६, सु. ५-६

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त आयु वेदन का कथन करना चाहिए।

१४०. मणूसेसु अहाउयं मज्झिमाउयं पालणसामित्तं–

तओ अहाउयं पालयंति, तं जहा–

१. अरहंता, २. चक्कवट्टी ३. बलदेव-वासुदेवा।

तओ मज्झिमाउयं पालयंति, तं जहा–

१. अरहंता, २. चक्कवट्टी, ३. बलदेव-वासुदेवा

–ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १५२

१४०. मनुष्यों में यथायु मध्यम आयु के पालन का स्वामित्व–

तीन अपनी पूर्ण आयु का पालन करते हैं, यथा–

१. अर्हन्त, २. चक्रवर्ती, ३. बलदेव-वासुदेव।

तीन मध्यम (अपनी समय की) आयु का पालन करते हैं, यथा–

१. अर्हन्त, २. चक्रवर्ती, ३. बलदेव-वासुदेव।

१४१. अप्प बहुआउंपडुच्च अंधगवण्हि जीवाणं संखा परूवणं–

प. जावइया णं भंते ! वरा अंधगवण्हिणो जीवा तावइया परा अंधगवण्हिणो जीवा ?

उ. हंता, गोयमा ! जावइया वरा अंधगवण्हिणो जीवा तावइया परा अंधगवण्हिणो जीवा।

–विया. स. ८, उ. ४, सु. १८

१४१. अल्प बहु आयु की अपेक्षा अंधकवह्नि जीवों की सम संख्या का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जितने अल्प आयुष्य वाले अन्धकवह्नि (तेउकाय) जीव है, क्या उतने ही उत्कृष्ट आयु वाले अन्धकवह्नि जीव हैं ?

उ. हां, गौतम ! जितने अल्पायुष्य अंधकवह्नि जीव हैं, उतने ही उत्कृष्ट आयु वाले अंधकवह्नि जीव हैं।

१४२. सयायुस्स दस दसा परूवणं–

वाससयाउयस्स णं पुरिसस्स दस दसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

बाला किड्डा य मंदाय, बला पन्ना य हायणी,
पवंचा पब्भारा य, मुंमुही सायणी तहा।

–ठाणं. अ. १०, सु. ७७२

१४२. शतायु की दस दशाओं का प्ररूपण–

शतायु पुरुष की दस दशाएं कही गई हैं, यथा–

१. बाला, २. क्रीड़ा, ३. मन्दा,
४. बला, ५. प्रज्ञा, ६. हायिनी,
७. प्रपञ्चा, ८. प्राग्भारा, ९. मृन्मुखी,
१०. शायिनी।

१४३. आउय खय कारणाणि–

सत्तविहे आउभेए पण्णत्ते, तं जहा–

१. अज्झवसाण,
२. णिमित्ते,
३. आहारे,
४. वेयणा,
५. पराघाए,
६. फासे,
७. आणापाण,

सत्तविहं भिज्जए आउयं॥

–ठाणं. अ. ७, सु. ५६१

१४३. आयु क्षय के कारण–

आयु क्षय (अकालमृत्यु) के सात कारण कहे गये हैं, यथा–

१. अध्यवसान–रागादि की तीव्रता,
२. निमित्त–शस्त्रप्रयोग आदि,
३. आहार–आहार की न्यूनाधिकता,
४. वेदना–नयन आदि की तीव्रतम वेदना,
५. पराघात–गड्ढे आदि में गिरना,
६. स्पर्श–सांप आदि का स्पर्श,
७. आन-अपान–उच्छ्वास-निःश्वास का निरोध।

इन सात प्रकारों से आयु का क्षय होता है।

१४४. मूल कम्मपयडीणं जहण्णुक्कोस बंधट्ठिईआइ परूवणं–

प. १. नाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं बंधठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,
तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मट्ठिई, कम्मणिसेगो।

२. एवं दरिसणावरणिज्जं पि।

१४४. मूल कर्म प्रकृतियों की जघन्योत्कृष्ट बंध स्थिति आदि का प्ररूपण–

प्र. १. भन्ते ! ज्ञानावरणीय कर्म की बन्धस्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है,
उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडाकोडी सागरोपम की है।
उसका अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है।
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म-स्थिति में ही कर्म पुद्गलों का निषेक (प्रदेश बंध) होता है अर्थात् अबाधाकाल जितनी स्थिति में प्रदेश बंध नहीं होता है।

२. इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म की बंध स्थिति जाननी चाहिए।

प. ३. वेयणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं वंधठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दो समया,
उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ
तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा,
अवाहूणिया कम्मट्ठिई, कम्मणिसेगो,

प. ४. मोहणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं वंधठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं सत्तरि सागरोवमकोडाकोडीओ,
सत्त य वाससहस्साणि अबाहा,
अवाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो[1]।

प. ५. आउयस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं बंधठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाणि पुव्वकोडितिभाग-मब्भहियाणि
(पुव्वकोडितिभागो अबाहा)
अवाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो।

प. ६-७. नाम-गोयाणं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं वंधठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठ मुहुत्ता,
उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,
दोण्णि य वाससहस्साणि अबाहा,
अवाहूणिया कम्मट्ठिई, कम्मणिसेगो।

८. अंतरायं जहा नाणावरणिज्जं[2]।

–विया. स. ६, उ. ३, सु. ११ (१-७)

प्र. ३. भंते! वेदनीय कर्म की वंध स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति दो समय की है।
उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है।
उसका अवाधाकाल तीन हजार वर्ष का है,
अवाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निपेक (प्रदेश वंध) होता है।

प्र. ४. भन्ते ! मोहनीय कर्म की वंध स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है,
उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है।
इसका अवाधाकाल सात हजार वर्ष का है।
अवाधाकाल जितनी न्यून कर्म-स्थिति में ही कर्मनिपेक अर्थात् प्रदेश वंध होता है।

प्र. ५. भन्ते ! आयु कर्म की वंध स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तमुर्हूर्त की है,
उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटि के त्रिभाग से अधिक तेतीस सागरोपम की है।
(उसका अवाधाकाल पूर्व कोटि त्रिभाग का है।)
अवाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निपेक (प्रदेश वंध) होता है।

प्र. ६-७. भन्ते ! नाम-गोत्र कर्म की वंध स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त की है,
उत्कृष्ट स्थिति वीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है।
इसका अवाधाकाल दो हजार वर्ष का है।
अवाधाकाल जितनी न्यून कर्मस्थिति में ही कर्मनिपेक होता है।

८. अन्तराय-कर्म की वंध स्थिति आदि ज्ञानावरणीय कर्म के समान समझ लेना चाहिए।

१४५. उत्तर कम्मपयडीणं जहण्णुक्कोस ठिई अवाहा परूवण य–

१. नाणावरण-पयडीओ–

प. नाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,
तिण्णि य वाससहस्साइं अवाहा,
अवाहूणिया कम्मटिइं, कम्मणिसेगो।

१४५. उत्तर कर्म प्रकृतियों की जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति और अवाधा का प्ररूपण–

१. ज्ञानावरण की प्रकृतियाँ–

प्र. भंते ! ज्ञानावरणीय कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है,
उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है।
उसका अवाधाकाल तीन हजार वर्ष का है,
अवाधाकाल जितनी न्यून कर्मस्थिति में ही कर्मनिपेक होता है।

१. सम. सम. ७०, सु. ४

२. उत्त. अ. ३३, [illegible]

२. दंसणावरण-पयडीओ–

प. (क) निद्दापंचयस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स तिण्णि य सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं

उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,

तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा,

अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प. (ख) दंसणचउक्कस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,

उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,

तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा,

अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

३. वेयणीय-पयडीओ–

प. सायावेयणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! इरियावहियबंधगं पडुच्च अजहण्णमणुक्कोसेणं दो समया।

संपराइयबंधगं पडुच्च जहण्णेणं बारस मुहुत्ता,

उक्कोसेणं पण्णरस सागरोवमकोडाकोडीओ,

पण्णरस य वाससयाइं अबाहा,

अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प. (ख) असायावेयणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,

उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,

तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा,

अबाहूणिया कम्मठिई कम्मणिसेगो।

४. मोहणीय पयडीओ–

प. १. (क) सम्मत्तवेयणिज्जस्स (मोहणिज्जस्स) णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,

उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं।

प. (ख) मिच्छत्तवेयणिज्जस्स मोहणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं।

उक्कोसेणं सत्तरिं सागरोवमकोडाकोडीओ,

२. दर्शनावरण की प्रकृतियाँ–

प्र. (क) भंते ! निद्रापंचक (दर्शनावरणीय) कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग न्यून सागरोपम के सात भागों में से तीन (३/७) भाग की है,

उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडाकोडी सागरोपम की है।

इसका अवाधाकाल तीन हजार वर्ष का है,

अवाधाकाल जितनी न्यून कर्मस्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प्र. (ख) भंते ! दर्शनचतुष्क (दर्शनावरणीय) कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है,

उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडाकोडी सागरोपम की है।

इसका अवाधाकाल तीन हजार वर्ष का है।

अवाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

३. वेदनीय की प्रकृतियां–

प्र. भंते ! सातावेदनीयकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! ईर्यापथिक बन्धक की अपेक्षा अजघन्य-अनुत्कृष्ट दो समय की है,

साम्परायिक बन्धक की अपेक्षा जघन्य बारह मुहूर्त की है,

उत्कृष्ट पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम की है।

इसका अवाधाकाल पन्द्रह सौ वर्ष का है।

अवाधाकाल जितनी न्यून कर्मस्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प्र. (ख) भंते ! असातावेदनीय कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से तीन भाग (३/७) की है।

उत्कृष्ट तीस कोडाकोडी सागरोपम की है।

इसका अवाधाकाल तीन हजार वर्ष का है।

अवाधाकाल जितनी न्यून कर्मस्थिति में कर्म निषेक होता है।

४. मोहनीय की प्रकृतियां–

प्र. १. (क) भंते ! सम्यक्त्व वेदनीय (मोहवेदनीय) की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की है,

उत्कृष्ट कुछ अधिक छियासठ सागरोपम की है।

प्र. (ख) भंते ! मिथ्यात्व वेदनीय (मोहवेदनीय) कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम एक सागरोपम की है।

उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोडाकोडी सागरोपम की है।

सत्त य वाससहस्साइं अवाहा,
अवाहूणिया कम्मट्ठिई, कम्मणिसेगो।

प. (ग) सम्मामिच्छत्तवेयणिज्जस्स (मोहणिज्जस्स) णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. २-१२. कसायवारसगस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स चत्तारि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं चत्तालीसं सागरोवमकोडाकोडीओ।
चत्तालीसं वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प. १३. कोहसंजलणस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता,

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दो मासा,
उक्कोसेणं चत्तालीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,
चत्तालीसं वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प. १४. माणसंजलणस्सणं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं मासं,
उक्कोसेणं जहा कोहस्स।

प. १५. मायासंजलणस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अद्धमासं,
उक्कोसेणं जहा कोहस्स।

प. १६. लोभसंजलणस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं जहा कोहस्स।

प. १. इत्थिवेयस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स दिवड्ढं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं।
उक्कोसेणं पण्णरस सागरोवमकोडाकोडीओ,
पण्णरस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मटिई, कम्मणिसेगो।[1]

इसका अबाधाकाल सात हजार वर्ष का है,
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्मनिषेक होता है।

प्र. (ग) भंते ! सम्यग्-मिथ्यात्व वेदनीय (मोहनीय) कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है,
उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त की है,

प्र. २-१२. भंते ! कषाय-द्वादशक की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग न्यून सागरोपम के सात भागों में से चार भाग (४/७) की है,
उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अबाधाकाल चार हजार वर्ष का है,
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प्र. १३. भंते ! संज्वलन क्रोध की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति दो मास की है,
उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अबाधाकाल चार हजार वर्ष का है,
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्मनिषेक होता है,

प्र. १४. भंते ! संज्वलन मान की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति एक मास की है,
उत्कृष्ट स्थिति क्रोध के समान है।

प्र. १५. भंते ! संज्वलन माया की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति अर्धमास की है,
उत्कृष्ट स्थिति क्रोध के समान है।

प्र. १६. भंते ! संज्वलन लोभ की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है,
उत्कृष्ट स्थिति क्रोध के समान है,

प्र. १. भंते ! स्त्रीवेद की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से डेढ़ भाग (१½/७) की है,
उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अबाधाकाल पन्द्रह सौ वर्ष का है।
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

---

१. [illegible]

प. २. पुरिसवेयस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठ संवच्छराइं,[1]
उक्कोसेणं दस सागरोवमकोडाकोडीओ,
दस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।[2]

प. ३. नपुंसगवेयस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स दुण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं।
उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,[3]
बीसतिं य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।[4]

प. ४-५. हास-रती णं भंते ! कम्माणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स एक्कं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं दस सागरोवमकोडाकोडीओ,
दस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मट्ठिई, कम्मणिसेगो।

प. ६-९. अरइ-भय-सोग-दुगुंछा णं भंते ! कम्माणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,
बीसतिं य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

५. आउय-पयडीओ–

प. (क) णेरइयाउयस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्त-मब्भहियाइं,
उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं पुव्वकोडीतिभाग-मब्भहियाइं।

प. (ख) तिरिक्खजोणियाउयस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडी-तिभागमब्भहियाइं।

प्र. २. भंते ! पुरुषवेद की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति आठ वर्ष की है,
उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अबाधाकाल एक हजार वर्ष का है।
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प्र. ३. भंते ! नपुंसकवेद की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से दो भाग (२/७) की है।
उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अबाधाकाल दो हजार वर्ष का है,
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प्र. ४-५. भंते ! हास्य-रति कर्मों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से एक भाग (१/७) की है,
उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की है,
इनका अबाधाकाल एक हजार वर्ष का है,
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्मस्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प्र. ६-९. भंते ! अरति, भय, शोक और जुगुप्सा कर्मों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से दो भाग (२/७) की है,
उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है।
इनका अबाधाकाल दो हजार वर्ष का है।
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

५. आयु की प्रकृतियां–

प्र. (क) भंते ! नरकायु की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त-अधिक दस हजार वर्ष की है।
उत्कृष्ट स्थिति करोड़ पूर्व के तृतीय भाग अधिक तेतीस सागरोपम की है।

प्र. (ख) भंते ! तिर्यञ्चयोनिकायु की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है,
उत्कृष्ट स्थिति पूर्व कोटि के त्रिभाग अधिक तीन पल्योपम की है।

---

१. ठाणं अ. ८, सु. ६५८ २. जीवा. पडि. २, सु. ५७ ३. सम. सम. २०, सु. ५ ४. जीवा. पडि. २, सु. ६१

(ग) एवं मणूसाउयस्स वि।

(घ) देवाउयस्स जहा णेरइयाउयस्स ठिई त्ति।

(ग) इसी प्रकार मनुष्यायु की स्थिति है।

(घ) देवायु की स्थिति नरकायु की स्थिति के समान जाननी चाहिए।

६. णाम-पयडीओ–

प. १. (क) णिरयगइणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स दो सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,
वीसं य वाससयाइं अवाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

(ख) तिरियगइणामस्स जहा णपुंसगवेयस्स।

प. (ग) मणुयगइणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागारोवमस्स दिवड्ढं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं पण्णरस सागरोवमकोडाकोडीओ,
पण्णरस य वाससयाइं अवाहा,
अवाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प. देवगइणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स एक्कं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं जहा पुरिसवेयस्स।

प. २ (क) एगिंदियजाइणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं उणगं,
उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,
वीस य वाससयाइं अवाहा,
अवाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प. (ख) वेइंदियजाइणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स णवपणतीसतिभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं अट्ठारससागरोवमकोडाकोडीओ,
अट्ठारस य वाससयाइं अवाहा,
अवाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

(ग) तेइंदियजाइणामए वि एवं चेव।

६. नाम की प्रकृतियां–

प्र. १. (क) भंते ! नरकगति-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र सागरोपम के सात भागों में से दो भाग (२/७) की है,
उत्कृष्ट स्थिति वीस कोडाकोडी सागरोपम की है,
इसका अवाधाकाल दो हजार वर्ष का है,
अवाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है,

(ख) तिर्यञ्चगति-नामकर्म की स्थिति आदि नपुंसकवेद की स्थिति के समान है।

प्र. (ग) भंते ! मनुष्यगति-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से डेढ़ भाग (१॥/७) की है,
उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अवाधाकाल पन्द्रह सौ वर्ष का है।
अवाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प्र. (घ) भंते ! देवगति-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्रसागरोपम के सात भागों में से एक भाग (१/७) की है,
उत्कृष्ट स्थिति आदि पुरुषवेद की स्थिति के समान है।

प्र. २. (क) भंते ! एकेन्द्रिय-जाति-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से दो भाग (२/७) की है,
उत्कृष्ट स्थिति वीस कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अवाधाकाल दो हजार वर्ष का है।
अवाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में कर्म निषेक होता है।

प्र. (ख) भंते ! द्वीन्द्रिय-जाति-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के पैंतीस भागों में से नव भाग ([illegible]/३५) की है,
उत्कृष्ट स्थिति अठारह कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अबाधाकाल अठारह सौ वर्ष का है।
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्मस्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

(ग) त्रीन्द्रिय जाति नाम कर्म की स्थिति आदि भी इसी प्रकार है।

(घ) चउरिंदिय जाइणामए वि एवं चेव।

(घ) चतुरिन्द्रिय जाति नाम कर्म की स्थिति आदि भी इसी प्रकार है।

प. (ङ) पंचेंदियजाइणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,
वीस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प्र. (ङ) भंते ! पंचेन्द्रिय-जाति-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से दो भाग (२/७) की है,
उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अबाधाकाल दो हजार वर्ष का है।
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

३.(क) ओरालियसरीरणामए वि एवं चेव।

३.(क) औदारिक-शरीर-नामकर्म की स्थिति आदि भी इसी प्रकार है।

प. (ख) वेउव्वियसरीरणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स दो सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,
वीस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प्र. (ख) भंते ! वैक्रिय-शरीर-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र सागरोपम के सात भागों में से दो भाग (२/७) की है,
उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अबाधाकाल दो हजार वर्ष का है।
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प. (ग) आहारगसरीरणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ,
उक्कोसेण वि अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ।

प्र. (ग) भंते ! आहारक-शरीर-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागरोपम की है,
उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तःकोडाकोडी सागरोपम की है।

प. (घ.-ङ) तेयग-कम्मसरीरणामस्स णं भंते ! कम्माणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,
वीस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प्र. (घ-ङ) भंते ! तैजस्-कार्मण-शरीर-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से दो भाग (२/७) की है,
उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है।
इनका अबाधाकाल दो हजार वर्ष का है।
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

४. ओरालिय-वेउव्विय-आहारगसरीरंगोवंगणामए तिण्णि वि एवं चेव।

४. औदारिकशरीरांगोपांग, वैक्रियशरीरांगोपांग और आहारकशरीरांगोपांग इन तीनों नामकर्मों की स्थिति आदि भी इसी प्रकार है।

५. सरीरबंधणामए पंचण्ह वि एवं चेव।

५. पांचों शरीरबन्ध-नामकर्मों की स्थिति आदि भी इसी प्रकार है।

६. सरीरसंघायणामए पंचण्ह वि जहा सरीरणामए कम्मस्स ठिई त्ति।

६. पांचों शरीरसंघात-नामकर्मो की स्थिति आदि शरीर-नामकर्मों की स्थिति के समान है।

७. (क) वइरोसभणारायसंघयण णामए जहा रइ मोहणिज्जकम्मए।

७. (क) वज्रऋषभनाराचसंहनन-नामकर्म की स्थिति आदि रति मोहनीय कर्म की स्थिति के समान है।

प. (ख) उसभणारायसंघयणणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स छ पणतीसतिभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,

प्र. (ख) भंते ! ऋषभनाराचसंहनन-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के पेंतीस भागों में से छ भाग (६/३५) की है,

उक्कोसेणं वारस सागरोवमकोडाकोडीओ,
वारस य वाससयाइं अवाहा,
अवाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प. (ग) णारायसंघयणणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स सत्त पणतीसतिभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं चोद्दस सागरोवमकोडाकोडीओ,
चोद्दस य वाससयाइं अवाहा,
अवाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प. (घ) अद्धणारायसंघयणणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स अट्ठ पणतीसतिभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं सोलस सागरोवमकोडाकोडीओ,
सोलस य वाससयाइं अवाहा,
अवाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प. (ङ) खीलियासंघयणणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स णव पणतीसतिभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं
उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ,
अट्ठारस य वाससयाइं अवाहा,
अवाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प. (च) सेवट्टसंघयणणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,
वीस य वाससयाइं अवाहा,
अवाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

८. एवं जहा संघयणणामए छ भणिया एवं संठाणा वि छ भाणियव्वा।

प. ९. (क) सुक्किलवण्णणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स एगं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं दस सागरोवमकोडाकोडीओ,
दस य वाससयाइं अवाहा,

उत्कृष्ट स्थिति वारह कोडाकोडी सागरोपम की है,
इसका अवाधाकाल वारह सौ वर्ष का है।
अवाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प्र. (ग) भंते ! नाराचसंहनन-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के पेंतीस भागों में से सात भाग (७/३५) की है,
उत्कृष्ट स्थिति चौदह कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अवाधाकाल चौदह सौ वर्ष का है।
अवाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प्र. (घ) भंते ! अर्धनाराचसंहनन-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के पेंतीस भागों में से आठ भाग (८/३५) की है।
उत्कृष्ट स्थिति सोलह कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अवाधाकाल सोलह सौ वर्ष का है।
अवाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प्र. (ङ) भंते ! कीलिकासंहनन-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के पेंतीस भागों में से नव भाग (९/३५) की है,
उत्कृष्ट स्थिति अठारह कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अवाधाकाल अठारह सौ वर्ष का है।
अवाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प्र. (च) भंते ! सेवार्त्तसंहनन-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से दो भाग (२/७) की है,
उत्कृष्ट स्थिति वीस कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अवाधाकाल दो हजार वर्ष का है।
अवाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

८. जिस प्रकार ये छह संहनननामकर्मों की स्थिति आदि कही है, उसी प्रकार छह संस्थान नामकर्मों की भी स्थिति आदि कहनी चाहिए।

प्र. ९. (क) भंते ! शुक्लवर्णनामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से एक भाग (१/७) की है,
उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अवाधाकाल एक हजार वर्ष का है।

गलंति ते सोणियपूयमंसं,
पज्जोइया खारपइद्धितंगा॥

जइ ते सुया लोहितपूयपाई,
वालागणीतेयगुणा परेणं।
कुंभी महंताहियपोरसीया,
समूसिया लोहियपूयपुण्णा॥
पक्खिप्प तासुं पचयंति बाले,
अट्टस्सरं ते कलुणं रसंते।
तण्हाइया ते तउ तंबतत्तं,
पज्जिज्जमाणऽट्टतरं रसंति॥
अप्पेण अप्पं इह वंचइत्ता,
भवाहमे पुव्वसए सहस्से।
चिट्ठंति तत्था बहुकूरकम्मा,
जहा कडे कम्मे तहा सि भारे ॥
समज्जिणित्ता कलुसं अणज्जा,
इट्ठेहि कंतेहि य विप्पहूणा।
ते दुब्भिगंधे कसिणे य फासे,
कम्मोवगा कुणिमे आवसंति॥

–सूय. सू. १, अ. ५, उ. १, गा. ६-२७

१२. असण्णीणं अकामनिकरण वेयणा परूवणं–

प. जे इमे भंते ! असण्णिणो पाणा, तं जहा–
पुढविकाइया **जाव** वणस्सइकाइया छट्ठा य एगइया तसा,
एए णं अंधा मूढा तमं पविट्ठा तमपडल-मोहजालपलिच्छन्ना अकामनिकरणं वेयणं वेदेंतीति वत्तव्वयं सिया?

उ. हंता, गोयमा ! जे इमे असण्णिणो पाणा **जाव** अकामनिकरणं वेयणं वेदेंतीति वत्तव्वं सिया।

–विया. स. ७, उ. ७, सु. २४

१३. पभूणाअकामपकामनिकरणवेयण वेयणं–

प. अत्थि णं भंते ! पभू वि अकामनिकरणं वेयणं वेदेंति?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. कहं णं भंते ! पभू वि अकामनिकरणं वेयणं वेदेंति?

उ. गोयमा ! १. जे णं नो पभू विणा पईवेणं अंधकारंसि रूवाइं पासित्तए,
२. जे णं नो पभू पुरओ रूवाइं अणिज्झाइत्ताणं पासित्तए,
३. जे णं नो पभू मग्गओ रूवाइं अणव यक्खित्ताणं पासित्तए,
४. जे णं नो पभू पासओ रूवाइं अणवलोएत्ताणं पासित्तए,
५. जे णं नो पभू उड्ढं रूवाइं अणालोएत्ताणं पासित्तए,

रातदिन रोते चिल्लाते रहते हैं और उन्हें आग में जलाकर अंगों पर खार पदार्थ लगा दिये जाते हैं, जिससे उन अंगों से मवाद मांस और रक्त टपकते रहते हैं।

रक्त और मवाद को पकाने वाली, नवप्रज्वलित अग्नि के तेज से युक्त होने से अत्यन्त दुःख दुःसह ताप युक्त पुरुष के प्रमाण से भी अधिक प्रमाणवाली ऊँची बड़ी भारी एवं रक्त तथा मवाद से भरी हुई कुम्भी का कदाचित् तुमने नाम सुना होगा?

आर्त स्वर और करुण रुदन करते हुए अज्ञानी नारकों को नरकपाल उन (रक्त मवाद युक्त) कुम्भियों में डालकर पकाते हैं और प्यास से व्याकुल उनको गर्म सीसा और ताम्बा पिलाये जाने पर वे जोर जोर से चिल्लाते हैं।

इस मनुष्य भव में स्वयं ही स्वयं की वंचना करके तथा पूर्वकाल में सैकड़ों और हजारों अधम वधिक आदि नीच भवों को प्राप्त करके अनके क्रूरकर्मी जीव उस नरक में रहते हैं क्योंकि पूर्वजन्म में जिसने जैसा कर्म किया है, उसी के अनुसार उस को फल प्राप्त होता है।

अनार्य पुरुष पापों का उपार्जन करके इष्ट और कान्त विषयों से वंचित होकर कर्मों के वशीभूत होकर दुर्गन्धयुक्त अशुभ स्पर्श वाले तथा मांस आदि से व्याप्त और पूर्णरूप से कृष्ण वर्णवाले नरकों में आयु पूर्ण होने तक निवास करते हैं।

१२. असंज्ञी जीवों के अकामनिकरण वेदना का प्ररूपण–

प. भंते ! जो ये असंज्ञी (मनरहित) प्राणी हैं, यथा–
पृथ्वीकायिक **यावत्** वनस्पतिकायिक (स्थावर) तथा छठे कई त्रसकायिक जीव हैं,
जो अन्ध मूढ अन्धकार में प्रविष्ट तमःपटल और मोहजाल से आच्छादित हैं, वे अकाम निकरण (अज्ञान रूप में) वेदना वेदते हैं, क्या ऐसा कहा जा सकता है?

उ. हाँ, गौतम ! जो ये असंज्ञी आदि प्राणी हैं **यावत्** वे अकामनिकरण वेदना वेदते हैं, ऐसा कहा जाता है।

१३. समर्थ के द्वारा अकाम प्रकाम वेदना का वेदन–

प्र. भंते ! क्या समर्थ होते हुए भी जीव अकामनिकरण (अनिच्छापूर्वक) वेदना वेदते हैं?

उ. हाँ, गौतम ! वेदना वेदते हैं।

प्र. भंते ! समर्थ होते हुए भी जीव अकामनिकरण वेदना को कैसे वेदते हैं?

उ. गौतम ! १. जो जीव समर्थ होते हुए भी अन्धकार में दीपक के विना पदार्थों को देखने में समर्थ नहीं होते,
२. जो जीव अवलोकन किये विना सम्मुख रहे हुए पदार्थों को देख नहीं सकते हैं,
३. जो जीव अवलोकन किये विना पीछे के भाग को नहीं देख सकते हैं,
४. जो जीव अवलोकन किये विना पार्श्वभाग के दोनों ओर के पदार्थों को नहीं देख सकते हैं,
५. जो जीव अवलोकन किये विना ऊपर के पदार्थों को नहीं देख सकते हैं,

६. जे णं नो पभू अहेरूवाइं अणालोएत्ताणं पासित्तए,

एस णं गोयमा ! पभू वि अकामनिकरणं वेयणं वेदेंति।

अत्थि णं भंते ! पभू वि पकामनिकरणं वेयणं वेदेंति ?

गोयमा ! अत्थि।

कहं णं भंते ! पभू वि पकामनिकरणं वेयणं वेदेंति ?

गोयमा ! १. जे णं नो पभू समुद्दस्स पारं गमित्तए,

२. जे णं नो पभू समुद्दस्स पारगयाइं रूवाइं पासित्तए,

३. जे णं नो पभू देवलोगं गमित्तए,

४. जे णं नो पभू देवलोगगयाइं रूवाइं पासित्तए,

एस णं गोयमा ! पभू वि पकामनिकरणं वेयणं वेदेंति।

–विया. स. ७, उ. ७, सु. २५-२८

६. जो जीव अवलोकन किये विना नीचे के पदार्थों को नहीं देख सकते हैं,

ऐसे जीव समर्थ होते हुए भी अकामनिकरण वेदना वेदते हैं।

प्र. भंते ! क्या समर्थ होते हुए भी जीव प्रकामनिकरण (तीव्र इच्छापूर्वक) वेदना को वेदते हैं ?

उ. हां, गौतम ! वेदते हैं।

प्र. भंते ! समर्थ होते हुए भी जीव प्रकामनिकरण वेदना को किस प्रकार वेदते हैं ?

उ. गौतम ! १. जो समुद्र के पार जाने में समर्थ नहीं है,

२. जो समुद्र के पार रहे हुए पदार्थों को देखने में समर्थ नहीं है,

३. जो देवलोक जाने में समर्थ नहीं है,

४. जो देवलोक में रहे हुए पदार्थों को देखने में समर्थ नहीं है,

गौतम ! ऐसे जीव समर्थ होते हुए भी प्रकामनिकरण वेदना को वेदते हैं।

विहभावपरिणय जीवस्स एगभावाईरूवपरिणमनं–

एस णं भंते ! जीवे तीतमणंतं सासयं समयं दुक्खी, समयं अदुक्खी, समयं दुक्खी वा, अदुक्खी वा पुव्विं च णं करणेणं अणेगभावं अणेगभूयं परिणामं परिणमइ,

अह से वेयणिज्जे निज्जिण्णे भवइ तओ पच्छा एगभावे एगभूए सिया ?

हंता, गोयमा ! एस णं जीवे **जाव** अह से वेयणिज्जे निज्जिण्णे भवइ, तओ पच्छा एगभावे एगभूए सिया।

एवं पडुप्पन्नं सासयं समयं।

एवं अणागयमणंतं सासयं समयं।

–विया. स. १४, उ. ४, सु. ५-७

१४. विविधभाव परिणत जीव का एकभावादिरूप परिणमन–

प्र. भंते ! क्या यह जीव अनन्त शाश्वत अतीत काल में समय-समय पर दुःखी-अदुःखी (सुखी) या दुःखी-अदुःखी अथवा पूर्व के करण (प्रयोगकरण और विस्रसाकरण) से अनेकभाव और अनेकरूप परिणाम से परिणमित हुआ ?

इसके बाद वेदन और निर्जरा होती है और उसके बाद कदाचित् एकभाव वाला और एक रूप वाला होता है ?

उ. हां, गौतम ! यह जीव यावत् वेदन और निर्जरा करके उसके बाद कदाचित् एक भाव और एक रूप वाला होता है।

इसी प्रकार शाश्वत वर्तमान काल के विषय में भी समझना चाहिए।

इसी प्रकार अनन्त शाश्वत भविष्यकाल के विषय में भी समझना चाहिए।

ाव-चउवीसदंडएसु सयंकड दुक्खवेयण परूवणं–

जीवे णं भंते ! सयंकडं दुक्खं वेएइ ?

गोयमा ! अत्थेगइयं वेएइ, अत्थेगइयं नो वेएइ ?

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

'अत्थेगइयं वेएइ, अत्थेगइयं नो वेएइ ?'

गोयमा ! उदिण्णं वेएइ, अणुदिण्णं नो वेएइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"अत्थेगइयं वेएइ, अत्थेगइयं नो वेएइ।"

दं. १-२४. एवं नेरइए जाव वेमाणिए।

. जीवा णं भंते ! सयंकडं दुक्खं वेदेंति ?

. गोयमा ! अत्थेगइयं वेदेंति, अत्थेगइयं नो वेदेंति।

१५. जीव-चौबीस दंडकों में स्वयंकृत दुःख वेदन का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या जीव स्वयंकृत दुःख को वेदता है ?

उ. गौतम ! किसी दुःख को वेदता है और किसी को नहीं वेदता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

'किसी को वेदता है और किसी को नहीं वेदता है ?'

उ. गौतम ! उदीर्ण (उदय में आए दुःख) को वेदता है, अनुदीर्ण को नहीं वेदता,

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"किसी को वेदता है और किसी को नहीं वेदता है।"

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या (बहुत-से) जीव स्वयंकृत दुःख को वेदते हैं ?

उ. गौतम ! किसी (दुःख) को वेदते हैं, और किसी (दुःख) को नहीं वेदते हैं।

३. अड्ढेज्जं,
४. काम,
५. भोग,
६. संतोसो।
७. अत्थि,
८. सुहभोग,
९. णिक्खम्मेमेवत्ती,
१०. अणाबाहे। —*ठाणं. अ. १०, सु. ७३७*

३. आढ्यता-धन की प्रचुरता,
४. काम—शब्द और रूप,
५. भोग—गंध, रस और स्पर्श,
६. सन्तोष—अल्पइच्छा,
७. अस्ति—कार्य की पूर्ति हो जाना,
८. शुभभोग—सुखानुभव,
९. निष्क्रमण-प्रवज्या,
१०. अनाबाध—निराबाध मोक्ष सुख।

[१९.] वेमायाए सुक्खदुक्खवेयण परूवणं—

प. अन्नउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति **जाव** परूवेंति—

"एवं खलु सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता एगंतदुक्खं वेयणं वेदेंति"

से कहमेयं भंते ! एवं?

उ. गोयमा ! जं णं ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खंति **जाव** परूवेंति, सव्वे पाणा सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता, एगंत दुक्खं वेयणं वेदेंति मिच्छं ते एवमाहंसु।

अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि **जाव** परूवेमि—

अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता एगंतदुक्खं वेयणं वेदेंति, आहच्च सायं।

अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता एगंतसायं वेयणं वेदेंति, आहच्च असायं।

अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता वेमायाए वेयणं वेदेंति, आहच्च सायमसायं।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—

'जाव अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता वेमायाए वेयणं वेदेंति, आहच्च सायमसायं।

उ. गोयमा ! नेरइया एगंतदुक्खं वेयणं वेदेंति, आहच्च सायं।

भवणवइ-वाणमंतर-जोइस वेमाणिया एगंतसायं वेयणं वेदेंति, आहच्च असायं।

पुढविक्काइया **जाव** मणुस्सा वेमायाए वेयणं वेदेंति, आहच्च सायमसायं।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—

"जाव अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता वेमायाए वेयणं वेदेंति आहच्च सायमसायं।" —*विया. स. ६, उ. १०, सु. ११*

१९. विमात्रा से सुख-दुःख वेदना का प्ररूपण—

प्र. भंते ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं **यावत्** प्ररूपणा करते हैं कि—

"सभी प्राण, भूत, जीव और सत्व एकान्तदुःख रूप वेदना को वेदते हैं" तो—

भंते ! ऐसा कैसे हो सकता है?

उ. गौतम ! अन्यतीर्थिक जो यह कहते हैं **यावत्** प्ररूपणा करते हैं कि—सभी प्राण, भूत, जीव और सत्व एकान्त दुःख रूप वेदना को वेदते हैं वे मिथ्या कहते हैं।

हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ **यावत्** प्ररूपणा करता हूँ कि—

'कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्व एकान्तदुःखरूप वेदना को वेदते हैं और कदाचित् सुख रूप वेदना को भी वेदते हैं,

कितने ही प्राण, भूत जीव और सत्व एकान्त सुख रूप वेदना को वेदते हैं और कदाचित् दुःख रूप वेदना को भी वेदते हैं,

कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्व विमात्रा से वेदना को वेदते हैं, कदाचित् सुख-दुःख रूप वेदना भी वेदते हैं।

प. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि

'यावत् कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्व विमात्रा से वेदना को वेदते हैं और कदाचित् सुख-दुःख रूप वेदना भी वेदते हैं?

उ. गौतम ! नैरयिक जीव, एकान्त दुःखरूप वेदना को वेदते हैं और कदाचित् सुख रूप वेदना भी वेदते हैं।

भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक एकान्त सुख रूप वेदना को वेदते हैं और कदाचित् दुःख की वेदना को भी वेदते हैं।

पृथ्वीकायिक जीव **यावत्** मनुष्य विमात्रा से वेदना को वेदते हैं कदाचित् सुख और कदाचित् दुःख रूप वेदना भी वेदते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि—

"यावत् कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्व विमात्रा से वेदना को वेदते हैं और कदाचित् सुख-दुःख रूप वेदना भी वेदते हैं।"

[२०.] सव्वलोएसु सव्वजीवाणं सुह दुक्खं अणुमेत्त वि उवदंसित्तए असामत्थ परूवणं—

प. अन्नउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति **जाव** परूवेंति- 'जावइया रायगिहे नयरे जीवा एवइयाणं जीवाणं नो

२०. सर्व जीवों के सुख दुःख को अणुमात्र भी दिखाने में असामर्थ्य का प्ररूपण—

प्र. भंते ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं **यावत्** प्ररूपणा करते हैं कि—'राजगृह नगर में जितने जीव हैं,

उ. गोयमा ! पुढविकाइयाणं जरा, नो सोगे।

प्र. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'पुढविकाइयाणं जरा, नो सोगे ?'

उ. गोयमा ! पुढविकाइयाणं सारीरं वेदणं वेदेंति, नो माणसं वेदणं वेदेंति।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'पुढविकाइयाणं जरा, नो सोगे'
दं. १३-१९. एवं जाव चउरिंदियाणं।

दं. २०-२४. सेसाणं जहा जीवाणं जाव वेमाणियाणं।
–विया. स. १६, उ. २, सु. २-७

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक जीवों के जरा होती है, किन्तु शोक नहीं होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'पृथ्वीकायिक जीवों के जरा होती है, किन्तु शोक नहीं होता है ?'

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव शारीरिक वेदना वेदते हैं, वे मानसिक वेदना नहीं वेदते हैं,
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"उनके जरा होती है, शोक नहीं होता है।"
दं. १३-१९. इसी प्रकार (अप्कायिक से) चतुरिन्द्रिय जीवों पर्यन्त जानना चाहिए।
दं. २०-२४. शेष जीवों का कथन सामान्य जीवों के समान वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

संकिलेसासंकिलेसाणं दसविहत्त परूवणं–
दसविहे संकिलेसे पण्णत्ते, तं जहा–
१. उवहिसंकिलेसे,
२. उवस्सयसंकिलेसे, ३. कसायसंकिलेसे,
४. भत्तपाणसंकिलेसे, ५. मणसंकिलेसे,
६. वइसंकिलेसे, ७. कायसंकिलेसे,
८. णाणसंकिलेसे, ९. दंसणसंकिलेसे,
१०. चरित्तसंकिलेसे।
दसविहे असंकिलेसे पण्णत्ते, तं जहा–
१. उवहिअसंकिलेसे, २. उवस्सयअसंकिलेसे,
३. कसायअसंकिलेसे, ४. भत्तपाणअसंकिलेसे,
५. मणअसंकिलेसे, ६. वइअसंकिलेसे,
७. कायअसंकिलेसे ८. णाणअसंकिलेसे,
९. दंसणअसंकिलेसे, १०. चरित्तअसंकिलेसे।
–ठाणं अ. १०, सु. ७३९

२२. संक्लेश-असंक्लेश के दस प्रकारों का प्ररूपण–
संक्लेश के दस प्रकार कहे गए हैं, यथा–
१. उपधि-संक्लेश–उपधि विषयक असमाधि,
२. उपाश्रय-संक्लेश, ३. कषाय जन्य-संक्लेश,
४. भक्तपान-संक्लेश, ५. मानसिक संक्लेश,
६. वाचिक संक्लेश, ७. कायिक संक्लेश,
८. ज्ञान-संक्लेश, ९. दर्शन-संक्लेश,
१०. चारित्र-संक्लेश।
असंक्लेश के दस प्रकार हैं, यथा–
१. उपधि असंक्लेश, २. उपाश्रय-असंक्लेश,
३. कषाय-असंक्लेश, ४. भक्तपान-असंक्लेश,
५. मानसिक असंक्लेश, ६. वाचिक असंक्लेश,
७. कायिक असंक्लेश, ८. ज्ञान-असंक्लेश,
९. दर्शन-असंक्लेश, १०. चारित्र-असंक्लेश।

अप्प-महावेयण निज्जरासामित्तं–
प. जीवा णं भंते ! किं महावेयणा महानिज्जरा,
महावेयणा अप्पनिज्जरा,
अप्पवेयणा महानिज्जरा,
अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा ?
उ. गोयमा ! अत्थेगइया जीवा महावेयणा-महानिज्जरा,
अत्थेगइया जीवा महावेयणा अप्पनिज्जरा,
अत्थेगइया जीवा अप्पवेयणा महानिज्जरा,
अत्थेगइया जीवा अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"अत्थेगइया जीवा महावेयणा महानिज्जरा जाव अत्थेगइया जीवा अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा।"
उ. गोयमा ! पडिमापडिवन्नए अणगारे महावेयणे महानिज्जरे।
छट्ठ-सत्तमासु पुढवीसु नेरइया महावेयणा अप्पनिज्जरा।

सेलेसिं पडिवन्नए अणगारे अप्पवेयणे महानिज्जरे।

२३. अल्प महावेदना और निर्जरा का स्वामित्व–
प्र. भंते ! जीव क्या महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं,
महावेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं,
अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले हैं,
अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं ?
उ. गौतम ! कितने ही जीव महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं,
कितने ही जीव महावेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं,
कितने ही जीव अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले हैं
कितने जीव अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"कितने ही जीव महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं यावत् कितने ही जीव अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं ?"
उ. गौतम ! प्रतिमा-प्रतिपन्नक अनगार महावेदना और महानिर्जरा वाला है।
छठी-सातवीं नरक-पृथ्वियों के नैरयिक जीव महावेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं।
शैलेशी प्रतिपन्नक अनगार अल्पवेदना और महानिर्जरा वाला है,

चक्किया केइ सुहं वा दुहं वा **जाव** कोलट्ठियामायमवि निप्फावमायमवि, कलममायमवि, मासमायमवि, मुग्गमायमवि, जूयमायमवि, लिक्खामायमवि, अभिनिवट्टेत्ता उवदंसित्तए,

से कहमेयं ! एवं ?

उ. गोयमा ! जे णं ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खंति **जाव** एवं परूवेंति, मिच्छं ते एवमाहंसु।

अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि **जाव** परूवेमि–
"सव्वलोए वि य णं सव्वजीवाणं णो चक्किया केइ सुहं वा तं चेव **जाव** उवदंसित्तए।"

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"सव्वलोए वि य णं सव्वजीवाणं णो चक्किया केइ सुहं वा तं चेव **जाव** उवदंसित्तए ?"

उ. गोयमा ! अयं णं जंबुद्दीवे दीवे **जाव** विसेसाहिए परिक्खेवेणं पन्नत्ते। देवे णं महिड्ढीए **जाव** महाणुभागे एगं महे सविलेवणं गंधसमुग्गयं गहाय तं अवदालेइ, तं अवदालित्ता **जाव** इणामेव कट्टु केवलकप्पं जंबूद्दीवे दीवे तिहिं अच्छरानिवाएहिं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टित्ताणं हव्वमागच्छेज्जा, से नूणं गोयमा ! से केवलकप्पे जंबूद्दीवे दीवे तेहिं घाणपोग्गलेहिं फुडे ?

हंता, फुडे चक्किया णं गोयमा ! केइ तेसिं घाणपोग्गलाणं कोलट्ठियमायमवि **जाव** लिक्खामायमवि अभिनिवट्टेत्ता उवदंसित्तए ?

णो इणट्ठे समट्ठे।

से तेणट्ठे णं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'नो चक्किया केइ सुहं वा **जाव** उवदंसेत्तए।'

–विया. स. ६, उ. १०, सु. १

२१. जीव चउवीसदंडएसु जरा-सोग वेयण परूवणं–

प. जीवा णं भंते ! किं जरा, सोगे ?

उ. गोयमा ! जीवा णं जरा वि, सोगे वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'जीवा णं जरा वि, सोगे वि ?'

उ. गोयमा ! जे णं जीवा सारीरं वेयणं वेदेंति, तेसि णं जीवाणं जरा,
जे णं जीवा माणसं वेयणं वेदेंति, तेसि णं जीवाणं सोगे।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जीवा णं जरा वि; सोगे वि।"
दं. १. एवं नेरइयाण वि।

दं. २-११. एवं जाव थणियकुमाराणं।

प. दं. १२. पुढविकाइयाणं भंते ! किं जरा, सोगे ?

उन सबके दुःख या सुख को बेर की गुठली बाल नामक धान्य कलाय (मटर) मूंग उड़द जूं और लीख जितना भी बाहर निकाल कर नहीं दिखा सकता।

भंते ! यह बात यों कैसे हो सकती है ?

उ. गौतम ! जो अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं, वे मिथ्या कहते हैं।

हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं कि– "केवल राजगृह नगर में ही नहीं सम्पूर्ण लोक में रहे हुए सर्व जीवों के सुख या दुःख को कोई भी पुरुष उपर्युक्त रूप में यावत् किसी भी प्रमाण में बाहर निकाल कर नहीं दिखा सकता।"

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"सम्पूर्ण लोक में रहे हुए सर्व जीवों के सुख या दुःख को कोई भी पुरुष दिखाने में यावत् कोई समर्थ नहीं है ?"

उ. गौतम ! यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप यावत् विशेषाधिक परिधि वाला है। वहां पर महर्द्धिक यावत् महानुभाग देव एक बड़े विलेपन वाले गन्धद्रव्य के डिब्बे को लेकर उघाड़े और उघाड़कर तीन चुटकी बजाए, उतने समय में उपर्युक्त जम्बूद्वीप की इक्कीस बार परिक्रमा करके वापस शीघ्र आए तो हे गौतम ! (मैं तुम से पूछता हूं) उस देव की इस प्रकार की शीघ्र गति से गन्ध पुद्गलों के स्पर्श से यह सम्पूर्ण जम्बूद्वीप स्पृष्ट हुआ या नहीं ? (गौतम) हां भंते ! वह स्पृष्ट हो गया।
(भगवान्) हे गौतम ! कोई पुरुष उन गन्धपुद्गलों को बेर की गुठली जितना भी यावत् लीख जितना भी दिखलाने में समर्थ है ?

(गौतम) भंते ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ?

इस कारण से हे गौतम ! यह कहा जाता है कि–
'जीव के सुख दुःख को भी बाहर निकाल कर बतलाने में यावत् कोई भी व्यक्ति समर्थ नहीं है।'

२१. जीव-चौबीस दंडकों में जरा-शोक वेदन का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या जीवों के जरा और शोक होता है ?

उ. गौतम ! जीवों के जरा भी होती है और शोक भी होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'ज़ीवों के जरा भी होती है और शोक भी होता है ?'

उ. गौतम ! जो जीव शारीरिक वेदना वेदते (अनुभव करते) हैं, उनको जरा होती है।
जो जीव मानसिक वेदना वेदते हैं, उनको शोक होता है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जीवों के जरा भी होती है और शोक भी होता है।"
दं. १. इसी प्रकार नैरयिकों के (जरा और शोक) भी समझ लेना चाहिए।
दं. २-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. १२. भंते ! क्या पृथ्वीकायिक जीवों के भी जरा और शोक होता है ?

उ. गोयमा ! पुढविकाइयाणं जरा, नो सोगे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'पुढविकाइयाणं जरा, नो सोगे ?'

उ. गोयमा ! पुढविकाइयाणं सारीरं वेदणं वेदेंति, नो माणसं वेदणं वेदेंति।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'पुढविकाइयाणं जरा, नो सोगे'
दं. १३-१९. एवं जाव चउरिंदियाणं।

दं. २०-२४. सेसाणं जहा जीवाणं जाव वेमाणियाणं।
–विया. स. १६, उ. २, सु. २-७

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक जीवों के जरा होती है, किन्तु शोक नहीं होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'पृथ्वीकायिक जीवों के जरा होती है, किन्तु शोक नहीं होता है ?'

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव शारीरिक वेदना वेदते हैं, वे मानसिक वेदना नहीं वेदते हैं,
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"उनके जरा होती है, शोक नहीं होता है।"
दं. १३-१९. इसी प्रकार (अप्कायिक से) चतुरिन्द्रिय जीवों पर्यन्त जानना चाहिए।
दं. २०-२४. शेष जीवों का कथन सामान्य जीवों के समान वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

२२. संकिलेसासंकिलेसाणं दसविहत्त परूवणं–

दसविहे संकिलेसे पण्णत्ते, तं जहा–
१. उवहिसंकिलेसे,
२. उवस्सयसंकिलेसे, ३. कसायसंकिलेसे,
४. भत्तपाणसंकिलेसे, ५. मणसंकिलेसे,
६. वइसंकिलेसे, ७. कायसंकिलेसे,
८. णाणसंकिलेसे, ९. दंसणसंकिलेसे,
१०. चरित्तसंकिलेसे।

दसविहे असंकिलेसे पण्णत्ते, तं जहा–
१. उवहिअसंकिलेसे, २. उवस्सयअसंकिलेसे,
३. कसायअसंकिलेसे, ४. भत्तपाणअसंकिलेसे,
५. मणअसंकिलेसे, ६. वइअसंकिलेसे,
७. कायअसंकिलेसे ८. णाणअसंकिलेसे,
९. दंसणअसंकिलेसे, १०. चरित्तअसंकिलेसे।
--ठाणं अ. १०, सु. ७३९

२२. संक्लेश-असंक्लेश के दस प्रकारों का प्ररूपण–

संक्लेश के दस प्रकार कहे गए हैं, यथा–
१. उपधि-संक्लेश–उपधि विषयक असमाधि,
२. उपाश्रय-संक्लेश, ३. कषाय जन्य-संक्लेश,
४. भक्तपान-संक्लेश, ५. मानसिक संक्लेश,
६. वाचिक संक्लेश, ७. कायिक संक्लेश,
८. ज्ञान-संक्लेश, ९. दर्शन-संक्लेश,
१०. चारित्र-संक्लेश।

असंक्लेश के दस प्रकार हैं, यथा–
१. उपधि असंक्लेश, २. उपाश्रय-असंक्लेश,
३. कषाय-असंक्लेश, ४. भक्तपान-असंक्लेश,
५. मानसिक असंक्लेश, ६. वाचिक असंक्लेश,
७. कायिक असंक्लेश, ८. ज्ञान-असंक्लेश,
९. दर्शन-असंक्लेश, १०. चारित्र-असंक्लेश।

२३. अप्प-महावेयण निज्जरासामित्तं–

प. जीवा णं भंते ! किं महावेयणा महानिज्जरा,
महावेयणा अप्पनिज्जरा,
अप्पवेयणा महानिज्जरा,
अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइया जीवा मह्वावेयणा-महानिज्जरा,
अत्थेगइया जीवा महावेयणा अप्पनिज्जरा,
अत्थेगइया जीवा अप्पवेयणा महानिज्जरा,
अत्थेगइया जीवा अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"अत्थेगइया जीवा महावेयणा महानिज्जरा जाव अत्थेगइया जीवा अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा।"

उ. गोयमा ! पडिमापडिवन्नए अणगारे महावेयणे महानिज्जरे।
छट्ठ-सत्तमासु पुढवीसु नेरइया महावेयणा अप्पनिज्जरा।

सेलेसिं पडिवन्नए अणगारे अप्पवेयणे महानिज्जरे।

२३. अल्प महावेदना और निर्जरा का स्वामित्व–

प्र. भंते ! जीव क्या महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं,
महावेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं,
अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले हैं,
अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं ?

उ. गौतम ! कितने ही जीव महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं,
कितने ही जीव महावेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं,
कितने ही जीव अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले हैं
कितने जीव अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"कितने ही जीव महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं यावत् कितने ही जीव अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं ?"

उ. गौतम ! प्रतिमा-प्रतिपन्नक अनगार महावेदना और महानिर्जरा वाला है।
छटी-सातवीं नरक-पृथ्वियों के नैरयिक जीव महावेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं।
शैलेशी प्रतिपन्नक अनगार अल्पवेदना और महानिर्जरा वाला है,

अणुत्तरोववाइया देवा अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"अत्थेगइया जीवा महावेयणा महानिज्जरा जाव अत्थेगइया जीवा अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा।"
–*विया. स. ६, उ. १, सु. १३*

अनुत्तरोपपातिक देव अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"कितने ही जीव महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं यावत् कितने ही जीव अल्प वेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं।"

२४. वेयणा निज्जरासु भिन्नत्तं चउवीसदंडएसु य परूपणं–

प. से नूणं भंते ! जा वेयणा सा निज्जरा, जा निज्जरा सा वेयणा?
उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।
प. से केणट्ठेणं भंते एवं वुच्चइ–
'जा वेयणा न सा निज्जरा, जा निज्जरा न सा वेयणा?
उ. गोयमा ! कम्मं वेयणा, णो कम्मं निज्जरा।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जा वेयणा न सा निज्जरा, जा निज्जरा न सा वेयणा।"
प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! जा वेयणा सा निज्जरा, जा निज्जरा सा वेयणा?
उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"नेरइयाणं जा वेयणा न सा निज्जरा, जा निज्जरा न सा वेयणा?"
उ. गोयमा ! नेरइयाणं कम्मं वेयणा, णो कम्मं निज्जरा।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"नेरइयाणं जा वेयणा न सा निज्जरा, जा निज्जरा न सा वेयणा।"
दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियाणं।
–*विया. स. ७, उ. ३, सु. १०-१२*

२४. वेदना और निर्जरा में भिन्नता और चौबीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या वास्तव में, जो वेदना है, वह निर्जरा कही जा सकती है और जो निर्जरा है, वह वेदना कही जा सकती है?
उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है–
"जो वेदना है वह निर्जरा नहीं कही जा सकती और जो निर्जरा है, वह वेदना नहीं कही जा सकती?
उ. गौतम ! वेदना कर्म है और निर्जरा नोकर्म है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जो वेदना है वह निर्जरा नहीं कही जा सकती और जो निर्जरा है वह वेदना नहीं कही जा सकती।"
प्र. दं. १. भंते ! क्या नैरयिकों की जो वेदना है उसे निर्जरा कहा जा सकता है और जो निर्जरा है उसे वेदना कहा जा सकता है?
उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"नैरयिकों की जो वेदना है, उसे निर्जरा नहीं कहा जा सकता और जो निर्जरा है, उसे वेदना नहीं कहा जा सकता?"
उ. गौतम ! नैरयिक कर्म की वेदना करते हैं और नोकर्म की वेदना निर्जरा करते हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"नैरयिकों की जो वेदना है उसे निर्जरा नहीं कहा जा सकता और जो निर्जरा है उसे वेदना नहीं कहा जा सकता।"
दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

२५. वेयणा निज्जरासमयसु पुहत्तं चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. से नूणं ! जे वेयणासमए से निज्जरासमए, जे निज्जरासमए से वेयणासमए?
उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जे वेयणासमए न से निज्जरासमए, जे निज्जरासमए न से वेयणासमए?"
उ. गोयमा ! जं समयं वेदेंति, नो तं समयं निज्जरेंति
जं समयं निज्जरेंति, नो तं समयं वेदेंति,
अन्नम्मि समए वेदेंति, अन्नम्मि समए निज्जरेंति,
अन्ने से वेयणासमए, अन्ने से निज्जरासमए।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

२५. वेदना और निर्जरा के समयों में पृथक्त्व एवं चौबीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भंते ! वास्तव में जो वेदना का समय है, क्या वही निर्जरा का समय है और जो निर्जरा का समय है, वही वेदना का समय है?
उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।
प्र. भंते ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि–
"जो वेदना का समय है, वह निर्जरा का समय नहीं है और जो निर्जरा का समय है, वह वेदना का समय नहीं है?"
उ. गौतम! जिस समय में वेदते हैं, उस समय में निर्जरा नहीं करते,
जिस समय में निर्जरा करते हैं, उस समय में वेदन नहीं करते,
अन्य समय में वेदन करते हैं और अन्य समय में ही निर्जरा करते हैं।
वेदना का समय दूसरा है और निर्जरा का समय दूसरा है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जे वेयणासमए, न से निज्जरासमए,
जे निज्जरासमए, न से वेयणासमए।"

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! जे वेयणासमए से निज्जरासमए, जे निज्जरासमए से वेयणासमए?

उ. गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"नेरइयाणं जे वेयणासमए न से निज्जरासमए, जे निज्जरासमए न से वेयणासमए?"

उ. गोयमा ! नेरइया णं जं समयं वेदेंति, णो तं समयं निज्जरेंति,
जं समय निज्जरेंति, नो तं समयं वेदेंति,
अन्नम्मि समए वेदेंति, अन्नम्मि समए निज्जरेंति,

अन्ने से वेयणासमए, अन्ने से निज्जरासमए।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जे वेयणासमए, न से निज्जरासमए, जे निज्जरासमए न से वेयणा समए।"
दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियाणं।

–विया. स. ७, उ. ३, सु. २०-२२

"जो वेदना का समय है वह निर्जरा का समय नहीं है और जो निर्जरा का समय है, वह वेदना का समय नहीं है।"

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिक जीवों का जो वेदना का समय है, क्या वही निर्जरा का समय है और जो निर्जरा का समय है, क्या वही वेदना का समय है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि–
"जो वेदना का समय है, वह निर्जरा का समय नहीं है और जो निर्जरा का समय है, वह वेदना का समय नहीं है?"

उ. गौतम ! नैरयिक जीव जिस समय में वेदन करते हैं, उस समय में निर्जरा नहीं करते,
जिस समय में निर्जरा करते हैं, उस समय में वेदन नहीं करते, अन्य समय में वे वेदन करते हैं और अन्य समय में निर्जरा करते हैं।
उनके वेदना का समय दूसरा है और निर्जरा का समय दूसरा है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जो वेदना का समय है वह निर्जरा का समय नहीं है और जो निर्जरा का समय है, वह वेदना का समय नहीं है।"
दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिये।

२६. तिकालवेक्खया वेयणा निज्जरासु अंतरं चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. से नूणं भंते ! जं वेदेंसु तं निज्जरिंसु, जं निज्जरिंसु तं वेदेंसु?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जं वेदेंसु नो तं निज्जरेंसु, जं निज्जरेंसु नो तं वेदेंसु?"

उ. गोयमा ! कम्मं वेदेंसु, नो कम्मं निज्जरिंसु।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–
"जं वेदेंसु नो तं निज्जरेंसु, जं निज्जरेंसु नो तं वेदेंसु।

दं. १-२४. एवं नेरइया जाव वेमाणिया।

प. से नूणं भंते ! जं वेदेंति तं निज्जरेंति, जं निज्जरेंति तं वेदेंति?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जं वेदेंति नो तं निज्जरेंति, जं निज्जरेंति नो तं वेदेंति?"

उ. गोयमा ! कम्मं वेदेंति, नो कम्मं निज्जरेंति।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

२६. त्रिकाल की अपेक्षा वेदना और निर्जरा में अंतर एवं चौबीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भंते ! जिन कर्मों का वेदन कर लिया, क्या उनको निर्जीर्ण कर लिया और जिन कर्मों को निर्जीर्ण कर लिया, क्या उनका वेदन कर लिया?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि–
"जिन कर्मों का वेदन कर लिया, उनको निर्जीर्ण नहीं किया और जिन कर्मों को निर्जीर्ण कर लिया, उनका वेदन नहीं किया?"

उ. गौतम ! वेदन कर्म का होता है और निर्जीर्ण नोकर्म का होता है।
इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जिन कर्मों का वेदन कर लिया, उनको निर्जीर्ण नहीं किया और जिन कर्मों को निर्जीर्ण कर लिया, उनका वेदन नहीं किया।"

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या वास्तव में जिस कर्म को वेदते हैं, उसकी निर्जरा करते हैं और जिसकी निर्जरा करते हैं, उसको वेदते हैं?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! किस कारण ऐसा कहा जाता है कि–
"जिसको वेदते हैं, उसकी निर्जरा नहीं करते और जिसकी निर्जरा करते हैं, उसको वेदते नहीं हैं?"

उ. गौतम ! कर्म को वेदते हैं और नोकर्म का निर्जीर्ण करते हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जं वेदेंति, नो तं निज्जरेंति, जं निज्जरेंति नो तं वेदेंति।"

दं. १-२४. एवं नेरइया जाव वेमाणिया।

प. से नूणं भंते ! जं वेदिस्संति तं निज्जरिस्संति, जं निज्जरिस्संति तं वेदिस्संति?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जं वेदिस्संति नो तं निज्जरिस्संति, जं निज्जरिस्संति नो तं वेदिस्संति?"

उ. गोयमा ! कम्मं वेदिस्संति, नोकम्मं निज्जरिस्संति।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जं वेदिस्संति णो तं निज्जरिस्संति, जं निज्जरिस्संति णो तं वेदिस्संति।"
दं. १-२४. एवं नेरइया जाव वेमाणिया।
–विया. स. ७, उ. ३, सु. १३-१९

"जिसको वेदते हैं उसकी निर्जरा नहीं करते और जिसकी निर्जरा करते हैं, उसका वेदन नहीं करते।"

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या वास्तव में, जिस कर्म का वेदन करेंगे, उसकी निर्जरा करेंगे और जिस कर्म की निर्जरा करेंगे, उसका वेदन करेंगे?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि–
"जिस कर्म का वेदन करेंगे उसकी निर्जरा नहीं करेंगे और जिस कर्म की निजरा करेंगे उसका वेदन नहीं करेंगे?"

उ. गौतम ! कर्म का वेदन करेंगे और नो कर्म की निर्जरा करेंगे।
इस कारण से गौतम! ऐसा कहा जाता है कि–
"जिसका वेदन करेंगे, उसकी निर्जरा नहीं करेंगे और जिसकी निर्जरा करेंगे, उसका वेदन नहीं करेंगे।"
इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

२७. विविह दिट्ठंतेहिं महावेयण-महानिज्जरजुत्तजीवाणं परूवणं–

प. से नूणं भंते ! जे महावेयणे से महानिज्जरे, जे महानिज्जरे से महावेयणे?

महावेयणस्स य अप्पवेयणस्स य से सेए जे पसत्थनिज्जराए?

उ. हंता, गोयमा ! जे महावेयणे जाव पसत्थनिज्जराए।

प. छट्ठी-सत्तमासु णं भंते ! पुढवीसु नेरइया महावेयणा?

उ. हंता गोयमा ! महावेयणा।

प. ते णं भंते ! समणेहिंतो निग्गंथेहिंतो महानिज्जरतरा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जे महावेयणे जाव पसत्थनिज्जराए?

उ. गोयमा ! १. से जहानामए दुवे वत्थे सिय एगे वत्थे कद्दमरागरत्ते, एगे वत्थे खंजणरागरत्ते।

एएसि णं गोयमा ! दोण्हे वत्थाणं कयरे वत्थे दुधोयतराए चेव, दुवामतराए चेव दुपरिकम्मतराए।

कयरे वा वत्थे सुधोयतराए चेव, सुवामतराए चेव, सुपरिकम्मतराए चेव।

जे वा से वत्थे कद्दमरागरत्ते, जे वा से वत्थे खंजणरागरत्ते?

२७. विविध दृष्टांतों द्वारा महावेदना और महानिर्जरा युक्त जीवों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या यह निश्चित है कि जो महावेदना वाला है, वह महानिर्जरा वाला है और जो महानिर्जरा वाला है, वह महावेदना वाला है?
तथा क्या महावेदना वाले और अल्पवेदना वाले इन दोनों में वही जीव श्रेष्ठ है जो प्रशस्तनिर्जरा वाला है?

उ. हां, गौतम ! जो महावेदना वाला है यावत् वही प्रशस्त निर्जरा वाला है।

प्र. भंते ! क्या छठी और सातवीं (नरक) पृथ्वी के नैरयिक महावेदना वाले हैं?

उ. हां, गौतम ! वे महावेदना वाले हैं।

प्र. भंते ! तो क्या वे (नैरयिक) श्रमण-निर्ग्रन्थों की अपेक्षा भी महानिर्जरा वाले हैं?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। (अर्थात् वे नैरयिक श्रमण-निर्ग्रन्थों की अपेक्षा महानिर्जरा वाले नहीं हैं।)

प्र. भंते ! किस कारण से यह कहा जाता है कि–
"जो महावेदना वाला है यावत् वही प्रशस्त निर्जरा वाला है?

उ. गौतम ! १. मान लो कि दो वस्त्र हैं, उनमें से एक वस्त्र कर्दम (कीचड़) के रंग से रंगा हुआ हो और दूसरा वस्त्र खंजन (गाड़ी के पहिये की कीट) के रंग से रंगा हुआ है।
तो हे गौतम ! इन दोनों वस्त्रों में से कौन-सा वस्त्र दुर्धोत्तर (मुश्किल से धुलने योग्य), दुर्वाम्यतर कठिनाई से धब्बे उतारे जा सकने योग्य और दुष्परिकर्मतर (कठिनाई से दर्शनीय बनाया जा सकने योग्य) है।
कौन-सा वस्त्र सुधोत्तर (सुगमता से धोने योग्य) सुवाम्यतर सरलता से दाग उतारे जा सकने योग्य (तथा सुपरिकर्मतर सुगमता से दर्शनीय बनाया जा सकने योग्य) है,
ऐसा वस्त्र कर्दमराग-से रक्त है या खंजनराग से रक्त है?

भगवं ! तत्थ णं जे से वत्थे कद्दमरागरत्ते से णं वत्थे दुधोयतराए चेव, दुवामतराए चेव, दुप्परिकम्मतराए चेव।

एवामेव गोयमा ! नेरइयाणं पावाइं कम्माइं गाढीकयाइं, चिक्कणीकयाइं, सिलिट्ठीकयाइं, खिलीभूयाइं भवंति, संपगाढं पि य णं ते वेयणं वेएमाणा, नो महानिज्जरा, नो महापज्जवसाणा भवंति।

२. से जहा वा केइ पुरिसे अहिगरणीं आउडेमाणे महया-महया खद्देणं महया-महया घोसेणं महया-महया परंपराघाए णं नो संचाएइ, तीसे अहिगरणीए अहाबायरे वि पोग्गले परिसाडित्तए।

एवामेव गोयमा ! नेरइयाणं पावाइं कम्माइं गाढीकयाइं जाव खिलीभूयाइं भवंति संपगाढं पि य णं ते वेयणं वेएमाणा नो महानिज्जरा, नो महापज्जवसाणा भवंति।

भगवं ! तत्थ जे से वत्थे खंजणरागरत्ते से णं वत्थे सुधोयतराए चेव, सुवामतराए चेव, सुपरिकम्मतराए चेव।

एवामेव गोयमा ! समणाणं निग्गंथाणं अहाबायराइं कम्माइं सिढिलीकयाइं, निट्ठयाइं कडाइं विप्परिणामियाइं खिप्पामेव विध्दत्थाइं भवंति जावइयं तावइयं पि णं ते वेयणं वेएमाणा महानिज्जरा महापज्जवसाणा भवंति।

३. से जहानामाए केइ पुरिसे सुक्कं तणहत्थयं जायतेयंसि पक्खिवेज्जा से नूणं गोयमा ! से सुक्के तणहत्थए जायतेयंसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव मसमसाविज्जइ ?

हंता, भगवं ! मसमसाविज्जइ।

एवामेव गोयमा ! समणाणं निग्गंथाणं अहाबायराइं कम्माइं सिढिलीकयाइं निट्ठियाइंकडाइं विप्परिणामियाइं खिप्पामेव विद्धत्थाइं भवंति, जावइयं तावइयं पि णं ते वेयणं वेएमाणा महानिज्जरा महापज्जवसाणा भवंति।

४. से जहानामए केइ पुरिसे तत्तंसि अयकवल्लंसि उदगबिंदु पक्खिवेज्जा, से नूणं गोयमा ! से उदगबिंदु तत्तंति अयकवल्लंसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव विद्धंसमागच्छइ ?

हंता, भगवं विध्दंसमागच्छइ।

एवामेव गोयमा ! समणाणं निग्गंथाणं अहाबायराइं कम्माइं सिढिलीकयाइं निट्ठियाइं कडाइं विप्परिणामियाइं खिप्पामेव विद्धत्थाइं भवंति, जावइयं तावइयं पि णं ते वेयणं वेएमाणा महानिज्जरा महापज्जवसाणा भवंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जे महावेयणे जाव पसत्थ निज्जराए।"

–*विया. स. ६, उ. १, सु. २-४*

भंते ! उन दोनों वस्त्रों में से जो कर्दमराग से रक्त है वह (वस्त्र) दुर्धोततर, दुर्वाम्यतर एवं दुष्परिकर्मतर है।

हे गौतम ! इसी प्रकार उन नैरयिकों के पाप-कर्म गाढीकृत (गाढ बंधे हुए), चिक्कणीकृत (चिकने किये हुए), श्लिष्ट (एकमेक) किये हुए एवं खिलीभूत (निकाचित किये हुए) हैं, इसलिए वे सम्प्रगाढ (महान्) वेदना को वेदते हुए भी महानिर्जरा वाले नहीं हैं और महापर्यवसान वाले भी नहीं हैं।

२. अथवा जैसे कोई पुरुष जोरदार आवाज के साथ महाघोष करता हुआ, लगातार जोर-जोर से चोट मारकर एरण को कूटता-पीटता हुआ भी उस एरण (अधिकरण) के स्थूल पुद्गलों को विनष्ट करने में समर्थ नहीं होता।

इसी प्रकार हे गौतम ! नैरयिकों के वे पापकर्म गाढीकृत यावत् खिलीभूत हैं इसलिए वे संप्रगाढ़ वेदना को वेदते हुए भी महानिर्जरा वाले नहीं हैं और महावर्यवसान वाले भी नहीं है।

जैसे उन दोनों वस्त्रों में से जो खंजन के रंग से रंगा हुआ है, वह वस्त्र सुधोततर, सुवाम्यतर और सुपरिकर्मतर है।"

इसी प्रकार हे गौतम ! श्रमण-निर्ग्रन्थों के यथा बादर (स्थूल) कर्म, शिथिल किये हुए, जीर्ण किये हुए विपरिणमन किये हुए होने से वे शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं और जैसी-तैसी वेदना को वेदते हुए वे श्रमण-निर्ग्रन्थ महानिर्जरा और महापर्यवसान वाले होते हैं।

३. हे गौतम ! जैसे कोई पुरुष सूखे घास के पूले को धधकती हुई अग्नि में डाले तो क्या वह सूखे घास का पूला धधकती आग में डालते ही शीघ्र जल उठता है ?

हां, भंते ! वह शीघ्र ही जल उठता है।

इसी प्रकार गौतम ! श्रमण-निर्ग्रन्थों के यथाबादर कर्म शिथिल किये हुए, जीर्ण किये हुए, विपरिणमन किये हुए होने से शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं और जैसी तैसी वेदना को वेदते हुए वे श्रमणनिर्ग्रन्थ महानिर्जरा एवं महापर्यवसान वाले होते हैं।

४. (अथवा) हे गौतम ! जैसे कोई पुरुष, अत्यन्त तपे हुए लोहे के तवे (या कड़ाह) पर पानी की बूंद डाले तो क्या वह बूंद गर्म तवे पर डालते ही शीघ्र विनष्ट हो जाती है ?

हां, भंते ! वह शीघ्र ही विनष्ट हो जाती है,

इसी प्रकार हे गौतम ! श्रमण निर्ग्रन्थों के यथाबादर कर्म शिथिल किये हुए, जीर्ण किये हुए, विपरिणमन किये हुए होने से शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं और जैसी तैसी वेदना को वेदते हुए वे श्रमण निर्ग्रन्थ महानिर्जरा एवं महापर्यवसान वाले होते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जो महावेदना वाला होता है यावत् वही प्रशस्तनिर्जरा वाला होता है।"

२८. चउवीसदंडएसु अप्प-महावेयणाणुवेयण परूवणं–

प. दं. १. जीवे णे भंते ! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! किं इहगए महावेयणे,

२८. चौवीसदंडकों में अल्पमहावेदना के वेदन का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! जो जीव नैरयिकों में उत्पन्न होने वाला है, भंते ! क्या वह इस भव में रहता हुआ महावेदना वाला हो जाता है,

उववज्जमाणे महावेयणे, उववन्ने महावेयणे?

उ. गोयमा ! इहगए सिय महावेयणे, सिय अप्पवेयणे,

उववज्जमाणे सिय महावेयणे, सियअप्पवेयणे,

अहे णं उववन्ने भवइ, तओ पच्छा एगंतदुक्खं वेयणं वेदेइ, आहच्च सायं,

प. दं. २. जीवे णं भंते ! जे भविए असुरकुमारेसु उववज्जित्तए, से णं भंते किं इहगए महावेयणे,

उववज्जमाणे महावेयणे,
उववन्ने महावेयणे?

उ. गोयमा ! इहगए सिय महावेयणे, सिय अप्पवेयणे,

उववज्जमाणे सिय महावेयणे, सिय अप्पवेयणे,

अहे णं उववन्ने भवइ तओ पच्छा एगंतसायं वेयणं वेदेइ, आहच्च असायं।

दं. ३-११. एवं जाव थणियकुमारेसु।

प. दं. १२. जीवे णं भंते ! जे भविए पुढविकाइएसु उववज्जित्तए
से णं भंते ! किं इहगए महावेयणे,

उववज्जमाणे महावेयणे
उववन्ने महावेयणे?

उ. गोयमा ! इहगए सिय महावेयणे, सिय अप्पवेयणे,

उववज्जमाणे सिय महावेयणे, सिय अप्पवेयणे,

अहेणं उववन्ने भवइ तओ पच्छा वेमायाए वेयणं वेदेइ।

दं. १३-२१. एवं जाव मणुस्सेसु।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु जहा असुरकुमारेसु। *–विया. स. ७, उ. ६, सु. ७-११*

२९. वेयणाऽज्झयणस्स निक्खेवो–

सायमसायं सव्वे, सुहं च दुक्खं अदुक्खमसुहं च।
माणसरहियं विगलिंदिया उ सेसा दुविहमेव॥

–पण्ण. प. ३५, सु. २०५४ गा. २

□

नरक में उत्पन्न होता हुआ महावेदना वाला होता है,
नरक में उत्पन्न होने के पश्चात् महावेदना वाला होता है?

उ. गौतम ! वह कदाचित् इस भव में रहता हुआ महावेदना वाला होता है और कदाचित् अल्पवेदना वाला होता है।

नरक में उत्पन्न होता हुआ भी कदाचित् महावेदना वाला और कदाचित् अल्पवेदना वाला होता है।

जब नरक में उत्पन्न हो जाता है, तब वह एकान्तदुःख रूप वेदना को वेदता है, कदाचित् सुख रूप वेदना भी वेदता है।

प्र. दं. २. भंते ! जो जीव असुरकुमारों में उत्पन्न होने वाला है तो भंते! क्या वह इस भव में रहता हुआ महावेदना वाला होता है?

असुरकुमारों में उत्पन्न होता हुआ महावेदना वाला होता है?

असुरकुमारों में उत्पन्न होने के पश्चात् महावेदना वाला होता है?

उ. गौतम ! वह कदाचित् इस भव में रहता हुआ महावेदना वाला होता है और कदाचित् अल्पवेदना वाला होता है।

असुरकुमारों में उत्पन्न होता हुआ भी कदाचित् महावेदना वाला और कदाचित् अल्पवेदना वाला होता है,

जब वह असुरकुमारों में उत्पन्न हो जाता है, तब एकान्तसुख रूप वेदना को वेदता है और कदाचित् दुःख रूप वेदना को भी वेदता है।

दं. ३-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त (महावेदनादि) का कथन करना चाहिए।

प्र. दं. १२. भंते ! जो जीव पृथ्वीकाय में उत्पन्न होने वाला है,

तो भंते ! क्या वह इस भव में रहता हुआ महावेदना वाला होता है,
पृथ्वीकाय में उत्पन्न होता हुआ महावेदना वाला होता है,
पृथ्वीकाय में उत्पन्न होने के पश्चात् महावेदना वाला होता है?

उ. गौतम ! वह कदाचित् इस भव में रहता हुआ महावेदना वाला होता है और कदाचित् अल्पवेदना वाला होता है,

पृथ्वीकाय में उत्पन्न होता हुआ भी कदाचित् महावेदना वाला और कदाचित् अल्पवेदना वाला होता है।

जब पृथ्वीकायों में उत्पन्न हो जाता है, तब विमात्रा से वेदना को वेदता है।

१३-२१. इसी प्रकार मनुष्य पर्यन्त महावेदनादि का कथन करना चाहिए।

२२-२४. वाणव्यन्तर-ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के महा-वेदनादि का कथन असुरकुमारों के समान करना चाहिए।

२९. वेदना अध्ययन का उपसंहार–

साता और असाता वेदना सभी जीव वेदते हैं,

इसी प्रकार सुख दुःख और अदुःख-असुख वेदना भी (सभी जीव वेदते हैं) किन्तु विकलेन्द्रिय जीव (अमनस्क होने से) मानसिक वेदना से रहित हैं। शेष सभी जीव दोनों प्रकार की वेदना वेदते हैं।

□

गति-अध्ययन

गति का सामान्य अर्थ होता है–गमन। एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर पहुँचना ही इस प्रकार 'गति' कहा जा सकता है। सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक आदि ग्रन्थों में गति का सामान्य लक्षण इसी प्रकार दिया है–'देशाद् देशान्तर प्राप्ति हेतुर्गतिः।' अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान को प्राप्त करने का जो हेतु या साधन है उसे गति कहते हैं। वस्तुतः गति तो क्रिया की बोधक होती है, किन्तु जिस निमित्त से यह क्रिया सम्पन्न होती है उस निमित्त के आधार पर उस गति का नामकरण हो जाता है। यह नाम उपचार से दिया जाता है, यथा नरक के निमित्त से जो गति होती है उस नरकगति कहा जाता है। नरकगति का सामान्य अर्थ है–नरक की ओर गमन करना, नरकायु का फलभोगने के लिए नरक (रत्नप्रभा आदि) पृथ्वी की ओर गमन करना। किन्तु उपचार से गति के अनन्तर जो स्थान प्राप्त किया जाता है उसे भी गति ही कह दिया जाता है, यथा नरक स्थान को भी नरकगति कह दिया जाता है। ग्रामीण बोलचाल की भाषा में गति (गत) शब्द हालत, अवस्था या दशा के अर्थ में प्रयुक्त होता है, किन्तु वह भी औपचारिक प्रयोग है। गति क्रिया का जो फल उसे भी यहाँ गति कहा गया है। इस प्रकार गति क्रिया के निमित्त एवं फल भी गति शब्द से अभिहित होते हैं।

गति-क्रिया जीव एवं पुद्‌गल द्रव्यों में पायी जाती है, शेष चार द्रव्यों में नहीं। वे ही दोनों एक स्थान को छोड़कर अन्यत्र गमन करते हैं। अन्य कोई द्रव्य एक स्थान को छोड़कर अन्यत्र गमन नहीं करना। धर्म, अधर्म एवं आकाश तो लोकव्यापी होने से यह क्रिया नहीं कर सकते और काल अस्तिकाय नहीं होने के कारण अथवा अप्रदेशी होने के कारण ऐसा नहीं कर सकता। स्थानाङ्ग सूत्र के आठवें स्थान में गति के आठ प्रकार निरूपित हैं–(१) नरकगति, (२) तिर्यञ्चगति, (३) मनुष्य गति, (४) देवगति, (५) सिद्ध गति, (६) गुरु गति, (७) प्रणोदन गति और (८) प्राग्भार गति। इनमें से प्रारम्भ की पाँच गतियाँ तो जीव से ही सम्बद्ध हैं, किन्तु अन्तिम तीन गतियाँ पुद्‌गल में उपलब्ध होती हैं। इनमें परमाणु की स्वाभाविक गति को गुरुगति कहा जाता है। प्रेरित करने, धमका देने आदि पर जो गति होती है वह प्रणोदन गति है। यह जीव एवं पुद्‌गल दोनों में संभव है। प्राग्भार गति एक प्रकार से वजन के वढ़ने पर नीचे झुकने की गति अथवा गुरुत्वाकर्षण की गति का बोधक है। यह भी पुद्‌गल में पाई जाती है। प्रारम्भिक पाँच गतियों में चार संसारी जीवों में होती है तथा पाँचवी गति मुक्त जीव में एक ही वार होती है।

कर्म-सिद्धान्त की दृष्टि से अथवा संसारी जीवों की गतियों की दृष्टि से चार गतियाँ प्रसिद्ध हैं–१. नरक गति, २. तिर्यञ्च गति, ३. मनुष्य गति और ४. देवगति। जीवों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमनागमन की दृष्टि से ये चार ही गतियाँ प्रसिद्ध हैं। जब तक जीव कर्मों से आवद्ध है, वह तव तक इन्हीं गतियों को प्राप्त होता रहता है, किन्तु जव वह कर्म-बन्धन से मुक्त हो जाता है तो वह सिद्ध गति को प्राप्त हो जाता है। इस गति को प्राप्त करने के पश्चात् जीव पुनः नरकादि गतियों में नहीं आता। इस अपेक्षा से गति पाँच प्रकार की होती है–नरक गति, तिर्यञ्च गति, मनुष्य गति, देवगति और सिद्धि गति।

इन्हीं पाँच गतियों के किसी अपेक्षा से १० भेद किए गए हैं, यथा–१. नरक गति, २. नरक विग्रह गति, ३. तिर्यञ्चगति, ४. तिर्यञ्च विग्रह गति, ५. मनुष्य गति, ६. मनुष्य विग्रह गति, ७. देव गति, ८. देव विग्रह गति, ९. सिद्धि गति और १०. सिद्धि विग्रह गति। विग्रह शब्द के दो अर्थ हैं शरीर एवं मोड़ (वक्रता)। जीव जव एक शरीर छोड़कर अन्य स्थान पर पहुँचने के लिए गति करता है तो उसकी गति दो प्रकार की होती है–१. ऋजु गति (अनुश्रेणि गति) और २. वक्र गति (विग्रह गति)। नरक आदि स्थानों को प्राप्त करते समय जव ऋजु गति होती है तो उसे नरक गति, तिर्यञ्च गति आदि कहा गया है तथा जव यह गति वक्र होती है एक या एक से अधिक मोड़ वाली होती है तो उसे नरक विग्रह गति, तिर्यञ्च विग्रह गति आदि नामों से अभिहित किया गया है। किन्तु ऐसा मानने पर सिद्धि विग्रह गति भेद उपपन्न नहीं होता है, क्योंकि सिद्धि के अनन्तर जो गति होती है वह सदैव सीधी होती है उसमें कोई मोड़ नहीं होता। टीकाकार ने 'सिद्धिविग्गहगई' का संधि-विच्छेद 'सिद्धि-अविग्गहगई' करके सिद्धि में अविग्रह गति होना अर्थ किया है, जो उपयुक्त है। किन्तु इससे सिद्धि गति एवं सिद्धि विग्रह गति में भेद नही रह पाता। यदि विग्रह का अर्थ शरीर करें, तव भी नरकगति, नरकविग्रह गति आदि में भेद सिद्ध नहीं होता क्योंकि कार्मण शरीर तो सदैव साथ रहता है। नरकगति आदि को गति के द्वारा प्राप्तव्य स्थान तथा नरक विग्रह गति आदि को अन्तराल गति मानकर चलें तो असंगति नहीं होगी। सिद्धि गति भी इसी प्रकार प्राप्तव्य स्थान होगा तथा सिद्धि विग्रह गति का अर्थ उसके लिए मुक्त जीव की गति होगा।

नरकादि चार गतियाँ जब दुःखदायी एवं संसाराभिमुख रखने वाली होती हैं तो ये चारों दुर्गति कही जाती हैं। इन चारों में कदाचित् मनुष्य गति एवं देवगति सुखदायी एवं शुभ होने से सद्‌गति अथवा सुगति मानी जाती हैं। नरक गति एवं तिर्यञ्च गति अशुभ होने के कारण सद्‌गति नहीं मानी गई। सद्‌गति अथवा सुगतियों की संख्या भी स्थानाङ्ग सूत्र के अनुसार चार हैं–१. सिद्ध सुगति, २. देव सुगति, ३. मनुष्य सुगति और ४. सुकुल में जन्म। इनमें सिद्ध गति तो सुगति है ही क्योंकि वह मोक्षप्राप्ति की सूचक है, किन्तु सुकुल में जन्म होना व्यावहारिक दृष्टि से, सुनिमित्तों के मिलने एवं जीव के आत्मोन्नति का वातावरण मिलने की दृष्टि से सुगति कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है।

दुर्गति एवं सद्‌गति जीवों को कैसे मिलती है, इसकी भी एक कसौटी दी गई है। जो जीव शब्द, रूप, गन्ध, रस एवं स्पर्श के वास्तविक स्वरूप को जान लेते हैं वे सुगति को प्राप्त करते हैं तथा जो इनसे परिज्ञात नहीं होते हैं, इनके वास्तविक स्वरूप को नहीं जानते हैं वे जीव दुर्गति को प्राप्त होते हैं। इनके अतिरिक्त दुर्गति एवं सद्‌गति में जाने के अन्य कारण भी कहे गए हैं, यथा जो जीव प्राणातिपात, मृषावाद अदत्तादान, मैथुन एवं परिग्रह से विरत होते हैं वे सुगति में जाते हैं तथा जो इनका सेवन करते हैं वे दुर्गति में जाते हैं।

नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति एवं देवगति के सम्बन्ध में विशिष्ट जानकारी हेतु इस ग्रन्थ में इनके पृथक् अध्ययनों की विषयवस्तु द्रष्टव्य है, तथापि इन चारों गतियों के जीवों के सम्बन्ध में पर्याप्ति, अपर्याप्ति, परित्त, संख्या, कायस्थिति, अन्तरकाल, अल्पबहुत्व आदि द्वारों से इस अध्ययन में विचार किया गया है।

जिन जीवों के नरकगति एवं नरकायु का उदय रहता है उन्हें नैरयिक, जिनके तिर्यञ्च गति एवं तिर्यञ्चायु का उदय होता है उन्हें तिर्यक्योनिक कहा जाता है। इसी प्रकार मनुष्यगति एवं मनुष्यायु के उदय वाले जीव मनुष्य तथा देवगति एवं देवायु के उदय को प्राप्त जीव देव कहलाते हैं। गति का उदय निरन्तर रहता है। इसका अर्थ है कि गति यहाँ एक जैसी अवस्था या दशा का बोधक है जो गति नामकर्म के उदय से प्राप्त होती है।

जीव जब एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर ग्रहण करता है तो वह आहार, शरीर, इन्द्रिय आदि का निर्माण करने लगता है। इसमें जो कार्य उसका पूर्ण हो जाता है वह पर्याप्ति कही जाती है तथा जो कार्य अपूर्ण रहता है उसे अपर्याप्ति कहते हैं। पर्याप्तियाँ ६ हैं–१. आहार पर्याप्ति, २. भाषा पर्याप्ति, ३. इन्द्रिय पर्याप्ति, ४. श्वासोच्छ्वास (आन-प्राण) पर्याप्ति, ५. भाषा पर्याप्ति और ६. मन पर्याप्ति। ये समस्त पर्याप्तियाँ क्रमशः सम्पन्न होती हैं। जो जीव जिस योग्य है उसमें उतनी ही पर्याप्तियाँ होती हैं। कुछ जीव अपर्याप्त अवस्था में ही काल कर जाते हैं अर्थात् वे आहार आदि पर्याप्तियाँ पूर्ण नहीं कर पाते। साधारणतया पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय जीवों में आहार, शरीर, इन्द्रिय एवं आन-प्राण (श्वासोच्छ्वास) ये चार पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में भाषा सहित पाँच पर्याप्तियाँ होती है। देवों, नैरयिकों, मनुष्यों एवं संज्ञी तिर्यञ्च पंचेन्द्रियों में मन सहित छहों पर्याप्तियाँ पाई जाती हैं। सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में तीन ही पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं–आहार, शरीर एवं इन्द्रिय। वे चौथी पर्याप्ति पूर्ण किए बिना ही काल कवलित हो जाते हैं। देवों एवं गर्भज मनुष्यों में भाषा एवं मन पर्याप्ति एक साथ होने के कारण इन दोनों को एक मानकर उनके पाँच पर्याप्तियाँ कहीं गई हैं। यह कथन का विवक्षा-भेद ही है अन्यथा उनमें समस्त छहों पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं। जिस जीव में जितनी पर्याप्तियाँ कही गई हैं, उनमें उतनी ही अपर्याप्तियाँ मानी गई हैं। मात्र सम्मूर्छिम मनुष्यों में तीन पर्याप्तियाँ मानकर चार अपर्याप्तियाँ कही गई हैं क्योंकि उसमें चौथी पर्याप्ति पूर्ण नहीं हो पाती है।

परित्त का अर्थ है परिमित। सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीवों के अतिरिक्त सब जीव परित्त अर्थात् परिमित हैं। संख्या की दृष्टि से सूक्ष्म वनस्पतिकायिक एवं साधारण बादर वनस्पतिकायिक जीव अनन्त हैं। गर्भज मनुष्य संख्यात हैं। शेष असंख्यात हैं। सिद्धों का कथन किया जाय तो वे अनन्त हैं।

एक जीव जिस गति पर्याय में जितने काल तक रहता है वह काल उसकी काय स्थिति है। नैरयिकों की काय स्थिति (आयुष्य) जघन्य दस हजार वर्ष एवं उत्कृष्ट तैंतीस सागरोपम होती है। देवों की कायस्थिति इतनी ही है, किन्तु देवियों की जघन्य दस हजार वर्ष एवं उत्कृष्ट पचपन पल्योपम होती है। तिर्यञ्चयोनिक जीवों की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट अनन्तकाल है। तिर्यञ्च योनिक स्त्री की उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योमप होती है। मनुष्य एवं मनुष्यस्त्री की कायस्थिति भी इस प्रकार जघन्य अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट पूर्वकोटि पथक्त्व अधिक तीन पल्योपम होती है। नैरयिक एवं देव कभी भी मरण को प्राप्त होकर पुनः नैरयिक एवं देव नहीं बनते जबकि तिर्यञ्च एवं मनुष्य मरण के अनन्तर पुनः उसी गति को ग्रहण कर सकते हैं। सिद्ध जीव की स्थिति आदि अनन्तकाल होती है। जो सिद्ध नहीं हुए हैं वे अपनी पर्याय में अनादि अपर्यवसित अथवा अनादिसपर्यवसित काल तक रह सकते हैं।

कायस्थिति का निरूपण चार गतियों में पर्याप्त एवं अपर्याप्त जीवों के आधार पर तथा प्रथम-अप्रथम समय वाले जीवों के आधार पर भी किया गया है। समस्थ जीवों की अपर्याप्त अवस्था का काल अन्तर्मुहूर्त है। पर्याप्त अवस्था का उत्कृष्ट काल ज्ञात करने के लिए उनकी उत्कृष्ट स्थिति में से अन्तर्मुहूर्त काल कम कर लेना चाहिए। जैसे नैरयिक जीव का उत्कृष्ट काल तैंतीस सागरोपम है तथा जघन्यकाल दस हजार वर्ष है तो उसकी पर्याप्त अवस्था की उत्कृष्ट कायस्थिति अन्तर्मुहुर्त कम तैंतीस सागरोपम एवं जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष होगी। जि जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त होती है उनकी पर्याप्त एवं अपर्याप्त दोनों अवस्थाओं में जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त रहेगी। इस दृष्टि से तिर्यञ्च एवं मनुष्य की पर्याप्त एवं अपर्याप्त दोनों अवस्थाओं में जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है एवं पर्याप्त अवस्था की उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम तीन पल्योपम है। यह पर्याप्त एवं अपर्याप्त अवस्था एक ही जन्म की अपेक्षा से कही गई है।

प्रथम समय के समस्त जीवों का काल एक समय होता है तथा अप्रथम समय के जीवों की जघन्य एवं उत्कृष्ट स्थिति सामान्य स्थिति से एक समय कम होती है। जैसे अप्रथम समय नैरयिक की जघन्य स्थिति एक समय कम दस हजार वर्ष एवं उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम तैंतीस सागरोपम होगी।

अन्तरकाल से आशय है एक गतिविशेष के पुनः प्राप्त होने के बीच का अन्तराल समय। एक नैरयिक जीव उस पर्याय को छोड़कर पुनः नैरयिक पर्याय ग्रहण करता है उसके मध्य व्यतीत काल को नैरयिक का अन्तरकाल कहेंगे। इसी प्रकार समस्त जीवों का अन्तरकाल निरूपित किया जाता है। भिन्न-भिन्न गति के जीवों का अन्तरकाल भिन्न-भिन्न है। अन्तरकाल का निरूपण इस अध्ययन में प्रथम एवं अप्रथम समय के जीवों के आधार पर भी किया गया है जो तत्र द्रष्टव्य है।

कौन से जीव अल्प हैं तथा कौन-से अधिक, इसका निरूपण अल्प-बहुत्व के रूप में किया गया है। नरकादि चार गतियों एवं सिद्धों के अल्पबहुत्व पर विचार करने से ज्ञात होता है कि सबसे अल्प मनुष्य हैं। उनसे नैरयिक असंख्यात गुणे हैं। उनसे देव असंख्यात गुणे हैं। उनसे सिद्ध अनन्तगुणे हैं तथा सिद्धों से भी अनन्तगुणे तिर्यञ्च जीव हैं। इन पाँच गतियों के साथ मनुष्यणी, तिर्यक्स्त्री एवं देवियों को मिलाने पर सबसे कम मनुष्यणी मानी गई है। प्रथम एवं अप्रथम समय वाले नैरयिक, देव, मनुष्य, तिर्यञ्च एवं सिद्धों के अल्प-बहुत्व का भी इस अध्ययन में निरूपण हुआ है। □□

३३. गई-अज्झयणं

सूत्र

१. पंचविह गई नामाइं–

पंच गईओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. निरयगई, २. तिरियगई,
३. मणुयगई, ४. देवगई,
५. सिद्धिगई।

–ठाणं. अ. ५, उ. ३, सु. ४४२

२. अट्ठविहगई नामाइं–

अट्ठगईओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. णिरयगई, २. तिरियगई,
३. मणुयगई, ४. देवगई,
५. सिद्धिगई, ६. गुरुगई,
७. पणोल्लण गई, ८. पब्भार गई।

–ठाणं. अ. ८, सु. ६३०

३. दसविहगई नामाइं–

दसविहा गई पन्नत्ता, तं जहा–

१. निरयगई, २. निरयविग्गहगई,
३. तिरियगई, ४. तिरियविग्गहगई,
५. मणुयगई, ६. मणुयविग्गहगई,
७. देवगई, ८. देवविग्गहगई,
९. सिद्धिगई, १०. सिद्धिविग्गहगई।

–ठाणं. अ. १०, सु. ७४५

४. दुग्गईसुगईभेय परूवणं–

चत्तारि दुग्गईओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. णेरइयदुग्गई, २. तिरिक्खजोणियदुग्गई,
३. मणुस्सदुग्गई, ४. देवदुग्गई।

चत्तारि सोग्गईओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. सिद्धसोग्गई, २. देवसोग्गई,
३. मणुयसोग्गई,[1] ४. सुकुलपच्चायाई।

–ठाणं. अ. ४, सु. २६७

५ दुग्गई-सुगईसु य गमन हेउ परूवणं–

पंचठाणा अपरिण्णाया जीवाणं दुग्गइगमणाए भवंति, तं जहा–

१. सद्दा, २. रूवा, ३. गंधा, ४. रसा, ५. फासा।

पंच ठाणा सुपरिन्नाया जीवाणं सुगइगमणाए भवंति, तं जहा–

१. सद्दा जाव ५. फासा।

–ठाणं. अ. ५, उ. १, सु. ३९०/१२-१३

पंचहिं ठाणेहिं जीवा दोग्गई गच्छंति, तं जहा–

१. पाणाइवाएणं, २. मुसावाएणं,
३. अदिन्नादाणेणं, ४. मेहुणेणं,
५. परिग्गहेणं।

३३. गति-अध्ययन

सूत्र

१. पांच प्रकार की गतियों के नाम–

गतियां पांच कही गई हैं, यथा–

१. नरकगति, २. तिर्यञ्चगति
३. मनुष्यगति, ४. देवगति,
५. सिद्धगति।

२. आठ प्रकार की गतियों के नाम–

गतियां आठ कही गई हैं, यथा–

१. नरकगति, २. तिर्यञ्चगति,
३. मनुष्य गति, ४. देवगति,
५. सिद्धगति, ६. गुरुगति,
७. प्रणोदनगति, ८. प्राग्भारगति।

३. दस प्रकार की गतियों के नाम–

गति दस प्रकार की कही गई है, यथा–

१. नरकगति, २. नरकविग्रहगति,
३. तिर्यञ्चगति, ४. तिर्यञ्चविग्रहगति,
५. मनुष्यगति, ६. मनुष्यविग्रहगति,
७. देवगति, ८. देवविग्रहगति,
९. सिद्धगति, १०. सिद्धविग्रहगति।

४. दुर्गति सुगति के भेदों का प्ररूपण–

दुर्गति चार प्रकार की कही गई है, यथा–

१. नैरयिक दुर्गति, २. तिर्यक्योनिक दुर्गति,
३. मनुष्य दुर्गति, ४. देव दुर्गति।

सुगति चार प्रकार की कही गई है, यथा–

१. सिद्ध सुगति, २. देव सुगति,
३. मनुष्य सुगति, ४. सुकुल में जन्म (होना)

५. दुर्गति और सुगति में गमन हेतु का प्ररूपण–

ये पांच स्थान जब परिज्ञात नहीं होते तब ये जीवों के दुर्गति गमन के हेतु होते हैं, यथा–

१. शब्द, २. रूप, ३. गंध, ४. रस, ५. स्पर्श।

ये पांच स्थान जब सुपरिज्ञात होते हैं तब वे जीवों के सुगतिगमन के हेतु होते हैं, यथा–

१. शब्द यावत् ५. स्पर्श।

पांच स्थानों से जीव दुर्गति में जाते हैं, यथा–

१. प्राणातिपात से, २. मृषावाद से,
३. अदत्तादान से, ४. मैथुन से,
५. परिग्रह से।

---

[1] ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १८७ (१-२)

पंचहिं ठाणेहिं जीवा सोगइं गच्छंति, तं जहा–

१. पाणाइवायवेरमणेणं जाव ५. परिग्गहवेरमणेणं।

–ठाणं. अ. ५, उ. १, सु. ३९१

६. दुग्गय सुगयाण य भेय परूवणं–

चत्तारि दुग्गया पन्नत्ता, तं जहा–

१. नेरइयदुग्गया, २. तिरिक्खजोणियदुग्गया,
३. मणुयदुग्गया, ४. देवदुग्गया।

चत्तारि सोग्गया पन्नत्ता, तं जहा–

१. सिद्धसोग्गया, २. देवसोग्गया,
३. मणुयसोग्गया,[1] ४. सुकुलपच्चायाया।

–ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २६७

७. चउगईसु पज्जत्ति-अपज्जत्तिओ–

प. णेरइयाणं भंते ! कइ पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! छ पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. आहार पज्जत्ती जाव ६. मणपज्जत्ती।

प. णेरइयाणं भंते ! कइ अपज्जत्तीओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! छ अपज्जत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. आहार अपज्जत्ती जाव ६. मणअपज्जत्ती।

–जीवा. पडि. १, सु. ३२

प. सुहुमपुढविकाइयाणं भंते ! कइ पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! चत्तारि पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. आहार पज्जत्ती, २. सरीर पज्जत्ती,
३. इंदिय पज्जत्ती, ४. आणपाणु पज्जत्ती।

प. सुहुमपुढविकाइयाणं भंते ! कइ अपज्जत्तीओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! चत्तारि अपज्जत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. आहार अपज्जत्ती जाव ४. आणपाणु अपज्जत्ती।

–जीवा. पडि. १, सु. १३ (१२)

एवं जाव सुहुम बायर वणस्सइकाइयाण वि।

–जीवा. पडि. १, सु. १४-२६

वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं पंच पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. आहार पज्जत्ती, २. सरीर पज्जत्ती,
३. इंदिय पज्जत्ती, ४. आणपाणु पज्जत्ती,
५. भासा पज्जत्ती।

वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं पंच अपज्जत्तीओ, पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. आहार अपज्जत्ती जाव ५. भासा अपज्जत्ती।

–जीवा. पडि. १, सु. २७-३०

प. सम्मुच्छिम पंचिंदिय तिरिक्खजोणियजलयराणं भंते ! कइ पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! पंच पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. आहार पज्जत्ती जाव ५. भासा पज्जत्ती।

पांच स्थानों से जीव सुगति में जाते हैं, यथा–

१. प्राणातिपात विरमण से यावत् ५. परिग्रहण विरमण से।

६. दुर्गत सुगत के भेदों का प्ररूपण–

दुर्गत (दुर्गति में उत्पन्न होने वाले) चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. नैरयिक दुर्गत, २. तिर्यञ्चयोनिक दुर्गत,
३. मनुष्य दुर्गत, ४. देव दुर्गत

सुगत (सुगति में उत्पन्न होने वाले) चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सिद्ध सुगत, २. देव सुगत,
३. मनुष्य सुगत, ४. सुकुल में जन्म लेने वाला।

७. चार गतियों में पर्याप्तियां-अपर्याप्तियां–

प्र. भन्ते ! नैरयिकों के कितनी पर्याप्तियां कही गई हैं?

उ. गौतम ! छः पर्याप्तियाँ कही गई हैं, यथा–

१. आहार पर्याप्ति यावत् ६. मनःपर्याप्ति।

प्र. भंते ! नैरयिकों के कितनी अपर्याप्तियां कही गई हैं?

उ. गौतम ! छः अपर्याप्तियां कही गई हैं, यथा–

१. आहार अपर्याप्ति यावत् ६. मनःअपर्याप्ति।

प्र. भंते ! सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों के कितनी पर्याप्तियां कही गई हैं?

उ. गौतम ! चार पर्याप्तियां कही गई हैं, यथा–

१. आहार पर्याप्ति, २. शरीर पर्याप्ति,
३. इन्द्रिय पर्याप्ति, ४. आन-प्राण पर्याप्ति।

प्र. भन्ते ! सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों के कितनी अपर्याप्तियां कही गई हैं?

उ. गौतम ! चार अपर्याप्तियां कही गई हैं, यथा–

१. आहार अपर्याप्ति यावत् ४. आनप्राण अपर्याप्ति।

इसी प्रकार सूक्ष्म-बादर वनस्पतिकायिक पर्यन्त जानना चाहिए।

द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय जीवों के पांच पर्याप्तियां कही गई हैं, यथा–

१. आहार पर्याप्ति, २. शरीर पर्याप्ति,
३. इन्द्रिय पर्याप्ति, ४. आनप्राण पर्याप्ति,
५. भाषा पर्याप्ति।

द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय जीवों में पांच अपर्याप्तियां कही गई हैं, यथा–

१. आहार अपर्याप्ति यावत् ५. भाषा अपर्याप्ति।

प्र. भंते ! सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जलचर जीवों में कितनी पर्याप्तियां कही गई हैं?

उ. गौतम ! पांच पर्याप्तियां कही गई हैं, यथा–

१. आहार पर्याप्ति यावत् ५. भाषा पर्याप्ति।

---

१. ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १८७/३-४

थलयराणं खहयराण वि पंच पज्जत्तीओ एवं चेव।

जलयरा-थलयरा-खहयरा वि पंच अपज्जत्तीओ एवं चेव।

प. गब्भवक्कंतिय पंचिंदियतिरिक्खजोणिय जलयराणं भंते ! कइ पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! छपज्जत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. आहार पज्जत्ती जाव ६. मण पज्जत्ती

थलयराणं खहयराण वि एवं चेव।

छ अपज्जत्तीओ एवं चेव। –जीवा. पडि. १, सु. ३५-४०

प. सम्मुच्छिम मणुस्सा णं भंते ! कइ पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! तिण्णि पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. आहार पज्जत्ती, २. सरीर पज्जत्ती,

३. इंदिय पज्जत्ती।

प. सम्मुच्छिम मणुस्सा णं भंते ! कइ अपज्जत्तीओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! चत्तारि अपज्जत्तीओ पण्णत्ताओ।

प. गब्भवक्कंतिय मणुस्सा णं भंते ! कइ पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! पंच (छ) पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. आहार पज्जत्ती जाव ५-६ भासा-मण पज्जत्ती।

पंच अपज्जत्तीओ पण्णत्ताओ एवं चेव[1]। –जीवा. पडि. १, सु. ४१

प. देवा णं भंते ! कइ पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! पंच पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. आहार पज्जत्ती जाव ५. भासा-मण पज्जत्ती।

प. देवाणं भन्ते ! कइ अपज्जत्तीओ पण्णत्ताओ,

उ. गोयमा ! पंच अपज्जत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. आहार अपज्जत्ती जाव ५. भासा-मण अपज्जत्ती। –जीवा. पडि. १, सु. ४२

८. चउगईसु परित्ताणं संखा परूवणं–

णेरइया–परित्ता असंखेज्जा। –जीवा. पडि. १, सु. ३२

सुहुम पुढविकाइया–परित्ता असंखेज्जा। –जीवा. पडि. १, सु. १३ (३३)

एवं जाव सुहुम-बायर वाउकाइया वि। –जीवा. पडि. १४-१६

सुहुम वणस्सइकाइया-अपरित्ता अणंता। –जीवा. पडि. १, सु. १८

साहारण सरीर बायर वणस्सइकाइया–परित्ता अणंता। –जीवा. पडि. १, सु. २१

पत्तेय सरीर बायर वणस्सइकाइया–परित्ता असंखेज्जा। –जीवा. पडि. १, सु. २१

बेइंदिया-तेइंदिया-चउरिंदिया–परित्ता असंखेज्जा। –जीवा. पडि. १, सु. २८-३०

सम्मूर्च्छिम स्थलचर खेचर जीवों के भी इसी प्रकार पांच पर्याप्तियां हैं।

जलचर स्थलचर और खेचर जीवों के भी इसी प्रकार पांच अपर्याप्तियां हैं।

प्र. भन्ते ! गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जलचरों के कितनी पर्याप्तियां कही गई हैं?

उ. गौतम ! छः पर्याप्तियां कही गई हैं, यथा–

१. आहार पर्याप्ति यावत् ६. मनःपर्याप्ति

गर्भज स्थलचर-खेचर जीवों के लिए भी इसी प्रकार पर्याप्तियां कहनी चाहिए।

इनके छः अपर्याप्तियां भी इसी प्रकार है।

प्र. भंते ! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के कितनी पर्याप्तियां कही गई हैं?

उ. गौतम ! तीन पर्याप्तियां कही गई हैं, यथा–

१. आहार पर्याप्ति, २. शरीर पर्याप्ति,

३. इन्द्रिय पर्याप्ति।

प्र. भन्ते ! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के कितनी अपर्याप्तियां कही गई हैं?

उ. गौतम ! चार अपर्याप्तियां कही गई हैं।

प्र. भन्ते ! गर्भज मनुष्यों के कितनी पर्याप्तियां कही गई हैं?

उ. गौतम ! पांच (छः) पर्याप्तियां कही गई हैं, यथा–

१. आहार पर्याप्ति यावत् ५-६ भाषा-मनःपर्याप्ति,

पांच अपर्याप्तियां भी इसी प्रकार कही गई हैं।

प्र. भन्ते ! देवों के कितनी पर्याप्तियां कही गई हैं?

उ. गौतम ! पांच पर्याप्तियां कही गई हैं, यथा–

१. आहार पर्याप्ति यावत् ५. भाषा मनः पर्याप्ति।

प्र. भन्ते ! देवों के कितनी अपर्याप्तियां कही गई हैं?

उ. गौतम ! पांच अपर्याप्तियां कही गई हैं, यथा–

१. आहार अपर्याप्ति यावत् ५. भाषा मनः अपर्याप्ति।

८. चार गतियों में परित्त संख्या का प्ररूपण–

नैरयिक– ये (जीव) परित्त (परिमित) हैं और असंख्यात हैं।

सूक्ष्म पृथ्वीकाय– परित्त हैं और असंख्यात हैं,

इसी प्रकार सूक्ष्म-बादर वायुकाय पर्यन्त जानना चाहिए।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक–अपरित्त और अनंत हैं,

साधारण शरीर बादर वनस्पतिकायिक–परित्त और अनंत हैं,

प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक–परित्त हैं और असंख्यात हैं,

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय परित्त हैं और असंख्यात हैं,

---

१. पर्याप्ति द्वारे पंच पर्याप्तयः पंचापर्याप्तयः भाषामनः पर्याप्त्योरेकत्वेन विवक्षणात्। –जीवा. टीका

पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया–परित्ता असंखेज्जा। –जीवा. पडि. १, सु. ३५-४०

सम्मुच्छिम मणुस्सा–परित्ता असंखेज्जा।

गब्भवक्कंतिय मणुस्सा–परित्ता संखेज्जा। –जीवा. पडि. १, सु. ४१

देवा–परित्ता असंखेज्जा। –जीवा. पडि. १, सु. ४२

९. **चउगईसु सिद्धस्स य कायट्ठिई परूवणं–**

प. णेरइए णं भंते ! नेरइए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवामाइं[1]।

प. तिरिक्खजोणिए णं भंते ! तिरिक्खजोणिए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतंकालं,[2]
अणंताओ उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीओ कालओ,
खेत्तओ अणंता लोगा, असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा,
ते णं पोग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइभागो।

प. तिरिक्खजोणिणी णं भंते ! तिरिक्खजोणिणी त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं।
एवं मणूसे वि[3]।
मणूसी वि एवं चेव।

प. देवे णं भंते ! देवे त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! **जहेव णेरइए[4]।**

प. देवी णं भंते ! देवी त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं,
उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं[5]।

प. सिद्धे णं भंते ! सिद्धे त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! साईए अपज्जवसिए[6]। –पण्ण. प. १८, सु. १२६१-१२६५

प. असिद्धे णं भंते ! असिद्धे त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! असिद्धे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. अणाईए वा अपज्जवसिए,
२. अणाईए वा सपज्जवसिए वा। –जीवा. पडि. ९, सु. २३१

१०. **जलयराइ पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं कायट्ठिई काल परूवणं–**

पुव्वकोडीपुहत्तं तु उक्कोसेण वियाहिया।
कायट्ठिई जलयराणं अन्तोमुहुत्तं जहन्निया॥ –उत्त. अ. ३६, गा. १७६

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक–परित्त हैं और असंख्यात हैं,

सम्मूर्च्छिम मनुष्य–परित्त हैं और असंख्यात हैं,
गर्भज मनुष्य–परित्त हैं और संख्यात हैं,
देव–परित्त हैं और असंख्यात हैं।

९. **चार गति और सिद्ध की कायस्थिति का प्ररूपण–**

प्र. भन्ते ! नारक नारकपर्याय में कितने काल तक र

उ. गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट तेतीस

प्र. भन्ते ! तिर्यञ्चयोनिक तिर्यञ्चयोनिकपर्याय में
तक रहता है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अनन्तक
कालतः अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल तक,
क्षेत्रतः अनन्त लोक, असंख्यात पुद्गलपरावर्त्त रू
वे पुद्गलपरावर्त्त आवलिका के असंख्यातवें भाग

प्र. भन्ते ! तिर्यञ्चयोनिनी तिर्यञ्चयोनिनी पर्याय में
तक रहती है?

उ. गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पूर्वको
अधिक तीन पल्योपम तक रहती है।
इसी प्रकार मनुष्य की कायस्थिति के लिए कहना
मनुष्य स्त्री के लिए भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! देव-देव पर्याय में कितने काल तक रहता

उ. गौतम ! **नारक के समान देव की कायस्थिति कह**

प्र. भन्ते ! देवी-देवी पर्याय में कितने काल तक रहती

उ. गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष,
उत्कृष्ट पचपन पल्योपम तक रहती है।

प्र. भन्ते ! सिद्ध जीव सिद्धपर्याय में कितने काल तक

उ. गौतम ! सिद्ध जीव सादि अनन्त काल तक रहता

प्र. भन्ते ! असिद्ध असिद्ध पर्याय में कितने काल तक

उ. गौतम ! असिद्ध दो प्रकार का कहा गया है, यथा-
१. अनादि अपर्यवसित,
२. अनादि सपर्यवसित।

१०. **जलचरादि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की काय प्ररूपण–**

जलचरों की कायस्थिति उत्कृष्ट पूर्वकोटि-पृथक्त्व क
जघन्य अन्तर्मुहूर्त की है।

---

१. (क) उत्त. अ. ३६, गा. १६७
(ख) जीवा. पडि. ३, सु. २०६
२. उत्त. अ. ३६, गा. १७६
३. (क) उत्त. अ. ३६, गा. २०१
(ख) जीवा. पडि. ७, सु. २२६
४. उत्त. अ. ३६, गा. २४५
५. (क) जीवा. पडि. ३, सु. २०६
(ख) जीवा. पडि. ६, सु. २२५
६. (क) जीवा. पडि. ९, सु. २५५
(ख) जीवा. पडि. ९, सु. २३१
(ग) जीवा. पडि. ९, सु. २४९

पलिओवमाउ तिण्णि उ उक्कोसेण तु साहिया।
पुव्वकोडीपुहत्तेणं अन्तोमुहुत्तं जहन्निया॥
कायट्ठिई थलयराणं -----------।
—उत्त. अ. ३६, गा. १८५-१८६/१

असंखभागो पलियस्स उक्कोसेण साहिओ।
पुव्वकोडीपुहुत्तेणं अन्तोमुहुत्तं जहन्निया॥
कायट्ठिई खहयराणं -----------।
—उत्त. अ. ३६, गा. १९२-१९३/१

११. पज्जत्तापज्जत्त चउगईणं कायट्ठिई परूवणं—

प. णेरइयअपज्जत्तए णं भंते ! णेरइय—अपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

एवं जाव देवी अपज्जत्तिया।

प. णेरइयपज्जत्तए णं भंते ! णेरइयपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! ज़हण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

प. तिरिक्खजोणियपज्जत्तए णं भंते ! तिरिक्खजोणियपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

एवं तिरिक्खजोणिणिय पज्जत्तिया वि।

मणुसे-मणुसी वि एवं चेव।

देवपज्जत्तए जहा णेरइयपज्जत्तए।

प. देविपज्जत्तिया णं भंते ! देविपज्जत्तिय त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।
—पण्ण. प. १८, सु. १२६६-१२७०

१२. पढमापढम चाउगईसु सिद्धस्स य कायट्ठिई काल परूवणं—

प. पढमसमयणेरइया णं भंते ! पढमसमयणेरइए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! एक्कं समयं।

प. अपढमसमयणेरइए णं भंते ! अपढमसमयणेरइए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं समयूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समयूणाइं।

स्थलचर जीवों की कायस्थिति उत्कृष्ट पूर्वकोटि-पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम की है और जघन्य अन्तर्मुहूर्त की है।

खेचर जीवों की कायस्थिति उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक पल्योपम के असंख्यातवें भाग की है और जघन्य अन्तर्मुहूर्त की है।

११. पर्याप्त-अपर्याप्त चार गतियों की कायस्थिति का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त नारक जीव-अपर्याप्त नारकपर्याय में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक रहता है।

इसी प्रकार देवी पर्यन्त अपर्याप्त अवस्था अन्तर्मुहूर्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! पर्याप्त नारक पर्याप्त-नारकपर्याय में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपम तक रहता है।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त तिर्यञ्चयोनिक-पर्याप्त तिर्यञ्चयोनिक पर्याय में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त कम तीन पल्योपम तक रहता है।

इसी प्रकार पर्याप्त तिर्यञ्चयोनिकी की कायस्थिति के लिए कहना चाहिए।

मनुष्य और मनुष्यस्त्री की कायस्थिति भी इसी प्रकार कहनी चाहिए।

पर्याप्त देव की कायस्थिति पर्याप्त नैरयिक के समान कहनी चाहिए।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त देवी-पर्याप्त देवी पर्याय के रूप में कितने काल तक रहती है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पचपन पल्योपम तक रहती है।

१२. प्रथम-अप्रथम चार गतियों और सिद्ध की कायस्थिति के काल का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! प्रथम समय के नैरयिक-प्रथम समय के नैरयिक रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! एक समय।

प्र. भन्ते ! अप्रथम समय के नैरयिक-अप्रथम समय के नैरयिक रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय कम दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट एक समय कम तेतीस सागरोपम।

उ. गोयमा ! अणाइयस्स अपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं,
अणाइयस्स सपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं।

—जीवा. पडि. ९, सु. २३१

१४. पढमापढम चउगईसु सिद्धस्स य अंतरकाल परूवणं–

प. पढमसमयणेरइयस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

प. अपढमसमयणेरइयस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

प. पढमसमयतिरिक्खजोणियस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दो खुड्डागभवग्गहणाइं समयूणाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

प. अपढमसमयतिरिक्खजोणियस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणं समयाहियं, उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं।

प. पढमसमयमणूसस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दो खुड्डागभवग्गहणाइं समयूणाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

प. अपढमसमयमणूसस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं खुड्डाग भवग्गहणं समयाहियं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।
देवस्स णं अंतरं जहा णेरइयस्स।।[1]

प. पढमसमयसिद्धस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! णत्थि अंतरं।

प. अपढमसमयसिद्धस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! साईयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं।

—जीवा. पडि. ९, सु. २५९

१५. पंच अट्ठ वा गइं पडुच्च जीवाणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! नेरइयाणं तिरिक्खजोणियाणं मणुस्साणं देवाणं सिद्धाण य पंचगइ समासेणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा मणुस्सा,

उ. गौतम ! अनादि अपर्यवसित का अन्तर नहीं है,
अनादि सपर्यवसित का भी अंतर नहीं है।

१४. प्रथम-अप्रथम चार गतियों और सिद्ध के अंतरकाल का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! प्रथम समय के नैरयिक का अन्तर काल कितना है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट वनस्पतिकाल।

प्र. भन्ते ! अप्रथम समय के नैरयिक का अन्तर काल कितना है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट वनस्पतिकाल।

प्र. भन्ते ! प्रथम समय के तिर्यञ्चयोनिक का अन्तर काल कितना है?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय कम दो क्षुद्र भव ग्रहण, उत्कृष्ट वनस्पतिकाल।

प्र. भन्ते ! अप्रथम समय के तिर्यञ्चयोनिक का अन्तर काल कितना है?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय अधिक क्षुद्र भव ग्रहण,
उत्कृष्ट कुछ अधिक सागरोपम शत पृथक्त्व।

प्र. भन्ते ! प्रथम समय के मनुष्य का अन्तर काल कितना है?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय कम दो क्षुद्र भव ग्रहण, उत्कृष्ट वनस्पतिकाल।

प्र. भन्ते ! अप्रथम समय के मनुष्य का अन्तर काल कितना है?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय अधिक क्षुद्र भव ग्रहण, उत्कृष्ट वनस्पतिकाल।
देव का अन्तर काल नैरयिक जैसा है।

प्र. भन्ते ! प्रथम समय के सिद्ध का अन्तर काल कितना है?

उ. गौतम ! अन्तर काल नहीं है।

प्र. भन्ते ! अप्रथम समय के सिद्ध का अन्तर काल कितना है?

उ. गौतम ! सादि अपर्यवसित का अन्तर काल नहीं है।

१५. पांच या आठ गतियों की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व–

प्र. भन्ते ! इन नारकों, तिर्यञ्चयोनिकों, मनुष्यों, देवों और सिद्धों की पांच गतियों की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प मनुष्य है,

---

[1] (क) जीवा. पडि. ७, सु. २२६ (ख) जीवा. पडि. ९, सु. २५६

२. नेरइया असंखेज्जगुणा,
३. देवा असंखेज्जगुणा,
४. सिद्धा अणंतगुणा,
५. तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा[1]।

प. एएसि णं भंते ! नेरइयाणं तिरिक्खजोणियाणं तिरिक्खजोणिणीणं मणुस्साणं मणुस्सीणं देवाणं देवीणं सिद्धाण य अट्ठगइ समासेणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवाओ मणुस्सीओ,
२. मणुस्सा असंखेज्जगुणा,
३. नेरइया असंखेज्जगुणा,
४. तिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ,
५. देवा असंखेज्जगुणा,
६. देवीओ असंखेज्जगुणाओ,
७. सिद्धा अणंतगुणा,
८. तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा[2]।

–पण्ण. प. ३, सु. २२५-२२६

१६. पढमापढम चउगईसु सिद्धस्स य अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! पढमसमयणेरइयाणं, पढमसमयतिरिक्खजोणियाणं, पढमसमयमणूसाणं, पढमसमयदेवाणं, पढमसमयसिद्धाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा पढमसमयसिद्धा,
२. पढमसमयमणूसा असंखेज्जगुणा,
३. पढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा,
४. पढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा,
५. पढमसमयतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! अपढमसमयनेरइयाणं जाव अपढमसमयसिद्धाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा अपढमसमयमणूसा,
२. अपढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा,
३. अपढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा,
४. अपढमसमयसिद्धा अणंतगुणा,
५. अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा।

प. एएसि णं भंते ! पढमसमयनेरइयाणं, अपढमसमयनेरइयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा पढमसमयनेरइया,
२. अपढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा,

प. एएसि णं भंते ! पढमसमयतिरिक्खजोणियाणं, अपढमसमयतिरिक्खजोणियाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

१६. प्रथम-अप्रथम चार गतियों और सिद्ध का अल्पबहुत्व–

प्र. भन्ते ! इन प्रथमसमय नैरयिक, प्रथमसमय तिर्यञ्चयोनिक, प्रथमसमय मनुष्य, प्रथमसमय देव और प्रथमसमय सिद्धों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उ. गौतम ! १. प्रथमसमय के सिद्ध सबसे अल्प हैं,
२. (उनसे) प्रथमसमय के मनुष्य असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) प्रथमसमय के नैरयिक असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) प्रथमसमय के देव असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) प्रथमसमय के तिर्यञ्चयोनिक असंख्यातगुणे हैं।

प्र. भन्ते ! इन अप्रथमसमय नैरयिक यावत् अप्रथमसमय सिद्धों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उ. गौतम ! १. अप्रथमसमय के मनुष्य सबसे अल्प हैं,
२. (उनसे) अप्रथमसमय के नैरयिक असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) अप्रथमसमय के देव असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) अप्रथमसमय के सिद्ध अनन्तगुणे हैं,
५. (उनसे) अप्रथमसमय के तिर्यञ्चयोनिक अनन्तगुणे हैं।

प्र. भन्ते ! इन प्रथमसमयनैरयिकों और अप्रथमसमयनैरयिकों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प प्रथमसमयनैरयिक हैं,
२. (उनसे) अप्रथमसमयनैरयिक असंख्यातगुणे हैं।

प्र. भन्ते ! इन प्रथमसमयतिर्यञ्चयोनिकों और अप्रथमसमयतिर्यञ्चयोनिकों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

१. जीवा. पडि. ९, सु. २४९
२. (क) जीवा. पडि. ६, सु. २२५ (ख) जीवा. पडि. ९, सु. २५५ (ग) विया. स. २५, उ. ३, सु. ११७

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा पढमसमयतिरिक्खजोणिया,

२. अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा।

प. एएसि णं भंते ! पढमसमयमणूसाणं अपढमसमयमणूसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा पढमसमयमणूसा,

२. अपढमसमयमणूसा असंखेज्जगुणा,

जहा मणूसा तहा देवावि।

प. एएसि णं भंते ! पढमसमयसिद्धाणं अपढमसमयसिद्धाणं य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा पढमसमयसिद्धा,

२. अपढमसमयसिद्धा अणंतगुणा।

प. एएसि णं भंते ! पढमसमयनेरइयाणं, अपढमसमयनेरइयाणं, पढमसमयतिरिक्खजोणियाणं, अपढमसमयतिरिक्खजोणियाणं, पढमसमयमणूसाणं, अपढमसमयमणूसाणं, पढमसमयदेवाणं, अपढमसमयदेवाणं, पढमसमयसिद्धाणं, अपढमसमयसिद्धाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा पढमसमयसिद्धा।

२. पढमसमयमणूसा असंखेज्जगुणा,
३. अपढमसमयमणूसा असंखेज्जगुणा,
४. पढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा,
५. पढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा,
६. पढमसमयतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा,
७. अपढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा,
८. अपढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा,
९. अपढमसमयसिद्धा अणंतगुणा,
१०. अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा[1]।

—*जीवा. पडि. ९, सु. २५९*

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प प्रथमसमयतिर्यञ्चयोनिक हैं,

२. (उनसे) अप्रथमसमयतिर्यञ्चयोनिक अनन्तगुणे हैं।

प्र. भन्ते ! इन प्रथमसमयमनुष्यों और अप्रथमसमयमनुष्यों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प प्रथमसमयमनुष्य हैं,

२. (उनसे) अप्रथमसमयमनुष्य असंख्यातगुणे हैं।

जैसा मनुष्यों के लिए कहा है, वैसा देवों के लिए भी कहना चाहिए।

प्रं. भन्ते ! इन प्रथमसमयसिद्धों और अप्रथमसमयसिद्धों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प प्रथमसमयसिद्ध हैं,

२. (उनसे) अप्रथमसमयसिद्ध अनन्तगुणे हैं।

प्र. भन्ते ! इन १. प्रथमसमयनैरयिक, २. अप्रथमसमयनैरयिक, ३. प्रथमसमयतिर्यञ्चयोनिक, ४. अप्रथमसमयतिर्यञ्चयोनिकी, ५. प्रथमसमयमनुष्य, ६. अप्रथमसमयमनुष्य, ७. प्रथम- समयदेव, ८. अप्रथमसमयदेव, ९. प्रथमसमयसिद्ध और १०. अप्रथमसमयसिद्ध इनमें कौन किससे अल्प यावत विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प प्रथमसमयसिद्ध हैं,

२. (उनसे) प्रथमसमयमनुष्य असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) अप्रथमसमयमनुष्य असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) प्रथमसमयनैरयिक असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) प्रथमसमयदेव असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) प्रथमसमयतिर्यञ्चयोनिक असंख्यातगुणे हैं,
७. (उनसे) अप्रथमसमयनैरयिक असंख्यातगुणे हैं,
८. (उनसे) अप्रथमसमयदेव असंख्यातगुणे हैं,
९. (उनसे) अप्रथमसमयसिद्ध अनन्तगुणे हैं,
१०. (उनसे) अप्रथमसमयतिर्यञ्चयोनिक अनन्तगुणे हैं।

---

१. (क) जीवा. पडि. ७, सु. २२७

(ख) जीवा. पडि. ९, सु. २५७ विशेष अन्तर निम्न है–

प. एएसि णं भंते ! पढमसमयनेरइयाणं, पढमसमयतिरिक्खजोणियाणं, पढमसमयमणूसाणं, पढमसमयदेवाणं, अपढमसमयनेरइयाणं, अपढमसमयतिरिक्खजोणियाणं, अपढमसमयमणूसाणं, अपढमसमयदेवाणं सिद्धाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा पढमसमयमणूसा,

२. अपढमसमयमणूसा असंखेज्जगुणा,
३. पढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा,
४. पढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा,
५. पढमसमयतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा,
६. अपढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा,
७. अपढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा,
८. सिद्धा अणंतगुणा,
९. अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा।

—जीवा. पडि. ९, सु. २५७

नरकगति अध्ययन

इस अध्ययन में नरकगति एवं नैरयिकों से सम्बद्ध वर्णन उपलब्ध है। सात प्रकार की नरक पृथ्वियों, नरकावासों तथा शरीर, अवगाहना, संहनन, संस्थान, लेश्या, स्थिति आदि विभिन्न २५ द्वारों से नैरयिक जीवों के विषय में जानकारी करने के लिए जीवाजीवाभिगम सूत्र अथवा इस ग्रन्थ के अन्य अध्ययन द्रष्टव्य हैं। किन्तु इस अध्ययन में सूत्रकृताङ्ग एवं व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्रों में उपलब्ध नैरयिक विषयक वर्णन का भी उल्लेख है। संक्षेप में इस अध्ययन की विषय वस्तु नरक में जाने के कारणों, वहाँ प्राप्त दुःखद फलों, अनिष्ट यावत् अमनाम स्पर्शादि अनुभवों पर केन्द्रित है।

नरक में जाने के प्रायः चार कारण माने जाते हैं—महारम्भ, महापरिग्रह, पञ्चेन्द्रियवध एवं मांस भक्षण। किन्तु यहाँ सूत्रकृताङ्ग सूत्र के अनुसार इसके अग्राङ्कित कारण दिए गए हैं—जो जीव अपने विषय सुख के लिए त्रस और स्थावर प्राणियों की तीव्र परिणामों से हिंसा करता है, अनेक उपायों से प्राणियों का उपमर्दन करता है, अदत्त को ग्रहण करता है, श्रेयस्कर शील को नहीं स्वीकारता है वह नरक में जाता है। इसी प्रकार जो जीव पाप करने में धृष्ट है, बहुत से प्राणियों का घात करता है, पाप कार्यों से निवृत्त नहीं है, वह अज्ञानी जीव अन्तकाल में घोर अन्धकार युक्त नरक में जाता है।

नैरयिक जीवों को शीत, उष्ण, भूख, प्यास, शस्त्रविकुर्वण आदि अनेक वेदनाएं भोगनी पड़ती हैं। इनका वर्णन इस द्रव्यानुयोग के वेदना अध्ययन में द्रष्टव्य है। वे पृथ्वी, अप्, तेजस्, वायु एवं वनस्पति का स्पर्श करते हैं तो वह भी उन्हें अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ एवं अमनाम अनुभव होता है। ऐसा अनुभव रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक पृथ्वी से लेकर सातवीं पृथ्वी तक सबमें होता है। नरक वस्तुतः दुःखदायक एवं विषम है। यहां पर पूर्वकृत दुष्कर्मों का दुःखद फल भोगा जाता है। नरकपाल एवं परमाधर्मी देव नैरयिकों को विविध प्रकार की यातनाएं देते हैं। नैरयिक किस प्रकार का असह्य एवं हृदय द्रावक दुःख भोगते हैं इसका वर्णन प्रस्तुत अध्ययन में विस्तार से हुआ है। इसमें एक सदाजला नामक नदी का भी उल्लेख है जिसमें जल के साथ क्षार, मवाद एवं रक्त भी है। यह आग से पिघले हुए लोहे की भाँति अत्यन्त उष्ण है। नैरयिकों को खाने वाले भूखे एवं ढीठ सियारों का भी इसमें उल्लेख हुआ है।

इसमें एक यह सत्य प्रकट हुआ है कि जो जीव जिस प्रकार के कर्म करता है उसको उनके अनुरूप फल भोगना होता है। यदि जीव ने एकान्त दुःख रूप नरक भव के योग्य कर्मों का बंध किया है तो उसे नरक का दुःख भोगना होता है। नैरयिक जीव सदैव भयग्रस्त, त्रसित, भूखे, उद्विग्न, उपद्रवग्रस्त एवं क्रूर परिणाम वाले होते हैं। वे सदैव परम अशुभ नरक भव का अनुभव करते रहते हैं।

वे पुद्गल परिणाम से लेकर वेदना लेश्या, नाम-गोत्र, भय, शोक, क्षुधा, पिपासा, व्याधि, उच्छ्वास, अनुताप, क्रोध, मान, माया, लोभ एवं आहारादि चार संज्ञाओं के परिणामों का अनिष्ट, अप्रिय, अमनोज्ञ एवं अमनाम रूप में अनुभव करते हैं। ये समस्त परिणाम २० प्रकार के माने गए हैं जिनका उल्लेख जीवाभिगम सूत्र में हुआ है।

नैरयिक जीव नरक में उत्पन्न होते ही मनुष्य लोक में आना चाहते हैं, किन्तु नरक में भोग्य कर्मों के क्षीण हुए विना वहाँ से आ नहीं सकते। नरकावासों के परिपार्श्व में जो पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक एवं वनस्पतिकायिक जीव हैं वे भी महाकर्म, महाक्रिया, महा आश्रव एवं महावेदना वाले होते हैं।

चार-सौ पाँच सौ योजन पर्यन्त नरकलोक नैरयिक जीवों से ठसाठस भरा हुआ है। इस प्रकार नरक में अत्यन्त दुःख है। यही इस अध्ययन का प्रतिपाद्य विषय है।

☐

३४. णिरयगई अज्झयणं

३४. नरक गति-अध्ययन

सूत्र

१. निरयगमणस्स कारणानि परूवणं–

पुच्छिस्स हं केवलियं महेसिं,
कहं भियावा णरगा पुरत्था।
अजाणतो मे मुणि वूहि जाणं,
कहे णु वाला णरगं उवेंति ॥१॥

एवं मए पुट्ठे महाणुभागे,
इणमव्ववी कासवे आसुपण्णे।
पवेदइस्सं दुहमट्ठदुग्गं,
आईणियं दुक्कडियं पुरत्था ॥२॥

जे केइ वाला इह जीवियट्ठी,
पावाइं कम्माइं करेंति रुद्दा।
ते घोररूवे तिमिसंधयारे,
तिव्वाभितावे नरए पडंति ॥३॥

तिव्वं तसे पाणिणो थावरे य,
जे हिंसई आयसुहं पडुच्चा।
जे लूसए होइ अदत्तहारी,
ण सिक्खई सेयवियस्स किंचि ॥४॥

पागब्भिपाणे वहुणं तिवाई,
अणिव्वुडे घातमुवेइ वाले।
णिहो णिसं गच्छइ अंतकाले,
अहो सिरं कट्टु उवेइ दुग्गं ॥५॥

–सूय. सु. १, अ. ५, उ. १, गा. १-५

१. नरक गमन के कारणों का प्ररूपण–

(सुधर्मा स्वामी) मैंने केवलज्ञानी महर्षि महावीर स्वामी से पूछा था–"नैरयिक किस प्रकार के अभिताप से युक्त हैं ? हे मुने ! आप जानते हैं इसलिए मुझ अज्ञात को कहें कि–'मूढ़ अज्ञानी जीव किस कारण से नरक पाते है ? ॥१॥

इस प्रकार मेरे (सुधर्मा स्वामी) द्वारा पूछे जाने पर महाप्रभावक आशुप्रज्ञ काश्यपगोत्रीय (भगवान महावीर) ने यह कहा "यह नरक दुःखदायक एवं विषम है वह दुष्प्रवृत्ति करने वाले अत्यन्त दीन जीवों का निवासस्थान है, वह कैसा है मैं आगे वताऊँगा' ॥२॥

इस लोक में जो अज्ञानी जीव अपने जीवन के लिए रौद्र पापकर्मों को करते हैं, वे घोर निविड़ अन्धकार से युक्त तीव्रतम ताप वाले नरक में गिरते हैं ॥३॥

जो जीव अपने विषयसुख के निमित्त त्रस और स्थावर प्राणियों की तीव्र परिणामों से हिंसा करता है, अनेक उपायों से प्राणियों का उपमर्दन करता है, अदत्त को ग्रहण करने वाला है और जो श्रेयस्कर सीख को विल्कुल ग्रहण नहीं करता है ॥४॥

जो पुरुष पाप करने में धृष्ट है, अनेक प्राणियों का घात करता है, पापकार्यों से निवृत्त नहीं है, वह अज्ञानी जीव अन्तकाल में नीचे घोर अन्धकार युक्त नरक में चला जाता है और वहाँ नीचा शिर एवं ऊँचे पाँव किये हुए अत्यन्त कठोर वेदना का वेदन करता है ॥५॥

२. णिरय पुढवीसु-पुढवीआईणं फास परूवणं–

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया केरिसयं पुढविफासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ?

उ. गोयमा ! अणिट्ठं जाव अमणामं।

एवं जाव अहेसत्तमाए।

प. इमीसे णं भन्ते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया केरिसयं आउफासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ?

उ. गोयमा ! अणिट्ठं जाव अमणामं।

एवं जाव अहेसत्तमाए।

एवं तेउ-वाउ-वणप्फइफासं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए[१]।

–जीवा. पडि. ३, सु. ९२

२. नरक पृथ्वियों में पृथ्वी आदि के स्पर्श का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के भूमिस्पर्श का अनुभव करते हैं ?

उ. गौतम ! वे अनिष्ट यावत् अमणाम भूमिस्पर्श का अनुभव करते हैं।

इसी प्रकार अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के जलस्पर्श का अनुभव करते हैं ?

उ. गौतम ! अनिष्ट यावत् अमणाम जलस्पर्श का अनुभव करते हैं।

इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

इसी प्रकार तेजस्, वायु और वनस्पति के स्पर्श के लिए भी अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

३. णिरएसु पुरेकडाइं दुक्कडं कम्मफलाइं वेदेंति–

अहावरं सासयदुक्खधम्मं,
तं भे पवक्खामि जहातहेणं।
बाला जहा दुक्कडकम्मकारी,
वेदेंति कम्माइं पुरेकडाइं ॥१॥

३. नरकों में पूर्वकृत दुष्कृत कर्म फलों का वेदन–

इसके पश्चात् अब मैं शाश्वत दुःख देने के स्वभाव वाले नरक के सम्बन्ध में यथार्थरूप से अन्य [illegible] कहूँगा [illegible] दुष्कृत [illegible] कर्म करने वाले अज्ञानी जीव किस प्रकार (पूर्व जन्म में) [illegible] स्वकर्मों का फल भोगते हैं ॥१॥

१. [illegible]

३४. णिरयगई अज्झयणं

सूत्र

१. निरयगमणस्स कारणानि परूवणं–

पुच्छिस्स हं केवलियं महेसिं,
कहं भियावा णरगा पुरत्था।
अजाणतो मे मुणि बूहि जाणं,
कहे णु बाला णरगं उवेंति ॥१ ॥

एवं मए पुट्ठे महाणुभागे,
इणमब्ववी कासवे आसुपण्णे।
पवेदइस्सं दुहमट्ठदुग्गं,
आईणियं दुक्कडियं पुरत्था ॥२ ॥

जे केइ बाला इह जीवियट्ठी,
पावाइं कम्माइं करेंति रुद्दा।
ते घोररूवे तिमिसंधयारे,
तिव्वाभितावे नरए पडंति ॥३ ॥

तिव्वं तसे पाणिणो थावरे य,
जे हिंसई आयसुहं पडुच्चा।
जे लूसए होइ अदत्तहारी,
ण सिक्खई सेयवियस्स किंचि ॥४ ॥

पागब्भिपाणे बहुणं तिवाई,
अणिव्वुडे घातमुवेइ बाले।
णिहो णिसं गच्छइ अंतकाले,
अहो सिरं कट्टु उवेइ दुग्गं ॥५ ॥

–सूय. सु. १, अ. ५, उ. १, गा. १-५

२. णिरय पुढवीसु-पुढवीआईणं फास परूवणं–

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया केरिसयं पुढविफासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ?

उ. गोयमा ! अणिट्ठं जाव अमणामं।

एवं जाव अहेसत्तमाए।

प. इमीसे णं भन्ते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया केरिसयं आउफासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ?

उ. गोयमा ! अणिट्ठं जाव अमणामं।

एवं जाव अहेसत्तमाए।

एवं तेउ-वाउ-वणप्फइफासं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए[1]।

[illegible]

३४. नरक गति-अध्ययन

सूत्र

१. नरक गमन के कारणों का प्ररूपण–

(सुधर्मा स्वामी) मैंने केवलज्ञानी महर्षि महावीर स्वामी से पूछा था– "नैरयिक किस प्रकार के अभिताप से युक्त हैं ? हे मुने ! आप जानते हैं इसलिए मुझ अज्ञात को कहें कि–'मूढ़ अज्ञानी जीव किस कारण से नरक पाते है ? ॥१ ॥

इस प्रकार मेरे (सुधर्मा स्वामी) द्वारा पूछे जाने पर महाप्रभावक आशुप्रज्ञ काश्यपगोत्रीय (भगवान महावीर) ने यह कहा "यह नरक दुःखदायक एवं विषम है वह दुष्प्रवृत्ति करने वाले अत्यन्त दीन जीवों का निवासस्थान है, वह कैसा है मैं आगे बताऊँगा' ॥२ ॥

इस लोक में जो अज्ञानी जीव अपने जीवन के लिए रौद्र पापकर्मो को करते हैं, वे घोर निविड़ अन्धकार से युक्त तीव्रतम ताप वाले नरक में गिरते हैं ॥३ ॥

जो जीव अपने विषयसुख के निमित्त त्रस और स्थावर प्राणियों की तीव्र परिणामों से हिंसा करता है, अनेक उपायों से प्राणियों का उपमर्दन करता है, अदत्त को ग्रहण करने वाला है और जो श्रेयस्कर सीख को बिल्कुल ग्रहण नहीं करता है ॥४ ॥

जो पुरुष पाप करने में धृष्ट है, अनेक प्राणियों का घात करता है, पापकार्यों से निवृत्त नहीं है, वह अज्ञानी जीव अन्तकाल में नीचे घोर अन्धकार युक्त नरक में चला जाता है और वहाँ नीचा सिर एवं ऊँचे पाँव किये हुए अत्यन्त कठोर वेदना का वेदन करता है ॥५ ॥

२. नरक पृथ्वियों में पृथ्वी आदि के स्पर्श का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के भूमिस्पर्श का अनुभव करते हैं ?

उ. गौतम ! वे अनिष्ट यावत् अमणाम भूमिस्पर्श का अनुभव करते हैं।

इसी प्रकार अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के जलस्पर्श का अनुभव करते हैं ?

उ. गौतम ! अनिष्ट यावत् अमणाम जलस्पर्श का अनुभव करते हैं।

इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

इसी प्रकार तेजस्, वायु और वनस्पति के स्पर्श के लिए भी [illegible]

नरकगति अध्ययन

इस अध्ययन में नरकगति एवं नैरयिकों से सम्बद्ध वर्णन उपलब्ध है। सात प्रकार की नरक पृथ्वियों, नरकावासों तथा शरीर, अवगाहना, संहनन, संस्थान, लेश्या, स्थिति आदि विभिन्न २५ द्वारों से नैरयिक जीवों के विषय में जानकारी करने के लिए जीवाजीवाभिगम सूत्र अथवा इस ग्रन्थ के अन्य अध्ययन द्रष्टव्य हैं। किन्तु इस अध्ययन में सूत्रकृताङ्ग एवं व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्रों में उपलब्ध नैरयिक विषयक वर्णन का भी उल्लेख है। संक्षेप में इस अध्ययन की विषय वस्तु नरक में जाने के कारणों, वहाँ प्राप्त दुःखद फलों, अनिष्ट यावत् अमनाम स्पर्शादि अनुभवों पर केन्द्रित है।

नरक में जाने के प्रायः चार कारण माने जाते हैं–महारम्भ, महापरिग्रह, पञ्चेन्द्रियवध एवं माँस भक्षण। किन्तु यहाँ सूत्रकृताङ्ग सूत्र के अनुसार इसके अग्राङ्कित कारण दिए गए हैं–जो जीव अपने विषय सुख के लिए त्रस और स्थावर प्राणियों की तीव्र परिणामों से हिंसा करता है, अनेक उपायों से प्राणियों का उपमर्दन करता है, अदत्त को ग्रहण करता है, श्रेयस्कर सीख को नहीं स्वीकारता है वह नरक में जाता है। इसी प्रकार जो जीव पाप करने में धृष्ट है, बहुत से प्राणियों का घात करता है, पाप कार्यों से निवृत्त नहीं है, वह अज्ञानी जीव अन्तकाल में घोर अन्धकार युक्त नरक में जाता है।

नैरयिक जीवों को शीत, उष्ण, भूख, प्यास, शस्त्रविकुर्वण आदि अनेक वेदनाएँ भोगनी पड़ती हैं। इनका वर्णन इस द्रव्यानुयोग के वेदना अध्ययन में द्रष्टव्य है। वे पृथ्वी, अप्, तेजस्, वायु एवं वनस्पति का स्पर्श करते हैं तो वह भी उन्हें अनिष्ट, अकांत, अप्रिय, अमनोज्ञ एवं अमनाम अनुभव होता है। ऐसा अनुभव रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक पृथ्वी से लेकर सातवीं पृथ्वी तक सबमें होता है। नरक वस्तुतः दुःखदायक एवं विषम है। यहाँ पर पूर्वकृत दुष्कर्मों का दुःखद फल भोगा जाता है। नरकपाल एवं परमाधर्मी देव नैरयिकों को विविध प्रकार की यातनाएँ देते हैं। नैरयिक किस प्रकार का असह्य एवं हृदय द्रावक दुःख भोगते हैं इसका वर्णन प्रस्तुत अध्ययन में विस्तार से हुआ है। इसमें एक सदाजला नामक नदी का भी उल्लेख है जिसमें जल के साथ क्षार, मवाद एवं रक्त भी है। यह आग से पिघले हुए लोहे की भाँति अत्यन्त उष्ण है। नैरयिकों को काने वाले भूखे एवं ढीठ सियारों का भी इसमें उल्लेख हुआ है।

इसमें एक यह सत्य प्रकट हुआ है कि जो जीव जिस प्रकार के कर्म करता है उसको उनके अनुरूप फल भोगना होता है। यदि जीव ने एकान्त दुःख रूप नरक भव के योग्य कर्मों का बंध किया है तो उसे नरक का दुःख भोगना होता है। नैरयिक जीव सदैव भयग्रस्त, त्रसित, भूखे, उद्विग्न, उपद्रवग्रस्त एवं क्रूर परिणाम वाले होते हैं। वे सदैव परम अशुभ नरक भव का अनुभव करते रहते हैं।

वे पुद्गल परिणाम से लेकर वेदना लेश्या, नाम-गोत्र, भय, शोक, क्षुधा, पिपासा, व्याधि, उच्छ्वास, अनुताप, क्रोध, मान, माया, लोभ एवं आहारादि चार संज्ञाओं के परिणामों का अनिष्ट, अप्रिय, अमनोज्ञ एवं अमनाम रूप में अनुभव करते हैं। ये समस्त परिणाम २० प्रकार के माने गए हैं जिनका उल्लेख जीवाभिगम सूत्र में हुआ है।

नैरयिक जीव नरक में उत्पन्न होते ही मनुष्य लोक में आना चाहते हैं, किन्तु नरक में भोग्य कर्मों के क्षीण हुए बिना वहाँ से आ नहीं सकते। नरकावासों के परिपार्श्व में जो पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक एवं वनस्पतिकायिक जीव हैं वे भी महाकर्म, महाक्रिया, महा आश्रव एवं महावेदना वाले होते हैं।

चार-सौ पाँच सौ योजन पर्यन्त नरकलोक नैरयिक जीवों से ठसाठस भरा हुआ है। इस प्रकार नरक में अत्यन्त दुःख है। यही इस अध्ययन का प्रतिपाद्य विषय है।

□

नरकगति अध्ययन

इस अध्ययन में नरकगति एवं नैरयिकों से सम्बद्ध वर्णन उपलब्ध है। सात प्रकार की नरक पृथ्वियां, नरकावासों तथा शरीर, अवगाहना, संहनन, संस्थान, लेश्या, स्थिति आदि विभिन्न २५ द्वारों से नैरयिक जीवों के विषय में जानकारी करने के लिए जीवाजीवाभिगम सूत्र अथवा इस ग्रन्थ के अन्य अध्ययन द्रष्टव्य हैं। किन्तु इस अध्ययन में सूत्रकृताङ्ग एवं व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्रों में उपलब्ध नैरयिक विषयक वर्णन का भी उल्लेख है। संक्षेप में इस अध्ययन की विषय वस्तु नरक में जाने के कारणों, वहाँ प्राप्त दुःखद फलों, अनिष्ट यावत् अमनाम स्पर्शादि अनुभवों पर केन्द्रित है।

नरक में जाने के प्रायः चार कारण माने जाते हैं–महारम्भ, महापरिग्रह, पञ्चेन्द्रियवध एवं माँस भक्षण। किन्तु यहां सूत्रकृताङ्ग सूत्र के अनुसार इसके अग्राङ्कित कारण दिए गए हैं–जो जीव अपने विषय सुख के लिए त्रस और स्थावर प्राणियों की तीव्र परिणामों से हिंसा करता है, अनेक उपायों से प्राणियों का उपमर्दन करता है, अदत्त को ग्रहण करता है, श्रेयस्कर सीख को नहीं स्वीकारता है वह नरक में जाता है। इसी प्रकार जो जीव पाप करने में धृष्ट है, बहुत से प्राणियों का घात करता है, पाप कार्यों से निवृत्त नहीं है, वह अज्ञानी जीव अन्तकाल में घोर अन्धकार युक्त नरक में जाता है।

नैरयिक जीवों को शीत, उष्ण, भूख, प्यास, शस्त्रविकुर्वण आदि अनेक वेदनाएँ भोगनी पड़ती हैं। इनका वर्णन इस द्रव्यानुयोग के वेदना अध्ययन में द्रष्टव्य है। वे पृथ्वी, अप्, तेजस्, वायु एवं वनस्पति का स्पर्श करते हैं तो वह भी उन्हें अनिष्ट, अकांत, अप्रिय, अमनोज्ञ एवं अमनाम अनुभव होता है। ऐसा अनुभव रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक पृथ्वी से लेकर सातवीं पृथ्वी तक सबमें होता है। नरक वस्तुतः दुःखदायक एवं विषम है। यहाँ पर पूर्वकृत दुष्कर्मों का दुःखद फल भोगा जाता है। नरकपाल एवं परमाधर्मी देव नैरयिकों को विविध प्रकार की यातनाएँ देते हैं। नैरयिक किस प्रकार का असह्य एवं हृदय द्रावक दुःख भोगते हैं इसका वर्णन प्रस्तुत अध्ययन में विस्तार से हुआ है। इसमें एक सदाजला नामक नदी का भी उल्लेख है जिसमें जल के साथ क्षार, मवाद एवं रक्त भी है। यह आग से पिघले हुए लोहे की भाँति अत्यन्त उष्ण है। नैरयिकों को काने वाले भूखे एवं ढीठ सियारों का भी इसमें उल्लेख हुआ है।

इसमें एक यह सत्य प्रकट हुआ है कि जो जीव जिस प्रकार के कर्म करता है उसको उनके अनुरूप फल भोगना होता है। यदि जीव ने एकान्त दुःख रूप नरक भव के योग्य कर्मों का बंध किया है तो उसे नरक का दुःख भोगना होता है। नैरयिक जीव सदैव भयग्रस्त, त्रसित, भूखे, उद्विग्न, उपद्रवग्रस्त एवं क्रूर परिणाम वाले होते हैं। वे सदैव परम अशुभ नरक भव का अनुभव करते रहते हैं।

वे पुद्गल परिणाम से लेकर वेदना लेश्या, नाम-गोत्र, भय, शोक, क्षुधा, पिपासा, व्याधि, उच्छ्वास, अनुताप, क्रोध, मान, माया, लोभ एवं आहारादि चार संज्ञाओं के परिणामों का अनिष्ट, अप्रिय, अमनोज्ञ एवं अमनाम रूप में अनुभव करते हैं। ये समस्त परिणाम २० प्रकार के माने गए हैं जिनका उल्लेख जीवाभिगम सूत्र में हुआ है।

नैरयिक जीव नरक में उत्पन्न होते ही मनुष्य लोक में आना चाहते हैं, किन्तु नरक में भोग्य कर्मों के क्षीण हुए बिना वहाँ से आ नहीं सकते। नरकावासों के परिपार्श्व में जो पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक एवं वनस्पतिकायिक जीव हैं वे भी महाकर्म, महाक्रिया, महा आश्रव एवं महावेदना वाले होते हैं।

चार-सौ पाँच सौ योजन पर्यन्त नरकलोक नैरयिक जीवों से ठसाठस भरा हुआ है। इस प्रकार नरक में अत्यन्त दुःख है। यही इस अध्ययन का प्रतिपाद्य विषय है।

□

३४. णिरयगई अज्झयणं

सूत्र

१. **णिरयगमणस्स कारणानि परूवणं–**

पुच्छिस्स हं केवलियं महेसिं,
कहं भियावा णरगा पुरत्था।
अजाणतो मे मुणि बूहि जाणं,
कहं णु वाला णरगं उवेंति ॥१॥

एवं मए पुट्ठे महाणुभागे,
इणमव्ववी कासवे आसुपण्णे।
पवेदइस्सं दुहमट्ठदुग्गं,
आईणियं दुक्कडियं पुरत्था ॥२॥

जे केइ वाला इह जीवियट्ठी,
पावाइं कम्माइं करेंति रुद्दा।
ते घोररूवे तिमिसंधयारे,
तिव्वाभितावे नरए पडंति ॥३॥

तिव्वं तसे पाणिणो थावरे य,
जे हिंसई आयसुहं पडुच्चा।
जे लूसए होइ अदत्तहारी,
ण सिक्खई सेयवियस्स किंचि ॥४॥

पागब्भिपाणे वहुणं तिवाई,
अणिव्वुडे घातमुवेइ वाले।
णिहो णिसं गच्छइ अंतकाले,
अहो सिरं कट्टु उवेइ दुग्गं ॥५॥

–सूय. सु. १, अ. ५, उ. १, गा. १-५

२. **णिरय पुढवीसु-पुढवीआईणं फास परूवणं–**

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया केरिसयं पुढविफासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ?

उ. गोयमा ! अणिट्ठं जाव अमणामं।

एवं जाव अहेसत्तमाए।

प. इमीसे णं भन्ते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया केरिसयं आउफासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ?

उ. गोयमा ! अणिट्ठं जाव अमणामं।

एवं जाव अहेसत्तमाए।

एवं तेउ-वाउ-वणस्सइफासं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए[1]।

–जीवा. पडि. ३, सु. ९२

३. **णिरएसु पुव्वकडाइं दुक्कडं कम्मफलाइं वेदेंति–**

[illegible]

३४. नरक गति-अध्ययन

सूत्र

१. **नरक गमन के कारणों का प्ररूपण–**

(सुधर्मा स्वामी) मैंने केवलज्ञानी महर्षि महावीर स्वामी से पूछा था–"नैरयिक किस प्रकार के अभिताप से युक्त हैं ? हे मुने ! आप जानते हैं इसलिए मुझ अज्ञात को कहें कि–'मूढ़ अज्ञानी जीव किस कारण से नरक पाते है ?॥१॥

इस प्रकार मेरे (सुधर्मा स्वामी) द्वारा पूछे जाने पर महाप्रभावक आशुप्रज्ञ काश्यपगोत्रीय (भगवान महावीर) ने यह कहा "यह नरक दुःखदायक एवं विषम है वह दुष्प्रवृत्ति करने वाले अत्यन्त दीन जीवों का निवासस्थान है, वह कैसा है मैं आगे बताऊँगा'॥२॥

इस लोक में जो अज्ञानी जीव अपने जीवन के लिए रौद्र पापकर्मों को करते हैं, वे घोर निविड़ अन्धकार से युक्त तीव्रतम ताप वाले नरक में गिरते हैं॥३॥

जो जीव अपने विषयसुख के निमित्त त्रस और स्थावर प्राणियों की तीव्र परिणामों से हिंसा करता है, अनेक उपायों से प्राणियों का उपमर्दन करता है, अदत्त को ग्रहण करने वाला है और जो श्रेयस्कर सीख को विल्कुल ग्रहण नहीं करता है॥४॥

जो पुरुष पाप करने में धृष्ट है, अनेक प्राणियों का घात करता है, पापकार्यों से निवृत्त नहीं है, वह अज्ञानी जीव अन्तकाल में नीचे घोर अन्धकार युक्त नरक में चला जाता है और वहाँ नीचा शिर एवं ऊँचे पांव किये हुए अत्यन्त कठोर वेदना का वेदन करता है॥५॥

२. **नरक पृथ्वियों में पृथ्वी आदि के स्पर्श का प्ररूपण–**

प्र. भन्ते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के भूमिस्पर्श का अनुभव करते है ?

उ. गौतम ! वे अनिष्ट यावत् अमनाम भूमिस्पर्श का अनुभव करते हैं।

इसी प्रकार अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के जलस्पर्श का अनुभव करते है ?

उ. गौतम ! अनिष्ट यावत् अमनाम जलस्पर्श का अनुभव करते हैं।

इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

इसी प्रकार तेजस्, वायु और वनस्पति के स्पर्श के लिए भी अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

३. **नरकों में पूर्वकृत दुष्कृत कर्म फलों का वेदन–**

[illegible]

नरकगति अध्ययन

इस अध्ययन में नरकगति एवं नैरयिकों से सम्बद्ध वर्णन उपलब्ध है। सात प्रकार की नरक पृथ्वियों, नरकावासों तथा शरीर, अवगाहना, संहनन, संस्थान, लेश्या, स्थिति आदि विभिन्न २५ द्वारों से नैरयिक जीवों के विषय में जानकारी करने के लिए जीवाजीवाभिगम सूत्र अथवा इस ग्रन्थ के अन्य अध्ययन द्रष्टव्य हैं। किन्तु इस अध्ययन में सूत्रकृताङ्ग एवं व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्रों में उपलब्ध नैरयिक विषयक वर्णन का भी उल्लेख है। संक्षेप में इस अध्ययन की विषय वस्तु नरक में जाने के कारणों, वहाँ प्राप्त दुःखद फलों, अनिष्ट यावत् अमनाम स्पर्शादि अनुभवों पर केन्द्रित है।

नरक में जाने के प्रायः चार कारण माने जाते हैं–महारम्भ, महापरिग्रह, पञ्चेन्द्रियवध एवं माँस भक्षण। किन्तु यहाँ सूत्रकृताङ्ग सूत्र के अनुसार इसके अग्राङ्कित कारण दिए गए हैं–जो जीव अपने विषय सुख के लिए त्रस और स्थावर प्राणियों की तीव्र परिणामों से हिंसा करता है, अनेक उपायों से प्राणियों का उपमर्दन करता है, अदत्त को ग्रहण करता है, श्रेयस्कर सीख को नहीं स्वीकारता है वह नरक में जाता है। इसी प्रकार जो जीव पाप करने में धृष्ट है, बहुत से प्राणियों का घात करता है, पाप कार्यों से निवृत्त नहीं है, वह अज्ञानी जीव अन्तकाल में घोर अन्धकार युक्त नरक में जाता है।

नैरयिक जीवों को शीत, उष्ण, भूख, प्यास, शस्त्रविकुर्वण आदि अनेक वेदनाएँ भोगनी पड़ती हैं। इनका वर्णन इस द्रव्यानुयोग के वेदना अध्ययन में द्रष्टव्य है। वे पृथ्वी, अप्, तेजस्, वायु एवं वनस्पति का स्पर्श करते हैं तो वह भी उन्हें अनिष्ट, अकांत, अप्रिय, अमनोज्ञ एवं अमनाम अनुभव होता है। ऐसा अनुभव रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक पृथ्वी से लेकर सातवीं पृथ्वी तक सबमें होता है। नरक वस्तुतः दुःखदायक एवं विषम है। यहाँ पर पूर्वकृत दुष्कर्मों का दुःखद फल भोगा जाता है। नरकपाल एवं परमाधर्मी देव नैरयिकों को विविध प्रकार की यातनाएँ देते हैं। नैरयिक किस प्रकार का असह्य एवं हृदय द्रावक दुःख भोगते हैं इसका वर्णन प्रस्तुत अध्ययन में विस्तार से हुआ है। इसमें एक सदाजला नामक नदी का भी उल्लेख है जिसमें जल के साथ क्षार, मवाद एवं रक्त भी है। यह आग से पिघले हुए लोहे की भाँति अत्यन्त उष्ण है। नैरयिकों को काने वाले भूखे एवं ढीठ सियारों का भी इसमें उल्लेख हुआ है।

इसमें एक यह सत्य प्रकट हुआ है कि जो जीव जिस प्रकार के कर्म करता है उसको उनके अनुरूप फल भोगना होता है। यदि जीव ने एकान्त दुःख रूप नरक भव के योग्य कर्मों का बंध किया है तो उसे नरक का दुःख भोगना होता है। नैरयिक जीव सदैव भयग्रस्त, त्रसित, भूखे, उद्विग्न, उपद्रवग्रस्त एवं क्रूर परिणाम वाले होते हैं। वे सदैव परम अशुभ नरक भव का अनुभव करते रहते हैं।

वे पुद्‌गल परिणाम से लेकर वेदना लेश्या, नाम-गोत्र, भय, शोक, क्षुधा, पिपासा, व्याधि, उच्छ्‌वास, अनुताप, क्रोध, मान, माया, लोभ एवं आहारादि चार संज्ञाओं के परिणामों का अनिष्ट, अप्रिय, अमनोज्ञ एवं अमनाम रूप में अनुभव करते हैं। ये समस्त परिणाम २० प्रकार के माने गए हैं जिनका उल्लेख जीवाभिगम सूत्र में हुआ है।

नैरयिक जीव नरक में उत्पन्न होते ही मनुष्य लोक में आना चाहते हैं, किन्तु नरक में भोग्य कर्मों के क्षीण हुए बिना वहाँ से आ नहीं सकते। नरकावासों के परिपार्श्व में जो पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक एवं वनस्पतिकायिक जीव हैं वे भी महाकर्म, महाक्रिया, महा आश्रव एवं महावेदना वाले होते हैं।

चार-सौ पाँच सौ योजन पर्यन्त नरकलोक नैरयिक जीवों से ठसाठस भरा हुआ है। इस प्रकार नरक में अत्यन्त दुःख है। यही इस अध्ययन का प्रतिपाद्य विषय है।

□

३४. णिरयगई अज्झयणं

सूत्र

१. **निरयगमणस्स कारणानि परूवणं–**

पुच्छिस्स हं केवलियं महेसिं,
कहं भियावा णरगा पुरत्था।
अजाणतो मे मुणि वूहि जाणं,
कहे णु बाला णरगं उवेंति ॥१ ॥

एवं मए पुट्ठे महाणुभागे,
इणमब्ववी कासवे आसुपण्णे।
पवेदइस्सं दुहमट्ठदुग्गं,
आईणियं दुक्कडियं पुरत्था ॥२ ॥

जे केइ बाला इह जीवियट्ठी,
पावाइं कम्माइं करेंति रुद्दा।
ते घोररूवे तिमिसंधयारे,
तिव्वाभितावे नरए पडंति ॥३ ॥

तिव्वं तसे पाणिणो थावरे य,
जे हिंसई आयसुहं पडुच्चा।
जे लूसए होइ अदत्तहारी,
ण सिक्खई सेयवियस्स किंचि ॥४ ॥

पागब्भिपाणे वहुणं तिवाई,
अणिव्वुडे घातमुवेइ बाले।
णिहो णिसं गच्छइ अंतकाले,
अहो सिरं कट्टु उवेइ दुग्गं ॥५ ॥

–सूय. सु. १, अ. ५, उ. १, गा. १-५

२. **णिरय पुढवीसु-पुढवीआईणं फास परूवणं–**

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया केरिसयं पुढविफासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ?

उ. गोयमा ! अणिट्ठं जाव अमणामं।

एवं जाव अहेसत्तमाए।

प. इमीसे णं भन्ते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया केरिसयं आउफासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ?

उ. गोयमा ! अणिट्ठं जाव अमणामं।

एवं जाव अहेसत्तमाए।

एवं तेउ-वाउ-वणप्फइफासं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए[1]।

–जीवा. पडि. ३, सु. १२

३. **णिरएसु पुरेकडाइं दुक्कडं कम्मफलाइं वेदेंति–**

अहावरं सासयदुक्खधम्मं,
तं भे पवक्खामि जहातहेणं।
बाला जहा दुक्कडकम्मकारी,
वेदेंति कम्माइं पुरेकडाइं ॥१ ॥

३४. नरक गति-अध्ययन

सूत्र

१. **नरक गमन के कारणों का प्ररूपण–**

(सुधर्मा स्वामी) मैंने केवलज्ञानी महर्षि महावीर स्वामी से पूछा था– "नैरयिक किस प्रकार के अभिताप से युक्त हैं ? हे मुने ! आप जानते हैं इसलिए मुझ अज्ञात को कहें कि–'मूढ़ अज्ञानी जीव किस कारण से नरक पाते है ?॥१ ॥

इस प्रकार मेरे (सुधर्मा स्वामी) द्वारा पूछे जाने पर महाप्रभावक आशुप्रज्ञ काश्यपगोत्रीय (भगवान महावीर) ने यह कहा "यह नरक दुःखदायक एवं विषम है वह दुष्प्रवृत्ति करने वाले अत्यन्त दीन जीवों का निवासस्थान है, वह कैसा है मैं आगे वताऊँगा'॥२ ॥

इस लोक में जो अज्ञानी जीव अपने जीवन के लिए रौद्र पापकर्मों को करते हैं, वे घोर निविड़ अन्धकार से युक्त तीव्रतम ताप वाले नरक में गिरते हैं॥३ ॥

जो जीव अपने विषयसुख के निमित्त त्रस और स्थावर प्राणियों की तीव्र परिणामों से हिंसा करता है, अनेक उपायों से प्राणियों का उपमर्दन करता है, अदत्त को ग्रहण करने वाला है और जो श्रेयस्कर सीख को विल्कुल ग्रहण नहीं करता है॥४ ॥

जो पुरुष पाप करने में धृष्ट है, अनेक प्राणियों का घात करता है, पापकार्यों से निवृत्त नहीं है, वह अज्ञानी जीव अन्तकाल में नीचे घोर अन्धकार युक्त नरक में चला जाता है और वहाँ नीचा शिर एवं ऊँचे पाँव किये हुए अत्यन्त कठोर वेदना का वेदन करता है॥५ ॥

२. **नरक पृथ्वियों में पृथ्वी आदि के स्पर्श का प्ररूपण–**

प्र. भन्ते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के भूमिस्पर्श का अनुभव करते हैं ?

उ. गौतम ! वे अनिष्ट यावत् अमणाम भूमिस्पर्श का अनुभव करते हैं।

इसी प्रकार अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के जलस्पर्श का अनुभव करते हैं ?

उ. गौतम ! अनिष्ट यावत् अमणाम जलस्पर्श का अनुभव करते हैं।

इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

इसी प्रकार तेजस्, वायु और वनस्पति के स्पर्श के लिए भी अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

३. **नरकों में पूर्वकृत दुष्कृत कर्म फलों का वेदन–**

इसके पश्चात् अव मैं शाश्वत दुःख देने के स्वभाव वाले नरक के सम्बन्ध में यथार्थरूप से अन्य बातों को कहूँगा जहाँ पर दुष्कृत पाप कर्म करने वाले अज्ञानी जीव किस प्रकार (पूर्व जन्म में) कृत स्वकर्मों का फल भोगते हैं॥१ ॥

---

१. विया. स. १३, उ. ४, सु. ६-९

हत्थेहि पाएहि य बंधिऊणं,
उदरं विकत्तंति खुरासिएहिं।
गेण्हेत्तु बालस्स विहन्न देहं,
वद्धं थिरं पिट्ठओ उद्धरंति ॥२ ॥

(परमाधार्मिक असुर) नारकीय जीवों के हाथ पैर बांधकर तेज उस्तरे और तलवार के द्वारा उनका पेट काट डालते हैं और उस अज्ञानी जीव की क्षत-विक्षत देह को पकड़कर उसकी पीठ की चमड़ी जोर से उधेड़ देते हैं॥२॥

बाहू पकत्तंति मूलओ से,
थूलं वियासं मुहे आडहंति।
रहंसि जुत्तं सरयंति बालं,
आरुस्स विज्झंति तुदेणपिट्ठे ॥३ ॥

वे उनकी भुजाओं को जड़ मूल से काट लेते हैं और बड़े-बड़े तपे हुए गोले को मुँह में डालते हैं फिर एकान्त में ले जाकर उन अज्ञानी जीवों के जन्मान्तर कृत कर्म का स्मरण कराते हैं और अकारण ही कोप करके चावुक आदि से उनकी पीठ पर प्रहार करते हैं॥३॥

अयं तत्तं जलियं सजोइं,
तओवमं भूमिमणोक्कमंता।
ते डज्झमाणा कलुणं थणंति,
उसुचोइया तत्तजुगेसु जुत्ता ॥४ ॥

ज्योतिसहित तपे हुए लोहे के गोले के समान जलती हुई तप्त भूमि पर चलने से और तीक्ष्ण भाले से प्रेरित गाड़ी के तप्त जुए में जुते हुए वे नारकी जीव करुण विला करते हैं॥४॥

बाला बला भूमि मणोक्कमंता,
पविज्जलं लोहपहं व तत्तं।
जंसीऽभिदुग्गंसि पवज्जमाणा,
पेसेव दंडेहिं पुरा करेंति ॥५ ॥

अज्ञानी नारक जलते हुए लोहमय मार्ग के समान (रक्त और मवाद के कारण) कीचड़ में भी भूमि पर (परमाधार्मिकों द्वारा) वलात् चलाये जाते हैं किन्तु जव वे उस दुर्गम स्थान पर ठीक से नहीं चलते हैं तव (कुपित होकर) डंडे आदि मारकर वैलों की तरह जवरन उन्हें आगे चलाते हैं॥५॥

ते संपगाढंसि पवज्जमाणा,
सिलाहिं हम्मंतिऽभिपातिणीहिं।
संतावणी नाम चिरट्ठिईया,
संतप्पइ जत्थ असाहुकम्मा ॥६ ॥

तीव्र वेदना से व्याप्त नरक में रहने वाले वे (नारकी जीव) सम्मुख गिरने वाली शिलाओं द्वारा नीचे दवकर मर जाते हैं और चिरकालिक स्थिति वाली सन्ताप देने वाली कुम्भी में वे दुष्कर्मी नारक संतप्त होते रहते हैं॥६॥

कंदूसु पक्खिप्प पयंति बालं,
तओ वि डड्ढा पुणरुप्पयंति।
ते उड्ढकाएहिं पखज्जमाणा,
अवरेहिं खज्जंति सणप्फएहिं ॥७ ॥

(नरकपाल) अज्ञानी नारक को गेंद के समान आकार वाली कुम्भी में डालकर पकाते हैं और चने की तरह भूने जाते हुए वे वहाँ से फिर ऊपर उछलते हैं जहाँ वे उड़ते हुए कौओं द्वारा खाये जाते हैं तथा नीचे गिरने पर दूसरे सिंह व्याघ्र आदि हिंस्र पशुओं द्वारा खाये जाते हैं॥७॥

समूसियं नाम विधूमठाणं,
जं सोयतत्ता कलुणं थणंति।
अहोसिरं कट्टु विगत्तिऊणं,
अयं व सत्थेहिं समोसवेंति।८ ॥

नरक में (ऊँची चिता के समान आकार वाला) धूम रहित अग्नि का एक स्थान है जिस स्थान को पाकर शोक संतप्त नारकी जीव करुण स्वर में विलाप करते हैं और नारकपाल उसके सिर को नीचा करके शरीर को लोहे की तरह शस्त्रों से काटकर टुकड़े टुकड़े कर डालते हैं॥८॥

समूसिया तत्थ विसूणियंगा,
पक्खीहिं खज्जंति अयोमुहेहिं।
संजीवणी नाम चिरट्ठिईया,
जंसि पया हम्मइ पावचेया ॥९ ॥

वहाँ नरक में (अधोमुख करके) लटकाए हुए तथा शरीर की चमड़ी उधेड़ ली गई है ऐसे नारकी जीवों को लोहे के समान चोंच वाले पक्षीगण खा जाते हैं। जहाँ पर पापात्मा नारकीय जीव मारे पीटे जीते हैं किन्तु संजीवनी (मरण कष्ट पाकर भी आयु शेष रहने तक जीवित रखने वाली) नामक नरक भूमि होने से वह चिरस्थिति वाली होती है॥९॥

तिक्खाहिं सूलाहिं भियावयंति,
वसोवगं सो अरियं व लद्धुं।
ते सूलविद्धा कलुणं थणंति,
एगंतदुक्खं दुहओ गिलाणा ॥१० ॥

वशीभूत हुए श्वापद हिंस्र पशुओं जैसे नारकी जीवों को परमाधार्मिक तीखे शूलों से बींधकर मार गिराते हैं वे शूलों से बींधे हुए (भीतर और वाहर) दोनों ओर से ग्लानि (पीड़ित) एवं एकान्त दुःखी होकर करुण क्रन्दन करते हैं)॥१०॥

सदा जलं ठाणं निहं महंतं,
जंसी जलंती अगणी अकट्ठा।
चिट्ठंती तत्था बहुकूरकम्मा,
अरहस्सरा केइ चिरट्ठिईया ॥११ ॥

वहाँ (नरकों में) सदैव जलता हुआ एक महान् (प्राणिघातक) स्थान है, जिसमें बिना ईंधन की आग जलती रहती है जिन्होंने (पूर्वजन्म में) वहुत क्रूर कर्म किये हैं वे कई चिरकाल तक वहाँ निवास करते हैं और जोर-जोर से गला फाड़कर रोते हैं॥११॥

चिता महंती उ समारभित्ता,
छुब्भंति ते तं कलुणं रसंतं।
आवट्टई तत्थ असाहुकम्मा,
सप्पी जहा पतितं जोइमज्झे ॥१२॥

वे परमाधार्मिक बड़ी भारी चिता रचकर उसमें करुण रुदन करते हुए नारकीय जीव को फेंक देते हैं जैसे घी अग्नि में डालते ही पिघल जाता है, वैसे ही उस चिता की अग्नि में पड़ा हुआ पाप-कर्मी नारक भी द्रवीभूत हो जाता है ॥१२॥

सदा कसिणं पुण धम्मठाणं,
गाढोवणीयं अतिदुक्खधम्मं।
हत्थेहिं पाएहिं य बंधिऊणं,
सत्तुं व दण्डेहिं समारभंति ॥१३॥

वहाँ पर एक ऐसा स्थान है जो सदैव सम्पूर्ण रूप से गर्म रहता है जिसका स्वभाव अतिदुःख देना है तथा जिसको निकाचित पाप कर्मों को बांधने वाले प्राप्त करते हैं। वे परमाधार्मिक देव उन नारकों के शत्रु के समान बनकर उनके हाथ पैर बांधकर डंडों से पीटते हैं ॥१३॥

भंजंति बालस्स वहेण पट्ठि,
सीसंपि भिंदंति अयोघणेहिं।
ते भिन्नदेहा व फलगावतट्ठा,
तत्ताहिं आराहिं णियोजयंति ॥१४॥

वे परमाधार्मिक देव उन अज्ञानी जीवों की पीठ को लाठी आदि से मार मार कर तोड़ देते हैं और उनका सिर भी लोहे के घन से चूर-चूर कर देते हैं और छिन्न भिन्न शरीर वाले उन नारकों को काष्ठफलक की तरह तपे हुए आरे से चीरते हैं ॥१४॥

अभिजुंजिया रूद्द असाहुकम्मा,
उसुचोइया हत्थिवहं वहंति।
एगं दुरूहित्तु दुए तयो वा,
आरुस्स विज्झंति ककाणओ से ॥१५॥

नरकपाल नारकीय जीवों के रौद्र पापकर्मों का स्मरण करा कर अंकुश से प्रेरित किये हुए हाथी के समान भार वहन कराते हैं। उनकी पीठ पर एक दो या तीन नारकीयों को चढ़ाकर उन्हें चलने के लिए प्रेरित करते हैं और क्रुद्ध होकर तीखे नोकदार शस्त्र से उनके मर्मस्थान को बींध डालते हैं ॥१५॥

बाला वला भूमि मणोक्कमंता,
पविज्जलं कंटइलं महंतं।
विबद्ध तप्पेहिं विवण्णचित्ते,
समीरिया कोट्ट बलिं करेंति ॥१६॥

वालक के समान वेचारे नारकी जीव नरकपालों द्वारा वलात् कीचड़ से भरी और काँटों से परिपूर्ण विस्तृत भूमि पर चलाये जाते हैं और अनेक प्रकार के बंधनों से बांधे हुए उदास चित्त उन नारक जीवों के टुकड़े-टुकड़े करके नगरबलि के समान इधर उधर बिखेर दिये जाते हैं ॥१६॥

वेयालिए नाम महाभितावे,
एगायए पव्वयमंतलिक्खे।
हम्मंति तत्था बहुकूरकम्मा,
परं सहस्साण मुहुत्तगाणं ॥१७॥

आकाश को स्पर्श करता हुआ (दिवाल के समान) एक शिला से वनाया हुआ लम्बा बड़े भारी ताप से युक्त वैतालिक नामक एक पर्वत है। उस पर अतिक्रूरकर्मी नारकी जीव हजारों मुहूर्तों से भी अधिक काल तक मारे जाते हैं ॥१७॥

संबाहिया दुक्कडियो थणंति,
अहो य राओ परितप्पमाणा।
एगंतकूडे नरए महंते,
कूडेण तत्था विसमे हया उ ॥१८॥

निरन्तर पीड़ित किये जाने से दुःखी, दुष्कर्म करने वाले नैरयिक दिन-रात परिताप भोगते हुए रोते रहते हैं और एकान्त रूप से दुःखोत्पत्ति के हेतु विषम और विशाल नरक में पड़े हुए प्राणी गले में फांसी डालकर मारे जाते समय केवल रोते रहते हैं ॥१८॥

भंजंति णं पुव्वमरी सरोसं,
समुग्गरे ते मुसले गहेउं।
ते भिन्नदेहा रुहिरं वमंता,
ओमुद्धगा धरणितले पडंति ॥१९॥

पहले तो वे नरकपाल मुद्गर और मूसल हाथ में लेकर शत्रु के समान रोष के साथ नारकी जीवों के अंगों को तोड़ फोड़ देते हैं और जिनकी देह टूट गई है ऐसे वे नारकी जीव रक्त वमन करते हुए अधोमुख होकर जमीन पर गिर पड़ते हैं ॥१९॥

अणासिया नाम महासियाला,
पागब्भिणो तत्थ सयायकोवा।
खज्जंति तत्था बहुकूरकम्मा,
अदूरयासंकलियाहिं बद्धा ॥२०॥

उस नरक में स्वभाव से ही सदैव क्रोधी भूखे और ढीठ बड़े-बड़े सियार रहते हैं। जो वहाँ रहने वाले जन्मान्तर में महान् क्रूर कर्म करने वाले और पास में ही जंजीरों से बंधे हुए उन नारकों को खा जाते हैं ॥२०॥

सयाजलानाम नदीऽभिदुग्गा,
पविज्जला लोहविलीणतत्ता।
जंसी भिदुग्गंसि पवज्जमाणा,
एगाइताऽणुक्कमणं करेंति ॥२१॥

सदाजला नाम की एक अत्यन्त दुर्गम नदी है जिसका जल क्षार, मवाद और रक्त से व्याप्त है और वह आग से पिघले हुए तरल लोहे के समान अत्यन्त उष्ण है ऐसी अत्यन्त दुर्गम नदी में प्रवेश किये हुए नारक जीव अकेले ही असहाय होकर तैरते रहते हैं ॥२१॥

एयाइं फासाइं फुसंति बालं,
निरंतरं तत्थ चिरट्ठिईयं।
ण हम्ममाणस्स उ होइ ताणं,
एगो सयं पच्चणुहोइ दुक्खं॥२२॥

जे जारिसं पुव्वमकासि कम्मं,
तहेव आगच्छइ संपराए।
एगंतदुक्खं भवमिज्जणित्ता,
वेदेंति दुक्खी तमणंत दुक्खं॥२३॥

एयाणि सोच्चा णरगाणि धीरे,
न हिंसए कंचण सव्वलोए।
एगंतदिट्ठी अपरिग्गहे उ,
बुज्झिज्ज लोगस्स वसं न गच्छे।२४।

एवं तिरिक्खमणुयामरेसुं,
चउरंतणंतं तयणूविवागं।
स सव्वमेयं इइ वेयइत्ता,
कंखेज्जकालं धुयमायरेज्जा॥ *–सूय. सु. १, अ. ५, उ. २, सु. २५*

वहाँ (नरकों में) सुदीर्घ आयु वाले अज्ञानी नारक निरन्तर इस प्रकार की वेदनाओं से पीड़ित रहते हैं, पूर्वोक्त दुःखों से आहत होते हुए भी उनका कोई भी रक्षक नहीं होता, वे स्वयं अकेले ही उन दुःखों का अनुभव करते हैं॥२२॥

पूर्वजन्म में जिसने जैसा कर्म किया है वही दूसरे भव में उदय में आता है। जिन्होंने एकान्त दुःख रूप नरकभव के योग्य कर्मों का उपार्जन किया है वे दुःखी जीव अनन्तदुःख रूप उस (नरक) का वेदन करते हैं॥२३॥

बुद्धिशील धीर व्यक्ति इन नरकों के वर्णन को सुनकर समस्त लोक में किसी भी प्राणी की हिंसा न करे, लक्ष्य के प्रति निश्चित दृष्टि वाला और परिग्रहरहित होकर लोक (संसार) के स्वरूप को समझे किन्तु कदापि उसके वश में न होवे॥२४॥

इसी प्रकार तिर्यञ्च, मनुष्य और देवों के दुःखों को भी जानना चाहिए। यह चारगति रूप अनन्त संसार है और कृतकर्मानुसार विपाक (कर्म फल) होता है। इस प्रकार से जानकर वह बुद्धिमान् पुरुष मरण समय तक आत्म गवेषणा करते हुए संयम साधना का आचरण करे॥

४. णेरइय णिरयभावाणं अणुभवण परूवणं–

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया केरिसयं णिरयभवं पच्चणुभवमाणा विहरंति ?

उ. गोयमा ! ते णं तत्थ णिच्चं भीया, णिच्चं तसिया, णिच्चं छुहिया, णिच्चं उव्विग्गा, णिच्चं उवद्दुआ, णिच्चं वहिया, णिच्चं परममसुभमउलमणुबद्धं निरयभवं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

एवं जाव अहेसत्तमाए णं पुढवीए पंच अणुत्तरा महइमहालया महाणरगा पण्णत्ता, तं जहा–

१. काले, २. महाकाले,
३. रोरुए, ४. महारोरुए,
५. अप्पइट्ठाणे।

तत्थ इमे पंच महापुरिसा अणुत्तरेहिं दंडसमादाणेहिं कालमासे कालं किच्चा अप्पइट्ठाणं णरए णेरइयत्ताए उववण्णाा, तं जहा–

१. रामे जमदग्गिपुत्ते, २. दढाऊलच्छइपुत्ते,
३. वसू उवरिचरे, ४. सुभूमे कोरव्वे,
५. वंभदत्ते चुलणिसुए।

ते णं तत्थ नेरइया जाया काला कालोभासा जाव

ते णं तत्थ वेयणं वेदेंति-उज्जलं विउलं जाव दुरहियासं।
–जीवा. पडि. ३, सु. ८९ (४)

४. नैरयिकों के नैरयिक भावादि अनुभवन का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के नरक भव का अनुभव करते हुए विचरते हैं ?

उ. गौतम ! वे वहाँ नित्य डरे हुए रहते हैं, नित्य त्रसित रहते हैं, नित्य भूखे रहते हैं, नित्य उद्विग्न रहते हैं, नित्य उपद्रवग्रस्त रहते हैं, नित्य वधिक के समान क्रूर परिणाम वाले रहते हैं, परम अशुभ अनन्य सद्दृश नरकभव का अनुभव करते हुए रहते हैं।

इसी प्रकार यावत् अधःसप्तम पृथ्वी में पांच अनुत्तर अति विशाल महानरक कहे गये हैं, यथा–

१. काल, २. महाकाल,
३. रौरव, ४. महारौरव,
५. अप्रतिष्ठान।

वहाँ ये पाँच महापुरुष सर्वोत्कृष्ट हिंसादि पाप कर्मों को एकत्रित कर मृत्यु के समय मरकर अप्रतिष्ठान नरक में नैरयिक रूप में उत्पन्न हुए हैं, यथा–

१. जमदग्नि का पुत्र राम, २. लच्छतिपुत्र दृढ़ायु,
३. उपरिचर वसुराज, ४. कौरव्य सुभूम,
५. चुलणिसुत ब्रह्मदत्त।

ये वहाँ उत्पन्न हुए नैरयिक काली आभा वाले यावत् अत्यन्त कृष्णवर्ण वाले कहे गए हैं,

वे वहाँ अत्यन्त जाज्वल्यमान विपुल यावत् असह्य वेदना को वेदते हैं।

५. णिरयपुढवीसु पोग्गल परिणामाणुभवण परूवणं–

प. रयणप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! केरिसयं पोग्गलपरिणामं पच्चणुभवमाणा विहरंति ?

५. नरक पृथ्वियों में पुद्गल परिणामों के अनुभवन का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के पुद्गल परिणामों का अनुभव करते हैं ?

उ. गोयमा ! अणिट्ठं जाव अमणामं।

एवं जाव अहेसत्तमापुढविनेरइया।

एवं वेदणा परिणामं जाव[1]

प. अहेसत्तमापुढविनेरइया णं भन्ते ! केरिसयं परिग्गहसण्णापरिणामं पच्चणुभवमाणा विहरंति ?

उ. गोयमा ! अणिट्ठं जाव अमणामं।

–विया. स. १४, उ.३, सु. १४-१७

उ. गौतम ! वे अनिष्ट यावत् अमनाम (मन के प्रतिकूल पुद्गल परिणाम) का अनुभव करते हैं।

इसी प्रकार अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त के नैरयिकों का कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार वेदना परिणाम का भी (अनुभव करते हैं) यावत्–

प्र. भन्ते ! अधःसप्तमपृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के परिग्रहसंज्ञा परिणाम का अनुभव करते हैं ?

उ. गौतम ! वे अनिष्ट यावत् अमनाम (परिग्रहसंज्ञा परिणाम का) अनुभव करते हैं।

६. नेरइयाणं माणुसलोगे अणागमस्स चउकारणाणि–

चउहिं ठाणेहिं अहुणोववन्ने णेरइए णिरयलोगंसि इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए, तं जहा–

१. अहुणोववन्ने णेरइए णिरयलोगंसि समुब्भूयं वेयणं वेयमाणे इच्छेज्जा, माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए।

२. अहुणोववन्ने णेरइए णिरयलोगंसि णिरयलपालेहिं भुज्जो-भुज्जो अहिट्ठिज्जमाणे इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए।

३. अहुणोववन्ने णेरइए णिरयवेयणिज्जंसि कम्मंसि अक्खीणंसि अवेइयंसि अणिज्जिन्नंसि इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए।

४. अहुणोववन्ने णेरइए णिरयाउयंसि कम्मंसि अक्खीणंसि अवेइयंसि अणिज्जिन्नंसि इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए।

इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं अहुणोववन्ने नेरइए जाव णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए। –ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २४५

६. नैरयिक का मनुष्य लोक में अनागमन के चार कारण–

चार कारणों से नरक लोक में तत्काल उत्पन्न नैरयिक शीघ्र ही मनुष्य लोक में आना चाहता है, किन्तु आ नहीं पाता, यथा–

१. तत्काल उत्पन्न नैरयिक नरक लोक में होने वाली पीड़ा का वेदन करते हुए शीघ्र ही मनुष्य लोक में आना चाहता है, किन्तु आ नहीं पाता।

२. तत्काल उत्पन्न नैरयिक नरक लोक में नरकपालों द्वारा बार-बार आक्रान्त होने पर शीघ्र ही मनुष्य लोक में आना चाहता है, किन्तु आ नहीं पाता।

३. तत्काल उत्पन्न नैरयिक शीघ्र ही मनुष्यलोक में आना चाहता है किन्तु नरक में भोगने योग्य कर्मों के क्षीण हुए बिना, उन्हें भोगे बिना, उनका निर्जरण हुए विना, वह आ नहीं पाता।

४. तत्काल उत्पन्न नैरयिक शीघ्र ही मनुष्य लोक में आना चाहता है किन्तु नरकायु के क्षीण हुए बिना, उसे भोगे बिना, उसका निर्जरण हुए बिना आ नहीं पाता।

इन चार कारणों से तत्काल उत्पन्न नैरयिक यावत् इच्छा रखते हुए भी आ नहीं पाता।

७. चउ-पंचजोयणसय निरयलोय नेरइयसमाइण्ण परूवण–

प. अन्नउत्थिया णं भन्ते ! एवमाइक्खंति जाव परूवेंति–

से जहानामए जुवइं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा, चक्कस्स वा नाभी अरगाउत्ता सिया एवामेव जाव चत्तारि पंच जोयणसयाइं बहुसमाइण्णे मणुयलोए मणुस्सेहिं से कहमेयं भन्ते ! एवं ?

उ. गोयमा ! जं णं ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खंति जाव चत्तारि पंचजोयण सयाइंबहुसमाइण्णे मणुयलोए मणुस्सेहिं, जे ते एवमाहंसु मिच्छा ते एवमाहंसु।

अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि एवामेव चत्तारि पंच जोयणसयाइं बहुसमाइण्णे निरयलोए नेरइएहिं। –विया. स. ५, उ. ६, सु. १३

७. चार सौ पाँच सौ योजन नरकलोक नैरयिकों से व्याप्त होने का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं यावत् प्ररूपण करते हैं कि–

जैसे कोई युवक अपने हाथ से युवती का हाथ कसकर पकड़े हुए हो अथवा जैसे आरों से एकदम सटी हुई पहिये की नाभि हो इसी प्रकार यावत् चार सौ पाँच सौ योजन तक यह मनुष्य लोक मनुष्यों से ठसाठस भरा हुआ है। भन्ते ! क्या यह कथन ऐसा ही है ?

उ. गौतम ! जो वे अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं–यावत् चार सौ पाँच सौ योजन मनुष्य लोक मनुष्यों से व्याप्त है, वे जो यह कहते हैं उनका यह कथन मिथ्या है।

मैं इस प्रकार कहता हूँ यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि–चार सौ पांच सौ योजन पर्यन्त नरकलोक नैरयिक जीवों से ठसाठस भरा हुआ है।

१. जीवा. पडि. ३, उ. २

८. निरयपरिसामंतवासि पुढविकाइयाइ जीवाणं महाकम्मतराइ परूवणं–

प. इमीसे णं भन्ते ! रयणप्पभाए पुढवीए णिरयपरिसामंतेसु जे पुढविकाइया जाव वणस्सइकाइया ते णं जीवा महाकम्मतरा चेव, महाकिरियतरा चेव, महासवतरा चेव, महावेदणतरा चेव?

उ. हंता, गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए निरयपरिसामंतेसु पुढविकाइया जाव वणस्सइकाइया ते णं जीवा महाकम्मतरा चेव जाव महावेदणतरा चेव।

एवं जाव अहेसत्तमा। *–विया. स. १३, उ. ४, सु. ११*

□

८. नरकावासों के पार्श्ववासी पृथ्वीकायिकादि जीवों के महाकर्मतरादि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नरकावासों के परिपार्श्व में जो पृथ्वीकायिक से वनस्पतिकायिक पर्यन्त जीव हैं क्या वे महाकर्म, महाक्रिया, महाआश्रव और महावेदना वाले हैं?

उ. हाँ, गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावासों के परिपार्श्व में पृथ्वीकाय से वनस्पतिकायिक पर्यन्त जो जीव हैं वे महाकर्म यावत् महावेदना वाले हैं।

इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

□

तिर्यञ्चगति अध्ययन

तिर्यञ्च गति ही मात्र एक ऐसी गति है, जिसमें एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव विद्यमान हैं। काया की दृष्टि से भी पृथ्वीकाय से लेकर त्रसकाय तक छहों काया के जीव तिर्यञ्चगति में उपलब्ध है। संख्या की दृष्टि से भी इसमें सबसे अधिक (अनन्त) जीव हैं। तिर्यञ्च गति के जीव चारों गतियों में जो संकेत हैं तथा चारों गतियों से आ सकते हैं। जीवों की जितनी विविधता तिर्यञ्चगति में है, उतनी अन्य किसी गति में नहीं है।

इन्द्रियों की अपेक्षा से तिर्यञ्च जीव पाँच प्रकार के हैं—१. एकेन्द्रिय, २. द्वीन्द्रिय, ३. त्रीन्द्रिय, ४. चतुरिन्द्रिय और ५. पंचेन्द्रिय। काया की अपेक्षा से सामान्य जीवों के विभाजन की भाँति तिर्यञ्च जीव छह प्रकार के हैं—१. पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक, ३. तेजस्कायिक, ४. वायुकायिक, ५. वनस्पतिकायिक और ६. त्रसकायिक। इनमें से प्रथम पाँच प्रकार एक इन्द्रिय वाले जीवों के हैं तथा त्रसकायिक में शेष द्वीन्द्रियादि समस्त तिर्यञ्च जीव आ जाते हैं। पृथ्वी ही जिनकी काया है ऐसे एकेन्द्रिय जीवों को पृथ्वीकायिक कहते हैं। अप् अर्थात् जल ही जिनकी काया है ऐसे एकेन्द्रिय जीव अप्कायिक कहलाते हैं। इसी प्रकार वायु जिनकी एवं वनस्पति ही जिनकी काया है वे जीव वनस्पतिकायिक कहे जाते हैं। ये पाँच प्रकार के जीव स्वतः गतिशील नहीं होने के कारण अथवा उनमें स्थावर नामकर्म का उदय होने के कारण स्थावर कहलाते हैं तथा शेष द्वीन्द्रियादि जीव हलन-चलन की क्रिया करने के कारण त्रसकायिक कहे जाते हैं। त्रस एवं स्थावर जीवों के एक अन्य विभाजन के अनुसार तेजस्कायिक एवं वायुकायिक जीवों को भी त्रस माना गया है क्योंकि ये दोनों एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर गति करते हुए देखे जाते हैं। इस विभाजन की अपेक्षा से काय दो प्रकार के हैं—त्रस और स्थावर। त्रस जीव तीन प्रकार के हैं—तेजस्कायिक, वायुकायिक और उदार त्रस प्राणी (द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक)। स्थावर भी तीन प्रकार के हैं—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक। स्थानांग सूत्र में स्थावरकाय के इन्द्र, ब्रह्म, शिल्प, सम्मति और प्राजापत्य ये पाँच नाम भी दिए गए हैं जिन्हें जैनाचार्यों ने क्रमशः पृथ्वी, अप्, तेजस्, वायु एवं वनस्पति काय का ही द्योतक माना है। वैदिक दृष्टि से ये इन्द्रादि शब्द शोध के विषय हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवों का विविध प्रकार से विभिन्न द्वारों के माध्यम से वर्णन हुआ है। वनस्पतिकाय के उत्पल आदि भेदों का भी विस्तृत निरूपण हुआ है। द्वीन्द्रियादि एवं पंचेन्द्रिय जीवों का निरूपण प्रसंगानुसार हो गया है। यहाँ पर तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के जलचर, स्थलचर, खेचर, उपपरिसर्प और भुजपरिसर्प इन पाँच भेदों के विषय में चर्चा नहीं है। इनके सम्बन्ध में गर्भ, वुक्रंति आदि अध्ययन द्रष्टव्य हैं।

एकेन्द्रिय जीव पाँच प्रकार के हैं :—१. पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक, ३. तेजस्कायिक, ४. वायुकायिक और ५. वनस्पतिकायिक। इन जीवों को गतिसमापन्नक एवं अगतियसमापन्नक, अनन्तरावगाढ़ एवं परम्परावगाढ़, परिणत (अचित्त) एवं अपरिणत (सचित्त) के आधार पर दो-दो भेदों में विभक्त किया गया है, किन्तु पृथ्वीकायिक आदि जीवों के प्रसिद्ध भेद हैं—१. सूक्ष्म और २. बादर। पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक पर्यन्त सभी एकेन्द्रिय जीव सूक्ष्म भी होते हैं तथा बादर भी होते हैं। सूक्ष्म जीव इतने सूक्ष्म होते हैं कि उन्हें काटा नहीं जा सकता, छेदा नहीं जा सकता, भेदा नहीं जा सकता एवं रोका नहीं जा सकता। ये जीव छद्मस्थ को दृष्टिगोचर भी नहीं होते हैं। बादर जीव अपेक्षाकृत स्थूल होते हैं। ये छद्मस्थ को दृष्टिगोचर होते हैं तथा इन्हें काटा, भेदा, छेदा एवं रोका जा सकता है। हमें पृथ्वीकायिक आदि जीवों का बादर भेद ही दिखाई देता है, सूक्ष्म नहीं। बादर एवं सूक्ष्म जीव भी पुनः दो-दो प्रकार के होते हैं—१. पर्याप्तक एवं २. अपर्याप्तक। जो जीव अपनी आहार, शरीर, इन्द्रिय एवं श्वासोच्छ्वास पर्याप्तियों को पूर्ण कर लेते हैं वे पर्याप्तक कहलाते हैं तथा जो इन पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं कर पाए हों उन्हें अपर्याप्तक कहते हैं। इस प्रकार पृथ्वीकायिक, अप्कायिक आदि एकेन्द्रिय जीव चार-चार प्रकार के होते हैं, यथा—अपर्याप्तक सूक्ष्म, पर्याप्तक सूक्ष्म, अपर्याप्तक बादर एवं पर्याप्तक बादर।

इन जीवों का अनन्तरक एवं परम्परक की दृष्टि से भी विचार किया गया है। जीव के जन्म ग्रहण करने का प्रथम क्षम अनन्तरक होता है तथा द्वितीयादि अन्य क्षण परम्परक कहलाते हैं। इस दृष्टि से अनन्तरक जीव अपर्याप्त ही होते हैं, क्योंकि प्रथम क्षण में उनकी पर्याप्तियाँ पूर्ण नहीं होती हैं। परम्परक जीव अपर्याप्तक एवं पर्याप्तक दोनों प्रकार के हो सकते हैं। इस दृष्टि से अनन्तरोपपन्नक, अनन्तरावगाढ़, अनन्तराहारक आदि एकेन्द्रिय जीव सूक्ष्म एवं बादर के अपर्याप्तक भेद वाले होते हैं, जबकि परम्परोपन्नक, परम्परावगाढ़, परम्पराहारक आदि एकेन्द्रिय जीव सूक्ष्म एवं बादर के पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक दोनों भेद वाले होते हैं। कृष्णलेश्यी, नीललेश्यी एवं कापोतलेश्यी एकेन्द्रिय जीवों में भी अपर्याप्तक सूक्ष्म, पर्याप्तक सूक्ष्म, अपर्याप्तक बादर एवं पर्याप्तक बादर (चारों) भेद पाए जाते हैं। भवसिद्धिक एवं अभवसिद्धिक एकेन्द्रियों के भी ये ही चारों भेद होते हैं। इस प्रकार एकेन्द्रिय जीवों के दो (अपर्याप्तक सूक्ष्म एवं बादर) एवं चार भेदों का विभिन्न दृष्टियों से विचार किया गया है। चरम एवं अचरम एकेन्द्रियों में चारों भेद पाए जाते हैं।

पृथ्वीकायिक आदि स्थावर जीवों में वनस्पतिकाय सबसे सूक्ष्म है तथा वही सबसे बादर भी है। वनस्पतिकाय के अनन्तर शेष रहे चार भेदों में से वायुकाय सबसे सूक्ष्म है, फिर तीन भेदों में से अग्निकाय सबसे सूक्ष्म है। पृथ्वीकाय एवं अप्काय सूक्ष्म है। बादर की अपेक्षा वनस्पतिकाय के पश्चात् शेष रहे चार भेदों में पृथ्वीकाय सबसे बादर है। फिर शेष रहे तीन भेदों में अप्काय सबसे बादर है। अग्निकाय एवं वायुकाय इन दोनों में अग्निकाय बादर है। इस प्रकार यह अपेक्षाकृत सूक्ष्म एवं बादर होने का विवेचन है।

अवगाहना की अपेक्षा इनमें अल्प बहुत्व है। सबसे अल्प अवगाहना अपर्याप्त सूक्ष्मनिगोद (वनस्पतिकाय) की जघन्य अवगाहना है। उससे अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक, अपर्याप्त सूक्ष्म अग्निकायिक, अपर्याप्त सूक्ष्म अप्कायिक एवं अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक की जघन्य अवगाहना उत्तरोत्तर असंख्यातगुणी है। सबसे अधिक अवगाहना पर्याप्त प्रत्येक शरीरी वनस्पतिकायिक जीव की उत्कृष्ट अवगाहना होती है। बादर एवं सूक्ष्म के पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक की अवगाहना मध्य में वर्णित है।

इन जीवों की परस्पर अवगाढ़ता के प्रश्न पर भगवान् फरमाते हैं कि जहाँ पृथ्वीकाय का एक जीव अवगाढ़ होता है वहाँ असंख्यात पृथ्वीकायिक जीव अवगाढ़ होते हैं तथा असंख्यात अप्कायिक, असंख्यात तेजस्कायिक, असंख्यात वायुकायिक एवं अनन्त वनस्पतिकायिक जीव अवगाढ़ होते हैं। इसी प्रकार जहां अप्काय आदि का एक जीव अवगाढ़ होता है वहाँ वनस्पतिकाय के अनन्त जीव एवं शेष स्थावरकायों के असंख्यात जीव अवगाढ़ होते हैं।

इस अध्ययन में एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों का लेश्या आदि १२ द्वारों से प्रश्नोत्तर शैली में प्ररूपण किया गया है। वे बारह द्वार हैं- १. शरीर, २. लेश्या, ३. दृष्टि, ४. ज्ञान, ५. योग, ६. उपयोग, ७. आहार, ८. पापस्थान, ९. उपपात, १०. स्थिति, ११. समुद्घात, १२. उद्वर्तना। एकेन्द्रियों में प्रथम द्वार के अनुसार पृथ्वीकायिक, अप्कायिक तेजस्कायिक एवं वायुकायिक जीव प्रत्येक जीव पृथक्-पृथक् आहार ग्रहण करते हैं और उस आहार को पृथक-पृथक् परिणत करते हैं, इसलिए वे पृथक्-पृथक् शरीर बाँधते हैं, जबकि वनस्पतिकाय के अनन्त जीव मिलकर एक साधारण शरीर बाँधते हैं और फिर आहार करते हैं, परिणमाते हैं और विशिष्ट शरीर बाँधते हैं। लेश्याएँ पृथ्वीकायादि सब स्थावरों में चार मानी गई हैं-कृष्ण, नील, कापोत एवं तेजो लेश्या। ये सभी मिथ्यादृष्टि हैं। सभी अज्ञानी हैं। इनमें मति अज्ञान एवं श्रुत अज्ञान ये दो अज्ञान हैं। इनमें मात्र काययोग पाया जाता है, मनोयोग एवं वचन योग नहीं पाया जाता। उपयोग की दृष्टि से ये साकारोपयोगी भी हैं एवं अनाकारोपयोगी भी हैं। ये सर्व आत्मप्रदेशों से कदाचित् चार, पाँच एवं छह दिशाओं से आहार लेते हैं। वनस्पतिकायिक जीव नियमतः छहों दिशाओं से आहार ग्रहण करते हैं। पृथ्वीकायादि समस्त एकेन्द्रिय जीव जो आहार ग्रहण करते हैं उसका चय होता है और उसका असारभाग बाहर निकलता है तथा सारभाग शरीर, इन्द्रियादि में परिणत होता है। इन जीवों को यह संज्ञा, प्रज्ञा, मन एवं वचन नहीं होते हैं कि वे आहार करते भी हैं, फिर भी वे आहार तो करते ही हैं। इसी प्रकार उन्हें इष्ट एवं अनिष्ट के स्पर्श की संज्ञा, प्रज्ञा आदि नहीं होती फिर भी वे वेदन तो करते ही हैं। इनमें प्राणातिपात से लेकर मिथ्यादर्शन शल्य तक के १८ पाप रहे हुए हैं। पृथ्वीकायिक आदि जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं इसका निरूपण व्युत्क्रान्ति (वक्कंति) अध्ययन में किया गया है। फिर भी संक्षेप में कहा जाय तो पृथ्वी, अप् एवं वनस्पतिकाय में तिर्यञ्च गति, मनुष्यगति एवं देवगति के २३ दण्डकों (नारकी को छोड़कर) से उत्पत्ति होती है तथा तेजस्काय एवं वायुकाय में तिर्यञ्चगति एवं मनुष्यगति के १० दण्डकों से आगमन होता है। सभी एकेन्द्रिय जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है, किन्तु उत्कृष्ट स्थिति भिन्न-भिन्न है। पृथ्वीकायिक की उत्कृष्ट स्थिति २२ हजार वर्ष, अप्काय की ७ हजार वर्ष, तेजस्काय की ३ अहोरात्रि, वायुकाय की ४९ दिन एवं वनस्पतिकाय की एक करोड़ पूर्व की है। इनका वर्णन भी वक्कंति अध्ययन में द्रष्टव्य है। पृथ्वी, अप्, तेजस् एवं वनस्पतिकाय में तीन समुद्घात हैं- वेदना, कषाय और मारणान्तिक। वायुकाय में वैक्रिय सहित चार समुद्घात होते हैं। एकेन्द्रिय के समस्त प्रकार के जीव मारणान्तिक समुद्घात करके भी मरते हैं और बिना मारणान्तिक किए भी मरते हैं। ये उद्वर्तना करके (मरकर) कहाँ जाते हैं इसका निरूपण वुक्कंति अध्ययन में किया गया है फिर भी संक्षेप में पृथ्वी, अप् एवं वनस्पतिकायिक जीव मनुष्य एवं तिर्यञ्चगति के १० दण्डकों में जाते हैं तथा तेजस्काय एवं वायुकायिक जीव मात्र तिर्यञ्चगति के ९ दण्डकों में जाते हैं।

विकलेन्द्रिय जीवों (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय जीवों) में भी लेश्यादि १२ द्वारों का निरूपण है। द्वीन्द्रियादि विकलेन्द्रिय जीव पृथक्-पृथक् आहार कर पृथक्-पृथक् परिणमन करते हैं तथा पृथक्-पृथक् शरीर बाँधते हैं। इनमें कृष्ण, नील एवं कापोत, ये तीन लेश्याएँ होती हैं। ये सम्यग्दृष्टि भी होते हैं और मिथ्यादृष्टि भी होते हैं। इनमें दो ज्ञान (मति एवं श्रुत) अथवा दो अज्ञान (मति एवं श्रुत) पाए जाते हैं। इनमें वचनयोग एवं काययोग होता है, मनोयोग नहीं। ये नियमतः छहों दिशाओं से आहार लेते हैं। ये दो गतियों तिर्यञ्चगति एवं मनुष्यगति के १० दण्डकों से आते हैं तथा उन्हीं में जाते हैं। इनकी स्थिति भिन्न-भिन्न होती है। द्वीन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति १२ वर्ष त्रीन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति ४९ अहोरात्रि एवं चतुरिन्द्रिय ६ मास है। जघन्य स्थिति सबकी अन्तर्मुहूर्त है। ये उद्वर्तना करके मनुष्यगति तिर्यञ्चगति के १० दण्डकों में ही जाते हैं। शेष वर्णन पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवों की भाँति है। विशेषता यह है कि ये नियमतः छहों दिशाओं से आहार लेते हैं।

इन लेश्यादि १२ द्वारों का तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय जीवों में भी निरूपण किया गया है। इनके अनुसार ये भी द्वीन्द्रियों की भाँति पृथक्-पृथक् आहार ग्रहण कर उनका पृथक्-पृथक् परिणमन करते हैं तथा पृथक्-पृथक् शरीर बाँधते हैं। इनमें छहों लेश्याएँ (तेजो, पद्म एवं शुक्ल सहित) एवं तीनों दृष्टियाँ (सम्यग्मिथ्यादृष्टि सहित) होती हैं। तिर्यञ्च पंचेन्दिर्य में तीन ज्ञान एवं तीन अज्ञान होते हैं। शेष वर्णन द्वीन्द्रियादि के समान है। इनका उत्पाद, स्थिति, समुद्घात एवं उद्वर्तना का वर्णन भिन्न है. ये चार गति के २४ ही दण्डकों से आ सकते हैं तथा २४ ही दण्डकों में जा सकते हैं। इनमें केवली एवं आहारक समुद्घात के अतिरिक्त पाँच समुद्घात होते हैं। इनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम होती है। प्रस्तुत अध्ययन में पंचेन्द्रियों का सामान्य ग्रहण हो गया है, किन्तु तिर्यञ्चगति अध्ययन में मात्र तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय विषयक सामग्री ही ग्राह्य है।

अल्प-बहुत्व की दृष्टि से सबसे अल्प पंचेन्द्रिय जीव हैं। उनसे चतुरिन्द्रिय जीव विशेषाधिक है। उनसे त्रीन्द्रिय एवं द्वीन्द्रिय जीव उत्तरोत्तर विशेषाधिक हैं। यदि एकेन्दिर्य का कथन किया जाय तो वे अनन्तगुणे हैं।

वनस्पतिकाय के कुछ प्रकारों का इस अध्ययन में ३२ द्वारों से निरूपण हुआ है, जो वनस्पति के विभिन्न प्रकारों एवं उनकी विशेषताओं को जानने के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इसमें उत्पलादि, शालिव्रीहि आदि, कल-मसूरादि, अलसी कुसुम्ब आदि, बांस-वेणु आदि के मूल कंदादि, के अतिरिक्त इक्षु-इक्षुवाटिका के मूलकंदादि, सेडिय भंतिय आदि के मूल कंदादि, का वर्णन है। इनके अलावा अभ्ररूहादि, तुलसी आदि, ताल-तमाल आदि नीम-आम आदि, अस्थिक आदि, बैंगन आदि के गुच्छों, सिरियकादि गुल्मों, पूसफलिका आदि वल्लियों, आलू-मूला आदि, लोही आदि, आय-कायादि, पाठादि, माषपर्णी आदि के मूल कंदादि का निरूपण है। शालवृक्ष, शालयष्टिका के भावीभव का प्ररूपण भी है। उत्पलादि वनस्पतियों का वर्णन जिन ३२ द्वारों में हुआ है, वे हैं–१. उपपात, २. परिमाण, ३. अपहार, ४. अवगाहना, ५. कर्मबन्ध, ६. वेदक, ७. उदय, ८. उदीरणा, ९. लेश्या, १०. दृष्टि, ११. ज्ञान, १२. योग, १३. उपयोग, १४. वर्ण-रसादि, १५. उच्छ्वास, १६. आहार, १७. विरति, १८. क्रिया, १९. बन्धक, २०. संज्ञा, २१. कषाय, २२. स्त्रीवेदादि, २३. बन्ध, २४. संज्ञी, २५. इन्द्रिय, २६. अनुबन्ध, २७. संवेध, २८. आहार, २९. स्थिति, ३०. समुद्घात, ३१. च्यवन और ३२. सभी जीवों का मूलादि में उपपात। इनमें से कुछ उल्लेखनीय बिन्दु इस प्रकार हैं–

१. *एक पत्र (पंखुड़ी) वाला उत्पल एक जीवयुक्त होता है जबकि उसमें नये पत्र आने पर वह अनेक जीव वाला होता है।*
२. *इनके भी सात या आठ (आयुकर्म सहित) कर्मों का बंध होता है। इसी प्रकार इन आठों का उदय एवं वेदन भी होता है।*
३. *आयुकर्म का बंधन वैकल्पिक है, उसमें ८ भंग बनते हैं। इसी प्रकार कर्म की उदीरणा में भी ८ भंग बनते हैं।*
४. *कृष्ण, नील, कापोत एवं तेजो लेश्या में से किसी के २ किसी के ३ एवं किसी के चारों लेश्याएँ होने से ८० भंग बनते हैं।*
५. *ये मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी एवं काययोगी होते हैं। इनमें साकार एवं अनाकार दोनों उपयोग होते हैं।*
६. *शरीर में वर्ण, रस, गंध एवं स्पर्श होते हैं, किन्तु जीव में नहीं।*
७. *उच्छवासक (सांस लेने), निःश्वासक (सांस निकालने) आदि के २६ भंग बनते हैं।*
८. *वे अविरत, सक्रिय, नपुंसकवेदी संज्ञी हैं।*
९. *आहारक-अनाहारक की दृष्टि से ८ भंग बनते हैं–कोई आहारक कोई अनाहारक आदि।*
१०. *आहार संज्ञा आदि, क्रोध कषायी आदि के लेश्या के समान ८० भंग बनते हैं।*
११. *उत्पल का जीव उत्पल जीव के रूप में जघन्य अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट असंख्यात काल तक रहता है। किन्तु वह पृथ्वीकायादि, द्वीन्द्रियादि एवं पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकादि में जाता है एवं पुनः उत्पल के रूप में उत्पन्न होता है तो कम से कम दो भव ग्रहण करता है तथा उत्कृष्ट भव असंख्यात, संख्यात, अनन्त आदि भिन्न-भिन्न होते हैं।*
१२. *सभी प्राणी, भूत, जीव एवं सत्व उत्पल के मूलरूप में, उत्पल के कन्दरूप में, उत्पल के नाल रूप में, उत्पल के पत्ररूप में, उत्पल के केसर रूप में, उत्पन्न की कर्णिका रूप में, उत्पल के थिबुक रूप में अनेक बार या अनन्त बार उत्पन्न हो चुके हैं।*
१३. *इसी प्रकार शालूक, पलाश, कुम्भिक, नालिक, पद्म, कर्णिका, नलिन आदि में भी एक जीवत्व अनेक जीवत्व आदि का निरूपण किया गया है।*
१४. *शालीव्रीहि आदि के मूलादि जीवों के भी ३२ द्वार कहे गए हैं।*

वृक्ष तीन प्रकार के होते हैं–१. संख्यात जीव वाले, २. असंख्यात जीव वाले और ३. अनन्त जीव वाले। ताड़, तमालि, नारियल आदि वृक्ष संख्यात जीव वाले होते हैं। असंख्यात जीव वाले वृक्ष दो प्रकार के होते हैं–१. एकास्थिक (एक बीज वाले), २. बहुबीजक (बहुत बीजों वाले)। नीम, आम, जामुन आदि के वृक्ष एकास्थिक होते हैं। इनकी जड़, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल भी असंख्यात जीव वाले होते हैं। पत्ते प्रत्येक जीव वाले, पुष्प अनेक जीव वाले एवं फल एक जीव वाले होते हैं। बहुबीजक वृक्षों में अस्तिक, तेंदु, कपित्थ आदि की गणना होती है। अनन्त जीव वाले वृक्षों में आलू, मूला, अदरक आदि का अन्तर्भाव होता है। अनन्त जीव वाले होने के कारण ही आलू आदि जमींकंदों को अरवाद्य बतलाया गया है।

इस अध्ययन में सूक्ष्म स्नेहकाय (अप्) के पतन, अल्पवृष्टि एवं महावृष्टि के कारणों, एहरन पर हथौड़ा मारने से वायुकाय की उत्पत्ति एवं विनाश, अचित्त वायु के आक्रान्त आदि प्रकार आदि विषयों का भी निरूपण हुआ है।

इस प्रकार इसमें सम्पूर्ण तिर्यञ्चगति का सामान्य एवं एकेन्द्रिय जीवों का विशेष वर्णन हुआ है। अन्य सम्बद्ध वर्णन वुक्रांति, गर्भ आदि अध्ययनों में द्रष्टव्य है।

□□

३५. तिरिय गई अज्झयणं

सूत्र

१. पडुप्पन्न छज्जीवणिकाइयाणं निल्लेवणा काल परूवणं–

प्र. पडुप्पन्नपुढविकाइया णं भन्ते ! केवइकालस्स णिल्लेवा सिया ?

उ. गोयमा ! जहण्णपए असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं, उक्कोसपए वि असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीहिं।

जहण्णपए उक्कोसपए असंखेज्जगुणाओ।

एवं जाव **पडुप्पन्नवाउक्काइया।**

प. पडुप्पन्नवणप्फइकाइया णं भंते ! केवइकालस्स निल्लेवा सिया ?

उ. गोयमा ! पडुप्पन्नवणप्फइकाइया जहण्णपए अपदा उक्कोसपए वि अपदा, पडुप्पन्नवणप्फइकाइयाणं णत्थि निल्लेवणा।

प. पडुप्पन्नतसकाइया णं भंते ! केवइकालस्स निल्लेवा सिया ?

उ. गोयमा ! पडुप्पन्नतसकाइया जहण्णपए सागरोवमसयपुहत्तस्स, उक्कोसपए सागरोवमसय पुहत्तस्स।

जहण्णपदे उक्कोसपदे विसेसाहिया।

–जीवा. ३, उ. २, सु. १०१ (२)

२. तस थावराणं भेय परूवणं–

तिविहा तसा पन्नत्ता, तं जहा–

१. तेउकाइया, २. वाउकाइया, ३. उराला तसा पाणा।

तिविहा थावरा पन्नत्ता, तं जहा–

१. पुढविकाइया, २. आउकाइया, ३. वणस्सइकाइया।

–ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १७२

३. जीवाणं काय विवक्खया भेया–

दो काया पण्णत्ता, तं जहा–

१. तसकाए चेव २. थावरकाए चेव।

तसकाए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. भवसिद्धिए चेव।

२. अभवसिद्धिए चेव।

थावरकाए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. भवसिद्धिए चेव, २. अभवसिद्धिए चेव।

–ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ६५

४. थावर काय भेया तेसिं अधिपती य परूवणं–

पंच थावरकाया पण्णत्ता, तं जहा–

३५. तिर्यञ्च गति-अध्ययन

१. प्रत्युत्पन्न पट्कायिक जीवों के निर्लेपन काल का प्ररूपण–

प्र. भंते ! तत्काल उत्पन्न पृथ्वीकायिक जीव कितने काल में निर्लेप हो सकते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्यतः असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल में और उत्कृष्टतः असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल में निर्लेप (खाली) हो सकते हैं।

जघन्य पद से उत्कृष्ट पद असंख्यातगुणा अधिक जानना चाहिए।

इसी प्रकार तत्काल उत्पन्न वायुकायिक पर्यन्त निर्लेप का कथन जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! तत्काल उत्पन्न वनस्पतिकायिक जीव कितने काल में निर्लेप हो सकते हैं ?

उ. गौतम ! तत्काल उत्पन्न वनस्पतिकायिकों का जघन्य और उत्कृष्ट पद में निर्लेप होने का कथन नहीं किया जा सकता, क्योंकि (अनन्त होने से) तत्काल उत्पन्न वनस्पतिकायिकों की निर्लेपना नहीं हो सकती है।

प्र. भन्ते ! तत्काल उत्पन्न त्रसकायिक जीव कितने काल में निर्लेप हो सकते हैं ?

उ. गौतम ! तत्काल उत्पन्न त्रसकायिक जघन्य पद में सागरोपम शतपृथक्त्व और उत्कृष्ट पद में भी सागरोपम शतपृथक्त्व काल में निर्लेप हो सकते हैं।

जघन्य पद से उत्कृष्ट पद विशेषाधिक है।

२. त्रस और स्थावरों के भेदों का प्ररूपण–

त्रस जीव तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. तेजस्कायिक, २. वायुकायिक, ३. उदार त्रसप्राणी।

स्थावर जीव तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक, ३. वनस्पतिकायिक।

३. जीवों के काय की विवक्षा से भेद–

काय दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. त्रसकाय, २. स्थावरकाय।

त्रसकाय दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. भवसिद्धिक-मुक्ति के लिए योग्य,

२. अभवसिद्धिक-मुक्ति के लिए अयोग्य।

स्थावरकाय दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. भवसिद्धिक, २. अभवसिद्धिक।

४. स्थावरकायों के भेद और उनके अधिपतियों का प्ररूपण–

पांच स्थावरकाय कहे गए हैं, यथा–

१. इंदे थावरकाए,
२. बंभे थावरकाए,
३. सिप्पे थावरकाए,
४. सम्मई थावरकाए,
५. पायावच्चे थावरकाए।

पंच थावरकायाधिपती पण्णत्ता, तं जहा–
१. इंदे थावरकायाधिपती,
२. बंभे थावरकायाधिपती,
३. सिप्पे थावरकायाधिपती,
४. सम्मई थावरकायाधिपती,
५. पायावच्चे थावरकायाधिपती।

–ठाणं. अ. ५, उ. १, सु. ३९३

१. इन्द्रस्थावरकाय-पृथ्वीकाय,
२. ब्रह्मस्थावरकाय-अप्काय,
३. शिल्पस्थावरकाय-तेजस्काय,
४. सम्मतिस्थावरकाय-वायुकाय,
५. प्राजापत्यस्थावरकाय-वनस्पतिकाय।

स्थावरकाय के पांच अधिपति कहे गए हैं, यथा–
१. इन्द्रस्थावरकायाधिपति,
२. ब्रह्मस्थावरकायाधिपति,
३. शिल्पस्थावरकायाधिपति,
४. सम्मतिस्थावरकायाधिपति,
५. प्राजापत्यस्थावरकायाधिपति।

५. थावरकाइयाणं गइ-अगइ समावण्णयाई विवक्खया दुविहत्त परूवणं–

दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, तं जहा–
१. गतिसमावण्णगा चेव,
२. अगतिसमावण्णगा चेव।

एवं जाव वणस्सइकाइया।

दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अणंतरोगाढा चेव,
२. परंपरोगाढा चेव।

एवं जाव वणस्सइकाइया।

दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, तं जहा–
१. परिणया चेव,
२. अपरिणया चेव।

एवं जाव वणस्सइकाइया। *–ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ६३*

५. स्थावरकायिकों की गति अगति समापन्नकादि की विवक्षा से द्विविधत्व का प्ररूपण–

पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. गतिसमापन्नक-एक भव से दूसरे भव में जाते समय अन्तराल गति में प्रवर्तमान।
२. अगतिसमापन्नक-वर्तमान भव में स्थित।

इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों पर्यन्त प्रत्येक के दो-दो भेद जानने चाहिए।

पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. अनंतरावगाढ–वर्तमान समय में किसी आकाशदेश में स्थित।
२. परम्परावगाढ–दो या अधिक समयों से किसी आकाशदेश में स्थित।

इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों पर्यन्त प्रत्येक के दो-दो भेद जानने चाहिए।

पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. परिणत-बाह्य हेतुओं से अन्य रूप में परिवर्तित निर्जीव (अचित्त) हो गया हो।
२. अपरिणत-अपरिवर्तित (सचित्त)।

इसी प्रकार वनस्पतिकायिक पर्यन्त के दो-दो भेद जानने चाहिए।

६. थावरकाइयाणं जीवाणं परोप्परं ओगाढत्त परूवणं–

प. जत्थ णं भंते ! एगे पुढविकाइए ओगाढे तत्थ केवइया पुढविकाइया ओगाढा?
उ. गोयमा ! असंखेज्जा।
प. केवइया आउक्काइया ओगाढा?
उ. असंखेज्जा।
प. केवइया तेउकाइया ओगाढा?
उ. असंखेज्जा।
प. केवइया वाउक्काइया ओगाढा?
उ. असंखेज्जा।
प. केवइया वणस्सकाइया ओगाढा?
उ. अणंता।

६. स्थावरकायिक जीवों का परस्पर अवगाढत्व का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! जहाँ एक पृथ्वीकायिक जीव अवगाढ होता है, वहां दूसरे कितने पृथ्वीकायिक जीव अवगाढ होते हैं?
उ. गौतम ! वहां असंख्यात (पृथ्वीकायिक जीव) अवगाढ होते हैं।
प्र. कितने अप्कायिक जीव अवगाढ होते हैं?
उ. असंख्यात अवगाढ होते हैं।
प्र. कितने तेजस्कायिक जीव अवगाढ होते हैं?
उ. असंख्यात अवगाढ होते हैं।
प्र. कितने वायुकायिक जीव अवगाढ होते हैं?
उ. असंख्यात अवगाढ होते हैं।
प्र. कितने वनस्पतिकायिक जीव अवगाढ होते हैं?
उ. अनन्त अवगाढ होते हैं।

प. जत्थ णं भंते ! एगे आउकाइए ओगाढे तत्थ णं केवइया पुढविकाइया ओगाढा?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा।

प. केवइया आउक्काइया ओगाढा?

उ. असंखेज्जा।

एवं जहेव पुढविकाइयाणं वत्तव्वया तहेव सव्वेसिं निरवसेसं भाणियव्वं जाव वणस्सइकाइयाणं जाव–

प. भंते ! केवइया वणस्सइकाइया ओगाढा?

उ. गोयमा ! अणंता। *–विया. स. १३, उ. ४, सु. ६४-६५*

प्र. भन्ते ! जहां एक अप्कायिक जीव अवगाढ होता है, वहां कितने पृथ्वीकायिक जीव अवगाढ होते हैं?

उ. गौतम ! वहां असंख्यात (पृथ्वीकायिक जीव अवगाढ होते हैं।)

प्र. कितने अप्कायिक जीव अवगाढ होते हैं?

उ. असंख्यात अवगाढ होते हैं।

जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों के लिए कहा उसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीव पर्यन्त अन्यकायिक जीवों का समस्त कथन करना चाहिए यावत्–

प्र. भंते ! वहां कितने वनस्पतिकायिक जीव अवगाढ होते हैं?

उ. गौतम ! वहां अनन्त अवगाढ होते हैं।

७. सुहुमसिणेहकायस्स पवडण परूवणं–

प. अत्थि णं भंते ! सया समियं सुहुमे सिणेहकाये पवडइ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. से भंते ! किं उड्ढे पवडइ, अहे पवडइ, तिरिए पवडइ?

उ. गोयमा ! उड्ढे वि पवडइ, अहे वि पवडइ, तिरिए वि पवडइ।

प. भन्ते ! जहा से बायरे आउकाए अन्नमन्नसमाउत्ते चिरं पि दीहकालं चिट्ठइ, तहा णं से वि?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, से णं खिप्पामेव विद्धंसमागच्छइ। *–विया. स. १, उ. ६, सु. २७*

७. सूक्ष्म स्नेहकाय के पतन का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! क्या सूक्ष्म स्नेहकाय (सूक्ष्म जल) सदा परिमित (सीमित) पड़ता है?

उ. हाँ, गौतम ! पड़ता है।

प्र. भन्ते ! वह सूक्ष्म स्नेहकाय ऊपर पड़ता है, नीचे पड़ता है या तिरछा पड़ता है?

उ. गौतम ! वह ऊपर भी पड़ता है, नीचे भी पड़ता है और तिरछा भी पड़ता है।

प्र. भन्ते ! क्या वह सूक्ष्म स्नेहकाय वादर अप्काय की भांति परस्पर समायुक्त होकर बहुत दीर्घकाल तक रहता है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, क्योंकि वह (सूक्ष्म स्नेहकाय) शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

८. अप्प-महावुट्ठिं हेऊ परूवणं–

तिहिं ठाणेहिं अप्पवुट्ठीकाए सिया, तं जहा–

१. तस्सिं च णं देसंसि वा, पदेसंसि वा णो बहवे उदगजोणिया जीवा य पोग्गला य उदगत्ताए वक्कमंति, विउक्कमंति, चयंति, उववज्जंति।

२. देवा णागा जक्खा भूया णो सम्ममाराहिया भवंति, तत्थ समुट्ठियं उदगपोग्गलं परिणयं वासिउकामं अण्णं देसं साहरंति।

३. अब्भवद्दलगं च णं समुट्ठियं परिणयं वासिउकामं वाउकाए विधुणइ,

इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं अप्पवुट्ठिकाए सिया।

तिहिं ठाणेहिं महावुट्ठीकाए सिया, तं जहा–

१. तस्सिं च णं देसंति वा, पदेसंति वा, बहवे उदगजोणिया जीवा य पोग्गला य उदगत्ताए वक्कमंति विउक्कमंति, चयंति, उववज्जंति।

२. देवा णागा जक्खा भूया सम्ममाराहिया भवंति, अण्णत्थ समुट्ठियं उदगपोग्गलं परिणयं वासिउकामं तं देसं साहरंति,

३. अब्भवद्दलगं च णं समुट्ठियं परिणयं वासिउकामं णो वाउआए विधुणइ

८. अल्प महावृष्टि के हेतुओं का प्ररूपण–

तीन कारणों से अल्प वृष्टि होती है, यथा–

१. किसी देश या प्रदेश में पर्याप्त मात्रा में उदकयोनिक जीवों और पुद्गलों के उदक रूप में उत्पन्न होने और नष्ट होने तथा नष्ट और उत्पन्न होने से,

२. देव, नाग, यक्ष और भूतों के सम्यक् प्रकार से आराधित न होने पर उस देश में उत्थित वर्षा में परिणत तथा बरसने वाले उदक-पुद्गलों (मेघों) का अन्य देश में संहरण होने से,

३. समुत्थित वर्षा में परिणत तथा बरसने वाले अभ्रबादलों के वायु द्वारा नष्ट होने से,

इन तीन कारणों से अल्प वृष्टि होती है।

तीन कारणों से महावृष्टि होती है, यथा–

१. किसी देश या प्रदेश में पर्याप्त मात्रा में उदकयोनिक जीवों और पुद्गलों के उदक रूप में उत्पन्न होने और नष्ट होने तथा नष्ट और उत्पन्न होने से,

२. देव नाग, यक्ष और भूतों के सम्यक् प्रकार आराधित होने पर अन्यत्र उत्थित वर्षा में परिणत तथा बरसने वाले उदक पुद्गलों का उस देश में संहरण होने से,

३. समुत्थित वर्षा में परिणत तथा बरसने वाले अभ्रबादलों के वायु द्वारा नष्ट न होने से,

इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं महावुट्ठिकाए सिया।

–ठाणं. अ. ३, सु. १८२

९. अहिगरणीए वाउकायस्स वक्कमण-विणास परूवणं–

प. अत्थि णं भन्ते ! अधिकरणिंसि वाउयाए वक्कमइ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. से भन्ते ! किं पुट्ठे उद्दाइ, अपुट्ठे उद्दाइ?

उ. गोयमा ! पुट्ठे उद्दाइ, नो अपुट्ठे उद्दाइ।

प. से भन्ते ! किं ससरीरे निक्खमइ, असरीरे निक्खमइ?

उ. गोयमा ! सिय ससरीरे निक्खमइ, सिय असरीरे निक्खमइ।

प. से केणट्ठेण भन्ते ! एवं वुच्चइ–
'सिय ससरीरे निक्खमइ, सिय असरीरे निक्खमइ?'

उ. गोयमा ! वाउकायस्स णं चत्तारि सरीरया पण्णत्ता, तं जहा–

१. ओरालिए, २. वेउव्विए, ३. तेयए, ४. कम्मए

ओरालिय वेउव्वियाइं विप्पजहाय तेयकम्मएहिं निक्खमइ,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"सिय ससरीरे निक्खमइ, सिय असरीरे निक्खमइ।"

–विया. स. १६, उ. १, सु. ३-५

१०. अचित्त वाउकाय पगारा–

पंचविहा अचित्ता वाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा–

१. अक्कंते,
२. धंते,
३. पीलिए,
४. सरीराणुगए,
५. संमुच्छिमे।

–ठाणं. अ. ५, उ. २, सु. ४४४

११. एगिंदिय जीवेसु सिय लेस्साइ बारसदाराणं परूवणं–

रायगिहे जाव एवं वयासि–

प. १. सिय भंते ! जाव चत्तारि पंच पुढविकाइया एगयओ साहारणसरीरं बंधंति बंधित्ता तओ पच्छा आहारेंति वा, परिणामेंति वा, सरीरं वा बंधंति?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, पुढविकाइया णं पत्तेयाहारा, पत्तेयपरिणामा, पत्तेयसरीरं बंधंति बंधित्ता तओ पच्छा आहारेंति वा, पारिणामेंति वा सरीरं वा बंधंति।

इन तीन कारणों से महावृष्टि होती है।

९. अधिकरणी से वायुकाय की उत्पत्ति और विनाश का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! क्या अधिकरणी (एहरन) पर (हथौड़ा मारते समय) वायुकाय उत्पन्न होता है?

उ. हाँ, गौतम ! वायुकाय उत्पन्न होता है।

प्र. भन्ते ! उस वायुकाय का (किसी दूसरे पदार्थ के साथ) स्पर्श होने पर वह मरता है या बिना स्पर्श हुए ही मरता है?

उ. गौतम ! (उसका दूसरे पदार्थ के साथ) स्पर्श होने पर ही वह मरता है, बिना स्पर्श हुए नहीं मरता है।

प्र. भन्ते ! वह (मृत वायुकाय) सरीरसहित (भवान्तर में) जाता है या शरीररहित जाता है?

उ. गौतम ! कदाचित् शरीर सहित निकलता है और कदाचित् शरीर रहित होकर भी निकलता है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'कदाचित् शरीर सहित निकलता है और कदाचित् अशरीर निकलता है'?

उ. गौतम ! वायुकाय के चार शरीर कहे गए हैं, यथा–

१. औदारिक, २. वैक्रिय, ३. तैजस्, ४. कार्मण।

औदारिक और वैक्रिय शरीर को छोड़कर तैजस् और कार्मण शरीर सहित निकलता है।

इस कारण से गौतम ऐसा कहा जाता है कि–

"कदाचित् सशरीर निकलता है और कदाचित् अशरीर निकलता है।"

१०. अचित्त वायुकाय के प्रकार–

अचित्त वायुकाय पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. आक्रान्त–पैरों को पीट-पीट कर चलने से उत्पन्न वायु।
२. ध्मात–धौंकनी आदि से उत्पन्न वायु।
३. पीड़ित–गीले कपड़ों के निचोड़ने आदि से उत्पन्न वायु।
४. शरीरानुगत–डकार, उच्छ्वास आदि से उत्पन्न वायु।
५. संमूर्च्छिम–पंखा आदि चलाने से उत्पन्न वायु।

११. एकेन्द्रिय जीवों में स्यात् लेश्यादि बारह द्वारों का प्ररूपण–

राजगृह नगर में गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा–

प्र. १. भन्ते ! क्या कदाचित् (दो) यावत् चार पांच पृथ्वीकायिक मिलकर साधारण शरीर बांधते हैं और बांध कर पीछे आहार करते हैं, फिर उस आहार का परिणमन करते हैं इसके बाद फिर शरीर का (विशिष्ट) बंध करते हैं?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं हैं, क्योंकि पृथ्वीकायिक जीव प्रत्येक पृथक्-पृथक् आहार करने वाले हैं और उस आहार को पृथक्-पृथक् परिणत करते हैं, इसलिए वे पृथक्-पृथक शरीर बांधते हैं और बांधकर पीछे आहार करते हैं, उसे परिणमाते हैं, इसके बाद फिर शरीर बांधते हैं।

प. ८. ते णं भंते ! जीवा किं पाणाइवाए उवक्खाइज्जंति जाव मिच्छादंसणसल्ले उवक्खाइज्जंति ?

उ. गोयमा ! पाणाइवाए वि उवक्खाइज्जंति जाव मिच्छादंसणसल्ले वि उवक्खाइज्जंति।
जेसिं पि णं जीवाणं ते जीवा एवमाहिज्जंति तेसिं पि णं जीवाणं नो विण्णाए नाणत्ते।

प. ९. ते णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति ? नेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! एवं जहा वक्कंतीए पुढविकाइयाणं उववाओ तहा भाणियव्वो[1]।

प. १०. तेसि णं भंते ! जीवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं।

प. ११. (क) तेसि णं भंते ! जीवाणं कइ समुग्घाया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तओ समुग्घाया पन्नत्ता, तं जहा–
१. वेयणासमुग्घाए, २. कसायसमुग्घाए,
३. मारणंतिय समुग्घाए।
(ख) ते णं भंते ! जीवा मारणंतियसमुग्घाएणं किं समोहया मरंति, असमोहया मरंति ?

उ. गोयमा ! समोहया वि मरंति, असमोहया वि मरंति।

प. १२. ते णं भंते ! जीवा अणंतरं उव्वट्टित्ता, कहिं गच्छंति ? कहिं उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! एवं उव्वट्टणा जहा वक्कंतीए[2]।

प. सिय भंते ! जाव चत्तारि पंच आउक्काइया एगयओ साहारणसरीरं बंधंति, बंधित्ता तओ पच्छा आहारेंति वा, परिणामेंति वा, सरीरं वा बंधंति ?

उ. गोयमा ! एवं जो पुढविकाइयाणं गमो सो चेव भाणियव्वो जाव उव्वट्टंतति,
णवरं–ठिई सत्तवास सहस्साइं उक्कोसेणं,

सेसं तं चेव।

प. सिय भंते ! जाव चत्तारि पंच तेउक्काइया एगयओ साहारण सरीरं बंधंति बंधित्ता तओ पच्छा आहारेंति वा, परिणामेंति वा, सरीरं वा बंधंति ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।
णवरं–उववाओ ठिई उव्वट्टणा य जहा पन्नवणाए[3]।

प्र. ८. भन्ते ! क्या वे (पृथ्वीकायिक) जीव प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य में रहे हुए हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! वे जीव प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य में रहे हुए हैं,
जिन जीवों की वे जीव हिंसादि करते हैं, उन जीवों को भी हमारी हिंसा हो रही है ऐसा भेद ज्ञात नहीं होता।

प्र. ९. भन्ते ! ये पृथ्वीकायिक जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नेरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र के छठे व्युत्क्रान्तिपद में पृथ्वीकायिक जीवों का उत्पाद कहा है, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिए।

प्र. १०. भन्ते ! उन पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की है।

प्र. ११ (क) भन्ते ! उन जीवों के कितने समुद्घात कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! उनके तीन समुद्घात कहे गए हैं, यथा–
१. वेदना समुद्घात, २. कषाय समुद्घात
३. मारणान्तिक समुद्घात।

प्र. (ख) भन्ते ! क्या वे जीव मारणान्तिक समुद्घात करके मरते हैं या मारणान्तिक समुद्घात किये बिना ही मरते हैं ?

उ. गौतम ! वे मारणान्तिक समुद्घात करके भी मरते हैं और समुद्घात किये बिना भी मरते हैं।

प्र. १२. वे (पृथ्वीकायिक) जीव मरकर अन्तररहित कहां जाते हैं और कहां उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (प्रज्ञापनासूत्र के छठे) व्युत्क्रान्तिपद के अनुसार उनकी उद्वर्तना कहनी चाहिए।

प्र. भन्ते ! क्या कदाचित् दो यावत् चार या पांच अप्कायिक जीव मिल कर एक-साधारण शरीर बांधते हैं और इसके पश्चात् आहार करते हैं, परिणमाते हैं और (विशिष्ट) शरीर बांधते हैं ?

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिकों के लिए जैसा आलापक कहा गया है, वैसा ही यहां भी उद्वर्तना द्वार पर्यन्त जानना चाहिए।
विशेष–अप्कायिक जीवों की स्थिति उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की है।
शेष सब पूर्ववत् है।

प्र. भंते ! कदाचित् दो यावत् चार या पांच तेजस्कायिक जीव मिल कर एक साधारण शरीर बांधते हैं और इसके पश्चात् आहार करते हैं, परिणमाते हैं और (विशिष्ट) शरीर बांधते हैं ?

उ. गौतम ! इनके विषय में भी पूर्ववत् समझना चाहिए।
विशेष–उनका उत्पाद, स्थिति और उद्वर्तना प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार जानना चाहिए।

---

१. वक्कंति अध्ययन में देखें। २. वक्कंति अध्ययन में देखें। ३. वक्कंति अध्ययन में देखें।

सेसं तं चेव।

वाउकाइयाणं एवं चेव, नाणत्तं–

णवरं–चत्तारि समुग्घाया।

प. सिय भंते ! जाव चत्तारि पंच वणस्सइकाइया एगयओ साहारणसरीरं बंधंति, बंधित्ता तओ पच्छा आहारेंति वा, परिणामेंति वा, सरीरं वा बंधंति ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, अणंता वणस्सइकाइया एगयओ साहारणसरीरं बंधंति बंधित्ता तओ पच्छा आहारेंति वा, परिणामेंति वा, सरीरं वा बंधंति। **सेसं जहा तेउक्काइयाण जाव उव्वट्टंति।**

णवरं–आहारो नियमं छद्दिसिं, ठिई जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं, **सेसं तं चेव।**

–विया. स. १९, उ. ३, सु. २-२१

१२. लेस्साइ बारसदाराणं विगलेंदिय जीवेसु परूवणं–

रायगिहे **जाव एवं** वयासी–

प. सिय भंते ! जाव चत्तारि पंच बेंदिया एगयओ साहारणसरीरं बंधंति बंधित्ता तओ पच्छा आहारेंति वा, परिणामेंति वा, सरीरं वा बंधंति ?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, बेंदिया णं पत्तेयाहारा य, पत्तेयपरिणामा, पत्तेयसरीरं बंधंति बंधित्ता तओ पच्छा आहारेंति वा परिणामेंति वा सरीरं वा बंधंति।

प. तेसि णं भंते ! जीवाणं कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ ?

उ. गोयमा ! तओ लेस्साओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. कण्हलेस्सा, २. नीललेस्सा, ३. काउलेस्सा।

एवं जहा एगूणवीसइमे सए तेउकाइयाणं जाव उव्वट्टंति

णवरं–सम्मद्दिट्ठी वि, मिच्छद्दिट्ठी वि, नो सम्मामिच्छद्दिट्ठी,

दो नाणा, दो अन्नाणा नियमं,

नो मणजोगी, वयजोगी वि, कायजोगी वि,

आहारो नियमं छद्दिसिं।

प. तेसि णं भंते ! जीवाणं एवं सन्ना ति वा, पन्ना ति वा, मणे ति वा, वयी ति वा अम्हे णं इट्ठाणिट्ठे रसे, इट्ठाणिट्ठे फासे, पडिसंवेदेमो ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, पडिसंवेदेंति पुण ते। ठिई जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बारस संवच्छराइं

शेष सब कथन पूर्ववत् है।

वायुकायिक जीवों का कथन भी इसी प्रकार है।

विशेष–भिन्नता यह है वायुकायिक जीवों में चार समुद्घात होते हैं।

प्र. भंते ! क्या कदाचित् दो यावत् चार या पांच वनस्पतिकायिक जीव मिल कर एक साधारण शरीर बांधते हैं और इसके पश्चात् आहार करते हैं, परिणमाते हैं और (विशिष्ट) शरीर बांधते हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, अनन्त वनस्पतिकायिक जीव मिल कर एक साधारण शरीर बांधते हैं, फिर आहार करते हैं, परिणमाते हैं और (विशिष्ट) शरीर बांधते हैं इत्यादि सब तेजस् कायिकों के समान उद्वर्तना करते हैं पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष–वे आहार नियमतः छहों दिशाओं से लेते हैं, उनकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त की है। शेष सब कथन पूर्ववत् है।

१२. लेश्यादि बारह द्वारों का विकलेन्द्रिय जीवों में प्ररूपण–

राजगृह नगर में यावत् गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा–

प्र. भन्ते ! क्या (कदाचित्) दो, तीन, चार या पांच द्वीन्द्रिय जीव मिलकर एक साधारण शरीर बांधते हैं और बांधकर उसके बाद आहार करते हैं आहार को परिणमाते हैं फिर विशिष्ट शरीर को बांधते हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, क्योंकि द्वीन्द्रिय जीव पृथक्-पृथक् आहार करने वाले, पृथक्-पृथक् परिणमाने वाले और पृथक्-पृथक् शरीर बांधने वाले होते हैं, बांधकर फिर आहार करते हैं, उसका परिणमन करते हैं फिर विशिष्ट शरीर बांधते हैं।

प्र. भन्ते ! उन (द्वीन्द्रिय) जीवों के कितनी लेश्याएं कही गई हैं ?

उ. गौतम ! उनके तीन लेश्याएं कही गई हैं, यथा–

१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या।

इस प्रकार समग्र वर्णन उन्नीसवें शतक में अग्निकायिक जीवों के विषय में पूर्व में जैसा कहा है, वह यहां भी उद्वर्तित होते हैं पर्यन्त कहना चाहिए।

विशेष–द्वीन्द्रिय जीव सम्यग्दृष्टि भी होते हैं, मिथ्यादृष्टि भी होते हैं परन्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं होते हैं।

उनके नियमतः दो ज्ञान या दो अज्ञान होते हैं।

वे मनोयोगी नहीं होते किन्तु वचनयोगी और काययोगी होते हैं।

वे नियमतः छहों दिशाओं से आहार लेते हैं।

प्र. भन्ते ! क्या उन जीवों को हम इष्ट अनिष्ट रस तथा इष्ट अनिष्ट स्पर्श का प्रतिसंवेदन (अनुभव) करते हैं, ऐसी संज्ञा, प्रज्ञा, मन या वचन होता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, वे रसादि का प्रतिसंवेदन करते हैं। उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट बारह वर्ष की होती है।

सेसं तं चेव।

एवं तेइंदिया वि एवं चउरिंदिया वि।

णवरं-इंदिएसु ठिई ए य।

सेसं तं चेव। —विया. स. २०, उ. १, सु. ३-६

१३. लेस्साइ बारस दाराणं पंचेंदियजीवेसु परूवणं—

प. सिय भंते ! जाव चत्तारि पंच पंचेंदिया एगयओ साहारण सरीरं बंधंति बंधित्ता तओ पच्छा आहारेंति वा, परिणामेंति वा, सरीरं वा बंधंति ?

उ. गोयमा ! जहा बेइंदियाणं।

णवरं—छ लेस्साओ, दिट्ठी तिविहा वि, चत्तारि नाणा, तिण्णि अण्णाणा भयणाए तिविहो जोगो।

प. तेसि णं भंते ! जीवाणं एवं सन्ना ति वा, पण्णा ति वा, मणे ति वा, वयी ति वा अम्हे णं आहारमाहारेमो ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइयाणं एवं सण्णा ति वा, पण्णा ति वा, मणो ति वा, वयी ति वा अम्हे णं आहारमाहारेमो, अत्थेगइयाणं नो एवं सन्ना ति वा जाव वयी ति वा अम्हे णं आहारमाहारेमो, आहारेंति पुण ते।

प. तेसि णं भंते ! जीवाणं एवं सन्ना ति वा जाव वयी ति वा, अम्हे णं इट्ठाणिट्ठे सद्दे, इट्ठाणिट्ठे रूवे, इट्ठाणिट्ठे गंधे, इट्ठाणिट्ठे रसे, इट्ठाणिट्ठे फासे पडिसंवेदेमो ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइयाणं एवं सन्ना ति वा जाव वयी ति वा, अम्हे णं इट्ठाणिट्ठे सद्दे जाव इट्ठाणिट्ठे फासे पडिसंवेदेमो, अत्थेगइयाणं नो एवं सण्णाति वा जाव नो एवं वयी ति वा, अम्हे णं इट्ठाणिट्ठे सद्दे जाव इट्ठाणिट्ठे फासे पडिसंवेदेमो पडिसंवेदेंति पुण ते।

प. ते णं भंते ! जीवा किं पाणाइवाए उवक्खाइज्जंति जाव मिच्छादंसणसल्ले उवक्खाइज्जंति ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइया पाणाइवाए वि उवक्खाइज्जंति जाव मिच्छादंसणसल्ले वि उवक्खाइज्जंति अत्थेगइया नो पाणाइवाए उवक्खाइज्जंति जाव नो मिच्छादंसणसल्ले उवक्खाइज्जंति। जेसिं पि णं जीवाणं ते जीवा एवमाहिज्जंति तेसिं पि णं जीवाणं अत्थेगइयाणं विन्नाए नाणत्ते, अत्थेगइयाणं नो विन्नाए नाणत्ते।

उववाओ सव्वओ जाव सव्वट्ठसिद्धाओ।

ठिई जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

छस्समुग्घाया केवलिवज्जा।

शेष सब कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के लिए भी जानना चाहिए।

विशेष—इनकी इन्द्रिय और स्थिति में अन्तर है।

शेष सब कथन पूर्ववत् है।

१३. लेश्यादि बारह द्वारों का पंचेन्द्रिय जीवों में प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! क्या कदाचित् (दो तीन) चार, या पांच पंचेन्द्रिय मिल कर एक साधारण शरीर बांधते हैं और बांधकर उसके बाद आहार करते हैं, आहार को परिणमाते हैं, फिर शरीर को बांधते हैं ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् द्वीन्द्रिय जीवों के समान जानना चाहिए।

विशेष—इनके छहों लेश्याएं और तीनों दृष्टियां होती हैं। इनमें चार ज्ञान और तीन अज्ञान विकल्प से होते हैं और तीनों योग होते हैं।

प्र. भन्ते ! क्या उन (पंचेन्द्रिय) जीवों को ऐसी संज्ञा, प्रज्ञा, मन या वचन होता है कि हम आहार ग्रहण करते हैं ?

उ. गौतम ! कितने ही (संज्ञी) जीवों को ऐसी संज्ञा, प्रज्ञा, मन या वचन होता है कि हम आहार ग्रहण करते हैं और कितने ही असंज्ञी जीवों को ऐसी संज्ञा यावत् वचन नहीं होता कि हम आहार ग्रहण करते हैं फिर भी वे आहार तो करते ही हैं।

प्र. भन्ते ! क्या उन (पंचेन्द्रिय) जीवों को ऐसी संज्ञा मन या वचन होता है कि हम इष्ट अनिष्ट शब्द, इष्ट अनिष्ट रूप, इष्ट अनिष्ट गन्ध, इष्ट अनिष्ट रस अथवा इष्ट अनिष्ट स्पर्श का अनुभव (प्रतिसंवेदन) करते हैं ?

उ. गौतम ! कतिपय (संज्ञी) जीवों को ऐसी संज्ञा यावत् वचन होता है कि हम इष्ट अनिष्ट शब्द यावत् इष्ट अनिष्ट स्पर्श का अनुभव करते हैं। किसी-किसी (असंज्ञी) को ऐसी संज्ञा यावत् वचन नहीं होता है कि हम इष्ट अनिष्ट शब्द यावत् इष्ट अनिष्ट स्पर्श का प्रतिसंवेदन करते हैं। परन्तु वे (शब्द आदि का संवेदन) अनुभव तो करते ही हैं।

प्र. भन्ते ! क्या ऐसा कहा जाता है कि वे (पंचेन्द्रिय) जीव प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य में रहे हुए हैं ?

उ. गौतम ! उनमें से कई (पंचेन्द्रिय) जीव प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य में रहे हुए हैं, ऐसा कहा जाता है। कई जीव प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य में नहीं रहे हुए हैं ऐसा कहा जाता है। जिन जीवों के प्रति वे प्राणातिपात आदि का व्यवहार करते हैं, उन जीवों में से कई जीवों को "हम मारे जाते हैं" और "ये हमें मारने वाले हैं" इस प्रकार का विज्ञान होता है और कई जीवों को इस प्रकार का ज्ञान नहीं होता है।

उन जीवों का उत्पाद सर्वार्थसिद्ध पर्यन्त के सर्व जीवों से भी होता है।

उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की होती है।

उनमें केवली समुद्घात को छोड़ कर (शेष) छह समुद्घात होते हैं।

उव्वट्टणा सव्वत्थ गच्छंति जाव सव्वट्ठसिद्धंति।

सेसं जहा बेइंदियाणं। *–विया. स. २०, उ. १, सु. ७-१०*

वे मर कर सभी जीवों में यावत् सर्वार्थसिद्ध पर्यन्त उत्पन्न होते हैं।

शेष सब कथन द्वीन्द्रिय जीवों के समान जानना चाहिए।

१४. विगलिंदिय-पंचेंदिय जीवाण य अप्पाबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! बेइंदियाणं जाव पंचेंदियाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा पंचेंदिया,
२. चउरिंदिया विसेसाहिया,
३. तेइंदिया विसेसाहिया,
४. बेइंदिया विसेसाहिया। *–विया. स. २०, उ. १, सु. ११*

१४. विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व–

प्र. भन्ते ! इन द्वीन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प पंचेन्द्रिय जीव हैं।
२. (उनसे) चतुरिन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं।
३. (उनसे) त्रीन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं।
४. (उनसे) द्वीन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं।

१५. ओहेण एगिंदिय भेयप्पभेय परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! एगिंदिया पन्नत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा एगिंदिया पन्नत्ता, तं जहा–
१. पुढविकाइया जाव ५. वणस्सइकाइया।

प. पुढविकाइया णं भंते ! कइविहा पन्नत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता, तं जहा–
१. सुहुमपुढविकाइया य, २. बायरपुढविकाइया य।

प. सुहुमपुढविकाइया णं भंते ! कइविहा पन्नत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता, तं जहा–
१. पज्जत्ता सुहुमपुढविकाइया य,
२. अपज्जत्ता सुहुमपुढविकाइया य।

प. बायरपुढविकाइया णं भंते ! कइविहा पन्नत्ता ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं आउकाइया वि चउक्कएणं भेएणं णेयव्वा।

एवं जाव वणस्सइकाइया[1]। *–विया. स. ३३, उ. १, सु. १-६*

१५. सामान्यतः एकेन्द्रियों के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! एकेन्द्रिय जीव पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. पृथ्वीकायिक यावत् ५. वनस्पतिकायिक।

प्र. भंते ! पृथ्वीकायिक जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. सूक्ष्मपृथ्वीकायिक, २. बादरपृथ्वीकायिक।

प्र. भन्ते ! सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. पर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक,
२. अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक।

प्र. भन्ते ! बादरपृथ्वीकायिक जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! वे भी पूर्ववत् दो प्रकार के कहे गए हैं।

इसी प्रकार अप्कायिक जीवों के भी चार-चार भेद जानने चाहिए।

इसी प्रकार वनस्पतिकायिक पर्यन्त चार-चार भेद जानने चाहिए।

१६. पुढविकाइयाइ पंच थावरेसु सुहुमत्त बायरत्ताइ परूवणं–

प. एयस्स णं भंते ! पुढविकाइयस्स आउकाइयस्स तेउकाइयस्स वाउकाइयस्स वणस्सइकाइयस्स य कयरे काये सव्वसुहुमे, कयरे काये सव्वसुहुमतराए ?

उ. गोयमा ! वणस्सइकाए सव्वसुहुमे, वणस्सइकाए सव्वसुहुमतराए।

प. एयस्स णं भन्ते ! पुढविकाइयस्स आउकाइयस्स तेउकाइयस्स वाउकाइयस्स य कयरे काये सव्वसुहुमे, कयरे काये सव्वसुहुमतराए ?

उ. गोयमा ! वाउकाये सव्वसुहुमे, वाउकाये सव्वसुहुमतराए।

प. एयस्स णं भन्ते ! पुढविकाइयस्स आउकाइयस्स तेउकाइयस्स य कयरे काये सव्वसुहुमे, कयरे काये सव्वसुहुमतराए ?

१६. पृथ्वीकायिकादि पांच स्थावरों में सूक्ष्मत्व बादरत्वादि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक (इन पांचों) में से कौन सी काय सब से सूक्ष्म है और कौन सी सूक्ष्मतर है ?

उ. गौतम ! (इन पांचों कायों में से) वनस्पतिकाय सबसे सूक्ष्म है और वनस्पतिकाय ही सबसे सूक्ष्मतर है।

प्र. भन्ते ! पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक (इन चारों) में से कौन सी काय सबसे सूक्ष्म है और कौन सी सूक्ष्मतर है ?

उ. गौतम ! (इन चारों में से) वायुकाय सबसे सूक्ष्म है और वायुकाय ही सबसे सूक्ष्मतर है।

प्र. भन्ते ! पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और अग्निकायिक (इन तीनों) में से कौन-सी काय सबसे सूक्ष्म है और कौन सी सूक्ष्मतर है ?

१. विया. स. ३४, ए. २, उ. १, सु. १

उ. गोयमा ! तेउकाये सव्वसुहुमे, तेउकाये सव्वसुहुमतराए।

प. एयस्स णं भंते ! पुढविकाइयस्स आउक्काइयस्स य कयरे काये सव्वसुहुमे, कयरे काये सव्वसुहुमतराए?

उ. गोयमा ! आउकाये सव्वसुहुमे, आउकाये सव्वसुहुमतराए।

प. एयस्स णं भंते ! पुढविकाइयस्स आउकाइयस्स तेउकाइयस्स वाउकाइयस्स वणस्सइकाइयस्स य कयरे काये सव्वबायरे, कयरे काये सव्वबायरतराए?

उ. गोयमा ! वणस्सइकाये सव्वबायरे, वणस्सइकाये सव्वबायरतराए।

प. एयस्स णं भंते ! पुढविकाइयस्स आउक्काइयस्स तेउक्काइयस्स वाउकाइयस्स य कयरे काये सव्वबायरे, कयरे काये सव्वबायरतराए?

उ. गोयमा ! पुढविकाए सव्वबायरे, पुढविकाए सव्वबायरतराए।

प. एयस्स णं भंते ! आउकाइयस्स तेउकाइयस्स वाउकाइयस्स य कयरे काये सव्वबायरे, कयरे काये सव्वबायरतराए?

उ. गोयमा ! आउकाये सव्वबायरे, आउकाये सव्वबायरतराए।

प. एयस्स णं भंते ! तेउकायस्स वाउकायस्स य कयरे काये सव्वबायरे, कयरे काये सव्वबायरतराए?

उ. गोयमा ! तेउकाए सव्वबायरे, तेउकाए सव्वबायरतराए।

–विया. स. ११, उ. ३, सु. २३-३०

उ. गौतम ! (इन तीनों) में से अग्निकाय सबसे सूक्ष्म है और अग्निकाय ही सबसे सूक्ष्मतर है।

प्र. भन्ते ! पृथ्वीकायिक और अप्कायिक (इन दोनों) में से कौन सी काय सबसे सूक्ष्म है और कौन सी सूक्ष्मतर है?

उ. गौतम ! (इन दोनों) में से अप्काय सबसे सूक्ष्म है और अप्काय ही सबसे सूक्ष्मतर है।

प्र. भन्ते ! इन पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक (इन पांचों) में से कौन सी काय सबसे बादर (स्थूल) है और कौन सी सबसे बादरतर है?

उ. गौतम ! (इन पांचों) में से वनस्पतिकाय सर्वबादर है, वनस्पतिकाय ही सबसे बादरतर है।

प्र. भन्ते ! पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक (इन चारों) में से कौन सी काय सबसे बादर है और कौन-सी बादरतर है?

उ. गौतम ! (इन चारों में से) पृथ्वीकाय सबसे बादर है और पृथ्वीकाय ही सबसे बादरतर है।

प्र. भन्ते ! अप्काय, तेजस्काय और वायुकाय (इन तीनों) में से कौन सी काय सर्ववादर है और कौन सी बादरतर है?

उ. गौतम ! इन तीनों में से अप्काय सर्ववादर है और अप्काय ही सबसे बादरतर है।

प्र. भन्ते ! अग्निकाय और वायुकाय (इन दोनों) में से कौन-सी काय सबसे वादर है कौन सी वादरतर है?

उ. गौतम ! इन दोनों में से अग्निकाय सर्ववादर है और अग्निकाय ही वादरतर है।

१७. पुढविकाइयाइ जीवाणं लोगेसु परूवणं–

अहेलोगे णं पंच बायरा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पुढविकाइया, २. आउकाइया,
३. वाउकाइया, ४. वणस्सइकाइया,
५. ओराला तसा पाणा।

एवं उड्ढलोगे वि।

तिरियलोगे णं पंच बायरा पण्णत्ता, तं जहा–

१. एगिंदिया, २. बेइंदिया,
३. तेइंदिया, ४. चउरिंदिया,
५. पंचिंदिया।

–ठाणं. अ. ५, उ. ३, सु. ४४४

१७. पृथ्वीकाय आदि का लोक में प्ररूपण–

अधोलोक में पांच प्रकार के वादर जीव कहे गए हैं, यथा–

१. पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक
३. वायुकायिक, ४. वनस्पतिकायिक
५. उदार त्रस प्राणी।

इसी प्रकार ऊर्ध्वलोक में भी पांच भेद जानने चाहिए।

तिर्यक्लोक में पांच प्रकार के वादर जीव कहे गए हैं, यथा–

१. एकेन्द्रिय, २. द्वीन्द्रिय,
३. त्रीन्द्रिय, ४. चतुरिन्द्रिय,
५. पंचेन्द्रिय।

१८. पुढविसरीरस्स महालयत्त परूवणं–

प. के महालए णं भंते ! पुढविसरीरे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! अणंताणं सुहुमवणस्सइकाइयाणं जावइया सरीरा से एगे सुहुमवाउसरीरे।

असंखेज्जाणं सुहुमवाउसरीराणं जावइया सरीरा से एगे सुहुमतेउसरीरे।

असंखेज्जाणं सुहुमतेउकाइयसरीराणं जावइया सरीरा से एगे सुहुमआउसरीरे।

१८. पृथ्वी शरीर की विशालता का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीवों का शरीर कितना बड़ा कहा गया है?

उ. गौतम ! अनन्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीवों के जितने शरीर होते हैं, उतना एक सूक्ष्म वायुकाय का शरीर होता है।

असंख्यात सूक्ष्म वायुकायिक जीवों के जितने शरीर होते हैं, उतना एक सूक्ष्म अग्निकाय का शरीर होता है।

असंख्यात सूक्ष्म अग्निकाय के जितने शरीर होते हैं, उतना एक सूक्ष्म अप्काय का शरीर होता है।

असंखेज्जाणं सुहुमआउकाइयसरीराणं जावइया सरीरा से एगे सुहुमपुढविसरीरे।

असंखेज्जाणं सुहुमपुढविकाइयाणं जावइया सरीरा से एगे बायरवाउसरीरे।

असंखेज्जाणं बायरवाउकाइयाणं जावइया सरीरा से एगे बायरतेउसरीरे।

असंखेज्जाणं बायरतेउकाइयाणं जावइया सरीरा से एगे बायरआउसरीरे।

असंखेज्जाणं बायरआउकाइयाणं जावइया सरीरा से एगे बायरपुढविसरीरे।

एमहालए णं गोयमा ! पुढविसरीरे पण्णत्ते।

—विया. स. १९, उ. ३, सु. ३१

असंख्यात सूक्ष्म अप्काय के जितने शरीर होते हैं, उतना एक सूक्ष्म पृथ्वीकाय का शरीर होता है।

असंख्यात सूक्ष्म पृथ्वीकाय के जितने शरीर होते हैं, उतना एक बादर वायुकाय का शरीर होता है।

असंख्यात बादर वायुकाय के जितने शरीर होते हैं, उतना एक बादर अग्निकाय का शरीर होता है।

असंख्यात बादर अग्निकाय के जितने शरीर होते हैं, उतना एक बादर अप्काय का शरीर होता है।

असंख्यात बादर अप्काय के जितने शरीर होते हैं, उतना एक बादर पृथ्वीकाय का शरीर होता है।

हे गौतम ! इतना बड़ा पृथ्वीकाय का शरीर होता है।

१९. पुढविकाइयस्स सरीरोगाहणा परूवणं—

प. पुढविकाइयस्स णं भंते ! के महालया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! से जहानामए रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स वण्णगपेसिया तरुणी बलवं जुगवं जुवाणी अप्पातंका जाव निउणसिप्पोवगया,

तिक्खाए वइरामईए सण्हकरणीए,

तिक्खेणं वइरामएणं वट्टावरएणं

एगं महं पुढविकायं जउगोलासमाणं गहाय पडिसाहरिय पडिसाहरिय पडिसंखिविय-पडिसंखिविय जाव इणामेव त्ति कट्टु तिसत्तखुत्तो ओपीसेज्जा।

तत्थ णं गोयमा ! अत्थेगइया पुढविकाइया आलिद्धा, अत्थेगइया नो आलिद्धा,

अत्थेगइया संघट्टिया, अत्थेगइया नो संघट्टिया,

अत्थेगइया परियाविया, अत्थेगइया नो परियाविया,

अत्थेगइया उद्दविया, अत्थेगइया नो उद्दविया,

अत्थेगइया पिट्ठा, अत्थेगइया नो पिट्ठा,

पुढविकाइयस्स णं गोयमा ! एमहालया सरीरोगाहणा पण्णत्ता।

—विया. स. १९, उ. ३, सु. ३२

१९. पृथ्वीकायिक की शरीरावगाहना का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! पृथ्वीकाय के शरीर की कितनी बड़ी अवगाहना कही गई है ?

उ. गौतम ! जैसे चक्रवर्ती राजा की चन्दन घिसने वाली दासी हो।

जो तरुणी, बलवती, युगवती, युवावय प्राप्त रोगरहित यावत् कला कुशल हो।

वह चूर्ण पीसने की वज्रमयी कठोर शिला पर,

वज्रमय तीक्ष्ण लोढ़े से लाख के गोले के समान,

पृथ्वीकाय का एक बड़ा पिण्ड लेकर बार-बार इकट्ठा करती और समेटती हुई—"मैं अभी इसे पीस डालती हूं," यों विचार कर उसे इक्कीस बार पीस दे तो भी

हे गौतम ! कई पृथ्वीकायिक जीवों का उस शिला और लोढ़े से स्पर्श होता है और कई जीवों का स्पर्श नहीं होता है।

उनमें से कई पृथ्वीकायिक जीवों का घर्षण होता है और कई पृथ्वीकायिकों का घर्षण नहीं होता है।

उनमें से कुछ को पीड़ा होती है और कुछ को पीड़ा नहीं होती है।

उनमें से कई मरते हैं और कई नहीं मरते हैं।

कई पीसे जाते हैं और कई नहीं पीसे जाते हैं।

गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव के शरीर की इतनी बड़ी अवगाहना कही गई है।

२०. एगिंदियाणं ओगाहणं पडुच्च अप्पबहुत्तं—

प. एएसि णं भंते ! पुढविकाइयाणं आउकाइयाणं तेउकाइयाणं वाउकाइयाणं वणस्सइकाइयाणं सुहुमाणं बादराणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाणं जहण्णुकोसियाए ओगाहणाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा !

१. सव्वत्थोवा सुहुमनिओयस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णिया ओगाहणा।
२. सुहुमवाउकाइयस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।
३. सुहुमतेउकाइयस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।

२०. एकेन्द्रियों का अवगाहना की अपेक्षा अल्पबहुत्व—

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म-बादर, पर्याप्तक, अपर्याप्तक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहनाओं में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उ. गौतम !

१. सबसे अल्प अपर्याप्त सूक्ष्मनिगोद की जघन्य अवगाहना है।
२. (उससे) अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक जीवों की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।
३. (उससे) अपर्याप्त सूक्ष्म अग्निकायिक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

४. सुहुमआउकाइयस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।

५. सुहुमपुढविकाइयस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।

६. बादरवाउकाइयस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।

७. बादरतेउकाइयस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।

८. बादरआउकाइयस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।

९. बादरपुढविकाइयस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।

१०-११. पत्तेयसरीर बादर वणस्सइकाइयस्स बादरनिओयस्स य, एएसि णं अपज्जत्तगाणं जहण्णिया ओगाहणा दोण्ह वि तुल्ला असंखेज्जगुणा।

१२. सुहुमनिगोयस्स पज्जत्तगस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।

१३. तस्सचेव अपज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया।

१४. तस्स चेव पज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया।

१५. सुहुमवाउकाइयस्स पज्जत्तगस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।

१६. तस्स चेव अपज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया।

१७. तस्स चेव पज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया।

१८. सुहुम तेउकाइयस्स पज्जत्तगस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।

१९. तस्स चेव अपज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया।

२०. तस्स चेव पज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया।

२१. सुहुम आउकाइयस्स पज्जत्तगस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।

२२. तस्स चेव अपज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया।

२३. तस्स चेव पज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया।

२४. सुहुम पुढविकाइयस्स पज्जत्तगस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।

२५. तस्स चेव अपज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया।

४. (उससे) अपर्याप्त सूक्ष्म अप्कायिक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

५. (उससे) अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

६. (उससे) अपर्याप्त बादर वायुकायिक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

७. (उससे) अपर्याप्त बादर अग्निकायिक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

८. (उससे) अपर्याप्त बादर अप्कायिक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

९. (उससे) अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

१०-११. (उससे) अपर्याप्त प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पतिकायिक की और बादर निगोद की जघन्य अवगाहना दोनों की परस्पर तुल्य और असंख्यात-गुणी है।

१२. (उससे) पर्याप्त सूक्ष्म निगोद की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

१३. (उससे) अपर्याप्त सूक्ष्म निगोद की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है।

१४. (उससे) पर्याप्त सूक्ष्म निगोद की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है।

१५. (उससे) पर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

१६. (उससे) अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है।

१७. (उससे) पर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है।

१८. (उससे) पर्याप्त सूक्ष्म अग्निकाय की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

१९. (उससे) उसी के अपर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है।

२०. (उससे) उसी के पर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है।

२१. (उससे) पर्याप्त सूक्ष्म अप्कायिक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

२२. (उससे) उसी के अपर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है।

२३. (उससे) उसी के पर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है।

२४. (उससे) पर्याप्त पृथ्वीकायिक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

२५. (उससे) उसी के अपर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है।

२६. तस्स चेव पज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया।

२७. बादर वाउक्काइयस्स पज्जत्तगस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।

२८. तस्स चेव अपज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया।

२९. तस्स चेव पज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया।

३०. बादर तेउकाइयस्स पज्जत्तगस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।

३१. तस्स चेव अपज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया।

३२. तस्स चेव पज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया।

३३. बादर आउकाइयस्स पज्जत्तगस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।

३४. तस्स चेव अपज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया।

३५. तस्स चेव पज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया।

३६. बादर पुढवीकाइयस्स पज्जत्तगस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।

३७. तस्स चेव अपज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया।

३८. तस्स चेव पज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया।

३९. बादरनिगोयस्स पज्जत्तगस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।

४०. तस्स चेव अपज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया।

४१. तस्स चेव पज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया।

४२. पत्तेयसरीर बादर वणस्सइकाइयस्स पज्जत्तगस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।

४३. तस्स चेव अपज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।

४४. तस्स चेव पज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। *-विया. स. १९, उ. ३, सु. २२*

२६. (उससे) उसी के पर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है।

२७. (उससे) पर्याप्त बादर वायुकायिक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

२८. (उससे) उसी के अपर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है।

२९. (उससे) उसी के पर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है।

३०. (उससे) पर्याप्त बादर अग्निकायिक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

३१. (उससे) उसी के अपर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है।

३२. (उससे) उसी के पर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है।

३३. (उससे) पर्याप्त बादर अप्कायिक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

३४. (उससे) उसी के अपर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है।

३५. (उससे) उसी के पर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है।

३६. (उससे) पर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

३७. (उससे) उसी के अपर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है।

३८. (उससे) उसी के पर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है।

३९. (उससे) पर्याप्त बादर निगोद की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

४०. (उससे) अपर्याप्त बादर निगोद की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है।

४१. (उससे) पर्याप्त बादर निगोद की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है।

४२. (उससे) पर्याप्त प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पतिकायिक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

४३. (उससे) अपर्याप्त प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पतिकायिक की उत्कृष्ट अवगाहना असंख्यातगुणी है।

४४. (उससे) पर्याप्त प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पतिकायिक की उत्कृष्ट अवगाहना असंख्यातगुणी है।

२१. अणंतरोववन्नग एगिंदिय भेयप्पभेय परूवणं-

प. कइविहा णं भंते ! अणंतरोववन्नगा एगिंदिया पन्नत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा अणंतरोववन्नगा एगिंदिया पन्नत्ता, तं जहा-

१. पुढविकाइया जाव ५. वणस्सइकाइया।

२१. अनन्तरोपपन्नक एकेन्द्रियों के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण-

प्र. भन्ते ! अनन्तरोपपन्नक (तत्काल उत्पन्न) एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्तरोपपन्नक एकेन्द्रिय जीव पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा-

१. पृथ्वीकायिक यावत् ५. वनस्पतिकायिक।

प. अणंतरोववन्नगा णं भंते ! पुढविकाइया कइविहा पन्नत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता, तं जहा–

१. सुहुमपुढविकाइया य २. बादरपुढविकाइया य।

एवं दुपएणं भेएणं जाव वणस्सइकाइया[1]।

–विया. स. ३३, उ. २, सु. १

प्र. भन्ते ! अनन्तरोपपन्नक पृथ्वीकायिक जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सूक्ष्म पृथ्वीकायिक २. बादर पृथ्वीकायिक।

इसी प्रकार (प्रत्येक) एकेन्द्रिय के (दो-दो) भेद वनस्पतिकायिक पर्यन्त जानना चाहिए।

२२. परंपरोववन्नग एगिंदिय जीवाणं भेयप्पभेय परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! परंपरोववन्नगा एगिंदिया पन्नत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा परंपरोववन्नगा एगिंदिया पण्णत्ता, तं जहा–

१. पुढविकाइया जाव ५. वणस्सइकाइया।

एवं चउक्कओ भेओ जहा ओहियउद्देसए।

–विया. स. ३३, उ. ३, सु. १

२२. परंपरोपपन्नक एकेन्द्रियों के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परंपरोपपन्नक एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! परंपरोपपन्नक एकेन्द्रिय जीव पाँच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पृथ्वीकायिक यावत् ५. वनस्पतिकायिक।

इसी प्रकार औघिक उद्देशक के अनुसार चार-चार भेद कहने चाहिए।

२३. अणंतरोवगाढाइ एगिंदिय जीवाणं भेयप्पभेय परूवणं–

१. अणंतरोगाढा जहा अणंतरोववन्नगा।

२. परंपरोगाढा जहा परंपरोववन्नगा।

३. अणंतराहारगा जहा अणंतरोववन्नगा।

४. परंपराहारगा जहा परंपरोववन्नगा।

५. अणंतरपज्जत्तगा जहा अणंतरोववन्नगा।

६. परंपरपज्जत्तगा जहा परंपरोववन्नगा।

७. चरिमा वि जहा परंपरोववन्नगा।

८. एवं अचरिमा वि।

एवं एए एक्कारस उद्देसगा। –विया. स. ३३/१, उ. ४-११

२३. अनन्तरोवगाढादि एकेन्द्रियों के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण–

१. अनन्तरावगाढ एकेन्द्रिय का कथन अनन्तरोपपन्नक उद्देशक के समान जानना चाहिए।

२. परम्परावगाढ एकेन्द्रिय का कथन परम्परोपपन्नक उद्देशक के समान जानना चाहिए।

३. अनन्तराहारक एकेन्द्रिय का कथन अनन्तरोपपन्नक उद्देशक के समान जानना चाहिए।

४. परम्पराहारक एकेन्द्रिय का कथन परम्परोपपन्नक उद्देशक के समान जानना चाहिए।

५. अनन्तरपर्याप्तक एकेन्द्रिय का कथन अनन्तरोपपन्नक उद्देशक के समान जानना चाहिए।

६. परम्परपर्याप्तक एकेन्द्रिय का कथन परम्परोपपन्नक उद्देशक के समान जानना चाहिए।

७. चरम एकेन्द्रिय का कथन परम्परोपपन्नक उद्देशक के समान जानना चाहिए।

८. अचरम एकेन्द्रिय का कथन परंपरोपपन्नक उद्देशक के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार ये इग्यारह उद्देशक हुए।

२४. कण्हलेस्स एगिंदिय जीवाणं भेयप्पभेय परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! कण्हलेस्सा एगिंदिया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा कण्हलेस्सा एगिंदिया पण्णत्ता, तं जहा–

१. पुढविकाइया जाव ५. वणस्सइकाइया।

प. कण्हलेस्सा णं भंते ! पुढविकाइया कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सुहुमपुढविकाइया य २. बायरपुढविकाइया य।

प. कण्हलेस्सा णं भंते ! सुहुमपुढविकाइया कइविहा पण्णत्ता ?

२४. कृष्णलेश्यी एकेन्द्रियों के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीव पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पृथ्वीकायिक यावत् ५. वनस्पतिकायिक।

प्र. भंते ! कृष्णलेश्या वाले पृथ्वीकायिक जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सूक्ष्मपृथ्वीकायिक २. बादरपृथ्वीकायिक।

प्र. भंते ! कृष्णलेश्या वाले सूक्ष्म पृथ्वीकायिक कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

---

१. (क) विया. स. ३४/ए. २, उ. १, सु. १ (ख) विया. स. ३४/ए. १, उ. ३, सु. १

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. अपज्जत्ता सुहुमपुढविकाइया य।
२. पज्जत्ता सुहुमपुढविकाइया य।
प. कण्हलेस्सा णं भंते ! बायरपुढविकाइया कइविहा पण्णत्ता?
उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. अपज्जत्ता बायरपुढविकाइया य,
२. पज्जत्ता बायरपुढविकाइया य।
एवं आउकाइया वि चउक्कएणं भेएणं णेयव्वा।

एवं जाव वणस्सइकाइया। *–विया. स. ३३/२, उ. १, सु. १-३*

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. अपर्याप्तक सूक्ष्म पृथ्वीकायिक।
२. पर्याप्तक सूक्ष्म पृथ्वीकायिक।
प्र. भंते ! कृष्णलेश्या वाले बादर पृथ्वीकायिक कितने प्रकार के कहे गए हैं?
उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. अपर्याप्तक बादर पृथ्वीकायिक,
२. पर्याप्तक बादर पृथ्वीकायिक।
इसी प्रकार अप्कायिक जीवों के भी चार-चार भेद जानने चाहिए।
इसी प्रकार वनस्पतिकायिक पर्यन्त (चार-चार) भेद जानने चाहिए।

२५. अणंतरोववन्नग कण्हलेस्स एगिंदिय भेयप्पभेय परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! अणंतरोववन्नगा कण्हलेस्सा एगिंदिया पण्णत्ता?
उ. गोयमा ! पंचविहा अणंतरोववन्नगा कण्हलेस्सा एगिंदिया पण्णत्ता, तं जहा–
१. पुढविकाइया जाव ५. वणस्सइकाइया।
एवं एएणं अभिलावेणं तहेव दुपओ भेओ जाव वणस्सइकाइय त्ति। *–विया. स. ३३/२, उ. २, सु. १*

२५. अनन्तरोपपन्नक कृष्णलेश्यी एकेन्द्रियों के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! अनन्तरोपपन्नक कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं?
उ. गौतम ! अनन्तरोपपन्नक कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीव पाँच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. पृथ्वीकायिक यावत् ५. वनस्पतिकायिक।
इसी प्रकार इसी अभिलाप से पूर्ववत् वनस्पतिकायिक पर्यन्त दो-दो भेद जानने चाहिए।

२६. परंपरोववन्नग कण्हलेस्स एगिंदियजीवाणं भेयप्पभेय परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! परंपरोववन्नगा कण्हलेस्सा एगिंदिया पण्णत्ता?
उ. गोयमा ! पंचविहा परंपरोववन्नगा कण्हलेस्सा एगिंदिया पण्णत्ता, तं जहा–
१. पुढविकाइया जाव ५. वणस्सइकाइया।
एवं एएणं अभिलावेणं चउक्कओ भेओ जाव वणस्सइकाय त्ति। *–विया. स. ३३/२, उ. ३, सु. १*

२६. परंपरोपपन्नक कृष्णलेश्यी एकेन्द्रियों के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परम्परोपपन्नक कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं?
उ. गौतम ! परम्परोपपन्नक कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीव पाँच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. पृथ्वीकायिक यावत् ५. वनस्पतिकायिक।
इसी प्रकार इसी अभिलाप से वनस्पतिकायिक पर्यन्त चार-चार भेद कहने चाहिए।

२७. अणंतरोवगाढाइ कण्हलेस्स एगिंदियाणं भेयप्पभेय परूवणं–

एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिए एगिंदियस्स एक्कारस उद्देसा भणिया तहेव कण्हलेस्साए वि भाणियव्वा जाव अचरिमकण्हलेस्सा एगिंदिया। *–विया. स. ३३/२, उ. ४-११*

२७. अनन्तरावगाढादि कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीवों के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण–

औधिक एकेन्द्रियशतक में जिस प्रकार ग्यारह उद्देशक कहे गए हैं, उसी प्रकार इस अभिलाप से अचरम कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय पर्यन्त यहाँ कृष्णलेश्यी शतक में भी ग्यारह उद्देशक जानने चाहिए।

२८. नील-काउलेस्स एगिंदिय जीवाणं भेयप्पभेय परूवणं–

जहा कण्हलेस्सेहिं एवं नीललेस्सेहिं वि सयं भाणियव्वं। *–विया. स. ३३/३, उ. १-११*

एवं काउलेस्सेहिं वि सयं भाणियव्वं।

णवरं–काउलेस्स त्ति अभिलावो। *–विया. स. ३३/४, उ. १-११*

२८. नील-कापोतलेश्यी एकेन्द्रियों के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण–

जैसे कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय का शतक कहा वैसे ही नीललेश्यी एकेन्द्रिय जीवों का शतक भी कहना चाहिए।

कापोतलेश्यी एकेन्द्रिय के विषय में भी इसी प्रकार शतक कहना चाहिए।

विशेष–कृष्णलेश्या के स्थान पर कापोतलेश्या ऐसा कहना चाहिए।

२९. भवसिद्धीय एगिंदिय जीवाणं भेयप्पभेय परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! भवसिद्धीया एगिंदिया पन्नत्ता?

उ. गोयमा ! पंचविहा भवसिद्धीया एगिंदिया पन्नत्ता, तं जहा–

१. पुढविकाइया जाव ५. वणस्सइकाइया।

भेओ चउक्कओ जाव वणस्सइकाइय त्ति।

–विया. स. ३३/५ उ. १-११

२९. भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीवों के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उ. गौतम ! भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीव पाँच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पृथ्वीकायिक यावत् ५. वनस्पतिकायिक।

वनस्पतिकायिक पर्यन्त इनके चार-चार भेद पूर्ववत् कहने चाहिए।

३०. कण्हलेस्स भवसिद्धीय एगिंदिय जीवाणं भेयप्पभेय परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! कण्हलेस्सा भवसिद्धिया एगिंदिया पन्नत्ता?

उ. गोयमा ! पंचविहा कण्हलेस्सा भवसिद्धिया एगिंदिया पन्नत्ता, तं जहा–

१. पुढविकाइया जाव ५. वणस्सइकाइया।

प. कण्हलेस्सा भवसिद्धीया पुढविकाइया णं भन्ते! कइविहा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सुहुमपुढविकाइया य २. बायरपुढविकाइया य।

प. कण्हलेस्सा भवसिद्धीया सुहुमपुढविकाइया णं भन्ते ! कइविहा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पज्जत्तगा य २. अपज्जत्तगा य।

एवं बायरा वि।

एवं एएणं अभिलावेणं तहेव चउक्कओ भेओ भाणियव्वो।

–विया. स. ३३/६, उ. १-११ सु. १-५

३०. कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीवों के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उ. गौतम ! कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीव पाँच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पृथ्वीकायिक यावत् ५. वनस्पतिकायिक।

प्र. भंते ! कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक पृथ्वीकायिक कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सूक्ष्मपृथ्वीकायिक २. बादर पृथ्वीकायिक।

प्र. भंते ! कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक सूक्ष्मपृथ्वीकायिक कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पर्याप्तक २. अपर्याप्तक।

इसी प्रकार बादरपृथ्वीकायिक के भी दो भेद जानने चाहिए।

इसी प्रकार इसी अभिलाप से प्रत्येक के चार-चार भेद कहने चाहिए।

३१. अणंतरोववन्नगाइ कण्हलेस्स भवसिद्धीय एगिंदिय जीवाणं भेयप्पभेय परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! अणंतरोववन्नगा कण्हलेस्सा भवसिद्धीया एगिंदिया पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! पंचविहा अणंतरोववन्नगा कण्हलेस्सा भवसिद्धिया एगिंदिया पण्णत्ता, तं जहा–

१. पुढविकाइया जाव ५. वणस्सइकाइया।

प. अणंतरोववन्नगा कण्हलेस्सा भवसिद्धीय पुढविकाइयाणं भंते ! कइविहा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सुहुमपुढविकाइया य, २. बायरपुढविकाइया य।

एवं दुपओ भेओ। –विया. स. ३३/६, उ. १-११, सु. ७-९

एवं एएणं अभिलावेणं एक्कारस वि उद्देसगा तहेव भाणियव्वा जहा ओहियसए जाव अचरिमो त्ति।

–विया. स. ३३/६, उ. १-११, सु. ११

३१. अनन्तरोपपन्नकादि कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रियों के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! अनन्तरोपपन्नक कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनन्तरोपपन्नक कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीव पाँच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पृथ्वीकायिक यावत् ५. वनस्पतिकायिक।

प्र. भंते ! अनन्तरोपपन्नक कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक पृथ्वीकायिक कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सूक्ष्मपृथ्वीकायिक २. बादर पृथ्वीकायिक।

इसी प्रकार शेष अप्कायिक आदि के भी दो-दो भेद कहने चाहिए।

इसी प्रकार इसी अभिलाप से औधिक शतक के अनुसार अचरम पर्यन्त पूर्ववत् ग्यारह ही उद्देशक कहने चाहिए।

३२. नील-काउलेस्स भवसिद्धीय एगिंदिय जीवाणं भेयप्पभेय परूवणं–

जहा कण्हलेस्सा भवसिद्धीय सयं भणियं एवं नीललेस्स भवसिद्धीएहिं वि सयं भाणियव्वं।

–विया. स. ३३/७, उ. १-११

एवं काउलेस्सा भवसिद्धीएहिं वि सयं।

–विया. स. ३३/८, उ. १-११

३३. अभवसिद्धीय एगिंदिय जीवाणं भेयप्पभेय परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! अभवसिद्धीया एगिंदिया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा अभवसिद्धीया एगिंदिया पण्णत्ता, तं जहा–

१. पुढविकाइया जाव ५. वणस्सइकाइया।

एवं जहेव भवसिद्धीय सयं।

णवरं–नव उद्देसगा चरिम, अचरिम उद्देसगवज्जं।

सेसं तहेव।

–विया. स. ३३/९, उ. १-११

३४. कण्ह-नील काउलेस्स अभवसिद्धीय एगिंदिय जीवाणं भेयप्पभेय परूवणं–

एवं कण्हलेस्सा अभवसिद्धीय सयं वि।

–विया. स. ३३/१०, उ. १-११

नीललेस्सा अभवसिद्धीय एगिंदियाएहिं वि सयं।

–विया. स. ३३/११, उ. १-९

काउलेस्सा अभवसिद्धीएहिं वि सयं।

एवं चत्तारि वि अभवसिद्धीयसयाणि नव-नव उद्देसगा भवंति।

–विया. स. ३३/१२, उ. १-९, सु. १-२

३५. उप्पल वणस्सइकाइयाणं उववायाइ वत्तीसद्दारेहिं परूवणं–

१. उववाओ, २. परिमाणं,
३-४. [illegible], ५. बंध, ६. वेदे य।
७. [illegible], ८. उदीरणाए, ९. लेसा, १०. दिट्ठी य,
११. [illegible] य॥ १२-१३. जोगुवओगे,
१४. [illegible], १५. ऊसासगे य, १६. आहारे।
१७. [illegible], १८. किरिया, १९. बंधे,
[illegible], २१-२२. कसायित्थि,
[illegible] २४-२५. [illegible]दिय,
[illegible] २७-२८. [illegible],
[illegible] ३०. [illegible] ३१. [illegible] मूलाईसु य,
[illegible]

[illegible] जाव [illegible] एवं

३२. नील-कापोतलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रियों के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण–

जिस प्रकार कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीवों का शतक कहा, उसी प्रकार नीललेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीवों का शतक भी कहना चाहिए।

कापोतलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीवों का शतक भी इसी प्रकार (पूर्ववत्) कहना चाहिए।

३३. अभवसिद्धिक एकेन्द्रियों के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीव पाँच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पृथ्वीकायिक यावत् ५. वनस्पतिकायिक।

जिस प्रकार भवसिद्धिक शतक कहा उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।

विशेष–चरम-अचरम उद्देशक को छोड़कर शेष नौ उद्देशक जानना चाहिए।

शेष कथन पूर्ववत् है।

३४. कृष्ण-नील-कापोतलेश्यी अभवसिद्धिक एकेन्द्रियों के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण–

इसी प्रकार कृष्णलेश्यी अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय का शतक भी पूर्ववत् कहना चाहिए।

इसी प्रकार नीललेश्यी अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय का शतक भी पूर्ववत् जानना चाहिए।

इसी प्रकार कापोतलेश्यी अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय का शतक भी पूर्ववत् जानना चाहिए।

अभवसिद्धिक चारों शतक के नौ-नौ उद्देशक कहने चाहिए।

३५. उत्पलादि वनस्पतिकायिकों के उत्पातादि बत्तीस द्वारों के प्ररूपण–

१. उपपात,	२. परिमाण,	३. अपहार,
४. अवगाहना (ऊँचाई)		५. कर्म (बंधक)
६. वेदक,	७. उदय,	८. उदीरणा,
९. लेश्या,	१०. दृष्टि,	११. ज्ञान,
१२. योग,	१३. अपयोग,	१४. वर्ण-रसादि,
१५. उच्छ्वास,	१६. आहार,	१७. विरति,
१८. क्रिया,	१९. वन्धक,	२०. संज्ञा,
२१. कपाय,	२२. स्त्रीवेदादि,	२३. वन्ध,
२४. संज्ञी,	२५. इन्द्रिय,	२६. अनुवन्ध,
२७. संवेध,	२८. आहार,	२९. स्थिति,
३०. समुद्घात	३१. च्यवन,	

३२. सभी जीवों का मूलादि में उपपात। (ये उत्पलादि के ३२ द्वार हैं)

उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था यावत् पर्युपासना करते हुए (गौतमस्वामी ने) इस प्रकार पूछा–

३६. उप्पलपत्ते एग-अणेगजीववियारो–

प. उप्पले णं भंते ! एगपत्तए किं एगजीवे अणेगजीवे ?

उ. गोयमा ! एगजीवे, नो अणेगजीवे।

तेण परं जे अन्ने जीवा उववज्जंति, ते णं णो एगजीवा अणेगजीवा।

१. उववायदारं–

प. ते णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति ?
किं नेरइएहिंतो उववज्जंति,
तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
देवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति,
तिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति,
मणुस्सेहिंतो वि उववज्जंति,
देवेहिंतो वि उववज्जंति।

एवं उववाओ भाणियव्वो जहा वक्कंतिए[1] वणस्सईकाइयाणं जाव ईसाणो त्ति।

२. परिमाणदारं–

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति।

३. अवहारदारं–

प. ते णं भंते ! जीवा समए-समए अवहीरमाणा-अवहीरमाणा केवइ कालेणं अवहीरंति ?

उ. गोयमा ! ते णं असंखेज्जा समए-समए अवहीरमाणा-अवहीरमाणा असंखेज्जाहिं ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहिं अवहीरंति, नो चेव णं अवहिया सिया।

४. उच्चत्त (ओगाहणा) दारं–

प. तेसि णं भंते ! जीवाणं के महालिया सरीरोगाहणा पन्नत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं,
उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं।

५. णाणावरणाइबंधदारं–

प. ते णं भंते ! जीवा णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधगा अबंधगा ?

उ. गोयमा ! नो अबंधगा, बंधए वा, बंधगा वा।

एवं जाव अंतराइयस्स। णवरं–

३६. उत्पल पत्र में एक-अनेक जीव विचार–

प्र. भंते ! एक पत्र वाला उत्पल (कमल) एक जीव वाला है या अनेक जीव वाला है ?

उ. गौतम ! एक पत्र वाला उत्पल एक जीव वाला है, अनेक जीव वाला नहीं है।

इसके उपरान्त उस में जो दूसरे पत्ते उत्पन्न होते हैं, वे एक जीव वाले नहीं हैं अनेक जीव वाले हैं।

१. उपपातद्वार–

प्र. भंते ! वे जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?
क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं,
तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं,
मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं,
देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
वे तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं,
मनुष्यों से भी आकर उत्पन्न होते हैं,
देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार (प्रज्ञापना के) छठे व्युत्क्रांतिपद में बताये गए वनस्पतिकायिक जीवों में ईशान देवलोक पर्यन्त के जीवों का उपपात कहना चाहिए।

२. परिमाण द्वार–

प्र. भंते ! एक समय में वे जीव कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे एक समय में जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

३. अपहार द्वार–

प्र. भंते ! वे जीव प्रत्येक समय में एक-एक निकाले जाएँ तो कितने काल में अपहृत हो सकते हैं ?

उ. गौतम ! वे असंख्यात जीव हैं। यदि प्रत्येक समय में एक-एक निकाले जाएँ तो असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल जितने समय तक उनका अपहरण होता है तो भी उन जीवों का अपहरण नहीं हो सकता है।

४. ऊँचाई (अवगाहना) द्वार–

प्र. भंते ! उन जीवों की शरीर अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है ?

उ. गौतम ! उनकी अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट कुछ अधिक एक हजार योजन की है।

५. ज्ञानावरणादिबंध द्वार–

प्र. भंते ! वे जीव, ज्ञानावरणीय कर्म के बंधक हैं या अबंधक हैं ?

उ. गौतम ! वे (ज्ञानावरणीय कर्म के) अबंधक नहीं हैं, किन्तु एक जीव भी बंधक है और अनेक जीव भी बंधक है।

इसी प्रकार (आयु कर्म को छोड़कर) अन्तराय कर्म पर्यन्त जानना चाहिए। विशेष–

---

१. वक्रांति अध्ययन में देखें (पण्ण. प. ६, सु. ६५३)

प. भंते ! आउयस्स कम्मस्स किं बंधगा, अबंधगा ?

उ. गोयमा ! १. बंधए वा,
२. अबंधए वा,
३. बंधगा वा,
४. अबंधगा वा,
५. अहवा बंधए य, अबंधए य,
६. अहवा बंधए य, अबंधगा य,
७. अहवा बंधगा य, अबंधगे य,
८. अहवा बंधगा य, अबंधगा य,

एए अट्ठ भंगा,

प्र. भंते ! वे जीव आयु कर्म के बंधक हैं या अबंधक हैं ?

उ. गौतम ! १. एक जीव बंधक है,
२. एक जीव अबंधक है,
३. अनेक जीव बंधक है,
४. अनेक जीव अबंधक है,
५. अथवा एक जीव बंधक है और एक जीव अबंधक है,
६. अथवा एक जीव बंधक है और अनेक जीव अबंधक हैं,
७. अथवा अनेक जीव बंधक हैं और एक जीव अबंधक है,
८. अथवा अनेक जीव बंधक हैं और अनेक जीव अबंधक हैं,

इस प्रकार ये आठ भंग हैं।

६. वेदग दारं-

प. ते णं भंते ! जीवा णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं वेदगा, अवेदगा ?

उ. गोयमा ! नो अवेदगा, वेदए वा, वेदगा वा।

एवं जाव अंतराइयस्स।

प. ते णं भंते ! जीवा किं सायावेयगा, असायावेयगा ?

उ. गोयमा ! सायावेयए वा, असायावेयए वा, अट्ठ भंगा।

६. वेदकद्वार-

प्र. भंते ! वे जीव ज्ञानावरणीय कर्म के वेदक हैं या अवेदक हैं ?

उ. गौतम ! वे अवेदक नहीं हैं किन्तु एक जीव भी वेदक है और अनेक जीव भी वेदक हैं।

इसी प्रकार अन्तराय कर्म पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! वे जीव साता वेदक हैं या असाता वेदक हैं ?

उ. गौतम ! एक जीव सातावेदक है और एक जीव असातावेदक है। इत्यादि (पूर्वोक्त) आठ भंग जानने चाहिए।

७. उदयदारं-

प. ते णं भंते ! जीवा नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं उदई, अणुदई ?

उ. गोयमा ! नो अणुदई, उदई वा, उदइणो वा।

एवं जाव अंतराइयस्स।

७. उदयद्वार-

प्र. भंते ! वे जीव ज्ञानावरणीय कर्म के उदय वाले हैं या अनुदय वाले हैं ?

उ. गौतम ! वे अनुदय वाले नहीं हैं किन्तु एक जीव भी उदयवाला है और अनेक जीव भी उदय वाले हैं।

इसी प्रकार अन्तराय कर्म पर्यन्त जानना चाहिए।

८. उदीरग दारं-

प. ते णं भंते ! जीवा नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं उदीरगा, अणुदीरगा ?

उ. गोयमा ! नो अणुदीरगा, उदीरए वा, उदीरगा वा।

एवं जाव अंतराइयस्स।

णवरं-वेयणिज्जाउएसु अट्ठ भंगा।

८. उदीरक द्वार-

प्र. भंते ! वे जीव ज्ञानावरणीय कर्म के उदीरक हैं या अनुदीरक हैं ?

उ. गौतम ! वे अनुदीरक नहीं हैं किन्तु एक जीव भी उदीरक है और अनेक जीव भी उदीरक हैं।

इसी प्रकार अन्तराय कर्म पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष-वेदनीय और आयु कर्म के आठ भंग कहने चाहिए।

९. लेस्सादारं-

प. ते णं भंते ! जीवा किं कण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काउलेस्सा, तेउलेस्सा ?

उ. गोयमा ! कण्हलेस्से वा जाव तेउलेस्से वा,

कण्हलेस्सा वा, नीललेस्सा वा, काउलेस्सा वा तेउलेस्सा वा,

अहवा कण्हलेस्से य, नीललेस्से य,

एवं एए दुया संजोग, तिया-संजोग, चउक्कसंजोगेण य असीतिं भंगा भवंति।

९. लेश्या द्वार-

प्र. भंते ! वे जीव क्या कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले, कापोतलेश्या वाले या तेजोलेश्या वाले होते हैं ?

उ. गौतम ! एक जीव कृष्णलेश्या वाला होता है यावत् तेजोलेश्या वाला होता है।

अनेक जीव कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले, कापोतलेश्या वाले या तेजोलेश्या वाले होते हैं।

अथवा एक कृष्णलेश्या वाला और एक नीललेश्या वाला होता है।

इस प्रकार ये द्विकसंयोगी, त्रिकसंयोगी और चतुःसंयोगी सब मिला कर अस्सी (८०) भंग होते हैं।

१०. दिट्ठिदारं–

प. ते णं भंते ! जीवा किं सम्मद्दिट्ठी मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ?

उ. गोयमा ! नो सम्मद्दिट्ठी, नो सम्मामिच्छादिट्ठी, मिच्छादिट्ठी वा, मिच्छादिट्ठिणो वा

११. नाणदारं–

प. ते णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! नो नाणी, अन्नाणी वा, अन्नाणिणो वा।

१२. जोगदारं–

प. ते णं भन्ते ! जीवा किं मणजोगी, वइजोगी, कायजोगी ?

उ. गोयमा ! नो मणजोगी, नो वइजोगी, कायजोगी वा, कायजोगिणो वा।

१३. उवओगदारं–

प. ते णं भंते ! जीवा किं सागारोवउत्ता, अणागारोवउत्ता ?

उ. गोयमा ! सागारोवउत्ते वा, अणागारोवउत्ते वा।
अट्ठ भंगा।

१४. वण्ण-रसाइदारं–

प. तेसि णं भंते ! जीवाणं सरीरगा कतिवण्णा, कतिरसा, कतिगंधा, कतिफासा पन्नत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचवण्णा, पंचरसा, दुगंधा, अट्ठफासा पन्नत्ता। ते पुण अप्पणा अवण्णा, अगंधा, अरसा, अफासा पन्नत्ता।

१५. उस्सासगदारं–

प. ते णं भंते ! जीवा किं उस्सासा, निस्सासा, नो उस्सासनिस्सासा ?

उ. गोयमा ! १. उस्सासए वा,
२. निस्सासए वा,
३. नो उस्सास-निस्सासए वा
४. उस्सासगा वा
५. निस्सासगा वा,
६. नो उस्सास-निस्सासगा वा,
७-१०. अहवा उस्सासए य, निस्सासए य,
११-१४. अहवा उस्सासए य, नो उस्सास निस्सासए य,
१५-१८. अहवा निस्सासए य, नो उस्सास निस्सासए य।
१९-२६. अहवा उस्सासए य, निस्सासए य, नो उस्सास निस्सासए य।
अट्ठ भंगा।
एए छव्वीसं भंगा भवंति।

१०. दृष्टि द्वार–

प्र. भंते ! वे जीव सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि या सम्यग्मिथ्या-दृष्टि हैं ?

उ. गौतम ! वे सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं हैं किन्तु एक भी मिथ्यादृष्टि है और अनेक भी मिथ्यादृष्टि हैं।

११. ज्ञान द्वार–

प्र. भंते ! वे जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! वे ज्ञानी नहीं हैं किन्तु एक जीव भी अज्ञानी है और अनेक जीव भी अज्ञानी हैं।

१२. योग द्वार–

प्र. भंते ! वे जीव क्या मनोयोगी हैं, वचनयोगी हैं या काययोगी हैं ?

उ. गौतम ! वे मनोयोगी और वचनयोगी नहीं हैं, किन्तु एक जीव भी काययोगी है और अनेक जीव भी काययोगी हैं।

१३. उपयोग द्वार–

प्र. भंते ! वे जीव साकारोपयोगी हैं या अनाकारोपयोगी हैं ?

उ. गौतम ! वे साकारोपयोगी भी हैं और अनाकारोपयोगी भी हैं इत्यादि पूर्ववत् आठ भंग कहने चाहिए।

१४. वर्णरसादिद्वार–

प्र. भंते ! उन जीवों के शरीर कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श वाले कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! उनके शरीर पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध और आठ स्पर्श वाले कहे गए हैं। किन्तु वे स्वयं वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से रहित कहे गए हैं।

१५. उच्छ्वासकद्वार–

प्र. भंते ! वे जीव उच्छ्वासक हैं, निःश्वासक हैं या उच्छ्वासक निःश्वासक हैं ?

उ. गौतम ! (उनमें से) १. कोई एक जीव उच्छ्वासक है,
२. कोई एक जीव निःश्वासक है,
३. कोई एक जीव अनुच्छ्वासक-निःश्वासक है।
४. अनेक जीव उच्छ्वासक हैं,
५. अनेक जीव निःश्वासक हैं,
६. अनेक जीव अनुच्छ्वासक-निःश्वासक हैं,
७-१०. अथवा एक जीव उच्छ्वासक है और एक निःश्वासक है,
११-१४. अथवा एक जीव उच्छ्वासक और अनुच्छ्वासक निःश्वासक है,
१५-१८. अथवा एक जीव निःश्वासक और अनुच्छ्वासक निःश्वासक है,
१९-२६. अथवा एक जीव उच्छ्वासक निःश्वासक और अनुच्छ्वासक-निःश्वासक है।
इत्यादि आठ भंग होते हैं।
ये सब मिलकर छब्बीस (२६) भंग होते हैं।

१६. आहारदारं–

प. ते णं भंते ! जीवा किं आहारगा, अणाहारगा ?

उ. गोयमा ! आहारए वा, अणाहारए वा।

एवं अट्ठ भंगा।

१६. आहार द्वार–

प्र. भंते ! वे जीव आहारक हैं या अनाहारक हैं ?

उ. गौतम ! कोई एक जीव आहारक है, अथवा कोई एक जीव अनाहारक है।

इत्यादि आठ भंग कहने चाहिए।

१७. विरइदारं–

प. ते णं भंते ! जीवा किं विरया, अविरया, विरयाविरया ?

उ. गोयमा ! नो विरया, नो विरयाविरया, अविरए वा, अविरया वा।

१७. विरतिद्वार–

प्र. भंते ! क्या वे जीव विरत, अविरत या विरताविरत हैं ?

उ. गौतम ! वे जीव विरत और विरताविरत नहीं हैं किन्तु एक जीव भी अविरत है और अनेक जीव भी अविरत हैं।

१८. किरियादारं–

प. ते णं भंते ! जीवा किं सकिरिया, अकिरिया ?

उ. गोयमा ! नो अकिरिया, सकिरिए वा, सकिरिया वा।

१८. क्रियाद्वार–

प्र. भंते ! क्या वे जीव सक्रिय हैं या अक्रिय हैं ?

उ. गौतम ! वे अक्रिय नहीं हैं, किन्तु एक जीव भी सक्रिय है और अनेक जीव भी सक्रिय हैं।

१९. बंधगदारं–

प. ते णं भंते ! जीवा किं सत्तविहबंधगा, अट्ठविहबंधगा ?

उ. गोयमा ! सत्तविहबंधए वा, अट्ठविहबंधए वा,

एवं अट्ठ भंगा।

१९. बंधक द्वार–

प्र. भंते ! वे जीव सप्तविध (सात कर्मों के) बंधक हैं या अष्टविध (आठ कर्मों के) बंधक हैं ?

उ. गौतम ! एक जीव सप्तविधबंधक है, एक जीव अष्टविधबंधक है।

इत्यादि आठ भंग कहने चाहिए।

२०. सण्णादारं–

प. ते णं भंते ! जीवा किं आहारसण्णोवउत्ता, भयसण्णोवउत्ता, मेहुणसण्णोवउत्ता, परिग्गहसण्णोवउत्ता ?

उ. गोयमा ! आहारसण्णोवउत्ता वा।

असीई भंगा।

२०. संज्ञाद्वार–

प्र. भंते ! वे जीव आहारकसंज्ञा के उपयोग वाले हैं, भयसंज्ञा के उपयोग वाले हैं, मैथुनसंज्ञा के उपयोग वाले हैं या परिग्रहसंज्ञा के उपयोग वाले हैं ?

उ. गौतम ! वे आहारकसंज्ञा के उपयोग वाले हैं।

इत्यादि (लेश्याद्वार के समान) अस्सी (८०) भंग कहने चाहिए।

२१. कसायदारं–

प. ते णं भंते ! जीवा कि कोहकसायी, माणकसायी, मायाकसायी, लोभकसायी ?

उ. गोयमा ! असीई भंगा।

२१. कषाय द्वार–

प्र. भंते ! वे जीव क्रोधकषायी हैं, मानकषायी हैं, मायाकषायी हैं या लोभकषायी हैं ?

उ. गौतम ! यहाँ भी (समान लेश्या के) अस्सी (८०) भंग कहने चाहिए।

२२. वेयदारं–

प. ते णं भंते ! जीवा किं इत्थिवेदगा, पुरिसवेदगा, नपुंसगवेदगा ?

उ. गोयमा ! नो इत्थिवेदगा, नो पुरिसवेदगा, नपुंसगवेदए वा, नपुंसगवेदगा वा।

२२. वेद द्वार–

प्र. भंते ! वे जीव स्त्रीवेदी हैं, पुरुष वेदी हैं या नपुंसकवेदी हैं ?

उ. गौतम ! वे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी नहीं हैं, किन्तु एक जीव भी नपुंसकवेदी है और अनेक जीव भी नपुंसकवेदी हैं।

२३. बंधदारं–

प. ते णं भंते ! जीवा किं इत्थिवेदबंधगा, पुरिसवेदबंधगा, नपुंसगवेदबंधगा ?

उ. गोयमा ! इत्थिवेदबंधए वा, पुरिसवेदबंधए वा, नपुंसगवेदबंधए वा,

छव्वीसं भंगा।

२३. बंध द्वार–

प्र. भंते ! वे जीव स्त्रीवेद बंधक हैं, पुरुष वेद बंधक हैं या नपुंसकवेद बंधक हैं ?

उ. गौतम ! एक स्त्रीवेद बंधक, एक पुरुष वेद बंधक और एक नपुंसकवेद बंधक है।

इत्यादि २६ भंग कहने चाहिए।

२४. सण्णीदारं–

प. ते णं भंते ! जीवा किं सण्णी, असण्णी ?

२४. संज्ञी द्वार–

प्र. भंते ! वे जीव संज्ञी हैं या असंज्ञी हैं ?

उ. गोयमा ! नो सण्णी, असण्णी वा, असण्णिणो वा।

२५. इंदियदारं–

प. ते णं भंते ! जीवा किं सइंदिया, अणिंदिया ?

उ. गोयमा ! नो अणिंदिया, सइंदिए वा, सइंदिया वा।

२६. अणुवंधदारं–

प. से णं भंते ! उप्पलजीवे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखेज्जंकालं।

२७. संवेहदारं–

प. से णं भंते ! उप्पलजीवे पुढविजीवे पुणरवि उप्पलजीवे त्ति केवइयं कालं से सेवेज्जा केवइयं कालं गइरागइं करेज्जा ?

उ. गोयमा ! भवादेसेणं जहण्णेणं दो भवग्गहणाइं,
उक्कोसेणं असंखेज्जाइं भवग्गहणाइं।
कालादेसेणं जहन्नेणं दो अंतोमुहुत्ता,
उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, एवइयं कालं सेवेज्जा एवइयं कालं गइरागइं करेज्जा।
एवं जहा पुढवीजीवे भणिए तहा जाव वाउजीवे भाणियव्वे।

प. से णं भंते ! उप्पलजीवे से वणस्सइजीवे, से वणस्सइजीवे पुणरवि उप्पलजीवे त्ति केवइयं कालं सेवेज्जा केवइयं कालं गइरागइं करेज्जा ?

उ. गोयमा ! भवादेसेणं जहण्णेणं दो भवग्गहणाइं,
उक्कोसेणं अणंताइं भवग्गहणाइं।
कालादेसेणं जहण्णेणं दो अंतोमुहुत्ता,
उक्कोसेणं अणंतंकालं-तरुकालो, एवइयं कालं से सेवेज्जा, एवइयं कालं गइरागइं करेज्जा।

प. से णं भंते ! उप्पलजीवे से वेइंदियजीवे, से वेइंदियजीवे पुणरवि उप्पलजीवे त्ति केवइयं कालं से सेवेज्जा, केवइयं कालं गइरागइं करेज्जा ?

उ. गोयमा ! भवादेसेणं जहन्नेणं दो भवग्गहणाइं,
उक्कोसेणं संखेज्जाइं भवग्गहणाइं,
कालादेसेणं जहण्णेणं दो अंतोमुहुत्ता,
उक्कोसेणं संखेज्जकालं, एवइयं कालं से सेवेज्जा, एवइयं कालं गइरागइं करेज्जा।
एवं तेइंदियजीवे, एवं चउरिंदियजीवे वि।

उ. गौतम ! वे संज्ञी नहीं हैं किन्तु एक जीव भी असंज्ञी है और अनेक जीव भी असंज्ञी हैं।

२५. इन्द्रिय द्वार–

प्र. भंते ! वे जीव सइन्द्रिय हैं या अनिन्द्रिय हैं ?

उ. गौतम ! वे अनिन्द्रिय नहीं हैं किन्तु एक जीव भी सइन्द्रिय है और अनेक जीव भी इन्द्रिय हैं।

२६. अनुवंध द्वार–

प्र. भंते ! वह (उत्पल का) जीव उत्पल जीव के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक रहता है।

२७. संवेध द्वार–

प्र. भंते ! वह उत्पल जीव पृथ्वीकाय में जाए और पुनः उत्पल जीव के रूप में उत्पन्न हो तो उसका कितना काल व्यतीत होता है और कितने काल तक गति-आगति करता है ?

उ. गौतम ! वह भव की अपेक्षा जघन्य दो भव ग्रहण करता है,
उत्कृष्ट असंख्यात भव ग्रहण करता है,
काल की अपेक्षा जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट असंख्यात काल जितने काल तक रहता है और इतने काल तक गति-आगति करता है।
जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीव के विषय में कहा, उसी प्रकार गमनागमन आदि के लिए वायुकायिक जीव पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! वह उत्पल जीव वनस्पति जीव के रूप में उत्पन्न हो और वह वनस्पति जीव पुनः उत्पल जीव के रूप में उत्पन्न हो जाए इस प्रकार वह कितने काल तक रहता है, कितने काल तक गति-आगति करता है ?

उ. गौतम ! भवादेश से वह जघन्य दो भव ग्रहण करता है,
उत्कृष्ट अनन्त भव ग्रहण करता है।
कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट अनन्तकाल अर्थात् वनस्पतिकाल जितने काल और इतने ही काल तक गमनागमन करता है।

प्र. भंते ! वह उत्पल जीव द्वीन्द्रियजीव के रूप में उत्पन्न हो और वह द्वीन्द्रिय जीव पुनः उत्पलजीव के रूप में उत्पन्न हो जाए इस प्रकार वह कितने काल तक रहता है और कितने काल तक गति-आगति करता है ?

उ. गौतम ! भवादेश से वह जघन्य दो भव ग्रहण करता है,
उत्कृष्ट संख्यात भव ग्रहण करता है।
कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट संख्यात काल जितना काल वह उसमें रहता है और इतने ही काल तक वह गति-आगति करता है।
इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव के विषय में भी जानना चाहिए।

प. से णं भंते ! उप्पलजीवे पंचेंदियतिरिक्खजोणियजीवे, पंचेंदियतिरिक्खजोणियजीवे, पुणरवि उप्पलजीवे त्ति केवइयं कालं से सेवेज्जा, केवइयं कालं गइरागइं करेज्जा?

उ. गोयमा ! भवादेसेणं जहन्नेणं दो भवग्गहणाइं,
उक्कोसेणं अट्ठ भवग्गहणाइं।
कालादेसेणं दो अंतोमुहुत्ता,
उक्कोसेणं पुव्वकोडिपुहत्तं एवइयं कालं से सेवेज्जा, एवइयं कालं गइरागइं करेज्जा।

एवं मणुस्सेण वि समं जाव **एवइयं कालं गइराइगइं करेज्जा।**

२८. आहारदारं–

प. ते णं भंते ! जीवा किं आहारमाहारेंति?

उ. गोयमा ! दव्वओ अणंतपदेसियाइं दव्वाइं,
खेत्तओ असंखेज्जपदेसोगाढाइं,
कालओ अण्णयरकालट्ठिइयाई,
भावओ वण्णमंताइं, गंधमंताइं, रसमंताइं, फास मंताइं,

एवं जहा आहारुद्देसए वणस्सइकाइयाणं आहारो तहेव जाव **सव्वप्पणयाए आहारमाहारेंति।**

णवरं–नियमा छद्दिसिं।
सेसं तं चेव।

२९. ठिई दारं–

प. तेसि णं भंते ! जीवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं।

३०. समुग्घायदारं–

प. तेसि णं भंते ! जीवाणं कइ समुग्घाया पन्नत्ता?

उ. गोयमा ! तओ समुग्घाया पन्नत्ता, तं जहा–
१. वेयणासमुग्घाए,
२. कसायसमुग्घाए,
३. मारणंतियसमुग्घाए।

प. ते णं भंते ! जीवा मारणंतियसमुग्घाएणं किं समोहया मरंति, असमोहया मरंति?

उ. गोयमा ! समोहया वि मरंति, असमोहया वि मरंति।

३१. चवण (उव्वट्टण) दारं–

प. ते णं भंते ! जीवा अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति?
किं नेरइएसु उववज्जंति,
तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति,
मणुस्सेसु उववज्जंति,
देवेसु उववज्जंति?

प्र. भंते ! वह उत्पल का जीव पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव के रूप में उत्पन्न हो और वह पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव पुनः उत्पल जीव के रूप उत्पन्न हो जाए तो इस प्रकार कितने काल तक रहता है और कितने काल तक गति-आगति करता है?

उ. गौतम ! भवादेश से जघन्य दो भव ग्रहण करता है,
उत्कृष्ट आठ भव ग्रहण करता है,
कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व जितने काल तक रहता है और इतने ही काल तक गति-आगति करता है।

इसी प्रकार मनुष्योनिक के विषय में भी जानना चाहिए यावत् इतने काल तक गति-आगति करता है।

२८. आहार द्वार–

प्र. भन्ते ! वे जीव किस पदार्थ का आहार करते हैं?

उ. गौतम ! वे द्रव्य से अनन्तप्रदेशी द्रव्यों का आहार करते हैं,
क्षेत्र से असंख्यात प्रदेशावगाढ द्रव्यों का आहार करते हैं,
काल से अन्यतर काल स्थिति वाले द्रव्यों का आहार करते है
भाव से वर्ण वाले, गंध वाले, रस वाले और स्पर्श वा पदार्थों का

जैसा (प्रज्ञापनासूत्र अट्ठाईसवें पद के) आहार उद्देश में वनस्पतिकायिक जीवों के आहार के लिए कहा उसी प्रका यावत् **सर्वात्मना आहार करते हैं।**

विशेष–वे नियमतः छहों दिशाओं से आहार करते हैं।
शेष कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

२९. स्थिति द्वार–

प्र. भंते ! उन जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की कही गई है।

३०. समुद्घात द्वार–

प्र. भंते ! उन जीवों के कितने समुद्घात कहे गए हैं?

उ. गौतम ! तीन समुद्घात कहे गए हैं, यथा–
१. वेदनासमुद्घात,
२. कषायसमुद्घात,
३. मारणान्तिकसमुद्घात।

प्र. भंते ! वे जीव मारणान्तिकसमुद्घात द्वारा समवहत होकर मरते हैं या असमवहत होकर मरते हैं?

उ. गौतम ! वे समवहत होकर भी मरते हैं और असमवहत होकर भी मरते हैं।

३१. च्यवन (उद्वर्तन) द्वार–

प्र. भन्ते ! वे (उत्पल के) जीव उद्वर्तित हो (मरकर) कहां जाते हैं और कहां उत्पन्न होते हैं?
क्या वे नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं?
तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं?
मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं या
देवों में उत्पन्न होते हैं?

उ. गोयमा ! एवं जहा वक्कंतिए उव्वट्टणाए वणस्सइकाइयाणं तहा भाणियव्वं[1]।

३२. उववन्नपुव्वत्त दारं–

प. अह भंते ! सव्वपाणा, सव्वभूया, सव्वजीवा, सव्वसत्ता उप्पलमूलत्ताए, उप्पलकंदत्ताए, उप्पलनालत्ताए, उप्पलपत्तत्ताए, उप्पलकेसरत्ताए, उप्पलकण्णियत्ताए, उप्पलथिभगत्ताए, उववन्नपुव्वा ?

उ. हंता, गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो।

–विया. स. ११, उ. १, सु. २-४५

सालूय–

प. सालुए णं भन्ते ! एगपत्तए किं एगजीवे, अणेगजीवे ?

उ. गोयमा ! एगजीवे, एवं उप्पलुद्देसगवत्तव्वया अपरिसेसा भाणियव्वा जाव अणंतखुत्तो।

णवरं–सरीरोगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुपुहत्तं।

सेसं तं चेव। –विया. स. ११, उ. २, सु. १

पलास–

प. पलासे णं भंते ! एगपत्तए किं एगजीवे, अणेगजीवे ?

उ. गोयमा ! एगजीवे। एवं उप्पलुद्देसगवत्तव्वया अपरिसेसा भाणियव्वा।

णवरं–सरीरोगाहणा-जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं गाउयपुहत्तं।

देवा एएसु न उववज्जंति। लेसासु–

प. ते णं भन्ते ! जीवा किं कण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काउलेस्सा ?

उ. गोयमा ! कण्हलेस्सा वा, नीललेस्सा वा, काउलेस्सा वा, छव्वीसं भंगा।

सेसं तं चेव। –विया. स. ११, उ. ३, सु. १

कुंभिय–

प. कुंभिए णं भंते ! एगपत्तए कि एगजीवे, अणेगजीवे ?

उ. गोयमा ! एगजीवे। एवं जहा पलासुद्देसए तहा भाणियव्वे।

णवरं–टिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वासपुहत्तं।

सेसं तं चेव। –विया. स. ११, उ. ४, सु. १

उ. गौतम ! जैसे (प्रज्ञापना सूत्र के छठे) व्युत्क्रान्तिक पद के उद्वर्तना प्रकरण में वनस्पतिकायिकों का वर्णन है उसी के अनुसार कहना चाहिए।

३२. पूर्वोत्पन्न द्वार–

प्र. भन्ते ! सभी प्राणी, सभी भूत, सभी जीव और सभी सत्व उत्पल के मूलरूप में, उत्पल के कन्दरूप में, उत्पल के नालरूप में, उत्पल के पत्ररूप में, उत्पल के केसर रूप में, उत्पल की कर्णिका के रूप में और उत्पल के थिवुक रूप में क्या इससे पहले ही उत्पन्न हो चुके हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! अनेक वार या अनन्त वार पूर्वोक्त रूप से उत्पन्न हो चुके हैं।

शालूक–

प्र. भन्ते ! क्या एक पत्ते वाला शालूक एक जीव वाला है या अनेक जीव वाला है ?

उ. गौतम ! वह एक जीव वाला है। इस प्रकार से समग्र उत्पल-उद्देशक का कथन अनन्त वार उत्पन्न हुए हैं पर्यन्त करना चाहिए।

विशेष–इसके शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट धनुषपृथक्त्व की है।

शेष सब कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

पलाश–

प्र. भन्ते ! क्या एक पत्ते वाला पलास वृक्ष एक जीव वाला है या अनेक जीव वाला है ?

उ. गौतम ! वह एक जीव वाला है। इस प्रकार समग्र उत्पल उद्देशक का यहाँ कथन करना चाहिए।

विशेष–शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट गव्यूति पृथक्त्व है।

देव इन में उत्पन्न नहीं होते, लेश्याओं के विषय में–

प्र. भन्ते ! वे (पलाश वृक्ष) के जीव क्या कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले या कापोतलेश्या वाले होते हैं ?

उ. गौतम ! वे कृष्णलेश्या वाले भी, नीललेश्या वाले भी और कापोतलेश्या वाले भी होते हैं इत्यादि छब्बीस भंग जानने चाहिए।

शेष सब कथन पूर्ववत् है।

कुम्भिक–

प्र. भंते ! एक पत्ते वाला कुम्भिक एक जीव वाला है या अनेक जीव वाला है ?

उ. गौतम ! वह एक जीव वाला है। जिस प्रकार पलाश उद्देशक में कहा उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।

विशेष–स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट वर्ष पृथक्त्व (अनेक वर्ष) की होती है।

शेष वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

---

१. [illegible] अध्ययन देखें।

नालिय–

प. नालिए णं भंते ! एगपत्तए किं एगजीवे, अणेगजीवे ?

उ. गोयमा ! एगजीवे,
एवं कुंभि उद्देसगवत्तव्वया निरवेससा भाणियव्वा।
–विया. स. ११, उ. ५, सु. १

पउम–

प. पउमे णं भंते ! एगपत्तए किं एगजीवे, अणेगजीवे ?

उ. गोयमा ! एगजीवे,
एवं उप्पलुद्देसगवत्तव्वया निरवसेसा भाणियव्वा।
–विया. स. ११, उ. ६, सु. १

कण्णिय–

प. कण्णिए णं भंते ! एगपत्तए किं एगजीवे, अणेगजीवे ?

उ. गोयमा ! एगजीवे,
एवं चेव निरवसेसं भाणियव्वं। –विया. स. ११, उ. ७, सु. १

नलिण–

प. नलिणं णं भन्ते ! एगपत्तए किं एगजीवे, अणेगजीवे ?

उ. गोयमा। एगजीवे।
एवं निरवसेसं जाव अणंतखुत्तो।
–विया. स. ११, उ. ८, सु. १

३७. साली-वीहिआईणं मूलजीवाणं उववायाइ बत्तीसद्दारेहिं परूवणं–

रायगिहे जाव एवं वयासि–

प. अह भंते ! साली वीहि-गोधूम जव-जवजवाणं एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति ?
किं नेरइएहिंतो उववज्जंति,
तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
देवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! जहा वक्कंतीए तहेव उववाओ।
णवरं–देववज्जं।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा,
उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति।
अवहारो जहा उप्पलुद्देसे।

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं के महालिया सरीरोगाहणा पन्नत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइ भागं,
उक्कोसेणं धणुपुहत्तं।

नालिक–

प्र. भंते ! एक पत्ते वाला नालिक (नाडाक) एक जीव वाला है या अनेक जीव वाला है ?

उ. गौतम ! वह एक जीव वाला है।
कुम्भिक उद्देशक के अनुसार यहाँ समग्र कथन करना चाहिए।

पद्म–

प्र. भन्ते ! एक पत्र वाला पद्म एक जीव वाला है या अनेक जीव वाला है ?

उ. गौतम ! वह एक जीव वाला है।
उत्पल उद्देशक के अनुसार इसका समग्र कथन करना चाहिए।

कर्णिका–

प्र. भन्ते ! एक पत्ते वाली कर्णिका एक जीव वाली है या अनेक जीव वाली है ?

उ. गौतम ! वह एक जीव वाली है।
इसका समग्र वर्णन उत्पल उद्देशक के समान करना चाहिए।

नलिन–

प्र. भन्ते ! एक पत्ते वाला नलिन (कमल) एक जीव वाला है या अनेक जीव वाला है ?

उ. गौतम ! वह एक जीव वाला है।
इसका समग्र वर्णन उत्पल उद्देशक के समान अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं पर्यन्त करना चाहिए।

३७. शाली-व्रीहि आदि के मूल जीवों का उत्पातादि बत्तीस द्वारों के प्ररूपण–

राजगृह नगर में गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा–

प्र. भन्ते ! शाली, व्रीहि, गेहूँ, जौ, जवजव इन सब धान्यों के मूल के रूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं तो भंते ! वे जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?
क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं,
तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं,
मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं या
देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! प्रज्ञापनासूत्र के छठे व्युत्क्रान्ति पद के अनुसार उपपात कहना चाहिए।
विशेष–देवगति से आकर ये उत्पन्न नहीं होते।

प्र. भन्ते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे जघन्य एक, दो या तीन
उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।
इसका अपहार उत्पल उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! इन जीवों के शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की,
उत्कृष्ट धनुष पृथक्त्व की कही गई है।

प. ते णं भंते ! जीवा नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधगा, अबंधगा ?

उ. गोयमा ! तहेव जहा उप्पलुद्देसे।

एवं वेदे वि, उदए वि, उदीरणाए वि।

प. ते णं भंते ! जीवा किं कण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काउलेस्सा ?

उ. गोयमा ! छव्वीसं भंगा भाणियव्वा।

दिट्ठी जाव इंदिया जहा उप्पलुद्देसे।

प. से णं भंते ! साली-वीही-गोधूम-जव-जवजवगमूलगजीवे कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं।

प. से णं भंते ! साली-वीही-गोधूम-जव-जवजवगमूलगजीवे, पुढवीजीवे, पुणरवि साली-वीही जव जवजवगमूलगजीवे केवइयं कालं सेवेज्जा, केवइयं कालं गइरागइं करिज्जा ?

उ. गोयमा ! एवं जहा उप्पलुद्देसे।

एएणं अभिलावेणं जाव मणुस्सजीवे।

आहारो जहा उप्पलुद्देसे।

ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वासपुहत्तं।

समुग्घायसमोहया य उव्वट्टणा य जहा उप्पलुद्देसे।

प. अह भंते ! सव्वपाणा जाव सव्वसत्ता साली-वीही-गोधूम जव-जवजवगमूलग जीवत्ताए उववन्नपुव्वा ?

उ. हंता, गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो।
–विया. स. २१, व. १, उ. १, सु. २-१६

प्र. भन्ते ! वे जीव ज्ञानावरणीय कर्म के बंधक हैं या अबंधक हैं ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार उत्पल उद्देशक में कहा उसी प्रकार यहाँ जानना चाहिए।

इसी प्रकार वेदन, उदय और उदीरणा के लिए भी जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! वे जीव कृष्णलेश्यी, नीललेश्यी या कापोतलेश्यी होते हैं ?

उ. गौतम ! (यहाँ इन तीन लेश्याओं सम्बन्धी) छब्बीस भंग कहने चाहिए।

दृष्टि से इन्द्रिय पर्यन्त का समग्र कथन उत्पल उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! शाली, व्रीहि, गेहूँ, जौ और जवजव के मूल का जीव कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त
उत्कृष्ट असंख्यात काल तक रहता है।

प्र. भन्ते ! शाली, व्रीहि, गेहूँ, जौ, जवजव के मूल का जीव पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न हो और पुनः शाली, व्रीहि, जौ, जवजव के मूल रूप में उत्पन्न हो तो वह कितने काल तक रहता है और कितने काल तक गति-आगति करता है।

उ. गौतम ! उत्पल उद्देशक के अनुसार यहाँ समग्र कथन करना चाहिए।

इस अभिलाप से मनुष्य जीव पर्यन्त कथन करना चाहिए।

आहार सम्बन्धी कथन उत्पल उद्देशक के समान है।

(इन जीवों की) स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट वर्ष पृथक्त्व की है।

समुद्घात समवहत और उद्वर्तना उत्पल उद्देशक के अनुसार है।

प्र. भन्ते ! क्या सर्व प्राण यावत् सर्व सत्व शाली, व्रीहि, गेहूँ, जौ और जवजव के मूल जीव के रूप में इससे पूर्व उत्पन्न हो चुके हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! अनेक बार या अनन्त बार उत्पन्न हो चुके हैं।

३८. साली-वीहीआईणं कंद-खंध तया साल पवाल पत्त-पुप्फ-फल बीयजीवाणं उववायाइ परूवणं–

प. अह भंते ! साली-वीही गोधूम जव-जवजवाणं, एएसि णं जे जीवा कंदत्ताए वक्कमति ते णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जति ?

उ. गोयमा ! एवं कंदाहिगारेण सो चेव मूलुद्देसो अपरिसेसो जाव असइं अदुवा अणंतखुत्तो।
–विया. स. २१, व. १, उ. २, सु. १

एवं खंधे वि उद्देसओ नेयव्वो।
–विया. स. २१, व. १, उ. ३, सु. १

एवं तयाए वि उद्देसो। –विया. स. २१, व. १, उ. ४, सु. १

३८. शाली-व्रीहि आदि के कंद-स्कंध-त्वचा-शाखा-प्रवाल-पत्र-पुष्प-फल बीज के जीवों के उत्पातादि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! शाली, व्रीहि, गेहूँ, जौ और जवजव इन सबके कन्द रूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं, तो भन्ते ! वे जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! कन्द का कथन करते हुए समग्र मूल उद्देशक अनेक बार या अनन्त बार इससे पूर्व में उत्पन्न हो चुके हैं पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार स्कन्ध का उद्देशक भी पूर्ववत् कहना चाहिए।

त्वचा का उद्देशक भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

नालिय-

प. नालिए णं भंते ! एगपत्तए किं एगजीवे, अणेगजीवे ?

उ. गोयमा ! एगजीवे,
एवं कुंभि उद्देसगवत्तव्वया निरवेसेसा भाणियव्वा।
-विया. स. ११, उ. ५, सु. १

पउम-

प. पउमे णं भंते ! एगपत्तए किं एगजीवे, अणेगजीवे ?

उ. गोयमा ! एगजीवे,
एवं उप्पलुद्देसगवत्तव्वया निरवसेसा भाणियव्वा।
-विया. स. ११, उ. ६, सु. १

कण्णिय-

प. कण्णिए णं भंते ! एगपत्तए किं एगजीवे, अणेगजीवे ?

उ. गोयमा ! एगजीवे,
एवं चेव निरवसेसं भाणियव्वं। *-विया. स. ११, उ. ७, सु. १*

नलिण-

प. नलिणं णं भन्ते ! एगपत्तए किं एगजीवे, अणेगजीवे ?

उ. गोयमा ! एगजीवे।
एवं निरवसेसं जाव अणंतखुत्तो।
-विया. स. ११, उ. ८, सु. १

नालिक-

प्र. भन्ते ! एक पत्ते वाला नालिक (नालक) एक जीव वाला है या अनेक जीव वाला है?

उ. गौतम ! वह एक जीव वाला है।
कुम्भिक उद्देशक के अनुसार यहाँ समग्र कथन करना चाहिए।

पद्म-

प्र. भन्ते ! एक पत्ते वाला पद्म एक जीव वाला है या अनेक जीव वाला है?

उ. गौतम ! वह एक जीव वाला है।
उत्पल उद्देशक के अनुसार इसका समग्र कथन करना चाहिए।

कर्णिका-

प्र. भन्ते ! एक पत्ते वाली कर्णिका एक जीव वाली है या अनेक जीव वाली है?

उ. गौतम ! वह एक जीव वाली है।
इसका समग्र वर्णन उत्पल उद्देशक के समान करना चाहिए।

नलिन-

प्र. भन्ते ! एक पत्ते वाला नलिन (कमल) एक जीव वाला है या अनेक जीव वाला है?

उ. गौतम ! वह एक जीव वाला है।
इसका समग्र वर्णन उत्पल उद्देशक के समान अनन्त वार उत्पन्न हुए हैं पर्यन्त करना चाहिए।

३७. साली-वीहिआईणं मूलजीवाणं उववायाइ वत्तीसद्दारेहिं परूवणं-

रायगिहे जाव एवं वयासि-

प. अह भंते ! साली वीहि-गोधूम जव-जवजवाणं एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति ?
किं नेरइएहिंतो उववज्जंति,
तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
देवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! जहा वक्कंतीए तहेव उववाओ।
णवरं-देववज्जं।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा,
उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति।
अवहारो जहा उप्पलुद्देसे।

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं के महालिया सरीरोगाहणा पन्नत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइ भागं,
उक्कोसेणं धणुपुहत्तं।

३७. शाली-व्रीहि आदि के मूल जीवों का उत्पातादि वत्तीस द्वारों के प्ररूपण-

राजगृह नगर में गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा-

प्र. भन्ते ! शाली, व्रीहि, गेहूँ, जौ, जवजव इन सब धान्यों के मूल के रूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं तो भंते ! वे जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?
क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं,
तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं,
मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं या
देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! प्रज्ञापनासूत्र के छठे व्युत्क्रान्ति पद के अनुसार इनका उपपात कहना चाहिए।
विशेष-देवगति से आकर ये उत्पन्न नहीं होते।

प्र. भन्ते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे जघन्य एक, दो या तीन
उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।
इसका अपहार उत्पल उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! इन जीवों के शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की,
उत्कृष्ट धनुष पृथक्त्व की कही गई है।

प. ते णं भंते ! जीवा नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं वंधगा, अवंधगा ?

उ. गोयमा ! तहेव जहा उप्पलुद्देसे।

एवं वेदे वि, उदए वि, उदीरणाए वि।

प. ते णं भंते ! जीवा किं कण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काउलेस्सा ?

उ. गोयमा ! छव्वीसं भंगा भाणियव्वा।

दिट्ठी जाव इंदिया जहा उप्पलुद्देसे।

प. से णं भंते! साली-वीही-गोधूम-जव-जवजवगमूलगजीवे कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं।

प. से णं भंते ! साली-वीही-गोधूम-जव-जवजवगमूलगजीवे, पुढवीजीवे, पुणरवि साली-वीही जव जवजवगमूलगजीवे केवइयं कालं सेवेज्जा, केवइयं कालं गइरागइं करिज्जा ?

उ. गोयमा ! एवं जहा उप्पलुद्देसे।

एएणं अभिलावेणं जाव मणुस्सजीवे।
आहारो जहा उप्पलुद्देसे।
ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वासपुहत्तं।

समुग्घायसमोहया य उव्वट्टणा य जहा उप्पलुद्देसे।

प. अह भंते ! सव्वपाणा जाव सव्वसत्ता साली-वीही-गोधूम जव-जवजवगमूलग जीवत्ताए उववन्नपुव्वा ?

उ. हंता, गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो।
–विया. स. २१, व. १, उ. १, सु. २-१६

३८. साली-वीहीआईणं कंद-खंध तया साल पवाल पत्त-पुप्फ-फल वीयजीवाणं उववायाइ परूवणं–

प. अह भंते ! साली-वीही गोधूम जव-जवजवाणं, एएसि णं जे जीवा कंदत्ताए वक्कमंति ते णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! एवं कंदाहिगारेण सो चेव मूलुद्देसो अपरिसेसो जाव असइं अदुवा अणंतखुत्तो।
–विया. स. २१, व. १, उ. २, सु. १

एवं खंधे वि उद्देसओ नेयव्वो।
–विया. स. २१, व. १, उ. ३, सु. १

एवं तयाए वि उद्देसो। –विया. स. २१, व. १, उ. ४, सु. १

प्र. भन्ते ! वे जीव ज्ञानावरणीय कर्म के बंधक हैं या अबंधक हैं ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार उत्पल उद्देशक में कहा उसी प्रकार यहाँ जानना चाहिए।

इसी प्रकार वेदन, उदय और उदीरणा के लिए भी जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! वे जीव कृष्णलेश्यी, नीललेश्यी या कापोतलेश्यी होते हैं ?

उ. गौतम ! (यहाँ इन तीन लेश्याओं सम्बन्धी) छव्वीस भंग कहने चाहिए।

दृष्टि से इन्द्रिय पर्यन्त का समग्र कथन उत्पल उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! शाली, व्रीहि, गेहूँ, जौ और जवजव के मूल का जीव कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त
उत्कृष्ट असंख्यात काल तक रहता है।

प्र. भन्ते ! शाली, व्रीहि, गेहूँ, जौ, जवजव के मूल का जीव पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न हो और पुनः शाली, व्रीहि, जौ, जवजव के मूल रूप में उत्पन्न हो तो वह कितने काल तक रहता है और कितने काल तक गति-आगति करता है।

उ. गौतम ! उप्पल उद्देशक के अनुसार यहाँ समग्र कथन करना चाहिए।

इस अभिलाप से मनुष्य जीव पर्यन्त कथन करना चाहिए।
आहार सम्बन्धी कथन उत्पल उद्देशक के समान है।
(इन जीवों की) स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट वर्ष पृथक्त्व की है।

समुद्घात समवहत और उद्वर्तना उत्पल उद्देशक के अनुसार है।

प्र. भन्ते ! क्या सर्व प्राण यावत् सर्व सत्व शाली, व्रीहि, गेहूँ, जौ और जवजव के मूल जीव के रूप में इससे पूर्व उत्पन्न हो चुके हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! अनेक वार या अनन्त वार उत्पन्न हो चुके हैं।

३८. शाली-व्रीहि आदि के कंद-स्कंध-त्वचा-शाखा-प्रवाल-पत्र-पुष्प-फल वीज के जीवों के उत्पातादि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! शाली, व्रीहि, गेहूँ, जौ और जवजव इन सबके कन्द रूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं, तो भन्ते ! वे जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! कन्द का कथन करते हुए समग्र मूल उद्देशक अनेक बार या अनन्त बार इससे पूर्व में उत्पन्न हो चुके हैं पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार स्कंध का उद्देशक भी पूर्ववत् कहना चाहिए।

त्वचा का उद्देशक भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

साले वि उद्देसो भाणियव्वो। —विया. स. २१, व. १, उ. ५, सु. १

पवाले वि उद्देसो भाणियव्वो। —विया. स. २१, व. १, उ. ६, सु. १

पत्ते वि उद्देसो भाणियव्वो।

एए सत्त वि उद्देसगा अपरिसेसं जहा मूले तहा नेयव्वा। —विया. स. २१, व. १, उ. ७, सु. १

एवं पुप्फे वि उद्देसओ।

णवरं—देवो उववज्जइ। जहा उप्पलुद्देस-चत्तारि लेस्साओ, असीइभंगा।

ओगाहणा-जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं अंगुलपुहत्तं।

सेसं तं चेव। —विया. स. २१, व. १, उ. ८, सु. १

जहा पुप्फे तहा फले वि उद्देसओ अपरिसेसो भाणियव्वो। —विया. स. २१, व. १, उ. ९, सु. १

एवं बीए वि उद्देसओ।

एए दस उद्देसगा। —विया. स. २१, व. १, उ. १०, सु. १

शाखा का उद्देशक भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

प्रवाल (कोंपल) के विषय में भी इसी प्रकार उद्देशक कहना चाहिए।

पत्र के विषय में भी इसी प्रकार उद्देशक कहना चाहिए।

ये सातों ही उद्देशक समग्र रूप में मूल उद्देशक के समान जानने चाहिए।

पुष्प के विषय में भी इसी प्रकार उद्देशक कहना चाहिए।

विशेष—उत्पल उद्देशक के अनुसार पुष्प के रूप में देव आकर उत्पन्न होता है। इनके चार लेश्याएँ होती हैं और इनके अस्सी भंग कहे गए हैं।

इसकी अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट अंगुल-पृथक्त्व की होती है।

शेष सब कथन पूर्ववत् है।

जिस प्रकार पुष्प के विषय में कहा है उसी प्रकार फल के विषय में भी समग्र उद्देशक कहना चाहिए।

बीज का उद्देशक भी इसी प्रकार है।

इस प्रकार दस उद्देशक हैं।

३९. कल-मसूराऽऽईणं मूल कंदाइजीवेसु उववायाइ परूवणं—

प. अह भंते ! कल मसूर-तिल-मुग्ग-मास-निप्फाव-कुलत्थ-आलिसंदग-सडिण-पलिमंथगाणं, एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एवं मूलाईया दस उद्देसगा भाणियव्वा जहेव सालीणं निरव सेसं तहेव भाणियव्वं। —विया. स. २१, व. २, सु. १

३९. कल मसूर आदि के मूल कंदादि जीवों में उत्पातादि का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! कलाय (मटर) मसूर, तिल, मूंग, उड़द (माष) निष्पाव, कुलथ, आलिसंदक सटिन और पलिमंथक (चना) इन सबके मूल के रूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं तो भन्ते ! वे कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! जिस प्रकार शालि आदि के मूलादि उद्देशक कहे हैं उसी प्रकार यहाँ भी मूलादि दस उद्देशक सम्पूर्ण कहने चाहिए।

४०. अयसि कुसुंभाईणं मूलकंदाइजीवेसु उववायाइ परूवणं—

प. अह भंते ! अयसि-कुसुंभ-कोद्दव-कंगु-रालग-तुवरि कोद्दूसा-सण-सरिसव मूलगबीयाणं एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति।

उ. गोयमा ! एत्थ वि मूलाईया दस उद्देसगा जहेव सालीणं निरवसेसं तहेव भाणियव्वं। —विया. स. २१, व. ३, सु. १

४०. अलसी कुसुम्ब आदि के मूल कंदादि जीवों के उत्पातादि का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! अलसी, कुसुम्ब, कोद्रव, कांग, राल, तूअर, कोदूसा, सण और सर्षप (सरसों) और मूले का बीज इन वनस्पतियों के मूल में जो जीव उत्पन्न होते हैं तो भंते ! वे कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! शाली आदि के दस उद्देशकों के समान यहाँ भी समग्ररूप से मूलादि दस उद्देशक कहने चाहिए।

४१. वंस वेणुआईणं मूल कंदाइ जीवेसु उववायाइ परूवणं—

प. अह भंते ! वंस-वेणु-कणग-कक्कावंस-चारूवंस-उडा-कूडा-विमा-कंडा-वेणुया-कल्लाणीणं एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एत्थ वि मूलाईया दस उद्देसगा भाणियव्वा जहेव सालीणं।

णवरं—देवो सव्वत्थ वि न उववज्जंति।

४१. बांस वेणु आदि के मूल कंदादि जीवों के उत्पातादि का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! बांस, वेणु, कनक, कर्कावंश, चारूवंश, उड़ा, कुड़ा, विमा, कण्डा, वेणुका और कल्याणी इन सब वनस्पतियों के मूल के रूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं तो भंते ! वे कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! यहाँ भी पूर्ववत् शाली आदि के समान मूलादि दश उद्देशक कहने चाहिए।

विशेष—यहां मूलादि किसी भी स्थान में देव उत्पन्न नहीं होते हैं।

तिण्णि लेसाओ सव्वत्थ वि छव्वीसं भंगा।

सेसं तं चेव। -विया. स. २१, व. ४, सु. १

४२. उक्खु-उक्खुवाडियाईणं मूल-कंदाइजीवेसु उववायाइ परूवणं–

प. अह भंते ! उक्खु-उक्खुवाडिया-वीरण-इक्कड-भमास-सुंठि-सर-वेत्त-तिमिरसतवोरग-नलाणं एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एवं जहेव वंसवग्गो तहेव एत्थ वि मूलाईया दस उद्देसगा भाणियव्वा।

णवरं–खंधुद्देसे देवो उववज्जंति। चत्तारि लेसाओ।

सेसं तं चेव। -विया. स. २१, व. ५, सु. १

४३. सेडिय-भंतियाईणं मूल-कंदाईजीवेसु उववायाइ परूवणं–

प. अह भंते ! सेडिय-भंतिय-कोंतिय-दब्भ-कुस-पव्वग-पोदइल-अज्जुण-आसाढग-रोहियंस मुतव-खीर-भुस-एरंड-कुरू कुंद करकर सुंठ-विभंगु-महुरयण थुरग-सिप्पिय-सुंकलितणाणं, एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एत्थ वि दस उद्देसगा निरवसेसं भाणियव्वा जहेव वंसवग्गो। -विया. स. २१, व. ६, सु. १

४४. अब्भरुहाईणं मूल-कंदाइजीवेसु उववायाइ परूवणं–

प. अह भंते ! अब्भरुह-वायाण-हरितग-तंदुलेज्जग-तण-वत्थुल-थोरग मज्जार पाइ-विल्लि पालक्क-दगपिप्पलिय-दव्वि-सोत्थिक-सायमंडुक्कि मूलग सरिसव-अंबिल साग जियंतगाणं, एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एत्थ वि दस उद्देसगा भाणियव्वा जहेव वंसवग्गो। -विया. स. २१, व. ७, सु. १

४५. तुलसिआईणं मूलकंदाइजीवेसु उववायाइ परूवणं–

प. अह भंते ! तुलसी-कण्हदराल-फणेज्जा-अज्जा-भूयणा-चोरा-जीरा-दमणा-मरुया-इंदीवर-सयपुप्फाणं, एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एत्थ वि दस उद्देसगा निरवसेसं जहा वंसाणं।

एवं एएसु अट्ठसु वग्गेसु असीतिं उद्देसगा भवंति।[1]

-विया. स. २१, व. ८, सु. १

सभी की तीन लेश्याएँ और उनके छब्बीस भंग जानने चाहिए।

शेष सब कथन पूर्ववत् है।

४२. इक्षु-इक्षुवाटिका आदि के मूल कंदादि जीवों में उत्पातादि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! इक्षु, इक्षुवाटिका, वीरण, इक्कड, भमास, सुंठि, शर, वेत्र (बेंत) तिमिर सतवोरग (शतपर्वक) और नल, इन सब वनस्पतियों के मूल रूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं तो भन्ते ! वे कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! जिस प्रकार वंशवर्ग के मूलादि दस उद्देशक कहे हैं, उसी प्रकार यहां भी दस उद्देशक कहने चाहिए।

विशेष–स्कन्धुद्देशक में देव भी उत्पन्न होते हैं, उनमें चार लेश्याएँ होती हैं।

शेष सब कथन पूर्ववत् है।

४३. सेडिय भंतियादि के मूल कंदादि जीवों में उत्पातादि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! सेडिय, भंतिय, कौन्तिय, दर्भ-कुश, पर्वक, पोदेइल, (पोदीना) अर्जुन, आषाढक, रोहितक (रोहितांश) मुतव, खीर, भुस, एरण्ड, कुरुकुन्द, करकर, सूंठ, विभंगु, मधुरयण, थुरग, शिल्पिक और सुंकलितृण इन सब वनस्पतियों के मूलरूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं तो भंते ! वे कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! यहाँ भी वंशवर्ग के समान समग्र मूलादि दस उद्देशक कहने चाहिए।

४४. अभ्ररुहादि के मूल कंदादि जीवों में उत्पातादि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! अभ्ररुह, वायाण, हरीतक (हरड़) तंदुलेयक (चंदलिया) तृण, वत्थुल (बथुआ) थोरक (बेर) मार्जारक, पाई-बिल्ली (चिल्ली) पालक, दगपिप्पली, दर्वी, स्वस्तिक शाकमण्डूकी, मूलक, सर्षप (सरसों) अम्लिलशाक, जीवयन्तक (जीवन्तक) इन सब वनस्पतियों के मूल के रूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं, तो भंते ! वे कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! यहां भी वंशवर्ग के समान मूलादि दस उद्देशक कहने चाहिए।

४५. तुलसी आदि के मूल कन्दादि जीवों में उत्पातादि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! तुलसी, कृष्णदराल, फणेज्जा, अज्जा, भूयणा, चोरा, जीरा, दमण, मरुया इन्दीवर और शतपुष्प इन सबके मूल के रूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं तो भंते ! वे कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वंशवर्ग के समान यहां भी समग्र रूप से मूलादि दस उद्देशक कहने चाहिए।

इस प्रकार इन आठ वर्गों के अस्सी उद्देशक होते हैं।

1. [illegible]

४६. ताल-तमालाईणं मूल-कंदाइजीवेसु उववायाइ परूवणं–

रायगिहे जाव एवं वयासि–

प. अह भंते ! ताल तमाल तक्कलि-तेतलि साल सरला-सारगल्लाणं जाव केयइ-कयलि कंदलि चम्मरुक्ख गुंतरुक्ख हिंगुरुक्ख, लवंगुरुक्ख पूयफलि खज्जूरि नालिएरीणं एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! एत्थ वि मूलाईया दस उद्देसगा कायव्वा जहेव सालीणं।

णवरं–इमं नाणत्तं मूले कंदे खंधे तयाए साले य एएसु पंचसु उद्देसगेसु देवो न उववज्जंति, तिण्णि लेसाओ, ठिई जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दसवाससहस्साइं।

उवरिल्लेसु पंचसु उद्देसगेसु देवा उववज्जंति,

चत्तारि लेसाओ, ठिई-जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वासपुहत्तं,

ओगाहणा मूले कंदे धणुपुहत्तं,

खंधे तयाए साले य गाउयपुहत्तं,

पवाले पत्ते य धणुपुहत्तं,

पुप्फे हत्थपुहत्तं,

फले बीए य अंगुलपुहत्तं सव्वेसिं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइ भागं।

सेसं जहा सालीणं।

एवं एए दस उद्देसगा। –विया. स. २२, व. १, सु. २-३

४६. ताल तमाल आदि के मूल कंदादि जीवों में उत्पातादि का प्ररूपण–

राजगृह नगर में गौतम ! स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा

प्र. भंते ! ताल (ताड़) तमाल, तक्कली, तेतली, शाल, सरल, (देवदार) सारगल्ल यावत् केतकी (केवड़ी) कदली (केला) कदली, चर्मवृक्ष, गुन्दवृक्ष, हिंगुवृक्ष, लवंगवृक्ष, पूगफल, (सुपारी) खजूर और नारियल इन सबके मूल के रूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं तो भंते ! वे कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! शालिवर्ग मूलादि के दस उद्देशकों के समान यहां भी वर्णन करना चाहिए।

विशेष–इन वृक्षों के मूल, कन्द, स्कंध, त्वचा और शाखा इन पांचों अवयवों में देव आकर उत्पन्न नहीं होते। इन में तीन लेश्याएं होती है और स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की होती है। शेष अन्तिम उद्देशकों में देव उत्पन्न होते हैं।

उनमें चार लेश्याएँ होती है और स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट वर्ष पृथक्त्व की होती है।

मूल और कन्द की अवगाहना धनुष पृथक्त्व की,

स्कन्ध त्वचा एवं शाखा की गव्यूति पृथक्त्व की

प्रवाल और पत्र की अवगाहना धनुष पृथक्त्व की,

पुष्प की अवगाहना हस्तपृथक्त्व की,

फल और बीज की अवगाहना अंगुल पृथक्त्व की होती है। इन सबकी जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की होती है।

शेष सब कथन शालिवर्ग के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार ये दस उद्देशकों का कथन है।

४७. निंबंबाईणं मूलकंदाइ जीवेसु उववायाइ परूवणं–

प. अह भंते ! निंबंब-जंबु-कोसंब-ताल-अंकोल्ल-पीलु सेलु सल्लइ-मोयइ-मालुय-बउल-पलास-करंज पुत्तंजीवग-ऽरिट्ठ-विहेलग-हरियग-भल्लाय-उंबरिय-खीरणि धायइ पियाल पूइय णिवाम सेण्हण पासिय सीसव अयसि पुन्नाग नागरुक्ख सोवण्णि असोगाणं एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते णं भंते ! जे जीवा कओहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! एवं मूलाईया दस उद्देसगा कायव्वा णिरवसेसं जहा तालवग्गे। –विया. स. २२, व. २, सु. १

४७. नीम आम आदि के मूल कंदादि जीवों में उत्पातादि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! नीम, आम्र, जम्बू (जामुन), कोशम्ब, ताल, अंकोल, पीलू, सेलू, सल्लकी, मोचकी, मालुक, वकुल, पलाश, करंजु, पुत्रंजीवक, अरिष्ट (अरीठा), बहेड़ा, हरितक (हरड़े) भिल्लामा, उम्बरिया, क्षीरणी, (खिरनी) धातकी, (धावड़ी) प्रियाल (चारोली) पूतिक, निवाग, (नीपाक) सेण्हक, पासिय, शीशम, अतसी पुन्नाग (नागकेसर) नागवृक्ष, श्रीपर्णी और अशोक इन सब वृक्षों के मूल के रूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं, तो भंते ! वे कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! यहाँ भी तालवर्ग के समान समग्र रूप से मूलादि के दस उद्देशक कहने चाहिए।

४८. अत्थिआईणं मूलकंदाइ जीवेसु उववायाइ परूवणं–

प. अह भंते ! अत्थि तेंदुय बोर कविट्ठ-अबाहग-माउलुंग विल्ल आमलग-फणस दाडिम आसोट्ठ उंबर-वड णग्गोह-नंदिरुक्ख-पिप्पलि-सतर पिलक्खु-रुक्ख-काउंबरिय-कुत्थुंभरिय देवदालि तिलग

४८. अस्थिक आदि के मूल कंदादि जीवों में उत्पातादि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! अस्थिक, तिन्दुक, वोर, कवीठ, अम्बाडक, बिजौरा, बिल्व (वेल), आमलक बड़ न्यग्रोध (आंवला) फणस (अनन्नास) दाड़िम (अनार) अश्वत्थ (पीपल) उंबर (उदुम्बर) वड़ न्यग्रोध नदिवृक्ष, पिप्पलि, सतर, पिलक्षवृक्ष, काकोंदुबरिया, कुस्तुम्भरिय, देवदालि, तिलक,

लउय-छत्तोह सिरीस-सत्तिवण्ण-दधिवण्ण-लोद्ध-धव चंदण- अज्जुण- णीव-कुडग-कलंवाणं, एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! एत्थ वि मूलाईया दस उद्देसगा तालवग्ग सरिसा नेयव्वा जाव वीयं। *-विया. स. २२, व. ३, सु. १*

लकुचव (लीची) छत्रौघ, शिरीष, सप्तपर्ण, दधिपर्ण, लोध्रक धव, चन्दन, अर्जुन, नीम, कुटज, और कदम्ब इन सब वृक्षों के मूलरूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं तो भंते ! वे कहां आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! यहां भी तालवर्ग के समान मूल से वीज पर्यन्त दस उद्देशक कहने चाहिए।

४९. वाइंगणिआइगुच्छाणं मूलकंदाइजीवेसु उववायाइ परूवणं–

प. अह भंते ! वाइंगणि-अल्लइ-वोंडइ जाव गंजपाडला दासि-अंकोल्लाणं, एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! एत्थ वि मूलाईया दस उद्देसगा जाव वीयं त्ति निखसेसं सेसं जहा वंसवग्गो। *-विया. स. २२, व. ४, सु. १*

४९. वैंगन आदि गुच्छों के मूल कंदादि जीवों में उत्पातादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! वैंगन, अल्लइ, वोंडइ, गंजपाटला, दासि, अंकोल्ल पर्यन्त इन सभी गुच्छों के मूल के रूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं तो भंते ! वे कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वंशवर्ग के समान यहां भी मूल से वीज पर्यन्त समग्र रूप से दस उद्देशक जानने चाहिए।

५०. सिरियकाऽऽइगुम्माणं मूल-कंदाइजीवेसु उववायाइ परूवणं–

प. अह भंते ! सिरियक-णवमालिय-कोरंटग-वंधुजीवग-मणोज्जा जाव नवणीय-कुंद-महाजाईणं एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! एत्थ वि मूलाईया दस उद्देसगा निरवसेसं जहा सालीणं। *-विया. स. २२, व. ५, सु. १*

५०. सिरियकादि गुल्मों के मूल कंदादि जीवों में उत्पातादि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! सिरियक, नवमालिक, कोरंटक, वन्धुजीवक, मणोज्ज से नलिनी-कुन्द और महाजाति पर्यन्त गुल्मों के मूलरूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं तो भंते! वे कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! यहाँ भी शालिवर्ग के समान मूलादि समग्र दस उद्देशक जानने चाहिए।

५१. पुसफलिआइवल्लीणं मूल कंदाइजीवेसु उववायाइ परूवणं–

प. अह भंते ! पूसफलि-कालिंगी-तुंवी-तउसी-एला- वालुंकी-जाव दधिफोल्लइ काकलि-मोकलि अक्कवोंदीणं एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! एवं मूलाईया दस उद्देसगा कायव्वा जहा तालवग्गे।

णवरं–फलउद्देसओ, ओगाहणाए जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं,

ठिई सव्वत्थ जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वासपुहुत्तं।

सेसं तं चेव।

एवं छसु वि वग्गेसु सट्ठि उद्देसगा भवंति।[1]

-विया. स. २२, व. ६, सु. १

५१. पूसफलिका आदि वल्लियों के मूल कंदादि जीवों में उत्पातादि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! पूसफलिका, कालिंगी (तरवूज) तुम्बी, त्रपुषी (ककड़ी) एला (इलायची) वालुंकी यावत् दधिफोल्लई, काकली (कागणी) सोक्कली और अर्कवोन्दी इन सब वल्लियां (वेलें) के मूल में जो जीव उत्पन्न होते हैं तो भन्ते ! वे कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! यहाँ भी तालवर्ग के समान मूलादि दस उद्देशक कहने चाहिए।

विशेष–फलोद्देशक में फल की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट धनुष पृथक्त्व की होती है, सर्वत्र स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट वर्ष पृथक्त्व की है।

शेष कथन पूर्ववत् है।

इस प्रकार इन छह वर्गों में कुल साठ उद्देशक होते हैं।

५२. आलुय-मूलगाईणं मूल-कंदाइजीवेसु उववायाइ परूवणं–

रायगिहे जाव एवं वयासि–

प. अह भंते ! आलुय मूलग सिंगवेर हलिद्द रुरु [illegible] [illegible] [illegible] सिरिलि [illegible] [illegible]

५२. आलू मूलगादि के मूल कन्दादि जीवों में उत्पातादि का प्ररूपण–

राजगृह नगर में गौतम ! स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा–

प्र. भंते ! आलू, मूला, अदरक, (सूंठ), हल्दी, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] सिरिलि [illegible], [illegible]

[1] [illegible]

[illegible]

महुपुयलइ-महुसिंगणेरूहा सप्पसुगंधा छिन्नरूहा बीयरूहाणं एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते णं भंते! जीवा कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! **एवं मूलाईया दस उद्‌दसेगा कायव्वा वंसवग्ग सरिसा,**

णवरं–परिमाणं जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा उक्कोसेणं सखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जंति,

अवहारो–

गोयमा ! तेणं अणंता, समए-समए अवहीरमाणा-अवहीरमाणा अणंताहिं ओसप्पिणि उस्सप्पिणीहिं एवइकालेणं, अवहीरंति नो चेव णं अवहिया सिया, ठिई जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

सेसं तं चेव। *–विया. स. ३३, व. १, सु. १-४*

मधु, पयलइ, मधुशृंगी, निरूहा, सर्पसुगन्धा, छिन्नरूहा और बीजरूहा, इन सब (साधारण) वनस्पतियों के मूल के रूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं तो भन्ते ! वे कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! **यहाँ वंश वर्ग के समान मूलादि दस उद्‌देशक कहने चाहिए।**

विशेष–इनका परिमाण जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात या अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं।

अपहार–

गौतम ! वे अनन्त हैं यदि प्रति समय में एक-एक जीव का अपहार किया जाए तो अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी जितने काल में अपहरण हो सकता है किन्तु उनका अपहार नहीं हुआ है। उनकी स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की होती है।

शेष सब कथन पूर्ववत् है।

५३. लोही आईणं मूल-कंदाइजीवेसु उववायाइ परूवणं–

प. अह भंते ! लोही णीहू थीहू-थीभगा-अस्सकण्णी-सीहकण्णी-सीउंढी मुसुंढीणं एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति, ते णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! **एत्थ वि दस उद्‌देसगा जहेव आलुवग्गे।**

णवरं–ओगाहणा तालवग्ग सरिसा,

सेसं तं चेव। *–विया. स. २३, व. २, सु. १*

५३. लोही आदि के मूल कंदादि जीवों में उत्पातादि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! लोही, नीहू, थीहू, थीभगा, अश्वकर्णी, सिंहकर्णी, सीउंढी और मुसुंढी इन सब वनस्पतियों के मूल के रूप में जो जीव उत्पन्न होते है तो भन्ते ! वे कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! **आलुकवर्ग के समान यहाँ भी मूलादि दस उद्‌देशक कहने चाहिए।**

विशेष–इनकी अवगाहना तालवर्ग के समान है।

शेष सब कथन पूर्ववत् है।

५४. आय-कायाईणं मूल कंदाइजीवेसु उववायाइ परूवणं–

प. अह भन्ते ! आय-काय-कुहुण कुंदुक्क उव्वेहलिय-सफासज्झा छत्ता वंसाणिय कुराणं एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! **एत्थ वि मूलाईया दस उद्‌देसगा निरवसेसं जहा आलुवग्गे।** *–विया. स. २३, व. ३, सु. १*

५४. आय-कायादि के मूल कंदादि जीवों में उत्पातादि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! आय, काय, कुहणा, कुन्दुक्क, उव्वेहेलिय, सफा, सज्झा, छत्ता, वंशानिका और कुरा इन वनस्पतियों के मूल रूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं तो भन्ते ! वे कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! **यहाँ भी आलु वर्ग के समान मूलादि समग्र दस उद्‌देशक कहने चाहिए।**

५५. पाढाईणं मूलकंदाइजीवेसु उववायाइ परूवणं–

प. अह भन्ते ! पाढा-मियवालुंकि मधुररस रायवल्लि पउम मोढरि-दंति-चंडीणं, एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! **एत्थ वि मूलाईया दस उद्‌देसगा आलुय वग्गसरिया।**

णवरं–ओगाहणा जहा वल्लीणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जगुणइ भागं उक्कोसेणं धणुपुहत्तं।

सेसं तं चेव। *–विया. स. २३, व. ४, सु. १*

५५. पाठादि के मूल कंदादि जीवों में उत्पातादि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! पाठा, मृगवालुंकी, मधुररसा, राजवल्ली, पद्‌मा, मोढरी, दन्ती और चण्डी, इन सब वनस्पतियों के मूल रूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं तो भंते ! वे कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! **यहाँ भी आलुवर्ग के मूलादि दस उद्‌देशक कहने चाहिए।**

विशेष–अवगाहना वल्लीवर्ग के समान जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट धनुष पृथक्त्व समझनी चाहिए।

शेष सब कथन पूर्ववत् है।

५६. मासपण्णी आईणं मूल कंदाइजीवेसु उववायाइ परूवणं–

प. अह भंते ! मासपण्णी मुग्गपण्णी जीवग-सरिसव-करेणुया-काओलि-खीरकाओलिभंगि-णहिं किमिरासि

५६. माषपर्णी आदि के मूल कंदादि जीवों में उत्पातादि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! माषपर्णी, मुद्‌गपर्णी, जीवंक, सरिसव, करेणुका, काकोली, क्षीरकाकोली, भंगी, णाही, कृमिराशि,

भद्दमुत्थ-णंगलइ पयुयकिण्णा पयोयलया हरेणुया लोहीणं एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! एत्थ वि दस उद्देसगा वि निरवसेसं आलुयवग्ग सरिसा।

एवं एएसु पंचसु वि वग्गेसु पण्णासं उद्देसगा भाणियव्वं त्ति[1]।

सव्वत्थ देवा ण उववज्जंति। तिन्नि लेसाओ।

–विया.स. २३, व. ५, सु.१

५७. सालरुक्ख साललट्ठिया उंबरलट्ठियाणं भाविभव परूवणं–

प. एए णं भन्ते ! सालरुक्खए उण्हाभिहए तण्हाभिहए दवग्गिजालाभिहए कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?

उ. गोयमा ! इहेव रायगिहे नयरे सालरुक्खत्ताए पच्चायाहिइ। से णं तत्थ अच्चिय वंदिय पूइय सक्कारिय सम्माणिय दिव्वे सच्चे सच्चोवाए सन्निहिय पाडिहेरे लाउल्लोइयमहिए यावि भविस्सइ।

प. से णं भंते ! तओहिंओ अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गमिहिए, कहिं उववज्जिहिइ ?

उ. गोयमा ! महाविदेह वासे सिज्झिहिइ जाव सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।

प. एस णं भन्ते ! साललट्ठिया उण्हाभिहया तण्हाभिहया दवग्गिजालाभिहया कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?

उ. गोयमा ! इहेव जंबुद्दीवे भारहे वासे विंझगिरिपायमूले महेसरीए नगरीए सामलिरुक्खत्ताए पच्चायाहिइ। से णं तत्थ अच्चिय वंदिय पूइय जाव लाउल्लोइयमहिया यावि भविस्सइ।

प. से णं भंते ! तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?

उ. गोयमा ! महाविदेहवासे सिज्झिहिइ जाव सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।

प. एस णं भंते ! उंबरलट्ठिया उण्हाभिहया तण्हाभिहया दवग्गिजालाभिहया कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?

उ. गोयमा ! इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे पाडलिपुत्ते नामं नगरे पाडलिरुक्खत्ताए पच्चायाहिइ। से णं तत्थ अच्चिय वंदिय पूइय जाव लाउल्लोइय महिए यावि भविस्सइ।

प. से णं भंते ! तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?

भद्रमुस्ता, लांगली, पयोदकिण्णा, पयोदलता, हरेणुका और लोही, इन सब वनस्पतियों के मूलरूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं तो भन्ते ! वे कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! यहाँ भी आलुक वर्ग के समान मूलादि दस उद्देशक समग्ररूप से कहने चाहिए।

इस प्रकार इन पाँचों वर्गों के कुल मिलाकर पचास उद्देशक कहने चाहिए।

इन सब में देव आकर उत्पन्न नहीं होते और तीन लेश्याए जाननी चाहिए।

५७. शालवृक्ष शालयष्टिका और उम्बरयष्टिका के भावीभव का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! सूर्य की गर्मी से पीड़ित, तृषा से व्याकुल, दावानल की ज्वाला से झुलसा हुआ यह शालवृक्ष काल मास में काल करके कहाँ जाएगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?

उ. गौतम ! यह शालवृक्ष यहीं राजगृहनगर में पुनः शालवृक्ष के रूप में उत्पन्न होगा वह वहाँ अर्चित, वन्दित, पूजित, सत्कृत, सम्मानित और दिव्य (देवगुणों से युक्त) सत्य, सत्यावपात सन्निहित-प्रातिहार्य होगा तथा इसका पीठ (चबूतरा) लीपा-पोता हुआ एवं पूजनीय होगा।

प्र. भन्ते ! वह शालवृक्ष वहाँ से मर कर कहाँ जाएगा और कहाँ उत्पन्न होगा ?

उ. गौतम ! वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा यावत् सब दुःखों का अन्त करेगा।

प्र. भन्ते ! सूर्य के ताप से पीड़ित, तृषा से व्याकुल तथा दावानल की ज्वाला से प्रज्वलित यह शालयष्टिका कालमास में काल करके कहाँ जाएगी ? कहाँ उत्पन्न होगी ?

उ. गौतम ! इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में विन्ध्याचल की तलहटी में स्थित माहेश्वरी नगरी में शाल्मली वृक्ष के रूप में पुनः उत्पन्न होगी। वहाँ वह अर्चित, वन्दित और पूजित होगी यावत् उसका चबूतरा लीपा पोता हुआ एवं पूजनीय होगा।

प्र. भन्ते ! वह (शाल यष्टिका) वहाँ से काल करके कहाँ जाएगी ? कहाँ उत्पन्न होगी ?

उ. गौतम ! वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगी यावत् सर्वदुःखों का अन्त करेगी।

प्र. भन्ते ! सूर्य के ताप से पीड़ित तृषा से व्याकुल और दावानल की ज्वाला से प्रज्वलित यह उदुम्बरयष्टिका (उम्बर वृक्ष की शाखा) कालमास में काल करके कहाँ जाएगी ? कहाँ उत्पन्न होगी ?

उ. गौतम ! इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में पाटलिपुत्र नामक नगर में पाटली वृक्ष के रूप में पुनः उत्पन्न होगी, वह वहाँ अर्चित, वन्दित और पूजित होगी यावत् उसका चबूतरा लीपा पोता हुआ एवं पूजनीय होगा।

प्र. भन्ते ! वह (उदुम्बर यष्टिका) [illegible] कहाँ उत्पन्न होगी ?

[1] [illegible]

से तं बहुवीयगा, से तं असंखेज्ज जीविया[1]।

प. से किं तं अणंतजीविया?

उ. अणंतजीविया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–

आलुए, मूलए, सिंगवेरे, हिरिली, सिरिली, सिस्सिरिली, किट्टिया, छिरिया, छीरविरालिया, कण्हकंदे, वज्जकंदे, सूरणकन्दे, खिलूडे, भद्दमुत्था, पिंडहलिद्दा,

लोही, णीहू, थीहू, थीभगा, मुग्गकण्णी, अस्सकण्णी, सीहकण्णी, सीउंढी, मुसुंढी।

जे याऽवन्ने तहप्पगारा

से तं अणंतजीविया[2]। –विया. स. ८, उ. ३, सु. १-५

यह बहुवीजक वृक्षों का वर्णन हुआ, यह असंख्यात जीविकों का वर्णन हुआ।

प्र. अनन्त जीव वाले वृक्ष कौन से हैं?

उ. अनन्त जीव वाले वृक्ष अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

आलू, मूला, श्रृंगवेर (अदरक) हिरली, सिरिली, सिस्सिरली, किट्टिका, छिरिया छीरविदारिका, कृष्णकंद वज्रकंद, सूरणकंद, खिलूडा (आर्द्र), भद्र मुस्ता, पिंडहरिद्रा (हल्दी की गांठ)

लोही, नीहू, थीहू, थीभगा, मुद्गकर्णी, अश्वकर्णी, सिंहकर्णी, सिहण्डी, मुसुण्डी।

ये और इनके अतिरिक्त जितने भी इस प्रकार के अन्य वृक्ष हैं, उन्हें (अनन्त जीव वाले) जान लेना चाहिए।

यह अनन्त जीव वाले वृक्षों का कथन हुआ।

५९. वणस्सइकाए गंधंगा–

प. कइ णं भन्ते! गंधंगा?

कइ णं भंते! गंधसया पण्णत्ता?

उ. गोयमा! सत्त गंधंगा, सत्त गंधसया पण्णत्ता।

–जीवा. पडि. ३, सु. ९८

५९. वनस्पतिकायिक के गंधांग–

प्र. भन्ते! गंधंग कितने प्रकार के हैं?

तथा गंधसत कितने प्रकार के हैं?

उ. गौतम! गंधांग सात प्रकार के हैं और प्रभेदों की अपेक्षा गंध सात सौ प्रकार के कहे गए हैं।

मनुष्य गति अध्ययन

इस अध्ययन में प्रमुख रूप से अग्राङ्कित विषय निरूपित हैं–

(१) विविध विवक्षाओं से पुरुष के तीन, चार आदि प्रकार (२) एकोरुक द्वीप के पुरुष एवं स्त्रियों के शारीरिक गठन, आहार, आवास आ
अतिरिक्त वहाँ पर अन्य प्राणियों, वस्तुओं आदि के सम्बन्ध में कथन (३) स्त्री, पुरुष, गुरु, प्रशंसक, नेता, माता पिता आदि के चार
(४) मनुष्य की अवगाहना एवं स्थिति।

मनुष्य के जन्म, मरण आदि के सम्बन्ध में गर्भ एवं वुक्कंति अध्ययन द्रष्टव्य है। मनुष्य के ज्ञान, योग, उपयोग, लेश्या आदि के लिए तत्तत् अ
द्रष्टव्य हैं। यहाँ इस अध्ययन में मनुष्य से सम्बद्ध वह वर्णन समाविष्ट है जिसका अन्यत्र निरूपण नहीं हुआ है।

मनुष्य दो प्रकार के होते हैं–(१) गर्भज एवं (२) सम्मूर्च्छिम। सम्मूर्च्छिम मनुष्य तो अत्यन्त अविकसित होता है तथा चौथी पर्याप्ति पूर्ण क
पूर्व ही मरण को प्राप्त हो जाता है। इसकी उत्पत्ति मल-मूत्र, श्लेष्म, वीर्य आदि १४ अशुचि स्थानों पर होती है। गर्भज मनुष्य भी तीन प्रकार के
हैं–कर्मभूमि में उत्पन्न, अकर्मभूमि में उत्पन्न तथा ५६ अन्तर्द्वीपों में उत्पन्न। पाँच भरत, पांच ऐरवत एवं पांच महाविदेह ये १५ कर्म भूमियाँ मानी
अकर्म भूमि के ३० भेद हैं–५ हैमवत, ५ हैरण्यवत, ५ हरिवर्ष, ५ रम्यक् वर्ष, ५ देवकुरु एवं ५ उत्तर कुरु। गर्भज मनुष्य पर्याप्तक एवं अप
दोनों प्रकार का होता है, जबकि सम्मूर्च्छिम मनुष्य मात्र अपर्याप्तक ही होता है।

वेद एवं लिङ्ग की अपेक्षा मनुष्य तीन प्रकार का होता है–(१) पुरुष, (२) स्त्री एवं (३) नपुंसक। प्रस्तुत अध्ययन में इसी मनुष्य पुरुष का
प्रकारों से निरूपण किया गया है, किन्तु आनुषङ्गिक एवं लाक्षणिक रूप से यह पुरुष शब्द मनुष्य का ही द्योतक है, जिसमें स्त्री एवं नपुंसकों का भ
हो जाता है। जैसे पुरुष तीन प्रकार के कहे गए–(१) सुमनस्क, (२) दुर्मनस्क एवं (३) नो सुमनस्क-नो दुर्मनस्क। ये तीनों भेद मात्र पुरुष पर घ
होकर मनुष्य मात्र पर घटित होते हैं। इसलिए यहाँ पुरुष शब्द से स्त्री एवं नपुंसक रूप मनुष्यों का भी ग्रहण हो जाता है।

पुरुष शब्द का प्रयोग नाम, स्थापना एवं द्रव्य के भेद से भिन्न अर्थ में भी होता है। कहीं विवक्षा भेद से ज्ञान पुरुष, दर्शन पुरुष एवं चरि
भी कहे गए हैं। पुरुष के उत्तम, मध्यम एवं जघन्य भेद भी किए गए हैं। उत्तम पुरुष के पुनः धर्मपुरुष–अर्हत्, भोग पुरुष–चक्रवर्ती एवं कर्म
वासुदेव भेद किए गए हैं। मध्यम पुरुष के उग्र, भोग एवं राजन्य पुरुष तथा जघन्य पुरुष के दास, भृतक एवं भागीदार पुरुष भेद किए गए हैं।

गमन की विवक्षा से, आगमन की विवक्षा से, ठहरने की विवक्षा से पुरुष के सुमनस्क, दुर्मनस्क एवं नो सुमनस्क-नो दुर्मनस्क भेद किए ग
ही तीनों भेद बैठने, हनन करने, छेदन करने, बोलने, भाषण करने, देने, भोजन करने, प्राप्ति-अप्राप्ति, पान करने, सोने, युद्ध करने, जीतने, प
करने, सुनने, देखने, सूँघने, आस्वाद लेने एवं स्पर्श करने की विवक्षा से भी किए गए हैं। कोई पुरुष इन क्रियाओं को करके एवं कोई नहीं करके सु
(हर्षित मन वाला) होता है। कोई इन्हें करके अथवा नहीं करके दुर्मनस्क (खिन्न मन वाला) होता है। कुछ पुरुष अथवा मनुष्य ऐसे भी हैं जो न सु
होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं, अपितु वे उदासीन चित्त वाले रहते हैं। यह सुमनस्कता, दुर्मनस्कता एवं नोसुमनस्कता- नोदुर्मनस्कता इन विभिन्न क्रि
के भूत, वर्तमान एवं भविष्य में होने एवं न होने के आधार पर होती देखी जाती है। इस वर्णन से मनुष्य किं वा जीव की भिन्न-भिन्न रुचि एव
होने का भी संकेत मिलता है तथा यह भी ज्ञात होता है कि जीव अपने संस्कारों के अनुसार इन क्रियाओं के होने या न होने में प्रसन्न अथवा
रहता है।

पुरुष का अनेक प्रकार से चतुर्भङ्गी में निरूपण किया गया है, यथा कुछ पुरुष जाति एवं मन दोनों से शुद्ध होते हैं, कुछ जाति से शुद्ध एवं
मन वाले होते हैं, कुछ जाति से अशुद्ध एवं मन से शुद्ध होते हैं, कुछ जाति एवं मन दोनों से अशुद्ध होते हैं। इस प्रकार की चतुर्भङ्गी का निरूपण
के साथ संकल्प, प्रज्ञा, दृष्टि, शीलाचार एवं पराक्रम का भी हुआ है। शरीर से पवित्रता एवं अपवित्रता के भंगों का कथन मन, संकल्प, प्रज्ञा
आदि की पवित्रता व अपवित्रता के साथ हुआ है। इसी प्रकार ऐश्वर्य के उन्नत एवं प्रणत होने का कथन मन, प्रज्ञा, दृष्टि आदि की उन्नतता एवं
के साथ चार भंगों में हुआ है। शरीर की ऋजुता एवं वक्रता के साथ मन, संकल्प, प्रज्ञा, दृष्टि, व्यवहार एवं पराक्रम की ऋजुता एवं वक्रता
चार-चार भंग बने हैं। शरीर, कुल आदि की उच्चता एवं नीचता के साथ विचारों की उच्चता एवं नीचता के साथ भी चार भंग निरूपित हैं।
असत्य बोलने, परिणमन करने, सत्य एवं असत्य रूप वाले, मन वाले, संकल्प वाले, प्रज्ञा वाले, दृष्टि वाले आदि पुरुषों का भी विविध प्रकार
भंगों में निरूपण हुआ है।

इसी प्रकार आर्य एवं अनार्य की विवक्षा से, प्रीति एवं अप्रीति की विवक्षा से, आत्मानुकम्प एवं परानुकम्प के भेद की विवक्षा से, आत्म
अंतकरादि की विवक्षा से, मित्र-अमित्र के दृष्टान्त द्वारा, स्वपर का निग्रह करने आदि की विवक्षा से पुरुष को चार प्रकार का प्रतिपादित किया

जाति, कुल, वल, रूप, श्रुत एवं शील से सम्पन्न होने एवं न होने के आधार पर पुरुष की २१ चतुर्भङ्गियों का निरूपण महत्वपूर्ण है। दीन
परिणति को लेकर १७ चौभंगी, परिज्ञात-अपरिज्ञात को लेकर ३ चौभंगी, सुगत-दुर्गत की अपेक्षा ५ चौभङ्गी, कृश एवं दृढ़ की अपेक्षा ३ चौभ
निरूपण हुआ है। अपने एवं दूसरों के दोष देखने एवं न देखने, उनकी उदीरणा करने एवं न करने, उनका उपशमन करने एवं न करने के आ
भी चतुर्भङ्गी वनी हैं। उदय-अस्त की विवक्षा से, आख्यायक एवं प्रविभाक की विवक्षा से, अर्थ (कार्य) एवं अभिमान की विवक्षा से भी पुरुष

प्रकार निरूपित हैं। पुरुष के तथा, जो तथा, सोवस्तिक एवं प्रधान के रूप में भी चार प्रकार प्रतिपादित हैं। वैयावृत्य करने-कराने एवं न करने-कराने के आधार पर भी पुरुष चार प्रकार के होते हैं। व्रण करने एवं न करने के साथ परिमर्श (उपचार), संरक्षण (देखभाल) एवं संरोह (भरण) के भी चार-चार भङ्ग बने हैं। वनखंड के दृष्टान्त से भी चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं। वृक्षों के प्रणत एवं उन्नत होने, ऋजु एवं वक्र होने पत्तों आदि से युक्त होने के दृष्टान्तों से भी पुरुष के चार-चार प्रकार प्रतिपादित हैं। असिपत्र, करपत्र, क्षुरपत्र एवं कदम्बचीरिका पत्र की भांति मनुष्य (पुरुष) भी चार प्रकार का कहा गया है। कोरक पुष्प, कच्चे फल, समुद्र, शंख, मधु-विष कुम्भ, पूर्ण-तुच्छ कुम्भ आदि के दृष्टान्तों से भी पुरुष के चतुर्विधत्व को स्पष्ट किया गया है। पूर्ण एवं तुच्छ कुम्भ के दृष्टान्त में पुरुष की ५ चोभंगी, मार्ग के दृष्टान्त से ३ चोभंगी, यान के दृष्टान्त से ४ चोभंगी, युग्य (वाहन विशेष) के दृष्टान्त से ४ चोभंगी, निरूपित हैं। सारथि के दृष्टान्त से पुरुष को योजक-वियोजक के आधार पर चार प्रकार का बतलाया गया है। वृषभ को चार प्रकार का बतलाकर पुरुष को भी चार प्रकार का कहा गया है-(१) जाति सम्पन्न, (२) कुल सम्पन्न, (३) बल सम्पन्न एवं (४) रूप सम्पन्न। फिर जाति, कुल, बल एवं रूप के परस्पर विधेयात्मक, निषेधात्मक आदि के रूप में ७ चतुर्भङ्ग प्रतिपादित हैं। आकीर्ण (तेजगति वाले) एवं खलुंक (मन्द गति वाले) अश्व के दृष्टान्त से भी पुरुष के भंगों का निरूपण हुआ है। जाति, कुल, बल, रूप एवं सम्पन्न घोड़े के दृष्टान्त द्वारा पुरुष के १० चतुर्भङ्गों का आख्यान है। अश्व की युक्तायुक्तता के दृष्टान्त से पुरुष के ४ चतुर्भङ्ग, हाथी की युक्तायुक्ता के दृष्टान्त से ५ चतुर्भङ्ग एवं सेना के दृष्टान्त से २ चतुर्भङ्गों का प्रतिपादन हुआ है। हाथी चार प्रकार के कहे गए हैं-(१) भद्र, (२) मंद, (३) मृग एवं संकीर्ण। इन चारों के स्वरूप का वर्ण करते हुए पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। फिर इन भेदों के आधार पर पुरुष के अनेक चतुर्भङ्ग बने हैं। स्वर एवं रूप से सम्पन्न पक्षी के दृष्टान्त से, शुद्ध-अशुद्ध वस्त्रों के दृष्टान्त से, पवित्र-अपवित्र वस्त्रों के दृष्टान्त से एवं चटाई के दृष्टान्त से भी पुरुष के चतुर्विधत्व का ख्यापन हुआ है। मधुसिक्थ (मोम), जतु, दारु (काष्ट) एवं मिट्टी के गोलों, लोहे, त्रपु, तांबे एवं शीशे के गोलों, चांदी, सोने, रत्न एवं हीरे के गोलों के दृष्टान्त से भी पुरुष चार-चार प्रकार के कहे गए हैं। कूटागार एवं मेष के दृष्टान्तों से भी पुरुष की चतुर्भङ्गियों का प्रतिपादन हुआ है। इस प्रकार विविध दृष्टान्तों के माध्यम से पुरुष (मनुष्य) को चार प्रकार का प्रतिपादित किया गया है।

मेष के दृष्टान्तों से माता-पिता एवं राजा के चार-चार प्रकार कहे गे हैं। वातमंडलिका के दृष्टान्त से स्त्रियां चार प्रकार की कही गई हैं। स्त्रियों के चतुर्विधत्व का प्रतिपादन धूमशिखा, अग्निशिखा, कूटागारशाला आदि के दृष्टान्तों के माध्यम से भी किया गया है। मृतक अर्थात् धनिक, मृत (पुत्र) प्रसर्पक (प्रयत्नशील) एवं तैराकों के भी चार-चार प्रकारों का इस अध्ययन में प्रतिपादन हुआ है। ये सब मनुष्यगति के जीव हैं। इसलिए इन्हें इस अध्ययन में लिया गया है।

पुरुष का प्रतिपादन पांच एवं छह प्रकारों में भी हुआ है। स्थानांग सूत्र के अनुसार पुरुष पांच प्रकार के इस प्रकार हैं-ह्रीसत्त्व, ह्रीमनःसत्त्व, चलसत्त्व, स्थिरसत्त्व एवं उदयनसत्त्व। इनके अर्थ का प्रतिपादन अध्ययन में यथास्थान किया गया है। मनुष्य के छह प्रकारों का प्रतिपादन दो प्रकार से उपलब्ध है। प्रथम प्रकार के अनुसार जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध एवं पश्चिमार्द्ध, अर्धपुष्करद्वीप के पूर्वार्द्ध एवं पश्चिमार्द्ध तथा अन्तर्द्वीपों में उत्पन्न होने के कारण मनुष्य छह प्रकार के हैं। द्वितीय प्रकार के अनुसार कर्मभूमि, अकर्मभूमि एवं अन्तर्द्वीप में उत्पन्न [illegible] सम्मूर्च्छिम एवं [illegible] मिलकर छह प्रकार के होते हैं। ऋद्धिसम्पन्न मनुष्यों के पृथक्रूपेण ६ प्रकार निर्दिष्ट हैं-(१) अर्हन्त, (२) चक्रवर्ती, (३) [illegible], (४) [illegible] (५) चारण एवं (६) विद्याधर। जो ऋद्धि सम्पन्न नहीं हैं वे भी हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यक्वर्ष, कुरुवर्ष एवं अन्तर्द्वीपों में उत्पन्न होने से [illegible] के हैं। [illegible] पुरुषों के ९ प्रकार एवं पुत्रों के आत्मज, क्षेत्रज आदि दस प्रकारों का भी इस अध्ययन में [illegible]।

[illegible]

३६. मणुस्सगई-अज्झयणं

सूत्र

१. विविह विवक्खया पुरिसाणं तिविहत्त परूवणं–

तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. णाम पुरिसे, २. ठवणा पुरिसे, ३. दव्वपुरिसे।
तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. णाणपुरिसे, २. दंसणपुरिसे, ३. चरित्तपुरिसे।
तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. वेदपुरिसे, २. चिंधपुरिसे, ३. अभिलावपुरिसे।
तिविहा पुरिसा पण्णत्ता, तं जहा–
१. उत्तमपुरिसा, २. मज्झिमपुरिसा, ३. जहण्णपुरिसा।
उत्तमपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. धम्मपुरिसा, २. भोगपुरिसा, ३. कम्मपुरिसा।
१. धम्मपुरिसा-अरहंता,
२. भोगपुरिसा-चक्कवट्टी,
३. कम्मपुरिसा-वासुदेवा।
मज्झिमपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. उग्गा,
२. भोगा,
३. राइण्णा।
जहण्णपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. दासा, २. भयगा, ३. भाइल्लगा।

–ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १३७

२. गमण विवक्खया पुरिसाणं सुमणस्साइ तिविहत्त परूवणं–

तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुमणे, २. दुम्मणे,
३. णोसुमणे णोदुम्मणे।

(१) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. गंता णामेगे सुमणे भवइ,
२. गंता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. गंता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(२) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जामीतेगे सुमणे भवइ,
२. जामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. जामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(३) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जाइस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. जाइस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,

३६. मनुष्य गति-अध्ययन

सूत्र

१. विविध विवक्षा से पुरुषों के त्रिविधत्व का प्ररूपण–

पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. नाम पुरुष, २. स्थापना पुरुष, ३. द्रव्य पुरुष।
पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. ज्ञान पुरुष, २. दर्शन पुरुष, ३. चारित्र पुरुष।
पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. वेद पुरुष, २. चिह्न पुरुष, ३. अभिलाप पुरुष।
पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. उत्तम पुरुष, २. मध्यम पुरुष, ३. जघन्य पुरुष।
उत्तम-पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. धर्म पुरुष, २. भोग पुरुष, ३. कर्म पुरुष।
१. धर्म पुरुष-अर्हंत,
२. भोग पुरुष-चक्रवर्ती,
३. कर्म पुरुष-वासुदेव।
मध्यम-पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. उग्र पुरुष-नगर रक्षक,
२. भोगपुरुष-गुरुस्थानीय (शिक्षक),
३. राजन्य पुरुष-जागीरदार आदि
जघन्य पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. दास, २. भृतक-नौकर, ३. भागीदार।

२. गमन की विवक्षा से पुरुषों के सुमनस्कादि त्रिविधत्व का प्ररूपण–

पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. सुमनस्क, २. दुर्मनस्क,
३. नोसुमनस्क नोदुर्मनस्क।

(१) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष जाने के बाद सुमनस्क (हर्षित) होते हैं,
२. कुछ पुरुष जाने के बाद दुर्मनस्क (दुःखी) होते हैं,
३. कुछ पुरुष जाने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(२) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष जाता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष जाता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष जाता हूं इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(३) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष जाऊँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष जाऊँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,

३. जाइस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(४) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अगंता णामेगे सुमणे भवइ,
२. अगंता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. अगंता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ,

(५) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण जामि एगे सुमणे भवइ,
२. ण जामि एगे दुम्मणे भवइ,
३. ण जामि एगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ,

(६) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण जाइस्सामि एगे सुमणे भवइ,
२. ण जाइस्सामि एगे दुम्मणे भवइ,
३. ण जाइस्सामि एगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

–ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६८

३. कुछ पुरुष जाऊँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(४) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष न जाने पर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष न जाने पर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष न जाने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(५) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष न जाता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष न जाता हूं इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष न जाता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(६) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष नहीं जाऊँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष नहीं जाऊँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष नहीं जाऊँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

३. आगमण विवक्खया पुरिसाण सुमणस्साइ तिविहत्त परूवणं–

(१) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. आगंता णामेगे सुमणे भवइ,
२. आगंता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. आगंता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(२) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. एमीतेगे सुमणे भवइ,
२. एमीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. एमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(३) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. एस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. एस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. एस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(४) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अणागंता णामेगे सुमणे भवइ,
२. अणागंता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. अणागंता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(५) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण एमीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण एमीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण एमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

३. आगमन की विवक्षा से पुरुषों के सुमनस्कादि त्रिविधत्व का प्ररूपण–

(१) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष आने के बाद सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष आने के बाद दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष आने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(२) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष आता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष आता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष आता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(३) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष आऊँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष आऊँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष आऊँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(४) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष न आने पर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष न आने पर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष न आने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(५) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष न आता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष न आता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष न आता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(६) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण एस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण एस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण एस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।
–ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६८(८-१३)

(६) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष न आऊँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष न आऊँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष न आऊँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

४. चिट्ठण विवक्खया पुरिसाणं सुमणस्साइ तिविहत्त परूवणं–

(१) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. चिट्ठित्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. चिट्ठित्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. चिट्ठित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(२) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. चिट्ठामीतेगे सुमणे भवइ,
२. चिट्ठामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. चिट्ठामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(३) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. चिट्ठिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. चिट्ठिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. चिट्ठिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(४) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अचिट्ठित्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. अचिट्ठित्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. अचिट्ठित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(५) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण चिट्ठामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण चिट्ठामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण चिट्ठामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(६) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण चिट्ठिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण चिट्ठिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण चिट्ठिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।
–ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६८(१४-१८)

४. ठहरने की विवक्षा से पुरुषों के सुमनस्कादि त्रिविधत्व का प्ररूपण–

(१) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष ठहरने के बाद सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष ठहरने के बाद दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष ठहरने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(२) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष ठहरता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष ठहरता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष ठहरता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(३) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष ठहरूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष ठहरूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष ठहरूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(४) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष न ठहरने पर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष न ठहरने पर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष न ठहरने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(५) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष न ठहरता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष न ठहरता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष न ठहरता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(६) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष न ठहरूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष न ठहरूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष न ठहरूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

५. णिसीयण विवक्खया पुरिसाणं सुमणस्साइ तिविहत्त परूवण–

(१) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. णिसिइत्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. णिसिइत्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. णिसिइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

५. बैठने की विवक्षा से पुरुषों के सुमनस्कादि त्रिविधत्व का प्ररूपण–

(१) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष बैठने के बाद सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष बैठने के बाद दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष बैठने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(२) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. णिसीयामीतेगे सुमणे भवइ,
२. णिसीयामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. णिसीयामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(३) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. णिसीइस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. णिसीइस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. णिसीइस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(४) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अणिसिइत्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. अणिसिइत्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. अणिसिइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(५) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण णिसीयामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण णिसीयामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण णिसीयामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(६) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण णिसीइस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण णिसीइस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण णिसीइस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

–ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६८ (२०-२५)

(२) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष बैठता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष बैठता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते है,
३. कुछ पुरुष बैठता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(३) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष बैठूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष बैठूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष बैठूंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(४) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष न बैठने पर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष न बैठने पर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष न बैठने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(५) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष न बैठता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष न बैठता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष न बैठता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(६) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष नहीं बैठूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष नहीं बैठूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष नहीं बैठूंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

६. हनन विवक्खया पुरिसाणं सुमणस्साइ तिविहत्त परूवणं–

(१) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. हंता णामेगे सुमणे भवइ,
२. हंता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. हंता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(२) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. हणामीतेगे सुमणे भवइ,
२. हणामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. हणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(३) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. हणिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. हणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. हणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

६. हनन की विवक्षा से पुरुषों के सुमनस्कादि त्रिविधत्व का प्ररूपण–

(१) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष मारने के बाद सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष मारने के बाद दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष मारने के वाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(२) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष मारता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष मारता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष मारता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(३) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष मारूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष मारूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष मारूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(४) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अहंता णामेगे सुमणे भवइ,
२. अहंता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. अहंता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(५) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण हणामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण हणामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण हणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(६) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण हणिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण हणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण हणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

–ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६८ (२३-३१)

७. छिंदण विवक्खया पुरिसाणं सुमणस्साइ तिविहत्त परूवणं–

(१) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. छिंदित्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. छिंदित्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. छिंदित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(२) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. छिंदामीतेगे सुमणे भवइ,
२. छिंदामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. छिंदामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(३) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. छिंदिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. छिंदिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. छिंदिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(४) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अछिंदित्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. अछिंदित्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. अछिंदित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(५) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण छिंदामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण छिंदामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण छिंदामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(४) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष न मारने पर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष न मारने पर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष न मारने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(५) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष नहीं मारता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष नहीं मारता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष नहीं मारता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(६) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष नहीं मारूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष नहीं मारूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष नहीं मारूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

७. छेदन की विवक्षा से पुरुषों के सुमनस्कादि त्रिविधत्व का प्ररूपण–

(१) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष छेदन करने के बाद सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष छेदन करने के बाद दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष छेदन करने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(२) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष छेदन करता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष छेदन करता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष छेदन करता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(३) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष छेदन करूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष छेदन करूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष छेदन करूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(४) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष छेदन न करने पर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष छेदन न करने पर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष छेदन न करने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(५) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष छेदन नहीं करता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष छेदन नहीं करता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष छेदन नहीं करता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(६) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण छिंदिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण छिंदिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण छिंदिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।
–ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६८(३२-३७)

(६) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष छेदन नहीं करूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष छेदन नहीं करूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष छेदन नहीं करूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

८. वयण विवक्खया पुरिसाणं सुमणस्साइ तिविहत्त परूवणं–

(१) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. बूइत्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. बूइत्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. बूइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(२) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. बेमीतेगे सुमणे भवइ,
२. बेमीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. बेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(३) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. बोच्छामीतेगे सुमणे भवइ,
२. बोच्छामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. बोच्छामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(४) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अबूइत्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. अबूइत्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. अबूइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(५) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण बेमीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण बेमीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण बेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(६) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण बोच्छामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण बोच्छामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण बोच्छामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।
–ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६८(३८-४३)

८. बोलने की विवक्षा से पुरुषों के सुमनस्कादि त्रिविधत्व का प्ररूपण–

(१) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष बोलने के बाद सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष बोलने के बाद दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष बोलने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(२) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष बोलता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष बोलता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष बोलता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(३) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष बोलूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष बोलूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष बोलूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(४) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष न बोलने पर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष न बोलने पर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष न बोलने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(५) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष बोलता नहीं हूँ इसलिएं सुमनस्क होते है,
२. कुछ पुरुष बोलता नहीं हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष बोलता नहीं हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते है।

(६) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए है, यथा–
१. कुछ पुरुष नहीं बोलूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष नहीं बोलूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष नहीं वोलूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

९. भासण विवक्खया पुरिसाणं सुमणस्साइ तिविहत्त परूवणं–

(१) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. भासित्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. भासित्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. भासित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

९. भाषण की विवक्षा से पुरुषों के सुमनस्कादि त्रिविधत्व का प्ररूपण–

(१) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष संभाषण करने के बाद सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष संभाषण करने के वाद दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष संभाषण करने के वाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(२) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. भासिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. भासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. भासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(३) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. भासिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. भासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. भासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(४) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अभासित्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. अभासित्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. अभासित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(५) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण भासामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण भासामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण भासामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(६) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण भासिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण भासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण भासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

–ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६८ (४४-४९)

(२) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष संभाषण करता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष संभाषण करता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष संभाषण करता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(३) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष संभाषण करूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष संभाषण करूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष संभाषण करूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(४) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष संभाषण न करने पर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष संभाषण न करने पर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष संभाषण न करने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(५) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष संभाषण नहीं करता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष संभाषण नहीं करता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष संभाषण नहीं करता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(६) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष संभाषण नहीं करूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष संभाषण नहीं करूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष संभाषण नहीं करूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

१०. दान-विवक्खया पुरिसाणं सुमनस्साइ तिविहत्त परूवणं–

(१) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. दच्चा णामेगे सुमणे भवइ,
२. दच्चा णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. दच्चा णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(२) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. देमीतेगे सुमणे भवइ,
२. देमीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. देमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(३) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. दासामीतेगे सुमणे भवइ,
२. दासामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. दासामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

१०. देने की विवक्षा से पुरुषों के सुमनस्कादि त्रिविधत्व का प्ररूपण–

(१) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष देने के वाद सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष देने के वाद दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष देने के वाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(२) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष देता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष देता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष देता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

(३) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष देऊँगा इसलिए सुमनस्क होते है,
२. कुछ पुरुष देऊँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष देऊँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(४) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अदच्चा णामेगे सुमणे भवइ,
२. अदच्चा णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. अदच्चा णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(५) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण देमीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण देमीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण देमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(६) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण दासामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण दासामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण दासामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

–ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६८(५०-५५)

११. भोयण विवक्खया पुरिसाणं सुमणस्साइ तिविहत्त परूवणं–

(१) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. भुंजित्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. भुंजित्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. भुंजित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(२) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. भुंजामीतेगे सुमणे भवइ,
२. भुंजामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. भुंजामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(३) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. भुंजिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. भुंजिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. भुंजिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(४) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अभुंजित्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. अभुंजित्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. अभुंजित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(५) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण भुंजामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण भुंजामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण भुंजामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(४) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष न देने पर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष न देने पर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष न देने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(५) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष नहीं देता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष नहीं देता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष नहीं देता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(६) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए है, यथा–
१. कुछ पुरुष नहीं देऊँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष नहीं देऊँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष नहीं देऊँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

११. भोजन की विवक्षा से पुरुषों के सुमनस्कादि त्रिविधत्व का प्ररूपण–

(१) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष भोजन करने के बाद सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष भोजन करने के बाद दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष भोजन करने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(२) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष भोजन करता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष भोजन करता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष भोजन करता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(३) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष भोजन करूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष भोजन करूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष भोजन करूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(४) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष भोजन न करने पर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष भोजन न करने पर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष भोजन न करने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(५) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष भोजन नहीं करता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष भोजन नहीं करता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष भोजन नहीं करता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(६) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं तहा–
१. ण भुंजिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण भुंजिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण भुंजिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

–ठाणं अ. ३ उ. २ सु. १६८(५६-६१)

(६) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष भोजन नहीं करूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष भोजन नहीं करूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष भोजन नहीं करूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

१२. लाभालाभ विवक्खया पुरिसाणं सुमणस्साइ तिविहत्त परूवणं–

(१) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. लभित्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. लभित्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. लभित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(२) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. लभामीतेगे सुमणे भवइ,
२. लभामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. लभामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(३) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. लभिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. लभिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. लभिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(४) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अलभित्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. अलभित्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. अलभित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(५) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण लभामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण लभामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण लभामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(६) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण लभिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण लभिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण लभिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

–ठाणं अ. ३, उ. २, सु. १६८(६२-६७)

१२. प्राप्ति-अप्राप्ति की विवक्षा से पुरुषों के सुमनस्कादि त्रिविधत्व का प्ररूपण–

(१) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष प्राप्त करने के बाद सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष प्राप्त करने के बाद दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष प्राप्त करने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(२) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष प्राप्त करता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष प्राप्त करता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष प्राप्त करता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(३) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष प्राप्त करूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष प्राप्त करूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष प्राप्त करूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(४) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष प्राप्त न करने पर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष प्राप्त न करने पर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष प्राप्त न करने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(५) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष प्राप्त नहीं करता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष प्राप्त नहीं करता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष प्राप्त नहीं करता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(६) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष प्राप्त नहीं करूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष प्राप्त नहीं करूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष प्राप्त नहीं करूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

१३. पेय विवक्खया पुरिसाणं सुमणस्साइ तिविहत्त परूवणं–

(१) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. पिवित्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. पिवित्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. पिवित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

१३. पीने की विवक्षा से पुरुषों के सुमनस्कादि त्रिविधत्व का प्ररूपण–

(१) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष पेय पीकर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष पेय पीकर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष पेय पीकर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(२) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. पिबामीतेगे सुमणे भवइ,
२. पिबामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. पिबामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(३) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. पिबिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. पिबिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. पिबिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(४) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अपिबित्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. अपिबित्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. अपिबित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(५) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण पिबामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण पिबामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण पिबामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(६) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण पिबिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण पिबिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण पिबिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

–ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६८ (६८-७३)

(२) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष पीता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष पीता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष पीता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(३) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष पीऊँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष पीऊँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष पीऊँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(४) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष न पीकर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष न पीकर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष न पीकर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(५) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष नहीं पीता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष नहीं पीता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष नहीं पीता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(६) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष नहीं पीऊँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष नहीं पीऊँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष नहीं पीऊँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

१४. सयण विवक्खया पुरिसाणं सुमणस्साइ तिविहत्त परूवणं–

(१) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुइत्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. सुइत्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. सुइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(२) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुआमीतेगे सुमणे भवइ,
२. सुआमीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. सुआमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(३) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुइस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. सुइस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. सुइस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(४) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. असुइत्ता णामेगे सुमणे भवइ,

१४. सोने की विवक्षा से पुरुषों के सुमनस्कादि त्रिविधत्व का प्ररूपण–

(१) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष सोकर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष सोकर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष सोकर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(२) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष सोता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष सोता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष सोता हूं इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(३) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष सोऊँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष सोऊँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष सोऊँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(४) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष न सोकर सुमनस्क होते हैं,

२. असुइत्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. असुइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(५) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण सुआमीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण सुआमीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण सुआमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(६) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण सुइस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण सुइस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण सुइस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

–ठाणं अ. ३, उ. २, सु. १६८ (७४-७९)

२. कुछ पुरुष न सोकर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष न सोकर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(५) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष सोता नहीं हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष सोता नहीं हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष सोता नहीं हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(६) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष नहीं सोऊँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष नहीं सोऊँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष नहीं सोऊँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

१५. जुज्झण विवक्खया पुरिसाणं सुमणस्साइ तिविहत्त परूवणं–

(१) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुज्झित्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. जुज्झित्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. जुज्झित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(२) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुज्झामीतेगे सुमणे भवइ,
२. जुज्झामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. जुज्झामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(३) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुज्झिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. जुज्झिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. जुज्झिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(४) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अजुज्झित्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. अजुज्झित्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. अजुज्झित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(५) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण जुज्झामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण जुज्झामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण जुज्झामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(६) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण जुज्झिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण जुज्झिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,

१५. युद्ध की विवक्षा से पुरुषों के सुमनस्कादि त्रिविधत्व का प्ररूपण–

(१) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष युद्ध करके सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष युद्ध करके दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष युद्ध करके न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं,

(२) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष युद्ध करता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष युद्ध करता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष युद्ध करता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(३) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष युद्ध करूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष युद्ध करूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष युद्ध करूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(४) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष युद्ध न करके सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष युद्ध न करके दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष युद्ध न करके न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(५) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष युद्ध नहीं करता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष युद्ध नहीं करता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष युद्ध नहीं करता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(६) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष युद्ध नहीं करूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष युद्ध नहीं करूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,

३. ण जुज्झिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

–ठाणं अ. ३, उ. २, सु. १६८(८०-८५)

१६. जय विवक्खया पुरिसाणं सुमणस्साइ तिविहत्त परूवणं–

(१) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. जइत्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. जइत्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. जइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(२) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. जिणामीतेगे सुमणे भवइ,
२. जिणामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. जिणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(३) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. जिणिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. जिणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. जिणिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवइ।

(४) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. अजइत्ता णोमेगे सुमणे भवइ,
२. अजइत्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. अजइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(५) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. ण जिणामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण जिणामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण जिणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(६) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. ण जिणिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण जिणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण जिणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

–ठाणं अ. ३, उ. २, सु. १६८(८६-९१)

१७. पराजय विवक्खया पुरिसाणं सुमणस्साइ तिविहत्त परूवणं–

(१) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. पराजिणित्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. पराजिणित्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. पराजिणित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(२) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. पराजिणामीतेगे सुमणे भवइ,
२. पराजिणामीतेगे दुम्मणे भवइ,

३. कुछ पुरुष युद्ध नहीं करूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

१६. जय की विवक्षा से पुरुषों के सुमनस्कादि त्रिविधत्व का प्ररूपण–

(१) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष जीतकर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष जीतकर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष जीतकर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(२) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष जीतता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष जीतता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष जीतता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(३) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष जीतूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष जीतूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष जीतूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(४) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष न जीतकर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष न जीतकर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष न जीतकर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(५) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष जीतता नहीं हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष जीतता नहीं हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष जीतता नहीं हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(६) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष नहीं जीतूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष नहीं जीतूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष नहीं जीतूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

१७. पराजय की विवक्षा से पुरुषों के सुमनस्कादि त्रिविधत्व का प्ररूपण–

(१) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष पराजित करने के वाद सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष पराजित करने के वाद दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष पराजित करने के वाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(२) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष पराजित करता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष पराजित करता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,

३. पराजिणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(३) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. पराजिणिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. पराजिणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. पराजिणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ,

(४) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अपराजिणित्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. अपराजिणित्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. अपराजिणित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(५) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण पराजिणामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण पराजिणामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण पराजिणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(६) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. ण पराजिणिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. ण पराजिणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. ण पराजिणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

–ठाणं अ. ३. उ. २, सु. १६८ (१२-१७)

३. कुछ पुरुष पराजित करता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(३) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष पराजित करूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष पराजित करूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष पराजित करूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(४) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष पराजित नहीं करने पर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष पराजित नहीं करने पर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष पराजित नहीं करने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(५) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष पराजित नहीं करता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष पराजित नहीं करता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष पराजित नहीं करता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(६) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष पराजित नहीं करूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष पराजित नहीं करूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष पराजित नहीं करूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

१८. सवण विवक्खया पुरिसाणं सुमणस्साइ तिविहत्त परूवणं–

(१) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सद्दं सुणेत्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. सद्दं सुणेत्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. सद्दं सुणेत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(२) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सद्दं सुणामीतेगे सुमणे भवइ,
२. सद्दं सुणामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. सद्दं सुणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(३) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सद्दं सुणिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. सद्दं सुणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. सद्दं सुणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(४) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सद्दं असुणेत्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. सद्दं असुणेत्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. सद्दं असुणेत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

१८. श्रवण की विवक्षा से पुरुषों के सुमनस्कादि त्रिविधत्व का प्ररूपण–

(१) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष शब्द सुनकर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष शब्द सुनकर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष शब्द सुनकर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(२) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष शब्द सुनता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष शब्द सुनता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष शब्द सुनता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(३) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष शब्द सुनूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष शब्द सुनूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष शब्द सुनूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(४) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष शब्द नहीं सुनकर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष शब्द नहीं सुनकर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष शब्द नहीं सुनकर न सुमनस्क होते हैं और दुर्मनस्क होते हैं।

(५) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. सद्दं ण सुणामीतेगे सुमणे भवइ,

२. सद्दं ण सुणामीतेगे दुम्मणे भवइ,

३. सद्दं ण सुणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(६) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. सद्दं ण सुणिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,

२. सद्दं ण सुणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,

३. सद्दं ण सुणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

–ठाणं अ. ३, उ. २, सु. १६८ (९८-१०३)

(५) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष शब्द नहीं सुनता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,

२. कुछ पुरुष शब्द नहीं सुनता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,

३. कुछ पुरुष शब्द नहीं सुनता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(६) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष शब्द नहीं सुनूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,

२. कुछ पुरुष शब्द नहीं सुनूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,

३. कुछ पुरुष शब्द नहीं सुनूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

१९. दंसण विवक्खया पुरिसाणं सुमणस्साइ तिविहत्त परूवणं–

(१) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. रूवं पासित्ता णामेगे सुमणे भवइ,

२. रूवं पासित्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,

३. रूवं पासित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(२) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. रूवं पासामीतेगे सुमणे भवइ,

२. रूवं पासामीतेगे दुम्मणे भवइ,

३. रूवं पासामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(३) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. रूवं पासिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,

२. रूवं पासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,

३. रूवं पासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(४) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. रूवं अपासित्ता णामेगे सुमणे भवइ,

२. रूवं अपासित्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,

३. रूवं अपासित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(५) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. रूवं ण पासामीतेगे सुमणे भवइ,

२. रूवं ण पासामीतेगे दुम्मणे भवइ,

३. रूवं ण पासामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(६) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. रूवं ण पासिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,

२. रूवं ण पासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,

३. रूवं ण पासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

–ठाणं अ. ३, उ. २, सु. १६८ (१०४-१०९)

१९. देखने की विवक्षा से पुरुषों के सुमनस्कादि त्रिविधत्व का प्ररूपण–

(१) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष रूप को देखकर सुमनस्क होते हैं,

२. कुछ पुरुष रूप को देखकर दुर्मनस्क होते हैं,

३. कुछ पुरुष रूप को देखकर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(२) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष रूप को देखता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,

२. कुछ पुरुष रूप को देखता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,

३. कुछ पुरुष रूप को देखता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(३) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष रूप को देखूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,

२. कुछ पुरुष रूप को देखूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,

३. कुछ पुरुष रूप को देखूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(४) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष रूप को न देखकर सुमनस्क होते हैं,

२. कुछ पुरुष रूप को न देखकर दुर्मनस्क होते हैं,

३. कुछ पुरुष रूप को न देखकर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(५) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष रूप को न देखता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,

२. कुछ पुरुष रूप को न देखता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,

३. कुछ पुरुष रूप को न देखता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(६) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष रूप को नहीं देखूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,

२. कुछ पुरुष रूप को नहीं देखूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,

३. कुछ पुरुष रूप को नहीं देखूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२०. घाण विवक्खया पुरिसाणं सुमणस्साइ तिविहत्त परूवणं–

(१) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. गंधं अग्घाइत्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. गंधं अग्घाइत्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. गंधं अग्घाइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(२) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. गंधं अग्घामीतेगे सुमणे भवइ,
२. गंधं अग्घामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. गंधं अग्घामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(३) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा
१. गंधं अग्घाइस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. गंधं अग्घाइस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. गंधं अग्घाइस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(४) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. गंधं अणग्घाइत्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. गंधं अणग्घाइत्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. गंधं अणग्घाइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(५) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. गंधं ण अग्घामीतेगे सुमणे भवइ,
२. गंधं ण अग्घामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. गंधं ण अग्घामीतेगे णो सुमणे णोदुम्मणे भवइ।

(६) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. गंधं ण अग्घाइस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. गंधं ण अग्घाइस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. गंधं ण अग्घाइस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

–ठाणं अ. ३, उ. २, सु. १६८(११०-११५)

२०. सूँघने की विवक्षा से पुरुषों के सुमनस्कादि त्रिविधत्व का प्ररूपण–

(१) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष गंध लेकर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष गंध लेकर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष गंध लेकर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(२) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष गंध लेता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष गंध लेता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष गंध लेता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(३) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष गंध लेऊँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष गंध लेऊँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष गंध लेऊँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(४) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष गंध नहीं लेकर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष गंध नहीं लेकर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष गंध नहीं लेकर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(५) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष गंध नहीं लेता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष गंध नहीं लेता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष गंध नहीं लेता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(६) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष गंध नहीं लेऊँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष गंध नहीं लेऊँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष गंध नहीं लेऊँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२१. आसाय विवक्खया पुरिसाणं सुमणस्साइ तिविहत्त परूवणं–

(१) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. रस आसाइत्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. रस आसाइत्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. रस आसाइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(२) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. रस आसादेमीतेगे सुमणे भवइ,
२. रस आसादेमीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. रस आसादेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

२१. आस्वाद की विवक्षा से पुरुषों के सुमनस्कादि त्रिविधत्व का प्ररूपण–

(१) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष रस चख कर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष रस चख कर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष रस चख कर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(२) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष रस चखता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष रस चखता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष रस चखता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(३) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. रसं आसादिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. रसं आसादिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. रसं आसादिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(४) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. रसं अणासाइत्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. रसं अणासाइत्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. रसं अणासाइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(५) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. रसं ण आसादेमीतेगे सुमणे भवइ,
२. रसं ण आसादेमीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. रसं ण आसादेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(६) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. रसं ण आसादिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. रसं ण आसादिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. रसं ण आसादिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

–ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६८(११६-१२१)

(३) पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष रस चखूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष रस चखूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष रस चखूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(४) पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष रस न चख कर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष रस न चख कर दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष रस न चख कर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(५) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष रस नहीं चखता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष रस नहीं चखता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष रस नहीं चखता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(६) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष रस नहीं चखूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष रस नहीं चखूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष रस नहीं चखूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२२. फास विवक्खया पुरिसाणं सुमणस्साइ तिविहत्त परूवणं–

(१) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. फासं फासेत्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. फासं फासेत्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. फासं फासेत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(२) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. फासं फासेमीतेगे सुमणे भवइ,
२. फासं फासेमीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. फासं फासेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(३) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. फासं फासिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. फासं फासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. फासं फासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(४) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. फासं अफासेत्ता णामेगे सुमणे भवइ,
२. फासं अफासेत्ता णामेगे दुम्मणे भवइ,
३. फासं अफासेत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

२२. स्पर्श की विवक्षा से पुरुषों के सुमनस्कादि त्रिविधत्व का प्ररूपण–

(१) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष स्पर्श करके सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष स्पर्श क़रके दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष स्पर्श करके न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(२) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष स्पर्श करता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष स्पर्श करता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष स्पर्श करता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(३) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष स्पर्श करूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष स्पर्श करूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
(३) कुछ पुरुष स्पर्श करूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(४) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष स्पर्श न करके सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष स्पर्श न करके दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष स्पर्श न करके न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(५) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. फासं ण फासेमीतेगे सुमणे भवइ,
२. फासं ण फासेमीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. फासं ण फासेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

(६) तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. फासं ण फासिस्सामीतेगे सुमणे भवइ,
२. फासं ण फासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवइ,
३. फासं ण फासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवइ।

–ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६८(१२२-१२७)

२३. सुद्ध-असुद्ध मण संकप्पाइ विवक्खया पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुद्धे णाममेगे सुद्धमणे,
२. सुद्धे णाममेगे असुद्धमणे,
३. असुद्धे णाममेगे सुद्धमणे,
४. असुद्धे णाममेगे असुद्धमणे।

(२) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुद्धे णाममेगे सुद्धसंकप्पे,
२. सुद्धे णाममेगे असुद्धसंकप्पे,
३. असुद्धे णाममेगे सुद्धसंकप्पे,
४. असुद्धे णाममेगे असुद्धसंकप्पे।

(३) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुद्धे णाममेगे सुद्धपण्णे,
२. सुद्धे णाममेगे असुद्धपण्णे,
३. असुद्धे णाममेगे सुद्धपण्णे,
४. असुद्धे णाममेगे असुद्धपण्णे।

(४) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुद्धे णाममेगे सुद्धदिट्ठी,
२. सुद्धे णाममेगे असुद्धदिट्ठी,
३. असुद्धे णाममेगे सुद्धदिट्ठी,
४. असुद्धे णाममेगे असुद्धदिट्ठी।

(५) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष स्पर्श नहीं करता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष स्पर्श नहीं करता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष स्पर्श नहीं करता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

(६) पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष स्पर्श नहीं करूँगा इसलिए सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष स्पर्श नहीं करूँगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं,
३. कुछ पुरुष स्पर्श नहीं करूँगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२३. शुद्ध-अशुद्ध मन संकल्पादि की विवक्षा से पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध होते हैं और शुद्ध मन वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध होते हैं किन्तु अशुद्ध मन वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध होते हैं किन्तु शुद्ध मन वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध होते हैं और अशुद्ध मन वाले होते हैं।

(२) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध होते हैं और शुद्ध संकल्प वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध होते हैं किन्तु अशुद्ध संकल्प वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध होते हैं किन्तु शुद्ध संकल्प वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध होते हैं और अशुद्ध संकल्प वाले होते हैं।

(३) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध होते हैं और शुद्ध प्रज्ञा वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध होते हैं किन्तु अशुद्ध प्रज्ञा वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध होते हैं किन्तु शुद्ध प्रज्ञा वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध होते हैं और अशुद्ध प्रज्ञा वाले होते हैं।

(४) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध होते हैं और शुद्ध दृष्टि वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध होते हैं किन्तु अशुद्ध दृष्टि वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध होते हैं किन्तु शुद्ध दृष्टि वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध होते हैं और अशुद्ध दृष्टि वाले होते हैं।

(५) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुद्धे णाममेगे सुद्धसीलाचारे,
२. सुद्धे णाममेगे असुद्धसीलाचारे,
३. असुद्धे णाममेगे सुद्धसीलाचारे,
४. असुद्धे णाममेगे असुद्धसीलाचारे।

(६) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुद्धे णाममेगे सुद्धववहारे,
२. सुद्धे णाममेगे असुद्धववहारे,
३. असुद्धे णाममेगे सुद्धववहारे,
४. असुद्धे णाममेगे असुद्धववहारे।

(७) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुद्धे णाममेगे सुद्धपरक्कमे,
२. सुद्धे णाममेगे असुद्धपरक्कमे,
३. असुद्धे णाममेगे सुद्धपरक्कमे,
४. असुद्धे णाममेगे असुद्धपरक्कमे।

–ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २३१

२४. सुई-असुई मण संकप्पाइ विवक्खया पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुई णाममेगे सुइमणे,
२. सुई णाममेगे असुइमणे,
३. असुई णाममेगे सुइमणे,
४. असुई णाममेगे असुइमणे।

(२) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुई णाममेगे सुइसंकप्पे,
२. सुई णाममेगे असुइसंकप्पे,
३. असुई णाममेगे सुइसंकप्पे,

(५) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध होते हैं और शुद्ध शीलाचार वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध होते हैं किन्तु अशुद्ध शीलाचार वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध होते हैं किन्तु शुद्ध शीलाचार वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध होते हैं और अशुद्ध शीलाचार वाले होते हैं।

(६) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध होते हैं और शुद्ध व्यवहार वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध होते हैं किन्तु अशुद्ध व्यवहार वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध होते हैं किन्तु शुद्ध व्यवहार वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध होते हैं और अशुद्ध व्यवहार वाले होते हैं।

(७) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध होते हैं और शुद्ध पराक्रम वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध होते हैं और अशुद्ध पराक्रम वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध होते हैं किन्तु शुद्ध पराक्रम वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध होते हैं और अशुद्ध पराक्रम वाले होते हैं।

२४. पवित्र-अपवित्र मन संकल्पादि की विवक्षा से पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष शरीर से पवित्र होते हैं और पवित्र मन वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष शरीर से पवित्र होते हैं किन्तु अपवित्र मन वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष शरीर से अपवित्र होते हैं किन्तु पवित्र मन वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष शरीर से अपवित्र होते हैं और अपवित्र मन वाले होते हैं।

(२) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष शरीर से पवित्र होते हैं और पवित्र संकल्प वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष शरीर से पवित्र होते हैं किन्तु अपवित्र संकल्प वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष शरीर से अपवित्र होते हैं किन्तु पवित्र संकल्प वाले होते हैं,

४. असुई णाममेगे असुइसंकप्पे।

(३) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुई णाममेगे सुइपण्णे,
२. सुई णाममेगे असुइपण्णे,
३. असुई णाममेगे सुइपण्णे,
४. असुई णाममेगे असुइपण्णे।

(४) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुई णाममेगे सुइदिट्ठी,
२. सुई णाममेगे असुइदिट्ठी,
३. असुई णाममेगे सुइदिट्ठी,
४. असुई णाममेगे असुइदिट्ठी।

(५) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुई णाममेगे सुइसीलाचारे,
२. सुई णाममेगे असुइसीलाचारे,
३. असुई णाममेगे सुइसीलाचारे,
४. असुई णाममेगे असुइसीलाचारे।

(६) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुई णाममेगे सुइववहारे,
२. सुई णाममेगे असुइववहारे,
३. असुई णाममेगे सुइववहारे,
४. असुई णाममेगे असुइववहारे।

(७) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुई णाममेगे सुइपरक्कमे,
२. सुई णाममेगे असुइपरक्कमे,
३. असुई णाममेगे सुइपरक्कमे,

४. कुछ पुरुष शरीर से अपवित्र होते हैं और अपवित्र संकल्प वाले होते हैं।

(३) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष शरीर से पवित्र होते हैं और पवित्र प्रज्ञा वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष शरीर से पवित्र होते हैं किन्तु अपवित्र प्रज्ञा वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष शरीर से अपवित्र होते हैं किन्तु पवित्र प्रज्ञा वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष शरीर से अपवित्र होते हैं और अपवित्र प्रज्ञा वाले होते हैं।

(४) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष शरीर से पवित्र होते हैं और पवित्र दृष्टि वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष शरीर से पवित्र होते हैं किन्तु अपवित्र दृष्टि वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष शरीर से अपवित्र होते हैं किन्तु पवित्र दृष्टि वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष शरीर से अपवित्र होते हैं और अपवित्र दृष्टि वाले होते हैं।

(५) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष शरीर से पवित्र होते हैं और पवित्र शीलाचार वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष शरीर से पवित्र होते हैं किन्तु अपवित्र शीलाचार वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष शरीर से अपवित्र होते हैं किन्तु पवित्र शीलाचार वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष शरीर से अपवित्र होते हैं और अपवित्र शीलाचार वाले होते हैं।

(६) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष शरीर से पवित्र होते हैं और पवित्र व्यवहार वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष शरीर से पवित्र होते हैं किन्तु अपवित्र व्यवहार वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष शरीर से अपवित्र होते हैं किन्तु पवित्र व्यवहार वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष शरीर से अपवित्र होते हैं और अपवित्र व्यवहार वाले होते हैं।

(७) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष शरीर से पवित्र होते हैं और पवित्र पराक्रम वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष शरीर से पवित्र होते हैं किन्तु अपवित्र पराक्रम वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष शरीर से अपवित्र होते हैं किन्तु पवित्र पराक्रम वाले होते हैं,

४. असुई णाममेगे असुइपरक्कमे।

–ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २४१

४. कुछ पुरुष शरीर से अपवित्र होते हैं और अपवित्र पराक्रम वाले होते हैं।

२५. उण्णय-पणय मण संकप्पाइ विवक्खया पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. उण्णए णाममेगे उण्णयमणे,
२. उण्णए णाममेगे पणयमणे,
३. पणए णाममेगे उण्णयमणे,
४. पणए णाममेगे पणयमणे।

(२) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. उण्णए णाममेगे उण्णयसंकप्पे,
२. उण्णए णाममेगे पणयसंकप्पे,
३. पणए णाममेगे उण्णयसंकप्पे,
४. पणए णाममेगे पणयसंकप्पे।

(३) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. उण्णए णाममेगे उण्णयपण्णे,
२. उण्णए णाममेगे पणयपण्णे,
३. पणए णाममेगे उण्णयपण्णे,
४. पणए णाममेगे पणयपण्णे।

(४) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. उण्णए णाममेगे उण्णयदिट्ठी,
२. उण्णए णाममेगे पणयदिट्ठी,
३. पणए णाममेगे उण्णयदिट्ठी,
४. पणए णाममेगे पणयदिट्ठी।

(५) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. उण्णए णाममेगे उण्णयसीलाचारे,
२. उण्णए णाममेगे पणयसीलाचारे,

२५. उन्नत-प्रणत मन संकल्पादि की विवक्षा से पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूवण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरूष ऐश्वर्य से उन्नत होते हैं और उन्नत (उदार) मन वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत होते हैं किन्तु प्रणत (अनुदार) मन वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत होते हैं किन्तु उन्नत मन वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत होते हैं और प्रणत मन वाले होते हैं।

(२) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत होते हैं और उन्नत संकल्प वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत होते हैं किन्तु प्रणत संकल्प वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत होते हैं किन्तु उन्नत संकल्प वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत होते हैं और प्रणत संकल्प वाले होते हैं।

(३) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत होते हैं और उन्नत प्रज्ञा वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत होते हैं किन्तु प्रणत प्रज्ञा वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत होते हैं किन्तु उन्नत प्रज्ञा वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत होते हैं और प्रणत प्रज्ञा वाले होते हैं.

(४) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत होते हैं और उन्नत दृष्टि वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत होते हैं किन्तु प्रणत दृष्टि वाले होते है।
३. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत होते हैं किन्तु उन्नत दृष्टि वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत होते हैं और प्रणत दृष्टि वाले होते हैं।

(५) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत होते हैं और उन्नत शीलाचार वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत होते हैं किन्तु प्रणत शीलाचार वाले होते हैं,

३. पणए णाममेगे उण्णयसीलाचारे,

४. पणए णाममेगे पणयसीलाचारे।

(६) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. उण्णए णाममेगे उण्णयववहारे,

२. उण्णए णाममेगे पणयववहारे,

३. पणए णाममेगे उण्णयववहारे,

४. पणए णाममेगे पणयववहारे।

(७) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. उण्णए णाममेगे उण्णयपरक्कमे,

२. उण्णए णाममेगे पणयपरक्कमे,

३. पणए णाममेगे उण्णयपरक्कमे,

४. पणए णाममेगे पणयपरक्कमे।

–ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २३६

३. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत होते हैं किन्तु उन्नत शीलाचार वाले होते हैं,

४. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत होते हैं और प्रणत शीलाचार वाले होते हैं।

(६) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत होते हैं और उन्नत व्यवहार वाले होते हैं,

२. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत होते हैं किन्तु प्रणत व्यवहार वाले होते हैं,

३. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत होते हैं किन्तु उन्नत व्यवहार वाले होते हैं,

४. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत होते हैं और प्रणत व्यवहार वाले होते हैं।

(७) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत होते हैं और उन्नत पराक्रम वाले होते हैं,

२. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत होते हैं किन्तु प्रणत पराक्रम वाले होते हैं,

३. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत होते हैं किन्तु उन्नत पराक्रम वाले होते हैं,

४. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत होते हैं और प्रणत पराक्रम वाले होते हैं।

२६. उज्जू-वंक मण संकप्पाइ विवक्खया पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. उज्जू णाममेगे उज्जुमणे,

२. उज्जू णाममेगे वंकमणे,

३. वंके णाममेगे उज्जुमणे,

४. वंके णाममेगे वंकमणे।

(२) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. उज्जू णाममेगे उज्जुसंकप्पे,

२. उज्जू णाममेगे वंकसंकप्पे,

३. वंके णाममेगे उज्जुसंकप्पे,

४. वंके णाममेगे वंकसंकप्पे।

(३) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. उज्जू णाममेगे उज्जुपण्णे,

२. उज्जू णाममेगे वंकपण्णे,

३. वंके णाममेगे उज्जुपण्णे,

४. वंके णाममेगे वंकपण्णे।

२६. ऋजु वक्र मन संकल्पादि की विवक्षा से पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु होते हैं और ऋजु मन वाले होते हैं,

२. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु होते हैं किन्तु वक्र मन वाले होते हैं,

३. कुछ पुरुष शरीर से वक्र होते हैं किन्तु ऋजु मन वाले होते हैं,

४. कुछ पुरुष शरीर से वक्र होते हैं और वक्र मन वाले होते हैं।

(२) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु होते हैं और ऋजु संकल्प वाले होते हैं,

२. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु होते हैं किन्तु वक्र संकल्प वाले होते हैं,

३. कुछ पुरुष शरीर से वक्र होते हैं किन्तु ऋजु संकल्प वाले होते हैं,

४. कुछ पुरुष शरीर से वक्र होते हैं और वक्र संकल्प वाले होते हैं।

(३) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु होते हैं और ऋजु प्रज्ञा वाले होते हैं,

२. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु होते हैं किन्तु वक्र प्रज्ञा वाले होते हैं,

३. कुछ पुरुष शरीर से वक्र होते हैं किन्तु ऋजु प्रज्ञा वाले होते हैं,

४. कुछ पुरुष शरीर से वक्र होते हैं और वक्र प्रज्ञा वाले होते हैं।

(४) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. उज्जू णाममेगे उज्जुदिट्ठी,
२. उज्जू णाममेगे वंकदिट्ठी,
३. वंके णाममेगे उज्जुदिट्ठी,
४. वंके णाममेगे वंकदिट्ठी।

(५) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. उज्जू णाममेगे उज्जुसीलाचारे,
२. उज्जू णाममेगे वंकसीलाचारे,
३. वंके णाममेगे उज्जुसीलाचारे,
४. वंके णाममेगे वंकसीलाचारे।

(६) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. उज्जू णाममेगे उज्जुववहारे,
२. उज्जू णाममेगे वंकववहारे,
३. वंके णाममेगे उज्जुववहारे,
४. वंके णाममेगे वंकववहारे।

(७) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. उज्जू णाममेगे उज्जुपरक्कमे,
२. उज्जू णाममेगे वंकपरक्कमे,
३. वंके णाममेगे उज्जुपरक्कमे,
४. वंके णाममेगे वंकपरक्कमे। *–ठाणं. अ. ४, उ. १, स. २३६*

२७. उच्च-नीच छंद विवक्खया पुरिसाणं चउव्विहत्त परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. उच्चे णाममेगे उच्चछंदे,
२. उच्चे णाममेगे णीयछंदे,
३. णीए णाममेगे उच्चछंदे,
४. णीए णाममेगे णीयछंदे। *–ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३१८*

(४) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु होते हैं और ऋजु दृष्टि वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु होते हैं किन्तु वक्र दृष्टि वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष शरीर से वक्र होते हैं किन्तु ऋजु दृष्टि वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष शरीर से वक्र होते हैं और वक्र दृष्टि वाले होते हैं।

(५) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु होते हैं और ऋजु शीलाचार वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु होते हैं किन्तु वक्र शीलाचार वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष शरीर से वक्र होते हैं किन्तु ऋजु शीलाचार वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष शरीर से वक्र होते हैं और वक्र शीलाचार वाले होते हैं।

(६) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु होते हैं और ऋजु व्यवहार वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु होते हैं किन्तु वक्र व्यवहार वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष शरीर से वक्र होते हैं किन्तु ऋजु व्यवहार वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष शरीर से वक्र होते हैं और वक्र व्यवहार वाले होते हैं।

(७) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु होते हैं और ऋजु पराक्रम वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु होते हैं किन्तु वक्र पराक्रम वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष शरीर से वक्र होते हैं किन्तु ऋजु पराक्रम वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष शरीर से वक्र होते हैं और वक्र पराक्रम वाले होते हैं।

२७. उच्च-नीच विचारों की विवक्षा से पुरुषों के चतुर्विधत्व का प्ररूपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष शरीर कुल आदि से भी उच्च होते हैं और विचारों से भी उच्च होते हैं,
२. कुछ पुरुष शरीर कुल आदि से तो उच्च होते हैं परन्तु विचारों से हीन होते हैं।
३. कुछ पुरुष शरीर कुल आदि से हीन होते हैं परन्तु विचारों से उच्च होते हैं,
४. कुछ पुरुष शरीर कुल आदि से भी हीन होते हैं और विचारों से भी हीन होते हैं।

२८. सच्च-असच्च परिणयाइ विवक्खया पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सच्चे णाममेगे सच्चे,
२. सच्चे णाममेगे असच्चे,
३. असच्चे णाममेगे सच्चे,
४. असच्चे णाममेगे असच्चे।

(२) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सच्चे णाममेगे सच्चपरिणए,
२. सच्चे णाममेगे असच्चपरिणए,
३. असच्चे णाममेगे सच्चपरिणए,
४. असच्चे णाममेगे असच्चपरिणए।

(३) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सच्चे णाममेगे सच्चरूवे,
२. सच्चे णाममेगे असच्चरूवे,
३. असच्चे णाममेगे सच्चरूवे,
४. असच्चे णाममेगे असच्चरूवे,

(४) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सच्चे णाममेगे सच्चमणे,
२. सच्चे णाममेगे असच्चमणे,
३. असच्चे णाममेगे सच्चमणे,
४. असच्चे णाममेगे असच्चमणे।

(५) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सच्चे णाममेगे सच्चसंकप्पे,
२. सच्चे णाममेगे असच्चसंकप्पे,
३. असच्चे णाममेगे सच्चसंकप्पे,
४. असच्चे णाममेगे असच्चसंकप्पे।

(६) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सच्चे णाममेगे सच्चपण्णे,
२. सच्चे णाममेगे असच्चपण्णे,
३. असच्चे णाममेगे सच्चपण्णे,
४. असच्चे णाममेगे असच्चपण्णे।

(७) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सच्चे णाममेगे सच्चदिट्ठी,
२. सच्चे णाममेगे असच्चदिट्ठी,
३. असच्चे णाममेगे सच्चदिट्ठी,
४. असच्चे णाममेगे असच्चदिट्ठी।

(८) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सच्चे णाममेगे सच्चसीलाचारे,
२. सच्चे णाममेगे असच्चसीलाचारे,

२८. सत्य-असत्य परिणतादि की विवक्षा से पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष पहले भी सत्य बोलते हैं और बाद में भी सत्य बोलते हैं,
२. कुछ पुरुष पहले सत्य बोलते हैं किन्तु बाद में असत्य बोलते हैं,
३. कुछ पुरुष पहले असत्य बोलते हैं किन्तु बाद में सत्य बोलते हैं,
४. कुछ पुरुष पहले भी असत्य बोलते हैं और बाद में भी असत्य बोलते हैं।

(२) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष सत्य होते हैं और सत्य परिणति वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष सत्य होते हैं किन्तु असत्य-परिणति वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष असत्य होते हैं किन्तु सत्य परिणति वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष असत्य होते हैं और असत्य-परिणति वाले होते हैं

(३) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष सत्य होते हैं और सत्य रूप वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष सत्य होते हैं किन्तु असत्य रूप वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष असत्य होते हैं किन्तु सत्य रूप वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष असत्य होते हैं और असत्य रूप वाले होते हैं।

(४) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष सत्य होते हैं और सत्य मन वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष सत्य होते हैं किन्तु असत्य मन वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष असत्य होते हैं किन्तु सत्य मन वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष असत्य होते हैं और असत्य मन वाले होते हैं।

(५) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष सत्य होते हैं और सत्य संकल्प वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष सत्य होते हैं किन्तु असत्य संकल्प वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष असत्य होते हैं किन्तु सत्य संकल्प वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष असत्य होते हैं और असत्य संकल्प वाले होते हैं

(६) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष सत्य होते हैं और सत्य-प्रज्ञा वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष सत्य होते हैं किन्तु असत्य-प्रज्ञा वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष असत्य होते हैं किन्तु सत्य-प्रज्ञा वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष असत्य होते हैं और असत्य-प्रज्ञा वाले होते हैं।

(७) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष सत्य होते हैं और सत्य-दृष्टि वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष सत्य होते हैं किन्तु असत्य-दृष्टि वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष असत्य होते हैं किन्तु सत्य दृष्टि वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष असत्य होते हैं और असत्य दृष्टि वाले होते हैं।

(८) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष सत्य होते हैं और सत्य-शीलाचार वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष सत्य होते हैं किन्तु असत्य-शीलाचार वाले होते

३. असच्चे णाममेगे सच्चसीलाचारे
४. असच्चे णाममेगे असच्चसीलाचारे।

(९) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सच्चे णाममेगे सच्चववहारे,
२. सच्चे णाममेगे असच्चववहारे,
३. असच्चे णाममेगे सच्चववहारे,
४. असच्चे णाममेगे असच्चववहारे।

(१०) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सच्चे णाममेगे सच्चपरक्कमे,
२. सच्चे णाममेगे असच्चपरक्कमे,
३. असच्चे णाममेगे सच्चपरक्कमे,
५. असच्चे णाममेगे असच्चपरक्कमे।

–ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. २४१

३. कुछ पुरुष असत्य होते हैं किन्तु सत्य-शीलाचार वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष असत्य होते हैं और असत्य-शीलाचार वाले होते हैं।

(९) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष सत्य होते हैं और सत्य व्यवहार वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष सत्य होते हैं किन्तु असत्य व्यवहार वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष असत्य होते हैं किन्तु सत्य व्यवहार वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष असत्य होते हैं और असत्य व्यवहार वाले होते हैं।

(१०) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष सत्य होते हैं और सत्य-पराक्रम वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष सत्य होते हैं किन्तु असत्य पराक्रम वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष असत्य होते हैं किन्तु सत्य पराक्रम वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष असत्य होते हैं और असत्य पराक्रम वाले होते हैं।

२९. अज्ज-अणज्ज विवक्खया पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अज्जे णाममेगे अज्जे,
२. अज्जे णाममेगे अणज्जे,
३. अणज्जे णाममेगे अज्जे,
४. अणज्जे णाममेगे अणज्जे।

(२) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अज्जे णाममेगे अज्जपरिणए,
२. अज्जे णाममेगे अणज्जपरिणए,
३. अणज्जे णाममेगे अज्जपरिणए,
४. अणज्जे णाममेगे अणज्जपरिणए।

(३) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अज्जे णाममेगे अज्जरूवे,
२. अज्जे णाममेगे अणज्जरूवे,
३. अणज्जे णाममेगे अज्जरूवे,
४. अणज्जे णाममेगे अणज्जरूवे।

(४) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अज्जे णाममेगे अज्जमणे,
२. अज्जे णाममेगे अणज्जमणे,
३. अणज्जे णाममेगे अज्जमणे,
४. अणज्जे णाममेगे अणज्जमणे।

(५) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अज्जे णाममेगे अज्जसंकप्पे,
२. अज्जे णाममेगे अणज्जसंकप्पे,
३. अणज्जे णाममेगे अज्जसंकप्पे,
४. अणज्जे णाममेगे अणज्जसंकप्पे।

(६) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अज्जे णाममेगे अज्जपण्णे,

२९. आर्य-अनार्य की विवक्षा से पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररुपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष द्रव्य से भी आर्य होते हैं और भाव से भी आर्य होते हैं,
२. कुछ पुरुष द्रव्य से आर्य होते हैं किन्तु भाव से अनार्य होते हैं,
३. कुछ पुरुष द्रव्य से अनार्य होते हैं किन्तु भाव से आर्य होते हैं,
४. कुछ पुरुष द्रव्य से भी अनार्य होते हैं और भाव से भी अनार्य होते हैं।

(२) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष आर्य होते हैं और आर्य रूप में परिणत होते हैं,
२. कुछ पुरुष आर्य होते हैं किन्तु अनार्य रूप में परिणत होते हैं,
३. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं किन्तु आर्य रूप में परिणत होते हैं,
४. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं और अनार्य रूप में परिणत होते हैं।

(३) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष आर्य होते हैं और आर्य रूप वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष आर्य होते हैं किन्तु अनार्य रूप वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं किन्तु आर्य रूप वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं और अनार्य रूप वाले होते हैं।

(४) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष आर्य होते हैं और आर्य मन वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष आर्य होते हैं किन्तु अनार्य मन वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं किन्तु आर्य मन वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं और अनार्य मन वाले होते हैं।

(५) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष आर्य होते हैं और आर्य संकल्प वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष आर्य होते हैं किन्तु अनार्य संकल्प वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं किन्तु आर्य संकल्प वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं और अनार्य संकल्प वाले होते हैं।

(६) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष आर्य होते हैं और आर्य प्रज्ञा वाले होते हैं,

२. अज्जे णाममेगे अणज्जपण्णे,
३. अणज्जे णाममेगे अज्जपण्णे,
४. अणज्जे णाममेगे अणज्जपण्णे।
(७) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अज्जे णाममेगे अज्जदिट्ठी,
२. अज्जे णाममेगे अणज्जदिट्ठी,
३. अणज्जे णाममेगे अज्जदिट्ठी,
४. अणज्जे णाममेगे अणज्जदिट्ठी।
(८) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अज्जे णाममेगे अज्जसीलाचारे,
२. अज्जे णाममेगे अणज्जसीलाचारे,
३. अणज्जे णाममेगे अज्जसीलाचारे,
४. अणज्जे णाममेगे अणज्जसीलाचारे।
(९) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अज्जे णाममेगे अज्जववहारे,
२. अज्जे णाममेगे अणज्जववहारे,
३. अणज्जे णाममेगे अज्जववहारे,
४. अणज्जे णाममेगे अणज्जववहारे।
(१०) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अज्जे णाममेगे अज्जपरकम्मे,
२. अज्जे णाममेगे अणज्जपरकम्मे,
३. अणज्जे णाममेगे अज्जपरकम्मे,
४. अणज्जे णाममेगे अणज्जपरकम्मे।
(११) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अज्जे णाममेगे अज्जवित्ती,
२. अज्जे णाममेगे अणज्जवित्ती,
३. अणज्जे णाममेगे अज्जवित्ती,
४. अणज्जे णाममेगे अणज्जवित्ती।
(१२) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अज्जे णाममेगे अज्जजाती,
२. अज्जे णाममेगे अणज्जजाती,
३. अणज्जे णाममेगे अज्जजाती,
४. अणज्जे णाममेगे अणज्जजाती।
(१३) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अज्जे णाममेगे अज्जभासी,
२. अज्जे णाममेगे अणज्जभासी,
३. अणज्जे णाममेगे अज्जभासी,
४. अणज्जे णाममेगे अणज्जभासी।
(१४) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अज्जे णाममेगे अज्जओभासी,
२. अज्जे णाममेगे अणज्जओभासी,
३. अणज्जे णाममेगे अज्जओभासी,
४. अणज्जे णाममेगे अणज्जओभासी।

२. कुछ पुरुष आर्य होते हैं किन्तु अनार्य प्रज्ञा वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं किन्तु आर्य प्रज्ञा वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं और अनार्य प्रज्ञा वाले होते हैं।
(७) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष आर्य होते हैं और आर्य दृष्टि वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष आर्य होते हैं किन्तु अनार्य दृष्टि वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं किन्तु आर्य दृष्टि वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं और अनार्य दृष्टि वाले होते हैं।
(८) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष आर्य होते हैं और आर्य शीलाचार वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष आर्य होते हैं किन्तु अनार्य शीलाचार वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं किन्तु आर्य शीलाचार वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं और अनार्य शीलाचार वाले होते हैं।
(९) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष आर्य होते हैं और आर्य व्यवहार वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष आर्य होते हैं किन्तु अनार्य व्यवहार वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं किन्तु आर्य व्यवहार वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं और अनार्य व्यवहार वाले होते हैं।
(१०) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष आर्य होते हैं और आर्य पराक्रम वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष आर्य होते हैं किन्तु अनार्य पराक्रम वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं किन्तु आर्य पराक्रम वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं और अनार्य पराक्रम वाले होते हैं।
(११) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष आर्य होते हैं और आर्य वृत्ति वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष आर्य होते हैं किन्तु अनार्य वृत्ति वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं किन्तु आर्य वृत्ति वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं और अनार्य वृत्ति वाले होते हैं।
(१२) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष आर्य होते हैं और आर्य जाति वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष आर्य होते हैं किन्तु अनार्य जाति वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं किन्तु आर्य जाति वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं और अनार्य जाति वाले होते हैं।
(१३) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष आर्य होते हैं और आर्य भाषी होते हैं,
२. कुछ पुरुष आर्य होते हैं किन्तु अनार्य भाषी होते हैं,
३. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं किन्तु आर्य भाषी होते हैं,
४. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं और अनार्य भाषी होते हैं।
(१४) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष आर्य होते हैं और आर्य जैसे दिखाई देते हैं,
२. कुछ पुरुष आर्य होते हैं किन्तु अनार्य जैसे दिखाई देते हैं,
३. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं किन्तु आर्य जैसे दिखाई देते हैं,
४. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं और अनार्य जैसे ही दिखाई देते हैं।

(१५) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. अज्जे णाममेगे अज्जसेवी,
२. अज्जे णाममेगे अणज्जसेवी,
३. अणज्जे णाममेगे अज्जसेवी,
४. अणज्जे णाममेगे अणज्जसेवी।

(१६) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. अज्जे णाममेगे अज्जपरियाए,
२. अज्जे णाममेगे अणज्जपरियाए,
३. अणज्जे णाममेगे अज्जपरियाए,
४. अणज्जे णाममेगे अणज्जपरियाए।

(१७) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. अज्जे णाममेगे अज्जपरियाले,
२. अज्जे णाममेगे अणज्जपरियाले,
३. अणज्जे णाममेगे अज्जपरियाले,
४. अणज्जे णाममेगे अणज्जपरियाले।

(१८) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. अज्जे णाममेगे अज्जभावे,
२. अज्जे णाममेगे अणज्जभावे,
३. अणज्जे णाममेगे अज्जभावे,
४. अणज्जे णाममेगे अणज्जभावे।

–ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २८०

(१५) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष आर्य होते हैं और आर्य सेवी होते हैं,
२. कुछ पुरुष आर्य होते हैं किन्तु अनार्य सेवी होते हैं,
३. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं किन्तु आर्य सेवी होते हैं,
४. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं और अनार्य सेवी होते हैं।

(१६) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष आर्य होते हैं और आर्य पर्याय वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष आर्य होते हैं किन्तु अनार्य पर्याय वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं किन्तु आर्य पर्याय वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं और अनार्य पर्याय वाले होते हैं।

(१७) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष आर्य होते हैं और आर्य परिवार वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष आर्य होते हैं किन्तु अनार्य परिवार वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं किन्तु आर्य परिवार वाले होते है,
४. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं और अनार्य परिवार वाले होते हैं।

(१८) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष आर्य होते हैं और आर्य भाव से युक्त (उदार) होते हैं,
२. कुछ पुरुष आर्य होते हैं किन्तु भाव से अनार्य होते हैं,
३. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं किन्तु भाव से आर्य होते हैं,
४. कुछ पुरुष अनार्य होते हैं और अनार्य भाव से युक्त होते हैं।

३०. पत्तिय-अपत्तिय विवक्खया पुरिसाणं चउव्विहत्त परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. पत्तियं करेमीतेगे पत्तियं करेइ,
२. पत्तियं करेमीतेगे अप्पत्तियं करेइ,
३. अप्पत्तियं करेमीतेगे पत्तियं करेइ,
४. अप्पत्तियं करेमीतेगे अप्पत्तियं करेइ।

(२) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. अप्पणो णाममेगे पत्तियं करेइ, णो परस्स,
२. परस्स णाममेगे पत्तियं करेइ, णो अप्पणो,
३. एगे अप्पणो वि पत्तियं करेइ, परस्स वि,
४. एगे णो अप्पणो पत्तियं करेइ, णो परस्स।

(३) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. पत्तियं पवेसामीतेगे पत्तियं पवेसेइ,
२. पत्तियं पवेसामीतेगे अप्पत्तियं पवेसेइ,

३०. प्रीति और अप्रीति की विवक्षा से पुरुषों के चतुर्विधत्व का प्ररूपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष प्रीति करूं ऐसा सोचकर प्रीति करते हैं,
२. कुछ पुरुष प्रीति करूं ऐसा सोचकर अप्रीति करते हैं,
३. कुछ पुरुष अप्रीति करूं ऐसा सोचकर प्रीति करते हैं,
४. कुछ पुरुष अप्रीति करूं ऐसा सोचकर अप्रीति करते हैं।

(२) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष (जो स्वार्थी होते हैं) अपने पर प्रीति करते हैं दूसरों पर नहीं करते,
२. कुछ पुरुष दूसरों पर प्रीति करते हैं, अपने पर नहीं करते,
३. कुछ पुरुष अपने पर भी प्रीति करते हैं और दूसरों पर भी प्रीति करते हैं,
४. कुछ पुरुष अपने पर भी प्रीति नहीं करते और दूसरों पर भी प्रीति नहीं करते।

(३) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष दूसरे के मन में प्रीति (या विश्वास) उत्पन्न करना चाहते हैं और प्रीति उत्पन्न कर देते हैं,
२. कुछ पुरुष दूसरे के मन में प्रीति उत्पन्न करना चाहते हैं, किन्तु अप्रीति उत्पन्न कर देते हैं।

३. अप्पत्तियं पवेसामीतेगे पत्तियं पवेसेइ,

४. अप्पत्तियं पवेसामीतेगे अप्पत्तियं पवेसेइ।

(४) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. अप्पणो णाममेगे पत्तियं पवेसेइ, णो परस्स,

२. परस्स णाममेगे पत्तियं पवेसेइ, णो अप्पणो,

३. एगे अप्पणो वि पत्तियं पवेसेइ, परस्स वि,

४. एगे णो अप्पणो पत्तियं पवेसेइ, णो परस्स।

–ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३१२

३. कुछ पुरुष दूसरे के मन में अप्रीति उत्पन्न करना चाहते हैं, किन्तु प्रीति उत्पन्न कर देते हैं,

४. कुछ पुरुष दूसरे के मन में अप्रीति उत्पन्न करना चाहते हैं और अप्रीति उत्पन्न कर देते हैं।

(४) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष स्वयं पर प्रीति (या विश्वास) करते हैं, परन्तु दूसरों पर प्रीति नहीं करते,

२. कुछ पुरुष दूसरों पर प्रीति करते हैं परन्तु स्वयं पर प्रीति नहीं करते,

३. कुछ पुरुष स्वयं पर भी प्रीति करते हैं और दूसरों पर भी प्रीति करते हैं,

४. कुछ पुरुष न स्वयं पर प्रीति करते हैं और न दूसरों पर प्रीति करते हैं।

३१. मित्तामित्त दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. मित्ते णाममेगे मित्ते,

२. मित्ते णाममेगे अमित्ते,

३. अमित्ते णाममेगे मित्ते,

४. अमित्ते णाममेगे अमित्ते।

(२) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. मित्ते णाममेगे मित्तरूवे,

२. मित्ते णाममेगे अमित्तरूवे,

३. अमित्ते णाममेगे मित्तरूवे,

४. अमित्ते णाममेगे अमित्तरूवे।

–ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३६६

३१. मित्र-अमित्र के दृष्टांत द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष व्यवहार से भी मित्र होते हैं और हृदय से भी मित्र होते हैं,

२. कुछ पुरुष व्यवहार से मित्र होते हैं, किन्तु हृदय से मित्र नहीं होते हैं,

३. कुछ पुरुष व्यवहार से मित्र नहीं होते, परन्तु हृदय से मित्र होते हैं,

४. कुछ पुरुष न व्यवहार से मित्र होते हैं और न हृदय से मित्र होते हैं।

(२) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष मित्र होते हैं और उनका व्यवहार भी मित्रवत् होता है,

२. कुछ पुरुष मित्र होते हैं, परन्तु उनका व्यवहार अमित्रवत् होता है,

३. कुछ पुरुष अमित्र होते हैं, परन्तु उनका व्यवहार मित्रवत् होता है,

४. कुछ पुरुष अमित्र होते हैं और उनका व्यवहार भी अमित्रवत् होता है।

३२. आयाणुकंप-पराणुकंप भेएण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. आयाणुकंपए णाममेगे णो पराणुकंपए,

२. पराणुकंपए णाममेगे णो आयाणुकंपए,

३. एगे आयाणुकंपए वि, पराणुकंपए वि,

४. एगे णो आयाणुकंपए, णो पराणुकंपए।

–ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३५२/६

३२. आत्मानुकंप-परानुकंप के भेद से पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष आत्मानुकंपक आत्म-हित में प्रवृत्त होते हैं, परन्तु परानुकंपक-परहित में प्रवृत्त नहीं होते (जैसे–जिनकल्पिक मुनि)

२. कुछ पुरुष परानुकंपक होते हैं, परन्तु आत्मानुकंपक नहीं होते (जैसे–कृतकृत्य तीर्थंकर),

३. कुछ पुरुष आत्मानुकंपक भी होते हैं और परानुकंपक भी होते हैं (जैसे–स्थविरकल्पिक मुनि),

४. कुछ पुरुष न आत्मानुकंपक होते हैं और न परानुकंपक होते हैं (जैसे–क्रूरकर्मा पुरुष),

३३. अप्पणो-परस्स अलमंथु विवक्खया पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. अप्पणो णाममेगे अलमंथू भवइ, णो परस्स,

२. परस्स णाममेगे अलमंथू भवइ, णो अप्पणो,

३. एगे अप्पणो वि अलमंथू भवइ, परस्स वि,

४. एगे णो अप्पणो अलमंथू भवइ, णो परस्स।

–ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २८९

३३. स्व-पर का निग्रह करने की विवक्षा से पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष अपना निग्रह करने में समर्थ होते हैं, किन्तु दूसरे का निग्रह करने में समर्थ नहीं होते,

२. कुछ पुरुष दूसरे का निग्रह करने में समर्थ होते हैं, किन्तु अपना निग्रह करने में समर्थ नहीं होते,

३. कुछ पुरुष अपना भी निग्रह करने में समर्थ होते हैं और दूसरों का भी निग्रह करने में समर्थ होते हैं,

४. कुछ पुरुष न अपना निग्रह करने में समर्थ होते हैं और न दूसरों का निग्रह करने में समर्थ होते हैं।

३४. आय-पर अंतकाइ विवक्खया पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. आयंतकरे णाममेगे, णो परंतकरे,

२. परंतकरे णाममेग, णो आयंतकरे,

३. एगे आयंतकरे वि, परंतकरे वि,

४. एगे णो आयंतकरे, णो परंतकरे।

(२) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. आयंतमे णाममेगे, णो परंतमे,

२. परंतमे णाममेगे, णो आयंतमे,

३. एगे आयंतमे वि, परंतमे वि,

४. एगे णो आयंतमे, णो परंतमे।

(३) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. आयंदमे णाममेगे, णो परंदमे,

२. परंदमे णाममेगे, णो आयंदमे,

३. एगे आयंदमे वि, परंदमे वि,

४. एगे णो आयंदमे, णो परंदमे।

–ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २८७

३४. आत्म-पर के अंतकरादि की विवक्षा से पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष अपने भव का अंत करते हैं, किन्तु दूसरे के भव का अंत नहीं करते हैं (जैसे–गजसुकुमाल)

२. कुछ पुरुष दूसरे के भव का अंत करते हैं, किन्तु अपने भव का अंत नहीं करते हैं (जैसे–अचरम शरीरी आचार्य)

३. कुछ पुरुष अपने भव का भी अंत करते हैं और दूसरे के भव का भी अंत करते हैं। (जैसे–तीर्थंकर भगवंत)

४. कुछ पुरुष न अपने भव का अन्त करते हैं और न दूसरे के भव का अंत करते हैं। (जैसे–प्रभव स्वामी)

(२) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष स्वयं को खेद-खिन्न करते हैं किन्तु दूसरे को खेद-खिन्न नहीं करते,

२. कुछ पुरुष दूसरे को खेद-खिन्न करते हैं, किन्तु स्वयं को खेद-खिन्न नहीं करते,

३. कुछ पुरुष स्वयं को भी खेद-खिन्न करते हैं और दूसरे को भी खेद-खिन्न करते हैं,

४. कुछ पुरुष न स्वयं को खेद-खिन्न करते हैं और न दूसरे को खेद-खिन्न करते हैं।

(३) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष अपना दमन करते हैं, किन्तु दूसरे का दमन नहीं करते,

२. कुछ पुरुष दूसरे का दमन करते हैं, किन्तु अपना दमन नहीं करते,

३. कुछ पुरुष अपना भी दमन करते हैं और दूसरे का भी दमन करते हैं,

४. कुछ पुरुष न अपना दमन करते हैं और न दूसरे का दमन करते हैं।

३५. आयंभरं-परंभरं पडुच्च पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. आयंभरे णाममेगे णो परंभरे,

३५. आत्मंभर परंभर की अपेक्षा से पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष आत्मंभर (अपना भरण पोषण करने वाले) होते हैं, किन्तु परंभर (दूसरों का भरण पोषण करने वाले) नहीं होते हैं,

२. परंभरे णाममेगे, णो आयंभरे,
३. एगे आयंभरे वि, परंभरे वि,
४. एगे णो आयंभरे, णो परंभरे। *-ठाणं. ४, उ. ३, सु. ३२७(१)*

३६. इहत्थं परत्थं पडुच्च पुरिसाणं चउभंग परूवणं-

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-
१. इहत्थे णाममेगे, णो परत्थे,
२. परत्थे णाममेगे, णो इहत्थे,
३. एगे इहत्थे वि, परत्थे वि,
४. एगे णो इहत्थे, णो परत्थे। *-ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३२७*

३७. जाइ-कुल-बल-रूव-सुय-सील विवक्खया पुरिसाणं चउभंग परूवणं-

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-
१. जातिसंपण्णे णाममेगे, णो कुलसंपण्णे,
२. कुलसंपण्णे णाममेगे, णो जातिसंपन्ने,
३. एगे जातिसंपण्णे वि, कुलसंपण्णे वि,
४. एगे णो जातिसंपण्णे, णो कुलसंपण्णे।

(२) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-
१. जातिसंपण्णे णाममेगे, णो बलसंपण्णे,
२. बलसंपण्णे णाममेगे, णो जातिसंपण्णे,
३. एगे जातिसंपण्णे वि, बलसंपण्णे वि,
४. एगे णो जातिसंपण्णे, णो बलसंपण्णे।

(३) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-
१. जातिसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे,
२. रूवसंपण्णे णाममेगे, णो जातिसंपण्णे,
३. एगे जातिसंपण्णे वि, रूवसंपण्णे वि,
४. एगे णो जातिसंपण्णे, णो रूवसंपण्णे।

(४) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-
१. जातिसंपण्णे णाममेगे, णो सुयसंपण्णे,
२. सुयसंपण्णे णाममेगे, णो जातिसंपण्णे,
३. एगे जातिसंपण्णे वि, सुयसंपण्णे वि,
४. एगे णो जातिसंपण्णे, णो सुयसंपण्णे।

(५) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-
१. जातिसंपण्णे णाममेगे, णो सीलसंपण्णे,
२. सीलसंपण्णे णाममेगे, णो जातिसंपण्णे,
३. एगे जातिसंपण्णे वि, सीलसंपण्णे वि,
४. एगे णो जातिसंपण्णे, णो सीलसंपण्णे।

२. कुछ पुरुष परंभर होते हैं किन्तु आत्मंभर नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष आत्मंभर भी होते हैं और परंभर भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष आत्मंभर भी नहीं होते और परंभर भी नहीं होते।

३६. इहार्थ-परार्थ की अपेक्षा से पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण-

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. कुछ पुरुष इहलौकिक प्रयोजन वाले होते हैं परन्तु पारलौकिक प्रयोजन वाले नहीं होते,
२. कुछ पुरुष पारलौकिक प्रयोजन वाले होते हैं परन्तु इहलौकिक प्रयोजन वाले नहीं होते,
३. कुछ पुरुष इहलौकिक प्रयोजन वाले भी होते हैं और पारलौकिक प्रयोजन वाले भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न इहलौकिक प्रयोजन वाले होते हैं और न पारलौकिक प्रयोजन वाले होते हैं।

३७. जाति-कुल-बल-रूप-श्रुत और शील की विवक्षा से पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण-

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और कुल-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते हैं और न कुल-सम्पन्न होते हैं।

(२) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, बल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष बल-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और बल-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते हैं और न बल-सम्पन्न होते हैं।

(३) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न होते हैं।

(४) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, श्रुत-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष श्रुत-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और श्रुत-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते हैं और न श्रुत-सम्पन्न होते हैं।

(५) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, शील-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष शील-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और शील-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते हैं और न शील-सम्पन्न होते हैं।

(६) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जातिसंपण्णे णाममेगे, णो चरित्तसंपण्णे,
२. चरित्तसंपण्णे णाममेगे, णो जातिसंपण्णे,
३. एगे जातिसंपण्णे वि, चरित्तसंपण्णे वि,
४. एगे णो जातिसंपण्णे, णो चरित्तसंपण्णे।

(७) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. कुलसंपण्णे णाममेगे, णो बलसंपण्णे,
२. बलसंपण्णे णाममेगे, णो कुलसंपण्णे,
३. एगे कुलसंपण्णे वि, बलसंपण्णे वि,
४. एगे णो कुलसंपण्णे, णो बलसंपण्णे।

(८) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. कुलसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे,
२. रूवसंपण्णे णाममेगे, णो कुलसंपण्णे,
३. एगे कुलसंपण्णे वि, रूवसंपण्णे वि,
४. एगे णो कुलसंपण्णे, णो रूवसंपण्णे।

(९) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. कुलसंपण्णे णाममेगे, णो सुयसंपण्णे,
२. सुयसंपण्णे णाममेगे, णो कुलसंपण्णे,
३. एगे कुलसंपण्णे वि, सुयसंपण्णे वि,
४. एगे णो कुलसंपण्णे, णो सुयसंपण्णे।

(१०) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. कुलसंपण्णे णाममेगे, णो सीलसंपण्णे,
२. सीलसंपण्णे णाममेगे, णो कुलसंपण्णे,
३. एगे कुलसंपण्णे वि, सीलसंपण्णे वि,
४. एगे णो कुलसंपण्णे, णो सीलसंपण्णे।

(११) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. कुलसंपण्णे णाममेगे, णो चरित्तसंपण्णे,
२. चरित्तसंपण्णे णाममेगे, णो कुलसंपण्णे,
३. एगे कुलसंपण्णे वि, चरित्तसंपण्णे वि,
४. एगे णो कुलसंपण्णे, णो चरित्तसंपण्णे।

(१२) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. वलसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे,
२. रूवसंपण्णे णाममेगे, णो वलसंपण्णे,
३. एगे वलसंपण्णे वि, रूवसंपण्णे वि,
४. एगे णो वलसंपण्णे, णो रूवसंपण्णे।

(१३) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. वलसंपण्णे णाममेगे, णो सुयसंपण्णे,
२. सुयसंपण्णे णाममेगे, णो वलसंपण्णे,
३. एगे वलसंपण्णे वि, सुयसंपण्णे वि,
४. एगे णो वलसंपण्णे, णो सुयसंपण्णे।

(६) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, चारित्र-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष चारित्र-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और चारित्र-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते हैं और न चारित्र-सम्पन्न होते हैं।

(७) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, वल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष बल-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते हैं और वल-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते हैं और न बल-सम्पन्न होते हैं।

(८) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न होते हैं।

(९) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, श्रुत-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष श्रुत-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते हैं और श्रुत-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते हैं और न श्रुत-सम्पन्न होते हैं।

(१०) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, शील-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष शील-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते हैं और शील-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते हैं और न शील-सम्पन्न होते हैं।

(११) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, चारित्र-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष चारित्र-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते हैं और चारित्र-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते हैं और न चारित्र-सम्पन्न होते हैं।

(१२) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष वल-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते हैं, वल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष वल-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न वल-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न होते हैं।

(१३) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष वल-सम्पन्न होते हैं, श्रुत-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष श्रुत-सम्पन्न होते हैं, वल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष वल-सम्पन्न भी होते हैं और श्रुत-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न वल-सम्पन्न होते हैं और न श्रुत-सम्पन्न होते हैं।

(१४) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. बलसंपण्णे णाममेगे, णो सीलसंपण्णे,
२. सीलसंपण्णे णाममेगे, णो बलसंपण्णे,
३. एगे बलसंपण्णे वि, सीलसंपण्णे वि,
४. एगे णो बलसंपण्णे, णो सीलसंपण्णे।

(१५) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. बलसंपण्णे णाममेगे, णो चरित्तसंपण्णे,
२. चरित्तसंपण्णे णाममेगे, णो बलसंपण्णे,
३. एगे बलसंपण्णे वि, चरित्तसंपण्णे वि,
४. एगे णो बलसंपण्णे, णो चरित्तसंपण्णे।

(१६) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. रूवसंपण्णे णाममेगे, णो सुयसंपण्णे,
२. सुयसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे,
३. एगे रूवसंपण्णे वि, सुयसंपण्णे वि,
४. एगे णो रूवसंपण्णे, णो सुयसंपण्णे।

(१७) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. रूवसंपण्णे णाममेगे, णो सीलसंपण्णे,
२. सीलसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे,
३. एगे रूवसंपण्णे वि, सीलसंपण्णे वि,
४. एगे णो रूवसंपण्णे, णो सीलसंपण्णे।

(१८) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. रूवसंपण्णे णाममेगे, णो चरित्तसंपण्णे,
२. चरित्तसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे,
३. एगे रूवसंपण्णे वि, चरित्तसंपण्णे वि,
४. एगे णो रूवसंपण्णे, णो चरित्तसंपण्णे।

(१९) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुयसंपण्णे णाममेगे, णो सीलसंपण्णे,
२. सीलसंपण्णे णाममेगे, णो सुयसंपण्णे,
३. एगे सुयसंपण्णे वि, सीलसंपण्णे वि,
४. एगे णो सुयसंपण्णे, णो सीलसंपण्णे।

(२०) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुयसंपण्णे णाममेगे, णो चरित्तसंपण्णे,
२. चरित्तसंपण्णे णाममेगे, णो सुयसंपण्णे,
३. एगे सुयसंपण्णे वि, चरित्तसंपण्णे वि,
४. एगे णो सुयसंपण्णे, णो चरित्तसंपण्णे।

(१४) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष बल-सम्पन्न होते हैं, शील-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष शील-सम्पन्न होते हैं, बल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष बल-सम्पन्न भी होते हैं और शील-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न बल-सम्पन्न होते हैं और न शील-सम्पन्न होते हैं।

(१५) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष बल-सम्पन्न होते हैं, चारित्र-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष चारित्र-सम्पन्न होते हैं, बल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष बल-सम्पन्न भी होते हैं और चारित्र-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न बल-सम्पन्न होते हैं और न चारित्र-सम्पन्न होते हैं।

(१६) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते हैं, श्रुत-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष श्रुत-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न भी होते हैं और श्रुत-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न रूप-सम्पन्न होते हैं और न श्रुत-सम्पन्न होते हैं।

(१७) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते हैं, शील-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष शील-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नहीं होते,
३. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न भी होते हैं और शील-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न रूप सम्पन्न होते हैं और न शील सम्पन्न होते हैं।

(१८) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते हैं और चारित्र-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष चारित्र-सम्पन्न होते हैं रूप-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न भी होते हैं और चारित्र-सम्पन्न भी होते हैं।
४. कुछ पुरुष न रूप-सम्पन्न होते हैं और न चारित्र-सम्पन्न होते हैं।

(१९) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष श्रुत-सम्पन्न होते हैं, शील-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष शील-सम्पन्न होते हैं, श्रुत-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष श्रुत-सम्पन्न भी होते हैं और शील-सम्पन्न भी होते हैं
४. कुछ पुरुष न श्रुत-सम्पन्न होते हैं और न शील-सम्पन्न होते हैं

(२०) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष श्रुत-सम्पन्न होते हैं चारित्र-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष चारित्र-सम्पन्न होते हैं, श्रुत-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष श्रुत-सम्पन्न भी होते हैं और चारित्र-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न श्रुत-सम्पन्न होते हैं और न चारित्र-सम्पन्न होते हैं।

(२१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. सीलसंपण्णे णाममेगे, णो चरित्तसंपण्णे,

२. चरित्तसंपण्णे णाममेगे, णो सीलसंपण्णे,

३. एगे सीलसंपण्णे वि, चरित्तसंपण्णे वि,

४. एगे णो सीलसंपण्णे, णो चरित्तसंपण्णे।

–ठाणं अ. ४, उ. ३, सु. ३१९

(२१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष शील-सम्पन्न होते हैं और चारित्र-सम्पन्न नहीं होते हैं,

२. कुछ पुरुष चारित्र-सम्पन्न होते हैं, शील-सम्पन्न नहीं होते हैं,

३. कुछ पुरुष शील-सम्पन्न भी होते हैं और चात्रि-सम्पन्न भी होते हैं,

४. कुछ पुरुष न शील-सम्पन्न होते हैं और न चारित्र-सम्पन्न होते हैं।

३८. णिक्कट्ठ-अणिक्कट्ठ भेएण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. णिक्कट्ठे णाममेगे णिक्कट्ठे,

२. णिक्कट्ठे णाममेगे अणिक्कट्ठे,

३. अणिक्कट्ठे णाममेगे णिक्कट्ठे,

४. अणिक्कट्ठे णाममेगे अणिक्कट्ठे।

(२) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. णिक्कट्ठे णाममेगे णिक्कट्ठप्पा,

२. णिक्कट्ठे णाममेगे अणिक्कट्ठप्पा,

३. अणिक्कट्ठे णाममेगे णिक्कट्ठप्पा,

४. अणिक्कट्ठे णाममेगे अणिक्कट्ठप्पा।

–ठाणं अ. ४, उ. ४, सु. ३५२

३८. निष्कृष्ट अनिष्कृष्ट के भेद से पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष शरीर से भी निष्कृष्ट (क्षीण) होते हैं और कषाय से भी निष्कृष्ट (क्षीण) होते हैं,

२. कुछ पुरुष शरीर से निष्कृष्ट होते हैं किन्तु कषाय से अनिष्कृष्ट होते हैं,

३. कुछ पुरुष शरीर से अनिष्कृष्ट होते हैं किन्तु कषाय से निष्कृष्ट होते हैं,

४. कुछ पुरुष शरीर से भी अनिष्कृष्ट होते हैं और कषाय से भी अनिष्कृष्ट होते हैं।

(२) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष शरीर से भी निष्कृष्ट होते हैं और उनकी आत्मा भी निष्कृष्ट होती है,

२. कुछ पुरुष शरीर से निष्कृष्ट होते हैं, परन्तु उनकी आत्मा निष्कृष्ट नहीं होती है,

३. कुछ पुरुष शरीर से अनिष्कृष्ट होते हैं, परन्तु उनकी आत्मा निष्कृष्ट होती है,

४. कुछ पुरुष शरीर से भी अनिष्कृष्ट होते हैं और आत्मा से भी अनिष्कृष्ट होते हैं।

३९. दीण-अदीण परिणयाइ विवक्खया पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. दीणे णाममेगे दीणे,

२. दीणे णाममेगे अदीणे,

३. अदीणे णाममेगे दीणे,

४. अदीणे णाममेगे अदीणे।

(२) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. दीणे णाममेगे दीणपरिणए,

२. दीणे णाममेगे अदीणपरिणए,

३. अदीणे णाममेगे दीणपरिणए,

४. अदीणे णाममेगे अदीणपरिणए।

३९. दीन-अदीन परिणति आदि की विवक्षा से पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष बाहर से भी दीन होते हैं और अन्दर से भी दीन होते हैं,

२. कुछ पुरुष बाहर से दीन होते हैं किन्तु अन्दर से अदीन होते हैं,

३. कुछ पुरुष बाहर से अदीन होते हैं किन्तु अंदर से दीन होते हैं,

४. कुछ पुरुष बाहर से भी अदीन होते है और अन्दर से भी अदीन होते हैं।

(२) पुरुष चार प्रकार के कहे गए है, यथा–

१. कुछ पुरुष दीन होते हैं और दीन रूप से परिणत होते है,

२. कुछ पुरुष दीन होते है किन्तु अदीन रूप से परिणत होते हैं,

३. कुछ पुरुष अदीन होते है किन्तु दीन रूप से परिणत होते है।

४. कुछ पुरुष अदीन होते है और अदीन रूप से ही परिणत होते है।

(३) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. दीणे णाममेगे दीणरूवे,
२. दीणे णाममेगे अदीणरूवे,
३. अदीणे णाममेगे दीणरूवे
४. अदीणे णाममेगे अदीणरूवे।
(४) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. दीणे णाममेगे दीणमणे,
२. दीणे णाममेगे अदीणमणे,
३. अदीणे णाममेगे दीणमणे,
४. अदीणे णाममेगे अदीणमणे।
(५) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. दीणे णाममेगे दीणसंकप्पे,
२. दीणे णाममेगे अदीणसंकप्पे,
३. अदीणे णाममेगे दीणसंकप्पे,
४. अदीणे णाममेगे अदीणसंकप्पे।
(६) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. दीणे णाममेगे दीणपण्णे।
२. दीणे णाममेगे अदीणपण्णे,
३. अदीणे णाममेगे दीणपण्णे,
४. अदीणे णाममेगे अदीणपण्णे।
(७) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. दीणे णाममेगे दीणदिट्ठी,
२. दीणे णाममेगे अदीणदिट्ठी,
३. अदीणे णाममेगे दीणदिट्ठी,
४. अदीणे णाममेगे अदीणदिट्ठी।
(८) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. दीणे णाममेगे दीणसीलाचारे,
२. दीणे णाममेगे अदीणसीलाचारे,
३. अदीणे णाममेगे दीणसीलाचारे,
४. अदीणे णाममेगे अदीणसीलाचारे।
(९) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. दीणे णाममेगे दीणववहारे,
२. दीणे णाममेगे अदीणववहारे,
३. अदीणे णाममेगे दीणववहारे,
४. अदीणे णाममेगे अदीणववहारे।
(१०) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. दीणे णाममेगे दीणपरक्कमे,
२. दीणे णाममेगे अदीणपरक्कमे,
३. अदीणे णाममेगे दीणपरक्कमे,
४. अदीणे णाममेगे अदीणपरक्कमे।
(११) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. दीणे णाममेगे दीणवित्ती,

(३) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष दीन होते हैं और दीन रूप वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष दीन होते हैं किन्तु अदीन रूप वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अदीन होते हैं किन्तु दीन रूप वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अदीन होते हैं और अदीन रूप वाले होते हैं।
(४) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष दीन होते हैं और दीन मन वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष दीन होते हैं किन्तु अदीन मन वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अदीन होते हैं किन्तु दीन मन वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अदीन होते हैं और अदीन मन वाले होते हैं।
(५) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष दीन होते हैं और दीन संकल्प वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष दीन होते हैं किन्तु अदीन संकल्प वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अदीन होते हैं किन्तु दीन संकल्प वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अदीन होते हैं और अदीन संकल्प वाले होते हैं।
(६) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष दीन होते हैं और दीन प्रज्ञा वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष दीन होते हैं किन्तु अदीन प्रज्ञा वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अदीन होते हैं किन्तु दीन प्रज्ञा वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अदीन होते हैं और अदीन प्रज्ञा वाले होते हैं।
(७) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष दीन होते हैं और दीन दृष्टि वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष दीन होते हैं किन्तु अदीन दृष्टि वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अदीन होते हैं किन्तु दीन दृष्टि वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अदीन होते हैं और अदीन दृष्टि वाले होते हैं।
(८) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष दीन होते हैं और दीन शीलाचार वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष दीन होते हैं किन्तु अदीन शीलाचार वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अदीन होते हैं किन्तु दीन शीलाचार वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अदीन होते हैं और अदीन शीलाचार वाले होते हैं।
(९) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष दीन होते हैं और दीन व्यवहार वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष दीन होते हैं किन्तु अदीन व्यवहार वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अदीन होते हैं किन्तु दीन व्यवहार वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अदीन होते हैं और अदीन व्यवहार वाले होते हैं,
(१०) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष दीन होते हैं और दीन पराक्रम वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष दीन होते हैं किन्तु अदीन पराक्रम वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अदीन होते हैं किन्तु दीन पराक्रम वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अदीन होते हैं और अदीन पराक्रम वाले होते हैं।
(११) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष दीन होते हैं और दीन वृत्ति (आजीविका) वाले होते हैं,

२. दीणे णाममेगे अदीणवित्ती
३. अदीणे णाममेगे दीणवित्ती,
४. अदीणे णाममेगे अदीणवित्ती।

(१२) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. दीणे णाममेगे दीणजाई,
२. दीणे णाममेगे अदीणजाई,
३. अदीणे णाममेगे दीणजाई,
४. अदीणे णाममेगे अदीणजाई।

(१३) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. दीणे णाममेगे दीणभासी,
२. दीणे णाममेगे अदीणभासी,
३. अदीणे णाममेगे दीणभासी,
४. अदीणे णाममेगे अदीणभासी।

(१४) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. दीणे णाममेगे दीणोभासी,
२. दीणे णाममेगे अदीणोभासी,
३. अदीणे णाममेगे दीणोभासी,
४. अदीणे णाममेगे अदीणोभासी।

(१५) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. दीणे णाममेगे दीणसेवी,
२. दीणे णाममेगे अदीणसेवी,
३. अदीणे णाममेगे दीणसेवी,
४. अदीणे णाममेगे अदीणसेवी।

(१६) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. दीणे णाममेगे दीणपरियाए,
२. दीणे णाममेगे अदीणपरियाए,
३. अदीणे णाममेगे दीणपरियाए,
४. अदीणे णाममेगे अदीणपरियाए।

(१७) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. दीणे णाममेगे दीणपरियाले,
२. दीणे णाममेगे अदीणपरियाले,
३. अदीणे णाममेगे दीणपरियाले,
४. अदीणे णाममेगे अदीणपरियाले।

–ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २७९

४०. परिण्णायं-अपरिण्णायं पडुच्च पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. परिन्नायकम्मे णाममेगे णो परिन्नायसन्ने,

२. कुछ पुरुष दीन होते हैं किन्तु अदीन वृत्ति वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अदीन होते हैं किन्तु दीन वृत्ति वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अदीन होते हैं और अदीन वृत्ति वाले होते हैं।

(१२) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष दीन होते हैं और दीन जाति वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष दीन होते हैं किन्तु अदीन जाति वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अदीन होते हैं किन्तु दीन जाति वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अदीन होते हैं और अदीन जाति वाले होते हैं।

(१३) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष दीन होते हैं और दीन भाषी होते हैं,
२. कुछ पुरुष दीन होते हैं किन्तु अदीन भाषी होते हैं,
३. कुछ पुरुष अदीन होते हैं किन्तु दीन भाषी होते हैं,
४. कुछ पुरुष अदीन होते हैं और अदीन भाषी होते हैं।

(१४) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष दीन होते हैं और दीनावभासी (दीन की तरह दिखने वाले) होते हैं।
२. कुछ पुरुष दीन होते हैं किन्तु अदीनावभासी होते हैं,
३. कुछ पुरुष अदीन होते हैं किन्तु दीनावभासी होते हैं,
४. कुछ पुरुष अदीन होते हैं और अदीनावभासी होते हैं।

(१५) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष दीन होते हैं और दीन सेवी (दीनों की सेवा करने वाले) होते हैं,
२. कुछ पुरुष दीन होते हैं किन्तु अदीनसेवी होते हैं,
३. कुछ पुरुष अदीन होते हैं किन्तु दीनसेवी होते हैं,
४. कुछ पुरुष अदीन होते हैं और अदीनसेवी होते हैं।

(१६) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष दीन होते हैं और दीन पर्याय (गृहस्थ एवं साधु पर्याय) वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष दीन होते हैं किन्तु अदीन पर्याय वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अदीन होते हैं किन्तु दीन पर्याय वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अदीन होते हैं और अदीन पर्याय वाले होते हैं।

(१७) पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष दीन होते हैं और दीन परिवार वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष दीन होते हैं किन्तु अदीन परिवार वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अदीन होते हैं किन्तु दीन परिवार वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अदीन होते हैं और अदीन परिवार वाले होते हैं।

४०. परिज्ञात-अपरिज्ञात की अपेक्षा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष पापकर्मों के ज्ञाता होते हैं, परन्तु पापकर्मों को छोड़ते नहीं हैं,

२. परिन्नायसन्ने णाममेगे, णो परिन्नायकम्मे,

३. एगे परिन्नायकम्मे वि, परिन्नायसण्णे वि,

४. एगे णो परिन्नायकम्मे, णो परिन्नायसण्णे।

(२) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-

१. परिन्नायकम्मे णाममेगे, णो परिन्नायगिहावासे,

२. परिन्नायगिहावासे णाममेगे, णो परिन्नायकम्मे,

३. एगे परिन्नायकम्मे वि, परिन्नायगिहावासे वि,

४. एगे णो परिन्नायकम्मे, नो परिन्नायगिहावासे।

(३) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-

१. परिन्नायसन्ने णाममेगे, णो परिन्नायगिहावासे,

२. परिन्नायगिहावासे णाममेगे, नो परिन्नायसण्णे,

३. एगे परिन्नायसन्ने वि, परिन्नायगिहावासे वि,

४. एगे णो परिन्नायसण्णे, णो परिन्नायगिहावासे।

—ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३२७

२. कुछ पुरुष पापकर्मों को छोड़ते हैं परन्तु पापकर्मों के ज्ञाता नहीं होते हैं,

३. कुछ पुरुष पापकर्मों के ज्ञाता भी होते हैं और पापकर्मों को छोड़ते भी हैं,

४. कुछ पुरुष न पापकर्मों के ज्ञाता होते हैं और न पापकर्मों को छोड़ते हैं।

(२) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-

१. कुछ पुरुष परिज्ञातकर्मा होते हैं, परन्तु परिज्ञातगृहवासी (गृहवास का त्याग करने वाले) नहीं होते,

२. कुछ पुरुष परिज्ञातगृहवासी होते हैं, परन्तु परिज्ञातकर्मा नहीं होते,

३. कुछ पुरुष परिज्ञातकर्मा भी होते हैं और परिज्ञातगृहवासी भी होते हैं।

४. कुछ पुरुष न परिज्ञातकर्मा होते हैं और न परिज्ञातगृहवासी होते हैं।

(३) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-

१. कुछ पुरुष परिज्ञातसंज्ञी (भावना के जानकार) होते हैं, परन्तु परिज्ञातगृहवासी नहीं होते,

२. कुछ पुरुष परिज्ञातगृहवासी होते हैं परन्तु परिज्ञातसंज्ञी नहीं होते,

३. कुछ पुरुष परिज्ञातसंज्ञी भी होते हैं और परिज्ञातगृहवासी भी होते हैं,

४. कुछ पुरुष न परिज्ञातसंज्ञी होते हैं और न परिज्ञातगृहवासी होते हैं।

४१. आवाय-संवासभद्द विवक्खया पुरिसाणं चउभंग परूवणं-

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-

१. आवाय भद्दए णाममेगे, णो संवासभद्दए,

२. संवासभद्दए णाममेगे, णो आवायभद्दए,

३. एगे आवायभद्दए वि, संवासभद्दए वि,

४. एगे णो आवायभद्दए, णो संवासभद्दए।

—ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २५६

४१. आपात-संवास भद्र की विवक्षा से पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण-

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-

१. कुछ पुरुष मिलते समय अच्छे होते हैं, किन्तु सहवास में अच्छे नहीं होते ,

२. कुछ पुरुष सहवास में अच्छे होते हैं, किन्तु मिलने पर अच्छे नहीं होते,

३. कुछ पुरुष मिलने पर भी अच्छे होते हैं और सहवास में भी अच्छे होते हैं,

४. कुछ पुरुष न मिलने पर अच्छे होते हैं और न सहवास में अच्छे होते हैं।

४२. सुग्गयं दुग्गयं पडुच्च पुरिसाणं चउभंग परूवणं-

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-

१. दुग्गए णाममेगे दुग्गए,

२. दुग्गए णाममेगे सुग्गए,

३. सुग्गए णाममेगे दुग्गए,

४. सुग्गए णाममेगे सुग्गए।

४२. सुगत-दुर्गत की अपेक्षा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण-

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-

१. कुछ पुरुष धन से भी दुर्गत-दरिद्र होते हैं और ज्ञान से भी दुर्गत होते हैं,

२. कुछ पुरुष धन से दुर्गत होते हैं परन्तु ज्ञान से सुगत होते हैं,

३. कुछ पुरुष धन से सुगत होते हैं और ज्ञान से दुर्गत होते हैं,

४. कुछ पुरुष धन से भी सुगत होते हैं और ज्ञान से भी सुगत होते हैं।

(२) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. दुग्गए णाममेगे दुव्वए,

२. दुग्गए णाममेगे सुव्वए,

३. सुग्गए णाममेगे दुव्वए,

४. सुग्गए णाममेगे सुव्वए।

(३) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. दुग्गए णाममेगे दुप्पडियाणंदे,

२. दुग्गए णाममेगे सुप्पडियाणंदे,

३. सुग्गए णाममेगे दुप्पडियाणंदे,

४. सुग्गए णाममेगे सुप्पडियाणंदे।

(४) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. दुग्गए णाममेगे दुग्गइगामी,

२. दुग्गए णाममेगे सुग्गइगामी,

३. सुग्गए णाममेगे दुग्गइगामी,

४. सुग्गए णाममेगे सुग्गइगामी।

(५) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. दुग्गए णाममेगे दुग्गइं गए,

२. दुग्गए णाममेगे सुग्गइं गए,

३. सुग्गए णाममेगे दुग्गइं गए,

४. सुग्गए णाममेगे सुग्गइं गए। –ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३२७

(२) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष दुर्गत (धन हीन) होते हैं और व्रत (सदाचार) से भी हीन होते हैं,

२. कुछ पुरुष धनहीन होते हैं किन्तु सदाचारी होते हैं,

३. कुछ पुरुष धनवान् होते हैं किन्तु सदाचारी नहीं होते हैं,

४. कुछ पुरुष धनवान् भी होते हैं और सदाचारी भी होते हैं।

(३) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष दुर्गत (दरिद्री) होते हैं और कृतघ्न भी होते हैं,

२. कुछ पुरुष दुर्गत (दरिद्री) होते हैं किन्तु कृतज्ञ होते हैं,

३. कुछ पुरुष सुगत (धनवान) होते हैं और कृतघ्न भी होते हैं,

४. कुछ पुरुष सुगत (धनवान्) भी होते हैं और कृतज्ञ भी होते हैं।

(४) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष दुर्गत (दरिद्री) होते हैं और दुर्गतिगामी भी होते हैं,

२. कुछ पुरुष दुर्गत (दरिद्री) होते हैं किन्तु सुगतिगामी होते हैं,

३. कुछ पुरुष सुगत (धनवान्) होते हैं किन्तु दुर्गतिगामी होते हैं,

४. कुछ पुरुष सुगत (धनवान्) भी होते हैं और सुगतिगामी भी होते हैं।

(५) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष दुर्गत होकर दुर्गति में गये हुए हैं,

२. कुछ पुरुष दुर्गत होकर सुगति में गये हुए हैं,

३. कुछ पुरुष सुगत होकर दुर्गति में गए हुए हैं,

४. कुछ पुरुष सुगत होकर सुगति में गए हुए हैं।

४३. मुत्तामुत्त दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. मुत्ते णाममेगे मुत्ते,

२. मुत्ते णाममेगे अमुत्ते,

३. अमुत्ते णाममेगे मुत्ते,

४. अमुत्ते णाममेगे अमुत्ते।

(२) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. मुत्ते णाममेगे मुत्तरूवे,

२. मुत्ते णाममेगे अमुत्तरूवे,

३. अमुत्ते णाममेगे मुत्तरूवे,

४. अमुत्ते णाममेगे अमुत्तरूवे। –ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३६६

४३. मुक्त-अमुक्त के दृष्टान्त द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष द्रव्य से भी मुक्त होते हैं और भाव से भी मुक्त होते हैं,

२. कुछ पुरुष द्रव्य से मुक्त होते हैं, परन्तु भाव से अमुक्त होते हैं,

३. कुछ पुरुष द्रव्य से अमुक्त होते हैं, परन्तु भाव से मुक्त होते हैं,

४. कुछ पुरुष द्रव्य से भी अमुक्त होते हैं और भाव से भी अमुक्त होते हैं।

(२) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष मुक्त होते हैं और उनका व्यवहार भी मुक्तवत् होता है,

२. कुछ पुरुष मुक्त होते हैं, परन्तु उनका व्यवहार अमुक्तवत् होता है,

३. कुछ पुरुष अमुक्त होते हैं, परन्तु उनका व्यवहार मुक्तवत् होता है,

४. कुछ पुरुष अमुक्त होते हैं और उनका व्यवहार भी अमुक्तवत् होता है।

४४. किस-दढ विवक्खया पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. किसे णाममेगे किसे,

२. किसे णाममेगे दढे,

४४. कृश और दृढ़ की विवक्षा से पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष शरीर से भी कृश होते हैं और मनोबल से भी कृश होते हैं,

२. कुछ पुरुष शरीर से कृश होते हैं, किन्तु मनोबल से दृढ़ होते हैं,

३. दढे णाममेगे किसे,
४. दढे णाममेगे दढे।

(२) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. किसे णाममेगे किस सरीरे,
२. किसे णाममेगे दढसरीरे,
३. दढे णाममेगे किससरीरे,
४. दढे णाममेगे दढसरीरे।

(३) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. किससरीरस्स णाममेगस्स णाणदंसणे समुप्पज्जइ, णो दढसरीरस्स,
२. दढसरीरस्स णाममेगस्स णाणदंसणे समुप्पज्जइ, णो किससरीरस्स,
३. एगस्स किससरीरस्स वि, णाणदंसणे समुप्पज्जइ, दढसरीरस्स वि,
४. एगस्स णो किससरीरस्स णाणदंसणे समुप्पज्जइ, णो दढसरीरस्स। *–ठाणं अ. ४, उ. २, सु. २८३*

३. कुछ पुरुष शरीर से दृढ़ होते हैं, किन्तु मनोबल से कृश होते हैं,
४. कुछ पुरुष शरीर से भी दृढ़ होते हैं और मनोबल से भी दृढ़ होते हैं।

(२) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष भावना से भी कृश होते हैं और शरीर से भी कृश होते हैं,
२. कुछ पुरुष भावना से कृश होते हैं, किन्तु शरीर से दृढ़ होते हैं,
३. कुछ पुरुष भावना से दृढ़ होते हैं, किन्तु शरीर से कृश होते हैं,
४. कुछ पुरुष भावना से भी दृढ़ होते हैं और शरीर से भी दृढ़ होते हैं।

(३) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कृश शरीर वाले पुरुष के ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होते हैं, किन्तु दृढ़ शरीर वाले के उत्पन्न नहीं होते हैं,
२. दृढ़ शरीर वाले पुरुष के ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होते हैं, किन्तु कृश शरीर वाले के उत्पन्न नहीं होते हैं,
३. कृश शरीर वाले पुरुष के भी ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होते हैं और दृढ़ शरीर वाले के भी उत्पन्न होते हैं,
४. कृश शरीर वाले पुरुष के भी ज्ञान-दर्शन उत्पन्न नहीं होते हैं और दृढ़ शरीर वाले के भी उत्पन्न नहीं होते हैं।

४५. वज्जपासण-उदीरण उवसामण विवक्खया पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अप्पणो णाममेगे वज्जं पासइ, णो परस्स,
२. परस्स णाममेगे वज्जं पासइ, णो अप्पणो,
३. एगे अप्पणो वि वज्जं पासइ, परस्स वि,
४. एगे णो अप्पणो वज्जं पासइ, णो परस्स।

(२) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अप्पणो णाममेगे वज्जं उदीरेइ, णो परस्स,
२. परस्स णाममेगे वज्जं उदीरेइ, णो अप्पणो,
३. एगे अप्पणो वि वज्जं उदीरेइ, परस्स वि,
४. एगे णो अप्पणो वज्जं उदीरेइ, णो परस्स।

(३) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अप्पणो णाममेगे वज्जं उवसामेइ, णो परस्स,
२. परस्स णाममेगे वज्जं उवसामेइ, णो अप्पणो,
३. एगे अप्पणो वि वज्जं उवसामेइ, परस्स वि,

४५. वर्ज्य के दर्शन उपशमन और उदीरण की विवक्षा से पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष अपना वर्ज्य (दोष) देखते हैं, दूसरे का दोष नहीं देखते,
२. कुछ पुरुष दूसरे का दोष देखते हैं, अपना दोष नहीं देखते,
३. कुछ पुरुष अपना भी दोष देखते हैं और दूसरे का भी दोष देखते हैं,
४. कुछ पुरुष न अपना दोष देखते हैं और न दूसरे का दोष देखते हैं।

(२) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष अपने दोष की उदीरणा करते हैं, दूसरे के दोष की उदीरणा नहीं करते,
२. कुछ पुरुष दूसरे के दोष की उदीरणा करते हैं, किन्तु अपने दोष की उदीरणा नहीं करते,
३. कुछ पुरुष अपने दोष की भी उदीरणा करते हैं और दूसरे के दोष की भी उदीरणा करते हैं,
४. कुछ पुरुष न अपने दोष की उदीरणा करते हैं और न दूसरे के दोष की उदीरणा करते हैं।

(३) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष अपने दोष का उपशमन करते हैं, किन्तु दूसरे के दोष का उपशमन नहीं करते हैं,
२. कुछ पुरुष दूसरे के दोष का उपशमन करते हैं, किन्तु अपने दोष का उपशमन नहीं करते हैं,
३. कुछ पुरुष अपने दोष का भी उपशमन करते हैं और दूसरे के दोष का भी उपशमन करते हैं,

४. एगे णो अप्पणो वज्जं उवसामेइ, णो परस्स।

—ठाणं, अ. ४, उ. १, सु. २५६

४६. उदयत्थमिए विवक्खया पुरिसाणं चउव्विहत्त परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. उदियोदिए णाममेगे भरहे राया चाउरंतचक्कवट्टी णं उदियोदिए,
२. उदियत्थमिए णाममेगे वंभदत्ते णं राया चाउरंतचक्कवट्टी उदियत्थमिए,
३. अत्थमियोदिए णाममेगे हरिएसवले णं अणगारे अत्थमियोदिए,
४. अत्थमियत्थमिए णाममेगे काले णं सोयरिए अत्थमियत्थमिए।

—ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३१५

४७. आघवयक विवक्खया पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. आघवइत्ता णाममेगे, णो पविभावइत्ता,
२. पविभावइत्ता णाममेगे, णो आघवइत्ता,
३. एगे आघवइत्ता वि, पविभावइत्ता वि,
४. एगे णो आघवइत्ता, णो पविभावइत्ता,

(२) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. आघवइत्ता णाममेगे, णो उंछजीविसंपण्णे,
२. उंछजीविसंपण्णे णाममेगे, णो आघवइत्ता,
३. एगे आघवइत्ता वि, उंछजीविसंपण्णे वि,
४. एगे णो आघवइत्ता, णो उंछजीविसंपण्णे।

—ठाणं, अ. ४, उ. ४, सु. ३४४

४८. अट्ठं माणकरण य पडुच्च पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. अट्ठकरे णाममेगे, णो माणकरे,
२. माणकरे णाममेगे, णो अट्ठकरे,
३. एगे अट्ठकरे वि, माणकरे वि,
४. एगे णो अट्ठकरे, णो माणकरे।

(२) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. गणट्ठकरे णाममेगे, णो माणकरे,
२. माणकरे णाममेगे, णो गणट्ठकरे,
३. एगे गणट्ठकरे वि, माणकरे वि,
४. एगे णो गणट्ठकरे, णो माणकरे।

---

४. कुछ पुरुष न अपने दोष का उपशमन करते हैं और न दूसरे के दोष का उपशमन करते हैं।

४६. उदय-अस्त की विवक्षा से पुरुषों के चतुर्विधत्व का प्ररूपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष उदितोदित होते हैं जो प्रारम्भ में भी उन्नत और अंत में भी उन्नत होते हैं, जैसे चतुरंत चक्रवर्ती भरत,
२. कुछ पुरुष उदितास्तमित होते हैं जो प्रारम्भ में उन्नत और अंत में अवनत होते हैं, जैसे चतुरंत चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त,
३. कुछ पुरुष अस्तमितोदित होते हैं जो प्रारम्भ में अवनत और अंत में उन्नत होते हैं, जैसे–हरिकेशवल अनगार,
४. कुछ पुरुष अस्तमितास्तमित होते हैं–जो प्रारम्भ में भी अवनत और अन्त में भी अवनत होते हैं, जैसे–काल शौकरिक कसाई।

४७. आख्यायक की विवक्षा से पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष आख्यायक (व्याख्याता) होते हैं, किन्तु प्रविभावक (प्रभावना करने वाले) नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष प्रविभावक होते हैं, किन्तु आख्यायक नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष आख्यायक भी होते हैं और प्रविभावक भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न आख्यायक होते हैं और न प्रविभावक होते हैं।

(२) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष आख्यायक (व्याख्याता) होते हैं किन्तु उंछजीविका (भिक्षा से जीवन निर्वाह करने वाले) नहीं होते,
२. कुछ पुरुष उंछजीविका सम्पन्न होते हैं किन्तु आख्यायक नहीं होते,
३. कुछ पुरुष आख्यायक भी होते हैं और उंछजीविका सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न आख्यायक होते हैं और न उंछजीविका सम्पन्न होते हैं।

४८. अर्थ और मानकरण की अपेक्षा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष अर्थ (कार्य) करते हैं परन्तु अभिमान नहीं करते हैं,
२. कुछ पुरुष अभिमान करते हैं परन्तु कार्य नहीं करते हैं,
३. कुछ पुरुष कार्य भी करते हैं और अभिमान भी करते हैं,
४. कुछ पुरुष न कार्य करते हैं और न अभिमान करते हैं।

(२) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष गण के लिए कार्य करते हैं परन्तु अभिमान नहीं करते हैं,
२. कुछ पुरुष अभिमान करते हैं परन्तु गण के लिए कार्य नहीं करते,
३. कुछ पुरुष गण के लिए कार्य भी करते हैं और अभिमान भी करते हैं,
४. कुछ पुरुष न गण के लिए कार्य करते हैं और न अभिमान करते हैं।

(३) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. गणसंगहकरे णाममेगे, णो माणकरे,
२. माणकरे णाममेगे, णो गणसंगहकरे,
३. एगे गणसंगहकरे वि, माणकरे वि,
४. एगे णो गणसंगहकरे, णो माणकरे।

(४) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. गणसोभकरे णाममेगे, णो माणकरे,
२. माणकरे णाममेगे, णो गणसोभकरे,
३. एगे गणसोभकरे वि, माणकरे वि,
४. एगे णो गणसोभकरे, णो माणकरे।

(५) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. गणसोहिकरे णाममेगे, णो माणकरे,
२. माणकरे णाममेगे, णो गणसोहिकरे,
३. एगे गणसोहिकरे वि, माणकरे वि,
४. एगे णो गणसोहिकरे, णो माणकरे।[1]

–ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३१९

(३) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष गण के लिए संग्रह करते हैं परन्तु अभिमान नहीं करते हैं,
२. कुछ पुरुष अभिमान करते हैं परन्तु गण के लिए संग्रह नहीं करते हैं,
३. कुछ पुरुष गण के लिए संग्रह भी करते हैं और अभिमान भी करते हैं,
४. कुछ पुरुष न गण के लिए संग्रह करते हैं और न अभिमान करते हैं।

(४) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष गण की शोभा करने वाले होते हैं परन्तु अभिमान नहीं करते हैं,
२. कुछ पुरुष अभिमान करते हैं परन्तु गण की शोभा करने वाले नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष गण की शोभा भी करने वाले होते हैं और अभिमान भी करने वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष न गण की शोभा करने वाले होते हैं और न अभिमान करते हैं।

(५) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष गण की शुद्धि करने वाले होते हैं परन्तु अभिमान नहीं करते हैं,
२. कुछ पुरुष अभिमान करते हैं परन्तु गण की शुद्धि करने वाले नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष गण की शुद्धि करने वाले भी होते हैं और अभिमान भी करते हैं,
४. कुछ पुरुष न गण की शुद्धि करने वाले होते हैं और न अभिमान करते हैं।

४९. वेयावच्च करण विवक्खया पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. करेइ णाममेगे वेयावच्चं, णो पडिच्छइ,
२. पडिच्छइ णाममेगे वेयावच्चं, णो करेइ,
३. एगे करेइ वि वेयावच्चं पडिच्छइ वि,
४. एगे णो करेइ वेयावच्चं, णो पडिच्छइ।

–ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३१९

४९. वैयावृत्य करने की विवक्षा से पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष दूसरों की वैयावृत्य करते हैं, परन्तु कराते नहीं,
२. कुछ पुरुष दूसरों की वैयावृत्य नहीं करते हैं, परन्तु कराते हैं,
३. कुछ पुरुष दूसरों की वैयावृत्य करते भी हैं और कराते भी हैं,
४. कुछ पुरुष न दूसरों की वैयावृत्य करते हैं और न कराते हैं।

५०. पुरिसाणं चउव्विहत्त परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. तहे णाममेगे,
२. नो तहे णाममेगे,
३. सोवत्थी णाममेगे,
४. पहाणे णाममेगे।

–ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २८७

५०. पुरुषों के चार प्रकारों का प्ररूपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. तथा–आदेश को मानकर चलने वाला,
२. नो तथा–अपनी स्वतंत्र भावना से चलने वाला,
३. सौवस्तिक–मंगल पाठक (स्तुति प्रशंसा करने वाला)
४. प्रधान–स्वामी (गुरु)

५१. वण दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. वणकरे णाममेगे, णो वणपरिमासी,

५१. व्रण दृष्टांत के द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष व्रण (घाव) करते हैं, किन्तु उसका परिमर्श (उपचार) नहीं करते हैं,

१. वव. उ. १०, सु. ४-८

२. वणपरिमासी णाममेगे, णो वणकरे,
३. एगे वणकरे वि, वणपरिमासी वि,
४. एगे णो वणकरे, णो वणपरिमासी।

(२) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. वणकरे णाममेगे, णो वणसारक्खी,
२. वणसारक्खी णाममेगे, णो वणकरे,
३. एगे वणकरे वि, वणसारक्खी वि,
४. एगे णो वणकरे, णो वणसारक्खी,

(३) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. वणकरे णाममेगे, णो वणसंरोही,
२. वणसंरोही णाममेगे, णो वणकरे,
३. एगे वणकरे वि, वणसंरोही वि,
४. एगे णो वणकरे, णो वणसंरोही।

–ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३४३

२. कुछ पुरुष व्रण का उपचार करते हैं, किन्तु व्रण नहीं करते हैं,
३. कुछ पुरुष व्रण भी करते हैं और उसका उपचार भी करते हैं,
४. कुछ पुरुष न व्रण करते हैं और न उसका उपचार करते हैं।

(२) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष व्रण करते हैं, किन्तु उसका संरक्षण (देखभाल) नहीं करते,
२. कुछ पुरुष व्रण का संरक्षण करते हैं किन्तु व्रण नहीं करते,
३. कुछ पुरुष व्रण भी करते हैं और उसका संरक्षण भी करते हैं,
४. कुछ पुरुष न व्रण करते हैं और न उसका संरक्षण करते हैं।

(३) पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष व्रण करते हैं किन्तु उसका संरोह नहीं करते अर्थात् उसे भरते नहीं,
२. कुछ पुरुष व्रण का संरोह करते हैं किन्तु व्रण नहीं करते,
३. कुछ पुरुष व्रण भी करते हैं और उसका संरोह भी करते हैं,
४. कुछ पुरुष न व्रण करते हैं और न उसका संरोह करते हैं।

५२. वनसंड दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता, तं जहा–
१. वामे णाममेगे वामावत्ते,
२. वामे णाममेगे दाहिणावत्ते,
३. दाहिणे णाममेगे वामावत्ते,
४. दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. वामे णाममेगे वामावत्ते,
२. वामे णाममेगे दाहिणावत्ते,
३. दाहिणे णाममेगे वामावत्ते,
४. दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते। *–ठाणं अ. ४, उ. २, सु. २८९*

५२. वन खंड के दृष्टांत द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) वन खंड (उद्यान) चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ वन खण्ड वाम होते हैं और वामावर्त होते हैं,
२. कुछ वन खण्ड वाम होते हैं और दक्षिणावर्त होते हैं,
३. कुछ वन खण्ड दक्षिण होते हैं और वामावर्त होते हैं,
४. कुछ वन खण्ड दक्षिण होते हैं और दक्षिणावर्त होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष वाम होते हैं और वामावर्त होते हैं,
२. कुछ पुरुष वाम होते हैं और दक्षिणावर्त होते हैं,
३. कुछ पुरुष दक्षिण होते हैं और वामावर्त होते हैं,
४. कुछ पुरुष दक्षिण होते हैं और दक्षिणावर्त होते हैं।

५३. उण्णय-पणय रुक्ख दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा–
१. उण्णए णाममेगे उण्णए,
२. उण्णए णाममेगे पणए,
३. पणए णाममेगे उण्णए,
४. पणए णाममेगे पणए।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. उण्णए णाममेगे उण्णए,
२. उण्णए णाममेगे पणए,
३. पणए णाममेगे उण्णए,

५३. उन्नत-प्रणत वृक्षों के दृष्टान्त द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) वृक्ष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ वृक्ष शरीर से भी उन्नत होते हैं और जाति से भी उन्नत होते हैं, जैसे–शाल,
२. कुछ वृक्ष शरीर से उन्नत होते हैं किन्तु जाति से प्रणत (हीन) होते हैं, जैसे–नीम,
३. कुछ वृक्ष शरीर से प्रणत होते हैं किन्तु जाति से उन्नत होते हैं, जैसे–अशोक,
४. कुछ वृक्ष शरीर से भी प्रणत होते हैं और जाति से भी प्रणत होते हैं, जैसे–[illegible]।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष शरीर से भी उन्नत होते हैं और गुणों से भी उन्नत होते हैं,
२. कुछ पुरुष शरीर से उन्नत होते हैं किन्तु गुणों से प्रणत होते हैं,
३. कुछ पुरुष शरीर से प्रणत होते हैं किन्तु गुणों से उन्नत होते हैं,

४. पणए णाममेगे पणए।

४. कुछ पुरुष शरीर से भी प्रणत होते हैं और गुणों से भी प्रणत होते हैं।

(२) चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा-
१. उण्णए णाममेगे उण्णयपरिणए,
२. उण्णए णाममेगे पणयपरिणए,
३. पणए णाममेगे उण्णयपरिणए,
४. पणए णाममेगे पणयपरिणए।
एवामेव चत्तारि पुरिसजायापण्णत्ता, तं जहा-
१. उण्णए णाममेगे उण्णयपरिणए,
२. उण्णए णाममेगे पणयपरिणए,
३. पणए णाममेगे उण्णयपरिणए,
४. पणए णाममेगे पणयपरिणए।

(२) वृक्ष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. कुछ वृक्ष शरीर से उन्नत होते हैं और उन्नत परिणत होते हैं, (अशुभ रस आदि को छोड़ कर शुभ रस आदि में परिणत होते हैं,)
२. कुछ वृक्ष शरीर से उन्नत होते हैं किन्तु प्रणत परिणत होते हैं,
३. कुछ वृक्ष शरीर से प्रणत होते हैं और उन्नत परिणत होते हैं,
४. कुछ वृक्ष शरीर से प्रणत होते हैं और प्रणत परिणत होते हैं।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. कुछ पुरुष शरीर से उन्नत होते हैं और उन्नत परिणत होते हैं, (अवगुणों को छोड़कर गुणों में परिणत होते हैं)
२. कुछ पुरुष शरीर से उन्नत होते हैं किन्तु प्रणत परिणत होते हैं,
३. कुछ पुरुष शरीर से प्रणत होते हैं किन्तु उन्नत परिणत होते हैं,
४. कुछ पुरुष शरीर से प्रणत होते हैं और प्रणत परिणत होते हैं।

(३) चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा-
१. उण्णए णाममेगे उण्णयरूवे,
२. उण्णए णाममेगे पणयरूवे,
३. पणए णाममेगे उण्णयरूवे,
४. पणए णाममेगे पणयरूवे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-
१. उण्णए णाममेगे उण्णयरूवे,
२. उण्णए णाममेगे पणयरूवे,
३. पणए णाममेगे उण्णयरूवे,
४. पणए णाममेगे पणयरूवे। *-ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २३६*

(३) वृक्ष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. कुछ वृक्ष शरीर से उन्नत होते हैं और उन्नत रूप वाले होते हैं,
२. कुछ वृक्ष शरीर से उन्नत होते हैं किन्तु प्रणत रूप वाले होते हैं,
३. कुछ वृक्ष शरीर से प्रणत होते हैं किन्तु उन्नत रूप वाले होते हैं,
४. कुछ वृक्ष शरीर से प्रणत होते हैं और प्रणत रूप वाले होते हैं।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. कुछ पुरुष शरीर से उन्नत होते हैं और उन्नत रूप वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष शरीर से उन्नत होते हैं, और प्रणत रूप वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष शरीर से प्रणत होते हैं किन्तु उन्नत रूप वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष शरीर से प्रणत होते हैं और प्रणत रूप वाले होते हैं।

५४. उज्जू वंक रुक्ख दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं-

(१) चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा-
१. उज्जू णाममेगे उज्जू,
२. उज्जू णाममेगे वंके,
३. वंके णाममेगे उज्जू,
४. वंके णाममेगे वंके।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-
१. उज्जू णाममेगे उज्जू,
२. उज्जू णाममेगे वंके,
३. वंके णाममेगे उज्जू,
४. वंके णाममेगे वंके।

५४. ऋजु वक्र वृक्षों के दृष्टांत द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण-

(१) वृक्ष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. कुछ वृक्ष पहले भी ऋजु (सरल) होते हैं और बाद में भी ऋजु होते हैं,
२. कुछ वृक्ष पहले ऋजु होते हैं और बाद में वक्र होते हैं,
३. कुछ वृक्ष पहले वक्र होते हैं और बाद में ऋजु होते हैं,
४. कुछ वृक्ष पहले भी वक्र होते हैं और बाद में भी वक्र होते हैं।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. कुछ पुरुष शरीर की चेष्टा से भी ऋजु होते हैं और प्रकृति से भी ऋजु होते हैं, (साधु)
२. कुछ पुरुष शरीर की चेष्टा से ऋजु होते हैं किन्तु प्रकृति से वक्र होते हैं, (धूर्त)
३. कुछ पुरुष शरीर की चेष्टा से वक्र होते हैं किन्तु प्रकृति से ऋजु होते हैं, (शिक्षक)
४. कुछ पुरुष शरीर की चेष्टा से भी वक्र होते हैं और प्रकृति से भी वक्र होते हैं, (दुर्जन)

(२) चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा–

१. उज्जू णाममेगे उज्जूपरिणए,
२. उज्जू णाममेगे वंकपरिणए,
३. वंके णाममेगे उज्जूपरिणए,
४. वंके णाममेगे वंकपरिणए।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. उज्जू णाममेगे उज्जूपरिणए,
२. उज्जू णाममेगे वंकपरिणए,
३. वंके णाममेगे उज्जूपरिणए,
४. वंके णाममेगे वंकपरिणए।

(२) वृक्ष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ वृक्ष मूल में भी सरल और ऊपर से भी सरल परिणति वाले होते हैं,
२. कुछ वृक्ष मूल में सरल किन्तु ऊपर से वक्र परिणति वाले होते हैं,
३. कुछ वृक्ष मूल में वक्र किन्तु ऊपर से सरल परिणति वाले होते हैं,
४. कुछ वृक्ष मूल में भी वक्र और ऊपर से भी वक्र परिणति वाले होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष स्वभाव से भी सरल होते हैं और प्रवृत्ति से भी सरल होते हैं,
२. कुछ पुरुष स्वभाव से सरल होते हैं किन्तु प्रवृत्ति से वक्र होते हैं,
३. कुछ पुरुष स्वभाव से वक्र होते हैं किन्तु प्रवृत्ति से सरल होते हैं,
४. कुछ पुरुष स्वभाव से भी वक्र होते हैं और प्रवृत्ति से भी वक्र होते हैं।

(३) चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा–

१. उज्जू णाममेगे उज्जूरूवे,
२. उज्जू णाममेगे वंकरूवे,
३. वंके णाममेगे उज्जूरूवे,
४. वंके णाममेगे वंकरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. उज्जू णाममेगे उज्जूरूवे,
२. उज्जू णाममेगे वंकरूवे,
३. वंके णाममेगे उज्जूरूवे,
४. वंके णाममेगे वंकरूवे। –ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २३६

(३) वृक्ष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ वृक्ष शरीर से ऋजु होते हैं और दर्शनीय रूप वाले होते हैं,
२. कुछ वृक्ष शरीर से ऋजु होते हैं किन्तु वक्ररूप वाले होते हैं,
३. कुछ वृक्ष शरीर से वक्र होते हैं किन्तु दर्शनीय रूप वाले होते हैं,
४. कुछ वृक्ष शरीर से वक्र होते हैं और वक्र रूप वाले होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु होते हैं और सुन्दर रूप वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु होते हैं किन्तु वक्र रूप वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष शरीर से वक्र होते हैं किन्तु सुन्दर रूप वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष शरीर से वक्र होते हैं और वक्र रूप वाले होते हैं।

५५. पत्तोवाइ रुक्ख दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पत्तोवए, २. पुप्फोवए,
३. फलोवए, ४. छायोवए।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. पत्तोवा रुक्खसमाणे,
२. पुप्फोवा रुक्खसमाणे,
३. फलोवा रुक्खसमाणे,[1]
४. छायोवा रुक्खसमाणे। –ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३१२

५५. पत्तों आदि से युक्त वृक्ष के दृष्टांत द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) वृक्ष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पत्तों से युक्त, २. फूलों से युक्त,
३. फलों से युक्त, ४. छाया से युक्त।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. पत्तों वाले वृक्षों के समान (सूत्र के दाता)
२. फूलों वाले वृक्षों के समान (अर्थ के दाता)
३. फलों वाले वृक्षों के समान (सूत्रार्थ का अनुसंधान [illegible])
४. छाया वाले वृक्षों के समान [illegible]

५६. पत्त दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि पत्ता पण्णत्ता, तं जहा–

१. असिपत्ते,
२. करपत्ते,

[illegible]

५६. पत्र के दृष्टान्त द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) [illegible]

[illegible]

[illegible]

३. खुरपत्ते,
४. कलंबचीरियापत्ते,
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. असिपत्तसमाणे,
२. करपत्तसमाणे,
३. खुरपत्तसमाणे,
४. कलंबचीरियापत्तसमाणे। –ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३५०

३. क्षुरपत्र–छुरे जैसा पत्र,
४. कदम्बचीरिकापत्र-तीखी नोक वाला घास या शस्त्र जैसा पत्र।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. असिपत्र के समान-तुरन्त स्नेहपाश को छेद देने वाला,
२. करपत्र के समान-बार-बार के अभ्यास से स्नेह पाश को छेदने वाला,
३. क्षुरपत्र के समान-थोड़े स्नेह पाश को छेदने वाला,
४. कदम्ब चीरिका पत्र के समान-स्नेह छेदने की इच्छा रखने वाला।

५७. कोरव दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–
(१) चत्तारि कोरवा पण्णत्ता, तं जहा–
१. अंबपलंबकोरवे, २. तालपलंबकोरवे,
३. वल्लिपलंबकोरवे, ४. मेंढविसाणकोरवे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अंबपलंबकोरवसमाणे,
२. तालपलंबकोरवसमाणे,
३. वल्लिपलंबकोरवसमाणे,
४. मेंढविसाणकोरवसमाणे।
–ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २४२

५७. कोरक के दृष्टांत द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–
(१) कोरक (कली मंजरी) चार प्रकार की कही गई है, यथा–
१. आम्र-फल की मंजरी, २. ताड़-फल की मंजरी,
३. वल्लि-फल की मंजरी, ४. मेष-शृंग की मंजरी।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष आम्र-फल की मंजरी के समान होते हैं, जो उचित समय पर उपकार करते हैं,
२. कुछ पुरुष ताड़-फल की मंजरी के समान होते हैं, जो विलंब और कठिनता से उपकार करते हैं,
३. कुछ पुरुष वल्लि-फल की मंजरी के समान होते हैं, जो विना विलंब और विना कष्ट के उपकार करते हैं,
४. कुछ पुरुष मेष-शृंग की मंजरी के समान होते हैं जो उपकार नहीं करते हैं सिर्फ मीठे वचन बोलते हैं।

५८. पुप्फ दिट्ठंतेण पुरिसाणं रूव सील संपन्नस्स चउभंग परूवणं–
(१) चत्तारि पुप्फा पण्णत्ता, तं जहा–
१. रूवसंपण्णे णाममेगे, णो गंधसंपण्णे,
२. गंधसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे,
३. एगे रूवसंपण्णे वि, गंधसंपण्णे वि,
४. एगे णो रूवसंपण्णे, णो गंधसंपण्णे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. रूवसंपण्णे णाममेगे, णो सीलसंपण्णे,
२. सीलसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे,
३. एगे रूवसंपण्णे वि, सीलसंपण्णे वि,
४. एगे णो रूवसंपण्णे, णो सीलसंपण्णे।
–ठाणं अ. ४, उ. ३, सु. ३१९

५८. पुष्प के दृष्टांत द्वारा पुरुषों के रूप शील संपन्नता के चतुर्भंगों का प्ररूपण–
(१) पुष्प चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुष्प रूप सम्पन्न होते हैं, गन्ध सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुष्प गन्ध सम्पन्न होते हैं, रूप सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुष्प रूप सम्पन्न भी होते हैं और गन्ध सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुष्प न रूप सम्पन्न होते हैं और न गन्ध सम्पन्न होते हैं।
इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष रूप सम्पन्न होते हैं, शील (आचार) सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष शील सम्पन्न होते हैं, रूप सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष रूप सम्पन्न भी होते हैं और शील सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न रूप सम्पन्न होते हैं और न शील सम्पन्न होते हैं।

५९. पक्क आम फल दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–
(१) चत्तारि फला पण्णत्ता, तं जहा–
१. आमे णाममेगे आममहुरे,
२. आमे णाममेगे पक्कमहुरे,
३. पक्के णाममेगे आममहुरे,
४. पक्के णाममेगे पक्कमहुरे।

५९. कच्चे पक्के फल के दृष्टांत द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–
(१) फल चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ फल कच्चे होते हैं और कच्चे होने पर भी थोड़े मीठे होते हैं,
२. कुछ फल कच्चे होने पर भी अत्यन्त मीठे होते हैं,
३. कुछ फल पक्के होने पर भी थोड़े मीठे होते हैं,
४. कुछ फल पक्के होने पर अत्यन्त मीठे होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-
१. आमे णाममेगे आममहुरफलसमाणे,
२. आमे णाममेगे पक्कमहुरफलसमाणे,
३. पक्के णाममेगे आममहुरफलसमाणे,
४. पक्के णाममेगे पक्कमहुरफलसमाणे।

–ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २५३

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. कुछ पुरुष वय और श्रुत से अपक्व होते हैं और अपक्व मधुर फल के समान अल्प उपशम वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष वय और श्रुत से अपक्व होते हैं और पक्व मधुर फल के समान प्रवल उपशम वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष वय और श्रुत से पक्व होते हैं और अपक्व मधुर फल के समान अल्प उपशम वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष वय और श्रुत से पक्व होते हैं और पक्व मधुर फल के समान प्रवल उपशम वाले होते हैं।

६०. उत्ताण गंभीरोदए दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं-

(१) चत्तारि उदगा पण्णत्ता, तं जहा-
१. उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोदए,
२. उत्ताणे णाममेगे गंभीरोदए,
३. गंभीरे णाममेगे उत्ताणोदए,
४. गंभीरे णाममेगे गंभीरोदए।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-
१. उत्ताणे णाममेगे उत्ताणहियए,
२. उत्ताणे णाममेगे गंभीरहियए,
३. गंभीरे णाममेगे उत्ताणहियए,
४. गंभीरे णाममेगे गंभीरहियए,

(२) चत्तारि उदगा पण्णत्ता, तं जहा-
१. उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी,
२. उत्ताणे णाममेगे गंभीरोभासी,
३. गंभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी,
४. गंभीरे णाममेगे गंभीरोभासी,

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-
१. उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी,
२. उत्ताणे णाममेगे गंभीरोभासी,
३. गंभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी,
४. गंभीरे णाममेगे गंभीरोभासी। –ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. [illegible]

६०. उत्तान और गंभीर उदक के दृष्टांत द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण-

(१) उदक चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. एक उदग (जल) प्रतल (छिछला) भी होता है और स्वच्छ होने के कारण उसका तल भी दीखता है,
२. एक जल छिछला होता है परन्तु स्वच्छ नहीं होने के कारण उसका तल भाग नहीं दीखता है,
३. एक जल गंभीर होता है परन्तु स्वच्छ होने के कारण उसका तल भाग दीखता है,
४. एक जल गंभीर होता है परन्तु स्वच्छ नहीं होने के कारण उसका तल भाग नहीं दीखता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. कुछ पुरुष आकृति से भी गंभीर नहीं होते हैं और हृदय से भी गंभीर नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष आकृति से गंभीर नहीं होते हैं किन्तु हृदय से गंभीर होते हैं,
३. कुछ पुरुष आकृति से गंभीर होते हैं किन्तु हृदय से गंभीर नहीं होते हैं,
४. कुछ पुरुष आकृति से भी गंभीर होते हैं और हृदय से भी गंभीर होते हैं।

(२) उदक चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. एक उदक (जल) छिछला है और छिछला ही दिखाई देता है,
२. एक उदक छिछला है परन्तु गंभीर दिखाई देता है,
३. एक उदक गंभीर है परन्तु छिछला दिखाई देता है,
४. एक उदक गंभीर है और गंभीर ही दिखाई देता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. कुछ पुरुष तुच्छ होते हैं और तुच्छता का प्रदर्शन करते हैं,
२. कुछ पुरुष तुच्छ होते हैं परन्तु गंभीरता का प्रदर्शन करते हैं,
३. कुछ पुरुष गंभीर होते हैं परन्तु तुच्छता का प्रदर्शन करते हैं,
४. कुछ पुरुष गंभीर होते हैं और गंभीरता का ही प्रदर्शन करते हैं।

६१. उदही दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं-

(१) चत्तारि उदही पण्णत्ता, तं जहा-
१. उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोदही,
२. उत्ताणे णाममेगे गंभीरोदही,

६१. समुद्र के दृष्टांत द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण-

(१) समुद्र चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. समुद्र का कुछ भाग पहले भी प्रतल (छिछला) होता है और बाद में भी छिछला हो जाता है,
२. समुद्र में कुछ भाग पहले छिछला होता है और बाद में गंभीर हो जाता है,

३. गंभीरे णाममेगे उत्ताणोदही,

४. गंभीरे णाममेगे गंभीरोदही।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. उत्ताणे णाममेगे उत्ताणहियए,

२. उत्ताणे णाममेगे गंभीरहियए,

३. गंभीरे णाममेगे उत्ताणहियए,

४. गंभीरे णाममेगे गंभीरहियए।

(२) चत्तारि उदही पण्णत्ता, तं जहा–

१. उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी,

२. उत्ताणे णाममेगे गंभीरोभासी,

३. गंभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी,

४. गंभीरे णाममेगे गंभीरोभासी,

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी,

२. उत्ताणे णाममेगे गंभीरोभासी,

३. गंभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी,

४. गंभीरे णाममेगे गंभीरोभासी। –ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३५८

३. समुद्र के कुछ भाग पहले गंभीर होते हैं और बाद में छिछले हो जाते हैं,

४. समुद्र के कुछ भाग पहले भी गंभीर होते हैं और बाद में भी गंभीर हो जाते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष आचरण से भी तुच्छ होते हैं और हृदय से भी तुच्छ होते हैं,

२. कुछ पुरुष आचरण से तुच्छ होते हैं परन्तु उनका हृदय गंभीर होता है,

३. कुछ पुरुष आचरण से गंभीर होते हैं परन्तु हृदय से तुच्छ होते हैं,

४. कुछ पुरुष आचरण से भी गंभीर होते हैं और उनका हृदय भी गंभीर होता है।

(२) समुद्र चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. समुद्र के कुछ भाग छिछले होते हैं और छिछले ही दिखाई देते हैं,

२. समुद्र के कुछ भाग छिछले होते हैं परन्तु गंभीर दिखाई देते हैं,

३. समुद्र के कुछ भाग गंभीर होते हैं परन्तु छिछले दिखाई देते हैं,

४. समुद्र के कुछ भाग गंभीर होते हैं और गंभीर ही दिखाई देते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष आचरण से हीन होते हैं और वैसे ही दिखाई देते हैं।

२. कुछ पुरुष आचरण से हीन होते हैं परन्तु आचरण का प्रदर्शन करते हैं,

३. कुछ पुरुष आचरण युक्त होते हैं परन्तु आचरण हीन दिखाई देते हैं,

४. कुछ पुरुष आचरण युक्त होते हैं और आचरण युक्त ही दिखाई देते हैं।

६२. संख दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि संवुक्का पण्णत्ता, तं जहा–

१. वामे णाममेगे वामावत्ते,

२. वामे णाममेगे दाहिणावत्ते,

३. दाहिणे णाममेगे वामावत्ते,

४. दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. वामे णाममेगे वामावत्ते,

२. वामे णाममेगे दाहिणावत्ते,

३. दाहिणे णाममेगे वामावत्ते,

४. दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते।

–ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २८९

६२. शंख के दृष्टांत द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) शंख चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ शंख वाम होते हैं (टेढ़े) और वामावर्त (बाईं ओर घुमाव वाले) होते हैं,

२. कुछ शंख वाम होते हैं और दक्षिणावर्त (दाईं ओर घुमाव वाले) होते हैं,

३. कुछ शंख दक्षिण होते हैं (सीधे) और वामावर्त होते हैं,

४. कुछ शंख दक्षिण होते हैं और दक्षिणावर्त होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष वाम और वामावर्त होते हैं, वे स्वभाव से भी वक्र होते हैं और प्रवृत्ति से भी वक्र होते हैं,

२. कुछ पुरुष वाम और दक्षिणावर्त होते हैं, वे स्वभाव से वक्र होते हैं किन्तु कारणवश प्रवृत्ति में सरल होते हैं,

३. कुछ पुरुष दक्षिण और वामावर्त होते हैं, वे स्वभाव से सरल होते हैं किन्तु कारणवश प्रवृत्ति में वक्र होते हैं।

४. कुछ पुरुष दक्षिण और दक्षिणावर्त होते हैं, वे स्वभाव से भी सरल होते हैं और प्रवृत्ति से भी सरल होते हैं।

६३. महु-विस कुंभ दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा–

१. महुकुंभे णाममेगे महुपिहाणे,

२. महुकुंभे णाममेगे विसपिहाणे,

३. विसकुंभे णाममेगे महुपिहाणे,

४. विसकुंभे णाममेगे विसपिहाणे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. महुकुंभे णाममेगे महुपिहाणे,

२. महुकुंभे णाममेगे विसपिहाणे,

३. विसकुंभे णाममेगे महुपिहाणे,

४. विसकुंभे णाममेगे विसपिहाणे।

१. हिययमपावमकलुसं, जीहाऽवि य महुरभासिणी णिच्चं।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जइ, से महुकुंभे महुपिहाणे ॥

२. हिययमपावमकलुसं जीहा य कडुयभासिणी णिच्चं।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जइ, से महुकुंभे विसपिहाणे ॥

३. जं हिययं कलुसमयं, जीहा य महुरभासिणी णिच्चं।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जइ, से विसकुंभे महुपिहाणे ॥

४. जं हिययं कलुसमयं, जीहा वि य कडुयभासिणी णिच्चं।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जइ, से विसकुंभे विसपिहाणे ॥

–ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३६०

६३. मधु-विष कुंभ के दृष्टांत द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) कुंभ चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ कुंभ मधु से भरे हुए होते हैं और उनके ढक्कन भी मधुमय होते हैं,

२. कुछ कुंभ मधु से भरे हुए होते हैं, परन्तु उनके ढक्कन विषमय होते हैं,

३. कुछ कुंभ विष से भरे हुए होते हैं परन्तु उनके ढक्कन मधुमय होते हैं,

४. कुछ कुंभ विष से भरे हुए होते हैं और उनके ढक्कन भी विषमय होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुषों का हृदय भी मधु जैसा मधुरता से भरा हुआ होता है और उनकी वाणी भी मधु जैसी मधुरता भरी हुई होती है,

२. कुछ पुरुषों का हृदय मधु से भरा हुआ होता है, परन्तु उनकी वाणी विष से भरी हुई होती है,

३. कुछ पुरुषों का हृदय विष से भरा हुआ होता है, परन्तु उनकी वाणी मधु जैसी मधुरता भरी हुई होती है,

४. कुछ पुरुषों का हृदय विष से भरा हुआ होता है और उनकी वाणी भी विष से भरी हुई होती है।

१. जिस पुरुष का हृदय पाप और कलुषता रहित होता है तथा जिसकी जिह्वा भी मधुर भाषिणी होती है ऐसा गुण जिसमें विद्यमान हो वह पुरुष मधु से भरे हुए और मधु के ढक्कन वाले कुम्भ के समान होता है।

२. जिस पुरुष का हृदय पाप और कलुषता रहित होता है, परन्तु जिसकी जिह्वा कटुभाषिणी होती है वह पुरुष मधु से भरे हुए और विष के ढक्कन वाले कुम्भ के समान होता है।

३. जिस पुरुष का हृदय कलुषमय होता है परन्तु जिह्वा मधुर भाषिणी होती है वह पुरुष विष से भरे हुए और मधु के ढक्कन वाले कुम्भ के समान होता है।

४. जिस पुरुष का हृदय कलुषमय होता है और जिह्वा भी कटुभाषिणी होती है वह पुरुष विष से भरे हुए और विष के ढक्कन वाले कुम्भ के समान होता है।

६४. पुण्ण तुच्छ कुंभ दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पुण्णे णाममेगे पुण्णे,

२. पुण्णे णाममेगे तुच्छे,

३. तुच्छे णाममेगे पुण्णे,

४. तुच्छे णाममेगे तुच्छे।

[illegible]

१. [illegible]

६४. पूर्ण-तुच्छ कुंभ के दृष्टान्त द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) कुंभ चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. [illegible]

२. [illegible]

३. [illegible]

४. [illegible]

[illegible]

१. [illegible]

२. पुण्णे णाममेगे तुच्छे,

३. तुच्छे णाममेगे पुण्णे,

४. तुच्छे णाममेगे तुच्छे।

(२) चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पुण्णे णाममेगे पुण्णोभासी,
२. पुण्णे णाममेगे तुच्छोभासी,
३. तुच्छे णाममेगे पुण्णोभासी,
४. तुच्छे णाममेगे तुच्छोभासी।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. पुण्णे णाममेगे पुण्णोभासी,
२. पुण्णे णाममेगे तुच्छोभासी,
३. तुच्छे णाममेगे पुण्णोभासी,
४. तुच्छे णाममेगे तुच्छोभासी।

(३) चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पुण्णे णाममेगे पुण्णरूवे,
२. पुण्णे णाममेगे तुच्छरूवे,
३. तुच्छे णाममेगे पुण्णरूवे,
४. तुच्छे णाममेगे तुच्छरूवे

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. पुण्णे णाममेगे पुण्णरूवे,
२. पुण्णे णाममेगे तुच्छरूवे,
३. तुच्छे णाममेगे पुण्णरूवे,
४. तुच्छे णाममेगे तुच्छरूवे

(४) चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पुण्णे वि एगे पियट्ठे,
२. पुण्णे वि एगे अवदले,
३. तुच्छे वि एगे पियट्ठे,
४. तुच्छे वि एगे अवदले।

२. कुछ पुरुष जाति आदि से पूर्ण होते हैं, परन्तु गुणों से अपूर्ण होते हैं,
३. कुछ पुरुष जाति आदि से अपूर्ण होते हैं, परन्तु गुणों से पूर्ण होते हैं,
४. कुछ पुरुष जाति आदि से भी अपूर्ण होते हैं और गुणों से भी अपूर्ण होते हैं।

(२) कुंभ चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ कुंभ आकार से पूर्ण होते हैं और पूर्ण ही दिखाई देते हैं,
२. कुछ कुंभ आकार से पूर्ण होते हुए भी अपूर्ण दिखाई देते हैं,
३. कुछ कुंभ आकार से अपूर्ण होते हुए भी पूर्ण दिखाई देते हैं,
४. कुछ कुंभ आकार से अपूर्ण होते हैं और अपूर्ण ही दिखाई देते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष शरीर से पूर्ण होते हैं और गुणों से भी पूर्ण ही दिखाई देते हैं,
२. कुछ पुरुष शरीर से पूर्ण होते हैं किन्तु गुणों से अपूर्ण दिखाई देते हैं,
३. कुछ पुरुष शरीर से अपूर्ण होते हुए गुणों से पूर्ण दिखाई देते हैं,
४. कुछ पुरुष शरीर से भी अपूर्ण होते हैं और गुणों से भी अपूर्ण दिखाई देते हैं।

(३) कुंभ चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ कुंभ जल आदि से पूर्ण हैं और रूप से भी सुन्दर हैं,
२. कुछ कुंभ जल आदि से पूर्ण हैं, परन्तु रूप से सुन्दर नहीं हैं,
३. कुछ कुंभ जल आदि से अपूर्ण हैं, परन्तु रूप से सुन्दर हैं,
४. कुछ कुंभ जल आदि से भी अपूर्ण हैं और रूप से भी सुन्दर नहीं हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष श्रुत आदि से पूर्ण होते हैं और रूप से भी पूर्ण होते हैं,
२. कुछ पुरुष श्रुत आदि से पूर्ण होते हैं, परन्तु रूप से अपूर्ण होते हैं,
३. कुछ पुरुष श्रुत आदि से अपूर्ण होते हैं, परन्तु रूप से पूर्ण होते हैं,
४. कुछ पुरुष श्रुत आदि से भी अपूर्ण होते हैं और रूप से भी अपूर्ण होते हैं।

(४) कुंभ चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ कुंभ जल आदि से पूर्ण होते हैं और दर्शनीय भी होते हैं,
२. कुछ कुंभ जल आदि से पूर्ण होते हैं, परन्तु अपदल असार दिखाई देते हैं,
३. कुछ कुंभ जल आदि से अपूर्ण होते हैं, परन्तु देखने में प्रिय होते हैं,
४. कुछ कुंभ जल आदि से भी अपूर्ण होते हैं और देखने में भी असार दिखाई देते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. पुण्णे वि एगे पियट्ठे,

२. पुण्णे वि एगे अवदले,

३. तुच्छे वि एगे पियट्ठे,

४. तुच्छे वि एगे अवदले।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष श्रुत आदि से भी पूर्ण होते हैं और परोपकारी होने से प्रिय भी होते हैं,

२. कुछ पुरुष श्रुत आदि से पूर्ण होते हैं, परन्तु परोपकारी न होने से अप्रिय होते हैं,

३. कुछ पुरुष श्रुत आदि से अपूर्ण होते हैं, परन्तु परोपकारी होने से प्रिय होते हैं,

४. कुछ पुरुष श्रुत आदि से भी अपूर्ण होते हैं और परोपकारी न होने से अप्रिय भी होते हैं।

(५) चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पुण्णे वि एगे विस्संदइ,

२. पुण्णे वि एगे णो विस्संदइ,

३. तुच्छे वि एगे विस्संदइ,

४. तुच्छे वि एगे णो विस्संदइ।

(५) कुंभ चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ कुंभ जल से पूर्ण होते हैं और झरते भी हैं,

२. कुछ कुंभ जल से पूर्ण होते हैं और झरते भी नहीं हैं,

३. कुछ कुंभ जल से भी अपूर्ण होते हैं और झरते भी हैं,

४. कुछ कुंभ जल से भी अपूर्ण होते हैं और झरते भी नहीं हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. पुण्णे वि एगे विस्संदइ,

२. पुण्णे वि एगे णो विस्संदइ,

३. तुच्छे वि एगे विस्संदइ,

४. तुच्छे वि एगे णो विस्संदइ। –ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३६०

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष श्रुत आदि से भी पूर्ण होते हैं और विष्यन्दी (ज्ञान दान आदि) भी करते हैं,

२. कुछ पुरुष श्रुत आदि से पूर्ण होते हैं परन्तु ज्ञान दान आदि नहीं करते,

३. कुछ पुरुष श्रुत आदि से अपूर्ण होते हैं परन्तु ज्ञान दान आदि करते हैं,

४. कुछ पुरुष श्रुत आदि से भी अपूर्ण होते हैं और ज्ञान दान आदि भी नहीं करते।

६५. मग्ग दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि मग्गा पण्णत्ता, तं जहा–

१. उज्जू णाममेगे उज्जू,

२. उज्जू णाममेगे वंके,

३. वंके णाममेगे उज्जू,

४. वंके णाममेगे वंके।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. उज्जू णाममेगे उज्जू,

२. उज्जू णाममेगे वंके,

३. वंके णाममेगे उज्जू,

४. वंके णाममेगे वंके।

(२) चत्तारि मग्गा पण्णत्ता, तं जहा–

१. खेमे णाममेगे खेमे,

२. खेमे णाममेगे अखेमे,

३. अखेमे णाममेगे खेमे,

४. अखेमे णाममेगे अखेमे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. खेमे णाममेगे खेमे [illegible]

६५. मार्ग के दृष्टांत द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) मार्ग चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ मार्ग ऋजु (सरल) लगते हैं और ऋजु ही होते हैं,

२. कुछ मार्ग ऋजु लगते हैं, किन्तु वास्तव में वक्र होते हैं,

३. कुछ मार्ग वक्र (टेढे) लगते हैं, किन्तु वास्तव में ऋजु होते हैं,

४. कुछ मार्ग वक्र लगते हैं और वक्र ही होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष ऋजु लगते हैं और ऋजु ही होते हैं,

२. कुछ पुरुष ऋजु लगते हैं, किन्तु वास्तव में वक्र होते हैं,

३. कुछ पुरुष वक्र लगते हैं, किन्तु वास्तव में ऋजु होते हैं,

४. कुछ पुरुष वक्र लगते हैं और वक्र ही होते हैं।

(२) मार्ग चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ मार्ग प्रारम्भ में भी क्षेम [illegible] होते हैं और अन्त में भी क्षेम होते हैं,

२. कुछ मार्ग प्रारम्भ में क्षेम होते हैं किन्तु अन्त में अक्षेम होते हैं,

३. कुछ मार्ग प्रारम्भ में अक्षेम होते हैं और अन्त में क्षेम होते हैं,

४. [illegible]

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. [illegible]

२. खेमे णाममेगे अखेमे,
३. अखेमे णाममेगे खेमे,
४. अखेमे णाममेगे अखेमे।

(३) चत्तारि मग्गा पण्णत्ता, तं जहा–
१. खेमे णाममेगे खेमरूवे,
२. खेमे णाममेगे अखेमरूवे,
३. अखेमे णाममेगे खेमरूवे,
४. अखेमे णाममेगे अखेमरूवे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. खेमे णाममेगे खेमरूवे,
२. खेमे णाममेगे अखेमरूवे,
३. अखेमे णाममेगे खेमरूवे,
४. अखेमे णाममेगे अखेमरूवे। –*ठाणं. अ. ४, सु. २, सु. २८९*

६६. जाण दिट्ठंतेण पुरिसाणं जुत्ताजुत्ताणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि जाणा पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

(२) चत्तारि जाणा पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणए,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणए,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणए,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणए।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणए,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणए,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणए,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणए।

(३) चत्तारि जाणा पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्तेरूवे,

२. कुछ पुरुष प्रारंभ में क्षेम होते हैं, किन्तु अन्त में अक्षेम होते हैं,
३. कुछ पुरुष प्रारंभ में अक्षेम होते हैं, किन्तु अन्त में क्षेम होते हैं,
४. कुछ पुरुष न प्रारंभ में क्षेम होते हैं और न अन्त में क्षेम होते हैं।

(३) मार्ग चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ मार्ग क्षेम होते हैं और क्षेम रूप वाले होते हैं,
२. कुछ मार्ग क्षेम होते हैं और अक्षेम रूप वाले होते हैं,
३. कुछ मार्ग अक्षेम होते हैं और क्षेम रूप वाले होते हैं,
४. कुछ मार्ग अक्षेम होते हैं और अक्षेम रूप वाले होते हैं।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष क्षेम होते हैं और क्षेम रूप वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष क्षेम होते हैं और अक्षेम रूप वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अक्षेम होते हैं और क्षेम रूप वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अक्षेम होते हैं और अक्षेम रूप वाले होते हैं।

६६. यान के दृष्टांत द्वारा पुरुषों के युक्तायुक्त चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) यान चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ यान युक्त होकर और युक्त रूप वाले होते हैं, (यंत्र से जुड़े और वस्त्राभरणों से युक्त होते हैं,)
२. कुछ यान युक्त होकर अयुक्त रूप वाले होते हैं,
३. कुछ यान अयुक्त प्रकार होकर युक्त रूप वाले होते हैं,
४. कुछ यान अयुक्त होकर अयुक्त रूप वाले ही होते हैं।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष युक्त होकर और युक्त रूप वाले होते हैं, (गुणसंपन्न और रूप संपन्न होते हैं)
२. कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त रूप वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त रूप वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त रूप वाले ही होते हैं।

(२) यान चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ यान युक्त होकर युक्तपरिणत होते हैं (सामग्री से युक्त हैं और यंत्रादि से जुड़े हुए हैं)
२. कुछ यान युक्त होकर अयुक्त परिणत होते हैं,
३. कुछ यान अयुक्त होकर युक्त परिणत होते हैं,
४. कुछ यान अयुक्त होकर अयुक्त परिणत होते हैं।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष युक्त होकर और युक्तपरिणत होते हैं (ध्यान आदि से समृद्ध होकर उन भावों में परिणत होते हैं),
२. कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त परिणत होते हैं,
३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त परिणत होते हैं,
४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त परिणत होते हैं।

(३) यान चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ यान युक्त होकर युक्त रूप वाले होते हैं (यंत्र आदि से जुड़े हुए होकर वस्त्राभरणों से सुशोभित होते हैं)

२. जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।

(४) चत्तारि जाणा पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे। *–ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३१९*

२. कुछ यान युक्त होकर अयुक्त रूप वाले होते हैं,
३. कुछ यान अयुक्त होकर युक्त रूप वाले होते हैं,
४. कुछ यान अयुक्त होकर अयुक्त रूप वाले होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त रूप वाले होते हैं (गुणों से समृद्ध होकर वस्त्राभरणों से भी सुशोभित होते हैं),
२. कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त रूप वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त रूप वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त रूप वाले होते हैं।

(४) यान चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ यान युक्त होकर युक्त शोभा वाले होते हैं, (बैल आदि से जुड़े हुए तथा दीखने में सुन्दर होते हैं),
२. कुछ यान युक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं,
३. कुछ यान अयुक्त होकर युक्त शोभा वाले होते हैं,
४. कुछ यान अयुक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त शोभा वाले होते हैं, (धन आदि से समृद्ध होकर शोभा सम्पन्न होते हैं),
२. कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त शोभा वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं।

६७. जुग्गादिदिट्ठंतेणं जुत्ताजुत्ताणं पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि जुग्गा पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

(२) [illegible]
[illegible]

६७. युग्य के दृष्टान्त द्वारा युक्तायुक्त पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) युग्य (वाहन विशेष) चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ युग्य युक्त होकर युक्त होते हैं, (सब उपकरणों से युक्त होकर वेग में भी युक्त होते हैं।)
२. कुछ युग्य युक्त होकर अयुक्त होते हैं,
३. कुछ युग्य अयुक्त होकर युक्त होते हैं,
४. कुछ युग्य अयुक्त होकर अयुक्त होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त होते हैं (सम्पत्ति से युक्त [illegible] से भी युक्त होते हैं)
२. कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त होते हैं,
३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त होते हैं,
४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त होते हैं।

(२) [illegible]
[illegible]

३. अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणए,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणए।

(३) चत्तारि जुग्गा पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे,

(४) चत्तारि जुग्गा पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे। *–ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३१९*

३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त परिणत होते हैं,
४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त परिणत होते हैं।

(३) युग्य चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ युग्य युक्त होकर युक्त रूप वाले होते हैं,
२. कुछ युग्य युक्त होकर अयुक्त रूप वाले होते हैं,
३. कुछ युग्य अयुक्त होकर युक्त रूप वाले होते हैं,
४. कुछ युग्य अयुक्त होकर अयुक्त रूप वाले होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त रूप वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त रूप वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त रूप वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त रूप वाले होते हैं।

(४) युग्य चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ युग्य युक्त होकर युक्त शोभा वाले होते हैं,
२. कुछ युग्य युक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं,
३. कुछ युग्य अयुक्त होकर युक्त शोभा वाले होते हैं,
४. कुछ युग्य अयुक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त शोभा वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त शोभा वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं।

६८. जुग्गारिया दिट्ठंतेण पहोप्पह जाइं पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि जुग्गारिया पण्णत्ता, तं जहा–
१. पंथजाई णाममेगे, नो उप्पहजाई,
२. उप्पहजाई णाममेगे, नो पंथजाई,
३. एगे पंथजाई वि, उप्पहजाई वि,
४. एगे णो पंथजाई, णो उप्पहजाई।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. पंथजाई णाममेगे, णो उप्पहजाई,
२. उप्पहजाई णाममेगे, णो पंथजाई,
३. एगे पंथजाई वि, उप्पहजाई वि,
४. एगे णो पंथजाई, णो उप्पहजाई।

–ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३१९

६८. युग्य गमन दृष्टान्त द्वारा पथोत्पथगामी पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) युग्य (घोड़े आदि का जोड़ा) का ऋत (गमन) चार प्रकार का कहा गया हैं, यथा–
१. कुछ युग्य मार्गगामी होते हैं, उन्मार्गगामी नहीं होते हैं,
२. कुछ युग्य उन्मार्गगामी होते हैं, मार्गगामी नहीं होते हैं,
३. कुछ युग्य मार्गगामी भी होते हैं और उन्मार्गगामी भी होते हैं,
४. कुछ युग्य मार्गगामी भी नहीं होते हैं और उन्मार्गगामी भी नहीं होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष मार्गगामी होते हैं, उन्मार्गगामी नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष उन्मार्गगामी होते हैं, मार्गगामी नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष मार्गगामी भी होते हैं और उन्मार्गगामी भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न मार्गगामी होते हैं और न उन्मार्गगामी होते हैं।

६९. सारही दिट्ठंतेण जोयग-विजोयगस्स पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि सारही पण्णत्ता, तं जहा–
१. जोयावइत्ता णाममेगे, णो विजोयावइत्ता,

६९. सारथि के दृष्टान्त द्वारा योजक-वियोजक पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) सारथि चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ सारथि योजक होते हैं, किन्तु वियोजक नहीं होते (बैल आदि को गाड़ी से जोड़ने वाले होते हैं, मुक्त करने वाले नहीं होते हैं),

२. विजोयावइत्ता णाममेगे, णो जोयावइत्ता,
३. एगे जोयावइत्ता वि, विजोयावइत्ता वि,
४. एगे णो जोयावइत्ता, णो विजोयावइत्ता।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जोयावइत्ता णाममेगे, णो विजोयावइत्ता,
२. विजोयावइत्ता णाममेगे, णो जोयावइत्ता,
३. एगे जोयावइत्ता वि, विजोयावइत्ता वि,
४. एगे णो जोयावइत्ता, णो विजोयावइत्ता।

–ठाणं. अ. ४, सु. ३, सु. ३१९

२. कुछ सारथि वियोजक होते हैं, किन्तु योजक नहीं होते हैं,
३. कुछ सारथि योजक भी होते हैं और वियोजक भी होते हैं,
४. कुछ सारथि योजक भी नहीं होते हैं और वियोजक भी नहीं होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष योजक होते हैं, किन्तु वियोजक नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष वियोजक होते हैं, किन्तु योजक नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष योजक भी होते हैं और वियोजक भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष योजक भी नहीं होते हैं और वियोजक भी नहीं होते हैं।

७०. जाइआइ दिट्ठंतेण जुत्ताजुत्त उसभ पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि उसभा पण्णत्ता, तं जहा–
१. जातिसंपण्णे, २. कुलसंपण्णे,
३. बलसंपण्णे, ४. रूवसंपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जातिसंपण्णे, २. कुलसंपण्णे,
३. बल संपण्णे, ४. रूव संपण्णे।

(२) चत्तारि उसभा पण्णत्ता, तं जहा–
१. जाइसंपन्ने णाममेगे, नो कुलसंपन्ने,
२. कुलसंपन्ने णाममेगे, नो जाइसंपन्ने,
३. एगे जाइसंपन्ने वि, कुलसंपन्ने वि,
४. एगे नो जाइसंपन्ने, नो कुलसंपन्ने।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जाइसंपन्ने णाममेगे, नो कुलसंपन्ने,
२. कुलसंपन्ने णाममेगे, नो जाइसंपन्ने,
३. एगे जाइसंपन्ने वि, कुलसंपन्ने वि,
४. एगे नो जाइसंपन्ने, नो कुलसंन्ने।

(३) चत्तारि उसभा पण्णत्ता, तं जहा–
१. जाइसंपन्ने णाममेगे, नो बलसंपन्ने,
२. बलसंपन्ने णाममेगे, नो जाइसंपन्ने
३. एगे जाइसंपन्ने वि, बलसंपन्ने वि,
४. एगे नो जाइसंपन्ने, नो बलसंपन्ने।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जाइसंपन्ने णाममेगे, नो बलसंपन्ने,
२. वलसंपन्ने णाममेगे, नो जाइसंपन्ने,
३. एगे जाइसंपन्ने वि, वलसंपन्ने वि,
४. एगे नो जाइसंपन्ने, नो वलसंपन्ने।

७०. जाति आदि से वृषभ के दृष्टांत द्वारा युक्त अयुक्त पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) वृषभ चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. जाति-सम्पन्न, २. कुल-सम्पन्न,
३. बल-सम्पन्न, ४. रूप-सम्पन्न।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. जाति-सम्पन्न, २. कुल-सम्पन्न,
३. बल-सम्पन्न, ४. रूप-सम्पन्न।

(२) वृषभ चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ वृषभ जाति-सम्पन्न होते हैं, किन्तु कुल-सम्पन्न नहीं होते,
२. कुछ वृषभ कुल-सम्पन्न होते हैं, किन्तु जाति-सम्पन्न नहीं होते,
३. कुछ वृषभ जाति-सम्पन्न भी होते हैं और कुल-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ वृषभ न जाति-सम्पन्न ही होते हैं और न कुल-सम्पन्न ही होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, किन्तु कुल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, किन्तु जाति-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और कुल-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न ही होते हैं और न कुल-सम्पन्न ही होते हैं।

(३) वृषभ चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ वृषभ जाति-सम्पन्न होते हैं, किन्तु वल-सम्पन्न नहीं होते,
२. कुछ वृषभ वल-सम्पन्न होते हैं, किन्तु जाति-सम्पन्न नहीं होते,
३. कुछ वृषभ जाति-सम्पन्न भी होते हैं और वल-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ वृषभ न जाति-सम्पन्न ही होते हैं और न वल-सम्पन्न ही होते हैं।

इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुप जाति-सम्पन्न होते हैं, किन्तु वल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुप वल-सम्पन्न होते हैं, किन्तु जाति-सम्पन्न नहीं होते,
३. कुछ पुरुप जाति-सम्पन्न भी होते हैं और वल-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुप न जाति-सम्पन्न ही होते हैं और न वल-सम्पन्न ही होते हैं।

७२. जाइ-कुल-बल-रूव-जय संपण्ण पकंथग दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा–
१. जातिसंपण्णे णाममेगे, णो कुलसंपण्णे,
२. कुलसंपण्णे णाममेगे, णो जातिसंपण्णे,
३. एगे जातिसंपण्णे वि, कुलसंपण्णे वि,
४. एगे णो जातिसंपण्णे, णो कुलसंपण्णे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जातिसंपण्णे णाममेगे, णो कुलसंपण्णे,
२. कुलसंपण्णे णाममेगे, णो जातिसंपण्णे,
३. एगे जातिसंपण्णे वि, कुलसंपण्णे वि,
४. एगे णो जातिसंपण्णे, णो कुलसंपण्णे।

(२) चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा–
१. जातिसंपण्णे णाममेगे, णो बलसंपण्णे,
२. बलसंपण्णे णाममेगे, णो जातिसंपण्णे,
३. एगे जातिसंपण्णे वि, बलसंपण्णे वि,
४. एगे णो जाति संपण्णे, णो बलसंपण्णे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जातिसंपण्णे णाममेगे, णो बलसंपण्णे,
२. बलसंपण्णे णाममेगे, णो जातिसंपण्णे,
३. एगे जातिसंपण्णे वि, बलसंपण्णे वि,
४. एगे णो जातिसंपण्णे, णो बलसंपण्णे।

(३) चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा–
१. जातिसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे,
२. रूवसंपण्णे णाममेगे, णो जातिसंपण्णे,
३. एगे जातिसंपण्णे वि, रूवसंपण्णे वि,
४. एगे णो जातिसंपण्णे, णो रूवसंपण्णे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जातिसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे,
२. रूवसंपण्णे णाममेगे, णो जातिसंपण्णे,
३. एगे जातिसंपण्णे वि, रूवसंपण्णे वि,
४. एगे णो जातिसंपण्णे, णो रूवसंपण्णे।

(४) चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा–
१. जातिसंपण्णे णाममेगे, णो जयसंपण्णे,
२. जयसंपण्णे णाममेगे, णो जातिसंपण्णे,
३. एगे जातिसंपण्णे वि, जयसंपण्णे वि,
४. एगे णो जातिसंपण्णे, णो जयसंपण्णे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जातिसंपण्णे णाममेगे, णो जयसंपण्णे,
२. जयसंपण्णे णाममेगे, णो जातिसंपण्णे,
३. एगे जातिसंपण्णे वि, जयसंपण्णे वि,
४. एगे णो जातिसंपण्णे, णो जयसंपण्णे।

७२. जाति-कुल-बल-रूप और जय संपन्न अश्व के दृष्टान्त द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) घोड़े चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ घोड़े जाति-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ घोड़े कुल-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ घोड़े जाति-सम्पन्न भी होते हैं और कुल-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ घोड़े न जाति-सम्पन्न होते हैं और न कुल-सम्पन्न होते हैं।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और कुल-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते हैं और न कुल-सम्पन्न होते हैं।

(२) घोड़े चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ घोड़े जाति-सम्पन्न होते हैं, बल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ घोड़े बल-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ घोड़े जाति-सम्पन्न भी होते हैं और बल-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ घोड़े न जाति-सम्पन्न होते हैं और न बल-सम्पन्न होते हैं।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, बल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष बल-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और बल-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते हैं और न बल-सम्पन्न होते हैं।

(३) घोड़े चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ घोड़े जाति-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ घोड़े रूप-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ घोड़े जाति-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ घोड़े न जाति-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न होते हैं।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न होते हैं।

(४) घोड़े चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ घोड़े जाति-सम्पन्न होते हैं, जय-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ घोड़े जय-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ घोड़े जाति-सम्पन्न भी होते हैं और जय-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ घोड़े न जाति-सम्पन्न होते हैं और न जय-सम्पन्न होते हैं।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, जय-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष जय-सम्पन्न होते हैं, जाति-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और जय-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते हैं और न जय-सम्पन्न होते हैं।

(५) चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा–
१. कुलसंपण्णे णाममेगे, णो बलसंपण्णे,
२. बलसंपण्णे णाममेगे, णो कुलसंपण्णे,
३. एगे कुलसंपण्णे वि, बलसंपण्णे वि,
४. एगे णो कुलसंपण्णे, णो बलसंपण्णे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. कुलसंपण्णे णाममेगे, णो बलसंपण्णे,
२. बलसंपण्णे णाममेगे, णो कुलसंपण्णे,
३. एगे कुलसंपण्णे वि, बलसंपण्णे वि,
४. एगे णो कुलसंपण्णे, णो बलसंपण्णे।
(६) चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा–
१. कुलसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे,
२. रूवसंपण्णे णाममेगे, णो कुलसंपण्णे,
३. एगे कुलसंपण्णे वि, रूवसंपण्णे वि,
४. एगे णो कुलसंपण्णे, णो रूवसंपण्णे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. कुलसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे,
२. रूवसंपण्णे णाममेगे, णो कुलसंपण्णे,
३. एगे कुलसंपण्णे वि, रूवसंपण्णे वि,
४. एगे णो कुलसंपण्णे, णो रूवसंपण्णे।
(७) चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा–
१. कुलसंपण्णे णाममेगे, णो जयसंपण्णे,
२. जयसंपण्णे णाममेगे, णो कुलसंपण्णे,
३. एगे कुलसंपण्णे वि, जयसंपण्णे वि,
४. एगे णो कुलसंपण्णे, णो जयसंपण्णे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. कुलसंपण्णे णाममेगे, णो जयसंपण्णे,
२. जयसंपण्णे णाममेगे, णो कुलसंपण्णे,
३. एगे कुलसंपण्णे वि, जयसंपण्णे वि,
४. एगे णो कुलसंपण्णे, णो जयसंपण्णे।
(८) चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा–
१. बलसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे,
२. रूवसंपण्णे णाममेगे, णो वलसंपण्णे,
३. एगे बलसंपण्णे वि, रूवसंपण्णे वि,
४. एगे णो बलसंपण्णे, णो रूवसंपण्णे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. बलसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे,
२. रूवसंपण्णे णाममेगे, णो वलसंपण्णे,
३. एगे वलसंपण्णे वि, रूवसंपण्णे वि,
४. एगे णो वलसंपण्णे, णो रूवसंपण्णे।
(९) चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा–
१. वलसंपण्णे णाममेगे, णो जयसंपण्णे,
२. जयसंपण्णे णाममेगे, णो वलसंपण्णे,

(५) घोड़े चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ घोड़े कुल-सम्पन्न होते हैं, बल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ घोड़े बल-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ घोड़े कुल-सम्पन्न भी होते हैं और बल-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ घोड़े न कुल-सम्पन्न होते हैं और न बल-सम्पन्न होते हैं।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, बल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष बल-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते हैं और बल-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते हैं और न बल-सम्पन्न होते हैं।
(६) घोड़े चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ घोड़े कुल-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ घोड़े रूप-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ घोड़े कुल-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ घोड़े न कुल-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न होते हैं।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष रूप-संम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न होते हैं।
(७) घोड़े चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ घोड़े कुल-सम्पन्न होते हैं, जय-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ घोड़े जय-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ घोड़े कुल-सम्पन्न भी होते हैं और जय-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ घोड़े न कुल-सम्पन्न होते हैं और न जय-सम्पन्न होते हैं।
इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, जय-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष जय-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते हैं और जय-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुप न कुल-सम्पन्न होते हैं और न जय-सम्पन्न होते हैं।
(८) घोड़े चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ घोड़े वल-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ घोड़े रूप-सम्पन्न होते हैं, वल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ घोड़े वल-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ घोड़े न वल-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न होते हैं।
इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुप वल-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुप रूप-सम्पन्न होते हैं, वल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुप वल-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुप न वल-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न होते हैं।
(९) घोड़े चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ घोड़े वल-सम्पन्न होते हैं, जय-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ घोड़े जय-सम्पन्न होते हैं, वल-सम्पन्न नहीं होते हैं,

३. एगे बलसंपण्णे वि, जयसंपण्णे वि,
४. एगे णो बलसंपण्णे, णो जयसंपण्णे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. बलसंपण्णे णाममेगे, णो जयसंपण्णे,
२. जयसंपण्णे णाममेगे, णो बलसंपण्णे,
३. एगे बलसंपण्णे वि, जयसंपण्णे वि,
४. एगे णो बलसंपण्णे, णो जयसंपण्णे।
(१०) चत्तारिं पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा–
१. रूवसंपण्णे णाममेगे, णो जयसंपण्णे,
२. जयसंपण्णे णाममेगे, नो रूवसंपण्णे,
३. एगे रूवसंपण्णे वि, जयसंपण्णे वि,
४. एगे णो रूवसंपण्णे, णो जयसंपण्णे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. रूवसंपण्णे णाममेगे, णो जयसंपण्णे,
२. जयसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे,
३. एगे रूवसंपण्णे वि, जयसंपण्णे वि,
४. एगे णो रूवसंपण्णे, णो जयसंपण्णे।
–ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३२८

३. कुछ घोड़े बल-सम्पन्न भी होते हैं और जय-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ घोड़े न बल-सम्पन्न होते हैं और न जय-सम्पन्न होते हैं।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष बल-सम्पन्न होते हैं, जय-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष जय-सम्पन्न होते हैं, बल-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष बल-सम्पन्न भी होते हैं और जय-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न बल-सम्पन्न होते हैं और न जय-सम्पन्न होते हैं।
(१०) घोड़े चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ घोड़े रूप-सम्पन्न होते हैं, जय-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ घोड़े जय-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ घोड़े रूप-सम्पन्न भी होते हैं और जय-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ घोड़े न रूप-सम्पन्न होते हैं और न जय-सम्पन्न होते हैं।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते हैं, जय-सम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष जय-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न भी होते हैं और जय-सम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न रूप-सम्पन्न होते हैं और न जय-सम्पन्न होते हैं।

७३. हय दिट्ठंतेण जुत्ताजुत्ताणं पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि हया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।
(२) चत्तारि हया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणए,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणए,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणए,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणए।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणए,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणए,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणए,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणए।
(३) चत्तारि हया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे,

७३. अश्व के दृष्टान्त द्वारा युक्तायुक्त पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) घोड़े चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ घोड़े युक्त होकर युक्त होते हैं,
२. कुछ घोड़े युक्त होकर भी अयुक्त होते हैं,
३. कुछ घोड़े अयुक्त होकर भी युक्त होते हैं,
४. कुछ घोड़े अयुक्त होकर अयुक्त होते हैं।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त होते हैं,
२. कुछ पुरुष युक्त होकर भी अयुक्त होते हैं,
३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर भी युक्त होते हैं,
४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त होते हैं।
(२) घोड़े चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ घोड़े युक्त होकर युक्त परिणत होते हैं,
२. कुछ घोड़े युक्त होकर अयुक्त परिणत होते हैं,
३. कुछ घोड़े अयुक्त होकर युक्त परिणत होते हैं,
४. कुछ घोड़े अयुक्त होकर अयुक्त परिणत होते हैं।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त परिणत होते हैं,
२. कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त परिणत होते हैं,
३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त परिणत होते हैं,
४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त परिणत होते हैं।
(३) घोड़े चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ घोड़े युक्त होकर युक्त रूप वाले होते हैं,
२. कुछ घोड़े युक्त होकर अयुक्त रूप वाले होते हैं,

३. अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।

(४) चत्तारि हया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे। –ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३१९

७४. गय दिट्ठंतेण जुत्ताजुत्ताणं पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि गया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

(२) चत्तारि गया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणए,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणए,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणए,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणए।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणए,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणए,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणए,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणए।

(३) चत्तारि गया पण्णत्ता, तं जहा–
१. जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे,

३. कुछ घोड़े अयुक्त होकर युक्त रूप वाले होते हैं,
४. कुछ घोड़े अयुक्त होकर अयुक्त रूप वाले होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त रूप वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त रूप वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त रूप वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त रूप वाले होते हैं।

(४) घोड़े चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ घोड़े युक्त होकर युक्त शोभा वाले होते हैं,
२. कुछ घोड़े युक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं,
३. कुछ घोड़े अयुक्त होकर युक्त शोभा वाले होते हैं,
४. कुछ घोड़े अयुक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त शोभा वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त शोभा वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं।

७४. हाथी के दृष्टान्त द्वारा युक्तायुक्त पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) हाथी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ हाथी युक्त होकर युक्त ही होते हैं,
२. कुछ हाथी युक्त होकर अयुक्त होते हैं,
३. कुछ हाथी अयुक्त होकर भी युक्त होते हैं,
४. कुछ हाथी अयुक्त होकर अयुक्त होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त ही होते हैं,
२. कुछ पुरुष युक्त होकर भी अयुक्त होते हैं,
३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर भी युक्त होते हैं,
४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर, अयुक्त ही होते हैं।

(२) हाथी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ हाथी युक्त होकर युक्त परिणत होते हैं,
२. कुछ हाथी युक्त होकर अयुक्त परिणत होते हैं,
३. कुछ हाथी अयुक्त होकर युक्त परिणत होते हैं,
४. कुछ हाथी अयुक्त होकर, अयुक्त परिणत होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त परिणत होते हैं,
२. कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त परिणत होते हैं,
३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त परिणत होते हैं,
४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त परिणत होते हैं।

(३) हाथी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ हाथी युक्त होकर युक्त रूप वाले होते हैं,
२. कुछ हाथी युक्त होकर अयुक्त रूप वाले होते हैं,

३. अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।

(४) चत्तारि गया पण्णत्ता, तं जहा–

१. जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
२. जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे,
३. अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
४. अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे। –ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३११

३. कुछ हाथी अयुक्त होकर युक्त रूप वाले होते हैं,
४. कुछ हाथी अयुक्त होकर अयुक्त रूप वाले होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त रूप वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त रूप वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त रूप वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त रूप वाले होते हैं।

(४) हाथी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ हाथी युक्त होकर युक्त शोभा वाले होते हैं,
२. कुछ हाथी युक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं,
३. कुछ हाथी अयुक्त होकर युक्त शोभा वाले होते हैं,
४. कुछ हाथी अयुक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त शोभा वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त शोभा वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं।

७५. भद्दाइ चउव्विह हत्थी दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, तं जहा–

१. भद्दे,
२. मंदे,
३. मिए,
४. संकिन्ने,

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. भद्दे, २. मंदे, ३. मिए, ४. संकिन्ने।

मधुगुलिय-पिंगलक्खो अणुपुव्व-सुजाय-दीहणंगूलो।
पुरओ उदग्गधीरो सव्वंगसमाहिओ भद्दो।

चल-बहल-विसम-चम्मो थुल्लसिरो थूलणह पेएण।
थूलणह-दंत-वालो हरिपिंगल-लोयणो मंदो॥

तणुओ तणुयग्गीवो तणुयतओ तणुयदंत-णह-वालो।
भीरु तत्थुव्विग्गो तासी य भवे मिए णामं॥

एएसिं हत्थीणं थोवाथोवं तु, जो अणुहरइ हत्थी।
रूवेण व सीलेण व सो, संकिन्नो त्ति णायव्वो॥
भद्दो मज्जइ सरए, मंदो पुण मज्जए वसंतम्मि।
मिओ मज्जइ हेमंते, संकिन्नो सव्वकालम्मि॥

–ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २८१, गा. १-५

७५. भद्रादि चार प्रकार के हाथियों के दृष्टान्त द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) हाथी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. भद्र-धैर्य आदि गुणयुक्त,
२. मंद-धैर्य आदि गुणों में मंद,
३. मृग-भीरु (डरपोक),
४. संकीर्ण-विविध स्वभाव वाला।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. भद्र, २. मंद, ३. मृग, ४. संकीर्ण।

१. जिसकी आँखे मधु गुटिका के समान भूरापन लिए हुए लाल होती है, जो उचित काल-मर्यादा से उत्पन्न हुआ है, जिसकी पूंछ लम्बी है, जिसका अगला भाग उन्नत है, जो धीर है, जिसके सब अंग प्रमाण और लक्षणों से युक्त होने के कारण सुव्यवस्थित हैं, उस हाथी को 'भद्र' कहा जाता है।

२. जिसकी चमड़ी शिथिल, स्थूल और वलियों (रेखाओं) से युक्त होती है, जिसका सिर और पूंछ का मूल स्थूल होता है, जिसके नख, दांत और केश स्थूल होते हैं तथा जिसकी आँखें सिंह की तरह भूरापन लिए हुए पीली होती हैं, उस हाथी को "मंद" कहा जाता है।

३. जिसका शरीर, गर्दन, चमड़ी, नख, दांत और केश पतले होते हैं, जो भीरु, त्रस्त और उद्विग्न होता है तथा जो दूसरों को त्रास देता है उस हाथी को "मृग" कहा जाता है।

४. जिसमें हस्तियों के पूर्वोक्त गुण, रूप और शील के लक्षण मिश्रित रूप में मिलते हैं उस हाथी को 'संकीर्ण' कहा जाता है।

भद्र शरद ऋतु में, मंद वसंत ऋतु में, मृग हेमन्त ऋतु में और संकीर्ण सब ऋतुओं में मदोन्मत्त होते हैं।

(२) चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, तं जहा–
१. भद्दे णाममेगे भद्दमणे,
२. भद्दे णाममेगे मंदमणे,
३. भद्दे णाममेगे मियमणे,
४. भद्दे णाममेगे संकिन्नमणे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. भद्दे णाममेगे भद्दमणे,
२. भद्दे णाममेगे मंदमणे,
३. भद्दे णाममेगे मियमणे,
४. भद्दे णाममेगे संकिन्नमणे।
(३) चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, तं जहा–
१. मंदे णाममेगे भद्दमणे,
२. मंदे णाममेगे मंदमणे,
३. मंदे णाममेगे मियमणे,
४. मंदे णाममेगे संकिन्नमणे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. मंदे णाममेगे भद्दमणे,
२. मंदे णाममेगे मंदमणे,
३. मंदे णाममेगे मियमणे,
४. मंदे णाममेगे संकिण्णमणे।
(४) चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, तं जहा–
१. मिए णाममेगे भद्दमणे,
२. मिए णाममेगे मंदमणे,
३. मिए णाममेगे मियमणे,
४. मिए णाममेगे संकिन्नमणे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. मिए णाममेगे भद्दमणे,
२. मिए णाममेगे मंदमणे,
३. मिए णाममेगे मियमणे,
४. मिए णाममेगे संकिन्नमणे।
(५) चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, तं जहा–
१. संकिन्ने णाममेगे भद्दमणे,
२. संकिन्ने णाममेगे मंदमणे,
३. संकिन्ने णाममेगे मियमणे,
४. संकिन्ने णाममेगे संकिन्नमणे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. संकिन्ने णाममेगे भद्दमणे,
२. संकिन्ने णाममेगे मंदमणे,
३. संकिण्णे णाममेगे मियमणे,
४. संकिन्ने णाममेगे संकिन्नमणे। –ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २८१

(२) हाथी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ हाथी भद्र होते हैं और उनका मन भी भद्र होता है,
२. कुछ हाथी भद्र होते हैं, किन्तु उनका मन मंद होता है,
३. कुछ हाथी भद्र होते हैं, किन्तु उनका मन मृग होता है,
४. कुछ हाथी भद्र होते हैं, किन्तु उनका मन संकीर्ण होता है।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष भद्र होते हैं और उनका मन भी भद्र होता है,
२. कुछ पुरुष भद्र होते हैं, किन्तु उनका मन मंद होता है,
३. कुछ पुरुष भद्र होते हैं, किन्तु उनका मन मृग होता है,
४. कुछ पुरुष भद्र होते हैं, किन्तु उनका मन संकीर्ण होता है।
(३) हाथी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ हाथी मंद होते हैं, किन्तु उनका मन भद्र होता है,
२. कुछ हाथी मंद होते हैं और उनका मन भी मंद होता है,
३. कुछ हाथी मंद होते हैं, किन्तु उनका मन मृग होता है,
४. कुछ हाथी मंद होते हैं, किन्तु उनका मन संकीर्ण होता है।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष मंद होते हैं, किन्तु उनका मन भद्र होता है,
२. कुछ पुरुष मंद होते हैं और उनका मन मंद होता है,
३. कुछ पुरुष मंद होते हैं, किन्तु उनका मन मृग होता है,
४. कुछ पुरुष मंद होते हैं, किन्तु उनका मन संकीर्ण होता है।
(४) हाथी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ हाथी मृग होते हैं, किन्तु उनका मन भद्र होता है,
२. कुछ हाथी मृग होते हैं, किन्तु उनका मन मंद होता है,
३. कुछ हाथी मृग होते हैं और उनका मन भी मृग होता है,
४. कुछ हाथी मृग होते हैं, किन्तु उनका मन संकीर्ण होता है।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष मृग होते हैं, किन्तु उनका मन भद्र होता है,
२. कुछ पुरुष मृग होते हैं, किन्तु उनका मन मंद होता है,
३. कुछ पुरुष मृग होते हैं और उनका मन भी मृग होता है,
४. कुछ पुरुष मृग होते हैं, किन्तु उनका मन संकीर्ण होता है।
(५) हाथी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ हाथी संकीर्ण होते हैं, किन्तु उनका मन भद्र होता है,
२. कुछ हाथी संकीर्ण होते हैं, किन्तु उनका मन मंद होता है,
३. कुछ हाथी संकीर्ण होते हैं, किन्तु उनका मन मृग होता है,
४. कुछ हाथी संकीर्ण होते हैं और उनका मन भी संकीर्ण होता है।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष संकीर्ण होते हैं, किन्तु उनका मन भद्र होता है,
२. कुछ पुरुष संकीर्ण होते हैं, किन्तु उनका मन मंद होता है,
३. कुछ पुरुष संकीर्ण होते हैं, किन्तु उनका मन मृग होता है,
४. कुछ पुरुष संकीर्ण होते हैं और उनका मन भी संकीर्ण होता है।

७६. सेणा दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि सेणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. जइत्ता णाममेगे, णो पराजिणित्ता,

७६. सेना के दृष्टान्त द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) सेना चार प्रकार की कही गई हैं, यथा–
१. कुछ सेनाएँ विजय करती हैं, किन्तु पराजित नहीं होतीं,

२. पराजिणित्ता णाममेगे, णो जइत्ता,
३. एगा जइत्ता वि, पराजिणित्ता वि,
४. एगा नो जइत्ता, नो पराजिणित्ता।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
१. जइत्ता णाममेगे, णो पराजिणित्ता,
२. पराजिणित्ता णाममेगे, णो जइत्ता,
३. एगे जइत्ता वि, पराजिणित्ता वि,
४. एगे णो जइत्ता, णो पराजिणित्ता।

(२) चत्तारि सेणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
१. जइत्ता णाममेगे जयइ,
२. जइत्ता णाममेगे पराजिणइ,
३. पराजिणित्ता णाममेगे जयइ,
४. पराजिणित्ता णाममेगे पराजिणइ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
१. जइत्ता णाममेगे जयइ,
२. जइत्ता णाममेगे पराजिणइ,
३. पराजिणित्ता णाममेगे जयइ,
४. पराजिणित्ता णाममेगे पराजिणइ।

—ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २१२/२-४

२. कुछ सेनाएँ पराजित होती हैं, किन्तु विजय प्राप्त नहीं करती,
३. कुछ सेनाएँ कभी विजय प्राप्त करती हैं और कभी पराजित हो जाती हैं,
४. कुछ सेनाएँ न विजय प्राप्त करती हैं और न पराजित ही होती हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा—
१. कुछ पुरुष (कष्टों पर) विजय प्राप्त करते हैं, किन्तु (उनसे) पराजित नहीं होते (जैसे श्रमण भगवान महावीर),
२. कुछ पुरुष (कष्टों) से पराजित होते हैं, परन्तु उन पर विजय प्राप्त नहीं करते (जैसे कुण्डरीक),
३. कुछ पुरुष (कष्टों पर) कभी विजय प्राप्त करते हैं और कभी उनसे पराजित हो जाते हैं, (जैसे शैलक राजर्षि),
४. कुछ पुरुष न (कष्टों पर) विजय प्राप्त करते हैं और न (उनसे) पराजित होते हैं।

(२) सेना चार प्रकार की कही गई है, यथा—
१. कुछ सेनाएँ जीतकर जीतती हैं,
२. कुछ सेनाएँ जीतकर भी पराजित होती हैं,
३. कुछ सेनाएँ पराजित होकर भी जीतती हैं,
४. कुछ सेनाएँ पराजित होकर पराजित ही होती हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा—
१. कुछ पुरुष जीतकर जीतते हैं,
२. कुछ पुरुष जीतकर भी पराजित होते हैं,
३. कुछ पुरुष पराजित होकर भी जीतते हैं,
४. कुछ पुरुष पराजित होकर पराजित ही होते हैं।

७७. पक्खी दिट्ठंतेण रूय-रूव विवक्खया पुरिसाणं चउभंग परूवणं—

(१) चत्तारि पक्खी पण्णत्ता, तं जहा—
१. रूयसंपन्ने नाममेगे, णो रूवसंपन्ने,
२. रूवसंपन्ने णाममेगे, णो रूयसंपन्ने,
३. एगे रूयसंपन्ने वि, रूवसंपन्ने वि,
४. एगे णो रूयसंपन्ने, णो रूवसंपन्ने।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
१. रूयसंपन्ने णाममेगे णो रूवसंपन्ने,
२. रूवसंपण्णे णाममेगे, णो रूयसंपण्णे,
३. एगे रूयसंपण्णे वि, रूवसंपण्णे वि,
४. एगे णो रूयसंपण्णे, णो रूवसंपण्णे।

—ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३१२

७७. पक्षी के दृष्टान्त द्वारा स्वर और रूप की विवक्षा से पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण—

(१) पक्षी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा—
१. कुछ पक्षी स्वरसम्पन्न होते हैं, परन्तु रूपसम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पक्षी रूपसम्पन्न होते हैं, परन्तु स्वरसम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पक्षी स्वरसम्पन्न भी होते हैं और रूपसम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पक्षी न स्वरसम्पन्न होते हैं और न रूपसम्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा—
१. कुछ पुरुष स्वरसम्पन्न होते हैं परन्तु रूपसम्पन्न नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष रूपसम्पन्न होते हैं, परन्तु स्वरसम्पन्न नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष स्वरसम्पन्न भी होते हैं और रूपसम्पन्न भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न स्वरसम्पन्न होते हैं और न रूपसम्पन्न होते हैं।

७८. सुद्ध-असुद्ध वत्थ दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं—

(१) चत्तारि वत्था पण्णत्ता, तं जहा—
१. सुद्धे णाममेगे सुद्धे,

७८. शुद्ध-अशुद्ध वस्त्रों के दृष्टान्त द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण—

(१) वस्त्र चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा—
१. कुछ वस्त्र प्रकृति से भी शुद्ध होते हैं और स्थिति से भी शुद्ध होते हैं,

२. सुद्धे णाममेगे असुद्धे,
३. असुद्धे णाममेगे सुद्धे,
४. असुद्धे णाममेगे असुद्धे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुद्धे णाममेगे सुद्धे,
२. सुद्धे णाममेगे असुद्धे,
३. असुद्धे णाममेगे सुद्धे,
४. असुद्धे णाममेगे असुद्धे।

(२) चत्तारि वत्था पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुद्धे णाममेगे सुद्धपरिणए,
२. सुद्धे णाममेगे असुद्धपरिणए,
३. असुद्धे णाममेगे सुद्धपरिणए,
४. असुद्धे णाममेगे असुद्धपरिणए।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुद्धे णाममेगे सुद्धपरिणए,
२. सुद्धे णाममेगे असुद्धपरिणए,
३. असुद्धे णाममेगे सुद्धपरिणए,
४. असुद्धे णाममेगे असुद्धपरिणए।

(३) चत्तारि वत्था पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुद्धे णाममेगे सुद्धरूवे,
२. सुद्धे णाममेगे असुद्धरूवे,
३. असुद्धे णाममेगे सुद्धरूवे,
४. असुद्धे णाममेगे असुद्धरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुद्धे णाममेगे सुद्धरूवे
२. सुद्धे णाममेगे असुद्धरूवे,
३. असुद्धे णाममेगे सुद्धरूवे,
४. असुद्धे णाममेगे असुद्धरूवे। –ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २३१

७९. सुई-असुई वत्थ दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि वत्था पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुई णाममेगे सुई,
२. सुई णाममेगे असुई,
३. असुई णाममेगे सुई,
४. असुई णाममेगे असुई।

२. कुछ वस्त्र प्रकृति से शुद्ध होते हैं किन्तु स्थिति से अशुद्ध होते हैं,
३. कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध होते हैं, किन्तु स्थिति से शुद्ध होते हैं,
४. कुछ वस्त्र प्रकृति से भी अशुद्ध होते हैं और स्थिति से भी अशुद्ध होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष जाति से भी शुद्ध होते हैं और गुण से भी शुद्ध होते हैं,
२. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध होते हैं किन्तु गुण से अशुद्ध होते हैं,
३. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध होते हैं, किन्तु गुण से शुद्ध होते हैं,
४. कुछ पुरुष जाति से भी अशुद्ध होते हैं और गुण से भी अशुद्ध होते हैं।

(२) वस्त्र चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ वस्त्र प्रकृति से शुद्ध और शुद्ध रूप में परिणत होते हैं,
२. कुछ वस्त्र प्रकृति से शुद्ध किन्तु अशुद्ध रूप में परिणत होते हैं,
३. कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध किन्तु शुद्ध रूप में परिणत होते हैं,
४. कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध और अशुद्ध रूप में परिणत होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध रूप में परिणत होते हैं
२. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध किन्तु अशुद्ध रूप में परिणत होते हैं,
३. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध किन्तु शुद्ध रूप में परिणत होते हैं,
४. कुछ पुरुष जाति से भी अशुद्ध और अशुद्ध रूप में परिणत होते हैं।

(३) वस्त्र चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ वस्त्र प्रकृति से शुद्ध और शुद्ध रूप वाले होते हैं,
२. कुछ वस्त्र प्रकृति से शुद्ध किन्तु अशुद्ध रूप वाले होते हैं,
३. कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध किन्तु शुद्ध रूप वाले होते हैं,
४. कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध और अशुद्ध रूप वाले होते हैं।

इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुप प्रकृति से शुद्ध और शुद्ध रूप वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुप प्रकृति से शुद्ध किन्तु अशुद्ध रूप वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुप प्रकृति से अशुद्ध किन्तु शुद्ध रूप वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुप प्रकृति से अशुद्ध और अशुद्ध रूप वाले होते हैं।

७९. पवित्र-अपवित्र वस्त्रों के दृष्टांत द्वारा पुरुपों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) वस्त्र चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ वस्त्र प्रकृति से भी पवित्र होते हैं और परिष्कार करने से भी पवित्र होते हैं,
२. कुछ वस्त्र प्रकृति से पवित्र होते हैं, किन्तु अपरिष्कृत होने से अपवित्र होते हैं,
३. कुछ वस्त्र प्रकृति से अपवित्र होते हैं, किन्तु परिष्कार करने से पवित्र होते हैं,
४. कुछ वस्त्र प्रकृति से भी अपवित्र होते हैं और अपरिष्कृत होने से भी अपवित्र होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुई णाममेगे सुई,
२. सुई णाममेगे असुई,
३. असुई णाममेगे सुई,
४. असुई णाममेगे असुई।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष शरीर से भी पवित्र होते हैं और स्वभाव से भी पवित्र होते हैं,
२. कुछ पुरुष शरीर से पवित्र होते हैं, किन्तु स्वभाव से अपवित्र होते हैं,
३. कुछ पुरुष शरीर से अपवित्र होते हैं, किन्तु स्वभाव से पवित्र होते हैं,
४. कुछ पुरुष शरीर से भी अपवित्र होते हैं और स्वभाव से भी अपवित्र होते हैं।

(२) चत्तारि वत्था पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुई णाममेगे सुइपरिणए,
२. सुई णाममेगे असुइपरिणए,
३. असुई णाममेगे सुइपरिणए,
४. असुई णाममेगे असुइपरिणए।

(२) वस्त्र चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ वस्त्र प्रकृति से पवित्र होते हैं और पवित्र रूप में ही परिणत होते हैं,
२. कुछ वस्त्र प्रकृति से पवित्र होते हैं, किन्तु अपवित्र रूप में परिणत होते हैं,
३. कुछ वस्त्र प्रकृति से अपवित्र होते हैं, किन्तु पवित्र रूप में परिणत होते हैं,
४. कुछ वस्त्र प्रकृति से अपवित्र होते हैं और अपवित्र रूप में ही परिणत होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुई णाममेगे सुइपरिणए,
२. सुई णाममेगे असुइपरिणए,
३. असुई णाममेगे सुइपरिणए,
४. असुई णाममेगे असुइपरिणए।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष शरीर से पवित्र होते हैं और पवित्र रूप में ही परिणत होते हैं,
२. कुछ पुरुष शरीर से पवित्र होते हैं, किन्तु अपवित्र रूप में परिणत होते हैं,
३. कुछ पुरुष शरीर से अपवित्र होते हैं, किन्तु पवित्र रूप में परिणत होते हैं,
४. कुछ पुरुष शरीर से अपवित्र होते हैं और अपवित्र रूप में परिणत होते हैं।

(३) चत्तारि वत्था पण्णता, तं जहा–
१. सुई णाममेगे सुइरूवे,
२. सुई णाममेगे असुइरूवे,
३. असुई णाममेगे सुइरूवे,
४. असुई णाममेगे असुइरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुई णाममेगे सुइरूवे,
२. सुई णाममेगे असुइरूवे,
३. असुई णाममेगे सुइरूवे,
४. असुई णाममेगे असुइरूवे। –ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २४१

(३) वस्त्र चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ वस्त्र प्रकृति से पवित्र और पवित्र रूप वाले होते हैं,
२. कुछ वस्त्र प्रकृति से पवित्र किन्तु अपवित्र रूप वाले होते हैं,
३. कुछ वस्त्र प्रकृति से अपवित्र, किन्तु पवित्र रूप वाले होते हैं,
४. कुछ वस्त्र प्रकृति से अपवित्र और अपवित्र रूप वाले होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष शरीर से पवित्र और पवित्र रूप वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष शरीर से पवित्र, किन्तु अपवित्र रूप वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष शरीर से अपवित्र किन्तु पवित्र रूप वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष शरीर से अपवित्र और अपवित्र रूप वाले होते हैं।

८०. कड दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि कडा पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुंबकडे,
२. विदलकडे,
३. चम्मकडे,
४. कंबलकडे।

८०. चटाई के दृष्टांत द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) कट (चटाई) चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. सुम्बकट-घास से बना हुआ,
२. विदलकट-बाँस के टुकड़ों से बना हुआ,
३. चर्मकट-चमड़े से बना हुआ,
४. कम्बलकट-कम्बल से बना हुआ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. सुंबकडसमाणे,
२. विदलकडसमाणे,
३. चम्मकडसमाणे,
४. कंबलकडसमाणे। –ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३५०

८१. मधुसित्थाइगोलाण दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि गोला पण्णत्ता, तं जहा–

१. मधुसित्थगोले, २. जउगोले,
३. दारुगोले, ४. मट्टियागोले।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. मधुसित्थगोलसमाणे,
२. जउगोलसमाणे,
३. दारुगोलसमाणे,
४. मट्टियागोलसमाणे।

(२) चत्तारि गोला पण्णत्ता, तं जहा–

१. अयगोले, २. तउगोले,
३. तंबगोले, ४. सीसगोले।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. अयगोलसमाणे, २. तउगोलसमाणे,
३. तंबगोलसमाणे, ४. सीसगोलसमाणे।

(३) चत्तारि गोला पण्णत्ता, तं जहा–

१. हिरण्णगोले, २. सुवण्णगोले,
३. रयणगोले ४. वयरगोले।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. हिरण्णगोलसमाणे, २. सुवण्णगोलसमाणे,
३. रयणगोलसमाणे, ४. वयरगोलसमाणे।
–ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३५०

८२. कूडागार दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(२) चत्तारि कूडागारा पण्णत्ता, तं जहा–

१. गुत्ते णाममेगे गुत्ते,
२. गुत्ते णाममेगे अगुत्ते,
३. अगुत्ते णाममेगे गुत्ते,
४. अगुत्ते णाममेगे अगुत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. गुत्ते णाममेगे गुत्ते,
२. गुत्ते णाममेगे अगुत्ते,
३. अगुत्ते णाममेगे गुत्ते,
४. अगुत्ते णाममेगे अगुत्ते। –ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २६२

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सुम्बकट के समान-अल्प प्रतिबंध वाला,
२. विदलकट के समान-बहुप्रतिबंध वाला,
३. चर्मकट के समान-बहुतर प्रतिबंध वाला,
४. कम्बलकट के समान-बहुतम प्रतिबंध वाला।

८१. मधुसिक्थादि गोलों के दृष्टान्त द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) गोले चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. मधुसिक्थ-मोम का गोला, २. जतु-लाख का गोला,
३. दारु-काष्ठ का गोला, ४. मृत्तिका मिट्टी का गोला।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. मोम के गोले के समान कोमल,
२. लाख के गोले के समान मजबूत,
३. काष्ठ के गोले के समान कठोर,
४. मिट्टी के गोले के समान कठोरतम।

(२) गोले चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. लोहे का गोला, २. त्रपु-राँगे का गोला,
३. ताँबे का गोला, ४. शीशे का गोला।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. लोहे के गोले के समान, २. राँगे के गोले के समान,
३. ताँबे के गोले के समान, ४. शीशे के गोले के समान।

(३) गोले चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. हिरण्य–चाँदी का गोला, २. सुवर्ण-सोने का गोला,
३. रत्न का गोला, ४. वज्ररत्न (हीरे) का गोला।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. हिरण्य के गोले के समान, २. सुवर्ण के गोले के समान,
३. रत्न के गोले के समान, ४. वज्ररत्न के गोले के समान।

८२. कूटागार के दृष्टान्त द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(२) कूटागार (शिखर सहित घर) चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. एक बाहर से गुप्त है और भीतर से भी गुप्त है,
२. एक बाहर से गुप्त है परन्तु भीतर से अगुप्त है,
३. एक बाहर से तो अगुप्त है, परन्तु भीतर से गुप्त है,
४. एक बाहर और भीतर दोनों ओर से अगुप्त है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष गुप्त होकर गुप्त होते हैं, वस्त्र पहने हुए होते हैं और उनकी इन्द्रियाँ भी गुप्त होती हैं।
२. कुछ पुरुष गुप्त होकर अगुप्त होते हैं–वस्त्र पहने हुए होते हैं, किन्तु उनकी इन्द्रियाँ गुप्त नहीं होती।
३. कुछ पुरुष अगुप्त होकर गुप्त होते हैं, वस्त्र पहने हुए नहीं होते, किन्तु उनकी इन्द्रियाँ गुप्त होती हैं।
४. कुछ पुरुष अगुप्त होकर अगुप्त होते हैं, न वस्त्र पहने हुए होते हैं और न उनकी इन्द्रियाँ ही गुप्त होती हैं।

८३. अंतो बाहिं वण दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि वणा पण्णत्ता, तं जहा–
१. अंतोसल्ले णाममेगे, णो बाहिंसल्ले,
२. बाहिंसल्ले णाममेगे, णो अंतोसल्ले,
३. एगे अंतोसल्ले वि, बाहिंसल्ले वि,
४. एगे णो अंतोसल्ले, णो बाहिंसल्ले।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अंतोसल्ले णाममेगे, णो बाहिंसल्ले,
२. बाहिंसल्ले णाममेगे, णो अंतोसल्ले,
३. एगे अंतोसल्ले वि, बाहिंसल्ले वि,
४. एगे णो अंतोसल्ले, णो बाहिंसल्ले।

(२) चत्तारि वणा पण्णत्ता, तं जहा–
१. अंतोदुट्ठे णाममेगे, णो बाहिंदुट्ठे,
२. बाहिंदुट्ठे णाममेगे, णो अंतोदुट्ठे,
३. एगे अंतोदुट्ठे वि, बाहिंदुट्ठे वि,
४. एगे णो अंतोदुट्ठे वि, बाहिंदुट्ठे वि,

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अंतो दुट्ठे णाममेगे, णो बाहिंदुट्ठे,
२. बाहिंदुट्ठे णाममेगे, णो अंतोदुट्ठे,
३. एगे अंतोदुट्ठे वि, बाहिंदुट्ठे वि,
४. एगे णो अंतोदुट्ठे, णो बाहिंदुट्ठे।

–ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३४४

८३. अन्तर-बाह्य व्रण के दृष्टान्त द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) व्रण चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ व्रण अन्तःशल्य (आन्तरिक घाव) वाले होते हैं, किन्तु बाह्यशल्य वाले नहीं होते हैं,
२. कुछ व्रण बाह्यशल्य वाले होते हैं, किन्तु अन्तःशल्य वाले नहीं होते हैं,
३. कुछ व्रण अन्तःशल्य वाले भी होते हैं और बाह्यशल्य वाले भी होते हैं,
४. कुछ व्रण न अन्तःशल्य वाले होते हैं और न बाह्यशल्य वाले होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष अन्तःशल्य वाले होते हैं, किन्तु बाह्यशल्य वाले नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष बाह्यशल्य वाले होते हैं, किन्तु अन्तःशल्य वाले नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष अन्तःशल्य वाले भी होते हैं और बाह्यशल्य वाले भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न अन्तःशल्य वाले होते हैं और न बाह्यशल्य वाले होते हैं।

(२) व्रण चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ व्रण अन्तः दुष्ट (अन्दर से विकृत) होते हैं किन्तु बाहर से विकृत नहीं होते हैं,
२. कुछ व्रण बाहर से विकृत होते हैं, किन्तु अन्दर से विकृत नहीं होते हैं,
३. कुछ व्रण अन्दर से भी विकृत होते हैं और बाहर से भी विकृत होते हैं,
४. कुछ व्रण न अन्दर से विकृत होते हैं और न बाहर से विकृत होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष अन्तः दुष्ट (अन्दर से विकृत) होते हैं, किन्तु बाहर से विकृत नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष बाहर से विकृत होते हैं, किन्तु अन्दर से विकृत नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष अन्दर से भी विकृत होते हैं और बाहर से भी विकृत होते हैं,
४. कुछ पुरुष न अन्दर से विकृत होते हैं और न बाहर से विकृत होते हैं।

८४. मेहस्स चउ पगारा तस्स लक्खणं च–

(१) चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पुक्खलसंवट्टए, २. पज्जुण्णे, ३. जीमूए, ४. जिम्मे।
१. पुक्खलसंवट्टए णं महामेहे एगेणं वासेणं दसवाससहस्साइं भावेइ।
२. पज्जुण्णे णं महामेहे एगेणं वासेणं दसवाससयाइं भावेइ।

८४. मेघ के चार प्रकार और उनका लक्षण–

(१) मेघ चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. पुष्कलसंवर्तक, २. प्रद्युम्न, ३. जीमूत, ४. जिम्ह।
१. पुष्कलसंवर्तक महामेघ एक बार बरस कर दस हजार वर्ष तक पृथ्वी को स्निग्ध कर देता है,
२. प्रद्युम्न महामेघ एक बार बरसकर एक हजार वर्ष तक पृथ्वी को स्निग्ध कर देता है,

३. जीमूए णं महामेहे एगेणं वासेणं दसवासाइं भावेइ।

४. जिम्मे णं महामेहे वहूहिं वासेहिं एगं वासं भावेइ वा, ण वा भावेइ। —ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३४७

८५. मेह दिट्ठंतेण पुरिसाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. गज्जित्ता णाममेगे, णो वासित्ता,
२. वासित्ता णाममेगे, णो गज्जित्ता,
३. एगे गज्जित्ता वि, वासित्ता वि,
४. एगे णो गज्जित्ता, णो वासित्ता।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. गज्जित्ता णाममेगे, णो वासित्ता,
२. वासित्ता णाममेगे, णो गज्जित्ता,
३. एगे गज्जित्ता वि, वासित्ता वि,
४. एगे णो गज्जित्ता, णो वासित्ता।

(२) चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. गज्जित्ता णाममेगे, णो विज्जुयाइत्ता,
२. विज्जुयाइत्ता णाममेगे, णो गज्जित्ता,
३. एगे गज्जित्ता वि, विज्जुयाइत्ता वि,
४. एगे णो गज्जित्ता, णो विज्जुयाइत्ता।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. गज्जित्ता णाममेगे, णो विज्जुयाइत्ता,
२. विज्जुयाइत्ता णाममेगे, णो गज्जित्ता,
३. एगे गज्जित्ता वि, विज्जुयाइत्ता वि,
४. एगे णो गज्जित्ता, णो विज्जुयाइत्ता।

(३) चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. वासित्ता णाममेगे, णो विज्जुयाइत्ता,
२. विज्जुयाइत्ता णाममेगे, णो वासित्ता,
३. एगे वासित्ता वि, विज्जुयाइत्ता वि,
४. एगे णो वासित्ता, णो विज्जुयाइत्ता।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. वासित्ता णाममेगे, णो विज्जुयाइत्ता,

३. जीमूत महामेघ एक वार वरसकर दस वर्ष तक पृथ्वी को स्निग्ध कर देता है,

४. जिम्ह महामेघ अनेक वार वरस कर एक वर्ष तक पृथ्वी को स्निग्ध करता है और नहीं भी करता है।

८५. मेघ के दृष्टांत द्वारा पुरुषों के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) मेघ चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ मेघ गरजने वाले होते हैं, वरसने वाले नहीं होते,
२. कुछ मेघ वरसने वाले होते हैं, गरजने वाले नहीं होते,
३. कुछ मेघ गरजने वाले भी होते हैं और वरसने वाले भी होते हैं,
४. कुछ मेघ न गरजने वाले होते हैं और न वरसने वाले होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष गरजने वाले होते हैं, किन्तु वरसने (कार्य करने) वाले नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष वरसने वाले होते हैं, किन्तु गरजने वाले नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष गरजने वाले भी होते हैं और वरसने वाले भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न गरजने वाले होते हैं और न वरसने वाले होते हैं।

(२) मेघ चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ मेघ गरजने वाले होते हैं, चमकने वाले नहीं होते हैं,
२. कुछ मेघ चमकने वाले होते हैं, किन्तु गरजने वाले नहीं होते हैं,
३. कुछ मेघ गरजने वाले भी होते हैं और चमकने वाले भी होते हैं,
४. कुछ मेघ न गरजने वाले होते हैं और न चमकने वाले होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष गरजने (देने आदि की प्रतिज्ञा करने) वाले होते हैं किन्तु चमकने (प्रदर्शन करने) वाले नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष चमकने वाले होते हैं किन्तु गरजने वाले नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष गरजने वाले भी होते हैं और चमकने वाले भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न गरजने वाले होते हैं और न चमकने वाले होते हैं।

(३) मेघ चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ मेघ वरसने वाले होते हैं, चमकने वाले नहीं होते,
२. कुछ मेघ चमकने वाले होते हैं, वरसने वाले नहीं होते,
३. कुछ मेघ वरसने वाले भी होते हैं और चमकने वाले भी होते हैं,
४. कुछ मेघ न वरसने वाले होते हैं और न चमकने वाले होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. कुछ पुरुष वरसने (दान देने) वाले होते हैं, किन्तु चमकने (प्रदर्शन करने) वाले नहीं होते हैं,

२. विज्जुयाइत्ता णाममेगे, णो वासित्ता,
३. एगे वासित्ता वि, विज्जुयाइत्ता वि,
४. एगे णो वासित्ता, णो विज्जुयाइत्ता।

२. कुछ पुरुष चमकने वाले होते हैं, किन्तु बरसने वाले नहीं होते,
३. कुछ पुरुष बरसने वाले भी होते हैं और चमकने वाले भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न बरसने वाले होते हैं और न चमकने वाले होते हैं।

(४) चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. कालवासी णाममेगे, णो अकालवासी
२. अकालवासी णाममेगे, णो कालवासी,
३. एगे कालवासी वि, अकालवासी वि,
४. एगे णो कालवासी, णो अकालवासी।

(४) मेघ चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ मेघ समय (काल) पर बरसने वाले होते हैं, असमय (अकाल) में बरसने वाले नहीं होते हैं,
२. कुछ मेघ असमय में बरसने वाले होते हैं, समय पर बरसने वाले नहीं होते हैं,
३. कुछ मेघ समय पर भी बरसने वाले होते हैं और असमय में भी बरसने वाले होते हैं,
४. कुछ मेघ न समय पर बरसने वाले होते हैं और न असमय में बरसने वाले होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. कालवासी णाममेगे, णो अकालवासी,
२. अकालवासी णाममेगे, णो कालवासी,
३. एगे कालवासी वि, अकालवासी वि,
४. एगे णो कालवासी, णो अकालवासी।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष समय पर बरसने (अवसर में दान देने) वाले होते हैं, असमय में बरसने वाले (बिना अवसर दान देने वाले) नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष असमय में बरसने वाले होते हैं, समय पर बरसने वाले नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष समय पर भी बरसने वाले होते हैं और असमय में भी बरसने वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष न समय पर बरसने वाले होते हैं और न असमय में बरसने वाले होते हैं।

(५) चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. खेत्तवासी णाममेगे, णो अखेत्तवासी,
२. अखेत्तवासी णाममेगे, णो खेत्तवासी,
३. एगे खेत्तवासी वि, अखेत्तवासी वि,
४. एगे णो खेत्तवासी, णो अखेत्तवासी।

मेघ चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ मेघ क्षेत्र (उपजाऊ भूमि) पर बरसने वाले होते हैं, ऊसर भूमि में बरसने वाले नहीं होते हैं,
२. कुछ मेघ ऊसर भूमि में बरसने वाले होते हैं, उपजाऊ भूमि पर बरसने वाले नहीं होते हैं,
३. कुछ मेघ उपजाऊ भूमि पर भी बरसने वाले होते हैं और ऊसर भूमि पर भी बरसने वाले होते हैं,
४. कुछ मेघ न उपजाऊ भूमि पर बरसने वाले होते हैं और न ऊसर भूमि पर बरसने वाले होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. खेत्तवासी णाममेगे, णो अखेत्तवासी,
२. अखेत्तवासी णाममेगे, णो खेत्तवासी,
३. एगे खेत्तवासी वि, अखेत्तवासी वि,
४. एगे णो खेत्तवासी, णो अखेत्तवासी।

–ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३४६

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ पुरुष उपजाऊ भूमि पर बरसने (पात्र को दान देने) वाले होते हैं, ऊसर में बरसने (अपात्र को दान देने) वाले नहीं होते हैं,
२. कुछ पुरुष अपात्र को दान देने वाले होते हैं, पात्र को दान देने वाले नहीं होते हैं,
३. कुछ पुरुष पात्र को दान देने वाले भी होते हैं और अपात्र को दान देने वाले भी होते हैं,
४. कुछ पुरुष न पात्र को दान देने वाले होते हैं और न अपात्र को दान देने वाले होते हैं।

८६. मेह दिट्ठंतेण अम्मापियराणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. जणइत्ता णाममेगे, णो णिम्मवइत्ता,

२. णिम्मवइत्ता णाममेगे, णो जणइत्ता,

३. एगे जणइत्ता वि णिम्मवइत्ता वि,

४. एगे णो जणइत्ता, णो णिम्मवइत्ता।

एवामेव चत्तारि अम्मापियरो पण्णत्ता, तं जहा–

१. जणइत्ता णाममेगे, णो णिम्मवइत्ता,

२. णिम्मवइत्ता णाममेगे, णो जणइत्ता,

३. एगे जणइत्ता वि, णिम्मवइत्ता वि,

४. एगे णो जणइत्ता, णो णिम्मवइत्ता।

–ठाणं अ. ४, उ. ४, सु. ३४६

८६. मेघ के दृष्टान्त द्वारा माता-पिता के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) मेघ चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ मेघ बीज को अंकुरित करने वाले होते हैं, उसको निर्माण (फलयुक्त) करने वाले नहीं होते।

२. कुछ मेघ बीज को फलयुक्त करने वाले होते हैं, उसको अंकुरित करने वाले नहीं होते।

३. कुछ मेघ बीज को अंकुरित करने वाले भी होते हैं और उसको फलयुक्त करने वाले भी होते हैं,

४. कुछ मेघ न बीज को अंकुरित करने वाले होते हैं और न उसको फलयुक्त करने वाले होते हैं।

इसी प्रकार माता-पिता भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ माता-पिता सन्तान को उत्पन्न करने वाले होते हैं उसका निर्माण (संस्कारयुक्त) करने वाले नहीं होते।

२. कुछ माता पिता संतान को संस्कारयुक्त करने वाले होते हैं, उसको उत्पन्न करने वाले नहीं होते।

३. कुछ माता पिता संतान को उत्पन्न करने वाले भी होते हैं और उसको संस्कारयुक्त करने वाले भी होते हैं।

४. कुछ माता पिता न संतान को उत्पन्न करने वाले होते हैं और न उसको संस्कारयुक्त करने वाले होते हैं।

८७. मेह दिट्ठंतेण रायाणं चउभंग परूवणं–

(१) चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. देसवासी णाममेगे, णो सव्ववासी,

२. सव्ववासी णाममेगे, णो देसवासी,

३. एगे देसवासी वि, सव्ववासी वि,

४. एगे णो देसवासी, णो सव्ववासी।

एवामेव चत्तारि रायाणो पण्णत्ता, तं जहा–

१. देसाहिवई णाममेगे, णो सव्वाहिवई,

२. सव्वाहिवई णाममेगे, णो देसाहिवई,

३. एगे देसाहिवई वि, सव्वाहिवई वि,

४. एगे णो देसाहिवई, णो सव्वाहिवई।

–ठाणं अ. ४, उ. ४, सु. ३४६

८७. मेघ के दृष्टांत द्वारा राजा के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

(१) मेघ चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ मेघ किसी एक देश में बरसते हैं, सब देशों में नहीं बरसते हैं,

२. कुछ मेघ सब देशों में बरसते हैं, किसी एक देश में नहीं बरसते हैं,

३. कुछ मेघ किसी एक देश में बरसते हैं और सब देशों में भी बरसते हैं,

४. कुछ मेघ न किसी देश में बरसते हैं और न सब देशों में बरसते हैं।

इसी प्रकार राजा भी चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ राजा एक प्रदेश के ही अधिपति होते हैं, सब देशों के अधिपति नहीं होते,

२. कुछ राजा सब देशों के अधिपति होते हैं, एक देश के अधिपति नहीं होते,

३. कुछ राजा एक देश के भी अधिपति होते हैं और सब देशों के भी अधिपति होते हैं,

४. कुछ राजा न एक देश के अधिपति होते हैं और न सब देशों के अधिपति होते हैं।

८८. वायमंडलिया दिट्ठंतेण इत्थीणं चउव्विहत्तं परूवणं–

(१) चत्तारि वायमंडलिया पण्णत्ता, तं जहा–

१. वामा णाममेगा वामावत्ता,

२. वामा णाममेगा दाहिणावत्ता,

३. दाहिणा णाममेगा वामावत्ता,

४. दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।

८८. वातमंडलिका के दृष्टान्त द्वारा स्त्रियों के चतुर्विधत्व का प्ररूपण–

(१) वातमंडलिका चार प्रकार की कही गई हैं, यथा–

१. कुछ वातमंडलिका वाम और वामावर्त होती हैं,

२. कुछ वातमंडलिका वाम और दक्षिणावर्त होती हैं,

३. कुछ वातमंडलिका दक्षिण और वामावर्त होती हैं,

४. कुछ वातमंडलिका दक्षिण और दक्षिणावर्त होती हैं।

९२. इत्थियादिसु कट्ठाइ दिट्ठंतेण अंतरस्स चउव्विहत्त परूवणं–

(१) चउव्विहे अंतरे पण्णत्ते, तं जहा–

१. कट्ठंतरे,
२. पम्हंतरे,
३. लोहंतरे,
४. पत्थरंतरे।

एवामेव इत्थिए वा पुरिसस्स वा चउव्विहे अंतरे पण्णत्ते, तं जहा–

१. कट्ठंतरसमाणे,
२. पम्हंतरसमाणे,
३. लोहंतरसमाणे,
४. पत्थरंतरसमाणे। –ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २७०

९२. स्त्री आदिकों में काष्ठादि के दृष्टान्त द्वारा अन्तर के चतुर्विधत्व का प्ररूपण–

(१) अन्तर चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. काष्ठान्तर–काष्ठ से काष्ठ का अन्तर-रूप निर्माण की दृष्टि से,
२. पक्ष्मान्तर-धागे से धागे का अन्तर-सुकुमारता आदि की दृष्टि से,
३. लोहान्तर–लोहे से लोहे का अन्तर-छेदन शक्ति की दृष्टि से,
४. प्रस्तरांतर-पत्थर का अन्तर–इच्छा पूर्ण करने की क्षमता आदि की दृष्टि से।

इसी प्रकार स्त्री से स्त्री का, पुरुष से पुरुष का अन्तर भी चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. काष्ठान्तर के समान–विशिष्ट पदवी आदि की दृष्टि से,
२. पक्ष्मान्तर के समान–सुकुमारता आदि की दृष्टि से,
३. लोहान्तर के समान–स्नेह का छेदन करने आदि की दृष्टि से,
४. प्रस्तरांतर के समान-मनोरथ पूर्ण करने की क्षमता आदि की दृष्टि से।

९३. भयगाणं चउप्पगारा–

(१) चत्तारि भयगा पण्णत्ता, तं जहा–

१. दिवसभयए,
२. जत्ताभयए,
३. उच्चत्तभयए,
४. कव्वालभयए। –ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २७१

९३. भृतकों के चार प्रकार

(१) भृतक (श्रमिक) चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. दिवस भृतक-प्रतिदिन का नियत मूल्य लेकर काम करने वाला,
२. यात्रा भृतक-यात्रा में सहयोग करने वाला,
३. उच्चत्व भृतक-घण्टों के अनुपात में मूल्य लेकर काम करने वाला,
४. कव्वाड भृतक-हाथों के अनुपात से धन लेकर भूमि खोदने वाला।

सुतस्स चउप्पगारा–

चत्तारि सुता पण्णत्ता, तं जहा–

१. अइजाए,
२. अणुजाए,
३. अवजाए,
४. कुलिंगाले। –ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २४०

सुत के चार प्रकार–

सुत (पुत्र) चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. अतिजात-पिता से अधिक,
२. अनुजात-पिता के समान,
३. अपजात-पिता से हीन,
४. कुलांगार-कुल के लिए अंगारे जैसा, कुल दूषक, कुलकलंक।

९४. पसप्पगाणं चउप्पगारा–

चत्तारि पसप्पगा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अणुप्पन्नाणं भोगाणं उप्पाएत्ता एगे पसप्पए।
२. पुव्वुप्पन्नाणं भोगाणं अविप्पयोगेणं एगे पसप्पए,
३. अणुप्पन्नाणं सोक्खाणं उप्पाएत्ता एगे पसप्पए,
४. पुव्वुप्पन्नाणं सोक्खाणं अविप्पयोगेणं एगे पसप्पए। –ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३३१

९४. प्रसर्पकों के चार प्रकार

प्रसर्पक (प्रयत्न करने वाला) चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ अप्राप्त भोगों की प्राप्ति के लिए प्रसर्पण (प्रयत्न) करते हैं,
२. कुछ पूर्व प्राप्त भोगों के संरक्षण के लिए प्रयत्न करते हैं,
३. कुछ अप्राप्त सुखों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं,
४. कुछ पूर्व प्राप्त सुखों के संरक्षण के लिए प्रयत्न करते हैं।

९५. तरगाणं चउप्पगारा–

(१) चत्तारि तरगा पण्णत्ता, तं जहा–

१. समुद्दं तरामीतेगे समुद्दं तरइ,

९५. तैराकों के चार प्रकार–

(१) तैराक चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ तैराक (साधक) समुद्र को तैरने (पार करने) का संकल्प करते हैं और उसे पार करते हैं,

एवामेव चत्तारि इत्थीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
१. वामा णाममेगा वामावत्ता,
२. वामा णाममेगा दाहिणावत्ता,
३. दाहिणा णाममेगा वामावत्ता,
४. दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।

[illegible]

[illegible]

८९. धूमसिहा दिट्ठंतेण इत्थीणं चउव्विहत्त परूवणं—

(१) चत्तारि धूमसिहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
१. वामा णाममेगा वामावत्ता,
२. वामा णाममेगा दाहिणावत्ता,
३. दाहिणा णाममेगा वामावत्ता,
४. दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।

एवामेव चत्तारि इत्थीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
१. वामा णाममेगा वामावत्ता,
२. वामा णाममेगा दाहिणावत्ता,
३. दाहिणा णाममेगा वामावत्ता,
४. दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।

—ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. [illegible]

[illegible]

९०. अग्गिसिहा दिट्ठंतेण इत्थीणं चउव्विहत्त परूवणं—

(१) चत्तारि अग्गिसिहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
१. वामा णाममेगा वामावत्ता,
२. वामा णाममेगा दाहिणावत्ता,
३. दाहिणा णाममेगा वामावत्ता,
४. दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।

एवामेव चत्तारि इत्थीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
१. वामा णाममेगा वामावत्ता,
२. वामा णाममेगा दाहिणावत्ता,
३. दाहिणा णाममेगा वामावत्ता,
४. दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।

—ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २८९

[illegible]

९१. कूडागारसाला दिट्ठंतेण इत्थीणं चउभंग परूवणं—

(१) चत्तारि कूडागारसालाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
१. गुत्ता णाममेगा गुत्तदुवारा,
२. गुत्ता णाममेगा अगुत्तदुवारा,
३. अगुत्ता णाममेगा गुत्तदुवारा,
४. अगुत्ता णाममेगा अगुत्तदुवारा।

एवामेव चत्तारि इत्थीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
१. गुत्ता णाममेगा गुत्तिंदिया,
२. गुत्ता णाममेगा अगुत्तिंदिया,
३. अगुत्ता णाममेगा गुत्तिंदिया,
४. अगुत्ता णाममेगा अगुत्तिंदिया।

—ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २७५

९१. कूटागारशाला के दृष्टान्त द्वारा स्त्रियों के चतुर्भंगों का प्ररूपण—

(१) कूटागार शालाएं चार प्रकार की कही गई हैं, यथा—
१. कुछ कूटागार शालाएं गुप्त और गुप्तद्वार वाली होती हैं,
२. कुछ कूटागार शालाएं गुप्त किन्तु अगुप्तद्वार वाली होती हैं,
३. कुछ कूटागार शालाएं अगुप्त किन्तु गुप्तद्वार वाली होती हैं,
४. कुछ कूटागार शालाएं अगुप्त और अगुप्तद्वार वाली होती हैं।

इसी प्रकार स्त्रियाँ भी चार प्रकार की कही गई हैं, यथा—
१. कुछ स्त्रियाँ गुप्त और गुप्तेन्द्रिय वाली होती हैं,
२. कुछ स्त्रियाँ गुप्त किन्तु अगुप्तेन्द्रिय वाली होती हैं,
३. कुछ स्त्रियाँ अगुप्त किन्तु गुप्तेन्द्रिय वाली होती हैं,
४. कुछ स्त्रियाँ अगुप्त और अगुप्तेन्द्रिय वाली होती हैं।

९२. इत्थियादिसु कट्ठाइ दिट्ठंतेण अंतरस्स चउव्विहत्त परूवणं–

(१) चउव्विहे अंतरे पण्णत्ते, तं जहा–
१. कट्ठंतरे,
२. पम्हंतरे,
३. लोहंतरे,
४. पत्थरंतरे।

एवामेव इत्थिए वा पुरिसस्स वा चउव्विहे अंतरे पण्णत्ते, तं जहा–
१. कट्ठंतरसमाणे,
२. पम्हंतरसमाणे,
३. लोहंतरसमाणे,
४. पत्थरंतरसमाणे। –ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २७०

९२. स्त्री आदिकों में काष्ठादि के दृष्टान्त द्वारा अन्तर के चतुर्विधत्व का प्ररूपण–

(१) अन्तर चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. काष्ठान्तर–काष्ठ से काष्ठ का अन्तर-रूप निर्माण की दृष्टि से,
२. पक्ष्मान्तर-धागे से धागे का अन्तर-सुकुमारता आदि की दृष्टि से,
३. लोहान्तर–लोहे से लोहे का अन्तर-छेदन शक्ति की दृष्टि से,
४. प्रस्तरांतर-पत्थर का अन्तर–इच्छा पूर्ण करने की क्षमता आदि की दृष्टि से।

इसी प्रकार स्त्री से स्त्री का, पुरुष से पुरुष का अन्तर भी चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. काष्ठान्तर के समान–विशिष्ट पदवी आदि की दृष्टि से,
२. पक्ष्मान्तर के समान–सुकुमारता आदि की दृष्टि से,
३. लोहान्तर के समान–स्नेह का छेदन करने आदि की दृष्टि से,
४. प्रस्तरांतर के समान-मनोरथ पूर्ण करने की क्षमता आदि की दृष्टि से।

९३. भयगाणं चउप्पगारा–

(१) चत्तारि भयगा पण्णत्ता, तं जहा–
१. दिवसभयए,
२. जत्ताभयए,
३. उच्चत्तभयए,
४. कब्बालभयए। –ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २७१

९३. भृतकों के चार प्रकार

(१) भृतक (श्रमिक) चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. दिवस भृतक-प्रतिदिन का नियत मूल्य लेकर काम करने वाला,
२. यात्रा भृतक-यात्रा में सहयोग करने वाला,
३. उच्चत्व भृतक-घण्टों के अनुपात में मूल्य लेकर काम करने वाला,
४. कब्बाड भृतक-हाथों के अनुपात से धन लेकर भूमि खोदने वाला।

सुतस्स चउप्पगारा–

चत्तारि सुता पण्णत्ता, तं जहा–
१. अइजाए,
२. अणुजाए,
३. अवजाए,
४. कुलिंगाले। –ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २४०

सुत के चार प्रकार–

सुत (पुत्र) चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. अतिजात-पिता से अधिक,
२. अनुजात-पिता के समान,
३. अपजात-पिता से हीन,
४. कुलांगार-कुल के लिए अंगारे जैसा, कुल दूषक, कुलकलंक।

९४. पसप्पगाणं चउप्पगारा–

चत्तारि पसप्पगा पण्णत्ता, तं जहा–
१. अणुप्पन्नाणं भोगाणं उप्पाएत्ता एगे पसप्पए।
२. पुव्वुप्पन्नाणं भोगाणं अविप्पयोगेणं एगे पसप्पए,
३. अणुप्पन्नाणं सोक्खाणं उप्पाएत्ता एगे पसप्पए,
४. पुव्वुप्पन्नाणं सोक्खाणं अविप्पयोगेणं एगे पसप्पए। –ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३३९

९४. प्रसर्पकों के चार प्रकार

प्रसर्पक (प्रयत्न करने वाला) चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ अप्राप्त भोगों की प्राप्ति के लिए प्रसर्पण (प्रयत्न) करते हैं,
२. कुछ पूर्व प्राप्त भोगों के संरक्षण के लिए प्रयत्न करते हैं,
३. कुछ अप्राप्त सुखों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं,
४. कुछ पूर्व प्राप्त सुखों के संरक्षण के लिए प्रयत्न करते हैं।

९५. तरगाणं चउप्पगारा–

(१) चत्तारि तरगा पण्णत्ता, तं जहा–
१. समुद्दं तरामीतेगे समुद्दं तरइ,

९५. तैराकों के चार प्रकार–

(१) तैराक चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ तैराक (साधक) संसार समुद्र को तैरने (पार करने) का संकल्प करते हैं और उसे पार करते हैं,

२. समुद्दं तरामीतेगे गोप्पयं तरइ,

३. गोप्पयं तरामीतेगे समुद्दं तरइ,

४. गोप्पयं तरामीतेगे गोप्पयं तरइ।

(२) चत्तारि तरगा पण्णत्ता, तं जहा–

१. समुद्दं तरेत्ता णाममेगे समुद्दे विसीयइ,

२. समुद्दं तरेत्ता णाममेगे गोप्पए विसीयइ,

३. गोप्पयं तरेत्ता णाममेगे समुद्दे विसीयइ,

४. गोप्पयं तरेत्ता णाममेगे गोप्पए विसीयइ।

–ठाणं अ. ४, उ. ४, सु. ३५१

२. कुछ तैराक समुद्र को पार करने का संकल्प करते हैं परन्तु गोष्पद (लघु जलाशय) को तैरते हैं,

३. कुछ तैराक गोष्पद को पार करने का संकल्प करते हैं परन्तु संसार समुद्र को तैर जाते हैं,

४. कुछ तैराक गोष्पद को तैरने का संकल्प करते हैं और गोष्पद को ही तैरते हैं।

(२) तैराक चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ तैराक सारे समुद्र को तैरकर किनारे पर आकर विषण्ण (हताश) हो जाते हैं,

२. कुछ तैराक समुद्र को तैरकर गोष्पद में हताश हो जाते हैं,

३. कुछ तैराक गोष्पद को तैरकर समुद्र में हताश हो जाते हैं,

४. कुछ तैराक गोष्पद को तैरकर गोष्पद में ही हताश हो जाते हैं।

९६. सत्त विवक्खया पुरिसाणं पंचभंग परूवणं–

पंचविहा पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. हिरिसत्ते,

२. हिरिमणसत्ते,

३. चलसत्ते,

४. थिरसत्ते[1],

५. उदयणसत्ते।

–ठाणं. अ. ५, उ. ३, सु. ४५२

९६. सत्व की विवक्षा से पुरुषों के पाँच भंगों का प्ररूपण–

पुरुष पाँच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. ह्रीसत्व-विकट परिस्थिति में भी लज्जावश कायर न होने वाला,

२. ह्रीमनःसत्व-विकट परिस्थिति में भी मन में कायर न होने वाला,

३. चलसत्व-अस्थिरसत्व वाला,

४. स्थिरसत्व-सुस्थिरसत्व वाला,

५. उदयनसत्व-वृद्धिशील सत्व वाला।

९७. मणुस्साणं छव्विहत्त परूवणं–

छव्विहा मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा–

१. जम्बूद्दीवगा,

२. धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धगा,

३. धायइसंडदीवपच्चत्थिमद्धगा,

४. पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धगा,

५. पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धगा,

६. अंतरदीवगा।

अहवा–छव्विहा मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा–

१. कम्मभूमगा,

२. अकम्मभूमगा,

३. अंतरदीवगा,

४. गब्भवक्कंतियमणुस्सा कम्मभूमगा,

५. अकम्मभूमगा,

६. अंतरदीवगा।

–ठाणं. अ. ६, सु. ४९०

९७. मनुष्यों के छः प्रकारों का प्ररूपण–

मनुष्य छह प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. जम्बूद्वीप में उत्पन्न,

२. धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध में उत्पन्न,

३. धातकीखण्ड द्वीप के पश्चिमार्द्ध में उत्पन्न,

४. अर्धपुष्करवर द्वीप के पूर्वार्द्ध में उत्पन्न,

५. अर्धपुष्करवरद्वीप के पश्चिमार्द्ध में उत्पन्न,

६. अन्तर्द्वीपों में उत्पन्न।

अथवा–मनुष्य छह प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कर्मभूमि में उत्पन्न सम्मूर्च्छिम मनुष्य,

२. अकर्मभूमि में उत्पन्न सम्मूर्च्छिम मनुष्य,

३. अन्तर्द्वीप में उत्पन्न सम्मूर्च्छिम मनुष्य,

४. कर्मभूमि में उत्पन्न गर्भज मनुष्य,

५. अकर्मभूमि में उत्पन्न गर्भज मनुष्य,

६. अन्तर्द्वीपों में उत्पन्न गर्भज मनुष्य।

९८. इड्ढि अणिड्ढिमंत मणुस्साणं छव्विहत्त परूवणं–

छव्विहा इड्ढिमंता मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अरहंता, २. चक्कवट्टी,

३. बलदेवा, ४. वासुदेवा,

५. चारणा, ६. विज्जाहरा[2]।

९८. ऋद्धि-अनृद्धिमंत मनुष्यों के छः प्रकारों का प्ररूपण–

ऋद्धिमन्त मनुष्य छह प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. अर्हन्त, २. चक्रवर्ती,

३. बलदेव, ४. वासुदेव

५. चारण, ६. विद्याधर।

---

१. ठाणं अ. ४, उ. ३, सु. ३३१

२. ठाणं. अ. ५, उ. २, सु. ४४० में पाँच प्रकार बताये हैं उनमें प्रारंभ के ४ समान हैं किन्तु पाँचवाँ भेद भावितात्मा अणगार है।

छव्विहा अणिड्ढीमंता मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा–
१. हेमवयगा, २. हेरण्णवयगा,
३. हरिवासगा, ४. रम्मगवासगा,
५. कुरुवासिणो, ६. अंतरदीवगा।
–ठाणं. अ. ६, सु. ४९१

अनृद्धिमन्त मनुष्य छह प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. हैमवत क्षेत्रोत्पन्न, २. हैरण्यवत क्षेत्रोत्पन्न,
३. हरिवर्षोत्पन्न, ४. रम्यक्वर्षोत्पन्न,
५. कुरुवर्षोत्पन्न, ६. अंतर्द्वीपोत्पन्न।

९९. णेउणिया पुरिसाणं पगारा–

णव णेउणिया वत्थू पण्णत्ता, तं जहा–
१. संखाणे,
२. णिमित्ते,
३. काइया,
४. पोराणे,
५. पारिहत्थिए,
६. परपंडिए,
७. वाई य,
८. भूइकम्मे,
९. तिगिच्छिए। –ठाणं अ. ९, सु. ६७९

९९. नैपुणिक पुरुषों के प्रकार–

नैपुणिक वस्तु (पुरुष) नौ प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. संख्यान-गणित को जानने वाला,
२. नैमित्तक-निमित्त को जानने वाला,
३. कायिक-प्राण तत्वों को जानने वाला,
४. पौराणिक-इतिहास को जानने वाला,
५. पारिहस्तिक-स्वभाव से ही समस्त कार्यों में दक्ष,
६. परपण्डित-अनेक शास्त्रों को जानने वाला,
७. वादी-वाद-लब्धि से सम्पन्न,
८. भूतिकर्म-भस्मलेप या डोरा बाँधकर ज्वर आदि की चिकित्सा करने वाला,
९. चिकित्सा-चिकित्सा करने वाला।

१००. पुत्ताणं दस पगारा–

दस पुत्ता पण्णत्ता, तं जहा–
१. अत्तए,
२. खेत्तए,
३. दिन्नए,
४. विन्नए,
५. ओरसे,
६. मोहरे,
७. सौंडीरे,
८. संवुड्ढे,
९. ओवयाइए,
१०. धम्मंतेवासी। –ठाणं. अ. १०, सु. ७६२

१००. पुत्रों के दस प्रकार–

पुत्र दस प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. आत्मज-अपने पिता से उत्पन्न।
२. क्षेत्रज-नियोग जन्य विधि से उत्पन्न।
३. दत्तक-गोद लिया हुआ।
४. विज्ञक-विद्या-शिष्य।
५. औरस-स्नेहवश स्वीकृत पुत्र।
६. मौखर-वाक्पटुता के कारण पुत्र रूप में स्वीकृत
७. शौंडीर-पराक्रम के कारण पुत्र रूप में स्वीकृत।
८. संवर्द्धित-पोषित अनाथ पुत्र।
९. औपयाचितक-देव आराधना से उत्पन्न पुत्र या सेवक।
१०. धर्मान्तेवासी-धर्म शिष्य।

१०१. एगोरुय दीव मणुयाणं आयारभाव पडोयाराइ परूवणं–

प. एगोरुयदीवे णं भन्ते! दीवे मणुयाणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! ते णं मणुस्सा अणुवमतरसोमचारुरूवा, भोगुत्तमगयलक्खणा, भोगसस्सिरीया,

सुजाय सव्वंगसुंदरंगा,
सुपइट्ठिय कुम्मचारुचलणा,
रत्तुप्पल-पत्तमउय-सुकुमाल-कोमलतला,

नगनगर-सागर-मगर-चक्कंक-वरंक-लक्खणंकिय चलणा,
अणुपुव्व सुसंहतंगुलीया,
उन्नतं तणु तंबणिद्धणखा,

१०१. एकोरुक द्वीप के पुरुषों के आकार-प्रकारादि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! एकोरुकद्वीप में मनुष्यों का आकार प्रकारादि का स्वरूप कैसा कहा गया है?

उ. गौतम ! वे मनुष्य अनुपम सौम्य और सुन्दर रूप वाले हैं। उत्तम भोगों के सूचक लक्षणों वाले हैं, भोगजन्य शोभा से युक्त हैं।

उनके अंग जन्म से ही श्रेष्ठ और सर्वांग सुन्दर हैं।

पांव–सुप्रतिष्ठित सुन्दर और कछुए की तरह उन्नत हैं।

पांवों के तलुवे–रक्त कमल के पत्ते के समान मृदु मुलायम और कोमल हैं।

चरणों–में पर्वत, नगर, समुद्र, मगर, चक्र, चन्द्रमा आदि के चिन्ह हैं।

चरणों की अंगुलियां–क्रमशः वड़ी छोटी और मिली हुई हैं।

अंगुलियों के नख–उन्नत पतले ताम्रवर्ण की कांति वाले एवं स्निग्ध हैं।

संठिय सुसिलिट्ठगूढगुप्फा,
एणी कुरुविंदावत्तवट्टाणुपुव्वजंघा,

समुग्गणिमग्गगूढजाणू,
गयससणसुजात सण्णिभोरू,
वरवारणमत्ततुल्ल विक्कम विलसियगई,
सुजातवरतुरग गुज्झदेसा,
आइण्णहओव्व णिरुवलेवा,
पमुइय वर तुरियसीह अतिरेग वट्टियकडी,

सोहयसोणिंद मूसल दप्पणणिगरित वरकणगच्छ-सरिसवर वइरपलिय मज्झा,

उज्जुयसमसहित सुजात जच्चतणुकसिणणिद्ध आदेज्ज लडह सुकुमाल मउय रमणीज्जरोमराई,

गंगावत्त पयाहिणावत्त तरंग भंगुर रविकिरण तरुण बोधित अकोसायंत पउम गम्भीर वियडनाभी,

झसविहग सुजात पीणकुच्छी,

झसोयरा,
सुइकरणा,
पम्हवियडनाभी,
सण्णयपासा, संगतपासा, सुंदरपासा, सुजातपासा, मितमाइय पीणरइयपासा,
अकरुंडय-कणग-रूयग-निम्मल सुजाय निरुवहयदेहधारी,
पसत्थबत्तीस लक्खणधरा,
कणगसिलातलुज्जल पसत्थ समतलोविचिय विच्छिन्न पिहुलवच्छा,
सिरिवच्छंकिवच्छा,
पुरवर-फलिह वट्टियभुजा,
भुयगीसर विपुलभोग आयाण फलिह उच्छूढ दीहबाहु,

जुगसन्निभ पीणरइयपीवर पउट्ठसंठिय सुसिलिट्ठ विसिट्ठ घण-थिर-सुबद्ध सुनिगूढ-पव्वसंधी।

रत्ततलोवइय मउयमंसल पसत्थ लक्खण सुजाय अच्छिद्दजालपाणी,

पीवरवट्टिय सुजाय कोमल वरंगुलीया,
तंवतलिन सुचिरुइरणिद्ध णक्खा,

गुल्फ–(टखने) संस्थित प्रमाणोपेत घने और गूढ़ हैं।

पिण्डलियां–हरिणी और कुरुविंद (तृणविशेष) की तरह क्रमशः स्थूल-स्थूलतर और गोल हैं।

घुटने–संपुट में रखे हुए की तरह गूढ़ हैं।

उरू–जांघें हाथी की सूंड की तरह सुन्दर, गोल और पुष्ट हैं।

चाल–श्रेष्ठ मदोन्मत्त हाथी की तरह है।

गुह्यदेश–श्रेष्ठ घोड़े की तरह सुगुप्त है तथा आकीर्णक अश्व की तरह मलमूत्रादि के लेप से रहित है।

कमर–यौवन प्राप्त श्रेष्ठ घोड़े और सिंह की कमर जैसी पतली और गोल है।

कमर का मध्य भाग–संकुचित की गई तिपाई, मूसल, दर्पण का दण्डा और शुद्ध किये हुए सोने की मूठ से युक्त श्रेष्ठ वज्र की तरह है।

रोमराजि–सरल-सम-सघन-सुन्दर श्रेष्ठ, पतली, काली, स्निग्ध, आदेय (योग्य) लावण्यमय, सुकुमार, सुकोमल और रमणीय है।

नाभि–गंगा के आवर्त की तरह दक्षिणावर्त, तरंग की तरह वक्र और सूर्य की उगती किरणों से खिले हुए कमल की तरह गंभीर और विशाल है।

कुक्षि (उदर)–मत्स्य और पक्षी की तरह सुन्दर और पुष्ट हैं।

पेट–मछली की तरह कृश है।

इन्द्रियां–पवित्र हैं।

नाभि–कमल के समान विशाल है।

पार्श्वभाग–नीचे नमे हुए प्रमाणोपेत, सुन्दर अति सुन्दर, परिमित माप युक्त स्थूल और आनन्द देने वाले हैं।

रीढ़ की हड्डी–अनुलक्षित है, उनका शरीर कंचन की तरह कांति वाला निर्मल सुंदर और निरूपहत (स्वस्थ) है।

वे शुभ बत्तीस लक्षणों से युक्त हैं।

वक्षःस्थल–कंचन की शिलातल जैसा उज्वल, प्रशस्त, समतल, पुष्ट विस्तीर्ण और मोटा है।

छाती-पर श्रीवत्स का चिन्ह अंकित है।

भुजाएँ–नगर की अर्गला के समान लम्बी है।

बाहु–शेषनाग के विपुल (लम्बे) शरीर तथा उठाई हुई अर्गला के समान लम्बे हैं।

हाथों की कलाइयां–(प्रकोष्ठ) जूए के समान दृढ़ पुष्ट सुस्थित सुश्लिष्ट (सघन) विशिष्ट घन, स्थिर, सुबद्ध और निगूढ़ पर्वसन्धियों वाली है।

हथेलियां–लाल वर्ण की, पुष्ट, कोमल, मांसल, प्रशस्त लक्षणयुक्त सुन्दर और छिद्र जाल रहित अंगुलियां वाली हैं।

हाथों की अंगुलियां–पुष्ट, गोल, सुजात और कोमल हैं।

नख–ताम्रवर्ण के पतले, स्वच्छ मनोहर और स्निग्ध होते हैं।

चंदपाणिलेहा, सूरपाणिलेहा, संखपाणिलेहा, चक्कपाणिलेहा, दिसासोत्थिय पाणिलेहा, चंद-सूर-संख-चक्क-दिसासोत्थिय **पाणिलेहा**,

हाथों में रेखाएँ–चन्द्ररेखा, सूर्यरेखा, शंखरेखा, चक्ररेखा, दक्षिणावर्त स्वस्तिकरेखा, चन्द्र, सूर्य-शंख-चक्रदक्षिणावर्त स्वस्तिक की मिलीजुली होती हैं।

अणेगवर लक्खणुत्तम पसत्थरइय **पाणिलेहा**,

हाथ–अनेक श्रेष्ठ, लक्षण युक्त उत्तम, प्रशस्त, स्वच्छ, आनन्दप्रद रेखाओं से युक्त हैं।

वरमहिस वराहसीह सद्दूल उसभणागवर पडिपुन्न विउल उन्नत **खंधा**,

स्कंध–श्रेष्ठ भैंसा, शूकर, सिंह, शार्दूल, (व्याघ्र) बैल और हाथी के स्कंध की तरह प्रतिपूर्ण, विपुल और उन्नत हैं।

चउरंगुल सुप्पमाणा कंबुवर सरिस**गीवा**,

ग्रीवा–चार अंगुल प्रमाण ऊँची श्रेष्ठ शंख के समान है।

अवट्ठित सुविभत्तसुजात चित्तमंसुमंसल संठिय पसत्थ सद्दूलविपुल **हणुया**,

ठुड्ढी (होठों के नीचे का भाग) अवस्थित सुविभक्त सुन्दररूप से उत्पन्न दाढी के वालों से युक्त, सुन्दर संस्थान युक्त, प्रशस्त और व्याघ्र की विपुल ठुड्ढी के समान है।

ओतविय सिलप्पवाल बिंबफल सन्निभाह**रोट्ठा**,

होठ–परिकर्मित शिलाप्रवाल और बिंबफल के समान लाल हैं।

पंडुर-ससि सगल विमल निम्मल संखगोखीर फेण दगरय मुणालिया धवल दंतसेढी, अखंडदंता अफुडियदंता अविरलदंता सुजातदंता एगदंतसेढिव्व **अणेगदंता**,

दांत–सफेद चन्द्रमा के टुकड़ों जैसे निर्मल हैं और शंख, गाय का दूध, फेन, जलकण और मृणालिका के तंतुओं के समान सफेद हैं, उनके दांत अखण्डित होते हैं, टूटे हुए नहीं होते हैं, अलग-अलग नहीं होते हैं, वे सुन्दर दांत वाले हैं, उनके दांत अनेक होते हुए भी एक दंत पंक्ति जैसे दिखाई देते हैं।

हुतवह निद्धंतधोत तत्ततव णिज्जरत्ततल**तालुजीहा**,

जीभ और तालु–अग्नि में तपाकर धोये गये और पुनः तप्त किये गये तपनीय स्वर्ण के समान लाल हैं।

गरुलायय उज्जुतुंग **णासा**,

नासिका–गरूड़ की नासिका जैसी लम्बी, तीखी और ऊँची होती है।

अवदालिय पोंडरीयनयणा कोकासितधवलपत्त**लच्छा**,

आँखें–सूर्यकिरणों से विकसित नील कमल जैसी होती हैं तथा वे खिले हुए श्वेत कमल जैसी कोनों पर लाल, बीच में काली और सफेद तथा पक्ष्मपुट वाली होती है।

आणामिय चावरुइर किण्हब्भराइ य संठिय संगय आयत सुजात तणुकसिणनिद्ध **भमुया**,

भौंहें–ईषत् आरोपित धनुष के समान वक्र, रमणीय, कृष्ण, मेघराजि की तरह काली, संगत (प्रमाणोपेत) दीर्घ, सुजात, पतली, काली और स्निग्ध होती है।

अल्लीणप्पमाणजुत्त सवणा **सुस्सवणा**,

कान–मस्तक के भाग तक कुछ-कुछ लगे हुए और प्रमाणोपेत हैं। वे सुन्दर कानों वाले हैं, अर्थात् भली प्रकार श्रवण करने वाले हैं।

पीणमंसल **कवोलदेसभागा**,

कपोल–(गाल) पीन और मांसल होते हैं।

अचिरुग्गय बालचंदसंठिय पसत्थ विच्छिन्न**समणिडाला**

ललाट–उदित वालचन्द्र जैसा प्रशस्त, विस्तीर्ण और समतल होता है।

उडुवइपडिपुण्णसो**मवदणा**,

मुख–पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसा सौम्य होता है।

छत्तागारुत्तमंगदेसा, घणनिचिय सुबद्ध लक्खपुण्णय कूडागारणिभपिंडियसीसे,

मस्तक–छत्राकार और उत्तम लक्षणों वाला, कूटाकार (पर्वत शिखर) की तरह उन्नत और पाषाण की पिण्डी की तरह गोल और मजबूत होता है।

दाडिमपुप्फपगास तवणिज्जसरिस निम्मल सुजाय केसंत **केसभूमी**,

खोपड़ी की चमड़ी–केशान्तभूमि (दाडिम के फूल की तरह लाल, तपनीय सोने के समान, निर्मल और सुन्दर होती है।

सामलिय बोंड घणणिचिय छोडिय मिउ विसयपसत्थ सुहुम लक्खण सुगंध सुन्दर भुयमोयग भिंगिणीलकज्जल पहट्ठ भमरगण णिद्धणिकुरंब निचियकुंचियपयाहिणावत्तमु**द्धसिरया**,

मस्तक के वाल खुले–किये जाने पर भी शाल्मलि वृक्ष के फल की तरह घने और निविड़ होते हैं, वे वाल मृदु, निर्मल, प्रशस्त, सूक्ष्म, लक्षणयुक्त, सुंगन्धित, सुन्दर भुजभोचक (रत्नविशेष) नीलमणि (मरकतमणि) भंवरी, नील और काजल के समान काले, हर्षित भ्रमरों के समान अत्यन्त-काले स्निग्ध और निचित जमे हुए होते हैं, वे घुंघराले और दक्षिणावर्त होते हैं।

लक्खणवंजणगुणोववेया सुजाय सुविभत्त सुरूवगा पासाइया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

ते णं मणुया हंसस्सरा कोंचस्सरा नंदिघोसा सीहस्सरा सीहघोसा मंजुस्सरा मंजुघोसा सुस्सरा सुस्सरनिग्घोसा छायाउज्जोतियंगमंगा,

वज्जरिसभनारायसंघयणा, समचउरंससंठाणसंठिया, सिणिद्धछवी णिरायंका, उत्तमपसत्थ अइसेसनिरुवमतणू,
जल्लमलकलंक सेयरयदोस वज्जियसरीरा,

अणुलोमवाउवेगा कंकणग्गहणी निरुवलेवा,

कवोतपरिणामा,
सउणिव्व पोसचिट्ठंतरोरूपरिणया,

विग्गहिय उन्नयकुच्छी,
पउमुप्पलसरिस गंधणिस्सास सुरभिवदणा,
अट्ठधणुसयं ऊसिया।

तेसिं मणुयाणं चउसट्ठिं पिट्ठिकरंडगा पण्णत्ता, समणाउसो !

ते णं मणुया पगइभद्दगा, पगइविणीयगा, पगइउवसंता, पगइपयणु कोह-माण-माया-लोभा मिउमद्दव संपण्णा अल्लीणा भद्दगा विणीया अप्पिच्छा असंनिहिसंचया अचंडा विडिमंतरपरिवसणा जहिच्छिय कामगमिणो य ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो !

प. तेसिं णं भन्ते ! मणुयाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा ! चउत्थभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

–जीवा. पडि. ३, सु. १११/१३

वे मनुष्य लक्षण, व्यंजन और गुणों से युक्त होते हैं, वे सुन्दर और सुविभक्त स्वरूप वाले होते हैं। वे प्रसन्नता पैदा करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप होते हैं।

वे मनुष्य हंस जैसे स्वर वाले, क्रौंच जैसे स्वर वाले, नंदी (बारह वाद्यों का सम्मिश्रित स्वर) जैसे घोष करने वाले, सिंह के समान स्वर वाले और गर्जना वाले, मधुर स्वर वाले, मधुर घोष वाले, सुस्वर वाले, सुस्वर और सुघोष वाले, अंग-अंग में कान्ति वाले,

वज्रऋषभनाराचसंहनन वाले, समचतुरस्रसंस्थान वाले, स्निग्धछवि वाले, रोगादि रहित, उत्तम प्रशस्त अतिशययुक्त और निरुपम शरीर वाले,

स्वेद (पसीना) आदि मेल के कलंक से रहित और स्वेद-रज आदि दोषों से रहित शरीर वाले,

उपलेप से रहित, अनुकूल वायु वेग वाले, कंक पक्षी की तरह निर्लेप गुदाभाग वाले,

कबूतर की तरह सब पचा लेने वाले,

पक्षी की तरह मलोत्सर्ग के लेप से रहित अपानदेश वाले, सुन्दर पृष्ठभाग उदर और जंघा वाले,

उन्नत और मुष्टिग्राह्य कुक्षि वाले,

पद्म कमल जैसी सुगंधयुक्त श्वासोच्छ्वास से सुगंधित मुख वाले और एक सौ आठ धनुष की ऊँचाई वाले मनुष्य होते हैं।

हे आयुष्मन् श्रमण! उन मनुष्यों के चौंसठ पृष्ठकरंडक (पसलियाँ) कही गई हैं।

वे मनुष्य स्वभाव से भद्र, स्वभाव से विनीत, स्वभाव से शान्त, स्वभाव से अल्प क्रोध-मान माया-लोभ वाले, मृदुता और मार्दव से सम्पन्न होते हैं, अल्लीन (संयत चेष्टा वाले) हैं, भद्र, विनीत, अल्प इच्छा वाले, संचय-संग्रह न करने वाले, क्रूर परिणामों से रहित, वृक्षों की शाखाओं के अन्दर रहने वाले तथा इच्छानुसार विचरण करने वाले हैं।

हे आयुष्मन् श्रमण! वे एकोरुकद्वीप के मनुष्य कहे गए हैं।

प्र. भन्ते ! उन मनुष्यों को कितने काल के अन्तर से आहार की अभिलाषा होती है ?

उ. गौतम ! उन मनुष्यों को चतुर्थभक्त अर्थात् एक दिन छोड़कर दूसरे दिन आहार की अभिलाषा होती है।

१०२. एगोरुय दीवस्स इत्थियाणं आयारभाव पडोयार परूवणं–

प. एगोरुयमणुई णं भन्ते ! केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! ताओ णं मणुईओ सुजायसव्वंगसुंदरीओ, पहाणमहिलागुणेहिं जुत्ता,

अच्चंत विसप्पमाणा पउम सुमाल कुम्मसंठिय विसिट्ठ चलणाओ,

उज्जुमिउय पीवर निरंतर पुट्ठ सोहियंगुलीओ,

उन्नयरइय तलिणतंबसुइणिद्धणखा,

रोमरहित वट्ट लट्ठ संठियअजहण्ण पसत्थ लक्खण अकोप्पजंघयुगला,

१०२. एकोरुक द्वीप की स्त्रियों के आकार-प्रकारादि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! इस एकोरुक-द्वीप की स्त्रियों का आकार-प्रकार भाव कैसा कहा गया है ?

उ. गौतम ! वे स्त्रियाँ श्रेष्ठ अवयवों द्वारा सर्वांग सुन्दर हैं, महिलाओं के श्रेष्ठ गुणों से युक्त हैं।

चरण–अत्यन्त विकसित पद्म कमल की तरह सुकोमल और कछुए की तरह उन्नत होने से सुन्दर आकार के हैं।

पाँवों की अंगुलियाँ–सीधी, कोमल, स्थूल, निरन्तर पुष्ट और मिली हुई हैं।

नख–उन्नत, रति देने वाले, तलिन (पतले) ताम्र जैसे रक्त, स्वच्छ एवं स्निग्ध हैं।

पिण्डलियाँ–रोम रहित, गोल, सुन्दर सुस्थित, उत्कृष्ट शुभलक्षणवाली और प्रीतिकर होती हैं।

सुणिम्मिय सुगूढजाणुमंडलसुबद्धसंधी	घुटने–सुनिर्मित सुगूढ और सुबद्धसंधि वाले हैं।
कयलिक्खभातिरेग संठियणिव्वण सुकुमाल मउयकोमल अविरल समसहितसुजात वट्ट पीवरणिरंतरोरू,	जंघाएं–कदली के स्तम्भ से भी अधिक सुन्दर व्रणादि रहित, सुकोमल, मृदु, कोमल, समीप समान प्रमाणवाली, सुजात, गोल, मोटी एवं अन्तररहित हैं।
अट्ठावयवी चिपट्टसंठिय पसत्थ विच्छिन्न **पिहुलसोणी,**	**नितम्बभाग**–अष्टापद द्यूत के पट्ट के आकार का शुभ विस्तीर्ण और मोटा है।
वदणायामप्पमाणदुगुणित विसाल मंसल सुबद्ध **जहणवर** धारणीओ,	**जघन प्रदेश**–(बारह अंगुल) मुख प्रमाण से दूना चौवीस अंगुलप्रमाण विशाल, मांसल एवं सुबद्ध है।
वज्जविराइय पसत्थलक्खणणिरोदरा,	पेट–वज्र की तरह सुशोभित शुभ लक्षणों वाला और पतला होता है।
तिवली वलियतणुणमिय **मज्झिमाओ,**	कमर–त्रिवली से युक्त, पतली और लचीली होती है।
उज्जुय समसंहित जच्चतणु कसिण गिद्धआदेज्ज लडह सुविभत्त सुजात कंतसोभंत रुइल रमणिज्जरोमराई,	रोमराजि–सरल मिली हुई जन्मजात पतली, काली, स्निग्ध, सुहावनी सुन्दर सुविभक्त सुजात (जन्मदोषरहित) कांत, शोभायुक्त रुचिकर और रमणीय होती हैं।
गंगावत्त पदाहिणावत्त तरंग भंगुररविकिरण तरुणबोधित अकोसायंत पउमवणगंभीर वियड**नाभी,**	**नाभि**–गंगा के आवर्त की तरह दक्षिणावर्त, तरंग भंगुर सूर्य की किरणों से ताजे विकसित हुए कमल की तरह गंभीर और विशाल है।
अणुब्भडपसत्थ पीण**कुच्छी,**	कुक्षि–उग्रता रहित प्रशक्त और स्थूल हैं।
सण्णयपासा, संगयपासा, सुजातपासा, मितमाइयपीण रइयपासा,	पार्श्व–कुछ झुके हुए हैं, प्रमाणोपेत हैं, सुन्दर हैं, अति सुन्दर हैं, परिमितमाप युक्त स्थूल और आनन्द देने वाले हैं।
अकरंडुय कणगरुयग निम्मल सुजाय णिरुवहय **गायलट्ठी,**	रीड की हड्डी–अनुपलक्षित हैं, उनका शरीर सोने जैसी कान्तिवाला, निर्मल, सुन्दर और ज्वरादि उपद्रवों से रहित है।
कंचणकलससमपमाण समसंहितसुजात लट्ठ चूचुय आमेलग जमल जुगल वट्टि य अब्भुण्णयरइयसंठिय **पयोधराओ,**	**पयोधर (स्तन)**–सोने के कलश के समान प्रमाणोपेत समान आकार वाले सहोत्पन्न चिकने चूचुक रूपी मुकुट से युक्त सहजात गोल उन्नत (उठे हुए) और आकार-प्रकार से प्रीतिकर हैं।
भुयंगणुपुव्वतणुयगोपुच्छ वट्ट समसंहिय णमिय आएज्ज ललिय **बाहाओ,**	दोनों बाहें–भुजंग की तरह क्रमशः नीचे की ओर पतली, गोपुच्छ की तरह गोल, आपस में समान, अपनी-अपनी संधियों से सटी हुई, नम्र और अतिआदेय तथा सुन्दर होती हैं।
तंबणहा,	नख–ताम्रवर्ण के होते हैं।
मंसलग्गहत्था,	हाथ–मांसल होता है।
पीवरकोमल **वरंगुलीओ,**	अंगुलियां–पुष्ट, कोमल और श्रेष्ठ होती हैं।
णिद्धपाणिलेहा,	हाथ की रेखायें–स्निग्ध होती हैं।
रवि-ससि-संख-चक्कसोत्थिय-सुविभत्तसुविरइय **पाणिलेहा,**	रेखाएँ–सूर्य-चन्द्र-,शंख-, चक्र-, स्वस्तिक की अलग-अलग और सुविरचित हैं।
पीणुण्णय **कक्खवत्थिदेसा,**	कक्ष और वस्ति–पीन और उन्नत होता है।
पडिपुण्णगल्लकवोला,	गाल–कपोल भरे-भरे होते हैं।
चउरंगुलप्पमाणा कंबुवर सरिसगीवा,	गर्दन–चार अंगुल प्रमाण ऊँची और श्रेष्ठ शंख की तरह होती है।
मंसलसंठिय पसत्थ हणुया,	ठुड्डी–मांसल, सुन्दर आकार की तया शुभ होती है।
दाडिमपुप्फप्पगास पीवरकुंचियवराधरा सुंदरोत्तरोट्ठा,	दोनों होठ–दाड़िम के फूल की तरह लाल आभा वाले पुष्ट और कुछ-कुछ वलित होने से अच्छे लगते हैं।
दधिदगरय चंदकुंद वासंतिमउल अच्छिद्द-विमलदसणा,	दांत–दही, जलकण, चन्द्रकुंद वासंतीकली के समान सफ़ेद और छेद विहीन होते हैं।

रत्तुप्पल पत्तमउल सुकुमाल तालुजीहा,

कणयवरमुउलअकुडिल अब्भुग्गय उज्जुतुंगनासा,

सारदनवकमलकुमुदकुवलय विमुक्कदलणिगर सरिस लक्खण अंकियकंतणयणा,

पत्तल चवलायंततंबलोयणाओ,

आणामिय चावरुइलकिण्हब्भराइसंठिय संगत आयय सुजाय कसिण णिद्धभमुया,

अल्लीणपमाणजुत्तसवणा,
पीणमट्ठरमणिज्ज गंडलेहा,

चउरंस पसत्थसमणिडाला,
कोमुइरयणिकरविमल पडिपुन्नसोमवयणा,

छत्तुन्नयउत्तमंगा,
कुडिलसुसिणिद्धदीहसिरया,

१. छत्त, २-३. ज्झय-जुग, ४. थूभ, ५. दामिणि, ६. कमंडलु, ७. कलस ८. वावि, ९. सोत्थिय, १०. पडाग, ११. जव, १२. मच्छु, १३. कुम्भ, १४. रहवर, १५. मकर, १६. सुकथाल, १७. अंकुस, १८. अट्ठावइवीइ, १९. सुपइट्ठक, २०. मयूर, २१. सिरिदाम, २२. अभिसेय, २३. तोरण, २४. मेइणि, २५. उदधि, २६. वरभवण, २७. गिरिवर, २८. आयंस, २९. ललियगय, ३०. उसभ, ३१. सीह, ३२. चमरउत्तमपसत्थ-बत्तीसलक्खण धराओ,
हंससरिसगईओ,
कोइलमधुरगिरसस्सराओ कंता सव्वस्स अणुनयाओ,

ववगतवलिपलिया,

वंगदुव्वण्णवाहिदोभग्गसोगमुक्काओ,

उच्चत्तेण य नराण थोवूणमूसियाओ,
सभावसिंगारागारचारुवेसा,
संगयगतहसितभाणिय-चेट्ठियविलाससंलावणिउण जुत्तोवयारकुसला,
सुंदरथणजहणवदण करचलणनयणमाला,

तालु और जीभ–लाल कमल के पत्ते के समान लाल, मृदु और कोमल होते हैं।

नासिका–कनेर की कली की तरह सीधी, उन्नत, ऋजु और तीखी होती है।

नेत्र–शरदऋतु के कमल कुमुद और नीलकमल से विमुक्त पत्र दल के समान कुछ श्वेत कुछ लाल और कुछ कालिमा लिये हुए और बीच में काली पुतलियों से अंकित होने से सुन्दर लगते हैं।

लोचन–पश्मपुटयुक्त, चंचल, कान तक लम्बे और ईषत् रक्त (ताम्रवत्) होते हैं।

भौंहें–कुछ नमे हुए धनुष की तरह टेढ़ी, सुन्दर, काली और मेघराजि के समान प्रमाणोपेत, लम्बी, सुजात, काली और स्निग्ध होती हैं।

कान–मस्तक से सटे हुए और प्रमाणयुक्त होते हैं।

गंडलेखा–(गाल और कान के बीच का भाग) मांसल चिकनी और रमणीय होती हैं।

ललाट–चौरस प्रशस्त और समतल होता है।

मुख–शरद् पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह निर्मल और परिपूर्ण होता है।

मस्तक–छत्र के समान उन्नत होता है।

वाल–घुंघराले, चिकने और लम्बे होते हैं।

वे निम्नांकित वत्तीस लक्षणों को धारण करने वाली हैं–

१. छत्र, २. ध्वजा, ३. युग, (जुआ), ४. स्तूप, ५. दामिनी (पुष्पमाला) ६. कमण्डलु, ७. कलश, ८. वापी (बावड़ी), ९. स्वस्तिक, १०. पताका, ११. यव, १२. मत्स्य, १३. कुम्भ, १४. श्रेष्ठरथ, १५. मकर, १६. शुकस्थाल, (तोते को चुगाने का पात्र) १७. अंकुश, १८. अष्टापदवीचि (द्यूतफलक) १९. सुप्रतिष्ठक, २०. मयूर, २१. श्रीदाम, २२. अभिषेक की जाती हुई लक्ष्मी, २३. तोरण, २४. मेदिनी, २५. समुद्र, २६. श्रेष्ठ भवन, २७. श्रेष्ठ पर्वत, २८. दर्पण, २९. मनोज्ञ हाथी, ३०. बैल, ३१. सिंह और ३२. चमर।

वे एकोरूक द्वीप की स्त्रियाँ हंस के समान चाल वाली हैं।

कोयल के समान मधुर वाणी और स्वर वाली, कमनीय और सबको प्रिय लगने वाली हैं।

उनके शरीर में झुर्रियाँ नहीं पड़तीं और बाल सफेद नहीं होते।

वे व्यंग (विकृति वर्ण विकार) व्याधि, दौर्भाग्य और शोक से मुक्त होती हैं।

वे ऊँचाई में मनुष्यों की अपेक्षा कुछ कम ऊँची होती हैं।

वे स्वाभाविक शृंगार और श्रेष्ठ वेश वाली होती हैं।

वे सुन्दर चाल, हास, बोलचाल, चेष्टा, विलास, संलाप में चतुर तथा योग्य उपचार व्यवहार में कुशल होती हैं।

उनके स्तन, जघन, मुख, हाथ, पांव और नेत्र बहुत सुन्दर होते हैं।

वण्णलावण्णजोवणविलासकलिया,
नंदणवण विवरचारिणीउव्व अच्छराओ
अच्छेरगपेच्छणिज्जा, पासाईयाओ,
दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ पडिरूवाओ।

प. तासिं णं भन्ते ! मणुईणि केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा ! चउत्थभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

–जीवा. पडि. ३, सु. १११/१४

१०३. एगोरुय दीवस्स मणुस्साणं आहारमावासाई परूवणं–

प. ते णं भन्ते ! मणुया किमाहारमाहारेंति ?

उ. गोयमा ! पुढविपुप्फफलाहारा ते मणुयगणा पण्णत्ता, समणाउसो !

प. तीसे णं भन्ते ! पुढवीए केरिसए आसाए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! से जहाणामए गुलेइ वा, खंडेइ वा, सक्कराइ वा, मच्छंडियाइ वा, भिसकंदेइ वा, पप्पडमोयएइ वा, पुप्फउत्तराइ वा, पउमउत्तराइ वा, अकोसियाइ वा, विजयाइ वा, महाविजयाइ वा, आयंसोवमाइ वा, अणोवमाइ वा, चाउरक्के गोखीरे चउठाण परिणए गुडखंडमच्छंडि उवणीए मंदग्गिकडीए वण्णेणं उववेए जाव फासेणं, भवेयारूवे सिया ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, तीसे णं पुढवीए एत्तो इट्ठतराए चेव जाव मणामतराए चेव आसाए णं पण्णत्ते।

प. तेसि णं भन्ते ! पुप्फफलाणं केरिसए आसाए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! से जहानामए चाउरंतचक्कवट्टिस्स कल्लाणे पवरभोयणे सयसहस्सनिप्फन्ने वण्णेणं उववेए जाव फासेणं उववेए आसाइणिज्जे, वीसाइणिज्जे, दीवणिज्जे, विंहणिज्जे, दप्पणिज्जे, मयणिज्जे सव्विंदियगायपल्हायणिज्जे भवेयारूवे सिया ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, तेसि णं पुप्फफलाणं एत्तो इट्ठतराए चेव जाव मणामतराए चेव आसाएणं पण्णत्ते।

प. ते णं भन्ते ! मणुया तमाहारमाहारित्ता कहिं वसहिं उवेंति ?

उ. गोयमा ! रुक्खगेहालया णं ते मणुयगणा पण्णत्ता, समणाउसो !

प. ते णं भन्ते ! रुक्खा किं संठिया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! कूडागारसंठिया, पेच्छाघरसंठिया, छत्तागारसंठिया, झयसंठिया, थूभसंठिया,

वे सुन्दर वर्ण, लावण्य यौवन और विलास से युक्त होती हैं।
नंदनवन में विचरण करने वाली अप्सराओं की तरह वे उत्सुकता से दर्शनीय हैं।
वे स्त्रियाँ मन को प्रसन्न करने वाली दर्शनीय अभिरूप और प्रतिरूप हैं।

प्र. भन्ते ! उन स्त्रियों को कितने काल के अन्तर से आहार की अभिलाषा होती है ?

उ. गौतम ! चतुर्थभक्त अर्थात् एक दिन छोड़कर दूसरे दिन आहार की इच्छा होती है।

१०३. एकोरुक द्वीप के मनुष्यों के आहार-आवास आदि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! वे मनुष्य किसका आहार करते हैं ?

उ. हे आयुष्मन् श्रमण ! वे मनुष्य पृथ्वी, पुष्प और फलों का आहार करने वाले कहे गए हैं।

प्र. भन्ते ! उस पृथ्वी का स्वाद कैसा है ?

उ. गौतम ! जैसे गुड़, खांड, शक्कर, मिश्री, मृणाल कन्द, पर्पटमोदक, पुष्पोत्तर, शक्कर, कमलोत्तर शक्कर अकोशिता, विजया, महाविजया, आदर्शोपमा, अनोपमा अथवा चार बार परिणत एवं चतुःस्थान परिणत गाय का दूध, जौ, गुड, शक्कर, मिश्री मिलाया हुआ मंदाग्नि पर पकाया हुआ तथा शुभवर्ण यावत् शुभस्पर्श से युक्त गोक्षीर जैसा क्या उस पृथ्वी का स्वाद होता है ?

गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। उस पृथ्वी का स्वाद इससे भी अधिक इष्टतर यावत् मनोज्ञतर कहा गया है।

प्र. भन्ते ! उन पुष्पों और फलों का स्वाद कैसा कहा गया है ?

उ. गौतम ! जैसे चातुरंतचक्रवर्ती का भोजन जो कल्याणभोजन के नाम से प्रसिद्ध है और जो लाख गायों के दूध से निष्पन्न है, जो श्रेष्ठ वर्ण से यावत् स्पर्श से युक्त है, आस्वादन के योग्य है, विशेष रूप से आस्वादन योग्य है, जो दीपनीय (जठराग्नि वर्धक) है, वृंहणीय (धातुवृद्धिकारक) है, दर्पणीय (उत्साह आदि बढ़ाने वाला) है, मदनीय (मस्ती पैदा करने वाला) है और जो समस्त इन्द्रियों को और शरीर को आनन्ददायक होता है क्या ऐसा उन पुष्पों और फलों का स्वाद है ?

गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। उन पुष्प फलों का स्वाद उससे भी अधिक इष्टतर यावत् आस्वादनीय कहा गया है।

प्र. भन्ते ! उस आहार का उपभोग करके वे मनुष्य कहाँ निवास करते हैं ?

उ. हे आयुष्मन् गौतम ! वे मनुष्य गेहाकार परिणत वृक्षों में निवास करने वाले कहे गए हैं।

प्र. भन्ते ! उन वृक्षों का आकार कैसा कहा गया है ?

उ. हे आयुष्मन् श्रमण ! गौतम ! वे पर्वत के शिखर के आकार के, नाट्यशाला के आकार के, छत्र के आकार के, ध्वजा

तोरणसंठिया, गोपुरवेइयचोपालसगसंठिया, अट्टालकसंठिया, पासादसंठिया, हम्मतलसंठिया, गवक्खसंठिया, वाल्लगपोइयसंठिया, वलभिसंठिया, अण्णे तत्थ बहवे वरभवणसयणासणविसिट्ठ-संठाणसंठिया, सुहसीयलच्छाया णं ते दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो !

के आकार के, स्तूप के आकार के, तोरण के आकार के, गोपुर और वेदिका से युक्त चौपाल के आकार के, अट्टालिका के आकार के, प्रासादाकार के, अगासी के आकार के, राजमहल हवेली जैसे गवाक्ष के आकार के, जल-प्रासाद के आकार के, वल्लभी के आकार के तथा और भी दूसरे श्रेष्ठ, विविध भवनों, शयनों, आसनों आदि के विशिष्ट आकार वाले और सुखरूप शीतल छाया वाले, वे वृक्ष समूह कहे गए हैं।

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुयदीवे गेहाणि वा, गेहावणाणि वा?

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में घर और दुकानें हैं?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, रुक्खगेहालयाणं ते मणुयगणा पण्णत्ता, समणाउसो!

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। हे आयुष्मन् श्रमण ! वे मनुष्यगण वृक्षों के बने हुए घर वाले कहे गये हैं।

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुयदीवे गामाइ वा, नगराइ वा जाव सन्निवेसाइ वा?

प्र. भन्ते ! एकोरुक द्वीप में ग्राम नगर यावत् सन्निवेश हैं?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, जहिच्छिय कामगामिणो ते मणुयगणा पण्णत्ता, समणाउसो!

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। हे आयुष्मन् श्रमण ! वे मनुष्य इच्छानुसार गमन करने वाले कहे गए हैं।

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुयदीवे असीइ वा, मसीइ वा, कसीइ वा, पणीइ वा, वणिज्जाइ वा?

प्र. भन्ते ! एकोरुक द्वीप में असि-शस्त्र, मषि (लेखनादि) कृषि, पण्य (किराना आदि) और वाणिज्य (व्यापार) हैं?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, ववगयअसि-मसि-किसि-पणिय-वाणिज्जा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!

उ. हे आयुष्मन् श्रमण ! गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, वे मनुष्य असि-मषि कृषि-पण्य और वाणिज्य से रहित हैं।

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुयदीवे हिरण्णेइ वा, सुवण्णेइ वा, कंसेइ वा, दूसेइ वा, मणीइ वा, मुत्तिएइ वा विपुल-धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-संतसार-सावएज्जेइ वा?

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में हिरण्य (चांदी) स्वर्ण, कांसी, वस्त्र, मणि, मोती तथा विपुल धन सोना रत्न, मणि, मोती शंख, शिलाप्रवाल आदि बहुमूल्य द्रव्य हैं?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणुयाणं तिव्वे ममत्तभावे समुप्पज्जइ।

उ. हाँ, गौतम ! हैं परन्तु उन मनुष्यों को उन वस्तुओं में तीव्र ममत्वभाव नहीं होता है।

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुयदीवे राया इ वा, जुवराया इ वा, ईसरे इ वा, तलवरे इ वा, माडंबिया इ वा, कोडुंबिया इ वा, इब्भा इ वा, सेट्ठी इ वा, सेणावई इ वा, सत्थवाहा इ वा?

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में राजा, युवराज, ईश्वर, (प्रभावक), तलवर, माडंविक, कौटुम्बिक, इभ्य (धनिक) सेठ, सेनापति, सार्थवाह आदि हैं?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, ववगय-इड्ढि-सक्कारका णं ते मणुयगणा पण्णत्ता, समणाउसो!

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, हे आयुष्मन् श्रमण! वे मनुष्य ऋद्धि और सत्कार के व्यवहार से रहित कहे गए हैं।

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुयदीवे दासाइ वा, पेसाइ वा, सिस्साइ वा, भयगाइ वा, भाइल्लगाइ वा, कम्मगरपुरिसा इ वा?

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में दास, प्रेष्य, (नौकर) शिष्य, वेतनभोगी, भृत्य, भागीदार, कर्मचारी हैं?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयआभिओगिया णं ते मणुयगणा पण्णत्ता, समणाउसो!

उ. गौतम ! ये सब वहाँ नहीं है! हे आयुष्मन् श्रमण ! वहाँ नौकर, कर्मचारी आदि नहीं हैं।

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुयदीवे माया इ वा, पिया इ वा, भाया इ वा, भइणी इ वा, भज्जाइ वा, पुत्ताइ वा, धूयाइ वा, [illegible] वा?

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में माता, पिता, भाई, वहिन, भार्या, पुत्र, पुत्री और पुत्रवधू हैं?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणुयाणं तिव्वे [illegible], पयणुपेज्जबंधणा णं ते मणुयगणा [illegible], समणाउसो!

उ. हाँ, गौतम ! हैं, परन्तु उनका माता-पितादि में तीव्र प्रेमवन्धन नहीं होता है। हे आयुष्मन् श्रमण! वे मनुष्य अल्परागवन्धन वाले कहे गए हैं।

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुयदीवे अरी इ वा, वेरिए इ वा, [illegible] इ वा, [illegible] इ वा, पडिणीया इ वा, पच्चामित्ता इ वा?

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में अरि, वैरी, घातक, वधक, प्रत्यनीक (विरोधी) प्रत्यमित्र (शत्रु-मित्र) हैं?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, ववगतवेराणुबंधा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता, समणाउसो!

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुय दीवे मित्ताइ वा, वयंसाइ वा, घडियाइ वा, सहीइ वा, सुहियाइ वा, महाभागाइ वा, संगइयाइ वा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयपेम्मा ते मणुयगणा पण्णत्ता, समणाउसो !

प. अत्थि णं भंते ! एगोरुयदीवे आबाहाइ वा, विवाहाइ वा, जण्णाइ वा, सड्ढाइ वा, थालिपाकाइ वा,चोलोवणयणाइ वा, सीमंतुण्णयणाइं वा, पिइपिंडनिवेयणाइ वा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, ववगय-आबाह-विवाह-जण्ण-सड्ढ-थालिपाग-चोलोवणयण-सीमंतुण्णयण पिइपिंडनिवेदणा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता, समणाउसो!

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुयदीवे इंदमहाइ वा, खंदमहाइ वा, रुद्दमहाइ वा, सिवमहाइ वा, वेसमणमहाइ वा, मुगुंदमहाइ वा, णागमहाइ वा, जक्खमहाइ वा, भूयमहाइ वा, कूवमहाइ वा, तलाय-णईमहा इ वा, दहमहाइ वा, पव्वयमहाइ वा, रुक्खरोवणमहाइ वा, चेइयमहाइ वा, थूभमहा इ वा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, ववगय महमहिमा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता, समणाउसो!

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुयदीवे णडपेच्छाइ वा, णट्टपेच्छाइ वा, जल्लपेच्छाइ वा, मल्लपेच्छाइ वा, मुट्ठियपेच्छाइ वा, विडंवगपेच्छाइ वा, कहगपेच्छाइ वा, पवगपेच्छाइ वा, अक्खायगपेच्छाइ वा, लासगपेच्छाइ वा, लंखपेच्छाइ वा, मंखपेच्छाइ वा, तूणइल्लपेच्छाइ वा, तुंबवीणापेच्छाइ वा, कावडपेच्छाइ वा, मागहपेच्छाइ वा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयकोउहल्ला णं ते मणुयगणा पण्णत्ता, समणाउसो!

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुय दीवे सगडाइ वा, रहाइ वा, जाणाइ वा, जुग्गा इ वा, गिल्ली इ वा, थिल्लीइ वा, पिल्लीइ वा, पवहणाणि वा, सिवियाइ वा, संदमाणियाइं वा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, पादचारविहारिणो णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुयदीवे आसा इ वा, हत्थी इ वा, उट्टा इ वा, गोणा इ वा, महिसाइ वा, खराइ वा, घोडा इ वा, अजा इ वा, एला इ वा ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि, नो चेव णं तेसिं मणुयाणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति।

उ. गौतम ! ये सब वहाँ नहीं हैं। हे आयुष्मन् श्रमण ! वे मनुष्य वैरभाव से रहित कहे गए हैं।

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में मित्र, वयस, प्रेमी, सखा, सुहृदय, महाभाग और सांगतिक (साथी) हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं हैं ! हे आयुष्मन् श्रमण ! वे मनुष्य प्रेमबन्धन रहित कहे गए हैं।

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में आबाह (सगाई) विवाह (परिणय) यज्ञ (श्राद्ध) स्थालीपाक (वर-वधू भोज) चोलोपनयन (मुंडन संस्कार) सीमन्तोन्नयन (उपनयन संस्कार) पितरों को पिण्डदान आदि के संस्कार हैं ?

उ. गौतम ! ये संस्कार वहाँ नहीं हैं। हे आयुष्मन् श्रमण ! वे मनुष्य आबाह, विवाह, यज्ञ, श्राद्ध, भोज, चोलोपनयन, सीमन्तोन्नयन, पितृ-पिण्डदान आदि व्यवहार से रहित कहे गए हैं।

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में इन्द्रमहोत्सव, स्कंद (कार्तिकेय) महोत्सव, रुद्र (यक्षाधिपति) महोत्सव, शिवमहोत्सव, वैश्रमण (कुबेर) महोत्सव, मुकुन्द (कृष्ण) महोत्सव, नाग, यक्ष, भूत, कूप, तालाब, नदी, द्रह (कुण्ड) पर्वत, वृक्षारोपण, चैत्य और स्तूप महोत्सव होते हैं ?

उ. गौतम ! वहाँ ये महोत्सव नहीं होते हैं। हे आयुष्मन् श्रमण ! वे मनुष्य महोत्सव की महिमा से रहित होते हैं।

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में नटों का खेल होता है, नृत्यों का आयोजन होता है, डोरी पर खेलने वालों का खेल होता है, कुश्तियाँ होती हैं, मुष्टिप्रहारादि का प्रदर्शन होता है, विदूषकों कथाकारों, उछलकूद करने वालों, शुभाशुभ फल कहने वालों, रास गाने वालों, बांस पर चढकर नाचने वालों, चित्रफलक हाथ में लेकर माँगने वालों, तूण (वाद्य) बजाने वालों, वीणावादकों कावड लेकर घूमने वालों, स्तुति पाठकों का मेला लगता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। हे आयुष्मन् श्रमण! वे मनुष्य कौतूहल से रहित कहे गए हैं।

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में गाड़ी,रथ, यान (वाहन) युग्य (चतुष्कोण वेदिका वाली और दो पुरुषों द्वारा उठाई जाने वाली पालकी) गिल्ली, थिल्ली, पिल्ली, प्रवहण (नौका-जहाज) शिबिका (पालखी) स्यन्दमानिका (छोटी पालखी) आदि वाहन हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं हैं। हे आयुष्मन् श्रमण! वे मनुष्य पैदल चलने वाले होते हैं।

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में घोड़े, हाथी, ऊँट, बैल, भैंसें, गधे, टट्टू, बकरे और भेड़े होती हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! होते हैं, परन्तु उन मनुष्यों के उपभोग के लिए नहीं होते।

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुयदीवे सीहाइ वा, वग्घाइ वा, विगाइ वा, दीवियाइ वा, अच्छाइ वा, परस्साइ वा, तरच्छाइ वा, विडालाइ वा, सियालाइ वा, सुणगाइ वा, कोलसुणगाइ वा, कोकंतियाइ वा, ससगाइ वा, चित्तला इ वा, चिल्ललगाइ वा ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि, नो चेव णं ते अण्णमण्णस्स तेसिं वा मणुयाणं किंचि आबाहं वा, पवाहं वा, उप्पायंति वा, छविच्छेदं वा करेंति, पगइभद्दगा णं ते सावयगणा पण्णत्ता समणाउसो!

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुयदीवे सालीइ वा, वीहीइ वा, गोधूमाइ वा, जवाइ वा, तिलाइ वा, इक्खुत्ति वा ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि, नो चेव णं तेसिं मणुयाणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति।

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुयदीवे गत्ताइ वा, दरीइ वा, घंसाइ वा, भिगू इ वा, उवाए इ वा, विसमे इ वा, विज्जले इ वा, धूली इ वा, रेणू इ वा, पके इ वा, चलणी इ वा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, एगोरुय दीवे णं दीवे बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, समणाउसो!

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुयदीवे खाणूइ वा, कंटएइ वा, हीरएइ वा, सक्कराइ वा, तणकयवराइ वा, पत्तकयवरा इ वा, असुई इ वा, पूतियाइ वा, दुब्भिगंधाइ वा, अचोक्खाइ वा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, ववगय-खाणु-कंटक-हीर-सक्कर-तणकय-वर-पत्तकय वर-असुइ-पूइ-दुब्भिगंधमचोक्खे णं एगोरुयदीवे पण्णत्ते, समणाउसो !

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुयदीवे दंसाइ वा, मसगाइ वा, पिसुयाइ वा, जूयाइ वा, लिक्खाइ वा, ढंकुणाइ वा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, ववगय-दंस-मसग-पिसुय-जूय-लिक्ख-ढंकुणे णं एगोरुयदीवे पण्णत्ते, समणाउसो !

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुयदीवे अहीइ वा, अयगराइ वा, महोरगाइ वा ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि, णो चेव णं ते अन्नमन्नस्स तेसिं वा मणुयाणं किंचि आबाहं वा, पबाहं वा, छविच्छेयं वा करेंति। पगइभद्दगा णं ते बियालगणा पण्णत्ता, समणाउसो!

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुयदीवे गहदंडाइ वा, गहमुसलाइ वा, गहगज्जियाइ वा, गहजुद्धाइ वा, गहसंघाडगाइ वा, गहअवसव्वाइ वा, अब्भाइ वा, अब्भरुक्खाइ वा,

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में सिंह, व्याघ्र, भेड़िया, चीता, रीछ, गेंडा, तरक्ष (गेंदुआ), बिल्ली, सियाल, कुत्ता, सूअर, लोमड़ी, खरगोश, चित्तल, मृग और चिल्लक (पशु विशेष) हैं?

उ. हाँ, गौतम ! वे हैं, परन्तु वे परस्पर या वहाँ के मनुष्यों को पीड़ा या बाधा नहीं देते हैं और उनके अवयवों का छेदन नहीं करते हैं। हे आयुष्मन् श्रमण! वे जंगली पशु स्वभाव से भद्र प्रकृति वाले कहे गए हैं।

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में शालि, व्रीहि, गेहूँ, जौ, तिल और इक्षु होते हैं?

उ. हाँ, गौतम ! होते हैं, किन्तु उन पुरुषों के उपभोग में नहीं आते।

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में गड्ढे, बिल, दरारें, भृगु (पर्वतशिखर) आदि ऊँचे स्थान, अवपात (गिरने की संभावना वाले स्थान) विषमस्थान, दलदल, धूल, रज, पंक-कीचड़ कादव और चलनी (पांव में चिपकने वाला कीचड़) आदि हैं?

उ. गौतम ! वहाँ ये गड्ढे आदि नहीं हैं, हे आष्युमन् श्रमण एकोरुक द्वीप का भू-भाग बहुत समतल और रमणीय कहा गया है।

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में स्थाणू (ठूंठ) काँटे, हीरक (तीखी लकड़ी का टुकड़ा) कंकर तृण का कचरा, पत्तों का कचरा, अशूचि, सडांध, दुर्गन्ध और अपवित्र पदार्थ हैं?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। हे आयुष्मन् श्रमण एकोरुक द्वीप स्थाणू, कंटक, हीरक, कंकर तृणकचरा, पत्र कचरा, अशुचि सडांध दुर्गन्ध और अपवित्र पदार्थ से रहित कहा गया है।

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में डांस, मच्छर, पिस्सू, जूं, लीख, माकण (खटमल) आदि हैं?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, हे आयुष्मन् श्रमण एकोरुक द्वीप डांस, मच्छर, पिस्सू, जूं, लीख, खटमल से रहित कहा गया है।

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में सर्प, अजगर और महोरग हैं?

उ. हे आयुष्मन् श्रमण गौतम ! होते हैं, परन्तु परस्पर या वहाँ के लोगों को बाधा-पीड़ा नहीं पहुँचाते हैं और काटते भी नहीं हैं, वे सर्पादि स्वभाव से ही भद्रिक कहे गए हैं।

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में (अनिष्टसूचक) दण्डाकार ग्रहसमुदाय, मूसलाकार ग्रहसमुदाय, ग्रहों के संचार की ध्वनि, ग्रहयुद्ध (दो ग्रहों का एक स्थान पर होना) ग्रहसंघाटक (त्रिकोणाकार ग्रह-समुदाय ग्रहापसव ग्रहों का वक्री होना), मेघों का उत्पन्न होना, वृक्षकार मेघों का होना,

संझाइ वा, गंधव्वणगराइ वा, गज्जियाइ वा, विज्जुयाइ वा, उक्कापाताइ वा, दिसादाहाइ वा, निग्घायाइ वा, पंसुवुट्ठीइ वा, जुवगाइ वा, जक्खलित्ताइ वा, धूमियाइ वा, महियाइ वा, रउग्घायाइ वा, चंदोवरागाइ वा, सूरोवरागाइ वा, चंदपरिवेसाइ वा, सूरपरिवेसाइ वा, पडिचंदाइ वा, पडिसूराइ वा, इंदधणूइ वा, उदगमच्छाइ वा, अमोहाइ वा, कविहसियाइ वा, पाईणवायाइ वा, पडीणवायाइ वा जाव सुद्धवायाइ वा, गामदाहाइ वा, नगरदाहाइ वा जाव सण्णिवेसदाहाइ वा, पाणक्खय-जणक्खय-कुलक्खय-धणक्खय-वसण-भूयमणारियाइ वा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुय दीवे दीवे डिंबाइ वा, डमराइ वा, कलहाइ वा, बोलाइ वा, खाराइ वा, वेराइ वा, विरुद्धरज्जाइ वा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। ववगय-डिंब-डमर-कलह-बोल-खार-वेर-विरुद्धरज्जा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता, समणाउसो!

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुयदीवे दीवे महाजुद्धाइ वा, महासंगामाइ वा, महासत्थनिवयणाइ वा, महापुरिसबाणा इ वा, महारुधिरवाणा इ वा, नागवाणा इ वा, खेणबाणा इ वा, तामसबाणाइ वा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। ववगय-वेराणुवंधा णं ते मणुया पण्णत्ता, समणाउसो!

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुय दीवे दीवे दुब्भूइयाइ वा, कुलरोगाइ वा, गामरोगाइ वा, णगररोगाइ वा, मंडलरोगाइ वा, सिरोवेयणाइ वा, अच्छिवेयणाइ वा, कण्णवेयणाइ वा, णक्कवेयणाइ वा, दंतवेयणाइ वा, नखवेयणाइ वा, कासाइ वा, सासाइ वा, जराइ वा, दाहाइ वा, कच्छूइ वा, खसराइ वा, कुट्ठाइ वा, कुडाइ वा, दगोयराइ वा, अरिसाइ वा, अजीरगाइ वा, भगंदराइ वा, इंदग्गहाइ वा, खंदग्गहाइ वा, कुमारग्गहाइ वा, णागग्गहाइ वा, जक्खग्गहाइ वा, भूयग्गहाइ वा, उव्वेयग्गहाइ वा, धणुग्गहाइ वा, एगाहियगाहाइ वा, वेयाहियगहियाइ वा, तेयाहियगहियाइ वा, चाउत्थगहियाइ वा, हिययसूलाइ वा, मत्थगसूलाइ वा, पाससूलाइ वा, कुच्छिसूलाइ वा, जोणिसूलाइ वा, गाममारीइ वा जाव सन्निवेसमारीइ वा, पाणक्खय जाव वसणभूयमणारिया इ वा?

सन्ध्या (लाल-नीले वादलों का परिणमन), गन्धर्व नगर, (वादलों का नगरादि रूप में परिणमन) गर्जना, विजली चमकना, उल्कापात (विजली गिरना), दिग्दाह (किसी एक दिशा का एकदम अग्निज्वाला जैसा भयानक दिखना) निर्घात विजली का कड़कना, धूलि वरसना, यूपक (सन्ध्या, प्रभा और चन्द्रप्रभा का मिश्रण होने पर सन्ध्या का पता न चलना) यक्षदीप्त (आकाश में अग्निसहित पिशाच का रूप दिखना) धूमिका (धूमर) महिका (जलकणयुक्त धूवर) रज-उद्घात (दिशाओं में धूल भर जाना) चन्द्रग्रहण-सूर्यग्रहण, चन्द्र के आसपास मण्डल का होना, सूर्य के आसपास मण्डल का होना, दो चन्द्रों का दिखना, दो सूर्यों का दिखना, इन्द्रधनुष उदकमत्स्य (इन्द्रधनुष का टुकड़ा) अमोघ सूर्यास्त के वाद सूर्यबिम्ब से निकलने वाली श्यामादि वर्ण वाली रेखा, कपिहसित (आकाश में होने वाला भयंकर शब्द) पूर्ववात्, पश्चिमवात् यावत् शुद्धवात्, ग्रामदाह, नगरदाह यावत् सन्निवेशदाह (इनसे होने वाले) प्राणियों का क्षय, जनक्षय, कुलक्षय, धनक्षय आदि दुख और अनार्य-उत्पात आदि वहाँ होते हैं?

उ. गौतम ! ये सब उपद्रव वहां नहीं होते हैं।

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में डिंव (शत्रु भय), डमर (अन्य देश द्वारा किया गया उपद्रव), कलह (वाग्युद्ध), आर्तनाद, मात्सर्य, वैर, विरोधी राज्य आदि हैं?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, हे आयुष्मन् श्रमण ! वहाँ के मनुष्य डिंव-डमर-कलह-वोल-क्षार-वैर और विरुद्ध-राज्य के उपद्रवों से रहित कहे गए हैं।

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में महायुद्ध, महासंग्राम, महाशस्त्रों का निपात, महापुरुषों (चक्रवर्ती-वलदेव-वासुदेव) के वाण, महारुधिरवाण, नागवाण, आकाशवाण, तामस (अंधकार कर देने वाला) वाण आदि हैं?

उ. गौतम ! ये सव वहाँ नहीं है। हे आयुष्मन् श्रमण ! वहाँ के मनुष्य वैरानुवन्ध से रहित कहे गए हैं अतः वहाँ महायुद्धादि नहीं होते हैं।

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में दुर्भूतिक (दुर्भाग) कुलक्रमागतरोग, ग्रामरोग, नगररोग, मंडल (जिला) रोग, शिरोवेदना, आंखवेदना, कानवेदना, नाकवेदना, दांतवेदना, नखवेदना, खांसी, श्वास, ज्वर, दाह, खुजली, दाद, कोढ़, कुड (डमरुवाल), जलोदर, अर्श (ववासीर) अजीर्ण, भगंदर, इन्द्र ग्रह (इन्द्र के आवेश से होने वाला रोग) स्कन्दग्रह (कार्तिकेय के आवेश से होने वाला रोग) कुमारग्रह, नागग्रह, यक्षग्रह, भूतग्रह, उद्वेग ग्रह, धनुग्रह (धनुर्वात) एकान्तर ज्वर, दो दिन छोड़कर आने वाला ज्वर, तीन दिन छोड़कर आने वाला ज्वर, चार दिन छोड़कर आने वाला ज्वर, हृदयशूल, मस्तकशूल, पार्श्वशूल, (पसलियों का दर्द) कुक्षिशूल, योनिशूल, ग्राममारी यावत् सन्निवेशमारी और इनसे होने वाला प्राणों का क्षय यावत् दुःखरूप उपद्रवादि हैं?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। ववगयरोगायंका णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुयदीवे दीवे अइवासाइ वा, मंदवासाइ वा, सुवुट्ठीइ वा, मंदवुट्ठीइ वा, उद्दावाहाइ वा, पवाहाइ वा, दगुब्भेयाइ वा, दगुप्पीलाइ वा, गामवाहाइ वा जाव सन्निवेसवाहाइ वा पाणक्खय जाव वसणभूयमणारियाइं वा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयदगोवद्दवा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता, समणाउसो!

प. अत्थि णं भन्ते ! एगोरुय दीवे दीवे अयागराइ वा, तंबागराइ वा, सीसागराइ वा, सुवण्णागराइ वा, रयणागराइ वा, वइरागराइ वा, वसुहाराइ वा, हिरण्णवासाइ वा, सुवण्णवासाइ वा, रयणवासाइ वा, वइरवासाइ वा, आभरणवासाइ वा, पत्तवासाइ वा, पुप्फवासाइ वा, फलवासाइ वा, बीयवासाइ वा, मल्लवासाइ वा, गंधवासाइ वा, वण्णवासाइ वा, चुण्णवासाइ वा, खीरवुट्ठीइ वा, रयणवुट्ठीइ वा, हिरणवुट्ठीइ वा, सुवण्णवुट्ठीइ वा, तहेव जाव चुण्णवुट्ठीइ वा, सुकालाइ वा, दुकालाइ वा, सुभिक्खाइ वा, दुब्भिक्खाइ वा, अप्पग्घाइ वा, महग्घाइ वा, कयाइ वा, विक्कयाइ वा, सण्णिहीइ वा, संचयाइ वा, निधीइ वा, निहाणाइ वा, चिरपोराणाइ वा, पहीण सामियाइ वा, पहीणसेउयाइ वा, पहीणगोत्तागाराइं वा जाइं इमाइं गामागर-णगर-खेड कब्बड-मडंव-दोणमुह-पट्टणासमसंवाह-सन्निवेसेसु सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउमुह-महापहपहेसु णगरणिद्धमणसुसाण गिरिकंदर संति सेलोवट्ठाण भवणगिहेसु सन्निक्खित्ताइं चिट्ठंति?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

–जीवा. पडि.३ सु. १११/१५-१६

उ. गौतम ! ये सब उपद्रव-रोगादि वहाँ नहीं हैं। हे आयुष्मन् श्रमण ! वे मनुष्य सब प्रकार के रोग और आतंकों मुक्त कहे गए हैं।

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में अतिवृष्टि, सुवृष्टि, अल्प-वृष्टि, दुर्वृष्टि, उद्वाह (तीव्रता से जल का बहना), प्रवाह, उदकभेद (ऊँचाई से जल गिरने से खड्डे पड़ जाना), उदक-पीड़ा (जल का ऊपर उछलना) गांव को बहा ले जाने वाली वर्षा यावत् सन्निवेश को बहा ले जाने वाली वर्षा और उससे होने वाला प्राणक्षय यावत् दुःखरूप उपद्रवादि होते हैं?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, हे आयुष्मन् श्रमण ! वे मनुष्य जल से होने वाले उपद्रवों से रहित कहे गए हैं।

प्र. भन्ते ! क्या एकोरुक द्वीप में लोहे की खान, तांबे की खान, सीसे की खान, सोने की खान, रत्नों की खान, वज्र-हीरों की खान, वसुधारा (धन की धारा), सोने की वृष्टि, चांदी की वृष्टि, रत्नों की वृष्टि, वज्रों-हीरों की वृष्टि, आभरणों की वृष्टि, पत्र-पुष्प-फल बीज-माल्य-गन्ध-वर्ण-चूर्ण की वृष्टि, दूध की वृष्टि, रत्नों की वर्षा, हिरण्य-सुवर्ण उसी प्रकार यावत् चूर्णों की वर्षा, सुकाल, दुष्काल, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, सस्तापन, मंहगापन, क्रय-विक्रय-सन्निधि, सन्निचय, निधि, निधान, बहुत पुराने जिनके स्वामी नष्ट हो गये, जिनमें नया धन डालने वाला कोई न हो, जिनके गोत्रीजन सब मर चुके हों ऐसे जो गांवों में, नगर में, आकर-खेट-कर्वट-मडंव-द्रोणुमख-पट्टन आश्रम, संबाह और सन्निवेशों में रखा हुआ, शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख महामार्गों पर, नगर की गटरों में, श्मशान में, पहाड़ की गुफाओं में ऊँचे पर्वतों के उपस्थान और भवनगृहों में रखा हुआ (गड़ा हुआ) धन है?

उ. गौतम ! यह सब वहाँ नहीं हैं।

१०४. एगोरुयदीवस्स मणुयाणं ठिई परूवणं–

प. एगोरुयदीवे णं भन्ते ! दीवे मणुयाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं असंखेज्जइभागेणं ऊणगं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइ भागं। –जीवा. पडि. ३, सु. १११/१७(क)

१०४. एकोरुक द्वीप में मनुष्यों की स्थिति का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! एकोरुक द्वीप के मनुष्यों की स्थिति कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य असंख्यातवां भाग कम पल्योपम का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट पल्योपम का असंख्यातवां भाग प्रमाण है।

१०५. एगोरुयदीवस्स मणुएहिं मिहुणगस्स संगोपणं देवलोएसु उववाय परूवणं–

प. [illegible] मणुयस्स कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छंति? [illegible]

उ. [illegible] छम्मासावसेसाउया मिहुणाइं [illegible] मिहुणाइं सारक्खंति [illegible] ऊससित्ता [illegible] अक्किट्ठा अव्वहिया,

१०५. एकोरुक द्वीप के मनुष्यों द्वारा मिथुनक का पालन और देवलोकों में उत्पत्ति का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! वे मनुष्य कालमास में काल करके-मरकर कहाँ जाते हैं और कहाँ उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे मनुष्य छह मास की आयु शेष रहने पर एक मिथुनक (युगलिक) को जन्म देते हैं। उन्यासी (७९) रात्रिदिन तक उसका पालन-पोषण करते हैं और पालन-पोषण करके ऊर्ध्वश्वास लेकर निश्वास लेकर

अपरियाविया (पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं परियावियं) सुहंसुहेणं कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति।

देवलोयपरिग्गहा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!

–जीवा. पडि. ३, सु १११/१७(ख)

१०६. हरिवास-रम्मयवासेसु मणुयाणं संपत्तजोव्वणासमय परूवणं–

हरिवासरम्मयवासेसु मणुसस्स तेवट्ठिए राइंदिएहिं संपत्तजोव्वणा भवंति। *–सम. ६३, सु. २*

१०७. खेत्तं कालं च पडुच्च मणुयाणं ओगाहणा आउं च परूवणं–

जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमाए समाए मणुया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, दोण्णि य पलिओवमाइं परमाउं पालइत्था।

एवं इमीसे ओसप्पिणीए वि।

एवमागमेस्साए उस्सप्पणीए वि। *–ठाणं. अ. २, सु. १२*

जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए मणुया तिण्णि गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, तिण्णि पलिओवमाइं परमाउं पालइत्था।

एवं इमीसे ओसप्पिणीए, आगमेस्साए उस्सप्पिणीए।

जंबुद्दीवे दीवे देवकुरुउत्तरकुरासु मणुया तिण्णि गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता, तिण्णि पलिओवमाइं परमाउं पालयंति।

एवं जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे वि।

–ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १५१/२

१. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए मणुया छ धणुसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता छच्च अद्धपलिओवमाइं परमाउं पालयित्था।

२. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु इमीसे ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए मणुया छ धणुसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता, छच्च अद्धपलिओवमाइं परमाउं पालयंति।

३. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु आगमेस्साए उस्सप्पिणी सुसमसुसमाए समाए मणुया छ धणुसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं भविस्संति, छच्च अद्धपलिओवमाइं परमाउं पालइस्संति।

४. जंबुद्दीवे दीवे देवकुरुउत्तरकुरासु मणुया छद्धणुसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता, छच्च अद्धपलिओवमाइं परमाउं पालेंति।

एवं धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे चत्तारि आलावगा जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे वि चत्तारि आलावगा।

–ठाणं. अ. ६, सु. ४९३

खांसकर या छींककर बिना किसी कष्ट के, बिना किसी दुःख के, बिना किसी परिताप के (पल्योपम का असंख्यातवां भाग आयुष्य भोगकर) सुखपूर्वक मृत्यु के अवसर पर मरकर किसी भी देवलोक में देव के रूप में उत्पन्न होते हैं।

हे आयुष्मन् श्रमण! वे मनुष्य देवलोक में ही उत्पन्न होने वाले कहे गए हैं।

१०६. हरिवर्ष-रम्यकूवर्ष में मनुष्यों के यौवन प्राप्ति समय का प्ररूपण–

हरिवर्ष और रम्यकूवर्ष के मनुष्य तिरेसठ (६३) दिन-रात में यौवन अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं।

१०७. क्षेत्रकाल की अपेक्षा मनुष्यों की अवगाहना और आयु का प्ररूपण–

जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी सुषमा नामक काल (आरे) में मनुष्यों की ऊँचाई दो गाउ की और उत्कृष्ट आयु दो पल्योपम की थी।

इसी प्रकार इस अवसर्पिणी के सुषमा काल के लिए जानना चाहिए।

इसी प्रकार आगामी उत्सर्पिणी के सुषमा काल के लिए भी जानना चाहिए।

जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी के सुषमसुषमा नाम के आरे में मनुष्यों की ऊँचाई तीन गाउ की थी तथा उनकी उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम की थी।

इसी प्रकार वर्तमान अवसर्पिणी तथा आगामी उत्सर्पिणी में भी जानना चाहिए।

जम्बूद्वीप द्वीप में देवकुरु और उत्तरकुरु में मनुष्यों की ऊँचाई तीन गाउ की है और उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम की कही गई है।

इसी प्रकार धातकीखण्ड तथा अर्धपुष्करवर द्वीप के पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध में जानना चाहिए।

१. जम्बूद्वीप के भरत-ऐरवत क्षेत्र की अतीत उत्सर्पिणी के सुषमसुषमा काल में मनुष्यों की ऊँचाई छह हजार धनुष्य की थी तथा उनकी उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम की थी।

२. जम्बूद्वीप के भरत-ऐरवत क्षेत्र में वर्तमान अवसर्पिणी के सुषमसुषमा काल में मनुष्यों की ऊँचाई छह हजार धनुष्य की है और उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम की है।

३. जम्बूद्वीप के भरत-ऐरवत क्षेत्र की आगामी उत्सर्पिणी के सुषमसुषमाकाल में मनुष्यों की ऊँचाई छह हजार धनुष्य की होगी और उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम की होगी।

४. जम्बूद्वीप में देवकुरु तथा उत्तरकुरु में मनुष्यों की ऊँचाई छह हजार धनुष्य की है तथा उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम की है।

इसी प्रकार धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध में चार-चार आलापक यावत् अर्धपुष्करवरद्वीप के पश्चिमार्द्ध में चार आलापक कहने चाहिए।

देवगति अध्ययन

देवगति में प्राप्त देव प्रमुखरूपेण चार प्रकार के होते हैं–१. भवनपति, २. वाणव्यन्तर, ३. ज्योतिष्क एवं ४. वैमानिक। किन्तु देव शब्द का प्रयोग भिन्न अर्थ में भी हुआ है। इसीलिए स्थानांग एवं व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र में देव पाँच प्रकार के कहे गए हैं–१. भव्यद्रव्यदेव, २. नरदेव, ३. धर्मदेव, ४. देवाधिदेव एवं ५. भावदेव। इनमें भावदेव ही एक ऐसा भेद है जो देवगति को प्राप्त देवों के लिए प्रयुक्त हुआ है। भव्यद्रव्यदेव उन तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय एवं मनुष्यों को कहा गया है जो देवगति में उत्पन्न होने योग्य हैं। नरदेव शब्द का प्रयोग चातुरन्त चक्रवर्ती राजाओं के लिए प्रयुक्त हुआ है। पाँच समिति एवं तीन गुप्तियों का पालन करने वाले अनगारों को धर्मदेव कहा गया है। देवाधिदेव शब्द का प्रयोग केवलज्ञान एवं केवलदर्शन के धारक अरिहन्त भगवन्तों के लिए हुआ है। क्योंकि ये देवों के भी देव हैं। इस प्रकार देव शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। वेदों में दान देने, द्योतित (प्रकाशित) होने एवं प्रकाशित करने वाले को देव कहा गया है–देवो दानाद् वा द्योतनाद् वा दीपनाद् वा। इस प्रकार विभिन्न अर्थों में उपर्युक्त पाँचों देव हैं। इन पाँचों में सबसे अल्प नरदेव हैं। देवाधिदेव उनसे संख्यातगुणे हैं। धर्मदेव उनसे संख्यातगुणे, भव्यद्रव्यदेव उनसे भी असंख्यातगुणे एवं भावदेव उनसे भी असंख्यातगुणे हैं। इन पाँचों देवों की कायस्थिति एवं अन्तरकाल का भी इस अध्ययन में संकेत है। कायस्थिति के लिए इसी अनुयोग का स्थिति अध्ययन द्रष्टव्य है।

भावदेव अर्थात् देवगति को प्राप्त चतुर्विध देवों में वैमानिक देव सबसे अल्प हैं। उनसे भवनवासी एवं वाणव्यन्तर देव उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे हैं। सबसे अधिक ज्योतिष्क देव हैं जो वाणव्यन्तरों से संख्यातगुणे हैं। वैमानिकों में सबसे अल्प अनुत्तरौपपातिक देव हैं। उनसे नवग्रैवेयक संख्यातगुणे हैं। अच्युत से आनत तक (१२वें से ९वें देवलोक तक) उत्तरोत्तर संख्यातगुणे हैं। उसके पश्चात् आठवें से पहले देवलोक तक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे हैं। भवनपति देव अधोलोक में, वाणव्यन्तर वनों के अन्तरों में (मध्य में), ज्योतिष्क तिर्यक् लोक में एवं वैमानिक देव ऊर्ध्व लोक में रहते हैं।

भवनपति देव प्रमुखतः १० प्रकार के हैं–१. असुरकुमार, २. नागकुमार, ३. स्वर्णकुमार, ४. विद्युत्कुमार, ५. अग्निकुमार, ६. द्वीपकुमार, ७. उदधिकुमार, ८. दिशाकुमार, ९. पवनकुमार एवं १०. स्तनितकुमार। वाणव्यन्तर देव के प्रमुखतः ८ प्रकार हैं–१. किन्नर, २. किंपुरुष, ३. महोरग, ४. गन्धर्व, ५. यक्ष, ६. राक्षस, ७. भूत एवं ८. पिशाच। ज्योतिष्क देव पाँच प्रकार के हैं–१. चन्द्र, २. सूर्य, ३. ग्रह, ४. नक्षत्र और ५. तारा। वैमानिक देवों में १२ देवलोक ९ नवग्रैवेयक एवं ५ अनुत्तर विमान कहे गए हैं। १२ देवलोक इस प्रकार हैं–१. सौधर्म, २. ईशान, ३. सनत्कुमार, ४. माहेन्द्र, ५. ब्रह्मलोक, ६. लांतक, ७. महाशुक्र, ८. सहस्रार, ९. आनत, १०. प्राणत, ११. आरण एवं १२. अच्युत।

इनके अतिरिक्त देवों के और भी प्रकार हैं। असुरकुमार भवनपति की जाति के १५ परमाधार्मिक देव कहे गए हैं–१. अम्ब, २. अम्बरिष, ३. श्याम, ४. शबल, ५. रौद्र, ६. उपरौद्र, ७. काल, ८. महाकाल, ९. असिपत्र, १०. धनु, ११. कुम्भ, १२. वालुका, १३. वैतरणी, १४. खरस्वर एवं १५. महाघोष। तीन किल्विषक देव कहे गए हैं जो विभिन्न वैमानिक कल्पों की नीचे की प्रतर में रहते हैं–१. तीन पल्योपम की स्थिति वाले, २. तीन सागरोपम की स्थिति वाले एवं ३. तेरह सागरोपम की स्थिति वाले। आठ लोकान्तिक देव हैं जो आठ कृष्णराजियों के आठ अवकाशान्तरों में रहते हैं–१. सारस्वत, २. आदित्य, ३. वह्नि, ४. वरुण, ५. गर्दतोय, ६. तुषित, ७. अव्याबाध, ८. अग्न्यर्च। एक मरुत् भेद का उल्लेख मिलने से नौ लोकान्तिक देव माने गए हैं। इनके अलावा जृम्भक आदि दस विशिष्ट व्यन्तर देव होते हैं।

देवों की विभिन्न श्रेणियाँ हैं। कोई इन्द्र होता है, कोई सामान्य देव होता है, कोई लोकपाल होता है, कोई आधिपत्य करने वाले देव होते हैं। इस प्रकार देव विभिन्न स्तर के हैं। कुल ३२ देवेन्द्र (इन्द्र) कहे गए हैं–१. चमर, २. बली, ३. धारण, ४. भूतानन्द, ५. वेणुदेव, ६. वेणुदाली, ७. हरिकान्त, ८. हरिस्सह, ९. अग्निशिख, १०. अग्निमाणव, ११. पूर्ण, १२. वशिष्ठ, १३. जलकान्त, १४. जलप्रभ, १५. अमितगति, १६. अमितवाहन, १७. वेलम्ब, १८. प्रभञ्जन, १९. घोष, २०. महाघोष, २१. चन्द्र, २२. सूर्य, २३. शक्र, २४. ईशान, २५. सनत्कुमार, २६. माहेन्द्र, २७. ब्रह्म, २८. लान्तक, २९. महाशुक्र, ३०. सहस्रार, ३१. प्राणत एवं ३२. अच्युत। इनमें से चमर से लेकर महाघोष पर्यन्त भवनपति इन्द्र हैं। शक्र आदि दस वैमानिक कल्पों के इन्द्र हैं। नवग्रैवेयक एवं ५ अनुत्तर विमान के देव अहमिन्द्र कहे गए हैं अर्थात् वे इन्द्र एवं पुरोहित रहित होते हैं। इन ३२ इन्द्रों में वाणव्यन्तरेन्द्रों की गणना नहीं हुई है। चन्द्र एवं सूर्य ये दोनों ज्योतिष्क इन्द्र हैं।

असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर से लेकर महाघोष इन्द्र पर्यन्त समस्त इन्द्रों के तथा देवेन्द्र देवराज शक्र से लेकर अच्युतेन्द्र पर्यन्त इन्द्रों के त्रायस्त्रिंशक देव कहे गए हैं। ये तैंतीस विशिष्ट प्रकार के देव हैं। विभिन्न इन्द्रों के सामानिक (सामान्य) देवों की संख्या भिन्न-भिन्न होती है, यथा देवेन्द्र शक्र के सामानिक देवों की संख्या ८४ हजार है जबकि देवेन्द्र माहेन्द्र के सामानिक देवों की संख्या ७० हजार है। चमरेन्द्र के सामानिक देवों की संख्या ६४ हजार एवं वैरोचनेन्द्र बली के इन देवों की संख्या ६० हजार ही है।

असुरकुमार देवों पर १० देव आधिपत्य करते हुए विचरण करते हैं, यथा–१. असुरेन्द्र असुरराज चमर, २. सोम, ३. यम, ४. वरुण, ५. वैश्रमण, ६. वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बली, ७. सोम, ८. यम, ९. वरुण एवं १०. वैश्रमण। इनमें प्रारम्भ के पाँच दक्षिण दिशा के देव हैं तथा अन्तिम पाँच उत्तर दिशा के हैं। चमर एवं बली इन्द्र हैं तथा दोनों के चार-चार लोकपाल हैं। इसी प्रकार नागकुमार देवों पर भी १० देव आधिपत्य करते हैं जिनमें धरण एवं भूतानन्द दो इन्द्र एवं शेष लोकपाल हैं। सुवर्णकुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, वायुकुमार एवं स्तनितकुमार देवों पर उनसे सम्बद्ध दो-दो इन्द्र एवं चार-चार लोकपाल आधिपत्य करते हैं। व्यन्तर देवों के पिशाच आदि आठ प्रकार के देवों पर उनसे सम्बद्ध

काल, महाकाल, भीम, महाभीम आदि दो-दो इन्द्र आधिपत्य करते हैं। ज्योतिष्क देवों पर चन्द्र एवं सूर्य ये दो देव (इन्द्र) आधिपत्य करते हुए विचरण करते हैं। व्यन्तर एवं ज्योतिष्क के लोकपाल नहीं हैं। वैमानिकों के सौधर्म एवं ईशान कल्प में शक्र एवं ईशान इन्द्रों के सहित सोम, यम आदि १० देव आधिपत्य करते हुए विचरण करते हैं जिनमें दो इन्द्र एवं शेष चार-चार लोकपाल हैं। अन्य कल्पों में भी उन-उन कल्पों के इन्द्रों सहित सोम, यम, वरुण एवं वैश्रमण देव आधिपत्य करते हुए विचरण करते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि सोम, यम, वरुण एवं वैश्रमण देवों का कार्य भिन्न-भिन्न है। इनके पास भिन्न-भिन्न मन्त्रालय हैं जिनकी देख-रेख ये देव करते हैं तथा इन्द्र इन पर नियन्त्रण रखता है एवं अन्य कार्य भी करता है। ये सोम, यम, वरुण एवं वैश्रमण लोकपाल कहे गए हैं। व्यन्तर एवं ज्योतिष्क देवों के लोकपाल नहीं होते हैं, भवनपतियों एवं वैमानिकों के ही लोकपाल कहे गए हैं।

इन्द्रों एवं लोकपालों की अग्रमहिषियों एवं देवियों का प्रस्तुत अध्ययन में विस्तार से वर्णन उपलब्ध है। भवनपति में असुरेन्द्र चमर की पाँच अग्रमहिषियाँ कही गई हैं–१. काली, २. राजी, ३. रजनी, ४. विद्युत एवं ५. मेधा। इनमें प्रत्येक अग्रमहिषी का आठ-आठ हजार देवियों का परिवार कहा गया है। चमर के लोकपाल सोम की चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं–१. कनका, २. कनकलता, ३. चित्रगुप्ता एवं ४. वसुन्धरा। इनमें प्रत्येक देवी का एक-एक हजार देवियों का परिवार है। इसी प्रकार चमर के लोकपाल यम, वरुण एवं वैश्रमण की कनकादि चार अग्रमहिषियाँ एवं उनका देवी-परिवार कहा गया है। वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज वली की पाँच अग्रमहिषियाँ हैं–१. शुम्भा, २. निशुम्भा, ३. रम्भा, ४. निरम्भा एवं ५. मदना। इनका प्रत्येक का आठ-आठ हजार देवियों का परिवार है। बलीन्द्र के लोकपाल सोम, यम, वरुण एवं वैश्रमण में प्रत्येक की चार-चार अग्रमहिषियाँ हैं–१. मेनका, २. सुभद्रा, ३. विजया एवं ४. अशनी। इनमें प्रत्येक का एक-एक हजार देवियों का परिवार है। नागकुमारेन्द्र धरण की अला, मक्का आदि छह अग्रमहिषियाँ हैं। इनमें से प्रत्येक का छह-छह हजार देवियों का परिवार है। धरणेन्द्र के कालवाल आदि चारों लोकपालों में प्रत्येक की अशोका आदि चार-चार अग्रमहिषियाँ हैं। प्रत्येक अग्रमहिषी का एक-एक हजार देवियों का परिवार है। भूतानन्द इन्द्र की रूपा, रूपांशा आदि छह अग्रमहिषियाँ हैं तथा प्रत्येक छह-छह हजार देवियों का परिवार है। भूतानन्द के लोकपालों की सुनन्दा आदि चार-चार अग्रमहिषियाँ हैं तथा प्रत्येक का एक-एक हजार देवियों का परिवार है। भवनपति के सुवर्णकुमार आदि अन्य प्रकारों में भी दो-दो इन्द्र हैं। एक दक्षिण दिशा का तथा दूसरा उत्तर दिशा का है। दक्षिण दिशावर्ती इन इन्द्रों की अग्रमहिषियों, लोकपालों एवं देवियों का वर्णन धरणेन्द्र के समान तथा उत्तर दिशावर्ती इन्द्रों के लोकपालों, अग्रमहिषियों एवं देवियों का वर्णन भूतानन्द इन्द्र के समान है। इनके लोकपालों के परिवार का वर्णन चमरेन्द्र के लोकपालों के समान है।

व्यन्तदेवों में भी पिशाचादि भेदों में प्रत्येक के दो-दो इन्द्र हैं। काल एवं महाकाल ये दो पिशाचेन्द्र पिशाचराज हैं। सुरूप एवं प्रतिरूप ये दो भूतेन्द्र भूतराज हैं। यक्षेन्द्र यक्षराज के दो प्रकार हैं–१. पूर्णभद्र एवं २. माणिभद्र। दो राक्षसेन्द्र हैं–१. भीम एवं २. महाभीम। इसी प्रकार किन्नरेन्द्र एवं किम्पुरुषेन्द्र, सत्पुरुषेन्द्र एवं महापुरुषेन्द्र, अतिकायेन्द्र एवं महाकायेन्द्र तथा गीतरतीन्द्र एवं गीतयश इन्द्र शेष व्यन्तर देवों के दो-दो इन्द्र हैं। इस अध्ययन में इन इन्द्रों की अग्रमहिषियों, उनके परिवार, लोकपालों एवं उनके परिवार का भी वर्णन हुआ है तथा जहाँ चमरेन्द्र के परिवार से सादृश्य है उसका संकेत कर दिया गया है।

ज्योतिष्क देवों में दो इन्द्र हैं–सूर्य एवं चन्द्र। इन दोनों की चार-चार अग्रमहिषियाँ हैं। अंगारक (मंगल) नामक महाग्रह, व्यालक ग्रह एवं ८८ महाग्रहों में भी प्रत्येक की चार-चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं। जिवाभिगम सूत्र में इनके परिवार के सम्बन्ध में विस्तृत उल्लेख है।

वैमानिकों में पहले एवं दूसरे देवलोक तक ही देवियाँ होती हैं, उसके आगे नहीं। पहले देवलोक के इन्द्र देवराज शक्र एवं दूसरे देवलोक के इन्द्र देवराज ईशान की आठ-आठ अग्रमहिषियाँ कही गई हैं। इनमें प्रत्येक अग्रमहिषी के सोलह-सोलह हजार देवियों का परिवार कहा गया है। शक्र एवं ईशान के सोम, यम आदि लोकपालों की चार-चार अग्रमहिषियाँ एवं उनका एक-एक हजार का देवी-परिवार कहा गया है। स्थानांग सूत्र के अनुसार इनकी अग्रमहिषियों की संख्या भिन्न है, जिसका उल्लेख इस अध्ययन में हुआ है।

देवियाँ विकुर्वणा करने में समर्थ होती हैं, अतः वे अपनी पृथक्-पृथक् योग्यता के अनुसार विकुर्वणा करके देवियों की संख्या में अभिवृद्धि कर देती हैं, यथा शक्र की अग्रमहिषियों की सोलह हजार देवियों में से प्रत्येक सोलह-सोलह हजार देवियों के परिवार की विकुर्वणा कर सकती हैं जबकि भवनपति देवों की देवियाँ इतनी विकुर्वणा नहीं कर पातीं। समस्त देवेन्द्र एवं लोकपाल दिव्य भोगों को मैथुनिक निमित्त से भोगने में समर्थ नहीं हैं, किन्तु दिव्य भोग्य भोगों का मात्र परिवार की ऋद्धि से उपभोग करने में समर्थ हैं। देवेन्द्रों एवं लोकपालों की देवियों के अन्तःपुर को त्रुटित कहते हैं।

इन्द्रों एवं लोकपालों की राजधानियों का नामकरण उनके अपने नामों के अनुसार हुआ है। तदनुसार चमरेन्द्र की राजधानी चमरचंचा, बलीन्द्र की बलिचंचा, धरणेन्द्र की धरणा आदि हैं। लोकपालों में सोम की राजधानी सोमा, यम की यमा आदि हैं। इसी प्रकार अन्य इन्द्रों एवं लोकपालों की राजधानियों का नाम भी उनके नामों के अनुसार है। सिंहासनों के नाम भी प्रायः उनके नामों से साम्य रखते हैं। चमरेन्द्र के सिंहासन का नाम चमर सिंहासन एवं धरणेन्द्र के सिंहासन का नाम धरण सिंहासन इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। इन्द्रों की सभा को सुधर्मा सभा कहा गया है। प्रत्येक इन्द्र अपनी सुधर्मा सभा में अपने सिंहासन पर बैठकर दिव्य भोगों को मैथुनिक निमित्त से भोगने में समर्थ नहीं होता किन्तु वाद्य-घोष आदि पूर्वक दिव्य भोगों का अनुभव करता है। ऐसा माना गया है कि सुधर्मा सभा में माणवक चैत्यस्तम्भ में जिनेश्वर का पूजा स्थान है, जिनको देव-देवियाँ अर्चना, वन्दना आदि करते हैं।

वैमानिक देवेन्द्रों की तीन-तीन परिषदाएँ होती हैं–१. समिता, २. चण्डा एवं ३. जाया। इन्हें क्रमशः १. आभ्यन्तर परिषद्, २. मध्यम परिषद् एवं ३. बाह्य परिषद् के नाम से भी निरूपित किया जाता है। इन परिषदों में विभिन्न इन्द्रों के देवों एवं देवियों की भिन्न-भिन्न संख्या होती है। देवियाँ दूसरे देवलोक के इन्द्र तक हैं फिर देवेन्द्र अच्युत तक तीनों परिषदाओं में देव ही रहते हैं, देवियाँ नहीं। ग्रैवेयक एवं अनुत्तरोपपातिक देवों के इन्द्र नहीं होते। ये सभी वैमानिक देव मनोज्ञ शब्द, रूप, गंध, रस एवं स्पर्श द्वारा सुख का अनुभव करते हैं। अनुत्तरोपपातिक देव अनुत्तर अर्थात् श्रेष्ठ शब्द यावत् स्पर्शजन्य सुखों का अनुभव करते हैं। सभी वैमानिक देव महान् ऋद्धि, महान् द्युति यावत् महाप्रभावशाली ऋद्धि वाले हैं। इन्हें भूख-प्यास का अनुभव नहीं होता है।

वैमानिक देवों के वर्ण, गन्ध एवं स्पर्श तथा उनकी विभूषा एवं कामभोगों का भी इस अध्ययन में प्ररूपण है। सौधर्म एवं ईशानकल्प के देवों के शरीर का वर्ण तपे हुए स्वर्ण जैसा लाल, सनत्कुमार एवं माहेन्द्र कल्प के देवों के शरीर का वर्ण पद्म जैसा गौर, ब्रह्मलोक के देवों का शरीर गीले महुए के फूल के समान श्वेत होता है। लान्तक कल्प से लेकर अनुत्तरौपपातिक देवों का शरीर शुक्ल वर्ण का होता है। सभी वैमानिक देवों के शरीर की गन्ध अत्यन्त मनमोहक एवं स्पर्श स्थिर, मृदु, स्निग्ध रूप में सुकुमार होता है। पहले से बारहवें देवलोक के देवों के दो प्रकार हैं–१. विक्रिया करने वाले, २. विक्रिया नहीं करने वाले। इनमें जो देव विक्रिया (उत्तरवैक्रिय) करते हैं वे हारादि आभूषणों से सुशोभित एवं दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हैं, किन्तु जो देव विक्रिया नहीं करते, स्वाभाविक भवधारणीय शरीर वाले हैं वे आभूषणादि से रहित होते हैं तथा वे स्वाभाविक विभूषा वाले होते हैं। पहले दूसरे देवलोक की देवियाँ भी इसी प्रकार दो प्रकार की हैं। इनमें उत्तरवैक्रिय वाली देवियाँ विभिन्न आभूषण एवं परिधानों से युक्त होने के कारण दर्शनीय एवं सौन्दर्य सम्पन्न होती हैं जबकि अविकुर्वित शरीर वाली देवियाँ आभूषणादि रहित स्वाभाविक सौन्दर्य वाली कही गई हैं। नवग्रैवेयक एवं अनुत्तरविमानवासी देव विक्रिया नहीं करते, अतः उनमें स्वाभाविक विभूषा होती है, आभरण एवं वस्त्रादि से जन्य नहीं। सौधर्म देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के देव इष्ट शब्द, इष्ट रूप, इष्ट गंध, इष्ट रस एवं इष्ट स्पर्श जन्य कामभोगों का अनुभव करते हैं। अनुत्तरौपपातिक देव अनुत्तर (श्रेष्ठ) शब्द यावत् स्पर्शजन्य कामभोगों का अनुभव करते हैं।

भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक ये चारों ही प्रकार के देव जब विक्रिया करते हैं तब प्रासादीय यावत् मनोहर लगते हैं, क्योंकि विक्रिया के समय में वे अलंकृत-विभूषित होते हैं। देव शरीर के एक भाग से भी शब्द सुनते हैं तथा सम्पूर्ण शरीर से भी शब्द सुनते हैं। इसी प्रकार वे दो स्थानों से रूप को देखते हैं, गंध को सूँघते हैं, रस का आस्वादन करते हैं, स्पर्श का प्रतिसंवेदन करते हैं, अवभासित-प्रभासित होते हैं, विक्रिया करते हैं, मैथुन सेवन करते हैं, भाषा बोलते हैं, आहार करते हैं, परिणमन करते हैं, अनुभव करते हैं एवं निर्जरा करते हैं।

देवों की यह स्पृहा रहती है कि वे १. मनुष्य भव प्राप्त करें, २. आर्य क्षेत्र में जन्म लें तथा ३. श्रेष्ठ कुल में कुल उत्पन्न हों। तीन कारणों से वे परितप्त होते हैं अर्थात् उन्हें पश्चात्ताप करते हुए दुःख होता है कि उन्होंने समस्त अनुकूलताओं के होते हुए भी श्रुत का पर्याप्त अध्ययन नहीं किया, श्रामण्य पर्याय का पालन नहीं किया तथा विशुद्ध चारित्र का पालन नहीं किया।

देवों को तीन कारणों से अपने च्यवन का ज्ञान हो जाता है–१. विमान एवं आभरणों को निष्प्रभ देखकर, २. कल्पवृक्ष को मुरझाया हुआ देखकर एवं ३. अपनी तेजोलेश्या (कान्ति) को क्षीण देखकर। तीन कारणों से वे उद्विग्न होते हैं–१. देव सम्पदा को छोड़ने, २. माता-पिता के ओज-शुक्र का आहार ग्रहण करने एवं ३. गर्भाशय में रहने का विचार करने पर।

चार कारणों से देव अपने सिंहासन से अभ्युत्थित होते हैं–१. अरहंतों का जन्म होने पर, २. अरहन्तों के प्रव्रजित होने पर, ३. अरहन्तों को केवलज्ञान होने पर तथा ४. अरहंतों का परिनिर्वाण होने पर। इन्हीं चार कारणों से देवों के आसन एवं चैत्यवृक्ष चलित होते हैं तथा वे सिंहनाद एवं चेलोत्क्षेप (वर्षा) करते हैं। इन्हीं चार कारणों से देवों का मनुष्य लोक में आगमन भी होता है तथा वे कलकल ध्वनि एवं वर्षा करते हैं।

देवेन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंशक, लोकपाल, लोकान्तिक, अग्रमहिषी देवियाँ, परिषद् के देव, सेनापति, आत्मरक्षक आदि इन्हीं चार कारणों से शीघ्र ही मनुष्य लोक में आते हैं। इन चार कारणों से देवलोक में उद्योत भी होता है। चार कारणों से देवलोक में अन्धकार होता है–१. अरहंतों के व्युच्छिन्न होने पर, २. अरहंत प्रज्ञप्तधर्म के व्युच्छिन्न होने पर, ३. पूर्वगत के व्युच्छिन्न होने पर एवं ४. जाततेज के व्युच्छिन्न होने पर। चार कारण ऐसे निर्दिष्ट हैं जिनसे देवलोक में तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्य लोक में आना चाहते हुए भी नहीं आ पाता है तथा कुछ ऐसे भी देव हैं जो तत्काल उत्पन्न होकर भी चार कारणों से मनुष्य लोक में आ जाते हैं। जो मनुष्य लोक में आते हैं वे तब तक वहाँ के काम भोगों में आसक्त नहीं होते हैं।

तीन कारणों से देव विद्युत्प्रकाश एवं मेघगर्जना जैसी ध्वनि करते हैं–१. वैक्रिय रूप करते हुए, २. परिचारणा करते हुए एवं ३. श्रमण-माहण के समक्ष अपनी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषकार एवं पराक्रम का प्रदर्शन करने के लिए। देवेन्द्र देवराज शक्र वृष्टिकायिक देवों के माध्यम से वर्षा करने का कार्य भी करता है।

इस अध्ययन में शक्र एवं ईशानेन्द्र के पारस्परिक व्यवहार, उनकी सुधर्मा सभा एवं ऋद्धि तथा उनके लोकपालों एवं विमानादि का भी विस्तार से निरूपण हुआ है। शक्र जब ईशानेन्द्र के पास कार्यवश जाता है तो आदर करता हुआ जाता है, किन्तु ईशानेन्द्र जब शक्र के पास जाता है तो आदर एवं अनादरपूर्वक जा सकता है, क्योंकि शक्र पहले देवलोक का इन्द्र है तथा ईशानेन्द्र दूसरे देवलोक का इन्द्र है। इन दोनों इन्द्रों में कार्यवश आलाप-संलाप

भी होता है तथा कदाचित् विवाद भी हो जाता है। इनका विवाद देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार दूर करते हैं। इसका यह तात्पर्य है कि ऊपर के देवेन्द्रों का नीचे के देवेन्द्र आदर सम्मान करते हैं। शक्र का सौधर्मावतंसक महाविमान एवं ईशान का ईशानावतंसक महाविमान साढ़े बारह लाख योजन लम्बा-चौड़ा है। शक्र की सुधर्मा सभा सौधर्मावतंसक महाविमान में तथा ईशानेन्द्र की सुधर्मा सभा ईशानावतंसक महाविमान में कही गई है। ये दोनों इन्द्र महा ऋद्धिशाली यावत् महासुख वाले हैं। शक्र के जो चार लोकपाल सोम, यम, वरुण एवं वैश्रमण हैं उनके विमानों के नाम क्रमशः सन्ध्याप्रभ, वरशिष्ट, स्वयंज्वल एवं वल्गु हैं तथा ईशानेन्द्र के जो चार लोकपाल सोम, यम, वैश्रमण एवं वरुण हैं उनके विमानों के नाम क्रमशः सुमन, सर्वतोभद्र, वल्गु एवं सुवल्गु हैं। इन लोकपालों के ये विमान कहाँ हैं, कितने बड़े हैं, इनके अधीनस्थ कौन-से देव हैं आदि तथ्यों का भीतर अध्ययन में विस्तार से वर्णन है। इन लोकपालों के विभिन्न देव अपत्य रूप से भी अभीष्ट माने गए हैं। इनकी स्थिति का भी अध्ययन में निर्देश हुआ है।

शक्र, ईशान, सनत्कुमार आदि जो वैमानिक देवेन्द्र हैं उनमें शक्रादि प्रथम, तृतीय, पंचम आदि देवेन्द्र दक्षिण दिशावर्ती हैं तथा ईशान आदि द्वितीय, चतुर्थ आदि देवेन्द्र उत्तर दिशावर्ती हैं। इन समस्त देवेन्द्रों की सेनाएँ सात प्रकार की कही गई हैं, यथा—१. पदातिसेना, २. अश्वसेना, ३. हस्तिसेना, ४. वृषभसेना, ५. रथसेना, ६. नाट्यसेना एवं ७. गन्धर्वसेना। इन सेनाओं के सेनापतियों के नाम प्रत्येक देवलोक में भिन्न हैं। उदाहरण के लिए शक्र की पदातिसेना का सेनापति हरिणगमैषी है तो ईशान की पदातिसेना का सेनापति लघुपराक्रम है। शक्र के समान ही सनत्कुमार से लेकर आरण कल्प पर्यन्त के दक्षिण दिशावर्ती इन्द्रों की सात सेनाओं एवं सेनापतियों के नाम हैं तथा ईशान के समान माहेन्द्र से लेकर अच्युत पर्यन्त उत्तर दिशावर्ती इन्द्रों की सेनाओं एवं सेनापतियों के नाम हैं। पदातिसेना की प्रथम कक्षा में किस इन्द्र के कितने देव हैं, इसकी संख्या का उल्लेख भी यथाप्रसंग भीतर उपलब्ध है।

अनुत्तरौपपातिक देवों, लवसप्तम देवों एवं हरिणगमैषी देवों का इस अध्ययन में विशिष्ट निरूपण हुआ है। अनुत्तरौपपातिक देवों के लिए कहा गया है कि ये देव अनुत्तर (श्रेष्ठ) शब्द यावत् स्पर्श का अनुभव करने के कारण अनुत्तरौपपातिक कहे गए हैं। श्रमण निर्ग्रन्थ षष्ठ भक्त प्रत्याख्यान अर्थात् बेले की तपस्या के द्वारा जितने कर्मों की निर्जरा करते हैं उतने कर्म शेष रहने पर अनुत्तरौपपातिक देव रूप में उत्पत्ति होती है। ये देव उपशान्त मोह होते हैं, क्षीण मोह एवं उदीर्ण मोह नहीं होते। इनके अनन्त मनोद्रव्य वर्गणाएँ मानी गई हैं जिनसे ये तीर्थंकरों की बात को जानते-देखते हैं। जिन मनुष्यों का आयुष्य मात्र सात लव शेष रहने पर देवगति प्राप्त हो जाती है उन्हें लवसप्तम देव कहा गया है। ये यदि सात लव और जीते तो उसी भव में मोक्ष में जा सकते थे। हरिणगमैषी देव शक्रेन्द्र का दूत माना गया है। इसी नाम का सेनापति भी होता है। यह हरिणगमैषी देव गर्भ हरण की क्रिया करते समय गर्भ को एक गर्भाशय से उठाकर दूसरे गर्भाशय में नहीं रखता, योनि द्वारा दूसरी स्त्री के उदर में नहीं रखता, योनि से गर्भ को निकालकर दूसरी स्त्री की योनि में नहीं रखता अपितु गर्भ को स्पर्श करके बिना कष्ट दिए ही एक स्त्री की योनि से निकालकर उसे दूसरी स्त्री के गर्भाशय में पहुँचा देता है। जो देव दूसरे को पीड़ा आदि दिए बिना ही विक्रिया आदि करते हैं उन्हें अव्याबाध देव कहा गया है।

महर्द्धिक देव बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करके तिरछे पर्वत आदि को लाँघ सकते हैं, किन्तु बाह्य पुद्गल ग्रहण किए बिना वे ऐसा नहीं कर सकते। महर्द्धिक देव अल्पर्द्धिक देवों के मध्य से होकर जा सकता है। वह उसे पहले या पश्चात् विमोहित करके भी जा सकता है तथा बिना विमोहित किए भी जा सकता है। किन्तु अल्पर्द्धिक देव महर्द्धिक देवों के बीच से किसी भी प्रकार नहीं जा सकता। समान ऋद्धि वाले (समर्द्धिक) देव समर्द्धिक देवों के बीच से उनके प्रमत्त होने पर ही जा सकते हैं अन्यथा नहीं जा सकते। वे अपने समान ऋद्धि वाले देवों को पहले विमोहित करते हैं, विमोहित किए बिना वे उनके बीच से नहीं जा सकते। यह नियम सभी देवों में लागू होता है। सब एक-दूसरे की तुलना में अल्पर्द्धिक, समर्द्धिक या महर्द्धिक होते हैं। देवियों के बीच से जब कोई देव निकलता है तो उसमें भी उपर्युक्त नियम लागू होते हैं अर्थात् अल्पर्द्धिक देव महर्द्धिक देवी के बीच से नहीं निकल सकता, समर्द्धिक देव समर्द्धिक देवी के बीच से तभी निकल सकता है जब देवी प्रमत्त हो। महर्द्धिक देव अल्पर्द्धिक देवियों के बीच से निकल सकता है। इसी प्रकार अल्पर्द्धिक देवी महर्द्धिक देवों के बीच से नहीं निकल सकती आदि कथन समान हैं। अल्पर्द्धिक देवी महर्द्धिक देवियों के बीच से भी नहीं निकल सकती, समर्द्धिक देवियों के बीच से समर्द्धिक देवी उनके अप्रमत्त होने पर निकल सकती है तथा महर्द्धिक देवी अल्पर्द्धिक देवियों के मध्य से निकल सकती है। महर्द्धिक देवी अल्पर्द्धिक देवों के बीच से निकल सकती है। व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र के चौदहवें शतक में समर्द्धिक देवों के समर्द्धिक देवों के बीच से निकलने के पूर्व शस्त्र प्रहार करने की बात कही गई है।

एक अपेक्षा से देव दो प्रकार के होते हैं—१. मायी मिथ्यादृष्टि, २. अमायी सम्यग्दृष्टि। मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक देव भावितात्मा अनगार को देखकर भी उन्हें वन्दन-नमस्कार एवं सत्कार-सम्मान नहीं देता वह भावितात्मा अनगार के मध्य से निकल जाता है, किन्तु अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक देव भावितात्मा अनगार को देखकर वन्दन, नमस्कार, सत्कार, सम्मान आदि करके पर्युपासना करता है। वह उनके बीच में नहीं निकलता।

देव अपनी शक्ति से चार-पाँच देववासों के अन्तरों का उल्लंघन कर सकते हैं, किन्तु इसके पश्चात् वे परशक्ति द्वारा ऐसा कर सकते हैं।

देवों की स्थिति, लेश्या, योग, उपयोग आदि की जानकारी के लिए तत्तद् अध्ययनों की विषय-सामग्री द्रष्टव्य है। इस अध्ययन में देवों के सम्बन्ध में विविध प्रकार का निरूपण देवों की विशेषताओं को भली प्रकार स्पष्ट कर देता है।

३७. देवगई-अज्झयणं

सुत्त

१. देव सद्देण अभिहीय भवियदव्वदेवाई पंच भेया तेसिं लक्खणाणि य–

प. कइविहा णं भंते ! देवा पन्नत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा देवा पन्नत्ता, तं जहा–

१. भवियदव्वदेवा, २. नरदेवा,
३. धम्मदेवा, ४. देवाहिदेवा,
५. भावदेवा[1]।

प. १. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–'भवियदव्वदेवा, भवियदव्वदेवा ?'

उ. गोयमा ! जे भविए पंचेंदियतिरिक्खजोणिए वा, मणुस्से वा देवेसु उववज्जित्तए,
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–'भवियदव्वदेवा भवियदव्वदेवा।'

प. २. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–'नरदेवा, नरदेवा'' ?

उ. गोयमा ! जे इमे रायाणो चाउरंत चक्कवट्टी उप्पन्न-समत्तचक्करयणप्पहाणा नवनिहिपतिणो, समिद्धकोसा, बत्तीसंरायवरसहस्साणुयातमग्गा सागरवरमेलाहिपतिणो मणुस्सिंदा।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–'नरदेवा, नरदेवा'।

प. ३. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–'धम्मदेवा, धम्मदेवा ?'

उ. गोयमा ! जे इमे अणगारा भगवंता इरियासमिया जाव गुत्तबंभचारी,
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–'धम्मदेवा, धम्मदेवा।'

प. ४. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–''देवाहिदेवा, देवाहिदेवा ?''

उ. गोयमा ! जे इमे अरहंता भगवंता उप्पन्ननाण- दंसणधरा जाव सव्वदरिसी,
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–''देवाहिदेवा, देवाहिदेवा।''

प. ५. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–''भावदेवा, भावदेवा ?''

उ. गोयमा ! जे इमे भवणवइ–वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया देवा देवगतिनाम-गोयाइं कम्माइं वेदेंति,
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–''भावदेवा, भावदेवा''

–विया. स. १२, उ. ९, सु. १-६

३७. देवगति अध्ययन

सूत्र

१. देव शब्द से अभिहित भव्यद्रव्यदेवादि के पांच भेद और उनके लक्षण–

प्र. भंते ! देव कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! देव पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. भव्यद्रव्यदेव, २. नरदेव,
३. धर्मदेव, ४. देवाधिदेव,
५. भावदेव।

प्र. १. भंते ! भव्यद्रव्यदेव किस कारण से भव्यद्रव्यदेव कहलाते हैं ?

उ. गौतम ! जो पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक या मनुष्य देवों में उत्पन्न होने योग्य हैं,
इस कारण से गौतम ! वे भव्यद्रव्यदेव-भव्यद्रव्यदेव कहलाते हैं।

प्र. २. भंते ! नरदेव किस कारण से नरदेव कहलाते हैं ?

उ. गौतम ! जो ये राजा चातुरन्तचक्रवर्ती (पूर्व, पश्चिम और दक्षिण में समुद्र और उत्तर में हिमवान् पर्वत पर्यन्त, पट्खण्डभरत क्षेत्र के स्वामी) हैं, जिनके यहाँ समस्त रत्नों में प्रधान चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है, जो नौ निधियों के अधिपति हैं, जिनके कोष समृद्ध हैं, बत्तीस हजार राजा जिनके मार्गानुसारी (अधीन) हैं, महासागर रूप श्रेष्ठ मेखला पर्यन्त पृथ्वी के अधिपति हैं और मनुष्यों में इन्द्र के समान हैं।
इस कारण से गौतम ! वे नरदेव-नरदेव कहलाते हैं।

प्र. ३. धर्मदेव किस कारण से धर्मदेव कहलाते हैं ?

उ. गौतम ! ईर्यासमिति से समित यावत् गुप्त ब्रह्मचारी अनगार भगवन्त हैं।
इस कारण से गौतम ! वे धर्मदेव-धर्मदेव कहलाते हैं।

प्र. ४. भंते ! देवाधिदेव किस कारण से देवाधिदेव कहलाते हैं ?

उ. गौतम ! जो अरिहन्त भगवन्त उत्पन्न केवलज्ञान केवलदर्शन के धारक यावत् सर्वदर्शी हैं।
इस कारण से गौतम ! वे देवाधिदेव-देवाधिदेव कहलाते हैं।

प्र. ५. भंते ! भावदेव किस कारण से भावदेव कहलाते हैं ?

उ. गौतम ! ये भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव हैं जो देवगति नामकर्म एवं गोत्रकर्म का वेदन कर रहे हैं।
इस कारण से गौतम ! वे भावदेव-भावदेव कहलाते हैं।

---

१. ठाणं अ. ५, उ. १, सु. ४०९/२

२. भवियदव्वदेवाइ पंचविहदेवाणं कायट्ठिई परूवणं–

प. भवियदव्वदेवे णं भंते ! भवियदव्वदेवे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

एवं जच्चेव ठिई[1] सच्चेव संचिट्ठणा वि जाव भावदेवस्स।

णवरं–धम्मदेवस्स जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। –*विया. स. १२, उ. ९, सु. २६*

३. भवियदव्वदेवाइ पंचविहदेवाणं अंतरं परूवणं–

प. १. भवियदव्वदेवस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेण दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं अणंतं कालं वणस्सइकालो।

प. २. नरदेवाणं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं साइरेगं सागरोवमं, उक्कोसेणं अणंतं कालं अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं।

प. ३. धम्मदेवस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं पलिओवमपुहत्तं, उक्कोसेणं अणंतंकालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं।

प. ४. देवाहिदेवाणं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! नत्थि अंतरं।

प. ५. भावदेवस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं वणस्सइकालो। –*विया. स. १२, उ. ९, सु. २७-३१*

४. भवियदव्व-देवाइ पंचविहदेवाणं अप्पाबहुयं–

प. एएसि णं भंते ! भवियदव्वदेवाणं जाव भावदेवाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा नरदेवा,
२. देवाहिदेवा संखेज्जगुणा,
३. धम्मदेवा संखेज्जगुणा,
४. भवियदव्वदेवा असंखेज्जगुणा,
५. भावदेवा असंखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! भावदेवाणं भवणवासीणं, वाणमंतराणं, जोइसियाणं, वेमाणियाणं, सोहम्मगाणं जाव अच्चुयगाणं, गेवेज्जगाणं, अणुत्तरोववाइयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा अणुत्तरोववाइया भावदेवा,
२. उवरिमगेवेज्जा भावदेवा संखेज्जगुणा,

२. भव्यद्रव्य देवादि पांच प्रकार के देवों की कायस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! भव्यद्रव्यदेव, भव्यद्रव्यदेव के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम तक रहता है।

इसी प्रकार भावदेव पर्यन्त जिसकी जो भव स्थिति कही है वही उसकी (संचिट्ठणा) कायस्थिति कहनी चाहिए।

विशेष–धर्म देव की (संस्थिति) जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि वर्ष की है।

३. भव्यद्रव्यदेवादि पांच प्रकार के देवों के अंतरकाल का प्ररूपण–

प्र. १. भंते ! भव्यद्रव्यदेव का अन्तर कितने काल का होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट अनन्तकाल वनस्पतिकाल का होता है।

प्र. २. भंते ! नरदेवों का अंतर कितने काल का होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य साधिक सागरोपम, उत्कृष्ट अनंतकाल देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त्त काल जितना होता है।

प्र. ३. भंते ! धर्मदेव का अन्तर कितने काल का होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य पल्योपम पृथक्त्व, उत्कृष्ट अनन्तकाल यावत् देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त काल जितना होता है।

प्र. ४. भंते ! देवाधिदेवों का अन्तर कितने काल का होता है ?

उ. गौतम ! देवाधिदेवों का अन्तर नहीं होता है।

प्र. ५. भंते ! भावदेव का अन्तर कितने काल का होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अनन्तकाल वनस्पतिकाल जितना होता है।

४. भव्यद्रव्यदेवादि पंचविध देवों का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन भव्यद्रव्यदेवों यावत् भावदेवों में से कौन किन (देवों) से अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प नरदेव हैं,
२. (उनसे) देवाधिदेव संख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) धर्मदेव संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) भव्यद्रव्यदेव असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) भावदेव असंख्यातगुणे हैं ?

प्र. भंते ! इन भाव देवों में भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक तथा वैमानिकों में सौधर्म से अच्युत तथा ग्रैवेयक एवं अनुत्तरौपपातिक पर्यन्त के देवों में कौन किन से अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प अनुत्तरौपपातिक भावदेव हैं,
२. (उनसे) उपरिम ग्रैवेयक भावदेव संख्यातगुणे हैं,

१. स्थिति अध्ययन में देखें।

३. मज्झिमगेवेज्जा संखेज्जगुणा,
४. हेट्ठिमगेवेज्जा संखेज्जगुणा,
५. अच्चुए कप्पे देवा संखेज्जगुणा जाव आणयकप्पे देवा संखेज्जगुणा,
१. सहस्सारे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा,
२. महासुक्के कप्पे देवा असंखेज्जगुणा,
३. लंतए कप्पे देवा असंखेज्जगुणा,
४. बंभलोए कप्पे देवा असंखेज्जगुणा,
५. माहिंदे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा,
६. सणंकुमारे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा,
७. ईसाणे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा,
८. सोहम्मे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा,
९. भवणवासी देवा असंखेज्जगुणा,
१०. वाणमंतरा देवा असंखेज्जगुणा,
११. जोइसिया भावदेवा संखेज्जगुणा।

–विया. स. १२, उ. ९, सु. ३२-३३

३. (उनसे) मध्यम ग्रैवेयक भावदेव संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) नीचे ग्रैवेयक भावदेव संख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) अच्युतकल्प के भावदेव संख्यातगुणे हैं यावत् (उनसे) आनतकल्प के भावदेव संख्यातगुणे हैं,
१. (उनसे) सहस्रार कल्प के भावदेव असंख्यातगुणे हैं,
२. (उनसे) महाशुक्र कल्प के भावदेव असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) लांतक कल्प के भावदेव असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) ब्रह्मलोक कल्प के भावदेव असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) माहेन्द्रकल्प के भावदेव असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) सनत्कुमार कल्प के भावदेव असंख्यातगुणे हैं,
७. (उनसे) ईशानकल्प के भावदेव असंख्यातगुणे हैं,
८. (उनसे) सौधर्म कल्प के भावदेव असंख्यातगुणे हैं,
९. (उनसे) भवनवासी भावदेव असंख्यातगुणे हैं,
१०. (उनसे) वाणव्यन्तर भावदेव असंख्यातगुणे हैं,
११. (उनसे) ज्योतिष्क भावदेव संख्यातगुणे हैं।

५. देवाणं चउव्विह वग्ग परूवणं–

चउव्विहा देवाणं (वग्गा) पण्णत्ता, तं जहा–
१. देवे नामेगे,
२. देव सिणाए नामेगे,
३. देव पुरोहिए नामेगे,
४. देवपज्जलणे नामेगे। *–ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २४८(१)*

५. देवों के चतुर्विध वर्ग का प्ररूपण–

देवताओं की स्थिति (पदमर्यादा) चार प्रकार की कही गई है, यथा–
१. देव सामान्य,
२. देव-स्नातक-अमात्य,
३. देव-पुरोहित-शान्तिकर्म करने वाला,
४. देव-प्रज्वलन-मंगल पाठक।

६. सइन्द देवट्ठाणाणं इन्द संखा–

बत्तीसं देविंदा पण्णत्ता, तं जहा–

१. चमरे,	२. बलि,	३. धरणे,
४. भूयाणंदे,	५. वेणुदेवे,	६. वेणुदालि,
७. हरि,	८. हरिस्सहे,	९. अग्गिसिहे,
१०. अग्गिमाणवे,	११. पुन्ने,	१२. विसिट्ठे,
१३. जलकंते,	१४. जलप्पभे,	१५. अमियगई,
१६. अमितवाहणे,	१७. वेलंबे,	१८. पभंजणे,
१९. घोसे,	२०. महाघोसे,	२१. चंदे,
२२. सूरे,	२३. सक्के,	२४. ईसाणे,
२५. सणंकुमारे,	२६. माहिंदे,	७. बंभे,
२८. लंतए,	२९. महासुक्के,	३०. सहस्सारे,
३१. पाणए,	३२. अच्चुए।	

–सम. सम. ३२, सु. २

६. सइन्द्र-देवस्थानों के इन्द्रों की संख्या–

बत्तीस देवेन्द्र कहे गए हैं, यथा–

१. चमर,	२. वली,	३. धरण,
४. भूतानन्द,	५. वेणुदेव,	६. वेणुदाली,
७. हरिकान्त,	८. हरिस्सह,	९. अग्निशिख,
१०. अग्निमाणव,	११. पूर्ण,	१२. वशिष्ठ
१३. जलकान्त	१४. जलप्रभ,	१५. अमितगति,
१६. अमितवाहन,	१७. वेलम्ब,	१८. प्रभंजन,
१९. घोष,	२०. महाघोष,	२१. चन्द्र,
२२. सूर्य,	२३. शक्र,	२४. ईशान,
२५. सनत्कुमार,	२६. माहेन्द्र,	२७. ब्रह्म,
२८. लान्तक,	२९. महाशुक्र,	३०. सहस्रार,
३१. प्राणत,	३२. अच्युत।	

७. सइन्द अनिन्द देवट्ठाणाणं संखा–

चउवीसं देवट्ठाणा सइंदया पण्णत्ता,[1]
सेसा अहमिंदा-अनिंदा अपुरोहिआ। *–सम. सम. २४, सु. ४*

७. सइन्द्र-अनिन्द्र देवस्थानों की संख्या–

चौवीस देव स्थान इन्द्र सहित कहे गए हैं,
शेष देव स्थान "अहमिन्द्र" अर्थात् इन्द्र रहित और पुरोहित रहित कहे गए हैं।

---

१. भवनपति के दस, व्यंतरों के आठ, ज्योतिष्कों के पांच और कल्पोपपन्नकों का एक कुल (१० + ८ + ५ + १ =२४) इन्द्रों वाले स्थान हैं। शेष ९ ग्रैवेयक और ५ अनुत्तरोविमान इन्द्र रहित हैं।

८. देविंदाणं सामाणिय देव संखा–

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो चउरासीई सामाणिय साहस्सीओ पण्णत्ताओ। –सम. सम. ८४, सु. ६

माहिंदस्स णं देविंदस्स देवरन्नो सत्तरिं सामाणिय साहस्सीओ पण्णत्ताओ। –सम. सम. ७०, सु. ५

सहस्सारस्स णं देविंदस्स देवरण्णो तीसं सामाणिय साहस्सीओ पण्णत्ताओ। –सम. सम. ३०, सु. ५

पाणयस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वीसं सामाणिय साहस्सीओ पण्णत्ताओ। –सम. सम. २०, सु. ४

वंभस्स णं देविंदस्स देवरन्नो सट्ठिं सामाणिय साहस्सीओ पण्णत्ताओ। –सम. सम. ६०, सु. ५

चमरस्स णं रन्नो चउसट्ठिं सामाणिय साहस्सीओ पण्णत्ताओ। –सम. सम. ६४, सु. ३

वलिस्स णं वइरोयणिंदस्स सट्ठिं सामाणिय साहस्सीओ पण्णत्ताओ। –सम. सम. ६०, सु. ४

८. देवेन्द्रों के सामानिक देवों की संख्या–

देवेन्द्र देवराज शक्र के चौरासी हजार सामानिक देव कहे गए हैं।

देवेन्द्र देवराज माहेन्द्र के सत्तर (७०) हजार सामानिक देव कहे गए हैं।

देवेन्द्र देवराज सहस्रार के तीस हजार सामानिक देव कहे गए हैं।

देवेन्द्र देवराज प्राणत के वीस हजार सामानिक देव कहे गए हैं।

देवेन्द्र देवराज व्रह्म के साठ हजार सामानिक देव कहे गए हैं।

चमरेंद्र के चौसठ हजार सामानिक देव कहे गए हैं।

वैरोचनेन्द्र वली के साठ हजार सामानिक देव कहे गए हैं।

९. अट्ठ कण्हराईणं ओवासंतरेसु लोगंतिय विमाणं देवाण य परूवणं–

एयासि णं अट्ठण्हं कण्हराईणं अट्ठसु ओवासंतरेसु अट्ठ लोगंतिय विमाणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अच्ची, २. अच्चिमाली,
३. वइरोयणे, ४. पभंकरे,
५. चंदाभे, ६. सूराभे,
७. सुपइट्ठाभे, ८. अग्गिच्चाभे।

एएसु णं अट्ठसु लोगंतियविमाणेसु अट्ठविहा लोगंतिया देवा पण्णत्ता, तं जहा–

१-२. सारस्सयमाइच्चा,
३. वण्ही, ४. वरुणा य,
५. गद्दतोया य, ६. तुसिया,
७. अव्वावाहा, ८. अग्गिच्चा,
चेव वोद्धव्वा॥ –ठाणं. अ. ८, सु. ६२५

९. आठ कृष्णराजियों के अवकाशान्तरों में लोकान्तिक विमान और देवों की प्ररूपणा–

इन आठ कृष्णराजियों के आठ अवकाशान्तरों में आठ लोकान्तिक विमान कहे गए हैं, यथा–

१. अर्चि, २. अर्चिमाली,
३. वैरोचन, ४. प्रभंकर,
५. चन्द्राभ, ६. सूराभ,
७. सुप्रतिष्ठाभ, ८. अग्न्यर्चाभ।

इन आठ लोकान्तिक विमानों में आठ प्रकार के लोकान्तिक देव कहे गए हैं, यथा–

१. सारस्वत, २. आदित्य,
३. वह्नि, ४. वरुण,
५. गर्दतोय, ६. तुषित,
७. अव्यावाध, ८. अग्न्यर्च।

१०. सारस्सयाइ देवाणं संखा परिवारो य–

सारस्सयमाइच्चाणं देवाणं सत्त देवा, सत्तदेवसया पण्णत्ता,

गद्दतोयतुसियाणं देवाणं सत्त देवा, सत्त देवसहस्सा पण्णत्ता। –ठाणं. अ. ७, सु. ५७६

१०. सारस्वतादि देवों की संख्या और परिवार–

सारस्वत और आदित्य जाति के (मुख्य) देव सात हैं और उनके सात सौ देवों का परिवार है,

गर्दतोय और तुषित जाति के (मुख्य) देव सात हैं और उनके सात हजार देवों का परिवार है।

११. भवणवासि कप्पोववन्नग वेमाणियाण य तायत्तीसग देवाणं परूवणं–

तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियगामे नामं नगरे होत्था, वण्णओ दूइपलासए चेइए, सामी समोसढे जाव परिसा पडिगया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे जाव उड्ढंजाणू जाव विहरइ।

११. भवनवासी और कल्पोपपन्नक वैमानिकों के त्रायस्त्रिंशक देवों का प्ररूपण–

उस काल और उस समय में वाणिज्यग्राम नामक नगर था। उसकी समृद्धि का वर्णन (औपपातिक सूत्र के अनुसार) करना चाहिए। वहाँ दुतिपलाश नामक उद्यान था। (एक बार) वहाँ श्रमण भगवान् महावीर का समवसरण हुआ यावत् परिषद् आई और वापस लौट गई।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति (गौतम) नामक अनगार यावत् ऊपर की ओर घुटने करके यावत् विचरण करते थे।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी सामहत्थी नामं अणगारे पगइभद्दए जहा रोहे जाव उड्ढं जाणू जाव विहरइ।

तए णं से सामहत्थी अणगारे जायसड्ढे जाव उट्ठाए उट्ठेइ उट्ठेत्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता भगवं गोयमं तिक्खुत्तो जाव पज्जुवासमाणो एवं वयासी–

प. अत्थि णं भंते ! चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तायत्तीसगा देवा ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तायत्तीसगा देवा, तायत्तीसगा देवा ?"

उ. एवं खलु सामहत्थी ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबूद्दीवे दीवे भारहे वासे कायंदी नामं नयरी होत्था, वण्णओ।
तत्थ णं कायंदीए नयरीए तायत्तीसं सहाया गाहावइ समणोवासगा 'परिवसंति अड्ढा जाव अपरिभूया अभिगयजीवाऽजीवा उवलद्ध पुण्ण-पावा जाव विहरंति।
तए णं ते तायत्तीसं सहाया गाहावती समणोवासया पुव्विं उग्गविहारी संविग्गा, संविग्गविहारी भवित्ता, तओ पच्छा पासत्था, पासत्थविहारी, ओसन्ना, ओसन्नविहारी, कुसीला, कुसीलविहारी, अहाछंदा, अहाछंद विहारी बहूइं वासाइं समणोवासग परियागं पाउणंति पाउणित्ता, अद्धमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेंति, झूसित्ता तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेंति, छेदित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयऽपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तायत्तीसग देवत्ताए उववन्ना।

प. जप्पभिइं च णं भंते ! ते कायंदगा तापत्तीसं सहाया गाहावई समणोवासगाचमरस्स असुररिंदस्स असुरकुमाररण्णो तायत्तीसयदेवत्ताए उववन्ना तप्पभिइं च णं भंते ! एवं वुच्चइ–
"चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तायत्तीसगा देवा तायत्तीसगा देवा ?"

उ. तए णं भगवं गोयमे सामहत्थिणा अणगारेणं एवं वुत्ते समाणे संकिए कंखिए वितिगिंछिए उट्ठाए उट्ठेइ,
उट्ठित्ता सामहत्थिणा अणगारेणं सद्धिं जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासि–

प. अत्थि णं भंते ! चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो तायत्तीसगा देवा, तायत्तीसगा देवा ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के अन्ते
रोह अणगार के समान भद्र प्रकृति के श्यामहस्ती नामक अण
ऊपर की ओर बांहें करके यावत् विचरण करते थे।

तत्पश्चात् किसी एक दिन श्यामहस्ती नामक अनगार श्रद्धा स
आदि उत्पन्न होने पर यावत् अपने स्थान से उठे और उठ कर
भगवान् गौतम स्वामी विराजमान थे वहां आए और अ
भगवान् गौतमस्वामी की तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा कर य
पर्युपासना करके इस प्रकार बोले–

प्र. भंते ! क्या असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के त्रायस्त्रि
देव होते हैं ?

उ. हां (श्यामहस्ती) ! चमरेन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देव हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि–
"असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के त्रायस्त्रिंशक
त्रायस्त्रिंशक देव हैं ?"

उ. हे श्यामहस्ती ! उस काल और उस समय में इस जम्बू
नामक द्वीप के भरत क्षेत्र में काकन्दी नाम की नगरी
उसका वर्णन करें।
उस काकन्दी नगरी में एक दूसरे के सहायक धना
यावत् अपरिभूत तथा जीव अजीव तत्वों के ज्ञाता
पुण्य-पाप कार्यों का विवेक करने वाले तेतीस श्रमणोपा
गृहस्थ रहते थे।
एक समय था जब पूर्व में वे परस्पर एक-दूसरे के सहा
तेतीस श्रमणोपासक गृहपति उग्र-उग्रविहारी, संवि
संविग्नविहारी थे। परन्तु बाद में उन्होंने पार्श्व
पार्श्वस्थविहारी, अवसन्न, अवसन्नविहारी, कुशील, कुश
विहारी, स्वच्छन्द, स्वच्छन्द विहारी होकर बहुत वर्षों त
श्रमणोपासक पर्याय का पालन किया और पालन क
अर्धमासिक संलेखना द्वारा शरीर को कृश किया, कृश क
अनशन द्वारा तीस भक्तों का छेदन किया, छेदन करके उ
प्रमाद स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना
काल के अवसर पर काल कर वे असुरेन्द्र असुरकुमारर
चमर के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उत्पन्न हुए।

प्र. (श्यामहस्ती ने गौतमस्वामी से पूछा) भंते ! जब वे काक
निवासी परस्पर सहायक तेतीस श्रमणोपासक गृहप
असुरराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देवरूप में उत्पन्न ह
हैं, क्या तभी ऐसा कहा जाता है, कि–
'असुरराज असुरेन्द्र चमर के (ये) तेतीस त्रायस्त्रिंश
देव हैं ?'

उ. शामहस्ती अणगार के द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर भ. गौत
शंकित, कांक्षित और विचिकित्सित हो अपने स्थान से उठे
उठकर श्यामहस्ति अणगार के साथ जहाँ श्रमण भ. महावी
थे वहाँ आये, आकर श्रमण भगवान महावीर को वंद
नमस्कार किया और वंदन नमस्कार करके उनसे इस प्रका
पूछा–

प्र. भंते ! क्या असुरेन्द्र असुरराज चमर के त्रायस्त्रिंश
देव-त्रायस्त्रिंशक देव हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! हैं।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"एवं तं चेव सव्वं भाणियव्वं जाव तप्पभितिं च णं एवं वुच्चइ-चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तायत्तीसगा देवा, तायत्तीसगा देवा?"

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तायत्तीसगाणं देवाणं सासए नामधेज्जे पण्णत्ते, जं न कदायि नासी, न कदायि, न भवइ जाव निच्चे अव्वोच्छित्तिनयट्ठयाए अन्ने चयंति अन्ने उववज्जंति।

प. अत्थि णं भंते ! वलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो 'तायत्तीसगा देवा, तायत्तीसगा देवा?"

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"वलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो तायत्तीसगा देवा, तायत्तीसगा देवा?"

उ. एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंवूद्दीवे दीवे भारहे वासे विब्भेले णामं सन्निवेसे होत्था, वण्णओ। तत्थ णं विब्भेले सन्निवेसे जहा चमरस्स जाव उववन्ना।

जप्पभितिं च णं भंते ! ते विब्भेलगा तायत्तीसं सहाया गाहावई समणोवासगा वलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सेसं तं चेव जाव निच्चे अव्वोच्छित्तिनयट्ठयाए, अन्ने चयंति, अन्ने उववज्जंति।

प. अत्थि णं भंते ! धरणस्स नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो तायत्तीसगा देवा, तायत्तीसगा देवा?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"अत्थि णं धरणस्स नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो तायत्तीसगा देवा, तायत्तीसगा देवा?"

उ. गोयमा ! धरणस्स नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो तायत्तीसगाणं देवाणं सासए नामधेज्जे पण्णत्ते, जं न कयाइ नासी जाव अन्ने चयंति, अन्ने उववज्जंति।

एवं भूयाणंदस्स वि।

एवं जाव महाघोसस्स।

प. अत्थि णं भंते ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो तायत्तीसगा देवा, तायत्तीसगा देवा?

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहते हैं, कि–
"इत्यादि से पूर्वकथित निवासी के परस्पर सहायक तेत श्रमणोपासक गृहस्थ मर कर असुरेन्द्र असुरराज चमर त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उत्पन्न हुए पर्यन्त समग्र क कहना चाहिए।" क्या तभी वे त्रायस्त्रिंशक देव हैं ऐसा क जाता है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। असुरराज असुरेन्द्र चमर त्रायस्त्रिंशक देवों के नाम शाश्वत कहे गए हैं, इसलिए कि समय नहीं थे या नहीं हैं ऐसा नहीं है और कभी नहीं रहेंगे ऐ भी नहीं है यावत् अव्युच्छित्ति (द्रव्यार्थिक) नय की अपेक्षा) वे नित्य हैं, किन्तु (पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से) पहले व च्यवते हैं और दूसरे उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज वली के त्रायस्त्रिं देव-त्रायस्त्रिंशक देव हैं?

उ. हाँ, गौतम ! हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि–
"वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज वलि के तेतीस त्रायस्त्रिंशक त्रायस्त्रिंशक देव हैं।"

उ. गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप के भ क्षेत्र में विभेल नामक एक सन्निवेश था। उसका व (औपपातिक सूत्र के अनुसार) करना चाहिए। उस वि सन्निवेश में (परस्पर सहायक तेतीस श्रमणोपासक) गृहस्थ इत्यादि जैसा वर्णन चमरेन्द्र के त्रायस्त्रिंशकों के लिए कि है वैसा ही वे त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उत्पन्न हुए पर्य यहां जानना चाहिए।

भंते ! जब से वे विभेल सन्निवेश निवासी परस्पर सहाय तेतीस गृहपति श्रमणोपासक वलि के त्रायस्त्रिंशक देव के में उत्पन्न हुए हैं इत्यादि समग्र वर्णन अव्युच्छित्ति (द्रव्यार्थि नय की अपेक्षा नित्य है और पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा अ च्यवते हैं (उसके स्थान पर) दूसरे उत्पन्न होते रहते हैं पर्य वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण के त्रायस्त्रिंश देव-त्रायस्त्रिंशक देव हैं?

उ. हाँ, गौतम ! हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि–
'नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण के त्रायस्त्रिंशक दे के त्रायस्त्रिंशक देव हैं?

उ. गौतम ! नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण के त्रायस्त्रिंश देवों के नाम शाश्वत कहे गए हैं। वे किसी समय नहीं थे ऐ नहीं है, नहीं रहेंगे ऐसा भी नहीं है यावत् अन्य च्यवते हैं अ (उनके स्थान पर) दूसरे उत्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार भूतानन्द के (त्रायस्त्रिंशक देवों) के लिए भ जानना चाहिए।

इसी प्रकार महाघोष पर्यन्त के त्रायस्त्रिंशक देवों के लिए भ जानना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र के त्रायस्त्रिंशक दे त्रायस्त्रिंशक देव हैं?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो तायत्तीसगा देवा, तायत्तीसगा देवा ?"

उ. एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबूद्दीवे दीवे भारहे वासे वालाए नामं सन्निवेसे होत्था, वण्णओ।

तत्थ णं वालाए सन्निवेसे तायत्तीसं सहाया गाहावई समणोवासगा जहा चमरस्स जाव विहरंति, तए णं ते तायत्तीसं सहाया गाहावई समणोवासगा पुव्विं पि पच्छा वि उग्गा उग्गविहारी संविग्गा संविग्गविहारी बहूइं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेंति,

झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेंति,

छेदित्ता आलोइयपडिक्कंता समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा जाव उववन्ना।

जप्पभितिं च णं भंते ! "वालागा" तायत्तीसं सहाया गाहावई समणोवासगा सेसं जहा चमरस्स जाव अन्ने उववज्जंति।

प. अत्थि णं भंते ! ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो तायत्तीसगा देवा, तायत्तीसगा देवा ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।
एवं जहा सक्कस्स।

णवरं–चंपाए नगरीए जाव उववन्ना।

जप्पभितिं च णं चंपिच्चा तायत्तीसं गाहावई समणोवासगा सहाया–सेसं तं चेव जाव अन्ने उववज्जंति।

प. अत्थि णं भंते ! सणंकुमारस्स देविंस्स देवरण्णो तायत्तीसगा देवा, तायत्तीसगा देवा ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–'जहा धरणस्स तहेव।'

एवं जाव पाणयस्स।

एवं अच्चुयस्स जाव अन्ने उववज्जंति।

–विया. स. १०, उ. ४, सु. १-१४

उ. हाँ, गौतम ! हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि–
'देवेन्द्र देवराज शक्र के त्रायस्त्रिंशक देव-त्रायस्त्रिंशक देव हैं ?

उ. गौतम ! उस काल और उस समय में इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरत क्षेत्र में वालाक नामक सन्निवेश था, उसका वर्णन करना चाहिए।

उस वालाक सन्निवेश में चमर के त्रायस्त्रिंशकों में उत्पन्न होने वालों के समान परस्पर सहायक तेतीस श्रमणोपासक गृहपति रहते थे। वे तेतीस परस्पर सहायक श्रमणोपासक गृहपति पहले भी और पीछे भी उग्र, उग्रविहारी एवं संविग्न संविग्नविहारी होकर बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक पर्याय का पालन कर मासिक संलेखना से शरीर को कृश किया।

कृश करके अनशन द्वारा साठ भक्तों का छेदन किया,

छेदन करके कालमास में प्रतिक्रमण कर समाधिपूर्वक काल करके यावत् (शक्र के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में) उत्पन्न हुए।

भंते ! जब से वे वालाकवासी परस्पर सहायक तेतीस श्रमणोपासक गृहपति (शक्र के त्रायस्त्रिंशकों के रूप में) उत्पन्न हुए इत्यादि समग्र वर्णन चमर के त्रायस्त्रिंशकों के समान अन्य उत्पन्न होते हैं पर्यन्त करना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या देवेन्द्र देवराज ईशान के त्रायस्त्रिंशक देव-त्रायस्त्रिंशक देव हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! हैं।
जैसे शक्र के त्रायस्त्रिंशक देवों का वर्णन किया वैसे ही यहाँ भी करना चाहिए।

विशेष–(ये तेतीस श्रमणोपासक) चम्पानगरी के निवासी थे यावत् (ईशानेन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में) उत्पन्न हुए।

जब से ये चम्पानगरी निवासी परस्पर सहायक तेतीस श्रमणोपासक त्रायस्त्रिंशक देव बने इत्यादि समग्र वर्णन अन्य उत्पन्न होते हैं पर्यन्त पूर्ववत् करना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार के त्रायस्त्रिंशक देव-त्रायस्त्रिंशक देव हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! हैं।
भंते ! किस कारण से ऐसा कहते हैं ? इत्यादि समग्र वर्णन धरणेन्द्र के समान करना चाहिए।

इसी प्रकार प्राणत (देवेन्द्र) पर्यन्त के त्रायस्त्रिंशक देवों के लिए जानना चाहिए।

इसी प्रकार अच्युतेन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देवों के लिए भी अन्य उत्पन्न होते हैं पर्यन्त कहना चाहिए।

१२. असुरकुमाराणं उड्ढगमण सामत्थ परूवणं–

प. केवइ कालस्स णं भंते ! असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मकप्पं गया य, गमिस्संति य ?

१२. असुरकुमारों का ऊर्ध्वगमन सामर्थ्य प्ररूपण–

प्र. भंते ! कितना काल व्यतीत होने पर असुरकुमार देव ऊर्ध्व गमन करते हैं यावत् सौधर्मकल्प पर्यन्त ऊपर गये हैं, जाते हैं और जाएँगे ?

उ. गोयमा ! अणंताहिं ओसप्पिणीहिं अणंताहिं उस्सप्पिणीहिं, अत्थि णं एस भावे लोयच्छेसयभूए समुप्पज्जइ जं णं असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो।

प. किं निस्साए णं भंते ! असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो ?

उ. गोयमा ! से जहानामए इह सवरा इ वा, बव्वरा इ वा, टंकणा इ वा, चुच्चुया इ वा, पल्हया इ वा, पुलिंदा इ वा, एगं महं रण्णं वा, गड्ढं वा, दुग्गं वा, दुरिं वा, विसमं वा, पव्वयं वा णीसाए सुमहल्लमवि आसवलं वा, हत्थिवलं वा, जोहवलं वा, धणुवलं वा आगलेंति। एवामेव असुरकुमारा वि देवा णऽन्नत्थ अरहंते वा, अणगारे वा भावियप्पणो निस्साए उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो।

प. सव्वे वि णं भंते ! असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। महिड्ढिया णं असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो।

प. एस वि य णं भंते ! चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया उड्ढं उप्पत्तिय पुव्वे जाव सोहम्मो कप्पो ?

उ. हंता, गोयमा ! एस वि य णं चमरे असुरिंदे असुरराया उड्ढं उप्पत्तियपुव्वे जाव सोहम्मो कप्पो।

प. अहो णं भंते ! चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया महिड्ढीए महज्जुईए जाव कहिं पविट्ठा ?

उ. गोयमा ! कूडागारसालादिट्ठंतो भाणियव्वो।

–विया. स. ३, उ. २, सु. १४-१८

उ. गौतम ! अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणीकाल के व्यतीत होने के पश्चात् लोक में यह आश्चर्य समुत्पन्न होता है कि असुरकुमार देव ऊर्ध्व गमन करते हैं यावत् सौधर्मकल्प पर्यन्त जाते हैं।

प्र. भंते ! किसका आश्रय लेकर असुरकुमार देव ऊर्ध्व गमन करते हैं यावत् सौधर्मकल्प पर्यन्त जाते हैं ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार यहाँ (मनुष्यलोक में) शवर, बर्बर, टंकण, चुच्चुक, प्रश्नक या पुलिन्द्र जाति के लोग किसी बड़े वन, गड्ढे, दुर्ग, गुफा, ऊबड़-खाबड़ प्रदेश या पर्वत का आश्रय लेकर एक महान् व्यवस्थित अश्ववाहिनी, गजवाहिनी, पैदल सेना या धनुर्धारियों को आकुल-व्याकुल कर देते हैं। इसी प्रकार असुरकुमार देव अरिहन्त का या भावितात्मा अनगार का आश्रय लेकर ऊर्ध्वगमन करते हैं और सौधर्मकल्प पर्यन्त ऊपर जाते हैं।

प्र. भंते ! क्या सभी असुरकुमार देव सौधर्मकल्प पर्यन्त ऊर्ध्वगमन करते हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। किन्तु महर्द्धिक असुरकुमार देव सौधर्म देवलोक पर्यन्त ऊपर जाते हैं।

प्र. भंते ! क्या असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर पहले कभी ऊपर सौधर्मकल्प पर्यन्त ऊर्ध्वगमन कर चुका है ?

उ. हाँ, गौतम ! यह असुरेन्द्र असुरराज चमर पहले सौधर्मकल्प पर्यन्त ऊर्ध्वगमन कर चुका है।

प्र. अहो भंते ! असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसा महाऋद्धि एवं महाद्युति वाला है यावत् दिव्य देवप्रभाव कहाँ प्रविष्ट हो गया ?

उ. गौतम ! यहाँ भी कूटाकारशाला का दृष्टान्त कहना चाहिए। (उसके अनुसार वह उसके शरीर में प्रविष्ट हो गया।)

१३. पण्णरस विसिट्ठ असुरकुमार परमाहम्मिय देव णामाणि–

पण्णरस परमाहम्मिआ पण्णत्ता, तं जहा–

अंबे अंबरिसी चेव, सामे सबलेत्ति यावरे।
रुद्दोवरुद्दकाले य, महाकालेत्ति यावरे॥
असिपत्ते धणु कुम्भे, वालुए वेयरणीति य।
खरस्सरे महाघोसे, एए पण्णरसाहिआ॥

–सम. सम. १५, सु. १

१३. पन्द्रह विशिष्ट असुरकुमार परमाधार्मिक देवों के नाम–

पन्द्रह परमाधार्मिक देव कहे गए हैं, यथा–

१. अंब,	२. अंबरिष,	३. श्याम,
४. शबल,	५. रौद्र,	६. उपरौद्र,
७. काल,	८. महाकाल,	९. असिपत्र,
१०. धनु,	११. कुंभ,	१२. वालुका,
१३. वैतरणी,	१४. खरस्वर,	१५. महाघोष।

१४. अंतोमणुस्सखेत्ते जोईसियाणं देवाणं उड्ढोववण्णगाइ परूवणं–

प. अंतो णं भंते ! माणुसुत्तरस्स पव्वयस्स जे चंदिम सूरिअ-गहगण-णक्खत्त-तारारूवा णं भन्ते ! देवा किं उड्ढोववण्णगा, कप्पोववण्णगा, विमाणोववण्णगा, चारोववण्णगा चारट्ठिईआ गइरइआ गइसमावण्णगा ?

उ. गोयमा ! अंतो णं माणुसुत्तरस्स पव्वयस्स जे चंदिम-सूरिअ-गहगण-णक्खत्त-तारा रूवे ते णं देवा णो उड्ढोववण्णगा, णो कप्पोववण्णगा, विमाणोववण्णगा, चारोववण्णगा, णो चारट्ठिईआ, गइरइआ, गइसमावण्णगा।

१४. अन्तर्वर्ती मनुष्य क्षेत्र में ज्योतिष्कों के ऊर्ध्वोपपन्नकादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! मानुषोत्तर पर्वत के अंतर्वर्ती चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा रूप ज्योतिष्क देव क्या ऊर्ध्वोपपन्नक (सौधर्मादि विमानों से ऊपर उत्पन्न होने वाले) हैं ? विमानोपपन्नक (ज्योतिष्क विमानों में उत्पन्न होने वाले) हैं ? कल्पोपपन्नक (सौधर्मादि कल्पों में उत्पन्न होने वाले) हैं ? चारोपपन्नक (परिभ्रमण करने वाले) हैं, चारस्थितिक हैं, गतिरतिक हैं या गति समापन्नक हैं ?

उ. गौतम ! मानुषोत्तर पर्वतवर्ती चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा रूप ज्योतिष्क देव ऊर्ध्वोपपन्नक नहीं हैं, कल्पोपपन्नक नहीं हैं, वे विमानोपपन्नक हैं, चारोपपन्नक हैं, चारस्थितिक नहीं हैं, गतिरतिक हैं और गतिसमापन्नक हैं।

उद्धीमुह कलंबुअ पुप्फसंठाणसंठिएहिं, जोअणसाहस्सिएहिं तावखेत्तेहिं साहस्सियाहिं वेउव्विआहिं बाहिरियाहिं परिसाहिं महया-हय-णट्ट-गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिअ-घण मुइंगपडुप्प वाइअरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा महया उक्किट्ठ सीहणाय बोल कलकलरवेणं अच्छं पव्वयरायं पयाहिणाऽवत्तमण्डलचारं मेरुं अणुपरियट्टंति। –जंबू. वक्ख. ७, सु. १७३

ऊर्ध्वमुखी कदम्ब पुष्प के आकार में संस्थित, सहस्रों योजनपर्यन्त तापक्षेत्र युक्त, वैक्रियलब्धि से युक्त, बाह्य परिषदाओं सहित, ज्योतिष्क देव नाट्य-गीत-वादन-रूप त्रिविध संगीतोपक्रम में जोर-जोर से वजाये जाते तन्त्री-तल-ताल-त्रुटित-घन-मृदंग-इन वाद्यों से उत्पन्न मधुर ध्वनि के साथ दिव्य भोग भोगते हुए उच्च स्वर से सिहंनाद करते हुए मुंह पर हाथ लगाकर जोर से ध्वनि करते हुए, कलकल शब्द करते हुए, निर्मल पर्वतराज मेरु की प्रदक्षिणावर्त मण्डल गति द्वारा प्रदक्षिणा करते रहते हैं।

१५. अंतोमणुस्सखेत्ते इंदस्स चवणाणंतर अण्णइंदस्स उववज्जण परूवणं–

प. तेसि णं भंते ! देवाणं जाहे इंदे चुए भवइ, से कहमियाणिं पकरेंति ?

उ. गोयमा ! ताहे चत्तारि पंच वा सामाणिआ देवा तं ठाणं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति जाव तत्थ अण्णे इंदे उववण्णे भवइ।

प. इंदट्ठाणे णं भंते ! केवइअं कालं उववाएणं विरहिए ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं छम्मासे उववाएणं विरहिए।[1] –जंबू. वक्ख. ७, सु. १७४

१५. अन्तर्वर्ती मनुष्य क्षेत्र में इन्द्र के च्यवनान्तर अन्य इन्द्र के उत्पात का प्ररूपण–

प्र. भंते ! उन ज्योतिष्क देवों का इन्द्र जब च्युत (मृत) हो जाता है तब विरहकाल में वे क्या करते हैं ?

उ. गौतम ! जब तक दूसरा इन्द्र उत्पन्न होता है तब तक चार या पाँच सामानिक देव मिल कर उस इन्द्र स्थान का परिपालन करते हैं।

प्र. भंते ! इन्द्र का स्थान कितने समय तक नये इन्द्र की उत्पत्ति से विरहित रहता है ?

उ. गौतम ! वह कम से कम एक समय तथा अधिक से अधिक छह मास तक इन्द्रोत्पत्ति से विरहित रहता है।

१६. बहिया मणुस्सखेत्ते जोइसियाणं उड्ढोववण्णगाइ परूवणं–

बहिआ णं माणुसुत्तरस्स पव्वयस्स जे चंदिम-सूरिअ गह गण-णक्खत्त-तारारूवा तं चेव णेअव्वं।

णाणत्तं–विमाणोववण्णगा णो चारोववण्णगा, चारट्ठिईआ, णो गइरइआ; णो गइसमावण्णगा। पक्किट्ठग-संठाण-संठिएहिं जोअण-सय-साहस्सिएहिं तावखेत्तेहिं सय-साहस्सिआहिं वेउव्विआहिं बाहिराहिं परिसाहिं महया-हय-णट्ट जाव रवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा सुहलेसा, मंदलेसा, मंदातवलेसा चित्तंतरलेसा अण्णोण्णसमोगाढाहिं लेसाहिं कूडाविव ठाणटिआ सव्वओ समन्ता ते पएसे ओभासंति, उज्जोवेंति, पभासेंति त्ति। –जंबू. वक्ख. ७, सु. १७४

१६. बहिर्वर्ती मनुष्य क्षेत्र में ज्योतिष्कों के ऊर्ध्वोपपन्नकादि का प्ररूपण–

मानुषोत्तर पर्वत के बहिर्वर्ती चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा रूप ज्योतिष्क देवों का वर्णन पूर्वानुरूप जानना चाहिए।

किन्तु यह भिन्नता है–वे विमानोत्पन्नक हैं, चारोपपन्नक नहीं हैं, वे चारस्थितिक हैं, गतिरतिक नहीं हैं, गति-समापन्नक भी नहीं हैं। पकी हुई ईंट के आकार में संस्थित, लाखों योजन विस्तीर्ण, तापक्षेत्रयुक्त, नानाविधविकुर्वित रूप धारण करने में सक्षम, बाह्य परिपदाओं सहित वे ज्योतिष्क देव जोर-जोर से वजाये जाते वाद्यों और नाट्य ध्वनियों सहित यावत् दिव्य भोग भोगते हुए मंदलेश्या, मंदातप लेश्या, चित्र-विचित्र-लेश्या युक्त परस्पर अपनी-अपनी लेश्याओं द्वारा मिले हुए पर्वत के शिखरों जैसे अपने-अपने स्थानों में स्थित होकर आस-पास के सम्पूर्ण प्रदेशों को अवभासित करते हैं, उद्योतित करते हैं, प्रभासित करते हैं।

१७. [illegible] मणुस्सखेत्ते इंदस्स चवणाणंतरं अण्णइंदस्स [illegible]–

प. [illegible] भंते ! देवाणं जाहे इंदे चुए से कहमियाणिं [illegible]

उ. [illegible] चत्तारि पंच वा सामाणिआ देवा तं ठाणं [illegible] जाव तत्थ अण्णे इंदे उववण्णे [illegible]

प. [illegible] कालं उववाएणं विरहिए ?

१७. बहिर्वर्ती मनुष्य क्षेत्र में इन्द्र के च्यवनान्तर अन्य इन्द्र के उत्पत्ति का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! जब मानुषोत्तर पर्वत के बहिर्वर्ती इन ज्योतिष्क देवों का इन्द्र च्युत होता है तव विरहकाल में वे क्या करते हैं ?

उ. गौतम ! जव तक नया इन्द्र उत्पन्न होता है तव तक चार या पांच सामानिक देव परस्पर एकमत होकर इन्द्र स्थान का परिपालन करते हैं।

प्र. भन्ते ! इन्द्र स्थान कितने समय तक इन्द्रोत्पत्ति से विरहित रहता है ?

[illegible] (२) [illegible] ८, उ. ८, सु. [illegible] (१) सूरिय. पा. १९, सु. १००

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छम्मासा।[1]

–जंबू. वक्ख. ७, सु. १७४

१८. देवकिव्विसियाणं भेया ठाण य परूवणं–

प. कइविहा णं भन्ते ! देविकिव्विसिया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तिविहा देवकिव्विसिया पण्णत्ता, तं जहा–

१. तिपलिओवमट्ठिईया,

२. तिसागरोवमट्ठिईया,

३. तेरससागरोवमट्ठिईया।

प. कहि णं भन्ते ! तिपलिओवमट्ठिईया देवकिव्विसिया परिवसंति ?

उ. गोयमा ! उप्पिं जोइसियाणं हिट्ठिं सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु एत्थ णं तिपलिओवमट्ठिईया देवकिव्विसिया परिवसंति।

प. कहि णं भंते ! तिसागरोवमट्ठिईया देवकिव्विसिया परिवसंति ?

उ. गोयमा ! उप्पिं सोहम्मीसाणाणं कप्पाणं हेट्ठिं सणंकुमार माहिंदेसु कप्पेसु एत्थ णं तिसागरोवमट्ठिईया देवकिव्विसिया परिवसंति।

प. कहि णं भंते ! तेरससागरोवमट्ठिईया देवकिव्विसिया देवा परिवसंति ?

उ. गोयमा ! उप्पिं बंभलोगस्स कप्पस्स, हेट्ठिं लंतए कप्पे एत्थ णं तेरससागरोवमट्ठिईया देवकिव्विसिया देवा परिवसंति।

–विया. स. ९, उ. ३३, सु. १०४-१०७

१९. आहेवच्चकराणं इंदाणं लोगपालाणं नामाणि–

रायगिहे नगरे जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासि–

प. १. असुरकुमाराणं भंते ! देवाणं कइ देवा आहेवच्चं जाव विहरंति ?

उ. गोयमा ! दस देवा आहेवच्चं जाव विहरंति, तं जहा–

१. चमरे असुरिंदे असुरराया,

२. सोमे, ३. जमे,

४. वरुणे, ५. वेसमणे,

६. बली वइरोयणिंदे वइरोयणराया,

७. सोमे, ८. जमे,

९. वरुणे, १०. वेसमणे।

प. २. नागकुमाराणं भंते ! देवाणं कइ देवा आहेवच्चं जाव विहरंति ?

उ. गोयमा ! दस देवा आहेवच्चं जाव विहरंति, तं जहा–

१. धरणे नागकुमारिंदे नागकुमारराया,

[illegible]

उ. गौतम ! वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छः मास इन्द्रोत्पत्ति से विरहित रहता है।

१८. किल्विषिक देवों के भेद और स्थानों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! किल्विषिक देव कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! किल्विषिक देव तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. तीन पल्योपम की स्थिति वाले,

२. तीन सागरोपम की स्थिति वाले,

३. तेरह सागरोपम की स्थिति वाले।

प्र. भन्ते ! तीन पल्योपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव कहां रहते हैं ?

उ. गौतम ! ज्योतिष्क देवों के ऊपर और सौधर्म ईशान कल्पों के नीचे तीन पल्योपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव रहते हैं।

प्र. भंते ! तीन सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव कहां रहते हैं ?

उ. गौतम ! सौधर्म और ईशानकल्पों के ऊपर तथा सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प के नीचे की प्रतर में तीन सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव रहते हैं।

प्र. भंते ! तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव कहां रहते हैं ?

उ. गौतम ! ब्रह्मलोक कल्प के ऊपर तथा लान्तक कल्प के नीचे की प्रतर में तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव रहते हैं।

१९. आधिपत्य करने वाले इन्द्र और लोकपालों के नाम–

राजगृह नगर में यावत् पर्युपासना करते हुए गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा–

प्र. १. भंते ! असुरकुमार देवों पर कितने देव आधिपत्य करते हुए यावत् विचरण करते रहते हैं ?

उ. गौतम ! असुरकुमार देवों पर दस देव आधिपत्य करते हुए यावत् विचरण करते रहते हैं, यथा–

१. असुरेन्द्र असुरराज चमर,

२. सोम, ३. यम,

४. वरुण, ५. वैश्रमण,

६. वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि,

७. सोम, ८. यम,

९. वरुण, १०. वैश्रमण।

प्र. २. भंते ! नागकुमार देवों पर कितने देव आधिपत्य करते हुए यावत् विचरण करते रहते हैं ?

उ. गौतम ! नागकुमार देवों पर दस देव आधिपत्य करते हुए यावत् विचरण करते रहते हैं, यथा–

[illegible]

६. भूयाणंदे नागकुमारिंदे णागकुमारराया,
७. कालवाले, ८. कोलवाले,
९. संखवाले, १०. सेलवाले।

जहा नागकुमारिंदाणं एयाए वत्तव्वयाए णीयं एवं इमाणं नेयव्वं–

३. सुवण्णकुमाराणं–
१. वेणुदेवे, २. वेणुदाली,
१. चित्ते, २. विचित्ते,
३. चित्तपक्खे, ४. विचित्तपक्खे।

४. विज्जुकुमाराणं–
१. हरिक्कंते, २. हरिस्सह,
१. पभे, २. सुप्पभे,
३. पभकंते, ४. सुप्पभकंते।

५. अग्गिकुमाराणं–
१. अग्गिसीहे, २. अग्गिमाणवे,
१. तेउ, २. तेउसीहे,
३. तेउकंते, ४. तेउप्पभे।

६. दीवकुमाराणं–
१. पुण्णे, २. विसिट्ठे,
१. रूय, २. सुरूय,
३. रूयकंते, ४. रूयप्पभे।

७. उदहिकुमाराणं–
१. जलकंते, २. जलप्पभे,
१. जल, २. जलरूय,
३. जलकंत, ४. जलप्पभ।

८. दिसाकुमाराणं–
१. अमियगइ, २. अमियवाहणे,
१. तुरियगइ, २. खिप्पगइ,
३. सीहगइ, ४. सीहविक्कमगइ।

९. वाउकुमाराणं–
१. वेलंब, २. पभंजण,
१. काल, २. महाकाल,
३. अंजण, ४. रिट्ठा।

१०. थणियकुमाराणं–
१. घोस, २. महाघोस,
१. आवत्त, २. वियावत्त,
३. नंदियावत्त, ४. महानंदियावत्त।

एवं भाणियव्वं जहा असुरकुमारा।

प. पिसायकुमाराणं भंते ! देवाणं कइ देवा आहेवच्चं जाव विहरंति ?

उ. गोयमा ! दो दो देवा आहेवच्चं जाव विहरंति, तं जहा–

६. नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द,
७. कालपाल, ८. कोलपाल,
९. शंखपाल, १०. शैलपाल।

जिस प्रकार नागकुमारों के इन्द्रों के विषय में कहा उसी प्रकार इन (देवों) के विषय में भी कहना चाहिए।

३. सुवर्णकुमार देवों पर–
(इन्द्र–२) १. वेणुदेव, २. वेणुदालि।
(लोकपाल-४) १. चित्र, २. विचित्र,
३. चित्रपक्ष, ४. विचित्रपक्ष।

४. विद्युत्कुमार देवों पर–
(इन्द्र-२) १. हरिकान्त, २. हरिस्सह।
(लोकपाल-४) १. प्रभ, २. सुप्रभ,
३. प्रभाकान्त, ४. सुप्रभाकान्त।

५. अग्निकुमार देवों पर–
(इन्द्र-२) १. अग्निसिंह, २. अग्निमाणव।
(लोकपाल-४) १. तेज, २. तेजःसिंह,
३. तेजस्कान्त, ४. तेजःप्रभ।

६. द्वीपकुमार देवों पर–
(इन्द्र-२) १. पूर्ण, २. विशिष्ट।
(लोकपाल-४) १. रूप, २. स्वरूप,
३. रूपकान्त, ४. रूपप्रभ।

७. उदधिकुमार देवों पर–
(इन्द्र-२) १. जलकान्त, २. जलप्रभ।
(लोकपाल-४) १. जल, २. जलरूप,
३. जलकान्त, ४. जलप्रभ।

८. दिशाकुमार देवों पर–
(इन्द्र-२) १. अमितगति, २. अमितवाहन।
(लोकपाल-४) १. तूर्य गति, २. क्षिप्रगति,
३. सिंह गति, ४. सिंह विक्रमगति।

९. वायुकुमार देवों पर–
(इन्द्र-२) १. वेलम्व, २. प्रभंजन।
(लोकपाल-४) १. काल, २. महाकाल,
३. अंजन, ४. रिष्ट।

१०. स्तनितकुमार देवों पर–
(इन्द्र-२) १. घोष, २. महाघोष।
(लोकपाल-४) १. आवर्त, २. व्यावर्त,
३. नन्दिकावर्त, ४. महानन्दिकावर्त। ये (आधिपत्य करते हुए रहते हैं।)

इन सबका कथन असुरकुमारों के समान कहना चाहिए।

प्र. भंते ! पिशाचकुमारों (वाणव्यन्तर देवों) पर कितने देव आधिपत्य करते हुए यावत् विचरण करते हैं ?

उ. गौतम ! उन पर दो-दो देव (इन्द्र) आधिपत्य करते हुए यावत् विचरण करते हैं, यथा–

(१) १. काले य, २. महाकाले,
(२) १. सुरूवं, २. पडिरूवं,
(३) १. पुन्नभद्दे य, २. माणिभद्दे य,
(४) १. भीमे य तहा, २. महाभीमे,
(५) १. किन्नर, २. किं पुरिसे खलु,
(६) १. सप्पुरिसे खलु तहा, २. महापुरिसे,
(७) १. अइकाय, २. महाकाए,
(८) १. गीतरई चेव, २. गीयजसे।

एए वाणमंतराणं देवाणं।

जोइसियाणं देवाणं दो देवा आहेवच्चं जाव विहरंति, तं जहा–

१. चंदे य, २. सूरे य।

प. सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु कइ देवा आहेवच्चं जाव विहरंति ?

उ. गोयमा ! दस देवा जाव विहरंति, तं जहा–

१. सक्के देविंदे देवराया, २. सोमे,
३. जमे, ४. वरुणे,
५. वेसमणे, ६. ईसाणे देविंदे देवराया,
७. सोमे, ८. जमे,
९. वरुणे, १०. वेसमणे।

एसा वत्तव्वया सव्वेसु वि कप्पेसु एए चेव भाणियव्वा।

जे य इंदा ते य भाणियव्वा। *–विया. स. ३, उ. ८, सु. १-६*

२०. भवणवासींदाणं लोगपालाण य अग्गमहिसी संखा परूवणं–

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नगरे गुणसिलए चेइए जाव परिसा पडिगया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे अंतेवासी थेरा भगवंतो जाइसंपन्ना जाव विहरंति।

तए णं ते थेरा भगवंतो जायसड्ढा जायसंसया जहा गोयमसामी जाव पज्जुवासमाणा एवं वयासी–

प. चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो कइ अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ ?

उ. अज्जो ! पंच अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. काली २. रायी, ३. रयणी, ४. विज्जू, ५. मेहा।

तत्थ णं एगमेगाए देवीए अट्ठट्ठ देवीसहस्सा परिवारो पन्नत्तो।

(१) पिशाचेन्द्र– १. काल और २. महाकाल,
(२) भूतेन्द्र– १. सुरूप और २. प्रतिरूप,
(३) यक्षेन्द्र– १. पूर्णभद्र और २. माणिभद्र,
(४) राक्षसेन्द्र– १. भीम और २. महाभीम,
(५) किन्नरेन्द्र– १. किन्नर और २. किम्पुरुष,
(६) पुरुषेन्द्र– १. सत्पुरुष और २. महापुरुष,
(७) महोरगेन्द्र– १. अतिकाय और २. महाकाय,
(८) गंधर्वेन्द्र– १. गीतरति और २. गीतयश।

ये सब पिशाचादि वाणव्यन्तर देवों के अधिपति इन्द्रों के नाम हैं।

ज्योतिषिक देवों पर आधिपत्य करते हुए ये दो देव यावत् विचरण करते हैं, यथा–

१. चन्द्र, २. सूर्य।

प्र. भंते ! सौधर्म और ईशानकल्प में आधिपत्य करते हुए कितने देव यावत् विचरण करते हैं ?

उ. गौतम ! दस देव यावत् विचरण करते हैं, यथा–

१. देवेन्द्र देवराज शक्र, २. सोम,
३. यम, ४. वरुण,
५. वैश्रमण, ६. देवेन्द्र देवराज ईशान,
७. सोम, ८. यम,
९. वरुण, १०. वैश्रमण।

यह सारा कथन सभी कल्पों (देवलोकों) के विषय में इसी प्रकार कहना चाहिए।

जिस कल्प का जो इन्द्र है उसका नाम कहना चाहिए।

२०. भवनवासी इन्द्रों की और लोकपालों की अग्रमहिषियों की संख्या का प्ररूपण–

उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। वहां गुणशीलक नामक उद्यान था। (वहां श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का समवसरण हुआ) यावत् परिषद् (धर्मोपदेश सुनकर) लौट गई।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के बहुत से अन्तेवासी जाति सम्पन्न आदि विशेषणों से युक्त स्थविर भगवन्त यावत् विचरण करते थे।

एक बार उन स्थविरों (के मन) में श्रद्धा और संशय उत्पन्न हुए और वे गौतमस्वामी की तरह यावत् (भगवान् की) पर्युपासना करते हुए इस प्रकार पूछने लगे–

प्र. भंते ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की कितनी अग्रमहिषियां (मुख्य देवियां) कही गई हैं ?

उ. हे आर्यो ! असुरेन्द्र [illegible] की पांच अग्रमहिषियां कही गई हैं, यथा–

[illegible]

[illegible]

६. भूयाणंदे नागकुमारिंदे णागकुमारराया,
७. कालवाले, ८. कोलवाले,
९. संखवाले, १०. सेलवाले।

जहा नागकुमारिंदाणं एयाए वत्तव्वयाए णीयं एवं इमाणं नेयव्वं–

३. सुवण्णकुमाराणं–
१. वेणुदेवे, २. वेणुदाली,
१. चित्ते, २. विचित्ते,
३. चित्तपक्खे, ४. विचित्तपक्खे।

४. विज्जुकुमाराणं–
१. हरिक्कंते, २. हरिस्सह,
१. पभे, २. सुप्पभे,
३. पभकंते, ४. सुप्पभकंते।

५. अग्गिकुमाराणं–
१. अग्गिसीहे, २. अग्गिमाणवे,
१. तेउ, २. तेउसीहे,
३. तेउकंते, ४. तेउप्पभे।

६. दीवकुमाराणं–
१. पुण्णे, २. विसिट्ठे,
१. रूय, २. सुरूय,
३. रूयकंते, ४. रूयप्पभे।

७. उदहिकुमाराणं–
१. जलकंते, २. जलप्पभे,
१. जल, २. जलरूय,
३. जलकंत, ४. जलप्पभ।

८. दिसाकुमाराणं–
१. अमियगइ, २. अमियवाहणे,
१. तुरियगइ, २. खिप्पगइ,
३. सीहगइ, ४. सीहविक्कमगइ।

९. वाउकुमाराणं–
१. वेलंबे, २. पभंजण,
१. काल, २. महाकाल,
३. अंजण, ४. रिट्ठा।

१०. थणियकुमाराणं–
१. घोस, २. महाघोस,
१. आवत्त, २. वियावत्त,
३. नंदियावत्त, ४. महानंदियावत्त।

एवं भाणियव्वं जहा असुरकुमारा।

प. पिसायकुमाराणं भंते ! देवाणं कइ देवा आहेवच्चं जाव विहरंति?

उ. गोयमा ! दो दो देवा आहेवच्चं जाव विहरंति, तं जहा–

६. नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द,
७. कालपाल, ८. कोलपाल,
९. शंखपाल, १०. शैलपाल।

जिस प्रकार नागकुमारों के इन्द्रों के विषय में कहा उसी प्रकार इन (देवों) के विषय में भी कहना चाहिए।

३. सुवर्णकुमार देवों पर–
(इन्द्र–२) १. वेणुदेव, २. वेणुदालि।
(लोकपाल-४) १. चित्र, २. विचित्र,
३. चित्रपक्ष, ४. विचित्रपक्ष।

४. विद्युतूकुमार देवों पर–
(इन्द्र-२) १. हरिकान्त, २. हरिस्सह।
(लोकपाल-४) १. प्रभ, २. सुप्रभ,
३. प्रभाकान्त, ४. सुप्रभाकान्त।

५. अग्निकुमार देवों पर–
(इन्द्र-२) १. अग्निसिंह, २. अग्निमाणव।
(लोकपाल-४) १. तेज, २. तेजःसिंह,
३. तेजस्कान्त, ४. तेजःप्रभ।

६. द्वीपकुमार देवों पर–
(इन्द्र-२) १. पूर्ण, २. विशिष्ट।
(लोकपाल-४) १. रूप, २. स्वरूप,
३. रूपकान्त, ४. रूपप्रभ।

७. उदधिकुमार देवों पर–
(इन्द्र-२) १. जलकान्त, २. जलप्रभ।
(लोकपाल-४) १. जल, २. जलरूप,
३. जलकान्त, ४. जलप्रभ।

८. दिशाकुमार देवों पर–
(इन्द्र-२) १. अमितगति, २. अमितवाहन।
(लोकपाल-४) १. तूर्य गति, २. क्षिप्रगति,
३. सिंह गति, ४. सिंह विक्रमगति।

९. वायुकुमार देवों पर–
(इन्द्र-२) १. वेलम्ब, २. प्रभंजन।
(लोकपाल-४) १. काल, २. महाकाल,
३. अंजन, ४. रिष्ट।

१०. स्तनितकुमार देवों पर–
(इन्द्र-२) १. घोष, २. महाघोष।
(लोकपाल-४) १. आवर्त, २. व्यावर्त,
३. नन्दिकावर्त, ४. महानन्दिकावर्त। ये (आधिपत्य करते हुए रहते हैं।)

इन सबका कथन असुरकुमारों के समान कहना चाहिए।

प्र. भंते ! पिशाचकुमारों (वाणव्यन्तर देवों) पर कितने देव आधिपत्य करते हुए यावत् विचरण करते हैं?

उ. गौतम ! उन पर दो-दो देव (इन्द्र) आधिपत्य करते हुए यावत् विचरण करते हैं, यथा–

(१) १.काले य, २. महाकाले,
(२) १.सुरूवं, २. पडिरूवं,
(३) १.पुन्नभद्दे य, २. माणिभद्दे य,
(४) १.भीमे य तहा, २. महाभीमे,
(५) १.किन्नर, २. किं पुरिसे खलु,
(६) १.सप्पुरिसे खलु तहा, २. महापुरिसे,
(७) १.अइकाय, २. महाकाए,
(८) १.गीतरई चेव, २. गीयजसे।
एए वाणमंतराणं देवाणं।

जोइसियाणं देवाणं दो देवा आहेवच्चं जाव विहरंति, तं जहा–

१. चंदे य, २. सूरे य।

प. सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु कइ देवा आहेवच्चं जाव विहरंति?

उ. गोयमा ! दस देवा जाव विहरंति, तं जहा–

१. सक्के देविंदे देवराया, २. सोमे,
३. जमे, ४. वरुणे,
५. वेसमणे, ६. ईसाणे देविंदे देवराया,
७. सोमे, ८. जमे,
९. वरुणे, १०. वेसमणे।

एसा वत्तव्वया सव्वेसु वि कप्पेसु एए चेव भाणियव्वा।

जे य इंदा ते य भाणियव्वा। *–विया. स. ३, उ. ८, सु. १-६*

(१) पिशाचेन्द्र– १. काल और २. महाकाल,
(२) भूतेन्द्र– १. सुरूप और २. प्रतिरूप,
(३) यक्षेन्द्र– १. पूर्णभद्र और २. मणिभद्र,
(४) राक्षसेन्द्र– १. भीम और २. महाभीम,
(५) किन्नरेन्द्र– १. किन्नर और २. किम्पुरुष,
(६) पुरुषेन्द्र– १. सत्पुरुष और २. महापुरुष,
(७) महोरगेन्द्र– १. अतिकाय और २. महाकाय,
(८) गंधर्वेन्द्र– १. गीतरति और २. गीतयश।

ये सब पिशाचादि वाणव्यन्तर देवों के अधिपति इन्द्रों के नाम हैं।

ज्योतिषिक देवों पर आधिपत्य करते हुए ये दो देव यावत् विचरण करते हैं, यथा–

१. चन्द्र, २. सूर्य।

प्र. भंते ! सौधर्म और ईशानकल्प में आधिपत्य करते हुए कितने देव यावत् विचरण करते हैं?

उ. गौतम ! दस देव यावत् विचरण करते हैं, यथा–

१. देवेन्द्र देवराज शक्र, २. सोम,
३. यम, ४. वरुण,
५. वैश्रमण, ६. देवेन्द्र देवराज ईशान,
७. सोम, ८. यम,
९. वरुण, १०. वैश्रमण।

यह सारा कथन सभी कल्पों (देवलोकों) के विषय में इसी प्रकार कहना चाहिए।

जिस कल्प का जो इन्द्र है उसका नाम कहना चाहिए।

२०. भवणवासींदाणं लोगपालाण य अग्गमहिसी संखा परूवणं–

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नगरे गुणसिलए चेइए जाव परिसा पडिगया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे अंतेवासी थेरा भगवंतो जाइसंपन्ना जाव विहरंति।

तए णं ते थेरा भगवंतो जायसड्ढा जायसंसया जहा गोयमसामी जाव पज्जुवासमाणा एवं वयासी–

प. चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो कइ अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ?

उ. अज्जो ! पंच अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१.काली २.रायी, ३.रयणी, ४.विज्जू, ५.मेहा।

तत्थ णं एगमेगाए देवीए अट्ठऽट्ठ देवीसहस्स परिवारो पन्नत्तो।

२०. भवनवासी इन्द्रों की और लोकपालों की अग्रमहिषियों की संख्या का प्ररूपण–

उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। वहां गुणशीलक नामक उद्यान था। (वहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का समवसरण हुआ) यावत् परिषद् (धर्मोपदेश सुनकर) लौट गई।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के बहुत से जातिसम्पन्न आदि विशेषणों से युक्त अन्तेवासी (शिष्य) स्थविर भगवंत यावत् विचरण करते थे।

एक बार उन स्थविरों (के मन) में श्रद्धा और शंका उत्पन्न हुई और वे गौतमस्वामी की तरह यावत् (भगवान की) पर्युपासना करते हुए इस प्रकार पूछने लगे–

प्र. भन्ते ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की कितनी अग्रमहिषियाँ (मुख्य देवियाँ) कही गई हैं?

उ. हे आर्यो ! (चमरेन्द्र की पांच) अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा–

१. काली, २. राजी, ३. रजनी, ४. विद्युत्, ५. मेघा,

इनमें से एक-एक अग्रमहिषी का आठ-आठ हजार देवियों का परिवार कहा गया है।

पभू णं ताओ एगमेगा देवी अन्नाइं अट्ठऽट्ठ देवीसहस्साइं परिवारं विउव्वित्तए एवामेव सपुव्वावरेणं चत्तालीसं देवीसहस्सा, से त्तं तुडिए।

एक-एक देवी दूसरी आठ-आठ हजार देवियों के परिवार की विकुर्वणा कर सकती है। इस प्रकार पूर्वापर सब मिलाकर (पाँच अग्रमहिषियों का परिवार) चालीस हजार देवियां हैं। यह चमरेन्द्र का त्रुटिक (अन्तःपुर) है।

प. पभू णं भंते ! चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचंचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरंसि सिंहासणंसि तुडिएणं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए?

उ. अज्जो ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

नो पभू चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचंचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए जाव नो दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए?

उ. अज्जो ! चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमरचंचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए माणवए चेइयखंभं वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूओ जिणसकहाओ सन्निक्खित्ताओ चिट्ठंति, जाओ णं चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो अन्नेसिं च बहूणं असुरकुमाराणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ, वंदणिज्जाओ, नमंसणिज्जाओ, पूयणिज्जाओ, सक्कारणिज्जाओ, सम्माणणिज्जाओ, कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासणिज्जाओ भवंति, तेसिं पणिहाए नो पभू।

से तेणट्ठेणं अज्जो ! एवं वुच्चइ–

'नो पभू चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचंचाए रायहाणीए जाव विहरित्तए।'

पभू णं अज्जो ! चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचंचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरंसि सीहासणंसि चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीहिं तायत्तीसाए जाव अन्नेहिं य बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहि य देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे महयाहय जाव भुंजमाणे विहरित्तए केवलं परियारिड्ढीए नो चेव णं मेहुणवत्तियं।

प. चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सोमस्स महारण्णो कइ अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ?

उ. अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. कणगा २. कणगलया, ३. चित्तगुत्ता, ४. वसुंधरा।

तत्थ णं एगमेगाए देवीए एगमेगं देविसहस्सं परिवारो पन्नत्तो, पभू णं ताओ एगमेगा देवी अन्नं एगमेगं देविसहस्सं परिवारं विउव्वित्तए। एवामेव चत्तारि देव देविसहस्सा से त्तं तुडिए।

प. पभू णं भंते ! चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सोमे महाराया सोमाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए सोमंसि सीहासणंसि तुडिएणं?

प्र. भन्ते ! क्या असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर चमरचंचा राजधानी को सुधर्मा सभा में चमर नामक सिंहासन पर बैठकर अपने अन्तःपुर के साथ दिव्य भोगों को भोगने में समर्थ है?

उ. हे आर्यो ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर चमरचंचा राजधानी की सुधर्मासभा में यावत् दिव्य भोगों को भोगने में समर्थ नहीं है?"

उ. हे आर्यो ! असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर की चमरचंचा नामक राजधानी की सुधर्मासभा में माणवक चैत्यस्तम्भ में, वज्रमय (हीरों के) गोल डिब्बों में जिन भगवान् की बहुत सी अस्थियाँ रखी हुई हैं, जो कि असुरेन्द्र असुरकुमारराज के लिए तथा अन्य बहुत से असुरकुमार देवों और देवियों के लिए अर्चनीय, वन्दनीय, नमस्करणीय, पूजनीय, सत्कारयोग्य एवं सम्मानयोग्य हैं। वे कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप, चैत्यरूप, पर्युपासनीय हैं। इसलिए उनके प्रणिधान (सान्निध्य में) यावत् भोग-भोगने में समर्थ नहीं है।

इस कारण से हे आर्यो ! ऐसा कहा गया है कि–

'असुरेन्द्र यावत् चमर चमरचंचा राजधानी में यावत् दिव्य भोग-भोगने में समर्थ नहीं है।'

हे आर्यो ! वह असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर अपनी चमरचंचा राजधानी की सुधर्मासभा में चमर सिंहासन पर बैठकर चौंसठ हजार सामानिक देवों, त्रायस्त्रिंशक देवों यावत् दूसरे बहुत से असुरकुमार देव-देवियों से परिवृत होकर वाद्य घोषों के साथ यावत् दिव्य भोग्य भोगों का केवल परिवार की ऋद्धि से उपभोग करने में समर्थ है किन्तु मैथुननिमित्तक भोग भोगने में समर्थ नहीं है।

प्र. भन्ते ! असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के लोकपाल सोम महाराज की कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई हैं?

उ. हे आर्यो ! उनके चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा–

१. कनका, २. कनकलता, ३. चित्रगुप्ता, ४. वसुन्धरा।

इनमें से प्रत्येक देवी का एक-एक हजार देवियों का परिवार है। इनमें से प्रत्येक देवी, एक-एक हजार देवियों के परिवार की विर्कुवणा कर सकती है। इस प्रकार पूर्वापर सब मिलाकर चार हजार देवियाँ होती हैं यह सोम लोकपाल का त्रुटिक (अन्तःपुर) है।

प्र. भन्ते ! क्या असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के लोकपाल सोम महराज अपनी सोमा नामक राजधानी की सुधर्मासभा में सोम नामक सिंहासन पर बैठकर अपने उस त्रुटिक के साथ दिव्य भोग भोगने में समर्थ हैं?

उ. अज्जो ! अवसेसं जहा चमरस्स,

णवरं–परियारो जहा सूरियाभस्स।

सेसं तं चेव जाव णो चेव णं मेहुणवत्तियं।

उ. हे आर्यो ! जिस प्रकार असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर क सम्बन्ध में कहा गया है उसी प्रकार यहां भी जानना चाहिए।

विशेष–इसका परिवार राजप्रश्नीय सूत्र में वर्णित सूर्याभदेव के परिवार के समान जानना चाहिए।

शेष सब वर्णन वह सोमा राजधानी की सुधर्मा सभा में मैथुननिमित्तक भोग भोगने में समर्थ नहीं है पर्यन्त पूर्ववत् जानना चाहिए।

प. चमरस्स णं भन्ते ! असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो जमस्स महारण्णो कइ अग्गमहिसीओ जाव पण्णत्ताओ ?

उ. अज्जो ! एवं चेव।

णवरं–जमाए रायहाणीए

सेसं जहा सोमस्स।

एवं वरुणस्स वि,

णवरं–वरुणाए रायहाणीए।

एवं वेसमणस्स वि,

णवरं–वेसमणाए रायहाणीए सेसं तं चेव जाव णो चेव ण मेहुणवत्तियं।

प्र. भन्ते ! असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के लोकपाल यम महाराज की कितनी अग्रमहिषियाँ आदि कही गई हैं ?

उ. हे आर्यो ! पूर्ववत् अग्रमहिषियाँ आदि जाननी चाहिए।

विशेष–यम लोकपाल की राजधानी यमा है।

शेष सब वर्णन सोम महाराज के समान जानना चाहिए।

इसी प्रकार (लोकपाल) वरुण महाराज का भी कथन करना चाहिए।

विशेष–वरुण महाराज की राजधानी का नाम वरुणा है, (शेष सब वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए।)

इसी प्रकार (लोकपाल) वैश्रमण महाराज के विषय में भी जानना चाहिए।

विशेष–वैश्रमण की राजधानी वैश्रमणा है। शेष सब वर्णन वे वहाँ मैथुननिमित्तक भोग भोगने में समर्थ नहीं है पर्यन्त पूर्ववत् कहना चाहिए।

प. बलिस्स णं भंते ! वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो कइ अग्गमहिसीओ जाव पन्नताओ ?

उ. अज्जो ! पंच अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. सुंभा, २. निसुंभा, ३. रंभा, ४. निरंभा, ५. मयणा।

तत्थ णं एगमेगाए देवीए अट्ठऽट्ठ

सेसं जहा चमरस्स

णवरं–बलिचंचाए रायहाणीए परियारो जहा मोउद्देसए।

सेसं तं चेव जाव नो चेव णं मेहुणवत्तियं।

प्र. भन्ते ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बली की कितनी अग्रमहिषियाँ आदि कही गई हैं ?

उ. हे आर्यो ! पाँच अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा–

१. शुम्भा, २. निशुम्भा, ३. रम्भा, ४. निरम्भा, ५. मदना।

इनमें से प्रत्येक देवी के आठ-आठ हजार देवियों का परिवार है।

इत्यादि शेष समग्र वर्णन चमरेन्द्र के समान जानना चाहिए।

विशेष–बलीन्द्र की राजधानी वलिचंचा है और परिवार का वर्णन मौक उद्देशक के समान है।

शेष सब वर्णन मैथुननिमित्तक भोग भोगने में समर्थ नहीं है पर्यन्त पूर्ववत् जानना चाहिए।

प. बलिस्स णं भंते ! वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सोमस्स महारण्णो कइ अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ ?

उ. अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. मीणगा, २. सुभद्दा, ३. विजया, ४. असणी।

तत्थ णं एगमेगाए देवीए एगमेगं देवीसहस्सं परिवारो। सेसं जहा चमरसोमस्स एवं जाव वेसमणस्स।

प्र. भन्ते ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज वलि के लोकपाल सोम महाराज की कितनी अग्रमहिषियाँ आदि कही गई हैं ?

उ. हे आर्यो ! चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा–

१. मेनका, २. सुभद्रा, ३. विजया, ४. अशनी।

इनका एक-एक देवी का परिवार एक हजार देवियों का है आदि का समग्र वर्णन चमरेन्द्र के लोकपाल सोम के समान जानना चाहिए और लोकपाल वैश्रमण पर्यन्त का भी सारा वर्णन उसी प्रकार कहना चाहिए।

प. धरण्णस्स णं भंते ! नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो कइ अग्गमहिसीओ जाव पन्नत्ताओ ?

उ. अज्जो ! छ अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. अंला, २. मक्का, ३. सतेरा, ४. सोयामणी, ५. इंदा, ६. घणविज्जुया।

प्र. भन्ते ! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण की कितनी अग्रमहिषियाँ यावत् कही गई हैं ?

उ. हे आर्यो ! धरणेन्द्र की छह अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा–

१. अला, २. मक्का, ३. सतारा, ४. सौदामिनी, ५. इन्द्रा, ६. घनविद्युत्।

तत्थ णं एगमेगाए देवीए छ-छ देविसहस्सा परिवारो पन्नत्ताओ। पभू णं ताओ एगमेगा देवी अन्नाइं छ-छ देविसहस्साइं परियारं विउव्वित्तए। एवामेव सपुव्वावरेणं छत्तीसं देविसहस्सा, से त्तं तुडिए।

उनमें से प्रत्येक अग्रमहिषी का छः हजार देवियों का परिवार कहा गया है और वे प्रत्येक देवियां अन्य छह-छह हजार देवियों के परिवार की विकुर्वणा करने में समर्थ हैं। इस प्रकार पूर्वापर सब मिलाकर छत्तीस हजार देवियों का यह त्रुटिक (अन्तःपुर) कहा गया है।

प. पभू णं भंते ! धरणे धरणाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए धरणंसि सीहासणंसि तुडिएण सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए ?

उ. अज्जो ! णो इणट्ठे समट्ठे, सेसं तं चेव जाव नो चेव णं मेहुणवत्तियं।

प. धरणस्स णं भन्ते ! नागकुमारिंदस्स कालवालस्स लोगपालस्स महारण्णो कइ अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ ?

उ. अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. असोगा, २. विमला, ३. सुप्पभा, ४. सुदंसणा।

तत्थ णं एगमेगाए देवीए एगमेगं देवी सहस्सं परिवारो पण्णत्तो अवसेसं जहा चमरलोगपालाणं।

एवं सेसाणं तिण्ह वि लोगपालाणं।

प. भूयाणंदस्स णं भन्ते ! कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ ?

उ. अज्जो ! छ अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. रूया, २. रूयंसा, ३. सुरूया, ४. रूयणावई, ५. रूयकंता, ६. रूयप्पभा।

अवसेसं जहा धरणस्स।

प. भूयाणंदस्स णं भन्ते ! नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो नागचित्तस्स लोगपालस्स महारण्णो कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ ?

उ. अज्जो चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. सुणंदा, २. सुभद्दा, ३. सुजाया, ४. सुमणा।

अवसेसं जहा चमर लोगपालाणं।

एवं सेसाणं तिण्ह वि लोगपालाणं।

जे दाहिणिल्ला इंदा तेसिं जहा धरणस्स। लोगपालाण वि तेसिं जहा धरणलोगपालाणं।

उत्तरिल्लाणं इंदाणं जहा भूयाणंदस्स, लोगपालाण वि तेसिं जहा भूयाणंदस्स लोगपालाणं।

नवरं-इंदाणं सव्वेसिं रायहाणीओ सीहासणाणि य सरिसणामगाणि।

परियारो जहा मोउद्देसए।

लोगपालाणं सव्वेसिं रायहाणीओ सीहासणाणि य सरिसणामगाणि परियारो जहा चमरलोगपालाणं।

– [illegible] स. १०, उ. ५, सु. [illegible]

प्र. भन्ते ! धरणेन्द्र धरणा नामक राजधानी की सुधर्मा सभा में धरण सिंहासन पर बैठकर अंतःपुर के साथ दिव्य भोगोपभोगों को भोगने में समर्थ है ?

उ. हे आर्यो ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, शेष सब कथन मैथुनवृत्ति से भोगने में समर्थ नहीं है पर्यन्त पूर्ववत् कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! नागकुमारेन्द्र धरण के लोकपाल कालवाल नामक महाराज की कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई हैं ?

उ. हे आर्यो ! चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा–

१. अशोका, २. विमला, ३. सुप्रभा, ४. सुदर्शना।

इनमें से एक-एक देवी का एक हजार देवियों परिवार कहा गया है। शेष वर्णन चमरेन्द्र के लोकपाल के समान समझना चाहिए।

इसी प्रकार (धरणेन्द्र के) शेष तीन लोकपालों के विषय में भी कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! भूतानन्द की कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई हैं ?

उ. हे आर्यो ! छह अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा–

१. रूपा, २. रूपांशा, ३. सुरूपा, ४. रूपकावली, ५. रूपकान्ता, ६. रूपप्रभा।

शेष समस्त वर्णन धरणेन्द्र के समान जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! भूतानंद के लोकपाल नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज नागचित्त महाराज के कितनी अग्रमहषियां कही गई हैं ?

उ. हे आर्यो ! चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा–

१. सुनन्दा, २. सुभद्रा, ३. सुजाता, ४. सुमना।

शेष वर्णन चमरेन्द्र के लोकपालों के समान जानना चाहिए।

इसी प्रकार शेष तीन लोकपालों का वर्णन भी (चमरेन्द्र के शेष तीन लोकपालों के समान) जानना चाहिए।

जो दक्षिणदिशावर्ती इन्द्र हैं, उनका कथन धरणेन्द्र के समान तथा उनके लोकपालों का कथन धरणेन्द्र के लोकपालों के समान जानना चाहिए।

उत्तरदिशावर्ती इन्द्रों का कथन भूतानन्द के समान तथा उनके लोकपालों का कथन भी भूतानन्द के लोकपालों के समान जानना चाहिए।

विशेष–सब इन्द्रों की राजधानियों और उनके सिंहासनों का नाम इन्द्र के नाम के समान जानना चाहिए।

उनके परिवार का वर्णन मोक उद्देशक में कहे अनुसार जानना चाहिए।

सभी लोकपालों की राजधानियों और उनके सिंहासनों का नाम लोकपालों के नाम के सदृश जानना चाहिए तथा उनके परिवार का वर्णन चमरेन्द्र के लोकपालों के परिवार के वर्णन के समान जानना चाहिए।

२१. वंतरिंदाणं अग्गमहिसी संखा परूवणं–

प. कालस्स णं भंते ! पिसाइंदस्स पिसायरण्णो कइ अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ?

उ. अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. कमला, २. कमलप्पभा, ३. उप्पला, ४. सुदंसणा।

तत्थ णं एगमेगाए देवीए एगमेगं देविसहस्सं

सेसं जहा चमरलोगपालाणं परियारो तहेव।

णवरं–कालाए रायहाणीए कालंसि सीहासणंसि।

सेसं तं चेव एवं महाकालस्स वि।

प. सुरूवस्स णं भन्ते ! भूइंदस्स भूयरन्नो कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ?

उ. अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. रूपवती, २. बहुरूपा, ३. सुरूपा, ४. सुभगा।

सेसं जहा कालस्स,

एवं पडिरूवगस्स वि।

प. पुण्णभद्दस्स णं भन्ते ! जक्खिंदस्स कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ?

उ. अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. पुण्णा, २. बहुपुत्तिया, ३. उत्तमा, ४. तारया।

सेसं जहा कालस्स।

एवं माणिभद्दस्स वि।

प. भीमस्स णं भन्ते ! रक्खसिंदस्स कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ?

उ. अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. पउमा, २. पउमावती, ३. कणगा, ४. रयणप्पभा।

सेसं जहा कालस्स।

एवं महाभीमस्स वि।

प. किन्नरस्स णं भंते ! कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ?

उ. अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. वडेंसा, २. केतुमती, ३. रतिसेणा, ४. रतिप्पिया।

सेसं तं चेव।

एवं किंपुरिसस्स वि।

प. सप्पुरिसस्स णं भंते ! कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ?

उ. अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. रोहिणी, २. नवमिया, ३. हिरी, ४. पुप्फवती।

सेसं तं चेव।

एवं महापुरिसस्स वि।

प. अतिकायस्स णं भंते ! कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ?

उ. अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. भुयगा, २. भुयगवती, ३. महाकच्छा, ४. फुडा।

२१. व्यंतरेन्द्रों की अग्रमहिषियों की संख्या का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! पिशाचेन्द्र पिशाचराज काल की कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई हैं?

उ. हे आर्यो ! चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा–

१. कमला, २. कमलप्रभा, ३. उत्पला, ४. सुदर्शना।

इनमें से प्रत्येक देवी के एक-एक हजार देवियों का परिवार है।

शेष समग्र वर्णन चमरेन्द्र के लोकपालों के समान परिवार सहित कहना चाहिए।

विशेष–इनके काला नाम की राजधानी और काल नामक सिंहासन है, शेष सब वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

इसी प्रकार पिशाचेन्द्र महाकाल का कथन भी करना चाहिए।

प्र. भन्ते ! भूतेन्द्र भूतराज सुरूप की कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई हैं?

उ. हे आर्यो ! चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा–

१. रूपवती, २. बहुरूपा, ३. सुरूपा, ४. सुभगा।

शेष सब कथन काल के समान जानना चाहिए।

इसी प्रकार प्रतिरूपेन्द्र के विषय में भी जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! यक्षेन्द्र यक्षराज पूर्णभद्र की कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई हैं?

उ. हे आर्यो ! चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा–

१. पूर्णा, २. बहुपुत्रिका, ३. उत्तमा, ४. तारका।

शेष समग्र वर्णन कालेन्द्र के समान जानना चाहिए।

इसी प्रकार माणिभद्र (यक्षेन्द्र) के विषय में भी जान लेना चाहिए।

प्र. भन्ते ! राक्षसेन्द्र भीम के कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई हैं?

उ. हे आर्यो ! चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा–

१. पद्मा, २. पद्मावती, ३. कनका, ४. रत्नप्रभा।

शेष सब वर्णन कालेन्द्र के समान जानना चाहिए।

इसी प्रकार महाभीम (राक्षसेन्द्र) के विषय में भी जान लेना चाहिए।

प्र. भन्ते ! किन्नरेन्द्र की कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई हैं?

उ. हे आर्यो ! चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा–

१. अवतंसा, २. केतुमती, ३. रतिसेना, ४. रतिप्रिया।

शेष वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

इसी प्रकार किम्पुरुषेन्द्र के विषय में कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! सत्पुरुषेन्द्र की कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई हैं?

उ. हे आर्यो ! चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा–

१. रोहिणी, २. नवमिका, ३. ह्री, ४. पुष्पवती।

शेष वर्णन काल के समान जानना चाहिए।

इसी प्रकार महापुरुषेन्द्र के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

प्र. भन्ते ! अतिकायेन्द्र की कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई हैं?

उ. हे आर्यो ! चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा–

१. भुजगा, २. भुजगवती, ३. महाकच्छा, ४. स्फुटा।

सेसं तं चेव,

एवं महाकायस्स वि।

प. गीतरतिस्स णं भंते ! कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ ?

उ. अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. सुघोसा, २. विमला, ३. सुस्सरा, ४. सरस्सती।

सेसं तं चेव।

एवं गीयजसस्स वि।

सव्वेसिं एएसिं जहा कालस्स,

णवरं–सरिसनामियाओ रायहाणीओ सीहासणाणि य।

सेसं तं चेव। *–विया. स. १०, उ. ५, सु. १९-२६*

२२. जोइसिंदाणं अग्गमहिसी संखा परूवणं–

प. चंदस्स णं भंते ! जोइसिंदस्स जोइसरण्णो कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ ?

उ. अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. चंदप्पभा, २. दोसिणाभा,
३. अच्चिमाली, ४. पभंकरा।

एवं जहा जीवाभिगमे जोइसियउद्देसए तहेव।

सूरस्स वि–

१. सुरप्पभा, २. आयवाभा, ३. अच्चिमाली, ४. पभंकरा, सेसं तं चेव।

प. इंगालस्स णं भंते ! महग्गहस्स कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ ?

उ. अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. विजया, २. वेजयंती, ३. जयंति, ४. अपराजिया।

सेसं जहा चंदस्स।

णवरं–इंगालवडेंसए विमाणं इंगालगंसि सीहासणंसि।

सेसं तं चेव।

एवं वियालगस्स वि।

एवं अट्ठासीताए वि महागहाणं भाणियव्वं जाव भावकेउस्स।

णवरं–[illegible] सीहासणाणि य सरिसनामगाणि।

सेसं तं चेव। *–विया. स. १०, उ. ५, सु. २७-२९*

२३. [illegible] लोकपालाण य अग्गमहिसी संखा परूवणं–

प. [illegible] णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो कइ अग्गमहिसीओ [illegible]?

शेष वर्णन काल के समान जानना चाहिए।

इसी प्रकार महाकायेन्द्र के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

प्र. भन्ते ! गीतरतीन्द्र की कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई हैं ?

उ. हे आर्यो ! चार अग्रमहिषियाँ कही कई हैं, यथा–

१. सुघोषा २. विमला, ४. सुस्सरा, ४. सरस्वती।

शेष वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

इसी प्रकार गीतयश इन्द्र के विषय में भी जान लेना चाहिए।

इन सभी इन्द्रों का शेष सम्पूर्ण वर्णन कालेन्द्र के समान जानना चाहिए।

विशेष–राजधानियों और सिंहासनों के नाम इन्द्रों के नाम के समान है।

शेष सभी वर्णन पूर्ववत् है।

२२. ज्योतिष्केन्द्रों की अग्रमहिषियों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज चन्द्र की कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई हैं ?

उ. हे आर्यो ! ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र की चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा–

१. चन्द्रप्रभा, २. ज्योत्स्नाभा,
३. अर्चिमाली, ४. प्रभंकरा।

शेष समस्त वर्णन जीवाभिगम सूत्र के ज्योतिष्क उद्देशक में कहे अनुसार जानना चाहिए।

इसी प्रकार सूर्य के विषय में भी जानना चाहिए (सूर्येन्द्र की चार अग्रमहिषियाँ हैं)

१. सूर्यप्रभा, २. आतप्रभा, ३. अर्चिमाली, ४. प्रभंकरा, शेष सब वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! अंगारक (मंगल) नामक महाग्रह की कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई हैं ?

उ. हे आर्यो ! चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा–

१. विजया, २. वैजयन्ती, ३. जयन्ती, ४. अपराजिता।

शेष समग्र वर्णन चन्द्र के समान जानना चाहिए।

विशेष–इसके विमान का नाम अंगारावतंसक और सिंहासन का नाम अंगारक कहना चाहिए।

शेष समग्र वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

इसी प्रकार व्यालक नामक ग्रह के विषय में भी जानना चाहिए।

इसी प्रकार अठ्यासी (८८) महाग्रहों के विषय में भावकेतु ग्रह पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष–अवतंसकों और सिंहासनों का नाम इन्द्र के नाम के अनुरूप है।

शेष सब वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

२३. वैमानिकेन्द्रों की और लोकपालों की अग्रमहिषियों की संख्या का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! देवेन्द्र देवराज शक्र की कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं ?

उ. अज्जो ! अट्ठ अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–
१. पउमा, २. सिवा, ३. सुयो, ४. अंजू, ५. अमला, ६. अच्छरा, ७. नवमिया, ८. रोहिणी।
तत्थं णं एगमेगाए देवीए सोलस-सोलस देविसहस्सा परियारो पन्नत्तो।
पभू णं ताओ एगमेगा देवी अन्नाइं सोलस-सोलस देविसहस्सा परियारं विउव्वित्तए।
एवामेव सपुव्वावरेणं अट्ठावीसुत्तरं देविसयसहस्सं,
से तं तुडिए।

प. पभू णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए सक्कंसि सीहासंणसि तुडिएणं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए ?
उ. अज्जो ! सेसं जहा चमरस्स।

प. सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ ?
उ. अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–
१. रोहिणी, २. मदणा, ३. चित्ता, ४. सोमा।
तत्थ णं एगमेगा सेसं जहा चमरलोगपालाणं।
णवरं–सयंपभे विमाणे सभाए सुहम्माए सोमंसि सीहासणंसि,
सेसं तं चेव,
एवं जाव वेसमणस्स जहा तइयसए।

प. ईसाणस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ ?
उ. अज्जो ! अट्ठ अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–
१. कण्हा, २. कण्हराई, ३. रामा, ४. रामरक्खिया, ५. वसू, ६. वसुगुप्ता, ७. वसुमित्ता, ८. वसुंधरा।
तत्थ णं एगमेगाए, सेसं जहा सक्कस्स।

प. ईसाणस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ ?
उ. अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–
१. पुढवी, २. राई, ३. रयणी, ४. विज्जू।
तत्थ णं सेसं जहा सक्कस्स लोगपालाणं।
एवं जाव वरुणस्स। –विया. स. १०, उ. ५, सु. ३०-३५

२४. देविंदसक्कईसाणाणं लोगपालाण य अग्गमहिसीओ–
सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो अट्ठ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।[1] –ठाणं अ. ८, सु. ६१२

उ. हे आर्यों ! आठ अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा–
१. पद्मा, २. शिवा, ३. श्रेया, ४. अंजू, ५. अमला, ६. अप्सरा, ७. नवमिका, ८. रोहिणी।
इनमें से प्रत्येक देवी का सोलह-सोलह हजार देवियों का परिवार कहा गया है।
इनमें से प्रत्येक देवी सोलह-सोलह हजार देवियों के परिवार की विकुर्वणा कर सकती हैं।
इस प्रकार पूर्वापर सब मिलाकर एक लाख अट्ठाईस हजार देवियों का परिवार होता है।
यह शक्र का अन्तःपुर है। यह एक त्रुटिक (देवियों का वर्ग) कहलाता है।

प्र. भन्ते ! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र, सौधर्मकल्प (देवलोक) में सौधर्मावतंसक विमान में सुधर्मासभा में शक्र नामक सिंहासन पर बैठकर अपने (उक्त) त्रुटिक के साथ भोग भोगने में समर्थ हैं ?
उ. हे आर्यों ! इसका समग्र वर्णन चमरेन्द्र के समान जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल सोम महाराजा की कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई हैं ?
उ. हे आर्यों ! चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा–
१. रोहिणी, २. मदना, ३. चित्रा, ४. सोमा।
इनमें से प्रत्येक अग्रमहिषी के देवी परिवार का वर्णन चमरेन्द्र के लोकपालों के समान जानना चाहिए।
विशेष–स्वयम्प्रभ नामक विमान में सुधर्मासभा में सोम नामक सिंहासन पर बैठकर यावत् मैथुननिमित्तक भोग भोगने में समर्थ नहीं है इत्यादि पूर्ववत् जानना चाहिए।
इसी प्रकार वैश्रमण लोकपाल पर्यन्त तृतीय शतक के अनुसार कथन करना चाहिए।

प्र. भन्ते ! देवेन्द्र देवराज ईशान की कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई हैं ?
उ. हे आर्यों ! आठ अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा–
१. कृष्णा, २. कृष्णराजि, ३. रामा, ४. रामरक्षिता, ५. वसु, ६. वसुगुप्ता, ७. वसुमित्रा, ८. वसुन्धरा।
इनमें से प्रत्येक अग्रमहिषियों के परिवार आदि का समस्त वर्णन शक्रेन्द्र के समान जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल सोम महाराज की कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई हैं ?
उ. हे आर्यों ! चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, यथा–
१. पृथ्वी, २. रात्रि, ३. रजनी, ४. विद्युत।
इनमें से प्रत्येक अग्रमहिषी की देविओं के परिवार आदि का समग्र वर्णन शक्रेन्द्र के लोकपालों के समान है।
इसी प्रकार वरुण लोकपाल पर्यन्त जानना चाहिए।

२४. देवेन्द्र शक्र और ईशान के लोकपालों की अग्रमहिषियाँ–
देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल सोम महाराज की आठ अग्रमहिषियाँ कही गई हैं।

अन्तर–१. क. ठाणं. अ. ६, सु. ५०५ (छ अग्रमहिषियाँ)
ख. विया. स. १०, उ. ५, सु. ३४ (चार अग्रमहिषियां)

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ। *-ठाणं. अ. ६, सु. ५०५*

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल यम महाराज की छ अग्रमहिषियाँ कही गई हैं।

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वरुणस्स महारण्णो सत्त अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ। *-ठाणं अ. ७, सु. ५७४*

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वरुण महाराज की सात अग्रमहिषियाँ कही गई हैं।

ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो सत्त अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल सोम महाराज की सात अग्रमहिषियाँ कही गई हैं।

जमस्स महारण्णो एवं चेव। *-ठाणं अ. ७, सु. ५७४*

इसी प्रकार लोकपाल यम महाराज की भी सात अग्रमहिषियाँ कही गई हैं।

ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वेसमणस्स महारण्णो अट्ठ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ। *-ठाणं अ. ८, सु. ६१२*

देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल वैश्रमण महाराज की आठ अग्रमहिषियाँ कही गई हैं।

२५. कप्पविमाणेसु देविंदेहिं दिव्वाइं भोगाइं भुंजण परूषणं-

२५. कल्प विमानों में देवेन्द्रों द्वारा दिव्य भोगों के भोगने का प्ररूपण-

प. जाहे णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया दिव्वाइं भोग भोगाइं भुंजिउकामे भवइ से कहमिदाणिं पकरेइ ?

उ. गोयमा ! ताहे चेव णं से सक्के देविंदे देवराया एगं महं नेमिपडिरूवगं विउव्वइ, एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलस य जोयणसहस्साइं दो य सयाइं सत्तावीसाहियाइं कोस तियं अट्ठावीसाहियं धणुसयं तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचि विसेसाहियं परक्खिवेणं,

तस्स णं नेमिपडिरूवगस्स उवरिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पन्नत्ते **जाव मणीणं फासो।**

तस्स णं नेमिपडिरूवगस्स बहुमज्झदेसभागे, तत्थ णं महं एगं पासायवडेंसगं विउव्वइ, पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं विक्खंभेणं।

अब्भुग्गयमूसिय **वण्णओ जाव** पडिरूवे।

तस्स णं पासायवडेंसगस्स उल्लोए पउमलया भित्तिचित्ते जाव पडिरूवे।

तस्स णं पासायवडेंसगस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे जाव मणीणं फासो।

मणिपेढिया अट्ठजोयणिया **जहा वेमाणियाणं।**

तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं महं एगे देवसयणिज्जे विउव्वइ। **सयणिज्ज वण्णओ जाव पडिरूवे।**

तत्थ णं से सक्के देविंदे देवराया अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं दोहि य अणिएहिं-१. नट्टाणिएण य २. गंधव्वाणिएण य सद्धिं महयाहयनट्ट जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

प्र. भंते ! जब देवेन्द्र देवराज शक्र दिव्य भोगोपभोगों के भोगने का इच्छुक होता है, तब उस समय वह क्या करता है ?

उ. गौतम ! उस समय देवेन्द्र देवराज शक्र एक महान् नेमिप्रतिरूपक (चक्र के सदृश गोलाकार स्थान) की विकुर्वणा करता है, जो लम्बाई-चौड़ाई में एक लाख योजन होता है, उसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार, दो सौ सत्तावीस योजन, तीन कोस एक सौ अट्ठाईस धनुप और कुछ अधिक साढे तेरह अंगुल होती है।

उस नेमिप्रतिरूपक (चक्र के समान गोलाकार उस स्थान) के ऊपर अत्यन्त समतल एवं रमणीय भूभाग कहा गया है, **उसका वर्णन मणियों के स्पर्श पर्यन्त करना चाहिए।**

उस नेमिप्रतिरूपक के ठीक मध्यभाग में एक महान् प्रासादावतंसक की विकुर्वणा करता है, जिसकी ऊँचाई पाँच सौ योजन की और लम्बाई-चौड़ाई ढ़ाई सौ योजन की है।

वह प्रासाद अभ्युद्गत अत्यन्त ऊँचा है इत्यादि वर्णन दर्शनीय एवं प्रतिरूप पर्यन्त करना चाहिए।

उस प्रासादावतंसक का उपरितल भाग पद्मलता आदि के चित्रों से चित्रित यावत् प्रतिरूप है।

उस प्रासादावतंसक के भीतर का भूभाग अत्यन्त सम और रमणीय कहा गया है, **इत्यादि वर्णन मणियों के स्पर्श पर्यन्त करना चाहिए।**

वहाँ पर वैमानिकों की मणिपीठिका के समान आठ योजन लम्बी-चौड़ी मणिपीठिका है,

उस मणिपीठिका के ऊपर एक बड़ी देवशैय्या की विकुर्वणा करता है। **उस देवशैय्या का वर्णन प्रतिरूप है पर्यन्त करना चाहिए।**

वहाँ देवेन्द्र देवराज शक्र सपरिवार आठ अग्रमहिषियों तथा नाट्यानीक और गंधर्वानीक इन दो अनीकों (सैन्यों) मंडलियों के साथ, जोर-जोर से बजाए जा रहे वाद्यों आदि के साथ दिव्य भोगोपभोगों का उपभोग करता हुआ रहता है।

प. जाहे णं भंते ! ईसाणे देविंदे देवराया दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजिउकामे भवइ, ते कहमियाणि पकरेइ ?

उ. गोयमा ! जहा सक्के तहा ईसाणे वि निरवसेसं

प्र. भंते ! जब देवेन्द्र देवराज ईशान दिव्य भोगोपभोगों के उपभोग करने का इच्छुक होता है तब उस समय वह क्या करता है ?

उ. **गौतम ! जिस प्रकार शक्र के लिए कहा है उसी प्रकार समग्र कथन ईशानेन्द्र के लिए भी करना चाहिए।**

एवं सणंकुमारे वि,

नवरं–पासायवडेंसओ छज्जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, तिण्णि जोयणसयाइं विक्खंभेणं।

मणिपेढिया तहेव अट्ठजोयणिया।

तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एत्थ णं महेगं सीहासणं विउव्वइ, सपरिवारं भाणियव्वं।

तत्थ णं सणंकुमारे देविंदे देवराया बावत्तरीए सामाणियसाहस्सीहिं जाव चउहिं य बावत्तरीहिं आयरक्ख देवसाहस्सीहिं बहूहिं सणंकुमार कप्पवासीहिं वेमाणिएहिं देवेहि य सद्धिं संपरिवुडे महया हय-नट्ट जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

एवं जहा सणंकुमारे तहा जाव पाणओ अच्चुओ

नवरं–जो जस्स परिवारो सो तस्स भाणियव्वो।

पासाय उच्चत्तं जं सएसु-सएसु कप्पेसु विमाणाणं उच्चत्तं अद्धद्धं वित्थारो जाव अच्चुयस्स नव जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अद्ध पंचमाइं जोयणसयाइं विक्खंभेणं।

तत्थ णं गोयमा ! अच्चुए देविंदे देवराया दसहिं सामाणियसाहस्सीहिं जाव विहरइ।

सेसं तं चेव। –विया. स. १४, उ. ६, सु. ६-९

इसी प्रकार सनत्कुमारेन्द्र के लिए भी कहना चाहिए।

विशेष–उनके प्रासादावतंसकों की ऊँचाई छह सौ योजन की है और लम्बाई-चौड़ाई तीन योजन की है।

आठ योजन की मणिपीठिका का वर्णन उसी प्रकार कहना चाहिए।

उस मणिपीठिका के ऊपर एक विशाल सिंहासन की विकुर्वणा करता है। जो परिवार (आसनादि) सहित कहना चाहिए।

वहाँ देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार बहत्तर हजार सामानिक देवों यावत् चतुर्गुणित वहत्तर हजार (दो लाख अठ्यासी हजार) आत्मरक्षक देवों और बहुत से सनत्कुमार कल्पवासी वैमानिक देवों से परिवृत्त होकर जोर-जोर बजाए जा रहे वाद्यों आदि के साथ दिव्य भोगोपभोगों का उपभोग करता हुआ रहता है।

इसी प्रकार जैसे सनत्कुमार (देवेन्द्र) का कथन किया वैसे ही प्राणत और अच्युत कल्प पर्यन्त के इन्द्रों का कथन करना चाहिए।

विशेष–जिसका जितना परिवार हो उतना कहना चाहिए।

प्रासाद की ऊँचाई अपने कल्प के विमानों की ऊँचाई के बराबर और लम्बाई-चौड़ाई उससे आधी यावत् अच्युत कल्प का प्रासादावतंसक नौ सौ योजन ऊँचा और चार सौ पचास योजन लम्बा-चौड़ा है।

हे गौतम ! उसमें देवेन्द्र देवराज अच्युत दस हजार सामानिक देवों के साथ भोगोपभोगों का उपभोग करता हुआ यावत् विचरता है।

शेष सब कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

२६. वेमाणिय देविंदाणं परिसाओ–

प. (१) सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरन्नो कइ परिसाओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. समिया, २. चंडा, ३. जाया,

१. अब्भिंतरिया समिया, २. मज्झिमिया चंडा, ३. बाहिरिया जाया।

प. सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरन्नो–

१. अब्भिंतरियाए परिसाए कइ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ?

२. मज्झिमियाए परिसाए कइ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ,

३. बाहिरियाए परिसाए कइ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो–

१. अब्भिंतरियाए परिसाए बारस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ,

२. मज्झिमियाए परिसाए चउद्दस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ,

३. बाहिरियाए परिसाए सोलस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तहा–

२६. वैमानिक देवेन्द्रों की परिषदाएँ–

प्र. (१) भंते ! देवेन्द्र देवराज शक्र की कितनी परिषदाएँ कही गई हैं ?

उ. गौतम ! तीन परिषदाएँ कही गई हैं, यथा–

१. समिता, २. चण्डा, ३. जाया,

१. आभ्यंतर परिषदा को समिता २. मध्यम परिषदा को चण्डा और ३. वाह्य परिषदा को जाता कहते हैं।

प्र. भंते ! देवेन्द्र देवराज शक्र की–

१. आभ्यंतर परिषद् में कितने हजार देव हैं ?

२. मध्यम परिषद् में कितने हजार देव हैं ?

३. वाह्य परिषद् में कितने हजार देव हैं ?

उ. गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र की–

१. आभ्यन्तर परिपद् में वारह हजार देव हैं,

२. मध्यम परिपद् में चौदह हजार देव हैं,

३. वाह्य परिपद् में सोलह हजार देव हैं, तया–

१. अब्भिंतरियाए परिसाए सत्त देवीसयाणि पण्णत्ताइं,
२. मज्झिमियाए छच्च देवीसयाणि पण्णत्ताइं,
३. बाहिरियाए पंच देवीसयाणि पण्णत्ताइं।

प. (२) ईसाणस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरन्नो कइ परिसाओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. समिया, २. चंडा, ३. जाया।

तहेव सव्वं

णवरं–१. अब्भिंतरियाए परिसाए दस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ,
२. मज्झिमियाए परिसाए बारस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ,
३. बाहिरियाए परिसाए चउद्दस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तहा
१. अब्भिंतरियाए परिसाए नव देवीसयाणि पण्णत्ता,
२. मज्झिमियाए परिसाए अट्ठ देवीसयाणि पण्णत्ता,
३. बाहिरियाए परिसाए सत्त देवीसयाणि पण्णत्ता।

(३) सणंकुमारस्स तओ परिसाओ समियाइ तहेव–

णवरं–१. अब्भिंतरियाए परिसाए अट्ठ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ,
२. मज्झिमियाए परिसाए दस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ,
३. बाहिरियाए परिसाए बारस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

(४) एवं माहिंदस्स वि तओ परिसाओ,

णवरं–१. अब्भिंतरियाए परिसाए छ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ,
२. मज्झिमियाए परिसाए अट्ठ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ,
३. बाहिरियाए परिसाए दस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

(५) बंभस्स वि तओ परिसाओ पण्णत्ताओ,
१. अब्भिंतरियाए चत्तारि देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ,
२. मज्झिमियाए छ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ,
३. बाहिरियाए अट्ठ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

(६) लंतगस्स वि तओ परिसाओ पण्णत्ताओ,
१. अब्भिंतरियाए परिसाए दो देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ
२. मज्झिमियाए परिसाए चत्तारि देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ,
३. बाहिरियाए छ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

(७) महासुक्कस्स वि तओ परिसाओ पण्णत्ताओ–
१. अब्भिंतरियाए एगं देवसहस्सं पण्णत्तं,

१. आभ्यन्तर परिषद् में सात सौ देवियां हैं।
२. मध्यम परिषद् में छह सौ देवियां हैं।
३. बाह्य परिषद् में पांच सौ देवियां हैं।

प्र. (२) भंते ! देवेन्द्र देवराज ईशान की कितनी परिषदाएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! तीन परिषदाएं कही गई हैं, यथा–
१. समिता, २. चण्डा, ३. जाया।

शेष कथन शकेन्द्र के समान पूर्ववत् कहना चाहिए।

विशेष–१. आभ्यन्तर परिषद् में दस हजार देव हैं,
२. मध्यम परिषद् में बारह हजार देव हैं,
३. बाह्य परिषद् में चौदह हजार देव हैं। तथा–
१. आभ्यंन्तर परिषद् में नौ सौ देवियाँ हैं,
२. मध्यम परिषद् में आठ सौ देवियाँ हैं,
३. बाह्य परिषद् में सात सौ देवियाँ हैं।

(३) सनत्कुमारेन्द्र की पूर्ववत् समितादि तीन परिषदाएँ कही गई हैं,

विशेष–१. आभ्यंतर परिषद् में आठ हजार देव हैं,
२. मध्यम परिषद् में दस हजार देव हैं,
३. बाह्य परिषद् में बारह हजार देव हैं,

(४) इसी प्रकार माहेन्द्र देवराज की भी तीन परिषदाएँ कही गई हैं,

विशेष–१. आभ्यंतर परिषद् में छह हजार देव हैं,
२. मध्यम परिषद् में आठ हजार देव हैं,
३. बाह्य परिषद् में दस हजार देव हैं।

(५) ब्रह्मलोकेन्द्र की भी तीन परिषदाएँ कही गई हैं,
१. आभ्यंतर परिषद् में चार हजार देव हैं,
२. मध्यम परिषद् में छह हजार देव हैं,
३. बाह्य परिषद् में आठ हजार देव हैं।

(६) लन्तकेन्द्र की भी तीन परिषदाएँ कही गई हैं,
१. आभ्यंतर परिषद् में दो हजार देव हैं,
२. मध्यम परिषद् में चार हजार देव हैं,
३. बाह्य परिषद् में छह हजार देव हैं।

(७) महाशकेन्द्र की भी तीन परिषदाएँ कही गई हैं,
१. आभ्यन्तर परिषद् में एक हजार देव हैं,

२. मज्झिमियाए दो देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ,

३. बाहिरियाए चत्तारि देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

(८) सहस्सारे वि तओ परिसाओ पण्णत्ताओ–

१. अब्भिंतरियाए परिसाए पंच देवसया पण्णत्ता,

२. मज्झिमियाए परिसाए एगा देवसाहस्सी मण्णत्ता,

३. बाहिरियाए परिसाए दो देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

(९) आणयपाणयस्स वि तओ परिसाओ पण्णत्ताओ–

णवरं–१. अब्भिंतरियाए अड्ढाइज्जा देवसया पण्णत्ता,

२. मज्झिमियाए पंच देवसया पण्णत्ता,

३. बाहिरियाए एगा देवसाहस्सी पण्णत्ता।

(१०) अच्चुयस्स णं देविंदस्स तओ परिसाओ पण्णत्ताओ–

१. अब्भिंतरियाए देवाणं पणवीसं सयं पण्णत्तं,

२. मज्झिमियाए अड्ढाइज्जासया पण्णत्ता,

३. बाहिरियाए पंचसया पण्णत्ता।

–जीवा. पडि. ३, सु. १९९

२. मध्यम परिषद् में दो हजार देव हैं,

३. बाह्य परिषद् में चार हजार देव हैं।

(८) सहस्रारेन्द्र की भी तीन परिषदाएँ कही गई हैं,

१. आभ्यन्तर परिषद् में पाँच सौ देव हैं,

२. मध्यम परिषद् में एक हजार देव हैं,

३. बाह्य परिषद् में दो हजार देव हैं।

(९) आनत-प्राणतेन्द्र की तीन परिषदाएँ कही गई हैं,

विशेष–१. आभ्यन्तर परीषद् में अढ़ाई सौ देव हैं,

२. मध्यम परिषद् में पाँच सौ देव हैं,

३. बाह्य परिषद् में एक हजार देव हैं।

(१०) देवेन्द्र देवराज अच्युत की तीन परिषदाएँ कही गई हैं,

१. आभ्यन्तर परिषद् में एक सौ पच्चीस देव हैं,

२. मध्यम परिषद् में दो सौ पचास देव हैं,

३. बाह्य परिषद् में पाँच सौ देव हैं।

२७. वेमाणिय देवाणं सायासोक्खं इड्ढिआई परूवणं–

प. भंते ! सोहम्मीसाणदेवा केरिसयं सायासोक्खं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?

उ. गोयमा ! मणुण्णा सद्दा जाव मणुण्णा फासा जाव गेविज्जा।

अणुत्तरोववाइया अणुत्तरा सद्दा जाव फासा।

प. सोहम्मीसाणेसु देवाणं केरिसया इड्ढी पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! महिड्ढिया महिज्जुइया जाव महाणुभागा इड्ढीए पण्णत्ता जाव अच्चुओ।

गेविज्जणुत्तरा य सव्वे महिड्ढिया जाव सव्वे महाणुभागा अणिंदा जाव अहमिंदा णामं ते देवगणा पण्णत्ता, समणाउसो! *–जीवा. पडि. ३, सु. २०३*

प. सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु देवा केरिसयं खुहं पिवासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?

उ. गोयमा ! तेसि णं देवाणं णत्थि खुहं पिवासा।

एवं जाव अणुत्तरोववाइया। *–जीवा. पडि. ३, सु. २०३*

२७. वैमानिक देवों के साता सौख्य और ऋद्धि आदि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! सौधर्म ईशानकल्प के देव किस प्रकार का साता-सौख्य अनुभव करते हुए विचरते हैं?

उ. गौतम ! ग्रैवेयक पर्यन्त वे मनोज्ञ शब्द यावत् मनोज्ञ स्पर्शों द्वारा सुख का अनुभव करते हुए विचरते हैं।

अनुत्तरोपपातिकदेव अनुत्तर (सर्वश्रेष्ठ) शब्दजन्य यावत् अनुत्तर स्पर्शजन्य सुखों का अनुभव करते हैं।

प्र. भंते ! सौधर्म ईशान देवों की ऋद्धि कैसी है?

उ. गौतम ! अच्युत देवों पर्यन्त वे महान् ऋद्धि वाले, महाद्युति वाले यावत् महाप्रभावशाली ऋद्धि से युक्त कहे गए हैं।

ग्रैवेयक और अनुत्तर देव जो महान् ऋद्धि वाले यावत् महाप्रभावशाली हैं उनके इन्द्र नहीं हैं वे सब "अहमिन्द्र" हैं। हे आयुष्मन् श्रमण! वे देव अहमिन्द्र कहलाते हैं।

प्र. भंते ! सौधर्म ईशान कल्प के देव कैसी भूख प्यास का अनुभव करते हैं?

उ. गौतम ! उन देवों को भूख प्यास का अनुभव नहीं होता है।

इसी प्रकार अनुत्तरोपपातिक पर्यन्त के देवों के लिए जानना चाहिए।

२८. वेमाणिय देवाणं सरीराणं वण्ण-गंध-फास परूवणं–

प. सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु देवाणं सरीरगा केरिसया वण्णेणं पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! कणगत्तयरत्ताभा वण्णेणं पण्णत्ता।

सणंकुमार माहिंदेसु णं पउम-पम्हगोरा वण्णेणं पण्णत्ता।

प. बंभलोए णं भंते ! कप्पेसु देवाणं सरीरगा केरिसया वण्णेणं पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अल्लमहुगपुप्फवण्णाभा पण्णत्ता।

२८. वैमानिक देवों के शरीरों के वर्ण, गन्ध और स्पर्श का प्ररूपण–

प्र. भंते ! सौधर्म ईशान कल्पों में देवों के शरीर कैसे वर्ण के कहे गए हैं?

उ. गौतम ! तपे हुए स्वर्ण जैसे लाल वर्ण वाले कहे गए हैं।

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प में देवों के शरीर पद्म जैसे गौरवर्ण वाले कहे गए हैं।

प्र. भंते ! ब्रह्मलोक कल्प के देवों के शरीर कैसे वर्ण के कहे गए हैं?

उ. गौतम ! गीले महुए के फूल जैसे (श्वेत) वर्ण वाले कहे गए हैं।

प. लंतए णं भंते ! कप्पेसु देवाणं सरीरगा केरिसया वण्णेणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! सुक्किला वण्णेणं पण्णत्ता ?
एवं जाव गेवेज्जा।
अणुत्तरोववाइया परमसुक्किल्ला वण्णेणं पण्णत्ता।

प. सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु देवाणं सरीरगा केरिसया गंधेणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! से जहाणामए कोट्ठपुडाण वा तहेव सव्वं जाव मणामतरगा चेव गंधेणं पण्णत्ता।
एवं जाव अणुत्तरोववाइया।

प. सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु देवाणं सरीरगा केरिसया फासेणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! थिर-मउय-णिद्धसुकुमाल छवि फासेणं पण्णत्ता।

एवं जाव अणुत्तरोववाइया। *-जीवा. प. ३, सु. २०१ (ई)*

प्र. भंते ! लान्तक कल्प में देवों के शरीर कैसे वर्ण के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! शुक्ल वर्ण वाले कहे गए हैं ?
ग्रैवेयक देवों के शरीर भी ऐसे ही वर्ण वाले हैं।
अनुत्तरोपपातिक देवों के शरीर अत्यन्त शुक्ल वर्ण वाले कहे गए हैं।

प्र. भंते ! सौधर्म-ईशान कल्पों में देवों के शरीर कैसी गन्ध वाले कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! कोष्ठपुट आदि जैसे पहले के समान ही यावत् अत्यन्त मनमोहक गंध वाले कहे गए हैं।
इसी प्रकार अनुत्तरोपपातिक देवों पर्यन्त के शरीर की गंध जाननी चाहिए।

प्र. भंते ! सौधर्म-ईशान कल्पों में देवों के शरीर कैसे स्पर्श वाले कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! स्थिर मृदु स्निग्ध जैसे सुकुमाल स्पर्श वाले कहे गए हैं।
इसी प्रकार अनुत्तरोपपातिक देवों पर्यन्त के शरीरों का स्पर्श कहा गया है।

२९. वेमाणिय देवाणं विभूसा कामभोगाण य परूवणं-

प. सोहम्मीसाणा देवा केरिसया विभूसाए पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-
१. वेउव्वियसरीरा य, २. अवेउव्वियसरीरा य।
१. तत्थ णं जे से वेउव्वियसरीरा ते हारविराइयवच्छा जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा जाव पडिरूवा।
२. तत्थ णं जे से अवेउव्वियसरीरा ते णं आभरणवसणरहिया पगइत्था विभूसाए पण्णत्ता।

प. सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु देवीओ केरिसयाओ विभूसाए पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! दुविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-
१. वेउव्वियसरीराओ य,
२. अवेउव्वियसरीराओ य।
१. तत्थ णं जाओ वेउव्वियसरीराओ ताओ सुवण्णसद्दालाओ सुवण्णसद्दालाइं वत्थाइं पवर परिहियाओ चंदाणणाओ चंदविलासिणीओ चंदद्ध-समणिडालाओ सिंगारागारचारुवेसाओ संगय जाव पासाइओ जाव पडिरूवाओ।

२. तत्थ णं जाओ अवेउव्वियसरीराओ ताओ णं आभरणवसणरहियाओ पगइत्थाओ विभूसाए पण्णत्ताओ, सेसेसु देवीओ णत्थि जाव अच्चुओ।

२९. वैमानिक देवों की विभूषा और कामभोगों का प्ररूपण-

प्र. भंते ! सौधर्म ईशानकल्प के देव कैसी विभूषा वाले कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! वे देव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. वैक्रियशरीर वाले, २. अवैक्रियशरीर वाले।
१. उनमें जो वैक्रियशरीर (उत्तरवैक्रिय) वाले हैं वे हारादि से सुशोभित वक्षस्थल वाले यावत् दसों दिशाओं को उद्योतित करने वाले प्रभासित करने वाले यावत् प्रतिरूप हैं।
२. जो अवैक्रियशरीर (भवधारणीयशरीर) वाले हैं वे आभरण और वस्त्रों से रहित और स्वाभाविक विभूषा से सम्पन्न कहे गए हैं।

प्र. भंते ! सौधर्म ईशान कल्पों की देवियां कैसी विभूषा वाली कही गई हैं ?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार की कही गई हैं, यथा-
१. वैक्रियशरीर वाली,
२. अवैक्रियशरीर (भवधारणीयशरीर) वाली,
१. इनमें जो वैक्रियशरीर वाली हैं वे स्वर्ण के नूपुरादि आभूषणों की ध्वनि से युक्त हैं तथा स्वर्ण की बजती किंकिणियों वाले वस्त्रों को तथा उद्भट वेश को पहनी हुई हैं, चन्द्र के समान उनका मुखमण्डल है, चन्द्र के समान विलास वाली हैं, अर्धचन्द्र के समान भाल वाली हैं, वे शृंगार की साक्षात् मूर्ति हैं और सुन्दर परिधान वाली हैं, वे अनुकूल यावत् दर्शनीय (प्रसन्नता पैदा करने वाली) और सौन्दर्य की प्रतीक हैं।
२. उनमें जो अविकुर्वित शरीर वाली हैं वे आभूषणों और वस्त्रों से रहित स्वाभाविक सौन्दर्य वाली कही गई हैं। अच्युतकल्प पर्यन्त शेष कल्पों में देवियां नहीं हैं।

प. गेवेज्जगदेवा केरिसया विभूसाए पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! आभरणवसणरहिया एवं देवी णत्थि भाणियव्वं। पगइत्था विभूसाए पण्णत्ता,

एवं अणुत्तरा वि।

प. सोहम्मीसाणेसु देवा केरिसए कामभोगे पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?

उ. गोयमा ! इट्ठा सद्दा, इट्ठा रूवा, इट्ठा गंधा, इट्ठा रसा, इट्ठा फासा।

एवं जाव गेवेज्जा।

अणुत्तरोववाइयाणं अणुत्तरा सद्दा जाव अणुत्तरा फासा।

—जीवा. प्रडि. ३ सु. २०४

प्र. भंते ! ग्रैवेयक देव कैसी विभूषा वाले कहे गए हैं?

उ. गौतम ! वे देव आभरण और वस्त्रों की विभूषा से रहित स्वाभाविक विभूषा से सम्पन्न कहे गए हैं वहां देवियां नहीं कहनी चाहिए।

इसी प्रकार अनुत्तरविमान के देवों की विभूषा का कथन भी कर लेना चाहिए।

प्र. भंते ! सौधर्म-ईशान कल्प में देव कैसे कामभोगों का अनुभव करते हुए विचरते हैं?

उ. गौतम ! इष्ट शब्द, इष्ट रूप, इष्ट गंध, इष्ट रस और इष्ट स्पर्शजन्य कामभोगों का अनुभव करते हैं।

इसी प्रकार ग्रैवेयक देवों पर्यन्त कहना चाहिए।

अनुत्तरोपपातिक देव अनुत्तर शब्द यावत् अनुत्तर स्पर्शजन्य कामभोगों का अनुभव करते हैं।

३०. चउव्विह देवनिकाएसु अभिरूव अणभिरूवाइ कारण परूवणं—

प. दो भंते ! असुरकुमारा एगंसि असुरकुमारावासंसि असुरकुमार देवत्ताए उववन्ना, तत्थ णं एगे असुरकुमारे देवे पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे, एगे असुरकुमारे देवे से णं नो पासाईए, नो दरिसणिज्जे, नो-अभिरूवे, नो पडिरूवे।

से कहमेयं भंते ! एवं?

उ. गोयमा ! असुरकुमारा देवा दुविहा पन्नत्ताओ, तं जहा—

१. वेउव्वियसरीरा य, २. अवेउव्वियसरीरा य।

१. तत्थ णं जे से वेउव्वियसरीरे असुरकुमारे देवे से णं पासाईए जाव पडिरूवे।

२. तत्थ णं जे से अवेउव्वियसरीरे असुरकुमारे देवे से णं नो पासाईए जाव नो पडिरूवे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—

'तत्थ णं जे से वेउव्वियसरीरे तं चेव जाव नो पडिरूवे'

उ. गोयमा ! से जहानामए इहं मणुयलोगंसि दुवे पुरिसा भवंति-एगं पुरिसे अलंकियविभूसिए, एगे पुरिसे अणलंकियविभूसिए,

एएसि णं गोयमा ! दोण्हं पुरिसाणं कयरे पुरिसे पासाईए जाव पडिरूवे?

कयरे पुरिसे नो पासाईए जाव नो पडिरूवे?

जे वा से पुरिसे अलंकियविभूसिए?

जे वा से पुरिसे अणलंकियविभूसिए?

भगवं ! तत्थ णं जे से पुरिसे अलंकिय विभूसिए से णं पुरिसे पासाईए जाव पडिरूवे।

तत्थ णं जे से पुरिसे अणलंकिय विभूसिए से णं पुरिसे नो पासाईए जाव नो पडिरूवे।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—

'तत्थ णं जे से वेउव्विय सरीरे तं चेव जाव नो पडिरूवे।'

३०. चतुर्विध देवनिकायों में मनोहर-अमनोहरता के कारणों का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! एक असुरकुमारावास में दो असुरकुमार देव उत्पन्न हुए, उनमें से एक असुरकुमार देव प्रासादीय, दर्शनीय, सुन्दर एवं मनोहर होता है और एक असुरकुमार देव प्रासादीय दर्शनीय सुन्दर और मनोहर नहीं होता है।

भन्ते ! ऐसा क्यों होता है?

उ. गौतम ! असुरकुमार देव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. विकुर्वितशरीर वाले, २. अविकुर्वितशरीर वाले,

१. उनमें से जो विकुर्वित शरीर वाला असुरकुमार देव है वह प्रासादीय यावत् मनोहर होता है।

२. उनमें से जो अविकुर्वित शरीर वाला असुरकुमार देव है वह प्रासादीय यावत् मनोहर नहीं होता है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि—

'उनमें जो विकुर्वित शरीर वाला है उसी प्रकार यावत् मनोहर नहीं होता है?'

उ. गौतम ! जिस प्रकार इस मनुष्य लोक में दो पुरुष होते हैं, उनमें एक पुरुष अलंकृत विभूषित होता है और एक अलंकृत विभूषित नहीं होता है।

गौतम ! इन दो पुरुषों में कौनसा पुरुष प्रासादीय यावत् मनोहर होता है?

कौनसा पुरुष प्रासादीय यावत् मनोहर नहीं होता है?

जो पुरुष अलंकृत विभूषित होता है वह?

या जो पुरुष अलंकृत विभूषित नहीं होता है वह?

भन्ते ! उनमें जो पुरुष अलंकृत विभूषित होता है वह प्रासादीय यावत् मनोहर होता है।

उनमें जो पुरुष अलंकृत विभूषित नहीं होता है वह प्रासादीय यावत् मनोहर नहीं होता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि—

'उनमें जो विकुर्वित शरीर वाला नहीं है उसी प्रकार यावत् मनोहर नहीं होता है।'

प. दो भंते ! नागकुमारा देवा एगंसि नागकुमारावासंसि नागकुमारदेवत्ताए उववन्ना जाव से कहमेय भंते ! एवं ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं जाव थणियकुमारा।

वाणमंतर जोइसिय वेमाणिया एवं चेव।

—विया. स. १८, उ. ५, सु. १-४

प्र. भन्ते ! एक नागकुमारावास में दो नागकुमार देव उत्पन्न होते हैं यावत् भन्ते ! किस कारण से इस प्रकार कहा जाता है?

उ. गौतम ! पूर्ववत् समझना चाहिए।

इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त जानना चाहिए।

वाणव्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

३१. देवाणं पीहा परूवणं—

तओ ठाणाइं देवे पीहेज्जा, तं जहा—

१. माणुस्सगं भवं, २. आरिए खेत्ते जम्मं,

३. सुकुलपच्चायाइ। —ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १८४/१

३१. देवों की स्पृहा का प्ररूपण—

देव तीन स्थानों की स्पृहा (आकांक्षा) करता है, यथा—

१. मनुष्य भव की २. आर्य क्षेत्र में जन्म की,

३. सुकुल (श्रेष्ठ कुल) में उत्पन्न होने की।

३२. देवाणं परितावण कारणतिगं परूवणं—

तिहिं ठाणेहिं देवे परितप्पेज्जा, तं जहा—

१. अहो णं मए संते बले, संते वीरिए, संते पुरिसक्कारपरक्कमे खेमंसि सुभिक्खंसि आयरिय उव्वज्झाएहिं विज्जमाणएहिं कल्लसरीरेणं नो बहुए सुए अहीए,

२. अहो णं मए इहलोय पडिबुद्धेणं परलोय परंमुहेणं विसयतिसिएणं नो दीहे सामण्णपरियाए आणुपालिए,

३. अहो णं मए इड्ढि रस सायगरूएणं भोगासंसगिद्धेणं नो विसुद्धे चरित्ते फासिए।

इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं देवे परितप्पेज्जा।

—ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १८४/२

३२. देवों के परितप्त होने के कारणों का प्ररूपण—

तीन कारणों से देव परितप्त (पश्चात्ताप करते हुए दुःखी) होते हैं, यथा—

१. अहो मैंने वल-वीर्य-पुरुषाकार-पराक्रम, क्षेम, सुभिक्ष, आचार्य, उपाध्याय की उपस्थिति तथा नीरोग शरीर के होते हुए भी श्रुत का पर्याप्त अध्ययन नहीं किया।

२. अहो ! मैंने विषयाभिलाषी होने से इहलोक में प्रतिवद्ध और परलोक से विमुख होकर दीर्घ काल तक श्रामण्य पर्याय का पालन नहीं किया।

३. अहो ! मैंने ऋद्धि, रस और शाता के मद में ग्रस्त होकर भोगासक्त होकर विशुद्ध चारित्र का पालन नहीं किया।

इन तीन कारणों से देव परितप्त होते हैं।

३३. देवस्स चवणणाणोव्वेग कारणाणि परूवणं—

तिहिं ठाणेहिं देवे चइस्सामित्ति जाणइ, तं जहा—

१. विमाणाभरणाइं णिप्पभाइं पासित्ता,

२. कप्परुक्खगं मिलायमाणं पासित्ता,

३. अप्पणो तेयलेस्सं परिहायमाणिं जाणित्ता,

इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं देवे चइस्सामित्ति जाणइ।

तिहिं ठाणेहिं देवे उव्वेगमागच्छेज्जा, तं जहा—

१. अहो ! णं मए इमाओ एयारूवाओ दिव्वाओ देविड्ढीओ, दिव्वाओ देवजुईओ, दिव्वाओ देवाणुभावाओ, लुद्धाओ, पत्ताओ, अभिसमण्णागयाओ चइयव्वं भविस्सइ,

२. अहो ! णं मए माउओयं पिउसुक्कं तं तदुभयसंसट्ठं तप्पढमयाए आहारो आहारेयव्वो भविस्सइ,

३. अहो ! णं मए कलमलजंबालाए असुईए उव्वेयणियाए भीमाए गब्भवसहीए वसियव्वं भविस्सइ,

इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं देवे उव्वेगमागच्छेज्जा।

—ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १८५

३३. देव के च्यवनज्ञान और उद्वेग के कारणों का प्ररूपण—

तीन हेतुओं से देव यह जान लेता है कि मैं च्युत होऊँगा, यथा—

१. विमान और आभरणों को निष्प्रभ देखकर।

२. कल्पवृक्ष को मुर्झाया हुआ देखकर।

३. अपनी तेजोलेश्या (क्रान्ति) को क्षीण होती हुई जानकर।

इन तीन हेतुओं से देव यह जान लेता है कि मैं च्युत होऊँगा।

तीन कारणों से देव उद्वेग हो प्राप्त होता है, यथा—

१. अहो ! मुझे यह और इस प्रकार की उपार्जित, प्राप्त तथा अभिसमन्वागत दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देव द्युति और दिव्य प्रभाव को छोड़ना पड़ेगा।

२. अहो ! मुझे सर्वप्रथम माता के ओज तथा पिता के शुक्र से युक्त आहार को लेना होगा।

३. अहो ! मुझे असुरभि पंक वाले, अपवित्र उद्वेग पैदा करने वाले भयानक गर्भाशय में रहना होगा।

इन तीन कारणों से देव उद्वेग को प्राप्त होता है।

३४. देवाणं अब्भुट्ठिज्जाइ कारण परूवणं—

चउहिं ठाणेहिं देवा अब्भुट्ठिज्जा, तं जहा—

१. अरहंतेहिं जायमाणेहिं,

२. अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,

३४. देवों के अभ्युत्थानादि के कारणों का प्ररूपण—

चार कारणों से देव अपने सिंहासन से (सम्मानार्थ) अभ्युत्थित (उठते) होते हैं—

१. अर्हन्तों का जन्म होने पर,

२. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर,

३. अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,
४. अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु
चउहिं ठाणेहिं देवाणं आसणाइं चलेज्जा, तं जहा–
१. अरहंतेहिं जायमाणेहिं जाव
४. अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु,
चउहिं ठाणेहिं देवा सीहणायं करेज्जा, तं जहा–
१. अरहंतेहिं जायमाणेहिं जाव
४. अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु,
चउहिं ठाणेहिं देवा चेलुक्खेवं करेज्जा, तं जहा–
१. अरहंतेहिं जायमाणेहिं जाव
४. अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु,
चउहिं ठाणेहिं देवाणं चेइयरुक्खा चलेज्जा, तं जहा–
१. अरहंतेहिं जायमाणेहिं जाव
४. अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु[1]।
–*ठाणं. अ. ४, उ.३, सु. ३२४*

३. अर्हन्तों के केवलज्ञानोत्पत्ति महोत्सव पर,
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण महोत्सव पर।
चार कारणों से देवों के आसन चलित होते हैं, यथा–
१. अर्हन्तों का जन्म होने पर यावत्
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण महोत्सव पर।
चार कारणों से देव सिंहनाद करते हैं, यथा–
१. अर्हन्तों का जन्म होने पर यावत्
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण महोत्सव पर।
चार कारणों से देव चेलोत्क्षेप (वर्षा) करते हैं, यथा–
१. अर्हन्तों का जन्म होने पर यावत्
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण महोत्सव पर।
चार कारणों से देवताओं के चैत्यवृक्ष चलित होते हैं, यथा–
१. अर्हन्तों का जन्म होने पर यावत्
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण महोत्सव पर।

३५. देवसन्निवायाइ कारण परूवणं–

चउहिं ठाणेहिं देवसन्निवाए सिया, तं जहा–
१. अरहंतेहिं जायमाणेहिं जाव
४. अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।
एवं देवुक्कलिया देवकहकहए वि[2]।–*ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३२४*

३५. देव सन्निपातादि के कारणों का प्ररूपण–

चार कारणों से देव सन्निपात (देवों का आगमन) होता है, यथा–
१. अर्हन्तों का जन्म होने पर यावत्
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण महोत्सव पर।
इसी प्रकार देवोत्कलिका (देव समुदाय एकत्रित होने) देवों की कलकल ध्वनि होने के कारण भी जानना चाहिए।

३६. देवेहिं विज्जुयारं थणियसद्द य करण हेउ परूवणं–

तिहिं ठाणेहिं देवे विज्जुयारं करेज्जा, तं जहा–
१. विकुव्वमाणे वा, २. परियारेमाणे वा,
३. तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा इड्ढिं जुइं जसं बलं वीरियं पुरिसक्कारपरक्कमं उवदंसेमाणे।
तिहिं ठाणेहिं देवे थणियसद्दं करेज्जा, तं जहा–
१. विकुव्वमाणे वा, २. परियारेमाणे वा,
३. तहारूवस्स वा, समणस्स वा, माहणस्स वा इड्ढिं जाव उवदंसेमाणे। –*ठाणं अ. ३, उ. १, सु. १४१ (२-३)*

३६. देवों द्वारा विद्युत् प्रकाश और स्तनित शब्द के करने के हेतु का प्ररूपण–

तीन कारणों से देव विद्युत्कार (विद्युत प्रकाश) करते हैं, यथा–
१. वैक्रिय रूप करते हुए, २. परिचारणा करते हुए,
३. तथारूप श्रमण माहन के सामने अपनी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषाकार और पराक्रम प्रदर्शन करते हुए।
तीन कारणों से देव मेघ गर्जना जैसी ध्वनि करते हैं, यथा–
१. वैक्रिय रूप करते हुए, २. परिचारणा करते हुए,
३. तथारूप श्रमण माहन के सामने अपनी ऋद्धि आदि का प्रदर्शन करते हुए।

३७. देवेहिं वुट्ठिकाय पकरणविहि कारणाणि य परूवणं–

प. अत्थि णं भंते ! पज्जण्णे कालवासी वुट्ठिकायं पकरेइ ?
उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।
प. जाहे णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया वुट्ठिकायं काउकामे भवइ से कहमियाणिं पकरेइ ?
उ. गोयमा ! ताहे चेव णं से सक्के देविंदे देवराया अब्भंतरपरिसाए देवे सद्दावेइ,
तए णं अब्भंतरपरिसगा देवा सद्दाविया समाणा मज्झिमपरिसाए देवे सद्दावेंति,

३७. देवों द्वारा वृष्टि करने की विधि और कारणों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! कालवर्षी (समय पर बरसने वाला) मेघ वृष्टिकाय (जलसमूह) बरसाता है ?
उ. हाँ, गौतम ! वह बरसाता है।
प्र. भंते ! जब देवेन्द्र देवराज शक्र वृष्टि करने की इच्छा करता है तब वह किस प्रकार वृष्टि करता है ?
उ. गौतम ! जब देवेन्द्र देवराज शक्र वृष्टि करना चाहता है तब आभ्यन्तर परिषद् के देवों को बुलाता है।
बुलाए हुए वे आभ्यन्तर परिषद् के देव मध्यम परिषद् के देवों को बुलाते हैं।

---

1. ठाणं अ. ३, उ. १, सु. १४२
2. ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १४२

दो भंते ! नागकुमारा देवा एगंसि नागकुमारावासंसि नागकुमारदेवत्ताए उववन्ना जाव से कहमेय भंते ! एवं ?
गोयमा ! एवं चेव।
एवं जाव थणियकुमारा।
वाणमंतर जोइसिय वेमाणिया एवं चेव।

–विया. स. १८, उ. ५, सु. १-४

याणं पीहा परूवणं–
ओ ठाणाइं देवे पीहेज्जा, तं जहा–
. माणुस्सगं भवं, २. आरिए खेत्ते जम्मं,
. सुकुलपच्चायाइ। –ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १८४/१

वाणं परितावण कारणतिगं परूवणं–
हिं ठाणेहिं देवे परितप्पेज्जा, तं जहा–

. अहो णं मए संते बले, संते वीरिए, संते पुरिसक्कारपरक्कमे खेमंसि सुभिक्खंसि आयरिय उव्वझाएहिं विज्जमाणएहिं कल्लसरीरेणं नो बहुए सुए अहीए,
. अहो णं मए इहलोय पडिबुद्धेणं परलोय परंमुहेणं विसयतिसिएणं नो दीहे सामण्णपरियाए आणुपालिए,
. अहो णं मए इड्ढि रस सायगरूएणं भोगासंसगिद्धेणं नो विसुद्धे चरित्ते फासिए।

इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं देवे परितप्पेज्जा।

–ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १८४/२

वस्स चवणणाणोव्वेग कारणाणि परूवणं–
तिहिं ठाणेहिं देवे चइस्सामित्ति जाणइ, तं जहा–
१. विमाणाभरणाइं णिप्पभाइं पासित्ता,
२. कप्परुक्खगं मिलायमाणं पासित्ता,
३. अप्पणो तेयलेस्सं परिहायमाणिं जाणित्ता,
इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं देवे चइस्सामित्ति जाणइ।
तिहिं ठाणेहिं देवे उव्वेगमागच्छेज्जा, तं जहा–
१. अहो ! णं मए इमाओ एयारूवाओ दिव्वाओ देविड्ढीओ, दिव्वाओ देवजुईओ, दिव्वाओ देवाणुभावाओ, लुद्धाओ, पत्ताओ, अभिसमण्णागयाओ चइयव्वं भविस्सइ,
२. अहो ! णं मए माउओयं पिउसुक्कं तं तदुभयसंसट्ठं तप्पढमयाए आहारो आहारेयव्वो भविस्सइ,
३. अहो ! णं मए कलमलजंबालाए असुईए उव्वेयणियाए भीमाए गब्भवसहीए वसियव्वं भविस्सइ,

इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं देवे उव्वेगमागच्छेज्जा।

–ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १८५

देवाणं अब्भुट्ठिज्जाइ कारण परूवणं–
चउहिं ठाणेहिं देवा अब्भुट्ठिज्जा, तं जहा–

१. अरहंतेहिं जायमाणेहिं,
२. अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,

प्र. भन्ते ! एक नागकुमारावास में दो नागकुमार देव उत्पन्न होते हैं यावत् भन्ते ! किस कारण से इस प्रकार कहा जाता है?
उ. गौतम ! पूर्ववत् समझना चाहिए।
इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त जानना चाहिए।
वाणव्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

३१. देवों की स्पृहा का प्ररूपण–
देव तीन स्थानों की स्पृहा (आकांक्षा) करता है, यथा–
१. मनुष्य भव की २. आर्य क्षेत्र में जन्म की,
३. सुकुल (श्रेष्ठ कुल) में उत्पन्न होने की।

३२. देवों के परितप्त होने के कारणों का प्ररूपण–
तीन कारणों से देव परितप्त (पश्चात्ताप करते हुए दुःखी) होते हैं, यथा–
१. अहो मैंने बल-वीर्य-पुरुषाकार-पराक्रम, क्षेम, सुभिक्ष, आचार्य, उपाध्याय की उपस्थिति तथा नीरोग शरीर के होते हुए भी श्रुत का पर्याप्त अध्ययन नहीं किया।
२. अहो ! मैंने विषयाभिलाषी होने से इहलोक में प्रतिवद्ध और परलोक से विमुख होकर दीर्घ काल तक श्रामण्य पर्याय का पालन नहीं किया।
३. अहो ! मैंने ऋद्धि, रस और शाता के मद में ग्रस्त होकर भोगासक्त होकर विशुद्ध चारित्र का पालन नहीं किया।
इन तीन कारणों से देव परितप्त होते हैं।

३३. देव के च्यवनज्ञान और उद्वेग के कारणों का प्ररूपण–
तीन हेतुओं से देव यह जान लेता है कि मैं च्युत होऊँगा, यथा–
१. विमान और आभरणों को निष्प्रभ देखकर।
२. कल्पवृक्ष को मुर्झाया हुआ देखकर।
३. अपनी तेजोलेश्या (क्रान्ति) को क्षीण होती हुई जानकर।
इन तीन हेतुओं से देव यह जान लेता है कि मैं च्युत होऊँगा।
तीन कारणों से देव उद्वेग हो प्राप्त होता है, यथा–
१. अहो ! मुझे यह और इस प्रकार की उपार्जित, प्राप्त तथा अभिसमन्वागत दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देव द्युति और दिव्य प्रभाव को छोड़ना पड़ेगा।
२. अहो ! मुझे सर्वप्रथम माता के ओज तथा पिता के शुक्र से युक्त आहार को लेना होगा।
३. अहो ! मुझे असुरभि पंक वाले, अपवित्र उद्वेग पैदा करने वाले भयानक गर्भाशय में रहना होगा।
इन तीन कारणों से देव उद्वेग को प्राप्त होता है।

३४. देवों के अब्भ्युत्थानादि के कारणों का प्ररूपण–
चार कारणों से देव अपने सिंहासन से (सम्मानार्थ) अभ्युत्थित (उठते) होते हैं–
१. अर्हन्तों का जन्म होने पर,
२. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर,

३. अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,
४. अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु
चउहिं ठाणेहिं देवाणं आसणाइं चलेज्जा, तं जहा–
१. अरहंतेहिं जायमाणेहिं **जाव**
४. अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु,
चउहिं ठाणेहिं देवा सीहणायं करेज्जा, तं जहा–
१. अरहंतेहिं जायमाणेहिं **जाव**
४. अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु,
चउहिं ठाणेहिं देवा चेलुक्खेवं करेज्जा, तं जहा–
१. अरहंतेहिं जायमाणेहिं **जाव**
४. अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु,
चउहिं ठाणेहिं देवाणं चेइयरुक्खा चलेज्जा, तं जहा–
१. अरहंतेहिं जायमाणेहिं **जाव**
४. अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु[1]।
–ठाणं. अ. ४, उ.३, सु. ३२४

३. अर्हन्तों के केवलज्ञानोत्पत्ति महोत्सव पर,
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण महोत्सव पर।
चार कारणों से देवों के आसन चलित होते हैं, यथा–
१. अर्हन्तों का जन्म होने पर **यावत्**
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण महोत्सव पर।
चार कारणों से देव सिंहनाद करते हैं, यथा–
१. अर्हन्तों का जन्म होने पर **यावत्**
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण महोत्सव पर।
चार कारणों से देव चेलोत्क्षेप (वर्षा) करते हैं, यथा–
१. अर्हन्तों का जन्म होने पर **यावत्**
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण महोत्सव पर।
चार कारणों से देवताओं के चैत्यवृक्ष चलित होते हैं, यथा–
१. अर्हन्तों का जन्म होने पर **यावत्**
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण महोत्सव पर।

३५. देवसन्निवायाइ कारण परूवणं–

चउहिं ठाणेहिं देवसन्निवाए सिया, तं जहा–
१. अरहंतेहिं जायमाणेहिं **जाव**
४. अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।
एवं देवुक्कलिया देवकहकहए वि[2]। *–ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३२४*

३५. देव सन्निपातादि के कारणों का प्ररूपण–

चार कारणों से देव सन्निपात (देवों का आगमन) होता है, यथा–
१. अर्हन्तों का जन्म होने पर **यावत्**
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण महोत्सव पर।
इसी प्रकार देवोत्कलिका (देव समुदाय एकत्रित होने) देवों की कलकल ध्वनि होने के कारण भी जानना चाहिए।

३६. देवेहिं विज्जुयारं थणियसद्द य करण हेउ परूवणं–

तिहिं ठाणेहिं देवे विज्जुयारं करेज्जा, तं जहा–
१. विकुव्वमाणे वा, २. परियारेमाणे वा,
३. तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा इड्ढिं जुइं जसं बलं वीरियं पुरिसक्कारपरक्कमं उवदंसेमाणे।
तिहिं ठाणेहिं देवे थणियसद्दं करेज्जा, तं जहा–
१. विकुव्वमाणे वा, २. परियारेमाणे वा,
३. तहारूवस्स वा, समणस्स वा, माहणस्स वा इड्ढिं **जाव** उवदंसेमाणे। *–ठाणं अ. ३, उ. १, सु. १४१ (२-३)*

३६. देवों द्वारा विद्युत् प्रकाश और स्तनित शब्द के करने के हेतु का प्ररूपण–

तीन कारणों से देव विद्युत्कार (विद्युत प्रकाश) करते हैं, यथा–
१. वैक्रिय रूप करते हुए, २. परिचारणा करते हुए,
३. तथारूप श्रमण माहन के सामने अपनी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषाकार और पराक्रम प्रदर्शन करते हुए।
तीन कारणों से देव मेघ गर्जना जैसी ध्वनि करते हैं, यथा–
१. वैक्रिय रूप करते हुए, २. परिचारणा करते हुए,
३. तथारूप श्रमण माहन के सामने अपनी ऋद्धि आदि का प्रदर्शन करते हुए।

३७. देवेहिं वुट्ठिकाय पकरणविहि कारणाणि य परूवणं–

प. अत्थि णं भंते ! पज्जण्णे कालवासी वुट्ठिकायं पकरेइ ?
उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।
प. जाहे णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया वुट्ठिकायं काउकामे भवइ से कहमियाणिं पकरेइ ?
उ. गोयमा ! ताहे चेव णं से सक्के देविंदे देवराया अब्भंतरपरिसाए देवे सद्दावेइ,
तए णं अब्भंतरपरिसगा देवा सद्दाविया समाणा मज्झिमपरिसाए देवे सद्दावेंति,

३७. देवों द्वारा वृष्टि करने की विधि और कारणों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! कालवर्षी (समय पर बरसने वाला) मेघ वृष्टिकाय (जलसमूह) बरसाता है ?
उ. हाँ, गौतम ! वह बरसाता है।
प्र. भंते ! जब देवेन्द्र देवराज शक्र वृष्टि करने की इच्छा करता है तब वह किस प्रकार वृष्टि करता है ?
उ. गौतम ! जब देवेन्द्र देवराज शक्र वृष्टि करना चाहता है तब आभ्यन्तर परिषद् के देवों को बुलाता है।
बुलाए हुए वे आभ्यन्तर परिषद् के देव मध्यम परिषद् के देवों को बुलाते हैं।

---

1. ठाणं अ. ३, उ. १, सु. १४२
2. ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १४२

तए णं ते मज्झिमपरिसगा देवा सद्दाविया समाणा बाहिरपरिसाए देवे सद्दावेंति,
तए णं ते बाहिरपरिसगा देवा सद्दाविया समाणा बाहिर बाहिरगे देवे सद्दावेंति,
तए णं ते बाहिर-बाहिरगा देवा सद्दाविया समाणा आभियोगिए देवे सद्दावेंति,
तए णं ते आभियोगिए देवे सद्दाविया समाणा वुट्ठिकाइए देवे सद्दावेंति,
तए णं ते वुट्ठिकाइया देवा सद्दाविया समाणा वुट्ठिकायं पकरेंति।
एवं खलु गोयमा ! सक्के देविंदे देवराया वुट्ठिकायं पकरेइ।

प. अत्थि णं भंते ! असुरकुमारा वि देवा वुट्ठिकायं पकरेंति?
उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।
प. किं पत्तियं णं भंते ! असुरकुमारा देवा वुट्ठिकायं पकरेंति?
उ. गोयमा ! जे इमे अरहंता भगवंतो एएसि णं
१. जम्मणमहिमासु वा,
२. निक्खमणमहिमासु वा,
३. नाणुप्पायमहिमासु वा,
४. परिनिव्वाणमहिमासु वा,
एवं खलु गोयमा ! असुरकुमारा देवा वुट्ठिकायं पकरेंति।
एवं नागकुमारा वि।
एवं जाव थणियकुमारा।

वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया एवं चेव।
—विया. स. १४, उ. २, सु. ७-१३

वे मध्यम परिषद् के देव बाह्य परिषद् के देवों को बुलाते हैं।
बाह्य परिषद् के देव बाह्य परिषद् से बाहर के देवों को बुलाते हैं।
बाह्य परिषद् के बाहर के देव आभियोगिक देवों को बुलाते हैं।
आभियोगिक देव वृष्टिकायिक देवों को बुलाते हैं।
तब वे बुलाये हुए वृष्टिकायिक देव वृष्टि करते हैं।
इस प्रकार हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र वृष्टि करता है।

प्र. भंते ! क्या असुरकुमार देव भी वृष्टि करते हैं?
उ. हाँ, गौतम ! वे भी वृष्टि करते हैं।
प्र. भंते ! असुरकुमार देव किस प्रयोजन से वृष्टि करते हैं?
उ. गौतम ! अरिहन्त भगवंतों के—
१. जन्म महोत्सवों पर,
२. निष्क्रमण महोत्सवों पर,
३. केवलज्ञानोत्पत्ति महोत्सवों पर,
४. परिनिर्वाण महोत्सवों पर,
इस प्रकार हे गौतम ! असुरकुमार देव वृष्टि करते हैं।
इसी प्रकार नागकुमार देव भी वृष्टि करते हैं।
स्तनितकुमारों पर्यन्त भी वृष्टि के लिए इसी प्रकार कहना चाहिए।
वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के लिए भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

३८. अव्वाबाहदेवाणं अव्वाबाहत्तकारण परूवणं—

प. अत्थि णं भंते ! अव्वाबाहा देवा, अव्वाबाहा देवा?
उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—
"अव्वाबाहा देवा, अव्वाबाहा देवा?"
उ. गोयमा ! पभू णं एगमेगे अव्वाबाहे देवे एगमेगस्स पुरिसस्स एगमेगंसि अच्छिपत्तंसि दिव्वं देविड्ढिं, दिव्वं देवजुइं, दिव्वं देवाणुभागं, दिव्वं बत्तीसइविहिं नट्टविहिं उवदंसेत्तए णो चेव णं तस्स पुरिसस्स किंचि आबाहं वा, वाबाहं वा उप्पाएइ छविच्छेयं वा करेइ, एसुहुमं च णं उवदंसेज्जा,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—
"अव्वाबाहा देवा, अव्वाबाहा देवा।"
—विया. स. १४, उ. ८, सु. २३

३८. अव्याबाध देवों के अव्याबाधत्व के कारणों का प्ररूपण—

प्र. भंते ! क्या किसी को बाधापीड़ा नहीं पहुँचाने वाले अव्याबाध देव हैं?
उ. हाँ, गौतम हैं।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि—
'अव्याबाध देव, अव्याबाधदेव हैं।'
उ. गौतम ! प्रत्येक अव्याबाधदेव, प्रत्येक पुरुष की प्रत्येक आंख की पलक पर दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव और बत्तीस प्रकार की दिव्य नाट्यविधि दिखाने में समर्थ हैं और ऐसा करके भी वह देव उस पुरुष को किंचित् मात्र भी आबाधा या व्याबाधा (थोड़ी या अधिक पीड़ा) नहीं पहुँचाता है और न उसके अवयव का छेदन करता है। इतनी सूक्ष्मता से वह (अव्याबाध) देव नाट्यविधि दिखला सकता है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि—
'अव्याबाधदेव, अव्याबाधदेव' है।

३९. देवेहिं सद्दाइं सवणाइं ठाण परूवणं–

दोहिं ठाणेहिं देवे सद्दाइं सुणेइ, तं जहा–

१. देसेण वि देवे सद्दाइं सुणेइ,

२. सव्वेण वि देवे सद्दाइं सुणेइ,

एवं–१. रूवाइं पासइ,

२. गंधाइं अग्घाइ,

३. रसाइं आसाएइ,

४. फासाइं पडिसंवेदेइ,

५. ओभासइ, ६. पभासइ,

७. विकुव्वइ, ८. परियारेइ,

९. भासं भासइ, १०. आहारेइ,

११. परिणामेइ, १२. वेदेइ,

१३. निज्जरेइ, –*ठाणं. अ. २, उ.२, सु. ७१/१२*

४०. लोगंतिय देवाणं मणुस्सलोगे आगमण कारण परूवणं–

चउहिं ठाणेहिं लोगंतिया देवा माणुसं लोगं हव्वमागच्छेज्जा, तं जहा–

१. अरहंतेहिं जायमाणेहिं,

२. अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,

३. अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,

४. अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु[1]।

–*ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३२४*

४१. अहुणोववण्णगदेवस्स माणुसलोगेअणागमण-आगमण कारण परूवणं–

(क) चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे. देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, नो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए, तं जहा–

१. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे से णं माणुस्सए कामभोगे नो आढाइ,

नो परियाणाइ, नो अट्ठं बंधइ,

नो नियाणं पगरेइ,

नो ठिइपगप्पं पगरेइ,

२. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिए गिद्धे, गढिए अज्झोवण्णे तस्स णं माणुस्सए पेमे वोच्छिन्ने दिव्वे संकंते भवइ।

३. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिए, गिद्धे, गढिए अज्झोववण्णे तस्स णं एवं भवइ 'इण्हिं गच्छं, मुहुत्तेणं गच्छं'' तेणं कालेणं अप्पाउया मणुस्सा कालधम्मुणा संजुत्ता भवंति[2]।

४. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु, कामभोगेसु,

३९. देवों द्वारा शब्दादि के श्रवणादि के स्थानों का प्ररूपण–

दो स्थानों से देव शब्द सुनता है, यथा–

१. शरीर के एक भाग से भी देव शब्द सुनता है,

२. सम्पूर्ण शरीर से भी देव शब्द सुनता है।

इसी प्रकार–१. दो स्थानों से रूप को देखता है,

२. गंधों को सूंघता है,

३. रसों का आस्वादन करता है,

४. स्पर्शों का प्रतिसंवेदन करता है,

५. अवभाषित होता है, ६. प्रभासित होता है,

७. विक्रिया करता है, ८. मैथुन सेवन करता है

९. भाषा बोलता है, १०. आहार करता है,

११. परिणमन करता है, १२. अनुभव करता है,

१३. निर्जरा करता है।

४०. लोकान्तिक देवों के मनुष्य लोक में आगमन के कारणों का प्ररूपण–

चार कारणों से तत्क्षण लोकांतिक देव मनुष्य लोक में आ हैं, यथा–

१. अर्हन्तों के जन्म होने पर,

२. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर,

३. अर्हन्तों के केवलज्ञानोत्पत्ति महोत्सव पर,

४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण महोत्सव पर।

४१. तत्काल उत्पन्न देव के मनुष्य लोक में अनागमन-आगमन के कारणों का प्ररूपण–

(क) चार कारणों से देवलोक में तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनु लोक में आना चाहता है किन्तु आ नहीं सकता, यथा–

१. देवलोक में तत्काल उत्पन्न देव दिव्य काम भोगों में, मूर्च्छित, गृद्ध, वद्ध तथा आसक्त होकर मानवीय काम भो को न आदर देता है,

न अच्छा जानता है, न उनसे प्रयोजन रखता है,

न निदान (उन्हें पाने का संकल्प) करता है,

न स्थिति प्रकल्प (उनके बीच रहने की इच्छा) करता है।

२. देवलोक में तत्काल उत्पन्न, दिव्यकामभोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, वद्ध तथा आसक्त देव का मनुष्य संबंधी प्रे व्युच्छिन्न हो जाता है तथा उनमें दिव्य प्रेम संक्रान्त हो जाता है

३. देवलोक में तत्काल उत्पन्न, दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, वद्ध तथा आसक्त देव सोचता है कि मैं अ (मनुष्य लोक में) जाऊँ, मुहूर्त भर में जाऊँ इतने से समय अल्पायुष्क मनुष्य काल धर्म को प्राप्त हो जाते हैं।

४. देवलोक में तत्काल उत्पन्न दिव्य कामभोगों में–

१. ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १४२

२. ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १८३/१

मुच्छिए, गिद्धे, गढिए, अज्झोववण्णे तस्स णं माणुस्सए गंधे पडिकूले पडिलोमे या वि भवइ,

उड्ढंपि य णं माणुस्सए गंधे जाव चत्तारि पंच जोयणसयाइं हव्वमागच्छइ।

इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, नो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए।

(ख) चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए संचाएइ हव्वमागच्छित्तए, तं जहा–

१. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिए अगिद्धे अगढिए अणज्झोववण्णे, तस्स णं एवं भवइ, अत्थि खलु मम माणुस्सए भवे आयरिएइ वा, उवज्झाएइ वा, पवत्तेइ वा, थेरेइ वा, गणीइ वा, गणधरेइ वा, गणवच्छेएइ वा जेसिं पभावेणं मए इमा एयारूवा दिव्वा देविड्ढी, दिव्वा देवजुइ, लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया तं गच्छामि णं ते भगवंते वंदामि जाव पज्जुवासामि।

२. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिए, अगिद्धे, अगढिए, अणज्झोववण्णे तस्स णं एवं भवइ–'एस णं माणुस्सए भवे नाणीइ वा, तवस्सीइ वा, अइदुक्कर दुक्कर कारए'' तं गच्छामि णं ते भगवं ते वंदामि जाव पज्जुवासामि।

३. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु कामभोगेसु अमुच्छिए, अगिद्धे, अगढिए, अणज्झोववण्णे तस्स णं एवं भवइ–''अत्थि णं मम माणुस्सए भवे मायाइ वा जाव सुण्हाइ वा, तं गच्छामि णं तेसिमंतियं पाउब्भवामि,

पासंतु ता मे इममेयारूवं दिव्वं देवड्ढिं दिव्वं देवजुइं लद्धे पत्तं अभिसमण्णागयं[१]।

४. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु कामभोगेसु अमुच्छिए, अगिद्धे, अगढिए अणज्झोववण्णे तस्स णं एवं भवइ ''अत्थि णं मम माणुस्सए भवे मित्तेइ वा, सहाइ वा, सुहीइ वा, सहाएइ वा, संगएइ वा तेसिं च णं अम्हे अण्णमण्णस्स संगारं पडिसुए भवइ'' जो मे पुव्विं चयइ से संबोहियव्वे।

इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए संचाएइ हव्वमागच्छित्तए।

–ठाणं. अ.४, उ. ३, सु. ३२३

मूर्च्छित, गृद्ध, बद्ध तथा आसक्त देव को इस मनुष्य लोक की गन्ध प्रतिकूल और प्रतिलोम लगने लग जाती है।

मनुष्य लोक की गन्ध चार पांच सौ योजन ऊँचाई पर्यन्त आती रहती है।

तत्काल उत्पन्न देव देवलोक से मनुष्य लोक में आना चाहता है किन्तु उक्त चार कारणों से आ नहीं पाता है।

(ख) चार कारणों से देवलोक में तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्यलोक में आना चाहता है और आ भी सकता है, यथा–

१. देवलोकों में तत्काल उत्पन्न दिव्य कामभोगों में अमूर्च्छित, अगृद्ध, अबद्ध तथा अनासक्त देव यह विचार करता है कि मेरे मनुष्य भव के जो आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी, गणधर तथा गणावच्छेदक हैं जिनके प्रभाव से मुझे यह और इस प्रकार की दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति लब्ध प्राप्त और अभिसमन्वागत हुई है अतः मैं जाऊँ और उन भगवन्तों की वंदना करूँ यावत् पर्युपासना करूँ।

२. देवलोकों में तत्काल उत्पन्न दिव्य कामभोगों में अमूर्च्छित, अगृद्ध, अबद्ध तथा अनासक्त देव इस प्रकार सोचता है कि वे मेरे मनुष्य भव के ज्ञानी, अति दुष्कर तपस्या करने वाले तपस्वी हैं अतः मैं जाऊँ और उन भगवन्तों की वंदना करूँ यावत् पर्युपासना करूँ।

३. देवलोक में तत्काल उत्पन्न दिव्य कामभोगों में अमूर्च्छित, अगृद्ध, अबद्ध तथा अनासक्त देव इस प्रकार सोचता है कि वे मेरे मनुष्य भव की माता यावत् पुत्रवधू है, अतः मैं जाऊं और उनके सामने प्रकट होऊँ,

जिससे वे लब्ध प्राप्त और अधिगत हुई मेरी यह और इस प्रकार की दिव्य देवर्द्धि दिव्य देवद्युति को देखें।

४. देवलोक में तत्काल उत्पन्न दिव्य कामभोगों में अमूर्च्छित, अगृद्ध, अबद्ध तथा अनासक्त देव इस प्रकार सोचता है कि–'मेरे मनुष्य भव के जो मित्र, बाल सखा, हितैषी, सहचर तथा परिचित हैं और जिनसे मैंने परस्पर संकेतात्मक प्रतिज्ञा की थी कि जो पहले च्युत होगा वह दूसरे को संबोधित करेगा।'

इस प्रकार इन चार कारणों से देवलोक में तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्य लोक में आना चाहता है और आता है।

४२. देविंदाईणं मणुस्सलोगे आगमण कारण परूवणं–

चउहिं ठाणेहिं देविंदा माणुसं लोगं हव्वमागच्छंति, तं जहा–

१. अरहंतेहिं जायमाणेहिं,

२. अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,

४२. देवेन्द्रों आदि के मनुष्य लोक में आगमन के कारणों का प्ररूपण–

चार कारणों से देवेन्द्र तत्काल मनुष्यलोक में आते हैं, यथा–

१. अर्हन्तों का जन्म होने पर,

२. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर,

१. [illegible]

३. अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,

४. अरहंताणं परिनिव्वाणमहिमासु।

एवं सामाणिया, तायत्तीसगा, लोगपालदेवा, अग्गमहिसीओ देवीओ, परिसोववण्णगा देवा, अणियाहिवई देवा, आयरक्खदेवा माणुसं लोगं हव्वमागच्छंति, तं जहा–

१. अरहंतेहिं जायमाणेहिं,

२. अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,

३. अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,

४. अरंहताणं परिनिव्वाणमहिमासु[1]।

–ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३२४(३-४)

३. अर्हन्तों के केवलज्ञानोत्पत्ति महोत्सव पर,

४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण महोत्सव पर।

इसी प्रकार सामानिक, त्रायस्त्रिंशक, लोकपाल देव, अग्रमहिषी देवियाँ, सभासद, सेनापति तथा आत्मरक्षक देव इन चार कारणों से तत्क्षण मनुष्य लोक में आते हैं, यथा–

१. अर्हन्तों का जन्म होने पर,

२. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर,

३. अर्हन्तों के केवलज्ञानोत्पत्ति महोत्सव पर,

४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण महोत्सव पर।

४३. देवलोगेसु अंधकार कारण परूवणं–

चउहिं ठाणेहिं देवंधगारे सिया, तं जहा–

१. अरंहतेहिं वोच्छिज्जमाणेहिं,

२. अरहंतपण्णत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे,

३. पुव्वगए वोच्छिज्जमाणे,

४. जायतेजे वोच्छिज्जमाणे। *–ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३२४*

४३. देवलोक में अंधकार के कारणों का प्ररूपण–

चार कारणों से देवलोक में अन्धकार होता है, यथा–

१. अर्हन्तों के व्युच्छिन्न होने पर,

२. अर्हन्त-प्रज्ञप्त धर्म के व्युच्छिन्न होने पर,

३. पूर्वगत के व्युच्छिन्न होने पर,

४. अग्नि के व्युच्छिन्न होने पर।

४४. देवलोगेसु उज्जोयकारण परूवणं–

चउहिं ठाणेहिं देवुज्जोए सिया, तं जहा–

१. अरहंतेहिं जायमाणेहिं,

२. अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,

३. अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,

४. अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु[2]।

–ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३२४

४४. देवलोक में उद्योत के कारणों का प्ररूपण–

चार कारणों से देवलोक में उद्योत होता है, यथा–

१. अर्हन्तों का जन्म होने पर,

२. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने पर,

३. अर्हन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने के महोत्सव पर,

४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण महोत्सव पर।

४५. सक्कईसाणिंदाणं परोप्परं ववहाराइ परूवणं–

प. पभू णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतियं पाउब्भवित्तए?

उ. हंता, गोयमा ! पभू।

प. से णं भंते ! किं आढायमाणे पभू, अणाढायमाणे पभू?

उ. गोयमा ! आढायमाणे पभू, नो अणाढायमाणे पभू।

प. पभू णं भंते ! ईसाणे देविंदे देवराया सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतियं पाउब्भवित्तए?

उ. हंता, गोयमा ! पभू।

प. से भंते ! किं आढायमाणे पभू, अणाढायमाणे पभू?

उ. गोयमा ! आढायमाणे वि पभू, अणाढायमाणे वि पभू।

प. पभू णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया ईसाणं देविंदं देवरायं सपक्खिं सपडिदिसिं समभिलोएत्तए?

उ. हंता, गोयमा ! पभू।

४५. शक्र और ईशानेन्द्र के परस्पर व्यवहारादि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र देवेन्द्र देवराज ईशान के पास जाने में समर्थ है?

उ. हाँ, गौतम ! (शक्रेन्द्र ईशानेन्द्र के पास जाने में) समर्थ है।

प्र. भन्ते ! क्या वह आदर करता हुआ जाता है या अनादर करता हुआ जाता है?

उ. गौतम ! वह (ईशानेन्द्र का) आदर करता हुआ जाता है किन्तु अनादर करता हुआ नहीं जाता है।

प्र. भन्ते ! देवेन्द्र देवराज ईशान, क्या देवेन्द्र देवराज शक्र के पास जाने में समर्थ है?

उ. हाँ, गौतम ! (ईशानेन्द्र शक्रेन्द्र के पास जाने में) समर्थ है।

प्र. भन्ते ! क्या वह आदर करता हुआ जाता है या अनादर करता हुआ जाता है?

उ. गौतम ! वह आदर करता हुआ भी जाता है और अनादर करता हुआ भी जाता है।

प्र. भन्ते ! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र देवेन्द्र देवराज ईशान के समक्ष सभी ओर से देखने में समर्थ है?

उ. हाँ, गौतम ! समर्थ है।

---

१. ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १४२

२. ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १४२

जहा पाउब्भवणा तहा दो वि आलावगा नेयव्वा।

प. पभू णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया ईसाणे णं देविंदेणं देवरण्णो सद्धिं आलावं वा, संलावं वा करेत्तए?

उ. हंता, गोयमा ! पभू, जहा पाउब्भवणा।

प. अत्थि णं भंते ! तेसिं सक्कीसाणाणं देविंदाणं देवराईणं किच्चाइं करणिज्जाइं समुप्पज्जंति?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. से कहमिदाणिं भंते ! पकरेंति?

उ. गोयमा ! ताहे चेव णं से सक्के देविंदे देवराया ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतियं पाउब्भवइ ईसाणे णं देविंदे देवराया सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतियं पाउब्भवइ, इति भो ! सक्का!

देविंदा ! देवराया ! दाहिणड्ढलोगाहिवई,

इति भो ! ईसाणा ! देविंदा ! देवराया ! उत्तरड्ढलोगाहिवई,

इति भो ! त्ति ते अन्नमन्नस्स किच्चाइं करणिज्जाइं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

प. अत्थि णं भंते ! तेसिं सक्कीसाणाणं देविंदाणं देवराईणं विवादा समुप्पज्जंति?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. से कहमिदाणिं पकरेंति?

उ. गोयमा ! ताहे चेव णं ते सक्कीसाणा देविंदा देवरायाणो सणंकुमारे देविंदे देवरायं मणसीकरेंति तए णं से सणंकुमारे देविंदे देवराया तेहिं सक्कीसाणेहिं देविंदेहिं देवराईहिं मणसीकए समाणे खिप्पामेव सक्कीसाणाणं देविंदाणं देवराईणं अंतियं पाउब्भवइ जे से वयइ तस्स आणाउववाय वयण निद्देसे चिट्ठंति।

–विया. स. ३, उ. १, सु. ५६-६१

जिस प्रकार जाने के सम्बन्ध में दो आलापक कहे हैं उसी प्रकार देखने के सम्बन्ध में भी दो आलापक कहने चाहिए।

प्र. भन्ते ! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र देवेन्द्र देवराज ईशान के साथ आलाप संलाप (बातचीत) करने में समर्थ है?

उ. हाँ, गौतम ! वह (आलाप संलाप करने में) समर्थ है, जाने के समान यहां भी दो आलापक कहने चाहिए।

प्र. भन्ते ! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र और देवेन्द्र देवराज ईशान के बीच में परस्पर करने योग्य कोई कार्य होते हैं?

उ. हाँ, गौतम ! होते हैं।

प्र. भंते ! उस समय वे क्या करते हैं?

उ. गौतम ! जब देवेन्द्र देवराज शक्र को कार्य होता है तब वह (स्वयं) देवेन्द्र देवराज ईशान के पास जाता है। जब देवेन्द्र देवराज ईशान को कार्य होता है तब वह (स्वयं) देवेन्द्र देवराज शक्र के पास जाता है।

और हे ! दक्षिणार्द्ध लोकाधिपति देवेन्द्र!

देवराज शक्र ! ऐसा है।'

'हे उत्तरार्द्ध लोकाधिपति देवेन्द्र देवराज ईशान ! ऐसा है'

इस प्रकार के शब्दों से परस्पर सम्बोधित करके वे एक दूसरे के प्रयोजनभूत कार्यों का अनुभव करते हुए विचरते हैं।

प्र. भंते ! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र और ईशान इन दोनों के बीच में विवाद भी हो जाता है?

उ. हाँ, गौतम ! (इन दोनों इन्द्रों के बीच विवाद भी) हो जाता है।

प्र. भंते ! वे इस समय (समाधान) के लिए क्या करते हैं?

उ. गौतम ! शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र में परस्पर विवाद उत्पन्न होने पर वे दोनों देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार देवेन्द्र देवराज का मन में स्मरण करते हैं तब देवेन्द्र देवराज शक्र और ईशान के द्वारा मन में स्मरण किये गये देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार उन देवेन्द्र देवराज शक्र और ईशान के समक्ष प्रकट होते हैं और वह जो भी कहता है उसे ये दोनों इन्द्र मानते हैं तथा उसकी आज्ञा सेवा और निर्देश के अनुसार प्रवृत्ति करते हैं।

४६. सक्कस्स सुहम्मसभा इड्ढी य परूवणं–

प. कहि णं भंते ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सभा सुहम्मा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसम-रमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं जाव बहुईओ जोयण कोड़ाकोडीओ उड्ढं दूरं वीईवइत्ता एत्थ णं सोहम्मे कप्पे पण्णत्ते तस्स बहुमज्झदेसभाए पंच वडिंसया पण्णत्ता, तं जहा–

१. असोगवडेंसए, २. सत्तवण्णवडेंसए,
३. चंपगवडेंसए, ४. चूयवडेंसए,
५. मज्झे सोहम्मवडेंसए।

से णं सोहम्मवडेंसए महाविमाणे अद्धतेरस जोयणसयसहस्साइं आयाम विक्खंभेणं,

४६. शक्र की सुधर्मा सभा और ऋद्धि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! देवेन्द्र देवराज शक्र की सुधर्मा सभा कहाँ कही गई है?

उ. गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत से दक्षिण दिशा में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम रमणीय भूभाग से ऊपर यावत् अनेक कोटाकोटी योजन दूर ऊँचाई में सौधर्म कल्प कहा गया है उसके बीचों-बीच पाँच प्रासादावतंसक कहे गए हैं, यथा–

१. अशोकावतंसक, २. सप्तपर्णावतंसक,
३. चंपकावतंसक, ४. आम्रावतंसक,
५. मध्य में सौधर्मावतंसक।

वह सौधर्मावतसंक महाविमान लम्बाई और चौड़ाई से साढ़े बारह लाख योजन है।

एत्थ णं सोहम्मवडेंसए सुहम्मा सभा पण्णत्ता, एगं जोयण सयं आयामेणं पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं बावत्तरिं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अणेग खंभ जाव अच्छरयण पासाईया।

एवं जइ सूरियाभे तहेव माणं तहेव उववाओ सक्कस्स य अभिसेओ तहेव जह सुरियाभस्स अलंकार अच्चणिया तहेव जाव आयरक्ख त्ति।

दो सागरोवमाइं ठिई।

प. सक्के णं भंते ! देविंदे देवराया के महिड्ढीए जाव के महासोक्खे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! महिड्ढीए जाव महासोक्खे पण्णत्ते,

से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणावाससयसहस्साणं, चउरासीए सामाणियसाहस्सीणं, तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं जाव अन्नेसिं च बहूणं जाव देवाण य देवीण य आहेवच्चं जाव करेमाणे पालेमाणे त्ति विहरइ।

एमहिड्ढीए जाव एमहासोक्खे सक्के देविंदे देवराया।

—विया. स. १०, उ. ६, सु. १-२

उस सौधर्मावतंसक में सुधर्मा सभा कही गई है, जो एक सौ योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी और बहत्तर योजन ऊँची है, अनेक स्तम्भों से युक्त यावत् निर्मल रत्नों से खचित एवं मन को प्रसन्न करने वाली है।

इस प्रकार सूर्याभविमान के समान विमान प्रमाण तथा शक्र के उपपात, अभिषेक, अलंकार, अर्चनिका और आत्मरक्षक इत्यादि का कथन सूर्याभदेव के समान जानना चाहिए।

उसकी स्थिति (आयु) दो सागरोपम की है।

प्र. भंते ! देवेन्द्र देवराज शक्र कितनी ऋद्धि वाला यावत् कितने महान् सुख वाला कहा गया है?

उ. गौतम ! वह महा ऋद्धिशाली यावत् महासुख सम्पन्न कहा गया है।

वह वहाँ बत्तीस लाख विमानावासों, चौरासी हजार सामानिक देवों, तेत्तीस त्रायस्त्रिंशक देवों, चार लोकपालों, आठ अग्रमहिषियों तथा अन्य बहुत से देव देवियों का आधिपत्य यावत् पालन करता हुआ विचरता है।

वह देवराज शक्र इस प्रकार महान्‌ऋद्धि यावत् महान् सौख्य सम्पन्न है।

४७. ईसाणस्स सुहम्मा सभाइड्ढि य परूवणं—

प. कहि णं भंते ! ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो सभा सुहम्मा पन्नत्ता?

उ. गोयमा ! जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिम जाव तारारूवाणं ठाणपए जाव मज्झे ईसाणवडेंसए।

से णं ईसाणवडेंसए महाविमाणे अड्ढतेरस जोयणसयसहस्साइं।

एवं जहा दसमसए सक्कविमाण वत्तव्वया सा इह वि ईसाणस्स निरवसेसा भाणियव्वा जाव आयरक्ख त्ति।

ठिई साइरेगाइं दो सागरोवमाइं।

सेसं तं चेव जाव 'ईसाणे देविंदे देवराया ईसाणे देविंदे देवराया।'

—विया. स. १७, उ. ५, सु. १

४७. ईशान की सुधर्मा सभा और ऋद्धि का प्ररूपण—

प्र. देवेन्द्र देवराज ईशान की सुधर्मा सभा कहां कही गई है?

उ. गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मन्दर पर्वत के उत्तर में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अत्यन्त सम रमणीय भूभाग से आगे चन्द्र यावत् तारारूपों से ऊपर मध्यभाग में ईशानावतंसक विमान पर्यन्त प्रज्ञापना सूत्र के स्थान पद के अनुसार कहना चाहिए।

वह ईशानावतंसक महाविमान साढ़े बारह लाख योजन लम्बा चौड़ा है इत्यादि

(पूर्ववत्) दशवें शतक में कहे गए शक्रेन्द्र के विमान के वर्णन के समान ईशानेन्द्र का समग्र वर्णन आत्मरक्षक देवों पर्यन्त करना चाहिए।

ईशानेन्द्र की स्थिति दो सागरोपम से कुछ अधिक की है।

शेष सब वर्णन यह देवेन्द्र देवराज ईशान है, यह देवेन्द्र देवराज ईशान है पर्यन्त पूर्ववत् जानना चाहिए।

४८. सक्कीसाणस्स लोगपालाणं वित्थरओ परूवणं—

प. सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो कइ लोगपाला पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! चत्तारि लोगपाला पण्णत्ता, तं जहा—

१. सोमे,　२. जमे,
३. वरुणे,　४. वेसमणे।

प. एएसि णं भंते ! चउण्हं लोगपालाणं कइ विमाणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! चत्तारि विमाणा पण्णत्ता, तं जहा—

१. संझप्पभे,　२. वरसिट्ठे,
३. सतंजले,　४. वग्गू।

४८. शक्र और ईशान के लोकपालों का विस्तार से प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! देवेन्द्र देवराज शक्र के कितने लोकपाल कहे गए हैं?

उ. गौतम ! चार लोकपाल कहे गए हैं, यथा—

१. सोम,　२. यम,
३. वरुण,　४. वैश्रमण।

प्र. भन्ते ! इन चारों लोकपालों के कितने विमान कहे गए हैं?

उ. गौतम ! इन चारों लोकपालों के चार विमान कहे गए हैं, यथा—

१. सन्ध्याप्रभ,　२. वरशिष्ट,
३. स्वयंज्वल,　४. वल्गू।

प. १. कहि णं भन्ते ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो संझप्पभे णामं महाविमाणे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसम-रमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं-चंदिम-सूरिय-गहगण-नक्खत्त-तारा रूवाणं बहूइं जोयणाइं जाव पंच वडिंसया पण्णत्ता, तं जहा–

१. असोयवडिंसए, २. सत्तवण्णवडिंसए,
३. चंपयवडिंसए, ४. चूयवडिंसए,
५. मज्झे सोहम्मवडिंसए।

तस्स णं सोहम्मवडेंसयस्स महाविमाणस्स पुरत्थिमेणं सोहम्मे कप्पे असंखेज्जाइं जोयणाइं वीईवइत्ता एत्थ णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो संझप्पभे नामं महाविमाणे पण्णत्ते।

अद्धतेरस जोयणसयसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं, ऊयालीयं जोयणसयसहस्साइं बावण्णं च सहस्साइं अट्ठ य अड़याले जोयणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

जा सूरियाभविमाणस्स वत्तव्वया सा अपरिसेसा भाणियव्वा जाव अभिसेयो–

णवरं–सोमे देवे[1]

संझप्पभस्स णं महाविमाणस्स अहे सपक्खिं सपडिदिसिं असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो सोमा नामं रायहाणी पण्णत्ता, एगं जोयणसयसहस्सं आयाम–विक्खंभेणं जंबूद्दीवपमाणा। वेमाणियाणं पमाणस्स अद्धं नेयव्वं जाव उवरियलेणं सोलस जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं, पण्णासं जोयणसहस्साइं पंच य सत्ताणउए जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

पासायाणं चत्तारि परिवाडीओ नेयव्वाओ, सेसा नत्थि।

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो इमे देवा आणा उववाय-वयण निद्देसे चिट्ठंति, तं जहा–

सोमकाइया इ वा, सोमदेवकाइया इ वा, विज्जुकुमारा-विज्जुकुमारीओ, अग्गिकुमारा-अग्गिकुमारीओ, वाउकुमारा-वाउकुमारीओ, चंदा-सूरा-गहा-नक्खत्ता-तारारूवा, जे याऽवन्ने तहप्पगारा सव्वे से तब्भत्तिया तप्पक्खिया तब्भारिया सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो आणा-उववाय-वयण-निद्देसे चिट्ठंति।

जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं जाइं इमाइं समुप्पज्जंति, तं जहा–

प्र. १. भन्ते ! देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल सोम नामक महाराज का सन्ध्याप्रभ नामक महाविमान कहाँ कहा गया है?

उ. गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मन्दर (मेरु) पर्वत से दक्षिण दिशा में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम और रमणीय भूभाग से ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारारूपों से भी बहुत योजन ऊपर यावत् पांच अवतंसक कहे गए हैं, यथा–

१. अशोकावतंसक, २. सप्तपर्णावतंसक,
३. चम्पकावतंसक, ४. चूतावतंसक,
५. मध्य में सौधर्मावतंसक।

उस सौधर्मावतंसक महाविमान से पूर्व में, सौधर्मकल्प में असंख्यात योजन दूर जाने के बाद वहाँ पर देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल-सोम नामक महाराज का सन्ध्याप्रभ नामक महाविमान कहा गया है।

जिसकी लम्बाई-चौड़ाई साढ़े बारह लाख योजन है। उसकी परिधि उनचालीस लाख बावन हजार आठ सौ अड़तालीस योजन से कुछ अधिक की कही गई है।

इस विमान का समग्र वर्णन अभिषेक पर्यन्त सूर्याभदेव के विमान के समान कहना चाहिए।

विशेष–सूर्याभदेव के स्थान में "सोमदेव" कहना चाहिए।

सन्ध्याप्रभ महाविमान के ठीक नीचे आमने-सामने असंख्यात लाख योजन आगे (दूर) जाने पर देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल सोम महाराज की सोमा नाम की राजधानी कही गई है, जो जम्बूद्वीप के समान एक लाख योजन लम्बी-चौड़ी है। वैमानिकों के प्रासादआदिकों से यहां प्रासाद आदि का परिमाण यावत् घर के ऊपर के पीठबन्ध तक आधा कहना चाहिए। घर के पीठबन्ध का आयाम विष्कम्भ सोलह हजार योजन है, उसकी परिधि पचास हजार पांच सौ सत्तानवे योजन से कुछ अधिक कही गई है।

प्रासादों की चार परिपाटियां कहनी चाहिए। शेष वर्णन नहीं कहना चाहिए।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल सोम महाराज की आज्ञा सेवा आदेश और निर्देश में ये देव रहते हैं, यथा–

सोमकायिक, सोमदेवकायिक, विद्युत्कुमार, विद्युतकुमारियां, अग्निकुमार, अग्निकुमारियां, वायुकुमार, वायुकुमारियां, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारारूप ये तथा इसी प्रकार के दूसरे सब उसकी भक्ति वाले, उसके पक्ष वाले, उससे भरण-पोषण पाने वाले देव उसकी आज्ञा सेवा उपपात आदेश और निर्देश में रहते हैं।

इस जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के दक्षिण में जो ये कार्य होते हैं, यथा–

१. धर्मकथानुयोग भाग २, खण्ड ४, पृष्ठ ११-१२५

गहदंडा इ वा, गहमूसला इ वा, गहगज्जिया इ वा, गहजुद्धा इ वा, गहसिंघाडगा इ वा, गहावसव्वा इ वा, अब्भा इ वा, अब्भरुक्खा इ वा, संझा इ वा, गंधव्वनगरा इ वा, उक्कापाया इ वा, दिसीदाहा इ वा, गज्जिया इ वा, विज्जुया इ वा, पंसुवुट्ठी इ वा, जूवेइ वा, जक्खालित्ते इ वा, धूमिया इ वा,महिया इ वा, रयुग्घाया इ वा, चंदोवरागा इ वा, सूरोवरागा इ वा, चंदपरिवेसा इ वा, सूरपरिवेसा इ वा, पडिचंदा इ वा, पडिसूरा इ वा, इंदधणू इ वा, उदगमच्छ, कपिहसिय, अमोह-पाइणवाया इ वा, पडीणवाया इ वा जाव संवट्टयवाया इ वा, गामदाहा इ वा, जाव सन्निवेसदाहा इ वा, पाणक्खया जणक्खया, धणक्खया, कुलक्खया, वसणब्भूया, अणारिया जे याऽवन्ने तहप्पगाराणं ते सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो अण्णाया अदिट्ठा असुया अमुया अविण्णाया, तेसिं वा सोमकाइयाणं देवाणं।

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो इमे अहावच्चा अभिण्णाया होत्था, तं जहा–

१. इंगालए, २. वियालए,
३. लोहियक्खे, ४. सणिच्छरे,
५. चंदे, ६. सूरे,
७. सुक्के, ८. बुहे,
९. बहस्सई, १०. राहू।

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो सत्तिभागं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता, अहावच्चाभिण्णायाणं देवाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता, एमहिड्ढीए जाव एमहाणुभागे सोमे महाराया।

प. २. कहि णं भंते ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो वरसिट्ठे णामं महाविमाणे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! सोहम्मवडिंसयस्स महाविमाणस्स दाहिणेणं सोहम्मे कप्पे असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं वोईवइत्ता एत्थ णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो वरसिट्ठे णामं महाविमाणे पण्णत्ते, अद्धतेरस जोयणसयसहस्साइं जहा सोमस्स विमाणं तहा जाव अभिसेओ रायहाणी तहेव जाव पासायपंतीओ।

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो इमे देवा आणा-उववाय-वयण-निद्देसे चिट्ठंति, तं जहा–

जमकाइया इ वा, जमदेवकाइया इ वा, पेयकाइया इ वा, पेयदेवकाइया इ वा, असुरकुमारा, असुरकुमारीओ, कंदप्पा, निरयवाला आभिओगा जे याऽवन्ने तहप्पगारा सव्वे ते तब्भत्तिया तप्पक्खिया तब्भारिया सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो आणा-उववाय-वयण-निद्देसे चिट्ठंति।

जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं जाइं इमाइं समुप्पज्जंति, तं जहा–

ग्रहदण्ड, ग्रहमूसल, ग्रहगर्जित, ग्रहयुद्ध, ग्रह-शृंगाटक, ग्रह प्रतिकूलचाल अभ्र बादल, अभ्रवृक्ष, सन्ध्या, गन्धर्वनगर, उल्कापात, दिग्दाह, गर्जित, विद्युत् (बिजली चमकना) धूल-वृष्टि, यूप, यक्षादीप्त धूमिका, महिका, रज-उद्घात, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, चन्द्रपरिवेष (चन्द्रमण्डल) सूर्यपरिवेष (सूर्यमण्डल) प्रतिचन्द्र, प्रतिसूर्य, इन्द्रधनुष, उदकमत्स्य, कपिहसित, अमोघ, पूर्वदिशा का वात, पश्चिम दिशा का वात यावत् संवर्तक वात, ग्रामदाह यावत् सन्निवेशदाह, प्राणक्षय, जनक्षय, धनक्षय, कुलक्षय, व्यसनभूत अनार्य (पापरूप) तथा उस प्रकार के दूसरे सभी कार्य देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल-सोम महाराज से अज्ञात, अदृष्ट, अश्रुत, अविस्मृत और अविज्ञात (अनजान में) नहीं होते हैं। अथवा वे सब कार्य सोमकायिक देवों से भी अज्ञात नहीं होते, अर्थात् उनकी जानकारी में ही होते हैं।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल-सोम महाराज के ये देव यथापत्यरूप पुत्ररूप से अभिज्ञात (जाने हुए) होते हैं, यथा–

१. अंगारक (मंगल) २. विकालिक,
३. लोहिताक्ष, ४. शनैश्चर,
५. चन्द्र, ६. सूर्य,
७. शुक्र, ८. बुध,
९. बृहस्पति, १०. राहु।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल-सोम महाराज की स्थिति तीन भाग सहित एक पल्योपम की कही गई है और उसके द्वारा अपत्यरूप से माने गए देवों की स्थिति एक पल्योपम की कही गई है। इस प्रकार सोम-महाराज महाऋद्धि वाला यावत् महाप्रभाव वाला है।

प्र. २. भन्ते ! देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल-यम महाराज का वरशिष्ट नामक महाविमान कहाँ कहा गया है ?

उ. गौतम ! सौधर्मावतंसक नाम के महाविमान से दक्षिण में, सौधर्मकल्प से असंख्यात हजार योजन आगे चलने पर देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल यम महाराज का वरशिष्ट नामक महाविमान कहा गया है, जो साढ़े बारह योजन लम्बा चौड़ा है, इस विमान का समग्र वर्णन अभिषेक पर्यन्त सोम महाराज के विमान की तरह कहना चाहिए। इसी प्रकार राजधानी और प्रासादों की पंक्तियों का वर्णन भी कहना चाहिए।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल यम महाराज की आज्ञा, सेवा, उपपात, आदेश और निर्देश में ये देव रहते हैं, यथा–

यमकायिक, यमदेवकायिक, प्रेतकायिक, प्रेतदेव कायिक, असुरकुमार, असुरकुमारियाँ, कन्दर्प, नरकपाल, आभियोगिक ये और इसी प्रकार के वे सब देव जो उस यम महाराज की भक्ति में तत्पर हैं, उसके पक्ष के हैं, उसके भृत्य हैं, ये सब देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल यम महाराज की आज्ञा सेवा उपपात आदेश और निर्देश में रहते हैं।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मेरुपर्वत से दक्षिण में जो ये कार्य समुत्पन्न होते हैं, यथा–

वरुणकाइया इ वा, वरुणदेवकाइया इ वा, नागकुमारा, नागकुमारीओ, उदहिकुमारा, उदहिकुमारीओ, थणियकुमारा, थणियकुमारीओ, जे याऽवण्णे तहप्पगारा सव्वे ते तब्भत्तिया जाव चिट्ठंति।

जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं जाइं इमाइं समुप्पज्जंति, तं जहा–

अइवासा इ वा, मंदवासा इ वा, सुवुट्ठी इ वा, दुव्वुट्ठी इ वा, उदब्भेया इ वा, उदप्पीला इ वा, उदवाहा इ वा, पवाहा इ वा, गामवाहा इ वा जाव सन्निवेसवाहा इ वा पाणक्खया जाव (णो) अविण्णाया तेसिं वा वरुणकाइयाणं देवाणं।

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वरुणस्स महारण्णो इमे देवा अहावच्चाभिण्णया होत्था, तं जहा–

कक्कोडए, कद्दमए, अंजणे, संखवालए, पुंडे, पलासे, मोएज्जए दहिमुहे अयंपुले कायरिए।

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वरुणस्स महारण्णो देसूणाइं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, अहावच्चाभिण्णायाणं देवाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता, एमहिड्ढीए जाव महाणुभागे वरुणे महाराया।

वरुणकायिक, वरुणदेवकायिक, नागकुमार, नाग कुमारियाँ, उदधिकुमार, उदधिकुमारियाँ, स्तनितकुमार स्तनित-कुमारियाँ ये और इसी प्रकार के दूसरे देव उनकी भक्ति वाले यावत् उपस्थित रहते हैं।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दरपर्वत से दक्षिण दिशा में ये कार्य समुत्पन्न होते हैं, यथा–

अतिवर्षा, मन्दवर्षा, सुवृष्टि, दुर्वृष्टि उदकोद्भेद (पर्वत आदि से निकलने वाला झरना) उदकोत्पील (सरोवर आदि में जमा हुई जलराशि (उदवाह) पानी का अल्प प्रवाह ग्रामवाह यावत् सन्निवेशवाह (बाढ आ जाना) प्राणक्षय यावत् इसी प्रकार के दूसरे सभी कार्य वरुणकायिक आदि देवों से अज्ञात नहीं हैं।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल-वरुण महाराज के ये देव अपत्यरूप से स्वीकार किये गए हैं, यथा–

कर्कोटक, कर्दमक, अंजन, शंखपाल, पुण्ड्र, पलाश, मोदजय, दधिमुख, अयंपुल और कायरिक।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वरुण महाराज की स्थिति देशोन दो पल्योपम की कही गई है और वरुण महाराज के अपत्यरूप से अभिमत देवों की स्थिति एक पल्योपम की कही गई है, इस प्रकार वरुण महाराज महाऋद्धि वाला यावत् महाप्रभाव वाला है।

प. ४. कहि णं भन्ते ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो वेसमणस्स वग्गू णामं महाविमाणे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! तस्स णं सोहम्मवडिंसगस्स महाविमाणस्स उत्तरेणं,

जहा सोमस्स विमाणं रायहाणि वत्तव्वया तहा नेयव्वा जाव पासायवडिंसया।

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वेसमणस्स महारण्णो इमे देवा आणा-उववाय-वयण-निद्देसे चिट्ठंति, तं जहा–

वेसमणकाइया इ वा, वेसमण देवकाइया इ वा, सुवण्णकुमारा, सुवण्णकुमारीओ, दीवकुमारा दीवकुमारीओ, दिसाकुमारा, दिसाकुमारीओ, वाणमंतरा, वाणमंतरीओ जे याऽवन्ने तहप्पगारा सव्वे ते तब्भत्तिया जाव चिट्ठंति।

जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं जाइं इमाइं समुप्पज्जंति, तं जहा–

अयागरा इ वा, तउयागरा इ वा, तंबागरा इ वा, सीसागरा इ वा, हिरण्णागरा इ वा, सुवण्णागरा इ वा, रयणागरा इ वा, वयरागरा इ वा,

वसुधारा इ वा, हिरण्णवासा इ वा, सुवण्णवासा इ वा, रयणवइरवासा इ वा, वयरवासा इ वा, आभरणवासा इ वा, पत्तवासा इ वा, पुप्फवासा इ वा, फलवासा इ वा, बीयवासा इ वा, मल्लवासा इ वा, वण्णवासा इ वा, चुण्णवासा इ वा, गंधवासा इ वा, वत्थवासा इ वा,

हिरण्णवुट्ठी इ वा, सुवण्णवुट्ठी इ वा, रयणवुट्ठी इ वा, वयरवुट्ठी इ वा, आभरण वुट्ठी इ वा, पत्त वुट्ठी इ वा, पुप्फ

प्र. ४. भन्ते ! देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वैश्रमण महाराज का वरुणनामक महाविमान कहाँ कहा गया है?

उ. गौतम ! वैश्रमण महाराज का महाविमान सौधर्मावतंसक नामक महाविमान के उत्तर में है।

इसके प्रासादावतंसक पर्यन्त विमान राजधानी आदि का वर्णन सोम लोकपाल के विमान आदि की तरह कर लेना चाहिए।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वैश्रमण महाराज की आज्ञा, सेवा, उपपात, आदेश और निर्देश में ये देव रहते हैं, यथा–

वैश्रमणकायिक, वैश्रमणदेवकायिक, सुवर्णकुमार, सुवर्ण-कुमारियाँ, द्वीपकुमार, द्वीपकुमारियाँ, दिसाकुमार, दिसाकुमारियाँ, वाणव्यन्तर देव, वाणव्यन्तर देवियाँ ये और इसी प्रकार के अन्य सभी देव जो उसकी भक्ति वाले हैं यावत् उपस्थित रहते हैं।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दरपर्वत से दक्षिण में जो ये कार्य समुत्पन्न होते हैं, यथा–

लोहे की खानें, रांगे की खानें, ताम्बे की खानें, शीशे की खानें, हिरण्य (चांदी) की खानें, सुवर्ण की खानें, रत्न की खानें और वज्र (हीरे) की खानें।

वसुधारा, हिरण्य की वर्षा, सुवर्ण की वर्षा, रत्न की वर्षा, वज्र (हीरा) की वर्षा, आभरण की वर्षा, पत्र की वर्षा, पुष्प की वर्षा, फल की वर्षा, बीज की वर्षा, माला की वर्षा, वर्ण की वर्षा, चूर्ण की वर्षा, गन्ध की वर्षा और वस्त्र की वर्षा।

हिरण्य की वृष्टि, सुवर्ण की वृष्टि, रत्न की वृष्टि, वज्र (हीरे) की वृष्टि, आभरण की वृष्टि, पत्र की वृष्टि, पुष्प की वृष्टि,

वुट्ठी इ वा, फल वुट्ठी इ वा, बीय वुट्ठी इ वा, मल्ल वुट्ठी इ वा, वण्णवुट्ठी इ वा, चुण्णवुट्ठी इ वा, गंधवुट्ठी इ वा, वत्थवुट्ठी इ वा, भायणवुट्ठी इ वा, खीरवुट्ठी इ वा,

सुकाला इ वा, दुक्काला इ वा, अप्पग्घा इ वा, महग्घा इ वा, सुभिक्खा इ वा, दुभिक्खा इ वा, कय-विक्कया इ वा, सन्निही इ वा, सन्निचया इ वा, निही इ वा, णिहाणा इ वा, चिरपोराणा इ वा, पहीणसामिया इ वा, पहीणसेतुया इ वा, पहीणमग्गा इ वा, पहीणगोत्तागारा इ वा, उच्छन्नसामिया इ वा, उच्छन्नसेतुया इ वा, उच्छन्नगोत्तागारा इ वा,

सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु-नगर-निद्धमणेसु सुसाण-गिरि-कंदर-संति-सेलोवट्ठाण-भवणगिहेसु-सन्निक्खित्ताइं चिट्ठंति ण ताइ सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो वेसमणस्स महारण्णो अण्णायाइं अदिट्ठाइं असुयाइं अमुयाइं अविन्नयाइं तेसिं वा वेसमणकाइयाणं देवाणं।

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वेसमणस्स महारण्णो इमे देवा अहावच्चाभिण्णया होत्था, तं जहा–

पुण्णभद्दे, माणिभद्दे, सालिभद्दे, सुमणभद्दे, चक्करक्खे, पुण्णरक्खे, सव्वाणे, सव्वजसे सव्वकामसमिद्धे अमोहे असंगे।

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वेसमणस्स महारण्णो दो पलिओवमाणं ठिई पण्णत्ता। अहावच्चाभिण्णयाणं देवाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

एमहिड्ढीए जाव महाणुभागे वेसमणे महाराया।

–विया. स. ३, उ. ७, सु. २-७

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वेसमणे महाराया अट्ठसत्तरीए सुवण्णकुमार दीवकुमारावास सयसहस्साणं आहेवच्चं पोरेवच्चं भट्टित्तं सामित्तं महारायत्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे विहरइ। *–सम. सम. ७८, सु. १*

प. ईसाणस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो कइ लोगपाला पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! चत्तारि लोगपाला पण्णत्ता, तं जहा–

१. सोमे, २. जमे,
३. वेसमणे, ४. वरुणे।

प. एएसि णं भंते ! लोगपालाणं कइ विमाणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! चत्तारि विमाणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सुमणे, २. सव्वओभद्दे,
३. वग्गू, ४. सुवग्गू।

प. कहि णं भंते ! ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स लोगपालस्स सुमणे नामं महाविमाणे पण्णत्ते ?

फल की वृष्टि, वीज की वृष्टि, माला की वृष्टि, वर्ण की वृष्टि, चूर्ण की वृष्टि, गंध की वृष्टि, वस्त्र की वृष्टि, भाजन की वृष्टि, क्षीर की वृष्टि,

सुकाल, दुष्काल अल्पमूल्य या महामूल्य, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष क्रय-विक्रय, सन्निधि, (घी गुड़ आदि का संचय) सन्निचय (अन्न आदि का संचय) निधियाँ (खजाने-कोष) निधान (जमीन में गड़ा हुआ धन) चिर पुरातन (वहुत पुराने) जिनके स्वामी समाप्त हो गए, जिनकी सारसंभाल करने वाले नहीं रहे, जिनकी कोई खोज खवर नहीं है, जिनके स्वामियों के गोत्र और आगार (घर) नष्ट हो गए, जिनके स्वामी छिन्न-भिन्न हो गए, जिनकी सारसंभाल करने वाले छिन्न-भिन्न हो गए, जिनके स्वामियों के गोत्र और घर छिन्नभिन्न हो गए,

ऐसे खजाने शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख एवं महापथों, सामान्य मार्गों नगर के गन्दे नालों में, श्मशान, पर्वतगृह गुफा (कन्दरा) शान्तिगृह, शैलोपस्थान (पर्वत को खोदकर वनाए गए सभा स्थान) भवनगृह (निवास गृह) इत्यादि स्थानों में गाड़ कर रखा हुआ धन ये सव पदार्थ देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वैश्रमण महाराज से अथवा उसके वैश्रमणकायिक देवों से अज्ञात, अदृष्ट, अश्रुत, अविस्मृत और अविज्ञात नहीं हैं।

देवेन्द्र देवराज शक्र के (चतुर्थ) लोकपाल वैश्रमण महाराज के ये देव अपत्यरूप से अभीष्ट हैं, यथा–

पूर्णभद्र, माणिभद्र, शालिभद्र, सुमनोभद्र, चक्ररक्ष, पूर्णरक्ष, सद्वान, सर्वयश, सर्वकामसमृद्ध अमोघ और असंग।

देवेन्द्र देवराज शक्र के (चतुर्थ) लोकपाल-वैश्रमण महाराज की स्थिति दो पल्योपम की कही गई है और उनके अपत्यरूप से अभिमत देव की स्थिति एक पल्योपम की कही गई है।

इस प्रकार वैश्रमण महाराज महाऋद्धि वाला यावत् महाप्रभाव वाला है।

देवेन्द्र देवराज शक्र का वैश्रमण नामक लोकपाल महाराज सुपर्णकुमारनिकाय और द्वीपकुमार-निकाय के अठत्तर लाख आवासों का आधिपत्य, पौरपत्य, भर्तृत्व, स्वामित्व, महाराजत्व तथा आज्ञा ऐश्वर्य, सेनापतित्व करता हुआ और उनका पालन करता हुआ विचरता है।

प्र. भन्ते ! ईशानेन्द्र देवेन्द्र देवराज के कितने लोकपाल कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! चार लोकपाल कहे गए हैं, यथा–

१. सोम, २. यम,
३. वैश्रमण, ४. वरुण।

प्र. भन्ते ! इन लोकपालों के कितने विमान कहे गए हैं ?

उ. गौतम चार विमान कहे गए हैं, यथा–

१. सुमन, २. सर्वतोभद्र,
३. वल्गु, ४. सुवल्गु।

प्र. भन्ते ! ईशान देवेन्द्र देवराज के सोम लोकपाल का सुमन नामक महाविमान कहाँ कहा गया है ?

उ. गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए जाव ईसाणे णामं कप्पे पण्णत्ते।

तत्थ णं जाव पंच वडेंसया पण्णत्ता, तं जहा–

१. अंकवडेंसए, २. फलिहवडेंसए,
३. रयणवडेंसए, ४. जायरूववडेंसए,
५. मज्झेयऽत्थईसाणवडेंसए।

तस्स णं ईसाणवडेंसयस्स महाविमाणस्स पुरत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं वीईवइत्ता तत्थ णं ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स लोगपालस्स सुमणे णामं महाविमाणे पण्णत्ते।

सेसं जहा सक्कस्स वत्तव्वया।

चउसु विमाणेसु चत्तारि उद्देसा अपरिसेसा।

णवरं–ठिईए नाणत्तं–

आदि दुय तिभागूणा पलिया धणयस्स होंति दो चेव।

दो सइ भागा वरुणे पलियमहावच्चदेवाणं॥

–विया. स. ४, उ. १-४, सु. ५

रायहाणीसु वि चत्तारि उद्देसा जहा सक्कस्स तहा भाणियव्वा। *–विया. स. ४, उ. ५-८, सु. १*

उ. गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मंदर पर्वत से उत्तर में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के समतल से ऊपर यावत् ईशान नामक कल्प (देवलोक) कहा गया है।

उस कल्प में पाँच अवतंसक कहे गए हैं, यथा–

१. अंकावतंसक, २. स्फटिकावतंसक,
३. रत्नावतंसक, ४. जातरूपावतंसक,

और इन चारों के मध्य में ५.ईशानावतंसक विमान है।

इस ईशानावतंसक महाविमान से पूर्व में तिरछे असंख्यात हजार योजन आगे जाने पर देवेन्द्र देवराज ईशान के सोम नामक लोकपाल का सुमन नामक महाविमान कहा गया है।

शेष सारा कथन शक्र के समान कहना चाहिए।

चारों लोकपालों के विमानों के चार उद्देशक पूर्ण समझने चाहिए।

विशेष–इनकी स्थिति में अन्तर है, यथा–

आदि के दो-सोम और यम लोकपाल की स्थिति (आयु) त्रिभागन्यून दो-दो पल्योपम की है।

वैश्रमण की स्थिति दो पल्योपम की है और वरुण की स्थिति त्रिभागसहित दो पल्योपम की है, अपत्यरूप देवों की स्थिति एक पल्योपम की है।

चारों लोकपालों की राजधानियों के चार उद्देशक भी शक्रेन्द्र के वर्णन के समान कहने चाहिये।

४९. सक्काइ बारस देविंदाणं अणिया अणियाहिवई णामाणि–

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सत्त अणिया सत्त अणियाहिवई पण्णत्ता, तं जहा–

१. पायत्ताणिए, २. पीढाणिए,
३. कुंजराणिए, ४. उसभाणिए,
५. रहाणिए, ६. णट्टाणिए,
७. गंधव्वाणिए।

अणियाहिवई–

१. हरिणेगमेसी-पायत्ताणियाहिवई,
२. वाऊ आसराया-पीढाणियाहिवई,
३. एरावणे हत्थिराया-कुंजराणियाहिवइ,
४. दामड्ढी-उसभाणियाहिवई,
५. माढरे-रहाणियाहिवई,
६. सेए-णट्टाणियाहिवई,
७. तुंबरू-गंधव्वाणियाहिवई।

ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सत्त अणिया सत्त अणियाहिवई पण्णत्ता, तं जहा–

१. पायत्ताणिए, २. पीढाणिए,
३. कुंजराणिए, ४. उसभाणिए,
५. रहाणिए, ६. णट्टाणिए,
७. गंधव्वाणिए।

४९. शक्र आदि बारह देवेन्द्रों की सेनाओं और सेनापतियों के नाम–

देवेन्द्र देवराज शक्र की सात सेनाएं और सात सेनापति कहे गए हैं, यथा–

१. पदातिसेना, २. अश्वसेना,
३. हस्तिसेना, ४. वृषभसेना,
५. रथसेना, ६. नाट्यसेना,
७. गंधर्वसेना,

सेनापति–

१. हरिणैगमेषी–पदातिसेना का अधिपति,
२. अश्वराज वायु–अश्वसेना का अधिपति,
३. हस्तिराज् ऐरावण–हस्तिसेना का अधिपति,
४. दामर्धि–वृषभ सेना का अधिपति,
५. माठर–रथसेना का अधिपति,
६. श्वेत–नर्तक सेना का अधिपति;
७. तुम्बरू–गन्धर्व सेना का अधिपति,

देवेन्द्र देवराज ईशान की सात सेनाएं और सात सेनापति कहे गए हैं, यथा–

१. पदाति सेना, २. अश्वसेना,
३. हस्तिसेना, ४. वृषभ सेना,
५. रथसेना, ६. नाट्यसेना,
७. गंधर्व सेना।

अणियाहिवई-

१. लहुपरक्कमे-पायत्ताणियाहिवई,
२. महावाऊ आसराया-पीढाणियाहिवई,
३. पुप्फदंते हत्थिराया-कुंजराणियाहिवई,
४. महादामड्ढी-उसभाणियाहिवई,
५. महामाढेरे-रहाणियाहिवई,
६. महासेए-णट्टाणियाहिवई,
७. रए-गंधव्वाणियाहिवई।

जहा सक्कस्स तहा सव्वेहिं दाहिणिल्लाणं जाव आरणस्स।

जहा ईसाणस्स तहा सव्वेहिं उत्तरिल्लाणं जाव अच्चुयस्स।[1]

-ठाणं. अ. ७, सु. ५८२

सेनापति-

१. लघुपराक्रम-पदातिसेना का अधिपति,
२. अश्वराज महावायु-अश्वसेना का अधिपति,
३. हस्तिराज पुष्पदंत-हस्तिसेना का अधिपति,
४. महादामर्धि-वृषभसेना का अधिपति,
५. महामाठर-रथसेना का अधिपति,
६. महाश्वेत-नर्तक सेना का अधिपति,
७. रत-गंधर्व सेना का अधिपति।

शक्रेन्द्र के समान आरणकल्प पर्यन्त दक्षिणदिशावर्ती इन्द्रों की सात सेनाएं और सात सेनापतियों के नाम जानना चाहिए।

ईशानेन्द्र के समान अच्युत कल्प पर्यन्त उत्तरदिशावर्ती इन्द्रों की सात सेनाएं और सात सेनापतियों के नाम जानना चाहिए।

५०. सक्कस्साइ पयत्ताणियाहिवईणं सत्तसु कच्छासु देव संखा-

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो हरिणेगमेसिस्स सत्त कच्छाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-

१. पढमा कच्छा जाव ७. सत्तमा कच्छा, **एवं जहा चमरस्स तहा जाव अच्चुयस्स।**

णाणत्तं-पायत्ताणियाहिवईणं ते पुव्वभणिया देवपरिमाणं इमं-

सक्कस्स चउरासीई देवसहस्साइं, ईसाणस्स असीइं देवसहस्साइं जाव अच्चुयस्स लहुपरक्कमस्स

दस देवसहस्सा जाव जावइया छट्ठा कच्छा तव्विगुणा सत्तमा कच्छा।

देवा इमाए गाहाए अणुगंतव्वा-

चउरासीइ असीइ बावत्तरी, सत्तरी य सट्ठी य।
पण्णा चत्तालीसा तीसा बीसा य दससहस्सा॥

-ठाणं. अ. ७, सु. ५८३

५०. शक्र आदि के पदातिसेनापतियों की सात कक्षाओं में देव संख्या-

देवेन्द्र देवराज शक्र के पदातिसेनापतियों की सात कक्षाएं कही गई हैं, यथा-

१. चमर की प्रथम कक्षा से सातवीं कक्षा के समान अच्युत पर्यन्त सात-सात कक्षाएं जाननी चाहिए।

उनके पदातिसेनापतियों के नाम भिन्न-भिन्न हैं, जो पूर्व में कहे गए हैं, कक्षाओं का देव परिमाण इस प्रकार है-

शक्र के पदातिसेना की प्रथम कक्षा में चौरासी हजार देव हैं।

ईशान के पदातिसेना की प्रथम कक्षा में अस्सी हजार देव हैं यावत् अच्युत के पदातिसेनापति लघुपराक्रम की सेना की प्रथम कक्षा में दस हजार देव हैं यावत् जितनी छट्ठी कक्षा में संख्या हैं उससे दुगुणी सातवीं कक्षा में जानना चाहिए।

पदातिसेना के प्रथम कक्षा के देवों की संख्या निम्न गाथा से जानना चाहिए-

१. शक्र के चौरासी हजार, २. ईशान के अस्सी हजार,
३. सनत्कुमार के बहत्तर हजार, ४. माहेन्द्र के सत्तर हजार,
५. ब्रह्म के साठ हजार, ६. लान्तक के पचास हजार,
७. शुक्र के चालीस हजार, ८. सहस्रार के तीस हजार,
९. प्राणत के बीस हजार, १०. अच्युत के दस हजार देव हैं।

५१. अणुत्तरोववाइयदेवाणं सरूव परूवणं-

प. अत्थि णं भंते ! अणुत्तरोववाइया देवा, अणुत्तरोववाइया देवा ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-
"अणुत्तरोववाइया देवा, अणुत्तरोववाइया देवा ?"

५१. अनुत्तरोपपातिक देवों के स्वरूप का प्ररूपण-

प्र. भन्ते ! क्या अनुत्तरोपपातिक देव, अनुत्तरोपपातिक देव होते हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! होते हैं।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि-
'अनुत्तरोपपातिक देव, अनुत्तरोपपातिक देव हैं ?'

---

१. ठाणं अ. ५, उ. १, सु. ४०४

उ. गोयमा ! अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं अणुत्तरा सद्दा जाव अणुत्तरा फासा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'अणुत्तरोववाइया देवा, अणुत्तरोववाइया देवा।'

प. अणुत्तरोववाइया णं भंते ! देवा केवइएणं कम्मावसेसेणं अणुत्तरोववाइयदेवत्ताए उववन्ना ?

उ. गोयमा ! जावइयं छट्ठभत्तिए समणे निग्गंथे कम्मनिज्जरेइ, एवइएणं कम्मावसेसेणं अणुत्तरोववाइया देवा अणुत्तरोववाइयदेवत्ताए उववन्ना।

–विया. स. १४, उ. ७, सु. १३-१४

५२. अणुत्तरोववाइय देवाणं उवसंतमोहत्त परूवणं–

प. अणुत्तरोववाइया णं भंते ! देवा किं उदिण्णमोहा, उवसंत मोहा, खीणमोहा ?

उ. गोयमा ! नो उदिण्णमोहा, उवसंतमोहा, नो खीणमोहा।

–विया. स. ५, उ. ४, सु. ३३

५३. अणुत्तरोववाइय देवाणं अणंतमणोदव्वावमाणाणं जाणणाइ सामत्थ परूवणं–

प. जहा णं भंते ! वयं एयमट्ठं जाणामो पासामो तहा णं अणुत्तरोववाइया वि देवा एयमट्ठं जाणंति पासंति ?

उ. हंता, गोयमा ! जहा णं वयं एयमट्ठं जाणामो पासामो तहा अणुत्तरोववाइया वि देवा एयमट्ठं जाणंति पासंति।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

'जहा णं वयं एयमट्ठं जाणामो पासामो तहा णं अणुत्तरोववाइया वि देवा एयमट्ठं जाणंति पासंति ?'

उ. गोयमा ! अणुत्तरोववाइयदेवाणं अणंताओ मणोदव्वग्गणाओ लद्धाओ पत्ताओ अभिसमन्नागयाओ भवंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'जहा णं वयं एयमट्ठं जाणामो पासामो तहा णं अणुत्तरोववाइया वि देवा एयमट्ठं जाणंति पासंति।

–विया. स. १४, उ. ७, सु. ३

५४. लवसत्तम देवाणं सरूव परूवणं–

प. अत्थि णं भंते ! लवसत्तमा देवा लवसत्तमा देवा ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"लवसत्तमा देवा, लवसत्तमा देवा ?"

उ. गोयमा ! से जहानामए केइ पुरिसे तरुणं वलवं जाव निउणसिप्पोवगए, सालीणं वा, वीहीणं वा, गोधूमाणं वा, जवाण वा, जवजवाण वा, पक्काणं परियाताणं, हरियाणं हरियकंडाणं तिक्खेणं णवपज्जणएणं असियएणं पडिसाहरिया-पडिसाहरिया पडिसंखिविया पडिसंखिविया . जाव इणामेव इणामेव त्ति कट्टु

उ. गौतम ! अनुत्तरोपपातिक देवों को अनुत्तर शब्द यावत् अनुत्तर स्पर्श प्राप्त होते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

'अनुत्तरोपपातिक देव, अनुत्तरोपपातिक देव हैं।'

प्र. भन्ते ! कितने कर्मों के शेष रहने पर अनुत्तरोपपातिक देव, अनुत्तरोपपातिक देव रूप में उत्पन्न हुए हैं ?

उ. गौतम ! श्रमण निर्ग्रन्थ षष्ठ भक्त (बेले) के तप द्वारा जितने कर्मों की निर्जरा करता है उतने कर्म शेष रहने पर अनुत्तरोपपातिक योग्य साधु अनुत्तरोपपातिक देवरूप में उत्पन्न होते हैं।

५२. अनुत्तरोपपातिक देवों के उपशांत मोहत्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या अनुत्तरोपपातिक देव उदीर्णमोह हैं, उपशान्त मोह हैं या क्षीणमोह हैं ?

उ. गौतम ! वे उदीर्ण मोह और क्षीण मोह नहीं हैं किन्तु उपशान्तमोह हैं।

५३. अनुत्तरोपपातिक देवों को अनन्त मनोद्रव्य वर्गणाओं के जानने देखने के सामर्थ्य का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जिस प्रकार आप और मैं इस (पूर्वोक्त) अर्थ (वार्ता) को जानते देखते हैं क्या उसी प्रकार अनुत्तरोपपातिक देव भी इस अर्थ (वार्ता) को जानते देखते हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! जिस प्रकार आप और मैं इस (पूर्वोक्त) वात को जानते देखते हैं, उसी प्रकार अनुत्तरोपपातिक देव भी इस अर्थ को जानते देखते हैं।

प्र. भन्ते ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि–

"जिस प्रकार हम इस वात को जानते देखते हैं, उसी प्रकार अनुत्तरोपपातिक देव भी इस वात को जानते देखते हैं ?"

उ. गौतम ! अनुत्तरोपपातिक देवों के अनन्त मनोद्रव्य वर्गणाएँ लब्ध प्राप्त और अभिसमन्वागत हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जिस प्रकार हम इस वात को जानते देखते हैं, उसी प्रकार अनुत्तरोपपातिक देव भी इस वात को जानते देखते हैं।"

५४. लवसप्तम देवों के स्वरूप का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! क्या लवसप्तम देव, लवसप्तम देव होते हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! होते हैं।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"लवसप्तम देव, लवसप्तम देव हैं ?"

उ. गौतम ! जैसे कोई तरुण वलवान् यावत् शिल्पकला में निपुण पुरुष वह परिपक्व काटने योग्य पीले पड़े हुए और पीले डंटल वाले शालि, व्रीहि, गेहूँ, जौ और जवजव की विखरी हुई नालों को हाथ से इकट्ठा करके मुट्ठी में पकड़कर नई धार वाली तीखी दराती से शीघ्रतापूर्वक 'ये काटे-ये काटे' इस प्रकार

सत्तलवे लुएज्जा, जइ णं गोयमा ! तेसिं देवाणं एवइयं काले आउए पहुप्पए तो णं ते देवा तेणं चेव भवग्गहणेणं सिज्झंता जाव अंतं करेत्ता,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'लवसत्तमा देवा लवसत्तमा देवा।'

–विया. स. १४, उ. ७, सु. १२

सात लवों में काटे तो हे गौतम ! यदि उन देवों का इतना आयुकाल शेष रहे तो वे देव उसी भव में सिद्ध हो सकते हैं यावत् सर्व दुखों का अन्त कर सकते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

(सात लव का आयुष्य कम होने से) लवसप्तम देव-लवसप्तक देव होते हैं।'

५५. सणंकुमारदेविंदस्स भवसिद्धियाइ परूवणं–

प. सणंकुमारे णं भंते ! देविंदे देवराया

किं भवसिद्धिए, अभवसिद्धिए ?

सम्मद्दिट्ठी, मिच्छाद्दिट्ठी ?

परित्तसंसारए, अणंतसंसारए ?

सुलभ बोहिए, दुल्लभ बोहिए ?

आराहए, विराहए ?

चरिमे अचरिमे ?

उ. गोयमा ! सणंकुमारे णं देविंदे देवराया भवसिद्धिए, नो अभवसिद्धीए।

एवं सम्मद्दिट्ठी, परित्तसंसारए, सुलभबोहिए, आराहए, चरिमे, पसत्थं नेयव्वं।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

'सणंकुमारे देविंदे देवराया भवसिद्धिए जाव चरिमे।'

उ. गोयमा ! सणंकुमारे देविंदे देवराया बहूणं समणाणं, बहूणं समणीणं, बहूणं सावयाणं, बहूणं सावियाणं, हियकामए, सुहकामए, पत्थकाए आणुकंपिए निस्सेयसिये हिय-सुह निस्सेयसकामए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'सणंकुमारे णं भवसिद्धिए जाव चरिमे।'

–विया. स. ३, उ. १, सु. ६२

५५. सनत्कुमार देवेन्द्र का भवसिद्धिक आदि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार

क्या भवसिद्धिक है या अभवसिद्धिक है ?

सम्यग्दृष्टि है या मिथ्यादृष्टि है ?

परित्त (परिमित) संसारी है या अनन्त (अपरिमित) संसारी है ?

सुलभवोधि है या दुर्लभवोधि है ?

आराधक है या विराधक है ?

चरम है या अचरम है ?

उ. गौतम ! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार भवसिद्धिक है, अभवसिद्धिक नहीं है।

इसी प्रकार वह सम्यग्दृष्टि, परित्तसंसारी, सुलभवोधि, आराधक और चरम है (अर्थात्) सभी प्रशस्त पद ग्रहण करने चाहिए।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार भवसिद्धिक यावत् चरम है ?"

उ. गौतम ! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार बहुत से श्रमणों, श्रमणियों, श्रावकों और श्राविकाओं का हितैषी, सुखकारी, पथ्याभिलाषी, अनुकम्पिक (दयालु), निःश्रेयसिक (कल्याण या मोक्ष का इच्छुक) है वह उनके हित सुख और निःश्रेयस का कामी है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

'सनत्कुमारेन्द्र भवसिद्धिक यावत् चरम है।'

५६. हरिणगमेसी देवेण गब्भ संहरण पक्किया परूवणं–

प. भंते ! हरिणेगमेसी सक्कस्सदूते इत्थी गब्भं साहरमाणे–

१. किं गब्भाओ गब्भं साहरइ ?

२. गब्भाओ जोणिं साहरइ ?

३. जोणीओ गब्भं साहरइ ?

४. जोणीओ जोणिं साहरइ ?

उ. गोयमा !

१. नो गब्भाओ गब्भं साहरइ,

५६. हरिणैगमेषी देव द्वारा गर्भ संहरण प्रक्रिया का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! शक्रेन्द्रदूत हरिणैगमेषी देव जब स्त्री के गर्भ का संहरण करता है–

१. तव क्या एक गर्भाशय से गर्भ को उठाकर दूसरे गर्भाशय में रखता है ?

२. गर्भ को लेकर योनि द्वारा दूसरी स्त्री के उदर में रखता है ?

३. योनि से गर्भ को निकाल कर दूसरी स्त्री के गर्भाशय में रखता है ?

४. योनि से गर्भ को निकाल कर (वापस उसी तरह) योनि द्वारा दूसरी स्त्री के उदर में रखता है ?

उ. गौतम ! वह (हरिणैगमेषी देव)

१. एक गर्भाशय से गर्भ को उठा कर दूसरे गर्भाशय में नहीं रखता,

२. नो गब्भाओ जोणिं साहरइ,

३. नो जोणीओ जोणिं साहरइ,

४. परामसिय-परामसिय अव्वाबाहेणं अव्वाबाहं जोणिओ गब्भं साहरइ।

प. पभू णं भंते ! हरिणेगमेसी सक्कस्सदूते इत्थीगब्भं नहसिरंसि वा, रोमकूवंसि वा, साहरित्तए वा, नीहरित्तए वा?

उ. हंता, गोयमा ! पभू, नो चेव णं तस्स गब्भस्स किंचि वि आबाहं वा, विबाहं वा, उप्पाएज्जा, छविच्छेदं पुण करेज्जा एसुहुमं साहरिज्ज वा, नीहरिज्ज वा।

–विया. स. ५, उ. ४, सु. १५-१६

२. गर्भाशय से गर्भ को लेकर उसे योनि द्वारा दूसरी स्त्री के उदर में नहीं रखता,

३. योनि से गर्भ को निकालकर योनि द्वारा दूसरी स्त्री के पेट में नहीं रखता,

४. किन्तु अपने हाथ से गर्भ को स्पर्श करके बिना किसी बाधा के उसे योनि द्वारा बाहर निकाल कर दूसरी स्त्री के गर्भाशय में रख देता है।

प्र. भंते ! क्या शक्रदूत हरिणैगमेषी देव, स्त्री के गर्भ को नखाग्र द्वारा या रोमकूप द्वारा गर्भाशय में रखने या गर्भाशय से निकालने से समर्थ है?

उ. हाँ, गौतम ! (हरिणैगमेषी देव) समर्थ हैं। वह देव उस गर्भाशय को थोड़ी या कुछ भी पीड़ा नहीं पहुँचाता किन्तु उस गर्भ का छविच्छेद (छेदन-भेदन) करता है, इतनी सूक्ष्मता से अंदर रखता है अथवा अंदर से बाहर निकालता है।

५७. महिड्ढिया देवाणं तिरियपव्वयाइ उल्लंघन-पल्लंघन सामत्थासामत्थ परूवणं–

प. देवे णं भंते ! महिड्ढिए जाव महेसक्खे बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू तिरियपव्वयं वा, तिरियभित्तिं वा, उल्लंघेत्तए वा, पल्लंघेत्तए वा?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

प. देवे णं भंते ! महिड्ढीए जाव महेसक्खे बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पभू तिरियपव्वयं वा, तिरियभित्तिं वा, उल्लंघेत्तए वा, पल्लंघेत्तए वा?

उ. हंता, गोयमा ! पभू। *–विया. स. १४, उ. ५, सु. २१-२२*

५७. महर्द्धिकादि देव का तिर्यक् पर्वतादि के उल्लंघन प्रलंघन के सामर्थ्य-असामर्थ्य का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या महर्द्धिक यावत् महासुख वाला देव बाह्य पुद्गलों को ग्रहण किये बिना तिरछे पर्वत को या तिरछी भींत को एक बार उल्लंघन करने में या बार-बार उल्लंघन करने में समर्थ है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! क्या महर्द्धिक यावत् महासुख वाला देव बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करके तिरछे पर्वत को या तिरछी भींत को एक बार उल्लंघन करने में या बार-बार उल्लंघन करने में समर्थ है?

उ. हाँ, गौतम ! समर्थ है।

५८. अप्पिड्ढियाइ देव-देवीणं परोप्परं मज्झंमज्झेणं गमणसामत्थ परूवणं–

प. अप्पिड्ढिए णं भंते ! देवे से महिड्ढियस्स देवस्स मज्झंमज्झेणं वीईवएज्जा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. समिड्ढिए णं भंते ! देवे समिड्ढियस्स देवस्स मज्झंमज्झेणं वीईवएज्जा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, पमत्तं पुण वीईवएज्जा।[1]

प. से णं भंते ! किं विमोहेत्ता पभू, अविमोहेत्ता पभू?

उ. गोयमा ! विमोहेत्ता पभू, नो अविमोहेत्ता पभू।

प. से भंते ! किं पुव्विं विमोहेत्ता, पच्छा वीईवएज्जा। पुव्विं वीईवएज्जा, पच्छा विमोहेज्जा?

उ. गोयमा ! पुव्विं विमोहेत्ता पच्छा वीईवएज्जा। णो पुव्विं वीईवएत्ता पच्छा विमोहेज्जा।

५८. अल्पऋद्धिक आदि देव-देवियों का परस्पर मध्य में से गमन सामर्थ्य का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या अल्पऋद्धिक देव, महर्द्धिक देव के बीच में से होकर जा सकता है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! क्या समर्द्धिक (समान शक्ति वाला) देव समर्द्धिक देव के बीच में से होकर जा सकता है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, समान समृद्धि वाले देव के प्रमत्त (असावधान) होने पर जा सकता है।

प्र. भंते ! क्या वह देव, उस (समर्द्धिक देव) को विमोहित करके जा सकता है या विमोहित किये बिना जा सकता है?

उ. गौतम ! वह देव विमोहित करके जा सकता है, विमोहित किये बिना नहीं जा सकता है।

प्र. भंते ! क्या वह (समान ऋद्धि वाले) देव को पहले विमोहित करके बाद में जाता है या पहले जाकर बाद में विमोहित करता है?

उ. गौतम ! वह देव पहले उसे विमोहित करता है और बाद में जाता है परन्तु पहले जाकर बाद में विमोहित नहीं करता है।

---

१. विया. स. १४, उ. ३, सु. १०-११

प. महिड्ढिए णं भंते ! देवे अप्पिड्ढियस्स देवस्स मज्झंमज्झेणं वीईवएज्जा?

उ. हंता, गोयमा ! वीईवएज्जा।

प. से भंते ! किं विमोहित्ता पभू, अविमोहित्ता पभू?

उ. गोयमा ! विमोहित्ता वि पभू, अविमोहित्ता वि पभू।

प. से भंते ! किं पुव्विं विमोहित्ता पच्छा वीईवएज्जा, पुव्विं वीईवइत्ता पच्छा विमोहिज्जा?

उ. गोयमा ! पुव्विं वा विमोहित्ता पच्छा वीईवएज्जा, पुव्विं वा वीईवएज्जा पच्छा विमोहिज्जा।

प. अप्पिड्ढिए णं भंते ! असुरकुमारे महिड्ढियस्स असुरकुमारस्स मज्झंमज्झेणं वीईवएज्जा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

एवं असुरकुमारेण वि तिन्नि आलावगा भाणियव्वा जहा ओहिएणं देवेणं भणिया एवं जाव थणियकुमारेणं, वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएणं एवं-चेव।

प. अप्पिड्ढिए णं भंते ! देवे महिड्ढियाए देवीए मज्झंमज्झेणं वीईवएज्जा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. समिड्ढिए णं भंते ! देवे समिड्ढियाए देवीए मज्झंमज्झेणं विईवएज्जा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, पमत्तं पुण वीईवएज्जा।

तहेव देवेण य देवीए य दंडओ भाणियव्वो जाव वेमाणियाए।

प. अप्पिड्ढिया णं भंते ! देवी महिड्ढियस्स देवस्स मज्झंमज्झेणं वीईवएज्जा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

एवं एसो वि तइओ दंडओ भाणियव्वो जाव-

प. महिड्ढिया णं भंते ! वेमाणिणी अप्पिड्ढियस्स वेमाणियस्स मज्झंमज्झेणं वीईवएज्जा?

उ. हंता, गोयमा ! वीईवएज्जा।

प. अप्पिड्ढिया णं भंते ! देवी महिड्ढियाए देवीए मज्झंमज्झेणं वीईवएज्जा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

एवं समिड्ढिया देवी समिड्ढियाए देवीए तहेव।

महिड्ढिया देवी अप्पिड्ढियाए देवीए तहेव।

एवं एक्केक्के तिन्नि-तिन्नि आलावगा भाणियव्वा जाव-

प्र. भंते ! क्या महर्द्धिक देव, अल्पऋद्धिक देव के वीचों वीच होकर जा सकता है?

उ. हाँ, गौतम ! जा सकता है।

प्र. भंते ! वह महर्द्धिक देव उस अल्पऋद्धिक देव को विमोहित करके जाता है या विमोहित किये विना जाता है?

उ. गौतम ! वह विमोहित करके भी जा सकता है और विमोहित किये विना भी जा सकता है।

प्र. भंते ! क्या वह महर्द्धिक देव अल्पऋद्धि वाले देव को पहले विमोहित करके वाद में जाता है या पहले जा कर वाद में विमोहित करता है?

उ. गौतम ! वह महर्द्धिक देव पहले उसे विमोहित करके वाद में भी जा सकता है और पहले जाकर वाद में भी विमोहित कर सकता है।

प्र. भंते ! अल्पऋद्धिक असुरकुमार देव महर्द्धिक असुरकुमार देव के वीचों-वीच होकर जा सकता है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

इसी प्रकार सामान्य देवों के आलापकों की तरह असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार के भी तीन-तीन आलापक कहने चाहिए।

वाणव्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के भी इसी प्रकार तीन-तीन आलापक कहने चाहिए।

प्र. भंते ! क्या अल्पऋद्धिक देव महर्द्धिक देवी के मध्य में होकर जा सकता है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। (अर्थात् नहीं जा सकता है)

प्र. भंते ! क्या समर्द्धिक देव समर्द्धिक देवी के बीचों-बीच हो कर जा सकता है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, प्रमत्त हो तो निकल सकता है।

पूर्वोक्त प्रकार से देव के साथ देवी का भी दण्डक वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! अल्पऋद्धिक देवी, महर्द्धिक देव के मध्य में से होकर जा सकती है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

इस प्रकार यहां भी यह तीसरा दण्डक कहना चाहिए यावत्

प्र. भंते ! महर्द्धिक वैमानिक देवी अल्पऋद्धिक वैमानिक देव के वीचों-बीच में से होकर जा सकती है?

उ. हाँ, गौतम ! जा सकती है।

प्र. भंते ! अल्पऋद्धिक देवी महर्द्धिक देवी के मध्य में से होकर जा सकती है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

इसी प्रकार समान ऋद्धिक देवी का समऋद्धिक देवी के वीच में से निकलने का आलापक कहना चाहिए।

महर्द्धिक देवी का अल्प ऋद्धिक देवी के वीच में निकलने का आलापक कहना चाहिए।

इसी प्रकार प्रत्येक के तीन-तीन आलापक कहने चाहिए। यावत्-

प. महिड्ढिया णं भंते ! वेमाणिणी अप्पिड्ढियाए वेमाणिणीए मज्झंमज्झेणं वीईवएज्जा?

उ. हंता, गोयमा ! वीईवएज्जा।

प. सा भंते ! किं विमोहित्ता पभू, अविमोहित्ता पभू?

उ. गोयमा ! विमोहित्ता वि पभू, अविमोहित्ता वि पभू।

तहेव जाव पुव्विं वा वीईवइत्ता पच्छा विमोहेज्जा, एए चत्तारि दंडगा। *–विया. स. १०, उ. ३, सु. ६-१७*

प्र. भंते ! वैमानिक महर्द्धिक देवी, अल्पऋद्धिक वैमानिक देवी के मध्य मे से होकर जा सकती है?

उ. हाँ, गौतम ! जा सकती है।

प्र. भंते ! क्या महर्द्धिक देवी उसे विमोहित करके जा सकती है या विमोहित किए बिना भी जा सकती है?

उ. गौतम ! उसे विमोहित करके भी जा सकती है और विमोहित किए विना भी जा सकती है।

उसी प्रकार यावत् पूर्व में निकल करके तत्पश्चात् विमोहित कर सकती है इस प्रकार ये चार दंडक हुए।

५९. इड्ढिं पडुच्च देव-देवीणं परोप्परं मज्झंमज्झेणं विइक्कमण सामत्थ परूवणं–

प. अप्पिड्ढिए णं भंते ! देवे महिड्ढियस्स देवस्स मज्झंमज्झेणं वीईवएज्जा?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

प. समिड्ढिए णं भंते ! देवे समिड्ढियस्स देवस्स मज्झंमज्झेणं वीईवएज्जा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, पमत्तं पुण वीईवएज्जा।

प. से णं भंते ! किं सत्थेणं अक्कमित्ता पभू, अणक्कमित्ता पभू?

उ. गोयमा ! अक्कमित्ता पभू, नो अणक्कमित्ता पभू।

प. से णं भंते ! किं पुव्विं सत्थेणं अक्कमित्ता पच्छा वीईवएज्जा?
पुव्विं वीईवएत्ता पच्छा सत्थेणं अक्कमेज्जा?

उ. गोयमा ! पुव्विं अक्कमित्ता पच्छा वीईवएज्जा,
णो पुव्विं वीईवएत्ता पच्छा अक्कमेज्जा।
एवं एएणं अभिलावेणं जहा दसमसए आइड्ढि उद्देसए तहेव निरवसेसं चत्तारि दंडगा भाणियव्वा जाव महिड्ढिया वेमाणिणी अप्पिड्ढियाए वेमाणिणीए।[1]
–विया. स. १४, उ. ३, सु. १०-१३

५९. ऋद्धि की अपेक्षा देव-देवियों का परस्पर मध्य में से व्यतिक्रमण सामर्थ्य का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या अल्पऋद्धिक देव महाऋद्धि वाले देव के मध्य में से होकर जा सकता है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। (अर्थात् वह नहीं जा सकता)

प्र. भंते ! क्या समान ऋद्धि वाला देव समान ऋद्धि वाले देव के मध्य में से होकर जा सकता है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। (समान ऋद्धि वाले देव के प्रमत्त (असावधान) होने पर जा सकता है।

प्र. भंते ! वह (मध्य में होकर जाने वाला) देव शस्त्र का प्रहार करके जा सकता है या विना प्रहार किये ही जा सकता है?

उ. गौतम ! वह शस्त्र का प्रहार करके जा सकता है, विना शस्त्र प्रहार के नहीं जा सकता है।

प्र. भंते ! वह देव पहले शस्त्र का प्रहार करके तत्पश्चात् जाता है या
पहले जाकर तत्पश्चात् शस्त्र से प्रहार करता है?

उ. गौतम ! पहले शस्त्र का प्रहार करके फिर जाता है।
किन्तु पहले जाकर फिर शस्त्र का प्रहार नहीं करता है।
इस प्रकार इस अभिलाप द्वारा दशवें शतक के तीसरे उद्देशक के अनुसार (पूर्ववत्) समग्र रूप से चारों दण्डक महाऋद्धि वाली वैमानिक देवी अल्पऋद्धि वाली वैमानिक देवी के मध्य में से होकर जा सकती है पर्यन्त कहना चाहिए।

६०. देवस्स भावियप्पणो अणगारस्स मज्झंमज्झेणं वीयीवएण सामत्थासामत्थ परूवणं–

प. देवे णं भंते ! महाकाए महासरीरे अणगारस्स भावियप्पणो मज्झंमज्झेणं वीयीवएज्जा?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए वीयीवएज्जा, अत्थेगइए नो वीयीवएज्जा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'अत्थेगइए वीयीवएज्जा, अत्थेगइए नो वीयीवएज्जा?'

उ. गोयमा ! देवा दुविहा पन्नत्ता, तं जहा–
१. मायीमिच्छादिट्ठी उववन्नगा य,
२. अमायीसम्मदिट्ठी उववन्नगा य।

६०. देव का भावितात्मा अणगार के मध्य में से निकलने के सामर्थ्य-असामर्थ्य का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या महाकाय और महाशरीर वाला देव भावितात्मा अणगार के वीच में से होकर निकल जाता है?

उ. गौतम ! कोई निकल जाता है और कोई नहीं निकलता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"कोई बीच में से होकर निकल जाता है और कोई नहीं निकलता है?"

उ. गौतम ! देव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक,
२. अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक।

[1] विया. स. १०, उ. ३, सु. ८-१७

१. तत्थ णं जे से मायीमिच्छद्दिट्ठी उववन्नए देवे से णं अणगारं भावियप्पाणं पासइ पासित्ता नो वंदइ, नो नमंसइ, नो सक्कारेइ, नो सम्माणेइ, नो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासइ।

से णं अणगारस्स भावियप्पणो मज्झंमज्झेणं वीयीवएज्जा।

२. तत्थ णं जे से अमायी सम्मद्दिट्ठि उववन्नए देवे से णं अणगारं भावियप्पाणं पासइ पासित्ता वंदइ नमंसइ जाव पज्जुवासइ,

से णं अणगारस्स भावियप्पणो मज्झंमज्झेणं नो वीयीवएज्जा।

से णं तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'अत्थेगइए वीयीवएज्जा, अत्थेगइए नो वीयीवएज्जा।'

प. असुरकुमारे णं भंते ! महाकाये महासरीरे अणगारस्स भावियप्पणो मज्झंमज्झेणं वीयीवएज्जा ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं देवदंडओ भाणियव्वो जाव वेमाणिए।

–विया. स. १४, उ. ३, सु. १-३

६१. देवाणं देवावासांतराणं वीईक्कमण इड्ढि परूवणं–

रायगिहे जाव एवं वयासी–

प. आइड्ढीए णं भंते ! देवे जाव चत्तारि पंच देवावासंतराइं वीईक्कंते तेण परं परिड्ढीए विइक्कंते ?

उ. हंता, गोयमा ! आइड्ढीए णं देवे जाव चत्तारि पंच देवावासंतराइं वीईक्कंते, तेण परं परिड्ढीए।

एवं असुरकुमारे वि,

णवरं–असुरकुमारावासंतराइं, सेसं तं चेव,

एवं एएणं कमेणं जाव थणियकुमारे।

एवं वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिए वि।

–विया. स. १०, उ. ३, सु. १-५

६२. वाणमंतराणं देवलोगस्ससरूवं–

प. केरिसा णं भंते ! तेसिं वाणमंतराणं देवाणं देवलोगा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! से जहानामए इहं असोगवणे इ वा, सत्तवण्णवणे इ वा, चंपगवणे इ वा, चूयवणे इ वा, तिलगवणे इ वा, लउयवणे इ वा, णिग्गोहवणे इ वा, छत्तोववणे इ वा, असणवणे इ वा, सणवणे इ वा, अयसिवणे इ वा, कुसुंभवणे इ वा, सिद्धत्थवणे इ वा, वंधुजीवगवणे इ वा, निच्चं कुसुमिय माइय लवइय थवइय गुलुइय गुच्छिय

१. उनमें जो मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक देव है वह भावितात्मा अनगार को देखता है और देखकर भी न उनको वंदन नमस्कार करता है, न उनका सत्कार सम्मान करता है और न उनको कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप, ज्ञानरूप, मानकर पर्युपासना करता है।

ऐसा वह देव भावितात्मा अनगार के वीच में से होकर चला जाता है।

२. उनमें जो अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक देव है वह भावितात्मा अनगार को देखता है और देखकर वंदन नमस्कार करता है यावत् पर्युपासना करता है।

ऐसा वह देव भावितात्मा अनगार के वीच में से होकर नहीं निकलता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"कोई वीच में से होकर निकल जाता है और कोई नहीं निकलता है।"

प्र. भंते ! क्या महाकाय और महाशरीर वाला असुरकुमार देव भावितात्मा अनगार के मध्य में से होकर निकल जाता है ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार देव दण्डक (चतुर्विध देवों के लिए) वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

६१. देवों का देवावासांतरों की व्यतिक्रमण ऋद्धि का प्ररूपण–

राजगृह नगर में यावत् गौतमस्वामी ने इस प्रकार पूछा–

प्र. भंते ! देव क्या आत्मऋद्धि (अपनी शक्ति) द्वारा यावत् चार पाँच देवावासों के अन्तरों का उल्लंघन करता है और इसके पश्चात् पर-शक्ति द्वारा उल्लंघन करता है ?

उ. हाँ, गौतम ! देव आत्मशक्ति से यावत् चार पाँच देवावासों के अन्तरों का उल्लंघन करता है और उसके पश्चात् पर-शक्ति द्वारा उल्लंघन करता है।

इसी प्रकार असुरकुमारों के लिए भी कहना चाहिए।

विशेष–वे असुरकुमारों के आवासों के अंतरों का उल्लंघन करते हैं, शेष कथन पूर्ववत् है।

इसी प्रकार इसी अनुक्रम से स्तनितकुमार पर्यन्त जानना चाहिए।

इसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव पर्यन्त जानना चाहिए।

६२. वाणव्यंतरों के देवलोकों का स्वरूप–

प्र. भंते ! उन वाणव्यन्तर देवों के देवलोक किस प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जैसे इस मनुष्य लोक में जो नित्य कुसुमित, नित्य विकसित, मौर युक्त, कोंपल युक्त, पुष्प, गुच्छों से युक्त, लताओं से आच्छादित, पत्तों के गुच्छों से युक्त, सम श्रेणी में उत्पन्न, वृक्षों से युक्त, युगल वृक्षों से युक्त, फल फूल के भार से नमे हुए, फल फूल के भार से झुके हुए विभिन्न प्रकार की वालों और मंजरियों रूपी मुकुटों को धारण किये हुए

जमलिय जुवलिय विणमिय पणमिय सुविभत्त पिंडिमंजरिवडेंसगधरे सिरीए अईव-अईव उवसोभेमाणे-उवसोभेमाणे चिट्ठइ।

एवामेव तेसिं वाणमंतराणं देवाणं देवलोगा जहन्नेणं दसवाससहस्सट्ठिईएहिं, उक्कोसेणं पलिओवमट्ठिई-एहिं. बहूहिं वाणमंतरेहिं देवेहि य देवीहिं य आइण्णा विइकिण्णा उवत्थडा संथडा फुडा अवगाढगाढा सिरीए अईव उवसोभेमाणा चिट्ठंति।

एरिसगा णं गोयमा ! तेसिं वाणमंतराणं देवाणं देवलोगा पण्णत्ता। *–विया. स. १, उ. १, सु. १२ (२)*

□

अशोकवन, सप्तवर्ण वन, चम्पकवन, आम्रवन, तिलकवृक्षों के वन, लौकी की लताओं के वन, वटवृक्षों के वन, छत्रौघवन, अशनवृक्षों के वन, सन वृक्षों के वन, अलसी के वन, कुसुम्ब वृक्षों के वन, सरसव वन, बन्धुजीवक वृक्षों के वन शोभा से अतीव-अतीव उपशोभित होते हैं।

इसी प्रकार वाणव्यन्तर देवों के देवलोक जघन्य दस हजार वर्ष की तथा उत्कृष्ट एक पल्योपम की स्थिति वाले एवं बहुत से वाणव्यन्तर देवों से और उनकी देवियों से आकीर्ण (व्याप्त) व्याकीर्ण (विशेष व्याप्त) एक दूसरे पर आच्छादित, परस्पर मिले हुए स्फुट प्रकाश वाले, अत्यन्त अवगाढ़ श्री शोभा से अतीव उपसुशोभित रहते हैं।

हे गौतम ! उन वाणव्यन्तर देवों के (स्थान) देवलोक इसी प्रकार के कहे गये हैं।

□

वुक्कंति (व्युत्क्रान्ति) अध्ययन

वुक्कंति का संस्कृत शब्द व्युत्क्रान्ति है जो व्युत्क्रमण अर्थात् पादविक्षेप या गमन का द्योतक है। अतः जीव एक स्थान से उद्वर्तन (मरण) करके दूसरे स्थान पर जन्म ग्रहण करता है उसे व्युत्क्रान्ति कहा जा सकता है। मनुस्मृति (६/६३) में उत्क्रमण शब्द का प्रयोग मृत्यु (शरीर से आत्मा के पलायन) के लिए हुआ है। यहाँ व्युत्क्रमण (वि + उत्क्रमण) या व्युत्क्रान्ति शब्द है जो ऐसी विशिष्ट मृत्यु के लिए प्रयुक्त है जिसके अनन्तर जीव जन्म ग्रहण करता है। इस प्रकार व्युत्क्रान्ति के अन्तर्गत उपपात, जन्म, उद्वर्तन, च्यवन, मरण का तो समावेश होता ही है किन्तु इससे सम्बद्ध विग्रहगति, सान्तर निरन्तर उपपात, सान्तर निरन्तर उद्वर्तन, उपपात विरह, उद्वर्तन विरह आदि अनेक तथ्यों का भी अन्तर्भाव हो जाता है। गति-आगति का चिन्तन भी इस प्रकार व्युत्क्रान्ति का ही अंग है। साधारण शब्दों में कहें तो मरण से लेकर उत्पन्न होने (जन्म ग्रहण करने) तक का समस्त क्रियाकलाप व्युत्क्रान्ति अध्ययन का क्षेत्र है।

जन्म-मरण के लिए आगमों में कुछ विशेष शब्दों का प्रयोग हुआ है। देवों एवं नैरयिकों के जन्म को उपपात (उववाए) कहा गया है क्योंकि इनका जन्म गर्भ से नहीं होता तथा सम्मूर्च्छिम भी नहीं होता है। नैरयिकों एवं भवनवासी देवों के मरण को उद्वर्तना (उव्वट्टणा) कहा गया है तथा ज्योतिषी एवं वैमानिक देवों के मरण को च्यवन कहा गया है। शेष जीवों के जन्म-मरण के लिए विशेष शब्द नहीं है।

गति-आगति का निरूपण व्याख्या प्रज्ञप्ति, जीवाजीवाभिगम, प्रज्ञापना और स्थानांग आदि में हुआ है। उद्वर्तन (मरण, च्यवन) करके जीवन के गमन करने को गति तथा आगमन को आगति कहते हैं। ये दोनों शब्द सापेक्ष हैं। गति है जाना और आगति है आना। थोकड़ों में भी गति-आगति का वर्णन है। संक्षेप में २४ दण्डकों में गति-आगति को इस प्रकार समझा जा सकता है–नैरयिक एवं देव गति के जीव दो गतियों से आते हैं तथा दो ही गतियों में जाते हैं। वे गतियाँ हैं–तिर्यञ्च और मनुष्य। पृथ्वी, अप् एवं वनस्पतिकाय के जीव तिर्यञ्च, मनुष्य और देव इन तीन गतियों से आते हैं तथा तिर्यञ्च और मनुष्य इन दो गतियों में जाते हैं। तेजस्काय एवं वायुकाय के जीव तिर्यञ्च गति में ही जाते हैं। विकलेन्द्रिय जीव तिर्यञ्च एवं मनुष्य इन दो गतियों से आते हैं तथा इन्हीं दो गतियों में जाते हैं। सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय की आगति भी इन्हीं दो गतियों से है किन्तु इनकी गति चारों गतियों में संभव है। सम्मूर्च्छिम मनुष्य का आगमन एवं गमन दो ही गतियों में होता है–तिर्यञ्च एवं मनुष्य में। गर्भज तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय एवं गर्भज मनुष्य चारों गतियों से आते हैं तथा चारों गतियों में जाते हैं। विशेषता यह है कि मनुष्य सिद्धगति में भी जा सकते हैं।

स्थानांग-सूत्र में गति-आगति का निरूपण छह काया के आधार पर भी किया गया है तथा पृथ्वीकाय का जीव पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय इन छह स्थानों से आकर उत्पन्न हो सकता है तथा इन छह ही स्थानों में जा सकता है। इसी प्रकार अप्कायिक से त्रसकायिक पर्यन्त सभी जीवों की छह गति और छह आगति होती है। इन जीवों की नौ गति एवं नौ आगति भी कही गई है जिसके अनुसार नौ स्थान हैं–पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। अण्डज, पोतज आदि योनि शरीरों के आधार पर इन जीवों की आठ गति एवं आठ आगति भी कही गई है।

प्रज्ञापना-सूत्र में आगतिं का बहुत ही सूक्ष्म एवं सुन्दर विवेचन हुआ है। प्रश्नोत्तर शैली में हुए इन विवेचन के प्रमुख तथ्य हैं–(१) नैरयिक जीव तिर्यञ्च जीव, तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय एवं मनुष्य से उत्पन्न होते हैं। तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय तीन प्रकार के हैं–जलचर, स्थलचर एवं खेचर। इनमें स्थलचर तिर्यञ्च तीन प्रकार के होते हैं–चतुष्पद, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प। ये जलचर आदि सभी तिर्यञ्च दो प्रकार के हैं–सम्मूर्च्छिम और गर्भज। ये दोनों भी दो-दो प्रकार के हैं–पर्याप्त एवं अपर्याप्त। इनमें कुछ संख्यात वर्षायुष्क होते हैं तथा कुछ असंख्यात वर्षायुष्क। तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के इन सब भेदों में से जो जीव संख्यातवर्षायुष्क एवं पर्याप्तक होते हैं वे ही नरक में जा सकते हैं। चाहे वे सम्मूर्च्छिम हो या गर्भज, जलचर हो, स्थलचर हो या खेचर इसका अन्तर नहीं पड़ता। (२) मनुष्यों में गर्भज मनुष्यों से नैरयिक जीव उत्पन्न होते हैं, सम्मूर्च्छिम मनुष्यों से नहीं। गर्भज मनुष्यों में भी कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से उत्पन्न होते हैं, अकर्मभूमिज एवं अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यों में से उत्पन्न नहीं होते। कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में भी संख्यात वर्षायुष्क एवं पर्याप्तक मनुष्यों में से उत्पन्न होते हैं, असंख्यात-वर्षायुष्क एवं अपर्याप्तकों में से नहीं। (३) नैरयिकों के उपपात के विषय में जो सामान्य कथन है वह रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के उपपात पर लागू होता है। शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिक सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च में से उत्पन्न नहीं होते। बालुका प्रभा पृथ्वी के नैरयिक भुजपरिसर्पों में से भी उत्पन्न नहीं होते हैं। पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिक खेचरों में से भी उत्पन्न नहीं होते। इस प्रकार उत्तरोत्तर निषेध समझना चाहिए। धूमप्रभा के नैरयिकों की उत्पत्ति सम्मूर्च्छिम आदि के साथ चतुष्पदों से भी नहीं होती और तमस्तम पृथ्वी के नैरयिक मनुष्य-स्त्रियों से भी उत्पन्न नहीं होते हैं। इस प्रकार सातवीं नरक में जलचर एवं कर्मभूमिज मनुष्य (पुरुष व नपुंसक) ही उत्पन्न होते हैं। वे भी पर्याप्त एवं संख्यात वर्षायुष्क। (४) देव भी तिर्यञ्च और मनुष्यों में से उत्पन्न होते हैं। असुरकुमार आदि १० भवनपति देवों का उपपात सामान्य नैरयिकों के उपपात की भांति है किन्तु वैशिष्ट्य यह है कि ये असंख्यात वर्ष आयु वाले अकर्मभूमिज एवं अन्तर्द्वीपज मनुष्यों तथा असंख्यातवर्ष आयु वाले तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय से भी उत्पन्न होते हैं। (५) पृथ्वीकाय, अप्काय एवं वनस्पति काय के जीव एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के तिर्यञ्चों, सम्मूर्च्छिम और गर्भज मनुष्यों तथा भवनवासी से लेकर वैमानिक तक के देवों में से उत्पन्न होते हैं। एकेन्द्रिय जीवों में वे पृथ्वीकाय से लेकर वनस्पतिकाय तक के सूक्ष्म एवं बादर, पर्याप्त एवं अपर्याप्त सभी जीवों में से उत्पन्न होते हैं। विकलेन्द्रियों में भी वे पर्याप्तकों एवं अपर्याप्तकों दोनों में से उत्पन्न होते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में जलचर

आदि के पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक सभी जीवों में से उत्पन्न होते हैं। मनुष्यों में कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों के पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक दोनों भेदों में से उत्पन्न होते हैं तथा सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में सबमें से उत्पन्न होते हैं। भवनपति देवों में असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक सभी देवों में से, वाणव्यन्तर देवों में पिशाचों से लेकर गन्धर्वों में से, ज्योतिष्क देवों में चन्द्रविमान के देवों से लेकर ताराविमान के देवों में से उत्पन्न होते हैं। वैमानिक देव दो प्रकार के होते हैं–कल्पोपन्नक और कल्पातीत। इनमें से कल्पोपन्नक देवों में से उत्पन्न होते हैं तथा कल्पोपन्नक देवों में से भी सौधर्म और ईशान कल्प के देवों में से ही उत्पन्न होते हैं। उल्लेखनीय यह है कि सूक्ष्म पृथ्वीकाय, सूक्ष्म अप्काय एवं सूक्ष्म वनस्पतिकाय के जीव देवों में से उत्पन्न नहीं होते हैं। वे मात्र तिर्यञ्च एवं मनुष्यों में से ही उत्पन्न होते हैं। (६) तेजस्काय एवं वायुकाय के जीव देवों में उत्पन्न नहीं होते। ये केवल तिर्यञ्च और मनुष्यों में से उत्पन्न होते हैं। शेष वर्णन पृथ्वीकायिक के समान है। (७) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति भी तेजस्काय एवं वायुकाय की भांति मनुष्य और तिर्यञ्चों में से होती है। (८) पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव चारों गतियों के जीवों में से उत्पन्न होते हैं। सातों पृथ्वियों के नैरयिकों, एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के तिर्यञ्चों, पर्याप्त-अपर्याप्त (कर्मभूमि) गर्भज एवं सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में से तथा सहस्रार कल्प के वैमानिक देवों पर्यन्त देवों में से उत्पन्न होते हैं। सम्मूर्च्छिम जलचर आदि जीव तिर्यञ्च और मनुष्यों में से ही उत्पन्न होते हैं नारकी और देवों में से नहीं। (९) मनुष्य चारों गतियों के जीवों में से उत्पन्न होते हैं किन्तु नैरयिकों में छठी नरक तक के नैरयिकों में से उत्पन्न होते हैं सातवीं नरक के नैरयिकों में से नहीं। तिर्यञ्चों में तेजस्कायिक एवं वायुकायिकों में से उत्पन्न नहीं होते हैं। देवों में सर्वार्थसिद्ध पर्यन्त समस्त देवों में से मनुष्य उत्पन्न होते हैं। मनुष्य भी दो प्रकार के हैं– सम्मूर्च्छिम और गर्भज। इनमें सम्मूर्च्छिम मनुष्य नैरयिक, देव एवं असंख्यात वर्ष आयु वाले मनुष्य एवं तिर्यञ्चों से भी उत्पन्न नहीं होते हैं। गर्भज मनुष्य का कथन सामान्य मनुष्य के समान है। (१०) वाणव्यन्तर एवं ज्योतिष्क देवों का उपपात १० भवनपतियों के समान है। विशेषता यह है कि ज्योतिष्कों की उत्पत्ति सम्मूर्च्छिम-असंख्यात वर्षायुष्क-खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों तथा अन्तर्द्वीपज मनुष्यों को छोड़कर होती है। (११) वैमानिक देवों में दूसरे देवलोक तक के जीव पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों तथा मनुष्यों में से उत्पन्न होते हैं। सनत्कुमार से सहस्रार कल्प तक के वैमानिक देव असंख्यात वर्षायुष्क अकर्मभूमिकों को छोड़कर उत्पन्न होते हैं। आनत से अच्युत तक के देव केवल मनुष्यों में से उत्पन्न होते हैं। मनुष्यों में भी कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों में से उत्पन्न होते हैं। उनमें भी संख्यात वर्ष आयु वाले पर्याप्तकों में से उत्पन्न होते हैं। उनमें भी सम्यग्दृष्टि एवं मिथ्यादृष्टि पर्याप्तकों में से उत्पन्न होते हैं, सम्यग्मिथ्यादृष्टि में से नहीं। सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक तीन प्रकार के हैं–संयत, असंयत और संयतासंयत। ये इन तीनों प्रकार के सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक मनुष्यों में से उत्पन्न होते हैं। अच्युतकल्प के देवों के उपपात की भांति नवग्रैवेयकों का उपपात है किन्तु ये असंयत एवं संयतासंयत सम्यग्दृष्टियों में से उत्पन्न नहीं होते हैं। अनुत्तरोपपातिक देवों में संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्य ही उत्पन्न हो सकते हैं अन्य कोई जीव नहीं। संयत सम्यग्दृष्टियों में भी अप्रमत्त संयतों में से ही अनुत्तरोपपातिक देव उत्पन्न होते हैं, प्रमत्तसंयतों में से नहीं। वे अप्रमत्तसंयत ऋद्धि प्राप्त या अऋद्धि प्राप्त हो सकते हैं।

चारों गतियों में जीवों के उत्पन्न होने का क्रम निरन्तर भी रहता है तथा सान्तर (व्यवधानयुक्त) भी रहता है। चारों गतियाँ जघन्य एक समय से लेकर उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक उपपात (जन्म) से विरहित रहती हैं। सिद्धगति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह माह तक सिद्धि से रहित रहती है। चारों गतियाँ जघन्य एक समय एवं उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक उद्वर्तना (मरण) से विरहित कही गई हैं।

एक समय में जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात नैरयिक उत्पन्न होते हैं। असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक के सभी १० भवनपति देव भी इसी प्रकार उत्पन्न होते हैं। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय एवं वायुकाय के जीव प्रति समय बिना विरह के असंख्यात उत्पन्न होते हैं। वनस्पतिकाय के जीव प्रतिसमय स्वस्थान में बिना विरह के अनन्त तथा परस्थान में बिना विरह के असंख्यात उत्पन्न होते हैं। विकलेन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, सम्मूर्च्छिम मनुष्य, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क तथा आठवें वैमानिक देवलोक तक के देवों की उत्पत्ति नैरयिकों के समान एक समय में जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात होती है। गर्भज मनुष्य, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत देवलोक के देव, नव ग्रैवेयक तथा पांच अनुत्तरोपपातिक देव एक समय में जघन्य एक, दो या तीन तथा उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं। सिद्ध एक समय में जघन्य एक, दो या तीन तथा उत्कृष्ट एक सौ आठ सिद्ध होते हैं। उत्पत्ति के समान ही समस्त जीवों का एक समय में उद्वर्तन होता है। ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवों के लिए उद्वर्तन के स्थान पर च्यवन शब्द प्रयुक्त होता है। सिद्धों का उद्वर्तन नहीं होता है।

नैरयिक से लेकर वैमानिक पर्यन्त सभी जीव अनन्तरोपपन्नक हैं, परम्परोपपन्नक हैं और अनन्तर परम्परानुपपन्नक भी हैं। जिन्हें उत्पन्न हुए प्रथम समय हुआ है वे अनन्तरोपपन्नक हैं, जिन्हें उत्पन्न हुए दो, तीन आदि समय व्यतीत हो गए हैं वे परम्परोपपन्नक हैं तथा जो जीव विग्रहगति में चल रहे हैं वे अनन्तर परम्परानुपपन्नक हैं। उत्पत्ति के समय सभी जीव सर्वभागों से सर्वभागों को आश्रित करके उत्पन्न होते हैं एवं उत्पन्न हुए हैं। इसी प्रकार वे सर्वभागों से सर्वभागों को आश्रित करके निकलते हैं अर्थात् उद्वर्तन करते हैं।

चौबीस दण्डकों में सान्तर एवं निरन्तर उत्पत्ति का विचार करने पर ज्ञात होता है कि सभी एकेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति निरन्तर होती रहती है, उनकी उत्पत्ति में विरह या व्यवधान नहीं आता है अतः उनकी उत्पत्ति सान्तर नहीं होती है। शेष सभी जीवों की उत्पत्ति सान्तर भी होती है एवं निरन्तर भी होती है। यही नहीं सिद्ध भी सान्तर एवं निरन्तर दोनों प्रकार से होते रहते हैं। उत्पत्ति की भांति ही उद्वर्तन है। इनमें भी एकेन्द्रिय जीवों का उद्वर्तन निरन्तर होता रहता है जबकि शेष सभी दण्डकों में जीवों का उद्वर्तन सान्तर (विरहयुक्त) एवं निरन्तर होता है। सिद्धों का उद्वर्तन नहीं होता है।

भिन्न-भिन्न जीवों के उपपात (उत्पत्ति) के विरहकाल एवं उद्वर्तन या च्यवन के विरहकाल का भी इस अध्ययन में प्रत्येक दण्डक के अनुसार उल्लेख हुआ है। पृथ्वीकाय से लेकर वनस्पतिकाय तक के एकेन्द्रिय जीवों में एक समय के लिए भी उपपात एवं उद्वर्तन का विरह नहीं होता है। उपपात एवं च्यवन का विरहकाल सबसे अधिक सर्वार्थसिद्ध देवों में होता है। वे जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पल्योपम के संख्यातवें भाग तक उपपात एवं च्यवन से विरहित कहे गए हैं।

आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने से जीवों में एक स्थान से उद्वर्तन करके दूसरे स्थान पर जन्म ग्रहण करने की गति प्रवृत्त होती है। इस गति को विग्रह गति कहा जाता है। यह विग्रह गति एकेन्द्रियों को छोड़कर सभी जीवों में एक समय, दो समय या तीन समय की होती है। एकेन्द्रियों में चार समय की भी होती है। ये सभी जीव आत्मऋद्धि से, स्वकृत कर्मों से तथा अपने व्यापार से उत्पन्न होते हैं, ईश्वरादि पर ऋद्धि, कर्म एवं व्यापार की इन्हें अपेक्षा नहीं होती।

जिस प्रकार आगम में अनन्तरोपपन्नक, परम्परोपपन्नक एवं अनन्तपरम्परानुपपन्नक की चर्चा है उसी प्रकार अनन्तर निर्गत, परम्पर निर्गत एवं अनन्तरपरम्पर अनिर्गत की भी चर्चा है। निर्गत शब्द यहाँ उद्वर्तित के स्थान पर प्रयुक्त हुआ है। जिन जीवों को औदारिक या वैक्रिय शरीर छोड़कर निकले प्रथम समय हुआ है वे अनन्तरनिर्गत हैं, जिन्हें दो, तीन आदि समय व्यतीत हो गया है वे परम्पर निर्गत हैं तथा जो विग्रह गति प्राप्त हैं वे अनन्तर परम्पर अनिर्गत हैं।

भगवान् से प्रश्न किया गया–भंते ! नारक नारकों में उत्पन्न होता है या अनारक नारकों में उत्पन्न होता है? भगवान् ने उत्तर दिया–गौतम ! नारक नारकों में उत्पन्न होता है, अनारक नारकों में उत्पन्न नहीं होता। इसका आशय यह है कि जीव जन्म ग्रहण करने के पूर्व ही उस गति से युक्त हो जाता है जिसमें उसे जन्म लेना है तथा इसी प्रकार उद्वर्तन के समय वह उस गति का नहीं रहता जिस गति से वह जीव उद्वर्तन करता है। यह तथ्य जीवों पर लागू होता है।

रत्नप्रभापृथ्वी पर ३० लाख नरकावास हैं। शर्कराप्रभापृथ्वी पर २५ लाख नरकावास हैं। वालुकाप्रभापृथ्वी पर १५ लाख, पंकप्रभा पृथ्वी पर १० लाख, धूमप्रभापृथ्वी पर ३ लाख तथा तमःप्रभापृथ्वी पर ९५ हजार नरकावास हैं। तमस्तमप्रभा पृथ्वी पर पाँच अनुत्तर नरकावास हैं–काल, महाकाल, रौरव, महारौरव और अप्रतिष्ठान। ये सातों पृथ्वियों के नरकावास संख्यात योजन विस्तार वाले भी हैं तथा असंख्यात योजन विस्तार वाले भी हैं। रत्नप्रभापृथ्वी के संख्यात योजन विस्तृत नरकावासों में उत्पन्न होने वाले नारकों के सम्बन्ध में इस अध्ययन में ३९ प्रश्नों का समाधान किया गया है। इसी प्रकार असंख्यात योजन विस्तृत नरकावासों में उत्पन्न होने वाले नैरयिकों के सम्बन्ध में भी उतने ही प्रश्नोत्तर हैं। संख्यात योजन विस्तृत नरकावासों में एक समय में जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात नैरयिक उत्पन्न होते हैं जबकि असंख्यात योजन विस्तृत नरकावासों में उत्कृष्ट असंख्यात नैरयिक उत्पन्न होते हैं। रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की विविध आधारों पर संख्या के सम्बन्ध में ३९ प्रश्नों का समाधान भी हुआ है। इसके अन्तर्गत कापोतलेश्यी, संज्ञी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, अनन्तरोपपन्नक, परम्परोपपन्नक, अनन्तरावगाढ़, परम्परावगाढ़ आदि नैरयिकों की संख्या के विषय में चर्चा है। इन प्रश्नोत्तरों के आधार पर कुछ विशेष ज्ञातव्य बातें उभरकर आती हैं।

रत्नप्रभापृथ्वी के संख्यात योजन विस्तृत नरकावासों में उद्वर्तन करने वाले नारकों के सम्बन्ध में भी उत्पत्ति की भाँति ही ३९ प्रश्नों का समाधान किया गया है। रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की भांति ही शर्कराप्रभा आदि छहों नरकपृथ्वियों के नैरयिकों का उपपात एवं उद्वर्तन होता है, अतः इनके प्रश्नोत्तरों में विशेष भेद नहीं है। नरकावासों की संख्या में अन्तर है जिसका निर्देश पहले कर दिया है। वैशिष्ट्य यह है कि इन छहों पृथ्वियों के नैरयिक असंज्ञी नहीं होते हैं। लेश्याओं की अपेक्षा पहली, दूसरी नरक में कापोधलेश्या है, तीसरी में कापोत और नील, चौथी में नील, पाँचवीं में नील और कृष्ण, छठी में कृष्ण और सातवीं नरक में परमकृष्ण लेश्या है। पंकप्रभापृथ्वी से लेकर अधः सप्तमी पृथ्वी तक अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी नैरयिक उद्वर्तन नहीं करते हैं। सातवीं नरक में तीन ज्ञानयुक्त जीव उत्पन्न नहीं होते हैं तथा उद्वर्तन भी नहीं करते हैं किन्तु सत्ता में तीन ज्ञान वाले नैरयिक पाये जाते हैं।

भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों के उत्पाद, उद्वर्तन या च्यवन के सम्बन्ध में भी नैरयिकों की भांति ४९-४९ प्रश्नों के समाधान दिए गए हैं। असुरकुमारों के ६४ लाख आवास कहे गए हैं। नागकुमार आदि सभी भवनपतियों के भी इसी प्रकार चौंसठ-चौंसठ लाख आवास हैं। ये आवास भी संख्यात योजन विस्तार वाले एवं असंख्यात योजन विस्तार वाले होते हैं। ये देव स्त्रीवेद या पुरुषवेद सहित उत्पन्न होते हैं, नपुंसकवेदी नहीं होते। ये असंज्ञी भी उद्वर्तना करते हैं। अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी उद्वर्तना नहीं करते हैं। संख्यात योजन विस्तार वाले आवासों में उत्कृष्ट संख्यात भवनपति देव उत्पन्न होते हैं एवं असंख्यात योजन विस्तार वाले आवासों में असंख्यात उत्पन्न होते हैं। वाणव्यन्तर देवों के असंख्यात लाख आवास हैं। ज्योतिष्क देवों के असंख्यात लाख विमानावास हैं। ज्योतिष्क देवों में एक तेजोलेश्या होती है अन्य नहीं, जबकि भवनपति देवों में प्रथम चार लेश्याएँ होती हैं। सौधर्म एवं ईशान देवलोक में बत्तीस-बत्तीस लाख विमानावास हैं। सनत्कुमार से सहस्रार तक विमानावासों में थोड़ा अन्तर है। आनत और प्राणत देवलोकों में चार सौ विमानावास हैं। आरण और अच्युत के विमानावासों में थोड़ा अन्तर है। अनुत्तर वैमानिकों के पाँच विमान हैं उनमें एक संख्यात योजन विस्तार वाला तथा चार असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं। इन देवों एवं नैरयिकों के सम्बन्ध में जो वर्णन मिलता है उसे तीन आलापकों में प्रस्तुत किया गया है। वे आलापक हैं–उपपात, उद्वर्तन और सत्ता।

सभी दण्डकों के जीव आत्मोपक्रम से भी उत्पन्न होते हैं, परोपक्रम से भी उत्पन्न होते हैं और निरुपक्रम से भी उत्पन्न होते हैं किन्तु उद्वर्तन में ऐसा नहीं है। नैरयिक एवं देव निरुपक्रम से उद्वर्तन करते हैं, आत्मोपक्रम एवं परोपक्रम से नहीं। पृथ्वीकायिक जीवों से लेकर मनुष्य पर्यन्त के दण्डकों में तीनों उपक्रमों से उद्वर्तन होता है। ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवों का च्यवन होता है, उद्वर्तन नहीं। यह बात पहले कही जा चुकी है कि सभी जीव आत्मऋद्धि से उत्पन्न होते हैं तथा आत्मऋद्धि से ही उद्वर्तन करते हैं, अपने कर्म से ही उत्पन्न होते हैं तथा अपने कर्म से ही उद्वर्तन करते हैं। इसी प्रकार वे आत्मप्रयोग या आत्मव्यापार से उत्पन्न होते हैं तथा उद्वर्तन करते हैं। जो जीव जहाँ उत्पन्न होने योग्य है वह उस गतिनाम से योजित कर भव्यद्रव्य नैरयिक, भव्यद्रव्य देव, भव्यद्रव्य पृथ्वीकायिक, भव्यद्रव्य तिर्यञ्च, भव्यद्रव्य मनुष्य आदि कहा जाता है।

एक गति में एक साथ कितने जीव उत्पन्न होने के लिए प्रवेश करते हैं उसे आगम में कति संचित, अकतिसंचित और अवक्तव्यसंचित इन तीन प्रकारों में विभक्त किया गया है। जो एक साथ संख्यात प्रवेश करते हैं वे कतिसंचित हैं, जो असंख्यात प्रवेश करते हैं वे अकतिसंचित हैं तथा जो एक-एक करके प्रवेश करते हैं वे अवक्तव्यसंचित हैं। एकेन्द्रिय जीव एक साथ असंख्यात प्रवेश करते हैं इसलिए वे मात्र अकतिसंचित होते हैं जबकि शेष सभी जीव तीनों प्रकार के हैं वे कतिसंचित भी हैं, अकतिसंचित भी हैं और अवक्तव्य संचित भी हैं। सिद्ध सिद्धगति में एक-एक या संख्यात जाते हैं अतः वे कतिसंचित एवं अवक्तव्यसंचित होते हैं।

जो जीव (उत्पन्न होने के लिए) एक समय में एक साथ छह की संख्या में प्रवेश करते हैं वे षट्समर्जित कहलाते हैं। जो एक साथ जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट पाँच की संख्या में प्रवेश करते हैं, वे नोषट्क समर्जित होते हैं। जो अनेक षट्क की संख्या में प्रवेश करते हैं वे अनेक षट्क समर्जित कहलाते हैं। षट्क, नोषट्क एवं अनेक षट्क समर्जित के पाँच विकल्प बनते हैं–१. षट्क समर्जित २. नोषट्क समर्जित ३. एकषट्क और नोषट्क समर्जित ४. अनेक षट्क समर्जित ५. अनेक षट्क समर्जित एवं नोषट्क समर्जित। पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवों में चौथा एवं पांचवां विकल्प ही है शेष सब जीवों में पाँचों विकल्प पाए जाते हैं। इस अध्ययन में षट्क समर्जितादि से विशिष्ट दण्डकों का अल्प-बहुत्व भी निरूपित है। षट्क समर्जित की भांति बारह की संख्या में प्रवेश करने वाले जीव द्वादश समर्जित कहलाते हैं। जो जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट ग्यारह तक प्रवेश करते हैं वे नो द्वादश समर्जित कहलाते हैं। अनेक द्वादशों की संख्या में प्रवेश करने वाले अनेक द्वादश समर्जित कहलाते हैं। षट्क समर्जित की भांति इनके भी पांच विकल्प हैं। इनका भी अल्प-बहुत्व प्रस्तुत अध्ययन में द्रष्टव्य है। षट्क समर्जित एवं द्वादश समर्जित के समान चतुरशीति समर्जित का वर्णन भी मिलता है। जब एक साथ चौरासी जीव प्रवेश करते हैं तो वे चतुरशीति समर्जित कहलाते हैं, जो उत्कृष्ट ८३ तक प्रवेश करते हैं वे नो चतुरशीति समर्जित कहलाते हैं तथा अनेक चौरासियों की संख्या में प्रवेश करते हैं वे अनेक चतुरशीति समर्जित कहे जाते हैं। इनका अल्पबहुत्व भी अध्ययन-पाठ में द्रष्टव्य है।

रत्नप्रभा आदि छह पृथ्वियों में सम्यग्दृष्टि एवं मिथ्यादृष्टि नैरयिक उत्पन्न होते हैं किन्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिक उत्पन्न नहीं होते। उद्वर्तन भी सम्यग्दृष्टि एवं मिथ्यादृष्टि नैरयिकों का ही होता है। सातवीं नरक में मात्र मिथ्यादृष्टि जीव उत्पन्न होते हैं और वे ही उद्वर्तन करते हैं। नरकगति सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिकों से कदाचित् अविरहित है और कदाचित् विरहित भी होती है। रत्नप्रभा आदि पृथ्वियों के नैरयिकों का यदि प्रत्येक समय में एक-एक को अपहरण किया जाय तो वे असंख्यात उत्सर्पिणियों, अवसर्पिणियों में अपहृत होंगे किन्तु उनका अपहरण नहीं हुआ है। वैमानिक देवों में प्रत्येक समय में एक का अपहरण किया जाय तो असंख्यात उत्सर्पिणियाँ एवं असर्पिणियाँ लगेंगी किन्तु उनका अपहरण हुआ नहीं है। ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानों में से अपहरण किए जाने पर वे पल्योपम के असंख्यातवें भाग में अपहृत होंगे किन्तु उनका अपहरण होता नहीं है। नैरयिकों की भांति देवों में भी सम्यग्दृष्टि एवं मिथ्यादृष्टि जीव उत्पन्न होते हैं किन्तु पाँच अनुत्तर विमानों में मात्र सम्यग्दृष्टि देव उत्पन्न होते हैं।

व्युत्क्रान्ति अध्ययन में भव्यद्रव्य देव, नरदेव, धर्मदेव, देवाधिदेव और भावदेवों के उपपात और उद्वर्तन का भी वर्णन है। भव्यद्रव्य देव उद्वर्तन करके देवों में उत्पन्न होते हैं। नरदेव उद्वर्तन करके नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं। धर्मदेव वैमानिक देवों में उत्पन्न होते हैं। देवाधिदेव सिद्ध होते हैं यावत् सर्वदुःखों का अन्त करते हैं। भावदेवों की उद्वर्तना असुरकुमारों की भांति है। असंयत भव्यद्रव्य देव, अविराधित संयमी यावत् श्रद्धा भ्रष्ट वेषधारी जीव यदि देवलोक में उत्पन्न हों तो कहाँ-कहाँ उत्पन्न होंगे इसका भी अध्ययन में निर्देश है। जो जीव आचार्य, उपाध्याय, कुल, गण और संघ के प्रत्यनीक होते हैं तथा उनका अवर्णवाद करते हैं, मिथ्यात्व के अभिनिवेश युक्त होते हैं, बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन करके भी पापालोचन नहीं करते हैं वे अकाल में काल करके किल्विषिक देव रूप में उत्पन्न होते हैं। कुछ किल्विषिक देव नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव के चार-पांच भव करके संसार-मुक्त हो जाते हैं और कुछ संसार-कान्तार में परिभ्रमण करते रहते हैं। महर्द्धिक देव महाद्युति, महाबल, महायश और महानुभाव वाले होते हैं।

पृथ्वीकाय, अपकाय एवं वायुकाय के जीव रत्नप्रभा आदि पृथ्वियों में मारणान्तिक समुद्घात से समवहत होकर सौधर्मकल्प आदि देवलोकों में पृथ्वीकायिक आदि रूप में उत्पन्न होते हैं तब दो विकल्प संभव हैं–(१) वे जीव पहले उत्पन्न होते हैं और बाद में पुद्गल ग्रहण करते हैं। (२) पहले वे पुद्गल ग्रहण करते हैं और पीछे उत्पन्न होते हैं।

३८. वुक्कंति-अज्झयणं

सुत्त

१. उप्पायाई विवक्खया एगत्त परूवणं-

एगा उप्पा, एगा वियई। -ठाणं. अ. १, सु. १४-१५

एगा गइ, एगा आगइ,

एगे चयणे, एगे उववाए। -ठाणं. अ. १, सु. १७-१८

२. उववायाई पदाणं सामित्त परूवणं-

दोण्हं उववाए पण्णत्ते, तं जहा-

१. देवाणं चेव, २. नेरइयाणं चेव।

दोण्हं उववट्टणं पण्णत्ता, तं जहा-

१. णेरइयाणं चेव, २. भवणवासीणं चेव।

दोण्हं चयणे पण्णत्ते, तं जहा-

१. जोइसियाणं चेव, २. वेमाणियाणं चेव।

-ठाणं. अ. २, उ. ३, सु. ७९

३. संसार समावन्नगजीवाणं गइ-आगइ परूवणं-

(१) णिरयगइ-

प. णेरइयाणं भंते ! जीवा कइ गइया, कइ आगइया?

उ. गोयमा ! दुगइया, दुआगइया। -जीवा पडि. १, सु. ३२

(२) तिरियगइ-

प. सुहुमपुढविकाइया णं भंते ! जीवा कइ गइया, कइ आगइया?

उ. गोयमा ! दुगइया, दुआगइया,

-जीवा. पडि. १, सु. १३, (२३)

प. बायर पुढविकाइया णं भंते ! जीवा कइ गइया, कइ आगइया?

उ. गोयमा ! दुगइया, तिआगइया। -जीवा. पडि. १, सु. १५

सुहुम आउकाइया दुगइया, दुआगइया जहा सुहुमपुढविकाइया।

बायर आउकाइया दुगइया, तिआगइया जहा बायर पुढविकाइया।

सुहुमवणस्सइकाइया दुगइया, दुआगइया जहा सुहुमपुढविकाइया। -जीवा. पडि. १, सु. १६-१८

पत्तेय-सरीर-बायर-वणस्सइकाइया दुगइया, ति आगइया, जहा बायरपुढविकाइया,

साहारणसरीर-बायर- वणस्सइकाइया वि एवं चेव। णवरं- दुआगइया।

-जीवा. पडि. १, सु. २०-२१

सुहुमतेउकाइया एगगइया, दुआगइया।

३८. व्युत्क्रान्ति-अध्ययन

सूत्र

१. उत्पाद आदि की विवक्षा से एकत्व का प्ररूपण-

उत्पत्ति एक है, विगति (विनाश) एक है।

गति एक है, आगति एक है,

च्यवन एक है, उपपात एक है।

२. उत्पाद आदि पदों के स्वामित्व का प्ररूपण-

दो का उपपात कहा गया है, यथा-

१. देवताओं का, २. नैरयिकों का,

दो का उद्वर्तन कहा गया है, यथा-

१. नैरयिकों का, २. भवनवासी देवताओं का,

दो का च्यवन कहा गया है, यथा-

१. ज्योतिष्क देवों का, २. वैमानिक देवों का,

३. संसार समापन्नक जीवों की गति आगति का प्ररूपण-

(१) नरकगति-

प्र. भंते ! नैरयिक जीव कितनी गति से आते हैं और कितनी गति में जाते हैं?

उ. गौतम ! दो गति (मनुष्य-तिर्यञ्च) से आते हैं और दो गति (मनुष्य-तिर्यञ्च) में जाते हैं।

(२) तिर्यञ्चगति-

प्र. भंते ! सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक जीव कितनी गति से आते हैं और कितनी गति में जाते हैं?

उ. गौतम ! दो गति (मनुष्य-तिर्यञ्च) से आते हैं, और दो गति (मनुष्य-तिर्यञ्च) में जाते हैं।

प्र. भंते ! बादर पृथ्वीकायिक जीव कितनी गति से आते हैं और कितनी गति में जाते हैं?

उ. गौतम ! तीन गति (मनुष्य-तिर्यञ्च व देव) से आते हैं और दो गति (मनुष्य-तिर्यञ्च) में जाते हैं।

सूक्ष्म अप्कायिक जीव सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों के समान दो गति से आते हैं और दो गति में जाते हैं।

बादर अप्कायिक जीव बादर पृथ्वीकायिकों के समान तीन गति से आते हैं और दो गति में जाते हैं।

सूक्ष्म वनस्पतिकायकि जीव सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों के समान दो गति से आते हैं और दो गति में जाते हैं।

प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक जीव बादर पृथ्वीकायिक के समान तीन गति से आते हैं और दो गति में जाते हैं।

साधारण शरीर बादर वनस्पतिकायिक की गति आगति भी इसी प्रकार है। विशेष यह है कि ये दो गति से आते हैं।

सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव दो गति से आते हैं और एक गति में जाते हैं

वायर-तेउक्काइया वि एवं चेव। –जीवा. पडि. १, सु. २४-२५

सुहुम-वाउक्काइया, वायर-वाउक्काइया वि एवं चेव।
–जीवा. पडि. १, सु. २६

वेइंदिया-दुगइया, दुआगइया,
तेइंदिया चउरिंदिया वि एवं चेव।
–जीवा. पडि. १, सु. २८-३०

संमुच्छिम-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया जलयरा चउगइया दुआगइया।

संमुच्छिम थलयरा चउप्पया उरगपरिसप्पा, भुयग-परिसप्पा खहयरा एवं चेव।
–जीवा. पडि. १, सु. ३५-३६

गब्भवक्कंतिय-पंचेंदियतिरिक्खजोणिया जलयरा चउगइया चउआगइया,
गब्भवक्कंतिय-थलयरा, चउप्पया उरगपरिसप्पा, भुजगपरिसप्पा, खहयरा एवं चेव।
–जीवा. पडि. १, सु. ३८-४०

(३) मणुयगइ–
संमुच्छिम मणुस्सा दुगइया, दुआगइया,
गब्भवक्कंतिय-मणुस्सा पंचगइया, चउआगइया
–जीवा. पडि. १, सु. ४१

(४) देवगइ–
देवा-दुगइया, दुआगइया। –जीवा. पडि. १, सु. ४२

४. ठाणंगानुसारेण चउगइसु जीवेसु गइ-आगइ परूवणं–

नेरइया दुगइया दुआगइया पण्णत्ता, तं जहा–

१. नेरइए नेरइएसु उववज्जमाणे मणुस्सेहिंतो वा पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो वा उववज्जेज्जा,

से चेव णं से नेरइए णेरइयत्तं विप्पज्जहमाणे मणुस्सत्ताए वा पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियत्ताए वा गच्छेजा।

एवं असुरकुमारा वि,

णवरं–से चेव असुरकुमारे असुरकुमारत्तं विप्पजहमाणे मणुस्सत्ताए वा तिरिक्खजोणियत्ताए वा गच्छेज्जा।

एवं सव्वदेवा। –ठाणं. अ. २, उ. २, सु. ६८

पुढविकाइया दुगइया दुआगइया पण्णत्ता, तं जहा–

पुढविकाइए पुढविकाइएसु उववज्जमाणे पुढविकाइएहिंतो वा णो पुढविकाइएहिंतो वा उववज्जेज्जा,

से चेव णं से पुढविकाइए पुढविकाइयत्तं विप्पजहमाणे पुढविकाइयत्ताए वा णो पुढविकाइयत्ताए वा गच्छेज्जा।

एवं जाव मणुस्सा। –ठाणं. अ. २, उ. २, सु. ६८

पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया चउगइया चउआगइया पण्णत्ता, तं जहा–

पंचेंदियतिरिक्खजोणिए पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जमाणे

बादर तेजस्कायिक जीवों की गति आगति इसी प्रकार है।

सूक्ष्म वायुकायिक एवं बादर वायुकायिक की गति आगति भी इसी प्रकार है।

द्वीन्द्रिय जीव दो गति से आते हैं और दो गति में जाते हैं।

त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियों की गति आगति भी इसी प्रकार है।

सम्मूर्च्छिम पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिक जलचर दो गति (मनुष्य-तिर्यञ्च) से आते हैं और चार गति (नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य एवं देव) में जाते हैं।

सम्मूर्च्छिम स्थलचर चतुष्पद उरपरिसर्प, भुजग परिसर्प और खेचरों की गति आगति भी इसी प्रकार है।

गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जलचर चार गति से आते हैं और चार गति में जाते हैं।

गर्भज स्थलचर चतुष्पद उरपरिसर्प भुजगपरिसर्प और खेचरों की गति आगति भी इसी प्रकार है।

(३) मनुष्यगति–
सम्मूर्च्छिम मनुष्य दो गति से आते हैं दो गतियों में जाते हैं।
गर्भज मनुष्य चार गति से आते हैं पांच गतियों में जाते हैं।

(४) देवगति–
देव दो गति से आते हैं और दो गति में जाते हैं।

४. स्थानांग के अनुसार चार्तुगतिक जीवों की गति आगति का प्ररूपण–

नैरयिक जीवों की दो गति और दो आगति कही गई है, यथा–

१. नरक में उत्पन्न होने वाले नैरयिक, मनुष्य या पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनि से आकर उत्पन्न होते हैं।

वे ही नैरयिक नारक अवस्था को छोड़कर-मनुष्य या पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनि में जाते हैं।

इसी प्रकार असुरकुमारों के लिए भी जानना चाहिए।

विशेष–वे ही असुरकुमारदेव असुरकुमारत्व को छोड़कर मनुष्य या पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनि में आकर उत्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार सब देवों के लिए समझना चाहिए।

पृथ्वीकायिक जीवों की दो गति और दो आगति कही गई है, यथा–

पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले जीव पृथ्वीकायिक में या पृथ्वीकायिक से भिन्न जीवों से उत्पन्न होते हैं।

वे ही पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिकत्व को छोड़कर पृथ्वीकायिक में या नो पृथ्वीकायिक में जाते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य पर्यन्त दो गति और दो आगति कही गई है।

पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों की चार स्थानों में गति और चार स्थानों से आगति कही गई है, यथा–

पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक में उत्पन्न होता हुआ

णेरइएहिंतो वा, तिरिक्खजोणिएहिंतो वा, मणुस्सेहिंतो वा, देवेहिंतो वा उववज्जेज्जा,

से चेव णं से पंचेंदियतिरिक्खजोणिए पंचेंदियतिरिक्ख-जोणियत्तं विप्पजहमाणे णेरइयत्ताए वा तिरिक्खजोणियत्ताए वा, मणुस्सयत्ताए वा देवत्ताए वा गच्छेज्जा।

–ठाणं अ. ४, उ. ४, सु. ३६७

नैरयिकों, तिर्यञ्चयोनिकों, मनुष्यों तथा देवों में से आकर उत्पन्न होता है।

वही पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक को छोड़ता हुआ नैरयिकों, तिर्यञ्चयोनिकों, मनुष्यों तथा देवों में जाता है।

मणुस्सा चउगइआ चउआगइआ पण्णत्ता, तं जहा–

मणुस्से मणुस्सेसु उववज्जमाणे णेरइएहिंतो वा, तिरिक्ख-जोणिएहिंतो वा, मणुस्सेहिंतो वा, देवेहिंतो वा उववज्जेज्जा,

से चेव णं से मणुस्से मणुसत्तं विप्पजहमाणे णेरइयत्ताए वा, तिरिक्खजोणियत्ताए वा, मणुस्सत्ताए वा, देवत्ताए वा गच्छेज्जा। –ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३६७

मनुष्यों की चार स्थानों में गति और चार स्थानों में आगति कही गई है, यथा–

मनुष्य-मनुष्य में उत्पन्न होता हुआ नैरयिकों, तिर्यञ्चयोनिकों, मनुष्यों तथा देवों में से आकर उत्पन्न होता है।

वही मनुष्य, मनुष्यत्व को छोड़ता हुआ नैरयिकों, तिर्यञ्चयोनिकों मनुष्यों तथा देवों में जाता है।

एगिंदिया पंचगइया पंचआगइया पण्णत्ता, तं जहा–

१. एगिंदिए एगिंदिएसु उववज्जमाणे, एगिंदिएहिंतो वा, बेइंदिएहिंतो वा, तेइंदिएहिंतो वा, चउरिंदिएहिंतो वा, पंचिंदिएहिंतो वा उववज्जेज्जा।

से चेव णं से एगिंदिए एगिंदियत्तं विप्पजहमाणे एगिंदियत्ताए वा, बेइंदियत्ताए वा, तेइंदियत्ताए वा, चउरिंदियत्ताए वा, पंचिंदियत्ताए वा गच्छेज्जा।

वेइंदिया पंच गइया पंच आगइया एवं चेव।

एवं तेइंदिया-चउरिंदिया-पंचिंदिया पंच गइया पंचआगइया पण्णत्ता, –ठाणं. अ. ५, सु. ४५८

एकेन्द्रिय जीव पांच गति तथा पांच आगति वाले कहे गए हैं, यथा–

१. एकेन्द्रिय एकेन्द्रियों में उत्पन्न होता हुआ एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय से उत्पन्न होता है।

एकेन्द्रिय एकेन्द्रियत्व को छोड़ता हुआ एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय में जाता है।

इसी प्रकार द्वीन्द्रिय जीव भी पांच गति और पांच आगति वाले होते हैं।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पांच गति और पांच आगति वाले कहे गए हैं।

पुढविकाइया छ गइया छ आगइया पण्णत्ता, तं जहा–

पुढविकाइए पुढविकाइएसु उववज्जमाणे–

१. पुढविकाइएहिंतो वा,
२. आउकाइएहिंतो वा,
३. तेउकाइएहिंतो वा,
४. वाउकाइएहिंतो वा,
५. वणस्सइकाइएहिंतो वा,
६. तसकाइएहिंतो वा उववज्जेज्जा।

से चेव णं से पुढविकाइए पुढविकाइयत्तं विप्पजहमाणे पुढविकाइयत्ताए वा जाव तसकाइयत्ताए वा गच्छेज्जा।

आउकाइया वि छ गइया छ आगइया एवं जाव तसकाइया।

–ठाणं. अ. ६, सु. ४८२

पृथ्वीकायिक जीव छः स्थानों में गति और छः स्थानों से आगति करने वाले कहे गए हैं, यथा–

पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होता हुआ–

१. पृथ्वीकायिकों,
२. अप्कायिकों,
३. तेजस्कायिकों,
४. वायुकायिकों,
५. वनस्पतिकायिकों और
६. त्रसकायिकों से आकर उत्पन्न होता है।

वहीं पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिकपने को छोड़ता हुआ पृथ्वीकायिकों यावत् त्रसकायिकों के रूप में उत्पन्न होता है।

इसी प्रकार अप्कायिक से त्रसकायिक पर्यन्त छ गति और छ आगति वाले हैं।

पुढविकाइया नवगइया नवआगइया पण्णत्ता, तं जहा–

पुढविकाइए पुढविकाइएसु उववज्जमाणे पुढविकाइएहिंतो वा जाव पंचेंदियहिंतो वा उववज्जेज्जा,

से चेव णं से पुढविकाइए पुढविकाइयत्तं विप्पजहमाणे पुढविकाइयत्ताए वा जाव पंचेंदियत्ताए वा गच्छेज्जा।

एवमाउकाइया वि जाव पंचेंदिय त्ति।

–ठाणं अ. ९, सु. ६६६/२-१०

पृथ्वीकायिक जीवों की नौ गति और नौ आगति कही गई है, यथा–

पृथ्वीकाय में उत्पन्न होने वाला पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिक यावत् पंचेन्द्रियों से उत्पन्न होता है।

वही जीव पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिकत्व को छोड़कर पृथ्वीकाय के रूप में यावत् पंचेन्द्रिय के रूप में जाता है।

इसी प्रकार अप्कायिक से पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवों की नौ गति और नौ आगति जाननी चाहिए।

५. अंडजाइ जीवाणं गइ-आगइ परूवणं–

अंडजा अट्ठगइया अट्ठआगइया पण्णत्ता,[1] तं जहा–

१. अंडजे-अंडजेसु उववज्जमाणे अंडजेहिंतो वा,
२. पोतजेहिंतो वा,
३. जराउजेहिंतो वा,
४. रसजेहिंतो वा,
५. संसेयगेहिंतो वा,
६. सम्मुच्छिमेहिंतो वा,
७. उब्भिएहिंतो वा,
८. उववाइएहिंतो वा उववज्जेज्जा,

१. से चेव णं से अंडगे अंडगत्तं विप्पजहमाणे अंडगत्ताए वा,
२. पोतगत्ताए वा,
३. जराउजत्ताए वा,
४. रसजत्ताए वा,
५. संसेयगत्ताए वा,
६. सम्मुच्छिमत्ताए वा,
७. उब्भियत्ताए वा,
८. उववाइयत्ताए वा गच्छेज्जा।

एवं पोतजा वि, जराउया वि,

सेसाणं गईरागई णत्थि। –ठाणं अ. ८, सु. ५९५/२

६. चउगईय जीवाणं संतरं निरंतरं उववज्जण परूवणं–

प. नेरइयाणं भंते ! किं संतरं उववज्जंति, निरंतरं उववज्जंति?

उ. गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति।[2]

प. तिरिक्खजोणियाणं भंते ! किं संतरं उववज्जंति, निरंतरं उववज्जंति?

उ. गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति।

प. मणुस्साणं भंते ! किं संतरं उववज्जंति, निरंतरं उववज्जंति?

उ. गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति।

प. देवाणं भंते ! किं संतरं उववज्जंति, निरंतरं उववज्जंति?

उ. गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति। –पण्ण. प. ६, सु. ६०९-६१२

७. चउग्गईणं उववाय-विरहकाल परूवणं–

प. निरयगईणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

प. तिरियगईणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

५. अण्डज आदि जीवों की गति-आगति का प्ररूपण–

अण्डज आठ गति और आठ आगति वाले कहे गए हैं, यथा–

१. जो जीव अण्डज योनि में उत्पन्न होता है वह अण्डज,
२. पोतज,
३. जरायुज,
४. रसज,
५. संस्वेदज
६. सम्मूर्च्छिम,
७. उद्भिज्ज और
८. औपपातिक इन आठों योनियों से आता है।

१. जो जीव अण्डज अण्जत्व योनि को छोड़कर दूसरी योनि में जाता है वह अण्डज,
२. पोतज,
३. जरायुज,
४. रसज,
५. संस्वेदज,
६. सम्मूर्च्छिम,
७. उद्भिज्ज और
८. औपपातिक-इन आठों योनियों मेंजाता है।

इसी प्रकार पोतज और जरायुज जीवों की भी गति और आगति आठ प्रकार की कहनी चाहिए।

शेष जीवों की गति और आगति (आठ प्रकार की) नहीं होती है।

६. चातुर्गतिक जीवों की सान्तर निरन्तर उत्पत्ति का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! क्या नैरयिक सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर (लगातार) उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. भन्ते ! क्या तिर्यञ्चयोनिक जीव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. भन्ते ! क्या मनुष्य सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. भन्ते ! क्या देव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते है?

उ. गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

७. चार गतियों के उपपात का विरहकाल प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! नरकगति कितने काल तक उपपात से विरहित कही गई है?

उ. गौतम ! (वह) जघन्य (कम से कम) एक समय, उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक।

प्र. भन्ते ! तिर्यञ्चगति कितने काल तक उपपात से विरहित कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय, उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक।

---

१. [illegible]

२. [illegible]

प. मणुयगईणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

प. देवगईणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।[१] —पण्ण. प. ६, सु. ५६०-५६३

८. चमरचंचाईसु उप्पायविरहकाल परूवणं—

चरमचंचा णं रायहाणी उक्कोसेणं छम्मासा विंरहिया उववाएणं।

एगमेगे णं इंदट्ठाणं उक्कोसेणं छम्मासा विरहिया उववाएणं।

अहेसत्तमा णं पुढवी उक्कोसेणं छम्मासा विरहिया उववाएणं।

सिद्धिगई णं उक्कोसेणं छम्मासा विरहिया उववाएणं।

—ठाणं. अ. ६, सु. ५३५

९. सिद्धगईस्स सिज्झणा विरहकाल परूवणं—

प. सिद्धगईणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया सिज्झणयाए पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा।[२]

—पण्ण. प. ६, सु. ५६४

१०. चउगईणं उव्वट्टण-विरहकाल परूवणं—

प. निरयगईणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उव्वट्टणयाए पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

प. तिरियगईणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उव्वट्टणयाए पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

प. मणुयगईणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उव्वट्टणयाए पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

प. देवगईणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उव्वट्टणयाए पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं बारस महुत्ता।[३] —पण्ण. प. ६, सु. ५६५-५६८

प्र. भन्ते ! मनुष्यगति कितने काल तक उपपात से विरहित कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक।

प्र. भन्ते! देवगति कितने काल तक उपपात से विरहित कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक उपपात से विरहित रहती है।

८. चमरचंचा आदि में उपपात विरह काल का प्ररूपण—

चमरचंचा राजधानी उत्कृष्ट रूप से छह महीनों तक उपपात से विरहित रह सकती है।

प्रत्येक इन्द्र स्थान उत्कृष्ट रूप से छह महीनों तक उपपात से विरहित रह सकता है।

अध:सप्तम पृथ्वी उत्कृष्ट रूप से छह महीनों तक उपपात से विरहित रह सकती है।

सिद्धगति उत्कृष्ट रूप से छह महीनों तक उपपात से विरहित रह सकती है।

९. सिद्धगति के सिद्ध विरह काल का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! सिद्धगति कितने काल तक सिद्धि से रहित कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह महीनों तक विरहित रहती है।

१०. चार गतियों के उद्वर्तन विरहकाल का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! नरकगति कितने काल तक उद्वर्तना से विरहित कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक।

प्र. भन्ते ! तिर्यञ्चगति कितने काल तक उद्वर्तना से विरहित कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक।

प्र. भन्ते ! मनुष्यगति कितने काल तक उद्वर्तना से विरहित कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक।

प्र. भन्ते ! देवगति कितने काल तक उद्वर्तना से विरहित कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक।

---

१. विया. स. १, उ. १०, सु. ३
२. (क) सम. सु. १५४/६ (ख) पण्ण. प. ६, सु. ६०६ (ग) सम. सु. १५५/६
३. सम. सु. १५४ (८)

११. चउवीसदंडगा जीवा कओहिंतो उववज्जंतीति परूवणं–

प. नेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?
किं नेरइएहिंतो उववज्जंति ?
तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?
मणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?
देवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! नेरइया नो नेरइएहिंतो उववज्जंति,
तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
नो देवेहिंतो उववज्जंति।[1]

प. जइ तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
किं एगिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?
बेइंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?
तेइंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?
चउरिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?
पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! नो एगिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
नो बेइंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
नो तेइंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
नो चउरिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
किं जलयर-पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?
थलयर-पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?
खहयर-पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति।
थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति।
खहयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
किं सम्मुच्छिम-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?
गब्भवक्कंतिय-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

११. चौवीस दंडकों के जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं इसका प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?
क्या (वे) नैरयिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! नैरयिक, नैरयिकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते,
(वे) तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
किन्तु देवों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि (नैरयिक) तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे)
एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
त्रीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
चतुरिन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।
द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।
त्रीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।
चतुरिन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर भी उत्पन्न नहीं होते हैं।
किन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि (नैरयिक) पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं
तो क्या जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं।
वे स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं।
वे खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या सम्मूर्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
या गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

---

1. (क) जीवा. पडि. १, सु. ३२ (ख) ... [illegible]

उ. गोयमा ! सम्मूच्छिम-जलयर-पंचेंदिय- तिरिक्खजोणि-एहिंतो वि उववज्जंति।

गब्भवक्कंतिय-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ सम्मुच्छिम-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

किं पज्जत्तय-सम्मुच्छिम-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति?

अपज्जत्तय-सम्मुच्छिम-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! पज्जत्तय-सम्मुच्छिम-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

नो अपज्जत्तय-सम्मुच्छिम-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ गब्भवक्कंतिय-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणि-एहिंतो उववज्जंति,

किं पज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-जलयर-पंचेंदिय- तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति?

अपज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! पज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

नो अपज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-जलयर-पंचेंदिय-तिरक्खि जोणिएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

किं चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

परिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति,

परिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

किं सम्मुच्छिम-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय- तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति?

गब्भवक्कंतिय-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! सम्मुच्छिम-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय- तिरिक्ख-जोणिएहिंतो वि उववज्जंति,

गब्भवक्कंतिय- चउप्पएहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ सम्मुच्छिम-चउप्पएहिंतो उववज्जंति,

उ. गौतम ! (वे) सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं,

गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

तो क्या-पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं

या अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

(किन्तु) अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

तो क्या पर्याप्तक-गर्भज जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

या अपर्याप्तक गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) पर्याप्तक-गर्भज-जलचर-पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च-योनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

(किन्तु) अपर्याप्तक गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि (वे) स्थलचर-पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

तो क्या चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय -तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

या परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) चतुष्पद-स्थलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं,

परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

तो क्या सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च-योनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

या गर्भज-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं,

गर्भज-चतुष्पद-स्थलचरों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर (पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-योनिकों) में से आकर उत्पन्न होते हैं,

किं पज्जत्तय-सम्मुच्छिम-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिएहिंतो उववज्जंति?

अपज्जत्तय-सम्मुच्छिम-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति,

नो अपज्जत्तय-समुच्छिम-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ गब्भवक्कंतिय-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय- तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति,

किं संखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

असंखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति,

नो असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ संखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

किं पज्जत्तय- संखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय-चउप्पय-थलयर पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

अपज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय- चउप्पय -थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! पज्जत्तय-संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति,

नो अपज्जत्तय-संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ परिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

किं उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

भुयपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

किं सम्मुच्छिम-उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति?

गब्भवक्कंतिय-उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! सम्मुच्छिमेहिंतो वि उववज्जंति,

गब्भवक्कंतिएहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ सम्मुच्छिम-उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति,

तो क्या पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

या अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) पर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

किन्तु अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च- योनिकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

तो क्या (वे) संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

या असंख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) संख्यात वर्ष की आयु वालों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

(किन्तु) असंख्यात वर्ष की आयु वालों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

तो क्या पर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्क गर्भज चतुष्पद-स्थलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

या अपर्याप्त-संख्यात वर्षायुष्क-गर्भज चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) पर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्कों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

(किन्तु) अपर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्कों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि (वे) परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

तो क्या उरपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

या भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे दोनों में से आकर ही उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

तो क्या सम्मूर्च्छिम-उरपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-योनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

या गर्भज उरपरिसर्प-स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) सम्मूर्च्छिमों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं,

गर्भज-उरपरिसर्पों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं,

प्र. यदि (वे) सम्मूर्च्छिम-उरपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-योनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

उ. गोयमा ! सम्मुच्छिम-जलयर-पंचेंदिय- तिरिक्खजोणि-एहिंतो वि उववज्जंति।

गब्भवक्कंतिय-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ सम्मुच्छिम-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

किं पज्जत्तय-सम्मुच्छिम-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति?

अपज्जत्तय-सम्मुच्छिम-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! पज्जत्तय-सम्मुच्छिम-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

नो अपज्जत्तय-सम्मुच्छिम-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ गब्भवक्कंतिय-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणि-एहिंतो उववज्जंति,

किं पज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-जलयर-पंचेंदिय- तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति?

अपज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! पज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

नो अपज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-जलयर-पंचेंदिय-तिरक्खि जोणिएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

किं चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

परिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति,

परिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

किं सम्मुच्छिम-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय- तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति?

गब्भवक्कंतिय-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! सम्मुच्छिम-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय- तिरिक्ख-जोणिएहिंतो वि उववज्जंति,

गब्भवक्कंतिय- चउप्पएहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ सम्मुच्छिम-चउप्पएहिंतो उववज्जंति,

उ. गौतम ! (वे) सम्मूर्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं,

गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि सम्मूर्छिम जलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

तो क्या-पर्याप्तक सम्मूर्छिम जलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं

या अपर्याप्त सम्मूर्छिम जलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! पर्याप्तक सम्मूर्छिम जलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

(किन्तु) अपर्याप्तक सम्मूर्छिम जलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

तो क्या पर्याप्तक-गर्भज जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

या अपर्याप्तक गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) पर्याप्तक-गर्भज-जलचर-पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च-योनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

(किन्तु) अपर्याप्तक गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि (वे) स्थलचर-पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

तो क्या चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय -तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

या परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) चतुष्पद-स्थलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं,

परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

तो क्या सम्मूर्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च-योनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

या गर्भज-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) सम्मूर्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं,

गर्भज-चतुष्पद-स्थलचरों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि सम्मूर्छिम-चतुष्पद-स्थलचर (पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-योनिकों) में से आकर उत्पन्न होते हैं,

किं पज्जत्तय-सम्मुच्छिम-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिएहिंतो उववज्जंति?

अपज्जत्तय-सम्मुच्छिम-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति,

नो अपज्जत्तय-समुच्छिम-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ गब्भवक्कंतिय-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय- तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति,

किं संखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

असंखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति,

नो असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ संखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

किं पज्जत्तय- संखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय-चउप्पय-थलयर पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

अपज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय- चउप्पय - थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! पज्जत्तय-संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति,

नो अपज्जत्तय-संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ परिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

किं उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

भुयपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

किं सम्मुच्छिम-उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति?

गब्भवक्कंतिय-उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! सम्मुच्छिमेहिंतो वि उववज्जंति,

गब्भवक्कंतियएहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ · सम्मुच्छिम-उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति,

तो क्या पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

या अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) पर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

किन्तु अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च- योनिकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

तो क्या (वे) संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

या असंख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) संख्यात वर्ष की आयु वालों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

(किन्तु) असंख्यात वर्ष की आयु वालों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद–स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

तो क्या पर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्क गर्भज चतुष्पद-स्थलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

या अपर्याप्त-संख्यात वर्षायुष्क-गर्भज चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) पर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्कों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

(किन्तु) अपर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्कों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि (वे) परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

तो क्या उरःपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

या भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे दोनों में से आकर ही उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि उरःपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

तो क्या सम्मूर्च्छिम-उरःपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय- तिर्यञ्च-योनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

या गर्भज-उरःपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) सम्मूर्च्छिमों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं,

गर्भज-उरःपरिसर्पों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि (वे) सम्मूर्च्छिम-उरःपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय- तिर्यञ्च-योनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?
अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! पज्जत्तय-सम्मुच्छिमेहिंतो उववज्जंति,
नो अपज्जत्तय-सम्मुच्छिम-उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ गब्भवक्कंतिय-उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?
अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! पज्जत्तए-गब्भवक्कंतिएहिंतो उववज्जंति,
नो अपज्जत्तए-गब्भवक्कंतिय-उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ भुयपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
किं सम्मुच्छिम-भुयपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति ?
गब्भवक्कंतिय-भुयपरिसप्पथलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ सम्मुच्छिम-भुयपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति,
किं पज्जत्तय-सम्मुच्छिम-भुयपरिसप्प-थलयर-पचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?
अपज्जत्तय-सम्मुच्छिम-भुयपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति,
नो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ गब्भवक्कंतिय-भुयपरिसप्प थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?
अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति,
नो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ खहयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
किं सम्मुच्छिम-खहयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?
गब्भवक्कंतिय-खहयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ सम्मुच्छिम-खहयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?
अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

तो क्या पर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
या अपर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिमों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
(किन्तु) अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि (वे) गर्भज-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-योनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या (वे) पर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
या अपर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे पर्याप्तक-गर्भजों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
(किन्तु) अपर्याप्तक-गर्भज-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि (वे) भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय -तिर्यञ्चयोनिकों में से उत्पन्न होते हैं,
तो क्या (वे) सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं या
गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) दोनों में से आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-योनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या (वे) पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
या अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) पर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
(किन्तु) अपर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या (वे) पर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं या
अपर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! पर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
(किन्तु) अपर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या सम्मूर्च्छिम खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं या
गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! ये दोनों में से आकर ही उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि सम्मूर्च्छिम खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या (वे) पर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
या अपर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति,
नो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ गब्भवक्कंतिय-खहयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख जोणिए-हिंतो उववज्जंति,
किं संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ?
असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति,
नो असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ संखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय-खहयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?
अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति,
नो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
किं सम्मुच्छिम-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?
गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! नो सम्मुच्छिम-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति।

प. जइ गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
किं कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?
अकम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?
अंतरदीवग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
नो अकम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
नो अंतरदीवग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति।

प. जइ कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
किं संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ?
असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! संखेज्जवासाउय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
नो असंखेज्जवासाउय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति।

प. जइ संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?
अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति,
नो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति।

उ. गौतम ! वे पर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
(किन्तु) अपर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि (वे) गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या संख्यातवर्षायुष्कों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
या असंख्यातवर्षायुष्कों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) संख्यातवर्षायुष्कों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
(किन्तु) असंख्यातवर्षायुष्कों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि (वे) संख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-योनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या पर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
या अपर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) पर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
(किन्तु) अपर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि (वे) मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं
तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं या
गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
किन्तु गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि (वे) गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या
कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं या
अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
(किन्तु) अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यों में से आकर भी उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या, संख्यातवर्ष की आयुवालों में से आकर उत्पन्न होते हैं या
असंख्यातवर्ष की आयु वालों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) संख्यात वर्ष की आयु वालों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
किन्तु असंख्यातवर्ष की आयु वालों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि (वे) संख्यातवर्षायुष्कों में कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्कों में से आकर उत्पन्न होते हैं या
अपर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्कों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! पर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
(किन्तु) अपर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

एवं जहा ओहिया उववाइया तहा रयणप्पभाएपुढविनेरइया वि उववाएयव्वा।

इसी प्रकार जैसे औघिक (सामान्य) नारकों के उपपात (उत्पत्ति) के विषय में कहा गया है, वैसे ही रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों के उपपात के विषय में भी कहना चाहिए।

प. सक्करप्पभाए पुढविनेरइया णं भंते! कओहिंतो उववज्जंति,

किं नेरइएहिंतो उववज्जंति **जाव** देवेहिंतो उववज्जंति?

प्र. भंते ! शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

क्या नैरयिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं **यावत्** देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गोयमा ! **एए वि जहा ओहिया तहेवोववाएयव्वा।**

णवरं–सम्मुच्छिमेहिंतो पडिसेहो कायव्वो।

उ. गौतम ! इनका उपपात भी औघिक (सामान्य) नैरयिकों के समान ही समझना चाहिए।

विशेष–सम्मूर्च्छिम में से (इनकी उत्पत्ति का) निषेध करना चाहिए।

प. वालुयप्पभाए पुढविनेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति,

किं नेरइएहिंतो उववज्जंति **जाव** देवेहिंतो उववज्जंति?

प्र. भंते ! वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

क्या वे नैरयिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं **यावत्** देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गोयमा ! **जहा सक्करप्पभाएपुढविनेरइया।**

णवरं–भुयपरिसप्पेहिंतो वि पडिसेहो कायव्वो।

उ. गौतम ! जैसे शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की उत्पत्ति के विषय में कहा, वैसे ही इनकी उत्पत्ति के विषय में भी कहना चाहिए।

विशेष–भुजपरिसर्प से (इनकी उत्पत्ति का) निषेध करना चाहिए।

प. पंकप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

किं नेरइएहिंतो उववज्जंति **जाव** देवेहिंतो उववज्जंति?

प्र. भंते ! पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

क्या वे नैरयिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं **यावत्** देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गोयमा ! **जहा वालुयप्पभापुढविनेरइया।**

णवरं–खहयरेहिंतो वि पडिसेहो कायव्वो।

उ. गौतम ! जैसे वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की उत्पत्ति के विषय में कहा, वैसे ही इनकी उत्पत्ति के विषय में भी कहना चाहिए।

विशेष–खेचरों में से (इनकी उत्पत्ति का) निषेध करना चाहिए।

प. धूमप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

किं नेरइएहिंतो उववज्जंति **जाव** देवेहिंतो उववज्जंति?

प्र. भंते ! धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

क्या वे नैरयिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं **यावत्** देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गोयमा ! **जहा पंकप्पभापुढविनेरइया।**

णवरं–चउप्पएहिंतो वि पडिसेहो कायव्वो।

उ. गौतम ! जैसे पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की उत्पत्ति के विषय में कहा उसी प्रकार इनकी उत्पत्ति के विषय में भी कहना चाहिए।

विशेष–चतुष्पदों में से भी इनकी उत्पत्ति का निषेध करना चाहिए।

प. तमापुढविनेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

प्र. भंते ! तमःप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गोयमा ! जहा धूमप्पभापुढविनेरइया।

णवरं–थलयरेहिंतो वि पडिसेहो कायव्वो।

इमेणं अभिलावेणं।

उ. गौतम ! जैसे धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की उत्पत्ति के विषय में कहा वैसे ही इस पृथ्वी के नैरयिकों की उत्पत्ति के विषय म समझना चाहिए।

विशेष–स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में से इनकी उत्पत्ति का निषेध करना चाहिए।

इस (पूर्वोक्त) अभिलाप के अनुसार–

प. जइ पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

किं जलयर-पंचेंदियएहिंतो उववज्जंति?

थलयर-पंचेंदियएहिंतो उववज्जंति?

खहयर-पंचेंदियएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा! जलयर-पंचेंदियएहिंतो उववज्जंति,

नो थलयरेहिंतो उववज्जंति,

नो खहयरेहिंतो उववज्जंति।

प. जइ मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
किं कम्मभूमएहिंतो उववज्जंति,
अकम्मभूमएहिंतो उववज्जंति,
अंतरदीवएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा! कम्मभूमएहिंतो उववज्जंति,
नो अकम्मभूमएहिंतो उववज्जंति,
नो अंतरदीवएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ कम्मभूमएहिंतो उववज्जंति,
किं संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति,
असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा! संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति।
नो असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति,

किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति,
अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति,
नो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ पज्जत्तए - संखेज्जवासाउय - कम्मभूमगेहिंतो उववज्जंति,
किं इत्थीहिंतो उववज्जंति?
पुरिसेहिंतो उवज्जंति?
नपुंसएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा! इत्थीहिंतो वि उववज्जंति,
पुरिसेहिंतो वि उववज्जंति,
नपुंसएहिंतो वि उववज्जंति।

प. अहेसत्तमापुढविनेरइया णं भंते! कओहिंतो उववज्जति?

उ. गोयमा! एवं चेव।

णवरं–इत्थीहिंतो पडिसेहो कायव्वो।

प्र. यदि वे (तमःप्रभापृथ्वी-नारक) पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

तो क्या जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! (वे) जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

(किन्तु) स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,

खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में से आकर भी उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि (वे) मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या
कर्मभूमिज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
अकर्मभूमिज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
अन्तर्द्वीपज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! (वे) कर्मभूमिज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
किन्तु अकर्मभूमिज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
अन्तर्द्वीपज मनुष्यों में से आकर भी उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि कर्मभूमिज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या-संख्यातवर्षायुष्कों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
या असंख्यातवर्षायुष्कों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! (वे) संख्यातवर्षायुष्कों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
(किन्तु) असंख्यातवर्षायुष्कों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि (तमःप्रभापृथ्वी के नैरयिक) संख्यातवर्षायुष्कों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

तो क्या पर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
या अपर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! पर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
अपर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,

प्र. यदि वे पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं
तो क्या स्त्रियों में से आकर उत्पन्न होते हैं?
पुरुषों में से आकर उत्पन्न होते हैं या
नपुंसकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! (वे) स्त्रियों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं,
पुरुषों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं,
नपुंसकों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते! अधःसप्तम (तमस्तमा) पृथ्वी के नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! पूर्ववत् छठी तमःप्रभापृथ्वी के नैरयिकों के समान इनकी उत्पत्ति समझनी चाहिए।

विशेष–स्त्रियों में से आकर इनके उत्पन्न होने का निषेध करना चाहिए।

अस्सण्णी खलु पढमं,
दोच्चं च सिरीसिवा,

तइयं पक्खी,
सीहा जंति चउत्थिं,
उरगा पुण पंचमीं पुढविं,
छट्ठिं च इत्थियाओ,
मच्छा मणुया सत्तमिं पुढविं।

एसो परमुववाओ, बोधव्वो नरयपुढवीणं[1]

—पण्ण. प. ६, सु. ६३९-६४७

देवाणं पुच्छा—

प. देवाणं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! उववाओ तिरियमणुस्सेहिं।

—जीवा. पडि. १, सु. ४२

प. दं. २ असुरकुमारा णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?
किं नेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति,
तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
मणुएहिंतो उववज्जंति,
नो देवेहिंतो उववज्जंति।
एवं जेहिंतो नेरइयाणं उववाओ तेहिंतो असुरकुमारा वि भाणियव्वो।
णवरं—असंखेज्जवासाउय अकम्मभूमए-अंतरदीवए-मणुस्सतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति।

सेसं तं चेव।
३-११ एवं जाव थणियकुमारा।

—पण्ण. प. ६, सु. ६४८-६४९

तिरियाणं पुच्छा—

प. दं. १२ पुढविकाइयाणं णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

किं नेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति,
तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
मणुयजोणिएहिंतो उववज्जंति,
देवेहिंतो वि उववज्जंति[2]।

प. जइ तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

निश्चय ही असंज्ञी पहली (नरक पृथ्वी) तक,
सरीसृप (रेंग कर चलने वाले सर्प आदि) दूसरी (नरक पृथ्वी) तक,
पक्षी तीसरी (नरक पृथ्वी) तक,
सिंह चौथी (नरक पृथ्वी) तक,
उरग पांचवी (नरक) पृथ्वी तक,
स्त्रियाँ छठी (नरक पृथ्वी) तक,
मत्स्य एवं मनुष्य (पुरुष) सातवीं (नरक) पृथ्वी तक उत्पन्न होते हैं।
नरक पृथ्वियों में (पूर्वोक्त जीवों का) यह परम (उत्कृष्ट) उपपात समझना चाहिए।

देव विषयक पृच्छा—

प्र. भंते ! देव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! तिर्यञ्च और मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. दं. २ भंते ! असुरकुमार देव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?
क्या नैरयिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) नैरयिकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।
(किन्तु) तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं।
मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं।
(वे) देवों में से आकर भी उत्पन्न नहीं होते हैं।
इसी प्रकार जिन-जिन से नारकों का उपपात कहा गया है, उन-उन से असुरकुमारों का भी उपपात कहना चाहिए।
विशेष—(वे) असंख्यातवर्ष की आयु वाले अकर्मभूमिज एवं अन्तर्द्वीपज मनुष्यों में से आकर और तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं,
शेष सब कथन पूर्ववत् है।
दं. ३-११ इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त उपपात कहना चाहिए।

तिर्यञ्च विषयक पृच्छा—

प्र. दं. १२ भंते ! पृथ्वीकायिक जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?
क्या वे नारकों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) नारकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते,
(किन्तु) तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
मनुष्ययोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं।
देवों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि (वे) तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

---

१. जीवा. पडि. ३, सु. ८६
२. पुढविकाइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति किं नेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्ख-मणुस्स-देवेहिंतो उववज्जंति?
उ. जहा वक्कंतिए पुढविकाइयाणं उववाओ। —विया. २४, उ. १२, सु. १

किं एगिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! एगिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति जाव पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ एगिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

किं पुढविकाइएहिंतो उववज्जंति जाव वणस्सइकाइएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! पुढविकाइएहिंतो वि उववज्जंति जाव वणस्सइकाइएहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ पुढविकाइएहिंतो उववज्जंति,
किं सुहुमपुढविकाइएहिंतो उववज्जंति ?
वायर पुढविकाइएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ सुहुम-पुढविकाइएहिंतो उववज्जंति,
किं पज्जत्त-सुहुम-पुढविकाइएहिंतो उववज्जंति ?

अपज्जत्त-सुहुम-पुढविकाइएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ वायरपुढविकाइएहिंतो उववज्जंति,
किं पज्जत्त वायर पुढविकाइ एहिंतो उववज्जंति ?

अपज्जत्त वायर पुढविकाइ एहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति[1]।
एवं जाव वणस्सइकाइया चउक्कएणं भेएणं उववाएयव्वा[2]।

प. जइ वेइंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

किं पज्जत्तय-वेइंदियहिंतो उववज्जंति ?
अपज्जत्तय-वेइंदियहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति[3]।
एवं तेइंदिय[4], चउरिंदिएहिंतो[5] वि उववज्जंति।

प. जइ पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

किं जलयर-पंचेंदिएहिंतो उववज्जंति ?
थलयर-पंचेंदिएहिंतो उववज्जंति ?
खहयर-पंचेंदिएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! एवं जेहिंतो नेरइयाणं उववाओ भणिओ तेहिंतो एएसिं पि भाणियव्वो[6]।

तो क्या (वे) एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर (वे) उत्पन्न होते हैं,

तो क्या पृथ्वीकायिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् वनस्पतिकायिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे पृथ्वीकायिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् वनस्पतिकायिकों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि पृथ्वीकायिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं तो
क्या (वे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं या
वादर पृथ्वीकायिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे दोनों में से आकर ही उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

या अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे दोनों में से आकर ही उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि वादर पृथ्वीकायिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या पर्याप्त वादर पृथ्वीकायिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

या अपर्याप्त वादर पृथ्वीकायिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे दोनों में से आकर ही उत्पन्न होते हैं।
इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों पर्यन्त चार-चार भेद करके उपपात कहना चाहिए।

प्र. भंते ! यदि द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर वे उत्पन्न होते हैं,

तो क्या पर्याप्त द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
या अपर्याप्त द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे दोनों में से आकर ही उत्पन्न होते हैं।
इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर भी (वे) उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! यदि (वे) पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

तो क्या जलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! जिन-जिन से नैरयिकों का उपपात कहा है, उन-उन से इनका भी उपपात कहना चाहिए।

---

1. विया. स. २४, उ. १२, सु. १
2. विया. स. २४, उ. १२, सु. १३
3. विया. स. २४, उ. १२, सु. १८
4. विया. स. २४, उ. १२, सु. २०
5. विया. स. २४, उ. १२, सु. २६
6. विया. स. २४, उ. १२, सु. २७-२८

णवरं—पज्जत्तए-अपज्जत्तएहिंतो वि उववज्जंति,

सेसं तं चेव।

प. जइ मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
किं सम्मुच्छिम-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति?
गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा! दोहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
किं कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूसेहिंतो उववज्जंति?
अकम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूसेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा! **सेसं जहा नेरइयाणं।**
णवरं—अपज्जत्तएहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ देवेहिंतो उववज्जंति?
किं भवणवासि-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा! भवणवासिदेवेहिंतो वि उववज्जंति **जाव** वेमाणियदेवेहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ भवणवासिदेवेहिंतो उववज्जंति,
किं असुरकुमारदेवेहिंतो उववज्जंति **जाव** थणियकुमार-देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा! असुरकुमारदेवेहिंतो वि उववज्जंति **जाव** थणियकुमारदेवेहिंतो वि उववज्जंति।[1]

प. जइ वाणमंतरेहिंतो उववज्जंति,
किं पिसाएहिंतो उववज्जंति **जाव** गंधव्वेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा! पिसाएहिंतो वि उववज्जंति **जाव** गंधव्वेहिंतो वि उववज्जंति।[2]

प. जइ जोइसियदेवेहिंतो उववज्जंति,
किं चंदविमाणेहिंतो उववज्जंति **जाव** ताराविमाणेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा! चंदविमाणजोइसियदेवेहिंतो उववज्जंति **जाव** ताराविमाणजोइसियदेवेहिंतो वि उववज्जंति।[3]

प. जइ वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति,
किं कप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति?

कप्पातीय वेमाणिय देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. कप्पोवग-वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति,

नो कप्पातीय-वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति।

विशेष—पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं।

शेष सब कथन पूर्ववत् है।

प्र. यदि (वे) मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं?
या गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! (सम्मूर्च्छिम और गर्भज) दोनों में से आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि गर्भज मनुष्यों में से उत्पन्न होते हैं,
तो क्या कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं?
या अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. (गौतम) शेष सब कथन नैरयिकों के समान है।
विशेष—(ये) अपर्याप्तक (कर्मभूमिज गर्भज) मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क या वैमानिक देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! भवनवासी देवों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं यावत् वैमानिक देवों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि (ये) भवनवासी देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या असुरकुमार देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् स्तनितकुमार देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! (ये) असुरकुमार देवों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं यावत् स्तनितकुमार देवों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि (वे) वाणव्यन्तर देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या पिशाचों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् गन्धर्वों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! (वे) पिशाचों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं यावत् गन्धर्वों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि (वे) ज्योतिष्क देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या चन्द्रविमान के ज्योतिष्क देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् ताराविमान के ज्योतिष्क देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! चन्द्रविमान के ज्योतिष्क देवों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं यावत् ताराविमान के ज्योतिष्कदेवों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि वैमानिक देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या कल्पोपपन्नक वैमानिक देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?
या कल्पातीत वैमानिक देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! (वे) कल्पोपपन्नक वैमानिक देवों में से आकर होते हैं,
(किन्तु) कल्पातीत वैमानिक देवों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

---

१. विया. स. २४, उ. १२, सु. ४०-४१
२. विया. स. २४, उ. १२, सु. ४८
३. विया. स. २४, उ. १२, सु. ५०

प. जइ कप्पोवग-वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति,
किं सोहम्मेहिंतो उववज्जंति जाव अच्चुएहिंतो उववज्जंति?

प्र. यदि कल्पोपपन्नक वैमानिक देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या वे सौधर्म कल्प के देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् अच्युत कल्प के देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गोयमा ! सोहम्मीसाणेहिंतो उववज्जंति,
नो सणंकुमार जाव अच्चुएहिंतो उववज्जंति।[1]
—पण्ण. प. ६, सु. ६५०(१-१८)

उ. गौतम ! (वे) सौधर्म और ईशान कल्प के देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
किन्तु सनत्कुमार से अच्युत कल्प पर्यन्त के देवों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प. सुहुमपुढविकाइया णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति?
किं नेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्ख-मणुस्स-देवेहिंतो उववज्जंति?

प्र. भंते ! सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?
क्या वे नरक में से, तिर्यञ्च में से, मनुष्य में से या देव में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गोयमा ! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति,
तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
नो देवेहिंतो उववज्जंति,
तिरिक्खजोणिय-पज्जत्तापज्जत्तेहिंतो,
असंखेज्जवासाउयवज्जेहिंतो उववज्जंति,
मणुस्सेहिंतो अकम्मभूमग-असंखेज्जवासाउयवज्जेहिंतो उववज्जंति;
वक्कंति उववाओ भाणियव्वो।
—जीवा. पडि. १, सु. १३-(१९)

उ. गौतम ! वे नारकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
वे तिर्यञ्चों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
देवों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।
तिर्यञ्चों में से आकर उत्पन्न होते हैं तो असंख्यातवर्षायु वाले तिर्यञ्चों को छोड़कर शेष पर्याप्त अपर्याप्त तिर्यञ्चों में से आकर उत्पन्न होते हैं।
मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं तो अकर्मभूमिज वाले और असंख्यात वर्षों की आयु वालों को छोड़कर शेष मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं।
इसी प्रकार व्युत्क्रान्ति पद के अनुसार उपपात कहना चाहिए।

प. सण्हवायर-पुढविकाइया णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति?

प्र. भंते ! श्लक्ष्ण वादरपृथ्वीकायिक जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गोयमा ! उववाओ तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवेहिंतो देवेहिं जाव सोहम्मिसाणेहिंतो। —जीवा. पडि. १, सु. १४,

उ. गौतम ! इनका उपपात तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य और देवों में से सौधर्म ईशान कल्प के देवों पर्यन्त से होता है।

दं. १३. एवं आउक्काइया वि।[2]

दं. १३ इसी प्रकार अप्कायिकों की उत्पत्ति के विषय में भी कहना चाहिए।

दं. १४-१५ एवं तेउ[3] वाऊ[4] वि।
णवरं—देववज्जेहिंतो उववज्जंति।

दं. १४-१५ इसी प्रकार तेजस्कायिकों एवं वायुकायिकों की उत्पत्ति के विषय में कहना चाहिए।
विशेष—ये देवों को छोड़कर उत्पन्न होते हैं।

दं. १६. वणस्सइकाइया[5] जहा पुढविकाइया।

वनस्पतिकायिकों की उत्पत्ति के विषय में कथन पृथ्वीकायिकों के समान समझना चाहिए।

दं. १७-१९ बेइंदिय-[6] तेइंदिय-[7] चउरिंदिया[8] एए जहा तेउ वाऊ देववज्जेहिंतो भाणियव्वा।
—पण्ण. प. ६, सु. ६५१-६५४

दं. १७-१९ द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति का कथन तेजस्कायिकों और वायुकायिकों के समान देवों को छोड़कर समझना चाहिए।

प. दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

प्र. भंते ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

---

१. विया. स. २४, उ. १२, सु. ५२-५३
२. (क) जीवा. पडि. १, सु. १६
(ख) विया. स. २४, उ. १३, सु. २
३. (क) जीवा. पडि. १, सु. २५
(ख) विया. स. २४, उ. १४, सु. १
४. विया. स. २४, उ. १५, सु. १
५. (क) विया. स. २४, उ. १६, सु. १
(ख) विया. स. ११, उ. १, सु. ५
(ग) विया. स. २१, उ. १, सु. २-४
(घ) विया. स. २१, उ. २-८, सु. १
(ङ) विया. स. २२ (च) विया. स. २३
६. विया. स. २४, उ. १७, सु. १
७. विया. स. २४, उ. १८, सु. १
८. (क) विया. स. २४, उ. १९, सु. १
(ख) बेइंदिय, तेइंदिय चउरिंदियाणं उववाओ तिरियमणुस्सेसु णेरइय देव असंखेज्ज-वासाउय वज्जेसु।
—जीवा. पडि. १, सु. २८-३०

णवरं–पज्जत्तए-अपज्जत्तएहिंतो वि उववज्जंति,

सेसं तं चेव।

प. जइ मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
किं सम्मुच्छिम-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति?
गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
किं कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूसेहिंतो उववज्जंति?
अकम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूसेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! सेसं जहा नेरइयाणं।
णवरं–अपज्जत्तएहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ देवेहिंतो उववज्जंति?
किं भवणवासि-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! भवणवासिदेवेहिंतो वि उववज्जंति जाव वेमाणियदेवेहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ भवणवासिदेवेहिंतो उववज्जंति,
किं असुरकुमारदेवेहिंतो उववज्जंति जाव थणियकुमार-देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! असुरकुमारदेवेहिंतो वि उववज्जंति जाव थणियकुमारदेवेहिंतो वि उववज्जंति।[1]

प. जइ वाणमंतरेहिंतो उववज्जंति,
किं पिसाएहिंतो उववज्जंति जाव गंधव्वेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! पिसाएहिंतो वि उववज्जंति जाव गंधव्वेहिंतो वि उववज्जंति।[2]

प. जइ जोइसियदेवेहिंतो उववज्जंति,
किं चंदविमाणेहिंतो उववज्जंति जाव ताराविमाणेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! चंदविमाणजोइसियदेवेहिंतो उववज्जंति जाव ताराविमाणजोइसियदेवेहिंतो वि उववज्जंति।[3]

प. जइ वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति,
किं कप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति?
कप्पातीय वेमाणिय देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. कप्पोवग-वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति,
नो कप्पातीय-वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति।

विशेष–पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं।

शेष सब कथन पूर्ववत् है।

प्र. यदि (वे) मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं?
या गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (सम्मूर्च्छिम और गर्भज) दोनों में से आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि गर्भज मनुष्यों में से उत्पन्न होते हैं,
तो क्या कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं?
या अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. (गौतम) शेष सब कथन नैरयिकों के समान है।
विशेष–(ये) अपर्याप्तक (कर्मभूमिज गर्भज) मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क या वैमानिक देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! भवनवासी देवों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं यावत् वैमानिक देवों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि (ये) भवनवासी देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या असुरकुमार देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् स्तनितकुमार देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (ये) असुरकुमार देवों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं यावत् स्तनितकुमार देवों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि (वे) वाणव्यन्तर देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या पिशाचों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् गन्धर्वों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) पिशाचों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं यावत् गन्धर्वों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि (वे) ज्योतिष्क देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या चन्द्रविमान के ज्योतिष्क देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् ताराविमान के ज्योतिष्क देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! चन्द्रविमान के ज्योतिष्क देवों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं यावत् ताराविमान के ज्योतिष्कदेवों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि वैमानिक देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या कल्पोपपन्नक वैमानिक देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?
या कल्पातीत वैमानिक देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) कल्पोपपन्नक वैमानिक देवों में से आकर होते हैं,
(किन्तु) कल्पातीत वैमानिक देवों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

---

१. विया. स. २४, उ. १२, सु. ४०-४१ २. विया. स. २४, उ. १२, सु. ४८ ३. विया. स. २४, उ. १२, सु. ५०

प. जइ कप्पोवग-वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति,
किं सोहम्मेहिंतो उववज्जंति जाव अच्चुएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! सोहम्मीसाणेहिंतो उववज्जंति,

नो सणंकुमार जाव अच्चुएहिंतो उववज्जंति।[1]
—पण्ण. प. ६, सु. ६५०(१-१८)

प्र. यदि कल्पोपपन्नक वैमानिक देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या वे सौधर्म कल्प के देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् अच्युत कल्प के देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) सौधर्म और ईशान कल्प के देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
किन्तु सनत्कुमार से अच्युत कल्प पर्यन्त के देवों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प. सुहुमपुढविकाइया णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति ?
किं नेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्ख-मणुस्स-देवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति,
तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
नो देवेहिंतो उववज्जंति,
तिरिक्खजोणिय-पज्जत्तापज्जत्तेहिंतो,
असंखेज्जवासाउयवज्जेहिंतो उववज्जंति,

मणुस्सेहिंतो अकम्मभूमग-असंखेज्जवासाउयवज्जेहिंतो उववज्जंति;

वक्कंति उववाओ भाणियव्वो।
—जीवा. पडि. १, सु. १३(१९)

प्र. भंते ! सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?
क्या वे नरक में से, तिर्यञ्च में से, मनुष्य में से या देव में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे नारकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
वे तिर्यञ्चों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
देवों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।
तिर्यञ्चों में से आकर उत्पन्न होते हैं तो असंख्यातवर्षायु वाले तिर्यञ्चों को छोड़कर शेष पर्याप्त अपर्याप्त तिर्यञ्चों में से आकर उत्पन्न होते हैं।
मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं तो अकर्मभूमिज वाले और असंख्यात वर्षों की आयु वालों को छोड़कर शेष मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं।
इसी प्रकार व्युत्क्रान्ति पद के अनुसार उपपात कहना चाहिए।

प. सण्हवायर-पुढविकाइया णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! उववाओ तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवेहिंतो देवेहिं जाव सोहम्मिसाणेहिंतो। —जीवा. पडि. १, सु. १४,

दं. १३. एवं आउक्काइया वि।[2]

दं. १४-१५ एवं तेउ[3] वाऊ[4] वि।

णवरं—देववज्जेहिंतो उववज्जंति।

दं. १६. वणस्सइकाइया[5] जहा पुढविकाइया।

दं. १७-१९ बेइंदिय-[6] तेइंदिय-[7] चउरिंदिया[8] एए जहा तेउ वाऊ देववज्जेहिंतो भाणियव्वा।
—पण्ण. प. ६, सु. ६५१-६५४

प्र. भंते ! श्लक्ष्ण बादरपृथ्वीकायिक जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! इनका उपपात तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य और देवों में से सौधर्म ईशान कल्प के देवों पर्यन्त से होता है।

दं. १३ इसी प्रकार अप्कायिकों की उत्पत्ति के विषय में भी कहना चाहिए।

दं. १४-१५ इसी प्रकार तेजस्कायिकों एवं वायुकायिकों की उत्पत्ति के विषय में कहना चाहिए।

विशेष—ये देवों को छोड़कर उत्पन्न होते हैं।

वनस्पतिकायिकों की उत्पत्ति के विषय में कथन पृथ्वीकायिकों के समान समझना चाहिए।

दं. १७-१९ द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति का कथन तेजस्कायिकों और वायुकायिकों के समान देवों को छोड़कर समझना चाहिए।

प. दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?

प्र. भंते ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

---

१. विया. स. २४, उ. १२, सु. १२-१३
२. (क) जीवा. पडि. १, सु. १६
(ख) विया. स. २४, उ. १३, सु. २
३. (क) जीवा. पडि. १, सु. २४
(ख) विया. स. २४, उ. १४, सु. १
४. विया. स. २४, उ. १५, सु. १
५. (क) विया. स. २४, उ. १६, सु. १
(ख) विया. स. ११, उ. १, सु. ४
(ग) विया. स. २१, उ. १, सु. २-६
(घ) विया. स. २१, उ. २-८, सु. १
(ङ) विया. स. २२ (च) विया. स. २३
६. विया. स. २४, उ. १७, सु. १
७. विया. स. २४, उ. १८, सु. १
८. (क) विया. स. २४, उ. १९, सु. १
(ख) [illegible]
—[illegible]

णवरं-पज्जत्तए-अपज्जत्तएहिंतो वि उववज्जंति,

सेसं तं चेव।

प. जइ मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
किं सम्मुच्छिम-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति?
गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
किं कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूसेहिंतो उववज्जंति?
अकम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूसेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! सेसं जहा नेरइयाणं।
णवरं-अपज्जत्तएहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ देवेहिंतो उववज्जंति?
किं भवणवासि-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! भवणवासिदेवेहिंतो वि उववज्जंति जाव वेमाणियदेवेहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ भवणवासिदेवेहिंतो उववज्जंति,
किं असुरकुमारदेवेहिंतो उववज्जंति जाव थणियकुमार-देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! असुरकुमारदेवेहिंतो वि उववज्जंति जाव थणियकुमारदेवेहिंतो वि उववज्जंति।[1]

प. जइ वाणमंतरेहिंतो उववज्जंति,
किं पिसाएहिंतो उववज्जंति जाव गंधव्वेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! पिसाएहिंतो वि उववज्जंति जाव गंधव्वेहिंतो वि उववज्जंति।[2]

प. जइ जोइसियदेवेहिंतो उववज्जंति,
किं चंदविमाणेहिंतो उववज्जंति जाव ताराविमाणेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! चंदविमाणजोइसियदेवेहिंतो उववज्जंति जाव ताराविमाणजोइसियदेवेहिंतो वि उववज्जंति।[3]

प. जइ वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति,
किं कप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति?

कप्पातीय वेमाणिय देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. कप्पोवग-वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति,

नो कप्पातीय-वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति।

विशेष-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं।

शेष सब कथन पूर्ववत् है।

प्र. यदि (वे) मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं?
या गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (सम्मूर्च्छिम और गर्भज) दोनों में से आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि गर्भज मनुष्यों में से उत्पन्न होते हैं,
तो क्या कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं?
या अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. (गौतम) शेष सब कथन नैरयिकों के समान है।
विशेष-(ये) अपर्याप्तक (कर्मभूमिज गर्भज) मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क या वैमानिक देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! भवनवासी देवों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं यावत् वैमानिक देवों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि (ये) भवनवासी देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या असुरकुमार देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् स्तनितकुमार देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (ये) असुरकुमार देवों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं यावत् स्तनितकुमार देवों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि (वे) वाणव्यन्तर देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या पिशाचों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् गन्धर्वों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) पिशाचों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं यावत् गन्धर्वों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि (वे) ज्योतिष्क देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या चन्द्रविमान के ज्योतिष्क देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् ताराविमान के ज्योतिष्क देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! चन्द्रविमान के ज्योतिष्क देवों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं यावत् ताराविमान के ज्योतिष्कदेवों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि वैमानिक देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या कल्पोपपन्नक वैमानिक देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?
या कल्पातीत वैमानिक देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) कल्पोपपन्नक वैमानिक देवों में से आकर होते हैं,
(किन्तु) कल्पातीत वैमानिक देवों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

---

१. विया. स. २४, उ. १२, सु. ४०-४१
२. विया. स. २४, उ. १२, सु. ४८
३. विया. स. २४, उ. १२, सु. ५०

प. जइ कप्पोवग-वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति,
किं सोहम्मेहिंतो उववज्जंति जाव अच्चुएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! सोहम्मीसाणेहिंतो उववज्जंति,

नो सणंकुमार **जाव** अच्चुएहिंतो उववज्जंति।[1]
—पण्ण. प. ६, सु. ६५० (१-१८)

प्र. यदि कल्पोपपन्नक वैमानिक देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या वे सौधर्म कल्प के देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् अच्युत कल्प के देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) सौधर्म और ईशान कल्प के देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
किन्तु सनत्कुमार से अच्युत कल्प पर्यन्त के देवों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प. सुहुमपुढविकाइया णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति?
किं नेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्ख-मणुस्स-देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति,
तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
नो देवेहिंतो उववज्जंति,
तिरिक्खजोणिय-पज्जत्तापज्जत्तेहिंतो,
असंखेज्जवासाउयवज्जेहिंतो उववज्जंति,

मणुस्सेहिंतो अकम्मभूमग-असंखेज्जवासाउयवज्जेहिंतो उववज्जंति;

वक्कंति उववाओ भाणियव्वो।
—जीवा. पडि. १, सु. १३-(१९)

प्र. भंते ! सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

क्या वे नरक में से, तिर्यञ्च में से, मनुष्य में से या देव में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे नारकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
वे तिर्यञ्चों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
देवों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।
तिर्यञ्चों में से आकर उत्पन्न होते हैं तो असंख्यातवर्षायु वाले तिर्यञ्चों को छोड़कर शेष पर्याप्त अपर्याप्त तिर्यञ्चों में से आकर उत्पन्न होते हैं।
मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं तो अकर्मभूमिज वाले और असंख्यात वर्षों की आयु वालों को छोड़कर शेष मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं।
इसी प्रकार व्युत्क्रान्ति पद के अनुसार उपपात कहना चाहिए।

प. सण्हबायर-पुढविकाइया णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! उववाओ तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवेहिंतो देवेहिं **जाव** सोहम्मिसाणेहिंतो। —जीवा. पडि. १, सु. १४,

दं. १३. एवं आउक्काइया वि।[2]

दं. १४-१५ एवं तेउ[3] वाऊ[4] वि।

णवरं—देववज्जेहिंतो उववज्जंति।

दं. १६. वणस्सइकाइया[5] जहा पुढविकाइया।

दं. १७-१९ बेइंदिय-[6] तेइंदिय-[7] चउरिंदिया[8] एए जहा तेउ वाऊ देववज्जेहिंतो भाणियव्वा।
—पण्ण. प. ६, सु. ६५१-६५४

प. दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

प्र. भंते ! श्लक्ष्ण बादरपृथ्वीकायिक जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इनका उपपात तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य और देवों में से सौधर्म ईशान कल्प के देवों पर्यन्त से होता है।

दं. १३ इसी प्रकार अप्कायिकों की उत्पत्ति के विषय में भी कहना चाहिए।

दं. १४-१५ इसी प्रकार तेजस्कायिकों एवं वायुकायिकों की उत्पत्ति के विषय में कहना चाहिए।

विशेष—ये देवों को छोड़कर उत्पन्न होते हैं।

वनस्पतिकायिकों की उत्पत्ति के विषय में कथन पृथ्वीकायिकों के समान समझना चाहिए।

दं. १७-१९ द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति का कथन तेजस्कायिकों और वायुकायिकों के समान देवों को छोड़कर समझना चाहिए।

प्र. भंते ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

---

१. विया. स. २४, उ. १२, सु. ५२-५३
२. (क) जीवा. पडि. १, सु. १७
(ख) विया. स. २४, उ. १३, सु. २
३. (क) जीवा. पडि. १, सु. २५
(ख) विया. स. २४, उ. १४, सु. १
४. विया. स. २४, उ. १५, सु. १
५. (क) विया. स. २४, उ. १६, सु. १
(ख) विया. स. ११, उ. १, सु. ५
(ग) विया. स. २१, उ. १, सु. ३-४
(घ) विया. स. २१, उ. २-८, सु. १
(ङ) विया. स. २२ (च) विया. स. २३
६. विया. स. २४, उ. १७, सु. १
७. विया. स. २४, उ. १८, सु. १
८. (क) विया. स. २४, उ. १९, सु. १
(ख) वेइंदिय, तेइंदिय चउरिंदियाणं उववाओ तिरियमणुस्सेसु णेरइयं देव असंखेज्ज-वासाउय वज्जेसु।
—जीवा. पडि. १, सु. २८-३०

कि नेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! नेरइएहिंतो वि उववज्जंति जाव देवेहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ नेरइएहिंतो उववज्जंति,
कि रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति जाव अहेसत्तमाएपुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो वि उववज्जंति जाव अहेसत्तमापुढविनेरइएहितो वि उववज्जंति।[1]

प. जइ तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
कि एगिंदिएहिंतो उववज्जंति जाव पंचेंदिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एगिंदिएहिंतो वि उववज्जंति जाव पंचेंदिएहिंतो वि उववज्जंति।[2]

प. जइ एगिंदिएहिंतो उववज्जंति,
कि पुढविकाइएहिंतो उववज्जंति जाव वणस्सइकाइएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एवं जहा पुढविकाइयाणं उववाओ भणिओ तहेव एएसिं पि भाणियव्वो।
णवरं–देवेहिंतो जाव सहस्सारकप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो वि उववज्जंति, नो आणयकप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो जाव नो अच्चुएहिंतो वि उववज्जंति।

–पण्ण. प. ६, सु. ६५५

प. सम्मुच्छिम जलयरा णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?
कि नेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! [illegible] तिरियमणुस्सेहिंतो,
नो देवेहिंतो, नो नेरइएहिंतो,
[illegible] असंखेज्जवासाउयवज्जेहिंतो,

[illegible] असंखेज्जवासाउयवज्जेहिंतो [illegible]
सम्मुच्छिम थलयरा एवं चेव –जीवा. पडि. १, सु. ३५-३६

प. [illegible] भंते ! कओहिंतो [illegible]
[illegible] जाव देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. [illegible] जाव अहेसत्तमा,

[illegible] असंखेज्जवासाउयवज्जेहिंतो,

क्या वे नैरयिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) नैरयिकों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं यावत् देवों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि नैरयिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या
रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं यावत् अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिकों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या–
एकेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) एकेन्द्रिय तिर्यञ्चों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं यावत् पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि (वे) एकेन्द्रिय में से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या
पृथ्वीकायिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् वनस्पतिकायिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इसी प्रकार जैसे पृथ्वीकायिकों का उपपात कहा है वैसे ही पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों का भी उपपात कहना चाहिए।
विशेष–देवों में सहस्रारकल्पोपपन्न वैमानिक देवों पर्यन्त से उत्पन्न होते हैं, किन्तु आनतकल्पोपपन्न वैमानिक देवों में से अच्युतकल्पोपपन्न वैमानिक देवों पर्यन्त से उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भंते ! सम्मूर्च्छिम जलचर जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?
क्या नैरयिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे तिर्यञ्च और मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं।
देवों में से और नारकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।
तिर्यञ्चों में से असंख्यातवर्षायु वाले तिर्यञ्चों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।
मनुष्यों में से अकर्मभूमिज-अन्तर्द्वीपज असंख्यात वर्षायुष्क वाले मनुष्यों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।
सम्मुर्च्छिम स्थलचर के लिए भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

प्र. भंते ! गर्भज जलचर जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?
क्या नैरयिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! नारकों में अधःसप्तम पृथ्वीपर्यन्त के नारकों में से आकर उत्पन्न होते हैं।
तिर्यञ्चों में असंख्यातवर्षायु वाले तिर्यञ्चों को छोड़कर शेष सब तिर्यञ्चों में से आकर उत्पन्न होते हैं।

---

१. विया. स. २४, उ. २०, सु. ११

मणुस्सेसु अकम्मभूमग-अंतरदीवग- असंखेज्जवासाउय-वज्जेहिंतो,
देवेसु जाव सहस्सारेहिंतो।
गब्भवक्कंतिय थलयरा एवं चेव।
—जीवा. पडि. १, सु. ३८-३९

प. खहयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जंति?
किं नेरइएहिंतो उववज्जंति **जाव** देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! असंखेज्जवासाउय-अकम्मभूमग- अंतर-दीवगवज्जेहिंतो उववज्जंति।
—जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. ९७

मणुस्साणं पुच्छा—

प. दं.२१. मणुस्साणं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?
किं नेरइएहिंतो उववज्जंति **जाव** देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! नेरइएहिंतो वि उववज्जंति **जाव** देवेहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ नेरइएहिंतो उववज्जंति,
किं रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति **जाव** अहेसत्तमापुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति **जाव** तमापुढविनेरइएहिंतो वि उववज्जंति,
नो अहेसत्तमापुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति।[1]

प. जइ तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
किं एगिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति **जाव** पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा! **एवं जेहिंतो पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं उववाओ भणियो, तेहिंतो मणुस्साण वि, णिरवसेसो भाणियव्वो।**
णवरं—अहेसत्तमाएपुढविनेरइय-तेउ-वाउकाइएहिंतो ण उववज्जंति।
सव्वदेवेहिंतो वि उववज्जावेयव्वा **जाव** कप्पातीयगवेमाणियसव्वट्ठसिद्धदेवेहिंतो वि उववज्जावेयव्वा।[2]
—पण्ण. प. ६, सु. ६५६

प. सम्मुच्छिमणुस्सा णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! उववाओ नेरइय-देव-तेउ-वाउ-असंखाउवज्जो।[3]
—जीवा. पडि. १, सु. १२८

मनुष्यों में अकर्मभूमिज अंतर्द्वीपज और असंख्यातवर्षायुष्क वालों को छोड़कर शेष मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं।
देवों में सहस्रार पर्यन्त के देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं।
गर्भज स्थलचर के लिए भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

प्र. भंते ! खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?
क्या नैरयिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं **यावत्** देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! असंख्यात वर्षायुष्क अकर्मभूमिज और अन्तर्द्वीपजों को छोड़कर शेष तिर्यञ्च और मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं।

मनुष्य विषयक पृच्छा—

प्र. भंते ! मनुष्य कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?
क्या वे नैरयिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं **यावत्** देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) नैरयिकों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं **यावत्** देवों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि नैरयिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं **यावत्** अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं **यावत्** तमःप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं
(किन्तु) अधःसप्तमपृथ्वी के नैरयिकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं **यावत्** पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! **जिन-जिन से पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों का उपपात कहा गया है, उन-उन से मनुष्यों का भी समग्र उपपात उसी प्रकार कहना चाहिए।**
विशेष—(मनुष्य) अधःसप्तमनरकपृथ्वी के नैरयिक, तेजस्कायिकों और वायुकायिकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।
देवों में सवार्थसिद्ध देवों पर्यन्त के कल्पातीत वैमानिक देवों में से आकर (मनुष्यों की) उत्पत्ति समझनी चाहिए।

प्र. भंते ! सम्मूर्च्छिम मनुष्य कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे नैरयिक, देव, तेजस्कायिक, वायुकायिक और असंख्यात वर्षायुष्क (मनुष्य तिर्यञ्च) को छोड़कर शेष जीवों में से आकर उत्पन्न होते हैं।

---

१. (क) जीवा. पडि. १, सु. ४०
(ख) विया. स. २४, उ. २१, सु. १

२. विया. स. २४, उ. २१, सु. ५, १३, १४

३. सूत्रांक जैन विश्व भारती लाडनूं से

प. गब्भवक्कंतियमणुस्सा णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! उववाओ नेरइएहिं अहेसत्तमवज्जेहिं उववज्जंति,

तिरिक्खजोणिएहिंतो उववाओ असंखेज्जवासाउय-वज्जेहिं उववज्जंति,

मणुएहिं अकम्मभूमग-अंतरदीवग-असंखेज्जवासाउय-वज्जेहिं उववज्जंति,

देवेहिं सव्वेहिं उववज्जंति। *–जीवा. पडि. १, सु. ४१*

प. दं. २२. वाणमंतरदेवा णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?
किं नेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! जेहिंतो असुरकुमाराणं।[1]
उववाओ भणियो तेहिंतो वाणमंतराण वि भाणियव्वो।

प. दं. २३. जोइसियदेवा णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! एवं चेव,
णवरं–सम्मुच्छिम-असंखेज्जवासाउय-खहयर-अंतर-दीवगमणुस्सवज्जेहिंतो उववज्जावेयव्वा।[2]

प. वेमाणिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?
किं णेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! णो णेरइएहिंतो उववज्जंति,
पचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
णो देवेहिंतो उववज्जंति।
एवं चेव सोहम्मीसाणगा भाणियव्वा।[3]

एवं सणंकुमारगा वि।

णवरं–असंखेज्जवासाउय-अकम्मभूमगवज्जेहिंतो उववज्जंति।
एवं जाव सहस्सारकप्पोवग-वेमाणियदेवा भाणियव्वा।

प. आणयदेवा णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?
किं नेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! णो नेरइएहिंतो उववज्जंति,
णो तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
णो देवेहिंतो उववज्जंति।

प. जइ मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
किं सम्मुच्छिम मणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?
गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?

प्र. भंते ! गर्भज मनुष्य कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! अधःसप्तम पृथ्वी को छोड़कर शेष सब पृथ्वियों में से आकर उत्पन्न होते हैं।

असंख्यात वर्षायुष्कों को छोड़कर शेष सब तिर्यञ्चों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

अकर्मभूमिज, अन्तरद्वीपज और असंख्यात वर्षायुष्कों को छोड़कर शेष मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं।

सभी देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. दं. २२ भंते ! वाणव्यन्तर देव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?
क्या वे नैरयिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! जिन-जिन से असुरकुमारों की उत्पत्ति कही है, उन-उन से वाणव्यन्तर देवों की भी उत्पत्ति कहनी चाहिए।

प्र. दं. २३ भंते ! ज्योतिष्क देव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् उपपात समझना चाहिए।
विशेष–ज्योतिष्कों की उत्पत्ति सम्मूर्च्छिम असंख्यातवर्षायुष्क-खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों को तथा अन्तर्द्वीपज मनुष्यों को छोड़कर कहनी चाहिए।

प्र. भंते ! वैमानिक देव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?
क्या (वे) नैरयिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) नैरयिकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते,
(किन्तु) पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं।
देवों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।
इसी प्रकार सौधर्म और ईशान कल्प के वैमानिक देवों (की) उत्पत्ति के विषय में कहना चाहिए।
सनत्कुमार देवों के उपपात के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए।
विशेष–ये असंख्यातवर्षायुष्क अकर्मभूमिकों को छोड़कर उत्पन्न होते हैं।
इसी प्रकार सहस्रारकल्पोपपन्नक वैमानिक देवों का उपपात भी कहना चाहिए।

प्र. भंते ! आनत देव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?
क्या वे नैरयिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) नैरयिकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
देवों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,

प्र. यदि (वे) मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
या गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

---

१. [illegible]
२. [illegible]
३. (क) विया. स. २४, उ. २४, सु. १
(ख) जीवा. पडि. ३, सु. २०१ (ई)

उ. गोयमा ! गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
नो सम्मुच्छिम-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति।

प. जइ गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
किं कम्मभूमगेहिंतो उववज्जंति ?
अकम्मभूमगेहिंतो उववज्जंति ?
अंतरदीवगेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
नो अकम्मभूमगेहिंतो उववज्जंति,
नो अंतरदीवगेहिंतो उववज्जंति।

प. जइ कम्मभूमग - गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
किं संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ?
असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति,
नो असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?
अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग- गब्भ-वक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
णो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ पज्जत्तय - संखेज्जवासाउय - कम्मभूमग - गब्भ - वक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
किं सम्मदिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमगेहिंतो उववज्जंति ?
मिच्छदिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय कम्मभूमगेहिंतो उववज्जंति ?
सम्ममिच्छदिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्म-भूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! सम्मदिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्म-भूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो वि उववज्जंति,
मिच्छदिट्ठि-पज्जत्तएहिंतो वि उववज्जंति,
णो सम्ममिच्छदिट्ठि-पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ सम्मदिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
किं संजयसम्मदिट्ठिहिंतो उववज्जंति ?
असंजयसम्मदिट्ठि-पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गौतम ! गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
किन्तु सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि (वे) गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं
तो क्या कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
किन्तु अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यों में से आकर भी उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि (वे) कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या संख्यात वर्ष की आयु वालों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
या असंख्यात वर्ष की आयु वालों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) संख्यात वर्ष की आयु वालों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
किन्तु असंख्यात वर्ष की आयु वालों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या (वे) पर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं या
अपर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
किन्तु अपर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि (वे) पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या (वे) सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
सम्यग्मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! समयग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
मिथ्यादृष्टि पुर्याप्तकों में से आकर भी उत्पन्न होते हैं,
(किन्तु) सम्यग्मिथ्यादृष्टि पर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि (वे) सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे)
संयत सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?
असंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

संजयासंजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा! तीहिंतो वि उववज्जंति।

एवं जाव अच्चुओ कप्पो।

एवं गेवेज्जगदेवा वि।

णवरं—असंजय-संजयासंजएहिंतो एए पडिसेहेयव्वा।

एवं जहेव गेवेज्जगदेवा तहेव अणुत्तरोववाइया वि।

णवरं—इमं णाणत्तं-संजया चेव।

प. जइ संजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,

किं पमत्त-संजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति?

अपमत्तसंजएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा! अपमत्त-संजएहिंतो उववज्जंति,

नो पमत्त-संजएहिंतो उववज्जंति।

प. जइ अपमत्त-संजएहिंतो उववज्जंति,

किं इड्ढिपत्त-अपमत्त-संजएहिंतो उववज्जंति?

अणिड्ढिपत्त अपमत्त-संजएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा! दोहिंतो वि उववज्जंति।

—*पण्ण. प. ६, सु. ६५७-६६५*

या संयतासंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! वे (आनत देव) तीनों में से ही आकर उत्पन्न होते हैं।

अच्युतकल्प तक के देवों के उपपात का कथन इसी प्रकार करना चाहिए।

इसी प्रकार (नौ) ग्रैवेयक देवों के उपपात के विषय में भी समझना चाहिए।

विशेष—असंयतों और संयतासंयतों से इनकी उत्पत्ति का निषेध करना चाहिए।

इसी प्रकार जैसे ग्रैवेयक देवों की उत्पत्ति के विषय में कहा, वैसे ही पांच अनुत्तरोपपातिक देवों की उत्पत्ति समझनी चाहिए।

विशेष—यह भिन्नता है कि संयत ही अनुत्तरोपपातिक देवों में उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि (वे) संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं

तो क्या वे प्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि पर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं या

अप्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! अप्रमत्तसंयतों में से आकर (वे) उत्पन्न होते हैं।

(किन्तु) प्रमत्तसंयतों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि वे (अनुत्तरोपपातिक देव) अप्रमत्तसंयतों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

तो क्या ऋद्धि प्राप्त-अप्रमत्तसंयतों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

या अऋद्धि प्राप्त-अप्रमत्तसंयतों में आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! (वे) दोनों मे से ही आकर उत्पन्न होते हैं।

१२. तिरिय मिस्सोववण्णग अट्ठ कप्पाणं णामाणि—

अट्ठ कप्पा तिरियमिस्सोववण्णगा पण्णत्ता, तं जहा—

१. सोहम्मे, २. ईसाणे, ३. सणंकुमारे, ४. माहिंदे, ५. बंभलोगे, ६. लंतए, ७. महासुक्के, ८. सहस्सारे।

—*ठाणं. अ. ८, सु. ६४४*

१२. तिर्यक् मिश्रोपपन्नक आठ कल्पों के नाम—

आठ कल्प वैमानिक (देवलोक) तिर्यक् मिश्रोपपन्नक (तिर्यञ्च और मनुष्य दोनों के उत्पन्न होने योग्य) कहे गए हैं, यथा—

१. सौधर्म, २. ईशान, ३. सनत्कुमार, ४. माहेन्द्र, ५. ब्रह्मलोक, ६. लान्तक, ७. महाशुक्र, ८. सहस्रार।

१३. चउवीसदंडएसु एगसमए उववज्जमाणाणं संखा—

प. दं. १. नेरइया णं भंते! एगसमए णं केवइया उववज्जंति?

उ. गोयमा! जहण्णेणं एगो वा, दो वा, तिण्णि वा,

उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति।

एवं जाव अहेसत्तमाए।

प. दं. २. असुरकुमारा णं भंते! एगसमए णं केवइया उववज्जंति?

१३. चौबीस दंडकों में एक समय में उत्पन्न होने वालों की संख्या—

प्र. दं. १. भंते! एक समय में कितने नैरयिक उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! वे जघन्य एक, दो या तीन,

उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. २. भंते! असुरकुमार एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

१. जीवा. पडि. ३, सु. ८६ (२)

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति।

दं. ३-११. एवं जाव थणियकुमारा वि भाणियव्वा।

प. दं. १२. पुढविकाइया णं भंते ! एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! अणुसमयं अविरहियं असंखेज्जा उववज्जंति।

दं. १३-१५. एवं आउ, तेऊ, वाउकाइया।

प. दं. १६. वणस्सइकाइया णं भंते ! एगसमए णं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! सट्ठाणुववायं पडुच्च अणुसमयं अविरहिया अणंता उववज्जंति।

परट्ठाणुववायं पडुच्च अणुसमयं अविरहिया असंखेज्जा उववज्जंति[1]।

प. दं. १७. बेइंदिया णं भंते ! केवइया एगसमए णं उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगो वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति[2]।

दं. १८-२४. एवं तेइंदिया, चउरिंदिया, सम्मुच्छिम-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया,

गब्भवक्कंतिय-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया, सम्मुच्छिम-मणूसा, वाणमंतर, जोइसिय, सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोए-लंतग-सुक्क-सहस्सारकप्पदेवाय एए जहा नेरइया।

गब्भवक्कंतियमणूस-आणय-पाणय-आरण-अच्चुय-गेवेज्जग-अणुत्तरोववाइया य,

एए जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा उववज्जंति[3]।

–पण्ण. प. ६, सु. ६२६-६३५

उ. गौतम ! (वे) जघन्य एक, दो या तीन, उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

दं. ३-११. इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १२. भंते ! पृथ्वीकायिक जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) प्रति समय बिना विरह (अन्तर) के असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

दं. १३-१५. इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवों के विषय में कहना चाहिए।

प्र. दं. १६. भंते ! वनस्पतिकायिक जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! स्वस्थान (वनस्पतिकाय) में उत्पत्ति की अपेक्षा प्रतिसमय बिना विरह के अनन्त (वनस्पति जीव) उत्पन्न होते हैं।

परस्थान में उत्पत्ति की अपेक्षा प्रति समय बिना विरह के अंसख्यात (वनस्पतिजीव) उत्पन्न होते हैं।

प्र. दं. १७. भंते ! द्वीन्द्रिय जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे जघन्य एक, दो या तीन, उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

दं. १८-२४. इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक,

गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक, सम्मूर्च्छिम मनुष्य, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क, सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, शुक्र एवं सहस्रारकल्प के देवों की उत्पत्ति की प्ररूपणा नैरयिकों के समान करनी चाहिए।

गर्भज मनुष्य आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, (नौ) ग्रैवेयक, (पांच) अनुत्तरोपपातिक देव,

जघन्य एक, दो या तीन, उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं।

१४. एगसमए सिद्धाणं सिज्झणा संखा परूवणं–

प. सिद्धाणं भंते ! एगसमएणं केवइया सिज्झंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं अट्ठसयं। *–पण्ण. प. ६, सु. ६३६*

१४. एक समय में सिद्धों के सिद्ध होने की संख्या का प्ररूपण–

प्र. भंते ! एक समय में कितने सिद्ध होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) जघन्य एक, दो या तीन, उत्कृष्ट एक सौ आठ सिद्ध होते हैं।

१५. चउवीसदंडएसु अणंतरोववण्णगत्ताइ परूवणं–

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं अणंतरोववण्णगा परंपरोववण्णगा, अणंतरपरपंर अणुववण्णगा ?

१५. चौबीस दंडकों में अनंतरोपपन्नकादि का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! क्या नैरयिक अनन्तरोपपन्नक हैं, परम्परोपपन्नक हैं या अनन्तरपरम्परानुपपन्नक हैं ?

---

१. (क) प. उप्पलपत्ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?
उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति। *–विया. स. ११, उ. १, सु. ६*

(ख) प. अह णं भंते ! साली-वीही-गोधूम-जव-जवजवाणं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?
उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति। *–विया. स. २१, उ. १, सु. ४*

(ग) विया. स. २१, उ. २-८ (घ) विया. स. २२, उ. १-६

(ङ) विया. स. २३, उ. १-५

२. विया. स. २४, उ. १२, सु. १९

३. जीवा. पडि. ३, सु. २०१ ई.

उ. गोयमा ! नेरइया अणंतरोववण्णगा वि, परंपरोववण्णगा वि, अणंतरपरपंर अणुववण्णगा वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"नेरइया अणंतरोववण्णगा वि, परंपरोववन्नगा वि, अणंतरपरंपर अणुववण्णगा वि ?"

उ. गोयमा ! जे णं नेरइया पढमसमयोववण्णगा ते णं नेरइया अणंतरोववण्णगा,
जे णं नेरइया अपढमसमयोववण्णगा ते णं नेरइया परंपरोववण्णगा,
जे णं नेरइया विग्गहगतिसमावण्णगा, ते णं नेरइया अणंतरपरंपर अणुववण्णगा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"नेरइया अणंतरोववण्णगा वि, परंपरोववण्णगा वि, अणंतरपरंपरअणुववण्णगा वि।"
दं. २-२४ एवं निरंतरं जाव वेमाणिया।

–विया. स. १४, उ. १, सु. ८-९

उ. गौतम ! नैरयिक अनन्तरोपपन्नक भी हैं, परम्परोपपन्नक भी है, अनन्तरपरंपरानुपपन्नक भी हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"नैरयिक अनन्तरोपपन्नक भी हैं, परम्परोपपन्नक भी हैं और अनन्तर परम्परानुपपन्नक भी है ?

उ. गौतम ! जिन नैरयिकों को उत्पन्न हुए अभी प्रथम समय ही हुआ है वे (नैरयिक) अनन्तरोपपन्नक हैं।
प्रथम समय के वाद उत्पन्न होने वाले नैरयिक परम्परोपपन्नक हैं।
जो नैरयिक जीव नरक में उत्पन्न होने के लिए (अभी) विग्रहगति में चल रहे हैं, वे (नैरयिक) अनन्तरपरम्परानुपपन्नक हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"नैरयिक जीव अनंतरोपपन्नक भी हैं, परंपरोपपन्नक भी हैं और अनन्तरपरम्परानुपपन्नक भी हैं।
दं. २-२४. इसी प्रकार निरन्तर वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

१६. चउवीसदंडएसु उववज्जमाणेसु उप्पायस्स चउभंग परूवणं–

प. दं. १ नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववज्जमाणे,
१. किं देसेणं देसं उववज्जइ ?
२. देसेणं सव्वं उववज्जइ ?
३. सव्वेणं देसं उववज्जइ ?
४. सव्वेणं सव्वं उववज्जइ ?

उ. गोयमा ! १. नो देसेणं देसं उववज्जइ,
२. नो देसेणं सव्वं उववज्जइ,
३. नो सव्वेणं देसं उववज्जइ,
४. सव्वेणं सव्वं उववज्जइ।
दं. २-२४ एवं जाव वेमाणिए। –विया. स. १, उ. ७, सु. १

प. दं. १. नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववण्णे–
१. किं देसेण देसं उववण्णे,
२. देसेण सव्वं उववण्णे,
३. सव्वेण देसं उववण्णे,
४. सव्वेण सव्वं उववण्णे ?

उ. गोयमा ! १. नो देसेण देसं उववण्णे,
२. नो देसेण सव्वं उववण्णे,

१६. उत्पद्यमान चौवीस दंडकों में उत्पाद के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! नारकों में उत्पन्न होता हुआ जीव–
१. क्या एक भाग से एक भाग को आश्रित करके उत्पन्न होता है ?
२. एक भाग से सर्व भागों को आश्रित करके उत्पन्न होता है ?
३. सर्वभागों से एक भाग को आश्रित करके उत्पन्न होता है ?
४. सर्वभागों से सर्वभागों को आश्रित करके उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! १. (नारक जीव) एक भाग से एक भाग को आश्रित करके उत्पन्न नहीं होता है,
२. एक भाग से सर्वभागों को आश्रित करके उत्पन्न नहीं होता है।
३. सर्वभागों से एक भाग को आश्रित करके भी उत्पन्न नहीं होता है।
४. सर्वभागों से सर्वभागों को आश्रित करके उत्पन्न होता है।
दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १. भंते ! नारकों में उत्पन्न हुआ नैरयिक–
१. क्या एक भाग से एक भाग को आश्रित करके उत्पन्न हुआ है ?
२. एक भाग से सर्वभागों को आश्रित करके उत्पन्न हुआ है ?
३. सर्वभागों से एक भाग को आश्रित करके उत्पन्न हुआ है ?
४. सर्वभागों से सर्वभागों को आश्रित करके उत्पन्न हुआ है ?

उ. गौतम ! १. एक भाग से एक भाग को आश्रित करके उत्पन्न नहीं हुआ है।
२. एक भाग से सर्वभागों को आश्रित करके उत्पन्न नहीं हुआ है।

३. नो सव्वेण देसं उववण्णे,

४. सव्वेण सव्वं उववण्णे।

दं. २-२४ एवं जाव वेमाणिए।

–विया, स. १, उ. ७, सु. ५ (१)

प. दं. १. नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववज्जमाणे,

१. किं अद्धेण अद्धं उववज्जइ,

२. अद्धेण सव्वं उववज्जइ,

३. सव्वेण अद्धं उववज्जइ,

४. सव्वेण सव्वं उववज्जइ ?

उ. गोयमा !

१. नो अद्धेण अद्धं उववज्जइ,

२. नो अद्धेण सव्वं उववज्जइ,

३. नो सव्वेण अद्धं उववज्जइ,

४. सव्वेण सव्वं उववज्जइ।

दं. २-२४ एवं जाव वेमाणिए।

एवं उववण्णे वि जाव वेमाणिए।

–विया. स. १, उ. ७, सु. ६

१७. चउवीसदंडएसु संतर-निरंतर-उववज्जण परूवणं–

प. दं. १. रयणप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! किं संतरं उववज्जंति, निरतरं उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति।

एवं जाव अहेसत्तमाए संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति।

प. दं. २. असुरकुमारा णं भंते ! देवा किं संतरं उववज्जंति, निरंतरं उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति।

प. दं. ३-११. एवं जाव थणियकुमारा संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति।

प. दं. १२. पुढविकाइया णं भंते ! किं संतरं उववज्जंति, निरंतरं उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! नो संतरं उववज्जंति, निरंतरं उववज्जंति।

दं. १३-१६ एवं जाव वणस्सइकाइया नो संतरं उववज्जंति, निरंतरं उववज्जंति।

प. दं. १७. वेइंदिया णं भंते ! किं संतरं उववज्जंति, निरंतरं उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति।

३. सर्व भागों से एक भाग को आश्रित करके उत्पन्न नहीं हुआ है।

४. सर्वभागों से सर्वभागों को आश्रित करके उत्पन्न हुआ है।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिकों में उत्पन्न होता हुआ नारक जीव–

१. क्या अर्धभाग से अर्धभाग को आश्रित करके उत्पन्न होता है ?

२. अर्धभाग से सर्वभागों को आश्रित करके उत्पन्न होता है ?

३. सर्वभागों से अर्धभाग को आश्रित करके उत्पन्न होता है ?

४. सर्वभाग से सर्वभाग को आश्रित करके उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम !

१. अर्धभाग से अर्धभाग को आश्रित करके उत्पन्न नहीं होता है।

२. अर्धभाग से सर्वभागों को आश्रित करके उत्पन्न नहीं होता है।

३. सर्वभागों से अर्धभाग को आश्रित करके उत्पन्न नहीं होता है।

४. सर्वभागों से सर्वभागों को आश्रित करके उत्पन्न होता है।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार उत्पन्न के लिए भी वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

१७. चौबीस दंडकों में सान्तर निरन्तर उत्पत्ति का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! क्या रत्नप्रभापृथ्वी के नारक सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त के नैरयिक सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. दं. २. भंते ! असुरकुमार देव क्या सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

दं. ३-११. इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त के देव सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. दं. १२. भंते ! पृथ्वीकायिक जीव क्या सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) सान्तर उत्पन्न नहीं होते हैं किन्तु निरन्तर उत्पन्न होते हैं।

दं. १३-१६ इसी प्रकार वनस्पतिकायिक पर्यन्त के जीव सान्तर उत्पन्न नहीं होते हैं किन्तु निरन्तर उत्पन्न होते हैं।

प्र. दं. १७. भंते ! द्वीन्द्रिय जीव क्या सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

दं. १८-२० एवं जाव पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति,

प. दं. २१. मणुस्सा णं भंते ! किं संतरं उववज्जंति, निरंतरं उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति।

दं. २२-२४ एवं वाणमंतरा, जोइसिया, सोहम्म जाव सव्वट्ठसिद्धदेवा य संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति।[1] —पण्ण. प. ६, सु. ६१३-६२२

दं. १८-२० इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक पर्यन्त के जीव सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. दं. २१. भंते ! मनुष्य क्या सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

दं. २२-२४ इसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क तथा सौधर्म कल्प से सर्वार्थसिद्ध पर्यन्त के देव सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

१८. सिद्धाणं संतरं-निरंतरं सिज्झण परूवणं–

प. सिद्धा णं भंते ! किं संतरं सिज्झंति, निरंतरं सिज्झंति ?

उ. गोयमा ! संतरं पि सिज्झंति, निरंतरं पि सिज्झंति। —पण्ण. प. ६, सु. ६२३

१८. सिद्धों के सान्तर-निरन्तर सिद्ध होने का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! सिद्ध क्या सान्तर सिद्ध होते हैं या निरन्तर सिद्ध होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) सान्तर भी सिद्ध होते हैं और निरन्तर भी सिद्ध होते हैं।

१९. चउवीसदंडएसु उववाय विरहकाल परूवणं–

प. दं. १. रयणप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं चउवीसं मुहुत्ता।

प. २. सक्करप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं सत्त राइंदियाइं।

प. ३. वालुयप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एग समयं,
उक्कोसेणं अद्धमासं।

प. ४. पंकप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं मासं।

प. ५. धूमप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं दो मासा।

प. ६. तमापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं चत्तारि मासा।

प. ७. अहेसत्तमापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

१९. चौवीस दंडकों में उपपात विरहकाल का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट चौवीस मुहूर्त उपपात से विरहित कहे गये हैं।

प्र. २. भंते ! शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट सात रात्रि-दिन तक।

प्र. ३. भंते ! वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट अर्धमास तक।

प्र. ४. भंते ! पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट एक मास तक।

प्र. ५. भंते ! धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट दो मास तक।

प्र. ६. भंते ! तमःप्रभापृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट चार मास तक।

प्र. ७. भंते ! अधःसप्तम-पृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

---

१. (क) विया. स. ९, उ. ३२, सु. ३-६
(ख) विया. स. ९, उ. ३२, सु. ४८ में गांगेय के प्रश्नोत्तरों के रूप में है।
(ग) विया. स. १३, उ. ६, सु. २-४

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं छम्मासा।

प. दं. २. असुरकुमाराणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता।

दं. ३-११. एवं

२. णागकुमाराणं, ३. सुवण्णकुमाराणं,
४. विज्जुकुमाराणं, ५. अग्गिकुमाराणं,
६. दीवकुमाराणं, ७. उदहिकुमाराणं,
८. दिसाकुमाराणं, ९. वाउकुमाराणं,
१०. थणियकुमाराण य।

पत्तेयं पत्तेयं जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउवीसं मुहुत्ता।

प. दं. १२. पुढविकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणुसमयंविरहयं उववाएणं पण्णत्तां।

दं. १३-१६. २. आउकाइयाण वि, ३. तेउकाइयाण वि, ४. वाउकाइयाण वि, ५. वणस्सइकाइयाण वि अणुसमयं अविरहिया उववाएणं पण्णत्ता।

प. दं. १७. ६. बेइंदियाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

दं. १८-१९. एवं ७. तेइंदिय, ८. चउरिंदिया।

प. दं. २०. १. सम्मुच्छिम-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

प. २. गब्भवक्कंतिय-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

प. १. दं. २१. सम्मुच्छिम-मणुस्साणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता।

प. २. गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं बारस महुत्ता।

प. दं. २२. वाणमंतराणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट छह मास तक।

प्र. दं. २. भंते ! १. असुरकुमार कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट चौवीस मुहूर्त तक।

दं. ३-११. इसी प्रकार प्रत्येक–

२. नागकुमार, ३. सुवर्णकुमार,
४. विद्युत्कुमार, ५. अग्निकुमार,
६. द्वीपकुमार, ७. उदधिकुमार,
८. दिशाकुमार, ९. वायुकुमार और
१०. स्तनितकुमार देवों का।

प्रत्येक का उपपात विरहकाल जघन्य एक समय का तथा उत्कृष्ट चौवीस मुहूर्त का कहा गया है।

प्र. दं. १२. भंते ! पृथ्वीकायिक जीव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! प्रतिसमय उपपात से अविरहित कहे गए हैं।

दं. १३-१६ इसी प्रकार २. अप्कायिक, ३. तेजस्कायिक, ४. वायुकायिक एवं ५. वनस्पतिकायिक जीव भी प्रतिसमय उपपात से अविरहित कहे गए हैं।

प्र. दं. १७. भंते ! ६. द्वीन्द्रिय जीव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक।

दं. १८-१९ इसी प्रकार ७ त्रीन्द्रिय एवं ८. चतुरिन्द्रिय के उपपात विरहकाल के लिए जानना चाहिए।

प्र. दं. २०. भंते ! सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त।

प्र. २. भंते ! गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक।

प्र. १. दं. २१. भंते ! सम्मूर्च्छिम मनुष्य कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट चौवीस मुहूर्त तक।

प्र. २. भंते ! गर्भज मनुष्य कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक उपपात से विरहित कहे गए हैं।

प्र. दं. २२. भंते ! वाणव्यन्तर देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता।

प. दं. २३. जोइसियाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता।

प. १. दं. २४. सोहम्मकप्पे देवाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता।

प. २. ईसाणेकप्पे देवाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता।

प. ३. सणंकुमारदेवाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं नव राइंदियाइं, वीसा य मुहुत्ता।

प. ४. माहिंददेवाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं बारस राइंदियाइं, दस मुहुत्ता।

प. ५. बंभलोयदेवाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं अद्धतेवीसं राइंदियाइं।

प. ६. लंतगदेवाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं पणयालीसं राइंदियाइं।

प. ७. महासुक्कदेवाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं असीतिराइंदियाइं।

प. ८. सहस्सारदेवाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं राइंदियसयं।

प. ९. आणयदेवाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं संखेज्जा मासा।

प. १०. पाणयदेवाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त तक।

प्र. दं. २३. भंते ! ज्योतिष्क देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त तक।

प्र. १. दं. २४. भंते ! सौधर्मकल्प में देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त तक।

प्र. २. भंते ! ईशानकल्प में देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त तक।

प्र. ३. भंते ! सनत्कुमार देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट बीस मुहूर्त सहित नौ रात्रि दिन तक,

प्र. ४. भंते ! माहेन्द्र देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट दस मुहूर्त सहित बारह रात्रि दिन तक,

प्र. ५. भंते ! ब्रह्मलोक के देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट साढ़े बाईस रात्रिदिन तक।

प्र. ६. भंते ! लान्तक देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट पैंतालीस रात्रिदिन तक।

प्र. ७. भंते ! महाशुक्र देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट अस्सी रात्रिदिन तक।

प्र. ८. भंते ! सहस्रार देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट सौ रात्रिदिन तक।

प्र. ९. भंते ! आनतदेव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट संख्यात मास तक।

प्र. १०. भंते ! प्राणतदेव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे हैं ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं संखेज्जा मासा।

प. ११. आरणदेवाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं संखेज्जा वासा।

प. १२. अच्चुयदेवाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं संखेज्जा वासा।

प. १३. हेट्ठिमगेवेज्जाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं संखेज्जाइं वाससयाइं।

प. १४. मज्झिमगेवेज्जाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं संखेज्जाइं वाससहस्साइं।

प. १५. उवरिमगेवेज्जगदेवाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं संखेज्जाइं वाससयसहस्साइं।

प. १६. विजय-वेजयंत-जयंता पराजियदेवाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं।

प. १७. सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं पलिओवमस्स संखेज्जइभागं।[1]

—पण्ण. प. ६, सु. ५६१-६०५

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट संख्यात मास तक।

प्र. ११. भंते ! आरणदेव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट संख्यात वर्ष।

प्र. १२. भंते ! अच्युतदेव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! वे जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट संख्यात वर्ष ।

प्र. १३. भंते ! अधस्तन ग्रैवेयक देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट संख्यात सौ वर्ष तक।

प्र. १४. भंते ! मध्यम ग्रैवेयक देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्ष तक।

प्र. १५. भंते ! उपरिम ग्रैवेयक देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट संख्यात लाख वर्ष तक।

प्र. १६. भंते ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट असंख्यात काल तक।

प्र. १७. भंते ! सर्वार्थसिद्ध देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट पल्योपम के संख्यातवें भाग तक उपपात से विरहित कहे गए हैं।

२०. चउवीसदंडएसु दिट्ठंत पुरस्सरं गइआइं पडुच्च उप्पत्ति परूवणं–

प. नेरइयाणं भंते ! कहं उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! से जहाणामए पवए पवमाणे अज्झवसाण-निव्वत्तिएणं करणोवाएणं सेयकालं तं ठाणं विप्पजहित्ता पुरिमं ठाणं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, एवामेव ते वि जीवा पवओविव पवमाणा अज्झवसाणनिव्वत्तिएणं करणोवाएणं सेयकालं तं भवं विप्पजहित्ता पुरिमं भवं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति।

प. तेसि णं भंते ! कहं सीहा गई ?
कहं सीहे गइविसए पण्णत्ते ?

२०. चौवीस दंडकों में दृष्टान्त पूर्वक गति आदि की अपेक्षा उत्पत्ति का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिक जीव कैसे उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! जैसे कोई कूदने वाला पुरुष कूदता हुआ अध्यवसायनिर्वर्तित क्रिया साधन द्वारा उस स्थान को छोड़कर भविष्यकाल में अगले स्थान को प्राप्त करता है, वैसे ही जीव भी कूदने वाले की तरह कूदते हुए अध्यवसायनिर्वर्तित क्रिया साधन (कर्मों) द्वारा पूर्व भव को छोड़कर भविष्यकाल में आगामी भव को प्राप्त कर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! उन (नारक) जीवों की शीघ्र गति कैसी है ?
उनकी शीघ्रगति का विषय किस प्रकार का कहा गया है ?

---

१. सम.सम.सु.१५४(८)

उ. गोयमा ! से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे बलवं जुगवं जुवाणे अप्पातंके थिरग्गहत्थे दढपाणि-पाय-पास-पिट्ंठतरोरूपरिणए तल-जमल-जुयल परिघनिभ-बाहू चम्मेट्ठग-दुहण मुट्ठिय समाहय निचिय गत्तकाए उरस्सबलसमण्णागए लंघण-पवण जइण-वायाम-समत्थे छेए दक्खे पत्तट्ठे कुसले मेहावी निउणे निउणसिप्पोवगए आउंटियं वाहं पसारेज्जा, पसारियं वा बाहं आउंटेज्जा,

उ. गौतम ! जैसे कोई बलवान्, युगोत्पन्न, वयप्राप्त, रोगातंक से रहित, स्थिर पंजा वाला, सुदृढ़-हाथ-पैर-पीठ उरू से युक्त, सहोत्पन्न युगल तालवृक्ष और अर्गला के समान दीर्घ सरल और पुष्ट बाहु वाला, चर्मेष्ट, धन-मुष्टिकाओं के प्रहार से जिसका शरीर सुघटित कर दिया हो और आत्मिक बल से युक्त, कूदने-फांदने चलने आदि में समर्थ, चतुर, दक्ष, तत्पर, कुशल, मेधावी, निपुण और शिल्पशास्त्र का ज्ञाता तरुण पुरुष अपनी संकुचित-बांह को शीघ्र फैलाए और फैलाई हुई बांह को संकुचित करे,

वित्थिण्णं वा मुट्ठिं साहरेज्जा, साहरियं वा मुट्ठिं विक्खिरेज्जा, उम्मिसियं वा अच्छिं निमिसेज्जा, निमिसियं वा अच्छिं उम्मिसेज्जा।

भवेयारूवे ?

खुली हुई मुट्ठी बंद करे और बंद मुट्ठी खोले, खुली हुई आँख बंद करे और बंद आंख खोले तो क्या उन जीवों की इस प्रकार की शीघ्र गति और शीघ्र गति का विषय होता है ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

जीवा णं एगसमएण वा, दुसमएण वा, तिसमएण वा विग्गहेणं उववज्जंति,

तेसि णं जीवाणं तहा सीहा गई, तहा सीहे गइविसए पण्णत्ते।[1]

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

वे (नैरयिक) जीव एक समय की, दो समय की या तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होते हैं।

उन नैरयिक जीवों की ऐसी शीघ्र गति है और इस प्रकार का शीघ्र गति का विषय कहा गया है।

प. ते णं भन्ते ! जीवा कहं पर भवियाउयं पकरेंति ?

प्र. भंते ! वे नैरयिक जीव परभव की आयु कैसे बांधते हैं ?

उ. गोयमा ! अज्झवसाणजोगनिव्वत्तिएणं करणोवाएणं, एवं खलु ते जीवा परभवियाउयं पकरेंति।

उ. गौतम ! वे जीव अपने अध्यवसाय योग से तथा कर्मबन्ध के हेतुओं द्वारा परभव की आयु बांधते हैं।

प. तेसि णं भन्ते ! जीवाणं कहं गइ पवत्तइ ?

प्र. भंते ! उन (नैरयिक) जीवों की गति किस कारण से प्रवृत्त होती है ?

उ. गोयमा ! आउक्खएणं, भवक्खएणं, ठिइक्खएणं एवं खलु तेसिं जीवाणं गई पवत्तइ।

उ. गौतम ! आयु क्षय, भव क्षय और स्थिति क्षय होने पर उन जीवों में गति प्रवृत्त होती है।

प. ते णं भन्ते ! जीवा किं आइड्ढीए उववज्जंति, परिड्ढीए उववज्जंति ?

प्र. भंते ! वे (नैरयिक) जीव आत्म ऋद्धि (अपनी शक्ति) से उत्पन्न होते हैं या पर-ऋद्धि (दूसरों की शक्ति) से उत्पन्न होते हैं ?

उ. गोयमा ! आइड्ढीए उववज्जंति, नो परिड्ढीए उववज्जंति।

उ. गौतम ! वे आत्म ऋद्धि से उत्पन्न होते हैं पर-ऋद्धि से उत्पन्न नहीं होते हैं।

प. ते णं भन्ते ! जीवा किं आयकम्मुणा उववज्जंति, परकम्मुणा उववज्जंति ?

प्र. भंते ! वे (नैरयिक) जीव स्वकृत कर्मों से उत्पन्न होते हैं या परकृत कर्मों से उत्पन्न होते हैं ?

उ. गोयमा ! आयकम्मुणा उववज्जंति, नो परकम्मुणा उववज्जंति।

उ. गौतम ! वे स्वकृत कर्मों से उत्पन्न होते हैं परकृत कर्मों से उत्पन्न नहीं होते हैं।

प. ते णं भन्ते ! जीवा किं आयप्पयोगेणं उववज्जंति, परप्पयोगेणं उववज्जंति ?

प्र. भंते ! वे (नैरयिक) जीव अपने प्रयोग से (व्यापार) से उत्पन्न होते हैं या परप्रयोग से उत्पन्न होते हैं ?

उ. गोयमा ! आयप्पयोगेणं उववज्जंति, नो परप्पयोगेणं उववज्जंति।

उ. गौतम ! वे अपने प्रयोग से उत्पन्न होते हैं परप्रयोग से उत्पन्न नहीं होते हैं।

प. दं. २-११. असुरकुमारा णं भन्ते ! कहं उववज्जंति जाव परप्पयोगेणं उववज्जंति ?

प्र. दं. २-११. भंते ! असुरकुमार कैसे उत्पन्न होते हैं यावत् क्या वे परप्रयोग से उत्पन्न होते हैं ?

उ. गोयमा ! जहा नेरइया तहेव निरवसेसं जाव नो परप्पयोगेणं उववज्जंति।

उ. गौतम ! जिस प्रकार नैरयिकों की उत्पत्ति आदि के विषय में कहा उसी प्रकार आत्म प्रयोग से उत्पन्न होते हैं पर-प्रयोग से नहीं यहां तक कहना चाहिए।

दं. १७-२४. एवं एगिंदियवज्जा जाव वेमाणिया।

दं. १७.२४. इसी प्रकार एकेन्द्रियों को छोड़कर वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

---

१. [illegible]

दं. १२-१६. एगिंदिया एवं चेव।

णवरं–चउसमइओ विग्गहो। सेसं तं चेव।
–विया. स. २५, उ. ८, सु. २-१०

दं. १२-१६. एकेन्द्रियों के विषय में भी उसी प्रकार कहना चाहिए।

विशेष–विग्रहगति उत्कृष्ट चार समय की होती है, शेष पूर्ववत् है।

२१. भवसिद्धिय-अभवसिद्धिय चउवीसदंडएसु उप्पायाइ परूवणं–

भवसिद्धिय नेरइया जाव वेमाणिया एवं चेव।
–विया. स. २५, उ. ९, सु. १

अभवसिद्धिय नेरइया जाव वेमाणिया एवं चेव।
–विया. स. २५, उ. १०, सु. १

२१. भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक चौबीस दंडकों में उत्पातादि का प्ररूपण–

भवसिद्धिक नैरयिकों में से वैमानिकों पर्यन्त उत्पत्ति आदि का कथन पूर्ववत् है।

अभवसिद्धिक नैरयिकों में से वैमानिकों पर्यन्त उत्पत्ति आदि का कथन पूर्ववत् है।

२२. सम्मदिट्ठि-मिच्छदिट्ठि चउवीसदंडएसु उप्पायाइ परूवणं–

सम्मदिट्ठि नेरइया जाव वेमाणिया एवं चेव।

णवरं–एगिंदियवज्जं भाणियव्वं।
–विया. स. २५, उ. ११, सु. १-२

मिच्छद्दिट्ठि नेरइया जाव वेमाणिया एवं चेव।
–विया. स. २५, उ. १२, सु. १

२२. सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि चौवीस दंडकों में उत्पातादि का प्ररूपण–

सम्यग्दृष्टि नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त उत्पत्ति आदि का कथन पूर्ववत् है।

विशेष–एकेन्द्रियों को छोड़कर कहना चाहिए।

मिथ्यादृष्टि नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त उत्पत्ति आदि का कथन पूर्ववत् है।

२३. चउवीसदंडएसु एगसमए उव्वट्टमाणाणं संखा–

प. दं. १. नेरइया णं भन्ते ! एगसमएणं केवइया उव्वट्टंति?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उव्वट्टंति।

दं. २-२४. एवं जहा उववाओ भणिओ तहा उव्वट्टणा वि सिद्धवज्जा भाणियव्वा जाव अणुत्तरोववाइया।

णवरं–जोइसिय-वेमाणियाणं चयणेणं अभिलावो कायव्वो।
–पण्ण. प. ६, सु. ६३७-६३९

२३. चौबीस दंडकों में एक समय में उद्वर्तित होने वालों की संख्या–

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिक एक समय में कितने उद्वर्तित होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) जघन्य एक, दो या तीन, उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उद्वर्तित होते (मरते) हैं।

दं. २-२४. इसी प्रकार जैसे उपपात के विषय में कहा उसी प्रकार सिद्धों को छोड़कर अनुत्तरोपपातिक देवों पर्यन्त उद्वर्तना के विषय में भी कहना चाहिए।

विशेष–ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के लिए (उद्वर्तना के स्थान पर) "च्यवन" शब्द का प्रयोग कहना चाहिए।

२४. चउवीसदंडएसु संतरं-निरंतरं उव्वट्टण परूवणं–

प. दं. १. नेरइया णं भन्ते ! किं संतरं उव्वट्टंति, निरंतरं उव्वट्टंति?

उ. गोयमा ! संतरं पि उव्वट्टंति, निरंतरं पि उव्वट्टंति।

दं. २-२४. एवं जहा उववाओ भणिओ तहा उव्वट्टणा वि सिद्धवज्जा भाणियव्वा जाव वेमाणिया।

णवरं–जोइसिय-वेमाणिएसु "चयणं" ति अभिलावो कायव्वो।[1]
–पण्ण. प. ६, सु. ६२४-६२५

२४. चौवीस दंडकों में सान्तर निरन्तर उद्वर्तन का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिक क्या सान्तर उद्वर्तन करते हैं या निरन्तर उद्वर्तन करते हैं?

उ. गौतम ! वे सान्तर भी उद्वर्तन करते हैं और निरन्तर भी उद्वर्तन करते हैं।

दं. २-२४. जैसे उपपात के विषय में कहा वैसे ही सिद्धों को छोड़कर वैमानिकों पर्यन्त उद्वर्तना के विषय में भी कहना चाहिए।

विशेष–ज्योतिष्कों और वैमानिकों के लिए (उद्वर्तना के स्थान पर) "च्यवन" शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

२५. चउवीसदंडएसु उव्वट्टण विरह काल परूवणं–

प. दं. १. रयणप्पभापुढविनेरइयाणं भन्ते ! केवइयं कालं विरहिया उव्वट्टणाए पण्णत्ता?

२५. चौवीस दंडकों में उद्वर्तन के विरह काल का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उद्वर्तना से विरहित कहे गए हैं?

---

१. (क) विया. स. ९, उ. ३२, सु. ७-१३ (ख) विया. स. ९, उ. ३२, सु. ४८ (ग) विया. स. १३, उ. ६, सु. ४

उ. गोयमा ! १. नो अद्धेणं अद्धं उव्वट्टइ,

२. नो अद्धेणं सव्वं उव्वट्टइ,

३. नो सव्वेणं अद्धं उव्वट्टइ,

४. सव्वेणं सव्वं उव्वट्टइ।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिए।

एवं उव्वट्टे वि जाव वेमाणिए। –विया. स. १, उ. ७, सु. ६

उ. गौतम ! १. अर्धभाग से अर्धभाग को आश्रित करके नहीं निकलता है।

२. अर्धभाग से सर्व भाग को आश्रित करके नहीं निकलता है।

३. सर्वभाग से अर्धभाग को आश्रित करके नहीं निकलता है।

४. सर्व भाग से सर्व भाग को आश्रित करके निकलता है।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार उद्वृत्त के लिए भी वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

२७. चउवीसदंडएसु अणंतरनिग्गयत्ताइ परूवणं–

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! किं अणंतरनिग्गया परंपरनिग्गया अणंतरपरंपर अनिग्गया ?

उ. गोयमा ! नेरइया णं अणंतरनिग्गया वि, परंपरनिग्गया वि, अणंतरपरंपर अनिग्गया वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"नेरइयाणं अणंतरनिग्गया वि, परंपर निग्गया वि, अणंतरपरंपर अनिग्गया वि ?

उ. गोयमा ! जे णं नेरइया पढमसमयनिग्गया ते णं नेरइया अणंतरनिग्गया,

जे णं नेरइया अपढमसमयनिग्गया ते णं नेरइया परंपर निग्गया,

जे णं नेरइया विग्गहगइसमावण्णगा ते णं नेरइया अणंतरपरंपर अनिग्गया।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"नेरइयाणं अणंतरनिग्गया वि, परंपरनिग्गया वि, अणंतरपरंपरअनिग्गया वि।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिया।

–विया. स. १४, उ. १, सु. १४-१५

२७. चौबीस दंडकों में अनन्तर निर्गतादि का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! क्या नारक जीव अनन्तर-निर्गत है, परम्पर-निर्गत है या अनन्तरपरम्पर अनिर्गत है ?

उ. गौतम ! नैरयिक अनन्तर निर्गत भी है, परम्पर निर्गत भी है और अनन्तरपरम्पर अनिर्गत भी है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

'नैरयिक अनन्तर निर्गत, परम्पर निर्गत, अनन्तर परम्पर अनिर्गत है ?'

उ. भंते ! जिन नैरयिकों को नरक से निकले एक समय हुआ है वे अनन्तर निर्गत हैं।

जिन नैरयिकों को नरक से निकले अप्रथम (दो तीन) समय हो गए हैं वे परम्पर निर्गत हैं।

जो नैरयिक विग्रहगति प्राप्त हैं वे अनन्तर परम्पर अनिर्गत हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"नैरयिक जीव अनन्तर निर्गत भी है, परम्पर निर्गत भी है और अनन्तर परम्पर अनिर्गत भी है।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

२८. चउवीसदंडगाणं जीवाणं उव्वट्टणाणंतर उप्पाय परूवणं–

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति ? कहिं उववज्जंति ?

किं नेरइएसु उववज्जंति ?

तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति ?

मणुस्सेसु उववज्जंति ?

देवेसु उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! नो नेरइएसु उववज्जंति,

तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति,

मणुस्सेसु उववज्जंति[1],

नो देवेसु उववज्जंति।

प. जइ तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति,

किं एगिंदिय जाव पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति ?

२८. चौबीस दंडकों के जीवों का उद्वर्तनानंतर उत्पाद का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिक जीव अनन्तर (सीधे) उद्वर्तन करके कहां जाते हैं, कहां उत्पन्न होते हैं ?

क्या वे नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं,

तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं,

मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं,

देवों में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होते हैं,

तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं,

मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं,

देवों में उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि (वे) तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं तो क्या एकेन्द्रियों यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं ?

१. जीवा. पडि. १, सु. ३२

किं पज्जत्तग-बादरपुढविकाइएसु उववज्जंति ?
अपज्जत्तय-बादरपुढविकाइएसु उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! पज्जत्तएसु उववज्जंति,
नो अपज्जत्तएसु उववज्जंति।
एवं आउ-वणस्सइएसु वि भाणियव्वं।

पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएसु मणुस्सेसु य जहा नेरइयाणं उव्वट्टणा सम्मुच्छिमवज्जा तहा भाणियव्वा।

दं. ३-११. एवं जाव थणियकुमारा।

प. दं. १२. पुढविकाइया णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति ?
किं नेरइएसु उववज्जंति जाव देवेसु उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! नो नेरइएसु उववज्जंति,
तिरिक्खजोणिय मणुस्सेसु उववज्जंति,[1]
नो देवेसु उववज्जंति।
एवं जहा एएसिं चेव उववाओ तहा उव्वट्टणा वि भाणियव्वा। —पण्ण. प. ६, सु. ६६८-६६९

प. सुहुमपुढविकाइया णं भन्ते ! जीवा अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति ?
किं नेरइएसु उववज्जंति जाव देवेसु उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! नो नेरइएसु उववज्जंति,
तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति,
मणुस्सेसु उववज्जंति,
णो देवेसु उववज्जंति।

प. जइ तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति,
किं एगिंदिएसु उववज्जंति जाव पंचेंदिएसु उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! एगिंदिएसु उववज्जंति जाव पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति,
असंखेज्जवासाउयवज्जेसु पज्जत्तापज्जत्तएसु उववज्जंति,
मणुस्सेसु अकम्मभूमग-अंतरदीवग- असंखेज्जवासाउय-वज्जेसु पज्जत्तापज्जत्तएसु उववज्जंति। —जीवा. पडि. १, सु. १३ (२२)

प. सण्हपुढविकाइया णं भंते ! जीवा अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उव्वज्जंति ?
किं नेरइएसु उववज्जंति जाव देवेसु उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! नो नेरइएसु उववज्जंति,

तो क्या (वे) पर्याप्तक बादर पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तक बादर पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) पर्याप्तकों में उत्पन्न होते हैं,
किन्तु अपर्याप्तकों में उत्पन्न नहीं होते हैं।
इसी प्रकार अप्कायिकों और वनस्पतिकायिकों में भी कहना चाहिए।
पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों और मनुष्यों में जैसे नैरयिकों का उद्वर्तन कहा उसी प्रकार सम्मूर्च्छिम को छोड़कर उद्वर्तना कहनी चाहिए।
दं. ३-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त उद्वर्तना कहनी चाहिए।

प्र. दं. १२. भंते ! पृथ्वीकायिक जीव अनन्तर उद्वर्तन करके कहाँ जाते हैं, कहां उत्पन्न होते हैं ?
क्या वे नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं यावत् देवों में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होते हैं,
तिर्यञ्चयोनिकों और मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।
देवों में भी उत्पन्न नहीं होते हैं।
जैसे इनका उपपात कहा है वैसे ही उद्वर्तना भी कहनी चाहिए।

प्र. भंते ! सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव अनन्तर उद्वर्तन करके कहां जाते हैं, कहां उत्पन्न होते हैं ?
क्या वे नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं यावत् देवों में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होते हैं,
तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं,
मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।
देवों में उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. यदि तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं तो क्या
एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं यावत् पंचेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! एकेन्द्रियों में भी उत्पन्न होते हैं यावत् पंचेन्द्रियों में भी उत्पन्न होते हैं।
असंख्यात वर्षायुष्क को छोड़कर शेष पर्याप्त और अपर्याप्त में उत्पन्न होते हैं।
अकर्मभूमिक, अन्तर्द्वीपज और असंख्यात वर्षायुष्क को छोड़कर शेष पर्याप्त और अपर्याप्त मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! श्लक्ष्ण पृथ्वीकाय के जीव अनन्तर उद्वर्तन करके कहां जाते हैं, कहां उत्पन्न होते हैं ?
क्या वे नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं यावत् देवों में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होते हैं,

1. विया. स. १९, उ. ३, सु. १७

तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति,
मणुस्सेसु उववज्जंति,
नो देवेसु उववज्जंति।
तं चेव जाव असंखेज्जवासाउयवज्जेहिंतो उववज्जंति।

–जीवा. पडि. १, सु. १५

सुहुम आउकाइया जहेव सुहुम पुढविकाइया।

–जीवा. पडि. १, सु. १६

दं. १३-१९. एवं आउ, वणस्सइ, बेइंदिय, तेइंदिय, चउरिंदिया वि।

एवं तेऊ, वाऊ वि।

णवरं–मणुस्सवज्जेसु उववज्जंति।

प. दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति?
किं नेरइएसु उववज्जंति जाव देवेसु उववज्जंति?

उ. गोयमा ! नेरइएसु उववज्जंति जाव देवेसु उववज्जंति।

प. जइ णेरइएसु उववज्जंति,
किं रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जंति जाव अहेसत्तमापुढविनेरइएसु उववज्जंति?

उ. गोयमा ! रयणप्पभापुढविनेरइएसु वि उववज्जंति जाव अहेसत्तमापुढविनेरइएसु वि उववज्जंति?

प. जइ तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति,
किं एगिंदिएसु जाव पंचेंदिएसु उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एगिंदिएसु वि उववज्जंति जाव पंचेंदिएसु वि उववज्जंति।
एवं जहा एएसिं चेव उववाओ उव्वट्टणा वि तहेव भाणियव्वा।
णवरं–असंखेज्जवासाउएसु वि एए उववज्जंति।

प. जइ मणुस्सेसु उववज्जंति,
किं सम्मुच्छिम-मणुस्सेसु उववज्जंति?
गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेसु उववज्जंति?

उ. गोयमा ! दोसु वि उववज्जंति।
एवं जहा उववाओ तहेव उव्वट्टणा वि भाणियव्वा।

णवरं–अकम्मभूमग-अंतरदीवग-असंखेज्जवासाउएसु वि एए उववज्जंति त्ति भाणियव्वं।

प. जइ देवेसु उववज्जंति,
किं भवणवईसु उववज्जंति जाव वेमाणिएसु उववज्जंति?

उ. गोयमा ! सव्वेसु चेव उववज्जंति।

तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं,
मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं,
देवों में उत्पन्न नहीं होते हैं।
सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों के समान असंख्यात वर्षायुष्कों को छोड़कर तिर्यञ्चों और मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।

सूक्ष्म अप्कायिकों का कथन सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों के समान जानना चाहिए।

दं. १३-१९. इसी प्रकार अप्कायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियों की भी उद्वर्तना कहनी चाहिए।

इसी प्रकार तेजस्कायिक और वायुकायिक की भी उद्वर्तना कहनी चाहिए।

विशेष–(वे) मनुष्यों को छोड़कर उत्पन्न होते हैं।

प्र. दं. २०. भंते ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक अनन्तर उद्वर्तना करके कहां जाते हैं, कहां उत्पन्न होते हैं?
क्या (वे) नरैयिकों में उत्पन्न होते हैं यावत् देवों में उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) नैरयिकों में भी उत्पन्न होते हैं यावत् देवों में भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि (वे) नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं तो क्या
रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं यावत् अध:सप्तमपृथ्वी के नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों में भी उत्पन्न होते हैं यावत् अध:सप्तम पृथ्वी के नैरयिकों में भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि (वे) तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं तो क्या
एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं यावत् पंचेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) एकेन्द्रियों में भी उत्पन्न होते हैं यावत् पंचेन्द्रियों में भी उत्पन्न होते हैं।
इसी प्रकार जैसे इनका उपपात कहा है उसी प्रकार इनकी उद्वर्तना भी कहनी चाहिए।
विशेष–ये असंख्यातवर्षों की आयु वालों में भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि (वे) मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं तो क्या,
सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं, या
गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) दोनों में ही उत्पन्न होते हैं।
इसी प्रकार जैसे इनका उपपात कहा, वैसे ही इनकी उद्वर्तना भी कहनी चाहिए।

विशेष–अकर्मभूमिज, अन्तर्द्वीपज और असंख्यातवर्षायुष्क मनुष्यों में भी ये उत्पन्न होते हैं यह कहना चाहिए।

प्र. यदि (वे) देवों में उत्पन्न होते हैं तो क्या,
भवनपति देवों में उत्पन्न होते हैं यावत् वैमानिक देवों में उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) सभी देवों में उत्पन्न होते हैं।

प. जइ भवणवइसु उववज्जंति,
किं असुरकुमारेसु उववज्जंति जाव थणियकुमारेसु उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! सव्वेसु चेव उववज्जंति।
एवं वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु निरंतरं उववज्जंति जाव सहस्सारो कप्पो त्ति[1]। —पण्ण. प. ६, सु. ६७०-६७२

प. (सम्मुच्छिम जलयरा णं भंते) अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति ?

उ. (गोयमा!) नेरइएसु वि, तिरिक्खजोणिएसु वि, मणुस्सेसु वि, देवेसु वि उववज्जंति।
नेरइएसु रयणप्पहाए पुढवीए उववज्जंति सेसेसु पडिसेहो।
तिरिएसु सव्वेसु उववज्जंति संखेज्जवासाउएसु वि, असंखेज्जवासाउएसु वि, चउप्पएसु वि, पक्खीसु वि।
मणुस्सेसु सव्वेसु कम्मभूमिएसु,
नो अकम्मभूमिएसु,
अंतरदीवएसु वि, संखेज्जवासाउएसु वि, असंखेज्ज-वासाउएसु वि, पज्जत्तएसु वि, अपज्जत्तएसु वि।
देवेसु जाव वाणतमंतरा[2]।
थलयराणं खहयराण वि एवं चेव। —जीवा. पडि. १, सु. ३५

प. गब्भवक्कंतिय भुयगपरिसप्प थलयर पंचिंदयतिरिक्ख-जोणिया णं भन्ते ! उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति ?

उ. गोयमा ! उव्वट्टित्ता दोच्चं पुढविं गच्छंति,
उरगपरिसप्प थलयर पंचिंदियतिरिक्खजोणिया उव्वट्टित्ता पंचमिं पुढविं गच्छंति।
चउप्पय थलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिया उव्वट्टित्ता चउत्थिं पुढविं गच्छंति।
जलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिया उव्वट्टित्ता अहे सत्तमं पुढविं गच्छंति।
खहयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिया उव्वट्टित्ता तच्चं पुढविं गच्छंति। —जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. ९७(२)

प. दं. २१. मणुस्सा णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति ?
किं नेरइएसु उववज्जंति जाव देवेसु उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! नेरइएसु वि उववज्जंति जाव देवेसु वि उववज्जंति। —पण्ण. प. ६, सु. ६७३/१

प. (सम्मुच्छिम-मणुस्सा णं भंते !) अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति ?

प्र. यदि (वे) भवनपति देवों में उत्पन्न होते हैं तो क्या असुरकुमारों में उत्पन्न होते हैं यावत् स्तनितकुमारों में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) सभी (भवनपतियों) में उत्पन्न होते हैं।
इसी प्रकार वाणव्यन्तरों, ज्योतिष्कों और सहस्रारकल्प पर्यन्त के वैमानिक देवों में निरन्तर उत्पन्न होते हैं।

प्र. (भन्ते ! सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक) अनन्तर उद्वर्तन करके कहां जाते हैं, कहां उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! नैरयिकों, तिर्यञ्चयोनिकों, मनुष्यों और देवों में उत्पन्न होते हैं।
नैरयिकों में रत्नप्रभा पृथ्वी तक उत्पन्न होते हैं, शेष पृथ्वियों का निषेध करना चाहिए।
तिर्यञ्चों में उत्पन्न हों तो संख्यात वर्षायुष्क, असंख्यात वर्षायुष्क, चतुष्पद और पक्षियों के सभी प्रकारों में उत्पन्न होते हैं।
मनुष्यों में उत्पन्न होने पर सभी कर्मभूमिजों के मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।
किन्तु अकर्मभूमिजों में उत्पन्न नहीं होते हैं।
संख्यात वर्षायुष्क, असंख्यात वर्षायुष्क पर्याप्त और अपर्याप्त अन्तर्द्वीपजों में उत्पन्न होते हैं।
देवों में वाणव्यन्तर पर्यन्त उत्पन्न होते हैं।
स्थलचर और खेचर के लिए भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक मरकर कहां उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे मरकर दूसरी पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।
उरग परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक मरकर पांचवीं पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं
चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक मरकर चौथी पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।
जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक मरकर अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।
खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक मरकर तीसरी पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।

प्र. दं. २१. भन्ते ! मनुष्य अनन्तर उद्वर्तन करके कहां जाते हैं, कहां उत्पन्न होते हैं ?
क्या वे नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं यावत् देवों में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे) नैरयिकों में भी उत्पन्न होते हैं यावत् देवों में भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. (भंते ! सम्मूर्च्छिम मनुष्य) अनन्तर उद्वर्तन करके कहां जाते हैं, कहां उत्पन्न होते हैं ?

---

१. जीवा पडि. १, सु. ३८-४० यहाँ पर गर्भज जलचर थलचर खेचर की अपेक्षा यह वर्णन है।
२. जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. ९७

उ. गोयमा ! (णेरइय-देव असंखाउयवज्जेसु[1])

–जीवा. पडि. १, सु. ४१

उ. गौतम ! नैरयिक देव और असंख्यातवर्षायुष्कों को छोड़कर शेष (मनुष्य तिर्यञ्चों) में उत्पन्न होते हैं।

प. (गब्भवक्कंतिय-मणुस्सा णं भंते !) अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति ?

प्र. (भंते ! गर्भज मनुष्य) अनन्तर उद्वर्तन करके कहां जाते हैं, कहां उत्पन्न होते हैं ?

उ. (गोयमा !) उव्वट्टित्ता नेरइएसु जाव अणुत्तरोववाइएसु।

अत्थेगइए सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति।

–जीवा. पडि. १, सु. ४१

उ. (गौतम !) वे उद्वर्तन करके नैरयिकों से अनुत्तरोपपातिक देवों पर्यन्त उत्पन्न होते हैं,

कोई सिद्ध होते हैं यावत् सर्व दुःखों का अन्त करते हैं।

एवं सव्वेसु ठाणेसु उववज्जंति, न कहिंचि पडिसेहो कायव्वो जाव सव्वट्ठसिद्धदेवेसु वि उववज्जंति,

अत्थेगइया सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति। –पण्ण. प. ६, सु. ६७३/२

इसी प्रकार सभी स्थानों में उत्पन्न होते हैं, सर्वार्थसिद्ध देवों पर्यन्त कहीं भी इनकी उत्पत्ति का निषेध नहीं करना चाहिए।

कई मनुष्य सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं और सर्वदुःखों का अन्त करते हैं।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया सोहम्मीसाणा य जहा असुरकुमारा।

णवरं–जोइसियाणं वेमाणियाण य चयंतीति अभिलावो कायव्वो।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म-ईशान वैमानिक देवों की उद्वर्तना असुरकुमारों के समान कहनी चाहिए।

विशेष–ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के लिए (उद्वर्तना के स्थान पर) "च्यवन" शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

प. सणंकुमारदेवा णं भंते ! अणंतरं चइत्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति ?

किं णेरइएसु उववज्जंति जाव वेमाणिएसु देवेसु उववज्जंति ?

प्र. भंते ! सनत्कुमार देव अनन्तर च्यवन करके कहां जाते हैं और कहां उत्पन्न होते हैं ?

क्या नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं यावत् वैमानिक देवों में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गोयमा ! जहा असुरकुमारा।

णवरं–एगिंदिएसु न उववज्जंति।

एवं जाव सहस्सारगदेवा।

आणय जाव अणुत्तरोववाइया देवा एवं चेव।

णवरं–णो तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति,

मणूसेसु पज्जत्तगं संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग गब्भवक्कंतियमणूसेसु उववज्जंति[2]।

–पण्ण. प. ६, सु. ६७४-६७६

उ. गौतम ! असुरकुमारों के समान इनकी उत्पत्ति कहनी चाहिए।

विशेष–(ये) एकेन्द्रियों में उत्पन्न नहीं होते हैं।

इसी प्रकार सहस्रार देवों पर्यन्त कथन करना चाहिए।

आनत देवों से अनुत्तरोपपातिक देवों पर्यन्त की (च्यवनानन्तर) उत्पत्ति इसी प्रकार समझनी चाहिए।

विशेष–(ये देव) तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न नहीं होते हैं।

मनुष्यों में भी पर्याप्त संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।

२९. चउवीसदंडएसु णेरइयाणं णेरइयाइसु उववज्जणं अणेरइयाइण य उव्वट्टण परूवणं–

प. दं. १. णेरइए णं भंते ! णेरइएसु उववज्जइ, अणेरइएसु उववज्जइ ?

उ. गोयमा ! णेरइए णेरइएसु उववज्जइ, णो अणेरइए णेरइएसु उववज्जइ।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियाणं।

प. दं. १. णेरइए णं भंते ! णेरइएहिंतो उव्वट्टइ, अणेरइए नेरइएहिंतो उव्वट्टइ ?

उ. गोयमा ! अणेरइए णेरइएहिंतो उव्वट्टइ, णो णेरइए णेरइएहिंतो उव्वट्टइ।

२९. चौबीस दंडकों में नैरयिकों का नैरयिकों में उत्पाद और अनैरयिकों के उद्वर्तन का परूपण–

प्र. दं. १. भंते ! नारक नारकों में उत्पन्न होता है, या अनारक नारकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! नारक नारकों में उत्पन्न होता है, (किन्तु) अनारक नारकों में उत्पन्न नहीं होता है।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त उत्पत्ति का कथन करना चाहिए।

प्र. दं. १. भन्ते ! नारक नारकों से उद्वर्तन करता है, या अनारक नारकों से उद्वर्तन करता है ?

उ. गौतम ! अनारक नारकों से उद्वर्तन करता है, (किन्तु) नारक नारकों से उद्वर्तन नहीं करता है।

१. जैन विश्व भारती लाडनूं के अनुसार

२. जीवा. पडि. ३, सु. २०४

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिए।

णवरं–जोइसिय-वेमाणिएसु चयणं ति अभिलावो कायव्वो[1]। –पण्ण. प. १७, उ. ३, सु. ११९९-१२००

३०. चंद-सूरियाणं चवणोववाय परूवणं–

प. ता कहं ते चवणोववाया आहिए त्ति वएज्जा ?

उ. तत्थ खलु इमाओ पणवीसं पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–तत्थ एगे एवमाहंसु–

१. ता अणुसमयमेव चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु–

२. ता अणुमुहुत्तमेव चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु–

३. ता अणुराइंदियमेव चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु–

४. ता अणुपक्खमेव चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु–

५. ता अणुमासमेव चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु–

६. ता अणु-उउमेव चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु–

७. ता अणु अयणमेव, चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु–

८. ता अणु संवच्छरमेव चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु–

९. ता अणुजुगमेव चंदमि-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु–

१०. ता अणुवाससयमेव चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु–

११. ता अणुवाससहस्समेव चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु–

१२. ता अणुवाससयसहस्समेव चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु–

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त उद्वर्तन का कथन करना चाहिए।

विशेष–ज्योतिष्कों और वैमानिकों में (उद्वर्तन के स्थान पर) "च्यवन" शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

३०. चन्द्र सूर्य का च्यवन और उपपात का प्ररूपण–

प्र. चंद्र और सूर्य का च्यवन (मरण) और उपपात कैसा है ? कहें,

उ. इस सम्बन्ध में ये पच्चीस मान्यताएँ कही गई हैं, यथा–
उनमें से एक मान्यता वाले इस प्रकार कहते हैं–

१. चंद्र और सूर्य प्रतिसमय अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं–

२. चंद्र और सूर्य प्रतिमुहूर्त अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं–

३. चन्द्र और सूर्य अहोरात्र में अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं–

४. चन्द्र और सूर्य प्रत्येक पक्ष में अन्य च्यवन करते हैं और उत्पन्न होते हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं–

५. चन्द्र और सूर्य प्रत्येक मास में अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं–

६. चन्द्र और सूर्य प्रत्येक ऋतु में अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं–

७. चन्द्र और सूर्य प्रत्येक अयन में अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं–

८. चन्द्र और सूर्य प्रत्येक संवत्सर में अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं–

९. चन्द्र और सूर्य प्रत्येक युग में अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं–

१०. चन्द्र और सूर्य प्रत्येक सौ वर्ष में अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं–

११. चन्द्र और सूर्य प्रत्येक हजार वर्ष में अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं–

१२. चंद्र और सूर्य प्रत्येक लाख वर्ष में अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं–

---

1. विया. स. ४, उ. ९, सु. १

१३. ता अणुपुव्वमेव चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु-

१४. ता अणुपुव्वसयमेव चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु-

१५. ता अणुपुव्वसहस्समेव चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु-

१६. ता अणुपुव्वसयसहस्समेव चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु-

१७. ता अणुपलिओवममेव चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु-

१८. ता अणुपलिओवमसयमेव चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु-

१९. ता अणुपलिओवमसहस्समेव चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु-

२०. ता अणुपलिओवमसयसहस्समेव चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु-

२१. ता अणुसागरोवममेव चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु-

२२. ता अणुसागरोवमसयमेव चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु-

२३. ता अणुसागरोवमसहस्समेव चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु-

२४. ता अणुसागरोवमसयसहस्समेव चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

एगे पुण एवमाहंसु-

२५. ता अणुओसप्पिणी, उस्सप्पिणीमेव चंदिम-सूरिया अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति, एगे एवमाहंसु,

वयं पुण एवं वयामो-

ता चंदिम-सूरियाणं देवा महिड्ढिया, महज्जुईया, महब्बला, महायसा, महासोक्खा महाणुभावा।

वरवत्थधरा, वरमल्लधरा, वरगंधधरा, वराभरणधरा,

१३. चंद्र और सूर्य प्रत्येक पूर्व में अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं-

१४. चंद्र और सूर्य प्रत्येक सौ पूर्व में अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं-

१५. चंद्र और सूर्य प्रत्येक हजार पूर्व में अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं-

१६. चंद्र और सूर्य प्रत्येक लाख पूर्व में अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं-

१७. चंद्र और सूर्य प्रत्येक पल्योपम में अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं-

१८. चंद्र और सूर्य प्रत्येक सौ पल्योपम में अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं-

१९. चंद्र और सूर्य प्रत्येक हजार पल्योपम में अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं-

२०. चंद्र और सूर्य प्रत्येक लाख पल्योपम में अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं-

२१. चंद्र और सूर्य प्रत्येक सागरोपम में अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं-

२२. चंद्र और सूर्य प्रत्येक सौ सागरोपम में अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं-

२३. चंद्र और सूर्य प्रत्येक हजार सागरोपम में अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं ।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं-

२४. चंद्र और सूर्य प्रत्येक लाख सागरोपम में अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

एक मान्यता वाले फिर इस प्रकार कहते हैं-

२५. चंद्र और सूर्य प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

हम फिर इस प्रकार कहते हैं-

वे चंद्र और सूर्य देव महर्धिक हैं, महान् द्युति वाले हैं, महान् बल वाले हैं, महान् यश वाले हैं, महान् सुख वाले हैं और महाप्रभावशाली हैं।

श्रेष्ठ वस्त्र धारण करने वाले, श्रेष्ठ मालाएँ धारण करने वाले, श्रेष्ठ गंध धारण करने वाले, श्रेष्ठ आभरण धारण करने वाले हैं।

अव्वोछित्तिणयट्ठयाए काले अण्णे चयंति, अण्णे उववज्जंति,

चवणोववाया आहिए त्ति वएज्जा। –*सूरिय. पा. १७, सु. ८८*

अव्युच्छित्ति नय द्रव्यास्तिकनय से वे आयु का क्षय होने पर अन्य च्यवन करते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

एक प्रकार से चन्द्र और सूर्य का च्यवन और उपपात कहा है।

३१. रयणप्पभापुढवीए संखेज्जवित्थडेसु निरयावासेसु उववन्नगाणं नारगाणं एगूणचत्तालाणं पण्हाणं समाहाणं–

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए केवइया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! तीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

प. ते णं भंते ! किं संखेज्जवित्थडा, असंखेज्जवित्थडा?

उ. गोयमा ! संखेज्जवित्थडा वि, असंखेज्जवित्थडा वि।

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नेरइएसु एगसमएणं–

१. केवइया नेरइया उववज्जंति?
२. केवइया काउलेस्सा उववज्जंति?
३. केवइया कण्हपक्खिया उववज्जंति?
४. केवइया सुक्कपक्खिया उववज्जंति?
५. केवइया सन्नी उववज्जंति?
६. केवइया असन्नी उववज्जंति?
७. केवइया भवसिद्धिया उववज्जंति?
८. केवइया अभवसिद्धिया उववज्जंति?
९. केवइया आभिणिबोहियनाणी उववज्जंति?
१०. केवइया सुयनाणी उववज्जंति?
११. केवइया ओहिनाणी उववज्जंति?
१२. केवइया मइअन्नाणी उववज्जंति?
१३. केवइया सुयअन्नाणी उववज्जंति?
१४. केवइया विभंगनाणी उववज्जंति?
१५. केवइया चक्खुदंसणी उववज्जंति?
१६. केवइया अचक्खुदंसणी उववज्जंति?
१७. केवइया ओहिदंसणी उववज्जंति?
१८. केवइया आहारसण्णोवउत्ता उववज्जंति?
१९. केवइया भयसण्णोवउत्ता उववज्जंति?
२०. केवइया मेहुणसण्णोवउत्ता उववज्जंति?
२१. केवइया परिग्गहसण्णोवउत्ता उववज्जंति?
२२. केवइया इत्थिवेदगा उववज्जंति?
२३. केवइया पुरिसवेदगा उववज्जंति?
२४. केवइया नपुंसगवेदगा उववज्जंति?
२५. केवइया कोहकसाई उववज्जंति?
२६-२८. जाव केवइया लोहकसाई उववज्जंति?
२९. केवइया सोइंदियोवउत्ता उववज्जंति?

३१. रत्नप्रभा पृथ्वी के संख्यात विस्तृत नरकावासों में उत्पन्न होन वाले नारकों के ३९ प्रश्नों का समाधान–

प्र. भन्ते ! इस रत्नप्रभापृथ्वी में कितने लाख नरकावास कहे गए हैं?

उ. गौतम ! (इसमें) तीस लाख नारकावास कहे गए हैं।

प्र. भन्ते ! वे नरकावास संख्यात योजन विस्तार वाले हैं या असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं?

उ. गौतम ! वे संख्यात योजन विस्तार वाले भी हैं और असंख्यात योजन विस्तार वाले भी हैं।

प्र. भन्ते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावासों में से संख्यात विस्तृत नरकों में एक समय में–

१. कितने नैरयिक जीव उत्पन्न होते हैं?
२. कितने कापोतलेश्या वाले नैरयिक जीव उत्पन्न होते हैं?
३. कितने कृष्णपाक्षिक जीव उत्पन्न होते हैं?
४. कितने शुक्लपाक्षिक जीव उत्पन्न होते हैं?
५. कितने संज्ञी जीव उत्पन्न होते हैं
६. कितने असंज्ञी जीव उत्पन्न होते हैं?
७. कितने भवसिद्धिक जीव उत्पन्न होते हैं?
८. कितने अभवसिद्धिक जीव उत्पन्न होते हैं?
९. कितने आभिनिबोधिक ज्ञानी उत्पन्न होते हैं?
१०. कितने श्रुतज्ञानी उत्पन्न होते हैं?
११. कितने अवधिज्ञानी उत्पन्न होते हैं?
१२. कितने मति अज्ञानी उत्पन्न होते हैं?
१३. कितने श्रुत अज्ञानी उत्पन्न होते हैं?
१४. कितने विभंगज्ञानी उत्पन्न होते हैं?
१५. कितने चक्षुदर्शनी उत्पन्न होते हैं?
१६. कितने अचक्षुदर्शनी उत्पन्न होते हैं?
१७. कितने अवधिदर्शनी उत्पन्न होते हैं?
१८. कितने आहार-संज्ञोपयोगयुक्त जीव उत्पन्न होते हैं?
१९. कितने भय-संज्ञोपयोगयुक्त जीव उत्पन्न होते हैं?
२०. कितने मैथुन-संज्ञोपयोगयुक्त जीव उत्पन्न होते हैं?
२१. कितने परिग्रह-संज्ञोपयोगयुक्त जीव उत्पन्न होते हैं?
२२. कितने स्त्रीवेदक जीव उत्पन्न होते हैं?
२३. कितने पुरुषवेदक जीव उत्पन्न होते हैं?
२४. कितने नपुंसकवेदक जीव उत्पन्न होते हैं?
२५. कितने क्रोधकषायी जीव उत्पन्न होते हैं?
२६-२८. यावत् कितने लोभकषायी जीव उत्पन्न होते हैं?
२९. कितने श्रोत्रेन्द्रिय उपयोगयुक्त उत्पन्न होते हैं?

३०-३३. यावत् कितने स्पर्शेन्द्रिय उपयोगयुक्त उत्पन्न होते हैं?

३४. कितने नो इन्द्रियोपयोग (मन) जीव उत्पन्न होते हैं?

३५. कितने मनोयोगी जीव उत्पन्न होते हैं?

३६. कितने वचनयोगी जीव उत्पन्न होते हैं?

३७. कितने काययोगी जीव उत्पन्न होते हैं?

३८. कितने साकारोपयोग युक्त जीव उत्पन्न होते हैं?

३९. कितने अनाकारोपयोग युक्त जीव उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नारकावासों में से संख्यात विस्तृत नरकों में एक समय में–

१. जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट संख्यात नैरयिक उत्पन्न होते हैं।

२. जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट संख्यात कापोतलेश्यी जीव उत्पन्न होते हैं।

३. जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट संख्यात कृष्णपाक्षिक उत्पन्न होते हैं।

४. इसी प्रकार शुक्ल पाक्षिक जीव उत्पन्न होते हैं।

५. इसी प्रकार संज्ञी जीव उत्पन्न होते हैं।

६. इसी प्रकार असंज्ञी जीव उत्पन्न होते हैं।

७. इसी प्रकार भवसिद्धिक जीव उत्पन्न होते हैं।

८. इसी प्रकार अभवसिद्धिक जीव उत्पन्न होते हैं।

९. आभिनिबोधिक ज्ञानी जीव उत्पन्न होते हैं।

१०. श्रुतज्ञानी जीव उत्पन्न होते हैं।

११. अवधिज्ञानी जीव उत्पन्न होते हैं।

१२. मति-अज्ञानी जीव उत्पन्न होते हैं।

१३. श्रुत-अज्ञानी जीव उत्पन्न होते हैं।

१४. विभंगज्ञानी जीव उत्पन्न होते हैं।

१५. चक्षुदर्शनी जीव उत्पन्न नहीं होते हैं।

१६. अचक्षुदर्शनी जीव जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं।

१७. इसी प्रकार अवधिदर्शनी के लिए जानना चाहिए।

[illegible]. इसी प्रकार आहारसंज्ञोपयुक्त से परिग्रह-संज्ञोपयुक्त पर्यन्त के लिए जानना चाहिए।

[illegible]. स्त्रीवेदी जीव उत्पन्न नहीं होते हैं।

[illegible]. पुरुषवेदी जीव भी उत्पन्न नहीं होते हैं।

[illegible]. नपुंसकवेदी जीव जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

३५. मणजोगी न उववज्जंति।

३६. एवं वइजोगी वि।

३७. जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा–
उक्कोसेणं संखेज्जा कायजोगी उववज्जंति।

३८-३९. एवं सागारोवउत्ता वि अणागारोवउत्ता वि।

–विया. स. १३, उ. १, सु. ४-६

३२. रयणप्पभापुढवीए संखेज्जवित्थडेसु निरयावासेसु उव्वट्टगाणं नारगाणं एगूणचत्तालाणं पण्हाणं समाहाणं–

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नेरइएसु एगसमएणं,

१. केवइया नेरइया उव्वट्टंति?

२. केवइया काउलेस्सा उव्वट्टंति?

३-३९. जाव केवइया अणागारोवउत्ता उव्वट्टंति?

उ. गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नेरइएसु एगसमएणं–

१. जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा–
उक्कोसेणं संखेज्जा नेरइया उव्वट्टंति।

२. जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा–
उक्कोसेणं संखेज्जा काउलेस्सा उव्वट्टंति।

३-५. एवं जाव सण्णी

६. असण्णी न उव्वट्टंति।

७. जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा–
उक्कोसेणं संखेज्जा भवसिद्धिया उव्वट्टंति।

८-१३. एवं जाव सुयअन्नाणी।

१४. विभंगनाणी न उव्वट्टंति।

१५. चक्खुदंसणी न उव्वट्टंति।

१६. जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा–
उक्कोसेणं संखेज्जा अचक्खुदंसणी उव्वट्टंति।

१७-२८. एवं जाव लोभकसाई।

२९. सोइंदियोवउत्ता न उव्वट्टंति।

३०-३३. एवं जाव फासिंदियोवउत्ता न उव्वट्टंति।

३४. जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा–
उक्कोसेणं संखेज्जा नोइंदियोवउत्ता उव्वट्टंति।

३५. मणजोगी न उव्वट्टंति।

३६. एवं वइजोगी वि।

३७. जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा–
उक्कोसेणं संखेज्जा कायजोगी उव्वट्टंति।

३५. मनोयोगी जीव वहाँ उत्पन्न नहीं होते हैं।

३६. इसी प्रकार वचनयोगी भी समझना चाहिए।

३७. काययोगी जीव जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं।

३८-३९. इसी प्रकार साकारोपयोग युक्त एवं अनाकारोपयोग युक्त जीवों के विषय में भी कहना चाहिए।

३२. रत्नप्रभापृथ्वी के संख्यात विस्तृत नरकावासों में उद्वर्तन करने वाले नारकों के ३९ प्रश्नों का समाधान–

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्यात योजन विस्तार वाले नारकों में एक समय में–

१. कितने नैरयिक उद्वर्तन करते (मरते-निकलते) हैं?

२. कितने कापोतलेश्यी नैरयिक मरते हैं?

३-३९. यावत् कितने अनाकारोपयुक्त नैरयिक मरते हैं?

उ. गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्यात योजन विस्तार वाले नरकों में और–

१. एक समय में जघन्य एक, दो या तीन
उत्कृष्ट संख्यात नैरयिक मरते हैं।

२. जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट संख्यात कापोतलेश्यी नैरयिक मरते हैं।

३-५. इसी प्रकार संज्ञी पर्यन्त नैरयिकों की उद्वर्तना कहनी चाहिए।

६. असंज्ञी जीव मरते नहीं हैं।

७. जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट संख्यात भवसिद्धिक नैरयिक जीव मरते हैं।

८-१३. इसी प्रकार श्रुत-अज्ञानी पर्यन्त उद्वर्तना कहनी चाहिए।

१४. विभंगज्ञानी मरते नहीं हैं।

१५. चक्षुदर्शनी भी मरते नहीं हैं।

१६. जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट संख्यात अचक्षुदर्शनी जीव मरते हैं।

१७-२८. इसी प्रकार लोभकषायी पर्यन्त नैरयिक जीवों की उद्वर्तना कहनी चाहिए।

२९. श्रोत्रेन्द्रियोपयोगयुक्त जीव मरते नहीं हैं।

३०-३३. इसी प्रकार स्पर्शेन्द्रियोपयोगयुक्त पर्यन्त के नैरयिक जीव भी मरते नहीं हैं।

३४. जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट संख्यात नोइन्द्रियोपयोगयुक्त नैरयिक मरते हैं।

३५. मनोयोगी नहीं मरते हैं।

३६. इसी प्रकार वचनयोगी भी नहीं मरते हैं।

३७. जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट संख्यात काययोगी मरते हैं।

३५. मणजोगी न उववज्जंति।

३६. एवं वइजोगी वि।

३७. जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा–
उक्कोसेणं संखेज्जा कायजोगी उववज्जंति।

३८-३९. एवं सागारोवउत्ता वि अणागारोवउत्ता वि।

–विया. स. १३, उ. १, सु. ४-६

३२. रयणप्पभापुढवीए संखेज्जवित्थडेसु निरयावासेसु उव्वट्टगाणं नारगाणं एगूणचत्तालाणं पण्हाणं समाहाणं–

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नेरइएसु एगसमएणं,

१. केवइया नेरइया उव्वट्टंति?

२. केवइया काउलेस्सा उव्वट्टंति?

३-३९. जाव केवइया अणागारोवउत्ता उव्वट्टंति?

उ. गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नेरइएसु एगसमएणं–

१. जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा–
उक्कोसेणं संखेज्जा नेरइया उव्वट्टंति।

२. जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा–
उक्कोसेणं संखेज्जा काउलेस्सा उव्वट्टंति।

३-५. एवं जाव सण्णी

६. असण्णी न उव्वट्टंति।

७. जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा–
उक्कोसेणं संखेज्जा भवसिद्धिया उव्वट्टंति।

८-१३. एवं जाव सुयअन्नाणी।

१४. विभंगनाणी न उव्वट्टंति।

१५. चक्खुदंसणी न उव्वट्टंति।

१६. जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा–
उक्कोसेणं संखेज्जा अचक्खुदंसणी उव्वट्टंति।

१७-२८. एवं जाव लोभकसाई।

२९. सोइंदियोवउत्ता न उव्वट्टंति।

३०-३३. एवं जाव फासिंदियोवउत्ता न उव्वट्टंति।

३४. जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा–
उक्कोसेणं संखेज्जा नोइंदियोवउत्ता उव्वट्टंति।

३५. मणजोगी न उव्वट्टंति।

३६. एवं वइजोगी वि।

३७. जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा–
उक्कोसेणं संखेज्जा कायजोगी उव्वट्टंति।

३५. मनोयोगी जीव वहाँ उत्पन्न नहीं होते हैं।

३६. इसी प्रकार वचनयोगी भी समझना चाहिए।

३७. काययोगी जीव जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं।

३८-३९. इसी प्रकार साकारोपयोग युक्त एवं अनाकारोपयोग युक्त जीवों के विषय में भी कहना चाहिए।

३२. रत्नप्रभापृथ्वी के संख्यात विस्तृत नरकावासों में उद्वर्तन करने वाले नारकों के ३९ प्रश्नों का समाधान–

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्यात योजन विस्तार वाले नारकों में एक समय में–

१. कितने नैरयिक उद्वर्तन करते (मरते-निकलते) हैं?

२. कितने कापोतलेश्यी नैरयिक मरते हैं?

३-३९. यावत् कितने अनाकारोपयुक्त नैरयिक मरते हैं?

उ. गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्यात योजन विस्तार वाले नरकों में और–

१. एक समय में जघन्य एक, दो या तीन
उत्कृष्ट संख्यात नैरयिक मरते हैं।

२. जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट संख्यात कापोतलेश्यी नैरयिक मरते हैं।

३-५. इसी प्रकार संज्ञी पर्यन्त नैरयिकों की उद्वर्तना कहनी चाहिए।

६. असंज्ञी जीव मरते नहीं हैं।

७. जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट संख्यात भवसिद्धिक नैरयिक जीव मरते हैं।

८-१३. इसी प्रकार श्रुत-अज्ञानी पर्यन्त उद्वर्तना कहनी चाहिए।

१४. विभंगज्ञानी मरते नहीं हैं।

१५. चक्षुदर्शनी भी मरते नहीं हैं।

१६. जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट संख्यात अचक्षुदर्शनी जीव मरते हैं।

१७-२८. इसी प्रकार लोभकषायी पर्यन्त नैरयिक जीवों की उद्वर्तना कहनी चाहिए।

२९. श्रोत्रेन्द्रियोपयोगयुक्त जीव मरते नहीं हैं।

३०-३३. इसी प्रकार स्पर्शेन्द्रियोपयोगयुक्त पर्यन्त के नैरयिक जीव भी मरते नहीं हैं।

३४. जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट संख्यात नोइन्द्रियोपयोगयुक्त नैरयिक मरते हैं।

३५. मनोयोगी नहीं मरते हैं।

३६. इसी प्रकार वचनयोगी भी नहीं मरते हैं।

३७. जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट संख्यात काययोगी मरते हैं।

३८-३९. एवं सागारोवउत्ता, अणागारोवउत्ता वि।

-विया. स. १३, उ. १, सु. ७

३३. रयणप्पभापुढवीए संखेज्जवित्थडेसु निरयावासेसु नेरइयाणं संखाविसयाणं एगूणपन्नासाणं पण्हाणं समाहाणं–

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नेरइएसु–

१. केवइया नेरइया पण्णत्ता?

२-३९. केवइया काउलेस्सा जाव केवइया अणागारोवउत्ता पण्णत्ता?

४०. केवइया अणंतरोववन्नगा पण्णत्ता?

४१. केवइया परंपरोववन्नगा पण्णत्ता?

४२. केवइया अणंतरोगाढा पण्णत्ता?

४३. केवइया परंपरोगाढा पण्णत्ता?

४४. केवइया अणंतराहारा पण्णत्ता?

४५. केवइया परंपराहारा पण्णत्ता?

४६. केवइया अणंतरपज्जत्ता पण्णत्ता?

४७. केवइया परंपरपज्जत्ता पण्णत्ता?

४८. केवइया चरिमा पण्णत्ता?

४९. केवइया अचरिमा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नेरइएसु–

१. संखेज्जा नेरइया पण्णत्ता।

२. संखेज्जा काउलेस्सा पण्णत्ता।

३-५. एवं जाव संखेज्जा सण्णी पण्णत्ता।

६. असण्णी सिय अत्थि, सिय नत्थि,

जइ अत्थि असण्णीणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा–
उक्कोसेणं संखेज्जा पण्णत्ता।

७. संखेज्जा भवसिद्धिया पण्णत्ता।

८-२१. एवं जाव संखेज्जा परिग्गहसन्नोवउत्ता पण्णत्ता।

२२. इत्थिवेदगा नत्थि।

२३. पुरिसवेदगा नत्थि।

२४. संखेज्जा नपुंसगवेदगा पण्णत्ता।

२५. एवं कोहकसाई वि।

२६. माणकसाई जहा असण्णी।

२७-२८. एवं जाव लोभकसाई।

[illegible]

[illegible]

३८-३९. इसी प्रकार साकारोपयोग युक्त और अनाकारोपयोग युक्त नैरयिकों की उद्‌वर्तना भी कहनी चाहिए।

३३. रत्नप्रभा पृथ्वी के संख्यात विस्तृत नरकावासों में नैरयिकों के संख्यात विषयक ४९ प्रश्नों का समाधान–

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्यात योजन विस्तार वाले नरकों में–

१. कितने नारक कहे गए हैं?

२-३९. कापोतलेश्यी से अनाकारोपयोगयुक्त पर्यन्त के नारक कितने कहे गए हैं?

४०. कितने अनन्तरोपपन्नक कहे गए हैं?

४१. कितने परम्परोपपन्नक कहे गए हैं?

४२. कितने अनन्तरावगाढ कहे गए हैं?

४३. कितने परम्परावगाढ़ कहे गए हैं?

४४. कितने अनन्तराहारक कहे गए हैं?

४५. कितने परम्पराहारक कहे गए हैं?

४६. कितने अनन्तरपर्याप्तक कहे गए हैं?

४७. कितने परम्परपर्याप्तक कहे गए हैं?

४८. कितने चरम कहे गए हैं?

४९. कितने अचरम कहे गए हैं?

उ. गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्यात योजन विस्तार वाले नरकों में–

१. संख्यात नैरयिक कहे गए हैं।

२. संख्यात कापोतलेश्यी नैरयिक कहे गए हैं।

३-५. इसी प्रकार संज्ञी नैरयिकों पर्यन्त संख्यात कहना चाहिए।

६. असंज्ञी नैरयिक कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं होते हैं।

यदि होते हैं तो जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट संख्यात होते हैं।

७. भवसिद्धिक जीव संख्यात कहे गए हैं।

८-२१. इसी प्रकार परिग्रहसंज्ञोपयोग युक्त पर्यन्त के नैरयिक संख्यात कहने चाहिए।

२२. (वहाँ) स्त्री वेदक नहीं होते।

२३. पुरुषवेदक भी नहीं होते।

२४. नपुंसकवेदी संख्यात कहे गए हैं।

२५. इसी प्रकार क्रोधकषायी भी संख्यात होते हैं।

२६. मानकषायी नैरयिकों का कथन असंज्ञी नैरयिकों के समान है।

२७-२८. इसी प्रकार लोभकषायी पर्यन्त के नैरयिकों के विषय में भी कहना चाहिए।

२९. श्रोत्रेन्द्रियोपयोगयुक्त नैरयिक संख्यात कहे गए हैं।

३०-३३. इसी प्रकार स्पर्शेन्द्रियोपयोग युक्त पर्यन्त के नैरयिक संख्यात कहे गए हैं।

३४. नोइंदियोवउत्ता जहा असण्णी।

३५. संखेज्जा मणजोगी पण्णत्ता।

३६-३९. एवं जाव अणागारोवउत्ता।

४०. अणंतरोववन्नगा सिय अत्थि, सिय नत्थि, जइ अत्थि जहा असण्णी।

४१. संखेज्जा परंपरोववन्नगा।
एवं जहा अणंतरोववन्नगा तहा–

४२. अणंतरोवगाढगा,
४४. अणंतराहारगा,
४६. अणंतरपज्जत्तगा।

४३, ४५, ४७, ४८, ४९. परंपरोगाढगा जाव अचरिमा जहा परंपरोववन्नगा। –*विया. स. १३, उ. १, सु. ८*

३४. नो-इन्द्रियोपयोगयुक्त नारकों का कथन असंज्ञी नारक जीवों के समान है।

३५. मनोयोगी संख्यात कहे गए हैं।

३६-३९. इसी प्रकार अनाकारोपयोगयुक्त पर्यन्त के नैरयिक संख्यात कहे गए हैं।

४०. अनन्तरोपपन्नक नैरयिक कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं, यदि होते हैं तो असंज्ञी जीवों के समान है।

४१. परम्परोपपन्नक नैरयिक संख्यात होते हैं।
जिस प्रकार अनन्तरोपपन्नक के विषय में कहा गया है उसी प्रकार

४२. अनन्तरावगाढ,
४४. अनन्तराहारक और
४६. अनन्तरपर्याप्तक के विषय में भी कहना चाहिए।

४३, ४५, ४७, ४८, ४९. जिस प्रकार परम्परोपपन्नक का कथन किया गया है, उसी प्रकार परम्परावगाढ, यावत् अचरम का कथन करना चाहिए।

३४. रयणप्पभापुढवीए असंखेज्जवित्थडेसु निरयावासेसु उववज्जणाइ पण्हाणं समाहाणं–

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु असंखेज्जवित्थडेसु नेरइएसु एगसमएणं–

१. केवइया नेरइया उववज्जंति जाव
२-३९. केवइया अणागारोवउत्ता उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु असंखेज्जवित्थडेसु नेरइएसु एगसमएणं–

१. जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा,
उक्कोसेणं असंखेज्जा नेरइया उववज्जंति।

४-५. एवं जहेव संखेज्जवित्थडेसु तिण्णि गमगा–
तहा असंखेज्जवित्थडेसु वि तिण्णि गमगा भाणियव्वा।

णवरं–असंखेज्जा भाणियव्वा,

सेसं तं चेव जाव असंखेज्जा अचरिमा पण्णत्ता।

णवरं–संखेज्जवित्थडेसु वि, असंखेज्जवित्थडेसु वि, ओहिनाणी ओहिदंसणी य संखेज्जा उव्वट्टावेयव्वा,

सेसं तं चेव। –*विया. स. १३, उ. १, सु. ९*

३४. रत्नप्रभापृथ्वी के असंख्यात विस्तृत नरकावासों में उत्पाद आदि के प्रश्नों का समाधान–

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से असंख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासों में–

१. एक समय में कितने नैरयिक उत्पन्न होते हैं यावत्
२-३९. कितने अनाकारोपयोगयुक्त नैरयिक उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से असंख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासों में एक समय में,

१. जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट असंख्यात नैरयिक उत्पन्न होते हैं।

४-५. जिस प्रकार संख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासों के विषय में उत्पाद, उद्वर्तना और सत्ता के तीन आलापक कहे हैं, उसी प्रकार असंख्यात योजन विस्तार वाले नरकों के विषय में भी तीन आलापक कहने चाहिए।

विशेष–"संख्यात" के स्थान पर "असंख्यात" कहना चाहिए।

असंख्यात अचरम कहे गए हैं पर्यन्त शेष सब कथन पूर्ववत् कहना चाहिए।

विशेष–संख्यात योजन और असंख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासों में से अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी संख्यात ही उद्वर्तन करते हैं ऐसा कहना चाहिए।

शेष सब कथन पूर्ववत् करना चाहिए।

३५. सक्करप्पभाइ अहेसत्तम पज्जत्तं नरयपुढवीसु उववज्जणाइ पण्हाणं समाहाणं–

प. सक्करप्पभाए णं भंते ! पुढवीए केवइया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?

३५. शर्कराप्रभापृथ्वी से अधःसप्तम पृथ्वीपर्यन्त छः नरक पृथ्वियों में उत्पाद आदि के प्रश्नों का समाधान–

प्र. भंते ! शर्कराप्रभापृथ्वी में कितने लाख नरकावास कहे गए हैं ?

उ. गोयमा ! पणवीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

प. ते णं भंते ! किं संखेज्जवित्थडा, असंखेज्जवित्थडा ?

उ. गोयमा ! एवं जहा रयणप्पभाए तहा सक्करप्पभाए वि।

णवरं-असण्णी तिसु वि गमएसु न भण्णति, सेसं तं चेव।

प. वालुयप्पभाए णं भंते ! केवइया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पन्नरस निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।
सेसं जहा सक्करप्पभाए।
णाणत्तं लेस्सासु-
काऊ दोसु तइयाइ मिसिया नीलिया चउत्थीए।
पंचमियाए मीसा कण्हा, तत्तो परम कण्हा॥

प. पंकप्पभाए णं भंते ! केवइया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दस निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।
एवं जहा सक्करप्पभाए।

णवरं-ओहिनाणी ओहिदंसणी य न उव्वट्टंति,

सेसं तं चेव।

प. धूमप्पभाए णं भंते ! केवइया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तिण्णि निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।
एवं जहा पंकप्पभाए।

प. [illegible] भंते ! पुढवीए केवइया निरयावाससयसहस्सा [illegible] ?

उ. [illegible] निरयावाससयसहस्से पण्णत्ते।
सेसं जहा पंकप्पभाए।

प. [illegible] भंते ! पुढवीए कइ अणुत्तरा महइमहालया [illegible] ?

उ. [illegible] १. [illegible], २. महाकाले, ३. रोरुए, [illegible]

प. [illegible] असंखेज्जवित्थडा ?

उ. [illegible]

उ. [illegible]

उ. गौतम ! (उसमें) पच्चीस लाख नरकावास कहे गए हैं।

प्र. भंते ! वे नरकावास क्या संख्यात योजन विस्तार वाले हैं या असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार रत्नप्रभापृथ्वी के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार शर्कराप्रभा पृथ्वी के विषय में भी कहना चाहिए।
विशेष-उत्पाद, उद्वर्तना और सत्ता, इन तीनों ही आलापकों में "असंज्ञी" नहीं कहना चाहिए। शेष पूर्ववत् कहना चाहिए।

प्र. भंते ! वालुकाप्रभापृथ्वी में कितने लाख नरकावास कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! उस में पन्द्रह लाख नरकावास कहे गए हैं।
शेष सब कथन शर्कराप्रभा के समान कहना चाहिए।
विशेष-लेश्याओं में भिन्नता है-
पहली और दूसरी में कापोतलेश्या, तीसरी में मिश्र (कापोत और नील), चौथी में नील, पाँचवीं में मिश्र (नील और कृष्ण), छठी में कृष्ण और सातवीं नरक में परम कृष्ण लेश्या है।

प्र. भंते ! पंकप्रभापृथ्वी में कितने लाख नरकावास कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! उसमें दस लाख नरकावास कहे गए हैं।
जिस प्रकार शर्कराप्रभा के विषय में कहा है उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।
विशेष-(इस पृथ्वी से) अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी उद्वर्तन नहीं करते।
शेष सभी कथन पूर्ववत् समझना चाहिए।

प्र. भंते ! धूमप्रभापृथ्वी में कितने लाख नरकावास कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! उसमें तीन लाख नरकावास कहे गए हैं।
जिस प्रकार पंकप्रभापृथ्वी के विषय में कहा उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।

प्र. भंते ! तमःप्रभापृथ्वी में कितने लाख नरकावास कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! (उसमें) पाँच कम एक लाख नरकावास कहे गए हैं ?
शेष सभी कथन पंकप्रभा के समान जानना चाहिए।

प्र. भंते ! अधःसप्तमपृथ्वी में कितने अनुत्तर महानरकावास कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! ये पाँच १. काल, २. महाकाल, ३. रौरव, ४. महारौरव और ५. अप्रतिष्ठान अनुत्तर नरकावास कहे गए हैं।

प्र. भंते ! वे नरकावास क्या संख्यात योजन विस्तार वाले हैं या असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं ?

उ. गौतम ! एक नरकावास संख्यात योजन विस्तार वाला है और शेष असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं।

प्र. भंते ! अधःसप्तमपृथ्वी के पाँच अनुत्तर नरकावासों में से संख्यात योजन विस्तार वाले (अप्रतिष्ठान) नरकावास में एक समय में कितने नैरयिक उत्पन्न होते हैं, कितने नैरयिक उद्वर्तन करते हैं और कितने नैरयिक कहे गये हैं ?

उ. गोयमा ! एवं जहा पंकप्पभाए।

णवरं–तिसु नाणेसु न उववज्जंति, न उव्वट्टंति। पन्नत्तएसु तहेव अत्थि।

एवं असंखेज्जवित्थडेसु वि।

णवरं–असंखेज्जा भाणियव्वा।

–विया. सं. १३, उ. १, सु. १०-१८

३६. भवणवासीणं देवाणं उववज्जणाइ एगूणपन्नासाणं पण्हाणं समाहाणं–

प. केवइया णं भंते ! असुरकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! चोसट्ठिं असुरकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

प. ते णं भंते ! किं संखेज्जवित्थडा, असंखेज्जवित्थडा?

उ. गोयमा ! संखेज्जवित्थडा वि, असंखेज्जवित्थडा वि।

प. चोसट्ठीए णं भंते ! असुरकुमारावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु असुरकुमारावासेसु एगसमएणं केवइया असुरकुमारा उववज्जंति?

जाव केवइया तेउलेस्सा उववज्जंति?

केवइया कण्हपक्खिया उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एवं जहा रयणप्पभाए तहेव पुच्छा, तहेव वागरणं।

णवरं–दोहिं वि वेदेहिं उववज्जंति,

नपुंसग वेयगा न उववज्जंति।

सेसं तं चेव।

उव्वट्टंतगा वि तहेव,

णवरं–असण्णी उव्वट्टंति,

ओहिनाणी ओहिदंसणी य ण उव्वट्टंति,

सेसं तं चेव।

पन्नत्तएसु तहेव,

णवरं–संखेज्जगा इत्थिवेदगा पण्णत्ता।

एवं पुरिसवेदगा वि, नपुंसगवेदगा नत्थि।

कोहकसायी सिय अत्थि, सिय नत्थि,

जइ अत्थि जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा,

उक्कोसेणं संखेज्जा पण्णत्ता।

एवं माणकसायी मायाकसायी वि।

संखेज्जा लोभकसायी पण्णत्ता।

सेसं तं चेव।

उ. गौतम ! जिस प्रकार पंकप्रभा के विषय में कहा उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।

विशेष–तीन ज्ञान वाले उत्पन्न नहीं होते हैं और उद्वर्तन भी नहीं करते हैं। परन्तु सत्ता में तीनों ज्ञान वाले पाये जाते हैं।

इसी प्रकार असंख्यात योजन विस्तार वाले नरकवासों के लिए भी कहना चाहिए।

विशेष–यहाँ संख्यात के स्थान पर असंख्यात कहना चाहिए।

३६. भवनवासी देवों के उत्पाद आदि के ४९ प्रश्नों का समाधान–

प्र. भंते ! असुरकुमार देवों के कितने लाख आवास कहे गए हैं?

उ. गौतम ! असुरकुमार देवों के चौंसठ लाख आवास कहे गए हैं?

प्र. भंते ! वे आवास संख्यात योजन विस्तार वाले हैं या असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं?

उ. गौतम ! (वे) संख्यात योजन विस्तार वाले भी हैं और असंख्यात योजन विस्तार वाले भी हैं।

प्र. भंते ! असुरकुमारों के चौंसठ लाख आवासों में से संख्यात योजन विस्तार वाले असुरकुमारावासों में एक समय में कितने असुरकुमार उत्पन्न होते हैं?

यावत् कितने तेजोलेश्यी उत्पन्न होते हैं?

कितने कृष्णपाक्षिक उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! रत्नप्रभापृथ्वी में किये गए प्रश्नों के समान (यहाँ भी) प्रश्न करना चाहिए और उसका उत्तर भी उसी प्रकार समझ लेना चाहिए।

विशेष–यहाँ दो वेदों (स्त्रीवेद और पुरुषवेद) सहित उत्पन्न होते हैं,

नपुसंकवेदी उत्पन्न नहीं होते हैं।

शेष सब कथन पूर्ववत् समझना चाहिए।

उद्वर्तना के विषय में भी उसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेष–असंज्ञी भी उद्वर्तना करते हैं।

अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी उद्वर्तना नहीं करते।

शेष कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

सत्ता के विषय में पूर्ववत् जानना चाहिए।

विशेष–वहाँ संख्यात स्त्री वेदक कहे गए हैं।

संख्यात पुरुषवेदक हैं, किन्तु नपुंसकवेदक नहीं है।

क्रोधकषायी कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं होते हैं।

यदि होते हैं तो जघन्य एक दो या तीन और

उत्कृष्ट संख्यात होते हैं।

इसी प्रकार मान कषायी और माया कषायी के विषय में भी कहना चाहिए।

लोभकषायी संख्यात कहे गए हैं।

शेष कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

तिसु वि गमएसु चत्तारि लेस्साओ भाणियव्वाओ।

एवं असंखेज्जवित्थडेसु वि।

णवरं-तिसु वि गमएसु असंखेज्जा भाणियव्वा जाव असंखेज्जा अचरिमा पण्णत्ता।

एवं जाव थणियकुमारा।

णवरं-जत्थ जत्तिया भवणा।[1]

-विया. स. १३, उ. २, सु. ३-६

(संख्यात विस्तृत आवासों में उत्पाद उद्वर्तना और सत्ता) इन तीनों आलापकों में प्रारम्भ की चार लेश्याएँ कहनी चाहिए।

असंख्यात योजन विस्तार वाले असुरकुमारावासों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

विशेष-पूर्वोक्त तीनों आलापकों में (संख्यात के बदले) "असंख्यात" कहना चाहिए यावत् असंख्यात योजन विस्तार वाले अचरम पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष-जिसके जितने भवन हों वे कहने चाहिए।

३७. वाणमंतरदेवाणं उववज्जणाइ एगूणपन्नासाणं पण्हाण समाहाणं-

प. केवइया णं भंते ! वाणमंतरावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा वाणमंतरावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

प. ते णं भंते ! किं संखेज्जवित्थडा, असंखेज्जवित्थडा ?

उ. गोयमा ! संखेज्जवित्थडा, नो असंखेज्जवित्थडा।

प. संखेज्जेसु णं भंते ! वाणमंतरावाससयसहस्सेसु एगसमएणं केवइया वाणमंतरा उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! एवं जहा असुरकुमाराणं असंखेज्जवित्थडेसु तिण्णि गमा तहेव वाणमंतराण वि तिण्णि गमा भाणियव्वा। *-विया. स. १३, उ. २, सु. ७-९*

३७. वाणव्यन्तर देवों के उत्पाद आदि के ४९ प्रश्नों का समाधान-

प्र. भंते ! वाणव्यन्तर देवों के कितने लाख आवास कहे गए हैं?

उ. गौतम ! वाणव्यन्तर देवों के असंख्यात लाख आवास कहे गए हैं।

प्र. भंते ! वे (वाणव्यन्तरावास) संख्यात विस्तार वाले हैं या असंख्यात विस्तार वाले हैं ?

उ. गौतम ! वे संख्यात विस्तार वाले हैं, असंख्यात विस्तार वाले नहीं हैं।

प्र. भंते ! संख्यात विस्तार वाले वाणव्यन्तर देवों के आवासों में एक समय में कितने वाणव्यन्तर देव उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार असुरकुमार देवों के संख्यात विस्तार वाले आवासों के विषय में तीन आलापक (उत्पाद, उद्वर्तन और सत्ता के) कहे हैं उसी प्रकार वाणव्यन्तर देवों के विषय में भी तीनों आलापक कहने चाहिए।

३८. जोइसियदेवाणं उववज्जणाइ एगूणपन्नासाणं पण्हाणं समाहाणं-

प. केवइया णं भंते ! जोइसिया विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जजोइसिया विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

प. ते णं भंते ! किं संखेज्जवित्थडा, असंखेज्जवित्थडा ?

उ. गोयमा ! एवं जहा वाणमंतराणं तहा जोइसियाण वि तिण्णि गमा भाणियव्वा।

णवरं-एगा तेउलेस्सा।

उववज्जंतेसु पण्णत्तेसु य असन्नी नत्थि।

सेसं तं चेव। *-विया. स. १३, उ. २, सु. १०-११*

३८. ज्योतिष्क देवों के उत्पाद आदि के ४९ प्रश्नों का समाधान-

प्र. भंते ! ज्योतिष्क देवों के कितने लाख विमानावास कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! ज्योतिष्कदेवों के असंख्यात लाख विमानावास कहे गए हैं।

प्र. भंते ! वे (ज्योतिष्क विमानावास) संख्यात विस्तार वाले हैं या असंख्यात विस्तार वाले हैं ?

उ. गौतम ! वाणव्यन्तर देवों के विषय में जिस प्रकार कहा उसी प्रकार ज्योतिष्क देवों के विषय में भी तीन आलापक कहने चाहिए।

विशेष-इनमें केवल एक तेजोलेश्या ही होती है।

उत्पत्ति और सत्ता में असंज्ञी का कथन नहीं करना चाहिए।

शेष सभी कथन पूर्ववत् है।

३९. वेमाणियदेवाणं उववज्जणाइ एगूणपन्नासाणं पण्हाणं समाहाणं-

प. सोहम्मेणं भंते ! कप्पे केवइया विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?

३९. वैमानिक देवों के उत्पाद आदि के ४९ प्रश्नों का समाधान-

प्र. भंते ! सौधर्मकल्प में कितने लाख विमानावास कहे गए हैं ?

---

१. चउसट्ठी असुराणं, नागकुमाराण होइ चुलसीई।
बावत्तरी कणगाणं, वाउकुमाराण छण्णउई॥
दीवदिसाउदहीणं, विज्जुकुमारिंदथणियमग्गीणं।
जुयलाणं पत्तेयं, छावत्तरिमो सयसहस्सा॥

उ. गोयमा ! बत्तीसं विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

उ. गौतम ! (इसमें) बत्तीस लाख विमानवास कहे गए हैं।

प. ते णं भंते ! किं संखेज्जवित्थडा, असंखेज्जवित्थडा ?

प्र. भंते ! वे विमानावास संख्यात विस्तार वाले हैं या असंख्यात विस्तार वाले हैं ?

उ. गोयमा ! संखेज्जवित्थडा वि, असंखेज्जवित्थडा वि।

उ. गौतम ! वे संख्यात विस्तार वाले भी हैं और असंख्यात विस्तार वाले भी हैं।

प. सोहम्मे णं भंते ! कप्पे बत्तीसाए विमाणावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु विमाणेसु एगसमएणं केवइया सोहम्मा देवा उववज्जंति ?
केवइया तेउलेस्सा उववज्जंति ?

प्र. भंते ! सौधर्मकल्प के वत्तीस लाख विमानावासों में से संख्यात योजन विस्तार वाले विमानों में एक समय में कितने सौधर्मदेव उत्पन्न होते हैं ?
तथा कितने तेजोलेश्या वाले सौधर्मदेव उत्पन्न होते हैं ?

उ. गोयमा ! एवं जहा जोइसियाणं तिण्णि गमा तहेव भाणियव्वा,
णवरं–तिसु वि संखेज्जा भाणियव्वा।
ओहिनाणी ओहिदंसणी य चयावेयव्वा।
सेसं तं चेव।
असंखेज्जवित्थडेसु एवं चेव तिण्णि गमा,
णवरं–तिसु वि गमएसु असंखेज्जा भाणियव्वा।
ओहिनाणी ओहिदंसणी य संखेज्जा चयंति,
सेसं तं चेव।
एवं जहा सोहम्मे वत्तव्वया भणिया तहा ईसाणे वि छ गमगा भाणियव्वा।
सणंकुमारे एवं चेव।
णवरं–इत्थिवेदगा उववज्जंतेसु पण्णत्तेसु य न भण्णंति,
असण्णी तिसु वि गमएसु न भण्णंति।
सेसं तं चेव।
एवं जहा सहस्सारे,
नाणत्तं विमाणेसु, लेस्सासु य।
सेसं तं चेव।

उ. गौतम ! जिस प्रकार ज्योतिष्क देवों के विषय में (उत्पाद, उद्वर्तन और सत्ता) तीन आलापक कहे, उसी प्रकार यहाँ भी तीन आलापक कहने चाहिए।
विशेष–तीनों आलापकों में "संख्यात" पाठ कहना चाहिए।
अवधिज्ञानी-अवधिदर्शनी का च्यवन भी कहना चाहिए।
शेष सव कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।
असंख्यातयोजन विस्तृत सौधर्म-विमानावासों के विषय में भी इसी प्रकार तीनों आलापक कहने चाहिए।
विशेष–इसमें तीनों आलापकों में "संख्यात" के वदले "असंख्यात" कहना चाहिए।
किन्तु अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी "संख्यात" ही च्यवते हैं।
शेष सभी कथन पूर्ववत् है।
जिस प्रकार सौधर्म देवलोक के विषय में छः आलापक कहे, उसी प्रकार ईशान देवलोक के विषय में भी (संख्यात के तीन और असंख्यात के तीन) ये कुल छह आलापक कहने चाहिए।
सनत्कुमार देवलोक के विषय में भी इसी प्रकार जानना चाहिए।
विशेष–उत्पत्ति और सत्ता में स्त्री वेदक नहीं कहना चाहिए।
यहाँ तीनों आलापकों में असंज्ञी पाठ नहीं कहना चाहिए।
शेष सभी कथन पूर्ववत् समझना चाहिए।
इसी प्रकार सहस्रार तक के देवलोकों के सम्बन्ध में कहना चाहिए।
यहाँ अन्तर विमानों की संख्या और लेश्या के विषय में है।
शेष सव कथन पूर्ववत् है।

प. आणय-पाणएसु णं भंते ! कप्पेसु केवइया विमाणावाससया पण्णत्ता ?

प्र. भंते ! आनत-प्राणत देवलोकों में कितने सौ विमानावास कहे गए हैं ?

उ. गोयमा ! चत्तारि विमाणावाससया पण्णत्ता।

उ. गौतम ! चार सौ विमानावास कहे गए हैं।

प. ते णं भंते ! किं संखेज्जवित्थडा, असंखेज्जवित्थडा ?

प्र. भंते ! वे (विमानावास) संख्यात-योजन विस्तार वाले हैं या असंख्यात-योजन विस्तार वाले हैं ?

उ. गोयमा ! संखेज्जवित्थडा वि, असंखेज्जवित्थडा वि।
एवं संखेज्जवित्थडेसु तिण्णि गमगा जहा सहस्सारे।
असंखेज्जवित्थडेसु उववज्जंतेसु य चयंतेसु य एवं चेव संखेज्जा भाणियव्वा, पण्णत्तेसु असंखेज्जा।

उ. गौतम ! वे संख्यात योजन विस्तार वाले भी हैं और असंख्यात योजन विस्तार वाले भी हैं।
संख्यात योजन विस्तार वाले विमानावासों के विषय में सहस्रार देवलोक के समान तीन आलापक कहने चाहिए।
असंख्यात योजन विस्तार वाले विमानों में उत्पाद और च्यवन के विषय में, "संख्यात" कहना चाहिए एवं "सत्ता" में असंख्यात कहना चाहिए।

णवरं–नोइंदियोवउत्ता, अणंतरोववन्नगा, अणंत-रोगाढगा, अणंतराहारगा, अणंतरपज्जत्तगा य,

एएसिं जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा,

उक्कोसेणं संखेज्जा पण्णत्ता।

सेसा असंखेज्जा भाणियव्वा।

आरणऽच्चुएसु एवं चेव जहा आणय-पाणएसु, नाणत्तं विमाणेसु।

एवं गेवेज्जगा वि।

प. कइ णं भंते! अणुत्तरविमाणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! पंच अणुत्तरविमाणा पण्णत्ता।

प. ते णं भंते! किं संखेज्जवित्थडा, असंखेज्जवित्थडा?

उ. गोयमा! संखेज्जवित्थडे य, असंखेज्जवित्थडा य।

प. पंचसु णं भंते! अणुत्तरविमाणेसु संखेज्जवित्थडे विमाणे एगसमएणं केवइया अणुत्तरोववाइया देवा उववज्जंति?

केवइया सुक्कलेस्सा उववज्जंति?

जाव केवइया अणागारोवउत्ता उववज्जंति?

उ. गोयमा! पंचसु णं अणुत्तरविमाणेसु संखेज्जवित्थडे अणुत्तरविमाणे एग समएणं

जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा,

उक्कोसेणं संखेज्जा अणुत्तरोववाइया देवा उववज्जंति।

एवं जहा गेवेज्जविमाणेसु संखेज्जवित्थडेसु,

णवरं–कण्हपक्खिया, अभवसिद्धिया, तिसु अन्नाणेसु एए न उववज्जंति, न चयंति, न वि पण्णत्तएसु भाणियव्वा।

अचरिमा वि खोडिज्जंति जाव संखेज्जा चरिमा पण्णत्ता।

सेसं तं चेव।

असंखेज्जवित्थडेसु वि एए न भण्णंति,

णवरं अचरिमा अत्थि।

[illegible] असंखेज्जवित्थडेसु जाव असंखेज्जा [illegible] — [illegible]

[illegible]

[illegible]

विशेष–नोइन्द्रियोपयुक्त, अनन्तरोपपन्नक, अनन्तरावगाढ, अनन्तराहारक और अनन्तर-पर्याप्तक

ये पांच जघन्य एक, दो या तीन और

उत्कृष्ट संख्यात कहे गए हैं।

शेष अन्य पद सब असंख्यात कहने चाहिए।

जिस प्रकार आनत और प्राणत के विषय में कहा, उसी प्रकार आरण और अच्युत कल्प के विषय में भी कहना चाहिए। विमानों की संख्या में अन्तर है।

इसी प्रकार नौ ग्रैवयेक देवलोकों के विषय में भी कहना चाहिए।

प्र. भंते! अनुत्तर विमान कितने कहे गए हैं?

उ. गौतम! अनुत्तर विमान पांच कहे गए हैं।

प्र. भंते! वे (अनुत्तरविमान) संख्यात योजन विस्तार वाले हैं या असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं?

उ. गौतम! उनमें से एक संख्यातयोजन विस्तार वाला है और (चार) असंख्यातयोजन विस्तार वाले हैं।

प्र. भंते! पांच अनुत्तर विमानों में से संख्यात योजन विस्तार वाले विमान में एक समय में कितने अनुत्तरोपपातिक देव उत्पन्न होते हैं?

(उनमें से) कितने शुक्ललेश्यी उत्पन्न होते हैं?

यावत् कितने अनाकारोपयोग युक्त उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! पांच अनुत्तरविमानों में से संख्यात योजन विस्तार वाले (सर्वार्थसिद्ध नामक) अनुत्तर-विमान में एक समय में,

जघन्य एक, दो या तीन और

उत्कृष्ट संख्यात अनुत्तरोपपातिक देव उत्पन्न होते हैं।

जिस प्रकार संख्यातयोजन विस्तृत ग्रैवेयक विमानों के विषय में कहा उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिए।

विशेष–कृष्णपाक्षिक, अभवसिद्धिक तथा तीन अज्ञान वाले जीव यहां उत्पन्न नहीं होते और च्यवन भी नहीं करते तथा सत्ता में भी इनका कथन नहीं करना चाहिए।

इसी प्रकार (तीनों आलापकों में) "अचरम" का निषेध करना चाहिए यावत् संख्यात चरम कहे गए हैं।

शेष सब कथन पूर्ववत् समझना चाहिए।

असंख्यात योजन विस्तार वाले चार अनुत्तरविमानों में ये (कृष्णपाक्षिक आदि) नहीं कहे गए हैं।

विशेष–इन असंख्यात योजन वाले अनुत्तर विमानों में अचरम जीव भी होते हैं।

शेष जिस प्रकार असंख्यात योजन विस्तृत ग्रैवेयक विमानों के विषय में कहा गया है उसी प्रकार असंख्यात अचरम जीव हैं पर्यन्त कहना चाहिए।

४०. चौबीस दंडकों में आत्मोपक्रम की अपेक्षा उपपात-उद्वर्तन का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भन्ते! क्या नैरयिक जीव आत्मोपक्रम से उत्पन्न होते हैं, परोपक्रम से उत्पन्न होते हैं या निरुपक्रम से उत्पन्न होते हैं?

उ. गोयमा ! आओवक्कमेण वि उववज्जंति, परोवक्कमेण वि उववज्जंति, निरुवक्कमेण वि उववज्जंति।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिया।

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! किं आओवक्कमेणं उव्वट्टंति, परोवक्कमेणं उव्वट्टंति, निरुवक्कमेणं उव्वट्टंति?

उ. गोयमा ! नो आओवक्कमेणं उव्वट्टंति, नो परोवक्कमेणं उव्वट्टंति, निरुवक्कमेणं उव्वट्टंति।

दं. २-११. एवं असुरकुमारा जाव थणियकुमारा।

दं. १२-२१. पुढविकाइया जाव मणुस्सा तिसु उव्वट्टंति।

दं. २२-२४. सेसा जहा नेरइया,

णवरं–जोइसिया, वेमाणिया चयंति।

–विया. स. २०, उ. १०, सु. ७-१२

४१. चउवीसदंडएसु आइड्ढी अवेक्खया उववाय उव्वट्टण परूवणं–

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं आइड्ढीए उववज्जंति, परिड्ढीए उववज्जंति?

उ. गोयमा ! आइड्ढीए उववज्जंति, नो परिड्ढीए उववज्जंति।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिया।

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं आइड्ढीए उव्वट्टंति, परिड्ढीए उव्वट्टंति?

उ. गोयमा ! आइड्ढीए उव्वट्टंति, नो परिड्ढीए उव्वट्टंति।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिया,

णवरं–जोइसिय-वेमाणिया चयंतीति अभिलावो।

–विया. स. २०, उ. १०, सु. १३-१६

४२. चउवीसदंडएसु आयकम्मावेक्खया उववाय उव्वट्टण परूवणं–

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं आयकम्मुणा उववज्जंति, परकम्मुणा उववज्जंति?

उ. गोयमा ! आयकम्मुणा उववज्जंति, नो परकम्मुणा उववज्जंति।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिया।

दं. १-२४. एवं उव्वट्टणा दंडओ वि।

–विया. स. २०, उ. १०, सु. १७-१९

४३. चउवीसदंडएसु पओगावेक्खया उववाय-उवट्टण परूवणं–

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं आयप्पयोगेणं उववज्जंति, परप्पयोगेणं उववज्जंति?

उ. गोयमा ! आयप्पयोगेणं उववज्जंति, नो परप्पयोगेणं उववज्जंति।

उ. गौतम ! वे आत्मोपक्रम से भी उत्पन्न होते हैं, परोपक्रम से भी उत्पन्न होते हैं और निरुपक्रम से भी उत्पन्न होते हैं।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १. भन्ते! क्या नैरयिक आत्मोपक्रम से उद्वर्तन करते (मरते) हैं, परोपक्रम से उद्वर्तन करते हैं या निरूपक्रम से उद्वर्तन करते हैं?

उ. गौतम ! वे आत्मोपक्रम से और परोपक्रम से उद्वर्तन नहीं करते हैं किन्तु निरुपक्रम से उद्वर्तन करते हैं।

दं. २-११. इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त कहना चाहिए।

दं. १२-२१. पृथ्वीकायिकों से लेकर मनुष्यों पर्यन्त (उपर्युक्त) तीनों उपक्रमों से उद्वर्तन करते हैं।

दं. २२-२४. शेष सब जीवों का उद्वर्तन नैरयिकों के समान कहना चाहिए।

विशेष–ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवों के लिए (उद्वर्तन के बदले) च्यवन कहना चाहिए।

४१. चौबीस दंडकों में आत्मऋद्धि की अपेक्षा उपपात-उद्वर्तन का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भन्ते ! क्या नैरयिक जीव आत्मऋद्धि से उत्पन्न होते हैं या पर-ऋद्धि से उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे आत्मऋद्धि से उत्पन्न होते हैं, पर-ऋद्धि से उत्पन्न नहीं होते हैं।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १. भन्ते ! क्या नैरयिक जीव आत्मऋद्धि से उद्वर्तन करते या पर-ऋद्धि से उद्वर्तन करते (मरते) हैं?

उ. गौतम ! वे आत्मऋद्धि से उद्वर्तन करते हैं, किन्तु पर-ऋद्धि से उद्वर्तन नहीं करते हैं।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

विशेष–ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के लिए (उद्वर्तन के बदले) च्यवन कहना चाहिए।

४२. चौबीस दण्डकों में आत्मकर्म की अपेक्षा उपपात्-उद्वर्तन का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिक जीव अपने कर्म से उत्पन्न होते हैं या परकर्म से उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे अपने कर्म से उत्पन्न होते हैं, परकर्म से उत्पन्न नहीं होते हैं।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त उपपात कहना चाहिए।

दं. १-२४. इसी प्रकार उद्वर्तना के लिए भी सभी दण्डक कहने चाहिए।

४३. चौबीस दण्डकों में प्रयोग की अपेक्षा उपपात-उद्वर्तन का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिक जीव आत्मप्रयोग से उत्पन्न होते हैं या पर प्रयोग से उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे आत्मप्रयोग से उत्पन्न होते हैं, परप्रयोग से उत्पन्न नहीं होते हैं।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिया।

दं. १-२४. एवं उव्वट्टणा दण्डओ वि।

–विया. स. २०, उ. १०, सु. २०-२२

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त उपपात कहना चाहिए।

दं. १-२४. इसी प्रकार उद्वर्तना के लिए भी सभी दण्डक कहने चाहिए।

४४. उदायी भूयाणंद हत्थीरायाणं उव्वट्टणाइ परूवणं–

प. उदायी णं भंते ! हत्थिराया कओहिन्तो अणंतरं उव्वट्टित्ता उदायिहत्थिरायत्ताए उववण्णे ?

उ. गोयमा ! असुरकुमारेहिंतो देवेहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता उदायि हत्थिरायत्ताए उववण्णे।

प. उदायी णं भंते ! हत्थिराया कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ ?

उ. गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए उक्कोससागरोवमट्ठिईयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ।

प. से णं भंते ! कओहिन्तो अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ ?

उ. गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ जाव सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।

प. भूयाणंदे णं भंते ! हत्थिराया कओहिन्तो अणंतरं उव्वट्टित्ता भूयाणंदे हत्थिरायत्ताए उववण्णे ?

उ. गोयमा ! एवं जहेव उदायी जाव सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।

–विया. स. १७, उ. १, सु. ४-७

४४. हस्तिराज उदायी और भूतानन्द के उत्पाद-उद्वर्तन का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! उदायी हस्तिराज, किस गति से निकल कर सीधा उदायी हस्तिराज के रूप में उत्पन्न हुआ ?

उ. गौतम ! वह असुरकुमार देवों में से मर कर सीधा यहाँ उदायी हस्तिराज के रूप में उत्पन्न हुआ है।

प्र. भन्ते ! उदायी हस्तिराज कालमास में काल करके कहाँ जाएगा, कहाँ उत्पन्न होगा ?

उ. गौतम ! वह यहाँ से काल करके एक सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति वाले इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावास में नैरयिक रूप में उत्पन्न होगा।

प्र. भन्ते ! वह बिना किसी अन्तर के (इस रत्नप्रभा पृथ्वी) से निकल कर कहां जाएगा, कहाँ उत्पन्न होगा ?

उ. गौतम ! वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा यावत् सर्वदुःखों का अन्त करेगा।

प्र. भन्ते ! भूतानन्द हस्तिराज किस गति से निकलकर भूतानन्द हस्तिराज के रूप में उत्पन्न हुआ है ?

उ. गौतम ! उदायी हस्तिराज के वर्णन के समान भूतानन्द हस्तिराज के लिए भी सब दुःखों का अन्त करेगा पर्यन्त कथन करना चाहिए।

४५. चउवीसदण्डएसु भवियदव्व नेरइयाइत्त परूवणं–

प. दं. १. अत्थि णं भंते ! भवियदव्वनेरइया ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"भवियदव्वनेरइया, भवियदव्वनेरइया ?"

उ. गोयमा ! जे भविए पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिए वा, मणुस्से वा नेरइएसु उववज्जित्तए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"भवियदव्वनेरइया, भवियदव्वनेरइया।"

दं. २-११. एवं जाव थणियकुमाराणं।

प. दं. १२. अत्थि णं भंते ! भवियदव्वपुढविकाइया, भवियदव्वपुढविकाइया ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"भवियदव्वपुढविकाइया, भवियदव्वपुढविकाइया ?"

उ. गोयमा ! जे भविए तिरिक्खजोणिए वा, मणुस्से वा, देवे वा पुढविकाइएसु उववज्जित्तए।

[illegible] एवं वुच्चइ–

"[illegible], भवियदव्वपुढविकाइया।"

४५. चौबीस दण्डकों में भव्य द्रव्य नैरयिकत्वादि का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भन्ते ! क्या भव्य द्रव्य-(भावि) नैरयिक-भव्य-द्रव्य नैरयिक है ?

उ. हाँ, गौतम ! है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"भव्य-द्रव्य-नैरयिक-भव्य-द्रव्य-नैरयिक है ?"

उ. गौतम ! जो कोई पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक या मनुष्य, (भविष्य में) नैरयिकों में उत्पन्न होने के योग्य है, वह भव्य-द्रव्य नैरयिक है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"भव्य द्रव्य नैरयिक-भव्य द्रव्य नैरयिक है।"

दं. २-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. १२. भन्ते ! क्या भव्य-द्रव्य-पृथ्वीकायिक भव्य द्रव्य पृथ्वीकायिक है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह ऐसा ही है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"भव्यद्रव्य-पृथ्वीकायिक-भव्यद्रव्य पृथ्वीकायिक है ?"

उ. गौतम ! जो तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य या देव पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने के योग्य है, वह भव्य-द्रव्य-पृथ्वीकायिक है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"भव्य द्रव्य पृथ्वीकायिक-भव्य द्रव्य पृथ्वीकायिक है।"

दं. १३, १६. आउकाइय-वणस्सइकाइयाणं एवं चेव।

दं. १४, १५, १७-१९. तेउ-वाउ-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाण य जे भविए तिरिक्खजोणिए वा, मणुस्से वा उववज्जित्तए से भवियदव्व तेउ-वाउ-बेइंदिय-तेइंदिय चउरिंदिया।

दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं जे भविए नेरइए वा, तिरिक्खजोणिए वा, मणुस्से वा, देवे वा पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएसु, उववज्जित्तए से भवियदव्व पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिया।

दं. २१. एवं मणुस्साण वि।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाणं जहा नेरइया। —*विया. स. १८, उ. ९, सु. २-९*

दं. १३, १६. इसी प्रकार अप्कायिक और वनस्पतिकायिक के विषय में समझना चाहिए।

दं. १४, १५, १७-१९. अग्निकाय, वायुकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय पर्याय में जो कोई तिर्यञ्च या मनुष्य उत्पन्न होने के योग्य हो, वह भव्य-द्रव्य-अग्नि वायु द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय भव्य द्रव्य कहलाता है।

दं. २०. जो कोई नैरयिक, तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य या देव अथवा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होने योग्य होता है, वह भव्य-द्रव्य पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक कहलाता है।

दं. २१. इसी प्रकार मनुष्यों के लिए भी कहना चाहिए।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिकों के विषय में नैरयिकों के समान समझना चाहिए।

४६. चउवीसदंडएसु सिद्धेसु य कइसंचियाइ परूवणं–

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! कइसंचिया, अकइसंचिया, अवत्तव्वगसंचिया?

उ. गोयमा ! नेरइया कइसंचिया वि, अकइसंचिया वि, अवत्तव्वगसंचिया वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'नेरइया कइसंचिया वि जाव अवत्तव्वगसंचिया वि?

उ. गोयमा ! जे णं नेरइया संखेज्जएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरइया कइसंचिया,
जे णं नेरइया असंखेज्जएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरइया अकइसंचिया,
जे णं नेरइया एक्कएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरइया अवत्तव्वगसंचिया,
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"नेरइया कइसंचिया वि जाव अवत्तव्वगसंचिया वि"
दं. २-११. एवं असुरकुमारा जाव थणियकुमारा।

प. दं. १२. पुढविकाइयाणं भंते ! किं कइसंचिया अकइसंचिया अवत्तव्वगसंचिया?

उ. गोयमा ! पुढविकाइया नो कइसंचिया, अकइसंचिया, नो अवत्तव्वगसंचिया।

प. से केणट्ठेणं भंते ! वुच्चइ–
"पुढविकाइया नो कइसंचिया, अकइसंचिया, नो अवत्तव्वगसंचिया?

उ. गोयमा ! पुढविकाइया असंखेज्जएणं पवेसणएणं पविसंति।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"पुढविकाइया नो कइसंचिया, नो अकइसंचिया, अवत्तव्वगसंचिया।
दं. १३-१६. एवं जाव वणस्सइकाइया।

४६. चौबीस दण्डक और सिद्धों में कतिसंचितादि का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भन्ते ! क्या नैरयिक कतिसंचित है, अकतिसंचित है या अवक्तव्यसंचित है?

उ. गौतम ! नैरयिक कतिसंचित भी है, अकतिसंचित भी है और अवक्तव्यसंचित भी है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि –
"नैरयिक कतिसंचित भी है यावत् अवक्तव्यसंचित भी है?

उ. गौतम ! जो नैरयिक (नरकगति में एक साथ) संख्यात प्रवेश करते (उत्पन्न होते) हैं वे कतिसंचित हैं।
जो नैरयिक (एक साथ) असंख्यात प्रवेश करते हैं वे अकतिसंचित हैं।
जो नैरयिक एक-एक करके प्रवेश करते हैं वे अवक्तव्य संचित हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"नैरयिक कतिसंचित भी है यावत् अवक्तव्यसंचित भी है।
दं. २-११. इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. १२. भन्ते ! क्या पृथ्वीकायिक कतिसंचित हैं, अकतिसंचित हैं या अवक्तव्य संचित हैं?

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव कतिसंचित और अवक्तव्यसंचित नहीं हैं किन्तु अकतिसंचित हैं।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"पृथ्वीकायिक जीव कतिसंचित और अवक्तव्यसंचित नहीं हैं किन्तु अकतिसंचित हैं?"

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव एक साथ असंख्यात प्रवेश करते (उत्पन्न होते) हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"पृथ्वीकायिक जीव अकतिसंचित हैं किन्तु वे कतिसंचित और अवक्तव्यसंचित नहीं है।"
दं. १३-१६. इसी प्रकार वनस्पतिकायिक पर्यन्त जानना चाहिए।

दं. १७-२४. बेइंदिया जाव वेमाणिया जहा नेरइया[1]।

प. सिद्धा णं भंते ! किं कइसंचिया, अकइसंचिया, अवत्तव्वगसंचिया ?

उ. गोयमा ! सिद्धा कइसंचिया, नो अकइसंचिया, अवत्तव्वगसंचिया।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"सिद्धा कइ संचिया, नो अकइसंचिया, अवत्तव्वगसंचिया।"

उ. गोयमा ! जे णं सिद्धा संखेज्जएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं सिद्धा कइसंचिया,

जे णं सिद्धा एक्कएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं सिद्धा अवत्तव्वगसंचिया।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"सिद्धा कइ संचिया, नो अकइसंचिया, अवत्तव्वगसंचिया वि।" *–विया. स. २०, उ. १०, सु. २३-२८*

४७. चउवीसदंडगाणं सिद्धाण य कइ संचियाइ विसिट्ठ अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! नेरइयाणं कइसंचियाणं अकइसंचियाणं अवत्तव्वगसंचियाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा नेरइया अवत्तव्वगसंचिया,

२. कइसंचिया संखेज्जगुणा,

३. अकइसंचिया असंखेज्जगुणा।

एवं एगिंदियवज्जाणं जाव वेमाणियाणं अप्पाबहुगं एगिंदियाणं नत्थि अप्पाबहुगं।

प. एएसि णं भंते ! सिद्धाणं कइसंचियाणं अवत्तव्वगसंचियाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा सिद्धा कइसंचिया।

२. अवत्तव्वगसंचिया संखेज्जगुणा।

–विया. स. २०, उ. १०, सु. २९-३१

४८. चउवीसदंडएसु सिद्धेसु य छक्क समज्जियाइ परूवणं–

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं छक्कसमज्जिया, नो छक्कसमज्जिया, छक्केण य नो छक्केण य समज्जिया, छक्केहिं समज्जिया, छक्केहिं य नो छक्केण य समज्जिया ?

उ. गोयमा ! नेरइया छक्कसमज्जिया वि, नो छक्कसमज्जिया वि, छक्केण य, नो छक्केण य समज्जिया वि, छक्केहिं समज्जिया वि, छक्केहि य, नो छक्केण य समज्जिया वि।

दं. १७-२४. द्वीन्द्रियों से वैमानिकों पर्यन्त नैरयिकों के समान कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! क्या सिद्ध कतिसंचित है, अकतिसंचित है या अवक्तव्य संचित है ?

उ. गौतम ! सिद्ध कतिसंचित और अवक्तव्यसंचित है, किन्तु अकतिसंचित नहीं है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"सिद्ध कतिसंचित है और अवक्तव्यसंचित है, किन्तु अकतिसंचित नहीं है।"

उ. गौतम ! जो सिद्ध संख्यातप्रवेशनक से प्रवेश करते हैं, वे सिद्ध कतिसंचित हैं।

जो सिद्ध एक-एक करके प्रवेश करते हैं वे सिद्ध अवक्तव्यसंचित हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"सिद्ध कतिसंचित और अवक्तव्यसंचित हैं किन्तु अकतिसंचित नहीं हैं।"

४७. कतिसंचितादि विशिष्ट चौबीस दण्डक और सिद्धों का अल्पबहुत्व–

प्र. भन्ते ! इन १. कतिसंचित, २. अकतिसंचित और ३. अवक्तव्यसंचित नैरयिकों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प अवक्तव्यसंचित नैरयिक हैं,

२. (उनसे) कतिसंचित नैरयिक संख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) अकतिसंचित नैरयिक असंख्यातगुणे हैं।

इसी प्रकार एकेन्द्रियों को छोड़कर वैमानिकों पर्यन्त अल्पबहुत्व कहना चाहिए, एकेन्द्रियों का अल्पबहुत्व नहीं है।

प्र. भन्ते ! कतिसंचित और अवक्तव्यसंचित सिद्धों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प कतिसंचित सिद्ध हैं,

२. (उनसे) अवक्तव्यसंचित सिद्ध संख्यातगुणे हैं।

४८. चौबीस दण्डकों और सिद्धों में षट्क समर्जितादि का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भन्ते ! क्या नैरयिक षट्क-समर्जित है, २. नो षट्क-समर्जित है, ३. (एक) षट्क और नो षट्क-समर्जित हैं, ४. (अनेक) षट्क-समर्जित है या, ५. अनेक षट्क-समर्जित और एक नो षट्क-समर्जित है ?

उ. गौतम ! नैरयिक १. षट्क-समर्जित भी है, २. नो षट्क-समर्जित भी है, ३. एक षट्क और एक नो षट्क-समर्जित भी हैं, ४. तथा अनेक षट्क-समर्जित है और ५. अनेक षट्क समर्जित और एक नो षट्क-समर्जित भी है।

---

१. [illegible]

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"नेरइया छक्कसमज्जिया वि जाव छक्केहि य नो छक्केण य समज्जिया वि ?"

उ. गोयमा ! १. जे णं नेरइया छक्कएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरइया छक्कसमज्जिया।

२. जे णं नेरइया जहन्नेणं एक्केण वा, दोहिं वा, तीहिं वा, उक्कोसेणं पंचएणं पवेसणएणं पविसंति, ते णं नेरइया नो छक्कसमज्जिया।

३. जे णं नेरइया एगेणं छक्कएणं, अन्नेण य जहन्नेणं एक्केण वा, दोहिं वा, तीहिं वा,
उक्कोसेणं पंचएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरइया छक्केण य नो छक्केण य समज्जिया।

४. जे णं नेरइयाऽणेगेहिं छक्कएहिं पवेसणगं पविसंति ते णं नेरइया छक्केहिं समज्जिया।

५. जे णं नेरइयाऽणेगेहिं छक्कएहिं, अन्नेण य जहन्नेणं एक्केण वा, दोहिं वा, तीहिं वा, उक्कोसेणं पंचएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरइया छक्केहिं य नो छक्केण य समज्जिया।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"नेरइया छक्कसमज्जिया जाव छक्केहिं य, नो छक्केण य समज्जिया वि।"

दं. २-११. एवं असुरकुमारा जाव थणियकुमारा।

प. दं. १२. पुढविकाइया णं भंते ! छक्कसमज्जिया जाव छक्केहिं य, नो छक्केण य समज्जिया ?

उ. गोयमा ! पुढविकाइया नो छक्कसमज्जिया, नो छक्कसमज्जिया, नो छक्केण य नो छक्केण य समज्जिया, छक्केहिं समज्जिया वि छक्केहिं य नो छक्केण य समज्जिया वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"पुढविकाइया नो छक्क समज्जिया जाव छक्केहिं य नो छक्केण य समज्जिया ?"

उ. गोयमा ! १. जे णं पुढविकाइयाऽणेगेहिं छक्कएहिं पवेसणगं पविसंति, ते णं पुढविकाइया छक्केहिं समज्जिया।

२. जे णं पुढविकाइयाऽणेगेहिं छक्कएहिं य जहन्नेणं एक्केण वा दोहिं वा तिहिं वा,
उक्कोसेणं पंचएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं पुढविकाइया छक्केहिं य नो छक्केण य समज्जिया।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"पुढविकाइया, नो छक्कसमज्जिया जाव छक्केहि य नो छक्केण य समज्जिया वि।"

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"नैरयिक षट्क-समर्जित भी है यावत् अनेक षट्क-समर्जित तथा एक नो षट्क-समर्जित भी है ?"

उ. गौतम ! १. जो नैरयिक (एक समय में एक साथ) छह की संख्या में प्रवेश करते हैं, वे नैरयिक **"षट्क-समर्जित"** (कहलाते) हैं।

२. जो नैरयिक (एक साथ) जघन्य एक, दो या तीन,
उत्कृष्ट पाँच की संख्या में प्रवेश करते हैं, वे **नो षटक-समर्जित** कहलाते हैं।

३. जो नैरयिक एक षट्क संख्या से और अन्य जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट पांच की संख्या में प्रवेश करते हैं, **"वे षट्क और नो षट्क-समर्जित"** (कहलाते) हैं।

४. जो नैरयिक अनेक षट्क संख्या में प्रवेश करते हैं वे नैरयिक **अनेक षट्क समर्जित** (कहलाते) हैं,

५. जो नैरयिक अनेक षट्क संख्या से और जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट पांच की संख्या में प्रवेश करते हैं, वे नैरयिक **"अनेक षट्क और एक नो षट्क समर्जित"** (कहलाते) हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"नैरयिक षट्क समर्जित भी हैं यावत् अनेक षट्क और एक नो षट्क-समर्जित भी हैं।

दं. २-११. इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १२. भन्ते ! क्या पृथ्वीकायिक जीव षट्क-समर्जित हैं यावत् अनेक षट्क समर्जित और एक नो षट्क समर्जित है ?

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव षट्क-समर्जित नहीं है, नो षट्क-समर्जित नहीं हैं और एक षट्क और एक नो षट्क-समर्जित भी नहीं हैं, किन्तु अनेक षट्क-समर्जित हैं तथा अनेक षट्क और एक नो षट्क-समर्जित भी हैं।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"पृथ्वीकायिक जीव षट्क समर्जित नहीं है यावत् अनेक षट्क और एक नो षट्क-समर्जित भी है ?"

उ. गौतम ! १. जो पृथ्वीकायिक जीव अनेक षट्क से प्रवेश करते हैं वे अनेक षट्क-समर्जित हैं।

२. जो पृथ्वीकायिक अनेक षट्क से तथा जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट पांच संख्या में प्रवेश करते हैं, वे पृथ्वीकायिक अनेक षट्क और एक नो षट्क-समर्जित कहलाते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"पृथ्वीकायिक जीव षट्क समर्जित नहीं हैं यावत् अनेक षट्क समर्जित तथा अनेक षट्क और एक नो षट्क समर्जित हैं।"

५०. चउवीसदंडएसु सिद्धेसु य बारस समज्जियाइ परूवणं–

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं बारस समज्जिया,
नो बारस समज्जिया
बारसएण य नो बारसएण य समज्जिया,
बारसएहिं समज्जिया,
बारसएहिं य नो बारसएण य समज्जिया ?

उ. गोयमा ! नेरइया बारस समज्जिया वि जाव बारसएहि य नो बारसएण य समज्जिया वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"नेरइया बारस समज्जिया जाव बारसएहिं य नो बारसएण य समज्जिया ?"

उ. गोयमा ! १. जे णं नेरइया बारसएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरइया बारस समज्जिया।

२. जे णं नेरइया जहन्नेणं एक्केण वा, दोहिं वा, तीहिं वा,
उक्कोसेणं एक्कारसएणं पवेसणएणं पविसंति, ते णं नेरइया नो बारस समज्जिया।

३. जे णं नेरइया बारसएणं अन्नेण य जहन्नेणं एक्केण वा, दोहिं वा, तीहिं वा,
उक्कोसेणं एक्कारसएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरइया बारसएण य नो बारसएण य समज्जिया।

४. जे णं नेरइयाऽणेगेहिं बारसएहिं पवेसणगं पविसंति ते णं नेरइया बारसएहिं समज्जिया।

५. जे णं नेरइयाऽणेगेहिं बारसएहिं, अन्नेण य जहन्नेणं एक्केण वा, दोहिं वा, तीहिं वा,
उक्कोसेणं एक्कारसएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरइया बारसएहिं य नो बारसएण य समज्जिया।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"नेरइया बारस समज्जिया वि जाव बारसएहि य नो बारसएण य समज्जिया वि।"

दं. २-११. एवं असुरकुमारा जाव थणियकुमारा।

प. दं. १२. पुढविकाइया णं भंते ! किं बारस समज्जिया जाव बारसएहि य नो बारसएण य समज्जिया ?

उ. गोयमा ! पुढविकाइया नो बारस समज्जिया, नो बारस समज्जिया, नो बारसएण य नो बारसएण य समज्जिया, बारसएहिं समज्जिया वि, बारसएहि य नो बारसएण य समज्जिया वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"पुढविकाइया नो बारस समज्जिया जाव बारसएण य नो बारसएण य समज्जिया वि ?"

उ. गोयमा ! १. जे णं पुढविकाइयाऽणेगेहिं बारसएहिं पवेसणगं पविसंति ते णं पुढविकाइया बारसएहिं समज्जिया।

५०. चौबीस दण्डक और सिद्धों में द्वादश समर्जितादि का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिक जीव क्या द्वादश-समर्जित हैं,
नो द्वादश-समर्जित हैं,
अथवा द्वादश नो द्वादश-समर्जित हैं,
अनेक द्वादश-समर्जित हैं,
या अनेक द्वादश और एक नो द्वादश-समर्जित हैं ?

उ. गौतम ! नैरयिक द्वादश-समर्जित भी हैं यावत् अनेक द्वादश और एक नो द्वादश-समर्जित भी हैं।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"नैरयिक द्वादश-समर्जित भी है यावत् अनेक द्वादश और एक नो द्वादश-समर्जित भी है ?"

उ. गौतम ! १. जो नैरयिक (एक समय में एक साथ) बारह की संख्या में प्रवेश करते हैं, वे नैरयिक द्वादश-समर्जित हैं।

२. जो नैरयिक जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट ग्यारह तक प्रवेश करते हैं, वे नैरयिक नो द्वादश-समर्जित हैं।

३. जो नैरयिक एक समय में बारह तथा जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट ग्यारह तक प्रवेश करते हैं, वे नैरयिक द्वादश नो द्वादश-समर्जित हैं।

४. जो नैरयिक एक समय में अनेक बारह-बारह की संख्या में प्रवेश करते हैं, वे नैरयिक अनेक द्वादश-समर्जित हैं।

५. जो नैरयिक एक समय में अनेक बारह-बारह की संख्या में तथा जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट ग्यारह तक प्रवेश करते हैं, वे नैरयिक अनेक द्वादश और एक नो द्वादश-समर्जित हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"नैरयिक द्वादश-समर्जित भी हैं यावत् अनेक द्वादश और एक नो द्वादश-समर्जित भी हैं।

दं. २-११. इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १२. भन्ते ! पृथ्वीकायिक क्या द्वादश-समर्जित हैं यावत् अनेक द्वादश और नो द्वादश समर्जित हैं ?

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक न द्वादश-समर्जित है, न नो द्वादश-समर्जित है और न द्वादश-समर्जित नो द्वादश-समर्जित है, किन्तु अनेक द्वादश-समर्जित हैं और अनेक द्वादश और एक नो द्वादश-समर्जित हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"पृथ्वीकायिक द्वादश-समर्जित नहीं हैं यावत् अनेक द्वादश नो द्वादश-समर्जित हैं ?"

उ. गौतम ! १. जो पृथ्वीकायिक जीव (एक समय में एक साथ) अनेक द्वादश-द्वादश की संख्या में प्रवेश करते हैं वे अनेक द्वादश-समर्जित हैं।

दं. १३-१६. एवं जाव वणस्सइकाइया,

दं. १७-२४. वेइंदिया जाव वेमाणिया।

सिद्धा जहा नेरइया। *–विया. स. २०, उ. १०, सु. ३२-३६*

४९. छक्क समज्जियाइ विसिट्ठ चउवीस दंडगाणं सिद्धाण य अप्पवहुत्तं–

प. दं. १. एएसि णं भंते ! नेरइयाणं १. छक्कसमज्जियाणं, २. नो छक्कसमज्जियाणं, ३. छक्केण य नो छक्केण य समज्जियाणं, ४. छक्केहिं समज्जियाणं, ५. छक्केहि य नो छक्केण य समज्जियाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा नेरइया छक्कसमज्जिया,

२. नो छक्कसमज्जिया संखेज्जगुणा,

३. छक्केण य नो छक्केण य समज्जिया संखेज्जगुणा,

४. छक्केहिं समज्जिया असंखेज्जगुणा,

५. छक्केहिं य नो छक्केण य समज्जिया संखेज्जगुणा।

दं. २-११. एवं असुरकुमारा जाव थणियकुमारा।

प. दं. १२. एएसि णं भंते ! पुढविकाइयाणं छक्केहिं समज्जियाणं, छक्केहिं य नो छक्केण य समज्जियाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा पुढविकाइया छक्केहिं समज्जिया,

२. छक्केहिं य नो छक्केण य समज्जिया संखेज्जगुणा।

दं. १३-१६. एवं जाव वणस्सइकाइयाणं।

दं. १७-२४. वेइंदियाणं जाव वेमाणियाणं जहा नेरइयाणं।

दं. १३-१६. इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों पर्यन्त समझना चाहिए।

दं. १७-२४. इसी प्रकार द्वीन्द्रिय से वैमानिकों पर्यन्त पूर्ववत् कहना चाहिए।

सिद्धों का कथन नैरयिकों के समान है।

४९. षट्क समर्जितादि विशिष्ट चौबीस दण्डकों और सिद्धों में अल्पबहुत्व–

प्र. दं. १. भन्ते ! इन १. षट्कसमर्जित, २. नो षट्क-समर्जित, ३. एक षट्क और एक नो षट्क-समर्जित, ४. अनेक षट्क-समर्जित तथा ५. अनेक षट्क और एक नो षट्क-समर्जित नैरयिकों में कौन किन से अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे कम एक षट्क-समर्जित नैरयिक है,

२. (उनसे) नो षट्क-समर्जित नैरयिक संख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) एक षट्क और नो षट्क-समर्जित नैरयिक संख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) अनेक षट्क-समर्जित नैरयिक असंख्यातगुणे हैं,

५. (उनसे) अनेक षट्क और एक नो षट्क-समर्जित नैरयिक संख्यातगुणे हैं।

दं. २-११. इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त अल्पवहुत्व कहना चाहिए।

प्र. दं. १२. भन्ते ! इन अनेक षट्क-समर्जित और अनेक षट्क तथा नो षट्क-समर्जित पृथ्वीकायिकों में कौन-किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प अनेक षट्क-समर्जित पृथ्वीकायिक हैं,

२. (उनसे) अनेक षट्क और नो षट्क-समर्जित पृथ्वीकायिक संख्यातगुणे हैं।

दं. १३-१६. इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

दं. १७-२४. द्वीन्द्रियों से वैमानिकों पर्यन्त का अल्पवहुत्व नैरयिकों के समान जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! इन षट्क-समर्जित, नो षट्क समर्जित यावत् अनेक षट्क और एक नो षट्क-समर्जित सिद्धों में कौन-किन से अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. अनेक षट्क और नो षट्क समर्जित सिद्ध सबसे थोड़े हैं।

२. (उनसे) अनेक-षट्क-समर्जित सिद्ध संख्यातगुणे हैं।

३. (उनसे) एक षट्क और नो षट्क-समर्जित सिद्ध संख्यातगुणे हैं।

४. (उनसे) षट्क-समर्जित सिद्ध संख्यातगुणे हैं।

५. (उनसे) नो षट्क-समर्जित सिद्ध संख्यातगुणे हैं।

५०. चउवीसदंडएसु सिद्धेसु य बारस समज्जियाइ परूवणं–

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं बारस समज्जिया,
नो बारस समज्जिया
बारसएण य नो बारसएण य समज्जिया,
बारसएहिं समज्जिया,
बारसएहिं य नो बारसएण य समज्जिया ?

उ. गोयमा ! नेरइया बारस समज्जिया वि जाव बारसएहि य नो वारसएण य समज्जिया वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"नेरइया बारस समज्जिया जाव बारसएहिं य नो वारसएण य समज्जिया ?"

उ. गोयमा ! १. जे णं नेरइया बारसएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरइया बारस समज्जिया।
२. जे णं नेरइया जहन्नेणं एक्केण वा, दोहिं वा, तीहिं वा,
उक्कोसेणं एक्कारसएणं पवेसणएणं पविसंति, ते णं नेरइया नो बारस समज्जिया।
३. जे णं नेरइया बारसएणं अन्नेण य जहन्नेणं एक्केण वा, दोहिं वा, तीहिं वा,
उक्कोसेणं एक्कारसएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरइया वारसएण य नो वारसएण य समज्जिया।
४. जे णं नेरइयाऽणेगेहिं वारसएहिं पवेसणगं पविसंति ते णं नेरइया वारसएहिं समज्जिया।
५. जे णं नेरइयाऽणेगेहिं वारसएहिं, अन्नेण य जहन्नेणं एक्केण वा, दोहिं वा, तीहिं वा,
उक्कोसेणं एक्कारसएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरइया वारसएहिं य नो वारसएण य समज्जिया।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"नेरइया वारस समज्जिया वि जाव वारसएहि य नो वारसएण य समज्जिया वि।"
दं. २-११. एवं असुरकुमारा जाव थणियकुमारा।

प. दं. १२. पुढविकाइया णं भंते ! किं वारस समज्जिया जाव वारसएहि य नो वारसएण य समज्जिया ?

उ. गोयमा ! पुढविकाइया नो बारस समज्जिया, नो बारस समज्जिया, नो वारसएण य नो वारसएण य समज्जिया, वारसएहिं समज्जिया वि, वारसएहि य नो वारसएण य समज्जिया वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"पुढविकाइया नो वारस समज्जिया जाव वारसएण य नो वारसएण य समज्जिया वि ?"

उ. गोयमा ! १. जे णं पुढविकाइयाऽणेगेहिं वारसएहिं पवेसणगं पविसंति ते णं पुढविकाइया वारसएहिं समज्जिया।

५०. चौबीस दण्डक और सिद्धों में द्वादश समर्जितादि का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिक जीव क्या द्वादश-समर्जित हैं,
नो द्वादश-समर्जित हैं,
अथवा द्वादश नो द्वादश-समर्जित हैं,
अनेक द्वादश-समर्जित हैं,
या अनेक द्वादश और एक नो द्वादश-समर्जित हैं ?

उ. गौतम ! नैरयिक द्वादश-समर्जित भी हैं यावत् अनेक द्वादश और एक नो द्वादश-समर्जित भी हैं।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"नैरयिक द्वादश-समर्जित भी है यावत् अनेक द्वादश और एक नो द्वादश-समर्जित भी है ?"

उ. गौतम ! १. जो नैरयिक (एक समय में एक साथ) वारह की संख्या में प्रवेश करते हैं, वे नैरयिक द्वादश-समर्जित हैं।
२. जो नैरयिक जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट ग्यारह तक प्रवेश करते हैं, वे नैरयिक नो द्वादश-समर्जित हैं।
३. जो नैरयिक एक समय में वारह तथा जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट ग्यारह तक प्रवेश करते हैं, वे नैरयिक द्वादश नो द्वादश-समर्जित हैं।
४. जो नैरयिक एक समय में अनेक वारह-वारह की संख्या में प्रवेश करते हैं, वे नैरयिक अनेक द्वादश-समर्जित हैं।
५. जो नैरयिक एक समय में अनेक वारह-वारह की संख्या में तथा जघन्य एक, दो या तीन और
उत्कृष्ट ग्यारह तक प्रवेश करते हैं, वे नैरयिक अनेक द्वादश और एक नो द्वादश-समर्जित हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"नैरयिक द्वादश-समर्जित भी हैं यावत् अनेक द्वादश और एक नो द्वादश-समर्जित भी हैं।
दं. २-११. इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १२. भन्ते ! पृथ्वीकायिक क्या द्वादश-समर्जित हैं यावत् अनेक द्वादश और नो द्वादश समर्जित हैं ?

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक न द्वादश-समर्जित है, न नो द्वादश-समर्जित है और न द्वादश-समर्जित नो द्वादश-समर्जित है, किन्तु अनेक द्वादश-समर्जित है और अनेक द्वादश और एक नो द्वादश-समर्जित हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"पृथ्वीकायिक द्वादश-समर्जित नहीं है यावत् अनेक द्वादश नो द्वादश-समर्जित है ?"

उ. गौतम ! १. जो पृथ्वीकायिक जीव (एक समय में एक साथ) अनेक द्वादश-द्वादश की संख्या में प्रवेश करते हैं वे अनेक द्वादश-समर्जित है।

२. जे णं पुढविकाइयाऽणेगेहिं बारसएहिं, अन्नेण य जहन्नेणं एक्केण वा, दोहिं वा, तीहिं वा,

उक्कोसेणं एक्कारसएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं पुढविकाइया बारसएहिं य नो बारसएण य समज्जिया।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"पुढविकाइया नो बारस समज्जिया जाव बारसएण य नो बारसएण य समज्जिया वि"

दं. १३-१६. एवं जाव वणस्सइकाइया।

दं. १७-२४. बेइंदिया जाव वेमाणिया,

सिद्धा जहा नेरइया। *–विया. स. २०, उ. १०, सु. ४३-४७*

५१. बारस समज्जियाइ विसिट्ठ चउवीसदंडगाणं सिद्धाण य अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! नेरइयाणं बारस समज्जियाणं जाव बारसेहि य नो बारसएण य समज्जियाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! सव्वेहिं अप्पबहुगं जहा छक्कसमज्जियाणं,

णवरं–बारसाभिलावो,

सेसं तं चेव। *–विया. स. २०, उ. १०, सु. ४८*

५२. चउवीसदंडएसु सिद्धेसु य चुलसीइसमज्जियाइ परूवणं–

२. जो पृथ्वीकायिक जीव अनेक द्वादश तथा जघन्य एक, दो या तीन और

उत्कृष्ट ग्यारह प्रवेशनक से प्रवेश करते हैं, वे पृथ्वीकायिक और एक द्वादश अनेक द्वादश-समर्जित हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"पृथ्वीकायिक द्वादश-समर्जित नहीं है यावत् अनेक द्वादश नो द्वादश-समर्जित भी हैं।"

दं. १३-१६. इसी प्रकार वनस्पतिकायिक पर्यन्त आलापक कहना चाहिए।

दं. १७-२४. द्वीन्द्रिय जीवों से वैमानिकों पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए।

सिद्धों का कथन नैरयिकों के समान समझना चाहिए।

५१. द्वादश समर्जितादि विशिष्ट चौबीस दंडकों का और सिद्धों का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन द्वादश-समर्जित यावत् अनेक-द्वादश-समर्जित और एक द्वादश-समर्जित नैरयिकों में कौन, किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार षट्क-समर्जित आदि जीवों का अल्पबहुत्व कहा, उसी प्रकार द्वादश-समर्जित आदि सभी जीवों का अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

विशेष–"षट्क" के स्थान में "द्वादश", ऐसा अभिलाप करना चाहिए।

शेष सब पूर्ववत् है।

५२. चौबीस दंडक और सिद्धों में चतुरशीति समर्जितादि का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! क्या नैरयिक जीव १. चतुरशीति (चौरासी) समर्जित हैं, २. नो चतुरशीति-समर्जित हैं ३. चतुरशीति नो चतुरशीति-समर्जित हैं, ४. अनेक चतुरशीति-समर्जित हैं, ५. अनेक चतुरशीति नो चतुरशीति-समर्जित हैं ?

उ. गौतम ! नैरयिक चतुरशीति-समर्जित भी हैं यावत् अनेक चतुरशीति नो चतुरशीति-समर्जित भी हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"नैरयिक जीव चतुरशीति समर्जित भी है यावत् अनेक-चतुरशीति-नो-चतुरशीति समर्जित भी हैं ?"

उ. गौतम ! १. जो नैरयिक (एक समय में एक साथ) चौरासी (८४) प्रवेशनक से प्रवेश करते हैं, वे नैरयिक चतुरशीति-समर्जित हैं।

२. जो नैरयिक जघन्य एक, दो या तीन और

उत्कृष्ट (एक साथ) तिरासी (८३) प्रवेशनक से प्रवेश करते हैं, वे नैरयिक नो चतुरशीति-समर्जित हैं।

३. जो नैरयिक एक साथ, एक समय में चौरासी तथा अन्य जघन्य एक, दो या तीन और

उत्कृष्ट तिरासी (एक साथ) प्रवेशनक से प्रवेश करते हैं वे नैरयिक चतुरशीति नो चतुरशीति-समर्जित हैं।

४. जे णं नेरइयाऽणेगेहिं चुलसीईएहिं पवेसणगं पविसंति ते णं नेरइया चुलसीईहिं समज्जिया।

५. जे णं नेरइयाऽणेगेहिं चुलसीईएहिं अन्नेण य जहन्नेणं एक्केण वा, दोहिं वा, तीहिं वा,

उक्कोसेणं तेसीयएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरइया चुलसीईए य समज्जिया।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"नेरइया चुलसीइसमज्जिया वि जाव चुलसीईहिं य नो चुलसीईए समज्जिया वि।"

दं. २-११. एवं असुरकुमारा जाव थणियकुमारा।

दं. १२. पुढविकाइया तहेव पच्छिल्लएहिं दोहिं,

णवरं–अभिलावो चुलसीईओ।

दं. १३-१६. एवं जाव वणस्सइकाइया।

दं. १७-२४. वेइंदिया जाव वेमाणिया जहा नेरइया।

प. सिद्धाणं भंते ! किं चुलसीइसमज्जिया जाव चुलसीहिं य नो चुलसीईए य समज्जिया?

उ. गोयमा ! सिद्धा १ चुलसीइ समज्जिया वि,

२. नो चुलसीइ समज्जिया वि,

३. चुलसीईए य नो चुलसीईए य समज्जिया वि,

४. नो चुलसीईहिं समज्जिया,

५. नो चुलसीईहिं य नो चुलसीईए य समज्जिया।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"सिद्धा चुलसीइ समज्जिया वि जाव नो चुलसीईहिं य नो चुलसीईए य समज्जिया?

उ. गोयमा ! १. जे णं सिद्धा चुलसीईएणं पवेसणएणं पविसंति, ते णं सिद्धा चुलसीइ समज्जिया।

२. जे णं सिद्धा जहन्नेणं एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा,

उक्कोसेणं तेसीईएणं पवेसणएणं पविसंति, ते णं सिद्धा नो चुलसीइ समज्जिया।

३. जे णं सिद्धा चुलसीयेणं अन्नेण य जहन्नेणं एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा,

उक्कोसेणं (चउवीसएणं) तेसीयएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं सिद्धा चुलसीईए य नो चुलसीईए य समज्जिया।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"सिद्धा चुलसीइ समज्जिया जाव नो चुलसीईहिं य नो चुलसीईए य समज्जिया।

–विया. स. २०, उ. १०, सु. ४९-५४

४. जो नैरयिक एक साथ एक समय में अनेक चौरासी प्रवेशनक से प्रवेश करते हैं, वे अनेक चतुरशीति-समर्जित हैं।

५. जो नैरयिक एक-एक समय में अनेक चौरासी तथा जघन्य एक, दो या तीन और

उत्कृष्ट तेयासी प्रवेशनक से प्रवेश करते हैं, वे अनेक चतुरशीति नो चतुरशीति-समर्जित हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"नैरयिक चतुरशीति-समर्जित भी हैं यावत् अनेक चतुरशीति नो चतुरशीति-समर्जित भी हैं।

दं. २-११. इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमार पर्यन्त कहना चाहिए।"

दं. १२. पृथ्वीकायिक जीवों के लिए (अनेक चतुरशीति-समर्जित और अनेक चतुरशीति नो चतुरशीति-समर्जित) ये दो पिछले भंग समझने चाहिए।

विशेष–यहाँ "चौरासी" ऐसा अभिलाप करना चाहिए।

दं. १३-१६. इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों पर्यन्त (पूर्वोक्त दो भंग) जानने चाहिए।

दं. १७-२४. द्वीन्द्रिय जीवों से वैमानिकों पर्यन्त नैरयिकों के समान कहना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या सिद्ध चतुरशीति-समर्जित हैं यावत् अनेक चतुरशीति नो चतुरशीति-समर्जित हैं?

उ. गौतम ! १. सिद्ध भगवान् चतुरशीति-समर्जित भी हैं,

२. नो चतुरशीति-समर्जित भी हैं,

३. चतुरशीति नो चतुरशीति-समर्जित भी हैं,

४. वे अनेक चतुरशीति-समर्जित नहीं हैं,

५. वे अनेक चतुरशीति नो चतुरशीति-समर्जित भी नहीं हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"सिद्ध चतुरशीति-समर्जित भी हैं यावत् अनेक चतुरशीति नो चतुरशीति-समर्जित नहीं हैं।"

उ. गौतम ! १. जो सिद्ध एक साथ, एक समय में चौरासी संख्या में प्रवेश करते हैं वे सिद्ध चतुरशीति-समर्जित हैं।

२. जो सिद्ध एक समय में, जघन्य एक, दो या तीन और

उत्कृष्ट तिरासी प्रवेशनक से प्रवेश करते हैं, वे सिद्ध नो चतुरशीति-समर्जित हैं।

३. जो सिद्ध एक समय में एक साथ चौरासी और अन्य जघन्य एक, दो या तीन और

उत्कृष्ट (चौबीस) तिरासी प्रवेशनक से प्रवेश करते हैं, वे सिद्ध चतुरशीति-समर्जित और नो चतुरशीति-समर्जित हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"सिद्ध भगवान् चतुरशीति समर्जित भी हैं यावत् अनेक चतुरशीति नो चतुरशीति-समर्जित नहीं हैं।

५३. चुलसीइसमज्जियाइ विसिट्ठ चउवीसदंडगाणं सिद्धाण य अप्पबहुत्तं-

प. एएसि णं भंते ! नेरइयाणं चुलसीइ समज्जियाणं जाव चुलसीइहिं य नो चुलसीईए य समज्जियाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया ?

उ. गोयमा ! सव्वेसिं अप्पावहुगं जहा छक्कसमज्जियाणं जाव वेमाणियाणं,

णवरं-अभिलावो चुलसीयओ।

प. एएसि णं भंते ! सिद्धाणं चुलसीइ समज्जियाणं,
नो चुलसीइ समज्जियाणं,
चुलसीइए य नो चुलसीईए य समज्जियाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा सिद्धा चुलसीईए य नो चुलसीईए य समज्जिया,
२. चुलसीइ समज्जिया अणंतगुणा,
३. नो चुलसीइ समज्जिया अणंतगुणा।

-विया. स. २०, उ. १०, सु. ५५-५६

५३. चतुरशीति-समर्जितादि विशिष्ट चौबीस दंडक और सिद्धों का अल्प बहुत्व-

प्र. भंते ! इन चतुरशीति-समर्जित यावत् अनेक चतुरशीति नो चतुरशीति-समर्जित नैरयिकों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार षट्क समर्जित आदि जीवों का अल्पबहुत्व कहा उसी प्रकार चतुरशीति समर्जित आदि जीवों का वैमानिक-पर्यन्त अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

विशेष-यहाँ "षट्क" के स्थान में "चतुरशीति" शब्द कहना चाहिए।

प्र. भंते ! चतुरशीति समर्जित,
नो चतुरशीति-समर्जित तथा
चतुरशीति नो चतुरशीति-समर्जित सिद्धों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प चतुरशीति नो चतुरशीति-समर्जित सिद्ध हैं,
२. (उनसे) चतुरशीति-समर्जित सिद्ध अनन्तगुणे हैं,
३. (उनसे) नो चतुरशीति-समर्जित सिद्ध अनन्तगुणे हैं।

५४. सत्तण्हं नरयपुढवीणं सम्मदिट्ठिआईणं उववाय-उव्वट्टण-अविरहियत्त परूवणं-

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससय सहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नरएसु
किं सम्मदिट्ठी नेरइया उववज्जंति ?
मिच्छादिट्ठी नेरइया उववज्जंति,
सम्मामिच्छद्दिट्ठी नेरइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! सम्मदिट्ठी वि नेरइया उववज्जंति,
मिच्छादिट्ठी वि नेरइया उववज्जंति,
नो सम्मामिच्छद्दिट्ठी नेरइया उववज्जंति।

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नरएसु,
किं सम्मदिट्ठी नेरइया उव्वट्टंति ?
मिच्छादिट्ठी नेरइया उव्वट्टंति,
सम्मामिच्छद्दिट्ठी नेरइया उव्वट्टंति ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडा नरगा किं सम्मदिट्ठीहिं नेरइएहिं अविरहिया ?
मिच्छादिट्ठीहिं नेरइएहिं अविरहिया,
सम्मामिच्छादिट्ठीहिं नेरइएहिं अविरहिया ?

उ. गोयमा ! सम्मदिट्ठीहिं वि नेरइएहिं अविरहिया,
मिच्छादिट्ठीहिं वि नेरइएहिं अविरहिया,
सम्मामिच्छादिट्ठीहिं नेरइएहिं अविरहिया, विरहिया वा।

५४. सात नरक पृथ्वियों में सम्यग्दृष्टियों आदि का उत्पाद उद्वर्तन और अविरहितत्व का प्ररूपण-

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासों में-
क्या सम्यग्दृष्टि नैरयिक उत्पन्न होते हैं ?
मिथ्यादृष्टि नैरयिक उत्पन्न होते हैं ?
सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिक उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! इनमें सम्यग्दृष्टि नैरयिक भी उत्पन्न होते हैं,
मिथ्यादृष्टि नैरयिक भी उत्पन्न होते हैं,
किन्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिक उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्यात योजन विस्तृत,
नरकावासों में क्या सम्यग्दृष्टि नैरयिक उद्वर्तन करते हैं ?
मिथ्यादृष्टि नैरयिक उद्वर्तन करते हैं ?
सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिक उद्वर्तन करते हैं ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् कहना चाहिए।

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्यात योजन-विस्तृत नरकावास क्या सम्यग्दृष्टि नैरयिकों से अविरहित (सहित) हैं,
मिथ्यादृष्टि नैरयिकों से अविरहित हैं,
सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिकों से अविरहित हैं ?

उ. गौतम ! सम्यग्दृष्टि नैरयिकों से भी अविरहित हैं,
मिथ्यादृष्टि नैरयिकों से भी अविरहित हैं,
सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिकों से कदाचित् अविरहित हैं और कदाचित् विरहित हैं।

एवं असंखेज्जवित्थडेसु वि तिण्णि गमगा भाणियव्वा।

एवं सक्करप्पभाए वि।

एवं जाव तमाए।

प. अहेसत्तमाए णं भंते ! पुढवीए पंचसु अणुत्तरेसु जाव असंखेज्जवित्थडेसु नरए किं सम्मदिट्ठी नेरइया उववज्जंति?
मिच्छादिट्ठी नेरइया उववज्जंति,
सम्मामिच्छद्दिट्ठी नेरइया उववज्जंति?

उ. गोयमा ! सम्मदिट्ठी नेरइया न उववज्जंति, मिच्छद्दिट्ठी नेरइया उववज्जंति, सम्मामिच्छादिट्ठी नेरइया न उववज्जंति।

एवं उव्वट्टंति वि।

अविरहिए जहेव रयणप्पभाए।

एवं असंखेज्जवित्थडेसु वि तिण्णि गमगा।

—विया. स. १३, उ. १, सु. १९-२७

इसी प्रकार असंख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासों के विषय में भी तीनों आलापक कहने चाहिए।

इसी प्रकार शर्कराप्रभा पृथ्वी के लिए भी जानना चाहिए।

इसी प्रकार तमःप्रभापृथ्वी पर्यन्त भी तीनों आलापक कहने चाहिए।

प्र. भंते ! अधःसप्तमपृथ्वी के पांच अनुत्तर यावत् असंख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासों में क्या सम्यग्दृष्टि नैरयिक उत्पन्न होते हैं?
मिथ्यादृष्टि नैरयिक उत्पन्न होते हैं?
सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिक उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वहाँ) सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिक उत्पन्न नहीं होते हैं किन्तु मिथ्यादृष्टि नैरयिक उत्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार उद्वर्तना के विषय में भी कहना चाहिए।

रत्नप्रभापृथ्वी के समान यहाँ भी अविरहित आदि का कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार असंख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासों के विषय में भी तीनों आलापक कहने चाहिए।

५५. नेरइयाणं समए-समए अवहीरमाणे वि अनवहरणत्त परूवणं—

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया समए-समए अवहीरमाणा-अवहीरमाणा केवइए कालेणं अवहिया सिया?

उ. गोयमा ! ते णं असंखेज्जा, समए-समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति, नो चेव णं अवहिया सिया।

एवं जाव अहेसत्तमाए। *—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. ८६(२)*

५५. नैरयिकों का प्रतिसमय अपहरण करने पर भी अनवहरणत्व का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों का प्रत्येक समय में एक-एक का अपहरण किया जाए तो कितने काल में वे अपहृत हो सकते हैं?

उ. गौतम ! वे नैरयिक असंख्यात हैं, यदि प्रत्येक समय उनका अपहरण किया जाए तो असंख्यात उत्सर्पिणियों अवसर्पिणियों में अपहृत होंगे, किन्तु उनका अपहरण नहीं हुआ है।

इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त अपहार जानना चाहिए।

५६. वेमाणियदेवाणं समए-समए अवहीरमाणे वि अनवहरणत्त परूवणं—

प. सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु देवा समए समए अवहीरमाणा-अवहीरमाणा केवइएणं कालेणं अवहिया सिया?

उ. गोयमा ! ते णं असंखेज्जा, समए-समए अवहीरमाणा-अवहीरमाणा असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति, नो चेव णं अवहिया सिया जाव सहस्सारे।

आणयादिसु चउसु वि।

प. गेवज्जेसु अणुत्तरेसु य समए-समए अवहीरमाणा-अवहीरमाणा केवइएणं कालेणं अवहिया सिया?

उ. गोयमा ! ते णं असंखेज्जा, समए-समए अवहीरमाणा-अवहीरमाणा पलिओवमस्स असंखेज्जइ भागमेत्तेणं अवहीरंति, नो चेव णं अवहिया सिया।

—जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. २०१ (ई)

५६. वैमानिक देवों का प्रतिसमय अपहरण करने पर भी अनपहरणत्व का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! सौधर्म-ईशानकल्प के देवों में से यदि प्रत्येक समय में एक-एक का अपहरण किया जाये तो कितने काल में वे अपहृत हो सकेंगे?

उ. गौतम ! वे देव असंख्यात हैं, यदि प्रत्येक समय उनका अपहरण किया जाये तो असंख्यात उत्सर्पिणियों अवसर्पिणियों में अपहृत होंगे, किन्तु उनका अपहरण नहीं हुआ है।

उक्त कथन सहस्रार देवलोक पर्यन्त करना चाहिए।

आनतादि चार कल्पों में भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! ग्रैवेयक और अनुत्तरविमानों में से यदि प्रत्येक समय में एक-एक अपहरण किया जाए तो कितने काल में वे अपहृत हो सकेंगे?

उ. गौतम ! वे असंख्यात हैं, यदि प्रत्येक समय में उनका अपहरण किया जाए तो पल्योपम के असंख्यातवें भाग में वे अपहृत होंगे, किन्तु उनका अपहरण नहीं हो सकता है।

५७. चउव्विह देवेसु सम्मद्दिट्ठिआईणं उववाय परूवणं–

प. चोसट्ठीए णं भंते ! असुरकुमारावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु असुरकुमारावासेसु
किं सम्मदिट्ठी असुरकुमारा उववज्जंति?
मिच्छद्दिट्ठी असुरकुमारा उववज्जंति,
सम्ममिच्छद्दिट्ठी असुरकुमारा उववज्जंति?

उ. गोयमा ! सम्मदिट्ठी वि असुरकुमारा उववज्जंति,
मिच्छद्दिट्ठी वि असुरकुमारा उववज्जंति,
नो सम्ममिच्छद्दिट्ठी असुरकुमारा उववज्जंति।
एवं असंखेज्जवित्थडेसु वि तिण्णि गमा।

एवं जाव गेवेज्जविमाणेसु।

अणुत्तरविमाणेसु एवं चेव,
णवरं–तिसु वि आलावएसु मिच्छद्दिट्ठी सम्मामिच्छद्दिट्ठी य न भण्णंति।
सेसं तं चेव। –विया. स. १३, उ. २, सु. २४-२७

५८. भवियदव्वदेवाणं उववायं–

प. भवियदव्वदेवा णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?
किं नेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! नेरइएहिंतो उववज्जंति,
तिरिय-मणुय-देवेहिंतो वि उववज्जंति।
भेदो जहा वक्कंतीए।
सव्वेसु उववायेयव्वा जाव अणुत्तरोववाइया ति।

णवरं–असंखेज्जवासाउय-अकम्मभूमग-अंतरदीवग-सव्वट्ठसिद्धवज्जं जाव अपराजियदेवेहिंतो वि उववज्जंति। णो सव्वट्ठसिद्ध देवेहिंतो उववज्जंति।
–विया. स. १२, उ. ९, सु. ७

५९. नरदेवाणं उववायं–

प. नरदेवा णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?
किं नेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! नेरइएहिंतो उववज्जंति,
नो तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
नो मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
देवेहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ नेरइएहिंतो उववज्जंति किं रयणप्पभापुढविनेरइए-हिंतो उववज्जंति जाव अहेसत्तमापुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति, नो सक्करप्पभापुढविनेरइएहिंतो जाव नो अहेसत्तमा-पुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति।

५७. चार प्रकार के देवों में सम्यग्दृष्टियों आदि की उत्पत्ति का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! चौंसठ लाख असुरकुमारावासों में से संख्यात योजन विस्तार वाले असुरकुमारावासों में
क्या सम्यग्दृष्टि असुरकुमार उत्पन्न होते हैं?
मिथ्यादृष्टि असुरकुमार उत्पन्न होते हैं?
सम्यग्मिथ्यादृष्टि असुरकुमार उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! सम्यग्यदृष्टि भी असुरकुमार उत्पन्न होते हैं,
मिथ्यादृष्टि भी असुरकुमार उत्पन्न होते हैं,
किन्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टि असुरकुमार उत्पन्न नहीं होते हैं।
इसी प्रकार असंख्यात योजन विस्तार वाले असुरकुमारावासों के लिए भी तीन-तीन आलापक कहने चाहिए।
इसी प्रकार ग्रैवेयक विमानों पर्यन्त के लिए आलापक कहने चाहिए।
अनुत्तरविमानों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए।
विशेष–अनुत्तरविमानों के तीनों आलापकों में मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि का कथन नहीं करना चाहिए।
शेष सभी वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

५८. भव्यद्रव्य देवों का उपपात–

प्र. भंते ! भव्यद्रव्यदेव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?
क्या वे नैरयिकों से उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं,
तिर्यञ्च, मनुष्य और देवों में से भी आकर उत्पन्न होते हैं।
यहाँ व्युत्क्रान्ति पद में कहे अनुसार भेद कहने चाहिए।
अनुत्तरोपपातिक पर्यन्त इन सभी की उत्पत्ति के विषय में कहना चाहिए।
विशेष–असंख्यातवर्ष की आयु वाले, अकर्मभूमिक, अन्तरद्वीपज एवं सर्वार्थसिद्ध के जीवों को छोड़कर (भवनपति से) अपराजित देवों पर्यन्त से आकर उत्पन्न होते हैं।

५९. नरदेवों का उपपात–

प्र. भंते ! नरदेव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?
क्या वे नैरयिकों से यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं,
तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
मनुष्यों से भी आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।
देवों से आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि वे (नरदेव) नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् अधःसप्तमपृथ्वी के नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं, किन्तु शर्कराप्रभा-पृथ्वी के नैरयिकों से यावत् अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प. जइ देवेहिंतो उववज्जंति,
किं भवणवासिदेवेहिंतो उववज्जंति ?
वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! भवणवासिदेवेहिंतो वि उववज्जंति,
वाणमंतरदेवेहिंतो वि उववज्जंति,
एवं सव्वदेवेसु उववाएयव्वा वक्कंतीभेएणं जाव सव्वट्ठसिद्ध त्ति। *–विया. स. १२, उ. ९, सु. ८*

६०. धम्मदेवाणं उववायं–

प. धम्मदेवा णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति,
किं नेरइएहिंतो जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! **एवं वक्कंतीभेएणं सव्वेसु उववाएयव्वा जाव सव्वट्ठसिद्ध त्ति।**
णवरं–तमा-अहेसत्तमा तेउ-वाउ-असंखेज्जवासाउय-अकम्मभूमग-अंतरदीवगवज्जेसु। *–विया. स. १२, उ. ९, सु. ९*

६१. देवाधिदेवाणं उववायं–

प. देवाधिदेवा णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?
किं नेरइएहिंतो उववज्जंति **जाव** देवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! नेरइएहिंतो उववज्जंति,
नो तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
नो मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
देवेहिंतो वि उववज्जंति।

प. जइ नेरइएहिंतो उववज्जंति किं
रयणप्पभा पुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति **जाव**
अहेसत्तम पुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! **आइल्ला तिसु पुढवीसु उववज्जंति,**

सेसाओ खोडेयव्वाओ।

प. जइ देवेहिंतो उववज्जंति,
किं भवणवासिदेवेहिंतो उववज्जंति ?
वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! वेमाणिएसु सव्वेसु उववज्जंति **जाव** सव्वट्ठसिद्ध त्ति।
सेसा खोडेयव्वा। *–विया. स. १२, उ. ९, सु. १०*

६२. भावदेवाणं उववायं–

प. भावदेवा णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति,
किं नेरइएहिंतो उववज्जंति **जाव** देवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! **एवं जहा वक्कंतिए भवणवासीणं उववाओ तहा भाणियव्वो।** *–विया. स. १२, उ. ९, सु. ११*

प्र. यदि वे देवों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या
भवनवासी देवों से आकर उत्पन्न होते हैं,
वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क या वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! भवनवासी देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं,
वाणव्यन्तरदेवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।
इस प्रकार सर्वार्थसिद्ध पर्यन्त सभी देवों से आकर उत्पत्ति के विषय में व्युत्क्रान्ति-पद में कथित विशेषता के अनुसार कहना चाहिए।

६०. धर्मदेवों का उपपात–

प्र. भंते ! धर्मदेव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?
क्या वे नैरयिकों में से यावत् देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! **इनका उपपात व्युत्क्रान्ति-पद में कथित विशेषता के अनुसार सर्वार्थसिद्ध पर्यन्त कहना चाहिए।**
विशेष–तमःप्रभा, अधःसप्तम पृथ्वी, तेजस्काय, वायुकाय असंख्यात वर्ष की आयु वाले अकर्मभूमिक तथा अन्तरद्वीपज जीवों से आकर धर्म देव उत्पन्न नहीं होते हैं।

६१. देवाधिदेवों का उपपात–

प्र. भंते ! देवाधिदेव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?
क्या नैरयिकों में से यावत् देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे नैरयिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,
तिर्यञ्चों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
मनुष्यों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
देवों से आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं **तो क्या**
रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में से आकर उत्पन्न **होते हैं यावत्**
अधःसप्तमपृथ्वी के नैरयिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! **वे आदि की तीन नरकपृथ्वियों में से आकर उत्पन्न होते हैं।**
शेष चार (नरकपृथ्वियों) से (उत्पत्ति का) निषेध करना चाहिए।

प्र. यदि वे देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या
भवनवासी देवों से आकर उत्पन्न होते हैं,
वाणव्यन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे सर्वार्थसिद्ध पर्यन्त समस्त वैमानिक देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं।
शेष देवों से उत्पत्ति का निषेध करना चाहिए।

६२. भावदेवों का उपपात–

प्र. भंते ! भावदेव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?
क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं **यावत्** देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! **जैसे व्युत्क्रान्ति पद में भवनवासियों के उपपात का कथन किया है, उसी प्रकार यहाँ भी करना चाहिए।**

६३. भवियदव्वदेवाणं उव्वट्टणं–

प. भवियदव्वदेवा णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति?
किं नेरइएसु उववज्जंति जाव देवेसु उववज्जंति?

उ. गोयमा ! नो नेरइएसु उववज्जंति,
नो तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति,
नो मणुस्सेसु उववज्जंति,
देवेसु उववज्जंति।

प. जइ देवेसु उववज्जंति,
किं भवणवासिदेवेसु उववज्जंति?
वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियदेवेसु उववज्जंति?

उ. गोयमा ! सव्वेदेवेसु उववज्जंति जाव सव्वट्ठसिद्ध त्ति।

–विया. स. १२, उ. ९, सु. २१

६३. भव्यद्रव्य देवों का उद्वर्तन–

प्र. भंते ! भव्यद्रव्यदेव मर कर अनन्तर (तुरन्त) कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं?
क्या वे नैरयिकों में आकर उत्पन्न होते है यावत् देवों में आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे नैरयिकों में आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
मनुष्यों में आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
किन्तु देवों से आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. यदि (वे) देवों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या
भवनवासी देवों से आकर उत्पन्न होते हैं,
व्याणव्यन्तर ज्योतिष्क या वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे सर्वार्थसिद्ध पर्यन्त सर्वदेवों से आकर उत्पन्न होते हैं।

६४. नरदेवाणं उव्वट्टणं–

प. नरदेवा णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति?
किं नेरइएसु उववज्जंति जाव देवेसु उववज्जंति?

उ. गोयमा ! नेरइएसु उववज्जंति,
नो तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति,
नो मणुस्सेसु उववज्जंति,
नो देवेसु उववज्जंति।
जइ नेरइएसु उववज्जंति, सत्तसु वि पुढविसु उववज्जंति।

–विया. स. १२, उ. ९, सु. २२

६४. नरदेवों का उद्वर्तन–

प्र. भंते ! नरदेव मर कर तुरन्त कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं?
क्या वे नैरयिकों में आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों में आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! (वे) नैरयिकों में आकर उत्पन्न होते हैं,
तिर्यञ्चयोनिकों में आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
मनुष्यों में आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
देवों में आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।
यदि नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं तो सातों (नरक) पृथ्वियों में उत्पन्न होते हैं।

६५. धम्मदेवाणं उव्वट्टणं–

प. धम्मदेवा णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति?
किं नेरइएसु उववज्जंति जाव देवेसु उववज्जंति?

उ. गोयमा ! नो नेरइएसु उववज्जंति,
नो तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति,
नो मणुस्सेसु उववज्जंति,
देवेसु उववज्जंति।

प. जइ देवेसु उववज्जंति,
किं भवणवासिदेवेसु उववज्जंति,
वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियदेवेसु उववज्जंति?

उ. गोयमा ! नो भवणवासिदेवेसु उववज्जंति,
नो वाणमंतरदेवेसु उववज्जंति,
नो जोइसियदेवेसु उववज्जंति,
वेमाणियदेवेसु उववज्जंति,

६५. धर्म देवों का उद्वर्तन–

प्र. भंते ! धर्मदेव मरकर तुरन्त कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं?
क्या वे नैरयिकों में आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों में आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे नैरयिकों में आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
तिर्यञ्चयोनिकों में आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
मनुष्यों में आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
देवों में आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! यदि वे देवों में आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या
भवनवासीदेवों में आकर उत्पन्न होते हैं,
वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क या वैमानिक देवों में आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे भवनवासी देवों में आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
वाणव्यन्तर देवों में आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
ज्योतिष्क देवों में भी आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
वैमानिक देवों में आकर उत्पन्न होते हैं।

सव्वेसु वेमाणिएसु उववज्जंति जाव सव्वट्ठसिद्ध अणुत्तरोववाइएसु उववज्जंति।

अत्थेगइया सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति।

–विया. स. १२, उ. ९, सु. २३

६६. देवाधिदेवाणं उव्वट्टणं–

प. देवाधिदेवा णं भंते! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति?

उ. गोयमा! सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति।

–विया. स. १२, उ. ९, सु. २४

६७. भावदेवाणं उव्वट्टणं–

प. भावदेवा णं भंते! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति?

उ. गोयमा! जहा वक्कंतीए असुरकुमाराणं उव्वट्टणा तहा भाणियव्वा। –विया. स. १२, उ. ९, सु. २५

६८. असंजयभवियदव्वदेवाइणं विविहदेवलोगेसु उप्पाय परूवणं–

प. अह भंते!

१. असंजयभवियदव्वदेवाणं,
२. अविराहियसंजमाणं,
३. विराहियसंजमाणं,
४. अविराहियसंजमासंजमाणं,
५. विराहियसंजमासंजमाणं,
६. असण्णीणं,
७. तावसाणं,
८. कंदप्पियाणं,
९. चरगपरिव्वायगाणं,
१०. किव्विसियाणं,
११. तेरिच्छियाणं,
१२. आजीवियाणं,
१३. आभिओगियाणं,
१४. सलिंगीणं दंसणवावन्नगाणं,

एएसि णं देवलोगेसु उववज्जमाणाणं कस्स कहिं उववाए पण्णत्ते?

उ. गोयमा!

१. असंजयभवियदव्वदेवाणं जहण्णेणं भवणवासीसु, उक्कोसेणं उवरिमगेविज्जएसु,
२. अविराहियसंजमाणं जहण्णेणं सोहम्मे कप्पे, उक्कोसेणं सव्वट्ठसिद्धे विमाणे,
३. विराहियसंजमाणं जहण्णेणं भवणवासीसु, उक्कोसेणं सोहम्मे कप्पे,
४. अविराहियसंजमासंजमाणं जहण्णेणं सोहम्मे कप्पे, उक्कोसेणं अच्चुए कप्पे,

उनमें भी सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरोपपातिक देवों पर्यन्त सभी वैमानिक देवों में धर्मदेव उत्पन्न होते हैं।

कोई-कोई धर्म देव सिद्ध होते हैं यावत् सर्व दुःखों का अन्त करते हैं।

६६. देवधिदेवों का उद्वर्तन–

प्र. भंते! देवाधिदेव मरकर तुरन्त कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! वे सिद्ध होते हैं यावत् सर्व दुःखों का अन्त करते हैं।

६७. भावदेवों का उद्वर्तन–

प्र. भंते! भावदेव मरकर तुरन्त कहाँ जाते हैं, कहां उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! व्युत्क्रान्तिपद में जिस प्रकार असुरकुमारों की उद्वर्तना कही उसी प्रकार यहाँ भावदेवों की भी कहनी चाहिए।

६८. असंयत भव्यद्रव्य देव आदिकों का विविध देवलोकों में उत्पाद का प्ररूपण–

प्र. भंते!

१. असंयत भव्यद्रव्यदेव,
२. अविराधित संयमी,
३. विराधित संयमी,
४. अविराधित संयमासंयमी (देशविरति)
५. विराधित संयमासंयमी,
६. असंज्ञी (अकाम निर्जरा वाले)
७. तापस,
८. कान्दर्पिक,
९. चरकपरिव्राजक,
१०. किल्विषिक,
११. तिर्यञ्च,
१२. आजीविक,
१३. आभियोगिक,
१४. श्रद्धा भ्रष्ट स्वलिंगी साधु।

ये सब यदि देवलोक में उत्पन्न हों तो किसका कहाँ उपपात कहा गया है?

उ. गौतम!

१. असंयत भव्यद्रव्यदेवों का जघन्य भवनवासियों में, उत्कृष्ट उपरिम ग्रैवेयकों में,
२. अविराधित संयम वालों का जघन्य सौधर्मकल्प में, उत्कृष्ट सर्वार्थसिद्ध विमान में,
३. विराधित संयम वालों का जघन्य भवनवासियों में, उत्कृष्ट सौधर्मकल्प में-,
४. अविराधित संयमासंयम वालों का जघन्य सौधर्मकल्प में, उत्कृष्ट अच्युतकल्प में,

५. विराहियसंजमासंजमाणं जहण्णेणं भवणवासीसु,
उक्कोसेणं जोइसिएसु,

६. असण्णीणं जहण्णेणं भवणवासीसु,
उक्कोसेणं वाणमंतरेसु,

अवसेसा सव्वे जहण्णेणं भवणवासीसु,
उक्कोसेणं वोच्छामि,

७. तावसाणं जोइसिएसु,
८. कंदप्पियाणं सोहम्मे कप्पे,
९. चरग-परिव्वायगाणं बंभलोए कप्पे,
१०. किव्विसियाणं लंतगे कप्पे,
११. तेरिच्छियाणं सहस्सारे कप्पे,
१२. आजीवियाणं अच्चुए कप्पे,
१३. आभिओगियाणं अच्चुए कप्पे,
१४. सलिंगीणं दंसणवावन्नगाणं उवरिमगेवेज्जएसु।[1]

-विया. स. १, उ. २, सु. १९

५. विराधित संयमासंयम वालों का जघन्य भवनवासियों में,
उत्कृष्ट ज्योतिष्क देवों में,

६. असंज्ञी जीवों का जघन्य भवनवासियों में,
उत्कृष्ट वाणव्यन्तर देवों में उत्पाद कहा गया है।

शेष सबका उत्पाद जघन्य भवनवासियों में और
उत्कृष्ट उत्पाद क्रमशः इस प्रकार है-

७. तापसों का ज्योतिष्कों में,
८. कान्दर्पिकों का सौधर्मकल्प में,
९. चरकपरिव्राजकों का ब्रह्मलोक कल्प में,
१०. किल्विषिकों का लान्तक कल्प में,
११. तिर्यञ्चों का सहस्रारकल्प में,
१२. आजीविकों का अच्युत कल्प में,
१३. आभियोगिकों का अच्युतकल्प में,
१४. श्रद्धाभ्रष्ट स्वलिंगी श्रमणों का ऊपर के ग्रैवेयकों में उत्पाद होता है।

६९. देवकिब्बिसिएसु उववायकारण परूवणं-

प. देवकिब्बिसिया णं भंते ! केसु कम्मादाणेसु देवकिब्बिसियत्ताए उववत्तारो भवंति?

उ. गोयमा ! जे इमे जीवा आयरियपडिणीया, उवज्झायपडिणीया, कुलपडिणीया, गणपडिणीया, संघपडिणीया, आयरिय-उवज्झायाणं अयसकरा, अवण्णकरा, अकित्तिकरा बहूहिं असब्भावुब्भावणाहिं मिच्छत्ताभिनिवेसेहिं य अप्पाणं च, परं च तदुभयं च वुग्गाहेमाणा वुप्पाएमाणा बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणंति, पाउणित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु देवकिब्विसिएसु देवकिब्बिसियत्ताए उववत्तारो भवंति,

[illegible] १. तिपलिओवमट्ठिईएसु वा, २. [illegible]ट्ठिईएसु वा, ३. तेरससागरोवमट्ठिईएसु [illegible]

प. [illegible] भंते ! ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं [illegible] अणंतरं चयं चइत्ता कहिं [illegible]?

उ. [illegible] नेरइय-तिरिक्खजोणिय- [illegible] अणुपरियट्टित्ता तओ [illegible] बुज्झंति मुच्चंति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं [illegible]

[illegible]

६९. किल्विषिक देवों में उत्पत्ति के कारणों का प्ररूपण-

प्र. भंते ! किन कर्मों के आदान (ग्रहण) से किल्विषिक देव, किल्विषिक देव के रूप में उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! जो जीव आचार्य, उपाध्याय, कुल, गण और संघ के प्रत्यनीक होते हैं तथा आचार्य और उपाध्याय का अयश (अपयश) अवर्णवाद और अकीर्ति करने वाले हैं तथा बहुत से असद्भावों को प्रकट करने और मिथ्यात्व के अभिनिवेशों (कदाग्रहों) से स्वयं को; दूसरों को और स्व-पर दोनों को भ्रान्त और दुर्बोध करने वाले, बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन करके उस अकार्य (पाप) स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये विना काल के समय काल करके किन्हीं किल्विषिक देवों में किल्विषिक देव रूप में उत्पन्न होते हैं।

यथा-१. तीन पल्योपम की स्थिति वालों में, २. तीन सागरोपम की स्थिति वालों में अथवा ३. तेरह सागरोपम की स्थिति वालों में।

प्र. भंते ! किल्विषिक देव उन देवलोकों से आयु क्षय, भव क्षय और स्थिति क्षय होने के बाद च्यवकर कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! कुछ किल्विषिक देव नैरयिक तिर्यञ्च मनुष्य और देव के चार-पाँच भव करके और इतना संसार परिभ्रमण करके तत्पश्चात् सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होते हैं यावत् सब दुःखों का अन्त करते हैं।

कोई-कोई अनादि-अनन्त दीर्घमार्ग वाले चतुर्गति रूप संसार कान्तार (संसार रूपी अटवी) में परिभ्रमण करते हैं।

७०. उत्तरकुरु के मनुष्यों के उत्पात का प्ररूपण-

प्र. भन्ते ! उत्तरकुरु के मनुष्य काल मास में काल करके कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं?

उ. गोयमा ! ते णं मणुया कालमासे कालं किच्चा देवलोएसु उववज्जंति। —जीवा. पडि. ३, सु. ६३० (तेरा.)

७१. महड्ढियदेवस्स नाग-मणि-रुक्खेसु उववाओ तयणंतरभवाओ सिद्धत्त परूवणं—

प. देवे णं भंते ! महड्ढीए महज्जुईए महब्बले महायसे महेसक्खे अणंतरं चयं चइत्ता बिसरीरेसु नागेसु उववज्जेज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! उववज्जेज्जा।

प. से णं भंते ! तत्थ अच्चिय-वंदिय-पूइय-सक्कारिय-सम्माणिए दिव्वे सच्चे सच्चोवाए सन्निहियपाडिहेरे या वि भवेज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! भवेज्जा।

प. से णं भंते ! तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता सिज्झेज्जा जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! सिज्झेज्जा जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेज्जा।

प. देवे णं भंते ! महड्ढीए जाव महेसक्खे अणंतरं चयं चइत्ता बिसरीरेसु मणीसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! एवं चेव जहा नागाणं।

प. देवे णं भंते ! महड्ढीए जाव महेसक्खे अणंतरं चयं चइत्ता बिसरीरेसु रुक्खेसु उववज्जेज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! उववज्जेज्जा।

प. से णं भंते ! तत्थ अच्चिय-वंदिय जाव सन्निहियपाडिहेरे लाउल्लोइयमहिए या वि भवेज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! भवेज्जा।

सेसं तं चेव जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेज्जा।

—विया. स. १२, उ. ८, सु. २-४

७२. समोहयस्स पुढवि-आउ-वाउकाइयस्स उप्पत्तीए पुव्वं पच्छा वा पुग्गलगहण परूवणं—

प. पुढविकाइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए समोहए, समोहणित्ता जे भविए सोहम्मे कप्पे पुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! किं पुव्विं उववज्जित्ता पच्छा संपाउणेज्जा, पुव्विं वा संपाउणित्ता पच्छा उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! १. पुव्विं वा उववज्जित्ता पच्छा संपाउणेज्जा,

२. पुव्विं वा संपाउणित्ता पच्छा उववज्जेज्जा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—

"पुव्विं उववज्जित्ता पच्छा संपाउणेज्जा,
पुव्विं वा संपाउणित्ता पच्छा उववज्जेज्जा ?"

उ. गौतम ! वे मनुष्य काल मास में काल करके देवलोकों में उत्पन्न होते हैं।

७१. महर्द्धिक देव की नाग, मणी, वृक्ष के रूप में उत्पत्ति और तदनन्तर भवों से सिद्धत्व का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! महर्द्धिक, महाद्युति, महावल, महायश और महासुख वाला देव च्यवकर क्या द्विशरीरी (दो जन्म धारण करके सिद्ध होने वाले) नागों (सर्पों या हाथियों) में उत्पन्न होता है ?

उ. हाँ, गौतम ! (वह) उत्पन्न होता है।

प्र. भन्ते ! वह वहाँ नाग के भव में अर्चित, वन्दित, पूजित सत्कारित, सम्मानित, प्रधान (दिव्य) सत्य (वचन सिद्ध) सत्यानुपातरूप (सफलवक्ता) या सन्निहित प्रातिहारिक भी होता है ?

उ. हाँ, गौतम ! होता है।

प्र. भन्ते ! क्या वह वहाँ से अनन्तर च्यवकर मनुष्य भव में उत्पन्न होकर सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अन्त करता है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अन्त करता है।

प्र. भन्ते ! महर्द्धिक यावत् महासुखवाला देव अनन्तर च्यवकर क्या द्विशरीरी मणियों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! जैसे नागों के विषय में कहा उसी प्रकार मणियों के विषय में भी कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! महर्द्धिक यावत् महासुखवाला देव अनन्तर च्यव कर क्या द्विशरीरी वृक्षों में उत्पन्न होता है ?

उ. हाँ, गौतम ! उत्पन्न होता है।

प्र. भन्ते ! वह वहाँ वृक्ष के भव में अर्चित वंदित यावत् सन्निहित प्रातिहारिक होता है तथा उस वृक्ष को चबूतरा आदि बनाकर पूजा भी जाता है ?

उ. हाँ, गौतम ! पूजा जाता है।

शेष समस्त कथन पूर्ववत् (मनुष्य भव धारण करके) सर्व दुःखों का अन्त करता है पर्यन्त कहना चाहिए।

७२. समवहत पृथ्वी अप्-वायुकायिक उत्पत्ति के पूर्व और पश्चात पुद्गल ग्रहण का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! जो पृथ्वीकायिक जीव इस रत्नप्रभा पृथ्वी में मरण समुद्घात से समवहत होकर सौधर्मकल्प में पृथ्वीकायिक रूप से उत्पन्न होने के योग्य है तो भन्ते ! वह पहले उत्पन्न होकर पीछे पुद्गल ग्रहण करता है या पहले पुद्गल ग्रहण कर पीछे उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! १. वह पहले उत्पन्न होता है और पीछे पुद्गल ग्रहण करता है,

२. पहले वह पुद्गल ग्रहण करता है और पीछे उत्पन्न होता है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि—

"वह पहले उत्पन्न होते हैं और पीछे पुद्गल ग्रहण करता है, अथवा पहले वह पुद्गल ग्रहण करता है और पीछे उत्पन्न होता है ?"

उ. गोयमा ! पुढविकाइयाणं तओ समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. वेयणासमुग्घाए, २. कसायसमुग्घाए,
३. मारणंतियसमुग्घाए।
मारणंतियसमुग्घाएणं समोहण्णमाणे–
देसेण वा समोहण्णइ सव्वेण वा समोहण्णइ,

देसेणं समोहण्णमाणे पुव्विं संपाउणित्ता पच्छा उववज्जिज्जा,
सव्वेणं समोहण्णमाणे पुव्विं उववज्जेत्ता पच्छा संपाउणेज्जा।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"पुव्विं संपाउणित्ता पच्छा उववज्जिज्जा,
पुव्विं उववज्जेत्ता पच्छा संपाउणेज्जा।"
एवं चेव ईसाणे वि।

एवं जाव अच्चुए।
गेविज्जविमाणे अणुत्तरविमाणे ईसिपब्भाराए य एवं चेव।

प. पुढविकाइए णं भंते ! सक्करप्पभाए पुढवीए समोहए समोहणित्ता जे भविए सोहम्मे कप्पे पुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए,
से णं भंते ! किं पुव्विं उववज्जित्ता पच्छा संपाउणेज्जा ?
पुव्विं वा संपाउणित्ता पच्छा उववज्जेज्जा ?
उ. गोयमा ! **एवं जहा रयणप्पभाए पुढविकाइओ उववाइओ तहा सक्करप्पभाए,**
पुढविकाइओ वि उववाएयव्वो जाव ईसिपब्भाराए।
एवं जहा रयणप्पभाए वत्तव्वया भणिया।
एवं जाव अहेसत्तमाए समोहओ ईसिपब्भाराए उववाएयव्वो।

सेसं तं चेव। *–विया. स. १७, उ. ६, सु. १-६*
प. पुढविकाइए णं भंते ! सोहम्मे कप्पे समोहए समोहणित्ता

जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवी पुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए,
से णं भंते ! किं पुव्विं उववज्जित्ता पच्छा संपाउणेज्जा ?

पुव्विं वा संपाउणित्ता पच्छा उववज्जेज्जा ?
उ. गोयमा ! पुव्विं वा उववज्जित्ता पच्छा संपाउणेज्जा,
पुव्विं वा संपाउणित्ता पच्छा उववज्जेज्जा।
सेसं तं चेव।
जहा रयणप्पभापुढविकाइओ सव्वकप्पेसु जाव ईसिपब्भाराए ताव उववाइओ।

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक जीवों के तीन समुद्घात कहे गए हैं, यथा–
१. वेदना समुद्घात, २. कषाय समुद्घात
३. मारणान्तिक समुद्घात
जब पृथ्वीकायिक जीव मारणान्तिक समुद्घात करता है,
तब वह देश से समुद्घात करता है और सर्व से भी समुद्घात करता है।
जब देश से समुद्घात करता है तब पहले पुद्गल ग्रहण करता है और पीछे उत्पन्न होता है।
जब सर्व से समुद्घात करता है तब पहले उत्पन्न होता है और पीछे पुद्गल ग्रहण करता है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"वह पहले उत्पन्न होता है और पीछे पुद्गल ग्रहण करता है
पहले वह पुद्गल ग्रहण करता है और पीछे उत्पन्न होता है।"
इसी प्रकार ईशानकल्प में (पृथ्वीकायिक रूप में उत्पन्न होने योग्य जीवों के लिए भी) जानना चाहिए।
इसी प्रकार अच्युतकल्प के सम्बन्ध में समझना चाहिए।
ग्रैवेयक विमान, अनुत्तर विमान और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के विषय में भी इसी प्रकार जानना चाहिए।
प्र. भन्ते ! जो पृथ्वीकायिक जीव इस शर्कराप्रभा पृथ्वी में मरण-समुद्घात से समवहत होकर सौधर्मकल्प में पृथ्वीकायिक रूप में उत्पन्न होने योग्य है तो
भन्ते ! वह पहले उत्पन्न होकर पीछे पुद्गल ग्रहण करता है या पहले पुद्गल ग्रहण करके पीछे उत्पन्न होता है ?
उ. गौतम ! जिस प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी के पृथ्वीकायिक जीवों के उत्पाद आदि कहे,
उसी प्रकार शर्कराप्रभा पृथ्वीकायिक जीवों का उत्पाद आदि ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।
जिस प्रकार रत्नप्रभा के पृथ्वीकायिक जीवों के लिए कहा, उसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी में मरण-समुद्घात से समवहत जीव का ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी पर्यन्त उत्पाद आदि जानना चाहिए।
शेष सब कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।
प्र. भन्ते ! जो पृथ्वीकायिक जीव सौधर्मकल्प में मरण-समुद्घात से समवहत होकर
इस रत्नप्रभा-पृथ्वी में पृथ्वीकायिक-रूप में उत्पन्न होने योग्य हैं
तो भन्ते ! वह पहले उत्पन्न होकर पीछे पुद्गल ग्रहण करता है या,
पहले पुद्गल -ग्रहण कर पीछे उत्पन्न होता है ?
उ. गौतम ! वह पहले उत्पन्न होता है और पीछे पुद्गल ग्रहण करता है, पहले वह पुद्गल ग्रहण करता है और पीछे उत्पन्न होता है।
शेष कथन पूर्ववत् है।
जिस प्रकार रत्नप्रभा-पृथ्वी के पृथ्वीकायिक जीवों का सभी कल्पों में ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी पर्यन्त जो उत्पाद आदि कहा गया

एवं सोहम्मपुढविकाइओ वि सत्तसु वि पुढवीसु उववाएयव्वो जाव अहेसत्तमो।

एवं जहा सोहम्मपुढविकाइओ सव्वपुढवीसु उववाईओ।

एवं जाव ईसिपब्भारापुढविकाइओ सव्वपुढवीसु जाव अहे सत्तमाए। *–विया. स. १७, उ. ७, सु. १*

प. आउकाइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए समोहए समोहणित्ता जे भविए सोहम्मे कप्पे आउकाइयत्ताए उववज्जित्तए,

से णं भंते ! किं पुव्विं उववज्जित्ता पच्छा संपाउणेज्जा,

पुव्विं वा संपाउणित्ता पच्छा उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! एवं जहा पुढविकाइयाओ तहा आउकाइयाओ वि सव्वकप्पेसु जाव ईसिपब्भाराए तहेव उववाएयव्वो।

एवं जहा रयणप्पभा आउकाइओ उववाईओ तहा जाव अहेसत्तम आउकाइओ उववाएयव्वो जाव ईसिपब्भाराए। *–विया. स. १७, उ. ८, सु. १-२*

प. आउकाइए णं भंते ! सोहम्मे कप्पे समोहए समोहणित्ता जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए घणोदधिवलयेसु आउकाइयत्ताए उववज्जित्तए,

से णं भंते ! किं पुव्विं उववज्जित्ता पच्छा संपाउणेज्जा,

पुव्विं वा संपाउणित्ता पच्छा उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! सेसं तं चेव, एवं जाव अहेसत्तमाए।

जहा सोहम्मआउकाइओ एवं जाव ईसिपब्भाराए आउकाइओ जाव अहेसत्तमाए उववाएयव्वो। *–विया. स. १७, उ. ९, सु. १-३*

प. वाउकाइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए समोहए समोहणित्ता, जें भविए सोहम्मे कप्पे वाउकाइयत्ताए उववज्जित्तए,

से णं भंते ! किं पुव्विं उववज्जित्ता पच्छा संपाउणेज्जा ?

पुव्विं वा संपाउणित्ता पच्छा उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! जहा पुढविकाइयाओ तहा वाउकाइओ वि।

णवरं–वाउकाइयाणं चत्तारि समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. वेयणासमुग्घाए, २. कसाय समुग्घाए,
३. मारणंतिय समुग्घाए, ४. वेउव्वियसमुग्घाए।

मारणंतियसमुग्घाएणं समोहण्णमाणे देसेण वा समोहण्णइ, सव्वेण वा समोहण्णइ,

उसी प्रकार सौधर्मकल्प के पृथ्वीकायिक जीवों का सातों नरक-पृथ्वियों में अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त उत्पाद आदि जानना चाहिए।

इसी प्रकार सौधर्मकल्प के पृथ्वीकायिक जीवों के समान सभी कल्पों से ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी पर्यन्त के पृथ्वीकायिक जीवों का अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त सात नरक पृथ्वियों में उत्पाद आदि जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! जो अप्कायिक जीव, इस रत्नप्रभा पृथ्वी में मरण-समुद्घात से समवहत होकर सौधर्मकल्प में अप्कायिक-रूप में उत्पन्न होने के योग्य हैं,

तो भन्ते ! वह पहले उत्पन्न होकर पीछे पुद्गल ग्रहण करता है या

पहले पुद्गल ग्रहण कर पीछे उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों के विषय में कहा, उसी प्रकार अप्कायिक जीवों के विषय में सभी कल्पों में ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी पर्यन्त (पूर्ववत्) उत्पाद आदि कहना चाहिए।

जैसे रत्नप्रभा पृथ्वी के अप्कायिक जीवों के उत्पाद का कथन किया वैसे ही अधःसप्तम-पृथ्वी के अप्कायिक जीवों पर्यन्त का ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक उत्पाद जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! जो अप्कायिक जीव सौधर्म कल्प में मरण समुद्घात से समवहत होकर इस रत्नप्रभा पृथ्वी के धनोदधिवलयों में अप्कायिक रूप से उत्पन्न होने के योग्य हैं,

तो भन्ते ! वह पहले उत्पन्न होकर पीछे पुद्गल ग्रहण करता है या

पहले पुद्गल ग्रहण कर पीछे उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! शेष सभी पूर्ववत् अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

जिस प्रकार सौधर्मकल्प के अप्कायिक जीवों का नरक-पृथ्वियों में उत्पाद कहा, उसी प्रकार ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी पर्यन्त के अप्कायिक जीवों का उत्पाद अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! जो वायुकायिक जीव, इस रत्नप्रभापृथ्वी में मरण-समुद्घात से समवहत होकर सौधर्मकल्प में वायुकायिक रूप में उत्पन्न होने के योग्य हैं,

तो भन्ते ! वह पहले उत्पन्न होकर पीछे पुद्गल ग्रहण करता है या

पहले पुद्गल ग्रहण कर पीछे उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक जीवों के समान वायुकायिक जीवों का भी कथन करना चाहिए।

विशेष–वायुकायिक जीवों में चार समुद्घात कहे गए हैं, यथा–

१. वेदनासमुद्घात, २. कषाय समुद्घात,
३. मारणान्तिक समुद्घात, ४. वैक्रिय समुद्घात।

वह मारणान्तिक समुद्घात से समवहत होकर देश से भी समुद्घात करता है और सर्व से भी समुद्घात करता है।

देसेणं समोहण्णमाणे पुव्विं संपाउणित्ता पच्छा उववज्जिज्जा,

सव्वेणं समोहण्णमाणे पुव्विं उववज्जेत्ता पच्छा संपाउणेज्जा।

एवं जहा पुढविकाइओ तहा वाउकाइओ वि सव्व कप्पेसु जाव ईसिपब्भाराए तहेव उववाएयव्वो।

–विया. स. १७, उ. १०, सु. १

प. वाउकाइए णं भंते ! सोहम्मे कप्पे समोहए समोहणित्ता जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए घणवाए तणुवाए घणवायवलएसु तणुवायवलएसु वाउकाइयत्ताए उववज्जित्तए,

से णं भंते ! किं पुव्विं उववज्जित्ता पच्छा संपाउणेज्जा,

पुव्विं वा संपाउणित्ता पच्छा उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! **एवं जहा सोहम्मवाउकाइओ सत्तसु वि पुढवीसु उववाइओ एवं जाव ईसिपब्भाराए वाउकाइओ अहे सत्तमाए जाव उववाएयव्वो।** *–विया. स. १७, उ. ११, सु. १*

देश से समुद्घात करने पर पहले पुद्गल ग्रहण करके पीछे उत्पन्न होता है।

सर्व से समुद्घात करने पर पहले उत्पन्न होता है और पीछे पुद्गल ग्रहण करता है।

इसी प्रकार जैसे पृथ्वीकायिक का उपपात कहा उसी प्रकार वायुकाय का सर्व कल्पों और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी पर्यन्त में उपपात आदि जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! जो वायुकायिक जीव सौधर्मकल्प में मरण समुद्घात से समवहत होकर इस रत्नप्रभा-पृथ्वी के घनवात, तनुवात, घनवात-वलय और तनुवात-वलयों में वायुकायिक रूप में उत्पन्न होने योग्य हैं

तो भन्ते ! वह पहले उत्पन्न होकर पीछे पुद्गल ग्रहण करता है या

पहले पुद्गल ग्रहण कर पीछे उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! **जिस प्रकार सौधर्मकल्प के वायुकायिक जीवों का उत्पाद सातों नरकपृथ्वियों में कहा उसी प्रकार ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी पर्यन्त के वायुकायिक जीवों का उत्पाद आदि अधःसप्तम पृथ्वी तक जानना चाहिए।**

७३. चउवीसदंडएसु एगत्त-पुहत्तविवक्खया अणंतखुत्तो उववन्नपुव्वत्त परूवणं–

प. दं. १. अयं णं भंते ! जीवे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु, एगमेगंसि निरयावासंसि पुढविकाइयत्ताए जाव वणस्सइकाइयत्ताए नरगत्ताए, नेरइयत्ताए उववन्नपुव्वे ?

उ. हंता, गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो।

प. सव्वजीवा वि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि पुढविकाइयत्ताए जाव वणस्सइकाइयत्ताए नरगत्ताए नेरइयत्ताए उववन्नपुव्वा ?

उ. हंता, गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो।

एवं सक्करप्पभाए पुढवीए जहा रयणप्पभाए पुढवीए तहेव दो आलावगा भाणियव्वा जाव धूमप्पभाए।

तमाए पुढवीए पंचूणे निरयावाससयसहस्सेसु वि एवं चेव।

प. अयं णं भंते ! जीवे अहेसत्तमाए पुढवीए पंचसु अणुत्तरेसु महइमहालएसु महानिरएसु एगमेगंसि निरयावासंसि पुढविकाइयत्ताए जाव वणस्सइकाइयत्ताए नरगत्ताए नेरइयत्ताए उववन्नपुव्वे ?

उ. गोयमा ! **जहा रयणप्पभाए तहेव दो आलावगा भाणियव्वा।**

प. दं. २-११. अयं णं भंते ! जीवे चोसट्ठीए असुरकुमारावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि असुरकुमारावासंसि

७३. एकत्व-बहुत्व की विवक्षा से चौवीस दण्डकों में अनन्त बार पूर्वोत्पन्नत्व का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भन्ते ! क्या यह जीव, इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से प्रत्येक नरकावास में पृथ्वीकायिक रूप में यावत् वनस्पतिकायिक रूप में, नरक रूप में और नैरयिक रूप में पहले उत्पन्न हुआ है ?

उ. हाँ, गौतम ! अनेक वार अथवा अनन्त वार उत्पन्न हो चुका है।

प्र. भन्ते ! क्या सभी जीव, इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से प्रत्येक नरकावास में पृथ्वीकायिक रूप में यावत् वनस्पतिकायिक रूप में, नरक रूप में और नैरयिक रूप में पहले उत्पन्न हो चुके हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! अनेक वार अथवा अनन्त बार पहले उत्पन्न हो चुके हैं।

जिस प्रकार रत्नप्रभापृथ्वी के दो आलापक कहे हैं, उसी प्रकार शर्कराप्रभापृथ्वी से धूमप्रभापृथ्वी पर्यन्त (एकत्व बहुत्व की अपेक्षा) दो आलापक कहने चाहिए।

तमःप्रभापृथ्वी के पाँच कम एक लाख नरकावासों में भी इसी प्रकार आलापक कहने चाहिए।

प्र. भन्ते ! यह जीव अधःसप्तमपृथ्वी के पाँच अनुत्तर और महातिमहान् महानरकावासों में से प्रत्येक नरकावास में पृथ्वीकायिक रूप में यावत् वनस्पतिकायिक रूप में नरक रूप में और नैरयिक रूप में पहले उत्पन्न हुआ है ?

उ. हाँ, गौतम ! **रत्नप्रभापृथ्वी के समान यहाँ भी दो आलापक कहने चाहिए।**

प्र. दं. २-११. भन्ते ! क्या यह जीव असुरकुमारों के चौसठ लाख असुरकुमारावासों में से प्रत्येक असुरकुमारावास में

पुढविकाइयत्ताए जाव वणस्सइकाइयत्ताए देवत्ताए देवित्ताए आसण-सयण-भंडमत्तोवगरणत्ताए उववन्नपुव्वे ?

उ. हंता, गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो।

सव्वजीवा वि एवं चेव।

एवं जाव थणियकुमारेसु।

नाणत्तं आवासेसु।

प. दं. १२-१६. अयं णं भंते ! जीवे असंखेज्जेसु पुढविकाइयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि पुढविकाइयावासंसि पुढविकाइयत्ताए जाव वणस्सइकाइयत्ताए उववन्नपुव्वे ?

उ. हंता, गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो।

एवं जाव वणस्सइकाइएसु।

एवं सव्वजीवा वि।

प. दं. १७-२१. अयं णं भंते ! जीवे असंखेज्जेसु बेइंदियावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि बेइंदियावासंसि पुढविकाइयत्ताए जाव वणस्सइकाइयत्ताए बेइंदियत्ताए उववन्नपुव्वे ?

उ. हंता, गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो।

सव्वजीवा वि एवं चेव।

एवं जाव मणुस्सेसु।

णवरं-तेइंदिएसु जाव वणस्सइकाइयत्ताए तेइंदियत्ताए चउरिंदिएसु चउरिंदियत्ताए पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु पंचेंदियतिरिक्खजोणियत्ताए मणुस्सेसु मणुस्सत्ताए उववन्न पुव्वे।

सेसं जहा बेइंदियाणं।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-सोहम्मीसाणे य जहा असुरकुमाराणं।

प. अयं णं भंते ! जीवे सणंकुमारे कप्पे बारससु विमाणावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि वेमाणियावासंसि पुढविकाइयत्ताए जाव वणस्सइकाइयत्ताए देवत्ताए देवित्ताए आसण-सयण-भंडमत्तोवगरणत्ताए उववन्नपुव्वे ?

उ. हंता, गोयमा ! जहा असुरकुमाराणं असइं अदुवा अणंतखुत्तो।

नो चेव णं देवित्ताए।

एवं सव्वजीवा वि।

एवं जाव आणय-पाणय-आरणऽच्चुएसु वि।

तिसु वि अट्ठारसुत्तरेसु गेवेज्जविमाणावाससएसु वि एवं चेव।

पृथ्वीकायिक रूप में यावत् वनस्पतिकायिक रूप में, देवरूप में या देवीरूप में अथवा आसन, शयन, भांड, पात्र आदि उपकरण रूप में पहले उत्पन्न हो चुका है?

उ. हाँ, गौतम ! अनेक बार या अनन्त बार उत्पन्न हो चुका है।

सभी जीवों का कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए।

इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त कहना चाहिए।

उनके आवासों की संख्या में अन्तर है।

प्र. दं. १२-१६. भन्ते ! क्या यह जीव असंख्यात लाख पृथ्वीकायिक-आवासों में से प्रत्येक पृथ्वीकायिक-आवास में पृथ्वीकायिक रूप में यावत् वनस्पतिकायिक रूप में पहले उत्पन्न हो चुका है?

उ. हाँ, गौतम ! वह अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हो चुका है।

इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार सर्वजीवों के लिए भी कहना चाहिए।

प्र. दं. १७-२१. भन्ते ! क्या यह जीव असंख्यात लाख द्वीन्द्रिय-आवासों में से प्रत्येक द्वीन्द्रियावास में पृथ्वीकायिक रूप में यावत् वनस्पतिकायिक रूप में और द्वीन्द्रिय रूप में पहले उत्पन्न हो चुका है?

उ. हाँ, गौतम ! अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हो चुका है।

इसी प्रकार सभी जीवों के विषय में भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार (त्रीन्द्रिय से) मनुष्यों पर्यन्त कहना चाहिए।

विशेष-त्रीन्द्रियों में वनस्पतिकायिक रूप से त्रीन्द्रिय रूप पर्यन्त, चतुरिन्द्रियों में चतुरिन्द्रिय रूप पर्यन्त पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक रूप पर्यन्त तथा मनुष्यों में मनुष्यों पर्यन्त में (अनेक बार या अनन्तवार) उत्पत्ति जाननी चाहिए।

शेष समस्त कथन द्वीन्द्रियों के समान जानना चाहिए।

दं. २२-२४. जिस प्रकार असुरकुमारों की उत्पत्ति के लिए कहा उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क तथा सौधर्म एव ईशान वैमानिकों तक जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! क्या वह जीव सनत्कुमार देवलोक के वारह लाख विमानावासों में से प्रत्येक विमानावास में पृथ्वीकायिक रूप में यावत् वनस्पतिकायिक रूप में, देवरूप में या देवीरूप में तथा आसन शयन भण्डोपकरण के रूप में पहले उत्पन्न हो चुका है?

उ. हाँ, गौतम ! असुरकुमारों के समान अनेक वार या अनन्त बार उत्पन्न हो चुका है,

वहाँ वह देवी रूप में उत्पन्न नहीं हुआ है।

इसी प्रकार सर्वजीवों के विपय में भी जानना चाहिए।

इसी प्रकार आनत-प्राणत-आरण और अच्युत विमानों के लिए भी जानना चाहिए।

इसी प्रकार तीन सौ अठारह ग्रैवेयक विमानावासों के लिए भी जानना चाहिए।

प्र. अयं णं भंते ! जीवे पंचसु अणुत्तरविमाणेसु एगमेगंसि अणुत्तरविमाणंसि पुढविकाइयत्ताए जाव वणस्सइकाइयत्ताए देवत्ताए देवित्ताए आसण सयण भंडमत्तोवगरणत्ताए उववन्नपुव्वे ?

उ. हंता, गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो।

णवरं—नो चेव णं देवत्ताए वा, देवित्ताए वा

एवं सव्वजीवा वि। *—विया. स. १२, उ. ७, सु. ५-११*

७४. एगत्त-पुहत्त विवक्खया सव्वजीवाणं मायाइभावेहिं अणंतखुत्तो पुव्वोववन्नत्त परूवणं—

प्र. [illegible] भंते ! जीवे सव्वजीवाणं माइत्ताए, पियत्ताए, [illegible], भगिणित्ताए, भज्जत्ताए, पुत्तत्ताए, धूयत्ताए, [illegible] उववन्नपुव्वे ?

उ. [illegible], गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो।

प्र. [illegible] भंते ! इमस्स जीवस्स माइत्ताए जाव [illegible] उववन्नपुव्वे ?

उ. [illegible], गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो।

प्र. [illegible] भंते ! जीवे सव्वजीवाणं अरित्ताए, वेरियत्ताए, [illegible], [illegible], पडिणीयत्ताए, पच्चामित्तत्ताए [illegible] ?

उ. [illegible], गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो।

सव्वजीवा वि एवं चेव।

प्र. [illegible] भंते ! जीवे सव्वजीवाणं [illegible], जुगरायत्ताए, [illegible], [illegible], कोडुंबियत्ताए, [illegible], [illegible], [illegible], सत्थवाहत्ताए [illegible] ?

उ. [illegible]

[illegible]

प्र. [illegible]

उ. [illegible]

[illegible]

[illegible]

प्र. भन्ते ! क्या यह जीव पाँच अनुत्तरविमानों में से प्रत्येक अनुत्तर विमान में पृथ्वीकायिक रूप में यावत् वनस्पतिकायिक रूप में, देवरूप में या देवी रूप में तथा आसन, शयन, भंडोपकरण के रूप में पूर्व में उत्पन्न हो चुका है ?

उ. हाँ, गौतम ! अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हो चुका है।

विशेष—देवरूप में या देवीरूप में उत्पन्न नहीं हुआ है।

इसी प्रकार सभी जीवों की उत्पत्ति के विषय में भी जानना चाहिए।

७४. एकत्व-बहुत्व की विवक्षा से सब जीवों का मातादि के रूप में अनन्त बार पूर्वोत्पन्नत्व का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! यह जीव, क्या सभी जीवों के माता के रूप में, पिता के रूप में, भाई के रूप में, भगिनी के रूप में, पत्नी के रूप में, पुत्र के रूप में, पुत्री के रूप में, पुत्रवधु के रूप में पहले उत्पन्न हुआ है ?

उ. हाँ, गौतम ! अनेक बार अथवा अनन्त बार पहले उत्पन्न हुआ है।

प्र. भन्ते ! क्या सभी जीव इस जीव के माता के रूप में यावत् पुत्र वधु के रूप में पहले उत्पन्न हुए हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! सब जीव (इस जीव के माता के रूप में यावत् पुत्रवधु के रूप में) अनेक बार अथवा अनन्त बार पहले उत्पन्न हुए हैं।

प्र. भन्ते ! यह जीव क्या सब जीवों के शत्रु रूप में, वैरी के रूप, में, घातक रूप में, वधक रूप में, (विरोधी रूप में) तथा प्रत्यामित्र (शत्रु सहायक) के रूप में पहले उत्पन्न हुआ है ?

उ. हाँ, गौतम ! यह अनेक वार अथवा अनन्त वार पहले उत्पन्न हुआ है।

इसी प्रकार सव जीवों के लिए भी कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! यह जीव क्या सव जीवों के राजा के रूप में, युवराज के रूप में, तलवर के रूप में, माडंविक के रूप में, कौटुम्बिक के रूप में, इभ्य के रूप में, श्रेष्ठी के रूप में, सेनापति के रूप में और सार्थवाह के रूप में पहले उत्पन्न हुआ है ?

उ. हां, गौतम ! यह अनेक वार या अनन्त वार पहले उत्पन्न हुआ है।

इसी प्रकार सव जीवों के लिए भी कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! यह जीव क्या सभी जीवों के दास रूप में, प्रेष्य (नौकर) रूप में, भृतक रूप में, भागीदार रूप में, भोगपुरुष रूप में, शिष्य रूप में और द्वेष्य (द्वेषी) के रूप में पहले उत्पन्न हुआ है ?

उ. हाँ, गौतम ! यह अनेक वार या अनन्त वार पहले उत्पन्न हुआ है।

इसी प्रकार सभी जीव भी अनन्त वार उत्पन्न हुए हैं।

[illegible]. द्वीपसमुद्रों में सर्वजीवों के पूर्वोत्पन्नत्व का प्ररूपण—

प्र. [illegible] ! क्या इन द्वीप-समुद्रों में सब प्राणी, सब भूत, सब जीव और सब सत्त्व पृथ्वीकाय यावत् [illegible] के रूप में पहले उत्पन्न हुए हैं ?

उ. हंता, गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो।

—जीवा. पडि. ३, सु. ८८

७६. णरय पुढवीसु सव्वजीवाणं पुढविकाइयत्ताइ उववन्नपुव्वत्त परूवणं—

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु इक्कमिक्कंसि निरयावासंसि सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता पुढवीकाइयत्ताए जाव वणस्सइकाइयत्ताए नेरइयत्ताए उववन्नपुव्वा ?

उ. हंता, गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो[1]।

एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए,

णवरं—जत्थ जत्तिया णरगा। —जीवा. पडि. ३, सु. ९३

७७. वेमाणियदेवेसु पुव्वोवण्णगत्तजीवाणं अणंतखुत्तो उववण्णपुव्वत्त परूवणं—

प. सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु सव्वपाणा सव्वभूया सव्वजीवा सव्वसत्ता पुढवीकाइयत्ताए जाव देवत्ताए देवित्ताए आसण-सयण-खंभ भंडोवगरणत्ताए उववन्नपुव्वा ?

उ. हंता, गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो।

सेसेसु कप्पेसु एवं चेव।

णवरं—नो चेव णं देवित्ताए जाव गेवेज्जगा।

अणुत्तरोववाइएसु वि एवं णो चेव णं देवत्ताए वा, देवित्ताए वा। —जीवा. पडि. ३, सु. २०५

७८. वाउकाइयस्स अणंतखुत्तो वाउकाइयत्ताए उववज्जण उव्वट्टणाइ परूवणं—

प. वाउयाए णं भंते ! वाउयाए चेव अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाइ ?

उ. हंता, गोयमा ! वाउयाए चेव अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाइ।

प. से णं भंते ! किं पुट्ठे उद्दाइ, अपुट्ठे उद्दाइ ?

उ. गोयमा ! पुट्ठे उद्दाइ, नो अपुट्ठे उद्दाइ।

प. से णं भंते ! किं ससरीरी निक्खमइ, असरीरी निक्खमइ ?

उ. गोयमा ! सिय ससरीरी निक्खमइ, सिय असरीरी निक्खमइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—

उ. हाँ, गौतम ! कई बार या अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं।

७६. नरक पृथ्वियों में सर्वजीवों का पृथ्वीकायिकत्वादि के पूर्वोत्पन्नत्व का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! क्या इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में सब प्राणी, सब भूत, सब जीव और सब सत्व पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक और नैरयिक रूप में पूर्व में उत्पन्न हुए हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! अनेक बार अथवा अनंत बार उत्पन्न हुए हैं।

इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष—जिस पृथ्वी में जितने नरकावास हैं उनका उल्लेख वहाँ करना चाहिए।

७७. वैमानिक देवों में जीवों का अनन्तबार पूर्वोत्पन्नत्व का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! सौधर्म ईशान कल्पों में सब प्राणी, सब भूत, सब जीव और सब सत्व क्या पृथ्वीकाय के रूप में यावत् देव के रूप में देवी के रूप में आसन शयन स्तम्भ भण्डोपकरणक के रूप में पूर्व में उत्पन्न हो चुके हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! अनेक बार या अनन्तबार उत्पन्न हो चुके हैं।

शेष कल्पों में भी ऐसा ही कहना चाहिए।

विशेष—देवी के रूप में ग्रैवेयक विमानों पर्यन्त उत्पन्न होना नहीं कहना चाहिए। (क्योंकि सौधर्म-ईशान से आगे के विमानों में देवियाँ नहीं होती।)

अनुत्तरोपपातिक विमानों में भी इसी प्रकार कहना चाहिये, किन्तु देव और देवी के रूप में भी उत्पत्ति नहीं कहना चाहिए।

७८. वायुकाय का अनन्त बार वायुकाय के रूप में उत्पात उद्वर्तन का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! क्या वायुकाय, वायुकाय में ही अनेक लाख बार मर-मर कर बार-बार उन्हीं में उत्पन्न होता है ?

उ. हाँ, गौतम ! वायुकाय, वायुकाय में ही अनेक लाख बार मर-मर कर बार-बार उन्हीं में उत्पन्न होता है।

प्र. भन्ते ! वायुकाय (स्वकायशस्त्र से या परकायशस्त्र से) स्पृष्ट होकर मरता है या अस्पृष्ट (विना टकराए हुए) ही मरता है ?

उ. हाँ, गौतम ! स्पृष्ट होकर मरता है अस्पृष्ट होकर नहीं मरता है।

प्र. भन्ते ! वायुकाय मरकर (जव दूसरी पर्याय में जाता है तव) शरीर सहित निकलता है या शरीर रहित होकर निकलता है ?

उ. गौतम ! वह शरीर सहित भी निकलता है और शरीर रहित भी निकलता है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि—

१. विया. स. २, उ. ३, सु. १

'सिय ससरीरी निक्खमइ, सिय असरीरी निक्खमइ ?'

उ. गोयमा ! वाउकाइयस्स णं चत्तारि सरीरया पण्णत्ता, तं जहा–

१. ओरालिए. २. वेउव्विए,
३. तेयए, ४. कम्मए।

ओरालिय-वेउव्वियाइ विप्पजहाय तेय-कम्मएहिं निक्खमइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"सिय ससरीरी निक्खमइ, सिय असरीरी निक्खमइ।"

–विया. स. २, उ. १, सु. ७(१-३)

वायुकाय का जीव शरीर सहित भी निकलता है और शरीर रहित भी निकलता है ?

उ. गौतम ! वायुकाय के चार शरीर कहे गए हैं, यथा–

१. औदारिक, २. वैक्रिय,
३. तैजस्, ४. कार्मण।

इनमें से वह औदारिक और वैक्रिय शरीर को छोड़कर दूसरे भव में जाता है इस अपेक्षा से वह शरीर रहित जाता है और तैजस् तथा कार्मण शरीर को साथ लेकर जाता है इस अपेक्षा से वह शरीर सहित जाता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"वायुकाय का जीव शरीर सहित भी निकलता है और शरीर रहित भी निकलता है।"

७९. निस्सीलाइ तिरिक्खजोणियाणं सिय नेरइयोप्पत्ति परूवणं–

प. अह भंते ! गोलंगूलवसभे, मंडुक्कवसभे-एए णं निस्सीला निव्वया निग्गुणा निम्मेरा निप्पच्चक्खाणपोसहोववासा कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उक्कोसं सागरोवमट्ठिईयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जेज्जा ?

उ. समणे भगवं महावीरे वागरेइ उववज्जमाणे उववन्ने त्ति वत्तव्वं सिया।[1]

प. अह भंते ! सीहे, वग्घे, वगे, दीविए, अच्छे, तरच्छे, परस्सरे एए णं निस्सीला **जाव** निप्पच्चक्खाणपोसहोववासा कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उक्कोसेणं सागरोवमट्ठिईयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जेज्जा ?

उ. समणे भगवं महावीरे वागरेइ-उववज्जमाणे उववन्ने त्ति वत्तव्वं सिया।[२]

प. अह भंते ! ढंके, कंके, विलए, मद्दुए, सिंखी-एए णं निस्सीला जाव निप्पच्चक्खाण पोसहोववासा कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उक्कोसं सागरोवमट्ठिईयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जेज्जा ?

उ. समणे भगवं महावीरे वागरेइ-उववज्जमाणे उववन्ने त्ति वत्तव्वं सिया।[३]

–विया. स. १२, उ. ८, सु. ५-७

७९. शीलादि रहित तिर्यञ्चयोनिकों की कदाचित् नरक में उत्पत्ति का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! यदि श्रेष्ठ वानर, श्रेष्ठ मुर्गा और श्रेष्ठ मेंढक ये सभी शील रहित व्रत रहित गुण रहित, मर्यादाहीन प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से रहित हो तो काल मास में मर कर इस रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट एक सागरोपम की स्थिति वाले नरकों में नैरयिक रूप में उत्पन्न होते हैं ?

उ. श्रमण भगवान महावीर कहते हैं कि–"उत्पन्न होता हुआ उत्पन्न होता है ऐसा कहा जा सकता है।"

प्र. भन्ते ! यदि सिंह, व्याघ्र, भेड़िया, चीता, रींछ, जरख और गेंडा ये सभी शील रहित **यावत्** प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से रहित हो तो काल मास में मर कर इस रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट एक सागरोपम की स्थिति वाले नरकों में नैरयिक रूप में उत्पन्न होते हैं ?

उ. श्रमण भगवान् महावीर कहते हैं कि–"उत्पन्न होता हुआ उत्पन्न होता है ऐसा कहा जा सकता है।"

प्र. भन्ते ! यदि ढंक, कंक, विलक, मद्दुक और सिखी ये सभी शील रहित **यावत्** प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से रहित हो तो काल मास में मर कर इस रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट एक सागरोपम की स्थिति वाले नरकों में नैरयिक रूप में उत्पन्न होते हैं ?

उ. श्रमण-भगवान महावीर कहते हैं कि–"उत्पन्न होता हुआ उत्पन्न होता है ऐसा कहा जा सकता है।"

८०. निस्सीलाइ ससीलाइ मणुस्साणं उप्पत्ति परूवणं–

तओ लोए णिस्सीला णिव्वया निग्गुणा निम्मेरा णिप्पच्चक्खाण पोसहोववासा कालमासे कालं किच्चा अहेसत्तमाए पुढवीए अप्पइट्ठाणं णरए णेरइयत्ताए उववज्जंति, तं जहा–

८०. दुःशील सुशील मनुष्यों की उत्पत्ति का प्ररूपण–

लोक में दुःशील, निव्रत-व्रत रहित, निवृत्त, निर्गुण, अमर्यादित, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से रहित ये तीनों काल मास में काल करके सातवीं नरक पृथ्वी के अप्रतिष्ठान नरक में नैरयिक के रूप में उत्पन्न होते हैं, यथा–

१-३. यहाँ पर प्रश्न और उत्तर का सम्बन्ध नहीं जुड़ता है अतः प्रश्न और उत्तर के बीच में निम्न उत्तर व प्रश्न छूट गया है ऐसा प्रतीत होता है, यथा–

उ. हंता, उववज्जेज्जा

प्र. से णं भंते ! किं उववज्जमाणे उववन्ने त्ति वत्तव्वं सिया ?

१. रायाणो,

२. मंडलिया,

३. जे य महारंभा कोडुंबी।

तओ लोए सुसीला सुव्वया सगुणा समेरा सपच्चक्खाण पोसहोववासा कालमासे कालं किच्चा सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे देवत्ताए उववत्तारो भवंति, तं जहा–

१. रायाणो परिचत्तकामभोगा।

२. सेणावती (परिचत्तकामभोगा)

३. पसत्थारो (परिचत्तकामभोगा)–*ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १५८*

१. राजा–चक्रवर्ती आदि,

२. माण्डलिक राजा (महारम्भ करने वाला),

३. महारम्भ करने वाला–कोटुम्बिक पुरुष।

लोक में सुशील, सुव्रत, सुगुण, मर्यादित, प्रत्याख्यान औ[र] पौषधोपवास से सहित ये तीन काल मास में काल करके (उत्कृष्[ट]) सवार्थसिद्ध विमान में देवता के रूप में उत्पन्न होते हैं, यथा–

१. कामभोगों को त्यागने वाला राजा,

२. (काम भोगों को त्यागने वाला) सेनापति,

३. (काम भोगों को त्यागने वाला) प्रशस्त –मंत्री।

८१. चउव्विहे पवेसणए–

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिज्जे गंगेए नामं अणगारे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ तेणेव उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते ठिच्चा समणं भगवं महावीरं एवं वयासी–

–विया. स. ९, उ. ३२, सु. २

प. कइविहे णं भंते ! पवेसणए पण्णत्ते ?

उ. गंगेया ! चउव्विहे पवेसणए पण्णत्ते, तं जहा–

१. नेरइयपवेसणए,

२. तिरिक्खजोणिय पवेसणए,

३. मणुस्सपवेसणए,

४. देवपवेसणए *–विया. स. ९, उ. ३२, सु. १४*

८१. चार प्रकार के प्रवेशनक–

उस काल और उस समय में पार्श्वापत्य गांगेय नामक अनगार [थे] वे जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे वहाँ आये और श्रमण भगवा[न्] महावीर के न अतिनिकट और न अतिदूर खड़े रहकर उन्हो[ंने] श्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार पूछा–

प्र. भन्ते ! प्रवेशनक (उत्पत्तिस्थान) कितने प्रकार का क[हा] गया है ?

उ. गांगेय ! प्रवेशनक चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. नैरयिक-प्रवेशनक,

२. तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक,

३. मनुष्य-प्रवेशनक,

४. देव-प्रवेशनक।

८२. नेरइए पवेसणगस्स भेय परूवणं–

प. नेरइयपवेसणए णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गंगेया ! सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. रयणप्पभा पुढविनेरइयपवेसणए जाव

७. अहेसत्तमा पुढविनेरइयपवेसणए।

–विया. स. ९, उ. ३२, सु. १५

८२. नैरयिक प्रवेशनकं के भेदों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! नैरयिक प्रवेशनक कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गांगेय ! वह सात प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक-प्रवेशनक यावत्

७. अधःसप्तमपृथ्वी नैरयिक-प्रवेशनक।

८३. सत्त नरयपुढविं पडुच्च वित्थरओ नेरइयपवेसणए पविसमाणाणं भंग परूवणं–

एग नेरइयस्स विवक्खा–

प. एगे भंते ! नेरइए नेरइयपवेसणए णं पविसमाणे किं रयणप्पभाए होज्जा जाव अहेसत्तमाए होज्जा ?

उ. गंगेया !

१. रयणप्पभाए वा होज्जा,

२. सक्करप्पभाए वा होज्जा,

३. वालुयप्पभाए वा होज्जा,

४. पंकप्पभाए वा होज्जा,

५. धूमप्पभाए वा होज्जा,

६. तमप्पभाए वा होज्जा,

७. अहेसत्तमाए वा होज्जा।

–विया. स. ९, उ. ३२, सु. १६

८३. सात नरक पृथ्वियों की अपेक्षा विस्तार से नैरयिक प्रवेशन[क] में प्रवेश करने वालों के भंगों का प्ररूपण–

एक नैरयिक की विवक्षा–

प्र. भन्ते ! क्या एक नैरयिक-नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवे[श] करता हुआ रत्नप्रभा में उत्पन्न होता है यावत् अधःसप्त[म] पृथ्वी में उत्पन्न होता है ?

उ. गांगेय ! (एक नैरयिक)

१. रत्नप्रभा में भी उत्पन्न होता है।

२. शर्कराप्रभा में भी उत्पन्न होता है।

३. वालुकाप्रभा में भी उत्पन्न होता है।

४. पंकप्रभा में भी उत्पन्न होता है।

५. धूमप्रभा में भी उत्पन्न होता है।

६. तमःप्रभा में भी उत्पन्न होता है।

७. अधःसप्तम में भी उत्पन्न होता है।

(ये असंयोगी के सात भंग हैं)

८४. दोण्हं नेरइयाणं विवक्खा–

प. दो भंते ! नेरइया नेरइयपवेसणए णं पविसमाणा किं रयणप्पभाए होज्जा जाव अहेसत्तमाए होज्जा ?

उ. १-७ गंगेया !

(१) रयणप्पभाए वा होज्जा जाव (७) अहेसत्तमाए वा होज्जा।

१. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए होज्जा।

२. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए होज्जा।

३-४-५-६. एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

७. अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए होज्जा।

८-९-१०-११. एवं जाव अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

१२. अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए होज्जा।

१३-१४-१५. एवं जाव अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

१६-१७-१८-१९-२०-२१. एवं एक्केक्का पुढवी छड्डेयव्वा जाव अहवा एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

(एए अट्ठावीसं भंगा) *–विया. स. ९, उ. ३२, सु. १७*

८४. दो नैरयिकों की विवक्षा–

प्र. भन्ते ! दो नैरयिक-नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में उत्पन्न होते हैं यावत् अधःसप्तम में उत्पन्न होते हैं ?

उ. १-७ गांगेय ! (वे दोनों नैरयिक)

(१) रत्नप्रभा में भी उत्पन्न होते हैं यावत् (७) अधःसप्तम में भी उत्पन्न होते हैं।

१. अथवा एक रत्नप्रभा में उत्पन्न होता है और एक शर्कराप्रभा में उत्पन्न होता है।

२. अथवा एक रत्नप्रभा में उत्पन्न होता है और एक वालुकाप्रभा में उत्पन्न होता है।

३-४-५-६. इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभापृथ्वी में उत्पन्न होता है और एक अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होता है।

७. अथवा एक शर्कराप्रभा पृथ्वी में उत्पन्न होता है और एक वालुकाप्रभा पृथ्वी में उत्पन्न होता है।

८-९-१०-११. इसी प्रकार यावत् एक शर्कराप्रभापृथ्वी में उत्पन्न होता है और एक अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होता है।

१२. अथवा एक वालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभा में उत्पन्न होता है।

१३-१४-१५. अथवा इसी प्रकार यावत् एक वालुकाप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होता है।

१६-१७-१८-१९-२०-२१. इसी प्रकार (पूर्व-पूर्व की) एक-एक पृथ्वी छोड़ देनी चाहिए यावत् एक तमःप्रभा में और एक तमस्तमःप्रभापृथ्वी में उत्पन्न होता है।

(ये अट्ठाईसभंग हैं)[1]

८५. तिण्णि नेरइयाणं विवक्खा–

प. तिण्णि भंते ! नेरइया नेरइयपवेसणए णं पविसमाणा किं रयणप्पभाए होज्जा जाव अहेसत्तमाए होज्जा ?

उ. गंगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा।

१. अहवा एगे रयणप्पभाए, दो सक्करप्पभाए होज्जा।

२-३-४-५-६. जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, दो अहेसत्तमाए होज्जा। (६)

७. अहवा दो रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए होज्जा,

जाव अहवा दो रयणप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा। (१२)

१३-१७. अहवा एगे सक्करप्पभाए, दो वालुयप्पभाए होज्जा।

८५. तीन नैरयिकों की विवक्षा–

प्र. भन्ते ! तीन नैरयिक जीव नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभापृथ्वी में उत्पन्न होते हैं यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गांगेय ! वे तीनों नैरयिक (एक साथ) रत्नप्रभा में उत्पन्न होते हैं यावत् अधःसप्तम में उत्पन्न होते हैं।

१. अथवा एक रत्नप्रभा में और दो शर्कराप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

२-३-४-५-६. अथवा यावत् एक रत्नप्रभा में और दो अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।[2] (६)

७. अथवा दो नैरयिक रत्नप्रभा में और एक नैरयिक शर्कराप्रभा में उत्पन्न होता है।

अथवा यावत् दो नैरयिक रत्नप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[3] (१२)

१३-१७. अथवा एक शर्कराप्रभा में और दो बालुकाप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

---

१. रत्नप्रभा के साथ ६, शर्कराप्रभा के साथ ५, वालुकाप्रभा के साथ ४, पंकप्रभा के साथ ३, धूमप्रभा के साथ २, तमःप्रभा के साथ १, ये कुल २१ और असंयोगी ७ कुल २८ भंग होते हैं।

२. इस प्रकार १-२ का रत्नप्रभा के साथ अनुक्रम से दूसरे नारकों के साथ संयोग करने से छह भंग होते हैं।

३. इस प्रकार २-१ के भी पूर्ववत् ६ भंग होते हैं। (१२)

जाव अहवा एगे सक्करप्पभाए, दो अहेसत्तमाए होज्जा।(१७)

अथवा यावत् एक शर्कराप्रभा में और दो अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[१] (१७)

१८-२२. अहवा दो सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए होज्जा।

१८-२२. अथवा दो शर्कराप्रभा में और एक वालुकाप्रभा में उत्पन्न होता है।

जाव अहवा दो सक्करप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।(२२)

अथवा यावत् दो शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[२] (२२)

एवं जहा सक्करप्पभाए वत्तव्वया भणिया तहा सव्वपुढवीणं भाणियव्वा जाव अहवा दो तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।(४२)

जिस प्रकार शर्कराप्रभा का कथन किया गया उसी प्रकार सातों नारकों का कथन दो तमःप्रभा में यावत् एक तमस्तमः प्रभा में उत्पन्न होता है, वहाँ तक जानना चाहिए।[३] (४२)

१. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए होज्जा।

१. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और एक वालुकाप्रभा में उत्पन्न होता है।

२. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे पंकप्पभाए होज्जा।

२. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और एक पंकप्रभा में उत्पन्न होता है।

३-४-५. जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

३-४-५. अथवा यावत् एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और एक अधः सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[४]

६. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए होज्जा।

६. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभा में उत्पन्न होता है।

७. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए एगे धूमप्पभाए होज्जा।

७. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक धूमप्रभा में उत्पन्न होता है।

८-९. एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

८-९. इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाकाप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[५]

१०. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए होज्जा।

१०. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक धूमप्रभा में उत्पन्न होता है।

११-१२. जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

११-१२. अथवा यावत् एक रत्नप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्नहोता है।[६]

१३. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए होज्जा।

१३. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमःप्रभा में उत्पन्न होता है।

१४. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

१४. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होता है।[७]

१५. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

१५. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[८]

१६. अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए होज्जा।

१६. अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभा में उत्पन्न होता है।

१७. अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे धूमप्पभाए होज्जा।

१७. अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक धूमप्रभा में उत्पन्न होता है।

---

१. इस प्रकार शर्कराप्रभा के साथ १-२ के पाँच भंग होते हैं।(१७)
२. इस प्रकार २-१ के पूर्ववत् पाँच भंग होते हैं।
३. इस प्रकार ६+६+५+५ = २२ तथा ४+४+३+३+२+२+१+१ = कुल ४२ भंग हुए।
४. इस प्रकार रत्नप्रभा और शर्कराप्रभा के साथ ५ विकल्प होते हैं।
५. इस प्रकार रत्नप्रभा और वालुकाप्रभा के साथ ४ विकल्प होते हैं।
६. इस प्रकार वालुकाप्रभा को छोड़ने पर रत्नप्रभा और पंकप्रभा के साथ तीन विकल्प होते हैं।
७. इस प्रकार पंकप्रभा को छोड़ने पर रत्नप्रभा और धूनप्रभा के साथ दो विकल्प होते हैं।
८. धूमप्रभा को छोड़ देने पर यह एक विकल्प होता है, इस प्रकार रत्नप्रभा के ५-४-३-२-१ = १५ विकल्प होते हैं।(१५)

१८-१९. अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

२०. अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए होज्जा।

२१-२२. जाव अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

२३. अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए होज्जा।

२४. अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

२५. अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

२६. अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए होज्जा।

२७. अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे तमाए होज्जा।

२८. अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

२९. अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए होज्जा।

३०. अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

३१. अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

३२. अहवा एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए होज्जा।

३३. अहवा एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

३४. अहवा एगे पंकप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

३५. अहवा एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

(एए चउरासीइ भंगा) *–विया. स. ९, उ. ३२ सु. १८*

१८-१९. अथवा एक शर्कराप्रभा में एक वालुकाप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होता है।[1]

२०. अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक धूमप्रभा में उत्पन्न होता है।

२१-२२. अथवा यावत् एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[2]

२३. अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमःप्रभा में उत्पन्न होता है।

२४. अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[3]

२५. अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[4]

२६. अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक धूमप्रभा में उत्पन्न होता है।

२७. अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक तमःप्रभा में उत्पन्न होता है।

२८. अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।

२९. अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमःप्रभा में उत्पन्न होता है।

३०. अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होता है।

३१. अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होता है।[5]

३२. अथवा एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमःप्रभा में उत्पन्न होता है।

३३. अथवा एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[6]

३४. अथवा एक पंकप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[7]

३५. अथवा एक धूमप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होता है।[8]

(ये चौरासी भंग हैं।)[9]

---

१. इस प्रकार शर्कराप्रभा और वालुकाप्रभा के साथ चार विकल्प होते हैं।
२. इस प्रकार वालुकाप्रभा को छोड़ देने पर शर्कराप्रभा और पंकप्रभा के साथ तीन विकल्प होते हैं।
३. इस प्रकार पंकप्रभा को छोड़ देने पर शर्कराप्रभा और धूमप्रभा के साथ दो विकल्प होते हैं।
४. ये शर्कराप्रभा के साथ ४+३+२+१ = १० विकल्प होते हैं।
५. इस प्रकार वालुकाप्रभा के साथ ३+२+१ = ६ विकल्प होते हैं।
६. इस प्रकार पंकप्रभा और धूमप्रभा के साथ दो विकल्प होते हैं।
७. इस प्रकार पंकप्रभा के साथ २+१ = ३ विकल्प होते हैं। (३)
८. इस प्रकार धूमप्रभा के साथ एक विकल्प होता है।
९. [illegible] शर्कराप्रभा के १०, वालुकाप्रभा के ६, पंकप्रभा के ३, धूमप्रभा का एक ये त्रिकसंयोगी के ३५ भंग हैं (असंयोगी के ७, द्विक संयोगी के ४२, त्रिक संयोगी के ३५ ये सब कुल ८४ भंग होते हैं।

८६. चत्तारि नेरइयाणं विवक्खा–

प. चत्तारि भंते ! नेरइया नेरइयपवेसणए णं पविसमाणा किं रयणप्पभाए होज्जा जाव अहेसत्तमाए होज्जा ?

उ. गंगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा।(१-७)

१. अहवा एगे रयणप्पभाए, तिण्णि सक्करप्पभाए होज्जा।

२. अहवा एगे रयणप्पभाए, तिण्णि वालुयप्पभाए होज्जा।

३-६. एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, तिण्णि अहेसत्तमाए होज्जा।(६)

१. अहवा दो रयणप्पभाए, दो सक्करप्पभाए होज्जा।

२-६. एवं जाव अहवा दो रयणप्पभाए, दो अहेसत्तमाए होज्जा।(१२)

१. अहवा तिण्णि रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए होज्जा।

२-६. एवं जाव अहवा तिण्णि रयणप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।(१८)

१. अहवा एगे सक्करप्पभाए, तिण्णि वालुयप्पभाए होज्जा।

२-१५. एवं जहेव रयणप्पभाए उवरिमाहिं समं चारियं तहा सक्करप्पभाए वि उवरिमाहिं समं चारियव्वं ।(३३)

एवं एक्केक्काए समं चारेयव्वं ।

जाव (अहवा तिण्णि तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।) (६३)

१. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, दो वालुयप्पभाए होज्जा।

२. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, दो पंकप्पभाए होज्जा।

३-५. एवं जाव एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, दो अहेसत्तमाए होज्जा।(५)

८६. चार नैरयिकों की विवक्षा –

प्र. भन्ते ! नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए चार नैरयिक क्या रत्नप्रभा में उत्पन्न होते हैं यावत् अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गांगेय ! वे चार नैरयिक रत्नप्रभा में भी उत्पन्न होते हैं यावत् अधःसप्तम पृथ्वी में भी उत्पन्न होते हैं।[1](१-७)

१. अथवा एक रत्नप्रभा में और तीन शर्कराप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

२. अथवा एक रत्नप्रभा में और तीन वालुकाप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

३-६. इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में और तीन अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।[2] (६)

१. अथवा दो रत्नप्रभा में और दो शर्कराप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

२-६. इसी प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में और दो अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।[3] (१२)

१. अथवा तीन रत्नप्रभा में और एक शर्कराप्रभा में उत्पन्न होता है।

२-६. इसी प्रकार यावत् अथवा तीन रत्नप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[4] (१८)

१. अथवा एक शर्कराप्रभा में और तीन वालुकाप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

२-१५. जिस प्रकार रत्नप्रभा का नरकपृथ्वियों के साथ योग किया, उसी प्रकार शर्कराप्रभा का भी उसके आगे की नरकों के साथ योग करना चाहिए।[5] (३३)

इसी प्रकार आगे की एक-एक (वालुकाप्रभा पंकप्रभा आदि) नरकपृथ्वियों के साथ योग करना चाहिए।[6]

यावत् अथवा तीन तमःप्रभा में और एक तमस्तमःप्रभा में उत्पन्न होता है, यहाँ तक कहना चाहिए।[7] (६३)

(त्रिकसंयोगी १०५ भंग–)

१. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और दो वालुकाप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

२. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और दो पंकप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

३-५. इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और दो अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।[8] (५)

---

१. इस प्रकार असंयोगी ७ विकल्प और ७ ही भंग होते हैं।
२. इस प्रकार रत्नप्रभा के साथ १+३ के ६ भंग होते हैं।
३. इस प्रकार रत्नप्रभा के साथ २-२ के छह भंग होते हैं।(१२)
४. इस प्रकार रत्नप्रभा के साथ ३-१ के ६ भंग हुए यों रत्नप्रभा के साथ ६+६+६ = १८ भंग होते हैं।
५. इस प्रकार शर्कराप्रभा के साथ १-३ के ५ भंग, २-२ के ५ भंग, एवं ३-१ के ५ भंग यों कुल मिलाकर १५ भंग हुए।(३३)
६. इस प्रकार वालुकाप्रभा के साथ भी १-३ के ४, २-२ के ४ और ३-१ के ४ यों कुल १२ भंग, पंकप्रभा के साथ १-३ के ३, २-२ के ३ और ३-१ के ३ यों कुल ९ भंग, तथा धूमप्रभा के साथ १-३ के २, २-२ के २ और ३-१ के २ यों कुल ६ तथा तमःप्रभा के साथ १-३ का १, २-२ का १ और ३-१ का १ यों कुल ३भंग होते हैं।
७. इस प्रकार रत्नप्रभा के १८, शर्कराप्रभा के १५, वालुकाप्रभा के १२, पंकप्रभा के ९, धूमप्रभा के ६ और तमःप्रभा के ३ ये द्विकसंयोगी कुल ६३ भंग हुए।
८. इस प्रकार १-१-२ के पाँच भंग हुए।(९)

[illegible] अहवा एगे [illegible], दो सक्करप्पभाए, एगे [illegible] होज्जा।

१. अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और एक वालुकाप्रभा में उत्पन्न होता है।

[illegible] एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, दो [illegible], एगे अहेसत्तमाए होज्जा।(१०)

२-५. इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में दो शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[1](१०)

[illegible] अहवा दो [illegible], एगे सक्करप्पभाए, एगे [illegible] होज्जा।

१. अथवा दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और एक वालुकाप्रभा में उत्पन्न होता है।

[illegible] एवं जाव अहवा दो रयणप्पभाए, एगे [illegible], एगे अहेसत्तमाए होज्जा।(१५)

२-५. इसी प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[2](१५)

अहवा एगे [illegible], एगे वालुयप्पभाए, दो [illegible] होज्जा।(१६)

१. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और दो पंकप्रभा में उत्पन्न होते हैं।(१६)

[illegible] एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे [illegible], दो अहेसत्तमाए होज्जा।(१९)

२-४. इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और दो अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।[3](१९)

[illegible] तिण्हं तियसंजोगो तहा [illegible] जाव अहवा दो धूमप्पभाए, एगे तमाए, एगे [illegible] होज्जा।(१०५)

इसी प्रकार के अभिलाप द्वारा जैसे तीन नैरयिक के त्रिकसंयोगी भंग कहे, उसी प्रकार चार नैरयिकों के भी त्रिकसंयोगी भंग जानना चाहिए यावत् दो धूमप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक तमस्तमःप्रभा में उत्पन्न होता है।[4](१०५)

(चतुःसंयोगी ३५ भंग–)

[illegible] एगे सक्करप्पभाए, एगे [illegible]

१. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभा में उत्पन्न होता है।

[illegible] एगे सक्करप्पभाए, एगे [illegible]

२. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक धूमप्रभा में उत्पन्न होता है।

[illegible] एगे सक्करप्पभाए, एगे [illegible]

३. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में एक वालुकाप्रभा में और एक तमःप्रभा में उत्पन्न होता है।

[illegible] एगे सक्करप्पभाए, एगे [illegible]

४. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होता है। (ये चार भंग हुए।)

[illegible]

५. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक धूमप्रभा में उत्पन्न होता है।

[illegible]

६. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक तमःप्रभा में उत्पन्न होता है।

[illegible]

७. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होता है। (इस प्रकार ये तीन भंग हुए।)

[illegible]

८. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमःप्रभा में उत्पन्न होता है।

[illegible]

९. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है। (इस प्रकार ये दो भंग हुए।)

[illegible]

१०. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक [illegible] में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होता है। [illegible]

[illegible]

११. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए होज्जा।

११. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक धूमप्रभा में उत्पन्न होता है।

१२. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे तमाए होज्जा।

१२. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक तमःप्रभा में उत्पन्न होता है।

१३. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

१३. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है। (ये तीन भंग हुए।)

१४. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए होज्जा।

१४. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमःप्रभा में उत्पन्न होता है।

१५. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

१५. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होता है। (ये दो भंग हुए।)

१६. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

१६. अथवा एक रत्नप्रभा में, वालुकाप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है। (यह एक भंग हुआ।)

१७. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए होज्जा।

१७. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमः प्रभा में उत्पन्न होता है।

१८. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

१८. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है। (ये दो भंग हुए।)

१९. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

१९. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होता है। (यह एक भंग हुआ।)[1]

२०. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

२०. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है। (यह एक भंग हुआ।)

१. अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए होज्जा।

एवं जहा रयणप्पभाए उवरिमाओ पुढवीओ चारियाओ तहा सक्करप्पभाए वि उवरिमाओ चारियव्वाओ,

१. अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक धूमप्रभा में उत्पन्न होता है।

जिस प्रकार रत्नप्रभा का उससे आगे की पृथ्वियों के साथ योग किया उसी प्रकार शर्कराप्रभा का उससे आगे की पृथ्वियों के साथ योग करना चाहिए।

२-१०. जाव अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा। (३०)

२-१०. यावत् अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[2] (३०)

३१. अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए होज्जा।

३१. अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमःप्रभा में उत्पन्न होता है।

३२. अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

३२. अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।

३३. अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

३३. अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[3]

३४. अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

३४. अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।

---

१. इस प्रकार रत्नप्रभा के संयोग वाले ४+३+२+१+३+२+१+२+१+१ = २० भंग होते हैं।
२. इस प्रकार शर्कराप्रभा के संयोग वाले १० भंग होते हैं। (३०)
३. इस प्रकार वालुकाप्रभा के संयोग वाले ४ भंग हुए।

१. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, तिण्णि वालुयप्पभाए होज्जा।

२-५. एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, तिण्णि अहेसत्तमाए होज्जा (५)

१. अहवा एगे रयणप्पभाए, दो सक्करप्पभाए, दो वालुयप्पभाए होज्जा।

२-५. एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, दो सक्करप्पभाए, दो अहेसत्तमाए होज्जा।(१०)

१. अहवा दो रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, दो वालुयप्पभाए होज्जा।

२-५. एवं जाव अहवा दो रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, दो अहेसत्तमाए होज्जा।(१५)

१. अहवा एगे रयणप्पभाए, तिण्णि सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए होज्जा।

२-५. एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, तिण्णि सक्करप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।(२०)

१. अहवा दो रयणप्पभाए, दो सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए होज्जा।

२-५. एवं जाव दो रयणप्पभाए, दो सक्करप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।(२५)

१. अहवा तिण्णि रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए होज्जा।

२-५. एवं जाव अहवा तिण्णि रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।(३०)

१. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, तिण्णि पंकप्पभाए होज्जा।

एवं एएणं कमेणं जहा चउण्हं तियसंजोगो भणिओ तहा पंचण्ह वि तियसंजोगो भाणियव्वो,

णवरं–तत्थ एगो संचारिज्जइ, इह दोण्णि,

सेसं तं चेव,

जाव अहवा तिण्णि धूमप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।(२१०)

१. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, दो पंकप्पभाए होज्जा।

(त्रिक संयोगी २१० भंग–)

१. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और तीन वालुकाप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

२-५. इसी प्रकार यावत्–अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और तीन अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।[1](५)

१. अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और दो वालुकाप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

२-५. इसी प्रकार यावत्–अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और दो अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।(१०)

१. अथवा दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और दो वालुकाप्रभा में उत्पन्न होते हैं।[2]

२-५. इसी प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और दो अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।[3] (१५)

१. अथवा एक रत्नप्रभा में, तीन शर्कराप्रभा में और एक वालुकाप्रभा में उत्पन्न होता है।

२-५. इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, तीन शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[4] (२०)

१. अथवा दो रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और एक वालुकाप्रभा में उत्पन्न होता है।

२-५. इसी प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[5] (२५)

१. अथवा तीन रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और एक वालुकाप्रभा में उत्पन्न होता है।

२-५. इसी प्रकार यावत् अथवा तीन रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होता है।[6] (३०)

१. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और तीन पंकप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

इस क्रम से जिस प्रकार चार नैरयिकों के त्रिकसंयोगी भंग कहे हैं उसी प्रकार पांच नैरयिकों के भी त्रिकसंयोगी भंग जानना चाहिए।

विशेष–वहाँ एक का संचार था, (उसके स्थान पर) यहाँ दो का संचार करना चाहिए।

शेष सब पूर्ववत् जान लेना चाहिए,

यावत् अथवा तीन धूमप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[7] (२१०)

(चतुःसंयोगी के १४० भंग–)

१. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और दो पंकप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

---

१. इस प्रकार एक-एक और तीन के रत्नप्रभा शर्कराप्रभा के साथ संयोग से पाँच भंग होते हैं।(५)
२. इस प्रकार एक, दो के संयोग से पाँच भंग होते हैं।(१०)
३. इस प्रकार दो, एक, दो के संयोग से ५ भंग होते हैं।(१५)
४. इस प्रकार एक, तीन, एक के संयोग से ५ भंग होते हैं।(२०)
५. इस प्रकार दो, दो, एक के संयोग से पाँच भंग होते हैं।(२५)
६. इस प्रकार तीन, एक-एक के संयोग से ५ भंग होते हैं।(३०)
७. त्रिकसंयोगी भंग–इनमें से रत्नप्रभा के संयोग वाले ९०, शर्कराप्रभा के संयोग वाले ६०, वालुकाप्रभा के संयोग वाले ३६, पंकप्रभा के संयोग वाले १८ और धूमप्रभा के संयोग वाले ६ भंग होते हैं।(ये सभी ९०-६०-३६-१८-६ = २१० भंग त्रिकसंयोगी होते हैं।

३५. अहवा एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।(३५)

-विया. स. ९, उ. ३२ सु. १९

८७. पंच नेरइयाणं विवक्खा-

प. पंच भंते ! नेरइया नेरइयप्पवेसणए णं पविसमाणा किं रयणप्पभाए होज्जा जाव अहेसत्तमाए होज्जा ?

उ. गंगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा।(१-७)

१. अहवा एगे रयणप्पभाए, चत्तारि सक्करप्पभाए होज्जा।

२-६. जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, चत्तारि अहेसत्तमाए होज्जा।(६)

१. अहवा दो रयणप्पभाए, तिण्णि सक्करप्पभाए होज्जा,

२-६. एवं जाव अहवा दो रयणप्पभाए, तिण्णि अहेसत्तमाए होज्जा।(१२)

१. अहवा तिण्णि रयणप्पभाए, दो सक्करप्पभाए होज्जा।

२-६. एवं जाव अहेसत्तमाए होज्जा।(१८)

१. अहवा चत्तारि रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए होज्जा।

२-६. एवं जाव अहवा चत्तारि रयणप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।(२४)

१. अहवा एगे सक्करप्पभाए, चत्तारि वालुयप्पभाए होज्जा।

एवं जहा रयणप्पभाए समं उवरिमपुढवीओ चारियाओ तहा सक्करप्पभाए वि समं चारेयव्वाओ।

२-२०. जाव अहवा चत्तारि सक्करप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।(२०)

एवं एक्केक्काए समं चारेयव्वाओ।

जाव अहवा चत्तारि तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।(८४)

३५. अथवा एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[1](३५)

८७. पाँच नैरयिकों की विवक्षा -

प्र. भन्ते ! पाँच नैरयिक जीव नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए रत्नप्रभा में उत्पन्न होते हैं यावत् अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गांगेय ! रत्नप्रभा में भी उत्पन्न होते हैं यावत् अधःसप्तम पृथ्वी में भी उत्पन्न होते हैं।[2] (१-७)

(द्विक संयोगी ८४ भंग-)

१. अथवा एक रत्नप्रभा में और चार शर्कराप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

२-६ यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में और चार अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।(६)

१. अथवा दो रत्नप्रभा में और तीन शर्कराप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

२-६. इसी प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में और तीन अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।(१२)

१. अथवा तीन रत्नप्रभा में और दो शर्कराप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

२-६. इसी प्रकार यावत् (अथवा तीन रत्नप्रभा में और दो) अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।[3] (१८)

१. अथवा चार रत्नप्रभा में और एक शर्कराप्रभा में उत्पन्न होता है।

२-६. इसी प्रकार यावत् अथवा चार रत्नप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।(२४)

१. अथवा एक शर्कराप्रभा में और चार वालुकाप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

जिस प्रकार रत्नप्रभा के साथ (१-४, २-३, ३-२ और ४-१ से आगे की पृथ्वियों का संयोग किया, उसी प्रकार शर्कराप्रभा के साथ संयोग करने पर बीस भंग (५-५-५-५ = २०) होते हैं।

२-२०. यावत् अथवा चार शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।(२०)

इसी प्रकार (वालुकाप्रभा आदि) एक एक पृथ्वी के साथ आगे की पृथ्वियों का (१-४, २-३, ३-२ और ४-१ से) योग करना चाहिए।

यावत् अथवा चार तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[4] (८४)

---

१. इस प्रकार सब मिलाकर चतुःसंयोगी भंग २०+१०+४+१ = ३५ होते हैं, तथा चार नैरयिक आश्रयी असंयोगी ७, द्विकसंयोगी ६३, त्रिकसंयोगी १०५ और चतुःसंयोगी ३५ ये सब २१० भंग होते हैं।

२. इस प्रकार असंयोगी सात भंग होते हैं।

३. इस प्रकार रत्नप्रभा के साथ शेष पृथ्वियों के संयोग से कुल चौवीस भंग होते हैं।

४. द्विकसंयोगी भंग-इनमें से रत्नप्रभा के ६ भंगों के साथ ४ विकल्पों का गुणा करने पर २४ भंग होते हैं। शर्कराप्रभा के साथ ५ भंगों से ४ विकल्पों का गुणा करने पर २०, वालुकाप्रभा के साथ १६, पंकप्रभा के साथ १२, धूमप्रभा के साथ ८ और तमःप्रभा के साथ ४ भंग होते हैं। इस प्रकार कुल २४+२०+१६+१२+८+४ = ८४ भंग द्विकसंयोगी के होते हैं।

	(त्रिक संयोगी २१० भंग–)
अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, तिण्णि लुयप्पभाए होज्जा।	१. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और तीन वालुकाप्रभा में उत्पन्न होते हैं।
५. एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे क्करप्पभाए, तिण्णि अहेसत्तमाए होज्जा (५)	२-५. इसी प्रकार यावत्–अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और तीन अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।[1](५)
अहवा एगे रयणप्पभाए, दो सक्करप्पभाए, दो लुयप्पभाए होज्जा।	१. अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और दो वालुकाप्रभा में उत्पन्न होते हैं।
-५. एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, दो क्करप्पभाए, दो अहेसत्तमाए होज्जा। (१०)	२-५. इसी प्रकार यावत्–अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और दो अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं। (१०)
अहवा दो रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, दो लुयप्पभाए होज्जा।	१. अथवा दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और दो वालुकाप्रभा में उत्पन्न होते हैं।[2]
-५. एवं जाव अहवा दो रयणप्पभाए, एगे क्करप्पभाए, दो अहेसत्तमाए होज्जा। (१५)	२-५. इसी प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और दो अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।[3] (१५)
अहवा एगे रयणप्पभाए, तिण्णि सक्करप्पभाए, एगे लुयप्पभाए होज्जा।	१. अथवा एक रत्नप्रभा में, तीन शर्कराप्रभा में और एक वालुकाप्रभा में उत्पन्न होता है।
-५. एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, तिण्णि क्करप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा। (२०)	२-५. इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, तीन शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[4] (२०)
अहवा दो रयणप्पभाए, दो सक्करप्पभाए, एगे लुयप्पभाए होज्जा।	१. अथवा दो रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और एक वालुकाप्रभा में उत्पन्न होता है।
-५. एवं जाव दो रयणप्पभाए, दो सक्करप्पभाए, एगे हेसत्तमाए होज्जा। (२५)	२-५. इसी प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[5] (२५)
अहवा तिण्णि रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे लुयप्पभाए होज्जा।	१. अथवा तीन रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और एक वालुकाप्रभा में उत्पन्न होता है।
-५. एवं जाव अहवा तिण्णि रयणप्पभाए, एगे क्करप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा। (३०)	२-५. इसी प्रकार यावत् अथवा तीन रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होता है।[6] (३०)
१. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, तिण्णि कप्पभाए होज्जा।	१. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और तीन पंकप्रभा में उत्पन्न होते हैं।
एवं एएणं कमेणं जहा चउण्हं तियसंजोगो भणिओ तहा पंचण्ह वि तियसंजोगो भाणियव्वो,	**इस क्रम से जिस प्रकार चार नैरयिकों के त्रिकसंयोगी भंग कहे हैं उसी प्रकार पांच नैरयिकों के भी त्रिकसंयोगी भंग जानना चाहिए।**
णवरं–तत्थ एगो संचारिज्जइ, इह दोण्णि,	विशेष–वहाँ एक का संचार था, (उसके स्थान पर) यहाँ दो का संचार करना चाहिए।
सेसं तं चेव,	शेष सब पूर्ववत् जान लेना चाहिए,
जाव अहवा तिण्णि धूमप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा। (२१०)	यावत् अथवा तीन धूमप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[7] (२१०)
	(चतुःसंयोगी के १४० भंग–)
१. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, दो पंकप्पभाए होज्जा।	१. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और दो पंकप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

कार एक-एक और तीन के रत्नप्रभा शर्कराप्रभा के साथ संयोग से पाँच भंग होते हैं। (५)
कार एक, दो के संयोग से पाँच भंग होते हैं। (१०)
कार दो, एक, दो के संयोग से ५ भंग होते हैं। (१५)
कार एक, तीन, एक के संयोग से ५ भंग होते हैं। (२०)
कार दो, दो, एक के संयोग से पाँच भंग होते हैं। (२५)
कार तीन, एक-एक के संयोग से ५ भंग होते हैं। (३०)
संयोगी भंग–इनमें से रत्नप्रभा के संयोग वाले ९०, शर्कराप्रभा के संयोग वाले ६०, वालुकाप्रभा के संयोग वाले ३६, पंकप्रभा के संयोग वाले १८ और भा के संयोग वाले ६ भंग होते हैं। (ये सभी ९०-६०-३६-१८-६ = २१० भंग त्रिकसंयोगी होते हैं।

२-४. एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, दो अहेसत्तमाए होज्जा।(४)

२-४. इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और दो अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।[1](४)

१. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, दो वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए होज्जा।

१. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, दो वालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभा में उत्पन्न होता है।

२-४. एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, दो वालुयप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।(८)

२-४. इसी प्रकार यावत् एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, दो वालुकाप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[2] (८)

१. अहवा एगे रयणप्पभाए, दो सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए होज्जा।

१. अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभा में उत्पन्न होता है।

२-४. एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, दो सक्करप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।(१२)

२-४. इसी प्रकार यावत् एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[3] (१२)

१. अहवा दो रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए होज्जा।

१. अथवा दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभा में उत्पन्न होता है।

२-४. एवं जाव अहवा दो रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।(१६)

२-४. इसी प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[4] (१६)

१. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, दो धूमप्पभाए होज्जा।(१७)

१. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में और दो धूमप्रभा में उत्पन्न होते हैं।(१७)

एवं जहा चउण्हं चउक्कसंजोगो भणिओ तहा पंचण्ह वि चउक्कसंजोगो भाणियव्वो।

जिस प्रकार चार नैरयिक जीवों के चतुःसंयोगी भंग कहे हैं, उसी प्रकार पाँच नैरयिक जीवों के चतुःसंयोगी भंग कहने चाहिए।

नवरं अब्भहियं एगो संचारेयव्वो,

विशेष–यहाँ एक अधिक का संचार (संयोग) करना चाहिए।

एवं जाव अहवा दो पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।(१४०)

इसी प्रकार यावत् अथवा दो पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होता है।[5] (१४०)

(पंचसंयोगी के २१ भंग–)

१. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए होज्जा।

१. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक धूमप्रभा में उत्पन्न होता है।

२. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे तमाए होज्जा,

२. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक तमःप्रभा में उत्पन्न होता है।

३. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

३. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।

४. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए होज्जा।

४. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमःप्रभा में उत्पन्न होता है।

---

१. चतुःसंयोगी भंग–इनमें से रत्नप्रभा के संयोग वाले ८०, शर्कराप्रभा के संयोग वाले ४०, वालुकाप्रभा के संयोग वाले १६ और पंकप्रभा के संयोग वाले ४, ये सभी मिलकर पाँच नैरयिकों के चतुःसंयोगी १४० भंग होते हैं।

५. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

५. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।

६. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

६. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक तम:प्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।

७. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए होज्जा।

७. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तम:प्रभा में उत्पन्न होता है।

८. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

८. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।

९. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

९. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक तम:प्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।

१०. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

१०. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक सर्कराप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तम:प्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।

११. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए होज्जा।

११. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तम:प्रभा में उत्पन्न होता है।

१२. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

१२. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अध:सप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होता है।

१३. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

१३. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक तम:प्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।

१४. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

१४. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।

१५. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

१५. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तम:प्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।

१६. अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए होज्जा।

१६. अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तम:प्रभा में उत्पन्न होता है।

१७. अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

१७. अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।

१८. अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

१८. अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक तम:प्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।

१९. अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

१९. अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तम:प्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।

२०. अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

२०. अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तम:प्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।

२१. अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा। (२१) (४६२)

–विया. स. ९, उ. ३२, सु. २०

२१. अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[1] (२१) (४६२)

८८. छण्हं नेरइयाणं विवक्खा–

प. छब्भंते ! नेरइया नेरइयप्पवेसणए णं पविसमाणा किं रयणप्पभाए होज्जा जाव अहेसत्तमाए होज्जा ?

उ. १-७. गंगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तामाए वा होज्जा।

१. अहवा एगे रयणप्पभाए, पंच सक्करप्पभाए वा होज्जा।

२. अहवा एगे रयणप्पभाए, पंच वालुयप्पभाए वा होज्जा।

३-६. जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, पंच अहेसत्तमाए होज्जा। (६)

१. अहवा दो रयणप्पभाए, चत्तारि सक्करप्पभाए होज्जा।

२-६. जाव अहवा दो रयणप्पभाए, चत्तारि अहेसत्तमाए होज्जा। (१२)

१३. अहवा तिण्णि रयणप्पभाए, तिण्णि सक्करप्पभाए होज्जा,

एए णं कमेणं जहा पंचण्हं दुयासंजोगो तहा छण्ह वि भाणियव्वो,

णवरं–एक्को अब्भहिओ संचारेयव्वो जाव अहवा पंच तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा (१०५)

१. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, चत्तारि वालुयप्पभाए होज्जा,

२. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, चत्तारि पंकप्पभाए होज्जा,

३-५. एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, चत्तारि अहेसत्तमाए होज्जा।

६. अहवा एगे रयणप्पभाए, दो सक्करप्पभाए, तिण्णि वालुयप्पभाए होज्जा।

[illegible] तियासंजोगो भणिओ तहा [illegible] भाणियव्वो,

८८. छः नैरयिकों की विवक्षा –

प्र. भंते ! छह नैरयिक जीव, नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में उत्पन्न होते हैं यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं ?

उ. १-७. गांगेय ! वे रत्नप्रभा में भी उत्पन्न होते हैं यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में भी उत्पन्न होते हैं।[2]

(द्विकसंयोगी १०५ भंग–)

१. अथवा एक रत्नप्रभा में और पांच शर्कराप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

२. अथवा एक रत्नप्रभा में और पांच वालुकाप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

३-६. यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में और पाँच अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं। (६)

१. अथवा दो रत्नप्रभा में और चार शर्कराप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

२-६. यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में और चार अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं। (१२)

१३. अथवा तीन रत्नप्रभा में और तीन शर्कराप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

इस क्रम द्वारा जिस प्रकार पाँच नैरयिक जीवों के द्विकसंयोगी भंग कहे हैं, उसी प्रकार छह नैरयिकों के भी भंग कहने चाहिए। विशेष–यहाँ एक का संचार अधिक करना चाहिए यावत् अथवा पाँच तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[3] (१०५) (त्रिकसंयोगी ३५० भंग–)

१. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और चार वालुकाप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

२. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और चार पंकप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

३-५. इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और चार अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।

६. अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और तीन वालुकाप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

इस क्रम से जिस प्रकार पांच नैरयिक जीवों के त्रिकसंयोगी भंग कहे हैं उसी प्रकार छह नैरयिक जीवों के भी त्रिकसंयोगी भंग कहने चाहिए।[4]

[illegible] १५, शर्कराप्रभा के संयोग वाले ५ और वालुकाप्रभा के संयोग वाला १ भंग होता है यों सभी मिलाकर [illegible]

[illegible] २१०, चतुष्संयोगी १४० और पंचसंयोगी २१ ये सभी मिलाकर ७+८४+२१०+१४० + [illegible]

[illegible] शर्कराप्रभा के संयोग वाले २०, पंकप्रभा के संयोग वाले १५, धूमप्रभा के संयोग वाले १०, [illegible] १०५ भंग होते हैं।

[illegible] को १० से गुणा करने पर १०० भंग, वालुकाप्रभा के ६ भंगों [illegible] ३० भंग, धूमप्रभा के एक भंग को १० विकल्पों से गुणा [illegible]

णवरं–एक्को अब्भहिओ उच्चारेयव्वो, सेसं तं चेव, (३५०)

विशेष–यहाँ एक का संचार अधिक करना चाहिए। शेष सब पूर्ववत् जानना चाहिए।

चउक्कसंजोगो वि तहेव, (३५०)

(चतुष्कसंयोगी ३५० भंग) जिस प्रकार पाँच नैरयिकों के चतुष्कसंयोगी भंग कहे गए हैं उसी प्रकार छह नैरयिकों के भी चतु:संयोगी भंग जान लेने चाहिए।[1]

पंचसंजोगो वि तहेव, (१०५)

(पंचसंयोगी १०५ भंग) पाँच नैरयिकों के जिस प्रकार पंचसंयोगी भंग कहे गए हैं उसी प्रकार छह नैरयिकों के भी पंचसंयोगी भंग जान लेना चाहिए।

णवरं–एक्को अब्भहिओ संचारेयव्वो जाव पच्छिमो भंगो।

अहवा दो वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा (१०५)

विशेष–इनमें एक नैरयिक का अधिक संचार करना चाहिए यावत् अन्तिम भंग (इस प्रकार है)

अथवा दो वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में एक तम:प्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है। (इस प्रकार पंचसंयोगी कुल = १०५ भंग हुए।[2]

(छ: संयोगी ७ भंग–)

१. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए जाव एगे तमाए होज्जा,

२. अहवा एगे रयणप्पभाए जाव एगे धूमप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा,

३. अहवा एगे रयणप्पभाए जाव एगे पंकप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

४. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे धूमप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा,

५. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे पंकप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा,

६. अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

७. अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा (९२४) *–विया. ९, उ. ३२, सु. २१*

१. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में यावत् एक तम:प्रभा में उत्पन्न होता है।

२. अथवा एक रत्नप्रभा में यावत् एक धूमप्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।

३. अथवा एक रत्नप्रभा में यावत् एक पंकप्रभा में, एक तम:प्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।

४. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में यावत् एक अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।

५. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में यावत् एक अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।

६. अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में यावत् एक अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।

७. अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में यावत् एक अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[3] (९२४)

९. सत्त नेरइयाणं विवक्खा–

प. सत्त भंते ! नेरइया नेरइयपवेसणए णं पविसमाणा किं रयणप्पभाए होज्जा जाव अहेसत्तमाए होज्जा ?

उ. १-२. गंगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा,

अहवा एगे रयणप्पभाए, छ सक्करप्पभाए होज्जा।

एवं एएणं कमेणं जहा छण्हं दुयासंजोगो तहा सत्तण्ह वि भाणियव्वं,

८९. सात नैरयिकों की विवक्षा–

प्र. भन्ते ! सात नैरयिक जीव नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं यावत् अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गांगेय ! वे सातों नैरयिक रत्नप्रभा में भी उत्पन्न होते हैं यावत् अध:सप्तमपृथ्वी में भी उत्पन्न होते हैं।[4]

द्विकसंयोगी १२६ भंग–)

अथवा एक रत्नप्रभा में और छह शर्कराप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

इस क्रम से जिस प्रकार छह नैरयिक जीवों के द्विकसंयोगी भंग कहे हैं उसी प्रकार सात नैरयिक जीवों के भी द्विकसंयोगी भंग कहने चाहिए।

---

1. रत्नप्रभा आदि के संयोग वाले ३५ भंगों के साथ गुणाकार करने पर ३५० भंग होते हैं।
2. रत्नप्रभा के संयोग वाले ५ विकल्पों को १५ भंगों के साथ गुणा करने पर ७५ भंग,
   शर्कराप्रभा के संयोग वाले ५ विकल्पों को ५ भंगों के साथ गुणा करने पर २५ भंग,
   वालुकाप्रभा के साथ ५ विकल्पों को १५ भंगों के साथ गुणा करने पर ५ भंग, इस प्रकार ७५+२५+५ = कुल १०५ पंच संयोगी भंग हुए।
3. एक संयोगी ७ भंग, द्विक संयोगी १०५, त्रिकसंयोगी ३५०, चतुष्क संयोगी ३५०, पंच संयोगी १०५ और षट्संयोगी ७ ये सब मिलकर ९२४ प्रवेशनक भंग होते हैं।
4. इस प्रकार असंयोगी सात भंग हुए।

णवरं–एगो अब्भहिओ संचारिज्जइ।

सेसं तं चेव।

तियासंजोगो, चउक्कसंजोगो, पंचसंजोगो, छक्क संजोगो य छण्हं जहा तहा सत्तण्ह वि भाणियव्वो।

णवरं–एक्केक्को अब्भहिओ संचारेयव्वो जाव छक्कसंजोगो।

अहवा दो सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा।(१७१६)

–विया. स. ९, उ. ३२, सु. २२

विशेष–एक नैरयिक का अधिक संचार करना चाहिए।

शेष सभी पूर्ववत् जानना चाहिए।

जिस प्रकार छह नैरयिकों के त्रिकसंयोगी, चतु:संयोगी, पंचसंयोगी और षट्संयोगी भंग कहे हैं, उसी प्रकार सात नैरयिकों के त्रिकसंयोगी आदि भंगों के विषय में भी कहना चाहिए।

विशेष–यहाँ एक-एक नैरयिक का अधिक संचार करना चाहिए यावत् षट्संयोगी का अन्तिम भंग इस प्रकार कहना चाहिए।

अथवा दो शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में यावत् एक अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।(सात संयोगी १ भंग)

अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में यावत् एक अध:सप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होता है।[1] (१७१६)

१०. अट्ठ नेरइयाणं विवक्खा–

प. अट्ठ भंते ! नेरइया नेरइयपवेसणए णं पविसमाणा किं रयणप्पभाए होज्जा जाव अहे सत्तमाए होज्जा?

उ. १-७. गंगेया! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा,

अहवा एगे रयणप्पभाए, सत्त सक्करप्पभाए होज्जा,

एवं दुयासंजोगो जाव छक्कसंजोगो य जहा सत्तण्ह भणिओ तहा अट्ठण्ह वि भाणियव्वो,

णवरं–एक्केक्को अब्भहिओ संचारेयव्वो।

सेसं तं चेव जाव छक्कसंजोगस्स।

अहवा तिण्णि सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा,

१. अहवा एगे रयणप्पभाए जाव एगे तमाए, दो अहेसत्तमाए होज्जा,

२. अहवा एगे रयणप्पभाए जाव दो तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा,

एवं संचारेयव्वं जाव अहवा दो रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा।(३००३)

–विया. स. ९, उ. ३२, सु. २३

१०. आठ नैरयिकों की विवक्षा–

प्र. भन्ते ! आठ नैरयिक जीव, नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए रत्नप्रभा में उत्पन्न होते हैं यावत् अध:सप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं?

उ. १-७. गांगेय ! रत्नप्रभा में भी उत्पन्न होते हैं यावत अध:सप्तमपृथ्वी में भी उत्पन्न होते हैं।

अथवा एक रत्नप्रभा में और सात शर्कराप्रभा में उत्पन्न होते हैं।[2]

जिस प्रकार सात नैरयिकों के द्विकसंयोगी यावत् त्रिकसंयोगी, चतु:संयोगी, पंचसंयोगी, षट्संयोगी भंग कहे गए हैं उसी प्रकार आठ नैरयिकों के भी द्विकसंयोगी आदि भंग कहने चाहिए।

विशेष–एक-एक नैरयिक का अधिक संचार करना चाहिए।

शेष सभी षट्संयोगी पर्यन्त पूर्ववत् कहना चाहिए।

अथवा तीन शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में यावत् एक अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।(सात संयोगी ७ भंग)

१. अथवा एक रत्नप्रभा में यावत् एक तम:प्रभा में और दो अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।

२. अथवा एक रत्नप्रभा में यावत् दो तम:प्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।

इसी प्रकार सभी स्थानों पर संचार करना चाहिए यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में यावत् एक अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।(३००३)

११. [illegible]

प. [illegible] पविसमाणा किं [illegible] होज्जा?

११. नौ नैरयिकों की विवक्षा–

प्र. भन्ते ! नौ नैरयिक जीव नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में उत्पन्न होते हैं यावत् अध:सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं?

---

१. [illegible] पंचसंयोगी ३१५, षट्संयोगी ४२ और सप्तसंयोगी १, यों कुल मिलाकर १७१६ [illegible]

२. [illegible] १२२५, पंचसंयोगी ७३५ षट्संयोगी १४७ और सप्तसंयोगी ७ ये कुल मिलाकर सब [illegible]

गंगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा।

१-८. अहवा एगे रयणप्पभाए अट्ठ सक्करप्पभाए होज्जा।

एवं दुयासंजोगो जाव सत्तसंजोगो य।

जहा अट्ठण्हं भणियं तहा नवण्हं पि भाणियव्वं।

णवरं–एक्केक्को अब्भहिओ संचारेयव्वो, सेसं तं चेव, पच्छिमो आलावगो,

अहवा तिण्णि रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए वा होज्जा, (५००५) –*विया. स. ९, उ. ३२, सु. २४*

स नेरइयाणं विवक्खा–

दस भंते ! नेरइया नेरइयप्पवेसणए णं पविसमाणा किं रयणप्पभाए होज्जा जाव अहेसत्तमाए होज्जा?

१-७. गंगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा,

अहवा एगे रयणप्पभाए, नव सक्करप्पभाए होज्जा।

एवं दुयासंजोगो जाव सत्तसंजोगो य जहा नवण्हं,

णवरं–एक्केक्को अब्भहिओ संचारेयव्वो।

सेसं तं चेव।

अपच्छिम आलावगो–

अहवा चत्तारि रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा। (८००८)

–*विया. स. ९, उ. ३२, सु. २५*

संखेज्ज नेरइयाणं विवक्खा–

प्र. संखेज्जा भंते ! नेरइया नेरइयप्पवेसणए णं पविसमाणा किं रयणप्पभाए होज्जा जाव अहेसत्तमाए होज्जा?

उ. १-७. गंगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा,

१. अहवा एगे रयणप्पभाए, संखेज्जा सक्करप्पभाए होज्जा,

उ. गांगेय ! वे नौ नैरयिक जीव रत्नप्रभा में भी उत्पन्न होते हैं, यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में भी उत्पन्न होते हैं।

१-८. अथवा एक रत्नप्रभा में और आठ शर्कराप्रभा में उत्पन्न होते हैं,

इसी प्रकार द्विकसंयोगी से सप्त संयोगी पर्यन्त भंग कहने चाहिए।

जिस प्रकार आठ नैरयिकों का कथन किया उसी प्रकार नौ नैरयिकों का भी कथन करना चाहिए।

विशेष–एक-एक नैरयिक का अधिक संचार करना चाहिए। शेष सब कथन पूर्ववत् है जिसका अन्तिम भंग इस प्रकार है–

अथवा तीन रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है।[1] (५००५)

९२. दस नैरयिकों की विवक्षा–

प्र. भन्ते ! दस नैरयिक जीव, नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में उत्पन्न होते हैं यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं?

उ. १-७. गांगेय ! वे दस नैरयिक जीव, रत्नप्रभा में भी उत्पन्न होते हैं यावत् अधःसप्तम पृथ्वी में भी उत्पन्न होते हैं।[2]

अथवा एक रत्नप्रभा में और नौ शर्कराप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

जिस प्रकार नौ नैरयिक जीवों के द्विकसंयोगी से (त्रिकसंयोगी, चतुःसंयोगी, पंचसंयोगी, षट्संयोगी) सप्तम-संयोगी पर्यन्त भंग कहे हैं उसी प्रकार दस नैरयिक जीवों के भी (द्विकसंयोगी यावत् सप्तसंयोगी) भंग कहने चाहिए।

विशेष–यहाँ एक-एक नैरयिक का अधिक संचार करना चाहिए।

शेष सभी भंग पूर्ववत् जानने चाहिए।

जिसका अन्तिम भंग इस प्रकार है–

अथवा चार रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है। (८००८)

९३. संख्यात नैरयिकों की विवक्षा –

प्र. भन्ते ! संख्यात नैरयिक जीव नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में उत्पन्न होते हैं यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं?

उ. १-७. गांगेय ! संख्यात नैरयिक रत्नप्रभा में भी उत्पन्न होते हैं यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में भी उत्पन्न होते हैं। (ये असंयोगी ७ भंग हैं।)

(द्विकसंयोगी २३१ भंग–)

१. अथवा एक रत्नप्रभा में और संख्यात शर्कराप्रभा में उत्पन्न होते हैं,

[1] क संयोगी ७, द्विकसंयोगी १६८, त्रिकसंयोगी ९८०, चतुष्कसंयोगी ११९०, पंचसंयोगी १४७०, षट्संयोगी ३९२ और सप्तसंयोगी २८ ये सब मिलाकर ५००५ भंग हुए।

[2] स प्रकार दस नैरयिकों के एक संयोगी ७, द्विकसंयोगी १८९, त्रिकसंयोगी १२६०, चतुष्कसंयोगी २९४०, पंचसंयोगी २६४६, षट्संयोगी ८८२ और सप्तसंयोगी ८४ भंग कुल ८००८ भंग होते हैं।

जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, संखेज्जा वालुयप्पभाए, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा।

यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, संख्यात वालुकाप्रभा में और संख्यात अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।

अहवा दो रयणप्पभाए, संखेज्जा सक्करप्पभाए, संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा।

अथवा दो रत्नप्रभा में, संख्यात शर्कराप्रभा में और संख्यात वालुकाप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

जाव अहवा दो रयणप्पभाए, संखेज्जा सक्करप्पभाए, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा।

यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में, संख्यात शर्कराप्रभा में और संख्यात अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।

अहवा तिण्णि रयणप्पभाए, संखेज्जा सक्करप्पभाए, संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा।

अथवा तीन रत्नप्रभा में, संख्यात शर्कराप्रभा में और संख्यात वालुकाप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

एवं एएणं कमेणं एक्केक्को रयणप्पभाए संचारेयव्वो जाव–

इस प्रकार इस क्रम से रत्नप्रभा में एक-एक नैरयिक का संचार करना चाहिए यावत्

अहवा संखेज्जा रयणप्पभाए, संखेज्जा सक्करप्पभाए, संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा,

अथवा संख्यात रत्नप्रभा में, संख्यात शर्कराप्रभा में और संख्यात वालुकाप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

जाव अहवा संखेज्जा रयणप्पभाए, संखेज्जा सक्करप्पभाए, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा,

यावत् अथवा संख्यात रत्नप्रभा में, संख्यात शर्कराप्रभा में और संख्यात अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।

अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, संखेज्जा पंकप्पभाए होज्जा,

अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और संख्यात पंकप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा।

यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और संख्यात अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।

अहवा एगे रयणप्पभाए, दो वालुयप्पभाए, संखेज्जा पंकप्पभाए होज्जा।

अथवा एक रत्नप्रभा में, दो वालुकाप्रभा में और संख्यात पंकप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

एवं एएणं कमेणं तियासंजोगो चउक्कसंजोगो जाव–सत्तसंजोगो य जहा दसण्हं तहेव भाणियव्वो।

इसी प्रकार इसी क्रम से त्रिकसंयोगी, चतुष्कसंयोगी यावत् सप्तसंयोगी भंगों का कथन दस नैरयिक सम्बन्धी भंगों के समान करना चाहिए।

पच्छिमो आलावगो सत्तसंजोगस्स–

सप्त संयोगी का अन्तिम भंग इस प्रकार है–

अहवा संखेज्जा रयणप्पभाए, संखेज्जा सक्करप्पभाए जाव संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा। (३३३७)

–विया. स. ९, उ. ३२, सु. २६

अथवा संख्यात रत्नप्रभा में, संख्यात शर्कराप्रभा में यावत् संख्यात अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।[1] (३३३७)

९४. असंखेज्ज नेरइयाणं विवक्खा–

प. असंखेज्जा भंते ! नेरइया नेरइयप्पवेसणए णं किं रयणप्पभाए होज्जा जाव अहेसत्तमाए होज्जा?

उ. गंगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा।

अहवा एगे रयणप्पभाए, असंखेज्जा सक्करप्पभाए होज्जा,

एवं दुयासंजोगो जाव सत्तसंजोगो य जहा संखिज्जाणं भणिओ तहा असंखेज्जाण वि भाणियव्वो।

णवरं–असंखेज्जाओ अब्भहिओ भाणियव्वो,

सेसं तं चेव जाव सत्तसंजोगस्स पच्छिमो आलावगो।

९४. असंख्यात नैरयिकों की विवक्षा से–

प्र. भंते ! असंख्यात नैरयिक, नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं यावत् अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं?

उ. गांगेय ! वे रत्नप्रभा में भी उत्पन्न होते हैं, यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में भी उत्पन्न होते हैं।

अथवा एक रत्नप्रभा में और असंख्यात शर्कराप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

जिस प्रकार संख्यात नैरयिकों के द्विकसंयोगी से सप्तसंयोगी पर्यन्त भंग कहे गये हैं उसी प्रकार असंख्यात के भी कहना चाहिए।

विशेष–यहाँ संख्यात के बदले "असंख्यात" यह पद कहना चाहिए।

शेष सब कथन पूर्ववत् जानना चाहिए यावत् सप्तसंयोगी का अन्तिम आलापक यह है–

---

१. एक संयोगी ७, द्विकसंयोगी २३१, त्रिकसंयोगी ७३५, चतुष्क संयोगी १०८५, पंचसंयोगी ८६१, षट्संयोगी ३५७ सप्तसंयोगी ६१ कुल मिलाकर ३३३७ भंग होते हैं।

अहवा असंखेज्जा रयणप्पभाए असंखेज्जा सक्करप्पभाए जाव असंखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा।

-[illegible]

[illegible]

९५. उक्कोस णेरइयाणं विवक्खा--

प. उक्कोसा णं भंते ! नेरइया नेरइयप्पवेसणए णं किं रयणप्पभाए होज्जा जाव अहेसत्तमाए होज्जा ?

उ. गंगेया ! सव्वे वि ताव रयणप्पभाए होज्जा,

१. अहवा रयणप्पभाए य सक्करप्पभाए य होज्जा,

२. अहवा रयणप्पभाए य वालुयप्पभाए य होज्जा,

३-६. एवं जाव अहवा रयणप्पभाए य अहेसत्तमाए य होज्जा।(६)

१. अहवा रयणप्पभाए य सक्करप्पभाए य वालुयप्पभाए य होज्जा,

२-५. एवं जाव अहवा रयणप्पभाए, सक्करप्पभाए य अहेसत्तमाए य होज्जा,

६. अहवा रयणप्पभाए, वालुयप्पभाए, पंकप्पभाए य होज्जा जाव

७-९. अहवा रयणप्पभाए, वालुयप्पभाए, अहेसत्तमाए य होज्जा,

१०. अहवा रयणप्पभाए, पंकप्पभाए य, धूमप्पभाए य होज्जा,

११-१४. एवं रयणप्पभं अमुयंतेसु जहा तिण्हं तियासंजोगो भणिओ तहा भाणियव्वं जाव–

१५. अहवा रयणप्पभाए, तमाए य, अहेसत्तमाए य होज्जा।(१५)

१. अहवा रयणप्पभाए य, सक्करप्पभाए य, वालुयप्पभाए य, पंकप्पभाए य होज्जा,

२. अहवा रयणप्पभाए, सक्करप्पभाए, वालुयप्पभाए, धूमप्पभाए य होज्जा जाव

३-४. अहवा रयणप्पभाए, सक्करप्पभाए, वालुयप्पभाए, अहेसत्तमाए य होज्जा,

५. अहवा रयणप्पभाए, सक्करप्पभाए, पंकप्पभाए, धूमप्पभाए य होज्जा,

[illegible]

९५. [illegible]

प्र. [illegible]

उ. [illegible]

[illegible]

१. [illegible]

२. [illegible]

३-६. इसी प्रकार यावत् अथवा [illegible]

[illegible]

१. [illegible]

२-५. इसी प्रकार यावत् अथवा [illegible]

६. अथवा [illegible] होते हैं यावत्

७-९. अथवा [illegible] उत्पन्न होते हैं।

१०. अथवा रत्नप्रभा, [illegible] और [illegible] में उत्पन्न होते हैं।

११-१४. जिस प्रकार रत्नप्रभा को न छोड़ते हुए तीन नैरयिक जीवों के त्रिकसंयोगी भंग कहे हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए यावत्

१५. अथवा रत्नप्रभा, तमःप्रभा और अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।(१५)

(चतुःसंयोगी २० भंग)–

१. अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा वालुकाप्रभा और पंकप्रभा में उत्पन्न होते हैं,

२. अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा और धूमप्रभापृथ्वी में उत्पन्न होते हैं, यावत्

३-४. अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा और अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।

५. अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, पंकप्रभा और धूमप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

---

१. एक संयोगी के ७, द्विक संयोगी के २५२, त्रिकसंयोगी के ८०५, चतुष्क संयोगी के ११९०, पंच संयोगी के ९४५, षट्संयोगी के ३९२ एवं सप्त संयोगी के ६७ भंग होते हैं, इस प्रकार कुल ३६५८ भंग होते हैं।

२. यह असंयोगी (एक संयोगी) प्रथम भंग है।

६-१९. एवं रयणप्पभं अमुयंतेसु जहा चउण्ह चउक्कसंजोगो भणिओ तहा भाणियव्वं जाव

२०. अहवा रयणप्पभाए, धूमप्पभाए, तमाए अहेसत्तमाए होज्जा, (२०)

१. अहवा रयणप्पभाए, सक्करप्पभाए, वालुयप्पभाए, पंकप्पभाए, धूमप्पभाए य होज्जा,

२. अहवा रयणप्पभाए, सक्करप्पभाए, वालुयप्पभाए, पंकप्पभाए, तमाए य होज्जा,

३. अहवा रयणप्पभाए, सक्करप्पभाए, वालुयप्पभाए, पंकप्पभाए, अहेसत्तमाए य होज्जा,

४. अहवा रयणप्पभाए, सक्करप्पभाए, वालुयप्पभाए, धूमप्पभाए, तमाए य होज्जा,

५-१४. एवं रयणप्पभं अमुयंतेसु जहा पंचण्हं पंचकसंजोगो तहा भाणियव्वं।

१५. जाव अहवा रयणप्पभाए, पंकप्पभाए, धूमप्पभाए तमाए, अहेसत्तमाए होज्जा। (१५)

१. अहवा रयणप्पभाए, सक्करप्पभाए जाव धूमप्पभाए, तमाए य होज्जा,

२. अहवा रयणप्पभाए, सक्करप्पभाए, धूमप्पभाए, अहेसत्तमाए य होज्जा,

३. अहवा रयणप्पभाए, सक्करप्पभाए जाव पंकप्पभाए, तमाए य अहेसत्तमाए य होज्जा,

४. अहवा रयणप्पभाए, सक्करप्पभाए, वालुयप्पभाए, धूमप्पभाए, तमाए, अहेसत्तमाए होज्जा,

५. अहवा रयणप्पभाए, सक्करप्पभाए, पंकप्पभाए जाव अहेसत्तमाए य होज्जा,

६. अहवा रयणप्पभाए, वालुयप्पभाए जाव अहेसत्तमाए य होज्जा। (६)

१. अहवा रयणप्पभाए य सक्करप्पभाए जाव अहेसत्तमाए होज्जा। (६४)

–विया. स. ९, उ. ३२, सु. २८

६-१९. रत्नप्रभा को न छोड़ते हुए जिस प्रकार चार नैरयिक जीवों के चतुःसंयोगी भंग कहे हैं, उसी प्रकार यहाँ भी भंग कहने चाहिए यावत्

२०. अथवा रत्नप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और अधःसप्तम-पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं। (२०)

(पंचसंयोगी पन्द्रह भंग–)

१. अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा और धूमप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

२. अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा और तमःप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

३. अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा और अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।

४. अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभ, धूमप्रभा और तमःप्रभा पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।

५-१४. रत्नप्रभा को न छोड़ते हुए जिस प्रकार पाँच नैरयिक जीवों के पंचसंयोगी भंग कहे हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।

१५. अथवा यावत् रत्नप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं। (१५)

(षट्संयोगी छः भंग)–

१. अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा यावत् धूमप्रभा और तमःप्रभा में उत्पन्न होते हैं।

२. अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा यावत् धूमप्रभा और अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।

३. अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा यावत् पंकप्रभा, तमःप्रभा और अधःसप्तम पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।

४. अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।

५. अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, पंकप्रमा यावत् अधः-सप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।

६. अथवा रत्नप्रभा, वालुकाप्रभा यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं। (६)

(सप्तसंयोगी एक भंग–)

१. अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।[1] (६४)

९६. नेरइयप्पवेसणगस्स अप्प-बहुत्तं–

प. एयस्स णं भंते ! रयणप्पभापुढविनेरइयप्पवेसणगस्स सक्करप्पभापुढविनेरइयप्पवेसणगस्स जाव अहेसत्तमा-पुढविनेरइयप्पवेसणगस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

९६. नैरयिक प्रवेशनक का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक प्रवेशनक, शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिक प्रवेशनक यावत् अधःसप्तमपृथ्वी के नैरयिक प्रवेशनक में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

---

१. असंयोगी १, द्विकसंयोगी ६, त्रिकसंयोगी १५, चतुःसंयोगी २०, पंचसंयोगी १५, षट्संयोगी ६, सप्तसंयोगी १ इस प्रकार उत्कृष्ट पद के सभी मिलकर चौंसठ भंग होते हैं।

उ. गंगेया ! १. सव्वत्थोवे अहेसत्तमा पुढविनेरइयपवेसणए,

२. तमापुढविनेरइयपवेसणए असंखेज्जगुणे,

एवं पडिलोमगं जाव रयणप्पभापुढविनेरइयपवेसणए असंखेज्जगुणे। *-विया. स. ९, उ. ३२, सु. २९*

उ. गांगेय ! १. सबसे अल्प अधःसप्तमपृथ्वी के नैरयिक-प्रवेशनक है,

२. (उनसे) तमःप्रभापृथ्वी के नैरयिक प्रवेशनक असंख्यातगुणे हैं।

इस प्रकार उलटे क्रम से यावत् रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक-प्रवेशनक असंख्यातगुणे हैं।

९७. तिरिक्खजोणिय पवेसणगस्स परूवणं-

प. तिरिक्खजोणियपवेसणए णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गंगेया ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा-

१. एगिंदियतिरिक्खजोणियपवेसणए जाव

५. पंचेंदियतिरिक्खजोणियपवेसणए।

प. एगे भंते ! तिरिक्खजोणिए तिरिक्खजोणियपवेसणए णं पविसमाणे किं एगिंदिएसु होज्जा जाव पंचिंदिएसु होज्जा ?

उ. गंगेया ! एगिंदिएसु वा होज्जा जाव पंचिंदिएसु वा होज्जा।

प. दो भंते ! तिरिक्खजोणिया तिरिक्खजोणियपवेसणएणं पविसमाणे किं एगिंदिएसु होज्जा जाव पंचिंदिएसु होज्जा ?

उ. गंगेया ! एगिंदिएसु वा होज्जा जाव पंचिंदिएसु वा होज्जा,

अहवा एगे एगिंदिएसु होज्जा, एगे बेइंदिएसु होज्जा।

एवं जहा नेरइयपवेसणए तहा तिरिक्खजोणियपवेसणए वि भाणियव्वे जाव असंखेज्जा।

प. उक्कोसा भंते ! तिरिक्खजोणिया तिरिक्खजोणियपवेसणएणं पविसमाणे किं एगिंदिएसु होज्जा जाव पंचिंदिएसु होज्जा ?

उ. गंगेया ! सव्वे वि ताव एगिंदिएसु वा होज्जा।

अहवा एगिंदिएसु वा, बेइंदिएसु वा होज्जा,

एवं जहा नेरइया चारिया तहा तिरिक्खजोणिया वि चारेयव्वा।

एगिंदिया अमुयंतेसु दुयासंजोगो, तियासंजोगो, चउक्कसंजोगो, पंचकसंजोगो, उवउंजिऊण भाणियव्वो जाव अहवा एगिंदिएसु वा, बेइंदिएसु वा जाव पंचिंदिएसु वा होज्जा। *-विया. स. ९, उ. ३२, सु. ३०-३३*

९७. तिर्यञ्चयोनिक प्रवेशनक का प्ररूपण-

प्र. भंते ! तिर्यञ्चयोनिक प्रवेशनक कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गांगेय ! वह पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा-

१. एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक यावत्

५. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक।

प्र. भंते ! एक तिर्यञ्चयोनिक जीव तिर्यञ्चयोनिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या एकेन्द्रियों में उत्पन्न होता है यावत् पंचेन्द्रियों में उत्पन्न होता है ?

उ. गांगेय ! एकेन्द्रियों में भी उत्पन्न होता है यावत् पंचेन्द्रियों में भी उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! दो तिर्यञ्चयोनिक जीव, तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं यावत् पंचेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गांगेय ! एकेन्द्रियों में भी उत्पन्न होते हैं यावत् पंचेन्द्रियों में भी उत्पन्न होते हैं।

अथवा एक एकेन्द्रिय में उत्पन्न होता है और एक द्वीन्द्रिय में उत्पन्न होता है।

जिस प्रकार नैरयिक जीवों के विषय में कहा उसी प्रकार तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक के विषय में भी असंख्यात पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! उत्कृष्ट तिर्यञ्चयोनिक-तिर्यञ्चयोनिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं यावत् पंचेन्द्रियों में भी उत्पन्न होते हैं ?

उ. गांगेय ! ये सभी एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं।

अथवा एकेन्द्रियों में भी उत्पन्न होते हैं और द्वीन्द्रियों में भी उत्पन्न होते हैं।

जिस प्रकार नैरयिक जीवों में संचार किया गया है, उसी प्रकार तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक के विषय में भी संचार करना चाहिए।

एकेन्द्रिय जीवों को न छोड़ते हुए द्विकसंयोगी, त्रिकसंयोगी, चतुःसंयोगी और पंचसंयोगी भंग उपयोगपूर्वक कहने चाहिए

यावत् अथवा एकेन्द्रियों में भी, द्वीन्द्रियों में भी यावत् पंचेन्द्रियों में भी उत्पन्न होते हैं।

९८. तिरिक्खजोणिय पवेसणगस्स अप्प-बहुत्तं-

प. एयस्स णं भंते ! एगिंदियतिरिक्खजोणियपवेसणगस्स जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणियपवेसणगस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

९८. तिर्यञ्चयोनिक प्रवेशनक का अल्पबहुत्व-

प्र. भंते ! एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक यावत् पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गंगेया ! १. सव्वत्थोवे पंचिंदियतिरिक्खजोणियपवेसणए,

२. चउरिंदियतिरिक्खजोणियपवेसणए विसेसाहिए,

३. तेइंदियतिरिक्खजोणियपवेसणए विसेसाहिए,

४. वेइंदियतिरिक्खजोणियपवेसणए विसेसाहिए,

५. एगिंदियतिरिक्खजोणियपवेसणए विसेसाहिए।

–विया. स. ९, उ. ३२, सु. ३४

९९. मणुस्स पवेसणगस्स परूवणं–

प. मणुस्सपवेसणए णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गंगेया ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सम्मुच्छिममणुस्सपवेसणए,

२. गब्भवक्कंतियमणुस्सपवेसणए य।

प. एगे भंते ! मणुस्से मणुस्सपवेसणए णं पविसमाणे किं सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा, गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु होज्जा ?

उ. गंगेया ! सम्मुच्छिममणुस्सेसु वा होज्जा, गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु वा होज्जा।

प. दो भंते ! मणुस्सा मणुस्सपवेसणएणं पविसमाणे किं सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा, गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु होज्जा ?

उ. गंगेया ! सम्मुच्छिममणुस्सेसु वा होज्जा,

गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु वा होज्जा,

अहवा एगे सम्मुच्छिममणुस्सेसु वा होज्जा,

एगे गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु वा होज्जा,

एवं एएणं कमेण जहा नेरइयपवेसणए तहा मणुस्सपवेसणए वि भाणियव्वे जाव दस।

प. संखेज्जा भंते ! मणुस्सा मणुस्सपवेसणएणं पविसमाणे किं सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा, गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु होज्जा ?

उ. गंगेया ! सम्मुच्छिममणुस्सेसु वा होज्जा, गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु वा होज्जा।

अहवा एगे सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा, संखेज्जा गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु होज्जा।

अहवा दो सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा, संखेज्जा गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु होज्जा,

एवं एक्केक्कं ओसारिंतेसु जाव अहवा संखेज्जा सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा, संखेज्जा गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु होज्जा।

प. असंखेज्जा भंते ! मणुस्सा मणुस्सपवेसणएणं पविसमाणे किं सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा, गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु होज्जा ?

उ. गंगेया ! सव्वे वि ताव सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा।

अहवा असंखेज्जा सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा, एगे गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु होज्जा,

उ. गांगेय ! १. सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक हैं,

२. (उससे) चतुरिन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक विशेषाधिक हैं,

३. (उससे) त्रीन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक विशेषाधिक हैं,

४. (उससे) द्वीन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक विशेषाधिक हैं,

५. (उससे) एकेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक विशेषाधिक हैं।

९९. मनुष्य प्रवेशनक का प्ररूपण–

प्र. भंते ! मनुष्यप्रवेशनक कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गांगेय ! मनुष्यप्रवेशनक दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सम्मूर्च्छिम मनुष्य प्रवेशनक,

२. गर्भजमनुष्य-प्रवेशनक।

प्र. भंते ! मनुष्यप्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ एक मनुष्य क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न होता है या गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होता है ?

उ. गांगेय ! वह सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न होता है अथवा गर्भज मनुष्यों में भी उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! मनुष्य प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए दो मनुष्य क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं या गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गांगेय ! वे सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं,

अथवा गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।

अथवा एक सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न होता है और एक गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होता है।

इस प्रकार इस क्रम से जिस प्रकार नैरयिक प्रवेशनक में कहा उसी प्रकार मनुष्य प्रवेशनक का मनुष्य में भी दस मनुष्यों पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! संख्यात मनुष्य, मनुष्य प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं या गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गांगेय ! वे सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं, अथवा गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।

अथवा एक सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न होता है और संख्यात गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।

अथवा दो सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं और संख्यात गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार उत्तरोत्तर एक-एक बढ़ाते हुए, यावत् अथवा संख्यात सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं और संख्यात गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! असंख्यात मनुष्य, मनुष्यप्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं या गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गांगेय ! वे सभी सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं,

अथवा असंख्यात सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं और एक गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होता है।

अहवा असंखेज्जा सम्मुच्छिममणुस्सेसु, दो गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु होज्जा,

एवं जाव असंखेज्जा सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा, संखेज्जा गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु होज्जा।

प. उक्कोसा भंते ! मणुस्सा मणुस्सपवेसणएणं पविसमाणे किं सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा, गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु होज्जा ?

उ. गंगेया ! सव्वे वि ताव सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा।

अहवा सम्मुच्छिममणुस्सेसु वा, गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु वा होज्जा। *-विया. स. ९, उ. ३२, सु. ३५-४०*

अथवा असंख्यात सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं और दो गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार यावत् असंख्यात सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं और संख्यात गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! उत्कृष्ट मनुष्य, मनुष्य प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं या गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गांगेय ! वे सभी सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं,

अथवा सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में और गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।

१००. मणुस्सपवेसणगस्स अप्प-बहुत्तं-

प. एयस्स णं भंते ! सम्मुच्छिममणुस्सपवेसणगस्स गब्भवक्कंतियमणुस्सपवेसणगस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गंगेया ! १. सव्वत्थोवे गब्भवक्कंतियमणुस्सपवेसणए,

२. सम्मुच्छिममणुस्सपवेसणए असंखेज्जगुणे। *-विया. स. ९, उ. ३२, सु. ४१*

१००. मनुष्य प्रवेशनक का अल्पबहुत्व-

प्र. भंते ! सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-प्रवेशनक और गर्भज-मनुष्य-प्रवेशनक इन (दोनों में) से कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उ. गांगेय ! १. सब से थोड़े-गर्भज-मनुष्य प्रवेशनक हैं,

२. (उनसे) सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-प्रवेशनक असंख्यातगुणा हैं।

१०१. देव पवेसणगस्स परूवणं-

प. देवपवेसणए णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गंगेया ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-

१. भवणवासीदेवपवेसणए जाव

४. वेमाणियदेवपवेसणए।

प. एगे भंते ! देवे देवपवेसणए णं पविसमाणे किं भवणवासीसु होज्जा, वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु होज्जा ?

उ. गंगेया ! भवणवासीसु वा होज्जा, वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु वा होज्जा।

प. दो भंते ! देवा देवपवेसणए णं पविसमाणे किं भवणवासीसु होज्जा जाव वेमाणिएसु होज्जा ?

उ. गंगेया ! भवणवासीसु वा होज्जा, वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु वा होज्जा।

अहवा एगे भवणवासीसु, एगे वाणमंतरेसु होज्जा।

एवं जहा तिरिक्खजोणियपवेसणए तहा देवपवेसणए वि भाणियव्वे जाव असंखेज्ज त्ति।

प. उक्कोसा भंते ! देवा देवपवेसणएणं किं भवणवासीसु होज्जा जाव वेमाणिएसु होज्जा ?

उ. गंगेया ! सव्वे वि ताव जोइसिएसु होज्जा।

अहवा जोइसिय-भवणवासीसु य होज्जा।

अहवा जोइसिय-वाणमंतरेसु य होज्जा।

अहवा जोइसिय-वेमाणिएसु य होज्जा।

१०१. देव प्रवेशनक का प्ररूपण-

प्र. भंते ! देव-प्रवेशनक कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गांगेय ! वह चार प्रकार का कहा गया है, यथा-

१. भवनवासीदेव-प्रवेशनक यावत्

४. वैमानिक देव-प्रवेशनक।

प्र. भंते ! एक देव, देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ क्या भवनवासी देवों में उत्पन्न होता है या वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गांगेय ! वह भवनवासी देवों में भी उत्पन्न होता है और वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क या वैमानिक देवों में भी उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! दो देव, देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या भवनवासी देवों में उत्पन्न होते हैं यावत् वैमानिक देवों में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गांगेय ! वे भवनवासी देवों में भी उत्पन्न होते हैं, अथवा वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों में भी उत्पन्न होते हैं।

अथवा एक भवनवासी देवों में उत्पन्न होता है और एक वाणव्यन्तर देवों में उत्पन्न होता है।

जिस प्रकार तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक कहा, उसी प्रकार असंख्यात-देवों पर्यन्त देव-प्रवेशनक भी कहना चाहिए।

प्र. भंते ! उत्कृष्ट देव, देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या भवनवासी देवों में उत्पन्न होते हैं यावत् वैमानिक देवों में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गांगेय ! वे सभी ज्योतिष्क देवों में उत्पन्न होते हैं।

अथवा ज्योतिष्क और भवनवासी देवों में उत्पन्न होते हैं,

अथवा ज्योतिष्क और वाणव्यन्तर देवों में उत्पन्न होते हैं,

अथवा ज्योतिष्क और वैमानिक देवों में उत्पन्न होते हैं,

अहवा जोइसिएसु य, भवणवासीसु य, वाणमंतरेसु य होज्जा।

अहवा जोइसिएसु य, भवणवासीसु य, वेमाणिएसु य होज्जा।

अहवा जोइसिएसु य, वाणमंतरेसु य, वेमाणिएसु य होज्जा।

अहवा जोइसिएसु य, भवणवासीसु य, वाणमंतरेसु य, वेमाणिएसु य होज्जा। *–विया. स. ९, उ. ३२, सु. ४२-४५*

१०२. भवणवासिआइ देवपवेसणगस्स अप्प-बहुत्तं–

प. एयस्स णं भंते ! भवणवासीदेवपवेसणगस्स वाणमंतरदेवपवेसणगस्स जोइसियदेवपवेसणगस्स वेमाणियदेवपवेसणगस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गंगेया ! १. सव्वत्थोवे वेमाणियदेवपवेसणए,
२. भवणवासीदेवपवेसणए असंखेज्जगुणे,
३. वाणमंतरदेवपवेसणए असंखेज्जगुणे,
४. जोइसियदेवपवेसणए संखेज्जगुणे।

–विया. स. ९, उ. ३२, सु. ४६

१०३. नेरइय-तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देव-पवेसणगाणंअप्प बहुत्तं–

प. एयस्स णं भंते ! नेरइयपवेसणगस्स तिरिक्ख-जोणियपवेसणगस्स मणुस्सपवेसणगस्स, देवपवेसणगस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गंगेया ! १. सव्वत्थोवे मणुस्सपवेसणए,
२. नेरइयपवेसणए असंखेज्जगुणे,
३. देवपवेसणए असंखेज्जगुणे,
४. तिरिक्खजोणियपवेसणए असंखेज्जगुणे।

–विया. स. ९, उ. ३२, सु. ४७

१०४. चउवीसदंडएसु सओ उववाय-उव्वट्टण परूवणं–

प. दं. १. सओ भंते ! नेरइया उववज्जंति,
असओ भंते ! नेरइया उववज्जंति ?

उ. गंगेया ! सओ नेरइया उववज्जंति,
नो असओ नेरइया उववज्जंति।
दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिया।

प. दं. १. सओ भंते ! नेरइया उव्वट्टंति,
असओ भंते ! नेरइया उव्वट्टंति ?

उ. गंगेया ! सओ नेरइया उव्वट्टंति,
नो असओ नेरइया उव्वट्टंति।
दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिया,
णवरं–जोइसिय-वेमाणिएसु "चयंति" भाणियव्वं।

प. दं. १-२४. सओ भंते ! नेरइया उववज्जंति,
असओ भंते ! नेरइया उववज्जंति ?

अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी और वाणव्यन्तर देवों में उत्पन्न होते हैं,

अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी और वैमानिक देवों में उत्पन्न होते हैं,

अथवा ज्योतिष्क, वाणव्यन्तर और वैमानिक देवों में उत्पन्न होते हैं,

अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी, वाणव्यन्तर और वैमानिक देवों में उत्पन्न होते हैं।

१०२. भवनवासी आदि देव प्रवेशनक का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! भवनवासीदेव-प्रवेशनक, वाणव्यन्तरदेव-प्रवेशनक, ज्योतिष्कदेव-प्रवेशनक और वैमानिक देव-प्रवेशनक इन चारों प्रवेशनकों में से कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उ. गांगेय ! १. सबसे थोड़े वैमानिकदेव-प्रवेशनक हैं,
२. (उनसे) भवनवासीदेव-प्रवेशनक असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) वाणव्यन्तरदेव-प्रवेशनक असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) ज्योतिष्कदेव-प्रवेशनक संख्यातगुणे हैं।

१०३. नैरयिक - तिर्यञ्चयोनिक - मनुष्य - देव - प्रवेशनकों का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन नैरयिक-प्रवेशनक, तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक, मनुष्य-प्रवेशनक और देव-प्रवेशनक इन चारों प्रवेशनकों में से कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उ. गांगेय ! १. सबसे अल्प मनुष्य-प्रवेशनक है,
२. (उससे) नैरयिक-प्रवेशनक असंख्यातगुणा है,
३. (उससे) देव-प्रवेशनक असंख्यातगुणा है,
४. (उससे) तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक असंख्यातगुणा है।

१०४. चौवीस दंडकों में सत् के उत्पाद-उद्वर्तन का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! सत् (विद्यमान) नैरयिक जीव उत्पन्न होते हैं या असत् (अविद्यमान) नैरयिक जीव उत्पन्न होते हैं ?

उ. गांगेय ! सत् नैरयिक उत्पन्न होते हैं,
किन्तु असत् नैरयिक उत्पन्न नहीं होते हैं।
दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. १. भंते ! सत् नैरयिक उद्वर्तन करते हैं या
असत् नैरयिक उद्वर्तन करते हैं ?

उ. गांगेय ! सत् नैरयिक उद्वर्तन करते हैं,
किन्तु असत् नैरयिक उद्वर्तन नहीं करते हैं।
दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।
विशेष–ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के लिए च्यवन करते हैं, ऐसा कहना चाहिए।

प्र. दं. १-२४. भंते ! नैरयिक जीव सत् नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं या असत् नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं ?

सओ असुरकुमारा उववज्जंति,
असओ असुरकुमारा उववज्जंति,
एवं जाव सओ वेमाणिया उववज्जंति,
असओ वेमाणिया उववज्जंति ?
दं. १-२४. सओ नेरइया उव्वट्टंति,
असओ नेरइया उव्वट्टंति ?
सओ असुरकुमारा उव्वट्टंति,
असओ असुरकुमारा उव्वट्टंति,
एवं जाव सओ वेमाणिया चयंति, असओ वेमाणिया चयंति ?

उ. गंगेया ! सओ नेरइया उववज्जंति,
नो असओ नेरइया उववज्जंति,
सओ असुरकुमारा उववज्जंति,
नो असओ असुरकुमारा उववज्जंति,
एवं जाव सओ वेमाणिया उववज्जंति,
नो असओ वेमाणिया उववज्जंति।
सओ नेरइया उव्वट्टंति,
नो असओ नेरइया उव्वट्टंति,
सओ असुरकुमारा उव्वट्टंति,
नो असओ असुरकुमारा उव्वट्टंति।
एवं जाव सओ वेमाणिया चयंति,
नो असओ वेमाणिया चयंति।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"सओ नेरइया उववज्जंति, नो असओ नेरइया उववज्जंति जाव सओ वेमाणिया चयंति, नो असओ वेमाणिया चयंति ?"

उ. से नूणं भे गंगेया ! पासेणं अरहया पुरिसादाणीएणं सासए लोए बुइए अणादीए, अणवदग्गे परित्ते परिवुडे हेट्ठा विच्छिण्णे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं विसाले, अहे [illegible], मज्झे वरवइरविग्गहिए, उप्पिं [illegible]।
[illegible] लोगंसि अणादियंसि अणवदग्गंसि [illegible] परिवुडंसि हेट्ठा विच्छिण्णंसि, मज्झे [illegible], उप्पिं विसालंसि, अहे पलियंकसंठियंसि, [illegible], उप्पिं उद्धमुइंगाकार- [illegible], [illegible] उप्पज्जित्ता-उप्पज्जित्ता [illegible], [illegible] उप्पज्जित्ता-उप्पज्जित्ता [illegible]।
[illegible] अजीवेहिं लोक्कइ [illegible]"।

[illegible]–
[illegible] नो असओ नेरइया [illegible], नो असओ [illegible]

भंते ! असुरकुमार देव सत् असुरकुमार देवों में उत्पन्न होते हैं या असत् असुरकुमार देवों में उत्पन्न होते हैं।
इसी प्रकार यावत् सत् वैमानिकों में उत्पन्न होते हैं या असत् वैमानिकों में उत्पन्न होते हैं ?
दं. १-२४. सत् नैरयिकों में से उद्वर्तन करते हैं या असत् नैरयिकों में से उद्वर्तन करते हैं ?
सत् असुरकुमारों में से उद्वर्तन करते हैं या
असत् असुरकुमारों में से उद्वर्तन करते हैं
इसी प्रकार यावत् सत् वैमानिकों में से च्यवते हैं या असत् वैमानिकों में से च्यवते हैं ?

उ. गांगेय ! नैरयिक जीव सत् नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं,
किन्तु असत् नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होते हैं।
सत् असुरकुमारों में उत्पन्न होते हैं,
किन्तु असत् असुरकुमारों में उत्पन्न नहीं होते हैं।
इसी प्रकार यावत् सत् वैमानिकों में उत्पन्न होते हैं,
असत् वैमानिकों में उत्पन्न नहीं होते हैं।
(इसी प्रकार) सत् नैरयिकों में से उद्वर्तन करते हैं,
असत् नैरयिकों में से उद्वर्तन नहीं करते हैं।
सत् असुरकुमारों में से उद्वर्तन करते हैं,
असत् असुरकुमारों में से उद्वर्तन नहीं करते हैं।
इसी प्रकार यावत् सत् वैमानिकों में से च्यवते हैं,
असत् वैमानिकों में से नहीं च्यवते हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"नैरयिक सत् नैरयिकों में से उत्पन्न होते हैं, असत् नैरयिकों में से उत्पन्न नहीं होते हैं। यावत् सत् वैमानिकों में से च्यवते हैं, असत् वैमानिकों में से नहीं च्यवते हैं ?

उ. हे गांगेय ! पुरुषादानीय (पुरुषों में ग्राह्य), अर्हत् पार्श्व ने– लोक को शाश्वत, अनादि, अनन्त (अविनाशी) परिमित, अलोक से परिवृत, नीचे विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त, ऊपर विशाल, नीचे पल्यंकाकार, बीच में उत्तम वज्राकार और ऊपर ऊर्ध्वमृदंगाकार कहा है।
उसी शाश्वत, अनादि, अनन्त, परिमित, परिवृत, नीचे विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त, ऊपर विशाल, नीचे पल्यंकाकार, मध्य में उत्तमवज्राकार और ऊपर उर्ध्वमृदंगाकारसंस्थित लोक में अनन्त जीवघन उत्पन्न हो होकर नष्ट होते हैं और परित्त (नियत) असंख्य जीवघन भी उत्पन्न होकर विनष्ट होते हैं।

इसीलिए यह लोक, भूत, उत्पन्न, विगत और परिणत है। यह अजीवों से लोकित और अवलोकित होता है। जो लोकित-अवलोकित होता है उसी को लोक कहते हैं यह निश्चित है।
इस कारण से गांगेय ! ऐसा कहा जाता है कि–
"नैरयिक सत् नैरयिकों में से उत्पन्न होते हैं असत् नैरयिकों में से उत्पन्न नहीं होते हैं यावत् सत् वैमानिकों में से च्यवते हैं, असत् वैमानिकों में से नहीं च्यवते हैं।"

१०५. भगवओ सओ-परओ वा जाणणा-परूवणं–

प. दं. १-२४. सयं भंते ! एतेवं जाणह, उदाहु असयं, असोच्चा एतेतं जाणह, उदाहु सोच्चा–

"सओ नेरइया उववज्जंति, नो असओ नेरइया उववज्जंति जाव सओ वेमाणिया चयंति, नो असओ वेमाणिया चयंति?"

उ. गंगेया ! सयं एतेवं जाणामि नो असयं, असोच्चा एतेवं जाणामि, नो सोच्चा–

"सओ नेरइया उववज्जंति, नो असओ नेरइया उववज्जंति जाव सओ वेमाणिया चयंति, नो असओ वेमाणिया चयंति।"

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"सयं एतेवं जाणामि नो असयं, असोच्चा एतेवं जाणामि नो सोच्चा–

सओ नेरइया उववज्जंति, नो असओ नेरइया उववज्जंति जाव सओ वेमाणिया चयंति, नो असओ वेमाणिया चयंति?

उ. गंगेया ! केवली णं पुरत्थिमे णं मियं पि जाणइ (पासइ) अमियं पि जाणइ (पासइ)।

एवं दाहिणे णं, पच्चत्थिमे णं, उत्तरे णं, उड्ढं, अहे मियं पि जाणइ, अमियं पि जाणइ।

सव्वं जाणइ केवली, सव्वं पासइ केवली।

सव्वओ जाणइ केवली, सव्वओ पासइ केवली।

सव्वकालं जाणइ केवली, सव्वकालं पासइ केवली।

सव्वभावे जाणइ केवली, सव्वभावे पासइ केवली।

अणंते नाणे केवलिस्स, अणंते दंसणे केवलिस्स।

निव्वुडे नाणे केवलिस्स, निव्वुडे दसणे केवलिस्स।

से तेणट्ठेणं गंगेया ! एवं वुच्चइ–

"सयं एतेवं जाणामि नो असयं, असोच्चा एतेवं जाणामि, नो सोच्चा–

सओ नेरइया उववज्जंति, नो असओ नेरइया उववज्जंति जाव सओ वेमाणिया चयंति, नो असओ वेमाणिया चयंति।" –विया. स. ९, उ. ३२, सु. ४२

१०५. भगवान् की स्वतः परतः जानने का प्ररूपण–

प्र. दं. १-२४. भंते ! आप इसे स्वयं (स्वज्ञान से) इस प्रकार जानते हैं या अस्वयं (पर के ज्ञान से) इस प्रकार जानते हैं? तथा विना सुने ही इसे इस प्रकार जानते हैं या सुनकर इस प्रकार जानते हैं कि–

"सत् नैरयिक उत्पन्न होते हैं, असत् नैरयिक उत्पन्न नहीं होते हैं यावत् सत् वैमानिको में से च्यवन होते हैं, असत् वैमानिकों में से च्यवन नहीं होते हैं?

उ. गांगेय ! यह सव मैं स्वयं जानता हूँ, अस्वयं नहीं जानता हूँ। तथा विना सुने ही मैं इसे इस प्रकार जानता हूँ, सुनकर ऐसा नहीं जानता हूँ कि–

"सत् नैरयिक उत्पन्न होते हैं, असत् नैरयिक उत्पन्न नहीं होते हैं यावत् सत् वैमानिकों में से च्यवते हैं, असत् वैमानिकों में से नहीं च्यवते हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा है कि–

"मैं स्वयं जानता हूँ, अस्वयं नहीं जानता हूँ विना सुने ही जानता हूँ, सुनकर नहीं जानता हूँ कि–

"सत् नैरयिक उत्पन्न होते हैं, असत् नैरयिक उत्पन्न नहीं होते हैं यावत् सत् वैमानिकों में से च्यवते हैं असत् वैमानिकों में से नहीं च्यवते हैं?"

उ. गांगेय ! केवली भगवान् पूर्व दिशा की मित (मर्यादित) वस्तु को भी जानते देखते हैं और अमित (अमर्यादित) वस्तु को भी *जानते-देखते* हैं,

इसी प्रकार दक्षिण दिशा, पश्चिम दिशा, उत्तर दिशा, ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा की मित वस्तु को भी जानते देखते हैं और अमित वस्तु को भी जानते देखते हैं।

केवलज्ञानी सव (द्रव्यों को) जानते हैं और सव (द्रव्यों) देखते हैं।

केवली भगवान् सर्वपर्यायों को जानते है और सर्वपर्यायों को देखते हैं।

केवली भगवान् सव कालों को जानते है और देखते है तथा सर्वकाल में जानते देखते हैं,

केवली सर्वभावों (गुणों) को जानते और सर्वभावों को देखते हैं।

केवलज्ञानी (सर्वज्ञ) के अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन होते हैं।

केवलज्ञानी का ज्ञान और दर्शन निरावरण (सभी प्रकार के आवरणों से रहित) होता है।

इस कारण से गांगेय ! ऐसा कहा जाता है कि–

"यह सव मैं स्वयं जानता हूँ अस्वयं नहीं जानता हूँ, विना सुने ही जानता हूँ सुनकर नहीं जानता हूँ कि–

सत् नैरयिक उत्पन्न होते है, असत् नैरयिक उत्पन्न नहीं होते है यावत् सत् वैमानिकों में से च्यवते है, असत् वैमानिकों में से नहीं च्यवते है।"

१०६. चउवीसदंडएसु सयं उववज्जण परूवणं–

प. दं. १. सयं भंते ! नेरइया नेरइएसु उववज्जंति, असयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति ?

उ. गंगेया ! सयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति, नो असयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"सयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति, नो असयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति ?"

उ. गंगेया ! कम्मोदएणं कम्मगरुयत्ताए कम्मभारियत्ताए कम्मगुरुसंभारियत्ताए, असुभाणं कम्माणं उदएणं, असुभाणं कम्माणं विवागेणं, असुभाणं कम्माणं फलविवागेणं सयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति, नो असयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति,

से तेणट्ठेणं गंगेया ! एवं वुच्चइ–

"सयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति, नो असयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति।"

प. दं. २. सयं भंते ! असुरकुमारा असुरकुमारेसु उववज्जंति, असयं असुरकुमारा असुरकुमारेसु उववज्जंति ?

उ. गंगेया ! सयं असुरकुमारा असुरकुमारेसु उववज्जंति, नो असयं असुरकुमारा असुरकुमारेसु उववज्जंति।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"सयं असुरकुमारा असुरकुमारेसु उववज्जंति, नो असयं असुरकुमारा असुरकुमारेसु उववज्जंति ?"

उ. गंगेया ! कम्मोदएणं कम्मविगतीए कम्मविसोहीए कम्मविसुद्धीए,

सुभाणं कम्माणं उदएणं,

सुभाणं कम्माणं विवागेणं,

सुभाणं कम्माणं फलविवागेणं सयं असुरकुमारा असुरकुमारेसु उववज्जंति,

नो असयं असुरकुमारा असुरकुमारत्ताए उववज्जंति।

से तेणट्ठेणं गंगेया ! एवं वुच्चइ–

"सयं असुरकुमारा असुरकुमारेसु उववज्जंति, नो असयं असुरकुमारा असुरकुमारेसु उववज्जंति।"

दं. ३-११. एवं जाव थणियकुमारा।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

१०६. चौबीस दंडकों में स्वयं उत्पन्न होने का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! क्या नैरयिक, नैरयिकों में स्वयं उत्पन्न होते हैं या अस्वयं उत्पन्न होते हैं ?

उ. गांगेय ! नैरयिक, नैरयिकों में स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"नैरयिक स्वयं नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं अस्वयं नैरयिक नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होते हैं।"

उ. गांगेय ! कर्मों के उदय से, कर्मों के भारीपन से, कर्मों के अत्यन्त गुरुत्व और भारीपन से, अशुभ कर्मों के उदय से, अशुभ कर्मों के विपाक से तथा अशुभ कर्मों के फलोदय से नैरयिक नैरयिकों में स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते हैं।

इस कारण से गांगेय ! ऐसा कहा जाता है कि –

"नैरयिक नैरयिकों में स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते हैं।"

प्र. दं. २. भंते ! असुरकुमार, असुरकुमारों में स्वयं उत्पन्न होते हैं या अस्वयं उत्पन्न होते हैं ?

उ. गांगेय ! असुरकुमार असुरकुमारों में स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"असुरकुमार स्वयं असुरकुमारों में उत्पन्न होते हैं अस्वयं उत्पन्न नहीं होते हैं ?"

उ. गांगेय ! कर्मों के उदय से, (अशुभ) कर्मों के अभाव से, कर्मों की विशोधि से, कर्मों की विशुद्धि से,

शुभ कर्मों के उदय से,

शुभ कर्मों के विपाक से,

शुभ कर्मों के फलोदय से असुरकुमार, असुरकुमारों में स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते हैं।

इस कारण से गांगेय ! ऐसा कहा जाता है कि-

"असुरकुमार स्वयं असुरकुमारों में उत्पन्न होते हैं अस्वयं उत्पन्न नहीं होते हैं।"

दं. ३-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. १२. भंते ! क्या पृथ्वीकायिक, पृथ्वीकायिकों में स्वयं उत्पन्न होते हैं या अस्वयं उत्पन्न होते हैं ?

उ. गांगेय ! पृथ्वीकायिक, पृथ्वीकायिकों में स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है–

"सयं पुढविकाइया पुढविकाइयत्ताए उववज्जंति, नो असयं पुढविकाइया पुढविकाइयत्ताए उववज्जंति ?"

उ. गंगेया ! कम्मोदएणं कम्मगुरुयत्ताए, कम्मभारियत्ताए, कम्मगुरुसंभारियत्ताए,

सुभासुभाणं कम्माणं उदएणं, सुभासुभाणं कम्माणं विवागेणं, सुभासुभाणं कम्माणं फलविवागेणं सयं पुढविकाइया पुढविकाइयत्ताए उववज्जंति, नो असयं पुढविकाइया पुढविकाइयत्ताए उववज्जंति।

से तेणट्ठेणं गंगेया ! एवं वुच्चइ–

"सयं पुढविकाइया पुढविकाइयत्ताए उववज्जंति, नो असयं पुढविकाइया पुढविकाइयत्ताए उववज्जंति।

दं. १३-२१. एवं जाव मणुस्सा।

दं. २२-२४. वाणमंतर, जोइसिय, वेमाणिया जहा असुरकुमारा।

तप्पभिइं च णं से गंगेये अणगारे समणं भगवं महावीरे पच्चभिजाणइ सव्वण्णू सव्वदरिसी।

तए णं से गंगेये अणगारे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता एवं वयासी–

इच्छामि णं भंते ! तुब्भं अंतियं चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं

एवं जहा कालासवेसियपत्तो तहेव भाणियव्वं जाव सव्वदुक्खप्पहीणे। —*विया. स. ९, उ. ३, सु. ५२-५८*

□

"पृथ्वीकायिक, पृथ्वीकायिकों में स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते हैं ?"

उ. गांगेय ! कर्मों के उदय से, कर्मों की गुरुता से, कर्मों के भारीपन से, कर्मों के अत्यन्त गुरुत्व और भारीपन से,

शुभाशुभ कर्मों के उदय से, शुभाशुभ कर्मों के विपाक से, शुभाशुभ कर्मों के फल-विपाक से स्वयं पृथ्वीकायिक, पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते हैं।

इस कारण से गांगेय ! ऐसा कहा जाता है कि–

"पृथ्वीकायिक स्वयं पथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते हैं।"

दं. १३-२१. इसी प्रकार मनुष्य पर्यन्त जानना चाहिए।

दं. २२-२४. जिस प्रकार असुरकुमारों के विषय में कहा, उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों के विषय में भी जानना चाहिए।

तव से (इन प्रश्नोत्तरों के पश्चात्) गांगेय अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर को सर्वज्ञ और सर्वदर्शी के रूप में पहचाना।

इसके पश्चात् गांगेय अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, वन्दन नमस्कार किया और इस प्रकार निवेदन किया–

भन्ते ! मैं आपके पास चातुर्यामरूप धर्म से पंचमहाव्रतरूप धर्म को अंगीकार करना चाहता हूँ।

इस प्रकार सारा वर्णन प्रथम शतक के नौवें उद्देशक में कथित कालास्यवेषिकपुत्र अनगार के समान जानना चाहिए यावत् गांगेय अनगार सिद्ध वुद्ध मुक्त यावत् सर्वदुःखों से रहित वने।

□

१०६. चउवीसदंडएसु सयं उववज्जण परूवणं–

प. दं. १. सयं भंते ! नेरइया नेरइएसु उववज्जंति, असयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति?

उ. गंगेया ! सयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति, नो असयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"सयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति, नो असयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति?"

उ. गंगेया ! कम्मोदएणं कम्मगरुयत्ताए कम्मभारियत्ताए कम्मगुरुसंभारियत्ताए, असुभाणं कम्माणं उदएणं, असुभाणं कम्माणं विवागेणं, असुभाणं कम्माणं फलविवागेणं सयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति, नो असयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति,

से तेणट्ठेणं गंगेया ! एवं वुच्चइ–

"सयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति, नो असयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति।"

प. दं. २. सयं भंते ! असुरकुमारा असुरकुमारेसु उववज्जंति, असयं असुरकुमारा असुरकुमारेसु उववज्जंति?

उ. [illegible] असुरकुमारा असुरकुमारेसु उववज्जंति, नो असयं असुरकुमारा असुरकुमारेसु उववज्जंति।

प. [illegible] वुच्चइ–

"[illegible] असुरकुमारा असुरकुमारेसु उववज्जंति, नो असयं असुरकुमारा असुरकुमारेसु उववज्जंति?"

उ. [illegible] कम्मविगईए कम्मविसोहीए [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] असुरकुमारा [illegible]

[illegible] उववज्जंति।

[illegible]

[illegible] उववज्जंति, नो [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

१०६. चौबीस दंडकों में स्वयं उत्पन्न होने का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! क्या नैरयिक, नैरयिकों में स्वयं उत्पन्न होते हैं या अस्वयं उत्पन्न होते हैं?

उ. गांगेय ! नैरयिक, नैरयिकों में स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"नैरयिक स्वयं नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं अस्वयं नैरयिक नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होते हैं।"

उ. गांगेय ! कर्मों के उदय से, कर्मों के भारीपन से, कर्मों के अत्यन्त गुरुत्व और भारीपन से, अशुभ कर्मों के उदय से, अशुभ कर्मों के विपाक से तथा अशुभ कर्मों के फलोदय से नैरयिक नैरयिकों में स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते हैं।

इस कारण से गांगेय ! ऐसा कहा जाता है कि –

"नैरयिक नैरयिकों में स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते हैं।"

प्र. दं. २. भंते ! असुरकुमार, असुरकुमारों में स्वयं उत्पन्न होते हैं या अस्वयं उत्पन्न होते हैं?

उ. गांगेय ! असुरकुमार असुरकुमारों में स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"असुरकुमार स्वयं असुरकुमारों में उत्पन्न होते हैं अस्वयं उत्पन्न नहीं होते हैं?"

उ. गांगेय ! कर्मों के उदय से, (अशुभ) कर्मों के अभाव से, कर्मों की विशोधि से, कर्मों की विशुद्धि से,

शुभ कर्मों के उदय से,

शुभ कर्मों के विपाक से,

शुभ कर्मों के फलोदय से असुरकुमार, असुरकुमारों में स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते हैं।

इस कारण से गांगेय ! ऐसा कहा जाता है कि-

"असुरकुमार स्वयं असुरकुमारों में उत्पन्न होते हैं अस्वयं उत्पन्न नहीं होते हैं।"

दं. ३-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. १२. भंते ! क्या पृथ्वीकायिक, पृथ्वीकायिकों में स्वयं उत्पन्न होते हैं या अस्वयं उत्पन्न होते हैं?

उ. [illegible] पृथ्वीकायिक, पृथ्वीकायिकों में स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. [illegible]

"सयं पुढविकाइया पुढविकाइयत्ताए उववज्जंति, नो असयं पुढविकाइया पुढविकाइयत्ताए उववज्जंति?"

उ. गंगेया! कम्मोदएणं कम्मगुरुयत्ताए, कम्मभारियत्ताए, कम्मगुरुसंभारियत्ताए,

सुभासुभाणं कम्माणं उदएणं, सुभासुभाणं कम्माणं विवागेणं, सुभासुभाणं कम्माणं फलविवागेणं सयं पुढविकाइया पुढविकाइयत्ताए उववज्जंति, नो असयं पुढविकाइया पुढविकाइयत्ताए उववज्जंति।

से तेणट्ठेणं गंगेया! एवं वुच्चइ–

"सयं पुढविकाइया पुढविकाइयत्ताए उववज्जंति, नो असयं पुढविकाइया पुढविकाइयत्ताए उववज्जंति।

दं. १३-२१. एवं जाव मणुस्सा।

दं. २२-२४. वाणमंतर, जोइसिय, वेमाणिया जहा असुरकुमारा।

तप्पभिइं च णं से गंगेये अणगारे समणं भगवं महावीरे पच्चभिजाणइ सव्वण्णू सव्वदरिसी।

तए णं से गंगेये अणगारे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता एवं वयासी–

इच्छामि णं भंते! तुब्भं अंतियं चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं

एवं जहा कालासवेसियपत्तो तहेव भाणियव्वं जाव सव्वदुक्खप्पहीणे। –विया. स. ९, उ. ३२, स. ५२-५८

□

"पृथ्वीकायिक, पृथ्वीकायिकों में स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते हैं?"

उ. गांगेय! कर्मों के उदय से, कर्मों की गुरुता से, कर्मों के भारीपन से, कर्मों के अत्यन्त गुरुत्व और भारीपन से,

शुभाशुभ कर्मों के उदय से, शुभाशुभ कर्मों के विपाक से, शुभाशुभ कर्मों के फल-विपाक से स्वयं पृथ्वीकायिक, पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते हैं।

इस कारण से गांगेय! ऐसा कहा जाता है कि–

"पृथ्वीकायिक स्वयं पथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते हैं।"

दं. १३-२१. इसी प्रकार मनुष्य पर्यन्त जानना चाहिए।

दं. २२-२४. जिस प्रकार असुरकुमारों के विषय में कहा, उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों के विषय में भी जानना चाहिए।

तव से (इन प्रश्नोत्तरों के पश्चात्) गांगेय अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर को सर्वज्ञ और सर्वदर्शी के रूप में पहचाना।

इसके पश्चात् गांगेय अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर को तीन वार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, वन्दन नमस्कार किया और इस प्रकार निवेदन किया–

भन्ते! मैं आपके पास चातुर्यामरूप धर्म से पंचमहाव्रतरूप धर्म को अंगीकार करना चाहता हूँ।

इस प्रकार सारा वर्णन प्रथम शतक के नौवें उद्देशक में कथित कालास्यवेषिकपुत्र अनगार के समान जानना चाहिए यावत् गांगेय अनगार सिद्ध बुद्ध मुक्त यावत् सर्वदुःखों से रहित बने।

□

द्रव्यानुयोग भाग २

सम्पूर्णम्

द्रव्यानुयोग भाग २

परिशिष्ट

परिशिष्ट-२

संदर्भ स्थल सूची

द्रव्यानुयोग के अध्ययनों में वर्णित विषयों का धर्मकथानुयोग, चरणानुयोग, गणितानुयोग व द्रव्यानुयोग के अन्य अध्ययनों में जहाँ-जहाँ जितने उल्लेख हैं उनका पृष्ठांक व सूत्रांक सहित विषयों की सूची दी जा रही है, जिज्ञासु पाठक उन-उन स्थलों से पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लें।

२५. संयत अध्ययन (पृ. ७८९-८४१)

द्रव्यानुयोग–

पृ. ११८, सू. २१–संयत आदि जीव।

पृ. १८६, सू. ९१–कालादेश की अपेक्षा संयत।

पृ. २६५, सू. २–चौवीस दण्डक में संयत द्वार द्वारा प्रथमाप्रथमत्व।

पृ. ३८०, सू. २६–संयत आदि आहारक या अनाहारक।

पृ. ११३५, सू. ९७–संयत-असंयत की अपेक्षा आठ कर्म प्रकृतियों का बन्ध।

पृ. १७१३, सू. ३–संयत आदि जीव चरम या अचरम।

२६. लेश्या अध्ययन (पृ. ८४२-८९५)

चरणानुयोग–

भाग २, पृ. ९०, सू. २३१–छह लेश्या।

द्रव्यानुयोग–

पृ. ९०, सू. २–लेश्या परिणाम के छह प्रकार।

पृ. ११६, सू. २१–सलेश्य-अलेश्य जीव।

पृ. ११९, सू. २१–कृष्णलेश्यी आदि जीव।

पृ. १८५, सू. ९१–कालादेश की अपेक्षा लेश्या।

पृ. १९१, सू. ९६–चौवीस दण्डकों में कृष्णलेश्यी आदि की वर्गणा।

पृ. १९५, सू. ९८–चौवीस दण्डकों में समान लेश्या वाले।

पृ. २०४, सू. १००–क्रोधोपयुक्तादि भंगों में लेश्या।

पृ. २६४, सू. २–चौवीस दण्डक में लेश्या द्वार द्वारा प्रथमाप्रथमत्व।

पृ. ६९२, सू. ११७–अश्रुत्वा अवधिज्ञानी में तीन लेश्या।

पृ. ६९५, सू. ११८–श्रुत्वा अवधिज्ञानी में छह लेश्या।

पृ. ७०९, सू. १२०–लेश्यी-अलेश्यी ज्ञानी है या अज्ञानी।

पृ. ३७९, सू. २६–सलेश्य आदि आहारक या अनाहारक।

पृ. ५६१, सू. १–लेश्यागति व लेश्यानुपातगति का स्वरूप।

पृ. ८१०, सू. ६–पुलाक आदि सलेश्य है या अलेश्य।

पृ. ८३२, सू. ७–सामायिक संयत आदि सलेश्य है या अलेश्य।

पृ. ११०५, सू. ३६–सलेश्य जीवों द्वारा पाप कर्म बंधन।

पृ. १२६६, सू. ११–एकेन्द्रिय जीवों में लेश्याएँ।

पृ. १२६८, सू. १२–विकलेन्द्रिय जीवों में लेश्याएँ।

पृ. १२६९, सू. १३–पंचेन्द्रिय जीवों में लेश्याएँ।

पृ. १२७५, सू. २४–कृष्णलेश्यी एकेन्द्रियों के भेद-प्रभेद।

पृ. १२७६, सू. २५–अनन्तरोपपन्नक कृष्णलेश्यी एकेन्द्रियों के भेद-प्रभेद।

पृ. १२७६, सू. २६–परम्परोपपन्नक कृष्णलेश्यी एकेन्द्रियों के भेद-प्रभेद।

पृ. १२७६, सू. २७–अनन्तरावगाढ़ादि कृष्णलेश्यी एकेन्द्रियों के भेद-प्रभेद।

पृ. ११५०, सू. ९४–लेश्या की अपेक्षा एकेन्द्रियों में स्वामित्व वंध और वेदन का प्ररूपण।

पृ. ११७०, सू. १२८–सलेश्य क्रियावादी आदि जीवों का आयु वंध।

पृ. १२७६, सू. २८–नील-कापोतलेश्यी एकेन्द्रियों के भेद-प्रभेद।

पृ. १२७७, सू. ३०–कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रियों के भेद-प्रभेद।

पृ. १२७७, सू. ३१–अनन्तरोपपन्नकादि कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रियों के भेद-प्रभेद।

पृ. १२७८, सू. ३२–नील-कापोतलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रियों के भेद-प्रभेद।

पृ. १२७८, सू. ३४–कृष्ण-नील-कापोतलेश्यी अभवसिद्धिक एकेन्द्रियों के भेद-प्रभेद।

पृ. १२८०, सू. ३६–उत्पल पत्र आदि में जीवों की लेश्याएँ।

पृ. १४७५, सू. ३१–रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावास में कापोतलेश्यी की उत्पत्ति और उद्वर्तन।

पृ. १५५७, सू. २०–कृष्ण-नील-कापोतलेश्यी एकेन्द्रिय जीवों की विग्रहगति के समय का प्ररूपण।

पृ. १५७०-१५७२, सू. १४-१६–क्षुद्रकृतयुग्मादि की अपेक्षा कृष्ण-नील-कापोतलेश्यी नैरयिकों के उत्पाद का प्ररूपण।

पृ. १५७७, सू. २२–कृतयुग्मादि एकेन्द्रिय कृष्णलेश्यी यावत् तेजोलेश्यी हैं ?

पृ. १५८२, सू. २५–लेश्याओं की अपेक्षा महायुग्म वाले एकेन्द्रियों में उत्पातादि।

पृ. १५८३, सू. २६–कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक कृतयुग्म राशि में उत्पत्ति आदि।

पृ. १५८३, सू. २६–नीललेश्यी भवसिद्धिक कृतयुग्म राशि में उत्पत्ति आदि।

पृ. १५८३, सू. २६-कापोतलेश्यी भवसिद्धिक कृतयुग्म राशि में उत्पत्ति आदि।

पृ. १५८५, सू. २९-सलेश्य महायुग्म द्वीन्द्रियों में उत्पातादि बत्तीस द्वारों का प्ररूपण।

पृ. १६७६, सू. ५-कृष्णलेश्या आदि में जीव व जीवात्मा।

पृ. १७१३, सू. ३-सलेश्यी, कृष्णलेश्यी आदि चरम या अचरम।

पृ. १७७७, सू. २०-कृष्णलेश्या आदि में वर्णादि।

पृ. १६०३, सू. ३-नैरयिकों में उत्पन्न होने वाले असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की लेश्याएँ।

२७. क्रिया अध्ययन (पृ. ८९६-९८४)

धर्मकथानुयोग-

भाग १, खण्ड १, पृ. २४४, सू. ५८०-भरत राजा के रत्नों और महानिधियों की उत्पत्ति।

भाग १, खण्ड १, पृ. २५१, सू. ६०९-६१०-चक्रवर्ती के चौदह रत्न।

चरणानुयोग-

भाग १, पृ. ४८८, सू. ७४६-संवृत अणगार की क्रिया।

भाग २, पृ. ८९, सू. २३१-पाँच क्रिया।

भाग २, पृ. ९०, सू. २३१-तेरह क्रिया स्थान।

भाग २, पृ. १८९, सू. ३७१-तेरह क्रिया स्थान ।

द्रव्यानुयोग-

पृ. १९६, सू. ९८-चौवीस दण्डक में समान क्रिया।

पृ. ८५९, सू. २१-सलेश्य चौवीस दण्डकों में सभी समान क्रिया वाले नहीं।

पृ. १२०२, सू. ३६-उत्पल पत्र आदि के जीव सक्रिय या अक्रिय।

पृ. १५७८, सू. २२-कृतयुग्म एकेन्द्रिय क्रिया युक्त।

२९. वेद अध्ययन (पृ. १०४०-१०६७)

द्रव्यानुयोग-

पृ. ९१, सू. २-वेद परिणाम के तीन प्रकार।

पृ. ११६, सू. २१-सवेदक-अवेदक जीव।

पृ. ११७, सू. २१-स्त्रीवेदक आदि जीव।

पृ. १२६, सू. ३४-स्त्रीवेदी आदि जीव।

पृ. १८७, सू. ९१-कालादेश की अपेक्षा वेद।

पृ. २६७, सू. २-चौवीस दण्डक में वेद द्वार द्वारा प्रथमाप्रथमत्व।

पृ. ३८१-३८२, सू. २६-सवेदी आदि आहारक या अनाहारक।

पृ. ६९२, सू. ११७-अश्रुत्वा अविधज्ञानी में वेद।

पृ. ६९५, सू. ११८-श्रुत्वा अवधिज्ञानी में वेद।

पृ. ७१०, सू. १२०-सवेदक-अवेदक जीव ज्ञानी है या अज्ञानी।

पृ. ७२७, सू. ६-पुलाक आदि सवेदक या अवेदक।

पृ. ८१९, सू. ७-सामायिक संयत आदि सवेदक या अवेदक।

पृ. १२८२, सू. ३६-उत्पल पत्र आदि नपुंसकवेदी।

पृ. १४७५, सू. ३१-रत्नप्रभा आदि नरकावासों में स्त्रीवेदक की उत्पत्ति और उद्‌वर्तन।

पृ. १४७५, सू. ३१-रत्नप्रभा आदि नरकावासों में पुरुषवेदक की उत्पत्ति और उद्‌वर्तन।

पृ. १४७६, सू. ३१-रत्नप्रभा आदि नरकावासों में नपुंसकवेदक की उत्पत्ति और उद्‌वर्तन।

पृ. १५७८, सू. २२-कृतयुग्म एकेन्द्रिय नपुंसकवेद वाले हैं।

पृ. १५७८, सू. २२-कृतयुग्म एकेन्द्रिय नपुंसकवेद आदि बंधक हैं।

पृ. ११०७, सू. ३६-सवेदक-अवेदक द्वारा पाप कर्म बंधन।

पृ. ११३५, सू. ७९-स्त्री पुरुष नपुंसक की अपेक्षा आठ कर्मों का बंध।

पृ. ११७२, सू. १२८-सवेदी आदि में क्रियावादी आदि जीवों द्वारा आयु-बंध का प्ररूपण।

पृ. १७१४, सू. ३-सवेदक-अवेदक स्त्रीवेद आदि चरम या अचरम।

पृ. १६०४, सू. ३-नैरयिकों में उत्पन्न होने वाले असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव नपुंसकवेदी।

३०. कषाय अध्ययन (पृ. १०६८-१०७५)

धर्मकथानुयोग-

भाग १, खण्ड १, पृ. १५४, सू. ३९१-चार कषाय वर्णन।

चरणानुयोग-

भाग २, पृ. ८८, सू. २३१-चार कषाय।

भाग २, पृ. १०३, सू. २५८-कषाय प्रत्याख्यान का फल।

भाग २, पृ. १९०, सू. ३७५-कषाय निषेध।

भाग २, पृ. १९१, सू. ३७६-कषायों की अग्नि की उपमा।

भाग २, पृ. १९३, सू. ३८३-३८६-कषाय विजय फल।

भाग २, पृ. १९१, सू. ३७७-आठ प्रकार के मद।

भाग २, पृ. २७६, सू. ५७२-कषाय प्रतिसंलीनता के चार प्रकार।

भाग २, पृ. ४०३, सू. ८०७-कषायों को कृश करने का पराक्रम।

भाग १, पृ. ४५२, सू. ६९८-कषाय कलुषित भाव को वहाते हैं।

द्रव्यानुयोग-

पृ. ९०, सू. २-कषाय परिणाम के चार प्रकार।

पृ. ११६, सू. २१-सकषायी-अकषायी जीव।

पृ. ११७, सू. २१-क्रोधकषायी आदि जीव।

पृ. १८६, सू. ९१-कालादेश की अपेक्षा कषाय।

पृ. २६६, सू. २-चौवीस दण्डक में कषाय द्वार द्वारा प्रथमाप्रथमत्व।

पृ. ३८०, सू. २६-सकषायी आदि आहारक या अनाहारक।

पृ. ६९३, सू. ११७-अश्रुत्वा अवधिज्ञानी में कषाय।

पृ. ६९५, सू. ११८-श्रुत्वा अवधिज्ञानी में कषाय।

पृ. ७१०, सू. १२०-सकषायी-अकषायी जीव ज्ञानी हैं या ज्ञानी।

पृ. ७८३, सू. १७७-क्रोध आय आदि।

पृ. ८०९, सू. ६-पुलाक आदि सकषायी या अकषायी।

पृ. ८३१, सू. ७-सामायिक संयत आदि सकषायी या कषायी।

पृ. ९२१, सू. ४५-कषाय-अकषाय भाव में स्थित संवृत गार की क्रियाओं का प्ररूपण।

पृ. ११२९, सू. ७१-क्रोधादि कषायवशार्त जीवों के कर्म बंधादि प्ररूपण।

पृ. १२८२, सू. ७६-उत्पल पत्र के जीव में कषाय।

पृ. १४७५, सू. ३१-रत्नप्रभा आदि नरकावासों में क्रोध कषायी त् लोभ कषायी जीवों की उत्पत्ति और उद्वर्तन।

पृ. १५७८, सू. २२-कृतयुग्म एकेन्द्रिय क्रोध कषायी यावत् कषायी युग्म।

पृ. १०९०, सू. २३-क्रोधादि चार स्थानों द्वारा आठ कर्मों का दि का प्ररूपण।

पृ. १०९४, सू. २४-कषाय वेदनीय नोकषाय वेदनीय के प्रभेद।

पृ. ११०७, सू. ३६-सकषायी-अकषायी द्वारा पाप कर्म बंधन।

पृ. ११७२, सू. १२९-सकषायी-अकषायी आदि में क्रियावादी दे जीवों द्वारा आयु बंध का प्ररूपण।

पृ. १६७८, सू. ७-कषायात्मा का अन्य आत्माओं के साथ न्ध।

पृ. १७१३, सू. ३-सकषायी आदि चरम या अचरम।

पृ. १६८७, सू. १०-कषाय समुद्घात का वर्णन।

पृ. १७००, सू. १७-कषाय समुद्घात का विस्तार से वर्णन।

पृ. १६०४, सू. ३-नैरयिकों में उत्पन्न होने वाले तिर्यंच न्द्रियोनिकों में चार कषाय।

३१. कर्म अध्ययन (पृ. १०७६-१२१७)

कथानुयोग-

भाग १, खण्ड १, पृ. ४६, सू. १४८-बीस तीर्थंकर नाम गोत्र उपार्जन।

भाग १, खण्ड १, पृ. १५०, सू. ३७२-नौ जीवों द्वारा तीर्थंकर गोत्र कर्म का उपार्जन।

भाग २, खण्ड २, पृ. २४०, सू. ४६२-भोगों में कर्म का संचय की उपमा।

भाग २, खण्ड २, पृ. ३५९, सू. ६४२-पाप कर्म फल विषयक लोदयी के प्रश्नोत्तर।

भाग २, खण्ड २, पृ. ३६०, सू. ६४३-कल्याण कर्म के विषय प्रश्नोत्तर।

भाग २, खण्ड २, पृ. ३६०, सू. ६४४-अग्नि लगाने व बुझाने वाले के कर्म बंध के प्रश्नोत्तर।

गणितानुयोग-

पृ. १४, सू. ३० (२)-जीव का पाप कर्म बाँधना।

पृ. १४, सू. ३० (४)-जीव का मोहनीय कर्म बाँधना।

चरणानुयोग-

भाग १, पृ. १४७, सू. २४४-सयोगी के ईर्यापथिक कर्म बंध व अन्त में अकर्म।

भाग १, पृ. २४४, सू. ३४५-छह जीव निकायों की हिंसा कर्म बंध का हेतु।

भाग २, पृ. ८८, सू. २३१-राग-द्वेष बंधन।

भाग २, पृ. १०६, सू. २६८-अल्पायु बंध के कारण।

भाग २, पृ. १०६, सू. २६९-दीर्घायु बंध के कारण।

भाग २, पृ. १०६, सू. २७०-अशुभ दीर्घायु बंध के कारण।

भाग २, पृ. १०७, सू. २७१-शुभ दीर्घायु बंध के कारण।

भाग २, पृ. १८५, सू. ३७०-महामोहनीय कर्म बाँधने के तीस स्थान।

भाग २, पृ. १९३, सू. ३८२-सांपरायिक कर्मों का त्रिकरण निषेध।

भाग २, पृ. ४०२, सू. ८०६-कर्म भेदन में पराक्रम।

भाग २, पृ. ४०४, सू. ८०८-बंधन से मुक्त होने का पराक्रम।

भाग २, पृ. ४११, सू. ८२१-कर्म निर्जरा का फल।

भाग २, पृ. १२९, सू. २२०-२२१-दुर्लभ बोधि सुलभ बोधि करने वाले कर्म।

द्रव्यानुयोग-

पृ. १९५, सू. ९८-चौबीस दण्डक में समान कर्म।

पृ. १९५, सू. ९८-चौबीस दण्डक में समान आयु।

पृ. ८११, सू. ६-पुलाक आदि की कर्म प्रकृतियों का बंध।

पृ. ८११, सू. ६-पुलाक आदि की कर्म प्रकृतियों का वेदन।

पृ. ८११, सू. ६-पुलाक आदि की कर्म प्रकृतियों की उदीरणा।

पृ. ८३३, सू. ७-सामायिक संयत आदि में कितनी कर्म प्रकृतियों का बंध।

पृ. ८३३, सू. ७-सामायिक संयत आदि में कितनी कर्म प्रकृतियों का वेदन।

पृ. ८३३, सू. ७-सामायिक संयत आदि में कितनी कर्म प्रकृतियों की उदीरणा।

पृ. ८५८, सू. २१-सलेश्य चौबीस दण्डकों में सभी समान कर्म वाले नहीं।

पृ. ८५८, सू. २१-सलेश्य चौबीस दण्डकों में सभी समान आयु वाले नहीं।

पृ. ९२६, सू. ४३-जीव चौबीस दण्डकों में क्रियाओं द्वारा कर्म प्रकृतियों का बंध।

३२. वेदना अध्ययन (पृ. १२१८-१२४०)

द्रव्यानुयोग–

३३. गति अध्ययन (पृ. १२४१-१२५१)

द्रव्यानुयोग–

३४. नरक गति अध्ययन (पृ. १२५२-१२५८)

धर्मकथानुयोग–

द्रव्यानुयोग–

३५. तिर्यञ्च गति अध्ययन (पृ. १२५९-१२९५)

द्रव्यानुयोग–

पृ. १५२, सू. ६७–तिर्यञ्चयोनिकों के भेद।

पृ. १५२८, सू. ९७–तिर्यञ्चयोनिक प्रवेशनक।

पृ. १५०८, सू. ७९–तिर्यञ्चयोनिकों की नरक में उत्पत्ति।

पृ. ९९७, सू. १७–तिर्यञ्चयोनिकों के दुःखों का वर्णन।

३६. मनुष्य गति अध्ययन (पृ. १२९६-१३८१)

चरणानुयोग–

भाग १, पृ. ४८, सू. ६६–माता-पितादि का प्रत्युपकार दुष्कर।

भाग १, पृ. ४९, सू. ६८–चार प्रकार के धार्मिक-अधार्मिक पुरुष।

द्रव्यानुयोग–

पृ. ९, सू. ४–मनुष्य के प्रकार।

पृ. १६१, सू. ६९–मनुष्यों के प्रकार।

पृ. १५००, सू. ७०–उत्तरकुरु के मनुष्यों के उत्पात।

पृ. १५०८, सू. ८०–दुःशील-सुःशील मनुष्यों की उत्पत्ति।

पृ. १५२९, सू. ९९–मनुष्य प्रवेशनक।

पृ. १५०६, सू. ७४–सव जीवों का मातादि के रूप में पूर्वोत्पन्नत्व।

पृ. १५४२, सू. ४–मनुष्य स्त्री गर्भ के चार प्रकार।

पृ. १५६४, सू. ५–स्त्रियों में कृतयुग्मादि का प्ररूपण।

पृ. ९९९, सू. १८–मनुष्यों के दुःखों का वर्णन।

पृ. १०३६, सू. ५७–लोभग्रस्त मनुष्य।

३७. देव गति अध्ययन (पृ. १३८२-१४३१)

धर्मकथानुयोग–

भाग १, खण्ड १, पृ. ७-१२, सू. २१-३२–छप्पन दिशाकुमारियों द्वारा कृत जन्म महोत्सव।

भाग २, खण्ड ५, पृ. २५, सू. ४१–किल्विषिक देवों के भेद।

भाग २, खण्ड ६, पृ. १२, सू. २०–देवेन्द्र देवराज शक्र असुरेन्द्र चमर द्वारा कोणिक की सहायता।

गणितानुयोग–

पृ. १५६, सू. ११८–विजयद्वार के प्रासादावतंसक में चार प्रकार के देव।

द्रव्यानुयोग–

पृ. ९, सू. ४–देव गति के भेद-प्रभेद।

पृ. १३, सू. १४–सौधर्मादि देवलोकों में अवगाढ़-अनवगाढ़।

पृ. १७१, सू. ७२–देवों के प्रकार।

पृ. ४५४, सू. १८–पाँच प्रकार के देवों की विकुर्वणा शक्ति।

पृ. ८७८, सू. ४०–लेश्यायुक्त देवों को जानना-देखना।

पृ. ७१८, सू. १२३–अणगार द्वारा वैक्रिय समुद्घात से समवहत देवादि का जानना-देखना।

~~पृ. १०६२, सू. १२–देवों में मैथुन प्रवृत्ति की प्ररूपणा।~~

पृ. १०९९, सू. २८–देव की अपेक्षा बँधने वाली नाम कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ।

पृ. १२१४, सू. १७३–देवों द्वारा अनन्त कर्मांशों के क्षयकाल का प्ररूपण।

पृ. १४९६, सू. ५८–भव्य द्रव्य देव का उपपात।

पृ. १४९८, सू. ६३–भव्य द्रव्य देव का उद्वर्तन।

पृ. १४९६, सू. ५९–नर देव का उपपात।

पृ. १४९८, सू. ६४–नर देव का उद्वर्तन।

पृ. १४९७, सू. ६०–धर्म देव का उपपात।

पृ. १४९८, सू. ६५–धर्म देव का उद्वर्तन।

पृ. १४९७, सू. ६१–देवाधि देव का उपपात।

पृ. १४९९, सू. ६६–देवाधि देव का उद्वर्तन।

पृ. १४९७, सू. ६२–भाव देव का उपपात।

पृ. १४९९, सू. ६३–भाव देव का उद्वर्तन।

पृ. १४९९, सू. ६८–असंयत भव्य द्रव्य देव का देवलोक में उत्पाद।

पृ. १५००, सू. ६९–किल्विषिक देव में उत्पत्ति के कारण।

पृ. ५३४, सू. ३०–शक्रेन्द्र की सावद्य-निरवद्य भाषा।

पृ. ५४२, सू. २५–देव आदिकों की उस-उस समय में एक योग प्रवृत्ति।

पृ. १०३६, सू. ५७–लोभग्रस्त देव।

पृ. १०६२, सू. १२–देवों में मैथुन प्रवृत्ति।

पृ. १०९९, सू. २८–देवों की अपेक्षा बँधने वाली नाम कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ।

पृ. ११७७, सू. १३६–देव का च्यवन के पश्चात् भवायु का प्रतिसंवेदन।

पृ. १५४२, सू. ५–गर्भगत जीव के देव में उत्पत्ति के कारण।

पृ. १५०१, सू. ७१–महर्धिक देव की नाग-मणि या वृक्ष के रूप में उत्पत्ति और सिद्धत्व का प्ररूपण।

पृ. १५३०, सू. १०१–देव प्रवेशनक।

पृ. १५०७, सू. ७७–वैमानिक देवों का अनन्त बार पूर्वोत्पन्नत्व।

पृ. १५४२, सू. ५–गर्भगत जीव के देवों में उत्पत्ति के कारण।

पृ. ११७७, सू. १३६–देव का च्यवन के पश्चात् भवायु का प्रतिसंवेदन।

३८. वक्रंति अध्ययन (पृ. १४३२-१५३५)

धर्मकथानुयोग–

भाग १, खण्ड २, पृ. १२७, सू. २७५–ईशान देवेन्द्र की उत्पत्ति और च्यवन।

भाग २, खण्ड ४, पृ. ३१४, सू. ३३७–उदायी हस्तीराज की नरक में उत्पत्ति।

भाग २, खण्ड ५, पृ. ७३-७५, सू. ११५-११६–गोशालक की नरक तिर्यञ्च देव आदि भवों में उत्पत्ति।

भाग २, खण्ड ६, पृ. ५०, सू. १०३-धन्य की सौधर्म कल्प में उत्पत्ति।

भाग २, खण्ड ६, पृ. ९३, सू. २०२-मृगापुत्र की नरक तिर्यञ्च मनुष्य आदि भवों में उत्पत्ति।

गणितानुयोग-

पृ. १४, सू. ३० (१)-जीव का मरना उत्पन्न होना।

पृ. ३७३, सू. ७४९-कालोद समुद्र व पुष्करवर द्वीप के जीवों की एक दूसरे में उत्पत्ति।

द्रव्यानुयोग-

पृ. ८७०, सू. ३०-अणगार का लेश्यानुसार उपपात का प्ररूपण।

पृ. ८७२, सू. ३२-सलेश्य चौबीस दण्डकों द्वारा उत्पाद उद्वर्तन।

पृ. १२६७, सू. ११-एकेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति।

पृ. १२६८, सू. १२-विकलेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति।

पृ. १२६९, सू. १३-पंचेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति।

पृ. १२६७, सू. ११-एकेन्द्रिय जीवों के मरण।

पृ. १२६८, सू. १२-विकलेन्द्रिय जीवों के मरण।

पृ. १२६९, सू. १३-पंचेन्द्रिय जीवों के मरण।

पृ. १२७९, सू. ३६-उत्पल पत्र वाले जीव की उत्पत्ति।

पृ. १२८३, सू. ३६-उत्पल पत्र वाले जीव की गति-आगति।

पृ. १२८४, सू. ३६-उत्पल पत्र के जीव मरकर कहाँ जाते कहाँ उत्पन्न होते।

पृ. १३८०, सू. १०५-एकोरूक द्वीप के मनुष्यों की देवलोक में उत्पत्ति।

पृ. १५७६, सू. २२-कृतयुग्म एकेन्द्रिय जीव की उत्पत्ति।[1]

पृ. १५७६, सू. २२-कृतयुग्म एकेन्द्रिय जीव एक समय में कितने।

पृ. १५७८, सू. २२-कृतयुग्म एकेन्द्रिय का जन्म-मरण।

पृ. १५८४, सू. २७-सोलह एकेन्द्रिय महायुग्मों में उत्पत्ति।

पृ. ११४४, सू. ८४-उत्पत्ति की अपेक्षा एकेन्द्रियों में कर्म बंध का प्ररूपण।

पृ. १९०६, सू. ३४-छहों दिशाओं में जीवों की गति-आगति।

पृ. १६०२, सू. २-गति की अपेक्षा नैरयिकों के उपपात का प्ररूपण।

पृ. १६०३, सू. ३-नैरयिकों में उत्पन्न होने वाले पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उपपात का प्ररूपण।[2]

पृ. १६०४, सू. ३-नैरयिकों में उत्पन्न होने वाले पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की गति-आगति।[2]

---

१. पृ. १५७६ से १५९९ में बत्तीस द्वारों का विस्तृत वर्णन है।
एकेन्द्रिय के द्वारों का उल्लेख वक्रांति आदि सभी अध्ययनों में किया है उसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय का वर्णन प्रथम समयादि सलेश्य, भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक आदि के महायुग्म त्र्योज, द्वापर युग्म, कल्योज के रूप में जानना चाहिए।

२. नैरयिकों में उत्पन्न होने वाले उपरोक्त बीस द्वारों के समान ही चौबीस दण्डकों में बीस द्वारों का पृ. १६०२ से १६७३ तक विस्तृत वर्णन है।
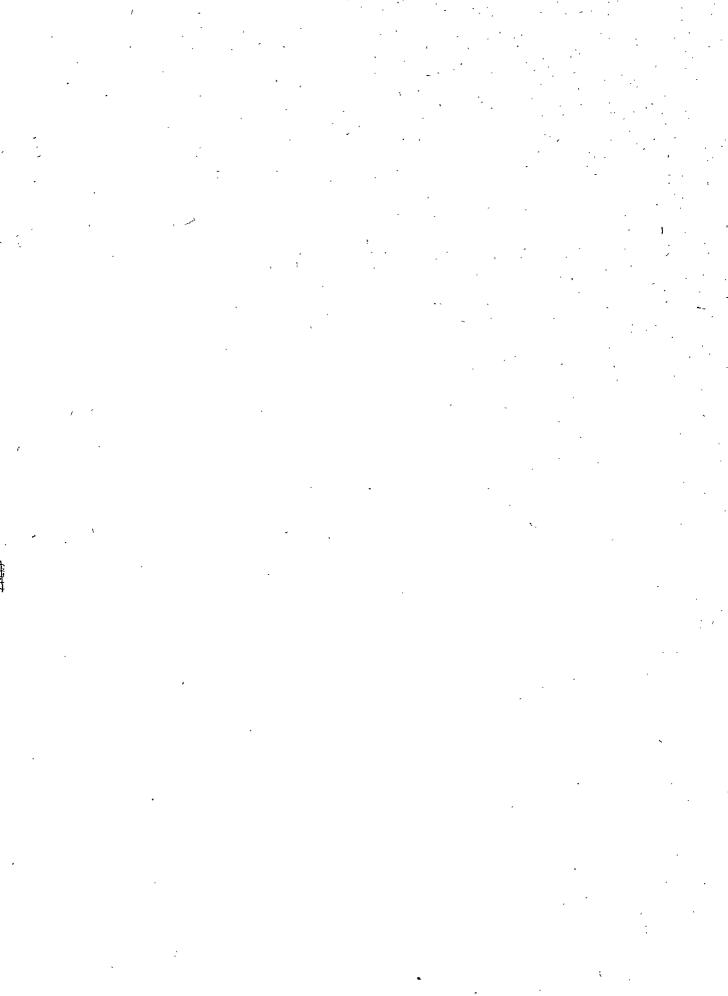
२७. सोहम्मे कप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणा,
२८. भवणवासिदेवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
२९. खहयरतिरिक्खजोणिय - पुरिसा असंखेज्जगुणा,
३०. थलयरतिरिक्खजोणिय-पुरिसा संखेज्जगुणा,
३१. जलयरतिरिक्खजोणिय-पुरिसा संखेज्जगुणा,
३२. वाणमंतरदेव-पुरिसा संखेज्जगुणा,
३३. जोइसियदेव-पुरिसा संखेज्जगुणा।

–जीवा. प. २, सु. ५६ (१-२)

२७. (उनसे) सौधर्मकल्प के देव-पुरुष संख्यातगुणे हैं,
२८. (उनसे) भवनवासी देवपुरुष असंख्यातगुणे हैं,
२९. (उनसे) खेचर तिर्यग्योनिक पुरुष असंख्यातगुणे हैं,
३०. (उनसे) स्थलचर तिर्यग्योनिक पुरुष संख्यातगुणे हैं,
३१. (उनसे) जलचर तिर्यग्योनिक पुरुष संख्यातगुणे हैं,
३२. (उनसे) वाणव्यंतर देव-पुरुष संख्यातगुणे हैं,
३३. (उनसे) ज्योतिष्क देवपुरुष संख्यातगुणे हैं,

(ग) नपुंसगाणं अप्पबहुत्तं–

प. (१) एएसि णं भंते ! १. णेरइय-नपुंसगाणं, २. तिरिक्ख-जोणिय-नपुंसगाणं, ३. मणुस्स-नपुंसगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा मणुस्स-नपुंसगा,
२. नेरइय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,
३. तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा अणंतगुणा।

प. (२) एएसि णं भंते ! नेरइय-नपुंसगाणं रयणप्पहापुढविणेरइय-नपुंसगाणं जाव अहेसत्तमपुढविणेरइय-नपुंसगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा अहेसत्तमपुढविनेरइय- नपुंसगा,
२-६. छट्ठपुढविणेरइय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा जाव दोच्चपुढविणेरइय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,
७. इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए णेरइय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा।

प. (३) एएसि णं भंते ! तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं, एगिंदिय- तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं, पुढविकाइय-एगिंदिय- तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं जाव वणस्सइकाइय- एगिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं, बेइंदिय-तेइंदिय- चउरिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं, पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं-जलयराणं, थलयराणं, खहयराण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा खहयर-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा,
[illegible] तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा संखेज्जगुणा,
[illegible] तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा संखेज्जगुणा,
[illegible] तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा विसेसाहिया,
[illegible] तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा विसेसाहिया,
[illegible] तिरिक्खजोणिय नपुंसगा विसेसाहिया,
[illegible] एगिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा [illegible]
[illegible] एगिंदिय तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा [illegible]

(ग) नपुंसकों का अल्पबहुत्व–

प्र. (१) भंते ! इन १. नैरयिक नपुंसकों, २. तिर्यग्योनिक नपुंसकों और ३. मनुष्य नपुंसकों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प मनुष्य-नपुंसक हैं,
२. (उनसे) नैरयिक-नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) तिर्यग्योनिक-नपुंसक अनन्तगुणे हैं,

प्र. (२) भंते ! इन नैरयिक-नपुंसकों में से रत्नप्रभा-पृथ्वी के नैरयिक-नपुंसकों यावत् अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिक-नपुंसकों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिक-नपुंसक सबसे अल्प हैं,
२.६ (उनसे) छठी पृथ्वी के नैरयिक-नपुंसक असंख्यातगुणे हैं, यावत् दूसरी पृथ्वी के नैरयिक-नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,
७. (उनसे) इस रत्नप्रभा-पृथ्वी के नैरयिक-नपुंसक असंख्यातगुणे हैं।

प्र. (३) भंते ! तिर्यग्योनिक नपुंसकों में एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक-नपुंसक, पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसक, द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चउरिन्द्रिय-तिर्यग्योनिक नपुंसक, पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसकों के जलचर स्थलचर खेचरों में से कौन-किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. खेचर तिर्यग्योनिक-नपुंसक सबसे अल्प हैं,
२. (उनसे) स्थलचर तिर्यग्योनिक-नपुंसक संख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) जलचर तिर्यग्योनिक-नपुंसक संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) चतुरिन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक विशेषाधिक हैं,
५. (उनसे) त्रीन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक विशेषाधिक हैं,
६. (उनसे) द्वीन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक विशेषाधिक हैं,
७. (उनसे) तेजस्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,
८. (उनसे) पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक विशेषाधिक हैं,

९. आउक्काइय-एगिंदिय-तिरिक्ख-जोणिय-नपुंसगा विसेसाहिया

१०. वाउक्काइय-एगिंदिय-तिरिक्ख-जोणिय-नपुंसगा विसेसाहिया,

११. वणस्सइकाइय-एगिंदिय-तिरिक्ख-जोणिय-नपुंसगा अणंतगुणा।

प. (४) एएसि णं भंते ! मणुस्स-नपुंसगाणं, कम्मभूमि-नपुंसगाणं, अकम्मभूमि-नपुंसगाणं, अंतरदीवग-नपुंसगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा अंतरदीवग-अकम्मभूमग-मणुस्स-नपुंसगा,

२-११. देवकुरु-उत्तरकुरु-अकम्मभूमगा दोवि संखेज्ज-गुणा

एवं जाव पुव्वविदेह-अवरविदेहकम्मभूमगा दोवि संखेज्जगुणा।

प. (५) एएसि णं भंते ! णेरइय-नपुंसगाणं, रयणप्पभापुढवि नेरइय-नपुंसगाणं जाव अहेसत्तमापुढविणेरइय-नपुंसगाणं,

तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं, एगिंदिय- तिरिक्ख-जोणियाणं, पुढविकाइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं जाव वणस्सइकाइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं,

बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं,

पचेंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं, जलयराणं, थलयराणं, खहयराणं,

मणुस्स-नपुंसगाणं कम्मभूमिगाणं, अकम्मभूमिगाणं, अंतरदीवगाणय, कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा अहेसत्तमपुढविणेरइय- नपुंसगा,

२-६. छट्ठपुढविनेरइय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा जाव दोच्चपुढविनेरइय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,

७. अंतरदीवगमणुस्स-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,

८-१७. देवकुरु - उत्तरकुरु - अकम्मभूमिग- मणुस्स-नपुंसगा दोवि संखेज्जगुणा जाव पुव्वविदेह-अवरविदेह-कम्मभूमग- मणुस्स-नपुंसगा दोवि संखेज्जगुणा,

१८. रयणप्पभापुढविणेरइय - नपुंसगा असंखेज्जगुणा,

१९. खहयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिय - नपुंसगा असंखेज्जगुणा,

२०. थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिय - नपुंसगा संखेज्जगुणा,

२१. जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिय - नपुंसगा संखेज्जगुणा,

९. (उनसे) अप्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक विशेषाधिक हैं,

१०. (उनसे) वायुकायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक विशेषाधिक हैं,

११. (उनसे) वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक अनन्तगुणे हैं।

प्र. (४) भंते ! इन मनुष्य-नपुंसकों में से कर्मभूमि के नपुंसकों, अकर्मभूमि के नपुंसकों, अन्तर्द्वीपज के नपुंसकों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. अन्तर्द्वीपों के अकर्मभूमिक मनुष्य-नपुंसक सबसे अल्प हैं,

२-११. (उनसे) देवकुरु-उत्तरकुरु के अकर्मभूमिक मनुष्य-नपुंसक दोनों संख्यातगुणे हैं,

इसी प्रकार यावत् पूर्व-विदेह-अपरविदेह के कर्मभूमिक मनुष्य-नपुंसक दोनों संख्यातगुणे हैं।

प्र. (५) भंते ! इन नैरयिक-नपुंसकों में से रत्नप्रभा-पृथ्वी के नैरयिकों-नपुंसकों यावत् अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिक-नपुंसकों,

तिर्यग्योनिक-नपुंसकों में से एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसकों के पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसकों यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसकों,

द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसकों,

पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसकों में जलचर स्थलचर खेचर नपुंसकों,

मनुष्य-नपुंसकों में कर्मभूमिकों-अकर्मभूमिकों और अन्तर्द्वीपकों में से कौन-किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिक-नपुंसक सबसे अल्प हैं,

२-६ (उनसे) छठी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणे हैं यावत् दूसरी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,

७. (उनसे) अन्तर्द्वीपों के मनुष्य-नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,

८-१७. (उनसे) देवकुरु-उत्तरकुरु के अकर्मभूमिक मनुष्य-नपुंसक दोनों संख्यातगुणे हैं यावत् पूर्व-विदेह अपर-विदेह के कर्मभूमिक मनुष्य-नपुंसक दोनों संख्यातगुणे हैं,

१८. (उनसे) रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक-नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,

१९. (उनसे) खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसक असंख्यात गुणे हैं,

२०. (उनसे) स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक संख्यातगुणे हैं,

२१. (उनसे) जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक संख्यातगुणे हैं,

२२. चउरिंदिय - तिरिक्खजोणिय - नपुंसगा विसेसाहिया,

२३. तेइंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा विसेसाहिया,

२४. बेइंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा विसेसाहिया,

२५. तेउक्काइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,

२६. पुढविकाइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा विसेसाहिया,

२७. आउक्काइय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा विसेसाहिया,

२८. वाउकाइय - तिरिक्खजोणिय - नपुंसगा विसेसाहिया,

२९. वणस्सइकाइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा अणंतगुणा। *-जीवा. प. २, सु. ६० (१-५)*

(घ) इत्थी-पुरिस-नपुंसगाणं अप्पबहुत्तं-

प. (१) एयासि णं भंते ! इत्थीणं पुरिसाणं नपुंसगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा **जाव** विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा पुरिसा,

२. इत्थीओ संखेज्जगुणाओ,

३. नपुंसगा अणंतगुणा।

प. (२) एयासि णं भंते ! तिरिक्खजोणिय-इत्थीणं, तिरिक्खजोणिय-पुरिसाणं, तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा **जाव** विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा तिरिक्खजोणिय-पुरिसा,

२. तिरिक्खजोणिय-इत्थीओ संखेज्जगुणाओ,

३. तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा अणंतगुणा।

प. (३) एयासि णं भंते ! मणुस्सित्थीणं, मणुस्सपुरिसाणं, मणुस्सनपुंसगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा **जाव** विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा मणुस्सपुरिसा,

२. मणुस्सित्थीओ संखेज्जगुणाओ,

३. मणुस्सनपुंसगा असंखेज्जगुणा।

प. (४) एयासि णं भंते ! देवित्थीणं, देवपुरिसाणं, णेरइय-नपुंसगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा णेरइय-नपुंसगा,

२. देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,

३. देवित्थीओ संखेज्जगुणाओ।

प. (५) एयासि णं भंते ! तिरिक्खजोणित्थीणं, तिरिक्खजोणिय-पुरिसाणं, तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं, मणुस्सित्थीणं, मणुस्सपुरिसाणं, मणुस्सनपुंसगाणं, देवित्थीणं, देवपुरिसाणं, णेरइयनपुंसगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा मणुस्सपुरिसा,

२. मणुस्सित्थीओ संखेज्जगुणाओ,

२२. (उनसे) चतुरिन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक विशेषाधिक हैं,

२३. (उनसे) त्रीन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक विशेषाधिक हैं,

२४. (उनसे) द्वीन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक विशेषाधिक हैं,

२५. (उनसे) तेजस्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,

२६. (उनसे) पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक विशेषाधिक हैं,

२७. (उनसे) अप्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक विशेषाधिक हैं,

२८. (उनसे) वायुकायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक विशेषाधिक हैं,

२९. (उनसे) वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक- नपुंसक अनन्तगुणे हैं।

(घ) स्त्री-पुरुष-नपुंसकों का अल्पबहुत्व-

प्र. (१) भंते ! इन स्त्रियों में, पुरुषों में और नपुसंकों में कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. पुरुष सबसे अल्प हैं,

२. (उनसे) स्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं,

३. (उनसे) नपुंसक अनन्तगुणे हैं।

प्र. (२) भंते ! इन तिर्यग्योनिक-स्त्रियों में, तिर्यग्योनिक-पुरुषों में और तिर्यग्योनिक नपुंसकों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प तिर्यग्योनिक-पुरुष हैं,

२. (उनसे) तिर्यग्योनिक-स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,

३. (उनसे) तिर्यग्योनिक-नपुंसक अनन्तगुणे हैं।

प्र. (३) भंते ! इन मनुष्य-स्त्रियों, मनुष्य-पुरुषों और मनुष्य-नपुंसकों में कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प मनुष्य-पुरुष हैं,

२. (उनसे) मनुष्य-स्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं,

३. (उनसे) मनुष्य-नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,

प्र. (४) भंते ! इन देवस्त्रियों में, देवपुरुषों में और नैरयिक-नपुंसकों में कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प नैरयिक-नपुंसक हैं,

२. (उनसे) देवपुरुष असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) देव स्त्रियां संख्यातगुणी हैं।

प्र. (५) भंते ! इन तिर्यग्योनिक-स्त्रियों, तिर्यग्योनिक-पुरुषों और तिर्यग्योनिक-नपुंसकों में मनुष्य-स्त्रियों, मनुष्य-पुरुषों और मनुष्य-नपुंसकों में, देव-स्त्रियों, देवपुरुषों और नैरयिक-नपुंसकों में कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प मनुष्य-पुरुष हैं,

२. (उनसे) मनुष्य-स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,

३. मणुस्सनपुंसगा असंखेज्जगुणा,
४. णेरइय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,
५. तिरिक्खजोणिय-पुरिसा असंखेज्जगुणा,
६. तिरिक्खजोणियत्थियाओ संखेज्जगुणाओ,
७. देवपुरिसा संखेज्जगुणा,
८. देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,
९. तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा अणंतगुणा।

प. (६) एयासि णं भंते ! तिरिक्खजोणित्थीणं
१. जलयरीणं, २. थलयरीणं, ३. खहयरीणं,
तिरिक्खजोणिय-पुरिसाणं,
४. जलयराणं, ५. थलयराणं, ६. खहयराणं,
तिरिक्खजोणिय- नपुंसगाणं,
७. एगिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं,
८-१२. पुढविकाइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं जाव वणस्सइकाइय- एगिंदिय- तिरिक्ख-जोणिय-नपुंसगाणं,
१३. बेइंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं,
१४. तेइंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं,
१५. चउरिंदिय - तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं,
पंचेंदिय- तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं,
१६. जलयराणं, १७. थलयराणं,
१८. खहयराण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा खहयर-तिरिक्खजोणिय-पुरिसा,
२. खहयर-तिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,
३. थलयर - पंचेंदिय - तिरिक्खजोणिय - पुरिसा संखेज्जगुणा,
४. थलयर - पंचेंदिय - तिरिक्ख जोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,
५. जलयर-तिरिक्खजोणिय-पुरिसा संखेज्जगुणा,
६. जलयर-तिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,
७. खहयर - पंचेंदिय - तिरिक्खजोणिय - नपुंसगा असंखेज्जगुणा,
८. थलयर - पंचेंदिय - तिरिक्खजोणिय - नपुंसगा संखेज्जगुणा,
९. जलचर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा संखेज्जगुणा,
१०. चउरिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा विसेसाहिया,
११. तेइंदिय-नपुंसगा विसेसाहिया,

३. (उनसे) मनुष्य-नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) नैरयिक-नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) तिर्यग्योनिक-पुरुष असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) तिर्यग्योनिक-स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,
७. (उनसे) देव-पुरुष संख्यातगुणे हैं,
८. (उनसे) देवस्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं,
९. (उनसे) तिर्यग्योनिक-नपुंसक अनन्तगुणे हैं।

प्र. (६) भंते ! इन तिर्यग्योनिक स्त्रियों में
१. जलचरी, २. स्थलचरी, ३. खेचरी स्त्रियों
तिर्यग्योनिक पुरुषों में
४. जलचर, ५. स्थलचर, ६. खेचर पुरुषों,
तिर्यग्योनिक-नपुंसकों में,
७. एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसकों के,
८-१२ पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसकों यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसकों,
१३. द्वीन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसकों,
१४. त्रीन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसकों,
१५. चतुरिन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसकों,
पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक,
१६. जलचर, १७. स्थलचर,
१८. खेचर नपुंसकों में कौन-किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प खेचर तिर्यग्योनिक-पुरुष हैं,
२. (उनसे) खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक स्त्रियां संख्यात-गुणी हैं,
३. (उनसे) स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक पुरुष संख्यात-गुणे हैं,
४. (उनसे) स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक-स्त्रियां संख्यात-गुणी हैं,
५. (उनसे) जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक-पुरुष संख्यात-गुणे हैं,
६. (उनसे) जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक-स्त्रियां संख्यात-गुणी हैं,
७. (उनसे) खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक असंख्यात-गुणे हैं,
८. (उनसे) स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक संख्यात-गुणे हैं,
९. (उनसे) जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक संख्यातगुणे हैं,
१०. (उनसे) चतुरिन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक विशेषाधिक हैं,
११. (उनसे) त्रीन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक विशेषाधिक हैं,

१२. बेइंदिय-नपुंसगा विसेसाहिया,

१३. तेउक्काइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,

१४. पुढविकाइय-नपुंसगा विसेसाहिया,

१५. आउक्काइय-नपुंसगा विसेसाहिया,

१६. वाउक्काइय-नपुंसगा विसेसाहिया,

१७. वणस्सइकाइय-एगिंदिय- तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा अणंतगुणा।

प. (७) एयासि णं भंते ! मणुस्सित्थीणं-कम्मभूमियाणं, अकम्मभूमियाणं, अंतरदीवियाणं, मणुस्सपुरिसाणं-कम्मभूमगाणं, अकम्मभूमगाणं, अंतरदीवगाणं, मणुस्सनपुंसगाणं, कम्मभूमगाणं, अकम्मभूमगाणं, अंतरदीवगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १-२ अंतरदीवगा मणुस्सित्थियाओ मणुस्सपुरिसा य एए णं दोण्णि वि तुल्ला सव्वत्थोवा,

३-६. देवकुरु-उत्तरकुरु-अकम्मभूमिग-मणुस्सित्थियाओ मणुस्सपुरिसा एए णं दोण्णि वि तुल्ला संखेज्जगुणा,

७-१०. हरिवास-रम्मगवास-अकम्मभूमिग-मणुस्सित्थियाओ मणुस्सपुरिसा य एए णं दोण्णि वि तुल्ला संखेज्जगुणा,

११-१४. हेमवए-हेरण्णवए-अकम्मभूमिग- मणुस्सित्थियाओ मणुस्सपुरिसा य दोण्णि वि तुल्ला संखेज्जगुणा,

१५-१६. भरहेरवय-कम्मभूमग-मणुस्स-पुरिसा दोवि संखेज्जगुणा,

१७-१८. भरहेरवय-कम्मभूमग-मणुस्सित्थियाओ दोवि संखेज्जगुणाओ,

१९-२०. पुव्वविदेह-अवरविदेह-कम्मभूमग-मणुस्स-पुरिसा दोवि संखेज्जगुणा,

२१-२२. पुव्वविदेह-अवरविदेह-कम्मभूमिग-मणुस्सित्थियाओ दोवि संखेज्जगुणाओ,

२३. अंतरदीवग-मणुस्स-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,

२४-२५. देवकुरु-उत्तरकुरु-अकम्मभूमग-मणुस्स-नपुंसगा दोवि संखेज्जगुणा।

२६-२७. हरिवास-रम्मगवास-अकम्मभूमग-मणुस्स-नपुंसगा दोवि संखेज्जगुणा,

२८-२९. हेमवय-हेरण्णवय-अकम्मभूमग-मणुस्स-नपुंसगा दोवि संखेज्जगुणा,

३०-३१. भरहेरवय-कम्मभूमग-मणुस्स-नपुंसगा दोवि संखेज्जगुणा,

१२. (उनसे) द्वीन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक विशेषाधिक हैं,

१३. (उनसे) तेजस्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,

१४. (उनसे) पृथ्वीकायिक (एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक) नपुंसक विशेषाधिक हैं,

१५. (उनसे) अप्कायिक (एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक)- नपुंसक विशेषाधिक हैं,

१६. (उनसे) वायुकायिक (एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक)- नपुंसक विशेषाधिक हैं,

१७. (उनसे) वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक-नपुंसक अनन्तगुणे हैं,

प्र. (७) भंते ! कर्मभूमिक-अकर्मभूमिक अन्तर्द्वीपज मनुष्य-स्त्रियाँ कर्मभूमिक-अकर्मभूमिक अन्तर्द्वीपज मनुष्य-पुरुषों, कर्मभूमिक अकर्मभूमिक अन्तर्द्वीपज मनुष्य-नपुंसकों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १-२. अन्तर्द्वीपज मनुष्य-स्त्रियां और मनुष्य-पुरुष ये दोनों परस्पर तुल्य हैं और सबसे अल्प हैं,

३-६. (उनसे) देवकुरु-उत्तरकुरु अकर्मभूमिक मनुष्य-स्त्रियां और मनुष्य-पुरुष ये दोनों परस्पर तुल्य हैं और संख्यातगुणे हैं,

७-१० (उनसे) हरिवर्ष-रम्यक्वर्ष अकर्मभूमिक मनुष्य-स्त्रियां और मनुष्य-पुरुष ये दोनों परस्पर तुल्य हैं और संख्यातगुणे हैं,

११-१४ (उनसे) हैमवत-हैरण्यवत अकर्मभूमिक मनुष्य-स्त्रियां और मनुष्य-पुरुष ये दोनों परस्पर तुल्य हैं और संख्यातगुणे हैं,

१५-१६ (उनसे) भरत-ऐरवत कर्मभूमिक मनुष्य-पुरुष दोनों संख्यातगुणे हैं,

१७-१८ (उनसे) भरत-ऐरवत कर्मभूमिक मनुष्य-स्त्रियां दोनों संख्यातगुणी हैं,

१९-२० (उनसे) पूर्वविदेह-अपरविदेह कर्मभूमिक मनुष्य-पुरुष दोनों संख्यातगुणे हैं,

२१-२२ (उनसे) पूर्वविदेह-अपरविदेह कर्मभूमिक मनुष्य-स्त्रियां दोनों संख्यातगुणी हैं,

२३. (उनसे) अन्तर्द्वीपज मनुष्य नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,

२४-२५ (उनसे) देवकुरु-उत्तरकुरु अकर्मभूमिक मनुष्य नपुंसक दोनों संख्यातगुणे हैं,

२६-२७ (उनसे) हरिवर्ष-रम्यकवर्ष अकर्मभूमिक मनुष्य-नपुंसक दोनों संख्यातगुणे हैं,

२८-२९ (उनसे) हैमवत-हैरण्यवत अकर्मभूमिक मनुष्य नपुंसक दोनों संख्यातगुणे हैं,

३०-३१ (उनसे) भरत-ऐरवत कर्मभूमिक मनुष्य नपुंसक दोनों संख्यातगुणे हैं,

३२-३३. पुव्वविदेह-अवरविदेह-कम्मभूमग-मणुस्सनपुंसगा दोवि संखेज्जगुणा।

प. (८) एयासि णं भंते ! देवित्थीणं-भवणवासिणीणं, वाणमंतरीणं, जोइसिणीणं, वेमाणिणीणं, देवपुरिसाणं-भवणवासीणं जाव वेमाणियाणं, सोहम्मगाणं जाव गेवेज्जगाणं, अणुत्तरोववाइयाणं,

णेरइयनपुंसगाणं-रयणप्पभापुढवि-णेरइय-नपुंसगाणं जाव अहेसत्तमपुढवि-नेरइय-नपुंसगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा अणुत्तरोववाइयदेव-पुरिसा,

२-८. उवरिम-गेवेज्जदेव-पुरिसा संखेज्जगुणा तहेव जाव आणए कप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणा,

९. अहेसत्तमाए पुढवीए नेरइय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,

१०. छट्ठीए पुढवीए नेरइय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,

११. सहस्सारे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,

१२. महासुक्के कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,

१३. पंचमाए पुढवीए नेरइय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,

१४. लंतए कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,

१५. चउत्थीए पुढवीए नेरइय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,

१६. बंभलोए कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,

१७. तच्चाए पुढवीए नेरइय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,

१८. माहिंदे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,

१९. सणंकुमारे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,

२०. दोच्चाए पुढवीए नेरइय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,

२१. ईसाणे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,

२२. ईसाणे कप्पे देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,

२३. सोहम्मे कप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणा,

२४. सोहम्मे कप्पे देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,

२५. भवणवासिदेवपुरिसा असंखेज्जगुणा,

२६. भवणवासिदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,

२७. इमीसे रयणप्पभापुढवीए नेरइय नपुंसगा असंखेज्जगुणा,

२८. वाणमंतरदेव-पुरिसा असंखेज्जगुणा,

२९. वाणमंतरदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,

३०. जोइसियदेवपुरिसा संखेज्जगुणा,

३१. जोइसियदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ।

प. (९) एयासि णं भंते ! तिरिक्खजोणित्थीणं-जलयरीणं, थलयरीणं, खहयरीणं,

३२-३३ (उनसे) पूर्वविदेह-अपरविदेह कर्मभूमिक मनुष्य नपुंसक दोनों संख्यातगुणे हैं।

प्र. (८) भंते ! इन भवनवासिनी, वाणव्यंतरी, ज्योतिष्की और वैमानिकी देवस्त्रियों में, भवनवासी यावत् वैमानिक देवपुरुषों में, सौधर्म कल्प यावत् ग्रैवेयक एवं अनुत्तरोपपातिक देवों में,

नैरयिक नपुंसको में–रत्नप्रभा नैरयिक नपुंसकों यावत् अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिक नपुंसकों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प अनुत्तरोपपातिक देवपुरुष हैं,

२-८. (उनसे) ग्रैवेयक देवपुरुष संख्यातगुणे हैं, इसी प्रकार यावत् आनत कल्प के देवपुरुष संख्यातगुणे हैं,

९. (उनसे) अधः सप्तम पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,

१०. (उनसे) छठी (नरक) पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,

११. (उनसे) सहस्रार कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणे हैं,

१२. (उनसे) महाशुक्र कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणे हैं,

१३. (उनसे) पांचवी (नरक) पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,

१४. (उनसे) लान्तक कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणे हैं,

१५. (उनसे) चौथी (नरक) पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,

१६. (उनसे) ब्रह्म लोक कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणे हैं,

१७. (उनसे) तीसरी (नरक) पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,

१८. (उनसे) माहेन्द्र कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणे हैं,

१९. (उनसे) सनत्कुमार कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणे हैं,

२०. (उनसे) दूसरी (नरक) पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,

२१. (उनसे) ईशान कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणे हैं,

२२. (उनसे) ईशानकल्प की देवस्त्रियां संख्यातगुणी हैं,

२३. (उनसे) सौधर्म कल्प के देवपुरुष संख्यातगुणे हैं,

२४. (उनसे) सौधर्म कल्प की देवस्त्रियां संख्यातगुणी हैं,

२५. (उनसे) भवनवासी देवपुरुष असंख्यातगुणे हैं,

२६. (उनसे) भवनवासी देवस्त्रियां संख्यातगुणी हैं,

२७. (उनसे) इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,

२८. (उनसे) वाणव्यंतर देवपुरुष असंख्यातगुणे हैं,

२९. (उनसे) वाणव्यंतर देवस्त्रियां संख्यातगुणी हैं,

३०. (उनसे) ज्योतिष्क देव पुरुष संख्यातगुणे हैं,

३१. (उनसे) ज्योतिष्क देव स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,

प्र. (९) भंते ! इन पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जलचरी, स्थलचरी, खेचरी स्त्रियों,

तिरिक्खजोणियपुरिसाणं-जलयराणं, थलयराणं, खहयराणं,
तिरिक्खजोणिय नपुंसगाणं-जलयराणं, थलयराणं खहयराणं,
एगिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं-पुढविक्काइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं, आउक्काइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं जाव वणस्सइकाइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं,
बेइंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं,
तेइंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं,
चउरिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं,
पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगाणं-जलयराणं, थलयराणं, खहयराणं,
मणुस्सित्थीणं-कम्मभूमियाणं, अकम्मभूमियाणं, अंतरदीवियाणं,
मणुस्सपुरिसाणं-कम्मभूमगाणं, अकम्मभूमगाणं, अंतरदीवगाणं,
मणुस्स-नपुंसगाणं-कम्मभूमगाणं, अकम्मभूमगाणं, अंतरदीवगाणं,
देवित्थीणं-भवणवासिणीणं, वाणमंतरीणं, जोइसिणीणं, वेमाणिणीणं,
देवपुरिसाणं-भवणवासीणं, वाणमंतराणं, जोइसियाणं, वेमाणियाणं, सोहम्मगाणं जाव गेवेज्जगाणं, अणुत्तरोववाइयाणं
नेरइय-नपुंसगाणं-रयणप्पभा-पुढवि-नेरइय-नपुंसगाणं जाव अहेसत्तमपुढवि-नेरइय-नपुंसगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा !

१-२. अंतरदीवग-अकम्मभूमिग-मणुस्सित्थीओ मणुस्स-पुरिसा य एए णं दोवि तुल्ला सव्वत्थोवा,

३-६. देवकुरु-उत्तरकुरु-अकम्मभूमग-मणुस्सित्थीओ पुरिसा य एए णं दोवि तुल्ला संखेज्जगुणा,

७-१०. हरिवास-रम्मगवास-अकम्मभूमग-मणुस्सित्थीओ पुरिसा य एए णं दोवि तुल्ला संखेज्जगुणा,

११-१४. हेमवय-हेरण्णवय, अकम्मभूमग मणुस्सित्थीओ पुरिसा य एए णं दोवि तुल्ला संखेज्जगुणा,

१५-१६. भरहेरवय-कम्मभूमग-मणुस्स-पुरिसा दोवि संखेज्जगुणा,

१७-१८. भरहेरवय-कम्मभूमग-मणुस्सित्थीओ दोवि संखेज्जगुणाओ,

१९-२०. पुव्वविदेह-अवरविदेह-कम्मभूमग-मणुस्स-पुरिसा दोवि संखेज्जगुणा,

पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक जलचर, स्थलचर, खेचर पुरुषों,
पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जलचर, स्थलचर, खेचर नपुंसकों,
एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसकों के पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसकों, अप्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसकों यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसकों,
द्वीन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसकों,
त्रीन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसकों,
चतुरिन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसकों,
पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसकों के जलचरों, स्थलचरों, खेचरों,
कर्मभूमिक, अकर्मभूमिक, अन्तर्द्वीपज मनुष्य स्त्रियों,
कर्मभूमिक, अकर्मभूमिक, अन्तर्द्वीपज मनुष्य पुरुषों,
कर्मभूमिक अकर्मभूमिक अन्तर्द्वीपज मनुष्य नपुंसकों,
भवनवासिनी, वाणव्यंतरी, ज्योतिष्की, वैमानिकी देव स्त्रियों,
भवनवासी, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क, वैमानिकों के सौधर्म कल्प यावत् ग्रैवेयक एवं अनुत्तरोपपातिक देवपुरुषों,
नैरयिक नपुंसकों के रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक नपुंसकों यावत् अधःसप्तम पृथ्वी नैरयिक नपुंसकों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम !

१-२. अन्तर्द्वीपज अकर्मभूमिक मनुष्य स्त्रियां और मनुष्य पुरुष ये दोनों परस्पर तुल्य हैं और सबसे अल्प हैं,

३-६. (उनसे) देवकुरु-उत्तरकुरु अकर्मभूमिक मनुष्य स्त्रियां और मनुष्य पुरुष ये दोनों परस्पर तुल्य हैं और संख्यात-गुणे हैं,

७-१०. (उनसे) हरिवर्ष-रम्यक्वर्ष अकर्मभूमिक मनुष्य स्त्रियां और मनुष्य पुरुष दोनों परस्पर तुल्य हैं और संख्यातगुणे हैं,

११-१४. (उनसे) हेमवत-हैरण्यवत अकर्मभूमिक मनुष्य स्त्रियां और मनुष्य पुरुष ये दोनों परस्पर तुल्य हैं और संख्यातगुणा हैं,

१५-१६. (उनसे) भरत-ऐरवत कर्मभूमिक मनुष्य पुरुष ये दोनों संख्यातगुणा हैं,

१७-१८. (उनसे) भरत-ऐरवत कर्मभूमिक मनुष्य स्त्रियां दोनों संख्यातगुणा हैं,

१९-२०. (उनसे) पूर्वविदेह-अपरविदेह कर्मभूमिक मनुष्य पुरुष ये दोनों संख्यातगुणा हैं,

२१-२२. पुव्वविदेह-अवरविदेह-कम्मभूमग-मणुस्सित्थियाओ दोवि संखेज्जगुणाओ,
२३. अणुत्तरोववाइय-देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
२४-३०. उवरिमगेवेज्जा देवपुरिसा संखेज्जगुणा जाव आणएकप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणा,
३१. अहेसत्तमाए पुढवीए नेरइय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,
३२. छट्ठीए पुढवीए नेरइय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,
३३. सहस्सारे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
३४. महासुक्के कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
३५. पंचमाए पुढवीए-नेरइय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,
३६. लंतए कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
३७. चउत्थीए पुढवीए नेरइय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,
३८. बंभलोए कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
३९. तच्चाए पुढवीए नेरइय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,
४०. माहिंदे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
४१. सणंकुमारे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
४२. दोच्चाए पुढवीए नेरइय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,
४३. अंतरदीवग-अकम्मभूमग-मणुस्स-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,
४४-४५. देवकुरु-उत्तरकुरु-अकम्मभूमग-मणुस्स-नपुंसगा दोवि संखेज्जगुणा,
४६-५३. एवं जाव विदेहत्ति,
५४. ईसाणे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
५५. ईसाणे कप्पे देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,
५६. सोहम्मे कप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणा,
५७. सोहम्मे कप्पे देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,
५८. भवणवासिदेवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
५९. भवणवासिदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,
६०. इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,
६१. खहयर-तिरिक्खजोणिय-पुरिसा संखेज्जगुणा,
६२. खहयर-तिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,
६३. थलयर-तिरिक्खजोणिय-पुरिसा संखेज्जगुणा,
६४. थलयर-तिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,
६५. जलयर-तिरिक्खजोणिय-पुरिसा संखेज्जगुणा,
६६. जलयर-तिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,
६७. वाणमंतरदेव-पुरिसा संखेज्जगुणा,
६८. वाणमंतरदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,

२१-२२. (उनसे) पूर्वविदेह-अपरविदेह कर्मभूमिक मनुष्य स्त्रियां ये दोनों संख्यातगुणा हैं,
२३. (उनसे) अनुत्तरोपातिक देवपुरुष असंख्यातगुणा हैं,
२४-३०. (उनसे) उपरिम ग्रैवेयक देवपुरुष संख्यातगुणा हैं यावत् आनत कल्प के देवपुरुष संख्यातगुणे हैं,
३१. (उनसे) अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,
३२. (उनसे) छठी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,
३३. (उनसे) सहस्रार कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणे हैं,
३४. (उनसे) महाशुक्र कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणे हैं,
३५. (उनसे) पांचवी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,
३६. (उनसे) लांतक कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणे हैं,
३७. (उनसे) चौथी (नरक) पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,
३८. (उनसे) ब्रह्मलोक कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणे हैं,
३९. (उनसे) तीसरी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,
४०. (उनसे) माहेन्द्र कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणे हैं,
४१. (उनसे) सनतकुमार कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणे हैं,
४२. (उनसे) दूसरी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,
४३. (उनसे) अन्तर्द्वीपज-अकर्मभूमिक मनुष्य नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,
४४-४५. (उनसे) देवकुरु-उत्तरकुरु के अकर्मभूमिक मनुष्य-नपुंसक दोनों संख्यातगुणे हैं,
४६-५३. (उनसे) इसी प्रकार विदेह तक संख्यातगुणे हैं,
५४. (उनसे) ईशान कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणे हैं,
५५. (उनसे) ईशान कल्प की देवस्त्रियां संख्यातगुणी हैं,
५६. (उनसे) सौधर्म कल्प के देवपुरुष संख्यातगुणे हैं,
५७. (उनसे) सौधर्म कल्प की देवस्त्रियां संख्यातगुणी हैं,
५८. (उनसे) भवनवासी देवपुरुष असंख्यातगुणे हैं,
५९. (उनसे) भवनवासी देवस्त्रियां संख्यातगुणी हैं,
६०. (उनसे) इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,
६१. (उनसे) खेचर तिर्यग्योनिक पुरुष संख्यातगुणे हैं,
६२. (उनसे) खेचर तिर्यग्योनिक स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,
६३. (उनसे) स्थलचर तिर्यग्योनिक पुरुष संख्यातगुणे हैं,
६४. (उनसे) स्थलचर तिर्यग्योनिक स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,
६५. (उनसे) जलचर तिर्यग्योनिक पुरुष संख्यातगुणे हैं,
६६. (उनसे) जलचर तिर्यग्योनिक स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,
६७. (उनसे) वाणव्यंतर देवपुरुष संख्यातगुणे हैं,
६८. (उनसे) वाणव्यंतर देवस्त्रियां संख्यातगुणी हैं,

६९. जोइसियदेव-पुरिसा संखेज्जगुणा,
७०. जोइसियदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,
७१. खहयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,
७२. थलयर-पंचेंदिय तिरिक्खजोणिय नपुंसगा संखेज्जगुणा,
७३. जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा संखेज्जगुणा,
७४. चउरिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा विसेसाहिया,
७५. तेइंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा विसेसाहिया,
७६. वेइंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा विसेसाहिया,
७७. तेउक्काइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा असंखेज्जगुणा,
७८. पुढविक्काइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा विसेसाहिया,
७९. आउक्काइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा विसेसाहिया,
८०. वाउक्काइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा विसेसाहिया,
८१. वणस्सइकाइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणिय-नपुंसगा अणंतगुणा। *–जीवा. प. २, सु. ६२ (१-९)*

६९. (उनसे) ज्योतिष्क देवपुरुष संख्यातगुणे हैं,
७०. (उनसे) ज्योतिष्क देवस्त्रियां संख्यातगुणी हैं,
७१. (उनसे) ज्योतिष्क खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,
७२. (उनसे) स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसक संख्यातगुणे हैं,
७३. (उनसे) जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसक संख्यातगुणे हैं,
७४. (उनसे) चतुरिन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसक विशेषाधिक हैं,
७५. (उनसे) त्रीन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसक विशेषाधिक हैं,
७६. (उनसे) द्वीन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसक विशेषाधिक हैं,
७७. (उनसे) तेजस्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसक असंख्यातगुणे हैं,
७८. (उनसे) पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसक विशेषाधिक हैं,
७९. (उनसे) अप्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसक विशेषाधिक हैं,
८०. (उनसे) वायुकायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसक विशेषाधिक हैं,
८१. (उनसे) वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिक नपुंसक अनन्तगुणे हैं।

मेहुण-परियारणा-संवास परूवणं

मैथुन परिचारणा और संवास का प्ररूपण

११. मेहुणस्स भेय परूवणं–
एगे मेहुणे *–ठाण. अ. १, सु. ३९ (१)*
तिविहे मेहुणे पण्णत्ते, तं जहा–
१. दिव्वे, २. माणुस्सए, ३. तिरिक्खजोणिए।
तओ मेहुणं गच्छंति, तं जहा–
१. देवा, २. मणुस्सा, ३. तिरिक्खजोणिया।
तओ मेहुणं सेवंति, तं जहा–
१. इत्थी, २. पुरिसा, ३. नपुंसगा। *–ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १३१*

११. मैथुन के भेदों का प्ररूपण–
मैथुन (संग्रहनय की अपेक्षा से) एक है।
मैथुन तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. दिव्य, २. मानुष्य, ३. तिर्यक्‌योनिक
तीन मैथुन करते हैं यथा–
१. देव, २. मनुष्य, ३. तिर्यञ्च।
तीन मैथुन का सेवन करते हैं, यथा–
१. स्त्री, २. पुरुष, ३. नपुंसक।

१२. देवेसु परियारणा परूवणं–
प. देवा णं भंते ! १. किं सदेवीया सपरियारा,
२. सदेवीया अपरियारा,
३. अदेवीया सपरियारा,
४. अदेवीया अपरियारा?
उ. गोयमा ! १. अत्थेगइया देवा सदेवीया सपरियारा,
२. अत्थेगइया देवा अदेवीया सपरियारा,

१२. देवों में मैथुन प्रवृत्ति की प्ररूपणा–
प्र. भंते ! क्या देव–१. देवियों सहित और परिचारणायुक्त मैथुन प्रवृत्ति वाले होते हैं?
२. देव, देवियों वाले हैं और मैथुन प्रवृत्ति वाले नहीं है?
३. देव, देवियों वाले नहीं हैं और मैथुन प्रवृत्ति वाले हैं?
४. देव, देवियों वाले भी नहीं हैं और मैथुन प्रवृत्ति वाले भी नहीं हैं?
उ. गौतम ! १. कुछ देव देवियों वाले भी हैं और मैथुन प्रवृत्ति वाले भी हैं,
२. कुछ देव देवियों वाले नहीं हैं किन्तु मैथुन प्रवृत्ति वाले हैं,

३. अत्थेगइया देवा अदेवीया अपरियारा,

३. कुछ देव देवियों वाले भी नहीं हैं और मैथुन प्रवृत्ति वाले भी नहीं हैं।

४. णो चेव णं देवा सदेवीया अपरियारा।

४. ऐसे कोई देव नहीं हैं जो देवियों वाले हैं किन्तु मैथुन प्रवृत्ति वाले नहीं हैं।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"अत्थेगइया देवा सदेवीया सपरियारा तं चेव जाव णो चेव णं देवा सदेवीया अपरियारा ?"

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि–
"कुछ देव देवियों वाले भी हैं और मैथुन प्रवृत्ति वाले भी हैं यावत् ऐसे कोई देव नहीं हैं जो देवियों वाले हैं किन्तु मैथुन प्रवृत्ति वाले नहीं हैं ?"

उ. गोयमा ! भवणवइ - वाणमंतर - जोइस - सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु देवा सदेवीया सपरियारा,

सणंकुमार - माहिंद - बंभलोग - लंतग - महासुक्क - सहस्सार - आणय - पाणय - आरण - अच्चुएसु कप्पेसु देवा अदेवीया सपरियारा,

गेवेज्जऽणुत्तरोववाइयदेवा अदेवीया अपरियारा,

णो चेव णं देवा सदेवीया अपरियारा,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"अत्थेगइया देवा सदेवीया सपरियारा तं चेव जाव णो चेव णं देवा सदेवीया अपरियारा।"

उ. गौतम ! भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म तथा ईशानकल्प के देव देवियों वाले भी हैं और मैथुन प्रवृत्ति वाले भी हैं।

सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पों में देव, देवियों वाले नहीं हैं किन्तु मैथुन प्रवृत्ति वाले हैं।

नौ ग्रैवेयक और पाँच अनुत्तरोपपातिक देव देवियों वाले भी नहीं हैं और मैथुन प्रवृत्ति वाले भी नहीं हैं।

ऐसा कभी नहीं होता है कि कोई देव देवियों वाले हों किन्तु मैथुन प्रवृत्ति वाले नहीं हों।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"कुछ देव देवियों वाले भी हैं और मैथुन प्रवृत्ति वाले भी हैं यावत् ऐसे कोई देव नहीं हैं जो देवियों वाले हैं किन्तु मैथुन प्रवृत्ति वाले नहीं हैं।"

प. कइविहा णं भंते ! परियारणा पण्णत्ता ?

प्र. भन्ते ! परिचारणा (मैथुन प्रवृत्ति) कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. कायपरियारणा,
२. फासपरियारणा,
३. रूवपरियारणा,
४. सद्दपरियारणा,
५. मणपरियारणा[1]।

उ. गौतम ! परिचारणा पाँच प्रकार की कही गई है, यथा–
१. कायपरिचारणा,
२. स्पर्शपरिचारणा,
३. रूपपरिचारणा,
४. शब्दपरिचारणा,
५. मनःपरिचारणा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"पंचविहा परियारणा पण्णत्ता, तं जहा–
१. कायपरियारणा जाव ५. मणपरियारणा ?"

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"परिचारणा पाँच प्रकार की है, यथा–
१. कायपरिचारणा यावत् ५. मनःपरिचारणा ?

उ. गोयमा ! भवणवइ-वाणमंतर-जोइस-सोहम्मीसाणेसु-कप्पेसु देवा कायपरियारगा,
सणंकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु देवा फासपरियारगा,
बंभलोय-लंतगेसु कप्पेसु देवा रूवपरियारगा,
महासुक्क-सहस्सारेसु देवा सद्दपरियारगा,
आणय - पाणय - आरण - अच्चुएसु कप्पेसु देवा मणपरियारगा[2],
गेवेज्जऽणुत्तरोववाइया देवा अपरियारगा।

उ. गौतम ! भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म-ईशान कल्प के देव कायपरिचारक होते हैं।
सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प के देव स्पर्शपरिचारक होते हैं।
ब्रह्मलोक और लान्तककल्प के देव रूपपरिचारक होते हैं।
महाशुक्र और सहस्रारकल्प के देव शब्द परिचारक होते हैं।
आनत, प्राणत, आरण और अच्युतकल्पों के देव मनःपरिचारक होते हैं।
नौ ग्रैवेयक और पाँच अनुत्तरोपपातिक देव अपरिचारक होते हैं।

---

१. [illegible]

२. [illegible]

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

पंचविहा परियारणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. "कायपरियारणा जाव ५. मणपरियारणा।"

तत्थ णं जे ते कायपरियारगा देवा तेसि णं इच्छामणे समुप्पज्जइ इच्छामो णं अच्छराहिं सद्धिं कायपरियारणं करेत्तए।

तए णं तेहिं देवेहिं एवं मणसीकए समाणे खिप्पामेव ताओ अच्छराओ ओरालाइं सिंगाराइं मणुण्णाइं मणोहराइं मणोरमाइं उत्तरवेउव्वियाइं रूवाइं विउव्वंति।

विउव्वित्ता तेसिं देवाणं अंतियं पाउब्भवंति।

तए णं ते देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं कायपरियारणं करेंति।

से जहाणामए सीया पोग्गला सीयं पप्प सीयं चेव अइवइत्ता णं चिट्ठंति।

उसिणा वा पोग्गला उसिणं पप्प उसिणं चेव अइवइत्ता णं चिट्ठंति।

एवामेव तेहिं देवेहिं ताहिं अच्छराहिं सद्धिं कायपरियारणे कए समाणे से इच्छामणे खिप्पामेवावेइ।

प. अत्थि णं भंते ! तेसिं देवाणं सुक्कपोग्गला ?

उ. हंता गोयमा ! अत्थि।

प. ते णं भंते ! तासिं अच्छराणं कीसत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमंति ?

उ. गोयमा ! सोइंदियत्ताए चक्खिंदियत्ताए घाणिंदियत्ताए रसिंदियत्ताए फासिंदियत्ताए।

इट्ठत्ताए कंतत्ताए मणुण्णत्ताए मणामत्ताए।

सुभगत्ताए सोहग्ग-रूव-जोव्वण-गुणलावण्णत्ताए ते तासिं भुज्जो-भुज्जो परिणमंति।

तत्थ णं जे ते फासपरियारगा देवा तेसि णं इच्छामणे समुप्पज्जइ।

एवं जहेव कायपरियारणा तहेव निरवसेसं भाणियव्वं।

तत्थ णं जे ते रूवपरियारगा देवा तेसिं णं इच्छामणे समुप्पज्जइ। इच्छामो णं अच्छराहिं सद्धिं रूवपरियारणं करेत्तए।

तए णं तेहिं देवेहिं एवं मणसीकए समाणे तहेव जाव उत्तरवेउव्वियाइं रूवाइं विउव्वंति।

विउव्वित्ता [illegible] ते देवा तेणामेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तेसिं देवाणं अदूरसामंते ठिच्चा [illegible] जाव मणोरमाइं उत्तरवेउव्वियाइं रूवाइं [illegible] चिट्ठंति।

[illegible] अच्छराहिं सद्धिं रूवपरियारणं [illegible]

[illegible] कायपरियारणा तहेव निरवसेसं भाणियव्वं।

गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

'परिचारणा पांच प्रकार की कही गई है, यथा–

१. कायपरिचारणा यावत् ५. मनःपरिचारणा।'

उनमें से कायपरिचारक (शरीर से विषयभोग सेवन करने वाले) जो देव हैं, उनके मन में (ऐसी) इच्छा समुत्पन्न होती है कि हम अप्सराओं के शरीर से परिचार (मैथुन) करें।

उन देवों द्वारा इस प्रकार मन से सोचने पर वे अप्सराएं उदार आभूषणादियुक्त (शृंगारयुक्त), मनोज्ञ, मनोहर एवं मनोरम उत्तरवैक्रिय रूप की विकुर्वणा करती हैं।

इस प्रकार विकुर्वणा करके वे उन देवों के पास आती हैं।

तब वे देव उन अप्सराओं के साथ कायपरिचारणा (शरीर से मैथुन सेवन) करते हैं।

जैसे शीत पुद्गल शीतयोनि वाले प्राणी को प्राप्त होकर अत्यन्त शीतअवस्था को प्राप्त करके रहते हैं,

अथवा उष्ण पुद्गल जैसे उष्णयोनि वाले प्राणी को पाकर अत्यन्त उष्ण अवस्था को प्राप्त करके रहते हैं,

उसी प्रकार उन देवों द्वारा अप्सराओं के साथ काया से परिचारणा करने पर उनकी इच्छा पूर्ण हो जाती है।

प्र. भन्ते ! क्या उन देवों के शुक्र-पुद्गल होते हैं ?

उ. हाँ गौतम ! होते हैं।

प्र. भन्ते ! उन अप्सराओं के लिए वे किस रूप में वार-वार परिणत होते हैं ?

उ. गौतम ! श्रोत्रेन्द्रियरूप से, चक्षुरिन्द्रियरूप से, घ्राणेन्द्रियरूप से, रसेन्द्रियरूप से, स्पर्शेन्द्रियरूप से,

इष्टरूप से, कमनीयरूप से, मनोज्ञरूप से, अतिशय मनोज्ञरूप से, सुभगरूप से, सौभाग्य-रूप - यौवन : गुण - लावण्यरूप से वे उनके लिए वार-वार परिणत होते हैं।

उनमें जो स्पर्शपरिचारकदेव हैं, उनके मन में भी इच्छा उत्पन्न होती है,

जिस प्रकार काया से परिचारणा करने वाले देवों का कथन किया गया है उसी प्रकार सम्पूर्ण कहना चाहिए।

उनमें जो रूपपरिचारक देव हैं, उनके मन में इच्छा समुत्पन्न होती है कि हम अप्सराओं के साथ रूपपरिचारणा करें।

उन देवों द्वारा मन से ऐसा विचार किए जाने पर (वे देवियां) उसी प्रकार (पूर्ववत्) यावत् उत्तरवैक्रिय रूप से विक्रिया करती हैं।

विक्रिया करके जहां वे देव होते हैं वहां जा पहुँचती हैं और फिर उन देवों के न बहुत दूर और न बहुत पास स्थित होकर उन उदार यावत् मनोरम उत्तरवैक्रिय-कृत रूपों को दिखलाती-दिखलाती खड़ी रहती हैं।

तत्पश्चात् वे देव उन अप्सराओं के साथ रूपपरिचारणा करते हैं।

शेष सारा कथन काय परिचारणा के अनुरूप यहाँ कहना चाहिए।

तत्थ णं जे ते सद्दपरियारगा देवा तेसिं णं इच्छामणे समुप्पज्जइ।

इच्छामो णं अच्छराहिं सद्धिं सद्दपरियारणं करेत्तए।

तए णं तेहिं देवेहिं एवं मणसीकए समाणे जाव उत्तरवेउव्वियाइं रूवाइं विउव्वंति।

विउव्वित्ता जेणामेव ते देवा तेणामेव उवागच्छंति,

तेणामेव उवागच्छित्ता तेसिं देवाणं अदूरसामंते ठिच्चा अणुत्तराइं उच्चावयाइं सद्दाइं समुदीरेमाणीओ समुदीरेमाणीओ चिट्ठंति।

तए णं ते देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं सद्द परियारणं करेंति।

एवं जहेव कायपरियारणा तहेव निरवसेसं भाणियव्वं।

तत्थ णं जे ते मणपरियारगा देवा तेसिं इच्छामणे समुप्पज्जइ।

इच्छामो णं अच्छराहिं सद्धिं मणपरियारणं करेत्तए।

तए णं तेहिं देवेहिं एवं मणसीकए समाणे खिप्पामेव ताओ अच्छराओ तत्थगयाओ चेव समाणीओ अणुत्तराइं उच्चावयाइं मणाइं संपहारेमाणीओ संपहारेमाणीओ चिट्ठंति।

तए णं ते देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं मणपरियारणं करेंति।

सेसं तं चेव जाव भुज्जो-भुज्जो परिणमंति।

—पण्ण. प. ३४, सु. २०५१-२०५२

उनमें जो शब्दपरिचारक देव होते हैं, उनके मन में इच्छा उत्पन्न होती है कि–

हम अप्सराओं के साथ शब्दपरिचारणा करें।

उन देवों के द्वारा इस प्रकार मन में विचार करने पर उसी प्रकार (पूर्ववत्) यावत् उत्तरवैक्रिय रूपों की विक्रिया करती हैं।

विक्रिया करके जहाँ वे देव होते हैं, वहां देवियां पहुँचती हैं।

फिर वे उन देवों के न अति दूर और न अति निकट रुककर सर्वोत्कृष्ट नानाविध शब्दों का वार-वार उच्चारण करती रहती हैं।

इस प्रकार वे देव उन अप्सराओं के साथ शब्द परिचारणा करते हैं।

शेष सारा कथन काय परिचारणा के समान-यहां कहना चाहिए।

उनमें जो मनःपरिचारक देव होते हैं, उनके मन में इच्छा उत्पन्न होती है कि–

हम अप्सराओं के साथ मन से परिचारणा करें।

तत्पश्चात् उन देवों के द्वारा मन में इस प्रकार अभिलाषा करने पर वे अप्सराएं शीघ्र ही वहीं (अपने स्थान पर) रही हुई उत्कृष्ट नाना प्रकार के मन को धारण करती हुई रहती हैं।

तब वे देव उन अप्सराओं के साथ मन से परिचारणा करते हैं।

शेष सब कथन पूर्ववत् यावत् बार-बार परिणत होते हैं यहाँ तक कहना चाहिए।

१३. परियारगदेवाणं अप्पवहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! देवाणं कायपरियारगाणं जाव मणपरियारगाणं अपरियारगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा देवा अपरियारगा,

२. मणपरियारगा संखेज्जगुणा,

३. सद्दपरियारगा असंखेज्जगुणा,

४. रूवपरियारगा असंखेज्जगुणा,

५. फासपरियारगा असंखेज्जगुणा,

६. कायपरियारगा असंखेज्जगुणा[१]।

—पण्ण. प. ३४, सु. २०५३

१३. परिचारक देवों का अल्पवहुत्व–

प्र. भंते ! इन कायपरिचारक यावत् मनःपरिचारक और अपरिचारक देवों में से कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे कम अपरिचारक देव हैं,

२. (उनसे) मनःपरिचारक देव संख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) शब्दपरिचारक देव असंख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) रूपपरिचारक देव असंख्यातगुणे हैं,

५. (उनसे) स्पर्शपरिचारक देव असंख्यातगुणे हैं,

६. (उनसे) कायपरिचारक देव असंख्यातगुणे हैं।

१४. विविहा परियारणा–

तिविहा परियारणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. एगे देवे, अन्नेसिं देवाणं देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेइ,

१४. विविध प्रकार की परिचारणा–

परिचारणा तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. कुछ देव अन्य देवों की देवियों का आलिंगन कर कर परिचारणा करते हैं,

१. (क) प. नेरइया णं भंते ! [illegible]

[illegible]

अप्पणिज्जियाओ देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेइ,
अप्पाणमेव अप्पणा विकुव्विय-विकुव्विय परियारेइ।

२. एगे देवे णो अन्नेसिं देवाणं देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय-परियारेइ,
अप्पणिज्जियाओ देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेइ,
अप्पाणमेव अप्पणा विकुव्विय-विकुव्विय परियारेइ।

३. एगे देवे णो अन्नेसिं देवाणं देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेइ,
णो अप्पणिज्जियाओ देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेइ,
अप्पाणमेव अप्पणा विकुव्विय-विकुव्विय परियारेइ।

-ठाणं अ. ३, उ. १, सु. १३०

कुछ देव अपनी देवियों का आलिंगन कर-कर परिचारणा करते हैं,
कुछ देव अपने बनाए हुए विभिन्न रूपों से परिचारणा करते हैं।

२. कुछ देव अन्य देवों की देवियों का आलिंगन कर-कर परिचारणा नहीं करते,
अपनी देवियों का आलिंगन कर-कर परिचारणा करते हैं,
अपने बनाए हुए विभिन्न रूपों से परिचारणा करते हैं।

३. कुछ देव अन्य देवों की देवियों से आलिंगन कर-कर परिचारणा नहीं करते,
अपनी देवियों का आलिंगन कर-कर परिचारणा नहीं करते,
कुछ देव केवल अपने बनाए हुए विभिन्न रूपों से परिचारणा करते हैं।

१५. संवासस्स विविहारूवा

चउव्विहे संवासे पण्णत्ते, तं जहा–

१. देवे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छेज्जा,
२. देवे णाममेगे छवीए सद्धिं संवासं गच्छेज्जा,
३. छवी णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छेज्जा,
४. छवी णाममेगे छवीए सद्धिं संवासं गच्छेज्जा।

-ठाणं अ. ४, उ. १, सु. २४८/२

चउव्विहे संवासे पण्णत्ते, तं जहा–

१. दिव्वे, २. आसुरे, ३. रक्खसे, ४. माणुसे।

चउव्विहे संवासे पण्णत्ते, तं जहा–

१. देवे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छइ,
२. देवे णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छइ,
३. असुरे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छइ,
४. असुरे णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छइ।

चउव्विहे संवासे पण्णत्ते, तं जहा–

१. देवे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छइ,
२. देवे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छइ,
३. रक्खसे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छइ,
४. रक्खसे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छइ।

चउव्विहे संवासे पण्णत्ते, तं जहा–

१. देवे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छइ,
२. देवे णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छइ,
३. मणुस्से णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छइ,
४. मणुस्से णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छइ।

चउव्विहे संवासे पण्णत्ते, तं जहा–

१. असुरे णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छइ,
२. असुरे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छइ,
३. रक्खसे णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छइ,

१५. संवास के विविध रूप–

संवास (सम्भोग) चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कुछ देव, देवी के साथ सम्भोग करते हैं,
२. कुछ देव, नारी या तिर्यंच स्त्री के साथ सम्भोग करते हैं,
३. कुछ मनुष्य या तिर्यञ्च, देवी के साथ सम्भोग करते हैं,
४. कुछ मनुष्य या तिर्यञ्च, मानुषी या तिर्यञ्च स्त्री के साथ सम्भोग करते हैं।

संवास चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. देवताओं का, २. असुरों का, ३. राक्षसों का, ४. मनुष्यों का।

संवास चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. कुछ देव देवियों के साथ संवास करते हैं,
२. कुछ देव असुरियों के साथ संवास करते हैं,
३. कुछ असुर देवियों के साथ संवास करते हैं,
४. कुछ असुर असुरियों के साथ संवास करते हैं।

संवास चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. कुछ देव देवियों के साथ संवास करते हैं,
२. कुछ देव राक्षसियों के साथ संवास करते हैं,
३. कुछ राक्षस देवियों के साथ संवास करते हैं,
४. कुछ राक्षस राक्षसियों के साथ संवास करते हैं।

संवास चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. कुछ देव देवियों के साथ संवास करते हैं,
२. कुछ देव मानुषियों के साथ संवास करते हैं,
३. कुछ मनुष्य देवियों के साथ संवास करते हैं,
४. कुछ मनुष्य मानुषियों के साथ संवास करते हैं।

संवास चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. कुछ असुर असुरियों के साथ संवास करते हैं,
२. कुछ असुर राक्षसियों के साथ संवास करते हैं,
३. कुछ राक्षस असुरियों के साथ संवास करते हैं,

४. रक्खसे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छइ।
चउव्विहे संवासे पण्णत्ते, तं जहा–
१. असुरे णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छइ,
२. असुरे णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छइ,
३. मणुस्से णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छइ,
४. मणुस्से णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छइ।
चउव्विहे संवासे पण्णत्ते, तं जहा–
१. रक्खसे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छइ,
२. रक्खसे णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छइ,
३. मणुस्से णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छइ,
४. मणुस्से णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छइ।

–ठाणं. अ. ४, सु. ३५३

४. कुछ राक्षस राक्षसियों के साथ संवास करते हैं।
संवास चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. कुछ असुर असुरियों के साथ संवास करते हैं,
२. कुछ असुर मानुषियों के साथ संवास करते हैं,
३. कुछ मनुष्य असुरियों के साथ संवास करते हैं,
४. कुछ मनुष्य मानुषियों के साथ संवास करते हैं।
संवास चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. कुछ राक्षस राक्षसियों के साथ संवास करते हैं,
२. कुछ राक्षस मानुषियों के साथ संवास करते हैं,
३. कुछ मनुष्य राक्षसियों के साथ संवास करते हैं,
४. कुछ मनुष्य मानुषियों के साथ संवास करते हैं।

१६. कामस्स चउव्विहत्त परूवणं–

चउव्विहा कामा पण्णत्ता, तं जहा–
१. सिंगारा, २. कलुणा, ३. वीभच्छा, ४. रोद्दा।
१. सिंगारा कामा देवाणं,
२. कलुणा कामा मणुयाणं
३. वीभच्छा कामा तिरिक्खजोणियाणं,
४. रोद्दा कामा णेरइयाणं। *–ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३५७*

१६. काम के चतुर्विधत्व का प्ररूपण–

काम चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. शृंगार, २. करुण, ३. वीभत्स, ४. रौद्र।
१. देवताओं के काम शृंगार-रस प्रधान होते हैं,
२. मनुष्यों के काम करुण-रस प्रधान होते हैं,
३. तिर्यञ्चों के काम वीभत्स-रस प्रधान होते हैं,
४. नैरयिकों के काम रौद्र-रस प्रधान होते हैं।

३०. कषाय अध्ययन : आमुख

जीव के संसार-परिभ्रमण का प्रमुख कारण कषाय है। कषाय से ही पाप एवं पुण्य प्रकृतियों का स्थितिबंध होता है। यही कर्मबंध का प्रमुख हेतु है। प्रस्तुत अध्ययन में कषाय का कोई लक्षण नहीं दिया गया है किन्तु उस पर विविध दृष्टियों से विचार किया गया है जिससे कषाय का स्वरूप उद्घाटित होता है। कषाय के प्रमुख रूप से चार भेद हैं–१. क्रोध, २. मान, ३. माया एवं ४. लोभ। संग्रहनय की दृष्टि से क्रोधादि कषाय एक-एक हैं किन्तु व्यवहारनय की दृष्टि से उनके चार-चार भेद हैं–१. अनन्तानुबंधी, २. अप्रत्याख्यान, ३. प्रत्याख्यानावरण एवं ४. संज्वलन। इस प्रकार कषाय के सोलह भेद भी हैं। इन सोलह भेदों का इस अध्ययन में विविध दृष्टान्तों के आधार पर विवेचन किया गया है। यह भी स्पष्ट किया गया है कि अनन्तानुबंधी कषायों में काल करने वाला जीव नैरयिकों में उत्पन्न होता है, अप्रत्याख्यान कषायों में काल करने वाला जीव तिर्यञ्च में, प्रत्याख्यानावरण चतुष्क में काल करने वाला जीव मनुष्यों में तथा संज्वलन कषायों में काल करने वाला जीव देवों में उत्पन्न होता है।

क्रोधादि चारों कषाय चारों गतियों के चौबीस ही दण्डकों में उपलब्ध हैं। इन कषायों के एक भिन्न दृष्टि से चार-चार भेद और निरूपित हैं–१. आभोग निवर्तित, २. अनाभोग निवर्तित, ३. उपशांत और ४. अनुपशांत। जीव के क्रोधादि कषाय परिणाम को भाव कहते हैं। उस भाव के उदक के समान चार भेद होते हैं–१. कर्दमोदक समान, २. खंजनोदक समान, ३. बालुकोदक समान एवं ४. शैलोदक समान। इन भावों में प्रवर्तमान जीव काल करने पर क्रमशः नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य एवं देवयोनि में उत्पन्न होता है। आवर्त्त को आधार बनाकर खरावर्त के समान क्रोध, उन्नतावर्त के समान मान, गूढावर्त के समान माया एवं आमिषावर्त के समान लोभ में काल करने वाले समस्त जीवों की उत्पत्ति नैरयिकों में बतलायी गई है।

कषाय की उत्पत्ति मुख्य रूप से चार निमित्तों से होती है–१. क्षेत्र, २. वास्तु, ३. शरीर एवं ४. उपधि के निमित्तों से। किन्तु क्रोध की उत्पत्ति के दस स्थानों, मद की उत्पत्ति के आठ एवं दस स्थानों का भी उल्लेख है। करण, निर्वृत्ति, प्रतिष्ठान आदि के आधार पर भी प्रस्तुत अध्ययन में कषाय का विवेचन है। सकषायी जीव तीन प्रकार के हो सकते हैं–१. अनादि अपर्यवसित, २. अनादि सपर्यवसित एवं ३. सादि सपर्यवसित। अन्त में सकषायी, क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी एवं अकषायी जीवों का अल्पबहुत्व देकर अकषायी होने का महत्व प्रतिपादित किया गया है।

□

३०. कसायऽज्झयणं

सूत्र

१. कसाय भेयप्पभेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

१. एगे कोहे, २. एगे माणे,
३. एगे माया, ४. एगे लोभे।

–ठाणं. अ. १, सु. ३९ (१)

प. कइ णं भंते ! कसाया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! चत्तारि कसाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. कोहकसाए, २. माणकसाए,
३. मायाकसाए, ४. लोभकसाए।

प. दं. १. णेरइयाणं भंते ! कइ कसाया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! चत्तारि कसाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. कोहकसाए जाव ४. लोभकसाए।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियाणं।[1]

–पण्ण. प. १४, सु. ९५८-९५९

प. कइविहे णं भंते ! कोहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! चउव्विहे कोहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. अणंताणुवंधी कोहे, २. अप्पच्चक्खाणे कोहे,
३. पच्चक्खाणावरणे कोहे, ४. संजलणे कोहे।

एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

एवं माणेणं, मायाए, लोभेणं एए वि चत्तारि दंडगा भाणियव्वा।

प. कइविहे णं भंते ! कोहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! चउव्विहे कोहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. आभोगणिव्वत्तिए, २. अणाभोगणिव्वत्तिए,
३. उवसंते ४. अणुवसंते।

एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

एवं माणेण वि, मायाए वि,[2] लोभेण वि एए वि चत्तारि दंडगा। –पण्ण. प. १४ सु. ९६२-९६३

सोलस कसाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. अणंताणुवंधी कोहे, एवं
२. माणे, ३. माया, ४. लोभे।
५. अपच्चक्खाणकसाए कोहे, एवं
६. माणे, ७. माया, ८. लोभे।
९. पच्चक्खाणावरणे कोहे, एवं
१०. माणे, ११. माया, १२. लोभे।
१३. संजलणे कोहे, एवं
१४. माणे, १५. माया, १६. लोभे।

३०. कषाय अध्ययन

सूत्र

१. कषायों के भेद-प्रभेद और चौवीस दंडकों में प्ररूपण–
(संग्रहनय की अपेक्षा)

१. क्रोध कषाय एक है, २. मान कषाय एक है,
३. माया कषाय एक है, ४. लोभ कषाय एक है।

प्र. भंते ! कषाय कितने कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! कषाय चार कहे गये हैं, यथा–

१. क्रोध कषाय, २. मान कषाय,
३. माया कषाय, ४. लोभ कषाय।

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिकों में कितने कषाय कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! नैरयिकों में चार कषाय कहे गये हैं, यथा–

१. क्रोध कषाय यावत् ४. लोभ कषाय।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त चारों कषाय जानने चाहिए।

प्र. भंते ! क्रोध (कषाय) कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! क्रोध (कषाय) चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. अनन्तानुबंधी क्रोध, २. अप्रत्याख्यानावरण क्रोध,
३. प्रत्याख्यानावरण क्रोध, ४. संज्वलन क्रोध।

इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार मान, माया और लोभ के भी चार-चार दंडक जानने चाहिए।

प्र. भंते ! क्रोध कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! क्रोध चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. आभोगनिर्वर्तित, २. अनाभोगनिर्वर्तित,
३. उपशांत, ४. अनुपशांत।

इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त कहने चाहिए।

इसी प्रकार मान, माया और लोभ के भी चार-चार दंडक जानने चाहिये।

सोलह कषाय कहे गये हैं, यथा–

१. अनन्तानुबंधी क्रोध, इसी प्रकार–
२. मान, ३. माया, ४. लोभ।
५. अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, इसी प्रकार–
६. मान, ७. माया, ८. लोभ।
९. प्रत्याख्यानावरण क्रोध, इसी प्रकार–
१०. मान, ११. माया, १२. लोभ।
१३. संज्वलन क्रोध, इसी प्रकार–
१४. मान, १५. माया, १६. लोभ।

---

1. (क) [illegible] (ख) [illegible] (ग) [illegible] (घ) [illegible]
2. [illegible]

२. दिट्ठंतेहिं कसायसरूव परूवणं–

(क) चत्तारि राईओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. पव्वयराई, २. पुढविराई,
३. वालुयराई, ४. उदगराई।

एवामेव चउव्विहे कोहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. पव्वयराइसमाणे, २. पुढविराइसमाणे,
३. वालुयराइसमाणे, ४. उदगराइसमाणे।

१. पव्वयराइसमाणे कोहमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ नेरइएसु उववज्जइ।

२. पुढविराइसमाणे कोहमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ तिरिक्खजोणिएसु उववज्जइ।

३. वालुयराइसमाणे कोहमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ मणुस्सेसु उववज्जइ।

४. उदगराइसमाणे कोहमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ देवेसु उववज्जइ। *–ठाणं अ. ४, उ. २, सु. ३११*

(ख) चत्तारि थंभा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सेलथंभे, २. अट्ठिथंभे,
३. दारूथंभे, ४. तिणिसलाताथंभे।

एवामेव चउव्विहे माणे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सेलथंभसमाणे **जाव** ४. तिणिसलता थंभसमाणे।

१. सेलथंभसमाणे माणमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ नेरइएसु उववज्जइ,

२. अट्ठिथंभ समाणे माणमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ तिरिक्खजोणिएसु उववज्जइ,

३. दारूथंभ समाणे माणमणुपविट्ठे कालं करेइ मणुस्सेसु उववज्जइ,

४. तिणिसलता थंभसमाणे माणमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ देवेसु उववज्जइ।

(ग) चत्तारि केतणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. वंसीमूलकेतणए,
२. मेंढविसाणकेतणए,
३. गोमुत्तिकेतणए
४. अवलेहणिय केतणए।

एवामेव चउव्विहा माया पण्णत्ता, तं जहा–

१. वंसीमूलकेतणासमाणा **जाव**
४. अवलेहणिय केतणासमाणा।

१. वंसीमूलकेतणासमाणं मायमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ नेरइएसु उववज्जइ,

२. मेंढविसाणकेतणासमाणं मायमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ तिरिक्खजोणिएसु उववज्जइ,

३. गोमुत्ति केतणासमाणं मायमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ मणुस्सेसु उववज्जइ,

२. दृष्टांतों द्वारा कषायों के स्वरूप का प्ररूपण–

(क) राजि (रेखा) चार प्रकार की कही गई हैं, यथा–

१. पर्वतराजि, २. पृथ्वीराजि,
३. वालुकाराजि, ४. उदक (जल) राजि।

इसी प्रकार क्रोध चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पर्वतराजि के समान, २. पृथ्वीराजि के समान,
३. वालुकाराजि के समान, ४. उदकराजि के समान,

१. पर्वतराजि-समान क्रोध में प्रवर्तमान जीव यदि काल करे तो नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

२. पृथ्वीराजि समान क्रोध में प्रवर्तमान जीव यदि काल करे तो तिर्यग्योनिकों में उत्पन्न होता है।

३. वालुकाराजि समान क्रोध में प्रवर्तमान जीव यदि काल करे तो मनुष्यों में उत्पन्न होता है।

४. उदकराजि समान क्रोध में प्रवर्तमान जीव यदि काल करे तो देवों में उत्पन्न होता है।

(ख) चार प्रकार के स्तम्भ (खंभे) कहे गये हैं, यथा–

१. शैलस्तम्भ, २. अस्थिस्तम्भ,
३. दारू (काष्ट) स्तम्भ, ४. तिनिसलता स्तम्भ।

इसी प्रकार मान भी चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. शैलस्तम्भ समान **यावत्** ४. तिनिसलतास्तम्भ समान।

१. शैलस्तम्भ-समान मान में प्रवर्तमान जीव यदि काल करे तो नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

२. अस्थिस्तम्भ-समान मान में प्रवर्तमान जीव यदि काल करे तो तिर्यग्योनिकों में उत्पन्न होता है।

३. दारू स्तम्भ-समान मान में प्रवर्तमान जीव यदि काल करे तो मनुष्यों में उत्पन्न होता है।

४. तिनिसलता स्तम्भ मान में प्रवर्तमान जीव यदि काल करे तो देवों में उत्पन्न होता है।

(ग) केतन (वक्र पदार्थ) चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. वंशीमूलकेतनक (बांस की जड़ का वक्रपन)
२. मेंढविषाणकेतनक (मेंढे के सींग का वक्रपन)
३. गोमूत्रिका केतनक (चलते बैल की मूत्र धारा के समान वक्र पन)
४. अवलेखनिका केतनक (बांस की छाल का वक्रपन)

इसी प्रकार माया भी चार प्रकार की कही गई है, यथा–

१. वंशीमूल केतन समान **यावत्**
४. अवलेखनिका केतन समान।

१. वंशीमूल केतन के समान माया में प्रवर्तमान जीव यदि काल करे तो नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

२. मेंढविषाण केतन के समान माया में प्रवर्तमान जीव यदि काल करे तो तिर्यग्योनिकों में उत्पन्न होता है।

३. गोमूत्रिका केतन के समान माया में प्रवर्तमान जीव यदि काल करे तो मनुष्यों में उत्पन्न होता है।

४. अवलेहणिय केतणा समाणं मायमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ देवेसु उववज्जइ।

(घ) चत्तारि वत्था पण्णत्ता, तं जहा–

१. किमिरागरत्ते, २. कद्दमरागरत्ते,
३. खंजणरागरत्ते, ४. हलिद्दरागरत्ते।

एवामेव चउव्विहे लोभे पण्णत्ते, तं जहा–

१. किमिरागरत्तवत्थसमाणे जाव
४. हलिद्दरागरत्तवत्थसमाणे।

१. किमिरागरत्तवत्थसमाणं लोभमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ नेरइएसु उववज्जइ।
२. कद्दमरागरत्तवत्थसमाणं लोभमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जइ।
३. खंजण रागरत्तवत्थसमाणं लोभमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ मणुस्सेसु उववज्जइ।
४. हलिद्दरागरत्तवत्थसमाणं लोभमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइं देवेसु उववज्जइ। –ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २९३

(च) चत्तारि उदगा पण्णत्ता, तं जहा–

१. कद्दमोदए,
२. खंजणोदए,
३. वालुओदए,
४. सेलोदए।

एवामेव चउव्विहे भावे पण्णत्ते, तं जहा–

१. कद्दमोदगसमाणे जाव
४. सेलोदगसमाणे।

१. कद्दमोदगसमाणं भावमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ णेरइएसु उववज्जइ,
२. खंजणोदगसमाणं भावमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ तिरिक्खजोणिएसु उववज्जइ,
३. वालुओदगसमाणं भावमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ मणुस्सेसु उववज्जइ,
४. सेलोदगसमाणं भावमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ देवेसु उववज्जइ। –ठाणं. अ. ४, उ. [illegible]

(छ) चत्तारि आवत्ता पण्णत्ता, तं जहा–

१. खरावत्ते, २. उन्नयावत्ते,
३. गूढावत्ते, ४. आमिसावत्ते।

एवामेव चत्तारि कसाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. खरावत्तसमाणे कोहे,
२. उन्नयावत्तसमाणे माणे,
३. गूढावत्तसमाणे माया,
४. आमिसावत्तसमाणे लोभे।

१. खरावत्तसमाणं कोहमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ नेरइएसु उववज्जइ,

४. अवलेखनिका केतन के समान माया में प्रवर्तमान जीव यदि काल करे तो देवों में उत्पन्न होता है।

(घ) वस्त्र चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. कृमिरागरक्त, २. कर्दमरागरक्त,
३. खंजन रागरक्त, ४. हलिद्रारागरक्त।

इसी प्रकार लोभ भी चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. कृमिरागरक्त वस्त्र के समान यावत्
४. हलिद्रारागरक्त वस्त्र के समान (हल्दी के रंग से रंगे वस्त्र के समान)

१. कृमिरागरक्त वस्त्र के समान लोभ में प्रवर्तमान जीव यदि काल करे तो नैरयिकों में उत्पन्न होता है।
२. कर्दमरागरक्त वस्त्र के समान लोभ में प्रवर्तमान जीव यदि काल करे तो तिर्यग्योनिकों में उत्पन्न होता है।
३. खंजनरागरक्त वस्त्र के समान लोभ में प्रवर्तमान जीव यदि काल करे तो मनुष्यों में उत्पन्न होता है।
४. हलिद्रारागरक्त वस्त्र के समान लोभ में प्रवर्तमान जीव यदि काल करे तो देवों में उत्पन्न होता है।

(च) उदक (जल) चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. कर्दमोदक (कीचड़) युक्त जल
२. खंजनोदक (पहिये की नाभि के कीट से युक्त जल)
३. वालुकोदक (बालु-रेतयुक्त जल)
४. शैलोदक (पर्वतीय जल)

इसी प्रकार जीवों के भाव (राग-द्वेष रूप क्रोधादि कषाय परिणाम) चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. कर्दमोदक समान यावत्
४. शैलोदक समान।

१. कर्दमोदक समान भाव में प्रवर्तमान जीव यदि काल करे तो नैरयिकों में उत्पन्न होता है।
२. खंजनोदक समान भाव में प्रवर्तमान जीव यदि काल करे तो तिर्यग्योनिकों में उत्पन्न होता है।
३. वालुकोदक समान भाव में प्रवर्तमान जीव यदि काल करे तो मनुष्यों में उत्पन्न होता है।
४. शैलोदक समान भाव में प्रवर्तमान जीव यदि काल करे तो [illegible] में उत्पन्न होता है।

(छ) चार आवर्त [illegible]

१. [illegible] २. [illegible]
३. [illegible] ४. [illegible]

इसी प्रकार [illegible]

[illegible]

२. उन्नयावत्तसमाणं माणमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ नेरइएसु उववज्जइ,

३. गूढावत्तसमाणं मायमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ नेरइएसु उववज्जइ।

४. आमिसावत्तसमाणं लोभमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ नेरइएसु उववज्जइ। *–ठाणं. अ. ४, सु. ३८५*

२. उन्नतावर्त समान मान में प्रवर्तमान जीव यदि काल करे तो नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

३. गूढावर्त समान माया में प्रवर्तमान जीव यदि काल करे तो नैरयिकों मे उत्पन्न होता है।

४. आमिषावर्त समान लोभ में प्रवर्तमान जीव यदि काल करे तो नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

३. कसायोप्पत्तिपरूवणं–

प. १. कइविहे णं भंते ! ठाणेहिं कोहुप्पत्ति भवइ ?

उ. गोयमा ! चउहिं ठाणेहिं कोहुप्पत्ति भवइ, तं जहा–

१. खेत्तं पडुच्च,
२. वत्थुं पडुच्च,
३. सरीरं पडुच्च,
४. उवहिं पडुच्च।

एवं णेरइयाईणं जाव वेमाणियाणं।

एवं माणेण वि मायाए वि लोभेण वि। एए वि चत्तारि दंडगा।[1] *–पण्ण. प. १४, सु. ९६१*

(क) दसहिं ठाणेहिं कोहुप्पत्ति सिया, तं जहा–

१. मणुण्णाइं मे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधाइं अवहरिंसु,
२. अमणुण्णाइं मे सद्द जाव गंधाइं उवहरिंसु,
३. मणुण्णाइं मे सद्द जाव गंधाइं अवहरइ,
४. अमणुण्णाइं मे सद्द जाव गंधाइं उवहरइ,
५. मणुण्णाइं मे सद्द जाव गंधाइं अवहरिस्सइ,
६. अमणुण्णाइं मे सद्द जाव गंधाइं उवहरिस्सइ,
७. मणुण्णाइं मे सद्द जाव गंधाइं अवहरिंसु, अवहरइ, अवहरिस्सइ,
८. अमणुण्णाइं मे सद्द जाव गंधाइं उवहरिंसु, उवहरइ, उवहरिस्सइ,
९. मणुण्णामणुण्णाइं मे सद्द जाव गंधाइं अवहरिंसु, अवहरइ, अवहरिस्सइ, उवहरिंसु उवहरइ, उवहरिस्सइ,
१०. अहं च णं आयरिय उवज्झायाणं सम्मं वट्टामि ममं च णं आयरिय उवज्झाया मिच्छं विप्पडिवन्ना। *–ठाणं. अ. १०, सु. ७०८*

३. कषायोत्पत्ति का प्ररूपण–

प्र. १. भंते ! कितने स्थानों (कारणों) से क्रोध की उत्पत्ति होती है ?

उ. गौतम ! चार कारणों से क्रोध की उत्पत्ति होती है, यथा–

१. क्षेत्र के निमित्त से,
२. वास्तु (मकान) के निमित्त से,
३. शरीर के निमित्त से,
४. उपधि (साधन सामग्री) के निमित्त से।

इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त क्रोधोत्पत्ति के कारण जानने चाहिए।

इसी प्रकार मान, माया और लोभ की उत्पत्ति के कारण के लिए भी यही चार-चार दंडक जानने चाहिए।

(क) दस स्थानों (कारणों) से क्रोध की उत्पत्ति होती है, यथा–

१. अमुक (पुरुष ने) मेरे मनोज्ञ शब्द-स्पर्श-रस-रूप और गंध का अपहरण किया था।
२. अमुक पुरुष ने मेरे लिए अमनोज्ञ शब्द-यावत् गंध उपलब्ध किए थे।
३. अमुक पुरुष मेरे मनोज्ञ शब्द यावत् गंध का अपहरण करता है।
४. अमुक पुरुष मेरे लिए अमनोज्ञ शब्द यावत् गंध उपलब्ध करता है।
५. अमुक पुरुष मेरे मनोज्ञ शब्द यावत् गंध का अपहरण करेगा।
६. अमुक पुरुष मेरे लिए अमनोज्ञ शब्द यावत् गंध उपलब्ध करेगा।
७. अमुक पुरुष मेरे मनोज्ञ शब्द यावत् गंध का अपहरण करता था, अपहरण करता है और अपहरण करेगा।
८. अमुक पुरुष ने मुझे अमनोज्ञ शब्द यावत् गंध उपलब्ध कराये हैं, कराता है और करायेगा ?
९. अमुक पुरुष ने मेरे मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्द यावत् गंध का अपहरण किया था अपहरण करता है और अपहरण करेगा तथा उपलब्ध किये थे, करता है और करेगा।
१०. मैं आचार्य और उपाध्याय के साथ सम्यक् (अनुकूल) व्यवहार करता हूँ परन्तु आचार्य और उपाध्याय मेरे से (मेरे साथ) प्रतिकूल व्यवहार करते हैं।

३. [illegible]–

[illegible] [illegible]

(ख) मद (मदोत्पत्ति) के आठ स्थान कहे गये हैं, यथा–

१. जातिमद, २. कुलमद,

[1] [illegible]

३. वलमए,　४. रूवमए,
५. तवमए,　६. सुयमए,
७. लाभमए,　८. इस्सरियमए।[1]

—ठाणं. अ. ८, सु. ६०६

(ग) दसहिं ठाणेहिं अहमंतीति थंभिज्जा, तं जहा—

१. जाइमएण वा जाव ८. इस्सरियमएण वा,
९. णागसुवन्ना वा मे अंतिय हव्वमागच्छंति
१०. पुरिसधम्माओ वा मे उत्तरिए आहोहिए णाणदंसणे समुप्पन्ने।　—ठाणं. अ. १०, सु. ७१०

४. कसायकरण भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं—

प. कइविहा णं भंते ! कसायकरणे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! कसायकरणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. कोहकसायकरणे,　२. माणकसायकरणे,
३. मायाकसायकरणे,　४. लोभकसायकरणे,

एए सव्वे नेरइयाई दंडगा जाव वेमाणियाणं जस्स जं अत्थि तं तस्स सव्वं भाणियव्वं। —विया. स. १९, उ. ९, सु. ८

५. कसायनिव्वत्ति भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं—

प. कइविहा णं भंते ! कसायनिव्वत्ति पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! चउव्विहा कसायनिव्वत्ति पण्णत्ता, तं जहा—

१. कोहकसायनिव्वत्ति
२. मान कसाय निव्वत्ति,
३. मायाकसायनिव्वत्ति,
४. लोभकसायनिव्वत्ति।

दं. १-२४ एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

—विया. स. १९, उ. ८, सु. १९-२०

६. कसायपइट्ठाण परूवणं—

प. कइ पइट्ठिए णं भंते ! कोहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! चउपइट्ठिए कोहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. आयपइट्ठिए,　२. परपइट्ठिए,[2]
३. तदुभयपइट्ठिए,　४. अपइट्ठिए।[3]

एवं णेरइयाईणं जाव वेमाणियाणं दंडओ।

एवं माणेणं दंडओ, मायाए दंडओ, लोभेण दंडओ।

—[illegible]

७. चउगइएसु कसाय परूवणं—

१. नेरइयाण— चत्तारि कसाया　[illegible]
२. तिरिक्खजोणिएसु—एगिंदिय—

प. [illegible]

---

३. वलमद,　४. रूपमद,
५. तपोमद,　६. श्रुतमद,
७. लाभ मद　८. ऐश्वर्य मद।

(ग) इन दस स्थानों (कारणों) से व्यक्ति 'मैं ही सर्वश्रेष्ठ हूँ' ऐसा मानकर अभिमान करता है, यथा—

१. जातिमद से यावत्　८. ऐश्वर्य मद से,
९. नागकुमार, सुवर्णकुमार आदि देव मेरे पास दौड़े आते हैं,
१०. सामान्य जनों की अपेक्षा मुझे विशिष्ट अवधिज्ञान और अवधिदर्शन उत्पन्न हुआ है। (इस प्रकार के भाव से मान की उत्पत्ति होती है।)

४. कषायकरण के भेद और चौवीसदंडकों में प्ररूपण—

प्र. भंते ! कषाय करण कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! कषाय करण चार प्रकार का कहा गया है, यथा—

१. क्रोध कषाय करण,　२. मान कषाय करण,
३. माया कषाय करण,　४. लोभ कषाय करण

ये सभी नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त दण्डकों में जानना चाहिए किन्तु जिसके जो कषाय हो उसके वे सब कहना चाहिए।

५. कषायनिर्वृत्ति के भेद और चौवीसदंडकों में प्ररूपण—

प. भंते ! कषायनिर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! कषायनिर्वृत्ति चार प्रकार की कही गई है, यथा—

१. क्रोधकषाय निर्वृत्ति,
२. मान कषाय निर्वृत्ति,
३. माया कषाय निर्वृत्ति
४. लोभकषाय निर्वृत्ति।

दं. १-२४—इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त कषाय निर्वृत्ति कहनी चाहिए।

६. कषाय प्रतिष्ठान का प्ररूपण—

प्र. भंते ! क्रोध कितने आधारों पर प्रतिष्ठित कहा गया है ?

उ. गौतम ! क्रोध चार (निमित्त) पर प्रतिष्ठित कहा गया है, यथा—

१. आत्मप्रतिष्ठित,　२. [illegible]
३. उभय प्रतिष्ठित,　४. [illegible]

इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त दंडक कहने चाहिए। इसी प्रकार मान, माया और लोभ के लिए भी एक एक दंडक कहना चाहिये।

७. चार गतियों में कषायों का प्ररूपण—

१. नैरयिकों के [illegible]
२. तिर्यञ्चयोनिकों में [illegible]
प्र. [illegible]

[illegible]

उ. गोयमा ! चत्तारि कसाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. कोहकसाए, २. माणकसाए,

३. मायाकसाए, ४. लोहकसाए,

–जीवा. पडि. १, सु. १३ (५)

वायर-पुढविकाइया– जहा सुहुमपुढविकाइयाणं।

–जीवा. पडि. १, सु. १५

सुहुम वायर आउकाइया–जहा सुहुमपुढविकाइयाणं।

–जीवा. पडि. १, सु. १६, १७

सुहुम वायर तेउकाइया–जहा सुहुमपुढविकाइयाणं।

–जीवा. पडि.१, सु. २४, २५

सुहुम वायर वाउकाइया–सुहुमपुढविकाइयाणं।

–जीवा. पडि. १, सु. २६

सुहुम-वायर-साहारणं-पत्तेयसरीर वणस्सइकाइया-जहा सुहुम पुढविकाइयाणं, –जीवा. पडि. १, सु. १८, २०, २१

बेइंदिया, चत्तारि कसाया –जीवा. पडि. १, सु. २८

तेइंदिया जहा बेइंदिया –जीवा. पडि. १, सु. २९

चउरिंदिया– जहा तेइंदिया –जीवा. पडि. १, सु. ३०

संमुच्छिम पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया–

जलयरा–चत्तारि कसाया –जीवा. पडि. १, सु. ३५

थलयरा जहा जलयराणं –जीवा. पडि. १, सु. ३६

खहयरा जहा जलयराणं –जीवा. पडि. १, सु. ३६

गब्भवक्कंतिय पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया–

जलयरा– चत्तारि कसाया –जीवा. पडि. १, सु. ३८

थलयरा जहा जलयराणं –जीवा. पडि. १, सु. ३९

खहयरा जहा जलयराणं –जीवा. पडि. १, सु. ४०

३. मणुस्सा–सम्मुच्छिम मणुस्सा–जहा बेइंदियाणं–

–जीवा. पडि. १, सु. ४१

प. गब्भवक्कंतियमणुस्साणं भंते ! जीवा किं कोहकसाई जाव लोहकसाई अकसाई ?

उ. गोयमा ! सव्वेवि, –जीवा. पडि. १, सु. ४१

४. देवा चत्तारि कसाया, –जीवा. पडि. १, सु. ४२

८. सकसाय-अकसाय जीवाणं कायट्ठिई–

प. [illegible] भंते ! सकसाई त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. [illegible] पण्णत्ते, तं जहा -

[illegible]

उ. गौतम ! चार कषाय कहे गये हैं, यथा–

१. क्रोध कषाय, २. मान कषाय,

३. माया कषाय, ४. लोभ कषाय,

बादर पृथ्वीकायिक जीवों का कथन सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीवों के समान है।

सूक्ष्म बादर अप्कायिक जीवों का कथन सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों के समान है।

सूक्ष्म बादर तेजस्कायिक जीवों का कथन सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों के समान है,

सूक्ष्म बादर वायुकायिक जीवों का कथन सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों के समान है।

सूक्ष्म बादर साधारण प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक जीवों का कथन सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों के समान है।

द्वीन्द्रिय जीवों के चारों कषाय होते हैं।

त्रीन्द्रिय जीवों के द्वीन्द्रिय जीवों के समान चारों कषाय होते हैं।

चतुरिन्द्रिय जीवों के तेइन्द्रय जीवों के समान चारों कषाय होते हैं।

सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक–

जलचरों के चारों कषाय होते हैं।

स्थलचरों के जलचरों के समान चारों कषाय होते हैं।

खेचरों के जलचरों के समान चारों कषाय होते हैं।

गर्भव्युत्क्रान्तिक पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक–

जलचरों के चारों कषाय होते हैं।

स्थलचरों के जलचरों के समान चारों कषाय होते हैं।

खेचरों के जलचरों के समान चारों कषाय होते हैं।

३. मनुष्य–संमूर्च्छिम मनुष्यों में द्वीन्द्रियों के समान चारों कषाय होते हैं।

प्र. भंते ! क्या गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्य जीव क्रोध कषायी यावत् लोभकषायी और अकषायी होते हैं ?

उ. गौतम ! सभी तरह के होते हैं।

४. देव–देवों में चारों कषाय होते हैं।

८. सकषाय-अकषाय जीवों की कायस्थिति–

प्र. भंते ! सकषायी (जीव) सकषायी रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! सकषायी जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. अनादि अपर्यवसित,

२. अनादि सपर्यवसित,

३. सादि-सपर्यवसित।

उनमें जो सादि सपर्यवसित हैं उनकी जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्त काल है अर्थात् अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल है और क्षेत्र से देशोन अपार्धपुद्गल-परावर्त पर्यन्त रहता है।

प. कोहकसाई णं भंते ! कोहकसाई त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।
एवं माणकसाई मायाकसाई वि।

प. लोभकसाई णं भंते ! लोभकसाई त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

प. अकसाई णं भंते ! अकसाई त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! अकसाई दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. साईए वा अपज्जवसिए, २. साईए वा सपज्जवसिए।
तत्थ णं जे से साईए सपज्जवसिए से जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।[1] –पण्ण. प. १८, सु. १३३१-१३३४

९. सकसाय-अकसाय जीवाणं अंतरकाल परूवणं–
१. कोहकसाई,
२. माणकसाई,
३. मायाकसाईणं अंतरं जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं,
४. लोभकसाईस्स अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं,
५. अकसायिस्स साईए अपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं,
साईए सपज्जवसियस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतंकालं। –जीवा. पडि. ९, सु. २४८

१०. सकसाय-अकसाय जीवाणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं १. सकसाईणं २. कोहकसाईणं ३. माणकसाईणं, ४. मायाकसाईणं, ५. लोभकसाईणं, ६. अकसाईण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा अकसाई,
२. माणकसायी अणंतगुणा,
३. कोहकसायी विसेसाहिया,
४. मायाकसायी विसेसाहिया,
५. लोभकसायी विसेसाहिया,[2]
६. सकसायी विसेसाहिया।[3] [illegible]

प्र. भंते ! क्रोध कषायी क्रोध कषायी के रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! उसकी जघन्य और उत्कृष्ट कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त है, इसी प्रकार मानकषायी और मायाकषायी की कायस्थिति जाननी चाहिए।

प्र. भंते ! लोभकषायी लोभ-कषायी के रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रहता है?

प्र. भंते ! अकषायी-अकषायी के रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! अकषायी (जीव) दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१. सादि-अपर्यवसित, २. सादि-सपर्यवसित।
इनमें से जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक (अकषायी रूप में) रहता है।

९. सकषाय-अकषाय जीवों के अन्तर काल का प्ररूपण–
१. क्रोध कषायी,
२. मान कषायी,
३. माया कषायी का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।
४. लोभकषायी का अन्तर जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त है।
५. सादि-अपर्यवसित अकषायी का अन्तर नहीं है,
सादि-सपर्यवसित का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल है।

१०. सकषाय-अकषाय जीवों का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन १. सकषायी, २. क्रोधकषायी, ३. मानकषायी, ४. माया कषायी, ५. लोभकषायी और ६. अकषायी जीवों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है?

उ. गौतम ! १. सबसे थोड़े जीव अकषायी हैं,
२. (उनसे) मानकषायी अनन्तगुणे हैं,
३. (उनसे) क्रोध कषायी विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) [illegible] विशेषाधिक हैं,
५. (उनसे) [illegible] विशेषाधिक हैं,
६. (उनसे) सकषायी विशेषाधिक हैं।

३१. कर्म-अध्ययन : आमुख

जैनागमों में कर्म सिद्धान्त का सूक्ष्म विवेचन विद्यमान है। कम्म-पयडि एवं कर्म ग्रंथों का निर्माण भी आगमों के आधार पर हुआ है, जिनमें कर्म-सिद्धान्त का व्यवस्थित निरूपण उपलब्ध होता है। आगम की शैली शंका-समाधान की शैली है, संवाद की शैली है जिसमें अनेक सूक्ष्म तथ्य सरल रूप में समाहित हुए हैं। दिगम्बर ग्रंथ षट्खण्डागम एवं कषाय पाहुड में भी कर्म का विशद विवेचन है।

प्रस्तुत कर्म अध्ययन में कर्म का संक्षेप में सर्वांगीण निरूपण है। यद्यपि कर्म-ग्रंथों में जो व्यवस्थित प्रतिपादन मिलता है वह आगमों में विखरा हुआ है। थोकड़ों (स्तोकों) के रूप में अवश्य व्यवस्थित हुआ है। आगमों में कर्म के विविध पक्षों पर चर्चा है जो कर्म-ग्रंथों में प्रायः नहीं मिलती है इसलिए आगमों में निरूपित कर्म-विवेचन का विशेष महत्व है।

मिथ्यात्व, अविरति आदि हेतुओं से जीव के द्वारा जो किया जाता है उसे कर्म कहते हैं। कार्मण वर्गणाएं जव जीव के साथ बंध को प्राप्त हो जाती हैं तो वे भी कर्म कही जाती हैं। जीव एवं कर्म का अनादि सम्बन्ध है किन्तु उसका अंत किया जा सकता है। जीव के संसार परिभ्रमण का अंत कर्मों का नाश अथवा क्षय होने पर ही संभव है। कर्मों के आठ भेद जैन दर्शन में प्रसिद्ध हैं-१. ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय, ३. वेदनीय, ४. मोहनीय, ५. आयु, ६. नाम, ७. गोत्र और ८. अन्तराय। किन्तु आगम में कर्म के दो एवं चार भेद भी किए गए हैं। दो भेदों में (१) प्रदेशकर्म और (२) अनुभाव कर्म का उल्लेख है तो चार भेदों में (१) प्रकृति कर्म, (२) स्थिति कर्म, (३) अनुभाव कर्म और (४) प्रदेशकर्म की गणना है। वद्ध कर्मों के स्वभाव को प्रकृति कर्म, उनके ठहरने की कालावधि को स्थिति कर्म, फलदान शक्ति को अनुभाव कर्म तथा कर्म परमाणु पुद्गलों के संचय को प्रदेश कर्म कहते हैं। कर्म के चार भेद उनके अनुबन्ध के आधार पर भी किए जाते हैं शुभानुबंधी शुभ, अशुभानुवंधी शुभ, शुभानुवंधी अशुभ और अशुभानुवंधी अशुभ। इन्हीं भेदों के आधार पर पुण्यानुबंधी पुण्यादि भेदों का प्रचलन हो गया है। फल के आधार पर भी कर्मों के चार भेद हैं- १. शुभ विपाकी शुभ, २. अशुभ विपाकी शुभ, ३. शुभ विपाकी अशुभ तथा ४. अशुभ विपाकी अशुभ।

कर्म अगुरुलघु होते हैं तथापि कर्म से जीव विविध रूपों में परिणत होते हैं। उनका फल भोगते हैं।

ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म-प्रकृतियों में परस्पर सहभाव है। जहाँ ज्ञानावरणीय कर्म है वहाँ मोहनीय के अतिरिक्त छहों कर्म नियम से हैं। मोहनीय कर्म स्यात् है, स्यात् नहीं है क्योकि दसवें गुणस्थान तक तो ज्ञानावरण के साथ मोहनीय रहता ही है किन्तु ग्यारहवें गुणस्थान से मोहनीय नहीं रहता जव कि ज्ञानावरणीय कर्म का उदय रहता है। इसी प्रकार दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्मों के साथ भी मोहनीय के अतिरिक्त छहों कर्म नियम से रहते हैं किन्तु मोहनीय स्यात् रहता है स्यात् नहीं। जहाँ मोहनीय कर्म है वहाँ अन्य सातों कर्म नियम से हैं। वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र के होने पर ज्ञानावरणादि घाती कर्म स्यात् होते हैं, स्यात् नहीं; किन्तु वेदनीय के होने पर आयु, नाम और गोत्र का नियम से सहभाव है। इसी प्रकार अन्य अघाती कर्म भी नियमतः साथ रहते हैं।

आठों कर्मों का बंध नैरयिक से लेकर वैमानिक तक चौबीस ही दण्डकों में पाया जाता है। मनुष्य अवश्य इन कर्मों के बंध से रहित हो सकता है। ज्ञानावरणीय कर्म के होने पर दर्शनावरणीय तथा दर्शनावरणीय के होने पर दर्शनमोह कर्म निश्चय ही रहता है। दर्शनमोहनीय का एक भेद मिथ्यात्वमोहनीय है। मिथ्यात्व का उदय होने पर जीव आठ या सात कर्म प्रकृतियों का बंध करता है जबकि सम्यक्त्व के होने पर जीव आठ, सात, छह या एक कर्म का वंध करता है।

हमारे अनुभव में वेदनीय कर्म एक मुख्य कर्म है। वह कर्कश वेदनीय और अकर्कशवेदनीय के रूप में भगवती सूत्र में निरूपित है। प्राणातिपात से मिथ्यादर्शनशल्य तक १८ पापों का आचरण करने वाला जीव कर्कशवेदनीय कर्म बांधता है तथा इनसे विरत होने वाला अकर्कशवेदनीय कर्म बांधता है। मोहनीय कर्म को आठों कर्मों का राजा कहा जाता है। समवायांग सूत्र में मोहनीय के वावन नामों का उल्लेख किया गया है तथा दशाश्रुतस्कंध सूत्र में महामोहनीय कर्म के ३० वंधस्थानों का वर्णन है।

कर्म चैतन्यकृत होते हैं, अचैतन्यकृत नहीं। जीव ही आठ कर्म प्रकृतियों का चय करते हैं, उपचय करते हैं, बंध करते हैं, उदीरण वेदन और निर्जरण करते हैं। इस दृष्टि से कर्म के दो प्रकार होते हैं-चलित और अचलित। इनमें निर्जरा चलित कर्म की होती है तथा वंध, उदीरण, वेदन, अपवर्तन, संक्रमण, निधूतन और निकाचन अचलित कर्म के होते हैं। जीव आठ प्रकृतियों का चय, उपचय, बंध, उदीरण, वेदन और निर्जरण चार कारणों से करता है- १. क्रोध से, २. मान से, ३. माया से और ४. लोभ से।

ज्ञानावरणादि आठ कर्मों की ९७ उत्तरप्रकृतियाँ हैं। किसी अपेक्षा से १२२, १४८ और १५८ उत्तरप्रकृतियां भी गिनी जाती हैं। इनमें मुख्यतः नाम कर्म की उत्तरप्रकृतियों की संख्या में अन्तर आता है, अन्य में नहीं। नाम कर्म की यहाँ ४२ उत्तरप्रकृतियां गिनी गई हैं, कर्मग्रंथों में इसकी ६७, ९३ या १०३ उत्तरप्रकृतियां भी गिनी जाती हैं। यहाँ ९७ भेदों में ज्ञानावरण के ५, दर्शनावरण के ९, वेदनीय के २, मोहनीय के २८, आयु के ४, नाम के ४२, गोत्र के २ और अन्तराय के ५ भेद समाविष्ट हैं। वैसे कर्म प्रकृतियों के भिन्न प्रकार से भी भेद प्रतिपादित हैं। यथा-ज्ञानावरणीय के २ प्रकार

[illegible]–देश ज्ञानावरणीय और सर्वज्ञानावरणीय। ज्ञान को अंशतः आवृत करने वाला कर्म देश ज्ञानावरणीय है तथा मतिज्ञान आदि सभी को आवृत करने वाला सर्वज्ञानावरणीय है। इसी प्रकार दर्शनावरणीय के देश दर्शनावरणीय एवं सर्वदर्शनावरणीय ये दो भेद किये जाते हैं। वेदनीय कर्म के साता और असाता ये दो भेद प्रसिद्ध हैं किन्तु सातावेदनीय ८ प्रकार का कहा गया है–१. मनोज्ञ शब्द, २. मनोज्ञ रूप, ३. मनोज्ञ गंध, ४. मनोज्ञ रस, ५. मनोज्ञ स्पर्श, ६. मन का सौख्य, ७. वचन का सौख्य और ८. काया का सौख्य। इनके विपरीत अमनोज्ञ शब्दादि के रूप में ८ प्रकार का असातावेदनीय कर्म होता है। आयु कर्म के दो विशिष्ट भेद हैं–अद्धायु और भवायु। अद्धायु भवान्तरगामिनी होती है, जबकि भवायु मात्र उसी भव के लिए होती है। नामकर्म के २ भेद हैं–१. शुभ नाम और २. अशुभ नाम। गोत्र कर्म में उच्चगोत्र ८ प्रकार का है–१. जाति, २. कुल, ३. बल, ४. रूप, ५. तप, ६. श्रुत, ७. लाभ और ८. ऐश्वर्य में विशिष्टता का होना। जब इनमें हीनता होती है तो ८ प्रकार का नीच गोत्र होता है। अन्तरायकर्म के दो प्रकार हैं– १. वर्तमान में प्राप्तवस्तु का वियोग करने वाला २. भविष्य में होने वाले लाभ के मार्ग को रोकने वाला।

श्रमण एवं श्रमणी के २२ परीषह होते हैं। उन्हें ज्ञानावरणीय, वेदनीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार कर्मप्रकृतियों में सम्मिलित किया जा सकता है। ज्ञानावरणीय कर्म में १. प्रज्ञापरीषह और २. ज्ञान (अज्ञान) परीषह का समवतार होता है। वेदनीय कर्म में ११ परीषहों का समवतार होता है–१. क्षुधा, २. पिपासा, ३. शीत, ४. उष्ण, ५. दंशमशक, ६. चर्या, ७. शय्या, ८. वध, ९. रोग, १०. तृणस्पर्श और ११. जल्ल (मल) परीषह। दर्शनमोहनीय कर्म में एक दर्शन परीषह सम्मिलित होता है जबकि चारित्रमोहनीय कर्म में सात परीषह शामिल होते हैं–१. अरति, २. अचेल, ३. स्त्री, ४. निषधा, ५. याचना, ६. आक्रोश और ७. सत्कार परीषह। अन्तराय कर्म में एक अलाभ परीषह का समवतार होता है।

आठ कर्मों का बंध करने वाले एवं आयु को छोड़कर सात कर्मों का बंध करने वाले जीव के २२ परीषह कहे गए हैं किन्तु वह जीव एक साथ २० परीषहों का वेदन करता है उससे अधिक नहीं क्योंकि जीव शीत और उष्ण परीषहों में से एक को वेदता है। इसी प्रकार चर्या और निषद्या परीषहों में से एक समय में एक का वेदन होता है। छह प्रकार के कर्म बांधने वाले सराग छद्मस्थ जीव के चौदह परीषह कहे गए हैं किन्तु वह एक साथ बारह परीषह वेदता है। एकविध कर्म का बन्ध करने वाले वीतराग छद्मस्थ के भी १४ परीषह कहे गए हैं। एकविध बंधक सयोगी भवस्थ केवली के ११ परीषह कहे गए हैं। वीतराग छद्मस्थ एवं केवली के चर्या और शय्या परीषह का एक साथ वेदन नहीं होता है।

जीव जिन कर्म पुद्गलों का पाप कर्म के रूप में चय करता है, उपचय करता है, बंध करता है, उदीरण करता है, वेदन करता है, निर्जरा करता है वे कर्म पुद्गल द्विस्थान से लेकर दसस्थान निर्वर्तित होते हैं। विविध अपेक्षाओं से इन स्थानों का प्रतिपादन किया गया है। द्विस्थान निर्वर्तित पुद्गलों में त्रसकाय निर्वर्तित और स्थावर काय निर्वर्तित पुद्गलों का उल्लेख है। त्रिस्थान में स्त्रीनिर्वर्तित, पुरुष निर्वर्तित और नपुंसक निर्वर्तित का, चार स्थानों में नैरयिक, तिर्यग्योनिक, मनुष्य और देव निर्वर्तित का, पांच स्थानों में एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय निर्वर्तित का, छह स्थानों में पृथ्वीकायिक [illegible] निर्वर्तित पुद्गलों का उल्लेख है। सात स्थानों में नैरयिक, तिर्यञ्च, तिर्यञ्चस्त्री, मनुष्य, मनुष्यस्त्री, देव और देवी निर्वर्तित पुद्गलों का उल्लेख है। आठ स्थानों में प्रथम समय नैरयिक निर्वर्तित, अप्रथमसमय मनुष्य निर्वर्तित, प्रथम समय तिर्यञ्च निर्वर्तित, अप्रथमसमय तिर्यञ्च निर्वर्तित, प्रथम समय मनुष्य निर्वर्तित, अप्रथम समय नैरयिक निर्वर्तित, प्रथमसमय देव निर्वर्तित, अप्रथम समय देवनिर्वर्तित पुद्गलों को और नौ स्थानों में [illegible] द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पंचेन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलों को सम्मिलित किया गया है। दस स्थानों में एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक को प्रथम एवं अप्रथम समय के आधार पर दस भागों में विभक्त कर उनसे निर्वर्तित पुद्गलों का कथन है।

पाप कर्मों का उदीरण (अबाधा के पूर्व उदय में लाना) भी होता है, वेदन (उदय) भी होता है और निर्जरण भी [illegible] दो स्थान हैं–१. आभ्युपगमिकी (स्वीकृत तपस्या आदि की) वेदना, २. औपक्रमिकी (रोग आदि की) वेदना [illegible] होता है जबकि उसकी निर्जरा सुख रूप होती है। जीवों के पाप कर्मों में भिन्नता [illegible] कर्मों में भी भिन्नता पाई जाती है।

प्रस्तुत अध्ययन में ग्यारह द्वारों से जीव के चार कर्मों के बंध का विशद निरूपण [illegible] दृष्टि, ८. बुद्धि, ५. अज्ञान, ६. ज्ञान, ७. संज्ञा, ८. वेद, ९. [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

३१. कर्म-अध्ययन : आमुख

जैनागमों में कर्म सिद्धान्त का सूक्ष्म विवेचन विद्यमान है। कम्म-पयडि एवं कर्म ग्रंथों का निर्माण भी आगमों के आधार पर हुआ है, जिनमें कर्म-सिद्धान्त का व्यवस्थित निरूपण उपलब्ध होता है। आगम की शैली शंका-समाधान की शैली है, संवाद की शैली है जिसमें अनेक सूक्ष्म तथ्य सरल रूप में समाहित हुए हैं। दिगम्बर ग्रंथ षट्खण्डागम एवं कषाय पाहुड में भी कर्म का विशद विवेचन है।

प्रस्तुत कर्म अध्ययन में कर्म का संक्षेप में सर्वांगीण निरूपण है। यद्यपि कर्म-ग्रंथों में जो व्यवस्थित प्रतिपादन मिलता है वह आगमों में बिखरा हुआ है। थोकड़ों (स्तोकों) के रूप में अवश्य व्यवस्थित हुआ है। आगमों में कर्म के विविध पक्षों पर चर्चा है जो कर्म-ग्रंथों में प्रायः नहीं मिलती है इसलिए आगमों में निरूपित कर्म-विवेचन का विशेष महत्व है।

मिथ्यात्व, अविरति आदि हेतुओं से जीव के द्वारा जो किया जाता है उसे कर्म कहते हैं। कार्मण वर्गणाएं जब जीव के साथ बंध को प्राप्त हो जाती हैं तो वे भी कर्म कही जाती हैं। जीव एवं कर्म का अनादि सम्बन्ध है किन्तु उसका अंत किया जा सकता है। जीव के संसार परिभ्रमण का अंत कर्मों का नाश अथवा क्षय होने पर ही संभव है। कर्मों के आठ भेद जैन दर्शन में प्रसिद्ध हैं–१. ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय, ३. वेदनीय, ४. मोहनीय, ५. आयु, ६. नाम, ७. गोत्र और ८. अन्तराय। किन्तु आगम में कर्म के दो एवं चार भेद भी किए गए हैं। दो भेदों में (१) प्रदेशकर्म और (२) अनुभाव कर्म का उल्लेख है तो चार भेदों में (१) प्रकृति कर्म, (२) स्थिति कर्म, (३) अनुभाव कर्म और (४) प्रदेशकर्म की गणना है। बद्ध कर्मों के स्वभाव को प्रकृति कर्म, उनके ठहरने की कालावधि को स्थिति कर्म, फलदान शक्ति को अनुभाव कर्म तथा कर्म परमाणु पुद्गलों के संचय को प्रदेश कर्म कहते हैं। कर्म के चार भेद उनके अनुबन्ध के आधार पर भी किए जाते हैं शुभानुबंधी शुभ, अशुभानुबंधी शुभ, शुभानुबंधी अशुभ और अशुभानुबंधी अशुभ। इन्हीं भेदों के आधार पर पुण्यानुबंधी पुण्यादि भेदों का प्रचलन हो गया है। फल के आधार पर भी कर्मों के चार भेद हैं– १. शुभ विपाकी शुभ, २. अशुभ विपाकी शुभ, ३. शुभ विपाकी अशुभ तथा ४. अशुभ विपाकी अशुभ।

कर्म अगुरुलघु होते हैं तथापि कर्म से जीव विविध रूपों में परिणत होते हैं। उनका फल भोगते हैं।

ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म-प्रकृतियों में परस्पर सहभाव है। जहाँ ज्ञानावरणीय कर्म है वहाँ मोहनीय के अतिरिक्त छहों कर्म नियम से हैं। मोहनीय कर्म स्यात् है, स्यात् नहीं है क्योंकि दसवें गुणस्थान तक तो ज्ञानावरण के साथ मोहनीय रहता ही है किन्तु ग्यारहवें गुणस्थान से मोहनीय नहीं रहता जब कि ज्ञानावरणीय कर्म का उदय रहता है। इसी प्रकार दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्मों के साथ भी मोहनीय के अतिरिक्त छहों कर्म नियम से रहते हैं किन्तु मोहनीय स्यात् रहता है स्यात् नहीं। जहाँ मोहनीय कर्म है वहाँ अन्य सातों कर्म नियम से हैं। वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र के होने पर ज्ञानावरणादि घाती कर्म स्यात् होते हैं, स्यात् नहीं; किन्तु वेदनीय के होने पर आयु, नाम और गोत्र का नियम से सहभाव है। इसी प्रकार अन्य अघाती कर्म भी नियमतः साथ रहते हैं।

आठों कर्मों का बंध नैरयिक से लेकर वैमानिक तक चौबीस ही दण्डकों में पाया जाता है। मनुष्य अवश्य इन कर्मों के बंध से रहित हो सकता है। ज्ञानावरणीय कर्म के होने पर दर्शनावरणीय तथा दर्शनावरणीय के होने पर दर्शनमोह कर्म निश्चय ही रहता है। दर्शनमोहनीय का एक भेद मिथ्यात्वमोहनीय है। मिथ्यात्व का उदय होने पर जीव आठ या सात कर्म प्रकृतियों का बंध करता है जबकि सम्यक्त्व के होने पर जीव आठ, सात, छह या एक कर्म का बंध करता है।

हमारे अनुभव में वेदनीय कर्म एक मुख्य कर्म है। वह कर्कश वेदनीय और अकर्कशवेदनीय के रूप में भगवती सूत्र में निरूपित है। प्राणातिपात से मिथ्यादर्शनशल्य तक १८ पापों का आचरण करने वाला जीव कर्कशवेदनीय कर्म बांधता है तथा इनसे विरत होने वाला अकर्कशवेदनीय कर्म बांधता है। मोहनीय कर्म को आठों कर्मों का राजा कहा जाता है। समवायांग सूत्र में मोहनीय के बावन नामों का उल्लेख किया गया है तथा दशाश्रुतस्कंध सूत्र में महामोहनीय कर्म के ३० बंधस्थानों का वर्णन है।

कर्म चैतन्यकृत होते हैं, अचैतन्यकृत नहीं। जीव ही आठ कर्म प्रकृतियों का चय करते हैं, उपचय करते हैं, बंध करते हैं, उदीरण वेदन और निर्जरण करते हैं। इस दृष्टि से कर्म के दो प्रकार होते हैं–चलित और अचलित। इनमें निर्जरा चलित कर्म की होती है तथा बंध, उदीरण, वेदन, अपवर्तन, संक्रमण, निधूतन और निकाचन अचलित कर्म के होते हैं। जीव आठ प्रकृतियों का चय, उपचय, बंध, उदीरण, वेदन और निर्जरण चार कारणों से करता है– १. क्रोध से, २. मान से, ३. माया से और ४. लोभ से।

ज्ञानावरणादि आठ कर्मों की ९७ उत्तरप्रकृतियाँ हैं। किसी अपेक्षा से १२२, १४८ और १५८ उत्तरप्रकृतियां भी गिनी जाती हैं। इनमें मुख्यतः नाम कर्म की उत्तरप्रकृतियों की संख्या में अन्तर आता है, अन्य में नहीं। नाम कर्म की यहाँ ४२ उत्तरप्रकृतियां गिनी गई हैं, कर्मग्रंथों में इसकी ६७, ९३ या १०३ उत्तरप्रकृतियां भी गिनी जाती हैं। यहाँ ९७ भेदों में ज्ञानावरण के ५, दर्शनावरण के ९, वेदनीय के २, मोहनीय के २८, आयु के ४, नाम के ४२, गोत्र के २ और अन्तराय के ५ भेद समाविष्ट हैं। वैसे कर्म प्रकृतियों के भिन्न प्रकार से भी भेद प्रतिपादित हैं। यथा–ज्ञानावरणीय के २ प्रकार

हैं–देश ज्ञानावरणीय और सर्वज्ञानावरणीय। ज्ञान को अंशतः आवृत करने वाला कर्म देश ज्ञानावरणीय है तथा मतिज्ञान आदि सभी को आवृत्त करने वाला सर्वज्ञानावरणीय है। इसी प्रकार दर्शनावरणीय के देश दर्शनावरणीय एवं सर्वदर्शनावरणीय ये दो भेद किये जाते हैं। वेदनीय कर्म के साता और असाता ये दो भेद प्रसिद्ध हैं किन्तु सातावेदनीय ८ प्रकार का कहा गया है–१. मनोज्ञ शब्द, २. मनोज्ञ रूप, ३. मनोज्ञ गंध, ४. मनोज्ञ रस, ५. मनोज्ञ स्पर्श, ६. मन का सौख्य, ७. वचन का सौख्य और ८. काया का सौख्य। इनके विपरीत अमनोज्ञ शब्दादि के रूप में ८ प्रकार का असातावेदनीय कर्म होता है। आयु कर्म के दो विशिष्ट भेद हैं–अद्धायु और भवायु। अद्धायु भवान्तरगामिनी होती है, जबकि भवायु मात्र उसी भव के लिए होती है। नामकर्म के २ भेद हैं–१. शुभ नाम और २. अशुभ नाम। गोत्र कर्म में उच्चगोत्र ८ प्रकार का है–१. जाति, २. कुल, ३. बल, ४. रूप, ५. तप, ६. श्रुत, ७. लाभ और ८. ऐश्वर्य में विशिष्टता का होना। जब इनमें हीनता होती है तो ८ प्रकार का नीच गोत्र होता है। अन्तरायकर्म के दो प्रकार हैं– १. वर्तमान में प्राप्तवस्तु का वियोग करने वाला २. भविष्य में होने वाले लाभ के मार्ग को रोकने वाला।

श्रमण एवं श्रमणी के २२ परीषह होते हैं। उन्हें ज्ञानावरणीय, वेदनीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार कर्मप्रकृतियों में सम्मिलित किया जा सकता है। ज्ञानावरणीय कर्म में १. प्रज्ञापरीषह और २. ज्ञान (अज्ञान) परीषह का समवतार होता है। वेदनीय कर्म में ११ परीषहों का समवतार होता है–१. क्षुधा, २. पिपासा, ३. शीत, ४. उष्ण, ५. दंशमशक, ६. चर्या, ७. शय्या, ८. वध, ९. रोग, १०. तृणस्पर्श और ११. जल्ल (मल) परीषह। दर्शनमोहनीय कर्म में एक दर्शन परीषह सम्मिलित होता है जबकि चारित्रमोहनीय कर्म में सात परीषह शामिल होते हैं–१. अरति, २. अचेल, ३. स्त्री, ४. निषद्या, ५. याचना, ६. आक्रोश और ७. सत्कार परीषह। अन्तराय कर्म में एक अलाभ परीषह का समवतार होता है।

आठ कर्मों का बंध करने वाले एवं आयु को छोड़कर सात कर्मों का बंध करने वाले जीव के २२ परीषह कहे गए हैं किन्तु वह जीव एक साथ २० परीषहों का वेदन करता है उससे अधिक नहीं क्योंकि जीव शीत और उष्ण परीषहों में से एक को वेदता है। इसी प्रकार चर्या और निषद्या परीषहों में से एक समय में एक का वेदन होता है। छह प्रकार के कर्म बांधने वाले सराग छद्मस्थ जीव के चौदह परीषह कहे गए हैं किन्तु वह एक साथ बारह परीषह वेदता है। एकविध कर्म का बन्ध करने वाले वीतराग छद्मस्थ के भी १४ परीषह कहे गए हैं। एकविध बंधक सयोगी भवस्थ केवली के ११ परीषह कहे गए हैं। वीतराग छद्मस्थ एवं केवली के चर्या और शय्या परीषह का एक साथ वेदन नहीं होता है।

जीव जिन कर्म पुद्गलों का पाप कर्म के रूप में चय करता है, उपचय करता है, बंध करता है, उदीरण करता है, वेदन करता है, निर्जरण करता है वे कर्म पुद्गल द्विस्थान से लेकर दसस्थान निर्वर्तित होते हैं। विविध अपेक्षाओं से इन स्थानों का प्रतिपादन किया गया है। द्विस्थान निर्वर्तित पुद्गलों में त्रसकाय निर्वर्तित और स्थावर काय निर्वर्तित पुद्गलों का उल्लेख है। त्रिस्थान में स्त्रीनिर्वर्तित, पुरुष निर्वर्तित और नपुंसक निर्वर्तित का, चार स्थानों में नैरयिक, तिर्यग्योनिक, मनुष्य और देव निर्वर्तित का, पांच स्थानों में एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय निर्वर्तित का, छह स्थानों में पृथ्वीकायिकादि षट् काय निर्वर्तित पुद्गलों का उल्लेख है। सात स्थानों में नैरयिक, तिर्यक्, तिर्यक्स्त्री, मनुष्य, मनुष्यस्त्री, देव और देवी निर्वर्तित पुद्गलों का उल्लेख है। आठ स्थानों में प्रथम समय नैरयिक निर्वर्तित, अप्रथमसमय मनुष्य निर्वर्तित, प्रथम समय तिर्यक् निर्वर्तित, अप्रथमसमय तिर्यक् निर्वर्तित, प्रथम समय मनुष्य निर्वर्तित, अप्रथम समय नैरयिक निर्वर्तित, प्रथमसमय देव निर्वर्तित, अप्रथम समय देवनिर्वर्तित पुद्गलों को और नौ स्थानों में पांच स्थावर काय एवं द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पंचेन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलों को सम्मिलित किया गया है। दस स्थानों में एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक को प्रथम एवं अप्रथम समय के आधार पर दस भागों में विभक्त कर उनसे निर्वर्तित पुद्गलों का कथन है।

पाप कर्मों का उदीरण (अवधि के पूर्व उदय में लाना) भी होता है, वेदन (उदय) भी होता है और निर्जरण भी होता है। इन तीनों के होने के मोटे तौर पर दो स्थान हैं–१. आभ्युपगमिकी (स्वीकृत तपस्या आदि की) वेदना, २. औपक्रमिकी (रोग आदि की) वेदना। पाप कर्म का करना दुःख रूप होता है जबकि उसकी निर्जरा सुख रूप होती है। जीवों के पाप कर्मों में भिन्नता है। जैसे छोड़े गये एक बाण के कम्पन में भिन्नता होती है उसी प्रकार पाप कर्मों में भी भिन्नता पायी जाती है।

प्रस्तुत अध्ययन में ग्यारह द्वारों से जीव के पाप कर्मों के बंध का विशद निरूपण है। ग्यारह द्वार हैं–१. जीव, २. लेश्या, ३. पाक्षिक (शुक्ल और कृष्ण), ४. दृष्टि, ५. अज्ञान, ६. ज्ञान, ७. संज्ञा, ८. वेद, ९. कषाय, १०. उपयोग और, ११. योग। जीव द्वार में चार भंगों के रूप में पापकर्म बंध का निरूपण है, यथा–(१) किसी जीव ने पापकर्म बांधा था, बाँधता है और बाँधेगा, (२) किसी जीव ने पापकर्म बांधा था, बाँधता है और नहीं बांधेगा, (३) किसी जीव ने पापकर्म बाँधा था, नहीं बांधता है और बांधेगा, (४) किसी जीव ने पापकर्म बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा। इसी प्रकार के चार भंगों के आधार पर लेश्या आदि शेष दस द्वारों का चौबीस दण्डकों में विस्तृत वर्णन किया गया है। वर्णन में अनन्तरोपपन्नक. परम्परोपपन्नक आदि पारिभाषिक शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। अनन्तर का अर्थ होता है व्यवधान रहित समय। जिस समय में जीव उत्पन्न (जन्म) हुआ है वह समय अनन्तरोपपन्नक समय है। इसके पश्चात् सभी समय परम्परोपपन्नक हैं। इसी प्रकार अनन्तराहारक परम्पराहारक, अनन्तर पर्याप्तक परम्पर पर्याप्तक आदि शब्दों का आशय ग्रहण करना चाहिए। चरिम एवं अचरिम शब्द अंतिम भव तथा अनन्तिम भव के द्योतक हैं।

जीव, लेश्या आदि ग्यारह द्वारों से चौवीस दण्डकों में आठ कर्मों के बंध का निरूपण करना आगम-ग्रंथों की सूक्ष्मता एवं गहनता का संकेत करता है। ऐसे तथ्य थोकडों (स्तोकों) में भी संग्रहीत हैं। जिन्हें विद्याव्यसनी संत कण्ठस्थ रखते हैं। इनका संकलन प्रस्तुत अध्ययन में विस्तृत रूप में है। पाप कर्म करने या न करने के सम्बन्ध में चार भंग हैं यथा–१. किसी जीव ने पापकर्म किया था, करता है और करेगा, २. किसी जीव ने पापकर्म किया था, करता है और नहीं करेगा, ३. किसी जीव ने पापकर्म किया था, नहीं करता है और करेगा, ४. किसी जीव ने पापकर्म किया था, नहीं करता है

और नहीं करेगा। जीव किस गति में पापकर्म का समर्जन (ग्रहण) एवं समाचरण करते हैं इसके नो भंग होते हैं जो वस्तुतः चार गतियों का ही विस्तार है। समसमयोत्पन्न और विषमसमयोत्पन्न की भी चर्चा है। उत्पत्ति की अपेक्षा समान समय को समसमय तथा असमान (भिन्न) समय को विषमसमय कहते हैं।

कर्म सिद्धान्त में बन्ध, वेदन, उदीरण, निर्जरा आदि का महत्वपूर्ण स्थान है। संसार-परिभ्रमण की दृष्टि से बन्ध का सर्वाधिक महत्व है। सामान्यतः बंध एक प्रकार का है किन्तु राग से होने वाले बंध को प्रेयबंध एव द्वेष से होने वाले बंध को द्वेष बंध के रूप में विभक्त कर बंध के दो भेद भी कहे गए हैं। बंध के अन्य प्रसिद्ध दो भेद हैं–१. ईर्यापथिक बंध और २. सांपरायिक बंध। ईर्यापथिक बंध कषाय रहित जीव के होता है। यह योग से ही बंधता है। नैरयिक, तिर्यञ्च और देव इसे नहीं बांधते। मनुष्य पुरुष और मनुष्य स्त्रियां ही इसे बाँधती हैं। वेद की अपेक्षा से कथन किया जाय तो इसे स्त्री, पुरुष एवं नपुंसक नहीं बांधते किन्तु नोस्त्री, नपुरुष और नोनपुंसक बांधते हैं। वेदरहित जीव ही इसे बांधते हैं।

जीव के ईर्यापथिक बन्ध सादि एवं सपर्यवसित होता है-अर्थात् इसके बंधन का कभी (१०वें गुणस्थान के बाद) प्रारम्भ होता है तथा कभी (१४वें गुणस्थान में या ११वें गुणस्थान से उतरने पर) अवसान भी होता है। साम्परायिक बंध सकषायी जीवों के होता है जो नैरयिक से लेकर देवों तक सभी जीवों के होता है। वेदरहित जीव भी इसका बंधन कर सकते हैं। साम्परायिक बंध सादि-सपर्यवसित, अनादि- सपर्यवसित और अनादि-अपर्यवसित होता है किन्तु सादि अपर्यवसित नहीं होता है। ईर्यापथिक एवं साम्परायिक दोनों बंधों में सर्व से सर्व आत्मा का बंध होता है देश से सर्व, सर्व से देश तथा देश से देश का नहीं।

द्रव्य और भाव के रूप में भी बंध के दो भेद होते हैं। उनमें द्रव्यबंध दो प्रकार का है–प्रयोग बंध और विस्रसा बंध। जीव जिसे मन वचन व काययोग से बांधता है वह प्रयोग बंध है तथा जो स्वभावतः बंध जाता है वह विस्रसा बंध है। विस्रसा बंध भी दो प्रकार का है–सादि और अनादि। प्रयोग बंध के दो भेद हैं–१. शिथिल बंधन बंध, २. सघन बंधन बंध । भावबंध दो प्रकार के हैं–१. मूल प्रकृति बंध, २. उत्तर प्रकृति बंध। एक अन्य मान्यता के अनुसार राग द्वेषादि को भाव बंध एवं कर्मपुद्गलों का आत्मा से चिपकने को द्रव्य बंध कहा गया है।

एक अन्य दृष्टि से बंध के तीन भेद हैं यथा–१. जीव प्रयोग बंध, २. अनन्तर बंध और, ३. परम्पर बंध। नैरयिक से वैमानिक तक के दण्डकों में इन तीनों प्रकार का बंध होता है। जीव के मन वचन काय रूपी योग के प्रयोग से जो बंध होता है वह जीव प्रयोग बंध है। बंध का अव्यवहित समय हो तो उसे अनन्तर बंध कहते हैं, बंधे हुए एक से अधिक समय निकल गया हो उसे परम्पर बंध कहते हैं।

बंध के चार भेद प्रसिद्ध हैं–१. प्रकृति बंध, २. स्थिति बंध, ३. अनुभाव (अनुभाग) बंध, ४. प्रदेश बंध। बद्ध कर्म पुद्गलों का स्वभाव प्रकृति बंध है, उनकी ठहरने की अवधि स्थिति बंध है,-फलदान शक्ति अनुभाव बंध है तथा कर्म पुद्गलों का संचय प्रदेश बंध है। बंध कर्मों का होता है इसलिए बंध को कर्म भी कह दिया जाता है। अतः पूर्व में कर्म के भी ये चारों भेद प्रतिपादित हैं। यही नहीं उपक्रम चार प्रकार के होते हैं–१. बंधनोपक्रम, २. उदीरणोपक्रम, ३. उपशमनोपक्रम और ४. विपरिणामोपक्रम। इनमें बंधनोपक्रम के तो प्रकृति, स्थिति, अनुभाव एवं प्रदेश ये चार भेद हैं ही किन्तु उदीरणोपक्रम के भी ये ही चार भेद हैं, उपशमनोपक्रम के भी ये ही चार भेद हैं तथा विपरिणामोपक्रम के भी ये ही चार भेद हैं। संक्रम एक करण है जिसमें बद्ध प्रकृति का बध्यमान प्रकृति में उद्वर्तन या अपवर्तन होता है। वह संक्रम भी चार प्रकार का है–प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश। निधत्त और निकाचित के भी ये ही चार भेद हैं–१. प्रकृति, २. स्थिति, ३. अनुभाग और ४. प्रदेश।

विभिन्न कर्म प्रकृतियों का बंध करता हुआ जीव कुल कितनी कर्म प्रकृतियों का बंध करता है, उनका परस्पर क्या सम्बन्ध है इसकी प्रस्तुत अध्ययन में विस्तृत चर्चा है। यथा–ज्ञानावरणीय कर्म को बांधता हुआ जीव सात, आठ या छह कर्म प्रकृतियों का बंधक होता है। दर्शनावरणीय को बांधते हुए भी सात, आठ या छह कर्म प्रकृतियों का बंध करता है। वेदनीय कर्म को बांधता हुआ जीव सात, आठ, छह या एक कर्म प्रकृति का बंध करता है। मोहनीय कर्म को बांधता हुआ जीव सात, आठ, छह कर्म प्रकृतियों का बंध करता है। आयु कर्म को बांधता हुआ जीव नियम से आठ कर्म प्रकृतियों को बांधता है। अन्तराय, नाम और गोत्र को बांधता हुआ जीव सात, आठ या छह कर्म प्रकृतियों को बांधता है। चौबीस दण्डकों में इन कर्म प्रकृतियों के बन्ध में क्या अन्तर रहता है इसका भी यहाँ निरूपण है।

कुछ रुचिकर प्रश्नों का समाधान भी है यथा–जैसे छद्मस्थ हंसता है तथा उत्सुक होता है वैसे क्या केवली मनुष्य भी हंसता है और उत्सुक होता है ? इसका समाधान करते हुए कहा गया है कि केवली न तो हंसता है और न उत्सुक होता है क्योंकि जीव चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से हंसते और उत्सुक होते हैं। केवली चारित्रमोहनीय कर्म का क्षय कर चुका होता है। यहाँ हंसना हास्य कर्म का एवं उत्सुक होना रति कर्म का द्योतक लगता है। विविध अपेक्षाओं से अष्टविध कर्मों के बंध का विवेचन भी महत्वपूर्ण है। स्त्री, पुरुष नपुंसक की अपेक्षा, संयत असंयत की अपेक्षा, सम्यग्दृष्टि आदि की अपेक्षा, संज्ञी असंज्ञी की अपेक्षा, भवसिद्धिक आदि की अपेक्षा, चक्षुदर्शनी आदि की अपेक्षा, पर्याप्त अपर्याप्तादि की अपेक्षा, भाषक अभाषक की अपेक्षा, परित्त अपरित्त की अपेक्षा, ज्ञानी अज्ञानी की अपेक्षा, मनोयोगी आदि की अपेक्षा, साकार, अनाकारोपयुक्त की अपेक्षा, आहारक अनाहारक की अपेक्षा, सूक्ष्म बादर की अपेक्षा और चारित्र, अचारित्र की अपेक्षा से आठ कर्म प्रकृतियों के बंध का निरूपण है। प्राणातिपात से विरत जीव सात, आठ, छह और एक कर्मप्रकृतियों को बांधता है तथा कभी वह अबन्धक (बंध रहित) भी होता है। इसके २७ भंग बनते हैं। मृषावादविरत यावत् मिथ्यादर्शनशल्य विरत जीव के सात, आठ, छह या एक प्रकृति का बंध होता है तथा कभी वह जीव अबंधक भी होता है।

ज्ञानावरण आदि कर्मों का वेदन करता हुआ जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का बंध करते हैं, इसका अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि ज्ञानावरणीय कर्म का वेदन करता हुआ जीव सात, आठ, छह या एक कर्मप्रकृति का बंध करता है। दर्शनावरणीय एवं अन्तराय कर्म का वेदन करने वाले के भी इसी प्रकार बंध होता है। वेदनीय कर्म का वेदन करते हुए जीव के भी सात, आठ, छह या एक का बंध होता है किन्तु वह कदाचित् अबंधक भी होता है। आयु, नाम और गोत्र कर्म का वेदन करते हुए जीव के भी वेदनीय की भांति बंध या अबंध होता है।

अष्टविध कर्मों का बंध मूलतः दो कारणों से होता है–१. राग से और २. द्वेष से। इन दोनों में चतुर्विध कषाय का समावेश हो जाता है। राग को माया और लोभ के रूप में दो प्रकार का कहा गया है तथा द्वेष को क्रोध और मान के भेद से दो प्रकार का माना गया है।

ज्ञानावरणादि का बंध करता हुआ जीव कितनी प्रकृतियों का वेदन करता है, इस पर आगम में विचार किया गया है। उसके अनुसार वेदनीय कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों का बंध करता हुआ जीव नियमतः आठ कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है, किन्तु वेदनीय कर्म को बांधता हुआ जीव सात, आठ या चार कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय का वेदन करने वाला जीव आठ या सात (मोहनीय को छोड़कर) कर्म प्रकृतियों का वेदन करता है। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र का वेदन करता हुआ जीव सात, आठ या चार प्रकृतियों का वेदन करता है। केवलज्ञान, केवलदर्शन के धारक अर्हत् जिन केवली चार कर्मांशों का वेदन करते हैं–१. वेदनीय, २. आयु, ३. नाम और ४. गोत्र का।

एकेन्द्रिय जीवों में कर्म प्रकृतियों के स्वामित्व, बंध और वेदन का सूक्ष्म कथन भी निरूपित है। इसमें कर्मप्रकृतियों के वेदन का निरूपण करते हुए प्रसिद्ध ८ कर्मप्रकृतियों में १. श्रोत्रेन्द्रियावरण, २. चक्षुरिन्द्रियावरण, ३. घ्राणेन्द्रियावरण, ४. जिह्वेन्द्रियावरण, ५. स्त्रीवेदावरण और ६. पुरुषवेदावरण को मिलाकर १४ कर्मप्रकृतियों को उल्लेख किया गया है।

कांक्षामोहनीय की चर्चा मात्र व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र में है। उत्तरवर्ती कर्मग्रंथों में इसकी चर्चा नहीं है। इसी प्रकार सम्पूर्ण दिगम्बर साहित्य में कांक्षामोहनीय का कोई उल्लेख नहीं है। इस दृष्टि से आगम में निरूपित कांक्षामोहनीय की चर्चा महत्वपूर्ण है। कांक्षामोहनीय कर्म एक प्रकार का दर्शन मोहनीय कर्म है जो शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, भेदसामयन्ति और कलुष सामयन्ति से युक्त होता है। कांक्षामोहनीय का बंध योग और प्रमाद से होता है, कषाय की उसमें मुख्यता नहीं है। सभी चौबीस दण्डकों में कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन होता है। गौतम स्वामी ने भगवान् से प्रश्न किया कि पृथ्वीकायिक जीव कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन किस प्रकार करते हैं? भगवान् ने उत्तर दिया–गौतम! उन जीवों को ऐसा तर्क, संज्ञा, प्रज्ञा, मन या वचन नहीं होता कि हम कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन करते हैं किन्तु वे उसका वेदन अवश्य करते हैं। यह सत्य है, निःशंक है तथा जिनेन्द्रों द्वारा प्ररूपित है। श्रमण निर्ग्रन्थ भी कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन करते हैं। वे अनेक कारणों से यथा–ज्ञानान्तर, दर्शनान्तर, चारित्रान्तर, लिंगान्तर, प्रवचनान्तर, प्रावचनिकान्तर, कल्पान्तर, मार्गान्तर, मतान्तर, भंगान्तर, नयान्तर, नियमान्तर और प्रमाणान्तरों के द्वारा शंकित, कांक्षित, विचिकित्सित भेदसमापन्न और कलुषसमापन्न होकर कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन करते हैं। जीव स्वयं ही कांक्षामोहनीय कर्म का उपार्जन करते हैं, चय करते हैं, उपचय करते हैं, उदीरणा करते हैं और निर्जरा करते हैं।

विभिन्न कर्म प्रकृतियों के बंध के विशेष कारण भी होते हैं, यथा–सातावेदनीय कर्म का बंध प्राणानुकम्पा से, भूतानुकम्पा से, जीवानुकम्पा से, सत्वानुकम्पा से, बहुत से प्राण यावत् सत्व को दुःख न देने से, शोक नहीं करने से, विलाप न करने से, पीड़ा न देने से और परिताप न देने से करता है। इसके विपरीत आचरण से असातावेदनीय कर्म का बंध होता है। हमें ज्ञान कठिनाई से क्यों होता है, एतदर्थ दुर्लभ बोधि वाले कर्मबंध के हेतुओं का निर्देश है। वे हेतु हैं–अर्हन्तों का अवर्णवाद (निन्दापरक कथन) करना, अर्हत् प्रज्ञप्त धर्म का अवर्णवाद करना, आचार्य, उपाध्याय का अवर्णवाद करना, चतुर्विध संघ का अवर्णवाद करना, तप और ब्रह्मचर्य के विपाक से दिव्य गति को प्राप्त करने वाले देवों का अवर्णवाद करना। इसके विपरीत आचरण से सुलभ बोधि कर्म का बंध होता है। इसी प्रकार आयु कर्म चार प्रकार का है और उनके बंध के हेतु भिन्न-भिन्न हैं। नरकायु का बंध महारम्भ, महापरिग्रह, पंचेन्द्रियवध और मांस भक्षण से होता है। तिर्यञ्चायु का बंध माया, निकृत (ठगाई) असत्यवचन और कूट तोल माप से होता है। मनुष्यायु का बंध प्रकृति भद्रता, प्रकृति विनीतता, सरल हृदयता और अमत्सरता से तथा देवायु का बंध सराग संयम, संयमासंयम, बाल तप और अकाम निर्जरा से होता है।

आयु दो प्रकार की होती है–अद्धायु और भवायु। अद्धायु भवान्तरगामिनी होती है, भवायु उसी भव की आयु होती है। अद्धायु दो प्रकार के जीवों की होती है–मनुष्यों की और तिर्यक् पंचेन्द्रियों की। भवायु भी दो प्रकार के जीवों की होती है–देवों की और नैरयिकों की। देव और नैरयिक पूर्णायु का पालन करते हैं जबकि मनुष्य और तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के अकालमरण भी संभव है। प्राणियों की हिंसा करने, असत्य भाषण करने, तथारूप श्रमण ब्राह्मण को अप्रासुक अशन पानादि से प्रतिलाभित करने से जीव अल्पायु का बंध करता है किन्तु इन्हीं हेतुओं से वह अशुभ दीर्घायु का बंध करता है। इनके विपरीत आचरण से वह शुभ दीर्घायु एवं अशुभ अल्पायु का बंध करता है। आयु परिणाम गति, बन्धक स्थिति आदि के भेद से नौ प्रकार का कहा गया है। जाति नाम-निधत्तायु, गतिनामनिधत्तायु, स्थितिनामनिधत्तायु आदि के भेद से आयु बंध छह प्रकार का है। नैरयिक से लेकर वैमानिक देवों तक छह प्रकार का आयुबंध प्रतिपादित है। नैरयिक एवं देव पर-भव की आयु का बंध नियमतः छह मास आयु शेष रहने पर करते हैं।

पृथ्वीकायिक से विकलेन्द्रिय जीव दो प्रकार के हैं–१. सोपक्रम आयु वाले, २. निरुपक्रम आयु वाले। निरुपम आयु वाले नियमतः आयुष्य का तीसरा भाग शेष रहने पर पर-भव की आयु का बंध करते हैं तथा सोपक्रम आयु वाले कदाचित् तीसरे भाग में परभव की आयु का बंध करते हैं, कदाचित् आयु के तीसरे भाग का तीसरा भाग शेष रहने पर पर-भव की आयु का बंध करते हैं। तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय और मनुष्य दो प्रकार के होते हैं–

संख्यातवर्षायुष्क और असंख्यातवर्षायुष्क। इनमें असंख्यातवर्षायुष्क जीव छह मास आयु शेष रहने पर परभव की आयु का बंध करते हैं तथा वर्ष की आयु वाले जीव दो प्रकार के हैं–१. सोपक्रम आयु वाले और २. निरुपक्रम आयु वाले। इनमें आयुबंध पृथ्वीकाय के सदृश होता है। के सम्बन्ध में यह स्पष्ट संकेत है कि एक जीव एक समय में एक आयु का बंध करता है, इस भव की या परभव की आयु का।

असंज्ञी जीव की दृष्टि से चारों आयु असंज्ञी के भी हो सकती हैं। इनमें देव असंज्ञी आयु सबसे अल्प हैं, नरक असंज्ञी आयु सर्वाधिक है एवं मनुष्य में अकाल मृत्यु संभव है एतदर्थ आयुक्षय के सात कारण हैं–१. रागादि की तीव्रता, २. निमित्त–शस्त्रादि का प्रयोग, ३. अ न्यूनाधिकता, ४. वेदना की तीव्रता, ५. पराघात चोट, ६. स्पर्श सांप आदि का विद्युत का और ७. आनपान निरोध। बंधे हुए कर्म जीव के सा समय तक टिकते हैं उसे उनका स्थितिकाल कहते हैं। बद्ध कर्म का उदयरूप या उदीरण रूप प्रवर्तन जिस काल में नहीं होता उसे अबाधा या अब कहते हैं। कर्मों के उदयाभिमुख होने का काल निषेक काल है। अबाधा काल सामान्यतया कर्म के उत्कृष्ट स्थिति काल के अनुपात में होता है नियम है एक कोटाकोटि स्थिति की उत्कृष्ट अबाधा एक सौ वर्ष। प्रत्येक बद्ध कर्म का स्थितिकाल भिन्न-भिन्न होता है अतः उनका अबाध भिन्न-भिन्न होता है। अबाधा काल से न्यून कर्म निषेक काल होता है। इन सबका प्रत्येक कर्म प्रकृति में निरूपण इस अध्ययन में हुआ है।

वेदन कर्मोदय का द्योतक है। प्रत्येक कर्म का वेदन भिन्न-भिन्न होता है। क्योंकि उनका अनुभाव अर्थात् फल भिन्न-भिन्न होता है। जीव के यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त ज्ञानावरणीय कर्म का अनुभाव श्रोत्रावरण आदि के भेद से दस प्रकार का, दर्शनावरणीय कर्म का अनुभा के भेद से नौ प्रकार का, सातावेदनीय कर्म का अनुभाव मनोज्ञ शब्द आदि के भेद से आठ प्रकार का होता है। अमनोज्ञ शब्दादि के भेद से असात का अनुभाव भी आठ प्रकार का होता है। जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त मोहनीय कर्म का अनुभाव सम्यक्त्ववेदनीय आ से पांच प्रकार का, आयु कर्म का अनुभाव नरकायु आदि के भेद से चार प्रकार का, शुभ नाम कर्म का अनुभाव इष्ट शब्द इष्टरूप यावत् म के भेद से १४ प्रकार का, इसके विपरीत अशुभ नाम कर्म का अनुभाव अनिष्ट शब्द यावत् अकान्त स्वर के भेद से १४ प्रकार का होता है, का अनुभाव जाति, कुल आदि के वैशिष्ट्य से आठ प्रकार का तथा इनकी हीनता से नीचगोत्र का अनुभाव भी आठ प्रकार का होता है। अन्त के जो दानान्तरायादि पांच भेद हैं वे ही उसके अनुभाव हैं।

इस अध्ययन के अन्त में कर्म सिद्धान्त से सम्बद्ध विविध तथ्यों का संकलन है, यथा–ज्ञानावरण आदि कर्मों के अविभाग प्रतिच्छेद व कर्मों के प्रदेशाग्र व वर्णादि का प्ररूपण, कर्मोपचय एवं सादि सान्तता का कथन, महाकर्म अल्पकर्म का निरूपण आदि। कर्मपुद्गल का नहीं छे अंतिम खण्ड अविभाग प्रतिच्छेद होता है। एक समय में बंधने वाले समस्त कर्मों का प्रदेशाग्र अनन्त होता है। ज्ञानावरणीय से अन्तराय तक पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और चार स्पर्श वाले होते हैं। जीवों के कर्मों का उपचय मन वचन व काया के प्रयोग से होता है, अपने आप नहीं एवं विकलेन्द्रियों में मन प्रयोग नहीं होता। कर्मोपचय सादि सान्त, अनादि सान्त और अनादि अनन्त रूप होता है। किन्तु सादि अनन्त नहीं होता। और विकलेन्द्रियों में न महाकर्म होता है, न महाक्रिया, न महाश्रव और न ही महावेदना। शेष जीव दो प्रकार के होते हैं–१. मायी मिथ्यादृष्टि और २. अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक। इनमें जो मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक हैं वे महाकर्म वाले, महाक्रिया वाले, महाश्रव वाले और महावेदन तथा जो अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक हैं वे अल्पकर्म, अल्पक्रिया, अल्पाश्रव और अल्पवेदना वाले हैं। साधना की दृष्टि से महाक्रिया, महाकम का महत्व है। जैनदर्शन में एक यह मान्यता चल पड़ी है कि बद्ध पाप कर्मों का वेदन किए बिना मोक्ष नहीं होता। इसका समाधान आगम में कि है उसके अनुसार कर्म दो प्रकार के हैं–प्रदेश कर्म और अनुभाग कर्म। इनमें प्रदेश कर्म अवश्य भोगना पड़ता है। किन्तु अनुभाग कर्म का वेदन अ नहीं है। जीव किसी अनुभाग कर्म का वेदन करता है, किसी का नहीं। क्योंकि वह संक्रमण, स्थितिघात, रसघात आदि के द्वारा उन्हें परिव सकता है एवं निर्जरा भी कर सकता है।

३१. कम्मऽज्झयणं

सूत्र

१. कम्मज्झयणस्स उक्खेवो–

अंट्ठ कम्माइं वोच्छामि, आणुपुव्विं जहक्कमं।
जेहिं बद्धो अयं जीवो, संसारे परिवत्तई ॥

–उत्त. अ. ३३, गा. १,

२. अज्झयणस्स अत्थाहिगारा–

१. कति पगडी,
२. कह बंधति,
३. कतिहि व ठाणेहिं बंधए जीवो।
४. कति वेदेइ य पगडी,
५. अणुभावो कतिविहो कस्स ॥[1]

–पण्ण. प. २३, उ. १, सु. १६६४

३. कम्माणं पगारा–

दुविहे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा–

१. पदेसकम्मे चेव, २. अणुभावकम्मे चेव।

–ठाणं. अ. २, उ. ३, सु. ७९(२२)

चउव्विहे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा–

१. पगडीकम्मे,
२. ठिईकम्मे,
३. अणुभावकम्मे,
४. पदेसकम्मे।

–ठाणं अ. ४, उ. ४, सु. ३६२

४. सुहासुह कम्मविवाग चउभंगी–

चउव्विहे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सुभे नाममेगे सुभे,
२. सुभे नाममेगे असुभे,
३. असुभे नाममेगे सुभे,
४. असुभे नाममेगे असुभे।

चउव्विहे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सुभे नाममेगे सुभविवागे,
२. सुभे नाममेगे असुभविवागे,
३. असुभे नाममेगे सुभविवागे,
४. असुभे नाममेगे असुभविवागे,।[2]

–ठाणं अ. ४, उ. ४, सु. ३६२

५. कम्माणं अगुरुयलहुयत्त परूवणं–

प. कम्माणि णं भंते ! किं गुरुयाइं, लहुयाइं, गुरुयलहुयाइं, अगुरुयलहुयाइं?

३१. कर्म अध्ययन

सूत्र

१. कर्म अध्ययन की उत्थानिका–

मैं आनुपूर्वी और यथाक्रम से उन आठ प्रकार के कर्मों को कहूँगा, जिन कर्मों से बंधा हुआ यह जीव इस संसार में परावर्तन (परिभ्रमण) करता रहता है।

२. अध्ययन के अर्थाधिकार–

१. (कर्म की) प्रकृतियां कितनी है?
२. किस प्रकार बंधती है?
३. जीव कितने स्थानों से (कर्म) बांधता है?
४. कितनी (कर्म) प्रकृतियों का वेदन करता है?
५. किस (कर्म) का अनुभाव (अनुभाग) कितने प्रकार का होता है?

३. कर्मों के प्रकार–

कर्म दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. प्रदेश कर्म, २. अनुभावकर्म।

कर्म चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. प्रकृति कर्म–कर्म पुद्‌गलों का स्वभाव,
२. स्थिति-कर्म–कर्म पुद्‌गलों की काल-मर्यादा,
३. अनुभाव कर्म–कर्म पुद्‌गलों का सामर्थ्य,
४. प्रदेश कर्म–कर्म पुद्‌गलों का संचय।

४. शुभाशुभ कर्म विपाक चौभंगी–

कर्म चार प्रकार का गया है, यथा–

१. कुछ कर्म शुभ (पुण्य प्रकृति वाले) होते हैं और उनका अनुवन्ध भी शुभ होता है,
२. कुछ कर्म शुभ होते हैं पर उनका अनुवन्ध अशुभ होता है,
३. कुछ कर्म अशुभ होते हैं पर उनका अनुवन्ध शुभ होता है,
४. कुछ कर्म अशुभ होते हैं और उनका अनुवन्ध भी अशुभ होता है।

कर्म चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. कुछ कर्म शुभ होते हैं और उनका विपाक भी शुभ होता है,
२. कुछ कर्म शुभ होते हैं, पर उनका विपाक अशुभ होता है,
३. कुछ कर्म अशुभ होते हैं, पर उनका विपाक शुभ होता है,
४. कुछ कर्म अशुभ होते हैं और उनका विपाक भी अशुभ होता है।

५. कर्मों का अगुरुलघुत्व प्ररूपण–

प्र. भंते ! कर्म क्या गुरु है, लघु है, गुरुलघु है या अगुरुलघु है?

---

१. विया. स. १, उ. ४, सु. १.

२. सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णा फला भवंति–उव. सु. ५६

उ. गोयमा ! नो गरुयाइं, नो लहुयाइं, नो गरुयलहुयाइं, अगरुयलहुयाइं।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?

उ. गोयमा ! अगुरुयलहुय दव्वाइं पडुच्च अगुरुयलहुयाइं।

–विया. स. १, उ. ९, सु. ९

उ. गौतम ! वह गुरु नहीं है, लघु नहीं है, गुरुलघु नहीं है किन्तु अगुरुलघु है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ?

उ. गौतम ! अगुरुलघुद्रव्यों की अपेक्षा अगुरुलघु है।

६. जीवाणं विभत्तिभावं परिणमन हेउ परूवणं–

प. कम्मओ णं भंते ! किं जीवे विभत्तिभावं परिणमइ, नो अकम्मओ विभत्तिभावं परिणमइ ?

कम्मओ णं जए किं विभत्तिभावं परिणमइ, नो अकम्मओ विभत्तिभावं परिणमइ ?

उ. हंता, गोयमा ! कम्मओ णं जीवे जए विभत्तिभावं परिणमइ, नो अकम्मओ विभत्तिभावं परिणमइ।

–विया. स. १२, उ. ५, सु. ३७

६. जीवों का विभक्तिभाव परिणमन के हेतु का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या जीव कर्म से (मनुष्य-तिर्यञ्च आदि) विविध रूपों में परिणत होता है या कर्म के विना परिणत होता है ?

क्या जगत् (जीव समूह) कर्म से विविध रूपों में परिणत होता है या कर्म के विना परिणत होता है।

उ. हां, गौतम ! कर्म से जीव और जगत् विविध रूपों में परिणत होता है, किन्तु कर्म के विना विविध रूपों में परिणत नहीं होता है।

७. कम्मपयडिमूलभेया–

प. कइ णं भंते ! कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! अट्ठ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. नाणावरणिज्जं, २. दरिसणावरणिज्जं,
३. वेदणिज्जं, ४. मोहणिज्जं,
५. आउयं, ६. णामं,
७. गोयं, ८. अंतराइयं[1]

–पण्ण. प. २३, उ. १, सु. १६६५

७. कर्मप्रकृतियों के मूल भेद–

प्र. भंते ! कर्मप्रकृतियां कितनी कही गई हैं ?

उ. गौतम ! (मूल) कर्म प्रकृतियां आठ कही गई हैं, यथा–

१. ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय,
३. वेदनीय, ४. मोहनीय,
५. आयु, ६. नाम,
७. गोत्र, ८. अन्तराय,

८. चउवीसदंडएसु अट्ठण्हं कम्म पगडीणं परूवणं–

प. दं. १. णेरइयाणं भंते ! कइ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! अट्ठ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ, तंजहा–

१. नाणावरणिज्जं जाव ८. अंतराइयं।

दं. २-२४ एवं जाव वेमाणियाणं।[2]

–पण्ण. प. २३, उ. १, सु. १६६६

८. चौबीस दंडकों में आठ कर्म प्रकृतियों का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिकों में कितनी कर्मप्रकृतियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! आठ कर्म प्रकृतियां कही गई हैं, यथा–

१. ज्ञानावरणीय यावत् ८. अंतराय।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों तक आठ कर्म प्रकृतियां हैं।

९. अट्ठकम्माणं परप्पर सहभावो–

प. जस्स णं भंते ! नाणावरणिज्जं तस्स दरिसणावरणिज्जं, जस्स दंसणावरणिज्जं तस्स नाणावरणिज्जं ?

उ. गोयमा ! जस्स णं नाणावरणिज्जं तस्स दंसणावरणिज्जं नियमा अत्थि, जस्स णं दरिसणावरणिज्जं तस्स वि नाणावरणिज्जं नियमा अत्थि।

प. जस्स णं भंते ! नाणावरणिज्जं तस्स वेयणिज्जं, जस्स वेयणिज्जं तस्स नाणावरणिज्जं ?

९. आठ कर्मों का परस्पर सहभाव–

प्र. भंते ! जिस जीव के ज्ञानावरणीय कर्म है, क्या उसके दर्शनावरणीय कर्म भी है और जिस जीव के दर्शनावरणीय कर्म है, क्या उसके ज्ञानावरणीय कर्म भी है ?

उ. हाँ, गौतम ! जिस जीव के ज्ञानावरणीय कर्म है, उसके नियमतः दर्शनावरणीय कर्म है और जिस जीव के दर्शनावरणीय कर्म है, उसके नियमतः ज्ञानावरणीय कर्म भी है।

प्र. भंते ! जिस जीव के ज्ञानावरणीय कर्म है, क्या उसके वेदनीय कर्म भी है और जिस जीव के वेदनीय कर्म है, क्या उसके ज्ञानावरणीय कर्म भी है ?

---

१. (क) पण्ण. प. २३, उ. २, सु. १६८७
(ख) पण्ण. प. २४, सु. १७५४, (१)
(ग) पण्ण. प. २५, सु. १७६९, (१)
(घ) पण्ण. प. २६, सु. १७७५, (१)
(ङ) पण्ण. प. २७, सु. १७८७, (१)
(च) उत्त. अ. ३३, गा. २-३
(छ) विया. स. ६, उ. ३, सु. १०
(ज) विया. स. ८, उ. १०, सु. ३१
(झ) विया. स. ८, उ. ८, सु. २३

२. (क) विया. स. ८, उ. १०, सु. ३२
(ख) विया. स. १६, उ. ३, सु. २-३
(ग) पण्ण. प. २४, सु. १७५४, (२)
(घ) पण्ण. प. २५, सु. १७६९, (२)
(ङ) पण्ण. प. २६, सु. १७७५, (२)
(च) पण्ण. प. २७, सु. १७८७, (२)

उ. गोयमा ! जस्स नाणावरणिज्जं तस्स वेयणिज्जं नियमा अत्थि, जस्स पुण वेयणिज्जं तस्स नाणावरणिज्जं सिय अत्थि, सिय नत्थि।

प. जस्स णं भंते ! नाणावरणिज्जं तस्स मोहणिज्जं, जस्स मोहणिज्जं तस्स नाणावरणिज्जं ?

उ. गोयमा ! जस्स नाणावरणिज्जं तस्स मोहणिज्जं सिय अत्थि, सिय नत्थि, जस्स पुण मोहणिज्जं तस्स नाणावरणिज्जं नियमा अत्थि।

प. जस्स णं भंते ! नाणावरणिज्जं तस्स आउयं, जस्स आउयं तस्स नाणावरणिज्जं ?

उ. गोयमा ! जहा वेयणिज्जेणं समं भणियं,

तहा आउएण वि समं भाणियव्वं।

एवं नामेण वि, एवं गोएण वि समं।

अंतराइएण वि जहा दरिसणावरणिज्जेण समं तहेव नियमा परोप्परं भाणियव्वाणि।

प. जस्स णं भंते ! दरिसणावरणिज्जं तस्स वेयणिज्जं, जस्स वेयणिज्जं तस्स दरिसणावरणिज्जं ?

उ. गोयमा ! जहा नाणावरणिज्जं उवरिमेहिं सत्तहिं कम्मेहिं समं भणियं।

तहा दरिसणावरणिज्जं पि उवरिमेहिं छहिं कम्मेहिं समं भाणियव्वं जाव अंतराइएणं।

प. जस्स णं भंते ! वेयणिज्जं तस्स मोहणिज्जं, जस्स मोहणिज्जं तस्स वेयणिज्जं ?

उ. गोयमा ! जस्स वेयणिज्जं तस्स मोहणिज्जं सिय अत्थि, सिय नत्थि, जस्स पुण मोहणिज्जं तस्स वेयणिज्जं नियमा अत्थि।

प. जस्स णं भंते ! वेयणिज्जं तस्स आउयं, जस्स आउयं तस्स वेयणिज्जं ?

उ. गोयमा ! एवं एयाणि परोप्परं नियमा।

जहा आउएण समं एवं नामेण वि, गोएण वि समं भाणियव्वं।

प. जस्स णं भंते ! वेयणिज्जं तस्स अंतराइयं, जस्स अंतराइयं तस्स वेयणिज्जं ?

उ. गोयमा ! जस्स वेयणिज्जं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि सिय नत्थि,

उ. गौतम ! जिस जीव के ज्ञानावरणीय कर्म है, उसके नियमतः वेदनीय कर्म है, किन्तु जिस जीव के वेदनीय कर्म है, उसके ज्ञानावरणीय कर्म कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं होता है।

प्र. भंते ! जिसके ज्ञानावरणीय कर्म है, क्या उसके मोहनीय कर्म है और जिसके मोहनीय कर्म है, क्या उसके ज्ञानावरणीय कर्म है ?

उ. गौतम ! जिसके ज्ञानावरणीय कर्म है, उसके मोहनीय कर्म कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता है, किन्तु जिसके मोहनीय कर्म है, उसके ज्ञानावरणीय कर्म नियमतः होता है।

प्र. भंते ! जिसके ज्ञानावरणीय कर्म है, क्या उसके आयुकर्म होता है और जिसके आयुकर्म है, क्या उसके ज्ञानावरणीय कर्म होता है ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार वेदनीय कर्म के साथ (ज्ञानावरणीय के विषय में) कहा गया है,

उसी प्रकार आयुकर्म के साथ ज्ञानावरणीय के विषय में भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार नामकर्म और गोत्रकर्म के साथ (ज्ञानावरणीय के विषय में) भी कहना चाहिए।

जिस प्रकार दर्शनावरणीय के साथ (ज्ञानावरणीय कर्म के विषय में) कहा, उसी प्रकार अन्तराय कर्म के साथ (ज्ञानावरणीय के विषय में) भी नियमतः परस्पर सहभाव कहना चाहिए।

प्र. भंते ! जिस जीव के दर्शनावरणीय कर्म है, क्या उसके वेदनीय कर्म होता है और जिसके वेदनीय कर्म है, क्या उसके दर्शनावरणीय कर्म होता है ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म का कथन ऊपर के सात कर्मों के साथ किया गया है।

उसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म का भी ऊपर के छह कर्मों के साथ अन्तराय कर्म तक कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! जिस जीव के वेदनीयकर्म है, क्या उसके मोहनीयकर्म है और जिस जीव के मोहनीय कर्म है, क्या उसके वेदनीय कर्म होता है ?

उ. गौतम ! जिस जीव के वेदनीयकर्म है, उसके मोहनीय कर्म कदाचित् होता है, कदाचित् नहीं भी होता है, किन्तु जिस जीव के मोहनीयकर्म है, उसके वेदनीय कर्म नियमतः होता है।

प्र. भंते ! जिस जीव के वेदनीयकर्म है, क्या उसके आयुकर्म है और जिसके आयुकर्म है क्या उसके वेदनीयकर्म है ?

उ. गौतम ! ये दोनों कर्म नियमतः परस्पर साथ-साथ होते हैं।

जिस प्रकार आयुकर्म के साथ (वेदनीय कर्म के विषय में) कहा, उसी प्रकार नाम और गोत्रकर्म के साथ भी (वेदनीयकर्म के विषय में) कहना चाहिए।

प्र. भंते ! जिस जीव के वेदनीयकर्म है, क्या उसके अन्तरायकर्म है और जिसके अन्तरायकर्म है, क्या उसके वेदनीयकर्म है ?

उ. गौतम ! जिस जीव के वेदनीयकर्म है, उसके अन्तरायकर्म कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता है,

जस्स पुण अंतराइयं तस्स वेयणिज्जं नियमा अत्थि।

प. जस्स णं भंते ! मोहणिज्जं तस्स आउयं,
जस्स आउयं तस्स मोहणिज्जं ?

उ. गोयमा ! जस्स मोहणिज्जं तस्स आउयं नियमा अत्थि,
जस्स पुण आउयं तस्स पुण मोहणिज्जं सिय अत्थि, सिय नत्थि।
एवं नामं, गोयं, अंतराइयं च भाणियव्वं।

प. जस्स णं भंते ! आउयं तस्स नामं,
जस्स नामं तस्स आउयं ?

उ. गोयमा ! दो वि परोप्परं नियमा।
एवं गोत्तेण वि समं भाणियव्वं।

प. जस्स णं भंते ! आउयं तस्स अंतराइयं,
जस्स अंतराइयं तस्स आउयं ?

उ. गोयमा ! जस्स आउयं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि, सिय नत्थि, जस्स पुण अंतराइयं तस्स आउयं नियमा।

प. जस्स णं भंते ! नामं तस्स गोयं,
जस्स णं गोयं तस्स णं नामं ?

उ. गोयमा ! दो वि एए परोप्परं नियमा।

प. जस्स णं भंते ! नामं तस्स अंतराइयं,
जस्स णं अंतराइयं तस्स णं नामं ?

उ. गोयमा ! जस्स नामं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि सिय नत्थि, जस्स पुण अंतराइयं तस्स नामं नियमा अत्थि।

प. जस्स णं भंते ! गोयं तस्स अंतराइयं,
जस्स अंतराइयं तस्स गोयं ?

उ. गोयमा ! जस्स णं गोयं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि सिय नत्थि, जस्स पुण अंतराइयं तस्स गोयं नियमा अत्थि।

–विया. स. ८, उ. १०, सु. ४२-५८

परन्तु जिसके अन्तरायकर्म होता है उसके वेदनीय कर्म नियमतः होता है।

प्र. भंते ! जिस जीव के मोहनीयकर्म होता है, क्या उसके आयुकर्म होता है और जिसके आयुकर्म होता है, क्या उसके मोहनीयकर्म होता है ?

उ. गौतम ! जिस जीव के मोहनीयकर्म है, उसके आयुकर्म नियमतः होता है, जिसके आयुकर्म है, उसके मोहनीयकर्म कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता है।
इसी प्रकार नाम, गोत्र और अन्तराय कर्म के विषय में भी कहना चाहिए।

प्र. भंते ! जिस जीव के आयुकर्म होता है, क्या उसके नामकर्म होता है और जिसके नामकर्म होता है, क्या उसके आयुकर्म होता है ?

उ. गौतम ! ये दोनों कर्म परस्पर नियमतः होते हैं।
इसी प्रकार गोत्रकर्म के साथ भी आयुकर्म के विषय में कहना चाहिए।

प्र. भंते ! जिस जीव के आयुकर्म होता है, क्या उसके अन्तरायकर्म होता है और जिसके अन्तरायकर्म होता है, क्या उसके आयुकर्म होता है ?

उ. गौतम ! जिसके आयुकर्म होता है, उसके अन्तरायकर्म कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता है, किन्तु जिस जीव के अन्तरायकर्म होता है, उसके आयुकर्म नियमतः होता है।

प्र. भंते ! जिस जीव के नामकर्म होता है, क्या उसके गोत्रकर्म होता है और जिसके गोत्रकर्म होता है क्या उसके नामकर्म होता है ?

उ. गौतम ! ये दोनों कर्म परस्पर नियमतः होते हैं।

प्र. भंते ! जिसके नामकर्म होता है, क्या उसके अन्तरायकर्म होता है और जिसके अन्तरायकर्म होता है क्या उसके नामकर्म होता है ?

उ. गौतम ! जिस जीव के नामकर्म होता है, उसके अन्तराय कर्म होता भी है और नहीं भी होता है, किन्तु जिसके अन्तरायकर्म होता है, उसके नामकर्म नियमतः होता है।

प्र. भंते ! जिसके गोत्रकर्म होता है, क्या उसके अन्तरायकर्म होता है और जिस जीव के अन्तराय कर्म होता है, क्या उसके गोत्रकर्म होता है ?

उ. गौतम ! जिसके गोत्रकर्म है, उसके अन्तरायकर्म होता भी है और नहीं भी होता है, किन्तु जिसके अन्तरायकर्म है उसके गोत्रकर्म नियमतः होता है।

१०. मोहणिज्जकम्मस्स बावन्नं नामधेज्जा–

मोहणिज्जस्स णं कम्मस्स बावण्णं नामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा–

१. कोहे, २. कोवे, ३. रोसे, ४. दोसे, ५. असमा, ६. संजलणे, ७. कलहे, ८. चंडिक्के, ९. भंडणे, १०. विवाए।

११. माणे, १२. मदे, १३. दप्पे, १४. थंभे, १५. अत्तुक्कोसे, १६. गव्वे, १७. परपरिवाए १८. उक्कोसे,

१०. मोहनीय कर्म के बावन नाम–

मोहनीय कर्म के बावन नाम कहे गये हैं, यथा–

१. क्रोध, २. कोप, ३. रोष, ४. द्वेष, ५. अक्षमा, ६. संज्वलन, ७. कलह, ८. चांडिक्य, ९. भंडन, १०. विवाद, (ये दस क्रोधकषाय के नाम हैं)

११. मान, १२. मद, १३. दर्प, १४. स्तम्भ, १५. आत्मोत्कर्ष, १६. गर्व, १७. परपरिवाद, १८. उत्कर्ष,

१९. अवकोसे २०. उण्णए, २१. उण्णामे।

२२. माया, २३. उवही, २४. नियडी, २५. वलए, २६. गहणे, २७. णूमे, २८. कक्के, २९. कुरूवे, ३०. दंभे, ३१. कूडे, ३२. जिम्मे, ३३. किब्बिसिए, ३४. अणायरणया, ३५. गूहणया, ३६. वंचणया, ३७. पलिकुंचणया, ३८. साइजोगे।

३९. लोभे, ४०. इच्छा, ४१. मुच्छा, ४२. कंखा, ४३. गेही, ४४. तिण्हा, ४५. भिज्जा, ४६. अभिज्जा, ४७. कामासा, ४८. भोगासा, ४९. जीवियासा, ५०. मरणासा, ५१. नंदी, ५२. रागे। —सम. ५२, सु. १

१९. अपकर्ष, २०. उन्नत, २१. उन्नाम (ये ग्यारह मान कषाय के नाम हैं)

२२. माया, २३. उपधि, २४. निकृति, २५. वलय, २६. गहन, २७. न्यूम, २८. कल्क, २९. कुरूक, ३०. दम्भ, ३१. कूट, ३२. जिम्ह, ३३. किल्विषिक, ३४. अनाचरणता, ३५. गूहनता, ३६. वंचनता, ३७. परिकुंचनता, ३८. सातियोग, (ये सत्तरह मायाकषाय के नाम हैं)

३९. लोभ, ४०. इच्छा, ४१. मूर्च्छा, ४२. कांक्षा, ४३. गृद्धि, ४४. तृष्णा, ४५. भिध्या, ४६. अभिध्या, ४७. कामाशा, ४८. भोगाशा, ४९. जीविताशा, ५०. मरणाशा, ५१. नन्दी, ५२. राग, (ये चौदह लोभ-कषाय के नाम हैं।)

११. मोहणिज्जकम्मस्स तीसं बंधट्ठाणा—

तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था।

वण्णओ। पुण्णभद्दे नामं चेइए वण्णओ। कोणिय राया धारिणी देवी। सामी समोसढे। परिसा निग्गया। धम्मो कहिओ। परिसा पडिगया।

अज्जो ! त्ति समणे भगवं महावीरे बहवे निग्गंथा य निग्गंथीओ य आमंतेत्ता एवं वयासी

एवं खलु अज्जो! तीसं मोहणिज्जठाणाइं जाइं इमाइं इत्थी वा पुरिसो वा अभिक्खणं अभिक्खणं आयारेमाणे वा समायारेमाणे वा मोहणिज्जत्ताए कम्मं पकरेइ।

तीसं मोहणियठाणा पण्णत्ता, तं जहा—

१. जे यावि तसे पाणे, वारिमज्झे वियाहिया।
उदएणक्कम्म मारेइ, महामोहं पकुव्वइ॥

२. सीसावेढेणं जे केइ, आवेढेइ अभिक्खणं।
तिव्वासुभसमायारे, महामोहं पकुव्वइ॥

३. पाणिणा संपिहित्ताणं सोयमावरिय पाणिणं।
अंतो नदंतं मारेइ महामोहं पकुव्वइ॥

४. जायतेयं समारब्भ वहुं ओरुंभिया जणं।
अंतोधूमेण मारेइ महामोहं पकुव्वइ॥

५. सीसम्मि जे पहणइ उत्तमंगम्मि चेयसा।
विभज्ज मत्थयं फाले महामोहं पकुव्वइ॥

६. पुणो पुणो पणिहीए हणित्ता उवहसे जणं।
फलेणं अदुव दंडेणं महामोहं पकुव्वइ॥

७. गूढायारी निगूहेज्जा मायं मायाए छायए।
असच्चवाई णिण्हाई महामोहं पकुव्वइ॥

११. मोहनीय कर्म के तीस बंध स्थान—

उस काल और उस समय में चम्पा नगरी थी,

(नगरी का वर्णन करना चाहिए) पूर्णभद्र नाम का चैत्य था। वर्णन करना चाहिए। वहाँ कोणिक राजा राज्य करता था, उसके धारणी देवी पटरानी थी। श्रमण भगवान् महावीर वहां पधारे। धर्म श्रवण के लिए परिषद् आई, भगवान् ने धर्म का स्वरूप कहा। धर्म श्रवण कर परिषद् चली गई।

(इसके बाद) श्रमण भगवन् महावीर ने सभी निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थनियों को आमन्त्रित कर इस प्रकार कहा—

हे आर्यो ! जो स्त्री या पुरुष इन तीस मोहनीय स्थानों का सामान्य या विशेष रूप से पुनः-पुनः आचरण व समाचरण करते हैं वे महामोहनीय कर्म का वन्ध करते हैं।

मोहनीय कर्म के तीस स्थान कहे गये हैं, यथा—

१. जो व्यक्ति किसी त्रस प्राणी को पानी में ले जाकर (पैर आदि से आक्रमण कर) पानी में बार-बार डुबो कर उसे मारता है, वह महामोहनीयकर्म का वंध करता है।

२. जो व्यक्ति तीव्र अशुभ समाचरण-पूर्वक किसी त्रस प्राणी को गीले चमड़े की पट्टी से वांध कर मारता है, वह महामोहनीयकर्म का वंध करता है।

३. जो व्यक्ति अपने हाथ से किसी मनुष्य का मुंह वंद कर, उसे कमरे में रोक कर, अन्तर्विलाप करते हुए को मारता है, वह महामोहनीयकर्म का वंध करता है।

४. जो व्यक्ति अनेक जीवों को किसी एक स्थान में अवरुद्ध कर, अग्नि जलाकर उसके धुएं से मारता है, वह महामोहनीयकर्म का वंध करता है।

५. जो व्यक्ति संक्लिष्ट चित्त से किसी प्राणी के सर्वोत्तम अंग (सिर) पर प्रहार कर, उसे खंड-खंड कर फोड़ देता है, वह महामोहनीय कर्म का वंध करता है।

६. जो व्यक्ति बार-बार प्रणिधि से (वेश बदल कर) किसी मनुष्य को निर्जन स्थान में फलक या डंडे से मार कर खुशी मनाता है, वह महामोहनीयकर्म का वंध करता है।

७. जो व्यक्ति गोपनीय आचरण कर उसे छिपाता है, कपट द्वारा माया को ढँकता है, असत्यवादी है, यथार्थ का अपलाप करता है, वह महामोहनीयकर्म का वंध करता है।

जस्स पुण अंतराइयं तस्स वेयणिज्जं नियमा अत्थि।

परन्तु जिसके अन्तरायकर्म होता है उसके वेदनीय कर्म नियमतः होता है।

प. जस्स णं भंते ! मोहणिज्जं तस्स आउयं, जस्स आउयं तस्स मोहणिज्जं ?

उ. गोयमा ! जस्स मोहणिज्जं तस्स आउयं नियमा अत्थि, जस्स पुण आउयं तस्स पुण मोहणिज्जं सिय अत्थि, सिय नत्थि।

एवं नामं, गोयं, अंतराइयं च भाणियव्वं।

प्र. भंते ! जिस जीव के मोहनीयकर्म होता है, क्या उसके आयुकर्म होता है और जिसके आयुकर्म होता है, क्या उसके मोहनीयकर्म होता है ?

उ. गौतम ! जिस जीव के मोहनीयकर्म है, उसके आयुकर्म नियमतः होता है, जिसके आयुकर्म है, उसके मोहनीयकर्म कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता है।

इसी प्रकार नाम, गोत्र और अन्तराय कर्म के विषय में भी कहना चाहिए।

प. जस्स णं भंते ! आउयं तस्स नामं, जस्स नामं तस्स आउयं ?

उ. गोयमा ! दो वि परोप्परं नियमा।

एवं गोत्तेण वि समं भाणियव्वं।

प्र. भंते ! जिस जीव के आयुकर्म होता है, क्या उसके नामकर्म होता है और जिसके नामकर्म होता है, क्या उसके आयुकर्म होता है ?

उ. गौतम ! ये दोनों कर्म परस्पर नियमतः होते हैं।

इसी प्रकार गोत्रकर्म के साथ भी आयुकर्म के विषय में कहना चाहिए।

प. जस्स णं भंते ! आउयं तस्स अंतराइयं, जस्स अंतराइयं तस्स आउयं ?

उ. गोयमा ! जस्स आउयं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि, सिय नत्थि, जस्स पुण अंतराइयं तस्स आउयं नियमा।

प्र. भंते ! जिस जीव के आयुकर्म होता है, क्या उसके अन्तरायकर्म होता है और जिसके अन्तरायकर्म होता है, क्या उसके आयुकर्म होता है ?

उ. गौतम ! जिसके आयुकर्म होता है, उसके अन्तरायकर्म कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता है, किन्तु जिस जीव के अन्तरायकर्म होता है, उसके आयुकर्म नियमतः होता है।

प. जस्स णं भंते ! नामं तस्स गोयं, जस्स णं गोयं तस्स णं नामं ?

उ. गोयमा ! दो वि एए परोप्परं नियमा।

प्र. भंते ! जिस जीव के नामकर्म होता है, क्या उसके गोत्रकर्म होता है और जिसके गोत्रकर्म होता है क्या उसके नामकर्म होता है ?

उ. गौतम ! ये दोनों कर्म परस्पर नियमतः होते हैं।

प. जस्स णं भंते ! नामं तस्स अंतराइयं, जस्स णं अंतराइयं तस्स णं नामं ?

उ. गोयमा ! जस्स नामं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि सिय नत्थि, जस्स पुण अंतराइयं तस्स नामं नियमा अत्थि।

प्र. भंते ! जिसके नामकर्म होता है, क्या उसके अन्तरायकर्म होता है और जिसके अन्तरायकर्म होता है क्या उसके नामकर्म होता है ?

उ. गौतम ! जिस जीव के नामकर्म होता है, उसके अन्तराय कर्म होता भी है और नहीं भी होता है, किन्तु जिसके अन्तरायकर्म होता है, उसके नामकर्म नियमतः होता है।

प. जस्स णं भंते ! गोयं तस्स अंतराइयं, जस्स अंतराइयं तस्स गोयं ?

उ. गोयमा ! जस्स णं गोयं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि सिय नत्थि, जस्स पुण अंतराइयं तस्स गोयं नियमा अत्थि।

—विया. स. ८, उ. १०, सु. ४२-५८

प्र. भंते ! जिसके गोत्रकर्म होता है, क्या उसके अन्तरायकर्म होता है और जिस जीव के अन्तराय कर्म होता है, क्या उसके गोत्रकर्म होता है ?

उ. गौतम ! जिसके गोत्रकर्म है, उसके अन्तरायकर्म होता भी है और नहीं भी होता है, किन्तु जिसके अन्तरायकर्म है उसके गोत्रकर्म नियमतः होता है।

१०. मोहणिज्जकम्मस्स बावन्नं नामधेज्जा—

मोहणिज्जस्स णं कम्मस्स बावण्णं नामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—

१. कोहे, २. कोवे, ३. रोसे, ४. दोसे, ५. असमा, ६. संजलणे, ७. कलहे, ८. चंडिक्के, ९. भंडणे, १०. विवाए।

११. माणे, १२. मदे, १३. दप्पे, १४. थंभे, १५. अत्तुक्कोसे, १६. गव्वे, १७. परपरिवाए १८. उक्कोसे,

१०. मोहनीय कर्म के बावन नाम—

मोहनीय कर्म के बावन नाम कहे गये हैं, यथा—

१. क्रोध, २. कोप, ३. रोष, ४. द्वेष, ५. अक्षमा, ६. संज्वलन, ७. कलह, ८. चांडिक्य, ९. भंडन, १०. विवाद, (ये दस क्रोधकषाय के नाम हैं)

११. मान, १२. मद, १३. दर्प, १४. स्तम्भ, १५. आत्मोत्कर्ष, १६. गर्व, १७. परपरिवाद, १८. उत्कर्ष,

२०. नेयाउयस्स मग्गस्स दुट्ठे अवयरई बहुं।
तं तिप्पयंतो भावेइ महामोहं पकुव्वइ॥

२१. आयरियउवज्झाएहिं सुयं विणयं च गाहिए।
ते चेव खिंसती बाले महामोहं पकुव्वइ॥

२२. आयरियउवज्झायाणं सम्मं नो पडितप्पइ।
अप्पडिपूयए थद्धे महामोहं पकुव्वइ॥

२३. अबहुस्सुए य जे केइ सुएण पविकत्थइ।
सज्झायवायं वयइ महामोहं पकुव्वइ॥

२४. अतवस्सिए य जे केइ तवेण पविकत्थइ।
सव्वलोयपरे तेणे महामोहं पकुव्वइ॥

२५. साहारणट्ठा जे केइ गिलाणम्मि उवट्ठिए।
पभू ण कुणई किच्चं मज्झं पि से न कुव्वइ॥
सढे नियडिपण्णाणे कलुसाउलचेयसे।
अप्पणो य अबोहीए महामोहं पकुव्वइ॥

२६. जे कहाहिगरणाइं संपउंजे पुणो पुणो।
सव्वतित्थाणं भेयाणं महामोहं पकुव्वइ॥

२७. जे य आहम्मिए जोए संपउंजे पुणो पुणो।
साहाहेउं सहीहेउं महामोहं पकुव्वइ॥

२८. जे य माणुस्सए भोए अदुवा पारलोइए।
तेऽतिप्पयंतो आसयइ महामोहं पकुव्वइ॥

२९. इड्ढी जुई जसो वण्णो देवाणं बलवीरियं।
तेसिं अवण्णिमं बाले महामोहं पकुव्वइ॥

३०. अपस्समाणो पस्सामि देवे जक्खे य गुज्झगे।
अण्णाणी जिणपूयट्ठी महामोहं पकुव्वइ[1]॥

–दसा. द. ९

२०. जो दुष्ट व्यक्ति न्याय युक्त मोक्षमार्ग की निन्दा करता है, बहुत जनों को उस पर चलने से रोकता है और उन दुष्ट विचारों से लिप्त करता है, वह महामोहनीयकर्म का बंध करता है।

२१. जिन आचार्य और उपाध्यायों से श्रुत और विनय धर्म की शिक्षा ग्रहण की है, उन्हीं की निन्दा करने वाला अज्ञानी महामोहनीयकर्म का बंध करता है।

२२. जो व्यक्ति आचार्य और उपाध्यायों की सम्यक् प्रकार से सेवा सुश्रुषा नहीं करता है उनका सम्मान नहीं करता है किन्तु अभिमान करता है, वह महामोहनीयकर्म का बंध करता है।

२३. जो व्यक्ति अबहुश्रुत होते हुए भी अपने को श्रुत सम्पन्न और स्वाध्याय शील कहता है, वह महामोहनीयकर्म का बंध करता है।

२४. जो व्यक्ति तपस्वी न होते हुए भी अपने आपको तपस्वी कहता है, वह सबसे बड़ा चोर है, ऐसा व्यक्ति महामोहनीयकर्म का बंध करता है।

२५. जो कोई सहायता के लिए रोगी के उपस्थित होने पर समर्थ होते हुए भी यह मेरी सेवा नहीं करता है इस दृष्टि से उसकी सेवा नहीं करता है, ऐसा वह धूर्त मायावी कलुषित चित्तवाला व्यक्ति अबोधि (रत्नत्रय की अप्राप्ति) का कारण बनता हुआ महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

२६. जो व्यक्ति सर्व तीर्थों (धर्मों) में भेद के लिए कथा और अधिकरण (हिंसक साधनों) का बार-बार संप्रयोग करता है, वह महामोहनीयकर्म का बंध करता है।

२७. जो व्यक्ति अपनी प्रशंसा और मित्रों के लिए अधार्मिक योगों (मंत्र तंत्र वशीकरण आदि) का बार-बार संप्रयोग करता है, वह महामोहनीयकर्म का बंध करता है।

२८. जो व्यक्ति मानवीय एवं परलोक संबंधी भोगों का अतृप्तभाव से आस्वादन करता है, वह महामोहनीयकर्म का बंध करता है।

२९. जो व्यक्ति देवों की ऋद्धि, द्युति, यश, वर्ण और बल-वीर्य का अवर्णवाद करता है वह अज्ञानी महामोहनीयकर्म का बंध करता है।

३०. जो जिन की भांति अपनी पूजा का अभिलाषी होकर देव, यक्ष और गुह्यक (व्यन्तर देव) को नहीं देखता हुआ भी कहता है कि मैं उन्हें देखता हूँ, वह अज्ञानी महामोहनीयकर्म का बंध करता है।

१२. जीव-चउवीसदंडएसुकम्म पगडीणं कहण्णं बंधं भवइ–

प. कहण्णं भंते ! जीवे अट्ठ कम्मपगडीओ बंधइ ?

उ. गोयमा ! नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं दरिसणावरणिज्जं कम्मं णियच्छइ,
दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं दंसणमोहणिज्जं कम्मं णियच्छइ,

१२. जीव और चौवीसदंडकों में आठ कर्म प्रकृतियों का किस प्रकार बंध होता है–

प्र. भंते ! जीव आठ कर्मप्रकृतियों को किस प्रकार बांधता है ?

उ. गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से (जीव) दर्शनावरणीय कर्म को निश्चय ही प्राप्त करता है,
दर्शनावरणीय कर्म के उदय से (जीव) दर्शनमोहनीय कर्म को निश्चय ही प्राप्त करता है।

१. सम. सम. ३०, सु. १

८. धंसेइ जो अभूएणं अकम्मं अत्तकम्मुणा।
अदुवा तुमकासि त्ति महामोहं पकुव्वइ॥

८. जो व्यक्ति अपने दुराचरित कर्म का दूसरे निर्दोष व्यक्ति पर आरोपण करता है, अथवा किसी एक व्यक्ति के दोष का किसी दूसरे व्यक्ति पर "तुमने यह कार्य किया" ऐसा आरोप लगाता है, वह महामोहनीयकर्म का वंध करता है।

९. जाणमाणो परिसओ सच्चामोसाणि भासइ।
अक्खीणझंझे पुरिसे महामोहं पकुव्वइ॥

९. जो व्यक्ति यथार्थ को जानते हुए भी सभा के समक्ष मिश्र (सत्य और मृषा) भाषा बोलता है और जो निरन्तर कलह करता रहता है, वह महामोहनीय कर्म का वंध करता है।

१०. अणायगस्स नयवं दारे तस्सेव धंसिया।
विउलं विक्खोभइत्ताणं किच्चा णं पडिबाहिरं॥
उवगसंतं पि झंपित्ता, पडिलोमाहिं वग्गूहिं।
भोगभोगे वियारेइ महामोहं पकुव्वइ॥

१०. जो व्यक्ति अमात्य, अपने राजा की स्त्रियों अथवा धन आने के द्वारों को विध्वंस (नष्ट) करके और सामन्तों आदि को विक्षुब्ध करके राजा को अनाधिकारी बनाकर राज्य, रानियों या राज्य के धन-आगमन के द्वारों पर अधिकार कर लेता है और जब अधिकारहीन वह राजा आवश्यकताओं के लिये सामने आता है तब विपरीत वचनों द्वारा उसकी भर्त्सना करता है। इस प्रकार से अपने स्वामी के विशिष्ट भोगों का विनाश करने वाला वह महामोहनीय कर्म का वंध करता है।

११. अकुमारभूए जे केइ कुमारभूए त्ति हं वए।
इत्थीहिं गिद्धे वसए महामोहं पकुव्वइ॥

११. जो व्यक्ति अकुमार (विवाहित) होते हुए भी अपने आप को कुमार ब्रह्मचारी (वालब्रह्मचारी) कहता है और स्त्रियों में आसक्त रहता है, वह महामोहनीय कर्म का वंध करता है।

१२. अबंभयारी जे केइ बंभयारि त्ति हं वए।
गद्दभे व्व गवं मज्झे विस्सरं नदइ नदं॥
अप्पणो अहिए बाले मायामोसं बहुं भसे।
इत्थीविसयगेहीए महामोहं पकुव्वइ॥

१२. जो व्यक्ति अब्रह्मचारी होते हुए भी अपने आपको ब्रह्मचारी कहता है, वह गायों के समूह में गधे की भांति विस्वर नाद करता (रेंकता) है। वह अज्ञानी व्यक्ति अपनी आत्मा का अहित करता है और स्त्री विषयक आसक्ति के कारण मायामृषा वचन का प्रयोग करता है, वह महामोहनीयकर्म का वंध करता है।

१३. जं निस्सिए उव्वहइ जस्साऽहिगमेण वा।
तस्स लुब्भइ वित्तम्मि महामोहं पकुव्वइ॥

१३. जो व्यक्ति राजा आदि के आश्रित होकर उनके संबंध से प्राप्त यश और सेवा का लाभ उठाकर जीविका चलाता है और फिर उन्हीं के धन में लुब्ध होता है, वह महामोहनीयकर्म का वंध करता है।

१४. इस्सरेण अदुवा गामेणं अणिस्सरे इस्सरीकए।
तस्स संपग्गहीयस्स सिरी अतुलमागया॥
ईसादोसेण आइट्ठे कलुसाविलचेयसे।
जे अंतरायं चेएइ महामोहं पकुव्वइ॥

१४. किसी ऐश्वर्यशाली या ग्रामवासियों ने किसी निर्धन को ऐश्वर्यशाली वनाया और उससे अतुल वैभव प्राप्त हुआ, तव ईर्ष्यादोष से आविष्ट तथा पाप से कलुषित चित्त वाला होकर उन्हीं के जीवन या सम्पदा में अन्तराय डालने का विचार करता है, वह महामोहनीयकर्म का वंध करता है।

१५. सप्पी जहा अंडउडं भत्तारं जो विहिंसइ।
सेणावइं पसत्थारं महामोहं पकुव्वइ॥

१५. जैसे नागिन अपने अंड-पुट को खा जाती है, वैसे ही जो व्यक्ति अपने पोषण करने वाले को तथा सेनापति और प्रशास्ता को मार डालता है, वह महामोहनीयकर्म का बंध करता है।

१६. जे नायगं व रट्ठस्स नेयारं निगमस्स वा।
सेट्ठिं बहुरवं हंता महामोहं पकुव्वइ॥

१६. जो व्यक्ति राष्ट्र के नायक, यशस्वी निगम-नेता और श्रेष्ठी को मार डालता है, वह महामोहनीयकर्म का बंध करता है।

१७. बहुजणस्स णेयारं दीवं ताणं च पाणिणं।
एयारिसं नरं हंता महामोहं पकुव्वइ॥

१७. जो व्यक्ति जन नेता तथा प्राणियों के लिए द्वीप के समान आधार है, ऐसे व्यक्ति को मार डालता है, वह महामोहनीयकर्म का बंध करता है।

१८. उवट्ठियं पडिविरयं संजयं सुतवस्सियं।
वोकम्म धम्मओ भंसे महामोहं पकुव्वइ॥

१८. जो व्यक्ति प्रव्रज्या के लिए उपस्थित है, संयत और सुतपस्वी हो गया है, उसको वहका कर धर्म से भ्रष्ट करता है, वह महामोहनीयकर्म का बंध करता है।

१९. तहेवाणंतणाणीणं जिणाणं वरदंसिणं।
तेसिं अवण्णिमं वाले महामोहं पकुव्वइ॥

१९. जो व्यक्ति अनन्तज्ञानी और अनन्तदर्शी जिनेन्द्र भगवान् का अवर्णवाद (निन्दा) करता है, वह वाल (मूर्ख) महामोहनीय-कर्म का बंध करता है।

१४. जीव-चउवीसदंडएसु सायासायवेयणियणिज्ज कम्म बंध हेउ–

प. (क) अत्थि णं भंते ! जीवाणं सातावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. कहं णं भंते ! जीवाणं सातावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

उ. गोयमा ! पाणाणुकंपाए, भूयाणुकंपाए, जीवाणुकंपाए, सत्ताणुकंपाए, बहूणं पाणाणं जाव सत्ताणं अदुक्खणयाए, असोयणयाए, अजूरणयाए, अतिप्पणयाए, अपिट्टणयाए, अपरितावणयाए एवं खलु गोयमा ! जीवाणं सातावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति।

दं. १-२४. एवं नेरइयाण वि जाव वेमाणियाणं।

प. (ख) अत्थि णं भंते ! जीवाणं असातावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. कहं णं भंते ! जीवाणं असातावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

उ. गोयमा ! परदुक्खणयाए, परसोयणयाए, परजूरणयाए, परतिप्पणयाए, परपिट्टणयाए, परपरितावणयाए, बहूणं पाणाणं जाव सत्ताणं दुक्खणयाए, सोयणयाए जाव परितावणयाए।

एवं खलु गोयमा ! जीवाणं असातावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति।

दं. १-२४. एवं नेरइयाण वि जाव वेमाणियाणं।

–विया. स. ७, उ. ६, सु. २३-३०

१५. दुल्लभ-सुलभबोहि य कम्म बंध हेउ परूवणं–

(क) 'पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लभबोहियत्ताए कम्मं पकरेंति, तं जहा–

१. अरंहताणं अवण्णं वयमाणे,
२. अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स अवण्णं वयमाणे,
३. आयरियउवज्झयाणं अवण्णं वयमाणे,
४. चाउवण्णस्स संघस्स अवण्णं वयमाणे,
५. विविक्क-तव बंभचेराणं देवाणं अवण्णं वयमाणे,

(ख) पंचहिं ठाणेहिं जीवा सुलभबोहियत्ताए कम्मं पकरेंति, तं जहा–

१. अरहंताणं वण्णं वयमाणे,
२. अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स वण्णं वयमाणे,
३. आयरियउवज्झायाणं वण्णं वयमाणे,
४. चाउवण्णस्स संघस्स वण्णं वयमाणे,
५. विविक्क-तव बंभचेराणं देवाणं वण्णं वयमाणे।

–ठाणं अ. ५, उ. २, सु. ४२६

१४. जीव चौवीस दंडकों में साता-असाता वेदनीय कर्म बंध के हेतु–

प्र. (क) भंते ! क्या जीवों के सातावेदनीय कर्म वंधते हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! वंधते हैं।

प्र. भंते ! जीवों के सातावेदनीय कर्म कैसे वंधते हैं ?

उ. गौतम ! प्राणियों, भूतों, जीवों और सत्वों पर अनुकम्पा करने से तथा वहुत से प्राणियों यावत् सत्वों को दुःख न देने से, उन्हें शोक (दैन्य) उत्पन्न न कराने से, चिन्ता उत्पन्न न कराने से, विलाप न कराने से, पीड़ा न देने से, परितापना न देने से। गौतम ! इस प्रकार से जीवों के सातावेदनीय कर्म वंधते हैं।

१-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त (साता वेदनीय बंध विषयक) कथन करना चाहिए।

प्र. (ख) भंते ! क्या जीवों के असातावेदनीय कर्म वंधते हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! वंधते हैं।

प्र. भंते ! जीवों के असातावेदनीय कर्म कैसे वंधते हैं ?

उ. गौतम ! दूसरों को दुःख देने से, दूसरे जीवों को शोक उत्पन्न कराने से, चिन्ता उत्पन्न कराने से, विलाप कराने से, पीड़ा देने से, परितापना देने से तथा वहुत से प्राणियों यावत् सत्वों को दुःख पहुँचाने से, शोक उत्पन्न कराने से यावत् उनको परितापना देने से।

गौतम ! इस प्रकार जीवों के असातावेदनीय कर्म वंधते हैं।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त (असातावेदनीय वन्ध विषयक) कथन करना चाहिए।

१५. दुर्लभ–सुलभबोधि वाले कर्म बंध के हेतु का प्ररूपण–

(क) पाँच स्थानों से जीव दुर्लभवोधि वाले कर्मों का वंध करते हैं, यथा–

१. अर्हन्तों का अवर्णवाद (दोषारोपण) करने से,
२. अर्हत्-प्रज्ञप्त धर्म का अवर्णवाद करने से,
३. आचार्य-उपाध्याय का अवर्णवाद करने से,
४. चतुर्विध संघ का अवर्णवाद करने से,
५. तप और ब्रह्मचर्य के विपाक से दिव्य–गति को प्राप्त देवों का अवर्णवाद करने से।

(ख) पाँच स्थानों से जीव सुलभबोधि वाले कर्मों का बंध करते हैं, यथा–

१. अर्हन्तों का वर्णवाद (प्रशंसा) करने से,
२. अर्हत्-प्रज्ञप्त धर्म का वर्णवाद करने से,
३. आचार्य-उपाध्याय का वर्णवाद करने से,
४. चतुर्विध संघ का वर्णवाद करने से,
५. तप और ब्रह्मचर्य के विपाक से दिव्य-गति को प्राप्त देवों का वर्णवाद करने से।

१६. आगमेसिभद्दत्ताए कम्म बंध हेउ परूवणं–

दसहिं ठाणेहिं जीवा आगमेसिभद्दत्ताए कम्मं पकरेंति, तं जहा–

१. अणिदाणयाए,
२. दिट्ठिसंपण्णयाए,
३. जोगवाहियाए,
४. खंतिखमणयाए,
५. जितिंदिययाए,
६. अमाइल्लयाए,
७. अपासत्थयाए,
८. सुसामण्णयाए,
९. पवयणवच्छल्लयाए,
१०. पवयणउब्भावणयाए,

–ठाणं अ. १०, सु. ७५८

१६. भावी कल्याणकारी कर्म बंध के हेतुओं का प्ररूपण–

दस स्थानों से जीव भावी कल्याणकारी कर्म का बंध करते हैं, यथा–

१. अनिदानता–निदान न करने से,
२. सम्यक्दृष्टिसंपन्नता से,
३. योगवाहिता–समाधिपूर्ण जीवन से,
४. क्षान्तिक्षमणता–समर्थ होते हुए भी क्षमा करने से,
५. जितेन्द्रियता–इन्द्रिय विजेता होने से,
६. अमाइत्व–निष्कपटता से,
७. अपार्श्वस्थता–शिथिलाचारी न होने से,
८. सुश्रामण्य–शुद्ध संयमाचार का पालन करने से,
९. प्रवचन वत्सलता–प्रवचन के प्रति अनुराग रखने से,
१०. प्रवचन-उद्भावनता–प्रवचन प्रभावना करने से.

१७. तित्थयरनाम कम्मस्स बंध हेउ परूवणं–

इमेहिं वीसाएहिं कारणेहिं आसेवियएहिं तित्थयरनामगोय कम्म बंधइ, तं जहा–

१. अरिहंत, २. सिद्ध, ३. पवयण, ४. गुरु, ५. थेर, ६. बहुस्सुए, ७. तवस्सीणं।

वच्छलया य तेसिं, ८. अभिक्खणाणोवओगे य

९. दंसण, १०. विणए, ११. आवस्सए य, १२. सीलव्वए निरइयारं।

१३. खणलव, १४-१५. तवच्चियाए, १६. वेयावच्चे १७. समाही य

१८. अपुव्वनाणगहणे, १९. सुयभत्ती २०. पवयणे-पभावणया।

एएहिं कारणेहिं, तित्थयरत्तं लहइ जीवो

–णाया. सु. १, अ. ८, सु. १४

१७. तीर्थंकरनाम कर्म के बंध हेतुओं का प्ररूपण–

इन बीस कारणों के सेवन से तीर्थंकर नामगोत्र कर्म का बंध होता है, यथा–

(१) अरिहंत (२) सिद्ध (३) प्रवचन-श्रुतज्ञान (४) गुरु (५) स्थविर (६) बहुश्रुत (७) तपस्वी–इन सातों के प्रति वात्सल्यभाव रखना (८) बारंबार ज्ञान का उपयोग करना (९) दर्शन–सम्यक्त्व की विशुद्धता, (१०) ज्ञानादिक का विनय करना (११) छह आवश्यकों का पालन करना (१२) उत्तरगुणों और मूलगुणों का निरतिचार पालन करना (१३) क्षणलव-एक क्षण के लिए भी प्रमाद न करना (१४) तप करना (१५) त्यागी मुनियों को उचित दान देना (१६) वैयावृत्य करना (१७) समाधि-गुरु आदि को साता उपजाना। (१८) नया-नया ज्ञान ग्रहण करना (१९) श्रुत की भक्ति करना (२०) प्रवचन की प्रभावना करना, इन बीस कारणों से जीव तीर्थंकर नामगोत्र का उपार्जन करता है।

१८. अलिएणं अब्भक्खाणेणं कम्म बंध परूवणं–

प. जे णं भंते ! परं अलिएणं असंतएणं अब्भक्खाणेणं अब्भक्खाइ तस्स णं कहप्पगारा कम्मा कज्जंति ?

उ. गोयमा ! जे णं परं अलिएणं असंतएणं अब्भक्खाणेणं अब्भक्खाइ तस्स णं तहप्पगारा चेव कम्मा कज्जंति,

जत्थेव णं अभिसमागच्छइ तत्थेव णं पडिसंवेदेइ तओ से पच्छा वेदेइ।

–विया. स. ५, उ. ६, सु. २०

१८. असत्य आरोप से होने वाले कर्म बंध का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जो दूसरे पर सद्भूत (विद्यमान) का अपलाप और असद्भूत का आरोप करके अभ्याख्यान मिथ्यादोषारोपण करता है, उसे किस प्रकार के कर्म बंधते हैं ?

उ. गौतम ! जो दूसरे पर सद्भूत का अपलाप और असद्भूत का आरोप करके मिथ्या दोषारोपण करता है, उसके उसी प्रकार के कर्म बंधते हैं।

वह जिस योनि में जाता है, वहीं उन कर्मों को वेदता है और वेदन करने के पश्चात् उनकी निर्जरा करता है।

१९. कम्मनिव्वत्ति भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! कम्मनिव्वत्ती पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अट्ठविहा कम्मनिव्वत्ती पण्णत्ता, तं जहा–

१. नाणावरणिज्जकम्मनिव्वत्ती जाव ८. अंतराइय-कम्मनिव्वत्ती।

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! कइविहा कम्मनिव्वत्ती पण्णत्ता ?

१९. कर्मनिवृत्ति के भेद और चौवीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भंते ! कर्मनिर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! कर्मनिर्वृत्ति आठ प्रकार की कही गई है, यथा–

१. ज्ञानावरणीय-कर्मनिर्वृत्ति यावत् ८. अन्तराय-कर्मनिर्वृत्ति।

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिक जीवों की कितने प्रकार की कर्मनिर्वृति कही गई है ?

उ. गोयमा ! अट्ठविहा कम्मनिव्वत्ती पण्णत्ता, तं जहा–

१. नाणावरणिज्जकम्मनिव्वत्ती जाव ८. अंतराइय-कम्मनिव्वत्ती।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियाणं।

–विया. स. १९, उ. ८, सु. ५-७

उ. गौतम ! आठ प्रकार की कर्मनिर्वृत्ति कही गई है, यथा–

१. ज्ञानावरणीय-कर्मनिर्वृत्ति यावत् ८. अन्तराय-कर्मनिर्वृत्ति।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों तक कर्मनिर्वृत्ति के विषय में जान लेना चाहिए।

२०. जीव चउवीसदंडएसु चेयकड कम्माणं परूवणं–

प. जीवा णं भंते ! किं चेयकडा कम्मा कज्जंति, अचेयकडा कम्मा कज्जंति ?

उ. गोयमा ! जीवा णं चेयकडा कम्मा कज्जंति, नो अचेयकडा कम्मा कज्जंति।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"जीवा णं चेयकडा कम्मा कज्जंति, नो अचेयकडा कम्मा कज्जंति ?"

उ. गोयमा ! जीवा णं आहारोवचिया पोग्गला,

बोंदिचिया पोग्गला,

कलेवरचिया पोग्गला,

तहा तहा णं ते पोग्गला परिणमंति,

नत्थि अचेयकडा कम्मा समणाउसो!

दुट्ठाणेसु दुसेज्जासु दुन्निसेहियासु तहा तहा णं ते पोग्गला परिणमंति,

नत्थि अचेयकडा कम्मा समणाउसो!

आयंके से वहाए होइ, संकप्पे से वहाए होइ, मरणंते से वहाए होइ,

तहा तहा णं ते पोग्गला परिणमंति,

नत्थि अचेयकडा कम्मा समणाउसो!

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"जीवा णं चेयकडा कम्मा कज्जंति,

नो अचेयकडा कम्मा कज्जंति।"

एवं नेरइयाण वि।

एवं जाव वेमाणियाणं। –विया. स. १६, उ. २, सु. १७-१९

२०. जीव चौवीसदंडकों में चैतन्यकृत कर्मों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जीवों के कर्म चैतन्यकृत होते हैं या अचैतन्यकृत होते हैं ?

उ. गौतम ! जीवों के कर्म चैतन्यकृत होते हैं, अचैतन्यकृत नहीं होते हैं ?

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

'जीवों के कर्म चैतन्यकृत होते हैं, अचैतन्यकृत नहीं होते हैं ?'

उ. गौतम ! जीवों के आहार रूप से उपचित जो पुद्गल हैं,

शरीर रूप से उपचित जो पुद्गल हैं,

कलेवर रूप से जो उपचित पुद्गल हैं,

वे उस-उस रूप से परिणत होते हैं,

इसलिए हे आयुष्मन् श्रमणों ! कर्म अचैतन्यकृत नहीं है।

वे पुद्गल दुस्थान रूप से, दुःशय्या रूप से और दुःनिषद्या रूप से उस-उस रूप से परिणत होते हैं।

इसलिए हे आयुष्मन् श्रमणों ! कर्म अचैतन्यकृत नहीं है।

वे पुद्गल आतंक रूप से परिणत होकर जीव के वध के लिए होते हैं। वे संकल्प रूप से परिणत होकर जीव के वध के लिए होते हैं, वे मरणान्त रूप से परिणत होकर जीव के वध के लिए होते हैं।

वे पुद्गल उन-उन रूप में परिणत होते हैं

इसलिए हे आयुष्मन् श्रमणों ! कर्म अचैतन्यकृत नहीं है।

हे गौतम ! इसीलिए ऐसा कहा जाता है, कि–

"जीवों के कर्म चैतन्यकृत होते हैं

अचैतन्यकृत नहीं होते।"

इसी प्रकार नैरयिकों के कर्म भी चैतन्यकृत होते हैं।

इसी प्रकार वैमानिकों तक के कर्मों के विषय में कहना चाहिए।

२१. जीव-चउवीसदंडएसु कम्मट्ठग चिणाइ परूवणं–

जीवा णं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिंसु वा, चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा–

१. णाणावरणिज्जं, २. दरिसणावरणिज्जं, ३. वेयणिज्जं, ४. मोहणिज्जं, ५. आउयं, ६. णामं, ७. गोयं, ८. अंतराइयं।

दं. १. णेरइया णं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिंसु वा, चिणंति वा, चिणिस्संति वा, तं जहा–

१. णाणावरणिज्जं जाव ८. अंतराइयं

दं. २-२४. एवं णिरंतरं जाव वेमाणियाणं।

एवं–उवचिण-बंध-उदीर–वेय तह णिज्जरा चेव।

२१. जीव-चौवीस दंडकों में आठ कर्मों के चयादि का प्ररूपण–

जीवो ने आठ कर्म-प्रकृतियों का चय किया है, करते हैं और करेंगे, यथा–

१. ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय, ३. वेदनीय,

४. मोहनीय, ५. आयुष्य, ६. नाम, ७. गोत्र, ८. अन्तराय।

दं. १. नैरयिकों ने आठ कर्म-प्रकृतियों का चय किया है, करते हैं और करेंगे, यथा–

१. ज्ञानावरणीय यावत् ८. अन्तराय।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों तक जानना चाहिए।

इसी प्रकार उपचय, बंध, उदीरणा, वेदन और निर्जरा किया है, करते हैं और करेंगे ऐसा जानना चाहिए।

एवमेव जीवाईया वेमाणिया पज्जवसाणा अट्ठारस दंडगा भाणियव्वा।
–ठाणं. अ. ८, सु. ५९६

इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त समुच्चय जीवों में ये अट्ठारह दंडक (आलापक) कहने चाहिए।

२२. चउवीसदंडएसु चलियाचलिय कम्माणं बंधाइ परूवणं–

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! जीवाओ, किं चलियं कम्मं बंधंति अचलियं कम्मं बंधंति ?

उ. गोयमा ! नो चलियं कम्मं बंधंति, अचलियं कम्मं बंधंति।

एवं २. उदीरेंति, ३. वेदेंति, ४. ओयट्टेंति, ५. संकामेंति, ६. निहत्तेंति, ७. निकाएंति, सव्वेसु नो चलियं, अचलियं।

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! जीवाओ किं चलियं कम्मं निज्जरेंति, अचलियं कम्मं निज्जरेंति ?

उ. गोयमा ! चलियं कम्मं निज्जरेंति, नो अचलियं कम्मं निज्जरेंति।[1]

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियाणं।
–विया. स. १, उ. १, सु. ६/९-१०

२२. चौवीस दंडकों में चलित-अचलित कर्मों के बंधादि का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! क्या नैरयिक जीव प्रदेशों से चलित (अस्थिर) कर्म को बांधते हैं, अचलित (स्थिर) कर्म को बांधते हैं?

उ. गौतम ! वे चलित कर्म को नहीं बांधते, किन्तु अचलित कर्म को बांधते हैं।

इसी प्रकार अचलित कर्म का २ उदीरण ३ वेदन ४ अपवर्तन ५ संक्रमण ६ निधत्तन और ७ निकाचन करते हैं।

इन सब पदों में अचलित (कर्म) कहना चाहिए, चलित (कर्म) नहीं कहना चाहिए।

प्र. दं. १. भंते ! क्या नैरयिक जीव प्रदेशों से चलित कर्म की निर्जरा करते हैं या अचलित कर्म की निर्जरा करते हैं?

उ. गौतम ! चलित कर्म की निर्जरा करते हैं, अचलित कर्म की निर्जरा नहीं करते।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

२३. जीव-चउवीसदंडएसु कोहाइ चउठाणेहिं कम्मट्ठग चिणाइ परूवणं–

प. (१) जीवा णं भंते ! कइहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिंसु ?

उ. गोयमा ! चउहिं ठाणेहिं अट्ठकम्मपगडीओ चिणिंसु, तं जहा–

१. कोहेणं, २. माणेणं, ३. मायाए, ४. लोभेणं।

दं. १-२४. एवं नेरइया जाव वेमाणिया।

प. (२) जीवा णं भंते ! कइहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणंति ?

उ. गोयमा ! चउहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणंति, तं जहा–

१. कोहेणं, २. माणेणं, ३. मायाए, ४. लोभेणं।

दं. १-२४. एवं नेरइया जाव वेमाणिया।

प. (३) जीवा णं भंते ! कइहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिस्संति ?

उ. गोयमा ! चउहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिस्संति, तं जहा–

१. कोहेणं, २. माणेणं, ३. मायाए, ४. लोभेणं।

दं. १-२४. एवं नेरइया जाव वेमाणिया।

प. (४) जीवा णं भंते ! कइहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ उवचिणिंसु ?

२३. जीव–चौवीस दंडकों में क्रोधादि चार स्थानों द्वारा आठ कर्मों का चयादि प्ररूपण–

प्र. (१) भंते ! जीवों ने कितने स्थानों (कारणों) से आठ कर्म प्रकृतियों का चय किया है ?

उ. गौतम ! चार कारणों से आठ कर्म प्रकृतियों का चय किया है, यथा–

१. क्रोध से, २. मान से, ३. माया से, ४. लोभ से।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों तक जानना चाहिए।

प्र. (२) भंते ! जीव कितने कारणों से आठ कर्म प्रकृतियों का चय करते हैं ?

उ. गौतम ! चार कारणों से आठ कर्मप्रकृतियों का चय करते हैं, यथा–

१. क्रोध से, २. मान से, ३. माया से, ४. लोभ से।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों तक जानना चाहिए।

प्र. (३) भंते ! जीव कितने स्थानों (कारणों) से आठ कर्म प्रकृतियों का चय करेंगे ?

उ. गौतम ! चार कारणों से आठ कर्म प्रकृतियों का चय करेंगे, यथा–

१. क्रोध से, २. मान से, ३. माया से, ४. लोभ से।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों तक जानना चाहिए।

प्र. (४) भंते ! जीवों ने कितने स्थानों से आठ कर्म प्रकृतियों का उपचय किया है ?

---

१. गाहा–बंधोदय-वेदोव्वट्ट-संकमे तह निहत्तण-निकाए। अचलियं कम्मं तु भवे चलितं जीवाउ निज्जरए।

उ. गोयमा ! चउहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ उवचिणिंसु, तं जहा–

१. कोहेणं, २. माणेणं, ३. मायाए, ४. लोभेणं।

दं. १-२४. एवं नेरइया जाव वेमाणिया।

प. (५) जीवा णं भंते ! कइहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ उवचिणंति ?

उ. गोयमा ! चउहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ उवचिणंति, तं जहा–

१. कोहेणं, २. माणेणं, ३. मायाए, ४. लोभेणं,

दं. १-२४. एवं नेरइया जाव वेमाणिया।

(६) एवं उवचिणिस्संति।

प. (७-९) जीवा णं भंते ! कइहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ बंधिंसु, बंधंति, बंधिस्संति ?

उ. गोयमा ! चउहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ बंधिंसु, बंधंति, बंधिस्संति, तं जहा–

१. कोहेणं, २. माणेणं, ३. मायाए, ४. लोभेणं।

दं. १-२४. एवं नेरइया जाव वेमाणिया।

(१०-१२) एवं १. उदीरेंसु, २. उदीरंति, ३. उदीरिस्संति,

(१३-१५) १. वेदेंसु, २. वेदेंति, ३. वेदिस्संति,

(१६-१८) १. निज्जरेंसु, २. निज्जरंति, ३. निज्जरिस्संति।

एवमेव जीवाईया वेमाणिय पज्जवसाणा अट्ठारस दंडगा भाणियव्वा।[1] –पण्ण. प. १४, सु. ९६४–९७१

उ. गौतम ! चार कारणों से आठ कर्म प्रकृतियों का उपचय किया है, यथा–

१. क्रोध से, २. मान से, ३. माया से, ४. लोभ से।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों तक जानना चाहिए।

प्र. (५) भंते ! जीव कितने कारणों से आठ कर्म प्रकृतियों का उपचय करते हैं ?

उ. गौतम ! चार कारणों से आठ कर्म प्रकृतियों का उपचय करते हैं, यथा–

१. क्रोध से, २. मान से, ३. माया से, ४. लोभ से।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों तक जानना चाहिए।

(६) इसी प्रकार उपचय भी करेंगे ऐसा कहना चाहिए।

प्र. (७-९) भंते ! जीवों ने कितने कारणों से आठ कर्म प्रकृतियों का वंध किया है, करते हैं और करेंगे ?

उ. गौतम ! चार कारणों से आठ कर्म प्रकृतियों का वंध किया है, करते हैं और करेंगे, यथा–

१. क्रोध से, २. मान से, ३. माया से, ४. लोभ से।

१-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों तक जानना चाहिए।

(१०-१२) इसी प्रकार १. उदीरणा की, २. उदीरण करते हैं, ३. उदीरणा करेंगे।

(१३-१५) १. वेदन किया, २. वेदन करते हैं, ३. वेदन करेंगे।

(१६-१८) १. निर्जरा की, २. निर्जरा करते हैं, ३. निर्जरा करेंगे।

इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त समुच्चय जीवों में ये अठारह दंडक (आलापक) कहना चाहिये।

२४. मूलकम्माणं उत्तरपयडीओ–

(१) णाणावरणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. देसणाणावरणिज्जे चेव, २. सव्वणाणावरणिज्जे चेव। –ठाणं. अ. २, उ. ४, सु. ११६(१)

प. णाणावरणिज्जे णं भंते ! कम्मे कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. आभिणिबोहियणाणावरणिज्जे,
२. सुय णाणावरणिज्जे,
३. ओहिणाणावरणिज्जे,
४. मणपज्जवणाणावरणिज्जे,
५. केवलणाणावरणिज्जे।[2] –पण्ण. प. २३, उ. २, सु. १६८८

(२) दरिसणावरणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. देसदरिसणावरणिज्जे चेव,
२. सव्वदरिसणावरणिज्जे चेव। –ठाणं. अ. २, उ. ४, सु. ११६(२)

२४. मूलकर्मों की उत्तर प्रकृतियाँ–

(१) ज्ञानावरणीय कर्म दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. देशज्ञानावरणीय, २. सर्वज्ञानावरणीय।

प्र. भंते ! ज्ञानावरणीयकर्म कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय,
२. श्रुतज्ञानावरणीय,
३. अवधिज्ञानावरणीय,
४. मनःपर्यवज्ञानावरणीय,
५. केवलज्ञानावरणीय।

(२) दर्शनावरणीय कर्म दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. देशदर्शनावरणीय,
२. सर्वदर्शनावरणीय।

---

१. ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २५० २. (क) उत्त. अ. ३३, गा. ४ (ख) ठाणं. अ. ५, उ. ३, सु. ४६४

प्र. [illegible]णावरणिज्जे णं भंते ! कम्मे कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. [illegible]पंचए य, २. दंसणचउक्कए य।

प्र. (क) [illegible]पंचए णं भंते ! कम्मे कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. [illegible], २. निद्दानिद्दा, ३. पयला, ४. पयलापयला, ५. [illegible]।

प्र. (ख) [illegible]चउक्कए णं भंते ! कम्मे कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. [illegible]दंसणावरणिज्जे, २. अचक्खुदंसणावरणिज्जे,

३. [illegible]दंसणावरणिज्जे, ४. केवलदंसणावरणिज्जे।[1]

प्र. (३) [illegible] णं भंते ! कम्मे कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. [illegible] य, २. असातावेयणिज्जे य।[2]

प्र. (क) [illegible] णं भंते ! कम्मे कइविहे पण्णत्ते ?

उ. [illegible] ! अट्ठविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. [illegible], २. मणुण्णा रूवा,

३. [illegible], ४. मणुण्णा रसा,

५. [illegible], ६. मणोसुहया,

७. [illegible], ८. कायसुहया।

प्र. (ख) [illegible] णं भंते ! कम्मे कइविहे पण्णत्ते ?

उ. [illegible] पण्णत्ते, तं जहा–

१. [illegible] जाव ८. कायदुहया।[3]

प्र. [illegible] भंते ! कम्मे कइविहे पण्णत्ते ?

उ. [illegible] पण्णत्ते, तं जहा–

१. [illegible], २. चरित्तमोहणिज्जे य।[4]

प्र. [illegible] भंते ! कम्मे कइविहे पण्णत्ते ?

उ. [illegible] पण्णत्ते, तं जहा–

१. [illegible], २. मिच्छत्तवेयणिज्जे,

३. [illegible]

प्र. [illegible] कम्मे कइविहे पण्णत्ते ?

[illegible]

प्र. भंते ! दर्शनावरणीयकर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. निद्रापंचक २. दर्शनचतुष्क।

प्र. (क) भंते ! निद्रापंचक कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! वह पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. निद्रा, २. निद्रानिद्रा, ३. प्रचला, ४. प्रचलाप्रचला, ५. स्त्यानगृद्धि।

प्र. (ख) भंते ! दर्शनचतुष्क कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! वह चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. चक्षुदर्शनावरणीय, २. अचक्षुदर्शनावरणीय,

३. अवधिदर्शनावरणीय, ४. केवलदर्शनावरणीय।

प्र. (३) भंते ! वेदनीयकर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सातावेदनीय, २. असातावेदनीय।

प्र. (क) भंते ! सातावेदनीयकर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! वह आठ प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. मनोज्ञ शब्द, २. मनोज्ञ रूप,

३. मनोज्ञ गंध, ४. मनोज्ञ रस,

५. मनोज्ञ स्पर्श, ६. मन का सौख्य,

७. वचन का सौख्य, ८. काया का सौख्य।

प्र. (ख) भंते ! असातावेदनीयकर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! वह आठ प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. अमनोज्ञ शब्द यावत् ८. कायदुःखता।

प्र. (४) भंते ! मोहनीयकर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. दर्शनमोहनीय, २. चारित्रमोहनीय।

प्र. (क) भंते ! दर्शन-मोहनीयकर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! वह तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सम्यक्त्ववेदनीय, २. मिथ्यात्ववेदनीय,

३. सम्यग्-मिथ्यात्ववेदनीय।

प्र. (ख) भंते ! चारित्रमोहनीयकर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. कषायवेदनीय, २. नो कषायवेदनीय।

प्र. (ग) भंते ! कषायवेदनीयकर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! वह सोलह प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. अनन्तानुबन्धी क्रोध, २. अनन्तानुबन्धी मान,

३. अनन्तानुबन्धी माया, ४. अनन्तानुबन्धी लोभ,

५. अप्रत्याख्यानी क्रोध, ६. अप्रत्याख्यानी मान [illegible]

[illegible]

७. अपच्चक्खाणे माया, ८. अपच्चक्खाणे लोभे।
९. पच्चक्खाणावरणे कोहे,
१०. पच्चक्खाणावरणे माणे,
११. पच्चक्खाणावरणे माया,
१२. पच्चक्खाणावरणे लोभे।
१३. संजलणे कोहे, १४. संजलणे माणे,
१५. संजलणे माया, १६. संजलणे लोभे।[1]

प. (घ) णो कसायवेयणिज्जे णं भंते ! कम्मे कइविहे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! णवविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. इत्थिवेए, २. पुरिसवेए, ३. णपुंसगवेए,
४. हासे, ५. रती, ६. अरती,
७. भये, ८. सोगे, ९. दुगंछा।[2]

–पण्ण. प. २३, उ. २, सु. १६८९-१६९१

(५) आउए कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. अद्धाउए चेव,
२. भवाउए चेव। –ठाणं. अ. २, उ. ४, सु. ११६(५)

प. आउए णं भंते ! कम्मे कइविहे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. णेरइयाउए, २. तिरिक्खाउए,
३. मणुस्साउए, ४. देवाउए।[3]

–पण्ण. प. २३, उ. २, सु. १६९२

(६) नामे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. सुभणामे चेव, २. असुभणामे चेव।[4]

–ठाणं. अ. २, उ. ४, सु. ११६(६)

प. नामे णं भंते ! कम्मे कइविहे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! बायालीसइविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. गइणामे, २. जाइणामे,
३. सरीरणामे, ४. सरीरंगोवंगणामे,
५. सरीरबंधणणामे, ६. सरीरसंघायणामे,
७. संघयणणामे, ८. संठाणणामे,
९. वण्णणामे, १०. गंधणामे,
११. रसणामे, १२. फासणामे,
१३. अगुरुलहुयणामे, १४. उवघायणामे,
१५. पराघायणामे, १६. आणुपुव्वीणामे,
१७. उस्सासणामे, १८. आयवणामे,
१९. उज्जोयणामे, २०. विहायगइणामे,
२१. तसणामे, २२. थावरणामे,
२३. सुहुमणामे, २४. बायरणामे,
२५. पज्जत्तणामे, २६. अपज्जत्तणामे,
२७. साहारणसरीरणामे, २८. पत्तेयसरीरणामे,

७. अप्रत्याख्यानी माया, ८. अप्रत्याख्यानी लोभ।
९. प्रत्याख्यावनारण क्रोध,
१०. प्रत्याख्यानावरण मान,
११. प्रत्याख्यानावरण माया,
१२. प्रत्याख्यानावरण लोभ।
१३. संज्वलन क्रोध, १४. संज्वलन मान,
१५. संज्वलन माया, १६. संज्वलन लोभ।

प्र. (घ) भंते ! नो कषाय-वेदनीयकर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! वह नौ प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. स्त्रीवेद, २. पुरुषवेद, ३. नपुंसकवेद,
४. हास्य, ५. रति, ६. अरति,
७. भय, ८. शोक, ९. जुगुप्सा।

(५) आयु कर्म दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. अद्धायु–कायस्थिति की आयु।
२. भवायु–उसी जन्म की आयु।

प्र. भंते ! आयुकर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! वह चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. नरकायु, २. तिर्यञ्चायु
३. मनुष्यायु, ४. देवायु।

(६) नाम कर्म दो प्रकार का कहा गया है–
१. शुभनाम, २. अशुभनाम।

प्र. भंते ! नामकर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! वह बयालीस प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. गतिनाम, २. जातिनाम,
३. शरीरनाम, ४. शरीरांगोपांगनाम,
५. शरीरबन्धननाम, ६. शरीरसंघातनाम,
७. संहनननाम, ८. संस्थाननाम,
९. वर्णनाम, १०. गन्धनाम,
११. रसनाम, १२. स्पर्शनाम,
१३. अगुरुलघुनाम, १४. उपघातनाम,
१५. पराघातनाम, १६. आनुपूर्वीनाम,
१७. उच्छ्वासनाम, १८. आतपनाम,
१९. उद्योतनाम, २०. विहायोगतिनाम,
२१. त्रसनाम, २२. स्थावरनाम,
२३. सूक्ष्मनाम, २४. बादरनाम,
२५. पर्याप्तनाम, २६. अपर्याप्तनाम,
२७. साधारण शरीरनाम, २८. प्रत्येकशरीरनाम,

---

१. (क) सम. सम. १६, सु. २
(ख) मोहनीय कर्म के दो भेदों में "मोहणिज्जे" का प्रयोग है किन्तु इनके प्रभेदों में "वेयणिज्जे" का प्रयोग है यह विचारणीय है।
२. (क) सम. अ. ९, सु. [illegible]
(ख) [illegible]
३. (क) [illegible]
(ख) [illegible]
४. [illegible]

२९. थिरणामे, ३०. अथिरणामे,
३१. सुभणामे, ३२. असुभणामे,
३३. सुभगणामे, ३४. दुभगणामे,
३५. सुसरणामे, ३६. दुसरणामे,
३७. आदेज्जणामे, ३८. अणादेज्जणामे,
३९. जसोकित्तिणामे, ४०. अजसोकित्तिणामे,
४१. णिम्माणणामे, ४२. तित्थगरणामे।[1]

प. (१) गइणामे णं भंते ! कम्मे कइविहे पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. णिरयगइणामे, २. तिरियगइणामे,
३. मणुयगइणामे, ४. देवगइणामे।

प. (२) जाइणामे णं भंते ! कम्मे कइविहे पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. एगिंदियजाइणामे जाव ५. पंचेंदियजाइणामे।

प. (३) सरीरणामे णं भंते ! कम्मे कइविहे पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. ओरालियसरीरणामे जाव ५. कम्मगसरीरणामे।

प. (४) [illegible] णं भंते ! कम्मे कइविहे पण्णत्ते ?

२९. स्थिरनाम, ३०. अस्थिरनाम,
३१. शुभनाम, ३२. अशुभनाम,
३३. सुभगनाम, ३४. दुर्भगनाम,
३५. सुस्वरनाम, ३६. दुःस्वरनाम,
३७. आदेयनाम, ३८. अनादेयनाम,
३९. यशःकीर्तिनाम, ४०. अयशःकीर्तिनाम,
४१. निर्माणनाम, ४२. तीर्थंकरनाम।

प. (१) भंते ! गतिनाम कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?
उ. गौतम ! वह चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. नरकगतिनाम कर्म, २. तिर्यञ्चगतिनाम कर्म,
३. मनुष्यगति नाम कर्म, ४. देवगतिनाम कर्म।

प्र. (२) भंते ! जातिनामकर्म कितने प्रकार का कहा गया है?
उ. गौतम ! वह पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. एकेन्द्रियजातिनाम कर्म यावत् ५. पंचेन्द्रियजातिनाम कर्म।

प्र. (३) भंते ! शरीरनामकर्म कितने प्रकार का कहा गया है?
उ. गौतम ! वह पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. औदारिकशरीरनाम कर्म यावत् ५. कार्मणशरीरनाम कर्म।

प्र. (४) भंते ! [illegible] कर्म कितने प्रकार का कहा

उ. गोयमा ! छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. समचउरंससंठाणणामे,
२. णग्गोह परिमंडल संठाणणामे,
३. साइसंठाणणामे,
४. वामणसंठाणणामे,
५. खुज्ज संठाणणामे,
६. हुंड संठाणणामे।

प. (९) वण्णणामे णं भंते ! कम्मे कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. कालवण्णणामे जाव ५. सुक्किलवण्णणामे।

प. (१०) गंधणामे णं भंते ! कम्मे कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सुरभिगंधणामे, २. दुरभिगंधणामे।

प. (११) रसणामे णं भंते ! कम्मे कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. तित्तरसणामे जाव ५. महुररसणामे।

प. (१२) फासणामे णं भंते ! कम्मे कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! अट्ठविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. कक्खडफासणामे जाव ८. लुक्खफासणामे।

(१३) अगुरुलहुअणामे एगागारे पण्णत्ते।

(१४) उवघायणामे एगागारे पण्णत्ते।

(१५) पराघायणामे एगागारे पण्णत्ते।

(१६) आणुपुव्विणामे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. णेरइयाणुपुव्विणामे जाव ४. देवाणुपुव्विणामे।

(१७) उस्सासणामे एगागारे पण्णत्ते।

(१८-४२) सेसाणि सव्वाणि एगागाराइं पण्णत्ताइं जाव तित्थगरणामे।

णवरं–विहायगइणामे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. पसत्थविहायगइणामे य,
२. अपसत्थविहायगइणामे य।

प. (७) गोए णं भंते ! कम्मे कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. उच्चागोए य, २. णीयागोए य।[1]

प. उच्चागोए णं भंते ! कम्मे कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! १. अट्ठविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. जाइविसिट्ठिया, २. कुलविसिट्ठिया,
३. बलविसिट्ठिया, ४. रूवविसिट्ठिया,
५. तवविसिट्ठिया, ६. सुयविसिट्ठिया,
७. लाभविसिट्ठिया, ८. इस्सरियविसिट्ठिया।

एवं णीयागोए वि।

णवरं–१. जाइविहीणया जाव ८. इस्सरियविहीणया।[2]

–पण्ण. प. २३, उ. २, सु. १६९३-[illegible]

उ. गौतम ! वह छह प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. समचतुरस्रसंस्थाननाम कर्म,
२. न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थाननाम कर्म,
३. सादिसंस्थाननाम कर्म,
४. वामनसंस्थाननाम कर्म,
५. कुब्जसंस्थाननाम कर्म,
६. हुण्डकसंस्थाननाम कर्म।

प्र. (९) भंते ! वर्णनामकर्म कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. कालवर्णनाम कर्म यावत् ५. शुक्लवर्णनाम कर्म।

प्र. (१०) भंते ! गन्धनामकर्म कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सुरभिगन्धनाम कर्म, २. दुरभिगन्धनाम कर्म।

प्र. (११) भंते ! रसनामकर्म कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. तिक्तरसनाम कर्म यावत् ५. मधुररसनाम कर्म।

प्र. (१२) भंते ! स्पर्शनाम कर्म कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह आठ प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. कर्कशस्पर्शनाम कर्म यावत् ८. रूक्षस्पर्शनाम कर्म।

(१३) अगुरुलघुनाम कर्म एक प्रकार का कहा गया है।

(१४) उपघातनाम कर्म एक प्रकार का कहा गया है।

(१५) पराघातनाम कर्म एक प्रकार का कहा गया है।

(१६) आनुपूर्वीनाम कर्म चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. नैरयिकानुपूर्वीनाम कर्म यावत् ४. देवानुपूर्वीनाम कर्म।

(१७) उच्छ्वासनाम कर्म एक प्रकार का कहा गया है।

(१८-४२) शेष सब तीर्थंकरनाम कर्म पर्यन्त एक-एक प्रकार के कहे गये हैं।

विशेष–विहायोगतिनाम कर्म दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. प्रशस्तविहायोगतिनाम कर्म,
२. अप्रशस्तविहायोगतिनामकर्म।

प्र. (७) भंते ! गोत्रकर्म कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. उच्चगोत्र, २. नीचगोत्र।

प्र. भंते ! उच्चगोत्रकर्म कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह आठ प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. जातिविशिष्टता, २. कुलविशिष्टता,
३. बलविशिष्टता, ४. रूपविशिष्टता,
५. तपविशिष्टता, ६. श्रुतविशिष्टता,
७. लाभविशिष्टता, ८. ऐश्वर्यविशिष्टता।

इसी प्रकार नीचगोत्र भी आठ प्रकार का कहा गया है।
किन्तु यह उच्चगोत्र से सर्वथा विपरीत है, यथा–

विशेष–१. [illegible] यावत् ८. [illegible]।

[1] (क) पण्ण. प. २३, उ. १, सु. १६९६(७)

[2] [illegible]

प. (८) अंतराइए कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. पडुपन्नविणासिए चेव,
२. पिहेतिय आगामिपहे।
–ठाणं. अ. २, उ. ४, सु. ११६ (८)

प. अंतराइए णं भंते ! कम्मे कइविहे पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. दाणंतराइए, २. लाभंतराइए,
३. भोगंतराइए, ४. उवभोगंतराइए,
५. वीरियंतराइए।[1] –पण्ण. प. २३, उ. २, सु. १६९६

(८) अन्तराय कर्म दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. वर्तमान में प्राप्त वस्तु का वियोग करने वाला,
२. भविष्य में होने वाले लाभ के मार्ग को रोकने वाला।

प्र. भंते ! अन्तरायकर्म कितने प्रकार का कहा गया है?
उ. गौतम ! वह पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. दानान्तराय, २. लाभान्तराय,
३. भोगान्तराय, ४. उपभोगान्तराय,
५. वीर्यान्तराय।

२५. संजुत्तकम्माणं उत्तरपगडीओ–

१. दंसणावरण-नामाणं **दोण्हं** कम्माणं एकावण्णं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ। –सम. सम. ५१, सु. ५

२. (क) नाणावरणिज्जस्स नामस्स अंतराइयस्स एएसि णं **तिण्हं** कम्मपयडीणं बावण्णं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ। –सम. सम. ५२, सु. ४

(ख) दंसणावरणिज्ज-णामाउयाणं **तिण्हं** कम्मपगडीणं पणपण्णं उत्तरपगडीओ पण्णत्तओ। –सम. सम. ५५, सु. ६

३. नाणावरणिज्जस्स मोहणिज्जस्स गोत्तस्स आउस्स वि एयासि णं **चउण्हं** कम्मपगडीणं एकूणचत्तालीसं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ। –सम. सम. ३९, सु. ४

४. नाणावरणिज्जस्स वेयणियस्स आउयस्स नामस्स अंतराइयस्स य एएसि णं **पंचण्हं** कम्मपगडीणं अट्ठावण्णं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ। –सम. सम. ५८, सु. २

५. (क) **छण्हं** कम्मपगडीणं आदिमउवरिल्लवज्जाणं सत्तासीतिं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ। –सम. सम. ८७, सु. ५

(ख) आउय-गोयवज्जाणं **छण्हं** कम्मपगडीणं एक्काणउतिं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ। –सम. सम. ९१, सु. ४

६. मोहणिज्जवज्जाणं **सत्तण्हं** कम्मपगडीणं एकूणसत्तरिं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ। –सम. सम. ६९, सु. ३

७. **अट्ठण्हं** कम्मपगडीणं सत्ताणउइं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ। –सम. सम. ९७, सु. ३

२५. संयुक्त कर्मों की उत्तर प्रकृतियाँ–

१. दर्शनावरण और नाम–इन दोनों कर्मों की इक्यावन (उत्तर-प्रकृतियाँ) कही गई हैं।

२. (क) ज्ञानावरणीय, नाम और अन्तराय–इन तीन कर्म-प्रकृतियों की बावन उत्तर-प्रकृतियाँ कही गई हैं।

(ख) दर्शनावरणीय, नाम तथा आयु–इन तीन कर्म-प्रकृतियों की पचपन उत्तर-प्रकृतियां कही गई हैं।

३. ज्ञानावरणीय, मोहनीय, गोत्र और आयु–इन चार कर्म-प्रकृतियों की उनतालीस उत्तर-प्रकृतियाँ कही गई हैं।

४. ज्ञानावरणीय, वेदनीय, आयु, नाम और अन्तराय–इन पांच कर्म-प्रकृतियों की अट्ठावन उत्तर-प्रकृतियां कही गई हैं।

५. (क) आदि (ज्ञानावरण) अन्तिम (अन्तराय) कर्म-प्रकृतियों को छोड़कर शेष छह कर्म-प्रकृतियों की सत्तासी उत्तर-प्रकृतियां कही गई हैं।

(ख) आयु और गोत्रकर्म को छोड़कर शेष छह कर्म-प्रकृतियों की इक्यानवें उत्तर-प्रकृतियां कही गई हैं।

६. मोहनीय–को छोड़कर शेष सात कर्मों की उनहत्तर उत्तर-प्रकृतियाँ कही गई हैं।

७. आठों कर्म प्रकृतियों की सत्तानवें उत्तर-प्रकृतियाँ कही गई हैं।

२६. णियट्टिबायराइसु मोहणिज्ज कम्मंसाणं सत्ता परूवणं–

णियट्टिबायरस्स णं खवियसत्तयस्स मोहणिज्जस्स कम्मस्स एक्कवीसं कम्मंसा संतकम्मा पण्णत्ता, तं जहा–

(१-४) अपच्चक्खाणकसाए कोहे, एवं माणे माया लोभे।
(५-८) पच्चक्खाणकसाए कोहे, एवं माणे माया लोभे।
(९-१२) संजलणे कोहे, एवं माणे माया लोभे।
(१३) इत्थिवेए, (१४) पुरिसवेए, (१५) णपुंसगवेए, (१६) हासे, (१७) अरति, (१८) रति, (१९) भय, (२०) सोगे, (२१) दुगुंछा। –सम. सम. २१, सु. २

२६. निवृत्तिबादरादि में मोहनीय कर्मांशों की सत्ता का प्ररूपण–

जिसने सात कर्म प्रकृतियों को क्षीण कर दिया है ऐसा निवृत्तिबादरगुणस्थानवर्ती संयत के मोहनीय कर्म की इक्कीस प्रकृतियों के कर्मांश सत्ता में रहते हैं, यथा–

(१-४) अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय,
(५-८) प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय,
(९-१२) संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय,
(१३) स्त्री वेद, (१४) पुरुष वेद, (१५) नपुंसक वेद, (१६) हास्य, (१७) अरति, (१८) रति, (१९) भय, (२०) शोक, (२१) जुगुप्सा।

१. उत्त. अ. ३३, गा. १५-१६

अभवसिद्धियाणं जीवाणं मोहणिज्जस्स कम्मस्स छव्वीसं कम्मंसा संतकम्मा पण्णत्ता, तं जहा–

१. मिच्छत्तमोहणिज्जं, २-१७. सोलस कसाया,
१८. इत्थीवेए, १९. पुरिसवेए,
२०. नपुंसकवेए, २१. हासं,
२२. अरति, २३. रति,
२४. भयं, २५. सोगं,
२६. दुगुंछा। –सम. सम. २६, सु. २

वेयगसम्मत्तबंधोवरयस्स णं मोहणिज्जस्स कम्मस्स सत्तावीसं उत्तरपगडीओ संतकम्मंसा पण्णत्ता। –सम. सम. २७, सु. ५

भवसिद्धियाणं जीवाणं अत्थेगइयाणं मोहणिज्जस्स कम्मस्स अट्ठावीसं कम्मंसा संतकम्मा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सम्मत्तवेयणिज्जं, २. मिच्छत्तवेयणिज्जं,
३. सम्ममिच्छत्तवेयणिज्जं ४-१९. सोलस कसाया,
२०-२८. णव णो कसाया। –सम. सम. २८, सु. २

२७. अपज्जत्त विगलिंदियाणं वंधमाण नामकम्म उत्तरपयडीओ–

मिच्छादिट्ठिविगलिंदिए णं अपज्जत्तए णं संकिलिट्ठपरिणामे णामस्स कम्मस्स पणवीसं उत्तरपगडीओ णिबंधइ, तं जहा–

१. तिरियगइणामं, २. विगलिंदियजाइणामं,
३. ओरालियसरीरणामं, ४. तेयगसरीरणामं,
५. कम्मगसरीरणामं, ६. हुंडगसंठाणणामं,
७. ओरालियसरीरंगोवंगणामं, ८. सेवट्टसंघयणणामं,
९. वण्णणामं, १०. गंधणामं,
११. रसणामं, १२. फासणामं,
१३. तिरियाणुपुव्विणामं, १४. अगुरुलहुणामं,
१५. उवघायणामं, १६. तसणामं,
१७. वायरणामं, १८. अपज्जत्तयणामं,
१९. पत्तेयसरीरणामं, २०. अथिरणामं,
२१. असुभणामं, २२. दुभगणामं,
२३. अणादेज्जणामं, २४. अजसोकित्तीणामं,
२५. निम्माणणामं। –सम. सम. २५, सु. ६

२८. देव-णेरइय पडुच्च णामकम्मस्स वंधमाण उत्तरपयडीओ–

जीवे णं देवगइम्मि वंधमाणे नामस्स कम्मस्स अट्ठावीसं उत्तरपगडीओ णिवंधइ, तं जहा–

१. देवगइनामं, २. पंचिंदियजाइनामं,
३. वेउव्वियसरीरनामं, ४. तेयगसरीरनामं,
५. कम्मणसरीरनामं, ६. समचउरंससंठाणनामं,
७. वेउव्वियसरीरंगोवंगनामं, ८. वण्णनामं,
९. गंधनामं, १०. रसनामं,
११. फासनामं, १२. देवाणुपुव्विनामं,
१३. अगुरुलहुनामं, १४. उवघायनामं,

अभवसिद्धिक जीवों के मोहनीय कर्म के छव्वीस कर्मांश (उत्तर प्रकृतियां) सत्ता में कहे गये हैं, यथा–

१. मिथ्यात्वमोहनीय, २-१७. सोलह कषाय,
१८. स्त्रीवेद, १९. पुरुषवेद,
२०. नपुंसकवेद २१. हास्य,
२२. अरति, २३. रति,
२४. भय, २५. शोक,
२६. जुगुप्सा।

वेदक सम्यक्त्व के वंध से रहित जीव के मोहनीय कर्म के सत्ताईस कर्मांश (उत्तर प्रकृतियाँ) सत्ता में कहे गये हैं।

कितनेक भव-सिद्धिक जीवों के मोहनीय कर्म के अट्ठाईस कर्मांश (उत्तर प्रकृतियां) सत्ता में कहे गये हैं, यथा–

१. सम्यक्त्व वेदनीय, २. मिथ्यात्व वेदनीय,
३. सम्यक्-मिथ्यात्व वेदनीय, ४-१९. सोलह कषाय,
२०-२८ नौ नोकषाय।

२७. अपर्याप्त विकलेन्द्रियों में वंधने वाली नाम कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ–

संक्लिष्ट परिणाम वाले अपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) जीव नामकर्म की पच्चीस उत्तर प्रकृतियों को वांधते हैं, यथा–

१. तिर्यग्गतिनाम, २. विकलेन्द्रिय जातिनाम,
३. औदारिकशरीरनाम, ४. तैजसशरीरनाम,
५. कार्मणशरीरनाम, ६. हुंडकसंस्थान नाम,
७. औदारिकशरीरांगोपांगनाम, ८. सेवार्त्तसंहनननाम,
९. वर्णनाम, १०. गन्धनाम,
११. रसनाम, १२. स्पर्शनाम,
१३. तिर्यञ्चानुपूर्वीनाम, १४. अगुरुलघुनाम,
१५. उपघातनाम, १६. त्रसनाम,
१७. वादरनाम, १८. अपर्याप्तकनाम,
१९. प्रत्येकशरीरनाम, २०. अस्थिर नाम,
२१. अशुभनाम, २२. दुर्भगनाम,
२३. अनादेयनाम, २४. अयशःकीर्तिनाम,
२५. निर्माणनाम।

२८. देव और नैरयिकों की अपेक्षा वंधने वाली नामकर्म की उत्तर प्रकृतियाँ–

देवगति को बांधने वाला जीव नामकर्म की अट्ठाईस उत्तरप्रकृतियों को बांधता है, यथा–

[illegible]

१५. पराघायनामं, १६. उस्सासनामं,
१७. पसत्थविहायोगइनामं, १८. तसनामं,
१९. बायरनामं, २०. पज्जत्तनामं,
२१. पत्तेयसरीरनामं,
२२. थिराथिराणं दोण्हं अण्णयरं एगनामं णिबंधइ,
२३. सुभासुभाणं दोण्हं अण्णयरं एगनामं णिबंधइ,
२४. सुभगणामं, २५. सुस्सरणामं,
२६. आएज्ज अणाएज्जणामाणं दोण्हं अण्णयरं एगनामं णिबंधइ,
२७. जसोकित्तिनामं, २८. निम्माणनामं।

एवं चेव नेरइया वि, णाणत्तं–

१. अप्पसत्थविहायगइनामं, २. हुंडसंठाणनामं,
३. अथिरनामं, ४. दुब्भगनामं,
५. असुभनामं, ६. दुस्सरनामं,
७. अणादिज्जनामं, ८. अजसोकित्तीनामं,
९. निम्माणनामं। –सम. सम. २८, सु. ५

जीवे णं पसत्थज्झवसाणजुत्ते भविए सम्मद्दिट्ठी तित्थकरनामसहियाओ णामस्स णियमा एगूणतीसं उत्तरपगडीओ णिबंधित्ता वेमाणिएसु देवेसु देवत्ताए उववज्जइ। –सम. सम. २९, सु. ९

१५. पराघातनाम, १६. उच्छ्वासनाम,
१७. प्रशस्त विहायोगतिनाम, १८. त्रसनाम,
१९. बादरनाम, २०. पर्याप्तनाम,
२१. प्रत्येक शरीरनाम,
२२. स्थिर-अस्थिर नामों में से कोई एक बन्धकर्ता है।
२३. शुभ-अशुभनामों में से कोई एक बन्धकर्ता है।
२४. सुभगनाम, २५. सुस्वरनाम,
२६. आदेय-अनादेय नामों में से कोई एक बन्धकर्ता है।
२७. यशकीर्तिनाम, २८. निर्माणनाम,

इसी प्रकार नैरयिकों की भी उत्तर-प्रकृतियां जाननी चाहिए, किन्तु इतनी भिन्नता है कि–

१. अप्रशस्त विहायोगतिनाम, २. हुंडकसंस्थाननाम,
३. अस्थिरनाम, ४. दुर्भगनाम,
५. अशुभनाम, ६. दुःस्वरनाम,
७. अनादेयनाम, ८. अयशस्कीर्तिनाम,
९. निर्माण नाम,

प्रशस्त अध्यवसाय (परिणाम) से युक्त सम्यग्दृष्टि भव्य जीव नाम कर्म की पूर्वोक्त अट्ठाईस प्रकृतियों के साथ तीर्थंकर नामकर्म सहित उनतीस प्रकृतियों को बांधकर (नियमतः) वैमानिक देवों में देवरूप से उत्पन्न होता है।

२९. चउसु कम्मपयडीसु परीसहाणं समोयारं–

प. कइ णं भंते ! परीसहा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! बावीसं परीसहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. दिगिंछा परीसहे जाव २२ दंसण परीसहे।

प. एए णं भंते ! बावीसं परीसहा कइसु कम्मपयडीसु समोयरंति?

उ. गोयमा ! चउसु कम्मपयडीसु समोयरंति, तं जहा–
१. नाणावरणिज्जे, २. वेयणिज्जे,
३. मोहणिज्जे, ४. अंतराइए।

प. १. नाणावरणिज्जे णं भंते ! कम्मे कइ परीसहा समोयरंति?

उ. गोयमा ! दो परीसहा समोयरंति, तं जहा–
१. पण्णापरीसहे य, २. अण्णाणपरीसहे य।

प. २. वेयणिज्जे णं भंते ! कम्मे कइ परीसहा समोयरंति?

उ. गोयमा ! एक्कारस परीसहा समोयरंति, तं जहा–
गाहा १-५ पंचेव आणुपुव्वी,
[illegible] ७. सेज्जा, ८. वहे य, ९. रोगे य।

[illegible] ११. [illegible] य।
[illegible]

२९. चार कर्मप्रकृतियों में परीषहों का समवतार–

प्र. भंते ! परीषह कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. गौतम ! बावीस परीषह कहे गए हैं, यथा–
१. क्षुधा परीषह यावत् २२ दर्शन परीषह।

प्र. भंते ! इन बावीस परीषहों का किन कर्मप्रकृतियों में समवतार (समावेश) हो जाता है?

उ. गौतम ! चार कर्मप्रकृतियों में समवतार होता है, यथा–
१. ज्ञानावरणीय, २. वेदनीय,
३. मोहनीय, ४. अन्तराय।

प्र. १. भंते ! ज्ञानावरणीय कर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है?

उ. गौतम ! दो परीषहों का समवतार होता है, यथा–
१. प्रज्ञापरीषह, २. अज्ञानपरीषह।

प्र. २. भंते ! वेदनीय कर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है?

उ. गौतम ! ग्यारह परीषहों का समवतार होता है, यथा–
गाथार्थ–१-५ अनुक्रम से पहले के पांच परीषह
(१. क्षुधापरीषह, २. पिपासापरीषह, ३. शीतपरीषह, ४. उष्णपरीषह और ५. दंश-मशकपरीषह) ६. चर्यापरीषह, ७. शय्या परीषह, ८. वधपरीषह, ९. रोगपरीषह, १०. तृणस्पर्शपरीषह, ११. जल्ल (मल) परीषह।
ये ग्यारह परीषह वेदनीय कर्म से होते हैं।

प. ३. (क) दंसणमोहणिज्जे णं भंते ! कम्मे कइ परीसहा समोयरंति ?

उ. गोयमा ! एगे दंसण परीसहे समोयरंति।

प. (ख) चरित्तमोहणिज्जे णं भंते ! कम्मे कइ परीसहा समोयरंति ?

उ. गोयमा ! सत्त परीसहा समोयरंति, तं जहा–

गाहा–१. अरइ, २. अचेल, ३. इत्थी, ४. निसीहिया,
५. जायणा, य ६. अक्कोसे,
७. सक्कारपुरक्कारे
चरित्तमोहम्मि सत्तेते॥

प. ४. अंतराइए णं भंते ! कम्मे कइ परीसहा समोयरंति ?

उ. गोयमा ! एगे अलाभपरीसहे समोयरति।

—विया. स. ८, उ. ८, सु. २४-२९

प्र. ३. (क) भंते ! दर्शन-मोहनीय कर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है ?

उ. गौतम ! एक दर्शनपरीषह का समवतार होता है।

प्र. (ख) भंते ! चारित्रमोहनीय कर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है ?

उ. गौतम ! सात परीषहों का समवतार होता है, यथा–

गाथार्थ–१. अरतिपरीषह, २. अचेलपरीषह, ३. स्त्रीपरीषह, ४. निषद्यापरीषह, ५. याचनापरीषह, ६. आक्रोशपरीषह, ७. सत्कार-पुरस्कारपरीषह।

ये सात परीषह चारित्रमोहनीय कर्म से होते हैं।

प्र. ४. भंते ! अन्तरायकर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है ?

उ. गौतम ! एक अलाभपरीषह का समवतार होता है।

३०. अट्ठ-सत्त-छ-एक्कविहबंधगे अबंधगे य परीसहा–

प. सत्तविहबंधगस्स णं भंते ! कइ परीसहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! बावीसं परीसहा पण्णत्ता,

वीसं पुण वेदेइ

जं समयं सीयपरीसहं वेदेइ, णो तं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ।

जं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ, णो तं समयं सीयपरीसहं वेदेइ।

जं समयं चरियापरीसहं वेदेइ, णो तं समयं निसीहियापरीसहं वेदेइ।

जं समयं निसीहियापरीसहं वेदेइ, णो तं समयं चरियापरीसहं वेदेइ।

एवं अट्ठविहबंधगस्स वि,

प. छव्विहबंधगस्स णं भंते ! सरागछउमत्थस्स कइ परीसहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! चोद्दस परीसहा पण्णत्ता, बारस पुण वेदेइ,

जं समयं सीयपरीसहं वेदेइ, णो तं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ।

जं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ, णो तं समयं सीयपरीसहं वेदेइ।

जं समयं चरियापरीसहं वेदेइ, णो तं समयं सेज्जापरीसहं वेदेइ।

जं समयं सेज्जापरीसहं वेदेइ, णो तं समयं चरियापरीसहं वेदेइ।

प. एगविहबंधगस्स णं भंते ! वीयरागछउमत्थस्स कइ परीसहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! एवं चेव जहेव छव्विहबंधगस्स।

३०. आठ - सात - छः एक विध बंधक और अबंधक में परीषह–

प्र. भंते ! सात प्रकार के कर्मों को बांधने वाले जीव के कितने परीषह कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! बावीस परीषह कहे गए हैं।

परन्तु वह जीव एक साथ बीस परीषहों का वेदन करता है,

जिस समय वह शीतपरीषह वेदता है, उस समय उष्णपरीषह का वेदन नहीं करता,

जिस समय उष्णपरीषह का वेदन करता है, उस समय शीतपरीषह का वेदन नहीं करता।

जिस समय चर्यापरीषह का वेदन करता है, उस समय निषद्यापरीषह का वेदन नहीं करता।

जिस समय निषद्यापरीषह का वेदन करता है, उस समय चर्यापरीषह का वेदन नहीं करता।

इसी प्रकार आठ प्रकार के कर्म बांधने वाले के विषय में भी जानना चाहिए।

प्र. भंते ! छह प्रकार के कर्म बांधने वाले सराग छद्मस्थ जीव के कितने परीषह कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! चौदह परीषह कहे गए हैं, किन्तु वह एक साथ बारह परीषह वेदता है।

जिस समय शीतपरीषह वेदता है, उस समय उष्णपरीषह का वेदन नहीं करता,

जिस समय उष्णपरीषह का वेदन करता है, उस समय शीतपरीषह का वेदन नहीं करता।

जिस समय चर्यापरीषह का वेदन करता है, उस समय शय्यापरीषह का वेदन नहीं करता,

जिस समय शय्यापरीषह का वेदन करता है, उस समय चर्यापरीषह का वेदन नहीं करता।

प्र. भंते ! [illegible] परीषह कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार षड्विधबंधक के विषय में कहा, उसी प्रकार एकविधबंधक के विषय में भी जानना चाहिए।

प. एगविहबंधगस्स णं भंते ! सजोगिभवत्थकेवलिस्स कइ परीसहा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! एक्कारस परीसहा पण्णत्ता,
नव पुण वेदेइ।
सेसं जहा छव्विहबंधगस्स।

प. अबंधगस्स णं भंते ! अजोगिभवत्थकेवलिस्स कइ परीसहा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! एक्कारस परीसहा पण्णत्ता,
नव पुण वेदेइ।
जं समयं सीयपरीसहं वेदेइ, नो तं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ।
जं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ, नो तं समयं सीयपरीसहं वेदेइ।
जं समयं चरियापरीसहं वेदेइ, नो तं समयं सेज्जापरीसहं वेदेइ।
जं समयं सेज्जापरीसहं वेदेइ, नो तं समयं चरियापरीसहं वेदेइ। *–विया. स. ८, उ. ८, सु. ३०-३४*

प्र. भंते ! एकविधवन्धक सयोगी-भवस्थ केवली के कितने परीषह कहे गए हैं?

उ. गौतम ! ग्यारह परीषह कहे गए हैं,
किन्तु वह नौ परीषहों का वेदन करता है।
शेष समग्र कथन षड्विधवन्धक के समान समझ लेना चाहिए।

प्र. भंते ! अवन्धक अयोगी-भवस्थ-केवली के कितने परीषह कहे गए हैं?

उ. गौतम ! ग्यारह परीषह कहे गए हैं।
किन्तु वह नौ परीषहों का वेदन करता है।
जिस समय शीत परीषह का वेदन करता है, उस समय उष्णपरीषह का वेदन नहीं करता।
जिस समय उष्णपरीषह का वेदन करता है, उस समय शीतपरीषह का वेदन नहीं करता।
जिस समय चर्या परीषह का वेदन करता है, उस समय शय्या परीषह का वेदन नहीं करता।
जिस समय शय्यापरीषह का वेदन करता है, उस समय चर्या परीषह का वेदन नहीं करता।

३१. जीवेहिं दुट्ठाणाइ णिव्वत्तिय पुग्गलाणं पावकम्मत्ताए चिणाइ परूवणं–

१. जीवा णं दुट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा, चिणंति वा, चिणिस्संति वा, तं जहा–
 १. तसकायनिव्वत्तिए चेव,
 २. थावरकायनिव्वत्तिए चेव।
एवं उवचिणिंसु वा, उवचिणंति वा, उवचिणिस्संति वा।
३. बंधिंसु वा, बंधंति वा, बंधिस्संति वा,
४. उदीरिंसु वा, उदीरेंति वा, उदीरिस्संति वा,
५. वेदेंसु वा, वेदेंति वा, वेदिस्संति वा,
६. णिज्जरिंसु वा, णिज्जरंति वा, णिज्जरिस्संति वा। *–ठाणं. अ. २, उ. ४, सु. १२५*

जीवा णं तिट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा, चिणंति वा, चिणिस्संति वा, तं जहा–
१. इत्थिणिव्वत्तिए, २. पुरिसणिव्वत्तिए,
३. णपुंसगणिव्वत्तिए।
एवं उवचिण-बंध-उदीर-वेय तह णिज्जरा चेव। *–ठाणं. अ. ३, उ. ४, सु. २३३*

जीवा णं चउट्ठाणनिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा, चिणंति वा, चिणिस्संति वा, तं जहा–
१. नेरइयनिव्वत्तिए, २. तिरिक्खजोणियनिव्वत्तिए,
३. मणुस्सनिव्वत्तिए, ४. देवनिव्वत्तिए।
एवं उवचिण-बंध-उदीर-वेय तह णिज्जरा चेव। *–ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३८७*

जीवा णं पंचट्ठाणनिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा, चिणंति वा, चिणिस्संति वा, तं जहा–

३१. जीवों द्वारा द्विस्थानिकादि निर्वर्तित पुद्गलों का पापकर्म के रूप में चयादि का प्ररूपण–

१. जीवों ने द्वि-स्थान निर्वर्तित पुद्गलों का पाप-कर्म के रूप में चय किया है, करते हैं और करेंगे, यथा–
 १. त्रसकाय निर्वर्तित,
 २. स्थावरकाय निर्वर्तित–
इसी प्रकार-उपचय किया है, करते हैं और करेंगे।
३. बन्धन किया है, करते हैं और करेंगे।
४. उदीरण किया है, करते हैं और करेंगे।
५. वेदन किया है, करते हैं और करेंगे।
६. निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे।

जीवों ने त्रिस्थान-निर्वर्तित पुद्गलों का पापकर्म के रूप में चय किया है, करते हैं और करेंगे, यथा–
१. स्त्री–निर्वर्तित, २. पुरुष-निर्वर्तित,
३. नपुंसक निर्वर्तित,
इसी प्रकार उपचय, बन्ध, उदीरण, वेदन तथा निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे कहना चाहिये।

जीवों ने चार स्थानों से निर्वर्तित पुद्गलों का पाप कर्म के रूप में चय किया है, करते हैं और करेंगे, यथा–
१. नैरयिक निर्वर्तित, २. तिर्यक्ंयोनिक निर्वर्तित,
३. मनुष्य निर्वर्तित, ४. देव निर्वर्तित।
इसी प्रकार उपचय, बंध, उदीरण, वेदन तथा निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे कहना चाहिए।

जीवों ने पांच स्थानों से निर्वर्तित पुद्गलों का पापकर्म के रूप में चय किया है, करते हैं और करेंगे, यथा–

१. एगिंदियनिव्वत्तिए, २. वेइंदियनिव्वत्तिए,
३. तेइंदिय निव्वत्तिए, ४. चउरिंदिय निव्वत्तिए,
५. पंचेंदिय निव्वत्तिए।

एवं उवचिण-बंध-उदीरण-वेयण तह णिज्जरणं चेव।

–ठाणं अ. ५, उ. ३, सु. ४७३

जीवा णं छट्ठाणनिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए
चिणिंसु वा, चिणंति वा, चिणिस्संति वा, तं जहा–

१. पुढविकाइय निव्वत्तिए २. आउकाइय निव्वत्तिए,
३. तेउकाइय निव्वत्तिए, ४. वाउकाइय निव्वत्तिए,
५. वणस्सइकाइय निव्वत्तिए, ६. तसकाइय निव्वत्तिए।

एवं उवचिण–बंध-उदीरण-वेयण तह निज्जरणं चेव।

–ठाणं अ. ६, सु. ५४०

जीवा णं सत्तट्ठाणनिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए
चिणिंसु वा, चिणंति वा, चिणिस्संति वा, तं जहा–

१. नेरइय निव्वत्तिए, २. तिरिक्खजोणिय णिव्वत्तिए,
३. तिरिक्खजोणिणी णिव्वत्तिए,
४. मणुस्स णिव्वत्तिए, ५. मणुस्सी णिव्वत्तिए,
६. देव णिव्वत्तिए, ७. देवी णिव्वत्तिए।

एवं उवचिण-बंध-उदीरण-वेयण तह निज्जरणं चेव।

–ठाणं. अ. ७, सु. ५९२

जीवा णं अट्ठठाण निव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए
चिणिंसु वा, चिणंति वा, चिणिस्संति वा, तं जहा–

१. पढमसमय-नेरइयनिव्वत्तिए
२. अपढमसमय-नेरइयनिव्वत्तिए,
३. पढमसमय तिरियनिव्वत्तिए,
४. अपढमसमय तिरिय निव्वत्तिए,
५. पढमसमय मणुयनिव्वत्तिए,
६. अपढमसमय मणुयनिव्वत्तिए,
७. पढमसमय देवनिव्वत्तिए,
८. अपढमसमय-देवनिव्वत्तिए,

एवं उवचिण-बंध-उदीरण-वेयण तह निज्जरणं चेव।

–ठाणं. अ. ८, सु. ६६०

जीवा णं णवट्ठाणनिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए
चिणिंसु वा, चिणंति वा, चिणिस्संति वा, तं जहा–

१. पुढविकाइय निव्वत्तिए, २. आउकाइय निव्वत्तिए,
३. तेउकाइय निव्वत्तिए, ४. वाउकाइय निव्वत्तिए,
५. वणस्सइकाइय निव्वत्तिए, ६. वेइंदिय निव्वत्तिए,
७. तेइंदिय निव्वत्तिए, ८. चउरिंदिय निव्वत्तिए,
९. पंचेंदिय निव्वत्तिए।

एवं उवचिण-बंध-उदीरण-वेयण तह निज्जरणं चेव।

–ठाणं. अ. ९, सु. [illegible]

जीवा णं दसट्ठाणनिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए
चिणिंसु वा, चिणंति वा, चिणिस्संति वा, तं जहा–

१. पढमसमय एगिंदिय निव्वत्तिए,
२. अपढमसमय एगिंदिय निव्वत्तिए,

१. एकेन्द्रियनिर्वर्तित, २. द्वीन्द्रियनिर्वर्तित,
३. त्रीन्द्रियनिर्वर्तित, ४. चतुरिन्द्रियनिर्वर्तित,
५. पंचेन्द्रियनिर्वर्तित।

इसी प्रकार उपचय, बंध, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे कहना चाहिए।

जीवों ने छह स्थान निर्वर्तित पुद्गलों का पापकर्म के रूप में चय किया है, करते हैं और करेंगे, यथा–

१. पृथ्वीकायनिर्वर्तित, २. अप्कायनिर्वर्तित,
३. तेजस्कायनिर्वर्तित, ४. वायुकायनिर्वर्तित,
५. वनस्पतिकायनिर्वर्तित, ६. त्रसकायनिर्वर्तित।

इसी प्रकार उपचय, बंध, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे कहना चाहिए।

जीवों ने सात स्थानों से निर्वर्तित पुद्गलों का, पापकर्म के रूप में, चय किया है, करते हैं और करेंगे, यथा–

१. नैरयिक निर्वर्तित, २. तिर्यक्योनिक निर्वर्तित,
३. तिर्यक्योनिकी निर्वर्तित, ४. मनुष्य निर्वर्तित,
५. मानुषी निर्वर्तित, ६. देव निर्वर्तित,
७. देवी निर्वर्तित।

इसी प्रकार उपचय, बंध, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं, और करेंगे कहना चाहिए।

जीवों ने आठ स्थानों से निर्वर्तित पुद्गलों का पापकर्म के रूप में चय किया है, करते हैं और करेंगे, यथा–

१. प्रथमसमय नैरयिकनिर्वर्तित
२. अप्रथमसमय नैरयिकनिर्वर्तित,
३. प्रथमसमय तिर्यञ्चनिर्वर्तित,
४. अप्रथमसमय तिर्यञ्चनिर्वर्तित,
५. प्रथमसमय मनुष्यनिर्वर्तित,
६. अप्रथमसमय मनुष्यनिर्वर्तित,
७. प्रथमसमय देवनिर्वर्तित,
८. अप्रथमसमय देवनिर्वर्तित।

इसी प्रकार उपचय, बन्ध, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे कहना चाहिए।

जीवों ने नौ स्थानों से निर्वर्तित पुद्गलों का पापकर्म के रूप में चय किया है, करते हैं और करेंगे, यथा–

१. पृथ्वीकाय निर्वर्तित, २. अप्काय निर्वर्तित,
३. तेजस्काय निर्वर्तित, ४. वायुकाय निर्वर्तित,
५. वनस्पतिकाय निर्वर्तित, ६. द्वीन्द्रिय निर्वर्तित,
७. त्रीन्द्रिय निर्वर्तित, ८. चतुरिन्द्रिय निर्वर्तित,
९. पंचेन्द्रिय निर्वर्तित।

इसी प्रकार उपचय, बन्ध, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे कहना चाहिए।

जीवों ने दस स्थानों से निर्वर्तित पुद्गलों का पापकर्म के रूप में चय किया है, करते हैं और करेंगे, यथा–

१. प्रथमसमय एकेन्द्रिय निर्वर्तित,
२. अप्रथमसमय एकेन्द्रिय निर्वर्तित,

३. पढमसमय बेइंदिय निव्वत्तिए,
४. अपढम समय बेइंदिय निव्वत्तिए,
५. पढम समय तेइंदिय निव्वत्तिए,
६. अपढम समय तेइंदिय निव्वत्तिए,
७. पढम समय चउरिंदिय निव्वत्तिए,
८. अपढम समय चउरिंदिय निव्वत्तिए,
९. पढम समय पंचेंदिय निव्वत्तिए,
१०. अपढम समय पंचेंदिय निव्वत्तिए।

एवं उवचिण-बंध-उदीरण-वेयण तह निज्जरणं चेव।

—ठाणं. अ. १०, सु. ७८३

३२. असंजयाइ जीवस्स पाव कम्म बंध परूवणं—

प. जीवे णं भंते ! असंजए अविरए अप्पडिहय पच्चक्खायपाव कम्म सकिरिए असंवुडे एगंतदंडे एगंतबाले एगंतसुत्ते पावकम्मं अण्हाइ ?

उ. हंता, गोयमा ! अण्हाइ।

प. जीवे णं भंते ! असंजए जाव एगंतसुत्ते मोहणिज्जं पावकम्मं अण्हाइ ?

उ. हंता, गोयमा ! अण्हाइ। *—उव. सु. ६४-६५*

३३. पावकम्माणं उदीरणाइ णिमित्त परूवणं—

जीवा णं दोहिं ठाणेहिं पावं कम्मं उदीरेंति, तं जहा—
१. अब्भोवगमियाए चेव वेयणाए,
२. उवक्कमियाए चेव वेयणाए।

जीवा णं दोहिं ठाणेहिं पावंकम्मं वेदेंति, तं जहा—
१. अब्भोवगमियाए चेव वेयणाए,
२. उवक्कमियाए चेव वेयणाए।

जीवा णं दोहिं ठाणेहिं पावंकम्मं णिज्जरेंति, तं जहा—
१. अब्भोवगमियाए चेव वेयणाए,
२. उवक्कमियाए चेव वेयणाए। *—ठाणं. अ. २, उ. ४, सु. १०७,*

३४. जीव चउवीसदंडएसु कडाणं पावकम्माणं णाणत्तं—

प. जीवाणं भंते ! पावेकम्मे जे य कडे जे य कज्जइ जे य कज्जिस्सइ अत्थियाइं तस्स केयि णाणत्ते ?

उ. हंता, मागंदियपुत्ता ! अत्थि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—
"जीवाणं पावे कम्मे जे य कडे जे य कज्जइ जे य कज्जिस्सइ अत्थियाइं तस्स णाणत्ते ?"

उ. मागंदियपुत्ता ! से जहानामए—केइ पुरिसे धणुं परामुसइ, धणुं परामुसित्ता, उसुं परामुसइ, उसुं परामुसित्ता, ठाणं ठाइ, ठाणं ठाइत्ता, आयतकण्णायतं उसुं करेइ, आयतकण्णायतं उसुं करित्ता, उड्ढं वेहासं उव्विहइ।
से नूणं मागंदियपुत्ता ! तस्स उसुस्स उड्ढं वेहासं उव्वीढस्स समाणस्स एयति वि णाणत्तं जाव तं भावं परिणमइ वि णाणत्तं ?

३. प्रथम समय द्वीन्द्रिय निर्वर्तित,
४. अप्रथम समय द्वीन्द्रिय निर्वर्तित,
५. प्रथम समय त्रीन्द्रिय निर्वर्तित,
६. अप्रथम समय त्रीन्द्रिय निर्वर्तित,
७. प्रथम समय चतुरिन्द्रिय निर्वर्तित,
८. अप्रथम समय चतुरिन्द्रिय निर्वर्तित,
९. प्रथन समय पंचेन्द्रिय निर्वर्तित,
१०. अप्रथम समय पंचेन्द्रिय निर्वर्तित।

इसी प्रकार उपचय, बंध, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे कहना चाहिए।

३२. असंयतादि जीव के पाप कर्म बंध का प्ररूपण—

प्र. भंते ! असंयत, अविरत जिसने प्रत्याख्यान द्वारा पाप कर्मों का परित्याग नहीं किया है जो आरंभादि क्रियाओं से युक्त, असंवृत, एकांत दंड, एकांत बाल, एकांत सुप्त है क्या वह जीव पाप कर्मों का बंध करता है ?

उ. हां, गौतम ! बंध करता है।

प्र. भंते ! असंयत यावत् एकांत सुप्त जीव क्या मोहनीय पाप कर्म का बंध करता है ?

उ. हां, गौतम ! बंध करता है।

३३. पापकर्मों के उदीरणादि के निमित्तों का प्ररूपण—

जीव दो स्थानों से पाप-कर्म की उदीरणा करते हैं, यथा—
१. आभ्युपगमिकी (स्वीकृत तपस्या आदि की) वेदना से,
२. औपक्रमिकी (रोग आदि की) वेदना से।

जीव दो स्थानों से पापकर्म का वेदन करते हैं, यथा—
१. आभ्युपगमिकी वेदना से,
२. औपक्रमिकी वेदना से।

जीव दो स्थानों से पापकर्म का निर्जरण करते हैं, यथा—
१. आभ्युपगमिकी वेदना से,
२. औपक्रमिकी वेदना से।

३४. जीव चौवीसदंडकों में कृत पापकर्मों का नानात्व—

प्र. भंते ! जीव ने जो पापकर्म किया है, करता है और करेगा क्या उनमें परस्पर नानात्व (भिन्नता) है ?

उ. हां, माकन्दिकपुत्र ! उनमें नानात्व है।

प्र. भंते ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि—
"जीव ने जो पापकर्म किया है, करता है और करेगा, उनमें भिन्नता है ?"

उ. माकन्दिकपुत्र ! जैसे—कोई पुरुष धनुष को हाथ में लेता है धनुष को हाथ में लेकर वाण को हाथ में लेता है और वाण को हाथ में लेकर आसन विशेष से वैठता है और वैठकर वाण को कान तक खींचता है व खींचकर ऊपर आकाश में छोड़ता है।
तव हे माकन्दिकपुत्र ! क्या उस आकाश में वाण के ऊपर जाते समय में भी वाण के कम्पन में नानात्व है यावत् उस उस रूप में परिणत हुए भी नानात्व है ?

"हंता, भगवं ! एयति वि णाणत्तं जाव तं तं भावं परिणमइ वि णाणत्तं।"

से तेणट्ठेणं मागंदियपुत्ता ! एवं वुच्चइ–

"एयति वि णाणत्तं जाव तं तं भावं परिणमइ वि णाणत्तं।"

प. दं. १ नेरइयाणं भंते ! पावकम्मे जे य कडे जे य कज्जिस्सइ अत्थियाइं तस्स केयि णाणत्ते?

उ. मागंदियपुत्ता ! एवं चेव।

दं. २-२४ एवं जाव वेमाणियाणं।

–विया स. १८, उ. ३, सु. २१-२३

हां भंते ! जाते हुए भी कम्पन में भिन्नता है यावत् उस उस रूप में परिणत होते हुए में भी भिन्नता है।

इसीलिए हे माकन्दिकपुत्र ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जाते हुए भी कम्पन में भिन्नता है यावत् उस उस भाव में परिणत होते हुए में भी भिन्नता है।"

प्र. दं. १ भंते ! नैरयिकों ने जो पापकर्म किया है, करते हैं और करेंगे क्या उनमें भिन्नता है?

उ. हां, माकन्दिकपुत्र ! उनमें भिन्नता है। (वह उसी प्रकार है)

दं. २-२४ इसी प्रकार वैमानिकों पर्यंत जान लेना चाहिए।

३५. चउवीसदंडएसु कडाणकम्माणं कया दुहसुहरूवत्तं–

प. दं. १ नेरइयाणं भंते ! पावकम्मे जे य कडे, जे य कज्जइ, जे य कज्जिस्सइ, सव्वे से दुक्खे?

जे निज्जिण्णे से णं सुहे?

उ. हंता, गोयमा ! नेरइयाणं पावकम्मे जे य कडे जे य कज्जइ, जे य कज्जिस्सइ सव्वे से दुक्खे, जे निज्जिण्णे से णं सुहे।

दं. २-२४ एवं जाव वेमाणियाणं।

–विया. स. ७, उ. ८, सु. ३-४

३५. चौवीस दंडकों में कृत कर्मों की सुख-दुखरूपता–

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिकों ने जो पापकर्म किया है, करते हैं और करेंगे, क्या वह सब दुःख रूप है?

और जिनकी निर्जरा की है, क्या वह सब सुख रूप है?

उ. हां, गौतम ! नैरयिकों ने जो पापकर्म किया है, करते हैं और करेंगे वह सब दुःख रूप है और जिनकी निर्जरा की गई है, वह सब सुखरूप है।

दं. २-२४ इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त चौबीस दण्डकों में जान लेना चाहिए।

३६. जीवेसु एक्कारसठाणेहिं पावकम्मं वंध भंगा–

गाहा–१. जीवा य, २. लेस, ३. पक्खिय,
४. दिट्ठी, ५. अन्नाण, ६. नाण, ७. सण्णाओ।
८. वेय, ९. कसाए, १०. उवयोग,
११. योग एक्कारस वि ठाणा॥ *–विया स. २६, उ. १, सु. २, गा. १*

१. जीवं पडुच्च–

प. जीवे णं भंते ! १. पावकम्मं किं वंधी, वंधइ, वंधिस्सइ,

२. वंधी, वंधइ, न वंधिस्सइ,

३. वंधी, न वंधइ, वंधिस्सइ,

४. वंधी, न वंधइ, न वंधिस्सइ?

उ. गोयमा ! १. अत्थेगइए वंधी, वंधइ, वंधिस्सइ,

२. अत्थेगइए वंधी, वंधइ, न वंधिस्सइ,

३. अत्थेगइए वंधी, न वंधइ, वंधिस्सइ,

४. अत्थेगइए वंधी, न वंधइ, न वंधिस्सइ।

२. सलेस्सं अलेस्सं पडुच्च–

प. सलेस्से णं भंते ! जीवे पावकम्मं, किं वंधी, वंधइ, वंधिस्सइ जाव वंधी, न वंधइ, न वंधिस्सइ?

३६. जीवों में ग्यारह स्थानों द्वारा पापकर्म वंध के भंग–

गाथार्थ–१. जीव, २. लेश्या, ३. पाक्षिक (शुक्लपाक्षिक और कृष्णपाक्षिक), ४. दृष्टि, ५. अज्ञान, ६. ज्ञान, ७. संज्ञा, ८. वेद, ९. कषाय, १०. उपयोग, ११. योग, ये ग्यारह स्थान (विषय) हैं, जिनको लेकर वन्ध का कथन किया जाएगा।

१. जीव की अपेक्षा–

प्र. भंते ! १. क्या जीव ने पापकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा?

२. क्या जीव ने पापकर्म बांधा था, बांधता है और नहीं बांधेगा?

३. क्या जीव ने पापकर्म बांधा था, नहीं बांधता है और बांधेगा?

४. क्या जीव ने पापकर्म बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा?

उ. गौतम ! १. किसी जीव ने पापकर्म बांधा था, [illegible]

२. किसी जीव ने पापकर्म बांधा था [illegible]

३. [illegible]

४. [illegible]

२. सलेश्य अलेश्य की अपेक्षा–

प्र. [illegible]

उ. गोयमा ! अत्थेगइए बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव अत्थेगइए बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ।

एवं चत्तारि भंगा।

प. कण्हलेस्से णं भंते ! जीवे पावं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ, अत्थेगइए बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ।

एवं जाव पम्हलेस्से सव्वत्थ पढम-बिइया भंगा।
सुक्कलेस्से जहा सलेस्से तहेव चत्तारि भंगा।

प. अलेस्से णं भंते ! जीवे पावं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ।

एगो चउत्थो भंगो।

×× ×× ××

३. कण्ह–सुक्कपक्खियं पडुच्च–

प. कण्हपक्खिए णं भंते ! जीवे पावं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! **पढम-बितिया भंगा।**

प. सुक्कपक्खिए णं भंते ! जीवे पावं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! **चत्तारि भंगा भाणियव्वा।**

×× ×× ××

४. सम्मदिट्ठीआइं पडुच्च–

सम्मदिट्ठीणं चत्तारि भंगा।
मिच्छादिट्ठीणं पढम-बितिया भंगा।
सम्मामिच्छदिट्ठीणं **एवं चेव।**

×× ×× ××

५. नाणिं पडुच्च–

नाणीणं चत्तारि भंगा।
आभिणिबोहियनाणीणं जाव मणपज्जवनाणीणं चत्तारि भंगा।
केवलनाणीणं चरिमो भंगो जहा अलेस्साणं।

×× ×× ××

६. अन्नाणिं पडुच्च–

अन्नाणीणं पढम-बितिया भंगा।

उ. गौतम ! किसी सलेश्य जीव ने पापकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत् किसी जीव ने बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा।

ये चारों भंग जानने चाहिये।

प्र. भंते ! क्या कृष्णलेश्यी जीव ने पापकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा **यावत्** बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! कोई कृष्णलेश्यी जीव ने पापकर्म बाँधा था, बांधता है और बांधेगा तथा किसी ने बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा। (यह प्रथम द्वितीय भंग है)

इसी प्रकार पद्मलेश्या वाले जीव तक सर्वत्र प्रथम और द्वितीय भंग जानना चाहिए। सलेश्य जीव के समान शुक्ललेश्यी में चारों भंग कहने चाहिए।

प्र. भंते ! अलेश्य जीव ने क्या पापकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत् बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! अलेश्य जीव ने पापकर्म बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा।

यह चौथा भंग है।

×× ×× ××

३. कृष्ण-शुक्लपाक्षिक की अपेक्षा–

प्र. भंते ! क्या कृष्णपाक्षिक जीव ने पापकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत् बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! **पहला और दूसरा भंग जानना चाहिए।**

प्र. भंते ! क्या शुक्लपाक्षिक जीव ने पापकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत् बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! **इसके लिए चारों ही भंग जानने चाहिए।**

×× ×× ××

४. सम्यग्दृष्टि आदि की अपेक्षा–

सम्यग्दृष्टि जीवों में चारों भंग जानना चाहिए।
मिथ्यादृष्टि जीवों में पहला और दूसरा भंग जानना चाहिए।
सम्यग्-मिथ्यादृष्टि जीवों में भी इसी प्रकार पहला और दूसरा भंग जानना चाहिए।

×× ×× ××

५. ज्ञानी की अपेक्षा –

ज्ञानी जीवों में चारों भंग पाये जाते हैं।
आभिनिवोधिक ज्ञानी से मनःपर्यवज्ञानी जीवों तक में भी चारों ही भंग जानने चाहिए।
केवलज्ञानी में अलेश्य के समान अन्तिम भंग जानना चाहिये।

×× ×× ××

६. अज्ञानी की अपेक्षा–

अज्ञानी जीवों में पहला और दूसरा भंग पाया जाता है।

एवं मइअन्नाणीणं, सुयअन्नाणीणं, विभंगनाणीण वि।

×× ×× ××

७. आहारसन्नोवउत्ताइं पडुच्च–

आहारसण्णोवउत्ताणं जाव परिग्गहसण्णोवउत्ताणं पढम-वितिया भंगा।

नो सण्णोवउत्ताणं चत्तारि भंगा।

×× ×× ××

८. सवेयगं-अवेयगं पडुच्च–

सवेयगाणं पढम-वितिया भंगा।

एवं इत्थिवेयग-पुरिसवेयग-नपुंसगवेयगाण वि।

अवेयगाणं चत्तारि भंगा।

×× ×× ××

९. सकसाई-अकसाई पडुच्च–

सकसाईणं चत्तारि भंगा।

कोहकसाइणं पढम-वितिया भंगा।

एवं माणकसाइस्स वि, मायाकसाइस्स वि।

लोभकसाइस्स चत्तारि भंगा।

प. अकसाई णं भंते ! जीवे पावकम्मं–
किं वंधी, वंधइ, वंधिस्सइ जाव–
वंधी, न वंधइ, न वंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए वंधी, न वंधइ, वंधिस्सइ।
अत्थेगइए वंधी, न वंधइ, न वंधिस्सइ।

तइय-चउत्था भंगा।

×× ×× ××

१०. सजोगिं-अजोगिं पडुच्च–

सजोगिस्स चत्तारि भंगा।

एवं मणजोगिस्स वि, वइजोगिस्स वि कायजोगिस्स वि।

अजोगिस्स चरिमो भंगो।

×× ×× ××

११. सागार-अणागारोवउत्तं पडुच्च–

सागारोवउत्ते चत्तारि भंगा।

अणागारोवउत्ते वि चत्तारि भंगा।

– विया. स. २६, उ. १, सु. [illegible]

२६. चउवीस दंडएसु एक्कारसट्ठाणेहिं पावकम्म वंध भंगा–

प. द. १. नेरइए णं भंते ! पावं कम्मं
किं वंधी, वंधइ, वंधिस्सइ जाव
वंधी, न वंधइ, न वंधिस्सइ ?

इसी प्रकार मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और विभंगज्ञानी में भी पहला और दूसरा भंग जानना चाहिए।

×× ×× ××

७. आहार संज्ञोपयुक्तादि की अपेक्षा–

आहार-संज्ञोपयुक्त यावत् परिग्रह-संज्ञोपयुक्त जीवों में पहला और दूसरा भंग पाया जाता है।

नो संज्ञोपयुक्त जीवों में चारों भंग पाये जाते हैं।

×× ×× ××

८. सवेदक-अवेदक की अपेक्षा–

सवेदक जीवों में पहला और दूसरा भंग पाया जाता है।

इसी प्रकार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी में भी प्रथम और द्वितीय भंग पाये जाते हैं।

अवेदक जीवों में चारों भंग पाये जाते हैं।

×× ×× ××

९. सकषायी-अकषायी की अपेक्षा–

सकषायी जीवों में चारों भंग पाये जाते हैं।

क्रोधकषायी जीवों में पहले और दूसरे भंग पाये जाते हैं।

इसी प्रकार मानकषायी तथा मायाकषायी जीवों में भी ये दोनों भंग पाये जाते हैं।

लोभकषायी जीवों में चारों भंग पाये जाते हैं।

प्र. भंते ! क्या अकषायी जीव ने पापकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत् बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! किसी ने पापकर्म बांधा था, नहीं बांधता है और बांधेगा तथा किसी जीव ने बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा।

यह तीसरा चौथा भंग है।

×× ×× ××

१०. सयोगी-अयोगी की अपेक्षा–

सयोगी जीवों में चारों भंग पाये जाते हैं।

इसी प्रकार मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी जीव में चारों भंग पाये जाते हैं।

अयोगी जीव में अन्तिम एक भंग पाया जाता है।

×× ×× ××

११. साकार-अनाकारोपयुक्त की अपेक्षा–

[illegible]

[illegible]

२६. चौबीस दंडकों में ग्यारह स्थानों द्वारा पापकर्म बंध के भंग–

[illegible]

उ. गोयमा ! अत्थेगइए बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ।
अत्थेगइए बंधी, बंधइ, न बंधिस्सइ।

पढम-बितिया भंगा।

प. २. सलेस्से णं भंते ! नेरइए पावं कम्मं किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ,
अत्थेगइए बंधी, बंधइ, न बंधिस्सइ।

पढम-बितिया भंगा।

एवं कण्हलेस्से वि, नीललेस्से वि, काउलेस्से वि।

३. एवं कण्हपक्खिए, सुक्कपक्खिए,
४. सम्मद्दिट्ठी, मिच्छद्दिट्ठी, सम्मामिच्छद्दिट्ठी,
५. नाणी, आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी, ओहिनाणी,
६. अन्नाणी, मइअन्नाणी, सुयअन्नाणी, विभंगनाणी,
७. आहारसन्नोवउत्ते जाव परिग्गहसन्नोवउत्ते,
८. सवेयए, नपुंसकवेयए,
९. सकसायी जाव लोभकसायी,
१०. सजोगी, मणजोगी, वइजोगी, कायजोगी,
११. सागारोवउत्ते, अणागारोवउत्ते।

एएसु सव्वेसु पएसु पढम-बितिया भंगा भाणियव्वा।

दं. २. एवं असुरकुमारस्स वि वत्तव्वया भाणियव्वा,

णवरं—तेउलेस्सा, इत्थिवेयग-पुरिसवेयगा य अब्भहिया भण्णंति-नपुंसगवेयगा न भण्णंति। सेसं तं चेव।

सव्वत्थ ३-११. पढम-बितिया भंगा।

दं. ३-११ एवं जाव थणियकुमारस्स।

दं. १२-२० एवं पुढविकाइयस्स वि आउकाइयस्स वि जाव पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियस्स वि, सव्वत्थ वि एक्कारसठाणेसु पढम-बितिया भंगा।

णवरं—२. जस्स जा लेस्सा, दिट्ठि, नाणं, अन्नाणं, वेदो, जोगो य अत्थि तं तस्स भाणियव्वं।

सेसं सव्वत्थ तहेव।

दं.२१. मणुसस्स जच्चेव जीवपए वत्तव्वया सच्चेव निरवसेसा भाणियव्वा।

दं. २२. वाणमंतरस्स जहा असुरकुमारस्स।

दं. २३-२४ जोइसिय वेमाणियस्स एवं चेव।

णवरं—लेस्साओ जाणियव्वाओ।

सेसं तहेव भाणियव्वं। *—विया. स. २६, उ. १, सु. ३४-४३*

उ. गौतम ! (किसी नैरयिक जीव ने) पापकर्म वांधा था, वांधता है और वांधेगा तथा किसी ने वांधा था, वांधता है और नहीं वांधेगा।

यह पहला और दूसरा भंग है।

प्र. २. भंते ! क्या सलेश्य नैरयिक जीव ने पापकर्म वांधा था, वांधता है और वांधेगा यावत्
वांधा था, नहीं वांधता है और नहीं वांधेगा?

उ. गौतम ! किसी सलेश्य नैरयिक जीव ने पापकर्म वांधा था, वांधता है और वांधेगा तथा किसी ने वांधा था, वांधता है और नहीं वांधेगा।

यह पहला दूसरा भंग है।

इसी प्रकार कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले, कापोतलेश्या वाले नैरयिक जीव में भी प्रथम और द्वितीय भंग पाया जाता है।

३. इसी प्रकार कृष्णपाक्षिक, शुक्लपाक्षिक,
४. सम्यगदृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि,
५. ज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी,
६. अज्ञानी, मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी, विभंगज्ञानी,
७. आहारसंज्ञोपयुक्त यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त,
८. सवेदी, नपुंसकवेदी,
९. सकषायी यावत् लोभकषायी,
१०. सयोगी, मनोयोगी, वचनयोगी, काययोगी,
११. साकारोपयुक्त और अनाकारोपयुक्त,

इन सब पदों में प्रथम और द्वितीय भंग कहना चाहिए।

दं. २. इसी प्रकार असुरकुमारों के विषय में भी प्रथम भंग कहना चाहिए।

विशेष—तेजोलेश्या, स्त्रीवेदक और पुरुषवेदक अधिक चाहिए। नपुंसकवेदक नहीं कहना चाहिए। शेष सब पूर्व

३-११. इन सबमें पहला और दूसरा भंग जानना चाहि

दं. ३-११. इसी प्रकार स्तनितकुमार तक कहना चाहि

दं. १२-२०. इसी प्रकार पृथ्वीकायिक, अप यावत् पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक में भी सर्वत्र ग्यारह स्थ प्रथम और द्वितीय भंग कहना चाहिए।

विशेष—जिसमें जो लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, अज्ञान, वेद औ हों, उसमें वे ही कहने चाहिए।

शेष सब पूर्ववत् है।

दं. २१. मनुष्य के विषय में जीवपद के समान (चारों भंग सम्पूर्ण कथन करना चाहिए।

दं. २२. वाणव्यन्तरों का कथन असुरकुमारों के समान

दं. २३-२४. ज्योतिष्क और वैमानिकों के विषय में भी प्रकार कहना चाहिये।

विशेष—जिसके जो लेश्या हो, वही कहनी चाहिए।

शेष सब पूर्ववत् समझना चाहिए।

३८. चउवीसदंडएसु अणंतरोववण्णगाणं पावकम्मंबंध भंगा–

प. दं. १. अणंतरोववण्णए णं भंते ! नेरइए पावं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! पढम-बिइया भंगा।

प. सलेस्से णं भंते ! अणंतरोववण्णए णेरइए पावकम्मं–
किं बंधी, बंधइ बंधिस्सइ जाव
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! पढम-बिइया भंगा।
णवरं–कण्हपक्खिय तइयो।
एवं सव्वत्थ पढम-बिइया भंगा।

णवरं–सम्मामिच्छत्तं मणजोगो, वइजोगो य ण पुच्छिज्जइ।

दं. २-११. एवं जाव थणियकुमाराणं।

दं. १२-१६. एगिंदियाणं सव्वत्थ पढम-बिइया भंगा।

दं. १७-१९. बेइंदिय, तेइंदिय, चउरिंदियाणं वयजोगो न भण्णइ।

दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं पि सम्मामिच्छत्तं, ओहिणाणं, विभंगणाणं, मणजोगो, वयजोगो–एयाणि पंच पयाणिण भण्णंति।

दं. २१. मणुस्साणं अलेस्स-सम्मामिच्छत्त-मणपज्जवणाण-केवलणाण-विभंगणाण-णो सण्णोवउत्त-अवेयग-अकसायी-मणजोग-वयजोग-अजोगी-एयाणि एक्कारसपयाणि ण भण्णंति।

दं. २२-२४ वाणमंतर, जोइसिय, वेमाणियाण जहा णेरइयाणं जहेव ते तिण्णि ण भण्णंति।

सव्वेसिं जाणि सेसाणि ठाणाणि सव्वत्थ पढम-बिइया भंगा।
–विया. स. २६, उ. २, सु. १-९

३९. चउवीसदंडएसु अचरिमाणं पावकम्मं बंध भंगा–

प. दं. १. अचरिमे णं भंते ! णेरइए पावं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! जहेव पढम उद्देसए तहेव पढम बिइया भंगा भाणियव्वा सव्वत्थ जाव १-२० पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं।

प. दं. २१. अचरिमे णं भंते ! मणुस्से पावं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! १. अत्थेगइए बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ,

३८. चौबीस दंडकों में अनन्तरोपपन्नक पापकर्मबंध के भंग–

प्र. दं. १. भंते ! क्या अनन्तरोपपन्नक नैरयिक ने पापकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत्
बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! प्रथम और द्वितीय भंग होता है।

प्र. भंते ! सलेश्य अनन्तरोपपन्नक नैरयिक ने पापकर्म
बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत्
बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा।

उ. गौतम ! प्रथम और द्वितीय भंग पाया जाता है।
विशेष–कृष्णपाक्षिक में तृतीय भंग पाया जाता है।
इसी प्रकार सभी स्थानों में पहला और दूसरा भंग कहना चाहिए।
विशेष–सम्यग्मिथ्यात्व, मनोयोग और वचनयोग के विषय में प्रश्न नहीं करना चाहिए।

दं. २-११. स्तनितकुमार पर्यन्त इसी प्रकार कहना चाहिए।

दं. १२-१६. एकेन्द्रिय जीवों के सभी स्थानों में प्रथम और द्वितीय भंग कहना चाहिए।

दं. १७-१९. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय में वचनयोग नहीं कहना चाहिए।

दं. २०. पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में भी सम्यग्मिथ्यात्व, अवधिज्ञान, विभंगज्ञान, मनोयोग और वचनयोग ये पाँच स्थान नहीं कहने चाहिए।

दं. २१. मनुष्यों में अलेश्यत्व, सम्यग्मिथ्यात्व, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान, विभंगज्ञान, नो संज्ञोपयुक्त, अवेदक, अकषायी, मनोयोग, वचनयोग और अयोगी ये ग्यारह स्थान नहीं कहने चाहिए।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों के विषय में नैरयिकों के कथन के समान तीन स्थान (सम्यग्मिथ्यात्व, मनोयोग और वचनयोग) नहीं कहने चाहिए।
इन सबके जो शेष स्थान हैं, उनमें प्रथम और द्वितीय भंग जानना चाहिए।

३९. चौबीस दंडकों में अचरिमों के पापकर्म बंध के भंग–

प्र. दं. १. भंते ! क्या अचरिम नैरयिक ने पापकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत् बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! जैसे प्रथम उद्देशक में कहा तदनुसार पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों पर्यन्त दं. १-२० तक सभी में प्रथम और द्वितीय भंग कहना चाहिए।

प्र. दं. २१. भंते ! क्या अचरिम मनुष्य ने पापकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत्–
बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! [illegible]

२. अत्थेगइ बंधी, बंधइ, ण बंधिस्सइ,

३. अत्थेगइए बंधी, ण बंधइ, बंधिस्सइ।

तिण्णिभंगा चरिम भंगविहूणा।

प. सलेस्से णं भंते ! अचरिमे मणूसे पावकम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ?

उ. गोयमा ! **एवं चेव तिण्णि भंगा चरिमविहूणा भाणियव्वा एवं जहेव पढमुद्देसे।**

णवरं–जेसु तत्थ वीससु चत्तारि भंगा तेसु इह आदिल्ला तिण्णि भंगा भाणियव्वा चरिमभंगवज्जा।

अलेस्से, केवलणाणी य अजोगी य एए तिण्णि वि ण पुच्छिज्जंति,

सेसं तहेव

दं. २२-२४ वाणमंतर, जोइसिय, वेमाणिया जहा णेरइए। –*विया. स. २६, उ. ११, सु. १-४*

२. किसी (मनुष्य) ने बांधा था, बांधता है और नहीं बांधेगा,

३. किसी (मनुष्य) ने बांधा था, नहीं बांधता है और बांधेगा।

चौथा भंग छोड़कर ये तीन भंग होते हैं।

प्र. भंते ! क्या सलेश्य अचरम मनुष्य ने पापकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत् बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा?

उ. गौतम ! पूर्ववत् अन्तिम भंग को छोड़ कर शेष तीन भंग प्रथम उद्देशक के समान यहाँ कहने चाहिए।

विशेष–जिन वीस पदों में यहाँ चार भंग कहे हैं उन में अन्तिम भंग को छोड़ कर आदि के तीन भंग यहाँ कहने चाहिए।

यहाँ अलेश्य, केवलज्ञानी और अयोगी के विषय में प्रश्न नहीं करना चाहिए।

शेष स्थानों में पूर्ववत् जानना चाहिए।

दं. २२-२४ वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के विषय में नैरयिक के समान कथन करना चाहिए।

४०. चउवीसदंडएसु एक्कारसठाणेहिं अट्ठ कम्म बंध भंगा–

प. १. जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ?

उ. गोयमा ! **एवं जहेव पावकम्मस्स वत्तव्वया भणिया तहेव णाणावरणिज्जस्स वि भाणियव्वा।**

णवरं–१. जीवपए, दं. २१. मणुस्सपए व, ९. सकसायिम्मि जाव लोभकसायिम्मि य पढम-बिइया भंगा।

अवसेसं–२-८, १०, ११, तं चेव जाव दं. १-२०/२२, २३, २४ वेमाणिया।

२. एवं दरिसणावरणिज्जेण वि चउवीसदंडएसु दंडगो भाणियव्वो निरवसेसं।

प. ३.१ जीवे णं भंते ! वेयणिज्जं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ?

उ. गोयमा ! १. अत्थेगइए बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ,

२. अत्थेगइए बंधी, बंधइ, न बंधिस्सइ,

३. अत्थेगइए बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ।

तइय विहूणा तिय भंगा।

२. सलेस्से वि एवं चेव तइयविहूणा तिय भंगा,

कण्हलेस्से जाव पम्हलेस्से पढम-बिइया भंगा,

सुक्कलेस्से तइयविहूणा तिय भंगा,

अलेस्से चरिमो भंगो।

४०. चौबीस दंडकों में ग्यारह स्थानों द्वारा आठ कर्मों के बंध भंग–

प्र. १. भंते ! क्या जीव ने ज्ञानावरणीय कर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत् बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा?

उ. गौतम ! **जिस प्रकार पापकर्म का कथन कहा है, उसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म का भी कथन करना चाहिए।**

विशेष–१. जीवपद और दं. २१ मनुष्यपद में, ९. सकषायी से लोभकषायी तक में प्रथम और द्वितीय भंग ही कहना चाहिए।

शेष सब कथन वैमानिक तक पूर्ववत् कहना चाहिए।

२. ज्ञानावरणीय कर्म के समान दर्शनावरणीय कर्म के विषय में भी समग्र दण्डक कहने चाहिए।

प्र. ३. भंते ! क्या जीव ने वेदनीयकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत् बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा?

उ. गौतम ! १. किसी जीव ने (वेदनीय कर्म) बांधा था, बांधता है और बांधेगा।

२. (किसी जीव ने) बांधा था, बांधता है और नहीं बांधेगा

३. (किसी जीव ने) बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा।

तीसरा भंग छोड़कर तीन भंग कहने चाहिए।

२. सलेश्य जीव में भी तृतीय भंग को छोड़ कर शेष तीन भंग पाये जाते हैं।

कृष्णलेश्या यावत् पद्मलेश्या वाले जीव में पहला और दूसरा भंग पाया जाता है।

शुक्ललेश्या वाले जीव में तृतीय भंग को छोड़ शेष तीन भंग पाये जाते हैं।

अलेश्यजीव में अन्तिम (चतुर्थ) भंग पाया जाता है।

३. कण्णहपक्खिए पढम-विइया-भंगा।
सुक्कपक्खिए ततियविहूणा तिय भंगा।

४. एवं सम्मदिट्ठिस्स वि।

मिच्छदिट्ठिस्स, सम्मामिच्छदिट्ठिस्स य पढम-विइया भंगा।

६. णाणिस्स ततियविहूणा तिय भंगा,

आभिणिबोहियनाणी जाव मणपज्जवनाणी पढम-वितिया भंगा।

केवलनाणी ततियविहूणा तिय भंगा।

७. एवं नो सन्नोवउत्ते
८. अवेयए,
९. अकसायी,
१०. सागारोवउत्ते, अणागारोवउत्ते एएसु ततियविहूणा तिय भंगा।
११. अजोगिम्मि य चरिमो भंगो।

सेसेसु ५. पढम-वितिया भंगा।

प. १. नेरइए णं भंते ! वेयणिज्जं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ?

उ. गोयमा ! बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ,
बंधी, बंधइ, न बंधिस्सइ,
दं. २-२४. एवं नेरइया जाव वेमाणिय त्ति जस्स जं
१-११. अत्थि।
२-११. सव्वत्थ वि पढम-वितिया भंगा,
दं. २१. णवरं–मणुस्से जहा जीवे।

प. ४-१. जीवे णं भंते ! मोहणिज्जं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ?

उ. गोयमा ! जहेव पावं कम्मं २-११
तहेव मोहणिज्जं पि निरवसेसं जाव. १-२४. वेमाणिए।

प. ५. जीवे णं भंते ! आउयं कम्मं -
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव
अत्थेगइए बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ, [illegible]

२. सलेस्से जाव सुक्कलेस्से चत्तारि भंगा।

अलेस्से चरमो भंगो।

३. कृष्णपाक्षिक में प्रथम और द्वितीय भंग जानना चाहिए। शुक्लपाक्षिक में तृतीय भंग को छोड़ कर शेष तीनों भंग पाये जाते हैं।

४. इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि में भी ये ही तीनों भंग जानने चाहिए।

मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि में प्रथम और द्वितीय भंग है।

६. ज्ञानी में तृतीय भंग को छोड़कर शेष तीनों भंग समझने चाहिए।

आभिनिबोधिक ज्ञानी यावत् मनःपर्यवज्ञानी में प्रथम और द्वितीय भंग जानना चाहिए।

केवलज्ञानी में तृतीय भंग के सिवाय शेष तीनों भंग पाये जाते हैं।

७. इसी प्रकार नो संज्ञोपयुक्त में
८. अवेदी में,
९. अकषायी में,
१०. साकारोपयुक्त एवं अनाकारोपयुक्त में भी तृतीय भंग को छोड़ कर शेष तीनों भंग पाये जाते हैं।
११. अयोगी में अंतिम (चतुर्थ) भंग पाया जाता है।

शेष सभी में प्रथम और द्वितीय भंग जानना चाहिए।

प्र. १. भंते ! क्या नैरयिक जीव ने वेदनीय कर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत् बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा?

उ. गौतम ! नैरयिक जीव ने वेदनीय कर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा अथवा बांधा था, बांधता है और नहीं बांधेगा।

इसी प्रकार वैमानिक तक जानना चाहिए किन्तु जिसके जो लेश्यादि हो वे कहने चाहिए।

इन सभी में पहला और दूसरा भंग है।

विशेष–मनुष्य का कथन सामान्य जीव के समान है।

प्र. ४-१. भंते ! क्या जीव ने मोहनीय कर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत् बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा?

उ. गौतम ! जिस प्रकार पापकर्मबन्ध के विषय में कहा, उसी प्रकार समग्र कथन मोहनीयकर्म बन्ध के विषय में भी वैमानिक तक कहना चाहिए।

प्र. ५. भंते ! क्या जीव ने आयुकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत् बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा?

उ. [illegible]

२. [illegible]

अलेश्यी में अंतिम भंग पाया जाता है।

प. ३. कण्हपक्खिए णं भंते ! आउयं कम्मं–
किं वंधी, वंधइ, वंधिस्सइ जाव–
वंधी, न वंधइ, न वंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए वंधी, बंधइ, बंधिस्सइ,

अत्थेगइए वंधी, न वंधइ, वंधिस्सइ।
पढम-तइय भंगा।
सुक्कपक्खिए ४. सम्मदिट्ठी मिच्छादिट्ठी णं चत्तारि भंगा।

प. सम्मामिच्छादिट्ठी णं भंते ! आउयं कम्मं–
किं वंधी, वंधइ, वंधिस्सइ जाव–
वंधी, न वंधइ, न वंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए वंधी, न वंधइ, बंधिस्सइ,
अत्थेगइए वंधी, न वंधइ, न वंधिस्सइ।
तइय-चउत्था भंगा।
६. नाणी जाव ओहिनाणी चत्तारि भंगा।

प. मणपज्जवनाणी णं भंते ! आउयं कम्मं–
किं वंधी, वंधइ, वंधिस्सइ जाव–
वंधी, न वंधइ, न वंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! १. अत्थेगइए वंधी, वंधइ, वंधिस्सइ,

३. अत्थेगइए वंधी, न वंधइ, वंधिस्सइ,

४. अत्थेगइए वंधी, न वंधइ, न वंधिस्सइ।

बितिय भंग विहूणा तिय भंगा।
केवलनाणे चरिमो भंगो।
एवं एएणं कमेणं ७. नो सन्नोवउत्ते वितियभंगविहूणा तिय भंगा जहेव मणपज्जवनाणे।
८. अवेयए।
९. अकसाई य ततिय-चउत्था भंगा जहेव सम्मामिच्छत्ते।

प्र. ३. भंते ! कृष्णपाक्षिक जीव ने (आयुकर्म) बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत् बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! १. किसी जीव ने (आयु कर्म) बांधा था, बांधता है और बांधेगा,
२. किसी जीव ने बांधा था, नहीं बांधता है और बांधेगा,
ये प्रथम और तृतीय भंग हैं।
शुक्लपाक्षिक–सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि में चारों भंग पाये जाते हैं।

प्र. भंते ! सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव ने आयु कर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत्
बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! किसी जीव ने बांधा था, नहीं बांधता है और बांधेगा तथा किसी जीव ने बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा,
यह तीसरा और चौथा भंग है।
६. ज्ञानी से अवधिज्ञानी जीव तक में चारों भंग पाये जाते हैं।

प्र. भंते ! मनःपर्यवज्ञानी जीव ने आयुकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत् बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! १. किसी (मनःपर्यवज्ञानी) ने आयुकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा,
३. किसी (मनःपर्यवज्ञानी) ने बांधा था, नहीं बांधता है और बांधेगा।
४. किसी (मनःपर्यवज्ञानी) ने बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा,
द्वितीय भंग को छोड़कर ये तीन भंग पाये जाते हैं।
केवलज्ञानी में चौथा भंग पाया जाता है।
इसी प्रकार इसी क्रम में नो संज्ञोपयुक्त जीव में द्वितीय भंग को छोड़कर तीन भंग मनःपर्यवज्ञानी के समान होते हैं।
८. अवेदक
९. अकषायी में सम्यग्मिथ्यादृष्टि के समान तीसरा और चौथा भंग पाया जाता है।
१०. अयोगी में चौथा भंग पाया जाता है।
शेष पदों में अनाकारोपयुक्त तक चारों भंग पाये जाते हैं।

प्र. दं. १ भंते ! क्या नैरयिक जीव ने आयुकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत् बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! चारों भंग पाये जाते हैं।
इसी प्रकार सभी स्थानों में नैरयिक के चार भंग कहने चाहिए,
विशेष–कृष्णलेश्यी एवं कृष्णपाक्षिक नैरयिक जीव में प्रथम तथा तीसरा भंग तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टि में तृतीय और चतुर्थ भंग होते हैं।

दं. २. असुरकुमारे एवं चेव,

णवरं–२. कण्हलेस्से वि चत्तारि भंगा भाणियव्वा।

सेसं जहा नेरइयाणं।

दं. ३-११. एवं जाव थणियकुमाराणं।.

दं. १२. पुढविकाइयाणं सव्वत्थ वि. ४-११. चत्तारि भंगा।

णवरं–कण्हपक्खिए पढम-तइया भंगा।

प. २. तेउलेस्से पुढविकाइयाणं भंते ! आउयं कम्मं–
किं वंधी, वंधइ, वंधिस्सइ जाव–
वंधी, न वंधइ, न वंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! वंधी, न वंधइ, वंधिस्सइ एगो तइओ भंगो।

सेसेसु सव्वेसु चत्तारि भंगा।

दं. १३, १६. एवं आउकाइय-वणस्सइकाइयाण वि निरवसेसं।

दं. १४. १५. तेउकाइय-वाउकाइयाणं सव्वत्थ १-११ वि पढम-तइया भंगा।

दं. १७-१९. वेइंदिय, तेइंदिय, चउरिंदियाण वि सव्वत्थ वि १-५/७-११ पढम तइया भंगा।

णवरं–सम्मत्ते ६. नाणे आभिणिवोहियनाणे सुयणाणे ततियो भंगो।

दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं

३. कण्हपक्खिए पढम-तइय भंगा।

४. सम्मामिच्छत्ते तइय-चउत्थो भंगो।

५. सम्मत्ते ६. णाणे, आभिणिवोहियणाणे, सुयणाणे, ओहिणाणे एएसु पचसु वि पएसु विइयविहूणा भंगा।

सेसेसु चत्तारि भंगा।

दं. २१. मणुस्साणं जहा जीवाणं

णवरं–४. सम्मत्ते, ६. ओहिएणाणे, आभिणि-वोहियणाणे, सुयणाणे, ओहिणाणे एएसु विइयविहूणा भंगा।

सेसं तं चेव।

दं. २२-२४. वाणमंतर, जोइसिय, वेमाणिया जहा असुरकुमारा।

६. नाम, ७. गोय, ८. अंतराय च एयाणि जहा णाणावरणिज्जं। [illegible]

दं. २. असुरकुमार में भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

विशेष–कृष्णलेश्यी असुरकुमार में चारों भंग कहने चाहिए।

शेष सभी स्थानों में नैरयिकों के समान कहना चाहिए।

दं. ३-११ इसी प्रकार स्तनितकुमारों तक कहना चाहिए।

दं. १२ पृथ्वीकायिकों के सभी स्थानों में चारों भंग होते हैं।

विशेष–कृष्णपाक्षिक पृथ्वीकायिक में पहला और तीसरा भंग पाया जाता है।

प्र. २. भंते ! तेजोलेश्यी पृथ्वीकायिक जीव ने आयुकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत्
बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! तेजोलेश्यी पृथ्वीकायिक ने आयुकर्म बांधा था, नहीं बांधता है और बांधेगा, यह तृतीय भंग पाया जाता है।

शेष सभी स्थानों में चारों भंग कहने चाहिए।

दं. १३, १६ इसी प्रकार अप्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवों के विषय में भी सब कहना चाहिए।

दं. १४-१५ तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवों के सभी स्थानों में प्रथम और तृतीय भंग पाये जाते हैं।

दं. १७-१९. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के सभी स्थानों में प्रथम और तृतीय भंग पाये जाते हैं।

विशेष–इनके सम्यक्त्व, ज्ञान, आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान में तृतीय भंग होता है।

दं. २० पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक में यथा

३. कृष्णपाक्षिक में प्रथम और तृतीय भंग पाये जाते हैं।

४. सम्यग्मिथ्यादृष्टि में तीसरा और चौथा भंग पाया जाता है।

५. सम्यक्त्व, ६. ज्ञान, आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान [illegible] अवधिज्ञान, इन पांचों पदों में [illegible] शेष तीन भंग पाये जाते हैं।

शेष सभी स्थानों में चारों भंग पाये जाते हैं।

दं. २१. मनुष्यों का कथन औघिक जीवों के समान है।

विशेष–[illegible]

शेष सब स्थानों में पूर्ववत् जानना चाहिए।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों का कथन असुरकुमारों के समान है।

[illegible]

प. अणंतरोववण्णए णं भंते ! णेरइए आउयं कम्मं
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! बंधी, न बंधइ, बंधिस्सइ।

एगो तइओ भंगो।

प. सलेस्से णं भंते ! अणंतरोववण्णए णेरइए आउयं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! एवं चेव तइओ भंगो।
एवं जाव अणागारोवउत्ते।
सव्वत्थ वि तइओ भंगो।
एवं मणुस्सवज्जं जाव वेमाणियाणं।

मणुस्साणं सव्वत्थ तइए-चउत्था भंगा[1]

णवरं–कण्हपक्खिएसु तइओ भंगो।
सव्वेसिं णाणत्ताइं ताइं चेव।

–विया. स. २६, उ. २, सु. १०-१६

प्र. भंते ! क्या अनन्तरोपपन्नक नैरयिक ने आयुकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत्
बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! उसने आयुकर्म बांधा था, नहीं बांधता है और बांधेगा।
यह एक तृतीय भंग है।

प्र. भंते ! क्या सलेश्य अनन्तरोपपन्नक नैरयिक ने आयुकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत्
बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! इसी प्रकार तृतीय भंग होता है।
इसी प्रकार अनाकारोपयुक्त स्थान तक सर्वत्र तृतीय भंग समझना चाहिए।
इसी प्रकार मनुष्यों के अतिरिक्त वैमानिकों तक तृतीय भंग होता है।
मनुष्यों के सभी स्थानों में तृतीय और चतुर्थ भंग कहना चाहिए,
विशेष–कृष्णपाक्षिक मनुष्यों में तृतीय भंग होता है।
सभी स्थानों में नानात्व (भिन्नता) पूर्ववत् समझना चाहिए।

४२. चउवीसदंडएसु अचरिमाणं कम्मट्ठगबंधभंगा–

प. दं. १. (१) अचरिमे णं भंते ! णेरइए णाणावरणिज्जं कम्मं–किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! एवं जहेव पावं।

णवरं–दं. २१. मणुस्सेसु सकसाईसु लोभकसाईसु य पढम-बिइया भंगा,
सेसा अट्ठारस चरमविहूणा तिण्णि भंगा,

दं. २२-२४. सेसं तहेव जाव वेमाणियाणं।

(२) दरिसणावरणिज्जं पि एवं चेव णिरवसेसं।

(३) वेयणिज्जे सव्वत्थ वि पढम-बिइया भंगा जाव वेमाणियाणं,
णवरं–मणुस्सेसु अलेस्से, केवली, अजोगी य णत्थि।

प. (४) अचरिमे णं भंते ! णेरइए मोहणिज्जं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

४२. चौवीस दंडकों में अचरिमों के आठकर्मों के बंध भंग–

प्र. दं. १. (१) भंते ! क्या अचरम नैरयिक ने ज्ञानावरणीय कर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत्–
बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार पापकर्मबन्ध के विषय में कहा उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।
विशेष–दं. २१. सकषायी और लोभकषायी मनुष्यों में प्रथम और द्वितीय भंग कहने चाहिए।
शेष अठारह पदों में अन्तिम भंग के अतिरिक्त शेष तीन भंग कहने चाहिए।
दं. २-२४. शेष पदों में वैमानिक पर्यन्त पूर्ववत् जानना चाहिए।
(२) दर्शनावरणीयकर्म के विषय में भी समग्र कथन इसी प्रकार समझना चाहिए।
(३) वेदनीय कर्म विषयक सभी स्थानों में वैमानिक तक प्रथम और द्वितीय भंग कहना चाहिए।
विशेष–अचरम मनुष्यों में अलेश्य, केवलज्ञानी और अयोगी नहीं होते हैं।

प्र. (४) भंते ! अचरम नैरयिक ने क्या मोहनीय कर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत् बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

१. कृष्णपाक्षिक के अतिरिक्त सभी बोल वाले मनुष्यों में तीसरा चौथा भंग कहा है अतः अनन्तरोपपन्नक मनुष्य उसी भव में मोक्ष जा सकते हैं और उनके पूरे भव में आयुष्य नहीं बांधने का चौथा भंग उनमें घटित हो सकता है। इसी सूत्र पाठ के आधार से जन्म नपुंसक का भी मुक्ति प्राप्त करना सिद्ध होता है।

उ. गोयमा ! जहेव पावकम्मबंधपरूवणे तहेव णिरवसेसं जाव वेमाणिए।

प. दं. १.(५) अचरिमे णं भंते ! णेरइए आउयं कम्मं–
कि बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! पढम-तइया भंगा।

एवं सव्वपएसु वि, णेरइयाणं पढम-तइया भंगा,

णवरं–सम्मामिच्छत्ते तइओ भंगो,

दं. २-११. एवं जाव थणियकुमाराणं।

दं. १२-१३-१६. पुढविक्काइय–आउक्काइय, वणस्सइ काइयाणं तेउलेस्साए तइओ भंगो।

सेसेसु पएसु सव्वत्थ पढम-तइया भंगा,

दं. १४-१५. तेउकाइय वाउक्काइयाणं सव्वत्थ पढम-तइया भंगा,

दं. १७-१९. वेइंदिय, तेइंदिय, चउरिंदियाणं एवं चेव।

णवरं–सम्मत्ते, ओहिणाणे, आभिणिवोहियणाणे, सुयणाणे एएसु चउसु वि ठाणेसु तइओ भंगो।

दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं सम्मामिच्छत्ते तइओ भंगो।

सेस पएसु सव्वत्थ पढम-तइया भंगा।

दं. २१. मणुस्साणं सम्मामिच्छत्ते अवेयए अकसाइम्मि य तइओ भंगो।

अलेस्स-केवलणाण-अजोगी य ण पुच्छिज्जंति।

सेस पएसु सव्वत्थ पढम-तइया भंगा।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा णेरइया।

(६) णामं, (७) गोयं, (८) अंतराइयं च जहेव णाणावरणिज्जं तहेव णिरवसेसं। –विया. स. २६, उ. ११, सु. [illegible]

४३. परंपरोववण्णग चउवीसदंडएसु पावकम्माइण बंधभंगा–

प. परंपरोववण्णए णं भंते ! णेरइए पावं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ
अत्थेगइए बंधी, बंधइ, न बंधिस्सइ।

[illegible]

एवं जहेव पढमो उद्देसओ तहेव परंपरोववण्णएहि वि उद्देसओ भाणियव्वो।

[illegible]

[illegible]

उ. गौतम ! जिस प्रकार पापकर्म बंध के विषय में कहा, उसी प्रकार यहाँ भी समस्त कथन वैमानिकों तक करना चाहिए।

प्र. दं. १.(५) भंते ! क्या अचरम नैरयिक ने आयुकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत्–
बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! प्रथम और तृतीय भंग जानना चाहिए।

इसी प्रकार नैरयिकों के बहुवचन-सम्बन्धी समस्त पदों में पहला और तीसरा भंग कहना चाहिए।

विशेष–सम्यग्मिथ्यात्व में केवल तीसरा भंग कहना चाहिए।

दं. २-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों तक कहना चाहिए।

दं. १२, १३, १६. तेजोलेश्या वाले पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक इन सबमें तृतीय भंग होता है।

शेष पदों में सर्वत्र प्रथम और तृतीय भंग कहना चाहिए।

दं. १४-१५. तेजस्कायिक और वायुकायिक के सभी स्थानों में प्रथम और तृतीय भंग कहना चाहिए।

दं. १७-१९. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

विशेष–सम्यक्त्व, अवधिज्ञान, आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान इन चार स्थानों में केवल तृतीय भंग कहना चाहिए।

दं. २०. सम्यग्मिथ्यात्व वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में तीसरा भंग पाया जाता है।

शेष पदों में सर्वत्र प्रथम और तृतीय भंग जानना चाहिए।

दं. २१. सम्यग्मिथ्यात्व, अवेदक और अकषायी मनुष्यों में तृतीय भंग कहना चाहिए।

अलेश्य, केवलज्ञानी और अयोगी के विषय में प्रश्न नहीं करना चाहिए।

शेष पदों में सभी स्थानों में प्रथम और तृतीय भंग होते हैं।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों का कथन नैरयिकों के समान समझना चाहिए।

(६-८) नाम, गोत्र और अन्तराय, इन तीन कर्मों के बंध भंगों का कथन ज्ञानावरणीय कर्मबंध के समान करना चाहिए।

४३. परम्परोपपन्नक चौबीस दंडकों में पाप कर्मादि के बंध भंग

प्र. भंते ! क्या परम्परोपपन्नक नैरयिक ने पापकर्म [illegible]

[illegible]

[illegible]

उ. [illegible]

[illegible]

प. अणंतरोववण्णए णं भंते ! णेरइए आउयं कम्मं
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! बंधी, न बंधइ, बंधिस्सइ।

एगो तइओ भंगो।

प. सलेस्से णं भंते ! अणंतरोववण्णए णेरइए आउयं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! एवं चेव तइओ भंगो।
एवं जाव अणागारोवउत्ते।
सव्वत्थ वि तइओ भंगो।
एवं मणुस्सवज्जं जाव वेमाणियाणं।

मणुस्साणं सव्वत्थ तइए-चउत्था भंगा[1]

णवरं–कण्हपक्खिएसु तइओ भंगो।
सव्वेसिं णाणत्ताइं ताइं चेव।

–विया. स. २६, उ. २, सु. १०-१६

प्र. भंते ! क्या अनन्तरोपपन्नक नैरयिक ने आयुकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत्
बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! उसने आयुकर्म बांधा था, नहीं बांधता है और बांधेगा।
यह एक तृतीय भंग है।

प्र. भंते ! क्या सलेश्य अनन्तरोपपन्नक नैरयिक ने आयुकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत्
बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! इसी प्रकार तृतीय भंग होता है।
इसी प्रकार अनाकारोपयुक्त स्थान तक सर्वत्र तृतीय भंग समझना चाहिए।
इसी प्रकार मनुष्यों के अतिरिक्त वैमानिकों तक तृतीय भंग होता है।
मनुष्यों के सभी स्थानों में तृतीय और चतुर्थ भंग कहना चाहिए,
विशेष–कृष्णपाक्षिक मनुष्यों में तृतीय भंग होता है।
सभी स्थानों में नानात्व (भिन्नता) पूर्ववत् समझना चाहिए।

४२. चउवीसदंडएसु अचरिमाणं कम्मट्ठगबंधभंगा–

प. दं. १. (१) अचरिमे णं भंते ! णेरइए णाणावरणिज्जं कम्मं–किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! एवं जहेव पावं।

णवरं–दं. २१. मणुस्सेसु सकसाईसु लोभकसाईसु य पढम-बिइया भंगा,
सेसा अट्ठारस चरमविहूणा तिण्णि भंगा,

दं. २२-२४. सेसं तहेव जाव वेमाणियाणं।

(२) दरिसणावरणिज्जं पि एवं चेव णिरवसेसं।

(३) वेयणिज्जे सव्वत्थ वि पढम-बिइया भंगा जाव वेमाणियाणं,
णवरं–मणुस्सेसु अलेस्से, केवली, अजोगी य णत्थि।

प. (४) अचरिमे णं भंते ! णेरइए मोहणिज्जं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

४२. चौबीस दंडकों में अचरिमों के आठकर्मों के बंध भंग–

प्र. दं. १. (१) भंते ! क्या अचरम नैरयिक ने ज्ञानावरणीय कर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत्–
बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार पापकर्मबन्ध के विषय में कहा उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।
विशेष–दं. २१. सकषायी और लोभकषायी मनुष्यों में प्रथम और द्वितीय भंग कहने चाहिए।
शेष अठारह पदों में अन्तिम भंग के अतिरिक्त शेष तीन भंग कहने चाहिए।
दं. २-२४. शेष पदों में वैमानिक पर्यन्त पूर्ववत् जानना चाहिए।
(२) दर्शनावरणीयकर्म के विषय में भी समग्र कथन इसी प्रकार समझना चाहिए।
(३) वेदनीय कर्म विषयक सभी स्थानों में वैमानिक तक प्रथम और द्वितीय भंग कहना चाहिए।
विशेष–अचरम मनुष्यों में अलेश्य, केवलज्ञानी और अयोगी नहीं होते हैं।

प्र. (४) भंते ! अचरम नैरयिक ने क्या मोहनीय कर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत् बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

---

1. कृष्णपाक्षिक के अतिरिक्त सभी बोल वाले मनुष्यों में तीसरा चौथा भंग कहा है अतः अनन्तरोपपन्नक मनुष्य उसी भव में मोक्ष जा सकते हैं और उनके पूरे भव में आयुष्य नहीं बांधने का चौथा भंग उनमें घटित हो सकता है। इसी सूत्र पाठ के आधार से जन्म नपुंसक का भी मुक्ति प्राप्त करना सिद्ध होता है।

उ. गोयमा ! जहेव पावकम्मबंधपरूवणे तहेव णिरवसेसं जाव वेमाणिए।

प. दं. १.(५) अचरिमे णं भंते ! णेरइए आउयं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! पढम-तइया भंगा।
एवं सव्वपएसु वि, णेरइयाणं पढम-तइया भंगा,

णवरं–सम्मामिच्छत्ते तइओ भंगो,
दं. २-११. एवं जाव थणियकुमाराणं।
दं. १२-१३-१६. पुढविक्काइय–आउक्काइय, वणस्सइ काइयाणं तेउलेस्साए तइओ भंगो।
सेसेसु पएसु सव्वत्थ पढम-तइया भंगा,
दं. १४-१५. तेउकाइय वाउक्काइयाणं सव्वत्थ पढम-तइया भंगा,
दं. १७-१९. बेइंदिय, तेइंदिय, चउरिंदियाणं एवं चेव।

णवरं–सम्मत्ते, ओहिणाणे, आभिणिबोहियणाणे, सुयणाणे एएसु चउसु वि ठाणेसु तइओ भंगो।
दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं सम्मामिच्छत्ते तइओ भंगो।
सेस पएसु सव्वत्थ पढम-तइया भंगा।
दं. २१. मणुस्साणं सम्मामिच्छत्ते अवेयए अकसाइम्मि य तइओ भंगो।
अलेस्स-केवलणाण-अजोगी य ण पुच्छिज्जंति।

सेस पएसु सव्वत्थ पढम-तइया भंगा।
दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा णेरइया।
(६) णामं, (७) गोयं, (८) अंतराइयं च जहेव णाणावरणिज्जं तहेव णिरवसेसं। *–विया. स. २६, उ. ११, सु. ५-१९*

उ. गौतम ! जिस प्रकार पापकर्म बंध के विषय में कहा, उसी प्रकार यहाँ भी समस्त कथन वैमानिकों तक करना चाहिए।

प्र. दं. १.(५) भंते ! क्या अचरम नैरयिक ने आयुकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत्–
बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! प्रथम और तृतीय भंग जानना चाहिए।
इसी प्रकार नैरयिकों के बहुवचन-सम्बन्धी समस्त पदों में पहला और तीसरा भंग कहना चाहिए।
विशेष–सम्यग्मिथ्यात्व में केवल तीसरा भंग कहना चाहिए।
दं. २-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों तक कहना चाहिए।
दं. १२, १३, १६. तेजोलेश्या वाले पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक इन सबमें तृतीय भंग होता है।
शेष पदों में सर्वत्र प्रथम और तृतीय भंग कहना चाहिए।
दं. १४-१५. तेजस्कायिक और वायुकायिक के सभी स्थानों में प्रथम और तृतीय भंग कहना चाहिए।
दं. १७-१९. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए।
विशेष–सम्यक्त्व, अवधिज्ञान, आभिनिवोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान इन चार स्थानों में केवल तृतीय भंग कहना चाहिए।
दं. २०. सम्यग्मिथ्यात्व वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में तीसरा भंग पाया जाता है।
शेष पदों में सर्वत्र प्रथम और तृतीय भंग जानना चाहिए।
दं. २१. सम्यग्मिथ्यात्व, अवेदक और अकषायी मनुष्यों में तृतीय भंग कहना चाहिए।
अलेश्य, केवलज्ञानी और अयोगी के विषय में प्रश्न नहीं करना चाहिए।
शेष पदों में सभी स्थानों में प्रथम और तृतीय भंग होते हैं।
दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों का कथन नैरयिकों के समान समझना चाहिए।
(६-८) नाम, गोत्र और अन्तराय, इन तीन कर्मों के बंध भंगों का कथन ज्ञानावरणीय-कर्मबन्ध के समान करना चाहिए।

४३. परंपरोववण्णग चउवीसदंडएसु पावकम्माइण बंधभंगा–

प. परंपरोववण्णए णं भंते ! णेरइए पावं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ
अत्थेगइए बंधी, बंधइ, न बंधिस्सइ।
पढम वितिया भंगा।
एवं जहेव पढमो उद्देसओ तहेव परंपरोववण्णएहिं वि उद्देसओ भाणियव्वो।
णेरइयाइओ तहेव णवदंडगसहिओ।
अट्ठण्ह वि कम्मप्पगडीणं जा जस्स कम्मस्स वत्तव्वया सा तस्स अहीणमइरित्ता णेयव्वा जाव वेमाणिया अणागारोवउत्ता। *–विया. स. २६, उ. ३, सु. १-२*

४३. परंपरोपपन्नक चौवीस दंडकों में पाप कर्मादि के बंध भंग–

प्र. भंते ! क्या परम्परोपपन्नक नैरयिक ने पापकर्म
बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत्–
बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! किसी ने पापकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा,
किसी ने पापकर्म बांधा था, बांधता है और नहीं बांधेगा।
यह प्रथम द्वितीय भंग है।
जिस प्रकार प्रथम उद्देशक कहा उसी प्रकार परम्परोपपन्नक उद्देशक भी कहना चाहिए।
नैरयिक आदि में भी नौ दण्डक सहित कहना चाहिए।
आठ कर्मप्रकृतियों के लिए भी जिस कर्म की जो वक्तव्यता कही है, उसके लिए उसको अनाकारोपयुक्त वैमानिकों तक अन्यूनाधिक रूप से (जैसी की तैसी) कहनी चाहिए।

४४. अणंतरोगाढ चउवीसदंडएसु पावकम्माइणं बंधभंगा–

प. अणंतरोगाढए णं भंते ! णेरइए पावं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! **पढम-बिइया भंगा,**
एवं जहेव अणंतरोववण्णएहिं णवदंडगसहिओ उद्देसो भणिओ तहेव अणंतरोगाढएहिं वि अहीणमइरित्तो भाणियव्वो णेरइयाईए १-२४ जाव वेमाणिए।

–*विया. स. २६, उ. ४, सु. १,*

४५. परम्परोगाढ चउवीसदंडएसु पावकम्माइणं बंधभंगा–

प. परंपरोगाढए णं भंते ! णेरइए पावं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! **जहेव परम्परोववण्णएहिं उद्देसो सो चेव णिरवसेसं।**

–*विया. स. २६, उ. ५, सु. १,*

४६. अणंतराहारग चउवीसदंडएसु पावकम्माइणं बंधभंगा–

प. अणंतराहारए णं भंते ! णेरइए पावं कम्मं–
कि बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! **एवं जहेव अणंतरोववण्णएहिं उद्देसो तहेव णिरवसेसं।**

–*विया. स. २६, उ. ६, सु. १*

४७. परंपराहारग चउवीसदंडएसु पावकम्माइणं बंधभंगा–

प. परंपराहारए णं भंते ! णेरइए पावं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! **एवं जहेव परंपरोववण्णएहिं उद्देसो तहेव णिरवसेसं।**

–*विया. स. २६, उ. ७, सु. १*

४८. अणंतरपज्जत्तग चउवीसदंडएसु पावकम्माइणं बंधभंगा–

प. अणंतरपज्जत्तए णं भंते ! णेरइए पावं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! **एवं जहेव अणंतरोववण्णएहिं उददेसो तहेव णिरवसेसं।**

–*विया. स. २६, उ. ८, सु. १*

४९. परम्परपज्जत्तग चउवीसदंडएसु पावकम्माइणं बंधभंगा–

प. परम्परपज्जत्तए णं भंते ! णेरइए पावं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! **एवं जहेव परम्परोववण्णएहिं उद्देसो तहेव णिरवसेसं।**

–*विया. स. २६, उ. ९, सु. १*

४४. अनन्तरावगाढ चौवीस दंडकों में पापकर्मादि के बंधभंग–

प्र. भंते ! क्या अनन्तरावगाढ नैरयिक ने पापकर्म
बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत्
बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! प्रथम और द्वितीय भंग जानना चाहिए।
जिस प्रकार अनन्तरोपपन्नक के नौ दण्डकों सहित (द्वितीय) उद्देशक कहा है, उसी प्रकार अनन्तरावगाढ नैरयिक से लेकर वैमानिकों तक अन्यूनाधिकरूप से कहना चाहिए।

४५. परम्परावगाढ चौवीस दंडकों में पापकर्मादि के बंध भंग–

प्र. भंते ! क्या परम्परावगाढ नैरयिक ने पापकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत्
बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार परम्परोपपन्नक के विषय में (तृतीय उद्देशक) कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी समग्र उद्देशक अन्यूनाधिकरूप से कहना चाहिए।

४६. अनन्तराहारक चौवीस दंडकों में पापकर्मादि के बंध भंग–

प्र. भंते ! क्या अनन्तराहारक नैरयिक ने पापकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत्
बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार अनन्तरोपपन्नक (द्वितीय) उद्देशक कहा है, उसी प्रकार यह सम्पूर्ण (अनन्तराहारक) उद्देशक भी कहना चाहिए।

४७. परम्पराहारक चौवीसदंडकों में पापकर्मादि के बंध भंग–

प्र. भंते ! क्या परम्पराहारक नैरयिक ने पापकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत्
बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार परम्परोपपन्नक नैरयिक सम्बन्धी तृतीय उद्देशक कहा है, उसी प्रकार यह सारा उद्देशक भी कहना चाहिए।

४८. अनन्तरपर्याप्तक चौवीस दंडकों में पापकर्मादि के बंधभंग–

प्र. भंते ! क्या अनन्तरपर्याप्तक नैरयिक ने पापकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत्
बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार अनन्तरोपपन्नक (द्वितीय) उद्देशक कहा है उसी प्रकार यह सारा उद्देशक कहना चाहिए।

४९. परम्पर पर्याप्तक चौवीस दंडकों में पापकर्मादि के बंधभंग–

प्र. भंते ! क्या परम्पर पर्याप्तक नैरयिक ने पापकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत्
बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार परम्परोपपन्नक (तृतीय) उद्देशक कहा, उसी प्रकार यहाँ भी सम्पूर्ण उद्देशक कहना चाहिए।

५०. चरिमाणं चउवीसदंडएसु पावकम्माइणं बंधभंगा–

प. चरिमे णं भंते ! णेरइए पावं कम्मं–
किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–
बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! **एवं जहेव परम्परोववण्णएहिं उद्देसो तहेव चरिमेहिं णिरवसेसं।** –*विया. स. २६, उ. १०, सु. १*

५१. जीव-चउवीसदंडएसु य पावकम्मं अट्ठकम्माण य करिंसु आई भंगा–

प. जीवे णं भंते ! पावं कम्मं–१. किं करिंसु, करेइ, करिस्सइ,
२. करिंसु, करेइ, न करिस्सइ,
३. करिंसु, न करेइ, करिस्सइ,
४. करिंसु, न करेइ, न करिस्सइ ?

उ. गोयमा ! १. अत्थेगइए करिंसु, करेइ, करिस्सइ,
२. अत्थेगइए करिंसु, करेइ, न करिस्सइ,
३. अत्थेगइए करिंसु, न करेइ, करिस्सइ,
४. अत्थेगइए करिंसु, न करेइ, न करिस्सइ।

प. सलेस्से णं भंते ! जीवे पावं कम्मं–
किं करिसु, करेइ, करिस्सइ जाव–
करिंसु, न करेइ, न करिस्सइ ?

उ. गोयमा ! **एवं एएणं अभिलावेणं, जच्चेव बंधिसए वत्तव्वया सच्चेव निरवसेसा भाणियव्वा, तह चेव नवदंडगसहिया एक्कारस उद्देसगा भाणियव्वा।**
–*विया. स. २७, उ. १-११, सु. १-२*

५२. जीव-चउवीसदंडएसु पावकम्मं अट्ठकम्माण य समज्जणं समायरणं य–

प. जीवा णं भंते ! पावंकम्मं कहिं समज्जिणिंसु, कहिं समायरिंसु ?

उ. गोयमा !
१. सव्वे वि ताव तिरिक्खजोणिएसु होज्जा,
२. अहवा तिरिक्खजोणिएसु य नेरइएसु य होज्जा,
३. अहवा तिरिक्खजोणिएसु य मणुस्सेसु य होज्जा,
४. अहवा तिरिक्खजोणिएसु य देवेसु य होज्जा,
५. अहवा तिरिक्खजोणिएसु य नेरइएसु य मणुस्सेसु य होज्जा,
६. अहवा तिरिक्खजोणिएसु य नेरइएसु य देवेसु य होज्जा,
७. अहवा तिरिक्खजोणिएसु य मणुस्सेसु य देवेसु य होज्जा,

५०. चौबीसदंडकों में चरिमों के पापकर्मादि के बंध भंग–

प्र. भंते ! क्या चरम नैरयिक ने पापकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत्
बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार परम्परोपपन्नक (तृतीय) उद्देशक कहा उसी प्रकार चरम के लिए भी यह समग्र उद्देशक कहना चाहिए।

५१. जीव-चौबीसदंडकों में पापकर्म और अष्टकर्मों के किये थे आदि भंग–

प्र. भंते ! १. क्या जीव ने पापकर्म किया था, करता है और करेगा ?
२. किया था, करता है और नहीं करेगा ?
३. किया था, नहीं करता है और करेगा ?
४. किया था, नहीं करता है और नहीं करेगा ?

उ. गौतम ! १. किसी जीव ने पापकर्म किया था, करता है और करेगा।
२. (किसी जीव ने) किया था, करता है और नहीं करेगा।
३. (किसी जीव ने) किया था, नहीं करता है और करेगा।
४. (किसी जीव ने) किया था, नहीं करता है और नहीं करेगा।

प्र. भंते ! सलेश्य जीव ने पापकर्म किया था, करता है और करेगा यावत्
किया था, नहीं करता है और नहीं करेगा ?

उ. गौतम ! बन्धीशतक के कथन के अनुसार यहाँ भी इसी अभिलाप से समग्र कथन करना चाहिए।
उसी प्रकार नौ दण्डकसहित ग्यारह उद्देशक भी यहाँ कहने चाहिए।

५२. जीव-चौबीसदण्डकों में पापकर्म और अष्ट कर्मों का समर्जन-समाचरण–

प्र. भंते ! जीवों ने किस गति में पापकर्म का समर्जन (ग्रहण) किया था और किस गति में आचरण किया था ?

उ. गौतम !
१. सभी जीव तिर्यञ्चयोनिकों में थे।
२. अथवा तिर्यञ्चयोनिकों और नैरयिकों में थे,
३. अथवा तिर्यञ्चयोनिकों और मनुष्यों में थे,
४. अथवा तिर्यञ्चयोनिकों और देवों में थे,
५. अथवा तिर्यञ्चयोनिकों, नैरयिकों और मनुष्यों में थे,
६. अथवा तिर्यञ्चयोनिकों, नैरयिकों और देवों में थे,
७. अथवा तिर्यञ्चयोनिकों, मनुष्यों और देवों में थे,

८. अहवा तिरिक्खजोणिएसु य नेरइएसु य मणुस्सेसु य देवेसु य होज्जा।

प. सलेस्सा णं भंते ! जीवा पावकम्मं–
कहिं समज्जिणिंसु, कहिं समायरिंसु ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।
३. एवं कण्हलेस्सा जाव अलेस्सा।

४. कण्हपक्खिया सुक्कपक्खिया एवं जाव ५-११ अणागारोवउत्ता।

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! पावं कम्मं–
कहिं समज्जिणिंसु, कहिं समायरिंसु ?

उ. गोयमा ! सव्वे वि ताव तिरिक्खजोणिएसु होज्जा, एवं चेव अट्ठ भंगा भाणियव्वा।
एवं सव्वत्थ अट्ठ भंगा जाव अणागारोवउत्ता।

दं. २-२४ एवं जाव वेमाणियाणं।

एवं णाणावरणिज्जेण वि दंडओ।

एवं जाव अंतराइएणं।

एवं एए जीवाईया वेमाणियपज्जवसाणा नव दंडगा भवंति।
–विया. स. २८, उ. १, सु. १-१०

५३. अणंतरोववन्नगाइसु चउवीसदंडएसु पावकम्मं-अट्ठ कम्माण य समज्जणं समाचरणं य–

प. दं. १. अणंतरोववन्नगा णं भंते ! नेरइया पावं कम्मं–
कहिं समज्जिणिंसु, कहिं समायरिंसु ?

उ. गोयमा ! सव्वे वि ताव तिरिक्खजोणिएसु होज्जा,
एवं एत्थ वि अट्ठ भंगा।
एवं अणंतरोववन्नगाणं नेरइयाईणं जस्स णं अत्थि लेस्साईयं अणागारोवयोगपज्जवसाणं तं सव्वं एयाए भयणाए भाणियव्वं जाव २-२४ वेमाणियाणं।

णवरं–अणंतरेसु जे परिहरियव्वा ते जहा बंधिसए तहा इहं पि।

एवं णाणावरणिज्जेण वि दंडओ।
एवं जाव अंतराइएणं निरवसेसं।
एस वि नवदंडगसंगहिओ उद्देसओ भाणियव्वो।
–विया. स. २८, उ. २, सु. १-४

८. अथवा तिर्यञ्चयोनिकों, नैरयिकों, मनुष्यों और देवों में थे।

(तब उन-उन गतियों में उन्होंने पापकर्म का समर्जन और समाचरण किया था।)

प्र. भंते ! सलेश्य जीवों ने किस गति में पापकर्म का समर्जन किया था और किस गति में समाचरण किया था ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् (यहाँ सभी भंग पाये जाते हैं।)
३. इसी प्रकार कृष्णलेश्यी जीवों से लेकर अलेश्य जीवों तक के विषय में भी कहना चाहिए।

४. कृष्णपाक्षिक, शुक्लपाक्षिक से अनाकारोपयुक्त तक इसी प्रकार का कथन करना चाहिए।

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिकों ने पापकर्म का कहाँ समर्जन और कहाँ समाचरण किया था ?

उ. गौतम ! सभी जीव तिर्यञ्चयोनिकों में थे इत्यादि पूर्ववत् आठों भंग यहाँ कहने चाहिए।

इसी प्रकार सर्वत्र अनाकारोपयुक्त तक आठ-आठ भंग कहने चाहिए।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त प्रत्येक के आठ-आठ भंग जानने चाहिए।

इसी प्रकार ज्ञानावरणीय के विषय में भी आठ-आठ भंग कहने चाहिए।

(दर्शनावरणीय से) यावत् अन्तरायकर्म तक इसी प्रकार जानना चाहिए।

इस प्रकार जीव से वैमानिक पर्यन्त ये नौ दण्डक होते हैं।

५३. अनंतरोपपन्नकादि चौबीसदंडकों में पापकर्म और अष्ट कर्मों का समर्जन समाचरण–

प्र. दं. १. भंते ! अनन्तरोपपन्नक नैरयिकों में पाप कर्मों का कहाँ समर्जन किया था और कहां समाचरण किया था ?

उ. गौतम ! वे सभी तिर्यञ्चयोनिकों में थे, इत्यादि पूर्वोक्त आठों भंगों का यहाँ कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार अनन्तरोपपन्नक नैरयिकों में लेश्या आदि से लेकर अनाकारोपयोग पर्यन्त भंगों में से जिसमें जो भंग पाया जाता हो, वह सब भजना (विकल्प से) दं. २-२४. वैमानिकों तक कहना चाहिए।

विशेष–अनन्तरोपपन्नकों में जो–जो पद छोड़ने योग्य हैं उन-उन पदों को बन्धीशतक के अनुसार यहाँ भी छोड़ देना चाहिए।

इसी प्रकार ज्ञानावरणीयकर्म के दंडक जानना चाहिए।
इसी प्रकार अन्तरायकर्म तक समग्र वर्णन करना चाहिए।
नौ दण्डक सहित इनका भी पूरा उद्देशक कहना चाहिए।

एवं एएणं कमेणं जहेव बंधिसए उद्देसगाणं परिवाडी तहेव इहं पि अट्ठसु भंगेसु नेयव्वा।

णवरं–जाणियव्वं जं जस्स अत्थि तं तस्स भाणियव्वं जाव अचरिमुद्देसो।

सव्वे वि एए एक्कारस उद्देसगा।

–विया. स.२८, उ. ३-११, सु. १

जिस प्रकार "बन्धी शतक" में उद्देशकों की परिपाटी कही है, उसी क्रम से उसी प्रकार यहाँ भी आठों ही भंगों में कहनी चाहिए।

विशेष–जिनमें जो पद सम्भव हों, उसमें वे ही पद अचरम उद्देशक तक कहने चाहिए।

इस प्रकार ये सब ग्यारह उद्देशक हुए।

५४. जीव चउवीसदंडएसु पावकम्मं अट्ठ कम्माण य सम-विसम-पट्ठवण-निट्ठवणं–

प. जीवा णं भंते ! पावं कम्मं किं–

१. समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु,

२. समायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु,

३. विसमायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु,

४. विसमायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु ?

उ. गोयमा ! १. अत्थेगइया समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु जाव–

४. अत्थेगइया विसमायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

अत्थेगइया समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु जाव अत्थेगइया विसमायं पट्ठविंसु, विसमायं निट्ठविंसु ?

उ. गोयमा ! जीवा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अत्थेगइया समाउया समोववन्नगा,

२. अत्थेगइया समाउया विसमोववन्नगा,

३. अत्थेगइया विसमाउया समोववन्नगा,

४. अत्थेगइया विसमाउया विसमोववन्नगा,

१. तत्थ णं जे ते समाउया समोववन्नगा ते णं पावं कम्मं समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु,

२. तत्थ णं जे ते समाउया विसमोववन्नगा ते णं पावं कम्मं समायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु,

३. तत्थ णं जे ते विसमाउया समोववन्नगा ते णं पावं कम्मं विसमायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु,

५४. जीव-चौबीस दंडकों में पापकर्म और अष्ट कर्मों का सम-विषम प्रवर्तन-समापन–

प्र. भंते ! क्या जीव पापकर्म का वेदन

१. सम समय में ही प्रारम्भ करते हैं और सम समय में ही समाप्त करते हैं ?

२. सम समय में प्रारम्भ करते हैं और विषम समय में समाप्त करते हैं ?

३. विषम समय में प्रारम्भ करते हैं और सम समय में समाप्त करते हैं ?

४. विषम समय में प्रारम्भ करते हैं और विषम समय में समाप्त करते हैं ?

उ. गौतम ! कितने ही जीव (पापकर्म का वेदन) सम समय में प्रारम्भ करते हैं और सम समय में ही समाप्त करते हैं यावत् कितने ही जीव विषम समय में प्रारम्भ करते हैं और विषम समय में ही समाप्त करते हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"कितने ही जीव पापकर्मों का वेदन सम समय में प्रारम्भ करते हैं और सम समय में ही समाप्त करते हैं यावत् कितने ही जीव विषम समय में प्रारम्भ करते हैं और विषम समय में ही समाप्त करते हैं ?

उ. गौतम ! जीव चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. कई जीव समान आयु वाले हैं और सम समय में उत्पन्न होते हैं,

२. कई जीव समान आयु वाले हैं और विषम समय में उत्पन्न होते हैं,

३. कई जीव विषम आयु वाले हैं और सम समय में उत्पन्न होते हैं।

४. कई जीव विषम आयु वाले हैं और विषम समय में उत्पन्न होते हैं।

१. उनमें से जो समान आयु वाले हैं और सम समय में उत्पन्न होने वाले हैं, वे पापकर्म का वेदन सम समय में प्रारम्भ करते हैं और सम समय में ही समाप्त करते हैं,

२. उनमें से जो समान आयु वाले हैं और विषम समय में उत्पन्न होने वाले हैं, वे पापकर्म का वेदन सम समय में प्रारम्भ करते हैं और विषम समय में समाप्त करते हैं,

३. उनमें से जो विषम आयु वाले हैं और सम समय में उत्पन्न होने वाले हैं, वे पापकर्म का वेदन विषम समय में प्रारम्भ करते हैं और सम समय में समाप्त करते हैं।

४. तत्थ णं जे ते विसमाउया विसमोववन्नगा ते णं पावं कम्मं विसमायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
अत्थेगइया समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु जाव अत्थेगइया विसमायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु।

प. सलेस्सा णं भंते ! जीवा पावं कम्मं किं
समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु जाव–
विसमायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।
एवं सव्वट्ठाणेसु वि जाव अणागारोवउत्ता,

एए सव्वे वि पया एयाए वत्तव्वयाए भाणियव्वा।

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! पावं कम्मं–
किं समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु जाव
विसमायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइया समायं पट्ठविंसु, समायं निट्ठविंसु जाव अत्थेगइया विसमायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु।

एवं जहेव जीवाणं तहेव भाणियव्वं जाव अणागारोवउत्ता।
दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियाणं।
जस्स जं अत्थि तं एएणं चेव कमेणं भाणियव्वं

ज़हा पावेणं दंडओ एएणं कमेणं अट्ठसु वि कम्मपगडीस अट्ठ दंडगा भाणियव्वा जीवाईया वेमाणियपज्जवसाणा।

एसो नवदंडगसहिओ पढमो उद्देसओ भाणियव्वो।
–विया. स. २९, उ. १, सु. १-६,

४. उनमें से जो विषम आयु वाले हैं और विषम समय में उत्पन्न होने वाले हैं, वे पापकर्म का वेदन भी विषम समय में प्रारम्भ करते हैं और विषय समय में ही समाप्त करते हैं,

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"कितने ही जीव पापकर्मों का वेदन सम समय में प्रारम्भ करते हैं और सम समय में ही समाप्त करते हैं यावत् कितने ही जीव विषम समय में प्रारम्भ करते हैं और विषम समय में ही समाप्त करते हैं।"

प्र. भंते ! क्या सलेश्य जीव पापकर्म का वेदन सम समय में प्रारम्भ करते हैं और सम समय में समाप्त करते हैं यावत्–
विषम समय में प्रारम्भ करते हैं और विषम समय में समाप्त करते हैं ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् समझना चाहिए।
इसी प्रकार सभी स्थानों में अनाकारोपयुक्त तक जानना चाहिए।
इन सभी पदों में यही कथन करना चाहिए।

प्र. दं. १. भंते ! क्या नैरयिक पापकर्म का वेदन सम समय में प्रारम्भ करते हैं और सम समय में समाप्त करते हैं यावत्
विषम समय में प्रारम्भ करते हैं और विषम समय में समाप्त करते हैं ?

उ. गौतम ! कई नैरयिक पापकर्म का वेदन सम समय में प्रारम्भ करते हैं और सम समय में समाप्त करते हैं यावत्
कई नैरयिक विषम समय में प्रारम्भ करते हैं और विषम में समाप्त करते हैं।
इसी प्रकार जैसे सामान्य जीवों का कथन किया उसी प्रकार अनाकारोपयुक्त नैरयिकों के सम्बन्ध में जानना चाहिए।
दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों तक जानना चाहिए।
किन्तु जिसमें जो पद पाये जाएँ उन्हें इसी क्रम से कहना चाहिए।
जिस प्रकार पापकर्म के सम्बन्ध में दण्डक कहा इसी क्रम से सामान्य जीव से वैमानिकों तक आठों कर्म-प्रकृतियों के सम्बन्ध में आठ आठ दण्डक कहने चाहिए।
इस प्रकार नौ दण्डक सहित यह प्रथम उद्देशक कहना चाहिए।

५५. अणंतरोववन्नगाइ सु चउवीसइदंडएसु पावकम्मं-अट्ठ-कम्माण य सम-विसम-पट्ठवण-निट्ठवणं–

प. दं. १. अणंतरोववन्नगा णं भंते ! नेरइया पावं कम्मं–
किं समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु जाव–
विसमायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइया समायं पट्ठविंसु, समायं निट्ठविंसु,
अत्थेगइया समायं पट्ठविंसु, विसमायं निट्ठविंसु।

५५. अनन्तरोपपन्नक आदि चौबीस दण्डकों में पापकर्म और अष्ट कर्मों का सम विषम प्रवर्तन समापन–

प्र. दं. १. भंते ! क्या अनन्तरोपपन्नक नैरयिक सम समय में पापकर्म का वेदन प्रारम्भ करते हैं और सम समय में समाप्त करते हैं यावत् विषम समय में वेदन प्रारम्भ करते हैं और विषम समय में समाप्त करते हैं ?

उ. गौतम ! कई अनन्तरोपपन्नक नैरयिक पापकर्म को सम समय में वेदन प्रारम्भ करते हैं और सम समय में समाप्त करते हैं कई सम समय में वेदन प्रारम्भ करते हैं और विषम समय में समाप्त करते हैं।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"अत्थेगइया समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु

अत्थेगइया समायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु ?"

उ. गोयमा ! अणंतरोववन्नगा नेरइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. अत्थेगइया समाउया समोववन्नगा,
२. अत्थेगइया समाउया विसमोववन्नगा।
१. तत्थ णं जे ते समाउया समोववन्नगा
ते णं पावं कम्मं समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु।
२. तत्थ णं जे ते समाउया विसमोववन्नगा
ते णं पावं कम्मं समायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"अत्थेगइया समायं पट्ठविंसु, समायं निट्ठविंसु–
अत्थेगइया समायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु।"

प. सलेस्सा णं भंते ! अणंतरोववन्नगा नेरइया पावं कम्मं–
किं समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु जाव–
विसमायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।
एवं जाव अणागारोवउत्ता।
दं. २-२४. एवं असुरकुमारा वि जाव वेमाणिया।
णवरं–जं जस्स अत्थि तं तस्स भाणियव्वं।
एवं णाणावरणिज्जे ण वि दंडओ।
एवं निरवसेसं जाव अंतराइएणं।
–विया. स. ३१, उ. २, सु. १-७

एवं एएणं गमएणं जच्चेव बंधिसए उद्देसगपरिवाडी सच्चेव इह वि भाणियव्वा जाव अचरिमो त्ति।
अणंतरउद्देसगाणं चउण्ह वि एक्का वत्तव्वया।
सेसाणं सत्तण्हं एक्का वत्तव्वया।
–विया. स. ३१, उ. ३-११, सु. १

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि
"कई सम समय में वेदन प्रारम्भ करते हैं और सम समय में समाप्त करते हैं।
कई सम समय में वेदन प्रारम्भ करते हैं और विषम समय में समाप्त करते हैं ?"

उ. गौतम ! अनन्तरोपपन्नक नैरयिक दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१. कई समायु वाले हैं और सम समय में उत्पन्न होने वाले हैं,
२. कई समायु वाले हैं और विषम समय में उत्पन्न होने वाले हैं।
१. उनमें से जो समायु वाले हैं और विषम समय में उत्पन्न होने वाले हैं।
वे पापकर्म का वेदन सम समय में प्रारम्भ करते हैं और सम समय में समाप्त करते हैं।
२. उनमें से जो समायु वाले हैं और विषम समय में उत्पन्न होने वाले हैं,
वे पापकर्म का वेदन सम समय में प्रारम्भ करते हैं और विषम समय में समाप्त करते हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"कई सम समय में वेदन प्रारम्भ करते हैं और सम समय में समाप्त करते हैं,
कई सम समय में प्रारम्भ करते हैं और विषम समय में समाप्त करते हैं।"

प्र. भंते ! क्या सलेश्य अनन्तरोपपन्नक नैरयिक पापकर्म का वेदन सम समय में प्रारम्भ करते हैं और सम समय में समाप्त करते हैं–यावत् विषम समय में प्रारम्भ करते हैं और विषम समय में ही समाप्त करते हैं ?

उ. गौतम ! सम्पूर्ण वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए।
इसी प्रकार अनाकारोपयुक्त (नैरयिकों) तक समझना चाहिए।
दं. २-२४. इसी प्रकार असुरकुमारों से वैमानिकों तक भी कहना चाहिए।
विशेष–जिसमें जो पद पाया जाता है, वही कहना चाहिए।
इसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के सम्बन्ध में भी दण्डक कहना चाहिए।
इसी प्रकार अन्तरायकर्म तक समग्र पाठ कहना चाहिए।

इसी प्रकार इसी आलापक के क्रम से जैसे बन्धीशतक में उद्देशकों की परिपाटी कही है, यहाँ भी वैसे ही अचरमोद्देशक पर्यन्त कहना चाहिए।
अनन्तर सम्बन्धी चार उद्देशकों का कथन एक समान करना चाहिए।
शेष सात उद्देशकों का कथन एक समान करना चाहिए।

५६. चउवीसदंडएसु बज्झ पावकम्माणं वेयणं परूवणं–

दं. १-२०. णेरइयाणं सया समियं जे पावे कम्मे कज्जइ,

तत्थगया वि एगइया वेयणं वेयंति,
अन्नत्थगया वि एगइया वेयणं वेयंति,
जाव पंचेंदिय तिरिक्खजोणियाणं।

दं. २१. मणुस्साणं सया समियं जे पावे कम्मे कज्जइ,

इहगया वि एगइया वेयणं वेयंति,
अन्नत्थगया वि एगइया वेयणं वेयंति।
मणुस्सवज्जा सेसा एक्कगमा।

दं. २२-२४. जे देवा उड्ढोववन्नगा कप्पोववन्नगा, विमाणोववन्नगा, चारोववन्नगा चारट्ठिइया गइरइया गइसमावन्नगा

तेसि णं देवाणं सया समियं जे पावे कम्मे कज्जइ,
तत्थगया वि एगइया वेयणं वेयंति,
अन्नत्थगया वि एगइया वेयणं वेयंति[1]।

–ठाणं अ. २, उ. २, सु. ६७

५६. चौबीस दंडकों में बंधे हुए पापकर्मों के वेदन का प्ररूपण–

दं. १-२०. नैरयिकों से पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिकों तक के दण्डकों में जो सदा परिमित पापकर्म का बंध होता है,
(उसका फल) कई उसी भव में वेदन करते हैं,
कई भवान्तर में वेदन करते हैं।

दं. २१. मनुष्यों के जो सदा परिमित पाप-कर्म का बंध होता है,
(उसका फल) कई इसी भव में वेदन करते हैं,
कई भवान्तर में वेदन करते हैं।
मनुष्यों के अतिरिक्त शेष आलापक समान समझने चाहिए।

दं. २२-२४. जो ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न हुए देवों में कल्पोपन्नक हों या विमानोपपन्नक हों,
जो चारोपपन्नक देवों में चार स्थित हों, गतिशील हों या सतत गतिशील हों,
उन देवों के सदा परिमित पापकर्म का बंध होता है
उसका फल कई देव उसी भव में वेदन करते हैं, और
कई भवान्तर में वेदन करते हैं।

५७. ओहिया वंध भेया–

एगे वंधे,[2] *–ठाणं अ. १, सु. ७*

दुविहे वंधे पण्णत्ते, तं जहा–

१. पेज्जवंधे चेव, २. दोस बंधे चेव।[3]

–ठाणं. अ. २, उ. ४, सु. १०७

५७. सामान्यतः बंध के भेद–

बंध एक है।

बंध दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. प्रेय बंध, २. द्वेष बंध,

५८. इरियावहिय-संपराइयपडुच्च वंध भेया–

प. कइविहे णं भंते ! वंधे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे वंधे पण्णत्ते, तं जहा–

१. इरियावहिया वंधे य, २. संपराइयवंधे य।

–विया. स. ८, उ. ८, सु. १०

५८. ईर्यापथिक और साम्परायिक की अपेक्षा वंध के भेद–

प्र. भंते ! वंध कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वन्ध दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. ईर्यापथिकवन्ध, २. साम्परायिकवन्ध।

५९. विविहावेक्खया वित्थरओ इरियावहियवंधसामित्तं–

प. इरियावहियं णं भंते ! कम्मं किं नेरइओ वंधइ,
तिरिक्खजोणिओ वंधइ, तिरिक्खजोणिणी वंधइ,
मणुस्सो वंधइ, मणुस्सी वंधइ,
देवो वंधइ, देवी वंधइ ?

उ. गोयमा ! नो नेरइओ वंधइ,
नो तिरिक्खजोणिओ वंधइ, नो तिरिक्खजोणिणी वंधइ,
नो देवो वंधइ, नो देवी वंधइ,
पुव्वपडिवन्नए पडुच्च मणुस्सा य मणुस्सीओ य वंधंति,

५९. विविध अपेक्षा से विस्तृत ईर्यापथिक बंध स्वामित्व–

प्र. भंते ! ईर्यापथिककर्म क्या नैरयिक वाँधता है,
तिर्यञ्चयोनिक वाधंता है, तिर्यञ्चयोनिकी (मादा) वांधती है,
मनुष्य वांधता है, मनुष्य-स्त्री (नारी) वांधती है,
देव वांधता है या देवी वांधती है ?

उ. गौतम ! ईर्यापथिककर्म न नैरयिक वांधता है,
न तिर्यञ्चयोनिक वांधता है, न तिर्यञ्चयोनिक स्त्री वंधती है,
न देव वंधता है और न देवी वांधती है,
किन्तु पूर्वप्रतिपन्नक की अपेक्षा इसे मनुष्य पुरुष वांधते हैं और
मनुष्य स्त्रियां वांधती हैं,

---

१. [illegible]

२. सम. सम. १, सु. १६

३. (क) ठाणं. ९, सु. ६९३
(ख) सम. सम. २, सु. ३

पडिवज्जमाणए पडुच्च–

१. मणुसो वा बंधइ,
२. मणुस्सी वा बंधइ,
३. मणुस्सा वा बंधंति,
४. मणुस्सीओ वा बंधंति,
५. अहवा मणुस्सो य मणुस्सी य बंधइ,
६. अहवा मणुस्सो य, मणुस्सीओ य बंधंति,
७. अहवा मणुस्सा य, मणुस्सी य बंधइ,
८. अहवा मणुस्सा य, मणुस्सीओ य बंधंति।

प. तं भंते ! किं इत्थी बंधइ, पुरिसो बंधइ, नपुंसगो बंधइ,

इत्थीओ बंधंति, पुरिसा बंधंति, नपुंसगा बंधंति,

नो इत्थी, नो पुरिसो, नो नपुंसगो बंधइ?

उ. गोयमा ! नो इत्थी बंधइ, नो पुरिसो बंधइ, नो नपुंसगो बंधइ, नो इत्थीओ बंधंति, नो पुरिसा बंधंति, नो नपुंसगा बंधंति;

नो इत्थी नो पुरिसो नो नपुंसगो बंधइ,

पुव्वपडिवन्नए पडुच्च अवगयवेदा बंधंति,

पडिवज्जमाणए य पडुच्च अवगयवेदो वा बंधइ, अवगयवेदा वा बंधंति।

प. जइ भंते ! अवगयवेदो वा बंधइ, अवगयवेदा वा बंधंति तं भंते ! किं

१. इत्थीपच्छाकडो बंधइ,
२. पुरिसपच्छाकडो बंधइ,
३. नपुंसकपच्छाकडो बंधइ,
४. इत्थीपच्छाकडा बंधंति,
५. पुरिसपच्छाकडा बंधंति,
६. नपुंसकपच्छाकडा बंधंति,
७. अहवा इत्थीपच्छाकडो य, पुरिसपच्छाकडो य बंधइ,
८. अहवा इत्थीपच्छाकडो य, पुरिसपच्छाकडा य बंधंति,
९. अहवा इत्थीपच्छाकडा य, पुरिसपच्छाकडो य बंधइ,
१०. अहवा इत्थीपच्छाकडा य, पुरिसपच्छाकडा य बंधंति,
११. अहवा इत्थीपच्छाकडो य, नपुंसक पच्छाकडो य बंधइ,

प्रतिपद्यमान की अपेक्षा–

१. मनुष्य-पुरुष बांधता है,
२. मनुष्य स्त्री बांधती है,
३. बहुत से मनुष्य पुरुष बांधते हैं,
४. बहुत-सी मनुष्य स्त्रियां बांधती हैं,
५. अथवा एक मनुष्य और एक मनुष्य-स्त्री बांधती है।
६. अथवा एक मनुष्य-पुरुष और बहुत-सी मनुष्य-स्त्रियां बांधती हैं,
७. अथवा बहुत-से मनुष्य पुरुष और एक मनुष्य-स्त्री बांधती है,
८. अथवा बहुत से मनुष्य पुरुष और बहुत-सी मनुष्य-स्त्रियां बांधती हैं।

प्र. भंते ! क्या (ऐर्यापथिक (कर्म) बन्ध) स्त्री बांधती है, पुरुष बांधता है या नपुंसक बांधता है,

स्त्रियां बांधती हैं, पुरुष बांधते हैं या नपुंसक बांधते हैं,

या नो स्त्री, नो पुरुष, नो नपुंसक बांधता है?

उ. गौतम ! इसे स्त्री नहीं बांधती, पुरुष नहीं बांधता, नपुंसक नहीं बांधता, स्त्रियां नहीं बांधती, पुरुष नहीं बांधते और नपुंसक भी नहीं बांधते हैं

किन्तु नो स्त्री, नो पुरुष और नो नपुंसक बांधता है।

पूर्वप्रतिपन्नक की अपेक्षा वेदरहित (बहुत से) जीव बांधते हैं,

प्रतिपद्यमान की अपेक्षा वेदरहित (एक) जीव बांधता है या (बहुत से) वेदरहित जीव बांधते हैं।

प्र. भंते ! यदि वेदरहित एक जीव या वेदरहित बहुत से जीव (ऐर्यापथिक कर्म) बांधते हैं तो क्या–

१. स्त्री-पश्चात्कृत जीव (जो जीव भूतकाल में स्त्रीवेदी था, अब वर्तमान काल में अवेदी हो गया है) बांधता है?
२. पुरुष-पश्चात्कृत जीव (जो जीव पहले पुरुषवेदी था, अब अवेदी हो गया है) बांधता है?
३. नपुंसक-पश्चात्कृत जीव (जो पहले नपुंसकवेदी था, अब अवेदी हो गया है) बांधता है?
४. स्त्रीपश्चात्कृत जीव बांधते हैं?
५. पुरुषपश्चात्कृत जीव बांधते हैं?
६. नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधते हैं?
७. अथवा एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव और एक पुरुषपश्चात्कृत जीव बांधता है?
८. एक स्त्री-पश्चात्कृत जीव बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव बांधते है?
९. अथवा बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव और एक पुरुषपश्चात्कृत जीव बांधता है?
१०. अथवा बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव और बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव बांधते है?
११. अथवा एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव और एक नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधता है?

१२. **अहवा** इत्थीपच्छाकडो य, नपुंसकपच्छाकडा य बंधंति,
१३. **अहवा** इत्थीपच्छाकडा य, नपुंसकपच्छाकडो य बंधइ,
१४. **अहवा** इत्थीपच्छाकडो य, नपुंसकपच्छाकडो य बंधई,
१५. **अहवा** पुरिसपच्छाकडो य, नपुंसकपच्छाकडो य बंधइ,
१६. **अहवा** पुरिसपच्छाकडो य, नपुंसकपच्छाकडा य बंधइ,
१७. **अहवा** पुरिसपच्छाकडा य, नपुंसकपच्छाकडो य बधंति,
१८. **अहवा** पुरिसपच्छाकडा य, नपुंसकपच्छाकडा य बंधंति,
१९. **अहवा** इत्थीपच्छाकडो य, पुरिसपच्छाकडो य, नपुंसकपच्छाकडो य बंधइ।
२०. **अहवा** इत्थीपच्छाकडो य, पुरिसपच्छाकडो य, नपुंसकपच्छाकडा य बंधंति,
२१. **अहवा** इत्थीपच्छाकडो य, पुरिसपच्छाकडा य, नपुंसकपच्छाकडो य बंधइ,
२२. **अहवा** इत्थीपच्छाकडो य, पुरिसपच्छाकडा य, नपुंसकपच्छाकडो य बंधंति,
२३. **अहवा** इत्थीपच्छाकडा य, पुरिसपच्छाकडो य, नपुंसकपच्छाकडो य बंधइ,
२४. **अहवा** इत्थीपच्छाकडा य, पुरिसपच्छाकडो य, नपुंसकपच्छाकडा य बंधंति,
२५. **अहवा** इत्थीपच्छाकडा य, पुरिसपच्छाकडा य, नपुंसकपच्छाकडो य बंधइ,
२६. **अहवा** इत्थीपच्छाकडा य, पुरिसपच्छाकडा य, नपुंसकपच्छाकडा य बंधंति ?

उ. गोयमा ! १. इत्थिपच्छाकडो वि बंधइ जाव २६. **अहवा** इत्थिपच्छाकडा य, पुरिसपच्छाकडा य, नपुंसकपच्छाकडा य बंधंति।

प. तं भंते ! १. किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ
२. बंधी, बंधइ, न बंधिस्सइ,
३. बंधी, न बंधइ, बंधिस्सइ,
४. बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ,
५. न बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ,
६. न बंधी, बंधइ, न बंधिस्सइ,

१२. **अथवा** एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधते हैं ?
१३. **अथवा** बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव और एक नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधता है ?
१४. **अथवा** बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधते हैं ?
१५. **अथवा** एक पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधता है ?
१६. **अथवा** एक पुरुष पश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधते हैं,
१७. **अथवा** बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधता है,
१८. **अथवा** बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधते हैं ?
१९. **अथवा** एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव, एक पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधता है,
२०. **अथवा** एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव, एक पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसक पश्चात्कृत जीव बांधते हैं,
२१. **अथवा** एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधता है ?
२२. **अथवा** एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधते हैं,
२३. **अथवा** बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, एक पुरुष पश्चात्कृत जीव और एक नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधता है,
२४. **अथवा** बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, एक पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधते हैं,
२५. **अथवा** बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधता है,
२६. **अथवा** बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधते हैं ?

उ. गौतम ! १. (ऐर्यापथिक कर्म) १ स्त्रीपश्चात्कृत जीव भी बांधता है **यावत्** २६. बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव भी बांधते हैं।

(इसी प्रकार छब्बीस भंग यहां उत्तर में भी कह देने चाहिए।)

प्र. भंते ! क्या जीव ने (ऐर्यापथिक कर्म) १. बांधा था, बाँधता है और बांधेगा,
२. बांधा था, बांधता है और नहीं बांधेगा,
३. बांधा था, नहीं बांधता है और बांधेगा,
४. बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा,
५. नहीं बांधा, बांधता है और बांधेगा,
६. नहीं बांधा, बांधता है और नहीं बांधेगा,

७. न बंधी, न बंधइ, बंधिस्सइ,

८. न बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ ?

उ. गोयमा ! भवागरिसं पडुच्च–

१. अत्थेगइए बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ जाव–

८. अत्थेगइए न बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ।

गहणागरिसं पडुच्च–

१-५. अत्थेगइए बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ एवं जाव अत्थेगइए न बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ।

६. णो चेव णं न बंधी, बंधइ, न बंधिस्सइ।

७. अत्थेगइए न बंधी, न बंधइ, बंधिस्सइ।

८. अत्थेगइए न बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ।

–विया. स. ८, उ. ८, सु. ११-१४

६०. इरियावहियबंधं पडुच्च सादिसपज्जवसियाइ देससव्वाइयबंध परूवणं–

प. तं भंते ! किं साईयं सपज्जवसियं बंधइ, साईयं अपज्जवसियं बंधइ,

अणाईयं सपज्जवसियं बंधइ, अणाईयं अप्पज्जवसियं बंधइ ?

उ. गोयमा ! साईयं सपज्जवसियं बंधइ, नो साईयं अपज्जवसियं बंधइ, नो अणाईयं सपज्जवसियं बंधइ, नो अणाईयं अपज्जवसियं बंधइ।

प. तं भंते ! किं देसेणं देसं बंधइ, देसेणं सव्वं बंधइ,

सव्वेणं देसं बंधइ, सव्वेणं सव्वं बंधइ ?

उ. गोयमा ! नो देसेणं देसं बंधइ,

नो देसेणं सव्वं बंधइ,

नो सव्वेणं देसं बंधइ, सव्वेणं सव्वं बंधइ।

–विया. स. ८, उ. ८, सु. १५-१६

६१. विविहावेक्खया वित्थरओ संपराइयबंधसामित्तं–

प. संपराइयं णं भंते ! कम्मं किं नेरइओ बंधइ,

तिरिक्खजोणिओ बंधइ,

तिरिक्खजोणिणी बंधइ,

मणुस्सो बंधइ, मणुस्सी बंधइ,

देवो बंधइ, देवी बंधइ ?

उ. गोयमा ! नेरइओ वि बंधइ जाव देवी वि बंधइ।

प. तं भंते ! किं इत्थी बंधइ, पुरिसो बंधइ, नपुंसगो बंधइ जाव नो इत्थी नो पुरिसो नो नपुंसगो बंधइ ?

उ. गोयमा ! इत्थी वि बंधइ जाव नो इत्थि नो पुरिसो नो नपुंसगो वि बंधइ।

७. नहीं बांधा, नहीं बांधता है और बांधेगा,

८. नहीं बांधा, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

उ. गौतम ! भवाकर्ष की अपेक्षा–

१. किसी जीव ने बांधा था, बांधता है और बांधेगा यावत्–

८. किसी जीव ने नहीं बांधा, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा।

ग्रहणाकर्ष की अपेक्षा–

१-५. किसी जीव ने बांधा था, बांधता है और बांधेगा इसी प्रकार यावत् किसी जीव ने नहीं बांधा था, बांधता है और बांधेगा कहना चाहिए।

६. किन्तु नहीं बांधा था, बांधता है और नहीं बांधेगा, यह छठा भंग नहीं कहना चाहिए।

७. किसी एक जीव ने नहीं बांधा था, नहीं बांधता है और बांधेगा।

८. किसी एक जीव ने नहीं बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा।

६०. ऐर्यापथिक बंध की अपेक्षा सादिसपर्यवसितादि व देशसर्वादि बंध प्ररूपण–

प्र. भंते ! जीव ऐर्यापथिक कर्म क्या सादि-सपर्यवसित बांधता है या सादि अपर्यवसित बांधता है,

अथवा अनादि-सपर्यवसित बांधता है या अनादि-अपर्यवसित बांधता है ?

उ. गौतम ! जीव ऐर्यापथिक कर्म सादि-सपर्यवसित बांधता है, किन्तु सादिअपर्यवसित नहीं बांधता है, अनादि-सपर्यवसित नहीं बांधता है और अनादि अपर्यवसित भी नहीं बांधता है।

प्र. भंते ! जीव (ऐर्यापथिक कर्म) देश से आत्मा के देश को बांधता है या देश से सर्व (समग्र) को बांधता है,

सर्व से देश को बांधता है या सर्व से सर्व को बांधता है ?

उ. गौतम ! वह (ऐर्यापथिक कर्म) देश से देश को नहीं बांधता,

देश से सर्व को नहीं बांधता,

सर्व से देश को नहीं बांधता, किन्तु सर्व से सर्व को बांधता है।

६१. विविध अपेक्षा से विस्तृत साम्परायिक बंध स्वामित्व–

प्र. भंते ! साम्परायिक कर्म नैरयिक बांधता है,

तिर्यञ्चयोनिक बांधता है,

तिर्यञ्चयोनिक स्त्री (मादा) बांधती है,

मनुष्य बांधता है, मनुष्य-स्त्री बांधती है,

देव बांधता है या देवी बांधती है ?

उ. गौतम ! नैरयिक भी बांधता है यावत् देवी भी बांधती है।

प्र. भंते ! (साम्परायिक कर्म) क्या स्त्री बांधती है, पुरुष बांधता है, नपुंसक बांधता है यावत् नो स्त्री नो पुरुष नो नपुंसक बांधता है ?

उ. गौतम ! स्त्री भी बांधता है यावत् नो स्त्री नो पुरुष नो नपुंसक भी बांधता है।

अहवा अवगयवेयो य बंधइ,
अहवा अवगयवेया य बंधंति।

प. जइ भंते ! अवगयवेयो य बंधइ, अवगयवेया य वंधंति तं भंते ! किं–

१. इत्थीपच्छाकडो बंधइ, पुरिसपच्छाकडो वंधइ, नपुंसकपच्छाकडो बंधइ जाव

२६ अहवा इत्थीपच्छाकडा य, पुरिसपच्छाकडा य, नपुंसकपच्छाकडा य बंधंति?

उ. गोयमा ! एवं जहेव इरियावहिया बंधगस्स तहेव निरवसेसं जाव (२६) अहवा इत्थीपच्छाकडा य, पुरिसपच्छाकडा य, नपुंसगपच्छाकडा य बंधंति।

प. तं भंते !
१. किं बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ,
२. बंधी, बंधइ, न बंधिस्सइ,
३. बंधी, न बंधइ, बंधिस्सइ,
४. बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ,

उ. गोयमा ! १. अत्थेगइए बंधी, बंधइ, बंधिस्सइ,
२. अत्थेगइए बंधी, बंधइ, न बंधिस्सइ,
३. अत्थेगइए बंधी, न बंधइ, बंधिस्सइ,
४. अत्थेगइए बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ।

–विया. स. ८, उ. ८, सु. १७-२०

६२. संपराइयबंधं पडुच्च सादिसपज्जवसियाइ देससव्वाइय वंधपरूवणं–

प. तं भंते ! किं साईयं सपज्जवसियं बंधइ जाव अणाईयं अपज्जवसियं बंधइ?

उ. गोयमा ! साईयं वा सपज्जवसियं बंधइ, अणाईयं वा सपज्जवसियं बंधइ,
अणाईयं वा अपज्जवसियं बंधइ, णो चेव णं साईयं अपज्जवसियं बंधइ।

प. तं भंते ! किं देसेणं देसं बंधइ जाव सव्वेणं सव्वं बंधइ?

उ. गोयमा ! एवं जहेव इरियावहिया वंधगस्स जाव सव्वेणं सव्वं वंधइ। *–विया. स. ८, उ. ८, सु. २१-२२*

६३. दव्वभाववंधरूवं वंधस्स भेय जुयं–

प. कइविहे णं भंते ! वंधे पण्णत्ते?

उ. मागंदियपुत्ता ! दुविहे वंधे पण्णत्ते, तं जहा–
१. दव्ववंधे य, २. भाववंधे य।

प. दव्ववंधे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते?

उ. मागंदियपुत्ता ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. पयोगवंधे य, २. वीससावंधे य।

प. वीससावंधेणं भंते ! कइविहे पण्णत्ते?

अथवा अवेदी एक जीव भी वांधता हैं,
अथवा वहुत अवेदी जीव भी वांधते हैं।

प्र. भंते ! यदि वेदरहित एक जीव और वेदरहित वहुत से जीव साम्परायिक कर्म वांधते हैं तो क्या–

१. स्त्रीपश्चात्कृत जीव वांधता है या पुरुषपश्चात्कृत जीव वांधता है या नपुंसक पश्चात्कृत जीव वांधता है यावत्

२६. अथवा वहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, वहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और वहुत नपुंसक पश्चात्कृत जीव वांधते हैं?

उ. गौतम ! जिस प्रकार ऐर्यापथिक कर्मवन्ध के सम्वन्ध में छव्वीस भंग कहे हैं, उसी प्रकार यहां भी सभी भंग कहने चाहिए यावत् (२६) अथवा वहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, वहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और वहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव वांधते हैं।

प्र. भंते ! १. साम्परायिक कर्म–
१. किसी जीव ने वांधा था, वांधता है और वाँधेगा?
२. वांधा था, वांधता है और नहीं वांधेगा?
३. वांधा था, नहीं वांधता है और वांधेगा?
४. वांधा था, नहीं वांधता है और नहीं वांधेगा?

उ. गौतम ! १. किसी जीव ने वांधा, वांधता है और वांधेगा,
२. किसी जीव ने वांधा, वांधता है और नहीं वांधेगा,
३. किसी जीव ने वांधा, नहीं वांधता है और वांधेगा,
४. किसी जीव ने वांधा, नहीं वांधता है और नहीं वांधेगा।

६२. साम्परायिक बंध की अपेक्षा सादि सपर्यवसितादि व देशसर्वादि बंध प्ररूपण–

प्र. भंते ! साम्परायिक कर्म सादि-सपर्यवसित वांधता है यावत् अनादि अपर्यवसित वांधता है?

उ. गौतम ! साम्परायिक कर्म सादि-सपर्यवसित बांधता है, अनादि-सपर्यवसित बांधता है,
अनादि-अपर्यवसित बांधता है, किन्तु सादि-अपर्यवसित नहीं बांधता है।

प्र. भंते ! साम्परायिक कर्म देश से आत्मा के देश को वांधता है यावत् सर्व से सर्व को बांधता है?

उ. गौतम ! जिस प्रकार ऐर्यापथिक कर्म बन्ध के संबंध में कहा है उसी प्रकार यावत् सर्व से सर्व को बांधता है कहना चाहिए।

६३. द्रव्य-भाव बंधरूप बंध के दो भेद–

प्र. भंते ! वन्ध कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. माकन्दिकपुत्र ! वन्ध दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. द्रव्यवन्ध, २. भाववन्ध।

प्र. भंते ! द्रव्यवन्ध कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. माकन्दिकपुत्र ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. प्रयोगवन्ध, २. विस्रसावन्ध।

प्र. भंते ! विस्रसावन्ध कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. मागंदियपुत्ता ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. साईयवीससावंधे य, २. अणाईयवीससावंधे य।

प. पयोगबंधे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. मागंदियपुत्ता ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सिढिलबंधणबंधे य, २. घणियबंधणवंधे य।

प. भाववंधे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. मागंदियपुत्ता ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. मूलपगडिवंधे य, २. उत्तरपगडिबंधे य।

–विया. स. १८, उ. ३, सु. १०-१४

६४. चउवीसदंडएसु भाववंधपरूवणं–

प. दं. १ नेरइयाणं भंते ! कइविहे भावबंधे पण्णत्ते ?

उ. मागंदियपुत्ता ! दुविहे भावबंधे पण्णत्ते, तं जहा–

१. मूलपगडिवंधे य, २. उत्तरपगडिवंधे य।

दं. २-२४ एवं जाव वेमाणियाणं।

–विया. स. १८, उ. ३, सु. १५-१६

६५. जीव-चउवीसदंडएसु कम्मट्ठगाणं भावबंध परूवणं–

प. नाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स कइविहे भाववंधे पण्णत्ते ?

उ. मागंदियपुत्ता ! दुविहे भववंधे पण्णत्ते, तं जहा–

१. मूलपगडिवंधे य, २. उत्तरपगडिवंधे य।

प. दं. १ नेरइयाणं भंते ! नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स कइविहे भाव वंधे पण्णत्ते ?

उ. मागंदियपुत्ता ! दुविहे भावबंधे पण्णत्ते, तं जहा–

१. मूलपगडिवंधे य, २. उत्तरपगडिवंधे य।

दं. २-२४ एवं जाव वेमाणियाणं।

जहा नाणावरणिज्जेणं दंडओ भणिओ एवं जाव अंतराइएणं भाणियव्वो। –विया. स. १८, उ. ३, सु. १७-२०

६६. तिविहवंधभेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहे णं भंते ! वंधे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! तिविहे वंधे पण्णत्ते, तं जहा–

१. जीवप्पयोगवंधे, २. अणंतरवंधे, ३. परंपरवंधे।

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! कइविहे वंधे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

दं. २-२४ एवं जाव वेमाणियाणं।

[illegible]

उ. माकन्दिकपुत्र ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सादि विस्रसावन्ध, २. अनादि विस्रसावन्ध।

प्र. भंते ! प्रयोगवन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. माकन्दिकपुत्र ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. शिथिल-वन्धन वन्ध, २. सघन (गाढ) वन्धन-वन्ध।

प्र. भंते ! भाववन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. माकन्दिकपुत्र ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. मूलप्रकृतिवन्ध, २. उत्तरप्रकृतिवन्ध।

६४. चौवीसदंडकों में भाववन्ध का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिक जीवों के कितने प्रकार का भाववन्ध कहा गया है ?

उ. माकन्दिकपुत्र ! भाववन्ध दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. मूलप्रकृतिवन्ध, २. उत्तरप्रकृतिवन्ध।

दं. २-२४ इसी प्रकार वैमानिकों तक के भाववन्ध के विषय में कहना चाहिए।

६५. जीव-चौवीसदंडकों में अष्टकर्मों का भाव वंध प्ररूपण–

प्र. भंते ! ज्ञानावरणीय कर्म का भाववन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. माकन्दिकपुत्र ! वह भाववन्ध दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. मूलप्रकृतिवन्ध, २. उत्तरप्रकृतिवन्ध।

प्र. दं. १ भंते ! नैरयिक जीवों के ज्ञानावरणीय कर्म का भाववन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. माकन्दिकपुत्र ! उनका भाववन्ध दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. मूल-प्रकृति-वन्ध, २. उत्तर-प्रकृति-वन्ध।

दं. २-२४ इसी प्रकार वैमानिकों तक के ज्ञानावरणीय-कर्मजनित भाववन्ध के विषय में कहना चाहिए।

जिस प्रकार ज्ञानावरणीयकर्म सम्बन्धी दण्डक कहा गया है, उसी प्रकार अन्तरायकर्म तक (दण्डक) कहना चाहिए।

६६. त्रिविध वंध भेद और चौबीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. [illegible]

उ. [illegible]

[illegible]

प्र. [illegible]

उ. [illegible]

[illegible]

अस्सायावेयणिज्जं च णं कम्मं भुज्जो-भुज्जो उवचिणाइ, अणाईयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसार कंतारं अणुपरियट्टइ।

एवं चक्खिंदियवसट्टे वि,, घाणिंदियवसट्टे वि, रसेंद्रिय वसट्टे वि, फासिंदियवसट्टे वि जाव अणुपरियट्टइ।

–विया. स. १२, उ. २, सु. २१

७१. कोहाइकसायवसट्ट जीवाणं कम्मबंधाइ परूवणं–

(तए णं) संखे समणोवासए समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–

प. कोहवसट्टे णं भंते ! जीवे किं बंधइ, किं पकरेइ, किं चिणाइ, किं उवचिणाइ?

उ. संखा ! कोहवसट्टेणं जीवे आउयवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ, सिढिलबंधणबद्धाओ, घणियबंधण-बद्धाओ पकरेइ जाव दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टइ।

एवं माणवसट्टे वि, मायावसट्टे वि

लोभवसट्टे वि जाव अणुपरियट्टइ।

–विया. स. १२, उ. १, सु. २६-२८

७२. पयडिबंधाइ चउव्विहा बंध भेया–

चउव्विहे बंधे पण्णत्ते, तं जहा–

१. पगडीबन्धे,
२. ठिई बन्धे,
३. अणुभाव बंधे,
४. पएसबंधे।[1]

–ठाणं अ. ४, उ. २, सु. २९६(१)

७३. कम्माणं उवक्कमाई बंध भेय परूवणं–

चउव्विहे उवक्कमे पण्णत्ते, तं जहा–

१. बंधणोवक्कमे, २. उदीरणोवक्कमे,
३. उवसामणोवक्कमे, ४. विप्परिणामणोवक्कमे।

(१) बंधणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. पगइबंधणोवक्कमे, २. ठिईबंधणोवक्कमे,
३. अणुभावबंधणोवक्कमे, ४. पएसबंधणोवक्कमे।

(२) उदीरणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. पगइउदीरणोवक्कमे, २. ठिईउदीरणोवक्कमे,
३. अणुभावउदीरणोवक्कमे, ४. पएसउदीरणोवक्कमे।

(३) उवसामणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. पगइउवसामणोवक्कमे,
२. ठिईउवसामणोवक्कमे,
३. अणुभावउवसामणोवक्कमे,
४. पएसउवसामणोवक्कमे।

(४) विप्परिणामणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. पगइविप्परिणामणोवक्कमे,

[illegible]

१. [illegible]

अशातावेदनीय कर्म का बार-बार उपचय करता है, अनादि अनन्त दीर्घ मार्ग वाले चातुर्गतिक संसार रूपी अरण्य में परिभ्रमण करता है।

इसी प्रकार चक्षुइन्द्रियवशार्त, घ्राणेन्द्रियवशार्त, रसनेन्द्रियवशार्त और स्पर्शनेन्द्रियवशार्त जीव भी परिभ्रमण करता है तक समझना चाहिए।

७१. क्रोधादिकषायवशार्त जीवों के कर्म बंधादि का प्ररूपण–

(इसके बाद) शंख श्रमणोपासक ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और वंदन नमस्कार करके इस प्रकार पूछा–

प्र. भंते ! क्रोधवशार्त जीव कितनी कर्म प्रकृतियों का बंध, उपार्जन, चय और उपचय करता है?

उ. शंख ! क्रोधवशार्त जीव आयु कर्म को छोड़कर–शिथिलबंधन बद्ध शेष सात कर्म प्रकृतियों को गाढ बंधन से बद्ध करता है यावत् दीर्घमार्ग वाले चातुर्गतिक संसार रूपी अरण्य में परिभ्रमण करता है।

इसी प्रकार मानवशार्त, मायावशार्त और लोभवशार्त जीव भी परिभ्रमण करता है यहाँ तक कहना चाहिए।

७२. प्रकृतिबन्ध आदि चार प्रकार के बंध भेद–

बन्ध चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. प्रकृति-बंध–कर्म-पुद्गलों का स्वभाव बंध,
२. स्थिति-बंध–कर्म-पुद्गलों की कालमर्यादा का बंध,
३. अनुभाग-बंध–कर्म-पुद्गलों के रस (फलदान शक्ति) का बंध,
४. प्रदेश-बंध–कर्म-पुद्गलों के परिमाण का बंध।

७३. कर्मों के उपक्रमादि बंध भेदों का प्ररूपण–

उपक्रम चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. बंधनोपक्रम, २. उदीरणोपक्रम,
३. उपशमनोपक्रम, ४. विपरिणामनोपक्रम।

(१) बंधनोपक्रम चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. प्रकृति-बंधनोपक्रम, २. स्थिति-बंधनोपक्रम,
३. अनुभाव-बंधनोपक्रम, ४. प्रदेश-बंधनोपक्रम।

(२) उदीरणोपक्रम चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. प्रकृति-उदीरणोपक्रम, २. स्थिति-उदीरणोपक्रम,
३. अनुभाव-उदीरणोपक्रम, ४. प्रदेश-उदीरणोपक्रम।

(३) उपशमनोपक्रम चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. प्रकृति-उपशमनोपक्रम,
२. स्थिति-उपशमनोपक्रम,
३. अनुभाव-उपशमनोपक्रम,
४. प्रदेश-उपशमनोपक्रम।

(४) विपरिणामनोपक्रम चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. प्रकृति-विपरिणामनोपक्रम,

[illegible]

२. ठिईविप्परिणामणोवक्कमे,

३. अणुभावविप्परिणामणोवक्कमे,

४. पएसविप्परिणामणोवक्कमे।

चउव्विहे संकमे पण्णत्ते, तं जहा–

१. पगइसंकमे, २. ठिईसंकमे,

३. अणुभावसंकमे, ४. पएससंकमे।

चउव्विहे णिहत्ते पण्णत्ते, तं जहा–

१. पगइणिहत्ते, २. ठिईणिहत्ते,

३. अणुभावणिहत्ते, ४. पएसणिहत्ते।

चउव्विहे णिगाइए पण्णत्ते, तं जहा–

१. पगइणिगाइए, २. ठिईणिगाइए,

३. अणुभावणिगाइए, ४. पएसणिगाइए।

चउव्विहे अप्पाबहुए पण्णत्ते, तं जहा–

१. पगइअप्पाबहुए, २. ठिईअप्पाबहुए,

३. अणुभावअप्पाबहुए, ४. पएसअप्पाबहुए।

–ठाणं. अ. ४, उ.२, सु. २९६ (२-१०)

२. स्थिति-विपरिणामनोपक्रम,

३. अनुभाव-विपरिणामनोपक्रम,

४. प्रदेश-विपरिणामनोपक्रम।

संक्रम चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. प्रकृति-संक्रम, २. स्थिति-संक्रम,

३. अनुभाव-संक्रम, ४. प्रदेश-संक्रम।

निधत्त चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. प्रकृति-निधत्त, २. स्थिति-निधत्त,

३. अनुभाव-निधत्त, ४. प्रदेश-निधत्त।

निकाचित चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. प्रकृति-निकाचित, २. स्थिति-निकाचित,

३. अनुभाव-निकाचित, ४. प्रदेश-निकाचित।

अल्पबहुत्व चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. प्रकृति-अल्पबहुत्व, २. स्थिति-अल्पबहुत्व,

३. अनुभाव-अल्पवहुत्व, ३. प्रदेश-अल्पबहुत्व।

७४. अवद्धंस भेएहिं कम्मबंध परूवणं–

चउव्विहे अवद्धंसे पण्णत्ते, तं जहा–

१. आसुरे, २. आभिओगे,

३. संमोहे, ४. देवकिब्बिसे।

(१) चउहिं ठाणेहिं जीवा आसुरत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा–

१. कोहसीलयाए,

२. पाहुडसीलयाए,

३. संसत्ततवोकम्मेणं,

४. निमित्ताजीवयाए।

(२) चउहिं ठाणेहिं जीवा आभिओगत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा–

१. अत्तुक्कोसेणं,

२. परपरिवाएणं,

३. भूइकम्मेणं,

४. कोउयकरणेणं।

(३) चउहिं ठाणेहिं जीवा सम्मोहत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा–

१. उम्मग्गदेसणाए,

२. मग्गंतराएणं,

३. कामासंसप्पओगेणं,

४. भिज्झानियाणकरणेणं।

(४) चउहिं ठाणेहिं जीवा देवकिब्बिसियत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा–

१. अरहंताणं अवन्नं वयमाणे,

२. अरहंतपन्नत्तस्स धम्मस्स अवन्नं वयमाणे,

३. आयरिय-उवज्झायाणमवन्नं वयमाणे,

४. चाउवण्णस्स संघस्स अवन्नं वयमाणे।

–ठाणं अ. ४, उ. ४, सु. ३५४

७४. अपध्वंस के भेद और उनसे कर्म बंध का प्ररूपण–

अपध्वंस (साधना का विनाश) चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. आसुर-अपध्वंस, २. आभियोग-अपध्वंस,

३. सम्मोह-अपध्वंस, ४. देवकिल्विष-अपध्वंस।

(१) चार स्थानों से जीव आसुरत्व-कर्म का अर्जन करता है, यथा–

१. (कोपशीलता) क्रोधी स्वभाव से,

२. प्राभृतशीलता–कलहस्वभाव से,

३. संसक्त तप-कर्म (प्राप्ति की अभिलाषा रखकर तप करने से),

४. निमित्त जीविता–निमित्तादि वताकर आजीविका करने से।

(२) चार स्थानों से जीव आभियोगित्व-कर्म का अर्जन करता है, यथा–

१. आत्मोत्कर्ष–आत्म-गुणों का अभिमान करने से,

२. पर-परिवाद-दूसरों का अवर्णवाद वोलने से,

३. भूतिकर्म–भस्म, लेप आदि के द्वारा चिकित्सा करने से,

४. कौतुककरण–मंत्रित जल द्वारा स्नान कराने से।

(३) चार स्थानों से जीव सम्मोहत्व-कर्म का अर्जन करता है, यथा–

१. उन्मार्ग देशना–मिथ्या धर्म का प्ररूपण करने से,

२. मार्गान्तराय–सन्मार्ग से विचलित करने पर,

३. कामाशंसाप्रयोग–विषयों में अभिलाषा करने पर,

४. मिथ्यानिदानकरण–गृद्धिपूर्वक निदान करने से।

(४) चार स्थानों से जीव देव-किल्विषिकत्व कर्म का अर्जन करता है, यथा–

१. अर्हन्तों का अवर्णवाद वोलने से,

२. अर्हन्त प्रज्ञप्त धर्म का अवर्णवाद वोलने से,

३. आचार्य तथा उपाध्याय का अवर्णवाद वोलने से,

४. चतुर्विध संघ का अवर्णवाद वोलने से।

७५. जीव-चउवीसदंडएसु णाणावरणिज्जाइ कम्म वंधमाणे कइ कम्मपयडी वंधं–

प. १. जीवे णं भंते। णाणावरणिज्जं कम्मं वंधमाणे कइ कम्मपगडीओ वंधइ?

उ. गोयमा ! सत्तविहवंधए वा, अट्ठविहवंधए वा, छव्विहवंधए वा।

प. दं. १. णेरइए णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वंधमाणे कइ कम्मपगडीओ वंधइ?

उ. गोयमा ! सत्तविहवंधए वा, अट्ठविहबंधए वा।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिए।

दं. २१. [illegible]–मणूसे जहा जीवे।

[illegible] कम्मं वंधमाणा कइ

[illegible] य,

७५. जीव-चौवीसदंडकों में ज्ञानावरणीय आदि कर्म बांधते हुए को कितनी कर्म प्रकृतियों का वन्ध–

प्र. १. भंते ! (एक) जीव ज्ञानावरणीयकर्म को वांधता हुआ कितनी कर्म प्रकृतियों को वांधता है ?

उ. गौतम ! वह सात, आठ या छह कर्म-प्रकृतियों का वंधक होता है।

प्र. दं. १. भंते ! (एक) नैरयिक जीव ज्ञानावरणीयकर्म को वांधता हुआ कितनी कर्म-प्रकृतियों को वांधता है ?

उ. गौतम ! वह सात या आठ कर्म-प्रकृतियों का वंधक होता है।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

दं. २१. विशेष–मनुष्य-सम्वन्धी कथन जीव के समान जानना चाहिए।

प्र. भंते ! (वहुत) जीव ज्ञानावरणीयकर्म को वांधते हुए कितनी कर्म-प्रकृतियों को वांधते हैं ?

उ. गौतम ! १. सभी जीव सात या आठ कर्म-प्रकृतियों के वन्धक होते हैं,

२. अथवा वहुत से जीव सात या आठ कर्म-प्रकृतियों के वन्धक होते हैं और एक जीव छह कर्म प्रकृतियों का वन्धक होता है।

[illegible] वहुत से जीव सात, आठ या छह कर्म-प्रकृतियों [illegible] होते हैं।

[illegible] से) नैरयिक ज्ञानावरणीयकर्म को वांधते [illegible] तियों को वांधते हैं ?

[illegible] सात कर्म-प्रकृतियों के वन्धक

[illegible] कर्म-प्रकृतियों के वन्धक

[illegible] प्रकृतियों का वन्धक

[illegible] कर्म-प्रकृतियों के

[illegible] कुमारों तक

[illegible] यकर्म

(घ) चउरिंदिय जाइणामए वि एवं चेव।

(घ) चतुरिन्द्रिय जाति नाम कर्म की स्थिति आदि भी इसी प्रकार है।

प. (ङ) पंचेंदियजाइणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,
वीस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प्र. (ङ) भंते ! पंचेन्द्रिय-जाति-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से दो भाग (२/७) की है,
उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अबाधाकाल दो हजार वर्ष का है।
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

३. (क) ओरालियसरीरणामए वि एवं चेव।

३. (क) औदारिक-शरीर-नामकर्म की स्थिति आदि भी इसी प्रकार है।

प. (ख) वेउव्वियसरीरणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स दो सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,
वीस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प्र. (ख) भंते ! वैक्रिय-शरीर-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र सागरोपम के सात भागों में से दो भाग (२/७) की है,
उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अबाधाकाल दो हजार वर्ष का है।
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प. (ग) आहारगसरीरणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ,
उक्कोसेण वि अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ।

प्र. (ग) भंते ! आहारक-शरीर-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागरोपम की है,
उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तःकोडाकोडी सागरोपम की है।

प. (घ.-ङ) तेयग-कम्मसरीरणामस्स णं भंते ! कम्माणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,
वीस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प्र. (घ-ङ) भंते ! तैजस्-कार्मण-शरीर-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से दो भाग (२/७) की है,
उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है।
इनका अबाधाकाल दो हजार वर्ष का है।
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

४. ओरालिय-वेउव्विय-आहारगसरीरंगोवंगणामए तिण्णि वि एवं चेव।

४. औदारिकशरीरांगोपांग, वैक्रियशरीरांगोपांग और आहारकशरीरांगोपांग इन तीनों नामकर्मों की स्थिति आदि भी इसी प्रकार है।

५. सरीरबंधणामए पंचण्ह वि एवं चेव।

५. पांचों शरीरबन्ध-नामकर्मों की स्थिति आदि भी इसी प्रकार है।

६. सरीरसंघायणामए पंचण्ह वि जहा सरीरणामए कम्मस्स ठिई त्ति।

६. पांचों शरीरसंघात-नामकर्मों की स्थिति आदि शरीर-नामकर्मों की स्थिति के समान है।

७. (क) वइरोसभणारायसंघयण णामए जहा रइ मोहणिज्जकम्मए।

७. (क) वज्रऋषभनाराचसंहनन-नामकर्म की स्थिति आदि रति मोहनीय कर्म की स्थिति के समान है।

प. (ख) उसभणारायसंघयणणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स छ पणतीसतिभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,

प्र. (ख) भंते ! ऋषभनाराचसंहनन-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के पेंतीस भागों में से छ भाग (६/३५) की है,

उक्कोसेणं बारस सागरोवमकोडाकोडीओ,
बारस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प. (ग) णारायसंघयणणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स सत्त पणतीसतिभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं चोद्दस सागरोवमकोडाकोडीओ,
चोद्दस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प. (घ) अद्धणारायसंघयणणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स अट्ठ पणतीस-तिभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं सोलस सागरोवमकोडाकोडीओ,
सोलस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प. (ङ) खीलियासंघयणणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स णव पणतीसतिभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं
उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ,
अट्ठारस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प. (च) सेवट्टसंघयणणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,
वीस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

८. एवं जहा संघयणणामए छ भणिया एवं संठाणा वि छ भाणियव्वा।

प. ९. (क) सुक्किलवण्णणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स एगं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं दस सागरोवमकोडाकोडीओ,
दस य वाससयाइं अबाहा,

उत्कृष्ट स्थिति बारह कोडाकोडी सागरोपम की है,
इसका अबाधाकाल बारह सौ वर्ष का है।
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प्र. (ग) भंते ! नाराचसंहनन-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के पैंतीस भागों में से सात भाग (७/३५) की है,
उत्कृष्ट स्थिति चौदह कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अबाधाकाल चौदह सौ वर्ष का है।
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प्र. (घ) भंते ! अर्धनाराचसंहनन-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के पैंतीस भागों में से आठ भाग (८/३५) की है।
उत्कृष्ट स्थिति सोलह कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अबाधाकाल सोलह सौ वर्ष का है।
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प्र. (ङ) भंते ! कीलिकासंहनन-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के पैंतीस भागों में से नव भाग (९/३५) की है,
उत्कृष्ट स्थिति अठारह कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अबाधाकाल अठारह सौ वर्ष का है।
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प्र. (च) भंते ! सेवार्त्तसंहनन-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से दो भाग (२/७) की है,
उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अबाधाकाल दो हजार वर्ष का है।
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

८. जिस प्रकार ये छह संहनननामकर्मों की स्थिति आदि कही है, उसी प्रकार छह संस्थान नामकर्मों की भी स्थिति आदि कहनी चाहिए।

प्र. ९. (क) भंते ! शुक्लवर्णनामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से एक भाग (१/७) की है,
उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अबाधाकाल एक हजार वर्ष का है।

अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

अवाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प. (ख) हालिद्दवण्णणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स पंच अट्ठावीसइभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,

उक्कोसेणं अद्धतेरस सागरोवमकोडाकोडीओ,

अद्धतेरस य वाससयाइं अबाहा,

अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प्र. (ख) भंते ! हारिद्र (पीत) वर्णनामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के अट्ठाईस भागों में से पांच भाग (५/२८) की है,

उत्कृष्ट स्थिति साढ़े बारह कोडाकोडी सागरोपम की है।

इसका अवाधाकाल साढ़े बारह सौ वर्ष का है।

अवाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प. (ग) लोहियवण्णणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स छ अट्ठावीसइभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,

उक्कोसेणं पण्णरस सागरोवमकोडाकोडीओ,

पण्णरस य वाससयाइं अबाहा,

अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प्र. (ग) भंते ! लोहित (लाल) वर्णनामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के अट्ठाईस भागों में से छह भाग (६/२८) की है,

उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम की है।

इसका अवाधाकाल पन्द्रह सौ वर्ष का है।

अवाधाकाल जितनी न्यून कर्मस्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प. (घ) णीलवण्णणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स सत्त अट्ठावीसइभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,

उक्कोसेणं अद्धट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ,

अद्धट्ठारस य वाससयाइं अबाहा,

अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प्र. (घ) भंते ! नीलवर्णनामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के अट्टाईस भागों में से सात भाग (७/२८) की है,

उत्कृष्ट स्थिति साढ़े सत्तरह कोडाकोडी सागरोपम की है।

इसका अवाधाकाल साढ़े सत्तरह सौ वर्ष का है।

अवाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

(ङ) कालवण्णणामए जहा सेवट्टसंघयणस्स।

(ङ) कृष्णवर्ण नामकर्म की स्थिति आदि सेवार्त्तसंहनन नामकर्म की स्थिति के समान है।

प. १०. सुब्भिगंधणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहा सुक्किलवण्णणामस्स

(ख) दुब्भिगंधणामए जहा सेवट्टसंघयणस्स।

प्र. १०. (क) भंते ! सुरभिगन्ध-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! इसकी स्थिति आदि शुक्लवर्णनामकर्म की स्थिति के समान है।

(ख) दुरभिगन्ध-नामकर्म की स्थिति आदि सेवार्त्तसंहनन-नामकर्म की स्थिति के समान है।

११. रसाणं महुरादीणं जहा वण्णाणं भणियं तहेव परिवाडीए भाणियव्वं।

११. मधुर आदि रसों की स्थिति आदि शुक्ल आदि वर्णों की स्थिति के समान उसी क्रम से कहनी चाहिए।

१२. (क) फासा जे अपसत्था तेसिं जहा सेवट्टस्स,

(ख) जे पसत्था तेसिं जहा सुक्किलवण्णणामस्स।

१२. (क) अप्रशस्त स्पर्शों की स्थिति आदि सेवार्त्तसंहनन की स्थिति के समान है।

(ख) प्रशस्त स्पर्शों की स्थिति आदि शुक्ल-वर्ण-नाम-कर्म की स्थिति के समान है।

१३. अगुरुलहुणामए जहा सेवट्टस्स।

१३. अगुरुलघुनामकर्म की स्थिति आदि सेवार्त्तसंहनन की स्थिति के समान है।

१४. एवं उवघायणामए वि।

१५. पराघायणामए वि एवं चेव।

प. १६. (क) णिरयाणुपुव्विणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स दो सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,
वीस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प. (ख) तिरियाणुपुव्विणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स दो सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,
वीस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प. (ग) मणुयाणुपुव्विणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स दिवड्ढं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं पण्णरस सागरोवम कोडाकोडीओ,
पण्णरस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प. (घ) देवाणुपुव्विणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स एगं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं दस सागरोवमकोडाकोडीओ,
दस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प. १७. उस्सासणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहा तिरियाणुपुव्विए।
१८. आयवणामए नि एवं चेव।
१९. उज्जोयणामए वि एवं चेव।

प. २०. (क) पसत्थविहायगइणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं सागरोवमस्स सत्तभागं पलिओवमस्सअसंखेज्जइभागेणं ऊणगं

१४. इसी प्रकार उपघातनामकर्म की स्थिति के विषय में कहना चाहिए।

१५. पराघातनामकर्म की स्थिति भी इसी प्रकार है।

प्र. १६. (क) भंते ! नरकानुपूर्वी-नामकर्म की स्थिति कि काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग सहस्र सागरोपम के सात भागों में से दो भाग (२/७) की
उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अबाधाकाल दो हजार वर्ष का है।
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषे होता है।

प्र. (ख) भंते ! तिर्यञ्चानुपूर्वी नामकर्म की स्थिति कितने क की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग सागरोपम के सात भागों में से दो भाग (२/७) की है,
उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अबाधाकाल दो हजार वर्ष का है।
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषे होता है।

प्र. (ग) भंते ! मनुष्यानुपूर्वीनामकर्म की स्थिति कितने काल कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग क सागरोपम के सात भागों में से डेढ़ भाग (१॥/७) की है,
उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अबाधाकाल पन्द्रह सौ वर्ष का है।
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषे होता है।

प्र. (घ) भंते ! देवानुपूर्वीनामकर्म की स्थिति कितने काल कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग क सहस्र सागरोपम के सात भागों में से एक भाग (१/७ की है,
उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अबाधाकाल एक हजार वर्ष का है।
अवाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेव होता है।

प्र. १७. भंते ! उच्छ्वासनामकर्म की स्थिति कितने काल क कही गई है ?

उ. गौतम ! इसकी स्थिति आदि तिर्यञ्चानुपूर्वी के समान है।
१८. आतप-नामकर्म की स्थिति आदि भी इसी प्रकार है।
१९. उद्योतनामकर्म की स्थिति आदि भी इसी प्रकार है।

प्र. २०. (क) भंते ! प्रशस्तविहायोगति-नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से एक भाग (१/७) की है,

उक्कोसेणं दस सागरोवमकोडाकोडीओ,
दस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प. (ख) अपसत्थविहायगइणामस्स णं भंते ! [illegible]
केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स [illegible]
पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,
वीस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

२१. तसणामए एवं चेव,
२२. थावरणामए एवं चेव।

प. २३. सुहुमणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स [illegible]
पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ,
अट्ठारस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

२४. बायरणामए जहा अपसत्थविहायगइणामस्स।

२५. एवं पज्जत्तगणामए वि।

२६. अपज्जत्तगणामए जहा सुहुमणामस्स।

२७. साहारण-सरीरणामए जहा सुहुमस्स।

प. २८. पत्तेय-सरीरणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स दो सत्तभागा
पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ
वीस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प. २९. थिरणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स एगं सत्तभागं
पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं
उक्कोसेणं दस सागरोवमकोडाकोडीओ,
दस य वाससयाइं अबाहा,

[illegible]

२७. साधारण शरीर नाम कर्म की स्थिति [illegible] सूक्ष्म शरीर नाम कर्म के समान है।

प्र. २८. भंते ! [illegible]

उ. गौतम ! [illegible]
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प्र. २९. भंते ! स्थिर नाम कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से एक भाग (१/७) की है।
उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अबाधाकाल एक हजार वर्ष का है।

अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो

अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प. ३०. अथिरणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स दो सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,
वीस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प्र. ३०. भंते ! अस्थिर नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से दो भाग (२/७) की है।
उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अबाधाकाल दो हजार वर्ष का है।
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

३१. सुभणामए जहा थिरणामस्स।

३१. शुभनामकर्म की स्थिति आदि स्थिर नाम कर्म के समान है।

३२. असुभणामए जहा अथिरणामस्स।

३२. अशुभनामकर्म की स्थिति आदि अस्थिर नाम कर्म के समान है।

३३. सुभगणामए जहा थिरणामस्स।

३३. सुभगनामकर्म की स्थिति आदि स्थिर नाम कर्म के समान है।

३४. दुभगणामए जहा अथिरणामस्स।

३४. दुर्भग नाम कर्म की स्थिति आदि अस्थिर नाम कर्म के समान है।

३५. सूसरणामए जहा थिरणामस्स।

३५. सुस्वर नामकर्म की स्थिति आदि स्थिर नामकर्म के समान है।

३६. दूसरणामए जहा अथिरणामस्स।

३६. दुःस्वर नामकर्म की स्थिति आदि अस्थिर नामकर्म के समान है।

३७. आएज्जणामए जहा थिरणामस्स।

३७. आदेय नामकर्म की स्थिति आदि स्थिर नामकर्म के समान है।

३८. अणाएज्जणामए जहा अथिरणामस्स।

३८. अनादेय नामकर्म की स्थिति आदि अस्थिर नामकर्म के समान है।

प. ३९. जसोकित्तिणामए णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठ मुहुत्तं[1]
उक्कोसेणं दस सागरोवमकोडाकोडीओ,
दस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प्र. ३९. भंते ! यश कीर्तिनामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त की है,
उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अवाधाकाल एक हजार वर्ष का है।
अवाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प. ४०. अजसोकित्तिणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहा अपसत्थविहायगइणामस्स।

प्र. ४०. भंते ! अयश कीर्तिनामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! यह अप्रशस्तविहायोगतिनामकर्म की स्थिति आदि के समान है,

४१. एवं णिम्माणणामए वि।

४१. इसी प्रकार निर्माणनामकर्म की स्थिति आदि के विषय में जानना चाहिए।

प. ४२. तित्थगरणामस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ,
उक्कोसेण वि अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ,

प्र. ४२. भंते ! तीर्थंकरनामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागरोपम की है,
उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तः कोडाकोडी सागरोपम की है।

१. ठाणं अ. ८, सु. ६५८

णवरं-जत्थ एगो सत्तभागो तत्थ उक्कोसेणं दस सागरोवमकोडाकोडीओ दस य वाससयाइं अवाहा,

जत्थ दो सत्तभागा तत्थ उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ वीस य वाससयाइं अवाहा,

७. गोय-पयडीओ-

प. (क) उच्चागोयस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठ मुहुत्ता,[१]
उक्कोसेणं दस सागरोवमकोडाकोडीओ,
दस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

प. (ख) णीयागोयस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! **जहा अपसत्थविहायगइणामस्स।**

८. अंतराइय-पयडीओ-

प. अंतराइयस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,
तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।[२]

-पण्ण. प. २३, उ. २, सु. १६९७-१७०४

१४६. कम्मट्ठगस्स जहण्णठिईबंधग परूवणं-

प. णाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स जहण्णठिईबंधए के ?

उ. गोयमा ! अण्णयरे सुहुमसंपराए उवसामए वा, खवए वा,
एस णं गोयमा ! णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स जहण्णठिईबंधए, तव्वइरित्ते अजहण्णे।
एवं एएणं अभिलावेणं मोहाऽऽउयवज्जाणं सेसकम्माणं भाणियव्वं।

प. मोहणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स जहण्णठिईबंधए के ?

उ. गोयमा ! अण्णयरे बायरसंपराए उवसामए वा, खवए वा,
एस णं गोयमा ! मोहणिज्जस्स कम्मस्स जहण्णठिईबंधए तव्वइरित्ते अजहण्णे।

विशेष-जहां (जघन्य स्थिति) सागरोपम के सात भागों में से एक भाग (१/७) की हो, वहां उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की और अबाधाकाल एक हजार वर्ष का कहना चाहिए।

जहां (जघन्य स्थिति) सागरोपम के सात भागों में से दो भाग (२/७) की हो, वहां उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की और अबाधाकाल दो हजार वर्ष का कहना चाहिए।

७. गोत्र की प्रकृतियां-

प्र. (क) भंते ! उच्चगोत्रकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त की है,
उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की है,
इसका अबाधाकाल एक हजार वर्ष का है।
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प्र. (ख) भंते ! नीचगोत्रकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! **अप्रशस्तविहायोगतिनामकर्म की स्थिति के समान इसकी स्थिति आदि जाननी चाहिए।**

८. अन्तराय की प्रकृतियां-

प्र. भंते ! अन्तरायकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है,
उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडाकोडी सागरोपम की है।
इसका अवाधाकाल तीन हजार वर्ष का है।
अवाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

१४६. आठ कर्मों के जघन्य स्थिति बंधकों का प्ररूपण-

प्र. भंते ! ज्ञानावरणीयकर्म की जघन्य स्थिति का बन्धक (बांधने वाला) कौन है ?

उ. गौतम ! कोई एक सूक्ष्मसम्पराय उपशामक (उपशम श्रेणी वाला) या क्षपक (क्षपक श्रेणी वाला) होता है।
हे गौतम ! यह ज्ञानावरणीय कर्म का जघन्य स्थिति बन्धक है, उससे भिन्न अजघन्य स्थिति का बन्धक होता है।
इसी प्रकार इस अभिलाप से मोहनीय और आयुकर्म को छोड़कर शेष कर्मों के (जघन्य स्थिति बंधकों के) विषय में कहना चाहिए।

प्र. भंते ! मोहनीयकर्म की जघन्य स्थिति का बन्धक कौन है ?

उ. गौतम ! कोई एक बादरसम्पराय उपशामक या क्षपक होता है।
हे गौतम ! यह मोहनीयकर्म की जघन्य स्थिति का बन्धक है, उससे भिन्न अजघन्य स्थिति का बन्धक होता है।

१. ठाणं अ. ८, सु. ६५८

२. विया. स. १३, उ. ८, सु. १

प. आउयस्स णं भंते ! कम्मस्स जहण्णठिईबंधए के ?

उ. गोयमा ! जे णं जीवे असंखेप्पद्धप्पविट्ठे सव्वणिरुद्धे से आउए,

सेसे सव्वमहंतीए आउअबंधद्धाए तीसे णं आउअबंधद्धाए, चरिमकालसमयंसि सव्वजहण्णियं ठिइं पज्जत्ता पज्जत्तियं णिव्वत्तेइ।

एस णं गोयमा ! आउयकम्मस्स जहण्णठिईबंधए, तव्वइरित्ते अजहण्णे।

—पण्ण. प. २३, उ. २, सु. १७४२-१७४४

प्र. भंते ! आयुकर्म का जघन्य स्थिति-बन्धक कौन है ?

उ. गौतम ! सबसे बड़े आयुबन्ध के शेष भाग रूप एक आकर्ष के अंतिम समय में अर्थात् असंक्षेप्य अद्धा में प्रविष्ट और (प्रथम आहारादि तीन पर्याप्तियों से) पर्याप्त तथा (उच्छ्वास पर्याप्ति को पूर्ण करने में असमर्थ) अपर्याप्त जीव होता है।

हे गौतम ! वह सर्वजघन्य आयु कर्म का बंधक है उससे भिन्न अजघन्य स्थिति का बंधक होता है।

१४७. कम्मट्ठगस्स उक्कोसठिईबंधग परूवणं

प. उक्कोसकालठिईयं णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं किं णेरइओ बंधइ,

तिरिक्खजोणिओ बंधइ, तिरिक्खजोणिणी बंधइ,

मणुस्सो बंधइ, मणुस्सी बंधइ,

देवो बंधइ, देवी बंधइ ?

उ. गोयमा ! णेरइओ वि बंधइ जाव देवी वि बंधइ।

प. केरिसए णं भंते ! णेरइए उक्कोसकालठिईयं णाणावरणिज्जं कम्मं बंधइ ?

उ. गोयमा ! सण्णीपंचिदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्ते सागारे जागरे सुत्तोवउत्ते मिच्छद्दिट्ठी कण्हलेस्से उक्कोससंकिलिट्ठपरिणामे ईसिमज्झिमपरिणामे वा,

एरिसए णं गोयमा ! णेरइए उक्कोसकालठिईयं णाणावरणिज्जं कम्मं बंधइ।

प. केरिसए णं भंते ! तिरिक्खजोणिए उक्कोसकालठिईयं णाणावरणिज्जं कम्मं बंधइ ?

उ. गोयमा ! कम्मभूमए वा, कम्मभूमगपलिभागी वा सण्णी पंचेंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए जाव ईसिमज्झिमपरिणामे वा जहा णेरइए एरिसए णं

गोयमा ! तिरिक्ख जोणिए उक्कोसकालठिईयं णाणावरणिज्जं कम्मं बंधइ।

एवं तिरिक्खजोणिणी वि, मणूसे वि, मणूसी वि।

देव-देवी जहा णेरइए।

एवं आउयवज्जाणं सत्तण्हं कम्माणं।

प. उक्कोसकालठिईयं णं भंते ! आउयं कम्मं किं णेरइओ बंधइ जाव देवी बंधइ ?

उ. गोयमा ! णो णेरइओ बंधइ, तिरिक्खजोणिओ बंधइ, णो तिरिक्खजोणिणी बंधइ,

मणुस्सो वि बंधइ, मणुस्सी वि बंधइ, णो देवो बंधइ, णो देवी बंधइ।

प. केरिसए णं भंते ! तिरिक्खजोणिए उक्कोसकालठिईयं आउयं कम्मं बंधइ ?

१४७. आठ कर्मों के उत्कृष्ट स्थिति बंधकों का प्ररूपण—

प्र. भंते ! उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले ज्ञानावरणीयकर्म को क्या नैरयिक बांधता है,

तिर्यग्योनिक बांधता है या तिर्यग्योनिक स्त्री बांधती है,

मनुष्य बांधता है या मनुष्य स्त्री बांधती है,

देव बांधता है या देवी बांधती है ?

उ. गौतम ! उसे नैरयिक भी बांधता है यावत् देवी भी बांधती है।

प्र. भंते ! किस प्रकार का नैरयिक उत्कृष्ट स्थिति वाला ज्ञानावरणीयकर्म बांधता है ?

उ. गौतम ! संज्ञीपंचेन्द्रिय, समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त, साकारोपयोग युक्त, जागृत, श्रुत (शब्द श्रवण) में उपयोगवान्, मिथ्यादृष्टि, कृष्णलेश्यावान, उत्कृष्ट संक्लिष्ट परिणाम वाला या किंचित् मध्यम परिणाम वाला नैरयिक, गौतम ! उत्कृष्ट स्थिति वाले ज्ञानावरणीय कर्म को बांधता है।

प्र. भंते ! किस प्रकार का तिर्यञ्चयोनिक उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले ज्ञानावरणीय कर्म को बांधता है ?

उ. गौतम ! कर्मभूमिक या कर्मभूमिक के सदृश संज्ञीपंचेन्द्रिय, सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त नैरयिक के समान यावत् किंचित् मध्यम परिणाम वाला,

हे गौतम ! तिर्यञ्चयोनिक उत्कृष्ट स्थिति वाले ज्ञानावरणीय कर्म को बांधता है।

इसी प्रकार तिर्यञ्चयोनिक स्त्री, मनुष्य और मनुष्य स्त्री भी (उत्कृष्ट स्थिति वाले ज्ञानावरणीय कर्म को) बांधते हैं।

देव और देवी का कथन नैरयिक के समान है।

आयु को छोड़कर शेष सात कर्मों के बन्धकों के विषय में इसी प्रकार जानना चाहिए।

प्र. भंते ! उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले आयु कर्म को क्या नैरयिक बांधता है यावत् देवी बांधती है ?

उ. गौतम ! उसे नैरयिक नहीं बांधता है, तिर्यञ्चयोनिक बांधता है, तिर्यञ्चयोनिक स्त्री नहीं बांधती है,

मनुष्य बांधता है, मनुष्य स्त्री बांधती है और देव नहीं बांधते हैं और देवी भी नहीं बांधती है।

प्र. भंते ! किस प्रकार का तिर्यञ्चयोनिक उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले आयुकर्म को बांधता है ?

उ. गोयमा ! कम्मभूमए वा कम्मभूमगपलिभागी वा सण्णी पंचेंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए सागारे जागरे सुत्तोवउत्ते मिच्छद्दिट्ठी परमकण्हलेस्से उक्कोससंकिलिट्ठ परिणामे एरिसए णं गोयमा ! तिरिक्खजोणिए उक्कोसकालठिईयं आउयं कम्मं बंधइ।

प. केरिसए णं भंते ! मणूसे उक्कोसकालठिईयं आउयं कम्मं बंधइ?

उ. गोयमा ! कम्मभूमगे वा कम्मभूमगपलिभागी वा जाव सुतोवउत्ते सम्मद्दिट्ठी वा, मिच्छद्दिट्ठी वा, कण्हलेस्से वा, सुक्कलेसे वा, णाणी वा, अण्णाणी वा उक्कोससंकिलिट्ठपरिणामे वा तप्पाउग्गविसुज्झमाण-परिणामे वा एरिसए णं गोयमा ! मणूसे उक्कोसकालठिईयं आउयं कम्मं बंधइ।

प. केरिसिया णं भंते ! मणूसी उक्कोसकालठिईयं आउयं कम्मं बंधइ?

उ. गोयमा ! कम्मभूमिगा वा, कम्मभूमगपलिभागी वा जाव सुत्तोवउत्ता सम्मद्दिट्ठी सुक्कलेस्सा तप्पाउग्ग-विसुज्झमाणपरिणामा, एरिसिया णं गोयमा ! मणुस्सी उक्कोसकालठिईयं आउयं कम्मं बंधइ।

अंतराइयं जहा णाणावरणिज्जं।

–पण्ण. प. २३, उ. २, सु. १७४५-१७५३

उ. गौतम ! कर्मभूमिक या कर्मभूमिज सदृश संज्ञीपंचेन्द्रिय, सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त, साकारोपयोगयुक्त, जागृत, श्रुत में उपयोगवंत, मिथ्यादृष्टि, परमकृष्णलेश्यायुक्त एवं उत्कृष्ट संक्लिष्ट परिणाम वाला, हे गौतम ! ऐसा तिर्यञ्चयोनिक उत्कृष्ट स्थिति वाले आयुकर्म को बांधता है।

प्र. भंते ! किस प्रकार का मनुष्य उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले आयुकर्म को बांधता है?

उ. गौतम ! कर्मभूमिक या कर्मभूमिज के सदृश यावत् श्रुत में उपयोगवंत, सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि कृष्णलेश्यी या शुक्ललेश्यी, ज्ञानी या अज्ञानी उत्कृष्ट संक्लिष्ट परिणाम युक्त या तत्प्रायोग्य विशुद्धयमान परिणाम वाला हो, हे गौतम ! ऐसा मनुष्य उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले आयु कर्म को बांधता है।

प्र. भंते ! किस प्रकार की मनुष्य स्त्री उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले आयुकर्म को बांधती है?

उ. गौतम ! कर्मभूमिक या कर्मभूमिज सदृश यावत् श्रुत में उपयोग युक्त सम्यग्दृष्टि शुक्ललेश्या वाली तत्प्रायोग्य विशुद्धयमान परिणाम वाली हे गौतम ! ऐसी मनुष्य स्त्री उत्कृष्ट काल की स्थिति वाली आयु कर्म को बांधती है।

(उत्कृष्ट स्थिति वाले) अंतराय के बंधक के विषय में ज्ञानावरणीय कर्म के समान जानना चाहिए।

१४८. एगिंदिएसु अट्ठ कम्मपयडीणं ठिईबंध परूवणं–

प. १. एगिंदिया णं भंते ! जीवा णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागे पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,

उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधति।

२. एवं णिद्दापंचकस्स वि, दंसण चउक्कस्स वि।

प. ३. एगिंदिया णं भंते ! जीवा सायावेयणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स दिवड्ढं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,

उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

असायावेयणिज्जस्स जहा णाणावरणिज्जस्स।

प. ४. एगिंदिया णं भंते ! जीवा सम्मत्तमोहणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति?

उ. गोयमा ! णत्थि किंचि बंधंति।

१४८. एकेन्द्रिय जीवों में आठ कर्मप्रकृतियों की स्थिति बंध का प्ररूपण–

प्र. १. भंते ! एकेन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीयकर्म की कितनी काल की स्थिति बांधते हैं?

उ. गौतम ! वे जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से तीन भाग (३/७) की स्थिति बांधते हैं,

उत्कृष्ट वही पूर्ण की स्थिति बांधते हैं।

२. इसी प्रकार निद्रापंचक और दर्शनचतुष्क की भी स्थिति जाननी चाहिए।

प्र. ३. भंते ! एकेन्द्रिय जीव सातावेदनीयकर्म की कितने काल की स्थिति बांधते हैं?

उ. गौतम ! वे जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से डेढ़ भाग (१^1/२/७) की स्थिति बांधते हैं।

उत्कृष्ट वही पूर्ण (१^1/२/७) की स्थिति बांधते हैं।

असातावेदनीय की स्थिति ज्ञानावरणीय के समान जाननी चाहिए।

प्र. ४. भंते ! एकेन्द्रिय जीव सम्यक्त्ववेदनीय (मोहनीय) कर्म की कितने काल की स्थिति बांधते हैं?

उ. गौतम ! वे बन्ध करते ही नहीं हैं।

प. एगिंदिया णं भंते ! जीवा मिच्छत्तमोहणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,

उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

प. एगिंदिया णं भंते ! जीवा सम्मामिच्छत्तमोहणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति?

उ. गोयमा ! णत्थि किंचि बंधंति।

प. एगिंदिया णं भंते ! क़सायबारसगस्स किं बंधंति?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमस्स चत्तारि सत्तभागे पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,

उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

एवं कोहसंजलणए वि जाव लोभसंजलणए वि।

इत्थिवेयस्स जहा सायावेयणिज्जस्स।

एगिंदिया पुरिसवेयस्स कम्मस्स, जहण्णेणं सागरोवमस्स एक्कं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,

उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

एगिंदिया णपुंसगवेयस्स कम्मस्स, जहण्णेणं सागरोवमस्स दो सत्तभागे पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,

उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

हास-रतीए जहा पुरिसवेयस्स।

अरइ-भय-सोग-दुगुंछाए जहा णपुंसगवेयस्स।

णेरइयाउअ, देवाउअ, णिरयगइणाम, देवगइणाम, वेउव्वियसरीरणाम, आहारगसरीरणाम, णेरइयाणुपुव्विणाम, देवाणुपुव्विणाम, तित्थगरणाम एयाणि पयाणि ण बंधंति।

५. तिरिक्खजोणियाउअस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,

उक्कोसेणं पुव्वकोडी सत्तहिं वाससहस्सेहिं वाससहस्सतिभागेणं य अहियं बंधंति।

एवं मणुस्साउअस्स वि।

६. तिरियगइणामए जहा णपुंसगवेयस्स।

मणुयगइणामए जहा सायावेयणिज्जस्स।

एगिंदियजाइणामए पंचेंदियजाइणामए य जहा णपुंसगवेयस्स,

प्र. भंते ! एकेन्द्रिय जीव मिथ्यात्ववेदनीय (मोहनीय) कर्म की कितने काल की स्थिति बांधते हैं?

उ. गौतम ! वे जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम एक सागरोपम की स्थिति बांधते हैं।

उत्कृष्ट वही पूर्ण स्थिति बांधते हैं।

प्र. भंते ! एकेन्द्रिय जीव सम्यग्मिथ्यात्ववेदनीय (मोहनीय) कर्म की कितने काल की स्थिति बांधते हैं?

उ. गौतम ! वे बंध करते ही नहीं हैं।

प्र. भंते ! एकेन्द्रिय जीव कषायद्वादशक की कितने काल की स्थिति बांधते हैं?

उ. गौतम ! वे जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से चार भाग की स्थिति बांधते हैं।

उत्कृष्ट वही पूर्ण (४/७) भाग की स्थिति बांधते हैं।

इसी प्रकार संज्वलन क्रोध यावत् संज्वलन लोभ की स्थिति बांधते हैं।

स्त्रीवेद की बंध स्थिति सातावेदनीय की बन्ध स्थिति के समान है।

एकेन्द्रिय जीव पुरुषवेदकर्म जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से एक भाग (१/७) की स्थिति बांधते हैं।

उत्कृष्ट वही पूर्ण (१/७) भाग की स्थिति बांधते हैं।

एकेन्द्रिय जीव नपुंसकवेदक में जघन्यतः पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से दो भाग (२/७) की स्थिति बांधते हैं,

उत्कृष्ट वही पूर्ण (२/७) भाग की स्थिति बांधते हैं।

हास्य और रति की बन्ध स्थिति पुरुषवेद के समान है।

अरति, भय, शोक और जुगुप्सा की बन्ध स्थिति नपुंसकवेद के समान है।

नरकायु, देवायु, नरकगतिनामकर्म, देवगतिनामकर्म, वैक्रियशरीरनामकर्म, आहारकशरीरनामकर्म, नरकानुपूर्वी-नामकर्म, देवानुपूर्वीनामकर्म, तीर्थंकर- नामकर्म, इन नौ प्रकृतियों को एकेन्द्रिय जीव नहीं बांधते हैं।

५. एकेन्द्रिय जीव तिर्यञ्चायु की जघन्य अन्तर्मुहूर्त की स्थिति बांधते हैं,

उत्कृष्ट सात हजार वर्ष तथा एक हजार वर्ष से तृतीय भाग अधिक पूर्व कोटि की स्थिति बांधते हैं।

इसी प्रकार मनुष्यायु की भी बंध स्थिति है।

६. तिर्यञ्चगतिनामकर्म की बन्ध स्थिति नपुंसकवेद के समान है।

मनुष्यगतिनामकर्म की बन्ध स्थिति सातावेदनीय के समान है।

एकेन्द्रियजाति-नामकर्म और पंचेन्द्रियजाति-नामकर्म की बन्ध स्थिति नपुंसकवेद के समान जानना चाहिए।

बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय जाइणामए जहण्णेणं सागरोवमस्स णव पणतीसतिभागे पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं
उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।
एवं जत्थ जहण्णगं दो सत्तभागा वा, चत्तारि वा, सत्तभागा अट्ठावीसइभागा भवंति।
तत्थ णं जहण्णेणं तं चेव पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगा भाणियव्वा,
उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति,
जत्थ णं जहण्णेणं एगो वा, दिवड्ढी वा, सत्तभागो तत्थ जहण्णेणं तं चेव भाणियव्वं,
उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।
७. जसोकित्ति-उच्चागोयाणं–
जहण्णेणं सागरोवमस्स एगं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

प. ८. एगिंदिया णं भंते ! जीवा अंतराइयस्स कम्मस्स किं बंधंति?

उ. गोयमा ! **जहा णाणावरणिज्जस्स जहण्णेणं उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।**

–*पण्ण. प. २३, उ. २, सु. १७०५-१७१४*

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जाति-नामकर्म जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के पैंतीस भागों में नव भाग (९/३५) की स्थिति बांधते हैं।

उत्कृष्ट वही पूर्ण (९/३५) भाग की स्थिति बांधते हैं।

जहां जघन्यतः २/७ भाग, ३/७, ४/७ भाग (५/२८, ६/२८ एवं ७/२८) भाग कहे गये हैं,

वहां के भाग जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम कहने चाहिए।

उत्कृष्ट वे भाग परिपूर्ण समझने चाहिए।

इसी प्रकार जहां जघन्य रूप से १/७ या १$^{1}/_{2}$/७ भाग कहे हैं, वहीं जघन्यतः वही भाग न्यून कहना चाहिए।

उत्कृष्टतः वही भाग परिपूर्ण समझना चाहिए।

७. एकेन्द्रिय जीव यश कीर्तिमान और उच्चगोत्रकर्म जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से एक भाग (१/७) की स्थिति बांधते हैं।

उत्कृष्ट वही पूर्ण (१/७) की स्थिति बांधते हैं।

प्र. ८. भंते ! एकेन्द्रिय जीव अन्तरायकर्म की कितने काल की स्थिति बांधते हैं?

उ. गौतम ! अन्तराय कर्म की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति ज्ञानावरणीय कर्म के समान जाननी चाहिए।

१४९. बेइंदिएसु अट्ठ कम्मपयडीणं ठिईबंध परूवणं–

प. १. बेइंदिया णं भंते ! जीवा णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमपणवीसाए तिण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइ भागेणं ऊणगं,
उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

२. एवं णिद्दापंचगस्स वि।

एवं जहा एगिंदियाणं भणियं तहा बेइंदियाण वि भाणियव्वं।

णवरं–सागरोवमपणवीसाए सह भाणियव्वा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
सेसं तं चेव,

३. जत्थ एगिंदिया ण बंधंति तत्थ एए वि ण बंधंति।

प. ४. बेइंदिया णं भंते ! जीवा मिच्छत्तमोहणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमपणवीसं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,

१४९. द्वीन्द्रिय जीवों के आठ कर्मप्रकृतियों की स्थिति बंध का प्ररूपण–

प्र. १. भंते ! द्वीन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीयकर्म की कितने काल की स्थिति बांधते हैं?

उ. गौतम ! वे जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम पच्चीस सागरोपम के सात भागों में तीन भाग (३/७) की स्थिति बांधते हैं,

उत्कृष्ट वही पच्चीस सागरोपम के पूर्ण (३/७) की स्थिति बांधते हैं।

२. इसी प्रकार निद्रापंचक की स्थिति के विषय में जानना चाहिए।

इसी प्रकार जैसे एकेन्द्रिय जीवों की बन्धस्थिति का कथन किया है, वैसे ही द्वीन्द्रिय जीवों की बंध स्थिति का कथन करना चाहिए।

विशेष–जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम पच्चीस सागरोपम सहित स्थिति कहनी चाहिए।

शेष कथन पूर्ववत् है।

३. जिन प्रकृतियों को एकेन्द्रिय नहीं बांधते, उनको ये भी नहीं बांधते हैं।

प्र. ४. भंते ! द्वीन्द्रिय जीव मिथ्यात्ववेदनीय (मोहनीय) कर्म की कितने काल की स्थिति बांधते हैं?

उ. गौतम ! वे जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम पच्चीस सागरोपम की स्थिति बांधते हैं,

उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

५. तिरिक्खजोणियाउयस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,

उक्कोसेणं पुव्वकोडिं चउहिं वासेहिं अहियं बंधंति।

एवं मणुयस्साउअस्स वि।

६-८. सेसं जहा एगिंदियाणं जाव अंतराइयस्स।

–पण्ण. प. २३, उ. २, सु. १७१५-१७२०

उत्कृष्ट वही पच्चीस सागरोपम की स्थिति बांधते हैं।

५. द्वीन्द्रिय जीव तिर्यंचयोनिकायु कर्म की जघन्य अन्तर्मुहूर्त की स्थिति बांधते हैं

उत्कृष्ट चार वर्ष अधिक पूर्वकोटि वर्ष की स्थिति बांधते हैं।

इसी प्रकार मनुष्यायु की बंध स्थिति भी कहनी चाहिए।

६-८. शेष प्रकृतियों की–अन्तरायकर्म तक (पच्चीस सागरोपम से गुणित) एकेन्द्रियों के समान स्थिति जाननी चाहिए।

१५०. तेइंदियएसु अट्ठकम्मपयडीणं ठिईबंध परूवणं–

प. १. तेइंदिया णं भंते ! जीवा णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमपण्णासाए तिण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइ भागेणं ऊणगं,

उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

२-३. एवं जस्स जइ भागा ते तस्स सागरोवमपण्णासाए सह भाणियव्वा।

प. ४. तेइंदिया णं भंते ! मिच्छत्तमोहणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमपण्णासं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,

उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

५. तिरिक्खजोणियाउयस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,

उक्कोसेणं पुव्वकोडिं सोलसहिं राइंदिएहिं राइंदिय तिभागेण य अहियं बंधंति।

एवं मणुस्साउयस्स वि।

६-८. सेसं जहा बेइंदियाणं जाव अंतराइयस्स।

–पण्ण. प. २३, उ. २, सु. १७२१-१७२४

१५०. त्रीन्द्रिय जीवों में आठ कर्म प्रकृतियों की स्थिति बंध का प्ररूपण–

प्र. १. भंते ! त्रीन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीयकर्म की कितने काल की स्थिति बांधते हैं?

उ. गौतम ! वे जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम पचास सागरोपम के सात भागों में से तीन भाग (३/७) की स्थिति बांधते हैं,

उत्कृष्ट वही पूर्ण पचास सागरोपम के (३/७) भाग की स्थिति बांधते हैं?

२-३. इस प्रकार जिसके जितने भाग हैं, वे पचास सागरोपम के साथ कहने चाहिए।

प्र. ४. भंते ! त्रीन्द्रिय जीव मिथ्यात्व-वेदनीय (मोहनीय) कर्म की कितने काल की स्थिति बांधते हैं?

उ. गौतम ! वे जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम पचास सागरोपम की स्थिति बांधते हैं,

उत्कृष्ट वही पूर्ण पचास सागरोपम की स्थिति बांधते हैं।

५. त्रीन्द्रिय जीव तिर्यञ्चयोनिकायु कर्म की जघन्य अन्तर्मुहूर्त की स्थिति बांधते हैं।

उत्कृष्ट सोलह रात्रि-दिवस तथा रात्रिदिवस के तीसरे भाग अधिक पूर्व कोटी की स्थिति बांधते हैं।

इसी प्रकार मनुष्यायु की भी स्थिति जाननी चाहिए।

(६-८) शेष प्रकृतियों की अन्तरायकर्म तक पचास सागरोपम से गुणित द्वीन्द्रियों के समान स्थिति जाननी चाहिए।

१५१. चउरिंदिएसु अट्ठकम्मपयडीणं ठिईबंध परूवणं–

प. १. चउरिंदिया णं भंते ! जीवा णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमसयस्स तिण्णि सत्तभागे पलिओवमस्स असंखेज्जइ भागेणं ऊणगं,

उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

(२-३) एवं जस्स जइ भागा ते तस्स सागरोवमसतेण सह भाणियव्वा।

(४) तिरिक्खजोणियाउअस्स कम्मस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,

१५१. चतुरिन्द्रिय जीवों में आठ कर्म प्रकृतियों की स्थिति बंध का प्ररूपण–

प्र. १. भंते ! चतुरिन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीयकर्म की कितने काल की स्थिति बांधते हैं?

उ. गौतम ! वे जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सौ सागरोपम के सात भागों में से तीन भाग (३/७) की स्थिति बांधते हैं,

उत्कृष्ट वही पूर्ण सौ सागरोपम के (३/७) भाग की स्थिति बांधते हैं।

इस प्रकार जिसके जितने भाग हैं वे उनके सौ सागरोपम के साथ कहने चाहिये।

चतुरिन्द्रिय जीव तिर्यञ्चयोनिकायुकर्म की जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त की स्थिति बांधते हैं।

उक्कोसेणं पुव्वकोडिं दोहिं मासेहिं अहियं।

एवं मणुस्साउअस्स वि।

मिच्छत्तमोहणिज्जस्स जहण्णेणं सागरोवमसतं-पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,

उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

सेसं जहा बेइंदियाणं जाव अंतराइयस्स।

–पण्ण. प.२३, उ. २, सु. १७२५-१७२७

उत्कृष्टतः दो मास अधिक पूर्व कोटी की स्थिति बांधते हैं।

इसी प्रकार मनुष्यायु की भी स्थिति जाननी चाहिए।

मिथ्यात्ववेदनीय जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सौ सागरोपम की स्थिति बांधते हैं,

उत्कृष्ट वही पूर्ण सौ सागरोपम की स्थिति बांधते हैं।

अन्तरायकर्म तक शेष प्रकृतियों की (सौ सागरोपम से गुणित) द्वीन्द्रियों के समान स्थिति जाननी चाहिए।

१५२. असण्णीसु पंचेंदिएसु अट्ठ कम्मपयडीणं ठिईबंध परूवणं–

प. १-३. असण्णी णं भंते ! जीवा पंचेंदिया णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स तिण्णि सत्तभागे पलिओवमस्स असंखेज्जइ भागेणं ऊणगं,

उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

एवं सो चेव गमो जहा बेइंदियाणं।

णवरं–सागरोवमसहस्सेण समं भाणियव्वा जस्स जइ भाग त्ति।

४. मिच्छत्तवेयणिज्जस्स जहण्णेणं सागरोवमसहस्सं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,

उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

५. णेरइयाउअस्स जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भइयाइं,

उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पुव्वकोडितिभागमब्भइयं बंधंति।

एवं तिरिक्खजोणियाउअस्स वि।

णवरं–जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं।

एवं मणुस्साउअस्स वि।

देवाउअस्स जहा णेरइयाउअस्स।

प. असण्णी णं भंते ! जीवा पंचेंदिया णिरयगइणामए कम्मस्स किं बंधंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स दो सत्तभागे पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,

उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

एवं तिरियगईए वि।

प. ६. असण्णी णं भंते ! जीवा पंचेंदिया मणुयगइ णाम एकम्मस्स किं बंधंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स दिवड्ढं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,

१५२. असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में आठ कर्म प्रकृतियों की स्थिति बंध का प्ररूपण–

प्र. १-३. भंते ! असंज्ञी-पंचेन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीय कर्म की कितने काल की स्थिति बांधते हैं ?

उ. गौतम ! वे जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र सागरोपम के सात भागों में से तीन भाग (३/७) की स्थिति बांधते हैं,

उत्कृष्ट वही पूर्ण सहस्र सागरोपम के (३/७) की स्थिति बांधते हैं।

इस प्रकार द्वीन्द्रियों की स्थिति के जो आलापक कहे हैं वही यहाँ जानने चाहिए।

विशेष–जिस की स्थिति के जितने भाग हों, उनको सहस्र सागरोपम से गुणित कहना चाहिए।

४. मिथ्यात्ववेदनीयकर्म जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र सागरोपम की स्थिति बांधते हैं,

उत्कृष्ट वही पूर्ण सहस्र सागरोपम की स्थिति बांधते हैं।

५. नरकायुष्यकर्म जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष की स्थिति बांधते हैं,

उत्कृष्ट पूर्वकोटि के त्रिभाग अधिक पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति बांधते हैं।

इसी प्रकार तिर्यञ्चयोनिकायु की उत्कृष्ट स्थिति भी जाननी चाहिए।

विशेष–जघन्य अन्तर्मुहूर्त की स्थिति बांधते हैं।

इसी प्रकार मनुष्यायु की स्थिति के विषय में जानना चाहिए।

देवायु की स्थिति नरकायु के समान जाननी चाहिए।

प्र. भंते ! असंज्ञीपंचेन्द्रिय जीव नरकगतिनामकर्म की स्थिति कितने काल की बांधते हैं ?

उ. गौतम ! वे जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र-सागरोपम के सात भागों में से दो भाग (२/७) की स्थिति बांधते हैं।

उत्कृष्ट वही पूर्ण सहस्र सागरोपम की (२/७) की स्थिति बांधते हैं।

इसी प्रकार तिर्यञ्चगतिनामकर्म की स्थिति जाननी चाहिए।

प्र. ६. भंते ! असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव मनुष्यगति नाम कर्म की कितने काल की स्थिति बांधते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र-सागरोपम के सात भागों में से डेढ भाग (१½/७) की स्थिति बांधते हैं,

उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

प. असण्णी णं भंते ! जीवा पंचेंदिया देवगइणामए कम्मस्स किं बंधंति?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स एगं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,

उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

प. असण्णी णं भंते ! जीवा पंचेंदिया वेउव्वियसरीरणामए कम्मस्स किं बंधंति?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स दो सत्तभागे पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,

उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

सम्मत्त - सम्मामिच्छत्त - आहारगसरीरणामए तित्थगरणामए य ण किंचि बंधंति।

अवसिट्ठं जहा बेइंदियाणं।

णवरं–जस्स जत्तिया भागा तस्स ते सागरोवमसहस्सेणं सह भाणियव्वा।

(७-८) सव्वेसिं आणुपुव्वीए जाव अंतराइयस्स।

–पण्ण. प. २३, उ. २, सु. १७२८-१७३३

उत्कृष्ट वही पूर्ण सहस्र सागरोपम के ($1^1/_2$ /७) भाग की स्थिति बांधते हैं।

प्र. भंते ! असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव देवगतिनाम कर्म की कितने काल की स्थिति बांधते हैं?

उ. गौतम ! जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र-सागरोपम के सात भागों में से एक भाग (१/७) की स्थिति बांधते हैं,

उत्कृष्ट वही पूर्ण सहस्र सागरोपम के (१/७) भाग की स्थिति बांधते हैं।

प्र. भंते ! असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव वैक्रियशरीरनामकर्म की कितने काल की स्थिति बांधते हैं?

उ. गौतम ! जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र सागरोपम के सात भागों में से दो भाग (२/७) की स्थिति बांधते हैं।

उत्कृष्ट वही पूर्ण सहस्र सागरोपम के (२/७) भाग की स्थिति बांधते हैं।

(असंज्ञीपंचेन्द्रिय जीव) सम्यक्त्वमोहनीय, सम्यग्मिथ्यात्व मोहनीय, आहारकशरीर-नामकर्म और तीर्थङ्करनामकर्म का बन्ध नहीं करते हैं।

शेष कर्मप्रकृतियों की स्थिति द्वीन्द्रिय जीवों के समान है।

विशेष–जिसके जितने भाग हैं, वे सहस्र सागरोपम के साथ कहने चाहिए।

(७-८) शेष कर्मप्रकृतियों की स्थिति अन्तरायकर्म तक अनुक्रम से इसी प्रकार कहनी चाहिए।

१५३. सण्णी-पंचेंदिएसु अट्ठ-कम्मपयडीणं-ठिईबंध-परूवणं–

प. १. सण्णी णं भंते ! जीवा पंचेंदिया णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,
तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मट्ठिई, कम्मणिसेगो।

प. सण्णी णं भंते ! पंचेंदिया णिद्दापंचगस्स कम्मस्स किं बंधंति?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ,

उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,
तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

२. दंसणचउक्कस्स जहा णाणावरणिज्जस्स।

३. सायावेयणिज्जस्स जहा ओहिया ठिई भणिया तहेव भाणियव्वा, इरियावहियबंधयं पडुच्च संपराइय बंधयं च।

१५३. संज्ञी पंचेन्द्रियों में आठ कर्म प्रकृतियों की स्थिति बंध का प्ररूपण–

प्र. १. भंते ! संज्ञीपंचेन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीयकर्म की कितने काल की स्थिति बांधते हैं?

उ. गौतम ! वे जघन्य अन्तर्मुहूर्त की स्थिति बांधते हैं,
उत्कृष्ट तीस कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति बांधते हैं।
इसका अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है,
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

प्र. भंते ! संज्ञीपंचेन्द्रिय जीव निद्रापंचककर्म की कितने काल की स्थिति बांधते हैं?

उ. गौतम ! वे जघन्य अन्तःकोडाकोडी सागरोपम की स्थिति बांधते हैं,
उत्कृष्ट तीस कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति बांधते हैं।
इनका अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है,
अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

२. दर्शनचतुष्क की स्थिति ज्ञानावरणीयकर्म के समान है।

३. ऐर्यापथिकबन्धक और साम्परायिक बन्धक की अपेक्षा सातावेदनीयकर्म की जो औधिक स्थिति कही है उतनी ही कहनी चाहिए।

असायावेयणिज्जस्स जहा णिद्दापंचगस्स।

असातावेदनीय की स्थिति निद्रापंचक के समान कहनी चाहिए।

सम्मत्तवेयणिज्जस्स सम्मामिच्छत्त वेयणिज्जस्स य जा ओहिया ठिई भणिया तं बंधंति।

सम्यक्त्ववेदनीय (मोहनीय) और सम्यग्मिथ्यात्ववेदनीय (मोहनीय) की औधिक स्थिति के समान उतनी ही स्थिति बांधते हैं।

मिच्छत्तवेयणिज्जस्स जहण्णेणं अंतोसागरोवम-कोडाकोडीओ,
उक्कोसेणं सत्तरिं सागरोवमकोडाकोडीओ,
सत्त य वाससहस्साइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

मिथ्यात्ववेदनीय जघन्य अन्तःकोडाकोडी सागरोपम की स्थिति बांधते हैं,
उत्कृष्ट सत्तर कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति बांधते हैं,
उसका अवाधाकाल सात हजार वर्ष का है,
अवाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

कसायबारसगस्स जहण्णेणं अंतो सागरोवम कोडाकोडीओ
उक्कोसेणं चत्तालीसं सागरोवमकोडाकोडीओ,
चत्तालीसं य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मट्ठिई, कम्मणिसेगो।

कषायद्वादशक जघन्य अन्तःकोडाकोडि सागरोपम की स्थिति बांधते हैं,
उत्कृष्ट चालीस कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति बांधते हैं।
इनका अवाधाकाल चालीस हजार वर्ष का है,
अवाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

कोह-माण-माया लोभसंजलणाए य दो मासा, मासो, अद्धमासो, अंतोमुहुत्तो एयं जहण्णगं,
उक्कोसेणं पुण जहा कसायबारसगस्स।
चउण्ह वि आउयाणं जा ओहिया ठिई भणिया तं बंधंति।

संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ जघन्यतः क्रमशः दो मास, एक मास, अर्द्धमास और अन्तर्मुहूर्त की स्थिति बांधते हैं,
उत्कृष्ट कषायद्वादशक की स्थिति के समान बांधते हैं।
चार प्रकार की आयु कर्म की जो सामान्य स्थिति कही है, वही बांधते हैं।

आहारगसरीरस्स तित्थगरणामए य
जहण्णेणं अंतोसागरोवम कोडाकोडीओ,
उक्कोसेण वि अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ बंधंति।
पुरिसवेयस्स जहण्णेणं अट्ठ संवच्छराइं,
उक्कोसेणं दस सागरोवमकोडाकोडीओ,
दस य वाससयाइं अबाहा,
अबाहूणिया कम्मठिई, कम्मणिसेगो।

आहारकशरीर और तीर्थङ्कर नामकर्म जघन्य अन्तः कोडाकोडी की स्थिति बांधते हैं।
उत्कृष्ट भी उतने ही काल की स्थिति बांधते हैं,
पुरुष वेदकर्म जघन्य आठ वर्ष की स्थिति बांधते हैं,
उत्कृष्ट दस कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति बांधते हैं।
उसका अवाधाकाल एक हजार वर्ष का है,
अवाधाकाल जितनी न्यून कर्म स्थिति में ही कर्म निषेक होता है।

जसोकित्तिणामणए -७- उच्चागोयस्स य एवं चेव।

यश कीर्ति नामकर्म और उच्चगोत्र कर्म की स्थिति भी इसी प्रकार जाननी चाहिए।

णवरं–जहण्णेणं अट्ठ मुहुत्ता।
८. अंतराइयस्स जहा णाणावरणिज्जस्स।
सेसेसु सव्वेसु ठाणेसु, संघयणेसु, संठाणेसु, वण्णेसु, गंधेसु य जहण्णेणं अंतोसागरोवम कोडाकोडीओ,
उक्कोसेणं जा जस्स ओहिया ठिई भणिया तं बंधंति।
णवरं–इमं णाणत्तं अवाहा, अबाहूणिया ण वुच्चइ।

विशेष–जघन्य आठ मुहूर्त की स्थिति बांधते हैं।
८. अन्तरायकर्म की स्थिति ज्ञानावरणीयकर्म के समान है।
शेष सभी स्थान संहनन, संस्थान, वर्ण, गन्ध-नामकर्म जघन्य अन्तःकोडाकोडि सागरोपम की स्थिति बांधते हैं,
उत्कृष्ट सामान्य से जो स्थिति कही है वही बांधते हैं,
विशेष–यह भिन्नता है–इनका "अवाधाकाल" और अवाधाकाल–से हीन कर्म स्थिति कर्म निषेक नहीं कहना चाहिए।

एवं आणुपुव्वीए सव्वेसिं जाव अंतराइयस्स ताव भाणियव्वं। –पण्ण. प. २३, उ. २, सु. १७३४-१७४१

इसी प्रकार अनुक्रम से अन्तरायकर्म पर्यन्त सभी प्रकृतियों की स्थिति कहनी चाहिए।

१५४. ओहेण कम्म वेयण परूवणं–

एगा वेयणा।[1] –*ठाणं. अ. १, सु. १,*

१५५. कम्माणुभावेण जीवस्सदुरूव-सुरूवत्ताइ परूवणं–

वण्णवज्झाणि य से कम्माइं बद्धाइं पुट्ठाइं निहत्ताइं कडाइं पट्ठवियाइं अभिनिविट्ठाइं अभिसमन्नागयाइं उदिण्णाइं, नो उवसंताइं भवंति,

तओ भवइ दुरूवे दुव्वण्णे दुग्गंधे दुरसे दुफ्फासे अणिट्ठे अकंते अप्पिए असुभे अमणुण्णे अमणामे हीणस्सरे दीणस्सरे अणिट्ठस्सरे अकंतस्सरे अप्पियस्सरे असुभस्सरे अमणुण्णस्सरे अमणामस्सरे अणादेज्जवयणे पच्चायाए यावि भवइ।

वण्णवज्झाणि य से कम्माइं नो बद्धाइं **जाव** उवसंताइं भवइ। तओ भवइ सुरूवे **जाव** आदेज्जवयणे पच्चायाए याऽवि भवइ। –*विया. स. १, उ. ७, सु. २२*

१५६. अट्ठकम्माणं अणुभावो

प. १. नाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स–

जीवेणं बद्धस्स, पुट्ठस्स, बद्ध-फास-पुट्ठस्स, संचितस्स, चितस्स, उवचितस्स, आवागपत्तस्स, विवागपत्तस्स, फलपत्तस्स, उदयपत्तस्स, जीवेणं कडस्स, जीवेणं णिव्वत्तियस्स, जीवेणं परिणामियस्स, सयं वा उदिण्णस्स, परेण वा उदीरियस्स, तदुभएण वा उदीरिज्जमाणस्स, गतिं पप्प, ठिइं पप्प, भवं पप्प, पोग्गलं पप्प, पोग्गलपरिणामं पप्प कइविहे अणुभावे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! नाणावरणिज्जस्स णं कम्मस्स–

जीवेणं बद्धस्स **जाव** पोग्गलपरिणामं पप्प दसविहे अणुभावे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सोयावरणे, २. सोयविण्णाणावरणे,
३. नेत्तावरणे, ४. णेत्तविण्णाणावरणे,
५. घाणावरणे, ६. घाणविण्णाणावरणे,
७. रसावरणे, ८. रसविण्णाणावरणे,
९. फासावरणे, १०. फासविण्णाणावरणे।

जं वेदेइ पोग्गलं वा, पोग्गले वा, पोग्गलपरिणामं वा, वीससा वा, पोग्गलाणं परिणामं,

तेसिं वा उदएणं जाणियव्वं ण जाणइ, जाणिउकामे वि ण जाणइ, जाणित्ता वि ण जाणइ, उच्छण्णणाणी यावि भवइ, णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं।

एस णं गोयमा ! नाणावरणिज्जे कम्मे।

एस णं गोयमा ! नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प दसविहे अणुभावे पण्णत्ते।

१५४. सामान्य से कर्म वेदन का प्ररूपण–

वेदना (कर्मानुभव) एक प्रकार का है।

१५५. कर्मानुभाव से जीव के कुरूपत्व सुरूपत्व आदि का प्ररूपण–

गर्भ से निकलने के पश्चात् उस जीव के कर्म यदि अशुभरूप में बंधे हों, स्पृष्ट हों, निधत्त हों, कृत हों, प्रस्थापित हों, अभिनिविष्ट हों, अभिसमन्वागत हों, उदीर्ण हों और उपशान्त न हों तो–

वह जीव कुरूप, कुवर्ण, दुर्गन्ध वाला, कुरस वाला, कुस्पर्श वाला, अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ, अमनाम, हीन स्वर, दीन स्वर, अनिष्ट स्वर, अकान्त स्वर, अप्रिय स्वर, अशुभ स्वर, अमनोज्ञ स्वर एवं अमनाम स्वर तथा अनादेय वचन वाला उत्पन्न होता है।

यदि उस जीव के कर्म अशुभरूप में न बँधे हुए हों **यावत्** उपशान्त हों तो वह जीव सुरूप **यावत्** आदेय वचन वाला उत्पन्न होता है।

१५६. आठ कर्मों का अनुभाव–

प्र. १. भंते ! जीव के द्वारा–

बद्ध, स्पृष्ट, बद्ध स्पर्श, स्पृष्ट संचित, चित, उपचित, किञ्चित् पाक, विपाक, फल तथा उदय-प्राप्त, जीव द्वारा कृत, निष्पादित, परिणामित, स्वयं के द्वारा उदय प्राप्त, दूसरे के द्वारा उदीरणा-प्राप्त या दोनों द्वारा उदीरित किया गया ज्ञानावरणीय कर्म, गति स्थिति भव, पुद्गल तथा पुद्गलपरिणाम को प्राप्त करके कितने प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है?

उ. गौतम ! जीव के द्वारा–

बद्ध **यावत्** पुद्गल-परिणाम को प्राप्त ज्ञानावरणीयकर्म का दस प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है, *यथा*–

१. श्रोत्रावरण, २. श्रोत्रविज्ञानावरण,
३. नेत्रावरण, ४. नेत्रविज्ञानावरण,
५. घ्राणावरण, ६. घ्राणविज्ञानावरण,
७. रसावरण, ८. रसविज्ञानावरण,
९. स्पर्शावरण, १०. स्पर्शविज्ञानावरण।

जो पुद्गल को या पुद्गलों का पुद्गल-परिणाम को या स्वाभाविक पुद्गलों के परिणाम का वेदन करता है,

वद्ध (श्रोत्रावरण आदि के) उदय से जानने योग्य को नहीं जानता, जानने का इच्छुक होकर भी नहीं जानता, जानकर भी नहीं जानता और ज्ञानावरणीयकर्म के उदय से विच्छिन्न ज्ञान वाला होता है।

गौतम ! यह ज्ञानावरणीयकर्म है।

हे गौतम ! जीव के द्वारा वद्ध यावत् पुद्गल-परिणाम को प्राप्त करके ज्ञानावरणीयकर्म का यह दस प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है।

---

१. सम. सम. १ सु. ३

प. २. दरिसणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प कइविहे अणुभावे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! दरिसणावरणिज्जस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प णवविहे अणुभावे पण्णत्ते, तं जहा-

१. णिद्दा, २. णिद्दाणिद्दा,
३. पयला, ४. पयलापयला,
५. थीणगिद्धी, ६. चक्खुदंसणावरणे,
७. अचक्खुदंसणावरणे, ८. ओहिदंसणावरणे,
९. केवलदंसणावरणे।

जं वेदेइ पोग्गलं वा, पोग्गले वा, पोग्गलपरिणामं वा, वीससा वा, पोग्गलाणं परिणामं,

तेसिं वा उदएणं पासियव्वं ण पासइ, पासिउकामे वि ण पासइ, पासित्ता वि ण पासइ,

उच्छन्नदंसणी यावि भवइ दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं।

एस णं गोयमा ! दरिसणावरणिज्जे कम्मे।

एस णं गोयमा ! दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प णवविहे अणुभावे पण्णत्ते।

प. (क) सायावेयणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प कइविहे अणुभावे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! सायावेयणिज्जस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प अट्ठविहे अणुभावे पण्णत्ते, तं जहा-

१. मणुण्णा सद्दा, २. मणुण्णा रूवा,
३. मणुण्णा गंधा, ४. मणुण्णा रसा,
५. मणुण्णा फासा, ६. मणोसुहया,
७. वइसुहया,[1] ८. कायसुहया।

जं वेएइ पोग्गलं वा, पोग्गले वा, पोग्गलपरिणामं वा, वीससा वा, पोग्गलाणं परिणामं,

तेसिं वा उदएणं सायावेयणिज्जं कम्मं वेएइ।

एस णं गोयमा ! सायावेयणिज्जे कम्मे।

एस णं गोयमा ! सायावेयणिज्जस्स कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प अट्ठविहे अणुभावे पण्णत्ते।

प. (ख) असायावेयणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प कइविहे अणुभावे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! असायावेयणिज्जस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गल परिणामं पप्प अट्ठविहे अणुभावे पण्णत्ते, तं जहा-

प्र. २. भंते ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल-परिणाम को प्राप्त करके दर्शनावरणीय कर्म का कितने प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है?

उ. गौतम ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल-परिणाम को प्राप्त करके दर्शनावरणीय कर्म का नौ प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है, यथा-

१. निद्रा, २. निद्रा-निद्रा,
३. प्रचला, ४. प्रचलाप्रचला,
५. स्त्यानगृद्धि (एवं) ६. चक्षुदर्शनावरण,
७. अचक्षुदर्शनावरण, ८. अवधिदर्शनावरण,
९. केवलदर्शनावरण।

जो पुद्गल का या पुद्गलों का पुद्गल परिणाम का या स्वाभाविक पुद्गलों के परिणाम का वेदन करता है,

उनके उदय से देखने योग्य को नहीं देखता, देखना चाहते हुए भी नहीं देखता, देखकर भी नहीं देखता और

दर्शनावरणीय कर्म के उदय से विच्छिन्न दर्शन वाला भी हो जाता है।

गौतम ! यह दर्शनावरणीय कर्म है।

हे गौतम ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गलपरिणाम को प्राप्त करके दर्शनावरणीय कर्म का यह नौ प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है।

प्र. ३. (क) भंते ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके सातावेदनीय कर्म का कितने प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है?

उ. गौतम ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके सातावेदनीयकर्म का आठ प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है, यथा-

१. मनोज्ञशब्द, २. मनोज्ञरूप,
३. मनोज्ञगंध, ४. मनोज्ञरस,
५. मनोज्ञस्पर्श, ६. मन का सौख्य,
७. वचन का सौख्य, ८. काया का सौख्य।

जो पुद्गल का या पुद्गलों का पुद्गल-परिणाम का या स्वाभाविक पुद्गलों के परिणाम का वेदन करता है, अथवा उनके उदय से सातावेदनीयकर्म का वेदन करता है।

गौतम ! यह सातावेदनीय कर्म है,

हे गौतम ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके सातावेदनीयकर्म का यह आठ प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है।

प्र. (ख) भंते ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके असातावेदनीयकर्म का कितने प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है?

उ. गौतम ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके असातावेदनीय कर्म का आठ प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है, यथा-

१. ठाणं. अ. ८, सु. ५८८

.अमणुण्णा सद्दा जाव ८.कायदुहया।[1]

वेएइ पोग्गलं वा, पोग्गले वा, पोग्गलपरिणामं वा,

ससा वा पोग्गलाणं परिणामं,

सिं वा उदएणं असायावेयणिज्जं कम्मं वेएइ

स णं गोयमा ! असायावेयणिज्जे कम्मे।

स णं गोयमा ! असायावेयणिज्जस्स कम्मस्स जीवेणं द्धस्स जाव पोग्गल परिणामं पप्प अट्ठविहे अणुभावे ण्णत्ते।

. मोहणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव ग्गलपरिणामं पप्प कइविहे अणुभावे पण्णत्ते ?

ोयमा ! मोहणिज्जस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव ोग्गल परिणामं पप्प पंचविहे अणुभावे पण्णत्ते, जहा–

. सम्मत्तवेयणिज्जे, २. मिच्छत्तवेयणिज्जे,

. सम्मामिच्छत्तवेयणिज्जे, ४. कसायवेयणिज्जे,

. णो कसायवेयणिज्जे।

ं वेदेइ पोग्गलं वा, पोग्गले वा, पोग्गलपरिणामं वा,

ीसस‍ा वा, पोग्गलाणं परिणामं,

ासिं वा उदएणं मोहणिज्जं कम्मं वेदेइ।

स णं गोयमा ! मोहणिज्जे कम्मे।

स णं गोयमा ! मोहणिज्जस्स कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स ाव पोग्गल परिणामं पप्प पंचविहे अणुभावे पण्णत्ते।

. आउअस्स णं भंते ! कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव ोग्गल परिणामं पप्प कइविहे अणुभावे पण्णत्ते ?

ोयमा ! आउअस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव ोग्गल परिणामं पप्प चउव्विहे अणुभावे पण्णत्ते, ं जहा–

१. नेरइयाउए, २. तिरियाउए,

३. मणुयाउए, ४. देवाउए।

जं वेएइ पोग्गलं वा, पोग्गले वा, पोग्गलपरिणामं वा,

वीससा वा, पोग्गलाणं परिणामं,

तेसिं वा उदएणं आउयं कम्मं वेदेइ।

एस णं गोयमा ! आउएकम्मे।

एस णं गोयमा ! आउअस्स कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गल परिणामं पप्प चउव्विहे अणुभावे पण्णत्ते।

६. (क) सुभणामस्स णं भंते ! कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गल परिणामं पप्प कइविहे अणुभावे पण्णत्ते ?

१. अमनोज्ञ शब्द यावत् ८. कायदुःखता,

जो पुद्गल का या पुद्गलों का, पुद्गल परिणाम का या स्वाभाविक पुद्गलों के परिणाम का वेदन करता है।

अथवा उनके उदय से असातावेदनीय कर्म का वेदन करता है।

गौतम ! यह असातावेदनीय कर्म है।

हे गौतम ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके असातावेदनीयकर्म का यह आठ प्रकार का अनुभाव फल कहा गया है।

प्र. ४. भंते ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके मोहनीयकर्म का कितने प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है ?

उ. गौतम ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके मोहनीयकर्म का पांच प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है, यथा–

१. सम्यक्त्व-वेदनीय, २. मिथ्यात्व-वेदनीय,

३. सम्यग्मिथ्यात्व-वेदनीय, ४. कषाय-वेदनीय,

५. नो-कषाय-वेदनीय।

जो पुद्गल का या पुद्गलों का पुद्गल परिणाम का या स्वाभाविक पुद्गलों के परिणाम का वेदन करता है,

अथवा उनके उदय से मोहनीयकर्म का वेदन करता है।

गौतम ! यह मोहनीय कर्म है।

हे गौतम ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके मोहनीय कर्म का यह पांच प्रकार अनुभाव (फल) कहा गया है।

प्र. ५. भंते ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके आयुकर्म का कितने प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है ?

उ. गौतम ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके आयुकर्म का चार प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है, यथा–

१. नरकायु, २. तिर्यञ्चायु,

३. मनुष्यायु, ४. देवायु।

जो पुद्गल का या पुद्गलों का, पुद्गल-परिणाम का या स्वाभाविक पुद्गलों के परिणाम का वेदन करता है,

अथवा उनके उदय से आयु कर्म का वेदन करता है,

गौतम ! यह आयु कर्म है।

हे गौतम ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके आयुकर्म का यह चार प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है।

प्र. ६. (क) भंते ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके शुभ नामकर्म का कितने प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है ?

---

[1] ा.७, सु.५८८

उ. गोयमा ! सुभणामस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गल परिणामं पप्प चोद्दसविहे अणुभावे पण्णत्ते, तं जहा–

१. इट्ठा सद्दा, २. इट्ठा रूवा,
३. इट्ठा गंधा, ४. इट्ठा रसा,
५. इट्ठा फासा, ६. इट्ठा गइ,
७. इट्ठा ठिई, ८. इट्ठे लावण्णे,
९. इट्ठा जसोकित्ती,
१०. इट्ठे उट्ठाणं-कम्म-बल-वीरिय-पुरिसक्कारपरक्कमे,
११. इट्ठस्सरया, १२. कंतस्सरया,
१३. पियस्सरया, १४. मणुण्णस्सरया।

जं वेएइ पोग्गलं वा, पोग्गले वा, पोग्गलपरिणामं वा, वीससा वा, पोग्गलाणं परिणामं,
तेसिं वा उदएणं सुभणामं कम्मं वेदेइ।
एस णं गोयमा ! सुभणामं कम्मे।
एस णं गोयमा ! सुभणामस्स कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गल परिणामं पप्प चोद्दसविहे अणुभावे पण्णत्ते।

उ. गौतम ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके शुभ नामकर्म का चौदह प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है, यथा–

१. इष्ट शब्द, २. इष्ट रूप,
३. इष्ट गन्ध, ४. इष्ट रस,
५. इष्ट स्पर्श, ६. इष्ट गति,
७. इष्ट स्थिति, ८. इष्ट लावण्य,
९. इष्ट यशोकीर्ति,
१०. इष्ट उत्थान कर्म-बल-वीर्य पुरुषकार-पराक्रम।
११. इष्ट-स्वरता, १२. कान्त-स्वरता,
१३. प्रिय-स्वरता, १४. मनोज्ञ-स्वरता।

जो पुद्गलकाया पुद्गलों का, पुद्गल-परिणाम का या स्वाभाविक पुद्गलों के परिणाम का वेदन करता है,
अथवा उनके उदय से शुभनामकर्म का वेदन करता है,
गौतम ! यह शुभनामकर्म है।
हे गौतम ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके शुभनामकर्म का वह चौदह प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है।

प. (ख) दुहणामस्स णं भंते ! कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प कइविहे अणुभावे पण्णत्ते?

प्र. (ख) भंते ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके अशुभनामकर्म का कितने प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है?

उ. गोयमा ! एवं चेव।
णवरं–अणिट्ठा सद्दा जाव हीणस्सरया, दीणस्सरया, अणिट्ठस्सरया, अकंतस्सरया।
जं वेदेइ सेसं तं चेव जाव चोद्दसविहे अणुभावे पण्णत्ते।

उ. गौतम ! पूर्ववत् चौदह प्रकार का है।
विशेष–पूर्व से विपरीत अनिष्ट शब्द यावत् हीन-स्वरता, दीन-स्वरता, अनिष्ट-स्वरता और अकान्त-स्वरता रूप है।
जो पुद्गल आदि का वेदन करता है उसी प्रकार यावत् चौदह प्रकार का अनुभाव फल कहा गया है।

प. ७. (क) उच्चागोयस्स णं भंते ! कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प कइविहे अणुभावे पण्णत्ते?

प्र. ७. (क) भंते ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके उच्चगोत्रकर्म का कितने प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है?

उ. गोयमा ! उच्चागोयस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प अट्ठविहे अणुभावे पण्णत्ते, तं जहा–

१. जाइविसिट्ठया, २. कुलविसिट्ठया,
३. बलविसिट्ठया, ४. रूवविसिट्ठया,
५. तवविसिट्ठया, ६. सुयविसिट्ठया,
७. लाभविसिट्ठया, ८. इस्सरियविसिट्ठया।

जं वेएइ पोग्गलं वा, पोग्गले वा, पोग्गल परिणामं वा, वीससा वा, पोग्गलाणं परिणामं,
तेसिं वा उदएणं उच्चागोयं कम्मं वेदेइ,
एस णं गोयमा ! उच्चागोयं कम्मं,
एस णं गोयमा ! उच्चागोयस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गल परिणामं पप्प अट्ठविहे अणुभावे पण्णत्ते।

उ. गौतम ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके उच्चगोत्रकर्म का आठ प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है, यथा–

१. जाति-विशिष्टता, २. कुल-विशिष्टता,
३. बल-विशिष्टता, ४. रूप-विशिष्टता,
५. तप-विशिष्टता, ६. श्रुत-विशिष्टता,
७. लाभ-विशिष्टता, ८. ऐश्वर्य-विशिष्टता।

जो पुद्गल का या पुद्गलों का, पुद्गलपरिणाम का या स्वाभाविक पुद्गलों के परिणाम का वेदन करता है,
अथवा उनके उदय से उच्च गोत्र कर्म का वेदन करता है,
गौतम ! यह उच्चगोत्र कर्म है।
हे गौतम ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके उच्चगोत्र कर्म का यावत् यह आठ प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है।

प. (ख) णीयागोयस्स णं भंते ! कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प कइविहे अणुभावे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।
णवरं–जाइविहीणया जाव इस्सरियविहीणया।

जं वेदेइ, सेसं तं चेव जाव अट्ठविहे अणुभावे पण्णत्ते।

प. ८. अंतराइयस्स णं भंते ! कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प कइविहे अणुभावे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! अंतराइयस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गल परिणामं पप्प पंचविहे अणुभावे पण्णत्ते, तं जहा–

१. दाणंतराए, २. लाभंतराए,
३. भोगंतराए, ४. उवभोगंतराए,
५. वीरियंतराए।

जं वेदेइ पोग्गलं वा, पोग्गले वा, पोग्गलपरिणामं वा,
वीससा वा, पोग्गलाणं परिणामं।
तेसिं वा उदएणं अंतराइयं कम्मं वेदेइ।
एस णं गोयमा ! अंतराइए कम्मे।
एस णं गोयमा ! अंतराइयस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गल परिणामं पप्प पंचविहे अणुभावे पण्णत्ते। –*पण्ण. प. २३, उ. १, सु. १६७९-१६८६*

सिद्धाणऽणन्तभागो य, अणुभागा हवन्ति उ।
सव्वेसु वि पएसग्गं, सव्वजीवेसु इच्छियं॥

तम्हा एएसिं कम्माणं अणुभागे वियाणिया।
एएसिं संवरे चेव खवणे य जए बुहे॥
–*उत्त. अ. ३३, गा. २४-२५*

प्र. (ख) भंते ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके नीचगोत्रकर्म का कितने प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् आठ प्रकार का है।
विशेष–पूर्व से विपरीत जातिविहीनता यावत् ऐश्वर्यविहीनता रूप है।
जो पुद्गल आदि का वेदन करता है उसी प्रकार यावत् आठ प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है।

प्र. ८. भंते ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके अन्तरायकर्म का कितने प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है ?

उ. गौतम ! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके अन्तरायकर्म का पांच प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है, यथा–

१. दानान्तराय, २. लाभान्तराय,
३. भोगान्तराय, ४. उपभोगान्तराय,
५. वीर्यान्तराय।

जो पुद्गल का या पुद्गलों का, पुद्गल-परिणाम का या स्वाभाविक पुद्गलों के परिणाम का वेदन करता है,
अथवा उनके उदय से जो अन्तरायकर्म का वेदन करता है।
हे गौतम ! यह अन्तराय-कर्म है।
हे गौतम ! जीव के द्वारा वद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके अन्तरायकर्म का यह पाँच प्रकार का अनुभाव (फल) कहा गया है।

कर्मों के अनुभाग सिद्धों के अनन्तवें भाग जितने हैं तथा समस्त अनुभागों का प्रदेश-परिणाम समस्त जीवों से भी अधिक है।
अतः इन कर्मों के अनुभागों को जानकर वुद्धिमान् इनका संवर और क्षय करने का प्रयत्न करें।

१५७. उदिण्ण-उवसंतमोहणिज्जस्स जीवस्स उवट्ठावण अवक्कमणाइ परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! मोहणिज्जेण कडेणं कम्मेणं उदिण्णेणं उवट्ठाएज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! उवट्ठाएज्जा।

प. से भंते ! किं वीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा, अवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा ?

उ. गोयमा ! वीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा, नो अवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा।

प. जइ वीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा किं वालवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा, पंडियवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा, वाल पंडियवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा ?

उ. गोयमा ! वालवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा, णो पंडियवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा, णो वाल-पंडियवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा।

१५७. उदीर्ण-उपशांत मोहनीय कर्म वाले जीव के उपस्थापनादि का प्ररूपण–

प. भंते ! (पूर्व) कृत मोहनीय कर्म जव उदीर्ण (उदय में आया) हुआ हो, तव जीव उपस्थान (परलोक की क्रिया के लिए उद्यम) करता है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह उद्यम करता है।

प्र. भंते ! क्या जीव सवीर्य होकर उपस्थान करता है या अवीर्य होकर उपस्थान करता है ?

उ. गौतम ! जीव वीर्यता से उपस्थान करता है, अवीर्यता से उपस्थान नहीं करता है।

प्र. यदि जीव वीर्यता से उपस्थान करता है, तो क्या वालवीर्यता से, पण्डितवीर्यता से या वाल-पण्डितवीर्यता से उपस्थान करता है ?

उ. गौतम ! वह वालवीर्यता से उपस्थान करता है, किन्तु पण्डितवीर्यता से या वालपण्डितवीर्यता से उपस्थान नहीं करता है।

प. जीवे णं भंते ! मोहणिज्जेणं कडेणं कम्मेणं उदिण्णेणं अवक्कमेज्जा?

उ. हंता, गोयमा ! अवक्कमेज्जा।

प. से भंते ! किं बालवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा पंडियवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा, बालपंडियवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा?

उ. गोयमा ! बालवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा, नो पंडियवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा, सिय बाल-पंडियवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा।

जहा उदिण्णेणं दो आलावगा तहा उवसंतेण वि दो आलावगा भाणियव्वा।

णवरं–उवट्ठाएज्जा पंडियवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा बाल-पंडियवीरियत्ताए।

प. से भंते ! किं आयाए अवक्कमए, अणायाए अवक्कमए?

उ. गोयमा ! आयाए अवक्कमइ, णो अणायाए अवक्कमइ।

प. मोहणिज्जं कम्मं वेएमाणे से कहमेयं भंते ! एवं?

उ. गोयमा ! पुव्विं से एयं एवं रोयइ इदाणिं से एयं एवं नो रोयइ, एवं खलु एयं एवं आयाए अवक्कमइ णो अणायाए अवक्कमइ। *–विया. स. १, उ. ४, सु. २-५*

प्र. भंते ! (पूर्व) कृत (उपार्जित) मोहनीय कर्म जब उदय में आया हो, तब क्या जीव अपक्रमण (पतन) करता है?

उ. हां, गौतम ! अपक्रमण करता है।

प्र. भंते ! वह बालवीर्य से, पण्डितवीर्य से या बालपण्डितवीर्य से अपक्रमण करता है?

उ. गौतम ! वह बालवीर्य से अपक्रमण करता है, पण्डितवीर्य से अपक्रमण नहीं करता है, कदाचित् बालपण्डितवीर्य से अपक्रमण करता है।

जैसे उदीर्ण (उदय में आए हुए) पद के साथ दो आलापक कहे गए हैं, वैसे ही "उपशान्त" पद के साथ भी दो आलापक कहने चाहिए।

विशेष–यहां जीव पण्डितवीर्य से उपस्थान करता है और बालपण्डितवीर्य से अपक्रमण करता है।

प्र. भंते ! क्या जीव अपने उद्यम से गिरता है या पर उद्यम से गिरता है?

उ. गौतम ! अपने उद्यम से गिरता है पर के उद्यम से नहीं गिरता है।

प्र. भंते ! मोहनीय कर्म को वेदता हुआ वह (जीव) क्यों अपक्रमण करता है?

उ. गौतम ! पहले उसे जिनेन्द्र द्वारा कथित तत्व रुचता था और इस समय उसे इस प्रकार नहीं रुचता है। इस कारण इस समय ऐसा होता है कि अपने उद्यम से गिरता है पर-उद्यम से नहीं गिरता है।

१५८. खीणमोहस्स कम्मपगडीवेयण परूवणं–

खीणमोहे णं भगवं मोहणिज्जवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ वेएई। *–सम. सम. ७, सु. ६*

१५८. क्षीणमोही के कर्मप्रकृतियों के वेदन का प्ररूपण–

क्षीणमोही भगवान् (१२वें गुणस्थानवर्ती) मोहनीय कर्म को छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियों का वेदन करते हैं।

१५९. खीणमोहस्सकम्मक्खयपरूवणं–

खीणमोहस्स णं अरहओ तओ कम्मंसा जुगवं खिज्जंति, तं जहा–

१. णाणावरणिज्जं, २. दंसणावरणिज्जं,
३. अंतराइयं। *–ठाणं. अ. ३, उ. ४, सु. २२६*

१५९. क्षीणमोही के कर्मक्षय का प्ररूपण–

क्षीणमोही अर्हन्त के तीन कर्मांश (कर्मप्रकृतियां) एक साथ क्षय होते हैं, यथा–

१. ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय,
३. अन्तराय।

१६०. पढम समयजिणस्स कम्मक्खय परूवणं–

पढमसमयजिणस्स णं चत्तारि कम्मंसा खीणा भवंति, तं जहा–

१. णाणावरणिज्जं, २. दंसणावरणिज्जं,
३. मोहणिज्जं, ४. अंतराइयं। *–ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २६८*

१६०. प्रथम समय जिन भगवन्त के कर्म क्षय का प्ररूपण–

प्रथम-समय जिनभगवन्त के चार कर्मांश क्षीण होते हैं, यथा–

१. ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय,
३. मोहनीय, ४. अंतराय।

१६१. पढम समय सिद्धस्स कम्मक्खय परूवणं–

पढमसमयसिद्धस्स णं चत्तारि कम्मंसा जुगवं खिज्जंति, तं जहा–

१. वेयणिज्जं, २. आउयं,
३. णामं, ४. गोयं, *–ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २६८*

१६१. प्रथम समय सिद्ध के कर्म क्षय का प्ररूपण–

प्रथम समय सिद्ध के चार कर्मांश एक साथ क्षीण होते हैं, यथा–

१. वेदनीय, २. आयु,
३. नाम, ४. गोत्र।

२. जीव-चउवीसदंडएसु अट्ठण्हं कम्मपगडीणं अविभाग पलिच्छेदा आवेढण परिवेढण य–

प. नाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स–
केवइया अविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंताअविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता।

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवइया अविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता अविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता।
दं. २-२४. एवं सव्वजीवाणं जाव वेमाणियाणं।

जहा नाणावरणिज्जस्स अविभागपलिच्छेदा भणिया तहा अट्ठण्ह वि कम्मपगडीणं भाणियव्वा जाव १-२४ वेमाणियाणं अंतराइयस्स कम्मस्स।

प. एगमेगस्स णं भंते ! जीवस्स एगमेगे जीवपएसे–
नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवइएहिं अविभागपलिच्छेदेहिं आवेढिय परिवेढिए सिया ?

उ.. गोयमा ! सिय आवेढिय परिवेढिए, सिय नो आवेढिय परिवेढिए।
जइ आवेढिए परिवेढिए नियमा अणंतेहिं।

प. दं. १. एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स एगमेगे जीवपएसे–
नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवइएहिं अविभागपलिच्छेदेहिं आवेढिए परिवेढिए ?

उ. गोयमा ! नियमा अणंतेहिं।

दं. २-२४. जहा नेरइयस्स एवं जाव वेमाणियस्स।

दं. २१. णवरं–मणूसस्स जहा जीवस्स।

प. एगमेगस्स णं भंते ! जीवस्स एगमेगे जीवपएसे–
दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवइएहिं अविभागपलिच्छेदेहिं आवेढिय परिवेढिए ?

उ. गोयमा ! जहेव नाणावरणिज्जस्स तहेव दंडगो भाणियव्वो। जाव वेमाणियस्स

एवं जाव अंतराइयस्स भाणियव्वं।
णवरं–वेयणिज्जस्स, आउयस्स, नामस्स, गोयस्स,
एएसिं चउण्ह वि कम्माणं मणूसस्स य जहा नेरइयस्स तहा भाणियव्वं।
सेसं तं चेव। –विया. स. ८, उ. १०, सु. ३३-४१

१६२. जीव-चौबीस दंडकों में आठ कर्म प्रकृतियों के अविभाग परिच्छेद और आवेष्टन परिवेष्टन–

प्र. भंते ! ज्ञानावरणीय कर्म के कितने अविभाग-परिच्छेद कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त अविभाग-परिच्छेद कहे गए हैं।

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिकों में ज्ञानावरणीयकर्म के कितने अविभाग-परिच्छेद कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त अविभाग-परिच्छेद कहे गए हैं।
दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी जीवों में ज्ञानावरणीयकर्म के अविभाग-परिच्छेद जानना चाहिये।

जिस प्रकार सभी जीवों में ज्ञानावरणीय कर्म के अविभाग-परिच्छेद कहे हैं, उसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी जीवों के अन्तराय कर्म तक आठों कर्म प्रकृतियों के अनन्त अविभाग-परिच्छेद कहने चाहिए।

प्र. भंते ! प्रत्येक जीव का एक एक जीवप्रदेश-ज्ञानावरणीय कर्म के कितने अविभाग-परिच्छेदों से आवेष्टित-परिवेष्टित होता है ?

उ. गौतम ! वह कदाचित् आवेष्टित-परिवेष्टित होता है कदाचित् आवेष्टित परिवेष्टित नहीं होता है।
यदि आवेष्टित-परिवेष्टित होता है, तो वह नियमतः अनन्त (अविभाग परिच्छेदों) से होता है।

प्र. दं. १. भंते ! प्रत्येक नैरयिक का एक-एक जीवप्रदेश–
ज्ञानावरणीय कर्म के कितने अविभाग-परिच्छेदों से आवेष्टित-परिवेष्टित होता है ?

उ. गौतम ! वह नियमतः अनन्त अविभाग-परिच्छेदों से आवेष्टित परिवेष्टित होता है।

दं. २-२४. जिस प्रकार नैरयिकों के विषय में कहा, उसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए,

दं. २१. विशेष–मनुष्य का कथन (औधिक) जीव की तरह करना चाहिए।

प्र. भंते ! प्रत्येक जीव का एक-एक-जीव-प्रदेश–
दर्शनावरणीयकर्म के कितने अविभागपरिच्छेदों से आवेष्टित-परिवेष्टित होता है ?

उ. गौतम ! जैसे ज्ञानावरणीय कर्म के विषय में दण्डक कहा है, उसी प्रकार यहां वैमानिक-पर्यन्त सभी दंडक कहने चाहिए।

इसी प्रकार अन्तराय कर्म पर्यन्त कहना चाहिए।
विशेष–वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र इन चार कर्मों के लिए जिस प्रकार नैरयिक जीवों में कथन किया है, उसी प्रकार मनुष्यों के लिए भी कहना चाहिए।
शेष सब वर्णन पूर्वानुसार है।

१६३. कम्माणं पएसग्ग परिमाण परूवणं–

पएसग्ग खेत्तकाले य भावं चउत्तरं सुण॥

सव्वेसिं चेव कम्माणं, पएसग्गमणन्तगं।

गण्ठिय-सत्ताईयं अन्तो सिद्धाण आहियं॥

सव्वजीवाणं कम्मं तु संगहे छद्दिसागयं।

सव्वेसु वि पएसेसु सव्वं सव्वेण बद्धगं॥

–उत्त. अ. ३३, गा. १६(२)–१८

१६४. कम्मट्ठगाणं वण्णाइ परूवणं–

णाणावरणिज्जे जाव **अंतराइए पंच वण्णे, दुगंधे, पंच रसे, चउफासे पण्णत्ते।** *–विया. स. १२, उ. ५, सु. २७*

१६५. वत्थेसु पुग्गलोवचय दिट्ठंतेण जीव-चउवीसदंडएस कम्मोवचय परूवणं–

प. वत्थस्स णं भंते! पोग्गलोवचए किं पयोगसा, वीससा?

उ. गोयमा! पयोगसा वि, वीससा वि।

प. जहा णं भंते! वत्थस्स णं पोग्गलोवचए पयोगसा वि, वीससा वि,

तहा णं जीवाणं कम्मोवचए किं पयोगसा वीससा?

उ. गोयमा! जीवाणं कम्मोवचए पयोगसा, नो वीससा।

प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–

'जीवा णं कम्मोवचए पयोगसा, नो वीससा?'

उ. गोयमा! जीवाणं तिविहे पयोगे पण्णत्ते, तं जहा–

१. मणप्पयोगे, २. वइप्पयोगे, ३. कायप्पयोगे।

इच्चेएणं तिविहेणं पयोगेणं जीवाणं कम्मोवचए पयोगसा, नो वीससा।

एवं सव्वेसिं पंचेंदियाणं तिविहे पयोगे भाणियव्वे।

पुढविकाइयाणं एगविहेणं पयोगेणं,

एवं जाव वणस्सइकाइयाणं।

विगलिंदियाणं दुविहे पयोगे पण्णत्ते, तं जहा–

१. वइप्पयोगे य, २. कायप्पयोगे य।

इच्चेएणं दुविहेणं पयोगेणं कम्मोवचए पयोगसा, नो वीससा।

१६३. कर्मों के प्रदेशाग्र-परिमाण का प्ररूपण–

अब इनके प्रदेशाग्र (द्रव्य परिमाण) क्षेत्र काल और भाव को सुनो।

एक समय में बंधने वाले समस्त कर्मों का प्रदेशाग्र अनन्त होता है।

वह परिमाण ग्रन्थिभेद न करने वाले अभव्य जीवों के अनन्तगुणा अधिक और सिद्धों के अनन्तवें भाग जितना कहा गया है।

सभी जीव छहों दिशाओं में रहे हुए कर्म पुद्गलों को सम्यक् प्रकार से ग्रहण करते हैं।

वे सभी कर्म पुद्गल आत्मा के समस्त प्रदेशों के साथ सर्व प्रकार से बद्ध हो जाते हैं।

१६४. आठ कर्मों के वर्णादि का प्ररूपण–

ज्ञानावरणीय कर्म से अंतराय कर्म पर्यन्त पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और चार स्पर्श वाले कहे गये हैं।

१६५. वस्त्र में पुद्गलोपचय के दृष्टान्त द्वारा जीव-चौबीस दंडकों में कर्मोपचय का प्ररूपण–

प्र. भंते! वस्त्र में जो पुद्गलों का उपचय होता है, वह क्या प्रयोग (प्रयत्न) से होता है, या स्वाभाविक रूप से होता है?

उ. गौतम! वह प्रयोग से भी होता है स्वाभाविक रूप से भी होता है।

प्र. भंते! जिस प्रकार वस्त्र में पुद्गलों का उपचय प्रयोग से और स्वाभाविक रूप से होता है,

तो क्या उसी प्रकार जीवों के कर्मपुद्गलों का उपचय भी प्रयोग से और स्वाभाविक रूप से होता है?

उ. गौतम! जीवों के कर्मपुद्गलों का उपचय प्रयोग से होता है, स्वाभाविक रूप से नहीं होता है।

प्र. भंते! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

'जीवों के कर्म पुद्गलों का उपचय प्रयोग से होता है, स्वाभाविक रूप से नहीं?'

उ. गौतम! जीवों के तीन प्रकार के प्रयोग कहे गए हैं, यथा–

१. मनःप्रयोग, २. वचन प्रयोग, ३. काय प्रयोग।

इन तीन प्रकार के प्रयोगों से जीवों के कर्मों का उपचय प्रयोग से होता है किन्तु स्वाभाविक रूप से नहीं।

इस प्रकार समस्त पंचेन्द्रिय जीवों के तीन प्रकार का प्रयोग कहना चाहिए।

पृथ्वीकायिकों के एक प्रकार के (कार्य) प्रयोग से कर्मोपचय होता है।

इसी प्रकार वनस्पतिकायिक पर्यन्त कहना चाहिए।

विकलेन्द्रिय जीवों के दो प्रकार के प्रयोग हैं, यथा–

१. वचन-प्रयोग, २. काय-प्रयोग।

इस प्रकार के इन दो प्रयोगों से कर्मोपचय प्रयोग से होता है, स्वाभाविक रूप से नहीं।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'जीवाणं कम्मोवचए पयोगसा, नो वीससा'॥

एवं जस्स जो पयोगो जाव वेमाणियाणं।
–विया. स. ६, उ. ३, सु. ४-५

६. कम्मोवचयस्स साइ सपज्जवसियाइ परूवणं–

प. वत्थस्स णं भंते ! पोग्गलोवचए–
किं साईए सपज्जवसिए, साईए अपज्जवसिए,
अणाईए सपज्जवसिए, अणाईए अपज्जवसिए ?

उ. गोयमा ! वत्थस्स णं पोग्गलोवचए–
साईए सपज्जवसिए, नो साईए अपज्जवसिए, नो अणाईए सपज्जवसिए, नो अणाईए अपज्जवसिए।

प. जहा णं भंते ! वत्थस्स पोग्गलोवचए–
साईए सपज्जवसिए, नो साईए अपज्जवसिए, नो अणाईए सपज्जवसिए, नो अणाईए अपज्जवसिए।
तहा जीवाणं भंते ! कम्मोवचए किं साईए सपज्जवसिए जाव णो अणाईए अपज्जवसिए ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइयाणं जीवाणं कम्मोवचए साईए सपज्जवसिए,
अत्थेगइयाणं अणाईए सपज्जवसिए,
अत्थेगइयाणं अणाईए अपज्जवसिए,
नो चेव णं जीवाणं कम्मोवचए साईए अपज्जवसिए।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'अत्थेगइयाणं जीवाणं कम्मोवचए साईए सपज्जवसिए जाव नो चेव णं जीवाणं कम्मोवचए साईए अपज्जवसिए ?'

उ. गोयमा ! इरियावहियाबंधयस्स कम्मोवचए साईए सपज्जवसिए,
भवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणाईए सपज्जवसिए,
अभवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणाईए अपज्जवसिए।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"अत्थेगइयाणं जीवाणं कम्मोवचए साईए सपज्जवसिए जाव नो चेव णं जीवाणं कम्मोवचए साईए अपज्जवसिए।" –विया. स. ६, उ. ३, सु. ६-७

६७. चउवीसदंडएसु महाकम्म-अप्पकम्मतराइकारणपरूवणं–

प. दं. १. दो भंते ! नेरइया एगंसि नेरइयावासंसि नेरइयत्ताए उववन्ना,
तत्थ णं एगे नेरइए महाकम्मतराए चेव महाकिरियतराए चेव, महासवतराए चेव, महावेयणतराए चेव,
एगे नेरइए अप्पकम्मतराए चेव, अप्पकिरियतराए चेव, अप्पासवतराए चेव, अप्पवेयणतराए चेव।
से कहमेयं भंते ! एवं ?

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'जीवों के कर्मोपचय प्रयोग से होता है, स्वाभाविक रूप से नहीं होता।'
इस प्रकार जिस जीव के जो प्रयोग हों वे वैमानिक तक कहने चाहिए।

१६६. कर्मोपचय की सादि सान्तता आदि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! वस्त्र में पुद्गलों का जो उपचय होता है,
क्या वह सादि सान्त है, सादि अनन्त है, अनादि सान्त है, या अनादि अनन्त है ?

उ. गौतम ! वस्त्र में पुद्गलों का जो उपचय है, वह सादि सान्त है, किन्तु न तो वह सादि अनन्त है, न अनादि सान्त है और न अनादि अनन्त है।

प्र. भंते ! जिस प्रकार वस्त्र में पुद्गलोपचय सादि-सान्त है, किन्तु सादि-अनन्त, अनादि-सान्त और अनादि-अनन्त नहीं है,
भंते ! क्या उसी प्रकार जीवों का कर्मोपचय भी सादि-सान्त है यावत् अनादि-अनन्त नहीं है ?

उ. गौतम ! कितने ही जीवों का कर्मोपचय सादि-सान्त है,
कितने ही जीवों का कर्मोपचय अनादि-सान्त है,
कितने ही जीवों का कर्मोपचय अनादि-अनन्त है,
किन्तु कोई भी जीवों का कर्मोपचय सादि अनन्त नहीं होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'कितने ही जीवों का कर्मोपचय सादि सान्त है यावत् कोई भी जीवों का कर्मोपचय सादि अनन्त नहीं होता है ?'

उ. गौतम ! ईर्यापथिक-वन्धक का कर्मोपचय सादि-सान्त है,
भवसिद्धिक जीवों का कर्मोपचय अनादि-सान्त है,
अभवसिद्धिक जीवों का कर्मोपचय अनादि-अनन्त है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'कितने ही जीवों का कर्मोपचय सादि सान्त है यावत् कोई भी जीवों का कर्मोपचय सादि अनन्त नहीं होता है।'

१६७. चौवीसदंडकों में महाकर्म अल्पकर्मत्व आदि के कारणों का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! दो नैरयिक एक ही नरकावास में नैरयिकरूप से उत्पन्न हुए
उनमें से एक नैरयिक महाकर्म वाला, महाक्रियावाला, महाश्रव वाला और महावेदना वाला होता है,
एक नैरयिक अल्पकर्म वाला, अल्पक्रियावाला, अल्पाश्रव वाला और अल्पवेदना वाला होता है।
भंते ! ऐसा क्यों ?

उ. गोयमा ! नेरइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. मायिमिच्छद्दिट्ठिउववन्नगा य,

२. अमायिसम्मद्दिट्ठिउववन्नगा य।

१. तत्थ णं जे से मायिमिच्छद्दिट्ठिउववन्नए नेरइए से णं महाकम्मतराए चेव जाव महावेयणतराए चेव,

२. तत्थ णं जे से अमायिसम्मद्दिट्ठिउववन्नए नेरइए से णं अप्पकम्मतराए चेव जाव अप्पवेयणतराए चेव।

दं. २-११. एवं असुरकुमारा वि जाव थणियकुमारा।

एवं एगिंदिय-विगलिंदियवज्जा (२०-२४) जाव वेमाणिया।

(एगिंदिय विगलिंदिया महाकम्मतरागा जाव महावेयणतरागा) *–विया. स. १८, उ. ५, सु. ५-७*

१६८. तुंब दिट्ठंतेण जीवाणं गरुयत्त लहुयत्तं कारण परूवणं–

प. कहं णं भंते ! जीवा गरुयत्तं वा लहुयत्तं वा हव्वमागच्छंति ?

उ. गोयमा ! से जहानामए केइ पुरिसे एगं महं तुंबं णिच्छिद्दं निरुवहयं दब्भेहिं कुसेहिं वेढेइ, वेढित्ता मट्टियालेवेणं लिंपइ उण्हे दलयइ दलइत्ता सुक्कं समाणं दोच्चं पि दब्भेहिं य कुसेहिं य वेढेइ वेढित्ता मट्टियालेवेणं लिंपइ, लिंपित्ता उण्हे सुक्कं समाणं तच्चं पि दब्भेहिं य कुसेहिं य वेढेइ वेढित्ता मट्टियालेवेणं लिंपइ।

एवं खलु एएणुवाएणं अंतरा वेढेमाणे, अंतरा लिंपेमाणे, अंतरा सुक्कवेमाणे जाव अट्ठहिं मट्टियालेवेहिं आलिंपइ, अत्थाहमतारमपोरिसियंसि उदगंसि पक्खिवेज्जा।

से णूणं गोयमा ! से तुंबे तेसिं अट्ठण्हं मट्टियालेवेणं गरुयत्ताए भारियत्ताए गरुयभारियत्ताए उप्पिं सलिलमइवइत्ता अहे धरणियलपइट्ठाणे भवइ।

एवामेव गोयमा ! जीवा वि पाणाइवाएणं जाव मिच्छादंसणसल्लेणं अणुपुव्वेणं अट्ठकम्मपगडीओ समज्जिणंति। तासिं गरुयाए भारिययाए गरुयभारिययाए कालमासे कालं किच्चा धरणियलमइवइत्ता अहे नरगतलपइट्ठाणा भवंति, एवं खलु गोयमा ! जीवा गरुयत्तं हव्वमागच्छंति।

अह णं गोयमा ! से तुंबे तेसिं पढमिल्लुगंसि मट्टियालेवंसि तित्तंसि कुहियंसि परिसाडियंसि ईसिं धरणितलाओ उप्पइत्ता णं चिट्ठइ।

तयाणतरं च णं दोच्चं पि मट्टियालेवे तित्तेकुहिए परिसडिए ईसिं धरणियलाओ उप्पइत्ता णं चिट्ठइ, एवं खलु एएणं उवाएणं तेसु अट्ठसु मट्टियालेवेसु तित्तेसु

उ. गौतम ! नैरयिक दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक,

२. अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक।

१. इनमें से जो मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक नैरयिक है वह महाकर्म वाला यावत् महावेदना वाला होता है,

२. इनमें से जो अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक नैरयिक है, वह अल्पकर्म वाला यावत् अल्पवेदना वाला होता है।

दं. २-११. इसी प्रकार (पूर्ववत्) असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

इसी प्रकार एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों को छोड़कर (२०-२४) वैमानिकों तक जानना चाहिए।

(एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय महाकर्म वाले यावत् महावेदना वाले होते हैं।)

१६८. तुम्ब के दृष्टांत से जीवों के गुरुत्व लघुत्व के कारणों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! किस कारण से जीव गुरुता और लघुता को प्राप्त करते हैं ?

उ. गौतम ! जैसे कोई एक पुरुष एक बड़े सूखे छिद्ररहित और अखंड तुंबे को दर्भ (डाभ) से और कुश (दूब) से लपेटे और लपेटकर मिट्टी के लेप से लीपे फिर धूप में रखे और धूप में रखने से सूख जाने पर दूसरी बार दर्भ और कुश से लपेटे, लपेटकर फिर मिट्टी के लेप से लीपे, लीप कर धूप में सूख जाने पर तीसरी बार दर्भ और कुश लपेटे और लपेट कर मिट्टी का लेप चढ़ा दे।

इस प्रकार इस क्रम से बीच-बीच में दर्भ और कुश लपेटते मिट्टी से लीपते और सुखाते हुए यावत् आठ मिट्टी के लेप उस तुंबे पर चढ़ाते हैं। फिर अथाह (जिसे तिरा न जा सके) और अपौरुषिक (जिसे पुरुष की ऊंचाई से नापा न जा सके) जल में डाल दिया जाय तो–

निश्चय ही हे गौतम ! वह तुंबा मिट्टी के आठ लेपों के कारण गुरुता एवं भारीपन को प्राप्त होकर पानी के ऊपरीतल को छोड़कर नीचे धरती के तल भाग में स्थित हो जाता है।

इसी प्रकार हे गौतम ! जीव भी प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शन शल्य से अर्थात् अठारह पापस्थानकों के सेवन से क्रमशः आठ कर्म प्रकृतियों का उपार्जन करते हैं। उन कर्मप्रकृतियों की गुरु और भारीपन के कारण गुरुता और भारी होकर मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्त कर इस पृथ्वी तल को लांघ कर नीचे नरक तल में स्थित होते हैं, इस प्रकार गौतम ! जीव शीघ्र गुरुत्व को प्राप्त होते हैं।

अब हे गौतम ! उस तुंबे का ऊपर का मिट्टी का लेप गीला हो जाय, गल जाय और परिशिष्ट (नष्ट) हो जाय तो वह तुंबा पृथ्वीतल से कुछ ऊपर आकर ठहरता है।

तदनन्तर दूसरा मृत्तिकालेप गीला हो जाय, गल जाय और हट जाय तो तुंबा पृथ्वीतल से कुछ और ऊपर ठहरता है। इसी प्रकार उन आठों मृत्तिकालेपों के गीले हो जाने पर

प. एए णं भंते ! नव पदा किं एगट्ठा नाणाघोसा नाणावंजणा उदाहु नाणट्ठा नाणाघोसा नाणावंजणा ?

उ. गोयमा ! १. चलमाणे चलिए,
२. उदीरिज्जमाणे उदीरिए,
३. वेइज्जमाणे वेइए,
४. पहिज्जमाणे पहीणे।
एए णं चत्तारि पदा एगट्ठा नाणाघोसा नाणावंजणा उप्पन्नपक्खस्स।
१. छिज्जमाणे छिन्ने,
२. भिज्जमाणे भिन्ने,
३. डज्झमाणे डड्ढे,
४. मिज्जमाणे मडे,
५. निज्जरिज्जमाणे निज्जिण्णे,
एए णं पंच पदा नाणट्ठा नाणाघोसा नाणावंजणा विगतपक्खस्स। *-विया. स. १, उ. १, सु. ५*

१७२. कम्मरयादाणवमण हेउ परूवणं-

पंचहिं ठाणेहिं जीवा (कम्म) रयं आइज्जंति, तं जहा-
१. पाणाइवाएणं २. मुसावाएणं,
३. अदिण्णादाणेणं, ४. मेहुणेणं,
५. परिग्गहेणं।
पंचहिं ठाणेहिं जीवा (कम्म) रयं वमंति, तं जहा-
१. पाणाइवायवेरमणेणं २. मुसावायवेरमणेणं,
३. अदिण्णादाणवेरमणेणं ४. मेहुणवेरमणेणं,
५. परिग्गहवेरमणेणं। *-ठाणं. अ. ५, उ. १, सु. ४२३*

१७३. देवेहिं अणंतकम्मंस खय काल परूवणं-

प. अत्थि णं भंते ! ते देवा जे अणंते कम्मंसे जहण्णेणं एक्केण वा, दोहिं वा, तीहिं वा, उक्कोसेणं पंचहिं वाससएहिं खवयंति ?
उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।
प. अत्थि णं भंते ! ते देवा जे अणंते कम्मंसे जहण्णे एक्केण वा, दोहिं वा, तीहिं वा, उक्कोसेणं पंचहिं वाससहस्सेहिं खवयंति ?
उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।
प. अत्थि णं भंते ! ते देवा जे अणंते कम्मंसे जहण्णेणं एक्केण वा, दोहिं वा, तीहिं वा, उक्कोसेणं पंचहिं वाससयसहस्सेहिं खवयंति ?
उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।
प. कयरे णं भंते ! ते देवा जे अणंते कम्मंसे जहण्णेणं एक्केण वा जाव पंचहिं वाससएहिं खवयंति ?
कयरे णं भंते ! ते देवा जे अणंते कम्मंसे जहण्णेणं

प्र. भंते ! क्या ये नौ पद, नानाघोष और नाना व्यंजनों व
एकार्थक हैं ? या नाना घोष वाले और नाना व्यंजनों व
भिन्नार्थक पद हैं ?

उ. हे गौतम ! १. जो चल रहा है, वह चला,
२. जो उदीरा जा रहा है, वह उदीर्ण हुआ,
३. जो वेदा जा रहा है वह वेदा गया,
४. जो गिर रहा है, वह गिरा,
ये चारों पद उत्पन्न पक्ष की अपेक्षा से एकार्थक हैं वि
नाना-घोष वाले और नाना-व्यंजनों वाले हैं।
१. जो छेदा जा रहा है, वह छिन्न हुआ,
२. जो भेदा जा रहा है, वह भिन्न हुआ,
३. जो दग्ध हो रहा है, वह दग्ध हुआ,
४. जो मर रहा है, वह मरा,
५. जो निर्जीर्ण किया जा रहा है, वह निर्जीर्ण हुआ,
ये पांचों पद विगतपक्ष की अपेक्षा से नाना अर्थ व
नाना-घोष वाले और नाना-व्यंजनों वाले हैं।

१७२. कर्म रज के ग्रहण और त्याग के हेतुओं का प्ररूपण-

पांच स्थानों से जीव कर्म रज ग्रहण करते हैं, यथा-
१. प्राणातिपात से, २. मृषावाद से,
३. अदत्तादान से, ४. मैथुन से,
५. परिग्रह से।
पांच स्थानों से जीव कर्म रज का त्याग करते हैं, यथा-
१. प्राणातिपात विरमण से, २. मृषावाद विरमण से,
३. अदत्तादान विरमण से, ४. मैथुन विरमण से,
५. परिग्रह विरमण से।

१७३. देवों द्वारा अनन्त कर्मांशों के क्षय काल का प्ररूपण-

प्र. भंते ! क्या ऐसे भी देव हैं, जो अनन्त कर्मांशों को ज
एक सौ, दो सौ या तीन सौ और उत्कृष्ट पांच सौ वर्ष
क्षय कर देते हैं ?
उ. हां, गौतम ! (ऐसे देव) हैं।
प्र. भंते ! क्या ऐसे भी देव हैं, जो अनन्त कर्मांशों को ज
एक हजार, दो हजार या तीन हजार और उत्कृष्ट
हजार वर्षों में क्षय कर देते हैं।
उ. हां, गौतम ! (ऐसे देव) हैं।
प्र. भंते ! क्या ऐसे भी देव हैं, जो अनन्त कर्मांशों को ज
एक लाख, दो लाख या तीन लाख और उत्कृष्ट पांच ल
वर्षों में क्षय कर देते हैं ?
उ. हां, गौतम ! (ऐसे देव भी) हैं।
प्र. भंते ! ऐसे कौन-से देव हैं, जो अनन्त कर्मांशों को जघ
एक सौ वर्ष यावत्-पांच सौ वर्षों में क्षय करते हैं ?
भंते ! ऐसे कौन-से देव हैं जो अनन्त कर्मांशों को जघन्य

उ. गोयमा ! वाणमंतरा देवा अणंते कम्मंसे एगेण वाससएणं खवयंति,

असुरिंदवज्जिया भवणवासी देवा अणंते कम्मंसे दोहिं वाससएहिं खवयंति,

असुरकुमारा देवा अणंते कम्मंसे तीहिं वाससएहिं खवयंति,

गह-नक्खत्त-ताराख्वा जोइसिया देवा अणंते कम्मंसे चउवाससएहिं खवयंति,

चंदिम-सूरिया जोइसिंदा जोइसरायाणो अणंते कम्मंसे पंचहिं वाससएहिं खवयंति।

सोहम्मीसाणगा देवा अणंते कम्मंसे एगेणं वाससहस्सेणं खवयंति।

सणंकुमार-माहिंदगा देवा अणंते कम्मंसे दोहिं वाससहस्सेहिं खवयंति।

बंभलोग-लंतगा देवा अणंते कम्मंसे तीहिं वाससहस्सेहिं खवयंति।

महासुक्क-सहस्सारगा देवा अणंते कम्मंसे चउहिं वाससहस्सेहिं खवयंति।

आणय-पाणय-आरण-अच्चुयगा देवा अणंते कम्मंसे पंचहिं वाससहस्सेहिं खवयंति।

हेट्ठिमगेवेज्जगा देवा अणंते कम्मंसे एगेणं वाससयसहस्सेणं खवयंति।

मज्झिमगेवेज्जगा देवा अणंते कम्मंसे दोहिं वाससयसहस्सेहिं खवयंति।

उवरिमगेवेज्जगा देवा अणंते कम्मंसे तिहिं वाससयसहस्सेहिं खवयंति।

विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियगा देवा अणंते कम्मंसे चउहिं वाससयसहस्सेहिं खवयंति।

सव्वट्ठसिद्धगा देवा अणंते कम्मंसे पंचहिं वाससयसहस्सेहिं खवयंति।

एए णं गोयमा ! ते देवा जे अणंते कम्मंसे जहण्णेणं एक्केण वा, दोहिं वा, तीहिं वा उक्कोसेणं पंचहिं वाससएहिं खवयंति।

एए णं गोयमा ! ते देवा जे अणंते कम्मंसे जहण्णेणं एक्केण वा जाव उक्कोसेणं पंचहिं वाससहस्सेहिं खवयंति।

एए णं गोयमा ! ते देवा जे अणंते कम्मंसे जहण्णेणं एक्केण वा जाव उक्कोसेणं पंचहिं जहण्णेणं एक्केण वा जाव उक्कोसेणं पंचहिं वाससयसहस्सेहिं खवयंति।

–विया. स. १८, उ. ७, सु. ४८-५१

उ. गौतम ! वाणव्यन्तर देव अनन्त कर्मांशों को एक-सौ वर्षों में क्षय करते हैं।

असुरेन्द्र को छोड़कर शेष सब भवनवासी देव उन्हीं अनन्त कर्मांशों को दो सौ वर्षों में क्षय करते हैं।

असुरकुमार देव अनन्त कर्मांशों को तीन सौ वर्षों में क्षय करते हैं।

ग्रह, नक्षत्र और तारारूप ज्योतिष्क देव अनन्त कर्मांशों को चार सौ वर्षों में क्षय करते हैं।

ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज चन्द्र और सूर्य अनन्त कर्मांशों को पांच सौ वर्षों में क्षय करते हैं।

सौधर्म और ईशानकल्प के देव अनन्त कर्मांशों को एक हजार वर्षों में क्षय करते हैं।

सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प के देव अनन्त कर्मांशों को दो हजार वर्षों में क्षय करते हैं।

ब्रह्मलोक और लान्तककल्प के देव अनन्त कर्मांशों को तीन हजार वर्षों में क्षय करते हैं।

महाशुक्र और सहस्रार देव अनन्त कर्मांशों को चार हजार वर्षों में क्षय करते हैं।

आनत-प्राणत, आरण और अच्युतकल्प के देव अनन्त कर्मांशों को पांच हजार वर्षों में क्षय करते हैं।

अधस्तन ग्रैवेयक देव अनन्त कर्मांशों को एक लाख वर्ष में क्षय करते हैं।

मध्यम ग्रैवेयक देव अनन्त कर्मांशों को दो लाख वर्षों में क्षय करते हैं।

उपरिम ग्रैवेयक देव अनन्त कर्मांशों को तीन लाख वर्षों में क्षय करते हैं।

विजय, वैजयंत, जयन्त और अपराजित देव अनन्त कर्मांशों को चार लाख वर्षों में क्षय करते हैं।

सर्वार्थसिद्ध देव अनन्त कर्मांशों को पांच लाख वर्षों में क्षय करते हैं।

इसलिए गौतम ! ऐसे देव हैं, जो अनन्त कर्मांशों को जघन्य एक सौ, दो सौ या तीन सौ वर्षों में उत्कृष्ट पांच सौ वर्षों में क्षय करते हैं।

इसलिए गौतम ! ऐसे देव हैं जो अनन्त कर्मांशों को जघन्य एक हजार वर्ष यावत् उत्कृष्ट पांच हजार वर्षों में क्षय करते हैं।

इसलिए गौतम ! ऐसे देव हैं जो अनन्त कर्मांशों को जघन्य एक लाख वर्ष यावत् उत्कृष्ट पांच लाख वर्षों में क्षय करते हैं।

१७४. कम्मविसोहिं पडुच्च चउद्दस जीवट्ठाणणामाणि–

कम्मविसोहिमग्गणं पडुच्च चउद्दस जीवट्ठाणा पण्णत्ता,

१७४. कर्म विशोधि की अपेक्षा चौदह जीवस्थानों (गुणस्थानों) के नाम–

कर्म विशुद्धि के उपायों की अपेक्षा चौदह जीवस्थान (गुणस्थान)

प. कहं णं भन्ते ! अकम्मस्स गई पण्णायइ ?

उ. गोयमा ! १. निस्संगयाए, २. निरंगणयाए, ३. गइपरिणामेणं, ४. बंधणछेयणयाए, ५. निरिंधणयाए, ६. पुव्वपओगेणं अकम्मस्स गई पण्णायइ।

प. कहं णं भन्ते ! १. निस्संगयाए जाव ६. पुव्वप्पओगेणं अकम्मस्स गई पण्णायइ ?

उ. गोयमा ! से जहानामए केइ पुरिसे सुक्कं तुंबं निच्छिड्डं निरुवहयं आणुपुव्वीए परिकम्मेमाणे-परिकम्मेमाणे दब्भेहिं य कुसेहिं य वेढेइ वेढित्ता, अट्ठहिं मट्टियालेवेहिं लिंपइ लिंपित्ता, उण्हे दलयइ, भूइं-भूइं सुक्कं समाणं अत्थहमयारमपोरिसियंसि उदगंसि पक्खिवेज्जा, से नूणा गोयमा ! से तुंबे तेसिं अट्ठण्हं मट्टियालेवाणं गरुयत्ताए भारियत्ताए सलिलतलम वइत्ता, अहे धरणितलपइट्ठाणे भवइ ?

हंता, भवइ।

अहे णं से तुंबे तेसिं अट्ठण्हं मट्टियालेवाणं परिक्खएणं धरणितलमइवइत्ता उप्पिं सलिलतलपइट्ठाणे भवइ ?

हंता, भवइ !

एवं खलु गोयमा ! निस्संगयाए, निरंगणयाए, गइपरिणामेणं अकम्मस्स गई पण्णायइ।

प. कहं णं भन्ते ! बंधणछेयणत्ताए अकम्मस्स गई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! से जहानामए कलसिंबलिया इ वा, मुग्गसिंबलिया इ वा, माससिंबलिया इ वा, सिंबलिसिंबलिया इ वा, एरंडमिंजिया इ वा उण्हे दिण्ण सुक्का समाणी फुडित्ताणं एगंतमंतं गच्छइ, एवं खलु गोयमा ! बंधणछेयणत्ताए अकम्मस्स गई पण्णत्ता।

प. कहं णं भन्ते ! निरिंधणयाए अकम्मस्स गई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! से जहानामए धूमस्स इंधणविप्पमुक्कस्स उड्ढं वीससाए निव्वाघाएणं गई पवत्तइ, एवं खलु गोयमा! निरिंधणयाए अकम्मस्स गई पण्णत्ता,

प. कहं णं भन्ते ! पुव्वप्पयोगेणं अकम्मस्स गई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! से जहानामए कंडस्स कोदंडविप्पमुक्कस्स लक्खाभिमुही वि निव्वाघाएणं गई पवत्तइ, एवं खलु गोयमा ! पुव्वप्पयोगेणं अकम्मस्स गई पण्णत्ता।

–विया. स. ७, उ. १, सु. ११-१३ (१-४)

प्र. भन्ते ! कर्म रहित जीव की गति कैसे होती है ?

उ. गौतम ! १. निःसंगता, २. नीरागता, ३. गतिपरिणाम, ४. बन्धच्छेद ५. कर्म-इन्धन रहितता और ६. पूर्वप्रयोग से कर्मरहित जीव की गति होती है।

प्र. भन्ते ! १. निःसंगता यावत् ६. पूर्वप्रयोग से कर्मरहित जीव की गति कैसे होती है ?

उ. गौतम ! जैसे, कोई पुरुष एक छिद्ररहित और निरुपहत (बिना फटे टूटे) सूखे तुम्बे पर क्रमशः परिकर्म (संस्कार) करता-करता उस पर डाभ (एक प्रकार का घास) और कुश लपेटे, उन्हें लपेट कर उस पर आठ बार मिट्टी के लेप लगा दे, मिट्टी के लेप लगाकर उसे (सूखने के लिए) धूप में रख दे, बार-बार (धूप में देने से) अत्यन्त सूखे हुए उस तुम्बे को अथाह अतरणीय (जिस पर तैरा न जा सके) पुरुष प्रमाण से भी अधिक जल में डाल दे तो हे गौतम ! वह तुम्बा मिट्टी के उन आठ लेपों से अधिक भारी हो जाने से क्या पानी के ऊपरितल को छोड़कर नीचे पृथ्वीतल पर (पैंदे) में जा बैठता है ?

(गौतम स्वामी) हां, (भगवन् ! वह तुम्बा नीचे पृथ्वीतल पर) जा बैठता है।

भगवान् ने पुनः पूछा "गौतम ! (पानी में पड़ा रहने के कारण) आठों ही मिट्टी के लेपों के (गलकर) नष्ट हो जाने से क्या वह तुम्बा पृथ्वीतल को छोड़कर पानी के उपरितल पर आ जाता है ?

(गौतम स्वामी) हां, भगवन् ! वह पानी के उपरितल पर आ जाता है।

इसी प्रकार हे गौतम ! निःसंगता, नीरागता और गतिपरिणाम से कर्मरहित जीव की ऊर्ध्वगति होती है।

प्र. भन्ते ! बन्धन का छेद हो जाने से कर्मरहित जीव की गति कैसे होती है ?

उ. गौतम ! जैसे कोई मटर की फली, मूंग की फली, उड़द की फली, शिम्बलि सेम की फली और एरण्ड बीज के गुच्छे को धूप में रख कर सुखाए तो सूख जाने पर वह फटता है और उनके बीज उछल कर दूर जा गिरते हैं, इसी प्रकार हे गौतम! कर्मरूप बन्धन का छेद हो जाने पर कर्म रहित जीव की गति होती है।

प्र. भन्ते ! इन्धनरहित होने से कर्मरहित जीव की गति कैसे होती है ?

उ. गौतम ! जैसे इन्धन से निकले हुए धूएं की गति किसी प्रकार की रुकावट न हो तो स्वाभाविक रूप से ऊपर की ओर होती है, इसी प्रकार हे गौतम ! कर्मरूप इन्धन से रहित होने से कर्मरहित जीव की गति ऊपर की ओर होती है।

प्र. भन्ते ! पूर्वप्रयोग से कर्मरहित जीव की गति कैसे होती है ?

उ. गौतम ! जैसे–धनुष से छूटे हुए बाण की गति बिना रुकावट के लक्ष्याभिमुखी (निशान की ओर) होती है, इसी प्रकार हे गौतम ! पूर्वप्रयोग से कर्मरहित जीव की (ऊर्ध्व) गति होती है।

वेदना अध्ययन

आत्मा को सुख दुःख आदि का अनुभव होना वेदना है। जिसका वेदन किया जाता है उसे भी उपचार से वेदना कहते हैं। इस दृष्टि से सुख दुःख
दि वेदना के कई भेद हैं। आगम-ग्रन्थों में वेदना के विविध रूपों का निरूपण है। प्रज्ञापना-सूत्र में शीत, उष्ण, शरीर आदि सात द्वारों के आधार पर
दना के भेदों का प्रतिपादन है। वेदनीय कर्म से वेदना का गहरा सम्बन्ध है। वेदनीय कर्म के दो भेद हैं- साता एवं असाता। वेदना का अनुभव प्रायः इन
ही प्रकारों में विभक्त होता है, तथापि वेदना के विविध पक्षों के आधार पर उसके अनेक भेद निरूपित हैं। स्पर्श के आधार पर वेदना के तीन भेद हैं
शीत, २. उष्ण एवं ३. शीतोष्ण। वेदना का वेदन १. द्रव्यतः २. क्षेत्रतः ३. कालतः एवं ४. भावतः होने से वेदना के चार प्रकार भी हैं। वेदना
रीरिक, मानसिक या उभयविध होने से तीन प्रकार की भी निरूपित है। वेदना साता, असाता या साता-असाता के रूप में भी वेदित होती है। दुःख
प, सुख रूप एवं अदुःख-सुख रूप होने से भी वेदना तीन प्रकार की होती है। समस्त वेदनाओं का विभाजन दो भेदों में हो सकता है। कुछ वेदनाएं
भ्युपगमिकी होती हैं अर्थात् उन्हें स्वेच्छा पूर्वक स्वीकार किया जाता है यथा-केशलोच आदि। कुछ वेदनाएं औपक्रमिकी होती हैं जो वेदनीय कर्म के
दीरित होने से प्रकट होती हैं। इन वेदनाओं का वेदन जब संज्ञीभूत जीव करते हैं तब वह वेदना निदा वेदना कहलाती है तथा जब उनका वेदन असंज्ञीभूत
ीव करते हैं तो यह वेदना अनिदा वेदना कही जाती है। चौवीस दण्डकों में कौन सा जीव किस वेदना का वेदन करता है इसका प्रस्तुत अध्ययन में
शद विवेचन है।

वेदना का वेदन जिस कारण से होता है वह करण, मन, वचन, काय और कर्म के भेद से चार प्रकार का है। समस्त पंचेन्द्रिय जीवों के चार प्रकार
करण कहे गए हैं। एकेन्द्रिय जीवों में दो प्रकार के करण होते हैं-काय करण और कर्म-करण। विकलेन्द्रिय जीवों में वचन को मिलाकर तीन प्रकार
करण होते हैं। जब वेदना का वेदन कर्म बंध के अनुरूप होता है तो उसे 'एवम्भूत वेदना' कहते हैं तथा जब कर्म बंध से परिवर्तित रूप में वेदना का
दन होता है तो उसे व्याख्या प्रज्ञप्ति में अनेवम्भूत वेदना कहा गया है। कितने ही प्राणी भूत जीव एवं सत्त्व 'एवम्भूत वेदना' वेदते हैं तथा कितने ही
अनेवम्भूत वेदना' का वेदन करते हैं।

एकेन्द्रिय जीवों को भी वेदना होती है। जैसे वृद्ध पुरुष को मुष्टि प्रहार अनिष्ट वेदना के रूप में अनुभव होता है उसी प्रकार पृथ्वीकाय आदि जीवों
ो आक्रांत किए जाने पर उन्हें अनिष्ट वेदना का अनुभव होता है।

नैरयिक जीव दस प्रकार की वेदना का अनुभव करते हैं-१. शीत, २. उष्ण, ३. क्षुधा, ४. पिपासा, ५. कंडु (खुजली), ६. पराधीनता, ७. ज्वर
. दाह (जलन), ९. भय और १०. शोक। इनमें शीत, उष्ण आदि शारीरिक वेदनाएं हैं तथा पराधीनता, भय एवं शोक मानसिक वेदनाएं हैं। जो
असंज्ञी (मनरहित) प्राणी हैं वे अकाम निकरण रूप में अर्थात् अनिच्छापूर्वक या अज्ञान रूप में वेदना वेदते हैं तथा समर्थ (संज्ञी) जीव अकामनिकरण
वं प्रकामनिकरण (तीव्र इच्छा पूर्वक) दोनों रूपों में वेदना का वेदन करते हैं।

यह आवश्यक नहीं कि जीव स्वयंकृत दुःख का वेदन करे ही। वह उदीर्ण (उदय में आए हुए) दुःख का वेदन करता है, अनुदीर्ण दुःख को नहीं
वेदता। जीवों का समस्त दुःख आत्मकृत है, परकृत एवं उभयकृत नहीं। यही जैनदर्शन के कर्म सिद्धान्त का मुख्य आधार है। इसी कारण सभी जीव
आत्मकृत दुःख का वेदन करते हैं, परकृत एवं उभयकृत का नहीं।

इन्द्रियादि के आधार पर छः प्रकार की साता कही गई है-१. श्रोत्रेन्द्रिय साता, २. चक्षु इन्द्रिय साता, ३. घ्राणेन्द्रिय साता, ४. जिह्वेन्द्रिय साता,
५. स्पर्शेन्द्रिय साता एवं ६. नो इन्द्रिय (मन) साता। इनके अनुकूल न रहने पर छः ही प्रकार की असाता भी हो सकती है-श्रोत्रेन्द्रिय असाता आदि।
ठाणांग सूत्र में सुख के दस भेदों का संकलन है उनमें भौतिक उपलब्धियों को भी सुख रूप गिना है, यथा-आरोग्य, दीर्घ आयुष्य, आढ्यता आदि।
संतोष, निष्क्रमण, अनाबाध आदि आत्मिक सुखों की भी उसमें गणना की गई है।

संसारस्थ सभी प्राणी एकान्त दुःख रूप या एकान्त सुख रूप वेदना का वेदन नहीं करते हैं। कदाचित् दुःख रूप वेदन करते हैं तो कदाचित् सुख
रूप। नैरयिक जीव एकान्त दुःख रूप वेदना को वेदते हुए कदाचित् सुख रूप वेदना भी वेदते हैं। भवनपति आदि देव एकान्त सुख रूप वेदना को वेदते
हैं किन्तु पृथ्वीकायिक जीव से लेकर मनुष्य तक के दण्डकों में कदाचित् सुख और कदाचित् दुःख रूप वेदना रहती है।

जीवों के जरा भी होती है और शोक भी होता है। जरा शारीरिक वेदना है और शोक मानसिक वेदना है। जिन जीवों के मन नहीं होता उनके मात्र
जरा होती है तथा जिन जीवों के मन होता है उनके दोनों की वेदनाएं होती हैं। यहां कर्म सिद्धान्त में नोकषाय के रूप में निरूपित शोक को इस शोक से
पृथक् समझना चाहिए क्योंकि उस शोक का उदय तो असंज्ञी पृथ्वीकाय आदि में भी रहता है।

कर्म सिद्धान्त में कषाय की वृद्धि को संक्लेश कहते हैं किन्तु प्रस्तुत अध्ययन में संक्लेश शब्द असमाधि या अशान्ति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वह
अशान्ति दस निमित्तों से होने के कारण उन्हें संक्लेश कहा गया है। संक्लेश के दस भेदों में एक कषाय संक्लेश भी है। संक्लेश के विपरीत असंक्लेश के
भी वे ही दस भेद हैं। संक्लेश एवं असंक्लेश के दस भेदों में उपधि, उपाश्रय, कषाय, भक्तपान, मानसिक, वाचिक, कायिक की गणना करने के साथ
ज्ञान दर्शन एवं चारित्र की भी गणना की गई है क्योंकि इनकी उपलब्धि अनुपलब्धि भी असंक्लेश एवं संक्लेश का निमित्त बन सकती है।

वेदना एवं निर्जरा में क्या भेद है इस पर प्रस्तुत अध्ययन में विस्तृत विचार हुआ है। सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि वेदना कर्म की होती
है तथा निर्जरा नोकर्म की होती है। वेदना का समय भिन्न होता है एवं निर्जरा का समय भिन्न होता है। जिसको वेदते हैं उसकी निर्जरा नहीं करते और
जिसकी निर्जरा करते हैं उसको वेदते नहीं हैं। कर्म को वेदते हैं और नोकर्म को निर्जीर्ण करते हैं। महावेदना वाले और अल्पवेदना वाले इन दोनों में
वही जीव श्रेष्ठ है जो प्रशस्त निर्जरा वाला है। □

३२. वेयणाऽज्झयणं

ओहेण वेयणा–

वेयणा। –ठाणं अ. १, सु. २३

ऽज्झयणस्स अत्थाहिगारा–

. सीता य २. दव्व ३. सारीर, ४. सात तह वेयणा हवइ ५.
। ६. अब्भुवगमोक्कमिया, ७. णिदा य अणिदा य
१॥ –पण्ण. प. ३५, सु. २०५४, गा. १

रेसु चउवीसदंडएसु य वेयणा परूवणं–

) सीयाइ तिविहा वेयणा

. कइविहा णं भंते ! वेयणा पण्णत्ता?

. गोयमा ! तिविहा वेयणा पण्णत्ता, तं जहा–
१. सीया, २. उसिणा, ३. सीओसिणा।

. दं. १. णेरइया णं भंते ! किं सीयं वेयणं वेदेंति, उसिणं वेयणं वेदेंति, सीओसिणं वेयणं वेदेंति?

. गोयमा ! सीयं पि वेयणं वेदेंति, उसिणं पि वेयणं वेदेंति, णो सीओसिणं वेयणं वेदेंति।

. रयणप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! किं सीयं वेयणं वेदेंति जाव सीओसिणं वेयणं वेदेंति?

. गोयमा ! णो सीयं वेयणं वेदेंति, उसिणं वेयणं वेदेंति, णो सीओसिणं वेयणं वेदेंति।
एवं जाव वालुयप्पभापुढविनेरइया[२]।

. पंकप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! किं सीयं वेयणं वेदेंति जाव सीओसिणं वेयणं वेदेंति?

. गोयमा ! सीयं पि वेयणं वेदेंति, उसिणं पि वेयणं वेदेंति, णो सीओसिणं वेयणं वेदेंति।
जे बहुयतरागा ते उसिणं वेयणं वेदेंति।
जे थोवतरागा ते सीयं वेयणं वेदेंति।
धूमप्पभाए एवं चेव दुविहा।

णवरं–जे बहुयतरागा ते सीयं वेयणं वेदेंति,
जे थोवतरागा ते उसिणं वेयणं वेदेंति।
तमाए तमतमाए य सीयं वेयणं वेदेंति, णो उसिणं वेयणं वेदेंति, णो सीओसिणं वेयणं वेदेंति[३]।

. दं. २. असुरकुमारा णं भंते ! किं सीयं वेयणं वेदेंति, उसिणं वेयणं वेदेंति, सीओसिणं वेयणं वेदेंति?

. गोयमा ! सीयं पि वेयणं वेदेंति, उसिणं पि वेयणं वेदेंति, सीओसिणं पि वेयणं वेदेंति।

३२. वेदना-अध्ययन

सूत्र

१. सामान्य वेदना–
वेदना एक (रूप) है।

२. वेदनाऽध्ययन के अर्थाधिकार–
१. शीत वेदना, २. द्रव्य वेदना, ३. शरीर वेदना, ४. शाता वेदना, ५. दुःख वेदना, ६. आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी वेदना, ७. निदा-अनिदा वेदना।
(वेदनाध्ययन के) ये सात द्वार जानने चाहिए।

३. सातद्वारों में और चौबीसदडंकों में वेदना का प्ररूपण–

(१) शीतादि त्रिविध वेदना–

प्र. भंते ! वेदना कितने प्रकार की कही गई है?

उ. गौतम ! वेदना तीन प्रकार की कही गई है, यथा–
१. शीतवेदना, २. उष्णवेदना, ३. शीतोष्णवेदना।

प्र. दं. १. भंते ! क्या नैरयिक शीतवेदना वेदते हैं, उष्णवेदना वेदते हैं या शीतोष्णवेदना वेदते हैं?

उ. गौतम ! (नैरयिक) शीतवेदना भी वेदते हैं और उष्णवेदना भी वेदते हैं, किन्तु शीतोष्णवेदना नहीं वेदते हैं।

प्र. भंते ! क्या रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक शीतवेदना वेदते हैं यावत् शीतोष्णवेदना वेदते हैं?

उ. गौतम ! वे शीतवेदना नहीं वेदते हैं और शीतोष्णवेदना भी नहीं वेदते हैं, किन्तु उष्णवेदना वेदते हैं।
इसी प्रकार वालुकाप्रभा पृथ्वी (२-३) के नैरयिकों तक कहना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिक शीतवेदना वेदते हैं यावत् शीतोष्ण वेदना वेदते हैं?

उ. गौतम ! वे शीतवेदना भी वेदते हैं और उष्णवेदना भी वेदते हैं, किन्तु शीतोष्णवेदना नहीं वेदते हैं।
जो उष्णवेदना वेदते हैं वे नैरयिक अधिक हैं,
जो शीतवेदना वेदते हैं वे नैरयिक अल्प हैं।
धूम्रप्रभा पृथ्वी (के नैरयिकों) में भी इसी प्रकार दोनों वेदनाएं कहनी चाहिए।
विशेष–जो शीतवेदना वेदते हैं वे नैरयिक अधिक हैं,
जो उष्णवेदना वेदते हैं वे नैरयिक अल्प हैं।
तमा और तमस्तमा पृथ्वी के नैरयिक शीतवेदना वेदते हैं, किन्तु उष्णवेदना तथा शीतोष्णवेदना नहीं वेदते हैं।

प्र. दं. २. भंते ! क्या असुरकुमार शीत वेदना वेदते हैं, उष्णवेदना वेदते हैं या शीतोष्ण वेदना वेदते हैं?

उ. गौतम ! वे शीतवेदना भी वेदते हैं, उष्णवेदना भी वेदते हैं और शीतोष्णवेदना भी वेदते हैं।

---

१. सम. सु. १५३ (२)
ां अ. ३, उ. १, सु. १५५

३. (क) जीवा. पडि. ३, सु. ८९ (३)
(ख) विया. स. १०, उ. २, सु. ५

दं. ३-२४. एवं जाव वेमाणिया।

–पण्ण. प. ३५, सु. २०५५-२०५९

(२) दव्वओदारे चउव्विहा वेयणा–

प. कइविहा णं भंते ! वेयणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! चउव्विहा वेयणा पण्णत्ता, तं जहा–
१. दव्वओ, २. खेत्तओ, ३. कालओ, ४. भावओ।

प. दं. १. णेरइया णं भंते ! किं दव्वओ वेयणं वेदेंति जाव किं भावओ वेयणं वेदेंति?

उ. गोयमा ! दव्वओ वि वेयणं वेदेंति जाव भावओ वि वेयणं वेदेंति।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिया।

–पण्ण. प. ३५, सु. २०६०-२०६२

(३) सारीराइ तिविहा वेयणा–

प. कइविहा णं भंते ! वेयणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! तिविहा वेयणा पण्णत्ता, तं जहा–
१. सारीरा, २. माणसा, ३. सारीरमाणसा।

प. दं. १. णेरइया णं भंते ! किं सारीरं वेयणं वेदेंति, माणसं वेयणं वेदेंति, सारीरमाणसं वेयणं वेदेंति?

उ. गोयमा ! सारीरं पि वेयणं वेदेंति, माणसं पि वेयणं वेदेंति, सारीरमाणसं पि वेयणं वेदेंति।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिया।

णवरं–एगिंदिय–विगलिंदिया सारीरं वेयणं वेदेंति, णो माणसं वेयणं वेदेंति, णो सारीरमाणसं वेयणं वेदेंति।

–पण्ण. प. ३५, सु. २०६३-२०६५

(४) सायाइ तिविहा वेयणा–

प. कइविहा णं भंते ! वेयणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! तिविहा वेयणा पण्णत्ता, तं जहा–
१. साया, २. असाया, ३. सायासाया।

प. दं. १. णेरइया णं भंते ! किं सायं वेयणं वेदेंति, असायं वेयणं वेदेंति, सायासायं वेयणं वेदेंति?

उ. गोयमा ! तिविहं पि वेयणं वेदेंति।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिया।

–पण्ण. प. ३५, सु. २०६६-२०६८

(५) दुक्खाइ तिविहा वेयणा–

प. कइविहा णं भंते ! वेयणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! तिविहा वेयणा पण्णत्ता, तं जहा–
१. दुक्खा, २. सुहा, ३. अदुक्खसुहा।

प. दं. १. णेरइया णं भंते ! किं दुक्खं वेयणं वेदेंति, सुहं वेयणं वेदेंति, अदुक्खमसुहं वेयणं वेदेंति?

उ. गोयमा ! दुक्खं पि वेयणं वेदेंति, सुहं पि वेयणं वेदेंति, अदुक्खमसुहं पि वेयणं वेदेंति[1]।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिया।

–पण्ण. प. ३५, सु. २०६९-२०७१

दं. ३-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

(२) द्रव्यादि द्वार में चतुर्विध वेदना–

प्र. भंते ! वेदना कितने प्रकार की कही गई है?

उ. गौतम ! वेदना चार प्रकार की कही गई है, यथा–
१. द्रव्यतः, २. क्षेत्रतः, ३. कालतः, ४. भावतः।

प्र. दं. १. भंते ! क्या नैरयिक द्रव्यतः वेदना वेदते हैं यावत् भावतः वेदना वेदते हैं?

उ. गौतम ! वे द्रव्य से भी वेदना वेदते हैं यावत् भाव से भी वेदना वेदते हैं।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

(३) शारीरिकादि त्रिविध वेदना–

प्र. भंते ! वेदना कितने प्रकार की कही गई है?

उ. गौतम ! वेदना तीन प्रकार की कही गई है, यथा–
१. शारीरिक, २. मानसिक, ३. शारीरिक-मानसिक।

प्र. दं. १. भंते ! क्या नैरयिक शारीरिक वेदना वेदते हैं, मानसिक वेदना वेदते हैं या शारीरिक-मानसिक वेदना वेदते हैं?

उ. गौतम ! वे शारीरिक वेदना भी वेदते हैं, मानसिक वेदना भी वेदते हैं और शारीरिक-मानसिक वेदना भी वेदते हैं।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

विशेष–एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय शारीरिक वेदना वेदते हैं, वे मानसिक और शारीरिक-मानसिक वेदना नहीं वेदते हैं।

(४) सातादि त्रिविध वेदना–

प्र. भंते ! वेदना कितने प्रकार की कही गई है?

उ. गौतम ! वेदना तीन प्रकार की कही गई है, यथा–
१. साता, २. असाता, ३. साता-असाता।

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिक सातावेदना वेदते हैं, असातावेदना वेदते हैं या साता-असाता वेदना वेदते हैं?

उ. गौतम ! तीनों प्रकार की वेदना वेदते हैं।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

(५) दुक्खादि त्रिविध वेदना–

प्र. भंते ! वेदना कितने प्रकार की कही गई है?

उ. गौतम ! वेदना तीन प्रकार की कही गई है, यथा–
१. दुःखा, २. सुखा, ३. अदुःख-सुखा।

प्र. दं. १. भंते ! क्या नैरयिक जीव दुःख वेदना वेदते हैं, सुख वेदना वेदते हैं या अदुःख असुख वेदना वेदते हैं?

उ. गौतम ! वे दुःख वेदना भी वेदते हैं, सुख वेदना भी वेदते हैं और अदुःख असुख वेदना भी वे देते हैं।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

१. विया. स. १०, उ. २, सु. ५

अब्भोवगमियाइ दुविहा वेयणा–

कइविहा णं भंते ! वेयणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा वेयणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अब्भोवगमिया य,

२. ओवक्कमिया य।

दं. १. णेरइया णं भंते ! किं अब्भोवगमियं वेयणं वेदेंति, ओवक्कमियं वेयणं वेदेंति ?

गोयमा ! णो अब्भोवगमियं वेयणं वेदेंति, ओवक्कमियं वेयणं वेदेंति।

दं. २-१९. एवं जाव चउरिंदिया।

दं. २०-२१. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया मणूसा य दुविहं पि वेयणं वेदेंति।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा णेरइया। –*पण्ण. प. ३५ सु. २०७२-२०७६*

णिदाइ दुविहा वेयणा–

कइविहा णं भंते ! वेयणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा वेयणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. णिदा य, २. अणिदा य।

दं. १. णेरइया णं भंते ! किं णिदायं वेयणं वेदेंति, अणिदायं वेयणं वेदेंति ?

गोयमा ! णिदायं पि वेयणं वेदेंति, अणिदायं पि वेयणं वेदेंति।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"णेरइया णिदायं पि वेयणं वेदेंति, अणिदायं पि वेयणं वेदेंति ?"

गोयमा ! णेरइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सण्णिभूया य, २. असण्णिभूया य।

१. तत्थ णं जे ते सण्णिभूया ते णं निदायं वेयणं वेदेंति,

२. तत्थ णं जे ते असण्णिभूया ते णं अणिदायं वेयणं वेदेंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"णेरइया निदायं पि वेयणं वेदेंति, अणिदायं पि वेयणं वेदेंति।"

दं. २-११. एवं जाव थणियकुमारा।

दं. १२. पुढविक्काइयाणं भंते ! किं णिदायं वेयणं वेदेंति, अणिदायं वेयणं वेदेंति ?

गोयमा ! णो णिदायं वेयणं वेदेंति, अणिदायं वेयणं वेदेंति।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"पुढविक्काइया णो णिदायं वेयणं वेदेंति, अणिदायं वेयणं वेदेंति ?"

गोयमा ! पुढविक्काइया सव्वे असण्णी असण्णिभूयं अणिदायं वेयणं वेदेंति।

(६) आभ्युपगमिकादि द्विविध वेदना–

प्र. भंते ! वेदना कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! वेदना दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. आभ्युपगमिकी (स्वेच्छा पूर्वक अंगीकार की गई।)

२. औपक्रमिकी (वेदनीय कर्म जन्य)

प्र. दं. १. भंते ! क्या नैरयिक आभ्युपगमिकी वेदना वेदते हैं या औपक्रमिकी वेदना वेदते हैं ?

उ. गौतम ! वे आभ्युपगमिकी वेदना नहीं वेदते हैं, औपक्रमिकी वेदना वेदते हैं।

दं. २-१९. इसी प्रकार चतुरिन्द्रियों पर्यन्त कहना चाहिए।

दं. २०-२१. पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक और मनुष्य दोनों प्रकार की वेदना वेदते हैं।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों के लिए नैरयिकों के समान कहना चाहिए।

(७) निदादि द्विविध वेदना–

प्र. भंते ! वेदना कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! वेदना दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. निदा (जानते हुए), २. अनिदा (अनजाने)

प्र. दं. १. भंते ! क्या नैरयिक निदावेदना वेदते हैं या अनिदावेदना वेदते हैं ?

उ. गौतम ! वे निदावेदना भी वेदते हैं और अनिदावेदना भी वेदते हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"नैरयिक निदावेदना भी वेदते हैं और अनिदावेदना भी वेदते हैं ?"

उ. गौतम ! नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. संज्ञीभूत, २. असंज्ञीभूत।

१. उनमें जो संज्ञीभूत हैं वे निदा वेदना को वेदते हैं।

२. जो असंज्ञीभूत हैं वे अनिदा वेदना को वेदते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"नैरयिक निदावेदना भी वेदते हैं और अनिदा वेदना भी वेदते हैं।"

दं. २-११. इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १२. भंते ! क्या पृथ्वीकायिक जीव निदावेदना वेदते हैं या अनिदावेदना वेदते हैं ?

उ. गौतम ! वे निदावेदना नहीं वेदते, किन्तु अनिदावेदना वेदते हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"पृथ्वीकायिक जीव निदावेदना नहीं वेदते, किन्तु अनिदावेदना वेदते हैं ?"

उ. गौतम ! सभी पृथ्वीकायिक असंज्ञी होते हैं, इसलिए असंज्ञियों में होने वाली अनिदावेदना वेदते हैं,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"पुढविक्काइया णो णिदायं वेयणं वेदेंति, अणिदायं वेयणं वेदेंति।"

दं. १३-१९ एवं जाव चउरिंदिया।

दं. २०-२२ पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया मणूसा वाणमंतरा जहा णेरइया।

प. दं. २३. जोइसियाणं भंते ! किं णिदायं वेयणं वेदेंति, अणिदायं वेयणं वेदेंति ?

उ. गोयमा ! णिदायं पि वेयणं वेदेंति, अणिदायं पि वेयणं वेदेंति।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"जोइसिया णिदायं पि वेयणं वेदेंति, अणिदायं पि वेयणं वेदेंति ?"

उ. गोयमा ! जोइसिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. माइमिच्छदिट्ठी उववण्णगा य,

२. अमाइसम्मदिट्ठी उववण्णगा य।

१. तत्थ णं जे ते माइमिच्छदिट्ठी उववण्णगा ते णं अणिदायं वेयणं वेदेंति,

२. तत्थ णं जे ते अमाइसम्मदिट्ठी उववण्णगा ते णं णिदायं वेयणं वेदेंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'जोइसिया णिदायं पि वेयणं वेदेंति, अणिदायं पि वेयणं वेदेंति।'

दं. २४. एवं वेमाणिया वि[१]।

–पण्ण. प. ३५, सु. २०७७-२०८४

४. करण भेया-चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहे णं भंते ! करणे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! चउव्विहे करणे पण्णत्ते, तं जहा–

१. मणकरणे, २. वइकरणे,
३. कायकरणे, ४. कम्मकरणे।

प. दं. १. णेरइयाणं भंते ! कइविहे करणे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! चउव्विहे करणे पण्णत्ते, तं जहा–

१. मणकरणे, २. वइकरणे,
३. कायकरणे, ४. कम्मकरणे।

दं. २-११, २०-२४. एवं पंचेंदियाणं सव्वेसिं चउव्विहे करणे पण्णत्ते।

दं. १२-१६. एगिंदियाणं दुविहे

१. कायकरणे य, २. कम्मकरणे य।

दं. १७-१९. विगलेंदियाणं तिविहे–

१. वइकरणे य, २. कायकरणे य, ३. कम्मकरणे य।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"पृथ्वीकायिक जीव निदावेदना नहीं वेदते किन्तु अनिदावेदना वेदते हैं।"

दं. १३-१९ इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय पर्यन्त कहना चाहिए।

दं. २०-२२ पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक मनुष्य और वाणव्यन्तरों का कथन नैरयिकों के समान जानना चाहिए।

प्र. दं. २३. भंते ! क्या ज्योतिष्क देव निदावेदना वेदते हैं या अनिदावेदना वेदते हैं ?

उ. गौतम ! वे निदावेदना भी वेदते हैं और अनिदावेदना भी वेदते हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"ज्योतिष्क देव निदावेदना भी वेदते हैं और अनिदावेदना भी वेदते हैं ?"

उ. गौतम ! ज्योतिष्क देव दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. मायिमिथ्यादृष्टिउपपन्नक,

२. अमायिसम्यग्दृष्टिउपपन्नक।

१. उनमें से जो मायिमिथ्यादृष्टि उपपन्नक हैं, वे अनिदावेदना वेदते हैं।

२. जो अमायिसम्यग्दृष्टिउपपन्नक हैं, वे निदावेदना वेदते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"ज्योतिष्क देव निदावेदना भी वेदते हैं और अनिदावेदना भी वेदते हैं।"

दं. २४. इसी प्रकार वैमानिक देवों के लिए भी जानना चाहिए।

४. करण के भेद और चौबीसदंडकों में उनका प्ररूपण–

प्र. भंते ! करण कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! करण चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. मन-करण, २. वचन-करण,
३. काय-करण, ४. कर्म-करण।

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिक जीवों के कितने प्रकार के करण कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! चार प्रकार के करण कहे गए हैं, यथा–

१. मन-करण, २. वचन-करण,
३. काय-करण, ४. कर्म-करण।

दं. २-११, २०-२४. इसी प्रकार समस्त पंचेन्द्रिय जीवों के चार प्रकार के करण कहे गए हैं।

दं. १२-१६. एकेन्द्रिय जीवों में दो प्रकार के करण होते हैं, यथा–

१. काय-करण, २. कर्म-करण।

दं. १७-१९ विकलेन्द्रिय जीवों में तीन प्रकार के करण होते हैं–

१. वचन-करण, २. काय-करण, ३. कर्म-करण।

दं. १. प. नेरइयाणं भंते ! किं करणओ वेयणं वेदेंति, अकरणओ वेयणं वेदेंति?

गोयमा ! नेरइया णं करणओ वेयणं वेदेंति, नो अकरणओ वेयणं वेदेंति।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"नेरइयाणं करणओ वेयणं वेदेंति, नो अकरणओ वेयणं वेदेंति?"

गोयमा ! नेरइयाणं चउव्विहे करणे पण्णत्ते, तं जहा–

१. मणकरणे, २. वइकरणे,

३. कायकरणे, ४. कम्मकरणे।

इच्चेएणं चउव्विहेणं असुभेणं करणेणं नेरइया करणओ असायं वेयणं वेदेंति, नो अकरणओ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"नेरइया णं करणओ वेयणं वेदेंति, नो अकरणओ वेयणं वेदेंति।"

दं. २. असुरकुमारा णं भंते ! किं करणओ वेयणं वेदेंति, अकरणओ वेयणं वेदेंति?

गोयमा ! असुरकुमाराणं करणओ वेयणं वेदेंति, नो अकरणओ वेयणं वेदेंति।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"असुरकुमारा णं करणओ वेयणं वेदेंति, नो अकरणओ वेयणं वेदेंति?"

गोयमा ! असुरकुमाराणं चउव्विहे करणे पण्णत्ते, तं जहा–

१. मणकरणे, २. वइकरणे,

३. कायकरणे, ४. कम्मकरणे।

इच्चेएणं सुभेणं करणेणं असुरकुमारा णं करणओ सायं वेयणं वेदेंति, नो अकरणओ।

दं. ३-११. एवं जाव थणियकुमारा।

दं. १२. पुढविकाइयाणं भंते ! किं करणओ वेयणं वेदेंति, अकरणओ वेयणं वेदेंति?

गोयमा ! पुढविकाइयाणं करणओ य वेयणं वेदेंति, नो अकरणओ वेयणं वेदेंति।

णवरं–इच्चेएणं सुभासुभेणं करणेणं पुढविकाइया करणओ वेमायाए वेयणं वेदेंति, नो अकरणओ।

दं. १३-२१ ओरालियसरीरा सव्वे सुभासुभेणं वेमायाए।

दं. २२-२४ देवा सुभेणं सातं।

—विया. स. ६, उ. १, सु. ७-१२

प्र. दं. १. भंते ! क्या नैरयिक जीव करण से वेदना वेदते हैं या अकरण से वेदना वेदते हैं?

उ. गौतम ! नैरयिक जीव करण से वेदना वेदते हैं अकरण से वेदना नहीं वेदते हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"नैरयिक करण से वेदना वेदते हैं, अकरण से वेदना नहीं वेदते हैं?"

उ. गौतम ! नैरयिक जीवों के चार प्रकार के करण कहे गए हैं, यथा–

१. मन-करण, २. वचन-करण,

३. काय-करण, ४. कर्म-करण।

उनके ये चारों ही प्रकार के करण अशुभ होने से वे (नैरयिक जीव) करण द्वारा ही असातावेदना वेदते हैं, किन्तु अकरण से नहीं वेदते।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"नैरयिक जीव करण से असातावेदना वेदते हैं, अकरण से वेदना नहीं वेदते हैं।"

प्र. दं. २. भंते ! असुरकुमार देव करण से वेदना वेदते हैं या अकरण से वेदना वेदते हैं?

उ. गौतम ! असुरकुमार करण से वेदना वेदते हैं, अकरण से नहीं वेदते हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"असुरकुमार करण से वेदना वेदते हैं, अकरण से वेदना नहीं वेदते हैं?"

उ. गौतम ! असुरकुमारों के चार प्रकार के करण कहे गए हैं, यथा–

१. मनकरण, २. वचन-करण,

३. काय-करण, ४. कर्म-करण।

असुरकुमारों के ये चारों ही प्रकार के करण शुभ होने से वे करण द्वारा सातावेदना वेदते हैं, किन्तु अकरण से नहीं वेदते।

दं. ३-११ इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १२. भंते ! पृथ्वीकायिक जीव करण से वेदना वेदते हैं या अकरण से वेदना वेदते हैं?

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव करण द्वारा वेदना वेदते हैं, किन्तु अकरण द्वारा वेदना नहीं वेदते हैं।

विशेष–पृथ्वीकायिकों के शुभाशुभ करण होने से वे विमात्रा से कभी शुभ और कभी अशुभ वेदना वेदते हैं, किन्तु अकरण द्वारा नहीं वेदते हैं।

दं. १३-२१. औदारिक शरीर वाले सभी जीव (पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय और मनुष्य) शुभाशुभ करण द्वारा विमात्रा से वेदना (कदाचित् साता और कदाचित् असाता) वेदते हैं।

दं. २२-२४ देव शुभ करण द्वारा सातावेदना वेदते हैं।

५. चउवीसदंडएसु दुक्खफुसणाइ परूवणं–

प. दुक्खी भंते ! दुक्खेणं फुडे, अदुक्खेणं फुडे ?

उ. गोयमा ! दुक्खी दुक्खेणं फुडे, नो अदुक्खी दुक्खेणं फुडे।

प. दं. १. दुक्खी भंते ! नेरइए दुक्खेणं फुडे ? अदुक्खी नेरइए दुक्खेणं फुडे ?

उ. गोयमा ! दुक्खी नेरइए दुक्खेणं फुडे, नो अदुक्खी नेरइए दुक्खेणं फुडे।

दं. २-२४ एवं जाव वेमाणियाणं।

एवं पंच दंडगा नेयव्वा।

१. दुक्खी दुक्खेणं फुडे,
२. दुक्खी दुक्खं परियादियइ,
३. दुक्खी दुक्खं उदीरेइ,
४. दुक्खी दुक्खं वेदेइ,
५. दुक्खी दुक्खं निज्जरेइ।

–विया. स. ७, उ. १, सु. १४-१५

५. चौवीस दंडकों में दुःख की स्पर्शना आदि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या दुःखी जीव दुःख से स्पृष्ट होता है या अदुःखी जीव दुःख से स्पृष्ट होता है ?

उ. गौतम ! दुःखी जीव दुःख से स्पृष्ट होता है, किन्तु अदुःखी (दुखरहित) जीव दुःख से स्पृष्ट नहीं होता है।

प्र. दं. १. भंते ! क्या दुःखी नैरयिक दुःख से स्पृष्ट होता है या अदुःखी नैरयिक दुःख से स्पृष्ट होता है ?

उ. गौतम ! दुःखी नैरयिक दुःख से स्पृष्ट होता है किन्तु अदुःखी नैरयिक दुःख से स्पृष्ट नहीं होता है।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार ये पांच दण्डक कहने चाहिए।

१. दुःखी दुःख से स्पृष्ट होता है,
२. दुःखी दुःख का परिग्रहण करता है,
३. दुःखी दुःख की उदीरणा करता है,
४. दुःखी दुःख का वेदन करता है,
५. दुःखी दुःख की निर्जरा करता है।

६. एवंभूयअणेवंभूयवेयणा परूवणं–

प. अन्नउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति जाव परूवेंति–
"सव्वे पाणा जाव सव्वे सत्ता एवभूयं वेयणं वेदेंति," से कहमेयं भंते !

उ. गोयमा ! जं णं ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खंति जाव परूवेंति

सव्वे पाणा जाव सव्वे सत्ता एवंभूयं वेयणं वेदेंति,

जे ते एवमाहंसु मिच्छा ते एवंमाहंसु,

अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव एवं परूवेमि,

अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता एवभूयं वेयणं वेदेंति,

अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता अणेवंभूयं वेयणं वेदेंति।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

'अत्थेगइया पाणा जाव सत्ता एवभूयं वेयणं वेदेंति ? अत्थेगइया पाणा जाव सत्ता अणेवंभूयं वेयणं वेदेंति ?'

उ. गोयमा ! जे णं पाणा भूया जीवा सत्ता, जहा कडा कम्मा तहा वेयणं वेदेंति ते णं पाणा भूया जीवा सत्ता एवभूयं वेयणं वेदेंति।

जे णं पाणा भूया जीवा सत्ता जहा कडा कम्मा नो तहा वेयणं वेदेंति तेणं पाणा भूया जीवा सत्ता अणेवंभूयं वेयणं वेदेंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'अत्थेगइया पाणा जाव सत्ता एवंभूयं वेयणं वेदेंति
अत्थेगइया पाणा जाव सत्ता अणेवंभूयं वेयणं वेदेंति।[1]

६. एवम्भूत-अनेवम्भूत वेदना का प्ररूपण–

प्र. भंते ! अन्यतीर्थिक ऐसा कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि–
"सभी प्राण यावत् सभी सत्व एवंभूत (कर्म बंध के अनुसार) वेदना वेदते हैं" भंते ! यह ऐसा कैसे ?

उ. गौतम ! वे अन्यतीर्थिक जो इस प्रकार कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि–

"सभी प्राणी यावत् सत्व एवंभूत वेदना वेदते हैं,"

उनका यह कथन मिथ्या है।

गौतम ! मैं यों कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि–

"कितने ही प्राणी, भूत, जीव और सत्व एवंभूत (कर्म बंध के अनुरूप) वेदना वेदते हैं।

कितने ही प्राणी, भूत, जीव और सत्व अनेवंभूत (कर्म बंध से परिवर्तित रूप में) वेदना वेदते हैं।"

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"कितने ही प्राणी यावत् सत्व एवंभूत वेदना वेदते हैं और कितने ही प्राणी यावत् सत्व अनेवंभूत वेदना वेदते हैं ?"

उ. गौतम ! जिन प्राणी, भूत, जीव और सत्वों ने जिस प्रकार कर्म किये हैं उसी प्रकार वेदना वेदते हैं अतएव वे प्राणी, भूत, जीव और सत्व तो एवंभूत वेदना वेदते हैं।

किन्तु जिन प्राणी, भूत, जीव और सत्वों ने जिस प्रकार कर्म किये हैं, उसी प्रकार वेदना नहीं वेदते हैं वे प्राणी, भूत, जीव और सत्व अनेवंभूत वेदना वेदते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"कितने ही प्राणी यावत् सत्व एवम्भूत वेदना वेदते हैं और कितने ही प्राणी यावत् सत्व अनेवंभूत वेदना वेदते हैं।"

---

१. विया. स. ६, उ. १०, सु. ११

दं. १. नेरइया णं भंते ! किं एवंभूयं वेयणं वेदेंति, अणेवंभूयं वेयणं वेदेंति ?

गोयमा ! नेरइया णं एवंभूयं पि वेयणं वेदेंति, अणेवंभूयं पि वेयणं वेदेंति।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"नेरइयाणं एवंभूयं पि वेयणं वेदेंति, अणेवंभूयं पि वेयणं वेदेंति ?"

गोयमा ! जे णं नेरइया जहा कडा कम्मा तहा वेयणं वेदेंति, ते णं नेरइया एवंभूयं वेयणं वेदेंति।

जे णं नेरइया जहा कडा कम्मा णो तहा वेयणं वेदेंति, ते णं नेरइया अणेवंभूयं वेयणं वेदेंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'नेरइया णं एवंभूयं पि वेयणं वेदेंति, अणेवंभूयं पि वेयणं वेदेंति।'

२-२४ एवं जाव वेमाणिया संसारमंडलं नेयव्वं।

–*विया. स. ५, उ. ५, सु. २-४*

गिंदिएसु वेदणाणुभव परूवणं–

पुढविकाइए णं भंते ! अक्कंते समाणे केरिसियं वेयणं पच्चणुभवमाणे विहरइ ?

गोयमा ! से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे बलवं जाव निउणसिप्पोवगए एगं पुरिसं जुण्णं जराजज्जरियदेहं जाव दुब्बलं किलंतं जमलपाणिणा मुद्धाणंसि अभिहणिज्जा से णं गोयमा ! पुरिसे तेणं पुरिसेणं जमलपाणिणा मुद्धाणंसि अभिहए समाणे केरिसियं वेयणं पच्चणुभवमाणे विहरइ ?

अणिट्ठं समणाउसो !

तस्स णं गोयमा ! पुरिसस्स वेयणाहिंतो पुढविकाइए अक्कंते समाणे एत्तो अणिट्ठतरियं चेव जाव अमणामतरियं चेव वेयणं पच्चणुभवमाणे विहरइ।

आउक्काइए णं भंते ! संघट्टिए समाणे केरिसियं वेयणं पच्चणुभवमाणे विहरइ ?

गोयमा ! जहा पुढविकाइए एवं चेव।

एवं तेउ-वाउ-वणस्सइकाइए वि जाव विहरइ।

–*विया. स. १९, उ. ३, सु. ३३-३७*

दसविहवेयणा–

इया दसविहं वेयणं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तंजहा–

सीयं, २. उसिणं, ३. खुहं, ४. पिवासं, ५. कंडुं, ६. परज्झं, जरं, ८. दाहं, ९. भयं, १०. सोगं।[1]

–*विया. स. ७, उ. ८, सु. ७*

इएसु उसिण-सीय वेयणा परूवणं–

उसिणवेयणिज्जेसु णं भंते ! णेरइएसु णेरइया केरिसयं उसिणवेयणं पच्चणुभवमाणा विहरंति ?

प्र. दं. १. भंते ! क्या नैरयिक एवम्भूत वेदना वेदते हैं या अनेवम्भूत वेदना वेदते हैं ?

उ. गौतम ! नैरयिक एवम्भूत वेदना भी वेदते हैं और अनेवम्भूत वेदना भी वेदते हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

'नैरयिक एवम्भूत वेदना भी वेदते हैं और अनेवम्भूत वेदना भी वेदते हैं ?'

उ. गौतम ! जो नैरयिक अपने किये हुए कर्मों के अनुसार वेदना वेदते हैं वे नैरयिक एवम्भूत वेदना वेदते हैं,

जो नैरयिक अपने किये हुए कर्मों के अनुसार वेदना नहीं वेदते हैं वे नैरयिक अनेवम्भूत वेदना वेदते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"नैरयिक एवम्भूत वेदना भी वेदते हैं और अनेवम्भूत वेदना भी वेदते हैं।"

दं. २-२४ वैमानिकों पर्यन्त समस्त संसारी जीवों के लिए भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

७. एकेन्द्रिय जीवों में वेदनानुभव का प्ररूपण–

प्र. भंते ! पृथ्वीकायिक जीव को आक्रांत करने (दवाने) पर वह कैसी वेदना (पीड़ा) का अनुभव करता है ?

उ. गौतम ! जैसे कोई तरुण वलिष्ठ यावत् शिल्प में निपुण पुरुष किसी वृद्धावस्था से जीर्ण जरा जर्जरित देह वाले यावत् दुर्वल क्लान्त पुरुष के सिर पर मुष्टि से प्रहार करें तो गौतम ! वह पुरुष उस पुरुष के द्वारा दोनों हाथों से मस्तक पर ताडित किये जाने पर कैसी वेदना का अनुभव करता है ?

हे भंते ! वह वृद्ध अनिष्ट वेदना का अनुभव करता है।

इसी प्रकार हे गौतम ! उस वृद्धपुरुष की वेदना की अपेक्षा पृथ्वीकायिक जीव आक्रान्त किये जाने पर अनिष्टतर यावत् अमनामतर पीड़ा का अनुभव करता है।

प्र. भंते ! अप्कायिक जीव संघर्षण किये जाने पर कैसी वेदना का अनुभव करता है ?

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक जीवों के समान कहना चाहिए।

इसी प्रकार तेजस्कायिक वायुकायिक और वनस्पतिकायिक भी यावत् पीड़ा का अनुभव करते हैं ऐसा कहना चाहिए।

८. नैरयिकों में दस प्रकार की वेदनाएँ–

नैरयिक दस प्रकार की वेदना का अनुभव करते हैं, यथा–

१. शीत, २. उष्ण, ३. क्षुधा (भूख), ४. पिपासा (प्यास), ५. कंडु (खुजली), ६. पराधीनता, ७. ज्वर, ८. दाह (जलन), ९. भय, १०. शोक।

९. नैरयिकों की उष्ण-शीत वेदना का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! (१) उष्णवेदना वाले नरकों में नारक किस प्रकार की उष्णवेदना का अनुभव करते हैं ?

[1] ...अ. १०, सु. ७६३ (दाह के स्थान पर व्याधि शब्द का प्रयोग है।) और ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३४२ में व्याधि के चार प्रकार बताये हैं, चउव्विहे वाही पण्णत्ते, तं जहा– १. वाइए, २. पित्तिए, ३. सिंभिए, ४. सण्णिवाइए।

उ. गोयमा ! (१) से जहानामए कम्मारदारए सिया तरुणे बलवं जुगवं अप्पायंके थिरग्गहत्थे दढपाणिपादपास पिट्ठंतरोरू परिणए, लंघण-पवण-जवण-वग्गण-पमद्दणसमत्थे तलजमलजुयल वाहू, घणणिचियवलियवट्टखंधे, चम्मेट्ठगदुहणमुट्ठय-समाहयणिचियत्तगत्ते उरस्सबल समण्णागए छेए दक्खे पट्ठे कुसले णिउणे मेहावी णिउणसिप्पोवगए एगं महं अयपिंड उदगवारसमाणं गहाय तं ताविय-ताविय-कोट्टिय कोट्टिय उब्भिंदिय उब्भिंदिय चुण्णिय जाव एगाहं वा दुयाहं वा तियाहं वा उक्कोसेणं अद्धमासं संहणेज्जा, से णं तं सीयं सीई भूयं अओमएणं संदंसएणं गहाय असब्भावपट्ठवणाए उसिणवेयणिज्जेसु णरएसु पक्खिवेज्जा, से णं तं उम्मिसिय णिमिसियंतरेण पुणरवि पच्चुद्धरिस्सामित्ति कट्टु पविरायमेव पासेज्जा, पविलीणमेव पासेज्जा, पविद्धत्थमेव पासेज्जा, णो चेव णं संचाएइ अविरायं वा अविलीणं वा, अविद्धत्थं वा, पुणरवि पच्चुद्धरित्तए।

उ. गौतम ! (१) जैसे कोई लुहार का लड़का जो तरुण, बलवान्, युगवान् और रोग रहित हो, जिसके दोनों हाथों का अग्रभाग स्थिर हों, हाथ, पांव, पसलियां, पीठ और जंघाएं सुदृढ़ और मजबूत हों, जो लांघने, कूदने, तीव्र गति से चलने, फांदने और कठिन वस्तु को चूर-चूर करने में समर्थ हो, जो सहोदर दो ताल वृक्ष जैसे सरल लंबे पुष्ट बाहु वाला हो, घन के समान पुष्ट वलयाकार गोल जिसके कंधे हो, जिसके अंग-अंग चमड़े की वेंत मुद्गर तथा मुट्ठियों के आघात से पुष्ट बने हुए हों, जो आन्तरिक उत्साह से युक्त हो, जो अपने शिल्प में चतुर, दक्ष, निष्णात, कुशल, निपुण, बुद्धिमान और प्रवीण हो, वह एक पानी के घड़े के समान बड़े लोहे के पिण्ड को एक दिन, दो दिन, तीन दिन यावत् उत्कृष्ट पन्द्रह दिन तक तपा-तपाकर कूट-कूटकर चूर-चूर कर पुनः गोला बना कर ठंडा करे। फिर उस ठंडे हुए लोहे के गोले को लोहे की संडासी से पकड़कर असत् कल्पना से "मैं पलक झपकते जितने समय में फिर निकाल लूंगा" इस विचार से उष्ण वेदना वाले नारकों में रख दें। परन्तु वह क्षण भर में ही उसे बिखरता हुआ, मक्खन की तरह पिघलता हुआ और सर्वथा भस्मीभूत होते हुए देखता है। किन्तु वह अस्फुटित अगलित और अविध्वस्त रूप में पुनः निकाल लेने में समर्थ नहीं होता है।

अर्थात् वहां की भीषण उष्णता के कारण वह गोला अखंड नहीं रह पाता।

(२) से जहा वा मत्तमातंगे दिवे कुंजरे सट्ठिहायणे पढमसरयकालसमयंसि वा चरमनिदाघ कालसमयंसि वा उण्हाभिहए तण्हाभिहए दवग्गिजालाभिहए आउरे सुसिए पिवासिए दुब्बले किलंते एक्कं महं पुक्खरिणिं पासेज्जा, चाउक्कोणं समतीरं अणुपुव्वसुजायवप्प गंभीरसीयलजलं संछण्णपत्तभिसमुणालं, बहुउप्पलकुमुदणलिण सुभग सोगंधिय पुंडरीय महपुंडरीय सयपत्त-सहस्सपत्त केसर फुल्लोवचियं, छप्पयपरिभुज्जमाणकमलं, अच्छविमलसलिलपुण्णं परिहत्थभमंत, मच्छ कच्छभं अणेगसउणिगणमिहुण य विरइय सद्दुन्नइय महुरसरनाइयं तं पासइ तं पासित्ता तं ओगाहइ, तं ओगाहित्ता से णं तत्थ उण्हंपि पविणेज्जा, तिण्हंपि पविणेज्जा, खुहं पि पविणेज्जा, जरं पि पविणेज्जा, दाहं पि पविणेज्जा, णिद्दाएज्ज वा पयलाएज्ज वा, सइं वा, रइं वा, धिइं वा, मतिं वा उवलंभेज्जा, सीए सीयभूए संकममाणे-संकममाणे सायासोक्खबहुले या वि विहरेज्जा,

(२) जैसे-शरत् काल (आश्विन मास) के प्रारंभ में अथवा ग्रीष्मकाल (ज्येष्ठ मास) के अंत में कोई मदोन्मत्त क्रीड़ाप्रिय साठ वर्ष का हाथी गरमी से पीड़ित होकर तृषा से बाधित होकर, दावाग्नि की ज्वालाओं से झुलसता हुआ आकुल, भूखा प्यासा, दुर्वल और क्लान्त होकर एक बड़ी पुष्करिणी को देखता है, जिसके चार कोने हैं, जो समान किनारे वाली है, जो क्रमशः आगे-आगे गहरी है, जिसका जल अथाह और शीतल है जो कमलपत्र कंद और मृणाल से ढंकी हुई है, जो बहुत से विकसित और पराग युक्त उत्पल कुमुद नलिन, सुभग, सौगंधिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र आदि विविध कमलों से युक्त है, भ्रमर जिसके कमलों का रसपान कर रहे हैं, जो स्वच्छ निर्मल जल से भरी हुई है, जिसमें बहुत से मच्छ और कछुए इधर उधर घूम रहे हैं, अनेक पक्षियों के जोड़ों के चहचहाने के कारण जो मधुर स्वर से शब्दायमान हो रही है, ऐसी पुष्करिणी को देखता है, देखकर उसमें प्रवेश करता है, प्रवेश करके अपनी गरमी को शान्त करता है, तृषा को दूर करता है, भूख को मिटाता है, तापजनित ज्वर को नष्ट करता है और दाह को उपशान्त करता है और निद्रा लेने लगता है आंखे मूंदने लगता है, उसकी स्मृति रति (सुखानुभूति) धृति (धैर्य) तथा मति-मानसिक स्वस्थता लौट आती है, इस प्रकार शीतल और शान्त होकर धीरे-धीरे वहां से निकलता हुआ अत्यन्त साता और सुख का अनुभव करता है।

एवामेव गोयमा ! असब्भावपट्ठवणाए उसिणवेयणिज्जे-हिंतो णरएहिंतो णेरइए उव्वट्टिए समाणे जाइं इमाइं मणुस्सलोयंसि भवंति, गोलियालिंछाणि वा,

इसी प्रकार हे गौतम ! असत्कल्पना से उष्णवेदनीय नरकों से निकलकर कोई नैरयिक जीव इस मनुष्यलोक में जो गुड़ पकाने की भट्टियां, शराव वनाने की भट्टियां, बकरी की

सेंडियालिंछाणि वा, भिंडियालिंछाणि वा, अयागराणि वा, तंवागराणि वा, तउयागराणि वा, सीसागराणि वा, रूप्पागराणि वा, सुवन्नागराणि वा, हिरण्णागराणि वा, कुंभारागणी वा, भुसागणी वा, इट्टयागणी वा, कवेल्लुयागणी वा, लोहारंवरीसेइ वा, जंतवाडचुल्ली वा, हंडियलित्थाणि वा, सोंडियलित्थाणि वा, णलागणीइ वा, तिलागणीइ वा, तुसागणीइ वा, तत्ताइं समज्जोई भूयाइं फुल्लाकिंसुय समाणाइं उक्कासहस्साइं विणिम्मुयमाणाइं जालासहस्साइं इंगालसहस्साइं पविक्खरमाणाइं अंतो-अंतो हुहुयमाणाइं चिट्ठंति, ताइं पासइ, ताइं पासित्ता ताइं ओगाहइ, ताइं ओगाहित्ता से णं तत्थ उण्हं पि पविणेज्जा, तण्हं पि पविणेज्जा, खुहं पि पविणेज्जा, जरंपि पविणेज्जा, दाहंपिपविणेज्जा, णिद्दाएज्जा वा, पयलाएज्जा वा, सइं वा, रइं वा, धिइं वा, महं वा, उवल-भेज्जा, सीए सीयभूयए संकममाणे-संकममाणे सायासोक्खवहुले या वि विहरेज्जा,

प. भवेयारूवे सिया?

उ. णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा! उसिणवेयणिज्जेसु णेरइएसु नेरइया एत्तो अणिट्ठतरियं चेव उसिणवेयणं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

प. सीयवेयणिज्जेसु णं भंते! णरएसु णेरइया केरिसियं सीयवेयणं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?

उ. गोयमा! से जहानामए कम्मारदारए सिया तरुणे जुगवं वलवं जाव सिप्पोवगए एगं महं अयपिंडं दगवारसमाणे गहाय ताविय कोट्ठिय-कोट्ठिय जहन्नेणं एगाहं वा, दुआहं वा, तियाहं वा, उक्कोसेणं मासं हणेज्जा, से णं तं उसिणं उसिणभूयं अयोमएणं संदंसएणं गहाय असब्भावपट्ठवणाए सीयवेयणिज्जेसु णरएसु पविक्खवेज्जा, से तं उम्मिसिय निमिसियंतेरणं पुणरवि पच्चुद्धरिस्सामित्तिकट्टु पविरायमेव पासेज्जा, पविलीणमेव पासेज्जा, पविद्धत्थमेव पासेज्जा, णो चेव णं संचाएइ अविरायं वा, अविलीणं वा, अविद्धत्थं वा, पुणरवि पच्चुद्धरित्तए।

से णं से जहाणामए मत्तमायंगे तहेव जाव सोक्खबहुले या वि विहरेज्जा।

एवामेव गोयमा! असब्भावपट्ठवणाए सीयवेदणेहिंतो णरएहिंतो नेरइए उव्वट्टिए समाणे जाइं इमाइं इहं माणुसलोए हवंति, तंजहा–

हिमाणि वा, हिमपुंजाणि वा, हिमपडलाणि वा, हिमपडलपुंजाणि वा, तुसाराणि वा, तुसारपुंजाणि वा, हिमकुंडाणि वा, हिमकुंडपुंजाणि वा, सीयाणि वा, ताइं पासइ पासित्ता ताइं ओगाहइ ओगाहित्ता से णं तत्थ सीयंपि पविणेज्जा, तण्हंपि पविणेज्जा, खुहंपि पविणेज्जा, जरंपि पविणेज्जा, दाहं पि पविणेज्जा, निद्दाएज्ज वा पयलाएज्ज वा जाव उसिणे उसिणभूए संकममाणे-संकममाणे सायासोक्खबहुले या वि विहरेज्जा।

मिण्डियों से भरी भट्टियां, लोहा, तांवा, रांगा, सीसा, चांदी, सोना, हिरण्य को गलाने की भट्टियां, कुम्भकार के भट्टे की अग्नि, भूसे की अग्नि, ईंटें पकाने के भट्टे की अग्नि, केवलु पकाने की भट्टे की अग्नि, लोहार के भट्टी की अग्नि, इक्षुरस पकाने की भट्टे की अग्नि, वड़े-बड़े भाण्डों को पकाने के भट्टों की अग्नि, शराव के भांडों को पकाने के भट्टों की अग्नि, तृण (वांस) की अग्नि, तिल की अग्नि, तुष की अग्नि आदि जो अग्नि से तप्त स्थान है और तपकर अग्नि तुल्य हो गये हैं जिनसे फूले हुए पलास के फूलों की तरह लाल-लाल हजारों चिनगारियां निकल रही हैं, हजारों ज्वालाएं निकल रही हैं, हजारों अंगारे विखर रहे हैं और जो अत्यन्त जाज्वल्यमान है, ऐसे स्थानों को नारक जीव देखता है और देखकर उनमें प्रवेश करता है और प्रवेश करके वह अपनी उष्णता, तृषा, क्षुधा, ज्वर और दाह को दूर कर वहां नींद भी लेता है, आंखें भी मूंदता है, स्मृति रति, धृति और चित्त की स्वस्थता प्राप्त करता है, इस प्रकार शीतल और शान्त होकर धीरे-धीरे वहां से निकलता हुआ अत्यन्त साता और सुख का अनुभव करता है।

प्र. क्या नारकों की ऐसी उष्णवेदना है?

उ. गौतम! यह वात नहीं है, उष्ण वेदना वाले नरकों में नैरयिक इससे भी अधिक अनिष्टतर उष्णवेदना का अनुभव करते हैं।

प्र. भन्ते! शीतवेदना वाले नरकों में नैरयिक जीव कैसी शीतवेदना का अनुभव करते हैं?

उ. गौतम! जैसे कोई लुहार का लड़का जो तरुण, युगवान्, वलवान् यावत् शिल्प में निपुण हो, वह पानी के एक घड़े के वरावर एक वड़े लोहे के पिण्ड को पानी लेकर उसे तपा-तपा कर कूट-कूट कर जघन्य एक दिन, दो दिन, तीन दिन, उत्कृष्ट एक मास पर्यन्त पूर्ववत् सव क्रियाएं करता रहे तथा उस उष्ण और अति उष्ण गोले को लोहे की संडासी से पकड़ कर असत् कल्पना से "मैं पलक झपकते जितने समय में निकाल लूंगा" इस विचार से शीतवेदना वाले नरकों में डाले किन्तु वह पल भर वाद गलता हुआ देखता है, नष्ट होता हुआ देखता है, ध्वस्त होता हुआ देखता है वह उसे अस्फुटित पूर्ववत् अगलित अध्वस्त निकालने में समर्थ नहीं होता है।

मत्त हाथी के समान उसी प्रकार यावत् सुखशान्ति से विचरता है।

इसी प्रकार हे गौतम! असत् कल्पना से शीतवेदना वाले नारकों से निकला हुआ नैरयिक इस मनुष्यलोक में शीतप्रधान जो स्थान है, यथा–

हिम, हिमपुंज, हिम पटल, हिम पटल के पुंज, तुषार, तुषार के पुंज, हिमकुण्ड, हिमकुण्ड के पुंज आदि को देखता है, देखकर उनमें प्रवेश करता है, प्रवेश करके वह अपनी शीतलता, तृषा, भूख, ज्वर, दाह को मिटा कर वहां नींद भी लेता है, आंखें भी वंद कर लेता है यावत् उष्ण होकर अति उष्ण होकर वहां से धीरे-धीरे निकलता हुआ अत्यन्त साता और सुख का अनुभव करता है।

गोयमा ! सीयवेयणिज्जेसु नरएसु नेरइया एत्तो अणिट्ठतरियं चेव सीयवेयणं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

–जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. ८९ (५)

हे गौतम ! शीतवेदनीय वाले नरकों में नैरयिक इससे भी अधिक अनिष्टतर शीतवेदना का अनुभव करते हैं।

१०. नेरइएसु खुहप्पिवासा वेयणा परूवणं–

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया केरिसयं खुहप्पिवासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ?

उ. गोयमा ! एगमेगस्स णं रयणप्पभापुढविनेरइयस्स असब्भावपट्ठवणाए सव्वोदही वा, सव्वपोग्गले वा आसगंसि पक्खिवेज्जा णो चेव णं से रयणप्पभाए पुढवीए नेरइए तित्ते वा सिया वितण्हे वा सिया,

एरिसया णं गोयमा ! रयणप्पभाए नेरइया खुहप्पिवासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति।

एवं जाव अहेसत्तमाए। *–जीवा. पडि. ३, सु. ८८*

१०. नैरयिकों की भूख प्यास की वेदना का प्ररूपण–

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक भूख और प्यास की कैसी वेदना का अनुभव करते हैं ?

उ. गौतम ! असतकल्पना से यदि किसी रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक के मुख में सब समुद्रों का जल तथा सब खाद्य पुद्गल डाल दिए जाय तो भी उस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक की भूख तृप्त नहीं हो सकती है और प्यास भी शान्त नहीं हो सकती है।

हे गौतम ! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक ऐसी तीव्र भूख प्यास की वेदना का अनुभव करते हैं।

इसी प्रकार अधःसप्तम (नरक) पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

११. णेरइयेसु णरयपालेहिं कड वेयणाणं परूवणं–

हण छिंदह भिंदह णं दहेह,
सद्दे सुणेत्ता परमधम्मियाणं।
ते नारगा ऊ भयभिन्नसण्णा,
कंखंति कं नामं दिसं वयामो ॥

इंगालरासिं जलियं सजोइं,
तओवमं भूमिं अणोक्कमंता।
ते डज्झमाणा कलुणं थणंति,
अरहस्सरा तत्थ चिरट्ठिईया ॥

जइ ते सुयावेयरणीऽभिदुग्गा,
निसोओ जहाखुर इव तिक्खसोया।
तरंति ते वेयरणिं भिदुग्गं,
उसुचोइया सत्तिसु हम्ममाणा ॥

कीलेहिं विज्झंति असाहुकम्मा,
नावं उवंते सइविप्पहूणा।
अन्नेत्थ सूलाहिं तिसूलियाहिं,
दीहाहिं विद्धूण अहे करेंति ॥

केसिं च वंधित्तु गले सिलाओ,
उदगंसि बोलेंति महालयंसि।
कलंवुयावालुय मुम्मुरे य,
लोलंति पच्चंति या तत्थ अन्ने ॥

असूरियं नाम महब्भितावं,
अंधतमं दुप्पयरं महंतं।
उड्ढं अहे य तिरियं दिसासु,
समाहियो जत्थऽगणी झियाइ ॥

जंसि गुहाए जलणेऽतियट्टे,
अजाणओ डज्झइ लुत्तपण्णे।
सया य कलुणं पुणऽधम्मठाणं,
गाढोवणीयं अतिदुक्खधम्मं ॥

११. नैरयिकों को नरकपालों द्वारा दत वेदनाओं का प्ररूपण–

नरक में उत्पन्न वे प्राणी मारो, काटो, छेदन करो, भेदन करो, जलाओ, इस प्रकार के परमाधार्मिक देवों के शब्दों को सुनकर भय से संज्ञाहीन हुए वह नारक यह चाहते हैं कि–'हम किसी दिशा में भाग जाएं।'

जलती हुई और जाज्वल्यमान अंगारों की राशि के समान अत्यन्त गर्म नरक भूमि पर चलते हुए वे नैरयिक जलने पर करुण रुदन करते हैं, जो निरन्तर सुनाई पड़ती है, ऐसे घोर नरकस्थान में वे चिरकाल तक निवास करते हैं।

तेज उस्तरे की तरह तीक्ष्ण धार वाली अतिदुर्गम वैतरणी नदी का नाम तो तुमने सुना होगा अतिदुर्गम उस वैतरणी नदी को वाण मारकर प्रेरित किये हुए और भाले से वींधकर चलाये हुए वे नैरयिक पार करते हैं।

नौका की ओर आते हुए उन नैरयिकों को वे परमाधार्मिक कीलों से वींध देते हैं इससे वे स्मृति विहीन होकर किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाते हैं, तव अन्य नरकपाल उन्हें लम्वे-लम्वे शूलों और त्रिशूलों से वींधकर नीचे पटक देते हैं।

किन्हीं नारकों के गले में शिलाएं वांधकर अगाध जल में डुवोते हैं और दूसरे उन्हें अत्यन्त तपी हुई कलम्वपुष्प के समान लाल सुर्ख रेत में और मुर्मुराग्नि में इधर उधर घसीटते हैं और भूंजते हैं।

असूर्य नारक नरक महाताप से युक्त घोर अन्धकार से पूर्ण दुष्प्रतर और विशाल है जिसमें ऊपर नीची एवं तिरछी सर्व दिशाओं में प्रज्वलित आग निरन्तर जलती रहती है।

जिनकी जलती हुई गुफाओं में धकेला हुआ नैरयिक अपनी दुष्प्रवृत्तियों को नहीं जानता हुआ वेभान होकर जलता रहता है। जो सदैव करुणा पूर्ण और अधर्म का स्थान है तथा पापी जीवों को अनिवार्य रूप से मिलता है और उसका स्वभाव भी अत्यन्त दुःख देना है।

चत्तारि अगणीओ समारभित्ता,
जहिं कूरकम्माऽभितवेंति बालं।
ते तत्थ चिट्ठंतऽभितप्पमाणा,
मच्छा व जीवंतुवजोइपत्ता॥

जिस नरकभूमि में क्रूरकर्म करने वाले असुर चारों ओर अग्नियां जलाकर मूढ़ नारकों को तपाते हैं और वे नारकी जीव आग में डाली हुए मछलियों की तरह तड़फड़ाते हुए उसी जगह रहते हैं।

संतच्छणं नाम महब्भितावं,
ते नारया जत्थ असाहुकम्मा।
हत्थेहिं पाएहि य बंधिऊणं,
फलगं व तच्छंति कुहाडहत्था॥

(वहां) संतक्षण नामक एक महान् ताप देने वाला नरक है जहां बुरे कर्म करने वाले नरकपाल हाथों में कुल्हाड़ी लेकर उन नैरयिकों के हाथों और पैरों को बांधकर लकड़ी के तख्ते की तरह छीलते हैं।

रुहिरे पुणो वच्चसमूसियंगे,
भिन्नुत्तमंगे परियत्तयंता।
पयंति णं णेरइए फुरंते,
सजीवमच्छे व अओकवल्ले॥

फिर रक्त से लिप्त जिनके शरीर के अंग सूज गये हैं तथा जिनका सिर चूर-चूर कर दिया गया है और जो पीड़ा के मारे छटपटा रहे हैं ऐसे नारकी जीवों को परमाधार्मिक असुर उलट पुलट करते हुए जीवित मछली की तरह लोहे की कड़ाही में डालकर पकाते हैं।

णो चेव ते तत्थ मसीभवंति,
ण भिज्जई तिव्वभिवेयणाए।
तमाणुभागं अणुवेदयंता,
दुक्खंति दुक्खी इह दुक्कडेणं॥

वे उस नरक की आग में जलकर भस्म नहीं होते और न वहां की तीव्र वेदना से मरते हैं किन्तु उसके अनुभव का वेदन करते हुए इसलोक में किये हुए दुष्कृत (पाप) के कारण वे दुःखी होकर वहां दुःख का अनुभव करते हैं।

तहिं च ते लोलणसंपगाढे,
गाढं सुतत्तं अगणिं वयंति।
न तत्थ सायं लभतीऽभिदुग्गे,
अरहियाभितावा तहवी तवेंति॥

उन नारकी जीवों के आवागमन से पूरी तरह व्याप्त हो उस नरक में तीव्ररूप से अच्छी तरह तपी हुई अग्नि के पास जब वे नारक जाते हैं, तब उस अतिदुर्गम अग्नि में वे सुख नहीं प्राप्त करते और तीव्र ताप से रहित नहीं होने पर भी नरकपाल उन्हें और अधिक तपाते हैं।

से सुव्वई नगरवहे व सद्दे,
दुहोवणीयाण पयाण तत्थ।
उदिण्णकम्माण उदिण्णकम्मा,
पुणो-पुणो ते सरहं दुहेंति॥

उस नरक में नगरवध के समय होने वाले कोलाहल के समान और दुःख से भरे करुणाजनक शब्द सुनाई पड़ते हैं तो भी जिनके मिथ्यात्वादि कर्म उदय में आए हैं, वे नरकपाल उदय में आये हुए पापकर्म वाले नैरयिकों को बड़े उत्साह के साथ बार-बार दुःख देते हैं।

पाणेहि णं पाव वियोजयंति,
तं भे पवक्खामि जहातहेणं।
दंडेहिं तत्था सरयंति बाला,
सव्वेहिं दंडेहिं पुराकएहिं॥

पापी नरकपाल नारकी जीवों के इन्द्रियादि प्राणों को काट-काट कर अलग कर देते हैं, उसका मैं यथार्थ रूप से वर्णन करता हूँ। अज्ञानी नरकपाल नारकी जीवों को दण्ड देकर उन्हें उनके पूर्वकृत सभी पापों का स्मरण कराते हैं।

ते हम्ममाणा णरए पडंति,
पुण्णे दुरूवस्स महब्भितावे।
ते तत्थ चिट्ठंति दुरूवभक्खी,
तुट्टंति कम्मोवगया किमीहिं॥

नरकपालों द्वारा मारे जाते हुए वे नैरयिक पुनः महासन्ताप देने वाले (विष्टा और मूत्र आदि) बीभत्स रूपों से पूर्ण नरक में गिरते हैं। वे वहां (विष्टा, मूत्र आदि) घिनौने पदार्थों का भक्षण करते हुए चिरकाल तक कर्मों के वशीभूत होकर कृमियों (कीड़ों) के द्वारा काटे जाते हुए रहते हैं।

सया कसिणं पुणं घम्मठाणं,
गाढोवणीयं अतिदुक्खधम्मं।
अंदूसु पक्खिप्प विहत्तु देहं,
वेहेण सीसं सेऽभितावयंति॥

नारकी जीवों के रहने का सारा स्थान सदा गर्म रहता है और वह स्थान उन्हें गाढ बंधन से बद्ध कर्मों के कारण प्राप्त होता है तथा अत्यन्त दुःख देना ही उस स्थान का स्वभाव है। नरकपाल नारकी जीवों के शरीर को बेड़ी आदि में डालकर उनके शरीर को तोड़-मरोड़ कर उनके मस्तक में छिद्र करके उन्हें सन्ताप देते हैं।

छिंदंति बालस्स खुरेण नक्कं,
उट्ठे वि छिंदंति दुवे वि कण्णे।
जिब्भं विणिक्कस्स विहत्थिमेत्तं,
तिक्खाहिं सूलाहिं तिवातयंति॥

वे नरकपाल अविवेकी नारकी जीव की नासिका को उस्तरे से काट डालते हैं, उनके ओठ और दोनों कान भी काट लेते हैं और जीभ को एक बित्ताभर बाहर खींचकर उसमें तीखे शूल भोंककर उन्हें सन्ताप देते हैं।

ते तिप्पमाणा तलसंपुडं व,
राइंदियं जत्थ थणंति बाला।

उन नैरयिकों के कटे हुए अंगों से सतत खून टपकता रहता है जिसकी पीड़ा से वे विवेकमूढ़ सूखे हुए ताल के पत्तों के समान

६. जे णं नो पभू अहेरूवाइं अणालोएत्ताणं पासित्तए,

एस णं गोयमा ! पभू वि अकामनिकरणं वेयणं वेदेंति।

प. अत्थि णं भंते ! पभू वि पकामनिकरणं वेयणं वेदेंति ?

उ. गोयमा ! अत्थि।

प. कहं णं भंते ! पभू वि पकामनिकरणं वेयणं वेदेंति ?

उ. गोयमा ! १. जे णं नो पभू समुद्दस्स पारं गमित्तए,

२. जे णं नो पभू समुद्दस्स पारगयाइं रूवाइं पासित्तए,

३. जे णं नो पभू देवलोगं गमित्तए,

४. जे णं नो पभू देवलोगगयाइं रूवाइं पासित्तए,

एस णं गोयमा ! पभू वि पकामनिकरणं वेयणं वेदेंति।

-विया. स. ७, उ. ७, सु. २५-२८

६. जो जीव अवलोकन किये विना नीचे के पदार्थों को नहीं देख सकते हैं,

ऐसे जीव समर्थ होते हुए भी अकामनिकरण वेदना वेदते हैं।

प्र. भंते ! क्या समर्थ होते हुए भी जीव प्रकामनिकरण (तीव्र इच्छापूर्वक) वेदना को वेदते हैं ?

उ. हां, गौतम ! वेदते हैं।

प्र. भंते ! समर्थ होते हुए भी जीव प्रकामनिकरण वेदना को किस प्रकार वेदते हैं ?

उ. गौतम ! १. जो समुद्र के पार जाने में समर्थ नहीं है,

२. जो समुद्र के पार रहे हुए पदार्थों को देखने में समर्थ नहीं है,

३. जो देवलोक जाने में समर्थ नहीं है,

४. जो देवलोक में रहे हुए पदार्थों को देखने में समर्थ नहीं है,

गौतम ! ऐसे जीव समर्थ होते हुए भी प्रकामनिकरण वेदना को वेदते हैं।

४. विविहभावपरिणय जीवस्स एगभावाईरूवपरिणमनं–

प. एस णं भंते ! जीवे तीतमणंतं सासयं समयं दुक्खी, समयं अदुक्खी, समयं दुक्खी वा, अदुक्खी वा पुव्विं च णं करणेणं अणेगभावं अणेगभूयं परिणामं परिणमइ,

अह से वेयणिज्जे निज्जिण्णे भवइ तओ पच्छा एगभावे एगभूए सिया ?

उ. हंता, गोयमा ! एस णं जीवे जाव अह से वेयणिज्जे निज्जिण्णे भवइ, तओ पच्छा एगभावे एगभूए सिया।

एवं पडुप्पन्नं सासयं समयं।

एवं अणागयमणंतं सासयं समयं।

-विया. स. १४, उ. ४, सु. ५-७

१४. विविधभाव परिणत जीव का एकभावादिरूप परिणमन–

प्र. भंते ! क्या यह जीव अनन्त शाश्वत अतीत काल में समय-समय पर दुःखी-अदुःखी (सुखी) या दुःखी-अदुःखी अथवा पूर्व के करण (प्रयोगकरण और विस्रसाकरण) से अनेकभाव और अनेकरूप परिणाम से परिणमित हुआ ?

इसके वाद वेदन और निर्जरा होती है और उसके वाद कदाचित् एकभाव वाला और एक रूप वाला होता है ?

उ. हां, गौतम ! यह जीव यावत् वेदन और निर्जरा करके उसके वाद कदाचित् एक भाव और एक रूप वाला होता है।

इसी प्रकार शाश्वत वर्तमान काल के विषय में भी समझना चाहिए।

इसी प्रकार अनन्त शाश्वत भविष्यकाल के विषय में भी समझना चाहिए।

५. जीव-चउवीसदंडएसु सयंकड दुक्खवेयण परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! सयंकडं दुक्खं वेएइ ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइयं वेएइ, अत्थेगइयं नो वेएइ ?

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'अत्थेगइयं वेएइ, अत्थेगइयं नो वेएइ ?'

उ. गोयमा ! उदिण्णं वेएइ, अणुदिण्णं नो वेएइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"अत्थेगइयं वेएइ, अत्थेगइयं नो वेएइ।"

दं. १-२४. एवं नेरइए जाव वेमाणिए।

प. जीवा णं भंते ! सयंकडं दुक्खं वेदेंति ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइयं वेदेंति, अत्थेगइयं नो वेदेंति।

१५. जीव-चौवीस दंडकों में स्वयंकृत दुःख वेदन का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या जीव स्वयंकृत दुःख को वेदता है ?

उ. गौतम ! किसी दुःख को वेदता है और किसी को नहीं वेदता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'किसी को वेदता है और किसी को नहीं वेदता है ?'

उ. गौतम ! उदीर्ण (उदय में आए दुःख) को वेदता है, अनुदीर्ण को नहीं वेदता,

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"किसी को वेदता है और किसी को नहीं वेदता है।"

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या (बहुत से) जीव स्वयंकृत दुःख को वेदते हैं ?

उ. गौतम ! किसी (दुःख) को वेदते हैं, और किसी (दुःख) को नहीं वेदते हैं।